❀ श्री ❀

आयुर्वेदीय विश्व-कोष

(आयुर्वेदीय कोष का तृतीय खण्ड) Vol 3

An Encyclopædical Ayurvedic Dictionary

(*With full details of Ayurvedic, Unani and Allopathic terms*)

अर्थात्

आयुर्वेद के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग सम्बन्धी विषय यथा निघण्टु, निदान, रोग-विज्ञान, विकृत-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, रसायन-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, कीटाणु-विज्ञान इत्यादि प्रायः सभी विषय के शब्दों एवं उनकी अन्य भाषा (देशी, विदेशी, स्थानीय एवं साधारण बोलचाल) केपर्यायों का विस्तृत व्याख्या सहित अपूर्व संग्रह। व्याख्या में प्राचीन व अर्वाचीन मतों का चिकित्सा-प्रणाली-त्रय के अनुसार तुलनात्मक एवं गवेषणापूर्ण विवेचन किया गया है। इसमें ४००० से अधिक वनस्पतियों, समग्र खनिज एवंचिकित्सा-कार्य में आनेवाली प्रायः सभी आवश्यकप्राणिवर्ग की तथा रासायनिक औषधों के आजतक की शोधों का सर्वाङ्गीन सुन्दर सुबोध एवं प्रामाणिक वर्णन है। इसके सिवा इसमें सभी प्राचीन अर्वाचीन रोगों का विस्तृत निदान चिकित्सादि भी वर्णित है।

संक्षेप में आयुर्वेद (यूनानी तथा डाक्टरी) सम्बन्धी कोई भी विषय ऐसा नहीं, चाहे वह प्राचीनहो या अर्वाचीन जिसका इसमें समावेश न हुआ हो।

Acc. 8580

R 610.3 Ram/Dal

लेखक तथा संकलन-कर्त्ता —
श्री बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य
श्री बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य
राजपुरी चुनार, (यू० पी०)

13486

प्रकाशक —
श्री पं० विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज
सम्पादक—'अनुभूत योगमाला'
बरालोकपुर इटावा, (यू० पी०)

१ म संस्करण, १००० प्रति
सम्वत् १९९९ वि० तथा सन् १९४२

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन है।

मू० सजिल्द ६।)
अजिल्द ५।)

श्री पं० विश्वेश्वरदयालु जी के प्रबन्ध से श्री हरिहर प्रेस, बरालोकपुर-इटावा में मुद्रित।

Mehar Chand Lachhaman Das
Sanskrit & Hindi Book-Sellers
Lahore

लेखक—
बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य,
बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य
रायपुरी-चुनार यू० पी०

CENTR[illegible] A[illegible] [illegible]IGAL
LIBRARY, [illegible] [illegible]HI.
Acc. No. 8580
Date 25-3-57
Call No. R 610.3
Ram/Dal.

मुद्रक एवं प्रकाशक—
श्री हरिहर फाइन आर्ट
बरालोकपुर-इटावा यू० पी०

विज्ञप्ति

उस जगत्पिता परमात्मा की असीम कृपा से आयुर्वेदीय विश्वकोष का यह तीसरा भाग हम आपके कर कमलों में समर्पित कर रहे हैं इसकी हमें बड़ी प्रसन्नता है, इस भीषण परिवर्तनकारी समयमें जब कि बड़े२ शहरोंके बड़े २ कारखाने स्थानान्तरि हो चुकेहैं जिनसे हम अपने लिये आवश्यक सामान खरीदते थे। अतः एक २ के चार २ देने पर भी मनोनुकुल सामिग्री का मिलना नितान्त ही कष्ट कर एवं असंभव हो रहा है, और की क्या कहें कागज की ऐसी भीषण तेजी जब कि कागज का दाम साधारणतया छः गुना हो रहा है और इतने पर भी इच्छित प्राप्त की असंभावना है। सभी सामान असौकर्य्य इस पर भी हमने अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार प्रत्येक जिल्द ८०० पृष्ट की अर्थात १०० फार्म देने की थी, उसी के अनुरूप विषयकी कमी बढ़ीके अनुसार किसी में कम और किसी में ज्यादा पृष्ट कर तीनों भागों की पृष्ट संख्या २४३६ करके प्रत्येक भाग के ८०० पृष्ट पूरे कर ही दिये गये हैं। और वही पुरानी भेष भूषा व कीमत रखी गई है, जो समय को देखते हुये अत्यधिक कम है और हमें अत्यधिक घाटे में डाल रही है, परंतु सेवाभाव और पुस्तक प्रकाशन को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा में बद्ध होकर हम इसकी परवाह नहीं कर रहे हैं, यह कमी भगवान ही पूर्ण करेंगे या आप लोग ही। हमें दुःख तो सिर्फ यही है कि हम इतने बड़े उपयोगी कार्य को लेकर जिस आशा से वैद्य समाज के सन्मुख आये थे उस प्रकार आपने उसका स्वागत नहीं किया हमने सोचा था कि इसके ग्राहक हमारे वैद्यबन्धु बहुत बड़ी तादाद में बन जावेंगे और कोष हाथों हाथ निकल जावेगा। परन्तु वह आशा बादल के पुष्पवत ही बेकार हुई और कोष के इतने भी ग्राहक न हुये कि लागत मात्र भी व्यर्थ वसूल हो जाता। इस प्रकार प्रत्येक भाग में अनुमानिक ५००० हजार की रकम बट्टे खाते में ही पड़ती रही इससे प्रकाशक लेखकों को भी संतुष्ट न कर सका जिससे वह भी बड़ी मन्दगति से कार्य उत्साह रहित हो करने लगे और प्रकाशक भी मूलधन को गमाकर द्रव्य की आशा में ही चातकवत टकटकी लगाये रहा। कार्य तो लाभार्थ किया गया था पर गमाया मूलधन भी ? ऐसी स्थिति में अन्य कोई भी प्रकाशक होता तो वह ऐसे जटिल कार्य को सदैव के लिये ही छोड़ देता परन्तु यहां तो विचित्र ही गति विधि है वह है केवल जीवन में आयुर्वेद की सेवा उसकी बिछुड़ी हुई साहित्य को पूर्णकर उसकी प्रतिष्ठा की धाक जमाना अपने वैद्य बन्धुओं को पूर्ण चिकित्सक बना संसार का कल्याण करने के लिये पूर्ण रूप से ज्ञानान्वित करना, इसी उद्देश्य को लेकर इतने भीषण प्रहार पर भी हम अपनी प्रतिज्ञानुसार इसे प्रकाशित ही किये जा रहे हैं। हां ? द्रव्य संचय के लिये समय अधिक लग रहा है जब इतना प्रकाशन योग्य द्रव्य बच रहता है तब हम प्रकाशन की तरफ दौड़ते हैं और लेखकों को उत्साहित करते हैं तब वह मेटर तयार कर हमें देते हैं और हम भी अपना कार्य चलाते हुये इसे छापकर आपके पास पहुँचाते हैं इस प्रकार सन् १६३४ में इस कोष का प्रथम भाग प्रकाशित किया गया था और दूसरा भाग १६३७ में यह तीसरा भाग १६४२ में प्रकाशित हो रहा है इसके प्रकाशन में पूरे पांच वर्ष का समय चला गया अर्थात् ६ साल में केवल तीन भाग ही निकल सके इतने समय में सम्पूर्ण कोष निकल जाता परन्तु क्या करें हम द्रव्य से विवश हैं यदि कोष के ग्राहक इतने भी बन जाते कि कोष का लागत द्रव्य भी निकल आता तो हमें कोई चिन्ता न रहती और बराबर कोष का ही काम होता रहता १०० फार्म १०० दिन में करीब ४ महीने में छप सकते हैं १०० फार्म का मेटर प्रेस योग्य ६ मास में बन सकता है इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में एक भाग आपको मिल सकता है।

फिर भी यह नहीं मिल रहा है, इसका सारा जवाब वैद्य समाज एवं आयुर्वेद प्रेमियों पर है, किसी भी क्षेत्र में देखिये कोई भी नवीन साहित्य प्रकाशित होते ही चट समाप्त हो जाता है, इसका कारण यही है कि उन २ क्षेत्रों के विद्वान उस नवीन साहित्य को पढ़ने की रुचि रखते हैं और खास कर अपने ज्ञान की वृद्धि करना चाहते हैं, परन्तु आयुर्वेद क्षेत्र में यह गति विधि नहीं, वैद्य बन्धु अपने ज्ञान की वृद्धि ही नहीं चाहते, वह तो लकीर के फकीर बने रहने में मस्त हैं। वह तो शार्ङ्गधर, माधव निदान को ही पर्याप्त समझ दो रुपये मूल्य की पुस्तकोंसे ही पूरे वैद्यराज बनने को तयार हैं, इसके अलावा वह कुछ नवीनता अपने में लाने को तयार नहीं हैं। यदि ऐसा साहित्य अंग्रेजी में निकलता तो कई गुनी कीमत होनेपरभी आज कई संस्करणों में विभाजित हो गया होता, अंग्रेजी साहित्यकी आजकल कदर है, अंग्रेजी पढ़े साहित्य प्रेमी हैं, वह अपने को नवीन २ ज्ञानों से पूर्ण देखना चाहते, तभी वह साहित्य आज सबसे उच्च है। जब तक ऐसी भावना वैद्य समाज में नहीं होती, तब तक इसका साहित्यक क्षेत्र पूर्णतया बढ़ नहीं सकता और न वैद्य ही पूर्ण ज्ञानयुक्त हो सकते हैं। यह कोष कितना उपयोगी है, वैद्यों को इससे कितना लाभ होगा, यह बात तो आपने विद्वानों के द्वारा ही सुनी होगी इसकी छपी हुई आलोचकाओं में। सहयोगियों की भाषा में भी सुनिये, वनौषधि चंद्रोदयकार अपनी भूमिका में लिखते हैं। लेखकों ने जिस महान परिश्रम से यह कार्य उठाया है उसे देखकर कहना पड़ता है कि अगर यह ग्रंथ अंत तक सफलता पूर्वक प्रकाशित हो गया तो राष्ट्र भाषा हिन्दी के गौरव की पूरी तरह से रक्षा करेगा, यह ग्रन्थ अनुपम होगा इसमें संदेह नहीं। —चंद्रराज भंडारी

इतना होने पर भी हमने पृष्ठ संख्या, विषय की उत्तमता में और मूल्य की स्वल्पता में क्रांति की है, अब तक का कोई भी प्रकाशन इतने कम मूल्य का देखने पर भी न मिलेगा, अब तक के सभी कोष केवल वनौषधि गुण प्रदर्शक ही है। परन्तु इस कोष में और भी कई विशेषतायें हैं, शरीर, खनिज, भौतिक, विज्ञान के सिवाय निघण्टु, चिकित्सा प्रसिद्ध योगसंग्रह इसकी अनुपम देन है। परन्तु हम तो लागत मूल्य में ही देने को तयार थे ताकि थोड़े दाम में ही लोग इसका संग्रह कर लाभसे वंचित न रह जाय। सच पूछिये तो यह कोष पृष्ठ संख्यामें, विषयकी उत्तमता एवं नवीनता में, मूल्य की न्यूनता में संसार में क्रांति स्थापित कर रहा है आज तक कोई भी पुस्तक इतनी उपादेय ढूंढने पर भी न मिलेगी फिर भी कोष के लिये ऐसा प्रमाद क्या समाज को शोभा देता है। और कई विशेषतायें भी हैं परन्तु हमारे पास प्रोपेगण्डा करने का समय नहीं है पूर्ण ज्ञान के लिये आपको अन्य कोषों के होते हुये भी इस कोष से ही पर्याप्त सहायता लेना होगी। इसके प्रकाशन की देरी आपके जिम्मे ही है आप ही उसके जवाबदार हैं। यदि इसी प्रकार की शिथिलता रही तो संभव है कोष पूर्ण भी न हो सके इसीलिये दया करके प्रत्येक वैद्य बन्धु को इसकी एक २ प्रति अवश्य खरीदना चाहिये और अपने जाने हुये मित्र वैद्यों को भी ग्राहक बनाकर इसकी बिक्री बढ़ाने की दया करनी चाहिये, ताकि कोष जल्द से जल्द पूर्ण हो आयुर्वेद क्षेत्र में चमत्कार प्रदर्शित करने में सफलता प्राप्त करें। हमारा जो कर्तव्य था हमने पूर्ण किया अब आपका कर्तव्य है उसे जिस प्रकार चाहें पूर्ण करें सारी व्यवस्था आपके सामने है। भगवान इच्छा पूर्ण करे यही कामना है।

ऐसे उपयोगी प्रकाशनों के लिये धनी मानी, राजा, रईस भी सहायता प्रदान करते हैं अतः वैद्यों को इस तरफ भी ध्यान देकर सहायता दिलाकर इस कार्य को पूर्ण करने में हमें सहयोग देना या दिलाना चाहिये ताकि यह कार्य पूरा हो जाय। प्रकाशक:—

❀ श्री धन्वन्तरयेनमः ❀

निखिल भारतवर्षीय सप्तविंशतितमं वैद्यसम्मेलनं नागपुर

प्रदर्शन-विभाग

प्रमाण-पत्रम्

श्रीमतां बरालोकपुर निवासिनां पं० विश्वेश्वरदयालु राजवैद्य इत्येतेषां प्रदर्शन समागतो आयुर्वेदीय विश्व-कोष ग्रंथो नितान्तवैद्योपयुक्त इत्यवधार्यतेभ्यः स्वर्णपदकेन सह, प्रथमश्रेण्याः प्रमाणपत्रमेतत्सम्मान पूर्वकं प्रदीयते आशास्यते च विषयेऽस्मिन्नति-वृद्धिं कुर्वन्तु नितरामिति ।

प्रदर्शनाध्यक्षः—

वैद्यराज गंगाधर विष्णु पुराणिक

पनवेल

परीक्षक समिति—

भिषक् केशरी श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी

प्राणाचार्य सुन्दरलाल शुक्लः

गणेश शास्त्री जोशी आयुर्वेदाचार्य ।

लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणीक

प्रदर्शन मंत्रिणः

ता० १७-८-३८

आयुर्वेदीय विश्व-कोष पर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों की—

सम्मतियां

सुप्रसिद्ध वनस्पति शास्त्रज्ञ एवं वनौषधि-अन्वेषक श्रद्धेय ठा० बलवंत सिंहजी M. S. C. प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज हिंदू विश्व विद्यालय कोष के सम्बन्ध में इस प्रकार अपने उद्गार प्रकट करते हैं—

"आयुर्वेद की शास्त्रोक्त परिभाषा जितनी व्यापक हो सकती है, आयुर्वेदीय विश्व-कोष का विषय क्षेत्र भी उतना ही व्यापकरखा गया है। यह बात कोष के लेखक द्वय हमारे मित्र ठा० रामजीत सिंह जी तथा ठा० दलजीतसिंह जा के उदार और विस्तृत दृष्टिकोण की परिचायक है। अनेक क्षेत्रों के विशेषज्ञ तथा बड़े २ विद्वानों की प्रशंसात्मक सम्मतियां उनकी सफलता की द्योतक हैं।

वनस्पति-विज्ञान और तत्सम्बन्धी खोजों में अधिक रुचि होने के कारण मैंने प्रस्तुत ग्रंथ के वनस्पति विषयक अंश को ध्यान से देखा। मुझे इस बात की प्रसन्नता हुई कि इस क्षेत्र में हमारे यशस्वी लेखकों ने संदिग्ध द्रव्यों पर निर्णयात्मक बुद्धि से विचार करने तथा प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जैसा कि आजकल के विरले ही लेखक करते हैं। संज्ञाओं की व्युत्पत्ति का ज्ञान संदिग्धता निवारण का एक प्रधान साधन है जिसे आप लोगों ने अपनाया है। यह तभी सम्भव है जब द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो और तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण साहित्य का अवलोकन किया गया हो। इन दिशाओं में लेखक महोदयों की व्याकुल जिज्ञासा तथा उनकी उद्यमशीलता तथा अनवरत प्रयत्न को देखकर हमें आशा करना चाहिये कि कोष के आगामी खंडों में क्रमशः अधिकाधिक खोज पूर्ण विचारों का समावेश होता जायगा।

आयुर्वेद-कालेज
हिंदू विश्व-विद्यालय काशी
ता० २० अप्रैल १९४२ ई०

श्रीयुत् ठा० बलवंतसिंह जी

आयुर्वेदीय विश्व कोष द्वितीय खंड के सम्बन्ध में आयुर्वेदिक कालेज-पत्रिका (हिंदू विश्व-विद्यालय) की राय—

उपर्युक्त पुस्तक में आयुर्वेद, यूनानी एवं एलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ और उनकी व्याख्या दी गई है। पुस्तक को देखने से यह पता लगता है कि यह विश्व-कोष गंभीर अध्ययन और परिश्रम से लिखा गया है। आयुर्वेद-संसार में इस प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। बहुत दिनों से जिस कमी का अनुभव विद्वान लोग कर रहे थे, निस्संदेह इससे वह कमी पूरी हो जायगी। पूर्ण प्रकाशित होने के बाद यह एक आयुर्वेद का उज्ज्वल रत्न होगा। विद्यार्थियों से लेकर विद्वान विचारकों तक के लिये पठनीय मननीय और संग्रहणीय है। प्रकाशक और संकलन कर्त्ताओं के इस कार्य की हम सराहना करते हैं कि वे इसे पूर्ण करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे जिससे यह महान् ग्रंथ शीघ्र ही तैयार हो।

'वनस्पति-चंद्रोदय' की भूमिका प्रथम भाग पृ० ७ पर ग्रंथ के लेखक महाशय लिखते हैं—

—हर्ष है कि हाल ही में हिन्दी में चुनार-निवासी बाबू रामजीत सिंह और बाबू दलजीत सिंह वैद्य ने महान परिश्रम के साथ एक आयुर्वेदीय विश्व-कोष का प्रणयन प्रारम्भ किया है। इस ग्रंथ के दो भाग निकल चुके हैं। लेखकों ने जिस महान परिश्रम से यह कार्य उठाया है उसे देखकर कहना पड़ता है कि अगर यह ग्रथ अंत तक सफलता पूर्वक प्रकाशित हो गया तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गौरव की पूरी तरह से रक्षा करेगा।

डाक्टर भास्कर गोविंद घाणेकर, बी० एस० सी०, एम. बी. बी. एस. आयुर्वेदाचार्य, प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज, हिंदू विश्व-विद्यालय बनारस लिखते हैं—

'आयुर्वेदीय कोष का प्रथम विभाग मैंने आद्योपांत देखा। इसके और भी कई भाग निकल चुके हैं। इसका निर्माण करके लेखक द्वय ने वैद्य-समाज के ऊपर अतुल उपकार किया है। यद्यपि ग्रंथ का नाम आयुर्वेदीय कोष है तथापि इसमें आयुर्वेद, युनानी और एलोपैथी इन तीनों चिकित्सा प्रणालियों के सम्पूर्ण विषयों का विवेचन अकारादि क्रम से किया गया है। अर्थात् यह ग्रंथ वैद्यक का ज्ञान-कोष है जो लेखक द्वय के अनवरत परिश्रम का फल है। इस प्रकार के एक दो कोष पहले हो चुके हैं; परन्तु उनसे यह कोष अधिक विस्तृत और अधिक उपयोगी है। इसलिये वैद्य महानुभावों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस ग्रंथ को खरीद कर अपना ज्ञान बढ़ावें, तथा साहसी लेखक द्वय की उत्साह वृद्धिकर 'एक पंथ दो काज' की कहावत चरितार्थ करें।

सुधानिधि नामक आयुर्वेद पत्रिका में उसके यशस्वी संस्थापक और सम्पादक, इस ग्रंथ की समालोचना करते हुये लिखते हैं—

"इसमें आयुर्वेदिक विषयों के साथ ही तिब्बी और एलोपैथी सम्बन्धी शब्दो का भी संग्रह किया गया है। आज तक की खोजों का फल भी इसमें देखने को मिलेगा; अनन्नास जैसे बहुत से नवीन पदार्थों का समावेश भी इसमें मिलेगा। ऐसे बृहत्-ग्रंथों में जो धन-राशि लगती है उसके लगाने का साहस कर पंडित विश्वेश्वरदयालु जी ने आयुर्वेदीय जगत का बड़ा उपकार किया है, सबसे अधिक धन्यवाद तो इसके संकलनकर्त्ता चुनार-निवासी बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य और बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य को है, जिन्होंने वर्षों परिश्रम कर और जंगल पहाड़ों की खाक छानकर तथा रसायन, भौतिक विज्ञान, जन्तुशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, शरीरशास्त्र, द्रव्यगुण शास्त्र, शरीर क्रिया विज्ञान, शवच्छेद, औषध निर्माण, प्रसूतिशास्त्र, व्यवहार-आयुर्वेद, स्त्री-रोग, बालरोग, विषतंत्र आदि के ग्रंथों का आलोचन कर शब्द-संग्रह और उनका अर्थ दिया है। कहीं-कहीं आवश्यक विशद व्याख्या कर ग्रंथ का महत्व बढ़ा दिया गया है। वैद्यों को इससे अच्छी सहायता मिलेगी।"

"आयुर्वेदीय विश्व-कोष" के द्वितीय खण्ड के संबन्ध में

आरोग्य-दर्पण के संपादक लिखते हैं—

"इसमें अंक शब्द से लेकर एक्सटैक्टम्…शब्द तक चिकित्सा-विज्ञान में व्यवहृत शब्दों की व्याख्या की गई है। प्रायः चिकित्सा सम्बन्धी सभी शाखाओं के शब्दों का संकलन अकारादि क्रम से किया गया है और उनकी व्याख्या विस्तृतरूप से की है। आयुर्वेद, यूनानी और डाक्टरी के अनेक विषयों की जानकारी जितनी इस ग्रंथ से हो सकती है उतनी किसी अन्य से नहीं हो सकता। इस ग्रंथ के लेखक और प्रकाशक समस्त वैद्य-समाज के धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक वैद्य और वैद्यक संस्था को इसे अवश्य मंगाना चाहिये। यदि वैद्य-समाज उत्साह-वर्द्धन न करे, तो फिर आयुर्वेदीय साहित्य ऐसे ग्रंथों से शून्य ही रहेगा। पुस्तक के आकार और उपयोगिता को देखते हुये मूल्य भी उचित ही है।

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह, प्राणाचार्य, रसायनाचार्य, प्रोफेसर और सुपरिनटेन्डेन्ट आयुर्वेद-कालेज हिंदू विश्व विद्यालय बनारस लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय विश्व-कोष" का द्वितीय भाग अवलोकन किया। यह कोष आयुर्वेद-चिकित्सा व्यवसायियों के लिये उपादेय है। विविध प्रकार के चिकित्सा सम्बन्धी-विषयों का संकलन बड़े परिश्रम और अनुसंधान के साथ किया गया है। आशा है वैद्य-समाज इस ग्रंथ रत्न को अपनाकर संकलयिताओं का उत्साह परिवर्धन करेंगे।

कलकत्ता के 'जर्नल आफ आयुर्वेद' पत्र के संपादक लिखते हैं—

In 'Ayurvediya Vishwa-Kosh' by Babus Ramjit Singh and Daljit Singh ji Vaidya, published from Anubhut Yogmala Office, Baralokpnr Etawah (U. P.), the joint authors have employed monumental labours in compiling an encyclopoedic dictionary of Ayurvedic literature. Such books are really precious additions to the wealth of Ayurvedic culture, embracing a wide range of comprehensive study. The authors deserve congratulations for the gigantic ventre they have embarked upon, and the first two volsmes that have already seen light well justify the high hope thatthe subsequent parts completing the colossal task will, by its successful fulfilment, largely help to facilitate the cultivation of Ayurvedic lore in these days of our sastras. Renaissance couchedin the rashtra bhasha of Hindustani the 'kosh' will be of all India utility.

Kaviraj M. *K. Mukherjee B. A. Ayurvedshastri*
Journal of Ayurved Calcutta

राजवैद्य पं० रवीन्द्र शास्त्री कविभूषण इस ग्रंथ की समालोचना करते हुये लिखते हैं—

आयुर्वेदीय विश्व-कोष के प्रथम खंड को मैंने खूब अच्छी तरह देखा है। ग्रंथ के सांगोपांग अध्ययन के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि वास्तव में यह क्रान्तकारी और अद्वितीय ग्रंथ रत्न है, आयुर्वेदीय निघंटु के साथ ही एलोपैथिक तथा हिकमती निघण्टु का उल्लेख होने से सोने में सुगन्ध हो गई है प्रत्येक शब्द का वर्णन आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से होने पर भी साधारण जनता भी इससे बहुत लाभ उठा सकती है, मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक के प्रकाशन से आयुर्वेदिक साहित्य के एक प्रधान अंग की पूर्ति हो गई है, जो वैद्य मात्र के लिये अभिमान की बात है।

पुस्तक के लेखक महोदयों ने निश्चय ही अपने ज्ञान और अन्वेषण का सदुपयोग करके वैद्यों का न केवल हित ही किया है अपितु उनके लिये एक आदर्श भी बना दिया है। पुस्तक के प्रकाशक महोदय ने वास्तव में ऐसे विशालकाय ग्रंथ का प्रकाशन करके अपने साहस और आयुर्वेद प्रेम का परिचय दिया है। मैं लेखक और प्रकाशक दोनों को ही इस सदुद्योग के लिये धन्यवाद देता हूँ।

वैद्य मात्र से मेरी यह अपील है कि वह अपनी ज्ञान वृद्धि के लिये पुस्तक की एक प्रति अपने पास अवश्य रक्खें।

कविराज शशिकान्त भिषगाचार्य, पूर्व सम्पादक जीवनसुधा इस ग्रंथ की उपयोगिता पर लिखते हैं—

आयुर्वेद साहित्य में इस प्रकार के महा कोष की निहायत जरूरत थी, जिसके स्वाध्याय से वैद्यक डाक्टरी और यूनानी का पूर्ण ज्ञाता हो सके, यह बात आयुर्वेदीय विश्व कोष से पूर्ण हो सकती है, हिंदी में अभी तक ऐसा अभूत पूर्व ग्रंथ नहीं था। यह अभाव भगवान विश्वेश्वर के द्वारा पूर्ण हो रहा है, आयुर्वेद का साहित्य संसार के सब साहित्यों से पिछड़ा हुआ है। जब तक इस प्रकार की ज्ञान वर्धित अनुपम पुस्तकों का निर्माण नहीं होगा, तब तक आयुर्वेद साहित्य नहीं बढ़ सकता।

जो कार्य आयुर्वेद महा मंडल के हाथों द्वारा कभी का समाप्त हो जाना चाहिये था, वह गुरुतर कार्य पं० विश्वेश्वरदयालु जी अपने निर्बल कंधों पर उठा रहे हैं, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

किंग जार्जस मेडीकल कालेज डिपार्टमेन्ट आफ फार्माकालाजी लखनऊ

२३ मार्च सन १९३६ ई०

प्रिय महाशय !

आपने जो अपने 'आयुर्वेदीय कोष' का प्रथम खंड प्रेषित किया, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस प्रकार की रचना दीर्घ प्रयास एवं महान योग्यता की अपेक्षा रखती है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि, भारतीय चिकित्सा प्रणाली के प्रेमियों द्वारा यह पूर्णतया अभिनन्दित होगा। मैं आपके इस उद्योग की सफलता का अभिलाषी हूँ।

वी० एन० व्यास एम० बी०, रायबहादुर,

प्रधानाध्यक्ष निघण्टु विभाग विश्वविद्यालय–लखनऊ

भारत प्रसिद्ध आयुर्वेद मार्तंड, नि० भा० वैद्य सम्मेलनों के सभापति श्रीयादव जी त्रिकमजी आचार्य बम्बई लिखते हैं—

"आपका भेजा हुआ 'कोष' मिला, इस कोष के प्रसिद्ध करने का आपका प्रयत्न स्तुत्य है। शब्दों की व्याख्या इसमें देखने को मिल सकती है। केवल एक ही 'कोष' से अनेक कोषों के रखने की तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। वैद्यों को इसका संग्रह अवश्य करना चाहिये।"

नि० भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध आयुर्वेदाचार्य श्री पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी आयुर्वेद रत्न, भिषक् केशरी नागपुर से ता० १२-६-३८ को लिखते हैं—

आयुर्वेदिक भौतिक साहित्य को प्रकाश कर वस्तुतः आपने आयुर्वेद संस्सार को ऋणी बना दिया है। परमात्मा आपको लोमशायु प्रदान करे ताकि फिर भी आप उत्तरोत्तर मौलिक सेवा आयुर्वेद की कर सकें।

सम्पादक—नवराज स्थान अकोला।

लेखक तथा संकलनकर्ता सर्व श्री रामजीत सिंह जीवैद्य और दलजीत सिंह जी वैद्य प्रकाशक प० विश्वेश्वरदयाल जी वैद्यराज बरालोकपुर इटावा मूल्य ६।) सजिल्द अजिल्द ५।) रु०।

भारतवर्ष अनादि काल से अद्भुत विशेषताओं के लिये जगत प्रसिद्ध रहा है। उसने संसार को जहां दर्शन और विज्ञान का आलौकिक संदेश देकर अपना मस्तक ऊंचा किया है वहां वह चिकित्सा विज्ञान में भी सर्वोपरि रहा है। किन्तु धीरे धीरे ये सारी विशेषतायें हमारी मानसिक गुलामी के कारण हम से दूर भाग रही है और हम प्रत्येक क्षेत्र में परावलम्बी बन रहे हैं भारत की आयुर्वेदीय औषधियां अपने गुणों आदि में अपनी सानी नहीं रखतीं बशर्ते कि उनका उपयोग सम्यक् रूप में यथा विधि किया जाय।

प्रस्तुत कोष में रसायन, भौतिक विज्ञान, शल्य शास्त्र आदि आयुर्वेद विषयक हिन्दी संस्कृत और विभिन्न भाषाओं के शब्द उनकी व्युत्पत्ति एवं परिभाषा सहित अकारादि क्रम से परिश्रम पूर्वक संग्रहीत किये गये हैं। अनेक स्थलों पर खोज पूर्ण नोट दिये गये हैं जिन से प्राचीन और अर्वाचीनवैद्यों की अनेक शंकाओं का निवारण सहज ही हो जाता है अ से लेकर अज्ञात यक्ष्मातक लगभग १०२५० से भी अधिक शब्दों का यह उपयोगी कोष प्रत्येक वैद्य के लिये उपयोगी सिद्ध होगा इस में सन्देह नहीं।

श्री गणपतिचन्द्र केला, सम्पादक 'धन्वन्तरि' विजयगढ़ (अलीगढ़) से लिखते हैं—

"आयुर्वेदीय-कोष" मिला, हार्दिक धन्यवाद! ऐसा आवश्यक विशाल आयोजन आप उठा रहे हैं, इसके लिये दोनों ही रचयितागण हमारे हार्दिक धन्यवाद को स्वीकार करें।

विश्वेश्वर भगवान ने प्रकाशितकर वैद्य समाज का जो उपकार किया है, वह स्तुत्य है। ऐसे विशद विशाल विशेषोपयोगी ग्रंथ के संकलन में समस्त वैद्य-समाज और संस्थाओं को सहायता देकर उत्साह बढ़ाना चाहिये।"

सम्पादक 'आयुर्वेद संदेश' लाहौर (१५ सितम्बर १९३४ ई०) के अङ्क में लिखते हैं—

"यह कोष अपनी पद्धति का पहिला ही कोष है, जिसमें वैद्यक, यूनानी और एलोपैथी में प्रयुक्त शब्दों के न केवल अर्थ दिये गये हैं, वरन् सम्पूर्ण सर्व मतानुसार व्याख्या की गई है यथा अश्वगंधा की व्याख्या ५ पृष्ठों में समाप्त की गई है। अर्थात् अश्वगंधा का स्वरूप, पर्याय, अंग्रेजी नाम वानस्पतिक वर्णन, उत्पत्ति स्थान, आकृति, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध योग तथा अश्वगंधारिष्ट, अश्वगंधा पाक, अश्वगंधा चूर्ण, अश्वगधा घृतादि, मात्रा, गुण, अनुपानादि सहित. एवं भिन्न-भिन्न द्रव्यों का शारीरिक रोगों पर सर्वमतानुसार अच्छा प्रकाश डाला गया है, जिससे पाठक पर्याप्त ज्योति प्राप्त कर सकते हैं। इस विस्तृत व्याख्या के कारण ही कोष के प्रथम भाग में जो ६०० पृष्ठों में विभक्त है, १०२२५ शब्दोंका वर्णन है। इस भाग में अनुक्रमणिकानुसार अभी तक 'क' अक्षर की भी समाप्ति नहीं हुई। यदि इसी शैली का अनुकरण अगले भागों में भी किया गया, तो कई भागों में समाप्त होगा। पुस्तक का आकार चरक तुल्य २२×२९-८ पेजी है। इसे आयुर्वेद का "महाकोष" समझना चाहिये।

संपादक-'आरोग्यदर्पण' अहमदाबाद, जनवरी सन् १९३५ ई० के अंक में लिखते हैं—

"यह आयुर्वेद का एक अभूत पूर्व महान् कोष है, जो दीर्घ अध्ययन और परिश्रम के पश्चात् लिखा गया है। इस भाग में 'अ' से 'अज्ञातयक्ष्मा' तक के शब्दों का संग्रह किया है। इस में आयुर्वेद की सभी शाखाओं से सम्बन्ध रखने वाले शब्दों का संग्रह है और शब्दों का केवल अर्थ ही नहीं किया गया, बल्कि विस्तृत विवेचन किया गया है। वास्तव में इसे 'शब्द-कोष' नहीं, 'विश्व-कोष' कहना चाहिये और कोष की भांति नहीं, साहित्य ग्रन्थों की भांति पढ़ना चाहिये! इसमें केवल प्राचीन वैद्यक (भारतीयायुर्वेद) के ही नहीं, अपितु यूनानी और डाक्टरी के शब्दों को भी संग्रहीत किया गया है। हम इस कोष का हृदय से स्वागत करते हैं और प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी से प्रार्थना करते हैं कि वह इस की एक एक प्रति अवश्य खरीद कर लेखकों और प्रकाशक का उत्साह बढ़ावे। यह कोष आयुर्वेद के छोटे से छोटे विद्यार्थी से लेकर दिग्गज पंडितों तक के लिये भी उपयोगी है।

हम इस कोष को इतना उपयोगी समझते है, कि इसे आयुर्वेदिक साहित्य में एक उज्वल रत्न कहने में संकोच नहीं होता।

B. R. चौबे फरुखाबाद, लिखते है—

"आयुर्वेदीय-कोष" को देख हृदय को अति ही प्रसन्नता हुई। संकलन-कर्ता और प्रकाशक दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।"

देखिए "स्वराज्य" खंडवा, ११ जून सन् १९३५ की संख्या ४१ में अपने कैसे जोरदार उद्गार प्रगट करता है।

"इस बिषय में आजकल जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनमें प्रस्तुत 'आयुर्वेदीय कोष' को ऊँचा स्थान मिलना चाहिये। ग्रन्थकारों ने इस कोष के संकलन में जो परिश्रम किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है।"

श्रीमान् बाबू जुगलकिशोर जी बड़वानी-सी० आई० लिखते हैं—

आपका 'आयुर्वेदीय कोष' यह खंड भाग मिला। प्रथम खंड बहुत अच्छा निकला है ।ऐसे कोष के प्रकाशित करने पर आप बधाई के पात्र हैं। वैद्य लेखकों का परिश्रम शतमुख से सराहनीय है।"

श्रीमान् पं० आयुर्वदाचार्य कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए.
चाँदा (सी० पी०) से लिखते हैं—

"हमारे मित्रद्वय वैद्यराज, पुरुषसिंहों ने जो परिश्रम किया है और कर रहे हैं, इसके लिये केवल आयुर्वेद ही नहीं, अपितु हिन्दी भाषाविज्ञ समस्त ससार, उनका तथा प्रकाशक महोदय, सर्व-मान्य चिकित्सक वैद्यराज पं० विश्वेश्वरदयालु जी का आभारी है। यह केवल 'आयुर्वेदीय कोष' ही नहीं, प्रत्युत 'आयुर्वेदी विश्व-कोष' कहलाने के योग्य है। यद्यपि 'आयुर्वेद' शब्द में इस व्यापक अर्थ का समावेश है तथा लेखकों ने प्रस्तावना में इसका स्पष्टीकरण भी किया है, तथा आधुनिक काल में यह शब्द एक प्रकार से योग रूढ़ अर्थ का ही बोध कराता है। जैसे यद्यपि 'पंकज' में कीचोत्पन्न समस्त वस्तुओं का समावेश है, तथापि सर्वसाधारणतः 'कमल' के ही अर्थ में उसका उपयोग किया जाता है। तद्वत् 'आयुर्वेद' से यद्यपि संसार की सब औषध प्रणालियों का बोध व्यापक अथ में होता है, तथापि आर्यों की वेदोक्त प्राचीन निदान एवं चिकित्सा-प्रणाली का ही बोधक है।

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में अकल अकलंक, अकाम, अकुतोभय, अखिल, अकुशल इत्यादि कतिपय सर्व साधारण शब्दों का भी अर्थ दिया गया है। इसीसे इस ग्रंथरत्न को केवल 'आयुर्वेदीय कोष' के नाम से पुकारना, उसकी कीमत को घटाना है। अब आगे इस ग्रंथ को 'आयुर्वेदीय विश्व-कोष' इस नाम से प्रसिद्ध करने से इसका विशेष महत्व एवं प्रचार होगा, ऐसी मेरी विनीत सूचना है।

वैद्यभूषण श्री हरिनन्दन शर्मा, फलौदी (मारवाड़) से लिखते हैं—

आपका "कोष" प्राप्त हुआ, धन्यवाद ! इसकी जितनी प्रशंसा की जाय- थोड़ी है। आयुर्वेद क्षेत्र में एक बड़ी पूर्ति हुई है। अभी तक कोई कोष ऐसा नहीं था, जो डाक्टरी व यूनानी तथा अन्य भाषाओं की वैद्यकीय औषधियों के पर्याय गुणादि को प्रगट करें।

हमारे शरीर की रचना के यशस्वी लेखक स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथ जी वर्मा L.M.S. सिविलसर्जन जौनपुर, लिखते हैं—

'निस्संदेह आपका 'कोष' एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। प्रत्येक चिकित्सा प्रेमी को इस से लाभ उठाना चाहिये।"

ग्रंथ के इस तृतीय खंड में 'क' वर्ण से प्रारम्भ होने वाले प्रायः सब शब्दों का अर्थ बड़ी गवेषणापूर्ण दृष्टि से लिखा गया है।

श्रीधन्वन्तरयेनमः

आयुर्वेदीय विश्व-कोष

(ए)

एक्स्ट्रैक्टम्-रहीयाइ-[ले० Extractum-Rhei] उसारहे-रावन्द । रेवन्दचीनी का सत । दे० "रेवंद" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-लेप्टैंड्री-[ले० Extractum Leptandrae] लेप्टैण्ड्रा का सत । दे० "लेप्टैंड्रा" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-लेपटैण्ड्री-लिक्विडम्-[ले० Extractum-Leptandrae-Liquidum] लेप्टैंड्रा का तरल सत्व । दे० "लेप्टैंड्रा" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-ल्युप्युलीनाई-फ्लुइडम्(लिक्विडम्)-[ले० Extractum-Lupulini-Fluidum] "हशीशतुद्दीनार का तरल सत्व" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-वाइबर्नाई-प्रूनीफोलियाई-[ले० Extractum-Viburni Prunifolii] श्रीपर्ण सत्व ।

एक्स्ट्रैक्टम् वाइबर्नाई प्रुनीफोलियाइ लिक्विडम्-[ले० Extractum-Viburni Prunifolii-Liquidum] अमेरिकेय श्रीपर्ण का तरल सत्व ।

एक्स्ट्रैक्टम्-साइप्रिपीडीयाइ-फ्लुइडम्-[ले० Extractum-Cypripedii-Fluidum] अमेरिकेय जटामांसीका तरलसत्व । ख़ुलासहे-सुम्बुल अमरीकी-सय्याल ।

एक्स्ट्रैक्टम्-सार्सी-लिक्विडम्-[ले० Extractum Sarsae-Liquidum] उश्बामग़रबी का तरल-सत्व ।

एक्स्ट्रैक्टम्-सिंकोनी-लिक्विडम्-[ले० Extractum Cinchonae-Liquidum] सिंकोना का तरल-सार । दे० "सिंकोना" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-सेनी-लिक्विडम्-[ले० Extractum-Sennae Liquidum] सनाय का तरल-सार । दे० "सनाय" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-सिमिसिफ्युगी-लिक्विडम्-[ले० Extractum Cimicifugae Liquidum] सिमिसिफ्युगा का तरल सार । दे० "सिमिसिफ्युगा" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-सिसेम्पेलियाई-लिक्विडम्-[ले० Extractum-Cissampelii-Liquidum] पाठा-तरल सत्व । दे० "पाठा" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-स्टेमोनियाई-[ले० Extractum-Stramonii] विदेशी धतूरा का सत । दे० "धतूरा" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-स्ट्रोफैन्थियाई-[ले० Extractum-Strophanthii] स्ट्रोफैन्थस का सत । दे० "स्ट्रोफैन्थस" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-हाइड्रास्टिस-[ले० Extractum-Hydrastis] पीतमूल सत्व । दे० "हाइड्रास्टिस" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-हाइड्रास्टिस-लिक्विडम्-[ले० Extractum-Hydrastis-Liquidum] पीतमूल-तरल-सत्व । दे० "हाइड्रास्टिस" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-हायोसायमाई-विरीडी-[ले० Extractum-Hyoscyami-Viride] पारसीक-यमानी का हरित सत्व । अजवायन ख़ुरासानी का हरा सत । दे० "अजवाइन-ख़ुरासानी" ।

एक्स्ट्रैक्टम्-हीमेटॉक्सिलाई-लिक्विडम्-[ले० Extractum Haematoxyli Liquidum] अमेरिकेय-पतंग का तरल सत्व । दे० "पतंग" ।

एक्स-रे-संज्ञा स्त्री० [अं० X-ray] विद्युत् से उत्पन्न की हुई एक प्रकार की रश्मियाँ जो अस्वच्छ वस्तु, जैसे लोहा, लकड़ी प्रभृति के भी वार-पार जा सकती

हैं। यद्यपि इन किरणों को हम अपनी आँखों से नहीं देख सकते, तथापि इनके गुणधर्म जाने जा सकते हैं। एक्स-रश्मियों का एक विशेष धर्म यह है, कि जब यह रश्मियाँ कुछ विशिष्ट पदार्थों पर पड़ती हैं, तब वे प्रकाशमान् होने लगते हैं। उन पदार्थों में से एक सोडियम् का काँच (ऐसा काँच जिसके संघटन में सोडियम् का समावेश किया गया हो) है। इस काँच से प्रायः एक्स-रश्मियों की नलकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। जब इन नलकियों के भीतर किरण का आविर्भाव होता है, तब वे उक्त नलकी के पार्श्व पर भीतर की ओर पड़ती हैं। इस तरह काँच प्रकाशमान् हो जाता है और ऐसा ज्ञात होता है, कि एक्स-रश्मियाँ नलकी से निकल रही हैं।

इन रश्मियों का ज्ञान प्राप्त किये अभी कुछ अधिक काल व्यतीत नहीं हुआ। कहा जाता है कि सन् १८९५ ई० में जर्मनी के एक प्रमुख वैज्ञानिक रांटजन (Rontgen) को अकस्मात् इसका ज्ञान हुआ। वे एक दिन अंधेरे कमरे में कतिपय ऐसी नलकियों से परीक्षण कर रहे थे, जिनमें वायु-चाप कम होता है। उन्होंने देखा कि प्रयोग-काल में कतिपय प्लेटें प्रगट (Expose) हो गई हैं। चूँकि कमरा तमसाच्छन्न था। अस्तु, वह आश्चर्यचकित थे कि उन प्लेटों पर प्रकाश कहाँ से पड़ा, जिससे वे प्रकाशित हो गई हैं। अंततः अन्वेषण करने के उपरांत उन्हें इस बात का पता लगा कि वे किरणें नलकियों से निकल रही हैं। चूंकि ये रश्मियाँ पहले अज्ञात थीं। अस्तु, उन्होंने इनको एक्स-रेज़–एक्स-रश्मि वा (लाशु-आश्रु) नाम से अभिहित किया। कभी-कभी इन्हें इनके अनुसंधानकर्ता के नाम पर रांटजनीय किरण भी कहते हैं।

किसी द्रव्य में एक्स-रश्मियों के व्याप्त होने की क्षमता उसके विशिष्ट गुरुत्व के अनुकूल होती है। जितना कोई द्रव्य अधिक घन होता है, उतनी ही एक्स-रश्मियाँ उसमें न्यून प्रवेश कर सकती हैं। अस्तु, ये काष्ठ में ६ इञ्च तक प्रवेश कर जाती हैं। किंतु लौह में $1\frac{1}{4}$ इंच की मोटाई मात्र में से ही गुज़र सकती हैं।

एक्स-रेज़ के इस विशेष गुण के कारण हम मानव शरीर की आभ्यंतरिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अस्थि का विशिष्ट गुरुत्व मांस की अपेक्षा अत्यधिक है। इसलिये एक्स-रश्मियाँ मांसादि में से भेदन कर जाती हैं और शरीर के भीतर की अस्थियाँ स्पष्टतया नज़र आने लगती हैं।

वर्तमान युग में चिकित्सा एवं शस्त्रकर्म में इन एक्स-रश्मियों से बहुत सहायता ली जाती है। इनसे यह निःसंदेह ज्ञात हो जाता है कि शरीर के भीतर अस्थि भंग हुई है वा नहीं और यदि भंग हुई है, तो किस जगह। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति को गोली लगी हो, तो एक्स-रश्मियों से यह जाना जा सकता है कि गोली किस स्थान में स्थित है। यदि कोई शिशु सिक्का, सूई वा पिन प्रभृति निगल गया हो, तो उनको देखा जा सकता है। आन्त्रिक शोथ और आमाशयगत नासूर को भी मालूम किया जा सकता है। इनसे यह भी देखा जा सकता है कि फुप्फुस रोगाक्रान्त हैं वा नीरोग। इसके सिवा वृक्क, गवीनीद्वय, वस्ति और पित्ताशय इनकी पथरियों एवं महाधमन्यर्बुद और आमाशय-आन्त्रावरोध के निदान में एक्स-किरणों से सहायता ली जाती है। वर्तमान समय में कतिपय डाक्टरों ने एक्स-रश्मियों के साहाय्य से गर्भगत शिशु की विभिन्न अवस्थाओं का भी निरीक्षण किया है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि चिकित्सक वा शस्त्रकर्म करनेवाला वैद्य प्रायः एक्स-रश्मियों की सहायता से शरीर के भीतर का परीक्षण नहीं करता; वरन् उनके द्वारा फोटो के चित्र ले लेता है। इसका एक कारण तो यह है कि प्रकाश-पट के द्वारा देर तक परीक्षण करना रोगी के लिये भयावह हो सकता है। दूसरे परीक्षण की दशा में मापविषयक कल्पना ठीक नहीं उतर सकती।

जर्राह वा शस्त्र-चिकित्सक मानवी देह के जिस भाग का चित्र लेना चाहता है उसको वह सेंसिटिव प्लेट पर स्थापित कर देता है। उसके ऊपर दो फुट की दूरी पर एक्स-रश्मियों की नलकी होती है जिसको क्षुब्ध करके प्लेट को एक्सपोज़ किया जाता है, जिससे अस्थियों की बनावट और स्थानानुकूल

एक्स-रश्मियों की मात्रा प्लेट पर असर करती है। पुनः इस प्लेट को अंधेरे कमरे में ले जाकर लाल-प्रकाश के सामने उसका परीक्षण किया जाता है, जिससे प्लेट पर अस्थि, मांस, त्वक् आदि का चित्र बन जाता है।

एक्स-रश्मियों से चिकित्सा में भी सहायता प्राप्त की जाती है। कतिपय त्वग् रोगों में इसका उपयोग अतीव हितावह प्रमाणित हुआ है। कंडू रोग में जब कोई अन्य चिकित्सा-विधि कल्याण-कारी सिद्ध नहीं होती, तब एक्स-रश्मियों से प्रायः लाभ होता है। विचर्चिका और चंबल वा अपरस में भी इनका प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेषतः हथेली और तलवे के रोगों में इसका उपयोग अति ही गुणकारी है। दद्रु, मांसार्शी, व्रणों और आमाशयिक रोगों में भी इनका उपयोग हितकर प्रमाणित हुआ है। दूषित अर्बुद रोगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि न इनसे केवल बाह्य शरीर के समीपवर्ती अर्बुदों में लाभ हुआ है, अपितु शरीराभ्यंतरीय अर्बुदों पर भी प्रभाव पड़ा है। एक्स-रश्मियों द्वारा कर्कट-चिकित्सा विशेष ख्याति प्राप्त कर चुकी है। यदि रोगारम्भ में ही उसका ठीक निदान हो जाय, तो शस्त्रकर्म ही श्रेष्ठतर उपाय है। उक्त अवस्था में शस्त्र-कर्म के उपरांत एक्स-रश्मियों का उपयोग कल्याणकर होता है। किंतु जब उसके निदान में विलम्ब हो वा किसी अन्य कारण से शस्त्र-कर्म असम्भव हो, तब एक्स-रश्मि-चिकित्सा ही श्रेष्ठतर चिकित्सा है। उक्त सभी रोगों में एक्स-रश्मियाँ विकारी स्थल पर डाली जाती हैं। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाता है, कि विकारशून्य शरीरांग सुरक्षित रहें।

एखण्ड–[कों०] acorus calamus वच।

एख़नी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मांस का रस। मांस का शोरबा। यख़नी। मांस-रस।

एखर–[सं० अहिखर] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

एखरो–[गु०] तालमखाना (बीज)।

एग–[अं० egg] (पक्षी आदि का) अंडा।

एगप्लांट–[अं० egg-plant] बैंगन। भंटा। भटा।

एगप्लांट, कामन–[अं० egg-plant, common] जंगली बैंगन। बृहती। वनभंटा।

एगप्लांट, सिलिण्ड्रिकल–[अं० egg-plant, cylindrical] कौली बैंगन। लंबा भंटा।

एगफ्लिप्–[अं० egg-flip] मद्यांड प्रपानक। दे० "एग्नकोहल"

एगिस–[ते०] विजयसार। पीतशाल।

एगेथीन–[अं० agathin] एक औषध जिसकी सफ़ेद वा हरिदाभ श्वेत कलमें होती है, जो जल में नहीं घुलतीं। दे० "एसिडम् सैलिसिलिकम्"।

एगेट–[अं० Agate] एक प्रकार का बहुमूल्य पत्थर।

एगैरिक–[अं० Agaric] दे० "अगारिक।

एग्ज़ाइल (येलो) ऑलियण्डर–[अं० exile (yellow) oleander] पीला कनेर। पीत करवीर।

एग्ज़िलेरेंट–[अं० exhilarant] आह्लादकारक। उल्लास-जनक। हर्षोत्पादक। मुफ़र्रिह।

एग्ज़ेकम्–[ले० exacum] दे० "एक्सेकम्"।

एग्ज़ोलस-पॉलिगेनम्–[ले० exolus polyganum] चौलाई।

एग्नाइन–[अं० agnine] दे० "एडेप्सलेनी"।

एग्यु–[अं० ague] मैलेरिया ज्वर। विषम ज्वर।

एग्युरीन–[अं० agurin] एक प्रकार का सूक्ष्म चूर्ण, जो एक भाग, २ भाग जल में सरलतापूर्वक घुल जाता है। यह सोडियम् एसिटेट और थियोब्रोमीनका एक यौगिक है।

मात्रा—७½ से १५ ग्रेन तक।

एग्यू-वीड–[अं० Ague-weed] (Grindelia Squarrosa) दे० "ग्रिण्डेलिया"।

एग्रिमनी–[अं० Agrimony] एक प्रकार का पौधा जो युरोप में होता है।

एग्रिमोनिया-युपेटोरियम्–[ले० Agrimonia eupatorium, *Linn.*] ग़ाफ़िस। शज्रतुल् बराग़ीस।

एग्रोपाइरम्– [ले० Agropyrum] पर्य्या०– एग्रोपाइरम् रीपेंस Agropyrum Repens, ट्रिटिकम् रीपेंस Triticum Repens (ले०)। कौचग्रास couchgrass, डॉग ग्रास

Dog-grass (अं०) । ग्याहसग (फ़ा०) । श्वानतृण, कुत्ताघास–हिं० । हशीशतुल् कल्ब–अ० ।

तृण वर्ग

(N. O. Graminaceae)

उत्पत्तिस्थान—यह घास आष्ट्रेलिया तथा पूरबी तथा उत्तरीय अमेरिका के उपनिवेशोंमें उपजती है । इस घास की जड़ औषधार्थ व्यवहार में आती है । इसे वसंत-ऋतु में इकट्ठा करते हैं और इस पर से तंतु आदि पृथक् कर लेते हैं ।

जड़–हलके पीत वर्णके $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ इंच लंबे टुकड़े, जिनका व्यास प्रायः $\frac{1}{12}$ से $\frac{1}{10}$ इंच तक होता है । प्रत्येक टुकड़े की लम्बाई में एक रेखा होती है और वह मध्य से खाली होती है । इसमें से किसी प्रकार की गंध नहीं आती. स्वाद किंचित् मधुर होता है । इसमें से गोंद की तरह एक सत्व निकलता है, जिसे ट्रिटिसीन (Triticin) अर्थात् श्वतृण सत्व कहते हैं ।

सम्मत योग

(Official preparations)

(१) डिकॉक्टम् एग्रोपाइराई–Decoctum Agropyri (ले०) । डिकॉक्शन ऑफ एग्रोपायरम् Decoction of Agropyrum (अं०) । श्वतृण क्वाथ । जोशाँदहे हशीशतुल्-कल्ब– (अ०) । जोशाँदहे ग्याह सग–(फ़ा०)

निर्माण-विधि—एग्रोपाइरम् अर्थात् कौचग्रास की जड़ के छोटे-छोटे काटे हुये टुकड़े १ आउंस और पानी २० फ्लुइड आउंस । दवा को पानी में १० मिनट तक क्वथित करें । पुनः शीतल होने पर छान लें ।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से २ फ्लुइड आउंस–(१५ से ६० घन शतांशमीटर)

प्रभाव—मूत्रप्रवर्तक ।

(२) एक्स्ट्रैक्टम् एग्रोपाइरी लिक्विडम् Extractum Agropyri Liqidum (ले०) । लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट ऑफ एग्रोपायरम् Liquid Extract of Agropyrum (अं०) । श्वतृण की तरल रसक्रिया । खुलासहे हशीशतुल् कल्ब । सय्याल उसारा ग्याह सग ।

निर्माण-विधिः—एग्रोपाइरम् का नं० २० का चूर्ण २० आउंस, एलकोहल (६० %) और पानी आवश्यकतानुसार । पहले चूर्ण को तीन बार करके १०० आउंस खौलते हुए पानी में पकाएँ अथवा किंचित् उष्ण स्थान में देर तक भिगो रखें और इससे जो द्रव प्राप्त हो, उसे इतना आँच पर उड़ाएँ, कि १५ आउंस द्रव अवशिष्ट रह जाय । फिर उसमें ५ आउंस एलकोहल मिलाकर उसे छान लें ।

मात्रा—१ से २ फ्लुइड ड्राम–(२ से ८ घन शतांशमीटर)

गुण-धर्म तथा प्रयोग—

यह एक उत्कृष्ट स्निग्धतासम्पादक (Demulcent) और मूत्र-प्रवर्तक औषध है । इसको अधिकतर वस्ति-प्रदाह और पूयमेह में देते हैं ।

नोट—कहते हैं कि इसकी ताजी जड़ में ही उक्त गुण वर्त्तमान होता है । सूखी जड़ उक्त गुण से हीन होती है ।

एग्रोपायरोन-रीपेंस—[ले० Agropyron Repens, *Beauv.*] (Couch-grass) श्वानतृण । दे० "एग्रोपाइरम्" ।

एजल्—[ते०] तेलनी मक्खी ।

एजिलैप्पालै—[ता०] (Alstonia Scholaris, *Br.*) सप्तिवन । सप्तपर्ण । छातिम ।

एजीसेरास-ग्रेटर—[अं० Aegiceras greater.]
एजीसेरास-मेजस–[ले० Aegiceras majus]
} एक प्रकार का पेड़ । हलसी ।

एटिपाल—[ते०] पानी जमा । जल जमनी । छिरेहटा । छिलहिंड । सेवटा ।

एटिपुच्च—[ते०] इन्द्रायन । इन्द्रवारुणी ।

एटोट—[ले०] एक प्रकार की ओषधी ।

एटोम–संज्ञा पुं० [अं० Atom] परमाणु ।

एट्रोपा–[ले० Atropa] दे० "ऐट्रोपा" ।

एट्रिक्-कोट्टै–[ता०] कुचिला । कारस्कर । विषमुष्टि ।

एड़–वि० [सं० त्रि०] बधिर । बहिरा । अम० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेष । मेढ़ा । भेड़ा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० एडूक=हड्डी या हड्डी की तरह

कड़ा] एड़ी के पीछे पैर की गद्दी का निकला हुआ भाग। एड़ी। पार्ष्णि।

सज्ञा पुं० [पं०] भूटिया बादाम। लद्दाखी बादाम (अल्मो०)। मे० मो०।

एड़क (काख्य)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० एड़का] (१) पृथु शृङ्ग मेष।

"एडकः पृथुशृङ्गः स्यान्मेदः-पुच्छस्तु दुम्बकः। एडकस्य पलं ज्ञेयं मेषामिष समं गुणैः॥ मेदः पुच्छोद्भवं मांसं हृद्यं वृष्यं श्रमापहम्। पित्तश्लेष्मकरं किञ्चिद्वातव्याधि विनाशनम्" ॥

(भा० पू० १ भ० मांस व०।

(२) बनैला बकरा। जंगली बकरा। त्रिका०। (३) एक प्रकार का तृण। होगला। सु० चि० ७ अ०। (४) मजीठ। मंजिष्ठा।

एड़कघृत–संज्ञा पुं [सं० क्ली] भेंड़ का घी।

गुण–अत्यन्त भारी होने के कारण कोमल प्रकृति के लोगों के लिये वर्जित है। यह बुद्धि को परिपक्व करनेवाला और बलकारक है। रा० नि० व० १५।

एड़कनवनीत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भेंड़ का मक्खन।

गुण—शीतल, लघु, कषाय, हृद्य, गुरुपाकी, पुष्ट, स्थूलताकारक एवं मंदाग्नि दीपन है। रा० नि० व० १५।

एड़का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] भेंड़। मेषी। अ० टी० रा०।

एडकुल-पाल–[ते०] सप्तपर्ण। सतिवन। छातिम।

एडग—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] भेंड़। मेष।

एडगज (जा)–संज्ञा पुं०, स्त्री० [संज्ञा पुं०, स्त्री०] (१) चकवँड। चक्रमर्द। चुप। पमाड़। रा० नि० व० ५। भा० पू० १ भ० सोमराज तैल०। च० सू० ३ अ०। धन्व० निघ०। (२) वन्य एला। जङ्गली इलायची। च० द० कुष्ठ-चि०।

एडग-मांस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भेंड़ का मांस।

एडमूक–वि० [सं० त्रि०] (१) बधिर। बहरा। (२) गूँगा और बहिरा (पुरुष)। वाक् श्रुति वर्जित। मे० कचतुष्क।

एडरीनलीन—संज्ञा स्त्री० [अं० Adrena in] एक प्राणिज औषधि जो उपवृक्क नामक ग्रन्थि से उपलब्ध होती है। यह पदार्थ उपवृक्क के अंतःस्थ भाग में बनता है। यह अत्यन्त उपयोगी वस्तु है जो पिंगलनाड़ीमंडल का उत्तेजक है। वि० दे० "ग्रन्थि सत्व"।

एडर्स-टङ्ग, विंडिंग—[अं० Adder's tongue, winding] भूतराज। (Ophioglossum Flexuosum.)

एडहस्ती—संज्ञा पुं [सं० पुं०] चकवँड। चक्रमर्द।

एडाकुल–अरिटि—
एडाकुल–पाल—
एडाकुल–पोन्न— } [ते०] सतिवन। सप्तपर्ण। छातिम।

एडाकुलपुन्ना—[ते०] विवरण–

सेमल के वृक्ष की तरह का एक पेड़ जिसकी प्रत्येक टहनी पर ७–७ पत्तियाँ होती हैं। पत्तियों के दो–दो जोड़े होते हैं। हरएक के सात कंगूर होते हैं। सात शाखाओं से अधिक नहीं होतीं। पुष्प तुर्रे की भाँति और उससे बड़े होते हैं। इसमें से सुगंधि आती है। इसकी पत्तियाँ प्रशस्त पीले रंग की एवं मनोहर होती हैं। सप्तपर्ण। छातिम।

प्रकृति–उष्ण।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह कफनाशक एवं वमन-प्रशामक है। खाज, फोड़े-फुन्सी एवं पैत्तिक रक्त-दोष में लाभकारी है। तज़किरतुल्हिन्द के लेखक के वचनानुसार इसमें युग्म पत्र नहीं होते। वे इसे अम्ल कषाय एवं तीक्ष्ण बतलाते हैं यह वात विकार एवं कफनाशक है। यह ख़ुनाक़ एवं ख़नाज़ीर (कंठमाला) प्रभृति कंठरोगों में लाभकारी है। इसका फल ग्राही एवं गुरुपाकी है। यह कफ दोष को भी निवारण करता है। ख० अ०।

नोट—एडाकुलपुन्ना "एडाकुलपोन्न" तैलंगी शब्द का अपभ्रंश है जो सप्तपर्ण का तैलंगी पर्य्याय है।

एडापएडु—[ते०] सदाफल। चकोतरा नीबू।

एडिएण्टम्—[ले० Adiantum] हंसराज। दे० "अडिएण्टम्"।

एडिकोल—[ते०] चाकसू। चश्मीज़ज।

एडिब्ल–डेट—[अं० Edible date.] खजूर ।
एडिब्ल–पाइन—[अं० Edible pine] सनोबर ।
एडिब्ल–माँस—[अं० Edible moss] काई ।
एडिब्ल–हिबिस्कस—[अं० Edible hibiscus] रामतोरई ।

एड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० "एड़" ।
एडुक—वि० [सं० त्रि०] बधिर । बहिरा । मे० ।
एडूनाइडो कार्साइट्रीन—[अं० Adonido quercitrin] एक प्रकार का नारंगी रंग का क्रियात्मक सत्व जो अडूनिस से प्राप्त होता है ।
एडूनिस—[ले० Adonis] दे० "अडूनिस"
एडेन–एलोज—[अं० Aden Aloes] अदन देश में होने वाला एक प्रकार का घीकुआर ।
एडेनैन्थेरा–यलो फ्लावर्ड—[अं० Adenanthera yellow flowered] रक्त चन्दन, लाल चन्दन ।
एडेनैन्थेरा–पेवोनिया—[ले० Adenanthera pavonia] लाल चन्दन ।
एडेप्स—[ले० Adeps] सूअर की चर्बी । शूकर वसा ।
एडेप्स इण्ड्योरेटस–[ले० Adeps Induratus] (Indurated Lard) दृढ़ीकृत शूकर वसा । सख़्त की हुई सूअर की चर्बी । दे० "सूअर" ।
एडेप्स प्रिपेयरेटस—[अं० Adeps preparatus] प्रिपेयर्ड लार्ड । दे० "सूअर" ।
एडेप्स बेंजोएटस—[ले० Adeps benzoatus.] लोबानाक्त शूकरवसा । सूअर की लोबानदार चर्बी । दे० "सूअर" ।
एडेप्स माइरिस्टिको—[ले० Adeps myristicae.] जायफल का तेल ।
एडेप्स-लेनो–[ले० Adeps lanae] ऊन की चर्बी । ऊर्ण-वसा । दे० "ऊन" ।
एडेप्स लेनो अन्हाइड्रोसस-[ले० Adeps Lanae anhydrosus] अनुदोर्ण वसा । जल शून्य ऊन की चर्बी । अन्हाइड्रस वूलफैट Anhydrous wool-fat यह विशुद्ध कोलेस्ट्रोन अर्थात् मेढ़ के ऊन की चर्बी है जो मानवी त्वचा, रोम, खेचर जीवों के परों और अन्य जंतुओं के विविध अंगों में पाया जाता है ।
एडेप्स लेनी हाइड्रोसस–[ले० Adeps Lanae hydrosus] उदोर्ण वसा । सजल ऊर्ण वसा । ऊन की पानीवाली चर्बी । हाइड्रस वूल फैट Hydrous wool-fat, लैनोलीन Lanolin, एग्नोन Agni –अं० । दे० "ऊन" ।
एडेप्सीन–[अं० Adepsine] दे० "वेट्रोलियम्" ।
एडेप्सीन–[अं० Adepsine] दे० "वेट्रोलियम्" ।
एडेप्सीन ऑइल–[अं० Adepsine oil] दे० "पैराफीन लिक्विडम्" ।
एडेलिया-काष्टाइना कार्पा–[ले० Adelia Castina carpa] बौल कूकरी ।
एडेलिया चेष्ट-नट लाइक—[अं० Adelia, chest-nut like.] बौल कूकरी ।
एड्रुइ—[अं० Adrue] (Cyperus Articulatus) एक प्रकार का मोथा ।
एडीसिव–प्लास्टर—[अं० Adhesive plaster.] (Emplastrum Resinae) राल का प्लस्तर । दे० "राल" ।

एण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० एणी] (१) हरिण । हिरन । रा० नि० व० १६ । (२) हिरन की एक जाति जिसके पैर छोटे और आँखें बड़ी होती हैं । यह काले रंग का होता है । यह जङ्गली जातीय मृग है । कस्तूरी मृग । कृष्ण मृग विशेष । हरिण । रा० नि० । कृष्ण सार हिरन । करसाइल हिरन । (Antilope cervicapra, *Linn.*)Indian Antilope or Black Buck.

गुण, प्रयोग—मांस कसैला, मधुर, हृद्य, रक्त पित्त तथा कफवातनाशक, रुचिप्रद, धारक और वृष्य है । सु० सू० ४६ अ० । भा० पू० १ भ० । ज्वर में इसका मांस विशेष रूप से प्रशस्त माना जाता है । (चक्रपाणि) यह हलका, शीतल, वृष्य, त्रिदोषनाशक, षड्रस-उत्पादक, और रुचिकारक है । रा० नि० व० १७ । सींगवाले जानवरों में हिरन श्रेष्ठ है और इसका मांस बलदायक रुचिकारक, दीपन, त्रिदोषनाशक, हलका, पाक

में मधुर और ज्वरवाले रोगी को हितकारी है। क्षतक्षय, अर्श, पाण्डु, अरोचक से पीड़ित और कास-श्वास रोगी को एण-मांस सुखकारी होता है। अत्रि०।

एणक—संज्ञा पुं० [सं० पुं] (१) हिरन। हरिण श० र०। (२) काला हिरन। कस्तूरी मृग। कृष्णसार। करसायन।

एणका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृगी। मादा हिरन। हिरनी।

एणाजिन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मृगचर्म। मृग छाला। हिरन का चमड़ा।

एणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृगी। मादा हिरनी।

एणीदाह—संज्ञा पुं० [सं० पुं० [एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। भा० पू० १ भ०।

एणीपद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मण्डली सर्प। चित्तीदार साँप। सु० कल्प० ४ अ०। दे० "साँप"।

एणीपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मकड़ी वा लूता का एक भेद। इसके काटने से मृत्यु होती है। इसका काटा रोगी असाध्य होता है। सु० कल्प० ८ अ०। दे० "मकड़ी"।

एण्टरिक—[अं० Enteric] दे० "टायफायड"।

एण्डु-द्राक्ष-पण्डु—[ते०] किशमिश। मुनक्का। दे० "अङ्गूर"।

एण्ड्राकनी कॉर्डिफोलिया—[ले० Andrachne cordifolia, *Mill.*] कुरकनी। गुर्गुली। (पं०)।

एण्ण—[मल०] [बहु० एण्ण कल] तैल। तेल।

एण्णेय—[ता०] [बहु० एण्णेयगल] तैल। तेल।

एत—वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० एती] कर्बर वर्ण। चितकबरा रंग।

एतन—संज्ञा पुं [सं० पुं०] निश्वास! वर्हिमुख श्वास। हे० च०।

एतश—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घोड़ा (२) ब्राह्मण।

एता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मृगी। हरिणी। मादा हिरन। वै० निघ०। (२) खजूर का पेड़।

एतोक—[लेप०, हज़ा०] छान। मे० मो०।

एतोलीस—[यू०] एक प्रकार की अप्रसिद्ध बूटी।

एत्थुः—[कना०] गो। गाय। बैल।

एथिडीन—[अं० Ethidene] एथीडीन बाई क्लोराइड।

एदअ्—[अ०] दम्मुलअख़्वैन। दे० "ऐदअ्"।

एदमामीद—[सुर०]
एदमामीर—[यू०]

विवरण—"बहरुल्जवाहर" के अनुसार एक प्रकार का वृक्ष जिसकी डालियों पर ऊन की भाँति एक चीज़ होती है। बुर्हानमें कहा है कि यह एक वृक्ष है, जो बाहर से देखने में ऊन की तरह होता है। मख़्ज़नके अनुसार इसका रंग हरियाली लिए होता है। इसमें शाखाएँ बहुत होती हैं और यह अन्य जंगली वृक्षों पर पैदा होता है। तनकाबन में यह "वाख़ज" कहलाता है।

टिप्पणी—बुर्हानक़ातिअ और बहरुल्जवाहर में इसे "एदमामीद" लिखा है। बुर्हान के अनुसार यह सिरियानी भाषा का शब्द है।

प्रकृति—शीतल एवं रूक्ष।

गुण-धर्म-प्रयोग—यह ग्राही और अतिसार नाशक है। इसको जलाकर या बिना जलाये हुये ही क्षत स्थान पर छिड़कने से यह रक़स्राव को बंद करता है। इसकी जलाई हुई राख फोड़ों पर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है।

मात्रा—६ मा० से १ तो० ११ मा० तक। (ख़० अ०)

एधतु—संज्ञा पुं० [सं० पुं] पुरुष। आदमी।

एधिता—वि० [सं० त्रि०] वर्धमान। बढ़नेवाला।

एन—[अ० बहु०] [ए० व० ऐ़नाअ्] वे स्त्रियाँ जिनकी आँखें सुन्दर हों।

एनलगेसिक—[अं० Analgesic] दे० "अङ्गमर्द-प्रशमन"।

एनलजन—संज्ञा पु० [अं० Analgen] एक सफ़ेद स्फटिकीय निर्गन्ध तथा स्वादरहित चूर्ण जो रासायनिक संघटन तथा गुणधर्म में फेनेसेटीन के तुल्य

है। किंतु इसमें फेनोल की जगह कोईनोलीन का आँकड़ा होता है।

पर्य्याय—एनलजीन Analgen, बेंजएनलजीन Benzanalgen, क्विनलजीन Quinalgen (अं०)। अवसन्तीन (हिं०)। मुख़द्दरीन-(अ०)।

घुलनशीलता—यह पानी में नहीं घुलता, ईथर में भी भली भाँति नहीं घुलता, शीतल या उष्ण मद्यसार में भी बहुत कम घुलता है; किन्तु क्लोरोफॉर्म में किसी प्रकार अधिक अंश में घुल जाता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

वेदनास्थापक रूप से इसको वातज वेदना (Neuralgia), गृध्रसी (Sciatica), अर्द्धावभेदक (Hemicrania) और कास (Bronchitis) इत्यादि में कोई २ चिकित्सक इसका व्यवहार करते हैं। पर कभी-कभी इसके सेवन के पश्चात् हानिकर प्रभाव प्रगट होते हैं। अस्तु, कभी तो इससे रक्तवर्ण का मूत्र आने लगता है और कभी अन्य विषाक्त लक्षण प्रकाशित हो जाते हैं।

मात्रा—७॥ ग्रेन से १५ ग्रेन=(०.५ से १ ग्राम तक)

पत्री-लेखन विषयक संकेत—

इसको साधारणतः कीचट्स में डालकर या कम्प्रेस्ड टेब्लेट्स (छोटी-छोटी गोल या दबाकर बनाई हुई टिकियों) के रूप में दिया जाता है।

एनल्जेसीन-[अं analgesine] दे० "ऐण्टिपायरीन"।

एनामिर्टा काक्युलस-[ले० Anamirta Cocculus, *W. & A.*] काकफल। काकमारी।

एनामिर्टा पेनिक्युलेटा-[ले० Anamirta paniculata] काकफल। काकमारी।

एनामिर्टीन-[अं० Anamirtin] काकफल का सत। काकमारीन।

एनामेल-संज्ञा० पुं० [अं० Enamel] दाँत का सबसे बाहर का वह श्वेत भाग, जिसका रासायनिक संघटन अस्थि जैसा होता है। इसको हिंदी भाषा में रुचक वा दन्तवेष्ट भी कहते हैं।

एनासाइक्लस पाइरीथ्रम-[ले० Anacyclus pyrethrum, *DC.*] अकरकरा। आकारकरभ।

एनिमल चारकोल-[अं० Animal charcoal] जांतविक अंगार। हड्डी का कोयला।

एनिमल जेलाटीन-[Animal gelatin] जांतविक सरेश।

एनिमल बाथ-[अं० Animal-bath] किसी अवयव के स्वेदनार्थ स्नान का एक भेद। यह अत्यंत प्राचीन और मनुष्य की असभ्यता के युग के स्नान की एक विधि है। अब भी अरब, अजम, अफगानिस्तान और तुर्किस्तान इत्यादि प्रदेशों की सीमाओं पर स्वेदनार्थ विविध रोगों में इसका व्यवहार होता है। जांतव स्नान। गुसले हैवानी।

एनिमा-[अं० Enema] बस्तिकर्म। दे० "बस्ति"।

एनिमा-एमोलिएण्ट-[अं० Enema emollient] स्निग्धताकारक-बस्ति। स्नेह बस्ति। अनुवासन बस्ति। दे० 'बस्ति"।

एनिमा-एलोज-[अं० Enema aloes] मुसब्बर द्वारा प्रस्तुत बस्ति।

एनिमा-ऐण्टिस्पैज्मोडिक-[अं० Enema antispasmodic] आक्षेपहर बस्ति।

एनिमा-ऐन्थेल्मिण्टिक-[अं Enema-anthelmintic] कृमिघ्न बस्ति। कृमिनाशक-बस्ति। दे० "बस्ति"।

एनिमाऐस्ट्रिंजेण्ट-[अं Enema-astringent] संग्राहिणी-बस्ति। संकोचनीय बस्ति। कषाय बस्ति।

एनिमा-ऑलियाई रीसाइनाई-[अं० Enema-olei recini] एरण्ड तैल मिश्रित बस्ति।

एनिमा-ओपियाई-[अं० Enema-opii] अहिफेनाक्त बस्ति।

एनिमा-न्युट्रिएण्ट-[अं० Enema-nutrient] पोषक बस्ति।

एनिमा-पर्गेटिव-[अं० Enema-purgative] विरेचनीय बस्ति।

एनिमा-सिडेटिव–[अं० Enema-sedative] अवसादन वस्ति ।

एनिमून–[अं० Anemone] दे० "अनीमून" ।

एनिमेटा–[ले० Enemata] अनिमा । वस्ति । दे० "वस्ति" ।

एनिल–[अं० Anil] [अ० अन्नील (अज़्+नील सं० नीली)] नील का पौधा वा रंग ।

एनिलीन–[अं० Aniline] एक प्रकार का रासायनिक द्रव्य जो सर्व प्रथम नील के पौधे से प्राप्त हुआ था । पर अब विशेषतः अलकतरे से प्राप्त किया जाता है । यह अनेक प्रकार के रंगों का मूलाधार है ।

एनिलीन-रेड–[अं० Aniline-red] दे० "फ़ूशीन" । Fuschine.

एनिस–[फ्रां० Anis]
ए (अ) निस–[अं० Anise] } अनीसून ।

एनिस कामन–[अं० Anise, common] अनीसून ।

एनिस फ्रूट–[अं० Anise-fruit] अनीसून ।

एनिस-बाइबर्रेल्ल–[ज० Anis-biberrell] अनीसून ।

एनिसम–[ले० Anisum] अनीसून ।

एनिस-वाटर–[अं० Anise-water] अर्क अनीसून । अर्क बादियाने रूमी । दे० "अनीसून" ।

एनिस-स्टार–[अं० Anise-star] बादियानेख़ताई । अनासफल ।

एनिस केम्फर–[अं० Anise-camphor] (Anethol) अनीसून का सत्व । दे० "अनीसून" ।

एनिसाई-फ्रक्टस–[अं० Anisi-fructus] अनीसून ।

एनिसॉकिलस–[ले० Anisochilus] दे० "अनिसोकिलस" ।

एनिसिक-एसिड–[अं० Anisic-acid] अनीसूनाम्ल । अनीसून का तेज़ाब । दे० "अनीसून" ।

एनिसीड–[अं० Aniseed] अनीसून का बीज । अनीसून ।

एनिसोकिलस–[ले० Anisochilus] दे० "अनिसोकिलस" ।

एनिसोमेलिस–[ले० Anisomeles] दे० "अनिसोमेलिस" ।

एनी–संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा वृक्ष, जो दक्षिण में पश्चिमी घाट पर होता है । 'एनी' का ही एक दूसरा भेद 'डील' है, जिसकी लकड़ी चमकदार होती है तथा जिसके बीज और फल कई तरह से खाए जाते हैं ।

एनीटीन–[अं० Anytin] इसमें ३३ प्रतिशत इक्थियोल सल्फोनिक एसिड होता है । दे० "सोडियाई सल्फो-इक्थियोल" ।

एनीटोल्स–[अं० Anytols] एक डाक्टरी योग जिसमें ४० प्रतिशत मेटाक्रिसोल होता है । दे० "सोडियाई सल्फो-इक्थियोलास" ।

एनीथम्–[ले० Anethum] सोआ ।

एनीथम् सोवा–[ले० Anethum-sowa] सोआ । शतपुष्पा ।

एनीथाई फ्रक्टस–[ले० Anethi-fructus] सोए के बीज । दे० 'सोआ" ।

एनीथीन–[अं० Anethene] एक प्रकार का स्थिर तैल जो सोए के बीज में वर्तमान होता है ।

एनीथू (तू) न–[यू०] सोआ ।

एनीथोल–[अं० Anethol] अनीसून का सत्व । काफ़ूर अनीसूँ । दे० 'अनीसून" ।

एनीमिया–[अं० Anæmea] रक्ताल्पता नामक रोग । यह कृमिजन्य होता है ।

एनीसून–[यू०] अनीसून ।

एनीसोल–[अं० Enesol] एक प्रकार का सफ़ेद रंग का चूर्ण, जिसमें ३८ प्रतिशत पारद होता है । इसके घोल के त्वगस्थ सूचीभरण से दर्द नहीं प्रतीत होता । इसे "मर्करी-सैलीसिल-आर्सीनेट" भी कहते हैं । दे० "पारा" ।

एनीस्टाइल–[अं० Anestile] ईथिल और मीथिल क्लोराइड्स् को परस्पर मिलाने से "एनीस्टाइल" प्राप्त होता है । यह मंद ताप पर वाष्पीभूत होजाता है । द्वि० मे० मे० । दे० "मीथिल क्लोराइड" ।

एनीस्थोन–[अं० Anesthone] दे० "अनस्थेसीन" ।

एनुगदन्त–[ते०] करील ।

एनुग-पल्लेरु-मुल्लु–[ते०] बड़ा गोखरू । ख़सक-कलाँ ।

एनुगपिप्पल्लु–[ते०] गजपिप्पली ! गजपीपल ।

एनून–संज्ञा पुं० [अ० ए.नून] किताबुल्फ़लाहत के रचयिता ग़ाफ़िक़ी कहते हैं कि इस शब्द का व्यवहार इन दो बूटियों के अर्थ में होता है—(१) इससे अभिप्राय एक अत्यन्त तिक्र वनस्पति से है, जिसकी शाखें कड़ी और पतली होती हैं । इसकी पत्तियाँ "आस" की पत्तियों की तरह और मज़बूत होती हैं । डालियों का रंग न खुला हुआ लाल होता है, न खुला हुआ काला—दोनों रंगों के बीच होता है । टहनियों में कालापन लिये सुरमई रंग के पुष्प आते हैं, जो दुअन्नी चवन्नी की तरह गोल होते हैं । यह पर्वतों में उत्पन्न होती है । (२) इस जाति के पत्ते मरुए के पत्तों की तरह सुगंधित और उनसे दीर्घतर होते हैं । शाखें लग-भग दो गज के लम्बी, पतली, खड़ी और सफेद होती हैं और तने में से जड़ के समीप से फूटती हैं । टहनियों की छोरों पर पीले रंग के फूल लगते हैं । इसके चर्वण करने से जिह्वा में खिंचावट जान पड़ती है । यह जाति भी पहाड़ों में उत्पन्न होती है और गुणधर्म में प्रथम जाति की अपेक्षा निरापद है । स्पेन देशीय चिकित्सक प्रथम जाति को "सनाय एल्दी" कहते हैं । अफरीका में एक गिरोह का यह अभिमत है कि यही माही-ज़हरः है ।

प्रकृति—तृतीय कक्षा के प्रथमांश में उष्ण एवं रूक्ष ।

हानिकर्त्ता—हृल्लासकारक है ।

दर्पनाशक—उन्नाब और अनीसून ।

मात्रा—७ मा० से १० मा० तक ।

गुण-कर्म-प्रयोग—स्पेननिवासी इसे सनाय मक्की की जगह प्रयोग करते हैं । क्योंकि कफ, पित्त तथा वायु को यह दस्तों की राह निकालता है । विशेषकर वायु तथा कफ को निकालने के लिये परमोपयोगी है । इसका काथ पीने से कटि, संधि, कुक्षि एवं रीगन वायु का शूल निवृत्त होता है । ख० अ० ।

एनेन्थी-फेलाण्ड्रियम्–[ले० Œnanthe-phellandrium] वाटर-फेनेल-सीड ।

एनोगीसस-लेटिफोलिया–[ले० Anogeissus latifolia] धातकी । धव । धवा ।

एनोडाइन–[अं० Anodyne] अङ्गमर्द–प्रशमन । वेदनाहर ।

एनोडाइन-कोलॉइड–[अं० Anodyne-colloid] दे० "कलोडियम्" ।

एनोडाइन टिंक्चर–[अं० Anodyne tincture] शूलनिवारक टिंक्चर । दे० "पोस्ता" ।

एनोडाइन-वेसीकेंट–[अं० Anodyne vesicant] व्यथाहर फोस्काजनक । दे० "कैन्थरिस" ।

एनोथेरा-बाइएन्निस–[ले० Œnothera biennis] ईविनिंग प्राइमरोज़ ।

एनोना–[?] रामफल । दे० "अनोना" ।

एन्दरु–
एन्दरु-अट्ट– } [सिं०] एरंडबीज । रेंडी ।

एन्दरु-गट्टा–[सिं०] एरंडवृक्ष । रेंड । विंदीदारु ।

एन्दरु-तेल–[सिं०] एरण्ड तेल । रेंड़ी का तेल । कैष्टर आइल ।

एन्दारु–[सिं०] एरंडबीज । रेंड़ी ।

एन्द्रानी–[सिंध] बीजबन्द । मचोटी । केसरी । असाउरीई–(अ०) । हज़ारबन्दक–(फ़ा०) । फा० इं० ३ भ० ।

एन्द्रु-अट्ट–[सिं०] दे० "एन्दरु अट्ट" ।

एन्युलीन–[अं० Enulin] इन्युलीन ।

एन्सल, एनसल–[सिं०] छोटी इलायची । सूक्ष्मैला ।

एन्हाइड्रस-वूल-फैट–[अं० Anhydrous wool-fat] दे० "एडेप्स लेनी अन्हाईड्रोसस्" ।

एन्हाइड्रा-फ्लकचुअन्स–[ले० Enhydra-fluctuans, *Lour.*] हिलमोचिका । हेलेञ्चा । हिंचा । हर्कुच ।

एपिईन–[अं० Apiin.] एक प्रकार का सत्व जो अजमोदे में होता है ।

एपिएष्ट्रम्–[ले० Apiastrum.] कबीकज । देवकाण्डर ।

एपिऑल–[अं० Apiol] अजमोदे का तेल । दे० "अजमोदा" ।

एपिथीमून–[यू०] अफ़्तीमून ।

एपिनार्ड–(कार्नू)–[फ्रां० Epinard Corne] पालक । पालक्य ।

एपिनार्ड-लिस्से-[फ्रां० Epinard lisse] पलम । शाक । (Spinacea glabra.)

एपिनीन-[अं० Epinene] संधान क्रिया विधि द्वारा प्रस्तुत की हुई एक प्रकार की घन औषधि जो उपवृक्कीन (Suprarenin) जैसी होती है। दे० "उपवृक्क" ।

एपियम्-इन्वाल्युक्रेटम्-[ले० Apium involucratum.] अजमोदा भेद ।

एपियम्-ग्रेवियोलेंस-[ले० Apium-graveolens.] अजमोद । करफ़स ।

एपियम्-पेट्रोसेलिनम्-[ले० Apium-petrosel num.] अजमोद ।

एपियोल-[अं० Apiol.] दे० "एपिओल" ।

एपियोल-केम्फर-[अं० Apiol-camphor.] अजमोदे का कपूर । अजमोदे का स्फटिकीय तैल । दे० "अजमोदा" ।

एपियोलीन-[अं० Apioline.] एक प्रकार का पीत द्रव, जो एपियोल के साबुनीकरण द्वारा प्राप्त होता है । २ बूंद की मात्रा में कैपशूल में रखकर ऐसे आर्त्तव सम्बन्धी प्रायः सभी रोगों में इसका व्यवहार करते हैं, जिनमें एपियोल व्यवहृत होता है ।

एपिलोब्रियम्-फ्रुटिकोसम्-[Epilobrium-fruticosum.] बन लौंग ।

एपिस-[ले०] मधुमक्खी ।

एपिस्पैष्टिक्स-[अं० Epispastics.] आबला डालनेवाली दवा । फोस्काकारक औषध ।

एपी-[?] नाज़बू का पौधा । तुलसी ।

एपीजिया-रिपेंस-[ले० Epigaea-repens] (Gravel plant) ग्रेवल प्लाण्ट-(अं०) ।

एपीफीगस-वर्जिनिएना-[ले० Epiphegus-virginiana] बीच-ड्रप Beech-droop-अं० ।

एपीरियोन-[अं०] दे० "फेनोलथैलीन" ।

एपेरिटोल-[अं० Aperitol] एक डाक्टरी विरेचन औषध जिसे १॥ रत्ती (३ ग्रेन) की मात्रा में देने से बिना शूल व दर्द के दस्त आते हैं ।

एपोकोडाइनो-हाइड्रो-क्लोराइडम्-[ले० Apocodeinae-hydro-chloridum] एक हलका भूरा या पीताभ-चूर्ण, जो जल में घुल जाता है । दे० "एपोमार्फीनी-हाइड्रो-क्लोराइडम्" ।

एपोकोडीन-[अं० Apocodeine] कोडीन घटित एक डाक्टरी औषध । दे० "कोडाइना" ।

एपोडल-डाक-[अं०] लिनिमेण्टम्-सेपोनिस Linimentum-saponis.

एपोथेसीन-[अं० Apothesine] एकोईन जैसी एक डाक्टरी औषध । दे० "कोकेन" ।

एपोनाल-[अं० Aponal] दे० "एमाइलीन हाइड्रेट" ।

एपोनोगेटन-मॉनैष्टिकन-[ले० Aponogeton-monastychon] घीचू ।

एपोनोगेटन-सिम्पल-स्टॉक्ड-[अं० Aponogeton-simple-stalked] घेचू ।

एपोमार्फीन-मिथिल-ब्रोमाइड-[अं० Apomorphine-methyl-bromide] एक डाक्टरी दवा ।

एपोमार्फीन-हाइड्रो-क्लोराइड-[अं० Apomorphine-hydrochloride] दे० "एपोमार्फीनी हाइड्रोक्लोराइडम्" ।

एपोमार्फीनी-हाइड्रो-क्लोराइडम्-[ले० Apomorphinæ-hydro-chloridum] एक डाक्टरी औषध, जिसकी छोटी-छोटी श्वेताभ धूसर चमकदार कलमें होती हैं और जो मार्फीन हाइड्रोक्लोराइड या कोडाईन हाइड्रोक्लोराइड को शीशे की नलकी में लवणाम्ल(हाइड्रोक्लोरिक एसिड) के साथ उत्ताप पहुँचाने से प्राप्त होता है । वायु एवं प्रकाश के प्रभाव से यह हरा होजाता है । वि० दे० "पोस्ता" ।

एपोलाइसीन-[अं० Apolysin] एक डाक्टरी औषध । दे० "साइट्रोफेन" ।

एपोसाइनम्-[ले० apocynum] अमेरिकनभाँग । दे० "भाँग" ।

एपोसाइनम् एण्ड्रोसेमिफोलियम्-[ले० apocynum androsemifolium] एक वनस्पति ।

एपोसाइनम् केन्नाबीनम्-[ले० apocynum cannabinum] अमेरिकन भंग । दे० "भाँग" ।

एपोसाइनिन–[अं० apocynin] एक प्रकार का रालदार सत जो अमेरिकीय भाँग (apocynum) की जड़ से प्राप्त होता है। दे० "भाँग"।

एपोसाइनीन–[अं० apocynien] ग्ल्यूकोसाइड के वर्ग का एक सत्व जो "एपोसाइनम्" की जड़ से प्राप्त होता है।

एपोसाइनेसीई–[ले० apocynaceæ] ओषधियों का एक वर्ग। शतमूलीवर्ग।

एप्यम् ग्रेवियोलेंस–[ले० apium graveolens] दे० "एपियम् ग्रेवियोलेंस"।

एप्रिकाट–[अं० apricot] खुबानी। ज़रदालू।

एप्ल–[अं० apple] सेव। सिंवितिका।

एप्सम साल्ट–[अं० Epsom salt] दे० "मैग्नेशियाई सल्फास"।

एफरवेसेंट इप्सम साल्ट–[अं० Effervescent epsom salt] जोशदार मग्नेशिया। दे० "मैग्नेशियाई सल्फास"।

एफरवेसेंट केफीनी साइट्रास–[अं० Effervescent caffeine citras] एक प्रकार का दानेदार जोश खानेवाला योग।

योग—सोडा बाई कार्ब ५१ भाग, टार्टारिक-एसिड २७ भाग, साइट्रिक एसिड १८ भाग, शूगर (चीनी) १४ भाग और केफीनी साइट्रेट ४ भाग।

मात्रा—६० से १२० ग्रेन।

प्रभाव—हृदय-बलदायक तथा मूत्रल।

प्रयोग—शिरावेदना एवं अर्द्धावभेदक के लिये उपयोगी है।

एफरवेसेंट ग्रेन्यूल्ज़–[अं० effervescent granules] एक प्रकार की मिश्रित औषध जो पानी में डालने से जोश खाने लगती है। इस प्रकार के सभी योग दानेदार चूर्ण रूप में होते हैं। इनमें से केवल टार्टरेटेड सोडा पाउडर दानेदार चूर्ण में नहीं होता, प्रत्युत वह सामान्य चूर्ण होता है। इसीलिये यह "बृटिश फार्माकोपिया" में चूर्णों के अन्तर्गत वर्णित है।

इस प्रकार के योग अम्ल (एसिड्स) और क्षारीय औषध (एल्कलाइड्स) को परस्पर मिलाकर पुनः उसमें शर्करा योजित कर वा बिना शर्करा के मिश्रण के बनाये जाते हैं। अस्तु, केफीन साइट्रेट, मैग्नेशियम् सल्फेट और सोडियम् साइट्रो टारट्रेट में शर्करा मिली हुई होती है। परन्तु सोडियम् फॉस्फेट, सोडियम् सल्फेट और लीथियम् साइट्रेट शर्कराशून्य होते हैं।

समग्र जोश खानेवाली मिश्रित औषधें सुस्वादु होती हैं।

एफरवेसेंट-टार्ट्रेटेड-सोडा-पाउडर–[अं० Effervescent tartrated Soda-powder] एक प्रकार का जोश खानेवाला साधारण चूर्ण।

योग—टार्ट्रेटेड-सोडा १२० ग्रेन, सोडाबाइकार्ब ४० ग्रेन–दोनों को मिलाकर नीले रंग के कागज में पुड़िया बनाएँ और ३८ ग्रेन टार्टारिक-एसिड की एक सफेद रंग के कागज में पुड़िया बनाएँ।

गुणधर्म—विरेचन।

नोट—इसे सोडलीट्ज़ पाउडर भी कहते हैं।

एफरवेसेंट-पाउडर्ज़–[अं० Effervescent powders] दे० " एफरवेसेंट ग्रेन्यूल्ज़"।

एफरवेसेंट-मैग्नेशियम् सल्फेट–[अं० Effervescet-magnesium sulphate] एक प्रकार का जोश खानेवाला दानेदार चूर्ण।

योग—मैग्नेशियम् सल्फेट ५० ग्रेन, सोडियम् बाईकार्ब ३६ ग्रेन, टार्टारिक एसिड १६ ग्रेन, साईट्रिक एसिड १२½ ग्रेन और शूगर १०½ ग्रेन।

मात्रा—६०से २४० ग्रेन (½ से १ आउंस)।

प्रभाव—अम्लत्वनाशक (एण्टेसिड) और विरेचन।

एफरवेसेंट-लीथियम्-साइट्रेट–[अं० Effervescent lithium citrate]दे०"लीथियम्"।

एफरवेसेंट-सोडियम्-फॉस्फेट–[अं० Effervescent sodium phosphate] दे० "सोडियाई-फॉस्फास"।

एफरवेसेंट-सोडियम्-सल्फेट–[अं Effervescent sodium sulphate] दे० "सोडियम्"।

एफरवेसेंट-सोडियम्-साइट्रो-टार्ट्रेट–[अं० Effervescent sodium citro tartrate] दे० "सोडियम्"।

एफरवेसेंट-सोडियम्-सैलिसिलेट–[अं० Effer ve-

scent Sodium-Salicylate.] दे० "सोडियम सैलिसिलेट"।

एफिड्रा–संज्ञा पुं० [ले० Ephedra.] एक ओषधि जिसका पौधा छोटी झाड़ी वा चुप की तरह होता है। इसकी जड़ में से ही स्तम्भ-समूह निकलते हैं, जिनमें से पतली लम्बी शाखाएँ फूटती हैं। ये पत्रशून्य दृग्गोचर होती हैं। शाखाओं में कतिपय पोर वा ग्रन्थियाँ होती हैं। स्तम्भ साधारण पेंसिल से अधिक मोटे नहीं होते और भूमि की ओर झुके होते हैं। पृथ्वी के समीप से कांड से शाखाएँ अधिक फूटती हैं। और झाड़ की तरह फैलती या सीधी ऊपर को खड़ी रहती हैं। कांड कुछ कड़ा और बादामी रंग का होता है। उस पर कहीं-कहीं सफेदी लिए चौड़े-चौड़े चिह्न पाए जाते हैं। शाखाएँ सरल, गम्भीर हरित वर्ण की, पतली, कोमल और लगभग १२ इंच दीर्घ, रेखायुक्त, तरंगायित और मसृण होती हैं। इसमें ४-५ जोड़ें पाई जाती हैं। यदि वहाँ ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो पत्तों की जगह दो सम्मुखवर्त्ती और तिर्यक् आवरण-कोष से वर्त्तमान होते हैं, जिनके शीर्ष सूच्यग्र एवं बादामी होते हैं। सिरे की नोक किंचित् पीछे को मुड़ी होती है। शाखागत माध्यमिक पोर्वे किंचित् खुरदरे होते हैं। स्तम्भ को चीरकर देखने से कुछ तंतु से दिखाई देते हैं और उसके भीतर गूदा और केन्द्र से त्वचा की ओर मज्जागत किरणें (Medullary-rays) भी फूटती हुई दिखाई देती हैं। ताजी शाखाओं में हलकी सी सुगंध होती है जो शुष्क होने के उपरांत जाती रहती है। शाखाओं का स्वाद कषाय होता है। शाखाओं पर छोटे-छोटे बेर जैसे लाल फल भी लगते हैं जो बहिरावरण (छिलका) युक्त और सरसमंजरीवत् होते हैं। बीज का एक पार्श्व वा उभय पार्श्व उन्नतोदर वा नतोदर होते हैं। पतली शाखा में प्रभावात्मक ओषधांश अधिक पाया जाता है। स्तम्भ निरर्थक वा प्रभाव शून्य समझा जाता है। सूखी टहनियों में भी औषधीय प्रभाव चिरकाल तक स्थिर रहता है।

पर्य्याय—अमसानिया, बुतशुर, चेवा-(पं०)। खाँडा, खामा, (कनावार)। फोक-(सतलज की घाटी)। सोम कल्पलता-(बं०)। माहुअंग-(चीन)। माओह-(जापान)।

नोट:—(१) उक्त संज्ञाओं का विस्तृत विवरण एफिड्रा के भेदों के साथ दिया जायगा।

(२) एचीसन (Aitchison) के अनुसार यद्यपि लाहौल में एफिड्रा वलगैरिस के कतिपयांश का औषधीय उपयोग होता है, तो भी भारतवर्ष में प्राचीनकाल में इस ओषधि का औषध की कोटि में परिगणन नहीं हुआ। प्राचीन आयुर्वेदीय एवं यूनानी ग्रन्थों में एफिड्रा का उल्लेख नहीं देखा जाता। परन्तु कुछ लोगों का विचार है कि एफिड्रा की एक जाति जो सम्भवतः एफिड्रा इंटरमिडिया (Ephedra Intermedia) है और जिसका उल्लेख आगे आयेगा, वह आयुर्वेदिक सुप्रसिद्ध सोमलता नामक ओषधि है, जिसका स्वरस वैदिक काल में भारतीय ऋषिगण पान करते थे। परन्तु इसके समर्थन में कोई सर्ववादिसम्मत प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। यही कारण है कि एफिड्रा को कोई प्राचीन वैद्यकीय संज्ञा भी नहीं दी गई है। हाँ! किसी किसी स्थान में इसके कतिपय देशी नाम अवश्य मिलते हैं जिन्हें ऊपर दिया गया है। वि० दे० "अमसानिया"।

एफिड्रा वर्ग

(*N. O. Gnetaceae.*)

उद्भवस्थान—उत्तर चीन देश, भारतवर्ष के अनेक स्थल, तिब्बत से लेकर सिक्कम तक तथा भूमण्डल के अन्य अनेक स्थल में यह उत्पन्न होता है।

एफिड्रा की अन्य जातियाँ—

वनस्पतिशास्त्र-वेत्ताओं ने एफिड्रा के बहुसंख्यक भेद स्थिर किए हैं। इस प्रकार के अन्वेषण करनेवाले विदेशी हैं। इसलिए एफिड्रा के भेदों के साथ उन अन्वेषकों के नाम भी लगे होते हैं और अंग्रेज़ी में उसी प्रकार प्रयोग में आते हैं। हमारे यहाँ उन भेदों की देशी संज्ञाएँ अज्ञात सी हैं। इसलिए भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में ये उसी प्रकार अपरिचित सी हैं, जिस प्रकार अँग्रेज़ वा

लेटिन संज्ञाएँ हो सकती हैं इसी कारण हमने भी अँगरेज़ीकी पारिभाषिक संज्ञाओं कोही स्थिर रखना नितांत आवश्यक समझा । जिसमें कम से कम अंगरेज़ी जाननेवाले महानुभाव इस भ्रम से बचे रहें । हम यहाँ सर्व प्रथम इसके जॉर्ज वैट (G. Watt) द्वारा उल्लिखित भेदों का उल्लेख करते हैं, जो उन्होंने सन् १८९० ई० में निर्धारित किए थे । गिनती में वे सिर्फ़ ये तीन हैं—

(१)एफिड्रा वल्गैरिस Ephedra Vulgaris, *Rich.* (Fl. Br. Indica) जिसे एफिड्रा जिरार्डिएना E. gerardiana, *Wall.*, एफिड्रा मॉनोस्टेकिया E.monostachya, *Linn.* और एफिड्रा डिष्टेक्या भी कहते हैं । यह वह भेद है जिसके नाम हमने इससे पूर्व अमसानिया, चेवा, बुतशुर आदि बतलाये हैं ।

यह छोटी सी, सीधी खड़ी झाड़ है, जो हिमालय पर्वत पर पाई जाती है । पश्चिमी तिब्बत से लेकर सिक्किम तक यह समशीतोष्ण हिमालय के शुष्क पथरीले प्रदेशों में एवं अधिक ऊँचाई पर भी बहुतायत से होती है । सिमला के उत्तर में शालाई के पर्वतों पर जो न्यूनाधिक १०००० फुट ऊँचे होंगे, यह प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होती है ।

(२) एफिड्रा पेचीक्लेडा Ephedra pachyclada, *Boiss.* जिसे E. Intermedica, *Shrenk.* and *Meyer.* भी कहते हैं । देश में यह 'हुम' वा 'होम' (फ़ारस), 'गेहमा' (बम्ब०) और ओमन (पश्तु) आदि संज्ञाओं से सुप्रसिद्ध है । यह एक ऊँचा झाड़ीदार पौधा है, जो पश्चिमी तिब्बत और हिमालय के शुष्क एवं पथरीले प्रदेशों में मिलता है ।

(३) एफिड्रा पेडंक्युलेरिस Ephedra peduncularis, *Boiss.* को जिसे एफिड्रा एल्टे E. Alte, *Brand.* और एफिड्रा अलेटा E. Alata, *Meyer.* संज्ञा से भी अभिहित करते हैं, देश में कुचन, निक्किकुर्कन, ज़ाटा, तंदल, ख़स्तक, मंगरवाल, बदुकाई कहते हैं । यह भी ऊँचा खड़ा झाड़ीदार क्षुप होता है, जिसकी शाखाएँ अत्यन्त पतली और कोमल होती हैं । यह सिंध, पंजाब और राजपूताने की पथरीली भूमि पर स्वयं उत्पन्न होता है ।

उपर्युक्त भेदत्रय के अतिरिक्त भारतवर्ष में इसकी यह दो जातियाँ और पाई जाती हैं, जो उतनी प्रसिद्ध नहीं हैं । जैसे—(१) एफिड्रा फॉलिएटा Ephedra foliata, *Boiss.* (Fl. Orient.) और (२) एफिड्रा फ्रैजिलिस Ephedra fragilis (Flowering Plants of Baluchistan, I. H. Barkhill.) ।

ब्रांडीज़ (Brandes) महाशय ने स्वरचित इंडियन ट्रीज़ वा भारतीयवृक्षसंज्ञक ग्रन्थ में, जो सन् १९०६ ई० में प्रकाशित हुआ है, एफिड्रा के इन पाँच भेदों का, जो भारतवर्ष में पाए जाते हैं, उल्लेख किया है । वे ये हैं—(१) एफिड्रा फालिएटा Ephedra foliata, *Boiss.*; (२) एफिड्रा जिरार्डिएना E. Gerardiana. *Wall.* जिसका अन्यतम पर्याय एफिड्रा वल्गेरिस Ephedra vulgaris, *Hook.* (Flora of British Indcia) भी है; (३) एफिड्रा नेब्रोडेंसिस E. Nebrodensis, *Tineo.*, (४) एफिड्रा इण्टरमीडिया E.Intermedia, *Shrenk.* & *Meyer.* और (५) एफिड्रा पेचिक्लेडा E. Pachyclada, *Boiss.*

इनमें एफिड्रा नेब्रोडेंसिस तथा एफिड्रा जिरार्डिएना में कोई व्यक्त प्रधान अन्तर नहीं है । अस्तु, इनमें से प्रथमोक्त को इसके द्वितीय भेद में ही सम्मिलित समझना चाहिए । इसी तरह इसका पाँचवा भेद कभी-कभी चतुर्थ भेद अर्थात् एफिड्रा इण्टरमीडिया का पर्याय समझा जाता है । परन्तु देहरादून के फारेष्ट-रिसर्च इन्स्टीट्यूट के वनस्पति-अन्वेषक तीसरे भेद—एफिड्रा नेब्रोडेंसिस को दूसरे भेद—एफिड्रा जिरार्डिएना से भिन्न समझते हैं । एफिड्रा नेब्रोडेंसिस बलूचिस्तान के प्रदेशों में समुद्रतल से ७००० से १०००० फुट की ऊँचाई पर तथा बालतिस्तान और लाहौल में भी उपलब्ध होता है ।

उत्तरीय एफिड्रा की उपर्युक्त जातियाँ भारतवर्ष के विविध भागों में उपजती हैं। जैसे–बशहर, चकराता, काँगड़ा, कुल्लू, बलूचिस्तान, काशमीर, हजारा, कागान, सीमान्त के अन्य प्रदेश और वजीरिस्तान प्रभृति विभिन्न स्थानों से एफिड्रा के नमूने लाकर उनका पृथक्करण किया गया, जिससे यह ज्ञात हुआ, कि उत्तरी–पश्चिमी भारतवर्ष के शुष्कतर प्रदेशों में, जो एफिड्रा पाया जाता है, उसमें क्षारोद की प्रतिशत मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। यहाँ तक कि अनेक दशाओं में चीन देशीय एफिड्रा के भेदों से भी बढ़ जाती है। इसकी भारतीय जातियों में क्षारोदीय प्रभावात्मक अंश अर्थात् एफिड्रीन (Ephidrine) के विचार से एफिड्रा नेब्रोडेंसिस सर्वाधिक बलवत्तर है और एफिड्रा इण्टरमिडिया सबकी अपेक्षा निर्बलतम। इसकी भारतीय जातियों में एफिड्रीन का अनुपात उत्पत्तिस्थान की ऊँचाई के अनुसार नहीं बढ़ता घटता। हाँ! किसी प्रदेश की वृष्टि के तारतम्य का अवश्य उस पर प्रभाव पड़ता है।

लेफ्टिनेन्ट कर्नल चोपड़ा और उनके सहकारियों ने सन् १९२१ ई० में एफिड्रा के दो भेदों का निरीक्षण किया था, जो झेलम की घाटी से लगी हुई पर्वत श्रेणियों पर एक दूसरे की बगल में खड़े थे। एफिड्रीन के विचार से ये अवश्य ध्यान देने योग्य हैं। यद्यपि दोनों में एफिड्रीन और तद्वत् दूसरे खारे प्रभावात्मक अंश (alkaloid) एवं स्युडो-एफिड्रीन का अनुपात परस्पर बहुत ही भिन्न है। उक्त दोनों भेद यह हैं—

(१) एफिड्रा वल्गैरिस Ephedra Vulgaris या ए० जिरार्डिएना E. Gerardiana जिसे स्थानीय बोल-चाल की भाषा में जनूसर कहते हैं। यह सब लग-भग सीधी खड़ी झाड़ हैं, जो एक–दो फुट से अधिक ऊँची नहीं होती। यह कुर्रम की घाटी के हरियाब जिले में भी १००० फुट की ऊँचाई पर और हिमालय पर्वत पर ८००० से १४००० हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है। पुनः सिक्किम की आभ्यन्तरस्थ पहाड़ियों पर समुद्रतल से १६५०० फुट की ऊँचाई पर उपलब्ध होता है। इसमें कुल क्षारीय क्रियात्मक सार का अनुपात ०.८ से १.४ प्रतिशत तक है, जिसमेंसे लग-भग आधी एफिड्रीन और शेष स्युडो-एफिड्रीन अर्थात् नकली एफिड्रीन होती है। पतली टहनियों और तने के क्षारोद का अनुपात भी बहुत भिन्न होता है। उदाहरणतः एफिड्रा वल्गैरिस के तने में जितने परिमाण में क्षारोद (क्षारीय क्रियात्मक सार) होता है, हरी टहनियों में उससे चौगुना क्रियात्मक सार पाये जायँगे और एफिड्रा इन्टरमीडिया में तो और भी अधिक अर्थात् लग-भग छः गुना होंगे।

(२) एफिड्रा इण्टरमीडिया Ephedra Intermedia को, एफिड्रा टिबेटिका (तिब्बतीय) Ephedra Tibetica जिसकी एक जाति है, सिंध की बोल-चाल की भाषा में "हुम" वा "होम" कहते हैं। यह भी क्षुद्र सीधी झाड़ी है, जो चित्रल की आभ्यन्तरिक घाटियों में, शुष्क पथरीले ढालों पर ४००० से ५००० फुट की ऊँचाई पर एवं गिलगित्त, ग़ौसकर, ऊर्द्धचनाब और कँवार में ६००० से ९००० फुट की ऊँचाई पर और बलूचिस्तान में भी उपलब्ध होती है। इस जाति में क्रियात्मक सार का अनुपात ०.२ से १.० प्रतिशत तक होता है, जिसमें से ०.०२५ से ०.०५६ प्रतिशत तक एफिड्रीन और शेष स्युडो-एफिड्रीन होती है।

टिप्पणी—कभी-कभी एफिड्रा जिरार्डिएना और एफिड्रा इंटरमीडिया को एफिड्रा एक्विसेटिना E. Equisetina समझ लिया जाता है, जो अपुष्पवान् पौधा है। परन्तु उक्त कथित पौधे की लकड़ी कभी कड़ी नहीं होती तथा इसका तना भीतर से खोखला होता है और इसमें पत्ते भी अधिक लगते हैं और शीर्ष पर अन्तरग्रन्थियों के चतुर्दिक् लिपटे रहते हैं। यह जाति चीनदेश में भी मिलती है।

एफिड्रा के फल, जड़ों और स्तम्भ में एफिड्रीन अत्यल्प होती है। केवल हरी शाखाओं में ही यह (क्षारोद) प्रचुर परिमाण में होती है। हिम पात से पूर्व शरद ऋतु में ही इसमें वीर्य (alkaloid) की अधिकता होती है। अस्तु, उक्त समय ही इसके संग्रह का उत्तम काल है।

एफिड्रा फालिएटा Ephedra foliata, *Boiss.*) को देश में 'कूचर" कहते हैं। यह बलूचिस्तान, सिंध, कुर्रम की घाटी, पंजाब के दक्षिणी मैदानों और नमक की पहाड़ियोंमें ३००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है। इसमें किसी प्रकार का क्रियात्मक सार वर्तमान नहीं होता।

इतिहास—आयुर्वेदीय एवं प्राचीन यूनानीग्रन्थों में एफिड्रा का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता। परंतु चीन देशवासी गत पाँच सहस्र वर्षसे इसका बराबर औषधीय उपयोग करते आ रहे हैं।पिछली सदी से पाश्चात्य चिकित्सकों का ध्यान भी इस औषधि की ओर अधिक आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसका क्रियात्मक सार पृथक् कर इसका रोगियों पर परीक्षण किया। सर्व प्रथम टोकियोनिवासी जापानी चिकित्सक एन० नेगाई ने सन् १८८७ ई० में इससे एफिड्रीन नामक सार निकाला। पुनः सन् १९१७ ई० में दो और चिकित्सकों ने, जिनके नाम अम्ट्सो और कबोटा हैं,इसकेऔषधीय प्रभावों का भली भाँति परीक्षण किया। जो कुछ शेष था उसका आपूरण डाक्टर च्यू तथा रीड (Read) एवं ओरों ने सन् १९२५ ई० में कर दी; जिससे फ्रांस देशीय अन्य अन्वेषकों को भी इस औषधि और इसके औषधीयांश के परीक्षण की प्रबलेच्छा पैदा हो गई।

पश्चात् के अन्वेषणों से पता चला, कि एफिड्रा केवल उत्तरी चीन तक ही परिमित नहीं है, अपितु इसकी भौगोलिक सीमा सुदूरवर्ती प्रदेशों तक भी विस्तारित है। इसकी जातियों की संख्या भी अच्छी खासी है। लियू (Liu) नामक अन्वेषक का कथन है, कि कोई भी देश एफिड्रा से रिक्त नहीं होसकता। यह सत्य भी है, क्योंकि भारत भूमि में ही इसकी बहुसंख्यक जातियाँ सुलभ हैं, जो अधिकतर हिमालय के शुष्क प्रदेशों में उपलब्ध होती हैं। इसके कतिपय भेद, जो समतल भूमि पर पाए जाते हैं, उनमें औषधीय घटक अत्यन्त न्यून होते हैं वा उनका सर्वथा अभाव होता है। हिमालय के समशीतोष्ण और उच्च प्रदेशों में भी यह किसी न किसी अंश में अवश्य पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—(१) एफिड्रीन Ephedrin ($C_{10}H_{15}ON$) जो एक वर्ण-हीन स्फटिकीय द्रव्य है। इसके हाइड्रोक्लोराइड की विवर्ण सूचियाँ होती हैं। (२) स्युडो-एफिड्रीन Pseudo-ephedrine या आइसो एफिड्रीन (Iso-ephidrine) रासायनिक सूत्र $C_{10}H_{15}ON$ जो एफिड्रा जिराडिएना और एफिड्रा इंटरमीडिया में एफिड्रीन के साथ पाया जाता है। यह एफिड्रीन को हाइड्रोक्लोरिक एसिड के साथ उत्ताप पहुँचाने से प्रस्तुत होता है। सम्भवतः विकृति शून्यता (Stability) ही एफिड्रीन का सर्व प्रधान गुण है। उष्णता, प्रकाश एवं वायु के प्रभाव से इसके विलयन बिगड़ते नहीं और पुराना होने से इसके गुणों में कोई अंतर नहीं होता है।

अन्य भारतीय वनस्पतियाँ जिनमें एफिड्रीन पाई जाती है—(१) बला (Sid cordifolia)–वैसे तो इसके सर्वाङ्ग में एफिड्रीन वर्तमान होती है, किन्तु पत्ती में सबसे अधिक पाई जाती है। (२) सहिजन (Moringa pterygo-sperma)–इसमें एफिड्रीनवत् एक प्रकार का सत्व पाया जाता है।

एफिड्रीन की न्यूनाधिकता के कारण

निम्न कारणों से प्रत्येक प्रकार के एफिड्रा में एफिड्रीन की मात्रा न्यूनाधिक हुआ करती है—

(१) जाति भेद—अमरिकन जातीय में प्रायः एफिड्रीन नहीं होती। यूरोपियन जातीय में स्युडो एफिड्रीन नामक एक आइसो-मेरिक पदार्थ होता है। चीनी और भारतीय जातियों में एफिड्रीन और स्युडो-एफिड्रीन प्रायः दोनों पाई जाती हैं। इन दोनों चारोंदों में से प्रत्येक परिमाण उसकी जाति पर ही निर्भर करता है।

(२) ऊँचाई—इसके उत्पत्ति-स्थान की ऊँचाई के अनुसार एफिड्रीन की मात्रा में भेद हुआ करता है। परन्तु यह बात भारतीय जातियों में नहीं पाई जाती।

(३) वृष्टि—जहाँ जितनीही अधिक वार्षिक वृष्टि होती है, वहाँ के एफिड्रा में उतनी ही अधिक

एफिड्रीन पाई जाती है। यही नहीं, अपितु सहसा अधिक वृष्टि हो जाने से एफिड्रीन की औसत मात्रा घट जाती है।

(४) ऋतु भेद—एफिड्रीन की मात्रा मई महीने से घटना प्रारम्भ होती है, यहाँ तक कि अगस्त अर्थात् वर्षांत में जाकर इसकी मात्रा सबसे अधिक कम हो जाती है। इससे आगे पुनः क्षारोद की मात्रा बढ़ना शुरू होती है और शरद अर्थात् अक्टूबर–नवम्बर में जाकर यह चरम सीमा को पहुँचती है। इसके उपरान्त पुनः इसका क्रमशः ह्रास होने लगता है।

(५) संग्रह—हवा में भली भाँति सुखाकर और सूखे स्थान में रखे हुये एफिड्रा में एफिड्रीन की मात्रा चाहे वह कितना ही दिन रखा रहे, नहीं घटती। आर्द्र प्रदेश और आर्द्र वायु-स्पर्श से इसके वीर्य का ह्रास होता है। अस्तु, शरद ऋतु में एफीड्रा के कांडों को संग्रह कर छाया में सुखाकर बर्तन का मुख ढँक कर उसे शीत, वायु और आर्द्रता रहित प्रदेश में रखते हैं।

व्यवहारोपयोगी अंग—जड़ और शाखाएँ तथा फल।

नोट—इसके पत्रावृत, छोटे-छोटे कांड ही वीर्यवान होते हैं। अस्तु, उन्हीं को चूर्णकर काम में लाना चाहिये।

औषध-निर्माण—एफीड्रा के पौधे का सत्व–(१) एफीड्रीन वा (२) स्युडो-एफीड्रीन और (३) पौधे का चूर्ण। मात्रा—४ रत्ती से १५ रत्ती तक, किसी-किसी के मत से ५ रत्ती से ८ रत्ती तक।

(४) क्वाथ—१ तोला एफीड्रा को जौकुट कर एक सेर पानी में मंदाग्नि पर क्वथित करें और अर्द्धावशेष रहने पर वस्त्र-पूतकर बोतल में भर रखें।

मात्रा—२॥-२॥ तोला की मात्रा में दिन में तीन बार सेवन करें।

(५) सुरा-वर्धित रसक्रिया (Alcoholic extract) वा टिंक्चर और (६) एफीड्रीन चक्रिका (Ephedrine tabloids) इत्यादि। डाक्टरगण प्रायः इसके सत—एफीड्रीन का ही व्यवहार करते हैं। परस्मरण रहे कि इसके पंचांग का चूर्ण इसके सत्व से कहीं अधिक गुणकारी है, जैसा कि आगे उल्लेख होगा। देशी कंपनियाँ अब इसका शर्बत (Syrup) एवं प्रवाही सत्व (Liquid extract) भी प्रस्तुत करने लगी हैं।

भारतीय एफीड्रा द्वारा प्राप्त एफीड्रीन और स्युडो-एफीड्रीन नामक सत्व के प्रभाव—

इसके अन्वेषण के उपरान्त लगभग सन् १८८७ ई० में रासायनिक दृष्टिकोण से एफीड्रीन की ओर बहुत ही ध्यान दिया गया, पर इसके कनीनिका-विस्तारक प्रभाव के सिवा, जिसकी सूचना जापानी अन्वेषक नेगी (Nagai) ने दी, इसके प्रभाव के संबंध में और अधिक उन्नति नहीं हुई। सन् १९२४ ई० में चेन (Chen) और श्मिट (Schmidt) ने सन् १९२४ ई० में एफीड्रीन के औषधीय गुणधर्म विषयक अपने पत्र प्रकाशित कराये और एड्रीनेलीन से इसके निकट इन्द्रिय-व्यापारिक एवं क्लिनिकल-संबंध का प्रतिपादन किया। एफीड्रा के भारतीय भेदों द्वारा प्राप्त एफीड्रीन और स्युडो-एफीड्रीन नामक सत्वों को क्रिया का लेखक और उसके सहयोगियों द्वारा पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा चुका है। उक्त एफीड्रीन का प्रभाव चीनी पौधे द्वारा प्राप्त एफीड्रीन के सर्वथा समान पाया गया, जिसका विविध प्रयोगकर्त्ताओं द्वारा विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है। पर स्युडो-एफीड्रीन की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। चूँकि यह क्षारोद एफीड्रा के भारतीय भेदों में प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। इसलिये लेखक तथा उसके सहकारियों ने इसका सावधानतया अध्ययन किया। (इं० ड्रू० इं०)

एफीड्रीन और स्युडो-एफीड्रीन के प्रभाव-भेद—संकलित प्रायोगिक नोटों से यह स्पष्ट है कि स्युडो-एफीड्रीन की क्रिया का एफीड्रीन की क्रिया से निकट सादृश्य है। दोनों क्षारोद यकृत से अपरिवर्तित दशा में ही उत्सर्गित हो जाते हैं और अपना साधारण प्रभाव उत्पन्न करते है; चाहे उन्हें (Mesenteric vein) में

अन्तःक्षेपित (Inject) किया जाय वा सांस्थानिक शिरा (Systemic vein.) में। ये उभय क्षारोद आमाशय-आंत्र-पथ से शीघ्रतापूर्वक अभिशोषित हो जाते हैं और आंत्रस्थ पेशिका (Musculature.) पर इनका प्रतिरोधक प्रभाव (Inhibiting-effect.) लगभग समान होता है। उभय क्षारोद रक्त प्रणालियों को संकुचित करते और स्पष्टतया रक्त-चाप को वृद्धि करते हैं। इनमें से एफीड्रीन का, जो कोष्ठस्थ गत्युत्पादक नाड़ियों के छोरों (Vasomotor nerve) पर प्रायः निःशेष कार्य करती हैं, कोष्ठीय वेग-वर्द्धनीय प्रभाव (Vasopressor effect) अधिक बलवत्तर होता है, जबकि स्युडो-एफीड्रीन (Pseudo-Ephedrine) कोष्ठगत पेशिकाओं (Musculature of the vessels) पर भी कुछ कार्य करती हुई बतलाई गई है। स्युडो-एफीड्रीन से फुस्फुसीय और (Portal) क्षेत्रों में चाप-वृद्धि भी कम लक्षित होती है। वायु-प्रणालिकाओं पर इसके विस्तारक प्रभाव तथा उसी प्रकार नासिका की श्लैष्मिक कलाओं पर आकुंचनकारी प्रभाव की शक्ति में एफीड्रीन से आवश्यक भेद नहीं होता। उभय क्षारोदों के वृक्क पर प्रभाव करने का परिणाम रक्त-प्रणालियों का प्रसार करना और वृक्क को आयतन-वृद्धि करना है; परन्तु स्युडो-एफीड्रीन की दशा में एफीड्रीन द्वारा उत्पादित प्रारम्भिक क्षणिक संकोच का अभाव होता है। प्रथमोक्त क्षारोद (स्युडो-एफीड्रीन) की दशा में मूत्रल प्रभाव अधिकाधिक स्पष्ट होता है। ऐच्छिक और अनैच्छिक मास-पेशियों पर उभय क्षारोदों की क्रिया लगभग एक समान प्रतीत होती है। (इं० ड्रु० इं०)

एफीड्रीन आमाशय-फुस्फुसीया वा प्राणदा (vagus) नाड़ियों एवं इच्छाधीन(Autonomic) वातवहानाड़ियों की चेष्टा द्वारा रक्तवेग को वृद्धि करती है और श्वासनाड़ी एवं उसकी शाखा-प्रशाखा को विस्तारित करती है; परंतु श्वासकेन्द्र पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। इसका विलयन (१०० में ४ भाग) पचीस मिनट में ही आँख की पुतली को प्रसारित कर देता है और मस्तिष्क में प्रवृद्ध रक्तवेगजनित अनिद्रा रोग का प्रादुर्भाव करता है।

समस्त लुप वा मिलित उभय क्षारों की क्रिया—प्रयोग द्वारा जिस प्रकार ये श्वास-नाड़ी और उसकी शाखा का विस्तार करते हैं, उसी प्रकार रक्त-चाप की वृद्धि नहीं करते। उक्त क्षारोदों को पृथक्-पृथक् उपयोग करने की अपेक्षा इनका सम्मिलित प्रयोग विशेष उपयोगी होता है। इनके अधिक काल तक सेवन करने से कोई अपकार नहीं होता।

भारतीय एफीड्रा के चिकित्सोपयोगी प्रयोग—यह पहले लिखा गया है कि एफीड्रा की अनेक भारतीय जातियों में अत्यधिक परिमाण में स्युडो-एफीड्रीन वर्तमान होती है। अनेक दशाओं में इसकी विभिन्न जातियों से समस्त क्षारोदों में से एफीड्रीन की प्राप्ति ५० प्रतिशत से अधिक नहीं होती। परंच उससे प्रायः बहुत ही कम मात्रा में होती है। वर्तमान काल में क्षारोदों का मूल्य लगभग ६००) प्रति पौंड है और इतने पर भी ये पर्याप्त मात्रा में प्राप्य नहीं होते। कतिपय भारतीय जातियों में स्युडो-एफीड्रीन की मात्रा एफीड्रीन की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इन घटनाओं पर दृष्टि रखते हुए हम लोगों ने यह जानने का प्रयत्न किया, कि चिकित्सा-कार्य में एफीड्रीन की जगह स्युडो-एफीड्रीन का उपयोग कहाँ तक सम्भव है।

श्वास-चिकित्सा और एफीड्रीन एवं स्युडो-एफीड्रीन—उस समय से जब से कि एफीड्रीन की क्रिया (Sympathomimetic action) का अन्वेषण हुआ, श्वास-रोग की चिकित्सा में इस क्षारोद का विपुल प्रयोग किया जा चुका है। इसके द्वारा प्राप्त लाभ यद्यपि सर्वदा एड्रीनेलीन-वत् आशुकारी नहीं, तथापि शीघ्र और निश्चित अवश्य है। इसके अतिरिक्त मुख द्वारा इसका उपयोग हो सकता है। एतदर्थ सूचीकाभरण (Injection) द्वारा इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं

होती। इसी कारण, बहुसंख्यक रोगियों पर इसका अविवेकपूर्ण उपयोग किया गया है, जिसका कभी-कभी विपरीत फल भी हुआ है। हमें उन रोगियों का ज्ञान कराया गया है जो कई मास पर्यन्त दिन में दो बार अर्द्ध ग्रेन की मात्रा में इस क्षारोद के लेने के अभ्यासी रहे हैं। कलकत्ता के (School of Tropical medicine) के हमारे श्वास-क्लिनिक (Asthma clinic) में इसके उपद्रवयुक्त लक्षण की चिकित्सा में उक्त क्षारोपयोगजात हमारा अनुभव सर्वांश में संतोषदायक नहीं है। नि.संदेह यह वेगों को नियन्त्रित करता और चौथाई घंटे से आध घंटे में लक्षणों का उपशमन करता है। पर इससे अप्रिय पार्श्व-विकार उत्पन्न होना संभव है। किसी-किसी रोगी के हृत्प्रदेश में इससे १० से २० मिनिट तक उग्र वेदना होती हुई भी देखी गई है। उक्त औषध के सेवन करनेवाले बहुसंख्यक रोगियों के हृदावरण में पीड़ानुभव होना इसका एक साधारण उपसर्ग है, जिसका कारण कोष्ठीय गत्युत्पादक नाड़ी-प्रांतों की उत्तेजना द्वारा उत्पादित तनाव-वृद्धि (Hyper-tension) है। इससे किसी-किसी रोगी का दिल धड़कने लगता है, त्वचा भभक उठती है और प्रांतस्थ नाड़ियाँ शिथिल हो जाती हैं और उनमें झुनझुनाहट एवं शून्यता प्रतीत होती है और हृत्स्फुरण (Tachycardia) तथा बेहोशी के दौरे तक हो सकते हैं।

इसके सिवा पिंगल नाड़ी-मंडल पर होनेवाली क्षारोद की उद्दीपनीया क्रिया, हठीली मलबद्धता जो किसी निर्दिष्ट प्रकार के श्वास-रोग को वृद्धि करती है, उत्पन्न करने के लिये दायी है। इससे प्रायः भूख जाती रहती है और साथ ही साधारणतः पाचन-विकार हो जाता है। उक्त औषध काफी लंबे समय तक हमारे उपयोग में नहीं रही है, जिससे कि इसके समग्र विपरीत एवं विषाक्त प्रभावों का ज्ञान हो जाता; परन्तु उनकी उपस्थिति निश्चित है। इसलिये इसके उपयोग में विशेषकर इस प्रकार के उपद्रव-सहित लक्षण (Symptom complex) को दीर्घकालीन चिकित्सा में सावधान रहने की सिफारिस की जाती है। इसके द्वारा उपलब्ध रोगोपशम प्रायः अल्पकालानुबंधी होता है, जिससे उक्त औषध के बार-बार सेवन का प्रलोभन मिलता है। अस्तु, बिना कारण की खोज किए वेग के नियंत्रण के लिए इसका नियमित सेवन सख़्त वर्जित होना चाहिये।

हमने प्रथम ही बतलाया है कि स्युडो-एफीड्रीन की दबाव डालनेवाली क्रिया एफीड्रीन की अपेक्षा बहुत ही निर्बल है। परन्तु, उसकी श्वासनलिका-विस्तारक क्रिया सर्वथा वैसी ही स्पष्ट प्रतीत होती है। फुस्फुसीया धमनी की शाखाओं का आकुंचन श्लैष्मिक कला के फुलाव (Turgescence) का उपशमन करता है और साथ इसके वायुप्रणालियों का व्यक्त विस्तार वेगोपशमन में सहायक होता है। हम लोगों ने उक्त अवस्था के परिहारार्थ स्युडो-एफीड्रीन का उपयोग किया और इससे आशानुरूप फल प्राप्त हुआ। उक्त क्षारोद को $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा में मुख द्वारा प्रयोजित करने से १५ मिनिट से आधे घंटे के भीतर वक्ष के चतुर्दिक् जो जकड़नसी प्रतीत होती है, वह उपशमित हो जाती है और रोगी का श्वास-प्रश्वास स्वस्थावस्था पर आ जाता है। दौरे के ज्ञान की पूर्व-सूचना मिलते ही वैसी ही एक मात्रा सेवन करने से साधारणतः वेग रुक जाता है। वस्तुतः इसका प्रभाव उतना ही शीघ्र होता है, जितना एफीड्रीन का। यद्यपि हमने काफी लम्बे पैमाने पर तथा काफी लम्बे समय तक इसका व्यवहार नहीं किया है। तथापि जहाँ-जहाँ इसका उपयोग किया गया, वहाँ फल आशाजनक ही हुआ है और इसके द्वारा उत्पन्न पार्श्व-प्रभाव उतने अप्रिय नहीं रहे हैं। श्वासरोग एवं उन अन्य दशाओं के प्रतिकारार्थ, जिनमें एफीड्रीन का व्यवहार होरहा है, यदि इस क्षारोद का प्रयोग बढ़ाया जाय, तो न केवल इससे चिकित्सा में होनेवाला व्यय घट जाय; अपितु पूर्वोक्त औषध-जन्य अप्रिय पार्श्व-विकारों से भी निजात पाना संभव हो जाय।

भारतीय एफीड्रा से तैयार की हुई सुराघटित रसक्रिया (Alcoholic Extract) वा आसव (*Tincture*)—यह प्रायः एफीड्रा जिरार्डिएना तथा एफीड्रा इंटरमीडिया नामक पौधे से प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम उक्त पौधे की शुष्क टहनियों को ६० प्रतिशत सुरासारके साथ एक्स्काष्ट

(Exhaust) करें, फिर उसमें इतना काफी पानी सम्मिलित करें, जिसमें एलकोहल की शक्ति लग-भग ४५ प्रतिशत रहे। १·० घनशतांशमीटर रसक्रिया में समस्त क्षारोद की मात्रा ½ ग्रेन रहनी चाहिये। इस एक्स्ट्रैक्ट को चाहे अकेला व्यवहार में लायें या ऐज़्मा मिक्स्चर के साथ सम्मिलित कर। यह श्वास के वेग नियन्त्रित करने में अतीव गुणकारी है। विशुद्ध क्षारोदों की अपेक्षा यह बहुत ही सस्ती है। अस्तु यह गरीब जनता के उपयोग में भी आ सकती है। इसका निर्बल टिंक्चर भी बाजार में उपलब्ध होता है।

श्वास एवं श्वासयन्त्रगत अन्य रोगों में एफीड्रा का त्वरित विशिष्ट फल होता है। जब श्वास के वेग के कारण रोगी को प्राणान्त क्लेश और पीड़ा हो रही हो, उस समय इसके चूर्ण के उपयोग से वह तत्काल प्रशमित हो जाती है। इसके नियमित प्रयोग से सदा के लिये श्वास रोग की निवृत्ति होती है। इसका क्वाथ भी वातकफज श्वास-नलिकाक्षेप में वा अवरुद्ध कफज शब्दादि में उपकारी होता है।

इसी प्रकार बालकों की श्वास-नलिका एवं उसकी शाखा प्रशाखोपशाखाक्षेप, वात-कास (Whooping cough) तथा श्वासयन्त्र पीड़ा को यह विशेषतः प्रशमित करता है और जिनको स्वभावतः प्रतिश्याय और कास हो जाता है, सोने में कफ शब्द करता है, उन्हें इसके कुछ काल के नियमित प्रयोग से शुभ विपाक दिखाई देता है। श्वसनक (Pneumonia) और गलग्रह (Diphtheria) आदि रोगों में हृदय के बलाधानार्थ इसका प्रतिदिन प्रयोग करते हैं।

वक्तव्य—यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि इस भूतल पर श्वासरुजार्त मानव-समाज के लिये एफीड्रा ईश्वरीय वरदान है। इसे श्वास-रोग की अमोघ औषध कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता। जिन लोगों का यह विश्वास है कि "दमा दमके साथ जाता है", भला वे एकबार इसका प्रयोगकर देखें। पुनः उन पर हमारी बात की सत्यता व्यक्त हुये बिना न रहेगी। अखिल भूखंड के डाक्टर इसका सत्व (Alkaloid) श्वास-रोग में बर्तते हैं। इसलिये इसकी अतीव प्रतिष्ठा-वृद्धि हुई है। पर विदित हो कि प्रयोग एवं परीक्षणों द्वारा यह बात भली-भाँति प्रमाणित हो चुकी है कि इस पौधे का चूर्ण इसके क्षारोदों की अपेक्षा कहीं अधिक गुणकारी है। इतना ही नहीं, वरन् जहाँ इसके सत्व के उपयोग से रक्त-चाप इत्यादि बढ़कर नाना प्रकार के उपसर्ग उत्पन्न हो जाते हैं, वहाँ उक्त पौधे के चूर्ण के उपयोग से उनका कहीं दर्शन भी नहीं होता तथा रोगी और चिकित्सक दोनों हर प्रकार सुरक्षित रहते हैं। इस प्रकार जहाँ आप अधिकाधिक लाभप्राप्त करेंगे, वहाँ गरीब जनता भी आपकी चिकित्सा से लाभान्वित हो सकेगी। वेग के समय जब रोगी जल-विहीन मीन की भाँति तड़प रहा हो और उसका खाना-पीना, उठना-बैठना भी हराम हो रहा हो, इसको ४ से १५ रत्ती की एक ही मात्रा ताजे पानी के साथ भीतर जाने से क्षणमात्र में एकत्रीभूत कफ निःसरित होकर श्वास-नलिका सर्वथा परिष्कृत हो जाती है और रोगी सुख की नींद सो जाता है। इसके अतिरिक्त तीन-चार सप्ताह निरन्तर ६ रत्ती चूर्ण प्रातः काल और वैसी ही एक मात्रा रात्रि में सोते समय ताजे पानी के साथ सेवन कराते रहने से श्वास से सदा के लिये मुक्ति लाभ होता है।

एफीड्रीन और स्यूडो-एफीड्रीन के हृदयोद्दीपक प्रभाव—रक्त-चाप पर इन क्षारोदों की उद्दीपनीय क्रिया सुविदित है। इसी हेतु हृदयोत्तेजक रूप से इनका उपयोग किया जा चुका है। हम पहले ही बतला चुके हैं, कि जब कि एफीड्रीन, विशेषतः बहुल परिमाण में, हृत्पेशियों पर निर्बलताकारक प्रभाव करती है, उसके विपरीत दूसरी ओर स्यूडो-एफीड्रीन उस पर उद्दीपक प्रभाव करती है। कोष्ठ-गत्युत्पादक नाड़ी-प्रांतों पर अपने निर्दिष्ट प्रभाव के सिवा उत्तर कथित क्षारोद धमनिकाओं के मांस-तन्तुओं को भी उत्तेजित करता है। अस्तु, लेखक ने हृदयोत्तेजक रूप से एफीड्रा रसक्रिया की, जिसमें एफीड्रीन और स्यूडो-एफीड्रीन दोनों वर्तमान होती हैं (उसमें भी उत्तर कथित क्षारोद ही अधिक परिमाण में होता है) परीक्षा की, और उससे आशा-

जनक फल प्राप्त हुये। ऐसे रोगियों को जिनके हृदय की क्रिया निर्बल थी और हृदय डूब रहा था, इस औषध के प्रयोग से व्यक्त कल्याणप्रद प्रभाव प्रगट हुआ। ½ ड्राम से १ ड्राम तक दिनमें २-३ बार उक्त औषध बहुसंख्यक रोगियों को सेवन करा देने से, यह ज्ञात हुआ कि इससे रक्त-वेग नियत मात्रा में बढ़ गया (पारा १० से २० मिलि मीटर तक चढ़ गया)। अपर्याप्त शोणित-संचालन के कारण जिन रोगियों के वृक्क की क्रिया अव्यवस्थित हो गई थी, उनमें व्यक्त मूत्र-प्रस्राव प्रगट हो गया।

श्वसनक ज्वर (Pneumonia), गलग्रह (Diphtheria) आदि जैसे रोगों को छूत से होनेवाली हृदय की विषाक्त दशाओं में एफीड्रा का टिंक्चर उत्तम हृदयोत्तेजक भी है। लेफ्टेंट वेरी हॉज (Lt.Col. Vere Hodge, I. M. S.) ने उक्त अवस्थाओं में ½ ड्राम की मात्रा में इसका टिंकचर दिन में ३–४ बार प्रयोगित कराया और इससे उत्तम फलप्राप्त हुये। आर० एन० चोपरा एम० एम०,ए० डी० (Indigenous drugs of India).

यह परिवर्त्तक, मूत्रविरेचनीय, आमाशय-बलप्रद और वल्य है। उग्र आमवात में इसका क्वाथ और चूर्ण लाभदायक साबित हुये हैं। परन्तु चिरकारी अवस्थामें ये उपयोगी नहीं है। दस-बारह दिन तक उक्त बूटी के सेवन से ही संधियों की सूजन और पीड़ा जाती रहती है और रोगी स्वास्थ्य लाभ करता है। "इंडियन मेटीरिया मेडिका" में तो यहाँ तक लिखा है कि उग्र आमवातादि में जब सैलिसिलेट ऑफ सोडा, ऐण्टिपायरीन और ऐण्टिफेब्रीन आदि डॉक्टरी औषधें निष्फल प्रमाणित होती है, तब यह बूटी पूर्ण लाभ प्रदान करती है और उक्त औषधों की भाँति इससे हृदय निर्बल नहीं होने पाता। प्रत्युत उसके विरुद्ध इससे हृदय को किसी भाँति शक्ति ही प्राप्त होती है।

इसके क्वाथादि के सेवन से यकृत की निर्बलता के कारण होनेवाले अजीर्ण-रोग में स्पष्ट लाभ होता होता है। क्योंकि इसके उपयोग से यकृत की क्रिया नियमित हो जाती है और उचित परिमाण में पित्तोत्सर्ग होने लगता है। इसलिये खाना भली भाँति हज़म होने लगता है और क्षुधाकी कमी एवं मलबद्धतादि यकृद्दौर्बल्यजन्य उपसर्ग भी जाते रहते हैं।

जैसा कि ऊपर वर्णित हुआ है, कि इसके उपयोग से यकृत की क्रिया स्वाभाविक हो जाती है और पित्त भी तरलीभूत होकर भली प्रकार उत्सर्गित होने लगता है। इसलिये पित्त यकृत में एकत्रीभूत होकर रक्त में मिलने की जगह आहार पर अपना पूरा प्रभाव करता हुआ मल के साथ निःसरित हो जाता है, जिससे कामला-रोग का नाश होकर यकृत को सूजन कम हो जाती है।

इसके फल का स्वरस श्वासनलिकागत विकारों में अत्युपयोगी है। इसका क्वाथ परिवर्त्तक है और उग्र पेशीय एवं संधिजात आमवात और फिरंग में प्रयोगित होता है। आमाशय-बलदायक रूप से यह पाचन को सुधारता और आँतों को शक्ति प्रदान करता है।

नोट—एफीड्रा के शेष वर्णन के लिये दे० "अमसानिया"।

एफीड्रा-अलेटा–[ले०ephedra-alata, *Meyers*] कुचन, लस्तुक, मंगरवल, निक्कि-कुर्कन। दे० "एफीड्रा पेडंक्युलेरिस"।

एफीड्रा-इंटरमीडिया–[ले० ephedra-intermedia, *schrenk. & Meyer.*]दे०"एफीड्रा पेचिक्लेडा"।

एफीड्रा-एल्टी–[ले० ephedra-alte, *Brand.*] दे० "एफीड्रा-पेडंक्युलेरिस"।

एफीड्रा-जिरार्डिएना–[ले० eph dra-gerardiana, *Wall.*] दे०' "एफीड्रा-वल्गैरिस"।

एफीड्रा-डाइस्टैक्या–[ले० ephedra distachya, *Linn.*] दे० "एफीड्रा-वल्गैरिस"।

एफीड्रा-पेडंक्युलेरिस–[ले० ephedra-pedunculariis, *Boiss.*] कुचन, लस्तुक। दे० "एफीड्रा"।

एफीड्रा-पैचिक्लेडा–[शे० ephedra pachyclada, *Boiss.*] डूम-(फ्रा०)। ओमन–(पश्तु)। गेज्ञा–(बम्ब०)।

एफीड्रा फॉलिएटा–[ले० ephedra-fo'iata, *Boiss.*] एक प्रकार का एफिड्रा । दे० "एफिड्रा"

एफीड्रा-फ्रैगिलिस–[ले० ephedra-fragilis] एक प्रकार का एफिड्रा । दे० "एफिड्रा" ।

एफीड्रा-मॉनोष्टैकिया–[ले० ephedra monostachya, *Linn.*] अम्सानिया दे० "एफिड्रा"।

एफीड्रा-वल्गैरिस–[ले० ephedra vulgaris, *Rich.*] अम्सानिया । दे० "एफिड्रा" ।

एफीड्रान–[अं० ephedrine] एक प्रकार का क्षारीय सत्व जो विविध भाँति के एफीड्रा से प्राप्त होता है । वि० दे० "एफिड्रा" ।

एफीड्रीनी हाइड्रोक्लोरायडम्–संज्ञा स्त्री० [ले० ephedrinae hydrochloridum.] एफीड्रा सिनिका, एफीड्रा एक्वीसेटिना तथा एफीड्रा के अन्य भेदों से प्राप्त एफीड्रीन नामक क्षारोद का हाइड्रोक्लोराइड यौगिक जिसके निर्गन्ध वर्णरहित स्फटिक होते हैं। ये सुतासार (९०%) और जलविलेय होते हैं । इनके जलीय विलयन से लिटमस पत्र में कोई परिवर्तन नहीं आता। (Ephedrine hydrochloride.)

असम्मत योग

(Non-official Preparations.)

(१)–एलिक्सिर एफीड्रिनी हाइड्रोक्लोराइडाई । ElixirEphedrinæ Hydrochloridi (B. P. C.)–ले० ।

योग–इसके प्रत्येक ड्राम में ¼ ग्रेन एफीड्रिन हाइड्रोक्लोराइड होती है ।

मात्रा–½ से २ ड्राम (२ से ८ मिलिग्राम)।

(२) नेबुला एड्रिनेलिनाई एट एफीड्रिनी Nebula Adrenalini et Ephedrinae (B. P C.)–ले० ।

योग–एड्रीनेलीन हाइड्रोक्लोराइड का विलयन २॥ आउंस, एफीड्रीन हाइड्रोक्लोराइड २०० ग्रेन; गिलिसरीन ऑफ फेनाल २०० बूँद, सिम्प्लेमन वाटर उतना, जितने में कुल द्रव २० आउंस होजाय ।

(३) एफीटोनीन Ephetonin (Merck,)

पर्या०–सिन्थेटिक एफीड्रीन Synthetic Ephedrine यह Phenylmethylaminopropanol का एक हाइड्रोक्लोराइड यौगिक है, जिसका एफीड्रीन से निकट का सम्बन्ध है और गुण स्वभाव में यह एफीड्रीन वा एड्रीनेलीन के समान होता है । जिन दशाओं में एड्रीनेलीन दी जाती है, प्रायः उन्हीं अवस्थाओं में यह भी मुख द्वारा प्रयोगित होती है । इसकी ¾ ग्रेन की चक्रिकाएँ और स्वगधः अन्तःक्षेप के लिए ऐम्पूलस मिलते हैं ।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

एफिड्रीन का व्यवहार उन्हीं दशाओं में होता है, जिनमें एड्रीनलीन देने का विधान है । इसे ¼ रत्ती की मात्रा में दिन में २-३ बार मुख द्वारा सेवन करने से फुफ्फुस-प्रणालीजात श्वासरोग के वेग २०-३० मिनिट के भीतर रुक जाते हैं । श्वास के उग्र वेगों में यह एड्रीनलीनवत् बलशालिनी नहीं होती और रोगी बहुत शीघ्र इसका आदी हो जाता है । अस्तु, उक्त प्रभाव हेतु इसकी अधिक मात्रा अपेक्षित होती है । इसके सेवन से किसी२ को उग्र स्वेद एवं अनिद्रा रोग होजाता है । जबकि ½ ग्रेन की एक ही मात्रा देने से एतद्भिन्न व्यक्तियों पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता ।

क्योंकि यह श्वासोच्छ्वास-केंद्रों को उत्तेजित करती है; इसलिये मदकारी विषों में इसका उपयोग होता है और उन दशाओं में यह काफीन (कहवीन) तथा ष्ट्रिक्नीन (विषमुष्टीन) की अपेक्षा ही नहीं, अपितु कार्बन डाय आक्साइड की अपेक्षा भी श्रेष्ठतर होती है ।

१०–१२ वर्षीय बालक को सोते समय इसे ¼ रत्ती की मात्रा में देने से रात्रि-शय्या-मूत्र रोग में उपकार होता है। $\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ रत्ती यह औषध दिन में दो बार देने से एक वर्षीय शिशु की, विशेषतः द्वितीय श्रेणी में पहुँची हुई कूकरखाँसी आराम होती है ।

कुष्ठगत वात-वेदना में एड्रीनलीन के सूचीवेध की अपेक्षा इससे कहीं अधिक उपकार होता है ।

विषाक्त लक्षण

इसे अधिक मात्रा में सेवन करने से हृत्स्पंदन (Tachycardia); कंप, शिरोभ्रमण, हृत्स्फुरण (Palpitation), स्वेद, उत्क्लेश और वस्तिस्थ क्षोभ प्रभृति लक्षण उपस्थित होते हैं। रक्तचाप-वृद्धि के साथ उक्त लक्षण प्रकाश पाते हैं और उसे पुनः अपनी पूर्वावस्था पर पहुँचने के साथ ही वे विलुप्तप्राय हो जाते हैं।

एफ्रोडाइन–[अं० aphrodine] दे० "योहिम्बीन हाइड्रोक्लोराइड"।

ए. बी. सी. लिनिमेंट–[अं० A. B. C. Liniment] एक प्रकार की प्रलेपौषध। दे० "बच्छनाग"।

एबेल्मॉस्कस-एस्क्युलेंटस–[ले० abelmoschus-esculentus, *W. & A.*] भिंडी। रामतरोई। टिण्डिश–सं०।

एबेल्मॉस्कस-मॉस्केटस–[ले० abelmoschus-moschatus, *Moen.*] मुश्कदाना। लता-कस्तूरिका।

एब्युटिलन–[ले० abutilon] दे० "अब्युटिलन"।

एमल्शन्स–[अं० emulsions बहु०] दे० "एमल्शन"।

एमल्शन–संज्ञा पुं०[अं० emulsion][बहु० एमल्शन्स] किसी अविलेय द्रव्य का ऐसा तरल मिश्रण, जिसमें उक्त द्रव्य के अत्यन्त सूक्ष्म कण किसी लसदार पदार्थ के द्वारा जल में अवलंबित वा मिले हुये होते हैं। इसमें रालयुक्त वा तैलीयांश के पानी में अवलंबित होने के कारण उक्त मिश्रण क्षीरवत् सफेदी लिए होता है।

एमल्शन दो प्रकार से बनाए जाते हैं—(१) सेपोनीफिकेशन (साबुन बनाने की भाँति) जो किसी स्थिर तैल में क्षार या टिंक्चर क्विलाई वा टिंक्चर सेनेगी (जिनमें सेपोनीन तत्व विद्यमान होता है) के मिलाने से बनता है। (२) सस्पेंशन (अवलंबन) द्वारा, जो किसी रालयुक्त औषध को किसी लसदार पदार्थ (लुआब) या अंडे की ज़र्दी प्रभृति में मिलाकर बनाया जाता है। जैसे, तारपीन-तैल का एमल्शन बनाया जाता है।

नोट—फ़िक्स्ड आइल (स्थिर तैल) और मिच्छिल अर्थात् लसदार औषधियों को चीनी के खरल में परस्पर मिलाने से उत्तम एमल्शन बन सकता है। अस्थिर तैल (वालेटाइल आइल्ज़), क्षारीय एमल्शन और कम लसदार द्रव्यों का एमल्शन बोतलों में ही बनाया जा सकता है।

पर्य्याय—मुस्तइल्व–(अ०)। शीरा–(फ़ा०)।

एमल्शन-ऑफ-कॉडलिवर-ऑयल–[अं० emulsion of cod liver oil.] काड नामक समुद्रीय मछली के तैल का एमल्शन।

एमल्शियो-आयोडोफार्माई–[ले० emulsio-Iodoformi.] आयोडोफार्म का इमल्शन। दे० "आयोडोफॉर्म"।

एमल्शियो-आलीयाई-ऑलिवी कम्पाज़िटा–[ले० emulsio-olei olivae co. (B.P.C.)] दे० "एमल्शियो ऑलियाई मोरहुई कम्पाज़िटा"।

एमल्शियो-ऑलियाई-मोहुई–[ले० emulsio-olei-morrhuae.] मत्स्य यकृत्तैल इमल्शन। दे० "मोहुई-ऑलियम्"।

एमल्शियो-आलियाई-मोहुई-कम्पाज़िटा–[ले० emulsio-olei-morrhuae-camposita.] यौगिक मत्स्य-तैल इमल्शन।

एमल्शियो-पेट्रोलियाई कम हाइपोफास्फाइटिबस–[ले० emulsio-petrolii-cum-hypophosphitibus. (B. P. C.)]दे० "पैराफीनम् लिक्विडम्"।

एमल्शियो-मोहुई-पैन्क्रुएटिका–[ले० emulsio-morrhuae pancreatica.] काड मत्स्य तैल इमल्शन। दे० "काड मछली"।

एमल्शियो-मोहुई-पैन्क्रुएटिका कम एक्सट्रैक्टो माल्टाई–[ले० emulsio-morrhuae Pancreaticacum Extracto malti] क्रोमीयमाल्टाक्र काडमत्स्य तैल इल्मशन। दे० "मोहुई ऑलियम्"।

एमल्शियो-लेसीथीन–[ले० emulsiolecithin.] कुक्कुटाण्ड-पीतक सार इल्मशन। दे० "लेसीथीन"।

एमल्शियोनीज़–[ले० बहु० emulsiones.] दे० "एमल्शन"।

एमलसीन–[अं० emulsin.] कड़वे बादाम के तेल का एक संयोजक अवयव।

एमरएट (न्थ)–[अं० amarant (h)] दे० "अमारेएट (थ)"।

एमायलआइसोब्युटिल–[अं० amyle-iso butyl.] दे० "एमाइल नाइट्रिस"।

एमाइल-कोलॉइड–[अं० amyle colloid.] वेदनाहर कोलोडियन। दे० "कोलोडियम्"।

एमाइल-नाइट्राइट–[अं० amyle nitrite.] दे० "एमाइल नाइट्रिस"।

एमाइल-नाइट्राइट-कैप्शूल्ज–[अं० amyle-nitrite capsules.] दे० "एमाइल नाइट्रिस"।

एमाइल-नाइट्रिस–संज्ञा पु० [ले० amyl-nitris.] एक हलके पीतवर्ण का ईथरीय द्रव जिससे एक विशेष प्रकार की सुगंध आती है। यह नाइट्रस एसिड और एमाइलिक एलकोहल को जो १२८° और १३२° फारनहाइट के मध्य के उत्ताप पर परिष्कृत किया गया हो, परस्पर एक दूसरे पर घटित अंतर्क्रिया द्वारा प्रस्तुत होता है। इसमें प्रधानतः आइसो एमाइल नाइट्राइट (Iso-amyl nitrite) होता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार के अन्य नाइट्राइट का भी समावेश होता है। इसकी प्रतिक्रिया किंचिद्म्लतायुक्त अर्थात् अम्ल होती है और इसका आपेक्षिक भार ०°८७० से ०°८८० तक होता है। यह अति ही अस्थिर होता है और अधिक समय तक रखने से विकृत हो जाता है।

पर्य्या०—एमाइल नाइट्राइट amyl nitrite (अं०)।

विलेयता—यह सुरासार-एलकोहल (९०%), ईथर और क्लोरोफार्म में तो विलेय होता है, किंतु जल में अविलेय होता है।

मिश्रण वा खोट—फ्री एसिड और ऐमायल नाइट्रेट।

संयोग-विरुद्ध—एल्कलाइन कार्बोनेट्स, पोटेसियम् आयोडाइड, पोटेसियम्, ब्रोमाइड और फेरस साल्ट्स।

प्रभाव—धमनी-विस्तारक (Arterial or Vasodilator) और हृदय की गति को तीव्र करनेवाला एवं धामनिक आक्षेप पर प्रबल प्रभावकारी है।

मात्रा—घ्राणार्थ २ से ५ मिनिम तक और खिलाने के लिये $\frac{1}{2}$ से १ मिनिम तक कैपशूल में डालकर।

असम्मत योग

(*Not official preparations*)

(१) मिस्च्युरा एमाइल नाइट्राइटिस (Mistura amyl-nitritis)—

योग—एमाइल नाइट्राइट १$\frac{१}{५}$ मिनिम, ट्रैगेकंथ १ ग्रेन, सिरप ३० मिनिम और परिस्रुत जल इतना जितने में कुल ४ फ्लुइड ड्राम हो जावे। (ब्रिटिश फार्माकोपिया के परिशिष्टानुसार)

(२) एमाइल नाइट्राइट कैप्शूल्ज (Amyl nitrite capsules)—यह शीशे की बहुत पतली अंडाकार वटिकाएँ होती हैं जिनमें एक-दो-तीन या पाँच बूँद तक एमाइल नाइट्राइट भरा होता है। इस केपशूल को रूमाल में तोड़कर सूँघा करते हैं।

(३) आइसो-ब्युटिल-नाइट्राइट (Iso-butyl-nitrite)—इसके प्रभाव तथा प्रयोग एमाइल नाइट्रेट के सदृश हैं और इसे उसके स्थान में प्रयोगित करते हैं।

(४) टर्शियरी एमाइल नाइट्राइट (Tertiary amyl nitrite) वा बिर्टोनिस ईथर (Birtonis ether)—यह टर्शियरी एमाइलिक एलकोहल (एमाइलीन हाइड्रेट) से निर्मित किया जाता है। इसमें एमाइल नाइट्राइट के समग्र गुण-धर्म विद्यमान होते हैं। परंतु इसमें विशेषता यह है कि अति मात्रा में भी इसका निरापद उपयोग हो सकता है। इससे मुखमंडल रागयुक्त नहीं होता।

मात्रा—१ मिनिम=(३० घन शतांशमीटर) शर्करा पर डालकर या रिक्त केपशूल में डालकर प्रयोजित करें।

(५) एमाइल वैलेरिएनास (Amyl Valerianas)—यह एक विवर्ण द्रव है जिससे फलों वा मेवों की सी तीव्र गंध आती है।

प्रभाव—अवसादक (Sedative) और आक्षेपहर (Antispasmodic)

मात्रा—२ से ३ बूँद तक=(.१२ से .१६ घन शतांशमीटर) स्फ़ि कैपशूल में भरकर देते हैं।

एमाइल नाइट्रेट के प्रभाव

बाह्य प्रभाव

एमाइल नाइट्रेट का स्थानीय प्रयोग करने से, थोड़े समय के लिये, यह ज्ञानवहा नाड़ियों (Sensary nerves) को शिथिल कर देता है। किंतु यह प्रभाव अति शीघ्र जाता रहता है। अस्तु, इस प्रयोजन के लिये इसका उपयोग नहीं किया जाता।

आभ्यन्तरिक प्रभाव

एमाइल नाइट्रेट को यदि सुँघाया जाय, तो फुफ्फुस द्वारा और खिलाया जाय, तो अमाशय द्वारा यह तत्क्षण रक्त में प्रविष्ट हो जाता है और सोडियम् नाइट्रेट के रूप में शोणित में भ्रमण करता है। यदि इसे अधिक मात्रामें सूँघा जाय अर्थात् अति मात्रा में अभिशोषित हो जाय तो, यह शिरा और धमनी स्थित शुद्धाशुद्ध एवं अन्य प्रकार के शोणित का वर्ण श्यामतायुक्त कर देता है। क्योंकि यह हीमोग्लोबीन (शोणितस्थित रक्ताणु) को मीथहीमोग्लोबीन और नाइट्रो-ऑक्साइड हीमोग्लोबीन (विकारी अंश जो रक्ताणुओं के वर्ण को स्याह कर देते हैं) में परिणत कर देता है। इसलिये रक्तकणों में अल्प मात्रा में ओषजन अभिशोषित होता है और शोणित का वर्ण श्यामतायुक्त हो जाता है। सामान्य मात्रा में इसका उपयोग करने से तो इसका उक्त प्रभाव सूक्ष्मतर होता है। मीथ-हीमोग्लोबीन पुनः शीघ्र ओषजनीकृत (Oxidised) हो जाती है। किंतु विषाक्त मात्रा में प्रयोगित करने से ये परिवर्तन घातक प्रमाणित हुआ करते हैं।

हृदय और रक्तप्रणालियाँ—एमाइल नाइट्रेट के सूँघते ही क्षण मात्र में मुखमंडल, शिर और ग्रीवा गरम और रागयुक्त हो जाती है। ग्रीवा की रगें फूली हुई और स्पंदित होती हुई दृग्गोचर होती हैं, शिर में गुरुता का बोध होता है और हृदय शीघ्र-शीघ्र एवं जोर से गति करने लगता है। तदुपरांत अविलंब शिरोशूल एवं शिरोभ्रमण का प्रादुर्भाव होता है, साँस तीव्र हो जाती है और कनीनिकाएँ प्रसारित हो जाती हैं। और यदि औषध की मात्रा अधिक हो, तो सम्पूर्ण शरीर की धमनिकाएँ (Arterioles) विस्तारित हो जाती है। जिसका कारण उनके पैशीय स्तरों का क्षीण एवं वातग्रस्त हो जाना होता है; क्योंकि ये रगें तब ही प्रसारित हुआ करती हैं, जब उनके पेशीय स्तर वातग्रस्त हो जाया करते हैं। अस्तु, रक्त-चाप और धामनिक तनाव बहुत घट जाता है। किंतु नाडी की गति तीव्र हो जाती है। यद्यपि उसकी शक्ति में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती। जिसका कारण संभवतः यह होता है, कि रक्त-चाप के कम हो जाने के कारण प्राणदा-नाडी (वैगस-नर्व) मूल शिथिल हो जाते हैं। इस दवा को विषैली मात्रा में सुँघाने से संभव है कि स्वयं हृदयगत पेशियों के वातग्रस्त हो जाने के कारण वह प्रसारित (Diastole) दशा में गति करने से रुक जाय।

श्वासोच्छ्वास—श्वासोच्छ्वास-केन्द्र पर एमाइलनाइट्रेट का प्रथमतः उत्तेजक प्रभाव होता है, जिससे साँस गम्भीर और जल्दी-जल्दी आने लगती है; पर बाद में धीरे-धीरे एवं कष्ट से आती है और अन्ततः श्वासोच्छ्वास-केन्द्र के वातग्रस्त हो जाने से श्वास अवरुद्ध होकर मृत्यु उपस्थित होती है।

नाड़ी-मंडल—एमाइल नाइट्रेट के सुँघाने से बहुशः वातजनित लक्षण, यथा—शिरःशूल, शिरो-भ्रमण, शिर के भीतर तड़प प्रतीत होना, कनीनिका-विस्तार आदि समग्र लक्षण मस्तिष्क और सुषुम्नागत धमनिका (Arterioles)-विस्तार के कारण प्रादुर्भूत होते हैं। इसे अधिक परिमाण में देने से सौषुम्न गति-केन्द्र वातग्रस्त हो जाते हैं। अस्तु, परावर्तित क्रिया सर्वथा नष्टप्राय हो जाती है और मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व ज्ञानवहा और चेष्टावहा नाड़ियों के व्यापार अनियन्त्रित हो जाते हैं।

शारीर-ताप—एमाइल नाइट्रेट के प्रभाव से शारीरिक ऊष्मा स्वास्थ्य और ज्वर दोनों दशाओं में कम हो जाती है। शारीरिक ताप के कम होने का उक्त कार्य प्रान्तस्थ प्रणालियों (Peripheral vessels) के विस्तारित हो जाने और शारीरिक संवर्तन क्रिया (Metabolism) के विकृत हो जाने के कारण हुआ करता है।

प्रस्राव—एमाइल नाइट्रेट का नाइट्राइट्स और नाइट्रेट्स के रूप में मूत्र द्वारा उत्सर्ग होता है। यह किंचिद् मूत्रल भी है।

टिप्पणी—कभी-कभी इसके उपयोग से पेशाब में शर्करा आने लगती है अर्थात् मधुमेह (Glycosurea) नामक व्याधि हो जाती है, जिसका कारण संभवतः यकृत की रगों का प्रसारित हो जाना होता है।

एमाइल नाइट्रेट के चिकित्सोपयोगी प्रयोग—इन्हेलेशन (सुँघाना)—डाक्टर ब्रण्टन (Brunton) महाशय ने सन् १८६७ ई० में इस बात का पता लगाया, कि हृच्छूल नामक व्याधि में रोगाक्रमण के समय प्रान्तस्थ प्रणालियाँ अतीव संकुचित हो जाती हैं। उसने यह भी अवलोकन किया कि एमाइल नाइट्रेट के उपयोग से वे रगें विस्तारित हो जाती हैं। इसलिये उन्होंने उक्त व्याधि में इस औषधि को सुंघाया। फल यह हुआ कि प्रान्तःस्थ रगें फैल गईं और हृच्छूल बिलुप्त हो गया। पर कभी ऐसा भी होता है कि हृच्छूल में शरीरगत प्रान्तस्थ प्रणालियाँ नहीं फैलतीं। किंतु एमाइल नाइट्रेट के आघ्राण कराने से उक्त अवस्था में भी कल्याण हो जाता है। अतः अब हर प्रकार के हृच्छूल में उक्त भेषज को सुंघाते हैं प्रधानतः उस समय जब वेदना वेग क्रमानुसार होती है। इसके सुँघाने के प्रायः दो-तीन मिनट के उपरांत ही रोगी लाभ अनुभव करता है।

वक्ष के धमन्यर्बुद-जनित पीड़ा में भी इस औषध के उपयोग से लाभ होता है। रजो-निवृत्ति (Menopause) काल में कतिपय स्त्रियों के जो मुखमंडल वा शरीर के अन्य भाग गरम और रागयुक्त हो जाते हैं, उनको भी इस औषधि के सूँघने से बहुत उपकार हुआ करता है। मृगी में रोग का वेग प्रारम्भ होने के समय ही यदि यह औषध आघ्राण कराई जाय, तो प्रायः वेग रुक जाया करता है। शीतज्वर (Ague) में कंप प्रारम्भ होते ही, यदि उक्त भेषज आघ्राण करा दिया जाय, तो ज्वरवेग संक्षेप हो सकता है। अर्द्धविभेदक (Migraine) में, जो चेहरे के एक ओर की रग के आक्षेपग्रस्त हो जाने के कारण हुआ करता है और जो अपनी पांडु-पीतवर्णता द्वारा पहचाना जा सकता है, एमाइल नाइट्रेट के सुँघाने से कभी-कभी कल्याण होता है।

सन्यास (Syncope), मूर्च्छा, (Fainting) और श्वासावरोध वा श्वासकृच्छ्रता में भी जैसा कि डूबने वा फाँसी लगने में हुआ करता है, उक्त भेषज कल्याणप्रद प्रमाणित हुआ है।

क्लोरोफार्म सुँघाते समय यदि हृदयावसाद के कारण चेहरे का रंग फीका पड़ जाय, तो उस दशा में भी इस औषधि के सुँघाने से उपकार होता है। अहिफेन जनित विषाक्तता में भी इसका सुँघाना हितावह प्रमाणित हुआ है।

चूँकि इससे रक्तचाप घट जाता है; अस्तु, रक्तनिष्ठीवन (Haemoptysis.) और रक्तवमन (Haematemesis) नामक रोगों में इसका उपयोग हितकर अनुमान किया गया है। किन्तु उक्त व्याधियों में इसकी उपयोगिता अभी संदेह रहित नहीं कही जा सकती।

दमा वा श्वास-रोग (Asthma) में जब इसके साथ अन्य उपसर्ग वर्तमान न हों, तब एमाइल नाइट्रेट के सुँघाने से क्षणमात्र में ही श्वास-कृच्छ्रता निवृत हो जाती है। हार्दीय श्वास कृच्छ्रता। हृदय के विस्तारित और स्थूल हो जाने से साँस के कष्ट से आने (Cardiac dispnoea.) में, जब कि उसके साथ जलंधर-रोग भी विद्यमान हो, उक्त औषधि के सुँघाने से ऊपर से देखने में लाभ हो जाया करता है।

सामुद्र-रोग (Sea sickness) में भी

यह औषध हितकर है। स्त्रियों के कष्टरज (Dysmenorrhoea) रोग में कहते हैं कि इसके उपयोग से रोग-यंत्रणा कम हो जाती है। यह योन्याक्षेप (Uterine spasm) का निवारण करता है और जच्चा के हस्तपादादि में आक्षेप होने (Eclampsia) को रोकता है।

सुषुम्ना-कांड पर इस औषध का अवसादक प्रभाव होता है। अस्तु, धनुष्टङ्कार (Tetanus) और कुचलीन-जन्य विषाक्तता (Strychnine poisoning) में भी इसको देते हैं।

सूचना—कोमल प्रकृति या वात-प्रकृति के लोग इस दवा के प्रभाव से अधिकाधिक प्रभावित होते हैं। अस्तु, उक्त प्रकृति के व्यक्तियों को बहुत सावधानीपूर्वक इस औषध का व्यवहार करना चाहिये। ऐसे रोगियों को जो महाधमनी (Aorta) की किसी व्याधि से आक्रान्त हों या जिनकी धमनियों के स्तर वसादि में परिणत हो गये हों वा फुफ्फुसोयाध्मान (Emphysema) के रोगी को और रक्त-प्रकृति के रोगियों को वा चिरकारी कास (Chronic Bronchitis) रोगियों को इस औषध का प्रयोग कदापि न करना चाहिये।

पत्री-लेखन विषयक आदेश—यह औषध प्रायः सुँघाई जाती है, यद्यपि इसे मुख और त्वगीय सूचिकाभरण द्वारा भी प्रयोगित कर सकते हैं। अस्तु जब इसे सुँघाना हो, तब चार-पाँच बूँद इस औषध को रूमालपर छिड़ककर वा इसका एक ग्लास कैप्शूल रुमाल में तोड़कर सतर्कतापूर्वक सुघाएँ। यदि मुख द्वारा प्रयोजित करना हो, तो सुरासार (९०%) में विलीन करके वा किंचिद् ब्रांडी में मिलाकर या कतीरे के लुआब (Mucilage Tragacanth) में मिलाकर दें। इस औषध के ग्लास कैप्शूल भारतवर्ष में विकृत नहीं होते।

टिप्पणी—रोगी इस दवा के सूँघने के अभ्यासी हो जाया करते हैं। अस्तु, कुछ कालोपरांत ऐसे रोगियों को एक बार औषध सुँघाने से कुछ भी लाभ नहीं हुआ करता है, जब तक उन्हें कई बार यह औषध न सुँघाई जाय।

एमाइलम्–[ले० amylum] गोधूमज-सार। निशास्ता। नशा। श्वेतसार।

एमाइल-वैलेरियेनास–[अं० amyl-valerianas] दे० "एमाइल नाइट्रिस"।

एमाइल-वैलेरियेनेट–[अं० amyl-valerianate] एक डाक्टरी औषध जो वैलेरियन (जटामांसी) की प्रतिनिधि स्वरूप काम में आती है। दे० "बोर्निवल"

एमाइल-सैलिसिलेट–[अं० amyle salicylate] संधान-क्रिया विधि से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का शीतहरित् तैल (आइल आफ विण्टरग्रीन) जो मीथिल सैलिसिलेट की प्रतिनिधि रूप से व्यवहार किया जाता है। यह अत्यंत क्षोभक तथा मंद गंधयुक्त होता है। इसे आमवाताक्रांत संधियों पर लगाकर ऊपर से ऊनी कपड़े से आच्छादित कर देते हैं और ५ बूँद की मात्रा में इसे कैप्शूलज में डालका मुख द्वारा प्रयोगित करते हैं। बोर्नियो-कैम्फर (भीमसेनी-कपूर) द्वारा प्रस्तुत किये हुये सेलिट वा "बोर्नियोल सैलिसिलेट" के भी उपर्युक्त गुण-प्रयोग हैं। साधारणतः इसे समान भाग जैतून तैल में डायलूट कर, आमवाताक्रांत संधियों पर लगाते हैं। एमिसाल (amysal) "एमाइल सैलिसिलेट" के योग से बना हुआ एक प्रकार का मिश्रित आइंटमेंट है, जिसका प्रयोग आमवातिक संधियों पर होता है। ह्वि० मे० मे०।

एमाइल-हाइड्राइड–[अं० amyle-hydride] रूहीगोलीन (rhigolene)। दे० "रूहीगोलीन"।

एमाइलाइ-आयोडिसेटम्–[ले० amyli-Iodisatum] एक डाक्टरी असम्मत (नाटआफिशल) औषध।

प्रस्तुत-क्रम—५ भाग आयोडीन को थोड़े जल में आलोडित कर, ९५ भाग गोधूमज श्वेतसार में सावधानीपूर्वक रगड़ते हैं। यह आयोडीन के प्रयोग का एक साधन है। इसे १ ड्राम की मात्रा में दूध वा जल में घोटकर बर्तते हैं। शुष्क ड्रेसिंग रूप से यह उन प्रत्येक दशाओं में प्रयुक्त हो सकता है, जिनमें "आयोडीन" का व्यवहार होता है। किसी

विषाक्त औषधजन्य विषाक्तता के अज्ञात होने पर उसके प्रतिविष स्वरूप से भी इसका उपयोग किया जाता है।

एमाइलाइ-क्लोराइडम्–[ले० amyli-chloridum] दे० "एमाइलाइ आयोडिसेटम्"।

एमाइलाइ-ब्रोमाइडम्–[ले० amyli-Bromidum] दे० "एमाइलाइ-आयोडिसेटम्"।

एमाइलीन-क्लोरल–[अं० amylene-chloral] यह एक चरपरा तैलीय द्रव है, जो क्लोरल पर एमाइलीन हाइड्रेट की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है। इसे "डार्मियोल" (darmiol) भी कहते हैं। यह भी निद्रा उत्पन्न करती है।

मात्रा—५ से १० मिनिम (बूँद)=(.३ से घन शतांशमीटर)।

नोट—इसका प्रायः ५० प्रतिशत का घोल विक्रय होता है, पर इसके कैप्शूल (प्रत्येक कैप्शूल में ७॥ बूँद यह औषध होती है) प्रयोग में लाना चाहिये।

उपयोग—मालीखोलिया में यह औषध उपयोगी पाई गई है। यह असम्मत वा नाट आफिशल (Not official) है।

एमाइलीन-हाइड्रेट–[अं० amylene-Hydrate] एक प्रकार का स्वच्छ वर्णरहित तैलीय द्रव, जिसकी गंध विशेष प्रकार की उग्र तथा स्वाद तीव्र होता है।

पर्य्या०—टर्शियरी-एमाइलिक एलकोहल Tertiary Amylic Alcohol–अं०।

असम्मत या नाट आफिशल
(Not official)

विलेयता—एक भाग यह आठ भाग पानी और एलकोहल (९०%) में सहज में घुल जाता है।

मात्रा—३० से ८० बूँद तक=(१.८ से ४.७२ घन शतांशमीटर)।

प्रभाव तथा प्रयोग

यह निद्राजनक है। मेनिया अर्थात् उन्माद रोग और प्रधानतः मार्फीनोमेनिया (अहिफेनोन्माद) में तथा डेलीरियम् ट्रेमेंस (मदात्यय) और उग्र प्रकार की मृगीरोग में, जिसमें ब्रोमाइड के देने से कुछ लाभ नहीं होता, यह औषध हितकर प्रमाणित हुई है।

नोट—इस औषध के सेवनोपरांत कोई हानिकर उपसर्ग नहीं प्रकाशित होते। जहाँ दीर्घ काल पर्यन्त निद्राजनक औषध का व्यवहार करना हो, वहाँ पर इसका उपयोग श्रेयस्कर होता है।

पत्रीलेखन विषयक आदेश—इसको जल वा मद्यसार (९०%) में घोलकर देना चाहिये। इसे कैप्शूल्ज में भी देते हैं। अस्तु, इसके १० बूंद वाले कैपशूल्ज बने बनाये बिकते हैं और कभी-कभी वस्ति (इंजेक्शन) द्वारा भी इसका उपयोग करते हैं। इसको त्वगीय पिचकारी द्वारा प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि इससे वहाँ पर वेदना होने लगती है।

एमाइलो डेक्स्ट्रीन–[अं० amylo-dextrin.] एक विशेष प्रकार का स्फटिकीय चूर्ण।

एमाइलोप्सीन–[अं० amylopsin.] क्लोम-ग्रन्थि-रस में पाए जानेवाले चार प्रकार के फर्मेंटों में से एक। इसका कार्य खाद्यगत श्वेतसार (starch) को शर्करा में परिणत करना है।

एमाइलोफॉर्म–[अं० amyloform.] एक प्रकार का गन्धरहित अविलेय श्वेत चूर्ण जो उष्णता से परिवर्तित नहीं होता और जो श्वेतसार पर फॉर्मल्डीफाइड के क्रिया करने से प्रस्तुत होता है।

एमादियून–[यू०] एक वनस्पति जो सजल स्थान में उपजती है। इसमें बारह से अधिक पत्र नहीं होते। यह पुष्प और फल से रहित होती है। इसकी जड़ पतली और काले रंग की होती है। गन्ध तीव्र तथा स्वाद फीका होता है। यह शीतोत्पादक है। इसमें जलीय द्रव होता है। इसे पीसकर स्त्री के स्तन पर लेप करने से उसकी रक्षा होती है। यदि जैतून का तेल मिला लें, तो और भी लाभ हो, यदि पुरुष १०॥ मासे इसकी जड़ वा पत्ती लेकर शराब के साथ खावे, तो नपुंसक बन जाय। इसी प्रकार ऋतुस्नानोपरांत यदि स्त्री इसे भक्षण कर ले, तो वन्ध्या होजाय। (ख० अ०)

एमिक-वोग्गु–[ते०] हड्डी का कोयला । अस्थ्यङ्गार ।

एमिकलु–[ते०] हड्डी । अस्थि ।

एमिग्डलस-कम्युनिस–[ले० amygdalus-communis, *Linn.*] बादाम । वाताद ।

एमिग्डलस-(ला) अमारा–[ले० amygdalus (-la) amara.] कड़वा बादाम । कटु-वाताद । बादामे तल्ख़ ।

एमिग्डलस (-ला) डल्सिस–[ले० amygdalus (-la) dulcis.] मीठा बादाम । मिष्ट-वाताद ।

एमिग्डलस-पर्सिका–[ले० amygdalus-persica, *Linn.*] आड़ू । आड़ ।

एमिग्डलीन–[अं० amygdalin.] वातादीन । बादाम का सत्व । यह एक प्रकार का स्फटिकीय ग्ल्यूकोसाइड है, जो कड़वे बादाम से प्राप्त होता है ।

एमिग्डेलिक-एसिड–[अं० amygdalic acid.] वातादाम्ल, बादाम का तेजाब ।

एमिग्डोफेनीन–[अं० amygdophenin.] साइटोफेनवत् एक प्रकार का लवण, जो उतनी ही मात्रा में कोचट्स मेंडालकर दिया जाता है । यह अङ्गमर्दप्रशमन तथा आमवातघ्न है । दे० "साइटोफेन" ।

एमिडोपाइरीन–[अं० amidopyrin.] दे० "पिरामिडन" ।

एमिनोबेन्ज–[अं० aminobenz.] दे० "अर्थोफार्म" ।

एमिलिया-सॉङ्किफोलिया–[ले० emilia-sonchifolia. *D C.*] हिरनखुरी । सुधिमुदि । सादामंडो ।

एमिसाल–[अं० amysal.] दे० "एमाइल-सैलिसिलेट" ।

एमेटीन–[अं० emetine.] एक प्रकार का सत्व जो इपीकेकाना की जड़ से प्राप्त होता है । दे० "इपीकेकाना" ।

एमेटीन-हाइड्रो-क्लोराइडम्–[ले० emetine-hydrochloridum.] दे० "इपिकेकाना" ।

एमेटीन-हाइड्रोब्रोमाइडम्–[ले० emetine-hydrobromidum.] दे० "इपीकेकाना" ।

एमेराल्ड–[अं० emerald.] दे० "ईमेराल्ड" ।

एमेरीलिडेशीई–[अं० amaryllidaceae] ओषधियों का एक वर्ग । सुखदर्शन वा मुसली-वर्ग ।

एमैरीलिस–[ले० amaryllis.] दे० "एमेरीलिडेशीई" ।

एमोडीन–[अं० emodin.] एक सत जो चक्रवँड (चक्रमर्द) और रेवन्दचीनी (पीतमूली) की जड़ से भी प्राप्त होता है । इसकी रासायनिक रचना क्राइसोफेनिक के बहुत कुछ समान होती है ।

एमोनाइकम्–[ले० ammoniacum.] उशक । दे० "उशक़" ।

एमोनाइकम्-एण्ड मर्करीलाष्ट्र–[अं० ammoniacum and mercury plaster.] पारकोशक-प्रलेप । दे० "उशक़" ।

एमोनाइकम्-मिक्सचर–[अं० ammoniacum mixture.] उशक मिश्रण । दे० "उशक़" ।

एमोनियम्–[ले० ammonium.] दे० "अमोनियम्" ।

एमोनिएटेड-मर्करी–[अं० ammoniated mercury.] हाइड्रार्जिराई एमोनिएटम् hydrargyri ammoniatum. दे० "अमोनियम्" ।

एमोल–[अं० emol.] फूलर मृत्तिका (fuller's earth) जैसा एक प्रकार का बारीक चूर्ण ।

एमोलिएंट–[अं० emollient.] मृदुताकारक औषध ।

एमोलिएंट आइंटमेंट–[अं० emollientoint-ment] मृदुताजनक अभ्यंग । दे० "ऊन" ।

एम्लाष्ट्रम्–[ले० emplastrum.] [बहु० एम्प्लाष्ट्रा] दे० "एमप्लाष्ट्रा" ।

एम्लाष्ट्रम्-आयोडाइडाई–[ले० emplastrum-iodidi.] आयोडीनोपलेप । आयोडीन द्वारा निर्मित एक प्रकार का प्रलेप ।

एम्प्लाष्ट्रम्-एकोनाइटाइ–[ले० emplastrum-aconiti] बछनाग का पलस्तर । वत्सनाभोप-लेप । दे० "बछनाग" ।

एम्लाष्ट्रम्-एकोनाइटाइ-एट-बेलाडोनी–[ले० emplastrum aconiti et belladonnae] बछनाग और यबरुज का पलस्तर । बेलाडोना बत्सनाभोपलेप । दे० "बछनाग" ।

एम्लाष्ट्रम-एमोनाइसाइ-कम हाइड्रार्जिरी-[ले० emplastrum ammonicicum hydrargyro] उश्शक पारदोपलेप । दे० "उश्शक" व "पारा" ।

एम्लाष्ट्रम्-ओपियाइ–[ले० emplastrum-opii] अफीम का पलस्तर । अहिफेनोपलेप । दे० "पोस्ता" ।

एम्लाष्ट्रम्-कैन्थेरिडिस–[ले० emplastrum-cantharidis] तेलनीमक्खी का प्लस्तर । स्निग्ध माक्षिकोपलेप । दे० "तेलनी मक्खी" ।

एम्लाष्ट्रम्-कैप्सिसाई–[ले० emplastrum-capsici] लाल मिरच का प्लस्तर । कुमरिचोपलेप । दे० "मिरचा लाल" ।

एम्लाट्रम्-कैलिफेसिएन्स–[ले० emplastum-calefacience] ऊष्मोत्पादक उपलेप । गरमी पहुँचानेवाला पलस्तर ।

एम्लाष्ट्रम्-कैलीफेशेंस-माइलेब्रिडिस–[ले० emplastrum-calefaciens mylabridis] तेलनीमक्खी का गरम पलस्तर । दे० "तेलनी मक्खी" ।

एम्लाष्ट्रम्-कोकेनी–[ले० emplastrum-cocainae] कोकीन का पलस्तर । कोकेनोपलेप । दे० "कोकीन" ।

एम्लाष्ट्रम्-गालबेनाई–[ले० emplastrum-galbani] जावशीर का पलस्तर । गोवीरोपलेप । दे० "गाय" ।

एम्लाष्ट्रम्-पाइसिस–[ले० emplastrum-picis] पिक्सबर्गाडिकोपलेप ।

एम्लाष्ट्रम्-प्लम्बाई–[ले० emplastrum-plumbi] मुरदासंख का पलस्तर । मृदारसंगोपलेप । दे० "मुरदासंख" ।

एम्लाष्ट्रम्-प्लम्बाई-आयोडाइडाई–[ले० emplastrum-plumbi-iodidi] सीसा और आयोडीन का पलस्तर । सीसनैलिदोपलेप । दे० "सीसा" ।

एम्लाष्ट्रम्-बेलाडोनी–[ले० emplastrum-belladonnae] बेलाडोना पलस्तर । दे० "बेलाडोना" ।

एम्लाष्ट्रम्-बेलाडोनी-फ्लुइडम्–[ले० emplastrum-belladonnae-fluidum] बेलाडोनाद्रवोपलेप । दे० "बेलाडोना" ।

एम्लाष्ट्रम्-माइलेब्रिडिस–[ले० emplastrum-mylabridis] तेलनीमक्खी का पलस्तर । दे० "तेलनी मक्खी" ।

एम्लाष्ट्रम्-मेन्थोल-[ले० emplastrum-menthol] मेन्थोलोपलेप । पुदीने के जौहर का पलस्तर । दे० "पुदीना" ।

एम्लाष्ट्रम्-रेज़ाइनी–[ले० emplastrum-resinae] राल का पलस्तर । दे० "राल" ।

एम्लाष्ट्रम्-सेपोनिस–[ले० emplastrum-saponis] साबुन का पलस्तर । दे० "साबुन" ।

एम्लाष्ट्रम्-हाइड्रार्जिराई–[ले० emplastrum-hydrargyri] पारे का पलस्तर । दे० "पारा" ।

एम्लाष्ट्रा–[ले० emplastra] [एम्लाष्ट्रम् का बहु०] वस्त्र वा चर्म-खण्ड पर प्रस्तारित और चिपकनेवाली औषध । प्रलेप । प्रस्तर । प्लास्टर । उपलेप ।

एम्बेलिया-इण्डिका–[ले० embelia indica] विडङ्ग । बायविडंग ।

एम्बेलिया-ग्लैण्डुलिफेरा–[ले० embelia glandulifera] विडङ्ग । बायविडंग ।

एम्बेलिया-रिबेस–[ले० embelia ribes, *Burm.*] विडङ्ग । बायविडंग ।

एम्बेलिया-रोबष्टा–[ले० embel a robusta, *Roxb.*] विडङ्ग । बायविडंग ।

एम्ब्लीका-ऑफिसिनेलिस–[ले० emblica officinalis.] आमलकी । धात्रिफल । आँवला ।

एम्ब्लिक-माइरोबेलन–[अं० emblic myrobalan] आँवला । आमलकी ।

एयरन्स-बीयर्ड–[अं० aaran's beared] वनस्पति विशेष ।

एयरन्स-रॉड–[अं० aaran's-rod] गोल्डेन राड Golden rod.

एयरप्लाण्ट–[अं० air plant] अकाशबेल । अमर लता ।

एयर-बाथ–[अं० air bath] वायु-स्नान । दे० "पानी" ।

एयर-लिक्विड–[अं० air-liquid] द्रव वायव्य ।

एयरोजन–[अं० airogen] एक प्रकार का हरापन लिये हुये, स्वादहीन अविलेय चूर्ण, जो अत्यन्त प्रबल पचननिवारक है । यह आयडोफार्म की प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार में आता है ।

एयरोलॉजी–[अं० airology] वायु-विज्ञान ।

एर(ड़)–[पं०] भूटिया बादाम । लदाख़ी बादाम ।

एरक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रामबान । फा० इं० ३ भ० । (२) एक प्रकार की घास । होगला । वै० निघ० । दे० "एरका" ।

एरका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नागरमोथा । (२) एक प्रकार की घास जो जंगल में उत्पन्न होती है और जिसके पत्ते लम्बे होते हैं । रामबाण, मोथीतृण–हिं० । एरका–गु० । एरका, पाणलह्लला–मरा० । पुन–सिंधुतट । होगला–बं० । मोथीतृण–(मरा०) । च० सू० ३ अ० ।

पर्य्या०—गुन्द्रमूल, शिम्बी, गुन्द्रा, शर्रा । एड्रकः, एड्रकास्थ्यः ।

Typha angusitfolia, *Linn.*–ले० । (*N. O. Typhacea*)

उत्पत्तिस्थान—सिंधुतट ।

गुण—यह मधुर, स्निग्ध, विष्टम्भी, शीतल और भारी है । भा० पू० १ भ० मत्स्य व० । (२) मजीठ । मञ्जिष्ठा ।

एरडने-दन्ती–[का०] बड़ी दन्ती । बृहद्दन्ती ।

एरडु–[का०] रक्त गुञ्जा । लाल घुँघची ।

एरडु-आण्डल–[का०] लाल रेंड़ । रक्त एरण्ड ।

एरण्ड–संज्ञा पु० [सं० पुं०] रेंड । रेंड़ी । भेरेण्ड गाछ–बं० । भा० पू० १ भ० गु० व० । राज० । दे० "रेंड" ।

एरण्डक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रेंड़ । एरण्ड । पर्वत एरण्ड । पहाड़ी रेंड़ । भरत० ।

एरण्ड-ककड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड+हिं० ककड़ी] एरण्ड कर्कटी । अंड खरबूजा । पपीता ।

एरण्ड-कर्कटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अण्ड-खरबूजा । पपीता । विलायती रेंड ।

एरण्ड-खरबूजा–संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड+हिं० खरबूजा] अण्ड खरबूजा । पपीता । रेंड़ खरबूजा ।

एरण्ड-चिर्भिट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अण्ड खरबूजा । पपीता ।

एरण्डज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेंड़ी का तेल । एरण्ड तैल ।

एरण्ड-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेंड़ी का तेल । राज० । वा० टी० हेमा० । रा० नि० व० १५ । अत्रि० १४ अ० । वि० दे० "रेंड़" ।

एरण्ड-तैल-मूर्च्छा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विधि—मजीठ, नागरमोथा, धनियाँ, त्रिफला, वैजन्ती का फूल, हींवेर, जंगली खजूर, वटका शुंगा, हल्दी, दारुहल्दी, नलिका (पवारी) नाम की ओषधी और केतकी-मूल प्रत्येक समान भाग । रेंड़ी का तेल १ प्रस्थ (६४ तोला) में दही और काँजी एक-एक शाण (४ मा०) डालकर मन्द-मन्द अग्नि से विधिपूर्वक पाचन करें । भै० र० ।

एरण्ड-द्वादशक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बारह ओषधियों का एक योग जिसमें एरण्ड प्रधान है—एरण्ड के बीज, एरण्ड-मूल, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरू, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, सहदेवी, ईख की जड़ और सिंहपुच्छी-इन्हें समान भाग ले क्वाथ बनाएँ । इसमें जवाखार का प्रक्षेप डालकर पीने से पृथक्-पृथक् दोषों से उत्पन्न त्रिदोषज शूल नष्ट होता है । वृ० यो० त० ६४ त० ।

एरण्ड-पत्रविटपा–, एरण्ड-पर्त्रिका–, एरण्डपत्री– संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी दन्ती । हृस्वदन्ती । रा० नि० व० ६ ।

एरण्ड-पाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अण्डी के पक्के बीजों की मींगी १ प्रस्थ (१६ पल)लेकर २ आढक (१२८पल) दूध में मन्दाग्नि पर पकाएँ ।खोवा हो जाने पर उसे ८ पल घृत में भूनलें और पुनः २ प्रस्थ (३२ पल) खाँड़ की चाशनी करके मिलालें और इसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, इलायची, पीपलामूल, चीता, चव्य, सोवा, सौंफ, कचूर, बेलगिरी, अजवायन, सफेद जीरा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, असगंध, खिरेटी, पाठा, हाऊबेर, बायविडंग,

पुष्करमूल, गोखरू, कूठ, त्रिफला, देवदारु, काला विधारा, लजालू (अवालुका) और शतावर, प्रत्येक का चूर्ण १-१ कर्ष मिलाकर विधिवत् पाक कर रखलें।

गुण—इसे यथोचित रोगानुकूल अनुपान के साथ उचित मात्रा में सेवन करने से वातव्याधि, शूल, सूजन, अण्डवृद्धि रोग, उदर रोग, अफारा, वस्तिशूल, गुल्म, आमवात, कटिशूल, ऊरुग्रह और हनुस्तम्भ रोग का नाश होता है। यो० र० वात व्या० चि०।

एरण्ड-फला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी दन्ती का पौधा। हस्वदन्ती।

एरण्डबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेंड़ी। एरण्ड फल। एरण्ड का बीया।

एरण्ड-भस्म-योग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय योग जो एरण्ड भस्म द्वारा प्रस्तुत होता है। जैसे—एरण्ड के मूल और पत्तों को लेकर बरतन में बन्द करके भस्म करें। इसे १-१ कर्ष की मात्रा से १ पल गोमूत्र के साथ सेवन करने से तिल्ली रोग का नाश होता है। वृ० नि० र० उदर रो० चि०।

एरण्डमूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेंड़ की जड़। एरण्ड शिफा। जैसे—"एरण्डमूल सिद्धंवा"। च० द० विषमज्वर चि०।

एरण्ड-मूलादि-क्वाथ—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शूल रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग—दो पल एरण्ड मूल को १६ पल पानी में पकाएँ, जब चतुर्थांश शेष रह जाय, तब छानकर इसमें यवक्षार उचित मात्रा में डालकर पियें। इससे पार्श्वशूल, हृच्छूल और कफज शूल का शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० शूल चि०।

एरण्डमूलादि-चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, जो शूल रोग में प्रयुक्त होता है। जैसे—एरण्डमूल, तुम्बुरु, विडनमक, हुलहुल, हड़ और हींग—इन्हें समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बना जल के साथ उचित परिमाण में सेवन करने से शूल और गुल्म रोग का नाश होता है। मात्रा—१ से ६ मा० तक। वृ० नि० र० शूल चि०।

एरण्डम्—[गु०] रेंडी का तेल। एरण्ड तैल।

एरण्डशिफा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेंड़ की जड़। एरण्डमूल। भा० वा० व्या०।

एरण्ड सप्त (द्वादश)क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूल रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग—एरंड की जड़, बेल की छाल, पमाड़ बीज, सिंहपुच्छी, जम्बीरमूल, पथरचटा और गोखरू २३-२३ रत्ती, यवक्षार, हींग, सेंधानमक एवं एरण्ड तेल १-१ माशा के साथ खाने से भयानक शूल का नाश होता है।

एरण्ड-सप्तक-कषाय (काथ)—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वातव्याधि में प्रयुक्त उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय काथ।

योग—एरण्डमूल, विजौरे की जड़, गोखरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, पाषाणभेद और बेलगिरी इन्हें समानभाग लेकर काथ बनाकर इसमें रेंडी का तेल, हींग पमाड़ के बीज जवाखार और उचित मात्रा में सेंधानमक मिलाकर पीने से स्तनपीड़ा, स्कंध, मेढ़, कटि और हृदय की पीड़ा दूर होती है। शा० सं० वातव्या० चि०।

एरण्ड-सफ़ेद—संज्ञा पुं० [सं० एरण्ड+हिं० सफ़ेद] मोगली रेंड। बागवरेंडा। बाग मेरंड।

एरण्ड-स्वरस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेंड़ का स्वरस आधा कर्ष, दूध में मिलाकर तीन दिन पर्यंत पीने से और लवणरहित घृत तथा दूध का भोजन करने से कामला-रोग का शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० कामला चि०।

एरण्डा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ी दन्ती। वृहद्दन्ती। मद० व० १। (२) पिप्पली। पीपल। श० च०।

एरण्डा गाछ—[बं०] जंगली एरण्ड का पौधा। जंगली रेंड।

एरण्डादि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयुर्वेदीय ओषधियों का एक वर्ग। इस वर्ग में निम्न ओषधियों का समावेश होता है।

(१) रेंड़ की जड़, अनन्तमूल, किशमिश, सिरस, गंधप्रसारिणी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, विदारीकंद तथा केतकी की जड़ १८-१८ रत्ती।

गुण—वात-पित्त-शामक। रसचन्द्रिका।

(२) एरण्डमूल, बेल की जड़ की छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कालानमक, सोंठ, मिर्च,

पीपर, हींग, बिजौरा नीबू, सेंधानमक–इन्हें समानभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीने से धनुर्वात का नाश होता है। यो० र० वात व्या० चि०।

(३) एरण्ड, अडूसा, गोखरू, गिलोय, खिरेटी और ईख की जड़ सबको समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से पुरातन जानुओं तक फैला हुआ स्फुटित एवं ऊपर को चलनेवाला वात-रक्त नष्ट होता है। भा० वात र० चि०।

(४) एरण्डमूल, गिलोय, मजीठ, रक्तचन्दन, देवदारु, पद्मकाष्ठ प्रत्येक समान भाग।

मात्रा—१ से २ तो० तक। अष्टगुण जल में क्वाथकर पीने से गर्भिणी स्त्रियों का ज्वर नष्ट होता है। भैष० स्त्री-रो० चि०।

एरण्डादि-गुटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एरण्डबीज, सोंठ और मिश्री समानभाग लेकर यथाविधि गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसे सेवन करने से आमवात का शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० आमवा० चि०।

एरण्डादि तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक तैलौषध।

योग तथा निर्माण-विधि—एरण्ड की जड़, सहिजन की छाल, वरुना और मूली–इनका स्वरस, मुलेठी और क्षीरकाकोली २-२ तोला लेकर सिल पर पानी के साथ पीसें। पुनः दो सेर दूध और १ पाव तिल तैल मिलाकर यथा-विधि पाक करें।

गुण—इसे नस्य, मालिश और कर्णपूरण के काम में लेने से कर्णनाद, बहरापन और कर्णशूल का नाश होता है।

एरण्डादि भस्म योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूल रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग—एरण्डमूल, चीता शम्बूक (घोंघा), पुनर्नवा और गोखरू समान भाग लेकर हाँडी में बन्दकर भस्म करें। इसे उचित मात्रा में गरम जल के साथ पीने से शूलरोग का नाश होता है। यो० र० शूल चि०।

एरण्डाद्य-घृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घृत विशेष। दे० "रेंड"।

एरण्डाद्य-निरूह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निरूह विशेष। दे० "रेंड"।

एरण्डिनु-झाड–[गु०] एरण्ड वृक्ष। रेंड का पेड़।

एरण्डिनु तेल–[गु०] रेंडी का तेल। एरण्ड तैल।

एरण्डी–संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड] (१) रेंड का बीज। रेंडी। (२) एक झाड़ी जो सुलेमान पर्वत और पश्चिमी हिमालय के ऊपर ६००० फुट तक की ऊँचाई पर होती है। इसकी छाल, पत्ती और लकड़ियाँ चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसे तुंगा, आमी, चनिआत वा दरेंगड़ी भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [मरा०] रेंड। एरण्ड।

एरण्डी-च-झाड–[मरा०] रेंड। एरंड वृक्ष।

एरण्डी-च-तेल–[मरा०] रेंडी का तेल। एरण्ड-तैल।

एरण्डी-च-बीज–[मरा०] रेंडी। एरण्ड-बीज।

एरण्डीन–[सं० एरण्ड+ईन (प्रत्य०)] एरण्ड सत्व।

एरण्डेल–[मरा०] रेंडी का तेल। एरण्ड-तैल।

एरण्डो–[गु०, सिंध] रेंड। एरण्ड-वृक्ष।

एरण्डोली–[मरा०] सफेद एरण्ड बीज।

एरन्दु (ड्डु)–[सिं०] बागभेरण्ड। कानन एरण्ड। मोगली, । जाड़ा (उड़ि०)।

एरबदु-गहा–[सिं०] पाँगरा। पलोता मदार। पारिभद्र।

एरमुदपु–[ते०] रेंड। एरण्ड।

एरम्–[ले० arum.] अरुई। घुइयाँ।

एरम्-आर्चेड–[अं० arum-arched.] बीस कचू। बीरबकी।

एरम्-इजिप्शियन–[अं० arum-ægyptian.] अरवी। घुइयाँ।

एरम्-इण्डिकम्–[ले० arum-indicum.] मानकन्द। माणक। कचू।

एरम-कर्वेटम्–[ले० arum-curvatum.] गूरिन। डोंर। किर्किचालू। किरकल। जंगुश–(पं०)।

एरम्-कैम्पेन्युलेटस–[ले० arum-campanulatus.] जिमीकन्द। सूरन। ओल।

एरम्-कैलोकेशिया–[ले० arum-calocasia] अरवी । घुइयाँ ।

एरम्-टाच्युओसम्–[ले० arum-tortuosum, *Wall.*] किरि-की-कुक्की-पं० ।

एरम्-निम्फीई-फोलियम्–[ले० arum-nymphaei-folium.] घुइयाँ की जाति का एक पौधा । सरकचू ।

एरम्-फोमिकेटम्–[ले० arum-fomicatum.] बीस कचू । बीरबकी ।

एरम्-बेल शेप्ड–[अं० arum-bell-shaped.] सूरन । जिमीकन्द । ओल ।

एरम्-मार्गेरेटीफेरम्–[ले० arum-margaritiferum, *Roxb.*] अरवी की जाति का एक पौधा ।

एरम्-लिली–[अं० arum-lily.] अरवी की जाति का एक पौधा ।

एरम्-वाइल्ड–[अं० Arum-wild.] जंगली घुइयाँ । बन अरवी ।

एरम्-सेसिलिफ्लोरम्–[ले० arum sessili florum, *Roxb.*] लोठ ।

एरम्-स्पेसिओसम्–[ले० arum-speciosum.] सम्प की खुंब, किरि-की-कुक्की, किरलु–पं० ।

एरवा–[ते०] चौक-ता० । कासरीकी-(मायसूर) मे० मो० ।

एरॉइडीई–[ले० aroideae. ओषधियों का एक वर्ग । सूरण वर्ग । (araceae.) ।

एराक–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० एराकी] अरब देश का एक प्रदेश जहाँ के घोड़े अच्छे होते हैं ।

एराकी–वि० [फ़ा०] एराक़ देश का । एराक का । संज्ञा पुं० वह घोड़ा जिसकी नस्ल एराक देश की हो । यह अच्छी जाति के घोड़ों में गिना जाता है ।

एराग्रोष्टिस-न्युटंस–[ले० eragrostis-nutans, *Retz.*] दर्भ भेद ।

एराग्रोष्टिस-प्लूमोसा–[ले० eragrostis-plumosa, *Link.*] फुलरवा, भुरभुरी, गलगल, मूसा–उ० पू० प्रां० ।

एराग्रोष्टिस-फ्लेक्चुओसा–[ले० eragrostis-flexuosa, *Roxb.*] दर्भ भेद ।

एराग्रोष्टिस-ब्रोनी–[ले० eragrostis-brownei, *Nees.*] भर्री (अलीगढ़) ।

एराग्रोष्टिस-साइनोस्युराइडिस–[ले० eragrostis cynosuroides, *Beauv.*] कुश । डाब । डबोय–उ० पू० प्रां० । कुस्सा–पं० ।

एराट्री–[अं० ara-tree.] सन्दरूस । चन्द्रस ।

एरिआकटी–[ते०] सुगंधवाला । हौवेर ।

एरिका–[मल०] सफेद मदार । अलर्क ।

एरिजिरोन-ऐस्टेरॉइडिस–[ले० erigeron-asteroides *Roxb.*] मरेडो-(हिं०, गु०) । सोंसली-(मरा०) । सौस्ती (बम्ब०) ।

एरिजिरोन-कैनाडेंसिस–[ले० erigeron-canadensis, *Linn.*] एक पौधा ।

एरिञ्जियम्-सेरुलियम्–[ले० eryngium-coerulium, *Bieb.*] दुधाली–हिं० । पहाड़ी गाजर (पं०) । शकाकुल निली (अ) । गर्ज़ दश्ती (फ़ा०) ।

एरिथेरीन–[अं० erytherine.] एक प्रकार का क्षारोद, जो हरसिंगार की छाल से प्राप्त होता है ।

एरिथ्राक्सिलम्-कोका–[ले० erythroxylum-coca.] कोका वृक्ष ।

एरिथ्राक्सीलीन–[अं० erythroxyline.] कोकेन का एक दूसरा नाम ।

एरिथ्राक्सिलोन-कोका–[ले० erythroxylon-coca] कोका नाम का वृक्ष ।

एरिथ्राक्सिलोन-मोनोगाइनम्–[ले० erythroxylon-monogynum, *Roxb*] नाट का देवदार ।

एरिथ्रीना-इंडिका–[ले० erythrina-Indica, *Lam.*] (१) पलीतामदार । पांगरा । (२) हरसिंगार ।

एरिथ्रीना-कोरैलोडेण्ड्रोन–[ले० erythrina-corralo-dendron, *Linn.*] शिम्बी वर्गीय एक प्रकार का पौधा जिससे "एरिथ्रीन" नामक एक संज्ञाहर क्षारोद प्राप्त होता है ।

एरिथ्रीना-पिसिप्युला–[ले० erythrina-piscipula, *Linn.*] जैमिका डाग वुड Jamica

dog-wood मुलुंगु, मुरुंगु ।

एरिथ्रीना-मानोस्पर्मा–[ले० erythrina-monosperma] ढाक । पलाश ।

एरिथ्रीना-स्ट्रिक्टा–[ले० erythrina-stricta, *Roxb.*] मुर । मुरुक्कु–(मरा०) ।

एरिथ्रीया-राक्सबर्गियाई–[ले० erythræa roxburghii *G. Don.*] चरायता । लुन्तक–(बम्ब०) । गिर्मी–(बं०) ।

एरिथ्रीया-सेण्टानी–[ले० erythraea-centany]
एरिथ्रीया-सेण्टॉरिया–erythraea-centaurea]
} कस्तूरियून ।

एरिथ्रोनियम्-इंडिकम्–[ले० erythronium-Indicum] काँदा । जंगली प्याज । वन पलाण्डु ।

एरिथ्रो-फ्लीइनी-हाइड्रोक्लोरास–[ले० erythrophloeinae-hydrochloras] सैसी-बार्क (Sassy bark) द्वारा निर्मित एक प्रकार का सफेद स्फटिकीय क्षारोद जो जल में घुल जाता है ।

प्रभाव तथा प्रयोग—हृद्रोग तथा हार्दीय जलोदर में डिजिटेलीन की अपेक्षा यह अधिक बलशालिनी औषध है और हृद्दिस्तार में उपयोगी है ।

एरिथ्रोफ्लीयम्-गिनीन्सी–[ले० erythrophloeum-guineense.] (erythrophloeum judiciole) एक पौधा ।

एरिथ्रोल–[अं० erythrol] आयोडाइड आफ बिज़्मथ सिंकोनीडीन ।

एरिथ्रोल-टेट्रानाइट्रेट–[अं० erythrol-tetranitrate] एक प्रकार की वर्णहीन स्वादरहित सूचिकाकार कलमें जो जल में कम घुलती हैं । दे० "ट्राइनाइट्रोग्लीसरीन" ।

एरिमास्टेकिस विकेरियाई–[ले० eremostachys vicaryi, *Benth.*] गुरगुब्ब । खलात्रा । रेवन्दचीनी–पं० ।

एरिम्युरस-स्पेक्टेबिलिस–[ले० eremurus spectabilis, *Bieb-*] शिलो । ब्री । प्रौ–(पं.)

एरियोडिक्टयोन-ग्ल्युटिनोसम्–[ले० eriodictyon glutinosum] येर्बा–(संता०) ।

एरियोडेण्ड्रोन-अन्फ्रैचुओसम्–[ले० eriodendron anfratuosum, *Dc.*] श्वेत शाल्मली । सफेद सेमल ।

एरियोफोरम्-कामोसम्–[ले० eriophorum-comosum, *Wall.*] भाबर । बाब । बाब्रिला । (उ० प० सू०) । पनबबीयो–(अलमो०) ।

एरियो बाट्र्या-जैपोनिका–[ले० eriobotrya-japonica, *Lindle.*] लुकाट । लकुट ।

एरियोबाट्र्या-बेंगालेंसिस–[ले० eriobotrya-bengalensis, *Hook.*] बेरकुङ्ग–(लेप०) ।

एरियोलीना-कैण्डोलिया–[ले० eriolaena candolia] एक पौधा ।

एरियोलीना-किन्कीलो क्युलेरिस–[ले० eriolaena quinquelo cularis, *Wight.*] बुद्जरी । ध-मून–(बम्ब.) ।

एरियोलीना-स्पेक्टेबिलिस–[ले० eriolaena-spectabilis, *Planch.*] नरबोल्कु–(ते०) । अरंग–(बेरा०) । कुट्की भोंडेर–(गों०) ।

एरियोलीना-हूकेरियेना–[ले० eriolaena-hookeriana, *W. & A.*] दे० "एरियोलीना स्पेक्टेबिलिस" ।

एरी–[असा०] रेंड । एरण्ड ।

एरीका–[अं० areca] [पु० ता० अडैकाय] खजूर या ताड़ की जाति का एक पेड़ ।

एरीका कान्सिन्ना–[areca-concinna, *D.C.*] गुवाक । सुपारी का पेड़ ।

एरीका-कैटेशू-श्यू–[ले० areca catechu, *Linn.*] गुवाक । सुपारी का पेड़ ।

एरीकानट–[अं० areca-nut] सुपारी । पूगी फल ।

एरीकी-सेमिना–[ले० arecae-semina] सुपारी ।

एरीकेईडीन–[अं० arecaidein] सुपारी से प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का सत ।

एरीकेईन–[अं० arecaine] एक प्रकार का सत जो सुपारी से प्राप्त होता है ।

एरीकोलीनी-हाइड्रोक्लोराइम्–[ले० arecolinae-hydrochloridum] एक प्रकार का सफ़ेद रंग का चूर्ण जो जल तथा एल्कोहल में सरलता-

पूर्वक घुल जाता है; परन्तु ईथर और क्लोरोफार्म में कठिनता से घुलता है।

प्रभाव—लाला प्रवर्त्तक, घर्मकर और कृमिनाशक है। दे० "सुपारी"।

एरीनेरिया-हालोष्टीआइडिस-[ले० arenaria-holosteoides, *Edge.*] ककुआ। गँदियल-(पं०)। चिकि-(लदा०)।

एरीफ़ाइन-[यू०] एक प्रकार की वनस्पति जिसकी पत्ती जर्दीर की पत्ती की तरह होती है। इसका पुष्प नील वर्ण का होता है। इसमें पुष्प अधिकता के साथ आते हैं जिनमें सेब तुल्य सुगंधि आती है। उनके भीतर सफेद बालों की तरह सीधे तार लगे होते हैं। यह ग्रीष्मकाल में पुष्पित होता है। इसका तना एक हाथ ऊँचा होता है, जिसका रंग ललाई लिए होता है। यह बीहड़ एवं ऊपर तथा क्षारीय भूमि में उत्पन्न होता है। इसकी जड़ प्रभाव शून्य होती है।

प्रकृति—परस्पर विरुद्ध गुण-धर्म सम्पन्न (मुरक्किबुल् कुवा)। किसी-किसी के अनुसार यह अत्यन्त शीतल है।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसमें थोड़ी सी शोथ विलीन करने की शक्ति है। कुंदुर के साथ इसके फलों और पत्तों का प्रलेप वातसूत्रगत क्षत एवं अन्य अंगों के क्षतों को लाभकारी है। इसी प्रकार इसके भीतर के तार सिरके के साथ पीस कर प्रलेप करने से लाभ प्रदान करता है। इसके पुष्पों का प्रलेप अंडशोथ एवं गुदस्थ शोथ को लाभप्रद है। इसको ताज़ा भक्षण करने से तत्काल खुनाक उत्पन्न हो जाता है। इसके गुण-धर्म खुंबी तुल्य हैं। इसके भक्षण से यदि कोई विकार उत्पन्न हो, तो खुंबी जनित विकारवत् उसकी चिकित्सा करें। (ख० अ०)।

एरीमापेवेल-[मल०] भारकरेला। वाहस।

एरीमाष्टेकीज-विकेरियाई-[ले० aremostachys-vicaryi, *Benth.*] रेवंदचीन। खलात्रा। गुरगुब्बा-(पं०)।

एरु-वि० [सं० त्रि०] चलनेवाला। गमनशील। गन्ता।

एरुका-सेटिवा-[ले० eruca-sativa, *Lam.*] सिद्धार्थ। श्वेत सर्षप। सफेद सरसों। जर्जीर-अ०। इंहुक्रान-फ्रा०।

एरुक-[मल०] आक। मदार। अर्क।

एरुक्कम्-
एरुक्कु- } [ता०] आक। मदार। अर्क।

एरुनल-[बं०] सतनी। तितली। सुदाब।

एरुण्डपिच्छ-[ते०] कुण्डली। क्षुद्र अग्निमन्थ।

एरुवदी-[ता०] शीशम। सीसो। शिंशपा।

एरुवली-[ता०] नीलमदी। पिरोना-[ते०]।

एरुसरुमानु-[ते०] झाबुक। झाऊ।

ए(अ)रेङ्गा-सैकरिफेरा-[ले० arenga-saccharifera] तोंग-आंग-(बर०)।

एरेकिस-हाइपोजिया-[ले० arachis-hypogaea] दे० "एरेकिस-हाइपोजिया"।

एरेक्थाइटीज-हीरोसिफोलिया-[ले० erechthites-heirocifolia] Fire-weed. फायर वीड-(अं०)।

एरेग्रोष्टिस-प्लूमोसा-[ले० eragrostis plumosa, *Link.*] फुलरवा। भुरभुरी। गलगल। झूसा। उ० प० सू०।

एरेग्रोष्टिस-ब्राउनिआई-[ले० eragrostis-brownei, *Nees.*] भूँ-(अज़ोगढ़)।

एरेग्रोष्टिस-साइनोस्युराइडीस-[ले० eragrostis-cynosuroides, *Retz.*] कुश। कुस। डाभ।

एरेटिया-आब्ट्युसीफोलिया-[ले० ehretia-obtusifolia] एक झाड़ी जो सिंध और पंजाब प्रान्त में होती है।

एरेटिया-एक्युमिनेटा-[ले० ehretia-acuminata] अर्जुन। कुर्कुन। पुन्यन। नलगुन-(नैपा०)। कुलआज-(बं०)। नर्र-(गढ़)।

एरेटिया-बक्सिफोलिया-[ले० ehretia-buxifolia, *Roxb.*] कुरपिंगि-(ता०)

एरेटिया-लेविस-[ले०ehretia laevis, *Roxb.*] चमरुड़। कोड-हिं०।

एरेम्युरस-स्पेक्टेबिलिस-[ले० eremurus-spectabilis, *Bieb.*] शिलो। ब्रे। प्राउ-(पं०)।

एरेलिया-डिजिटेटा-[ले० aralia digitata, *Roxb.*] डाइन।

एरेसीई-[ले० araceae] ओषधियों का एक वर्ग । शूरणवर्ग ।

एरोप्पकैट-[मल०] दे० "अरोवि अमेरिकेना' ।

एर्र-[ते०] रक्त । लाल । सुर्ख । red.

एर्र-उसिरिक-[ते०] लाल भुँई आँवला ।

एर्र-एरुसरुमानु-[ते०] लाल झाऊ ।

एर्र-काञ्चि-चेट्टु-
एर्रकामञ्चि-चेट्टु- } [ते०] लाल मकोय ।

एर्रकुटि-[ते०] सुगंधवाला । हूबेर ।

एर्र-गन्धकमु-[ते०] रक्त गंधक । लाल गंधक ।

एर्र-गन्धपु-चेक्क-[ते०] रक्त चन्दन । लाल चन्दन ।

एर्र-गसगसाल-चेट्टु-[ते०] लाल पोस्ता ।

एर्र-गोम-काय-[ते०] लाल अम्बाड़ी । लाल पटुआ ।

एर्र-गोमूगूर-[ते०] लाल अम्बाड़ी । लाल पटुआ ।

एर्र-गोय्या-पण्डु-[ते०] लाल अमरूद ।

एर्र-चित्रमूलम्-
एर्र-चित्रा- } [ते०] रक्त चित्रक । लाल चीता

एर्र-जाम-पण्डु-[ते०] लाल अमरूद ।

एर्र-जिरिकि-वित्तुलु-[ते०] लाल दाना । रक्तबीज ।

एर्र-जिलगन-[ते०] वृहच्चक्रभेद ।

एर्र-तामर-[ते०] कमल । तामरस ।

एर्र-दुण्डिग-चेट्टु-[ते०] जंगली जमालगोटा । हाकूई ।

एर्र-पञ्चरी-[ते०] बांदर सिरिस ।

एर्र-पुनिकि चेट्टु-[ते०] कविले । तबसि ।

एर्र-पुर्वु-[ते०] धातकी । धौरी ।

एर्र-पोस्त काय-चेट्टु-[ते०] लाल पोस्ते का पौधा ।

एर्र-वुल्लि गड्डलु-[ते०] पलाण्डु । रक्त पलाण्डु । लाल प्याज ।

एर्र-शिरिसरु-मानु-[ते०] लाल झाऊ ।

एर्लिख-हाटा-[अं० ehrlich hata] एक नूतन आविष्कृत डाक्टरी औषध । दे० "उपदंश" वा "आतशक" ।

एर्वडोस-[बम्ब०] सौंफ ।

एर्वम्-लेंस-[ले० ervum-lens, *Linn.*] मसूर मसुरी ।

एर्वारु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कटी लता । ककड़ी विज० र० । रा० नि० ।

एर्वारुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कटी । ककड़ी ।

एर्वारुका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्कटी लता । फूँट । बड़ी ककड़ी । (२) विलेयशय मूग ।

एर्वारुतैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ककड़ी के बीज द्वारा निकाला हुआ तैल । ककड़ी के बीज का तेल । काँकुड़ बीजेर तैल-बं० ।

गुण—बहेड़े के तेल जैसा । यह वात पित्तनाशक, बालों को हितकारी, कफकारक, शीतल और भारी है । वा० तैल० व० ।

एल-[मल०] पत्र । पत्ता । पत्ती ।

एल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) इलायची । एला । (२) एलवालुक । सि० यो० अरोच० चि० श्रीकण्ठ "रास्नैलहिंगु लवणोत्तमानां" । च० द० वात ज्व० रास्नादि ।

-[अं० ale] एक प्रकार का मद्य । दे० "एलकोहल" ।

एल-काय-[ता०, ते०] छोटी इलायची ।

एलन्ओमर:-[सिनेगल] गोरख इमली । ऊफा । इसके फल को एल् कोङ्गलीज़ भी कहते हैं । फा० इं० १ भ० । दे० "गोरखइमली" ।

एलक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेष । भेड़ । रा० नि० व० १६ । (२) मैदा चालने की चलनी ।

-[ते०] कपित्थ । कठबेल । कैथ ।

एलकतीरुलमक्की-[अ०] दम्मुल्अख़वैन । हीरादोखी । खूना खराबा ।

एलकल-[?]

एलका-[ता०]
एलकाय-[ता०, ते०]
एलकाय-वित्तुलु-[ते०]
एलकाय-विरै-[ता०] } छोटी इलायची ।

एलकुलु-[ते०] इलायची दाना । एलाबीज ।

एलकेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० एला+केशी] एक प्रकार का बैंगन जो बंगाल में होता है ।

एलकोङ्गलीज (स)-[सिनेगल नदी] गोरख इमली का बीज ।

एलकोहल-संज्ञा पुं० [अं० alcohol, सं० कोहल] मद्यसार । सुरासार । शराब का फूल ।

एलकोहल-ईथिलिकम्-[ले० alcohol ethylicum] ईथिलिक मद्य सार ।

एलकोहल-ऐब्सोल्युटम्-[ले० alcohol absolutum] विशुद्ध सुरासार । जलशून्य मद्यसार ।

एलकोहल-सैलिसिलिक-[ले० alcohol-salysilic] सैलिसिलिक एलकोहल ।

एलकोहलिक-एक्स्ट्रैक्ट-[अं० alcoholic-extract] सुरासार घटित रसक्रिया ।

एलकोहलिक-पॉइज़निंग-[अं० alcoholic-poisoning] मद्यसारजन्य विषाक्तता । मदात्यय ।

एलकोहलिज़्म-[अं० alcoholism] मदात्यय । पानात्यय ।

एलक्कल्लि-[मल०] थूहर । सीज । सेहुँड़ । पत्तों की सेंड ।

एलक्काय-[ता०] छोटी इलायची । सूक्ष्मएला ।

एलक्काय-विरै-[ता०] छोटी इलायची । सूक्ष्मएला ।

एलक्की-[कना०] छोटी इलायची । सूक्ष्म एला ।

एलङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली। रायकड़ा । रायखाँड़ा । एलङ्गा-(बं०)।

गुण—मधुर वृष्यग्राही, कफ तथा वातनाशक मेधा तथा जठराग्नि पुष्टिकर, शीतल और भारी है । रा० नि० व० १६ ।

एलङ्गि-[मल०] वकुल । मौलसरी ।

एलची-[मरा०, गु०] इलायची । एला ।

एलण्डै-[ता०] बेर । बदर ।

एलत्तरि-[मल०] छोटी इलायची । सूक्ष्म एला ।

एलन्तप्-पज़्म-[मल०] बेर । बदर ।

एलन्दप्-पज़्म-[ता०] बेर । बदर ।

एलफोल-[अं० alphol] एक प्रकार का सफ़ेद रंग का विलेय चूर्ण । दे० "नैफ्थोल" ।

एलबाल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक । भा० म० ४ भ० ने० रो० चि० सामान्याञ्जन । "सैन्धवंचैलवालुकम्" ।

एलबालु (क)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का सुगंध द्रव्य ।

इसकी पत्तियाँ कपित्थ (कैथ) की तरह और सुगंधित, फल दृढ़ गोल इलायची तुल्य गंधवाला और छाल सुगन्धित और डालियाँ फैलनेवाली होनी चाहिए ।

पर्य्या०—एलबालुक, एलवालुक, आलूक, वालुक, हरिवालुक, कपित्थ, दुर्वर्ण, प्रसर, दृढ़, (धन्व० नि० चन्दनादि व० ३) एलवालुक, कपित्थ, दुर्वर्ण, प्रसर, दृढ़, एलागन्धिक, एलाह्व, गुप्तगन्धि, सुगन्धिक, एलाफल, द्विसप्ताह्वय (रा० नि० शताह्वादिक व० ४)। त्वग्गन्ध, त्वक्पंच कुष्ठ गन्धि, सुगन्धि, प्रसर, एलालुक (के० दे०), एलालु (मद०), कपित्थ-पत्र (भा०), गंन्धत्वक् (गण०), कंकोल सदृश, कुष्ठ गन्धि, (भा० म० १ भ०)।(gieskia pharnaceoides, *Linn.*)।

गुणधर्म

एलवालु सुगन्धि, अत्यन्त शीतल, विषनाशक, अत्यन्त उग्र तथा कुष्ठ, खाज एवं व्रणनाशक है । (ध० नि० चन्दनादि ३ व०) । एलवालुक अत्युग्र, कसेला, कफ-वात-नाशक तथा ज्वर, दाह, मूर्च्छानाशक और रुचिकारक है । (रा० नि० शताह्वादि ४ व०; वा० सू० १५ अ० रोध्रादि०) ।

द्रव्यनिघंटु में इसे विषघ्न, मदनपाल में मूत्ररोगनाशक, भावप्रकाश में श्वास तथा अरुचिनाशक, विषघ्न, हृद्रोगनाशक और गुददोषनाशक लिखा है । केयदेव निघंटु में इसे पाक में कटु, शीतल लघु, कंडूनाशक, व्रण, छर्दि तथा तृषानाशक और कुष्ठ, कास एवं बलास (कफ) नाशक, रक्तपित्तशामक बल्य और कृमिनाशक लिखा है ।

एलवालुक—कुष्ठ, कृमि, विष और हृद्रोग नाशक है । प० मु० । "सैलबालुपरिपेलवमोचाः"। (२) तेजबल । च० सू० ४ अ० । (३)वालुक । सुगंधवाला । वै० निघ० २ भ० र० पि० चि० दूर्व्वाद्य घृत । (४) वालू का साग (हिं०) । बालू-च-भाजी-(मरा०) । बालुका-(बं०)। फा० इं० २ भ० पृ० १०५ । इं० मे० मे० ।

एलमरुङ्ङ-[मल०] घावपत्ता । ज़ख्मेहयात का पत्ता ।

एलम्-[ता०] इलायची दाना ।

[अं० alum.] फिटकरी। स्फटिका ।

एलम्नोल-[अं० alumnol.] एक प्रकार का सफेद रंग का चूर्ण जो जल में सरलतापूर्वक घुल जाता है । दे० "फिटकरी" ।

एलम्-ब्राथगाज-[अं० alum-broth-gauze.] दे० "पारा" ।

एलम्-ब्राथसाल्ट–[अं० alum-broth-salt.] दे० "पारा"।

एलम्-रोज-गार्गल–[अं० alum-rose-gargle.] स्फटिक गुलाब-गण्डूष। दे० "फिटकरी"।

एलवङ्ङप्-पट्ट–[मल०] तज।

एलवालु (क)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "एलबालुक"।

एला–[?] एक प्रकार का काँटेदार जंगली वृक्ष, जिसका फल इमली की तरह मीठा और खट्टा होता है। पत्ते दीर्घ होते हैं। रंग भूरा होता है। स्वाद मीठा और खट्टा।

प्रकृति—मधुर, प्रथम कक्षा में उष्ण एवं तर और खट्टा तथा प्रथम कक्षा में सर्द एवं तर।

हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को।

गुण—फल की मींगी खाने से पाखाना खुलकर साफ होता है और मलावरोध दूर होता है। यह प्रायः अंगों को बलप्रदान करता है तथा पित्तिक रोगों और सांद्रवायु को नष्ट करता है। (ख० अ०)

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटी इलायची। सु०। रा० नि०। राज०। भा० पू० १ भ०। (२) नीली।

संज्ञा स्त्री० [सं० मला० एलाम्] (१) इलायची विशेष। दे० "इलायची।" (२) वनरीठा।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता जिसकी पत्तियों की चटनी बनाई जाती है। वि० दे० "रसौल्"।

एलाइच–[बं०] एलायची।

एलाकु–[ते०] छोटी इलायची। सूक्ष्मएला।

एलागन्धिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक। रा० नि० व० ४।

एलाङ्क–[?] अज्ञात।

एलाङ्गाकाय–[ता०] कैथ। कपित्थ।

एलाच–
एलाचि– } [बं०] छोटी इलायची। सूक्ष्मएला।

एलाटरियून–[यू०] तीक्ष्ण विरेचन। वि० दे० "क्रिसाउल्हिमार"।

एलादिकषाय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]
एलादिक्वाथ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } एक प्रकार का क्वाथौषध जिसके सेवन से पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र रोग का नाश होता है।

योग तथा निर्माण-विधि—छोटी इलायची, पीपर, मुलेटी, पाषाणभेद, रेणुका(मेंहदी के बीज), गोखरू, अड़ूसा और एरण्डमूल-इनको तीन-तीन माशे लेकर क्वाथ करें और एक या दो माशे शुद्ध शिलाजीत मिलाकर पिलाएँ।

एलादिगण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आयुर्वेद में ओषधियों का एक वर्ग। यथा,—छोटी इलायची, बड़ी इलायची, शिलारस, कूठ, गंध प्रियंगू, जटामांसी, नेत्रवाला, ध्यामक, (रोहिषतृण), स्पृक्का, चोरक, दालचीनी, तेजपात, तगर, स्थौणेयक (थुनेर), चमेली, बोल, सीप, नख, देवदारु अगर, श्रीवास (गंधाविरोजा), केसर, चोर (सुगंधवाला), गुग्गुल, राल, शल्लकी निर्यास (बिरोजा), पुन्नाग और नागकेसर।

गुण—यह वात-कफ, खुजली, पिटिका और कुष्ठ को दूर करता है तथा शरीर के रंग को सुन्दर बनाता है। वा० सू० १५ अ०। वा० टी० हेमा०।

एलादि गुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
एलादि गुटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
एलादि गुड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०) } रक्त-पित्त में प्रयुक्त एक प्रकार का योग विशेष।

निर्माण-विधि—(१) छोटी इलायची, तेजपात और दालचीनी प्रत्येक १ तो०, पीपर ४ तो०, मिश्री, मुलेठी, छोहाड़ा और मुनक्का हर एक ८ तो०–इनको यथाविधि चूर्ण कर शहद में घोट कर १०–१० मा० की गोलियां बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से कास, श्वास, ज्वर हिक्का, छर्दि, मूर्च्छा, मद, भ्रम (चक्कर), रक्त-निष्ठीवन, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोथ, प्लीहा, आढ्यवात, स्वरभेद, क्षत और क्षय का नाश होता है। यह तर्पणी, वृष्य और रक्त-पित्तविनाशक है। च० द० रक्त-पि० चि०। रस० र०। सा० कौ०। यो० चिंता०। यो० तरं० उर० चि०।

(२) छोटी इलायची, पीपर, हड़, सोंठ, चित्रक, भुना सुहागा, राई, सज्जी, शोरा, वायविडंग, सेंधानमक, जीरा प्रत्येक समान भाग इनको यथा

विधि चूर्ण कर पुरातन गुड़ के साथ १ मा० प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—यह यकृत और प्लीहारोगनाशक है।

एलादि-घृत—संज्ञा० पुं० [सं० क्ली] क्षय रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग। यथा—छोटी इलायची, अजमोद, आंवला, हड़, बहेड़ा, कत्था, नीमसार (नीम का गोंद), असनसार (पीले साल का गोंद), शालसार (राल), बायविडंग, शुद्ध भिलावाँ, चित्रकमूल, त्रिकुटा, नागरमोथा, सौराष्ट्र-मृत्तिका (अभाव में फिटकरी), इनको पृथक् पृथक् ८-८ पल लेकर (इन सबके परिमाण से) १६ गुना पानी में डाल कर क्वाथ बनाएँ। षोडशांश शेष रहने पर छान लें। पुनः १ प्रस्थ गोघृत मिलाकर यथाविधि पकाएँ। सिद्ध हो जाने पर इसमें ३० पल मिश्री और ६ पल वंसलोचन दोनों को चूर्ण कर मिलालें। पुनः घृत से द्विगुण शुद्ध शहद मिलाकर रख लें।

गुण—इसे प्रतिदिन १-१ पल की मात्रा में सेवन करने से यक्ष्मा, शूल, पाण्डु तथा भगंदर का नाश होता है।

मात्रा—½ से १ तो० तक।

अनुपान—गोदुग्ध। (च० द० क्षय चि०)।

एलादि चूर्ण—संज्ञा पुं [सं० क्ली०] (१) छोटी इलायची, केशर, तज, जावित्री, तमालपत्र, लवंग, जायफल, रूमीमस्तगी, अकरकरा, सोंठ, शुद्ध अफीम और पीपर प्रत्येक समान भाग और मिश्री सर्व तुल्य। काष्ठादि औषधियों से अर्द्धभाग उत्तम कस्तूरी लेकर यथाविधि चूर्ण प्रस्तुत करें।

मात्रा—१-४ मा०।

गुण तथा प्रयोग—इसे मधु के साथ सायं-काल सेवन करने से दो पहर वीर्य का स्तंभन होता है। यो० चि०।

(२) सफेद इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत और पीपर—इनका चूर्ण पुराने चावल के धोवन के साथ सेवन करने से निकट मृत्युवाला मूत्रकृच्छ्र रोगी जीवित होता है। यो० चि०।

(३) छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, तालीशपत्र, वंशलोचन, मुनक्का, अनार-दाना, धनियाँ, दोनों जीरा प्रत्येक दो-दो कर्ष, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, अजवाइन, वृक्षाम्ल (कोकम्), अमलवेत, अज-मोद, असगंध, कौंचबीज प्रत्येक १-१ कर्ष, स्वच्छ चीनी ४ पल लेकर यथाविधि चूर्ण बनाएँ।

गुण—यह यौवनदाता, रुचिवर्धक, तिल्ली, उदररोग, अर्श, श्वास, शूल और ज्वरनाशक तथा अग्निवर्धक व बल और वर्णकारक, वात-नाशक, नेत्रों का हितकारी, हृद्य एवं कंठ और जिह्वा शोधक है। यो० चि०।

(४) छोटी इलायची १ भा०, दालचीनी २ भा०, मिर्च ३ भा०, सोंठ ४ भा०, पीपल ५ भा०, नागकेशर ६ भा०, मिश्री सर्व तुल्य मिलाकर यथाविधि चूर्ण बनाएँ।

गुण—यह यक्ष्मा, अर्श, संग्रहणी, गुल्म, रक्तपित्त, कंठरोग, अरुचि और प्लीहरोग नाशक है।

एलादि तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का उक्त नाम का योग—

पाकार्थ—तिल तेल ४ सेर, दही ४ सेर और दूध ४ सेर। काथनीय द्रव्य—बलामूल ८ सेर। काथसाधनार्थ—जल ६४ सेर, अवशिष्ट काथ १६ सेर। कल्कद्रव्य—छोटी इलायची, मुरा-मांसी, सरल काष्ठ, छड़ीला, देवदारु, रेणुका, चोरपुष्पी, कचूर, नलद (खस, जटामांसी) चम्पे का फूल, नागकेशर, ग्रन्थिपर्णी, गन्धरस, पूति (गंध मार्जार वीर्य), तेजपात, खस, सरल-निर्यास (चीढ का गोंद), कुन्दुर (लोहबान), नख, सुगंधवाला, दालचीनी, कूठ, काली अगर, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, श्रीचंदन (सफेद चंदन), जायफल, मजीठ, केशर, स्टक्का, तुरुष्क (शिलारस), लघु (अगर), सब औषधियाँ मिलित १ सेर। सब औषधियों के साथ यथा-विधि-साधित काथ तथा कल्कादि के साथ यथा-विधि तैल पाक करें।

गुण—इसके सेवन से विविध प्रकार के वात-रोग दूर होते हैं और बल तथा वर्ण की वृद्धि होती है। च० द०।

एलादिमन्थ—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] यक्ष्मारोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग—छोटी इलायची, आमला, अजमोद, हड़, बहेड़ा, खदिरसार, नीम,

आसन, साल, वायविडंग, भिलावाँ, चित्रक, त्रिकुटा, नागरमोथा और गोपीचंदन–इनके क्वाथ से यथा-विधि १ प्रस्थ घृत सिद्ध करके ठंडा होने पर—मिश्री ३० पल वंसलोचन ६ पल और शहद २ प्रस्थ मिलाकर मथनी से मथें इसे प्रतिदिन प्रातःकाल १-१ पल खाकर ऊपर से सावधानी पूर्वक उचित मात्रानुसार दूध पीना चाहिए। यह मंथ अत्यन्त मेधावर्धक, नेत्रों को हितकारी, आयुवर्धक, यक्ष्मानाशक एवं शूल, पाण्डु और भगन्दरनाशक है। यह सेवन योग्य रसायन है, एवं इसमें किसी प्रकार के परहेज की भी आवश्यकता नहीं है। च० द० राज० चि०।

एलादि लेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इलायची, कूठ, दारुहल्दी, मोथा, चित्रक, वायविडंग, रसौत और हड़–इन्हें पीसकर लेप करने से कुष्ठ का नाश होता है। च० चि० ७ अ०।

एलाद्य-गुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "एलादि गुटिका"।

एलाद्य-मोदक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अपस्मार रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग—छोटी इलायची, मुलेठी, चित्रक, हल्दी, दारु-हल्दी, हड़, बहेड़ा आँवला, रक्तशाली (लाल धान), पीपल, मुनक्का, छोहाड़ा, तिल, जौ, विदारीकन्द, गोखरू, निशोथ, शतावर हरएक समानभाग और सब से द्विगुण मिश्री की चाशनी कर यथाविधि मोदक प्रस्तुत करें।

मात्रा—१० मा०।

गुण तथा सेवन-विधि—इसे धारोष्ण गो-दुग्ध के साथ या मूँग के यूष के साथ सेवन करने से मद्यपान जनित समस्त विकार एवं अन्य बीमारियाँ जो दुःसाध्य हो चुकी हों, शीघ्र नष्ट होती हैं। भैष० अप० चि०।

एलाद्यारिष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इलायची ५० पल (२०० तो०), अडूसे की छाल २० पल (८० तो०), मजीठ, इन्द्र-जौ, दन्तीमूलत्वक्, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना खस, मुलेठी, सिरस की छाल, खदिर, अर्जुन की छाल, चिरायता, नीम की छाल, कूठ और सौंफ प्रत्येक १०-१० पल। सबको कूटकर ८ द्रोण जल में पकाएँ। जब एक द्रोण जल शेष बचे, तब छानकर उसमें पुनः धौ के फूल १६ पल, शहद ३०० पल, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, त्रिकुटा, दोनों चन्दन, मुरामांसी, जटामाँसी, मोथा, भूरि छरीला, श्वेतसारिवा, कृष्णसारिवा प्रत्येक १-१ पल कूटकर मिलाएँ पुनः इसे एकमिट्टी के पात्र में रख उसका मुख दृढ़ बन्द कर पृथ्वी में गाड़ दें। इसे एक मास पश्चात् निकालकर छाने और बोतल में भर सुरक्षित रख लें। मात्रा—१–२ तोला। गुण—इसके सेवन से विसर्प, मसूरिका, रोमान्तिका, शीतपित्त, विष्फोटक, विषम ज्वर, नाड़ी-व्रण, दुष्ट-व्रण, दारुणकास, श्वास, भगंदर, उपदंश, एवं प्रमेह-पीडिका का नाश होता है। भैष० र० परि०।

एलान—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नागरंग। नारंगी। नारेङ्गा लेबु–बं०। हिरवेफल-मरा०। गुण—पका खाने में मधुर, शीतल, बलकारक तथा वात-पित्तनाशक है। कच्चा फल खट्टा, गरम, भारी, दस्तावर और वातशामक है। रा० नि० व० ११।

एलान्दम्–[अ०] दम्मुज़् अख़वैन। हीरादोखी। खूनाखराबा।

एलापत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का साँप।

एलापर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का पेड़। काँटा आमरूली। एलानि–बं०। (२) रास्ना। रायसन। भा० पू० १ भ०।

एलाफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक। रा० नि० व० ४।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मधूक वृक्ष। महुए का पेड़। वै० निघ०।

एलाबा (वा) लुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एलवालुक। रा० नि० व० ४। (२) कुष्ठ गन्धि फल के समान एक फल। सु० सू० ३७ अ०।

एलाबू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अलाबू। कद्दू। आल।

एलाबू-बीज–संज्ञा पुं० [सं० एलाबू+बीज] कद्दू का बीया। तुख़्म कद्दू।

एलामिचम्-पज़्म–[ता०] बिजौरा नीबू।

एलाम्–[मल०] इलायची। एला। लाची।

एलायुग्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दोनों प्रकार की इलायची। छोटी और बड़ी इलायची। "एला-

युग्म तुरुष्क कुष्ठफलिनी"। वा० सू० १५ अ० एलादि।

एलालुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक। रा० नि० व० ६। भा० पू० १ भ०।

एलावती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एलालता। इलायची की बेल।

एलावालुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "एलबालुक"।

एलावीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इलायची का बीया। इलायची दाना।

एलाह्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक। रा० नि० व० ४।

एलिओ–[गु०] एलुवा। मुसब्बर।

एलिओकार्पस-लेंसीईफोलियस–[ले० elæocarpus lanceæfolius, *Roxb.*] सफेद पाती (मद्रास), (नैप०)। सहलङ्ग–(असा०), (सिलहट)।

एलिओकार्पस-वेरयुनुआ–[ले० elæocarpus verunua, *Ham.*] तुत्तीत्य सौलकुरी–(असा०)। मे० मो०।

एलिओकार्पस-सिरेटस–[ले० elæocarpus serratus *Linn.*] जलपाई–(बं०)। मे० मो०।

एलिओ-डेण्ड्रोन ग्लाकम–[ले० elæodendron glaucum, *Pers.*] चौली। शौरिया–उ० प० सू। मे० मो०।

एलिओडेण्ड्रोन-राक्सबर्गियाई–[ले० elæodendron roxburghii, *W. & A.*] तमरज–बम्ब०।

एलिओन्युरस-हिर्सुटस–[ले० eleonurus hirsutus, *Vahl.*] भंजुरी–उ० प० सू०। मे० मो०।

एलिकेम्पेन–[अं० elecampane) एक प्रकार का पौधा जिसकी पत्तियाँ और जड़ तिक्त सुगंधिमय होती है। रासन।

एलिक्सिर–[अं० elixir] [अ० अल्इक्सीर] यह कतिपय ओषधियों से प्रस्तुत किया हुआ एक प्रकार का निर्बल आसव (टिंक्चर) है, जिसमें सुगंध-द्रव्य तथा शर्करा मिलाकर सुस्वादु एवं ग्राह्य बना लेते हैं। इक्सीर। अल्इक्सीर।

नोट—अँगरेज़ी एलिक्सिर शब्द वास्तव में अरबी शब्द अल्इक्सीर ही है, केवल तनिक उच्चारण मात्र का भेद हो गया है। अरबी में इक्सीर का अर्थ दवाएशाफ़ी है अर्थात् वह औषधि, जो प्रत्येक रोग को नष्ट करे वा जिसके खाने से कभी मनुष्य बीमार न हो। दे० 'अक्सीर'। तिब्बी इक्सीर शुष्क वा आर्द्र हर प्रकार की हो सकती है; परन्तु डाक्टरी एलिक्सिर प्रायः द्रावक की तरह द्रव होती है। अस्तु, ब्रिटिश फार्माक्युटिकल कान्फरेंस द्वारा प्रमाणित एलिक्सिर कैस्करी सैगरेडी फार्माकोपिया के सिरूपस कैस्करी सैगरेडी के समान होती है।

(२) अक्सीर रसायन।

एलिक्सिर-आफ-विट्रियल्–[अं० elixir-of vitriol] Aromatic Sulphuric-acid इक्सीर ज़ाज़। दे० "गंधक"।

एलिक्सिर-इपीकेक्काइनी–[ले० elixir epecacuanhæ] इक्सीर इपीका। इक्सीर-इ-कुकुइहब। दे० "इपीकेक्काइनी"।

एलिक्सिर-एनिसाई–[ले० elixir-anisi] इक्सीर अनीसून। दे० "अनीसून"।

एलिक्सिर-एलिट्राइडिस–[ले० elixir-aletridis] इक्सीर ग्याह सितारः। दे० "एलोट्रिस"।

एलिक्सिर-कैस्कैरी–[ले० elixir-cascarae] इक्सीर कैस्कारा। दे० "कैस्कारा सैग्रेडा"।

एलिक्सिर-कोकी–[ले० elixir-cocae] इक्सीर कोका। दे० "कोका"।

एलिक्सिर-ग्ल्यूसाइडाई–[ले० elixir-glusidi] इक्सीर शकरेन। दे० "ग्ल्यूसाइडम्"।

एलिक्सिर-ग्वारानी–[ले० elixir-guaranae] इक्सीर ग्वाराना। दे० "ग्वाराना"।

एलिक्सिर-पेक्टोरेल–[ले० elixir-pectorale] इक्सीर सद्री। वाक्षीय अक्सीर। दे० "मुलेठी"।

एलिक्सिर-पेपीन–[अं० elixir-papain] इक्सीर जौहर -पपय्यः। दे० "अरंडबूंजा"।

एलिक्सिर-पेप्सीनी-एट-कम्फेरो–[ले० elixir-pepsini et cum ferro] एलिक्सिर विशेष।

एलिक्सिर पेप्सीनी-एट किनीनी कम फेरो–[ले०

elixir-pepsini et quininae-cum ferro] सलोह पेप्सीन व क्विनीन अक्सीर। दे० "पेप्सीनम्"।

एलिक्सिर-पेप्सीनी-एट-बिस्म्युथाई-[ले० elixir-pepsini et bismuthi] पेप्सीन बिस्मथ अक्सीर। दे० "पेप्सीनम्"।

एलिक्सिर-एट-बिस्म्युथाइ-कम्पोजिटम्-[ले० elixir-pepsine et bismuthi-compositum] मिश्रित पेप्सीन बिस्मथ अक्सीर। दे० "पेप्सीन"।

एलिक्सिर-पेप्सीनी एट बिस्म्युथाई कम्फेरो-[ले० elixir-pepsini-et bismuthi-cum ferro] सलोह पेप्सीन-बिस्मथ-अक्सीर। दे० "पेप्सीनम्"।

एलिक्सिर पेप्सीनी-एट बिस्म्युथाई एट ष्ट्रिक्नीनी कमफेरो-[ले० elixir-pepsini et bismuthi et strychninae cum ferro]सलोह-पेप्सीन-बिस्मथ-विषमुष्टीन इक्सीर। दे० "पेप्सीनम्"।

एलिक्सिर-फास्फोराइ-[ले० elixir-phosphori] स्फुराक्सीर। इक्सीर-फास्फोरस। दे० "फास्फोरस"।

एलिक्सिर-युफार्बिया-[ले० elixir euphorbia] दे० "सेहुँअ"।

एलिक्सिर-वाइबर्नाइ-प्रुनीफोलियाई कम्पोजिटा[ले० elixir-viburni prunifolii composita (B. P. C.)] मिश्रित-त्रीपर्ण-अक्सीर। दे० "वाइबर्नम्"।

एलिक्सिर-र्‌हीयाई-[ले० elixir rhei] इक्सीर रावंद। दे० "रेवन्दचीनी"।

एलिक्सिर-लेसीथीन-[ले० elixir-lecithin.] कुक्कुटाण्ड पीतक अक्सीर। दे० "लेसीथीन"।

एलिक्सिर-सेनी-[ले० elixir.sennæ.] इक्सीर सना। दे० "सनाय"।

एलिक्सिर-हीमोग्लोबीन-[ले० elixir-haemoglobin.] इक्सीर-हीमोग्लोबीन। दे० "हीमोग्लोबीन"।

एलिग्नस-अम्बीलेटा-[ले० elaeagnus-umbellata, *Thunberz.*] कंकोली। घाँई। घिवई। बम्मिवा-पं०। मे० मा०।

एलिग्नस-कॉन्फर्टा-[ले०] गोवारा-हिं०। मे० मो०।

एलिग्नस-लैटिफोलिया-[ले० elæagnus-latifolia, *Linn.*]घिवई। मिझनला-हिं०। मे० मो०।

एलिग्नस-हार्टेन्सिस-[ले० elæagnus hartensis, *M. Bieb.*] शिवलिक-उ० प० सू०। संजीत-अफ०। शिरशिङ्ग-तिब्बत। मे० मो०।

एलिफेंटापस स्केबर-[ले० elephantopus-scaber, *Linn.*] गोभी। हस्तिपात-बम्ब०।

एलियम्-[ले० allium.] लहसुन। रसोन।

एलियम्-ऋषभक-[ले० allium rishbhaka] ऋषभक नाम की ओषधि जो अष्टवर्ग में सम्मिलित है।

एलियम्-ऐम्पेलोप्रेसम्-[ले० allium-ampeloprasum.] रसोन वर्ग की एक ओषधि।

एलियम्-ऐस्केलोनिकम्-[ले० allium-ascalonicum] एक पोथिया लहसुन।

एलियम्-की(से)पा-[ले० allium cepa, *Linn.*] पलाण्डु। प्याज़।

एलियम्-जीफ़ोपेटेलम्-[ले० allium.] जंगली लहसुन। वन रसोन।

एलियम् जीवक-[ले० allium jivak] जीवक नाम की ओषधि जो अष्टवर्ग में सम्मिलित है।

एलियम् ट्युबरोसम्-[allium-tuberosum] रसोन जाति की एक ओषधि।

एलियम्-पोर्रम्-[ले० allium-porrum, *Linn.*] परू-बं०। क़िरास-अ०।

एलियम्-मैक्सिएनाई-[ले० allium macleani, *Baker.*] बादशाह-सालप।

एलियम्-रयुबेलियम्-[ले० allium-rubellium. *Bieb.*] जंगली प्याज। बरनी ब्याज। चिरीपियाज़ी।

एलियम्-लेप्टोफाइलम्-[ले० allium-leptophyllum, *Wall.*] हिमालयन प्याज़।

एलियम्-सेटिवम-[ले० allium-sativum, *Linn.*] रसोन। लहसुन।

एलियम्-स्फीरोसिफेलम्-[ले० allium-sphoe-

rocephalum, *Linn.*] एक प्रकार का प्याज ।

एलिया-संज्ञा पुं० [गु० एलियो] मुसब्बर । एलुवा ।

एलिया आफिसिनलिस-[ले० aloae officinalis] अंजल ।

एलियुराइटीज़-कार्डेटा-[ले० aleurites cordata] अखरोट भेद ।

एलियुराइटीज़ मोलक्केना-[ले० aleurites-moluccana, *Willd.*] अखरोट । आक्रोट ।

एलिया-[गु०] मुसब्बर । एलुवा ।

एलियाडेण्ड्रान-ग्लाकम-[ले० alaeodenron glaucum, *Pers.*] चौरी । जमरसी । बकरा-हिं० । भूतपाल, तामरुज-मरा० ।

एलियोडेण्ड्रोन-पेनिक्युलेटम-[ले० alaeodendron paniculatum,] वनस्पति विशेष ।

एलियोडेण्ड्रान-राक्सबर्गियाई-[ले० alaeodendron-roxburghii] तमरज ।

एलिसाइकार्पस-[ले० alysicarpus] एक डाक्टरी दवा ।

एलिल थियो-यूरिया-[ले० allyl-thio-urea] एक डाक्टरी औषध ।

एलिल-सल्फाइड-[अं० allyl-sulphide] एक प्रकार का ईथरीय तैल, जो हींग का क्रियात्मक सार है । दे० "लहसुन" ।

एलिल सल्फो-कार्बामाइड-[ले० allyl sulpho carbamide] दे० "फाइब्रोलाइसीन" ।

एलीइस गिवनीन्सिस-[ले० elaeis.guineensis] अफ्रिकन आइल-पाम (African oil-palm)

एलीका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी इलायची । सूक्ष्म एला । रा० नि० व० ६ ।

एलीक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एलुवा ।

एलीकेम्पेन-[अं० elecampane] रासन । कुश्ते शामी । (Inula Helenium)

एलीटेरिया-कार्डेमम-[ले० elettaria cardamomum, *Maton.*] छोटी इलायची । सूक्ष्मएला ।

एलीट्रिस-[ले० aletris] स्टारग्रास Star-grass, कलिकरूट Colicroot,-अं० । उदरशूलारि मूल, पेटपीड़ाहर जड़ी-हिं० । हशीशतुलउर्मी-(अ०) । ग्याह सितारा । बीख कुलंज ।

असम्मत

(*Not Official*)

उत्पत्तिस्थान—यह ओषधि अमेरिका में उपजती है । इसकी जड़ औषधार्थ व्यवहार में आती है ।

प्रभाव—तिक्त बलदायक, आमाशय बलप्रद, मूत्र प्रवर्तक, गर्भाशय बलदायक और विरेचक है। पर इसको अधिकतया स्त्रीरोग में बर्तते हैं ।

मात्रा—१५ से ५ ग्रेन तक ।

योग—

(१) एक्स्ट्रैक्टम् एलीट्राइडिस Extractum Aletridis

मात्रा—½ से २ ग्रेन ।

(२) एक्स्ट्रैक्टम् एलीट्राइडिस लिक्विड Extractum Aletridis Liq.

मात्रा—½ से १ ड्राम ।

(३) टिंक्चर एलीट्राइडिस Tincture Aletridis

मात्रा—½ से १ ड्राम ।

(४) एलिक्सिर एलीट्राइडिस Elixir Aletridis.

मात्रा—½ से १ ड्राम ।

(५) एलीट्रिस कार्डियल Aletris Cordial.

मात्रा—१ ड्राम ।

प्रभाव तथा प्रयोग—

सूत्र प्रवर्तक रूप से इसको जलंधर और पुरातन आमवात में और विरेचक रूप से उदरशूल में देते हैं । अधिकतया इसे गर्भाशय बलप्रद रूप से प्रयोगित करते हैं । अस्तु, रियु केमिकल कम्पनी अमेरिका निर्मित एलीट्रिस कार्डियल नामक औषध, जिसमें उपर्युक्त औषध के अतिरिक्त और भी कई एक सुगंधित ओषधियाँ पड़ी हुई होती हैं । रजःरोध, कष्टरज और श्वेत प्रदर प्रभृति रोगों में बर्तने से अत्यन्त लाभ होता है ।

एलीट्रिस-कार्डियल-[अं० aletris-cordial] हथ उदरशूलारि मूल । दे० "एलीट्रिस" ।

एलीट्रिसफैरिनोसा–[ले० aletris farinosa] एक वनस्पति।

एलीपा–[गु०] दे० "अयापान"।

एलीपीन–[अं० alypin] एक प्रकार का निर्गन्ध स्फटिकीय श्वेतवर्ण का चूर्ण। दे० "कोकीन"।

एल(इ)लीमाइ–[अं० elemi] मस्तिस की राल। रातीनजुल मुस्तिम्। दे० "मस्तिम्"।

एलीय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एलबालुक।

एलुआ–संज्ञा पुं० [अ०] एलुवा।

एलुइन–संज्ञा स्त्री० [अं०] मुसब्बर का सत। ज़ौहर सिब्र।

एलुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक।

एलुकाख्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एलबालुक।

एलुप–[ता०] मधूक। महुआ। इरु(लु)प्पै–ता०।

एलुपि–[ता०] इप्पा। सोम–ते०। (Mimusops manilkara)

एलुम्बुक्कार–[ता०] हड्डी का कोयला। अस्थि-अङ्गार।

एलुम्बुगल–[ता०] हड्डी। अस्थि।

एलुमिच्चम्-तोलशि–[ता०] राम-तुलसी। फिरंज-मिश्क–(अ०)।

एलुमिच्चम् पज़्म–[ता०] जम्बीर। नीबू।

एलुमिच्चै–[ता०] जम्बीर। नीबू।

एलुवा–संज्ञा पुं० [अं० aloe एलो] घीकुवार की सुखाया हुआ रस। मुसब्बर। दे० "घीकुआर"।

एलुवा-मुदब्बर–[अ०] शुद्ध किया हुआ मुसब्बर। दे० "मुसब्बर"।

एलुवु–[कना०] अस्थि। हड्डी।

एलुवु-ईहलु–[कना०] हड्डी का कोयला। अस्थि-अङ्गार।

एलूक–दे० "एलुक"।

एलेक्टुअरी–[अं० electuary] [ले० बहु० एलेक्टुअरीज़] अवलेह। लऊक़। चटनी।

एलेक्टुअरियम्–[ले० electuarium] [यू०] अवलेह। चटनी। दे० "कन्फेक्शियोनीज़"।

एलेक्टुअरी-लेनिटिव–[अं० electuary-lenitive] दे० "कन्फेक्शियो"।

एलेक्ट्रिक ऑस्मोसिस–[अं० electric-osmosis] दे० 'कैटाफोरेसिस"।

एलेक्ट्रार्गोल–[अं० electrargol] एक डॉक्टरी औषध।

एलेक्सिफार्मिक–[अं० alexi-pharmic] दे० "ऐलेक्सिफार्मिक"।

एलेगारम्–[ते०] सुहागा। टंकण।

एलेगोटैनिक-एसिड–[अं० ellago-tannic-acid] आँवले में पाया जाने वाला एक प्रकार का तेज़ाब।

एलेग्ज़ेण्ड्रियन-सेना–[अं० alexandrian-senna] सनाय-इस्कंदरी। स्वर्णपत्री भेद।

एलेञ्जियम्-टोमेण्टोसम्–[ले० alangium-tometosum] अङ्कोल भेद। ढेरे का एक प्रकार।

एलेञ्जियम्-डेकापेटेलम्–[ले० alangium-decaetalum, *Lam.*] अंकोल। ढेरा।

एलेञ्जियम्-सिक्सपेटेल्ड–[अं० alangium-six petalled] काला अंकोल।

एलेञ्जियम्-लेमार्कियाइ–[अं० alangium-lamarckii, *Thwaites.*] अंकोल। ढेरा। अलङ्गी (मरा०)।

एलेञ्जियम्-हेक्सापेटेलम्–[अं० alangium-hexapetalum, *Lam.*] काला अंकोल। काला अकोला।

एलेञ्जीन–[अं० alangin] अंकोलीन। एक प्रकार का अस्फटिकीय तिक्त क्षारोद जो एलकोहल, क्लोरोफार्म और ईथर में विलेय; परन्तु जल में अविलेय होता है।

एलेटरीन–[अं० elaterin] } जौहर क़िस्सा
एलेटरीनम्–[अं० elaterinum] } उल्हिमार।

एलेटरियम्–[ले० elaterium] क़िस्साउल्हिमार।

एलेटेरिया कार्डेमोमम्–[ले० elettaria-cardamomum, *Matton.*] छोटी इलायची। सूक्ष्म एला।

एलेटेरिया-मेजर–[ले० elettaria-major] बड़ी इलायची। बृहद् एला।

एलेटेरिया-रीपेंस–[ले० elattaria-repens] इलायची। एला।

एले (लीं) फेण्ट–[अं० elephant] हाथी।

हस्ति ।

ए (ई) लेफैण्ट-एप्ल–[अं० alephant-apple] कैथ । कपित्थ ।

ए (ई) लेफैण्ट-क्रीपर–[अं० elephant creeper] समुद्र शोष ।

ए (ई) लेफैण्ट-ग्रास–[अं० elephant-grass-एरका । रामबाण ।

एलेफैण्टापस-स्केबर–[ले० elephantopus-scaber, *Linn*] गोभी । गोजिह्वा ।

एलेफैण्टिएसिस्–[अं० elephantiasis] श्लीपद । फीलपा ।

ए(ई)लेफैण्ट्सफूट-प्रिक्ली लीव्हड–[अं० elephant's foot, prickly leaved] गोजिह्वा, गोभी, बनगोभी ।

ए(ई)लेफैण्ट्स मिल्क–[अं० elephant's-milk] हथिनी का दूध । हस्तिनी दुग्ध ।

एलेबोरस–[यू०] दे० "ख़र्बक" ।

ऐलेमिच्चम्–[ता०] शर्बती नीबू । मीठा नीबू ।

एलेम्ब्राथ-साल्ट–[अं० alembroth salt] दे० "पारा" ।

एलेलेग–[का०] सप्तपर्ण । सतिवन । छातिम ।

एलेवम्–[ता०] देव कपास । नरमा ।

एलैसपेष्ट–[अं० allen's-paste] एलेन प्रलेप । दे० "संखिया" ।

एलैगिक-एसिड–[अं० ellagic-acid] एक प्रकार का तेज़ाब । दे० "जामुन" ।

एलो–[अं० aloe [बहु० एलोज़] पौधों की एक जाति जिनके बीच से एक सीधी पुष्प-डंडी निकलती है और जिनसे एक प्रकार का तिक्त रस निकलता है ।

एलो, अमेरिकन–[अं० aloe-american] राकसपत्ता ।

एलो-इण्डिका–[ले० aloe-indica] घीकुआर ।

एलोईन–[अं० aloin] मुसब्बर का सत । एलुवा का सत । कुमारी-सत्व ।

एलोईनम्–[ले० aloinum] दे० "एलोईन" ।

एलो-एबिसीनिका–[aloe-abyssinica, *Lam.*] जाफराबादी घीकुआर ।

एलो, कामन–[अं० aloe common] घीकुआर । कुमारी ।

एलोकेशिया-इण्डिका–[ले० alocasia-indica, *Schott.*] मानकंद । माणक ।

एलोकेशिया-मैक्रोर्‌हाइज़ा–[ले० alocasia-macorrhiza, *Schott.*] इसका वृश्चिक-दंश पर उत्तम प्रभाव होता है ।

एलोग्ज़ीलम् एगेलोकम्–ले० aloexylum agallocham] एक प्रकार के अगर का पेड़ ।

एलो-चाइनेन्सिस्–[ले० aloe-chinesis] दे० "एलोवेरा" ।

एलोज़–[अं० बहु० aloes] [यू०] [ए० व० aloe] एलुआ । मुसब्बर ।

एलोज़-एडेन–[अं० aloes aden] अदन देश में होनेवाला ग्वार ।

एलोज़-जाफराबाद–[अं० aloes jaferabad] जाफराबादी मुसब्बर ।

एलोज़-बार्बेडोज़–[अं० aloes barbadoes] बर्बेदी एलुआ ।

एलोज़-मोका–[अं० aloes-mocha] अदन या यमनी मुसब्बर ।

एलोज़ यमनी–[अं० aloes-yamani] यमनी एलुवा ।

एलोज़-सोकोट्राइन–[अं० aloes-socotrine] सकोतरी एलुवा ।

एलो-पर्फोलिएटा–[aloe-perfoliata] मुसब्बर का एक भेद ।

एलोपेरियाई–[ले० aloe-perryi, *Baker.*] सकोतरा द्वीप में होनेवाला ग्वार । (Aloe Socotrina.)

एलोपेसिया–[अं० alopecia] बालख़ोरा । चाईँ-चूआँ ।

एलोपोन–[अं० alopon] दे० "आम्लोपान" ।

एलोबार्बेडेंसिस–[ले० aloe-barbadensis] बर्बदी ग्वार । सिप्र बर्बदी ।

एलोमेली–[यू०] शीरख़िश्त ।

एलो-लिटोरेलिस–[ले० aloe-litoralis, *Koening.*] छोटा कवाँर । छोटाग्वार । छोटा राकसपत्ता ।

एलो-वल्गैरस–[ले० aloe-vulgaris] बल्गेरिया देश में होनेवाला ग्वार ।

एलो-वुड–[अं० aloe-wood] अगर ।

एलोवेरा–[ले० aloe vera, *Linn.*] घीकुवार। कुँवारगंदल ।

एलोसकोट्राइना–[ले० aloe-succotrina, *Linn.*] सकोतरी घीकुआर ।

एलोसोकोट्राइना–[ले० aloe-socotrina] सकोतरी-घीकुवार ।

एलो स्पाइक फ्लावर्ड–[ले० aloe-spike-flowered] छोटाग्वार ।

एलोस्पिकेटा–[अं० aloe spicata, *Thunb.*] एक प्रकार का घीकुवार ।

एल्क–संज्ञा पुं० (अं० elk] एक प्रकार का बहुत बड़ा बारहसिंगा जो युरोप और एशिया में मिलता है । यह उत्तरी अमेरिका में भी पाया जाता है । इसे थूथन होता है । गरदन छोटी होने के कारण यह जमीन परकी घास आराम से नहीं चर सकता। यह पेड़ की पत्तियाँ और डालियाँ खाता है। इसकी टाँगें चरते समय छितरा जाती हैं। इसलिये यह हिरन की तरह न कूद सकता है और न दौड़ सकता है। इसकी घ्राणशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है ।

एल्कलाइ–[अं० alkali] दे० "ऐल्कलाइ" ।

एल्कली–[मल०] थूहर । सेहुँड़ । वज्र ।

एल्क़ातिरुल्मकी–[अ०] दम्मुल्अख़वैन । हीरादोखी । खूनाखराबा ।

एल्डर-फ्लावर–[अं० elder-flower] ख़म्मान का फूल । गुल ख़म्मान ।

एल्डर-फ्लावर-वाटर–[अं० elder-flower-water.] अर्क ख़म्मान । (aqua-sambuci.)

एल्डर-फ्लावस–[अं० elder-flowers] गुल-ख़म्मान कबीर । samboci-flowers.

एल्डिहाइड–[अं० aldehyde]

एल्बो-कार्बन–[अं० albo-carbon] दे० "नेफ्थालीन" ।

एल्बोफेराइन–[अं० albo-ferine] दे० "लोहा" ।

एल्म–[elm] एक प्रकार का वृक्ष, जिसकी पत्तियाँ खुरदरी होतीं और दोनों किनारे काँटादार होते हैं ।

एल्म-लीव्ड-सुमाक–[अं० elm-leaved-sumach] सुमाक़ । तत्रक ।

एल्युमना–[अं० alumina] एक प्रकार की मिट्टी। एल्युमीनियम की भस्म ।

एल्युमिनटेड कापर–[अं० aluminated-copper] अमोनित ताम्र ।

एल्युमीन–[ले० alumen] फिटकरी। स्फटिका ।

एल्युमीन-एक्सीकेटम्–[ले० alumen-exsiccatum] भुनी हुई फिटकरी । फूल की हुई फिटकरी ।

एल्युमीन-एमोनियो-फेरिक–[ले० alumen-ammonio-ferric] एक डाक्टरी औषध ।

एल्युमीन-प्योरिफिकेटम्–[ले० alumen-purificatum] शुद्ध स्फटिका । शुद्ध फिटकरी ।

एल्यु-मीनियम्–[ले० aluminium] एक प्रकार की शुद्ध श्वेतवर्ण की धातु । वि० दे० "स्फटिकम्" ।

एल्यु-मीनियम्-आलिएट–[अं० aluminium-oleate] एक प्रकार का चूर्ण । दे० "फिटकिरी" ।

एल्युमीनियम्-एसीटेट-टार्ट्रेट–[अं० aluminium-acetate-tartrate] एक प्रकार की सबल निर्विषैल पचननिवारक औषध ।

एल्युमीनियम्-एसीटेट सोल्युशन–[अं० aluminium acetate-solution] स्फटिकशुक्तितघोल । दे० "फिटकिरी" ।

एल्युमीनियम्-एसीटोटार्ट्रेट–[अं० aluminium-aceto-tartrate] दे० "फिटकिरी" ।

एल्युमीनियम्-केसीनेट–[अं० aluminium caseinate] एक प्रकार का पीताभ श्वेत वर्ण का स्वादरहित चूर्ण जो जल में अविलेय होता है । दे० "फिटकिरी" ।

एल्युमीनियम्-क्लोराइड–[अं० aluminium-chloride] दे० " फिटकिरी" ।

एल्युमीनयम्-नाइट्रेट–[अं० aluminium-nitrate] दे० "फिटकिरी" ।

एल्युमीनियम्-नेफ्थाल-सल्फोरेट–[अं० aluminium naphthol-sulphorate] एक प्रकार का श्वेत वर्ण का चूर्ण । दे० "फिटकिरी" ।

एल्युमीनियम्-सिलिकेट–[अं० aluminium-silicate] दे० "केओलीनम्" ।

एल्युसीन-कोरोकेना–[ले० eleusine-corocana, *Gœrtn.*] मड़ुआ-धान । मँडुआ । मकड़ा ।

एल्युसीनी-इण्डिका–[ले० eleusine indica, *Gaertn.*] किमोर । गधा–उ० प० भा० ।

एल्युसीनी-ईजप्टिका–[ले० eleusine-aegyptica, *Pers.*] मकरा । मकरी ।

एल्युसीनी-फ्लेगेलीफेरा–[ले० eleusine flagellifera, *Nees.*] गुर्दुंब–उ० प० भा० ।

एल्ल–[मल०] हड्डी । अस्थि ।

एल्ल-इम्बुल–[सिं०] पीली कपास । इसके गोंद को कतीरा कहते हैं ।

एल्ल-एर्रिए–[सिं०] दुग्ध । दूध ।

एल्लु–[ता०] तिल । तिल्ली । कुंजद ।

एल्लेना–[कना०] तिल । तिल्ली । कुंजद ।

एल्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक । सु० चि० १६ अ० ।

एल्वा–[द०] एलुवा । मुसब्बर ।

एल्वालु–संज्ञा पुं० [स० क्ली०]
एल्ववालुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]
एल्ववालुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } एलबालुक ।

एल्ववाल्वाल–संज्ञा पुं० [सं०] एलबालुक ।

एल्शार्टजियो-पॉलिश्टेका–[ले०] मेंहदी ।

एल्शीनीज–
एल्शूनीज–
एल्शीनीज– } [अ०] कलौंजी । मँगरैला । उपकुञ्चिका ।

एल्सार्बानियः–[अ०] साबुनी बूटी । (saponaria-vaccaria.)

एल्हब्बेतु-ल्खिज़्रा–[अ०] मगरहल । उपकुञ्चिका ।

एल्हब्बतुस्सौदा–[अ०] उपकुञ्चिका । मगरहल ।

एल्हागु–[मिश्र०] [अ० अल्हाजु] दुराखभा । खारे शुतर ।

एल्हेंगलिंग–[मिश्र०] इङ्गुदी । हिंगोट । हिंगुवा ।

एवन–[फ्रा०] चोवचीनी ।

एवर्डूपोइज–[अं० voirdupois] स्थूल एवं शुष्क वस्तुओं के तौलने की एक प्रकार की माप ।

एवापोरेशन–[अं० vaporation] (१) वाष्पीकरण । (२) वाष्पी भवन ।

एवं–अव्य० [सं०] (१) बराबर । साम्य । (२) ऐसे ही । सादृश्य ।

एवेकुएण्ट्स–[अं० evacuants] शोधन । मुक्तरिंगात ।

एवोडिया-फ्रैक्सिनि-फोलिया–[ले० evodia-fraxini-folia] एक प्रकार का पौधा, जिसका फल-कोष तुम्बुरु तुल्य होता है ।

एवाल्व्युलस-अल्सिनाइडिज–[ले० evolvulus-alsinoides, *Linn.*) विष्णुगन्धि । शंखपुष्पी ।

एशा(शिया) टिक ग्रेविया–[ले० asiatic-grevia] फालसा । परुषक ।

एशा(शिया)टिक बार्बेरी–[ले० asiatic-barberry] एक प्रकार की दारुहल्दी जो गढ़वाल से हज़ारा तक अधिकता के साथ होती है ।

एशोप्गोल–[बं०] इसबगोल ।

एषण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शल्यकी वृक्ष । वै० निघ० । (२) लोहनिर्मित बाण । तीर । (३) अन्वेषण । खोज । (४) इच्छा । (५) खुरचने की क्रिया ।

एषणिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० (१) सोना आदि तौलने का काँटा । तुला । श्रम० । (२) नश्तर । व्रण खुरचने का सलाका ।

एषणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का नश्तर (सलाका) । इसका मुख केतुवे के मुख जैसा होता है । इस अस्त्र को व्रण के मध्य में लगाकर पूयादि स्राव कराया जाता है । सु० ।

[२] सोना आदि तौलने की तुला (तराजू) ।

एषणीय–वि० [सं० त्रि०] विश्राव्य । नश्तर देने योग्य ।

एषिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खस । उशीर । च० चि० ३ अ० । अगरादि तैल ।

एष्य–वि० [सं० त्रि०] वांछनीय । चाहने योग्य ।

एष्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०) आँवला । आमलकी । रत्ना० ।

एसक-दन्तिकुर्र–[ते०] एलबालुक ।

एसकाली–[नेपा०] आखी । कुञ्जी–पं० ।

एसगोल–[मरा०] इसबगोल । ईषद्गोल ।

एसमदुग–[मद०] कचनार ।

एसर–[कुमा०] आखी । कुञ्जी–पं० ।

एसर-केसियम्–[ले० acer-caesium] एसर पिक्टम्–[ले० acer-pictum] दे० "किलपत्तर" ।

एसराइडीन–[अं० eseridine] फाइसाष्टिग्मीन अर्थात् कैलेबार-बीन में पाया जानेवाला एक सत्व ।

एसरीन–[अं० eserine] दे० "फाइसॉष्टिग्मीन"।

एसरीन-सल्फेट–[अं० eserine-sulphate] एक प्रकार का हलका भूरे रंग का अमूर्त चूर्ण जो अत्यन्त आर्द्रताशोषक और अविलेय होता है । दे० "फाइसाष्टिग्मीन" ।

एसरीन-सैलिसिलेट–[अं० eserine-salicylate] दे० "फाइसाष्टिग्मीन" ।

एसरीन-हाइड्रोब्रोमास–[अं० eserine-hydrobromas] एक प्रकार का सफेदी लिये हुये अमूर्त चूर्ण, जो किञ्चित् आर्द्रताशोषक और अत्यन्त जल-विलेय होता है । दे० "फाइसाष्टिग्मीन" ।

एसरेमीन–[अं० eseremine] कैलेबारबीन अर्थात् फाइसोष्टिग्मीन से प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का सत्व ।

एसल–[सिं०] अमलतास । आरग्वध ।

एसाइट्रीन–[अं० acitrin] एक पाण्डु-पीत स्फटिकीय चूर्ण, जो फेनिल-सिंकोनाइनिकाम्ल (आटोफेन) का ईथाइल ईथर है । संधिवात (Gout) में इससे युरिकाम्लोत्सर्ग अत्यन्त बढ़ जाता है; परन्तु कहा जाता है, कि यूरेट्स पर इसका अत्यल्प प्रभाव होता है ।

मात्रा आदि—इसे १० ग्रेन (५ रत्ती) की मात्रा में दिन में ३ या ४ बार भोजनोत्तर जल में मिलाकर प्रयोगित करें ।

एसाफीटिडा–[अं० asafœtida] हींग । हिंगु ।

एसिड–संज्ञा पुं० [अं० acid] [बहु० एसिड्स] अम्ल । तेज़ाब । द्राव ।

एसिड अकीलिइक–[अं० acid achilleic] एकोनाइटिक एसिड । दे० "बच्छनाग" ।

एसिड-अगारिक–[अं० acid-agaric] छत्रिकाम्ल । दे० "अगारिकस एल्बस" ।

एसिड-अगारिसिनिक–[अं० acid-agaricinic] दे० "गारिकूनाम्ल" ।

एसिड-अमिडो-एसिटिक–[अं० acid-amido-acetic] ग्लाइकोकाल । दे० "बीटेन" ।

एसिड अम्बर–[अं० acid-amber] अम्बर का तेजाब ।

एसिड आइसो एसिटिक–[अं० acid Iso-acetic] एक दृढ़ वसाम्ल जो व्याघ्र-एरण्ड-तैल द्वारा प्राप्त होता है । द्रवन्त्यम्ल ।

एसिड-आक्सीनेफ्थोइक–[अं० acid-oxynaphthoic] दे० "एसिडम् आक्सीनेफ्थोइकम्"।

एसिड-आक्सेलिक–[अं० acid-oxalic] चुक्राम्ल । दे० "एसिडम् आक्सेलिकम्" ।

एसिड-आज़िमक–[अं० acid-osmic] दे० "एसिडम् आज़िमकम्" ।

एसिड-आफेलिक–[अं० acid-ophelic] चिरायते का एक क्रियात्मक-सार । किरातितिक्ताम्ल । दे० "चिरायता" ।

एसिड-आयोडिक–[अं० acid-iodic] दे० "एसिडम्-आयोडिकम्" ।

एसिड-आरोक्लोरिक–[अं० acid-aurochloric] इसे "एसिड ट्रिक्लोराइड-ऑफ गोल्ड" भी कहते हैं । यह समान मात्रा में "आरीएट सोडियाई क्लोराइडम्" के समान प्रभाव करता है ।

एसिड-आर्गेनिक–[अं० acid organic]ऐन्द्रियक अम्ल ।

एसिड-आर्थोफेनोल-सल्फोनिक–[अं० acid orthophenol-sulphonic] एक प्रकार का तेजाब ।

एसिड-आर्सेनियस–[अं० acid-arsenious] एसिड-आर्सेनियोजम्–[अं० acid arseniosum] एसिड-आर्सेनिक–[अं० acid arsenic] गौरी पाषाणाम्ल । मल्ल । दे० "संखिया" ।

एसिड-आलीइक–[अं० acid-oleic] तैलाम्ल ।

एसिड-आस्मिक–[अं० acid-osmic] दे० "एसिडम् आस्मिकम्" ।

एसिड-इन्फ्युज़न आफ रोज़ेज़–[अं०acid infusion of roses] गुलाबाम्ल–फार्ट । दे० "गुलाब" ।

एसिड-एनिसिक–[अं० acid anisic] अनीसूनाम्ल । दे० "अनीसून" ।

एसिड-एनोडाइनिक–[अं० acid anodynic] एनोडाइनिक एसिड । वेदनास्थापनीयाम्ल ।

एसिड-एन्थेमिक–[अं० acid anthemic] एन्थेमिक एसिड ।

एसिड-एम्बेलिक–[अं० acid embelic] विडंगाम्ल । दे० "बायबिडङ्ग" ।

एसिड-एलेगोटैनिक–[अं० acid ellagotanic] एलैनोटैनिक एसिड ।

एसिड-एसिटिक–[अं० acid acetic] शुक्राम्ल। सिरके का तेजाब ।

एसिड-एसीटिक-ग्लेशियल–[अं० acid acetic-glacial] शुद्ध शुक्राम्ल ।

एसिड-एसीटिक-सैलिसिलिक–[अं०acid acetic-salicylic] शुक्र वेतसाम्ल । ऐस्पिरीन । दे० "एसिडम्-एसिटिल-सैलिसिलिकम्" ।

एसिड-ऐञ्जेलिक–[अं० acid-anjelic.] दे० "ऐञ्जेलिक एसिड" ।

एसिड-ऐढाटोडिक–[अं० acid-adhatodic] आटरुषकाम्ल । अडूसे का तेज़ाब । दे०"अडूसा"।

एसिड-ऐनाकार्डिक–[अं० acid-anacardic] एक प्रकार का तेजाब जो काजू के फल-कोष से प्राप्त होता है । दे० "काजू" ।

एसिड-ऐरेकिक–[अं० acid arachic] भूचणकाम्ल । मूंगफली का तेज़ाब ।

एसिड-ऐरेबिक–[अं० acid-arabic] बबूलनिर्यासाम्ल । अबीन । बबूल के गोंद का सत्त । ऐरेबीन arabin–अं० ।

एसिड-ऐलाण्टिक–[अं० acid-ailantic] महानिम्ब त्वगाम्ल । एक प्रकार का तेज़ाब जो मीठे नीम की छाल से प्राप्त होता है ।

एसिड-काइनिक–[अं० acid-kinic] एक प्रकार का तेजाब जो मद्यसार में कठिनतापूर्वक विलेय होता है ।

एसिड-काइनो-टैनिक–[अं० acid kino-tanic] एक प्रकार का कषाय सार जो लॉगवुड (log wood.) अर्थात् पतङ्ग की लकड़ी द्वारा प्राप्त होता है ।

एसिड-कार्बज़ोटिक–[अं० acid carbazotic] पिक्रिक एसिड ।

एसिड-कार्बोलिक–[अं० acid carbolic] एक सुप्रसिद्ध स्वच्छ कृमिघ्न स्फटिकीय द्रव्य, जो अलकतरे के भागिक स्रवण और पुनः विशेष शोधनों से प्राप्त होता है । कार्बोलिकाम्ल ।

एसिड-कार्बोलिक-लिक्विफाइड–[अं० acid carbolic-liquified] द्रावित कार्बोलिकाम्ल ।

एसिड-कुमेरिक–[अं० acid coumaric] कुमेरिकाम्ल । एक प्रकार का तेज़ाब जो इक्लीलुल्-मलिक से प्राप्त होता है ।

एसिड-कैकोडाइलिक–[अं० acid cacodylic] केकोडाइलिक एसिड ।

एसिड-केबुलिनिक–[अं० acid chebulinic] एक प्रकार का ऐन्द्रियक अम्ल जो हड़ से प्राप्त होता है । हरीतक्यम्ल ।

एसिड-कैटेशूटैनिक–[अं० acid catechutannic] खदिरकषायाम्ल । खैर का तेज़ाब वा सार ।

एसिड-कैथार्टिक–[अं० acid cathartic] एक प्रकार का विरेचनीय अम्ल जो सनाय, कुटकी इत्यादि अनेक ओषधियों में पाया जाता है । यह उनका एक क्रियात्मक सार है ।

एसिड-कैप्रिक–[अं० acid capric] कबराम्ल ।

एसिड-कैफीइक–[अं० acid caffeic] कहवे का तेजाब । दे० "क़हवा" ।

एसिड-कैफीएनिक–[अं० acid caffeanic] एक प्रकार का अम्लीय सार जो क़हवे से प्राप्त होता है ।

एसिड-कैफीओ-टैनिक–[अं० acid caffeotannic] क़हवा कषायाम्ल । दे० "क़हवा" ।

एसिड-कैफीलिक–[अं० acid-caffeilic]

क़हवे से प्राप्त होनेवाला एक प्रकार का तेज़ाब। दे० "क़हवा"।

एसिड-कैम्फोरिक–[अं० acid-camphoric] कर्पूराम्ल।

एसिड-केरियो–फाइलिक–[अं० acid-caryophyllic] लवङ्गाम्ल। केरियोफायलीन पर नत्रिकाम्ल की क्रिया द्वारा यह तेज़ाब प्रस्तुत होता है।

एसिड-केलम्बिक–[अं० acid columbic] कलम्बाम्ल। जौहर साक़ुल् हमाम।

एसिड-कोमैरिक–[अं० acid-coumaric] दे० "एसिड कुमैरिक"।

एसिड-कोलैलिक–[अं० acid cholalic] एक प्रकार का क्रियात्मक सार जो पित्त से निकाला जाता है। पित्ताम्ल। कोलेलीना–अं०।

एसिड-क्युबेबिक–[अं० acid cubebic] कंकोलाम्ल। तेज़ाब कबाबः।

एसिड-क्राइसोफेनिक–[अं० acid chrysophanic.]रेवन्दचीनी तथा गोआपाउडर इत्यादि से प्राप्त होनेवाला एक अम्लीय सार। क्राइसारोबीन। दे० "अरारोबा"।

एसिड-क्रियाजोटिक–[अं० acid-creosotic] क्रियोज़ोटिकाम्ल।

एसिड-क्रेसिलिक–[अं० acid-cresylic] दे० "एसिडम्-क्रेसिलिकम्"।

एसिड-क्रोटन-आलीइक–[अं० acid-croton-oleic] एक प्रकार का अम्लीय क्रियात्मक सार जो जमालगोटे के तेल द्वारा प्राप्त होता है। जैपालतैलाम्ल।

एसिड-क्रोटनिक–[अं० acid-crotonic] जैपालाम्ल।

एसिड-क्रोमिक–[अं० acid-chromic] दे० "एसिडम् क्रोमिकम्"।

एसिड-क्लोरोजीनिक–[अं० acid-chlorogenic] दे० "क़हवा"।

एसिड-क्विनिक–[अं० acid-quinic]दे० "एसिडम् क्विनिकम्"।

एसिड-क्विनीन-हाइड्रो-क्लोराइड–[अं० acid-quinine-hydrochloride] दे० "क्विनैन"।

एसिड-क्विनोविक–[अं० acid-quinovic] एक प्रकार का तेज़ाबी सत जो सिंकोना से प्राप्त होता है।

एसिड-क्विल्लेइक–[अं० acid-quillaic] के निलाम्ल। एक प्रकार का तेज़ाब जो साबूनी बूटी से प्राप्त होता है।

एसिड-गर्जनिक–[अं० acid-gurjunic] गर्जनाम्ल। दे० "गर्जन"।

एसिड-गाइनोकार्डिक–[अं० acid-gynocardic] तुवरकाम्ल। चालमुगराम्ल।

एसिड-गार्डेनिक–[अं० acid-gardenic] डिकामाली का सत। नाड़ीहिंग्वम्ल।

एसिड-गैलोटैनिक–[अं० acid-gallo-tannic] माजूकषायाम्ल। दे० "माजू"।

एसिड-ग्लिसरो-फास्फेट–[अं० acid-glycerophosphate] ग्लिसरोफास्फेटाम्ल।

एसिड-ग्लिसीर्हाइज़िक–[अं० acid-glycyrhizic] एक प्रकार का क्रियात्मक सार जो मुलेठी से प्राप्त होता है। मधुयष्टिकाम्ल।

एसिड-ग्वायेकानिक–[अं० acid-guaiaconic] पवित्रयष्टिकाम्ल।

एसिड-ग्वायेसिक–[अं० acid-guaicic] पवित्रयष्टिकाम्ल।

एसिड-ग्वायेसिनिक–[अं० acid-guaiacinic] पवित्रयष्टिकाम्ल।

एसिड-चालमूग्रिक–[अं० acid-chaulmoogric] तुवरकाम्ल। चाल मूगरा का तेज़ाब।

एसिड-जिबेण्टिक–[अं० acid-jibantic] जीवंती का सत। जीवन्त्यम्ल।

एसिड-ज़िज़िफ़िक–[अं० acid-zizyfic] वदराम्ल। बेर का तेज़ाब।

एसिड-ज़िज़िफोटैनिक–[अं० acid-zizyphotnnic] वदरीकषायाम्ल।

एसिड-जिम्नेमिक–[अं० acid-gymnemic] गुड़मार का सत। मेषशृङ्ग्यम्ल।

एसिड-टार्टारिक–[अं० acid-tartaric] तिन्तिड़िकाम्ल। इमली का सत।

एसिड-टिग्लिनिक–[अं० acid-tiglinic]

जयपालाम्ल । जमालगोटे का तेज़ाब । दे० "जमालगोटा" ।

एसिड-टैनिक–[अं० acid tannic] कषायाम्ल । वरुकलाम्ल ।

एसिड-ट्रिक्लोर-एसीटिक–[अं० acid-trichlor-acetic] एसिडम्-ट्रिक्लोर-एसीटिकम् ।

एसिड-ट्रिक्लोरफेनिक–[अं० acid-trichlorphenic] दे० "एसीडम्-ट्रिक्लोर-फेनिकम्" ।

एसिड-डाइइथिल-बार्बिट्युरिक–[अं० acid diethyl-barbituric] दे० "बार्बिटोनम्" ।

एसिड-डाइएल्लिल-बार्बि-ट्युरिक–[अं० acid-diallyl-barbituric] डाइएलिल-बार्बि-ट्युरिकाम्ल ।

एसिड-डाइक्लोर-एसीटिक–[अं० acid-dichlor-acetic] डाइक्लोर-एसिटिकाम्ल ।

एसिड-डाइब्रोमोगैलिक–[अं० acid-dibromegallic] गैलोब्रोमोल ।

एसिड-डेस आक्सीकोलिक–[अं०acid-des-oxycholic] एक प्रकार का क्रियात्मक सार जो पित्त से प्राप्त होता है ।

एसिड-डैट्युरिक–[अं० acid-daturic] धत्तूराम्ल । धुस्तूराम्ल ।

एसिड-थाइमिनिक–[अं० acid-thyminic] थाइमिनिक एसिड । दे० "न्युक्लीन" ।

एसिड-नाइट्रिक–[अं०acid-nitric] शोरकाम्ल। नत्रिकाम्ल । शोरे का तेज़ाब ।

एसिड-नाइट्रिक-डायल्युटेड–[अं० acid-nitric-diluted] जलमिश्रित शोरकाम्ल ।

एसिड-नाइट्रो-हाइड्रो-क्लोरिक–[अं० acid-nitro hydro-chloric] शोरकोदहकाम्ल ।

एसिड-न्युक्लीइक–[अं० acid-nucleic]
एसिड-न्युक्लीइनिक–[अं० acid-nucleinic] न्युक्लीनिकाम्ल ।

एसिड-न्युक्लीओटीन-फास्फोरिक–[अं० acid-nucleotin phosphoric] एसिड थाइमिनिक ।

एसिड-परास्मिक–[अं० acid-perosmic] एसिडम् आस्मिकम् ।

एसिड-पाइपेरिक–[अं० acid-piperic] कृष्णमरिचाम्ल ।

एसिड-पाइरोगैलिक–[अं० acid-pyrogallic] एसिडम् पाइरोगैलिकम् ।

एसिड-पालिगोनिक–[अं० acid-polygonic] जौहर अंजबार ।

एसिड-पिक्रिक–[अं० acid-picric] एसिडम् पिक्रिकम् ।

एसिड-पेपाइक–[अं० acid-papayic] पपीताम्ल । दे० "अरण्डखरबूजा" ।

एसिड-पैराक्सि-बेञ्ज़ोइक–[अं० acid-paraoxy-benzoic] कम्पिल्लाम्ल ।

एसिड-पोटाशियम-टार्टरेट–[अं० acid-potassium tartrate] पांशु टर्टरेटाम्ल । दे० "पोटाशियाई टार्त्रास" ।

एसिड-प्युनिको टैनिक–[अं० acid punico-tannic] दाडिम कषायाम्ल । दे० "अनार" ।

एसिड-प्युमेरिक–[अं० acid pumeric] प्युमेरिक एसिड ।

एसिड-प्रुसिक–[अं० acid prussic] प्रुसिक एसिड ।

एसिड-प्लमिएरिक–[अं० acid plumieric] गुलाचीन का सत । जौहर आचीन ।

एसिड-फास्फोरिक–[अं० acid-phosphoric] स्फुरकाम्ल । अगिया-बेताल का तेज़ाब ।

एसिड-फास्फोरिक-डायल्यूट–[अं० acid-phosphoric-dilute] जलमिश्रित स्फुरकाम्ल ।

एसिड-फ्युमेरिक–[अं० acid-fumaric] पर्पटकाम्ल । जौहर शाहतरः ।

एसिड-बेञ्ज़ोइक–[अं०acid-benzoic]लोबानिकाम्ल ।

एसिड-बोरिक–[अं० acid-boric] टंकणाम्ल । सुहागे का तेज़ाब ।

एसिड-बोरेसिक–[अं० acid-boracic] टंकणाम्ल ।

एसिड-बोहोइक–[अं० acid-boheic] एक प्रकार का तेज़ाब जो चाय से प्राप्त होता है ।

एसिड-माइरिस्टिक–[अं० acid-myristic] जातीफलाम्ल ।

एसिड-मेकोनिक–[अं० acid-meconic] एक अम्ल । यह अफीम के मेकोनीन नामक सिद्ध

क्रियात्मक सार के साथ मिला हुआ पाया जाता है।

एसिड-मीथिल क्रोटनिक–[अं० acid methyl-crotonic] मीथिल जयपालाम्ल।

एसिड-मानोक्लोरएसीटिक–[अं० acid-mono-chloracetic] मोनोक्लोर एसिटिक एसिड।

एसिडम–[ले० acidum] [बहु० एसिडा Acida] तेज़ाब। अम्ल। एसिड। क्षार का उलटा। वि० दे० "अम्ल" वा "तेज़ाब"।

एसिडम्-अगारिकम्–[अं० acidum-agaricum] शिलींध्राम्ल। दे० "अगारिकस-एल्बस"

एसिडम्-अम्बर–[ले० acidum-amber] अम्बर का सत।

एसिडम्-अर्गोटिकम्–[ले० acidum-ergoticum] अर्गटाम्ल। दे० "अर्गोटा"।

एसिडम्-आर्सेनिओज़म–[ले० acidum-arseniosum] शुद्ध संखिया। मल्ल।

एसिडम्-आक्सेलिकम्–[ले० acidum-oxalicum] एक प्रकार का अम्ल जो पहले काष्ठ-चूर्ण (Saw-dust) द्वारा प्राप्त किया जाता था; परन्तु अब इसे शर्करा वा गोधूम-चूर्ण पर घन नत्रिकाम्ल की क्रिया से बनाया जाता है। यह नैसर्गिक रूप से चांगेरी आदि वनस्पतियों में भी पाया जाता है। काष्ठिकाम्ल। चुकाम्ल। चूके का सत। अमरोला का सत। (oxalic acid) वि० दे० "काष्ठिकाम्ल"।

एसिडम् आलीइकम्–[ले० acidum oleicum] एक प्रकार का तेज़ाब जो तेलों से प्राप्त किया जाता है। (Oleic acid) दे० "तैलाम्ल"।

एसिडम् आल्फेटोलुइकम्–[ले०acidum-alpha-to-luicum] दे० "आल्फेटोलुइक एसिड"।

एसिडम्-एलेण्टिकम्–[ले० acidum-allanticum] एक प्रकार का सत्व जो एलीकेम्पेन से प्राप्त होता है। यह जल में अविलेय, किन्तु एलकोहल में विलेय होता है। यह प्रबल पचन-निवारक है।

एसिडम्-एसीटिकम्–[ले० acidum-aceticum] एक प्रकार का अम्ल। शुक्र वा सिरका इस अम्ल और जल का मिश्रण है। इसके सिवा कई अम्ल वनस्पतियों के रस में और कई जंतुओं के स्वेद-मूत्रादि में भी यह मिलता है। दे० "शुक्राम्ल"।

एसीडम्-एसीटिकम्-ग्लेशिएली–[ले० acidum-aceticum glaciale] एक स्वच्छ, वर्ण रहित, उग्रगन्धि और तीक्ष्ण तरल अम्ल। (Glacial Ac tic acid) शुद्ध शुक्राम्ल। दे० "शुक्राम्ल"।

एसिडम्-एसीटिल-सैलिसिलिकम्–[ले० acidum-acetyl salicylicum] एक प्रकार का सफेद कुछ-कुछ स्वादरहित स्फटिकीय चूर्ण जो वेतसाम्ल (Salicylic acid) पर एसीटिक अनहाइड्राइड वा ऐसीटिल क्लोराइड की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है और प्रायः आस्पायरीन वा ऐस्पिरीन संज्ञा से सुप्रसिद्ध है।

पर्य्याय—एसीटिल सैलिसिलिक एसिड (acetylsalicylic acid), हेलीकोन (Helicon), सैलीटीन Saletin, (*Xa xa*), ऐसीटोल (acetol) सेलएसीटीन (Salacetin) इत्यादि।

रासायनिक सङ्केत सूत्र

$(C_{9.} H_{8.} O_{4.})$

प्रभाव—ज्वरनाशक, आमवातहर और वेद-नास्थापक।

मात्रा—५ से १५ ग्रेन (=३ से १० डेसीग्राम)।

नोट—यह वेतसीन (Salicin) का एक योग है। विशेष विवरण के लिए दे० "सैलिसिलिक एसिड"।

एसिडम्-ऐरोमेटिकम्-डायल्यूटम्–[अं० acidum-aromaticum-dilutum] जलमिश्रित सुरभित अम्ल।

एसिडम्-ऐसीटो-प्रोपायोनिकम्–[अं० acidum-aceto-propionicum] एसिड लीव्युलिनिक।

एसिडम्-कार्बोलिकम्–[ले० acidum-carbolicum] एक सुप्रसिद्ध कृमिघ्न द्रव्य जो अलकतरे (कोलटार) के भारिक खण्ड और

पुनः विशेष शोधनों से प्राप्त होता है। कार्बोलिक एसिड। कार्बोलिकाम्ल। वि०दे०"कार्बोलिकाम्ल"।

एसिडम्-कार्बोलिकम्-लिक्विडम्–[ले० acidum-carbolicum liquidum] जलमिश्रित कार्बलिक अम्ल।

एसिडम्-कार्बोलिकम्-सिन्थेटिकम्–[ले० acidum carbolicum syntheticum] संधान की विधि द्वारा प्रस्तुत कार्बलिकाम्ल।

एसिडम्-कैथार्टिकम्–[ले० acidum-cathar-ticum.] कैथार्टिक एसिड।

एसिडम्-कैन्थारीडस–[ले० acidum-cantha-ridis] तेलनीमक्खी का तेज़ाब।

एसिडम्-क्रेसीलिकम्–[ले० acidum-cresy-licum] क्रेसोल (cresol), क्रेसिलिक एसिड cresylic acid (अं०)। क्रेसोलाम्ल–हिं०। हल्फुल क्रेसिलिक। हामिज़ क्रेसिलिक, तेज़ाब क्रेसिलिक (उ०)।

यह एक वर्णहीन वा ईषत् पीत वर्ण का द्रव है जो अलकतरे (कोल-टार) से प्राप्त होता है। इससे टार की सी गन्ध आती है। इस अम्ल को उत्तम शीशे की डाटवाली अंबरी रंग की शीशी में रखना चाहिए।

विलेयता—यह एक भाग ८० भाग पानी में तथा एलकोहल, ईथर, क्लोरोफार्म, ग्लीसरीन और आलिव आइल में सरलतापूर्वक घुल जाता है।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—

यह निःसंक्रमण कारक(डिसइन्फेक्टेंट)और जीवाणु नाशक (ऐंटीसेप्टिक) है। इसको सुँघाने से हूपिंग-कफ (कुकरखाँसी) तथा श्वास के अन्यान्य रोगों में उपकार होता है। परन्तु इसका उपयोग किसी भाँति उचित नहीं है।

योग—(*Preparations*)

(१) लाइकर क्रीसोलिस कंपाज़िटस Liquor Cresolis compositus. (ले०)। मिश्रित क्रीसोल द्रव।

निर्माण-क्रम—क्रेसोल ५० भाग, लिनसीड ऑइल ३५ भाग, पोटेशियम् हाइड्रो आक्साइड ५ भाग, एलकोहल ४ भाग और जल आवश्यकतानुसार वा इतना, जिसने से सम्पूर्ण द्रव पूरा सौ १०० भाग होजावे।

नोट—सभी अंश तौल कर डालें, माप कर नहीं।

प्रभाव—यह कार्बोलिक एसिड की अपेक्षा प्रबलतर कीटघ्न (Germicide) बतलाया जाता है।

(२) लाइकर क्रीसोली सैपोनेटस—(Liquor cresoli Saponatus) (ले०)।

निर्माण-विधि—कच्चा (क्रूड) क्रेसोल १ भाग, सैपोकैलीमन १ भाग, दोनों को गरम करके मिलावें। यह एक भूरा पीताभ द्रव बन जाता है।

नोट—डच प्रदेश के फार्माकोपिया में भी यह योग सर्वथा ऐसा ही है। भेद केवल इतना ही है कि उसमें दो प्रतिशत जल भी मिला दिया जाता है। इसी यौगिक की अन्य संज्ञा लाइसोल है जिसका उल्लेख आगे आयेगा।

(३) सोल्युशियो क्रेसोलिस सैपोनेटिस—Solutio Cresolis Saponatis(ले०)।

निर्माण-विधि—क्रेसोल ५० भाग, लिनसीड ऑइल १८ भाग, पोटाशियम् हाइड्राक्साइड ४½ भाग, एलकोहल २ भाग, ग्लीसरीन ६ भाग, परिस्रुत जल उतना, जितने में कि संपूर्ण द्रव पूरा एक-सौ भाग होजाय।

नोट—समभागों को मापकर ही डालना चाहिये। जेज़फ्लुइड नामक अधोलिखित योग कई एक पेटेण्ट औषध का प्रधान अवयव है।

(४) जेज़फ्लुइड Jey's fluid—यह टार आइल का एक यौगिक है। इसमें २० प्रतिशत ट्राइक्रेसोल, राल एवं खार के साथ साबुन की शकल में संमिश्रित होता है। यह जल के साथ मिलकर एक स्थायी एमल्शन का निर्माण करता है। इसका एक वा दो प्रतिशत का लिसयन कार्बलिक सोल्युशन के स्थान में उपयोगित होता है। यह मूत्रमेह (सूज़ाक) तथा नासादौर्गन्ध्य में उपकारी होता है। ४०० भाग में १ भाग की इसकी उत्तरवस्ति और रक्तावरोधक और कृमिनाशक

प्रभाव के कारण यह प्रसूतोपचार में परमोपयोगी है। विसर्प (इरीसेपलस) नामक रोग में इसका मलहम लगाने से लाभ होता है।

(५) पियरसन्स-ऐण्टिसेप्टिक Pearson's anti-septic—पियरसन महाशय का कृमिनाशक द्रव। जेंज़फ्लुइड की तरह यह भी एक प्रकार का यौगिक है।

(६) युरोफेन Europhen—यह एक सूक्ष्म पीताभ गंदुमी रंग का चूर्ण है जिसे शर्बत में मिलाने से सुगंध आती है। यह आयडोफार्म की प्रतिनिधि है। इसे चूर्ण (Powder) वा मलहम रूप में प्रयोगित किया जाता है।

नोट—यह जल और ग्लीसरीन में तो अविलेय है; पर एलकोहल, क्लोरोफार्म और ईथर में सरलतापूर्वक विलेय होता है।

(७) लोसोफान Losophan—यह एक श्वेत वा पीताभ श्वेत चूर्ण है जो जल, एलकोहल, ईथर और क्लोरोफार्म में विलीन हो जाता है।

(८) ट्रामेटोल Traumatol—इसको आयडोक्रेसोल भी कहते हैं। यह दोनों यौगिक क्रोसोल और आयोडीन के यौगिक हैं, जो आयडोफार्म की जगह काम में आते हैं।

(९) लाइसो(जो)ल Lysol—यह एक स्वच्छ भूरे रंग का शर्बती द्रव है जो जल के साथ मिलकर एक साफ सोल्युशन का निर्माण करता है। इसके एक प्रतिशत विलयन (९ से १२ घन शतांशमीटर की मात्रा में) का मस्तिष्क-सौषुम्न-प्रदाह रोग में सुषुम्ना के भीतर सूचीवेध करते हैं। इसका जलीय विलयन (२%) योनि-प्रक्षालनार्थ (Vaginal douch) और व्रण, शस्त्रादि के धावन के लिये शल्य-चिकित्सा में आजकल अधिक प्रयुक्त होता है।

नोट—यह भी लुक से प्राप्त होता है और फीनोल तुल्य गंध देता है।

(१०) सॉलवियोल Solveol—यह भी क्रीसोल का एक यौगिक है जो दाहक नहीं होता। इसको शस्त्र-कर्म में प्रयोगित करते हैं।

एसिडम्-क्राइसोफेनिकम्-[ले० acidum-chryso-phanicum] दे० "अरारोबा"।

एसिडम्-क्रोमिकम्-[ले० acidum-chromicum] क्रोमिकाम्ल। हरिज़ुल्क्रोमिक। हामिज़-क्रोमिक। तेज़ाब-क्रोमिक। क्रोमिक अन्हाइड्राइड Chromic anhydride, क्रोमिक एसिड Chromic acid.-(अं०)।

संकेत-सूत्र CrO_3.

ऑफिशल *Official*

निर्माण-विधि—पोटाशियम् बाई क्रोमेट पर गंधकाम्ल की क्रिया द्वारा यह तेज़ाब प्राप्त होता है।

लक्षण—इसके गंभीर रक्तवर्ण के सूचीवत् बारीक कण होते हैं जो वायु में खुला रखने से पिघल जाते हैं।

विलेयता—लगभग दो भाग यह अम्ल एक भाग जल में विलीन होजाता है। किंतु मद्यसार में मिलाने से इसके अवयव वियोजित होजाते हैं।

प्रभाव—विशुद्ध क्रोमिक एसिड भक्षक वा दाहक (corosive), पचननिवारक (disinfectant) और दुर्गन्धनाशक है।

सम्मत योग

(*Official preparations.*)

लाइकर-एसिडाई-क्रोमिसाई (Liquor-Acidi-chromici (ले०)। सोल्युशन ऑफ क्रोमिक एसिड Solution of chromic-acid (अं०)। क्रोमिकाम्लीय-द्रव(हिं०) साइल हम्ज़ुल्क्रोमिक। साइल तेजाब-क्रोमिक।

निर्माण-विधि—१ औंस क्रोमिक एसिड को ३ औंस परिस्रुत जल में घोल लें। शक्ति—इसमें २५ प्रतिशत क्रोमिक-एसिड होता है और इसका आपेक्षिक भार १·१८५ होता है।

फार्माकोलाजी अर्थात् क्रोमिक एसिड के प्रभाव—वाह्यप्रभाव—विशुद्ध क्रोमिक एसिड अतिशय प्रबल प्रदाहक है। इससे ऑक्सीजन गैस सरलतापूर्वक पृथक् होजाता है और यह निम्न कोटि के कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। अस्तु, यह अत्युत्तम निःसंक्रामक (Disinfectant) एवं दुर्गन्धनाशक है।

थेराप्युटिक्स अर्थात् आमयिक प्रयोग

लाइकर एसिडाई क्रोमिसाई दाहक रूप से मस्सों (Warts), फिरङ्ग जनित चट्टों (Condylomata), दुष्ट व्रणों (Lupus) कोषमय घेघा (Cystic goitre) एवं अन्य कोषाकार अर्बुदों (Cystic tumours) प्रभृति के प्रदग्ध करने में काम आता है। किंतु इसका प्रयोग बहुत ही चतुरतापूर्वक करना चाहिये। अस्तु, इसे नोकदार शीशे की कलम से लगाना चाहिये और उक्त स्थल के आस-पास के तन्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए उस पर प्लास्टर वा मलहम लगा देना चाहिए तथा लिंट का एक टुकड़ा पानी में भिगोकर अपने पास रखना चाहिए; जिसमें यदि तेजाब कुछ अधिक लग जाय, तो उसे लिंट से तत्काल अभिशोषित कर लिया जाय।

प्रति औंस जल में १० ग्रेन क्रोमिक एसिड डालकर बनाया हुआ घोल मुखक्षत विशेषतः फिरंगजन्य क्षतों (Syphilides) के लिए बहुत ही उपयोगी होता है। परन्तु रेन्युला और लिंग्वल एपिथैलियोमा को प्रदाहित करने के लिए तीव्र घोल की आवश्यकता पड़ती है। इसे लगाने के कुछ मिनिट उपरांत एल्युमिनिया एसीटेट के घोल से प्रक्षालित कर डालना चाहिये। अल्सरेटेड गम्ज़ (क्षतयुक्त मसूढ़ों) और फाउल सोर्ज़ (दुर्गंधिमय-क्षतों) के प्रक्षालनार्थ इसका निर्बल घोल, जैसे, $\frac{1}{40}$ की शक्ति का वा उससे किंचित् तीव्र उपयोग में लाया जाता है। इसके १ ग्रेन प्रति औंसवाले घोल को जल में मिलाकर उससे कंठ रोगों में गंडूष कराते हैं।

श्वेत प्रदर—(Leucorrhoea) और पूयमेह (सूज़ाक) में इसके २००० वा ४००० भाग जल में १ ग्रेन एसिड की शक्ति के सोल्युशन की उत्तर-वस्ति करने से लाभ होता है। पैरों से अधिक स्वेद-स्राव होने पर इसके तीन प्रतिशत के घोल का प्रयोग उपकारी होता है।

योग-निर्माण विषयक आदेश

क्रोमिक एसिड अपने संघटन से आक्सीजन सरलतापूर्वक पृथक् कर देता है। अतएव इसको एलकोहल, ईथर वा ग्लीसरीन में मिलाने से तत्क्षण प्रज्वलित होने की आशंका रहती है। अतः इन द्रव्यों के साथ उसे कदापि न मिलाना चाहिये।

एसिडम्-गैलिकम्-[ले० acidum-gallicum] मायिकाम्ल। दे० "माजू"।

एसिडम्-टार्टारिकम्-[ले० acidum-tartaricum] टारटारिक एसिड tartaric acid (अं०)। तिंतिड़िकाम्ल, इमली का सत, इमली का तेजाब, अंगूर का सत—(हिं०)। हम्ज़ुत्तर्तीरी, मिल्हुत्तर्तीरी, तर्तीरुल्ख़मर—(अ०)।

निर्माण-विधि—द्राक्षा-स्वरस अर्थात् अंगूर के शराब बनने के उपरांत शराब के पीपों में जो वस्तु लगी रह जाती है, उसे आंग्ल भाषाविद् टारटार कहते हैं। उसे ही अरबी भाषा में तर्तीर और फ़ारसी में दुर्दे-शराब कहते हैं। इसीसे पोटेशियम टार्टरेट बनाई जाती है और पोटेशियम् टार्टरेट से टार्टरिक एसिड निर्मित होता है। यह अम्लतिंतिड़िका (इमली) और अपक्व द्राक्षा और आम्रादि फलों में प्रचुरता से पाया जाता है, और उनसे ही पृथक् करके स्फटिकाकार "टार्टरी" नाम से विक्रय होता है।

नोट—यह अरल अम्लिका (इमली) और खट्टे तूत में भी होता है। इसलिये कभी उनसे भी इसको प्राप्त कर लिया करते थे। पर अधुना साधारणतः यूरुप में इसको पोटेशियम टार्टरेट से ही प्रस्तुत करते हैं। वि० दे० "तिन्तिड़िकाम्ल"।

एसिडम्-टैनिकम्-[ले० acidum-tannicum] एक प्रकार का अम्ल जो बबूल, खदिरादि अनेक वृक्षों की छालों से प्राप्त किया जाता है। (Tannic acid) कषायाम्ल। वल्कलाम्ल। वि० दे० "वल्कलाम्ल"।

एसिडम् डाइआक्सिफेनिकम्-[ले० acidum-dioxyphenicum] डाइआक्सिफेनिक एसिड।

एसिडम् डाइआयोडो-सैलिसिलिकम्-[ले० acidum-di-iodo-salicylicum] डाइआयोडोसैलिसिलिक एसिड।

एसिडम्-थाइमिनिकम्-[ले० acidum-thyminicum] सोल्युरोल (Solurol.)।

एसिडम्-नाइट्रिकम्-[ले० acidum-nitricum] एक प्रकार का अम्ल जो शोरे पर घन गंधकाम्ल डालकर तपाने से प्राप्त होता है। नत्रिकाम्ल। शोरकाम्ल। शोरे का तेज़ाब। (Nitric-acid) दे० "नत्रिकाम्ल"।

एसिडम्-नाइट्रिकम्-डायल्यूटम्-[ले० acidum-nitricum-dilutum] जलमिश्रित-नत्रिकाम्ल। दे० 'नत्रिकाम्ल"।

एसिडम् नाइट्रो-म्युरिकेटम्-[ले० acidum nitro-muricatum] शुद्ध नत्रिक उदहरिकाम्ल। अम्लराज।

एसिडम्-नाइट्रो-हाइड्रोक्लोरिकम्-[ले० acidum-nitro hydro-chloricum] अम्लराज।

एसिडम्-पाइरोगैलिकम्-[ले० acidum-pyrogallicum] पाइरोगैलिक-एसिड Pyrogallic-acid. पाइरोगैज़ोल Pyrogallol (अं०)। पाइरोगैलिकाम्ल-(हिं०)। हामिज़ पाइरोगैलिक।

रासायनिक सूत्र

$C_{6.}H_{3.}(OH_{3.})$

असम्मत (*Not Official.*)

निर्माण-विधि-माचिकाम्ल (Gallic acid) को १८५ से २०० शतांश के ताप पर ऊर्ध्वपातित करने से वह पाइरोगैलिक एसिड और कार्बनिक में विच्छिन्न हो जाता है।

लक्षण—इस तेज़ाब के लघु श्वेतवर्ण के स्फटिकीय गुच्छे होते हैं। तीव्र प्रकाश से यह रंगीन हो जाता है, विशेषतः इसका सोल्युशन। अस्तु, इसको प्रकाश में न रखकर किसी गम्भीर अम्बरी वर्ण की दृढ़ डाटवाली शीशी में रखना चाहिये।

विलेयता—यह १ भाग २½ भाग पानी में तथा एलकोहल, ईथर और वसा में विलीन हो जाता है।

प्रभाव—धारक (astringent.) और शोणित-स्थापक (Hæmostatic)।

मात्रा—½ से १½ ग्रेन तक।

नोट—अहोरात्रि में १५ ग्रेन से अधिक कदापि सेवन न करे, अन्यथा उग्र विषाक्तता उपस्थित होने की आशंका रहती है।

गुणधर्म तथा उपयोग

इस अम्ल को अधिकतर छाया-चित्रों (फोटोग्राफी) में तथा नाइट्रेट आफ सिल्वर के साथ मिलाकर केशरञ्जन में प्रयोगित करते हैं। पर कोई कोई डाक्टर विचर्चिका (Psoriasis.) आदि रोगों में इसका बाह्य और रक्त-निष्ठीवन (हिमापटिसिस) प्रभृति में आभ्यन्तर प्रयोग भी करते हैं। अस्तु, इसका १० प्रतिशत का घोल बुरुश द्वारा विचर्चिका प्रभृति रोगों में बाह्य रूप से लगाते और रक्त-निष्ठीवन प्रभृति रोगों में इसका आभ्यन्तरिक उपयोग करते हैं। इसका १० प्रतिशत का घोल विचर्चिका पर दिन में दो बार-बुरुश से लगाकर उसे रूई से या स्वच्छ वस्त्र-खण्ड से आच्छादित करना प्रायः लाभकारी सिद्ध हुआ है। एक औंस फ्लेक्सिबल कलोडियम् में ४० ग्रेन उक्र अम्ल योजित कर भी विचर्चिका पर लगाते हैं। इसका यह प्रलेप भी अतीव गुणकारी है—पाइरोगैलिक एसिड ३० ग्रेन, एक्थियोल ३० ग्रेन, एसिड सैलीसिलिक १५ ग्रेन और साफ्ट पेराफीन १ औंस पर्यन्त।

एसिडम्-पाइरोगैलिकम्-आक्सिडाइज्ड-[अं० acidum-pyrogallicum-oxidised] एक प्रकार का कालापन लिए भूरा चूर्ण, जिसे पाइरेलाक्सीन (Pyraloxin) भी कहते हैं। यह जल में शीघ्र घुल जाता है। यह न तो विषवत् प्रभाव करता है और न इससे त्वचा पर प्रदाह ही उत्पन्न होता है। हाल ही में इसकी कतिपय चर्म रोगों में परीक्षा की गई और इसे लाभदायक पाया गया। विचर्चिका रोग पर इसका यह मलहम वा घोल लगाने से अत्यन्त उपकार होता है—

मलहम—पाइरेलाक्सीन ३० ग्रेन, सैलिसिलिक एसिड १० ग्रेन और वैज़ेलीन १ औंस। घोल—१ भाग, पाइरेलाक्सीन को २ भाग बेंज़ोल वा ८ भाग एसीटोल में मिलाकर रोगस्थल पर लगाएँ।

नोट—उग्र व्याधियों में वा जब वह तीव्र गति से फैल रही हो तब इसका व्यवहार न करें। परंतु जब उक्र व्याधि की वृद्धि रुक गई हो और वह घटनेलगीहो उस समय इसके उपयोगसे प्रायः लाभ हुआ करता है।

शिशुओं के शिर पर जो दद्रु (रिंगवर्म) हो जाता है, उसे दूर करने के निमित्त यह मलहम प्रायः फलप्रद सिद्ध हुई है—पाइरेलोक्सीन १० ग्रेन, प्रोसपिटेटेड सल्फर ३० ग्रेन, एमोनिएटेड मर्करी १५ ग्रेन, वैज़ेलीन १ औंस—इनसे यथा-विधि मलहम प्रस्तुत कर प्रयोग में लाएँ।

नोट—यह बृटिश मेटीरिया मेडिका में नाट आफिशियल है।

युगेलोल—(Eugalol) यह पीताभ भूरे रंग का एक शर्बती द्रव है जो पाइरोगैलोल से प्रस्तुत होता है। इसे भी सोरायसिस (विच-र्चिका) पर लगाते हैं।

लेनीगेलोल—(Lenigallol) यह एक श्वेत वर्ण का चूर्ण है जो "पाइरोगैलोल" से बनता है। यह न तो बिषवत् प्रभाव करता है, और न इससे त्वचा पर खराश होती है। इसका ५ या १० प्रतिशत का मलहम सबएक्यूट (नूतन) या क्रानिक (पुरातन) पामा (एक्ज़ेमा) पर, जो प्रायः शिशुओं के कानों और मुखमण्डल आदि पर निकला करती है, लगाने से लाभ होता है।

सैलीगैलोल—(Saligallol) यह भी पाइरोगैलोल और सैलिसिलिक एसिड का एक योग है जिसे चर्म रोग में योजित करते हैं।

एसिडम्-पिक्रिकम्-[ले० acidum-picricum] एक अम्ल जो फीनोल पर घन गंधकाम्ल और नत्रिकाम्ल के मिश्रण की क्रिया से प्राप्त होता है। वि० दे० "पिक्रिकाम्ल"।

एसिडम्-फार्मिकम्-[ले०acidum-formicum] फार्मिक एसिड Formic-acid (अं०)। पिपीलिकाम्ल-हिं० । हामि.ज़ुल् फार्मिक-(उ०)।

रासायनिक सूत्र

($H_2 CO_2$)

यह एक वर्णहीन आर्द्रताशोषक और उग्र गंधमय द्रव है। यह जल और मद्यसार में घुलजाता है तथा कार्बनिलों पर डालने से उन्हें विच्छिन्न कर देता है अर्थात् का ओ २ को निकालता है और पिपीलि-कित (Formate) नामक लवण बनाता है। त्वचापर पड़ने से यह वेदना, दाह और स्फोट उत्पन्न करता है। यह अम्ल पिपीलिकाओं के दंश में पाया जाता है। उनके काटने पर वेदना इसी अम्ल के कारण होती है। उनके अतिरिक्त यह बिच्छू बूटी (Stinging nettle) एवं विषैले जंतुओं के मूत्र, स्वेदादि में भी पाया जाता है। प्रथम तो यह अम्ल पिपीलिकाओं को ही जल सहित स्रवण करने से प्राप्त करते थे। पर अब इसे संधान-विधि (Synthesis) द्वारा प्रयोगशालाओं में भी प्रस्तुत करने लगे हैं।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

यह प्रबल मांसरेश्युत्तेजक है। अस्तु, यह श्रांति को दूर करता एवं कार्यक्षमता को विशेषतया बल प्रदान करता है। वल्य गुणों में यह कोला, कोका और केफीन के सर्वथा समान होता है। यह मूत्रल भी है। किन्तु थियोब्रोमीन से न्यूनतर है। थोड़ी मात्रा में देने से यह क्षुधा की वृद्धि करता है और कृमिनाशक भी है। इसके पीने से विषवत् प्रदाह व वान्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

मात्रा—२ से ५ बूँद तक सोडावाटर प्रभृति में मिलाकर दें।

नोट—कंप (कोरिया) रोग में भी इससे लाभ होता है।

एसिडम्-फास्फोरिकम्-[ले० acidum-phosph-oricum] एक प्रकार का अम्ल (Phosph-oric acid)। वि० दे० "स्फुरकाम्ल"।

एसिडम्-फास्फोरिकम्-कन्सेण्ट्रेटम्-[ले०acidum phosphoricum consentratum] घन स्फूरकाम्ल।

एसिडम्-फास्फोरिकम्-डायल्यूटम्-[ले०acidum-phosphoricum-dilutum]जलमिश्रित स्फूरकाम्ल।

एसिडम्-बोरिकम्-[ले० acidum boricum] टंकणाम्ल। दे० "सुहागा"।

एसिडम्-बेन्ज़ोइकम्-[ले० acidum-benzoi-cum] लोबान का सत। लोबानिकाम्ल। दे० "लोबान"।

एसिडम्-मोर्र हुईकम्-[ले०acidum-morrhui cum] काडमत्स्ययकृत्तैलाम्ल। दे० "काड-मछली"।

एसिडम्–लीव्युलिनिकम्–[ले० acidum-levulinicum] एसिड लीव्युलिनिक ।

एसिडम्-लैक्टिकम्–[ले० acidum-lacticum] दुग्धाम्ल ।

एसिडम्-लैक्टिकम्-डायल्यूटम्–[ले० acidum lacticum dilutum] जलमिश्रित दुग्धाम्ल ।

एसिडम्-लौरीसिकम्–[ले० acidum-lauricicum] लौरिसिक एसिड ।

एसिडम्-सल्फ्युरिकम्–[ले०acidum-sulphuricum] गन्धकाम्ल । दे० "गन्धक" ।

एसिडम्-सल्फ्युरिकम्-एरोमेटिकम्–[ले०acidum sulphuricum aromaticum] सुरभित गन्धकाम्ल । दे० "गन्धक" ।

एसिडम्-सल्फ्युरिकम्-डायल्युटम्–[ले०acidum sulphuricum-dilutum] जलमिश्रित गन्धकाम्ल । दे० "गन्धक" ।

एसिडम्-सल्फ्युरोसम्–[ले०acidum-sulphurosum] एक प्रकार का वर्ण रहित द्रव, जिसमें से गंधक की तीव्र गन्ध आती है । यह भी एक प्रकार का गंधकाम्ल है ।

पर्य्या०—सल्फ्युरस एसिड । गन्धकाम्ल ।

आफिशल (*Official.*)

रासायनिक सूत्र ($H_2 SO_2$)

निर्माण-क्रम—गंधक को खुली हवा या ओषजन (Oxygen) में जलाने या गन्धकाम्लको काष्ठाङ्गार–लकड़ी का कोयला या पारद वा ताम्र के साथ क्वथित करने से सल्फ्युरस अन्हाइड्राइड के जो वाष्प प्रादुर्भूत होते हैं, उनको जल में जज़्ब कर लेते हैं । इसमें पाँच प्रतिशत (भार में) सल्फ्युरस अन्हाइड्राइड होता है । इसका आपेक्षिक भार १·०२५ होता है ।

मिश्रण वा खोट—सल्फ्युरिक एसिड (गंधकाम्ल) और खनिज पदार्थ ।

प्रभाव—यह पराश्रयी कीटघ्न (Antiparasitic.), पचननिवारक (Antiseptic) और दौर्गन्ध्यहर है ।

मात्रा—½ से १ फ्लुइड्राम=(२·० से ४·० घन शतांशमीटर) ।

सम्मत योग

(*Official preparations*)

सोडियाई सल्फिस (Sodii sulphis) । दे० "सोडियम् साल्ट्स" ।

असम्मत योग

Not official preparations

सोडियाई हाइपो-सल्फिस Sodii Hyposulphis, सोडियम् थियोसल्फेट (Sodium theosulphate)–यह स्फटिकीय होता और समानभाग जल में विलीन हो जाता है; किन्तु एलकोहल में अविलेय होता है । इसका १० प्रतिशत का सोल्युशन (घोल) क्लोआज़्मा (व्यङ्ग वा झाईं) और रिंगवर्म (दद्रु) प्रभृति पर लगाने से उपकार होता है । आध्मान (Flatulent) में इसको ५ ग्रेन की मात्रामें भोजन के दो घंटेके उपरांत देने से लाभ होता है । मात्रा—१० से ६० ग्रेन=५ से ३० रत्ती तक=(·६५ से ४ ग्राम)

सल्फ्युरस एसिड के प्रभाव तथा उपयोग

(बाह्य)

सल्फ्युरस एसिड एक प्रबल शोधक–कृमिनाशक और दौर्गन्ध्यहर है । इसलिये प्रायः संक्रामक रोगों में गृह को रोग की छूत से स्वच्छ-सुरक्षित रखने के लिए, उसमें गन्धक सुलगाया करते हैं । जिस कमरे में गन्धक सुलगाना हो, उसके सभी दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द कर देनी चाहिए । यदि छिद्र आदि हों, तो उनपर काग़ज़ चिपका दें । पुनः गंधक को एक दो अँगीठियों में सुलगा कर और कमरे के भीतर रखकर, तुरंत बाहर निकल आना चाहिए ।

नोट—(१) कमरे के भीतर गंधक सुलगा कर उसके कपाटों को ६ या ७ घण्टे तक बंद रखना चाहिए । और फिर उसके समग्र दरवाज़े और खिड़कियाँ खोल देनी चाहिए, जिसमें कमरे में शुद्ध वायु का भलीभाँति आवागमन होने लगे ।

(२) प्रति सहस्र-घन-फुट वायु को स्वच्छ एवं कीटशून्य करने के लिए दो पौंड गन्धक जलाना चाहिये ।

(३) कमरे में गंधक जलाने से पूर्व, उस कमरे के फर्श को पानी से तर कर देना चाहिये,

जिसमें गन्धक के वाष्प उस पर भली भांति प्रभाव कर सकें। क्योंकि सूखे फर्श पर उनका पूर्ण प्रभाव नहीं होता।

(४) धातु के बरतन आदि प्रथम तो कमरे से बाहर निकाल लेने चाहिए, क्योंकि गन्धक के वाष्प से वे कृष्ण वर्ण के हो जाया करते हैं और यदि वहीं रहने देना हो, तो उनपर कोई तेल आदि मल देना चाहिए।

(५) रंगीन पर्दे या वस्त्र प्रभृति कमरे से बाहर निकाल लेने चाहिये, क्योंकि गंधक के वाष्प से उनपर धब्बे पड़ जाते हैं। परंतु जो वस्त्र मलिन या छूतदार हों और उन्हें गन्धक वाष्प द्वारा शुद्ध करना हो, तो उन्हें कमरे में किसी रस्सी प्रभृति पर डाल कर फैला देना चाहिये।

देह को खूब मलकर उष्ण जल से स्नान करने के उपरांत यदि गंधक की धूनी दी जाय, तो स्केबीज अर्थात् तर खाज बहुत शीघ्र आराम हो जाती है। इस अम्ल को समभाग ग्लीसरीन में मिलाकर या १ औंस पानी में २ ड्राम तेज़ाब मिलाकर इसे रिंगवर्म (दद्रु) फाउल अल्सर (दुष्ट व्रण) और क्लोआज़्मा (व्यङ्ग) प्रभृति पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

(आभ्यन्तर)

गैंग्रीनस स्टोमेटायटिस (मुख पाक) और डिप्थेरिटिक अल्सर्ज़ (रोहिणीजन्य व्रण) में इसको द्रवापाश यन्त्र (Spray) द्वारा विकृत स्थल पर छिड़कने से लाभ होता है। इसका आमाशय पर भी वैसा ही पचन-निवारक (antiseptic) प्रभाव होता है जैसा कि त्वचा पर। इसलिये फर्मेंटेटिव डिस्पेप्सिया (ख़मीर जनित अजीर्ण) और पाइरोसिस (एक प्रकार का अजीर्ण जिससे मुख में पानी भर आता है और आमाशय में शूल हुआ करता है) में देने से किसी किसी के मत से लाभ होता है। वमन रोकने के लिए इसे पानी में मिलाकर और आंत्रिक सन्निपातज्वर (टायफाइड) में आन्त्र-शोधक रूप से दिया करते हैं।

एसिडम्-साइट्रिकम्-[ले० acidum-citricum] निम्बुकाम्ल, नीबू का तेज़ाब। दे० "नीबू"।

एसिडम्-सैलिसिलिकम्-[ले० acidum-salicylicum] एक प्रकार का अम्ल। दे० "वेत-साम्ल"।

एसिडम्-स्क्लोरोटिकम्-[ले० acidum-sclero-ticum] एक प्रकार का प्रभावात्मक सार जो अर्गट से प्राप्त होता है।

एसिडम्-हाइड्रियाडिकम्-[ले०acidum hidriodicum] दे० "हाइड्रियाडिक एसिड"।

एसिडम्-हाइड्रियाडिकम्-डायलुटम्-[ले०acidum-hidriodicum-dilutum] डाइल्युटेड-हाइड्रियाडिक एसिड Diluted hidriodic acid. (अं०)। वि० दे० "हाइड्रियाडिक एसिड"।

एसिडम्-हाइड्रो-क्लोरिकम्-[ले० acidum hydrochloricum] एक प्रकार का अम्ल जो साधारण लवण पर गन्धकाम्ल की क्रिया से प्राप्त होता है। लवणाम्ल। उदहरिकाम्ल। नमक का तेज़ाब। Hydrochloric acid दे० "लवणाम्ल"।

एसिडम्-हाइड्रोक्लोरिकम्-डायल्युटम्-[ले०acidum hydrochloricum-dilutum] जल मिश्रित लवणाम्ल।

एसिडम्-हाइड्रो-फ्लोरिकम्-[ले० acidum-hydro-floricum] उदफ्लोरिकाम्ल। दे० "फ्लोरीन"।

एसिडम्-हाइड्रोब्रोमिकम्-[ले० acidum-hydro bromicum] उदब्रोमिकाम्ल। वि० दे० 'ब्रोमीन"।

एसिडम्-हाइड्रोस्यानिकम्-[ले० acidum-hydrocyanicum] हाइड्रोस्यानिकाम्ल। हाइड्रोस्यानिक एसिड।

एसिडम्-हाइड्रोस्यानिकम्-डायल्युटम्-[ले० acidum-hydrocyanicum-dilutum] जलमिश्रित हाइड्रोस्यानिक एसिड। दे० "हाइड्रोस्यानिकाम्ल"।

एसिडम्-हाइपोक्लोरोसम्-[ले० acidum-hypochlorosum] एक डाक्टरी औषध। दे० "युसोल Eusol" तथा "सोडी क्लोरिनेटी लाइकर"।

एसिडम्-हाइपोफास्फोरोसम्-[ले० acidum-hypophosphorosum] एसिड हाइपोफास्फोरस (Acid Hypophosphorus.)

एसिड-युफॉर्बिक-[अं० acid-euphorbic] सत फ़र्फ़्यून । युफार्बिकाम्ल । स्नुह्यम्ल । दे० "फ़र्फ़्यून" ।

एसिड-यूरिक-[अं० acid uric] यूरिकाम्ल ।

एसिड-रीयोटैनिक-[अं० acid-rheotanic] एक प्रकार का कषायाम्लीय सत जो रेवन्दचीनी से प्राप्त होता है । दे० "रेवन्दचीनी" ।

एसिड-रिसिन-ऑलीइक-[अं० acid-ricin-oleic] एरण्ड तैलाम्ल । दे० "रेंड" ।

एसिड-रिसिन-एलैडिक-[अं० acid-ricin-elaidic) एक अम्लीय सार ।

एसिड-लॉरिक-[अं० acid-lauric] लारिक एसिड ।

एसिड-लिन-आलीइक-[अं० acid-lin-oleic] अतसी-तैलाम्ल । दे० "अतसी" ।

एसिड-लिग्नोसेरिनिक-[अं० acid-lignoceri-nic] सत मूँगफली । दे० "मूँगफली" ।

एसिड-लैक्टिक-[अं० acid-lactic] दुग्धाम्ल ।

एसिड-लैक्टिक-डिल-[अं० acid-lactic-dil] जलमिश्रित दुग्धाम्ल ।

एसिड-लैक्ट्युकिक-[अं० acid-lactucic] सतकाहू । दे० "काहू" ।

एसिड-वाइबर्निक-[अं० acid-viburnic] नरबेलाम्ल । दे० 'नरबेल" ।

एसिड-वायोलीनिक-[अं० acid-violenic] सत-बनफ़शा । दे० "बनफ़शा" ।

एसिड-विरिडिनिक-[अं० acid-viridinic) क़हवे का एक सत । दे० "क़हवा" ।

एसिड-वैलेरिएनिक-[अं० acid-valerianic] जटामांस्याम्ल । दे० "जटामांसी" ।

एसिड-शिकिमनक-[अं० acid shikiminic] जौहर अनासफल ।

एसिड-सक्किनिक-[अं० acid-succinic] एक अम्लसार, जो अम्बर से घातक स्रवण-विधि द्वारा प्राप्त होता है । यह लोह, सोडियम्, अमोनियम् और पोटाशियम् के साथ मिलकर लवण बनाता है, जिन्हें सक्सिनित (succinates) कहते हैं । शूल की अनेक दशाओं में जैसे गर्भाशयिक, वृक्कीय और याकृदीय वेदनाओं में एवं गौण रक्तस्थापक रूप से भी ५ ग्रेन की मात्रा में इसका प्रयोग किया गया है ।

एसिड-सल्फ-आलीनिक-[अं० acid-sulph-olenic] आलीनिक एसिड सल्फ ।

एसिड-सल्फो-कार्बोलिक-[अं० acid-sulpho-carbolic] एक अम्ल ।

एसिड-सल्फो-थाइमोलिक-[अं० acid-sulpho-thymolic] एक अम्ल विशेष ।

एसिडसल्फ्युरस-[अं० acid-sulphurous] दे० "एसिडम् सल्फ्युरोसम्" ।

एसिड-सल्फ्युरिक-[अं० acid-sulphuric] गंधकाम्ल ।

एसिड-सल्फ्युरिक-एरोमेटिक-[अं० acid-sulph uric-aromatic] सुरभित गंधकाम्ल ।

एसिड-सल्फ्युरिक-डायल्यूट-[अं० acid-sulph uric-dilute] जलमिश्रित गंधकाम्ल ।

एसिड-साइट्रिक-[अं० acid-citric] निम्बुकाम्ल । नीबू का सत । दे० "नीबू" ।

एसिड-साइट्रोसैलिक-[अं० acid-citrosalic] एक अम्ल जिसका व्यापारिक नाम-नोवा ऐस्पिरीन है ।

एसिड-सिंकोटैनिक-[अं० acid-cincho-tanic] सिंकोने का कषायांश । यह जल तथा मद्यसार में घुल जाता है ।

एसिड-सिंकोना-[अं० acid-cinchona]सिंकोनाम्ल । दे० "सिंकोना" ।

एसिड-सिन्नेमाइलिक-[अं०acid-cinnamylic] दे० "एसिड सिन्नेमिक" ।

एसिड-सिन्नेमिक-[अं० acid-cinnamic] वल्कलाम्ल । त्वगम्ल ।

एसिड-सिल्ला-[अं० acid-scilla] विलायती वनपलांडु का तेज़ाब । दे० "बनपलांडु" ।

एसिड-सीरुलिक-[अं० acid-caerulic] एक प्रकार का अम्लसार जो क़हवे से प्राप्त होता है । दे० "क़हवा" ।

एसिड-सैलिसिलिक-[अं० acid-salicylic] वेतसाम्ल । यह ज्वरघ्न है ।

एसिड-सोजोलिक-[अं० acid-sozolic] सल्फो-कार्बोलिक एसिड का एक नाम ।

एसिड-सोल्युशन आफ मर्क्युरिक नाइट्रेट-[अं० acid-solution of mercuric nitrate] पारद नत्रित अम्लद्रव । दे० "पारा" ।

एसिड-स्क्लोरोटिक-[अं० acid-sclerotic] एसिड-स्क्लोरोटिनिक-[अं० acid sclerotinic] दे० "अर्गोटा" ।

एसिड-स्टियरिक-[अं० acid-stearic] स्टियरिक एसिड । इससे क्रीम प्रस्तुत किया जाता है । यह नारिकेल द्वारा प्राप्त होता है ।

एसिड-स्फेसीलिनिक-[अं० acid-sphacelinic] दे० "अर्गोटा" ।

एसिड-हर्मिनिक-[अं० acid-herminic] जौहर-हरमल । दे० "हरमल" ।

एसिड-हाइड्रिआडिक-[अं० acid-hydriodic] हाइड्रिआडिक एसिड ।

एसिड-हाइड्रिआडिक-डायल्यूटम्-[अं० acid-hydriodic dilutum] जलमिश्रित हाइड्रिआडिक एसिड ।

एसिड-हाइड्रोक्लोरिक-[अं० acid-hydrochloric] लवणाम्ल ।

एसिड-हाइड्रो-फ्लोरिक-[अं० acid-hydrofluoric] दे० "एसिडम् हाइड्रोफ्लोरिकम्" ।

एसिड-हाइड्रोब्रोमिक-[अं० acid-hydrobromic] दे० "एसिडम्-हाइड्रोब्रोमिकम्" ।

एसिड-हाइड्रोब्रोमिक-डायल्यूट-[अं० acid hydrobromic dilute] जल मिश्रित-उदब्रह्मणिकाम्ल । दे० "एसिडम् हाइड्रोब्रोमिकम्" ।

एसिड-हाइड्रोस्यानिक-[अं० acid-hydrocyanic] दे० "हाइड्रोस्यानिक अम्ल" ।

एसिड-हाइड्रोस्यानिक-डायल्यूट-[अं० acid hydrocyanic dilute] जलमिश्रित हाइड्रोस्यानिक अम्ल । दे० 'हाइड्रोस्यानिक अम्ल" ।

एसिड-हाइड्रोस्यानिक-शील-[अं० acid-hydrocyanic, *Scheel.*] शील का हाइड्रोस्यानिक एसिड । यह जल मिश्रित हाइड्रोस्यानिक अम्ल से २½ गुना तीव्रतर होता है ।

एसिड-हाइपोक्लोरस-[अं० acid-hypochlorous] दे० "एसिडम्-हाइपोक्लोरोसम्" ।

एसिड-हाइपोजीइक-[अं० acid hypogeic] भूचणकाम्ल । जौहर मूँगफली । दे० "मूँगफली" ।

एसिड-हाइपोफास्फोरस-[अं० acid-hypophosphorous] दे० "एसिडम् हाइपोफास्फोरोसम्" ।

एसिड-हिप्प्युरिक-[अं० acid-hippuric] बेन्ज़ाइल-ग्लाइकोकाल । इसके अविलेय स्फटिकवत् कण होते हैं ।

एसिड-हेन्नोटैनिक-[अं० acid-hennotannic] हिना का रंजक पदार्थ । रञ्जनी-कषाय अम्ल ।

एसिड-हेस्पेरीटिक-[अं० acid-hesperetic] एक प्रकार का अम्ल ।

एसिडा-[ले० acida] [ए० व० एसिडम्] दे० "एसिडम्" ।

एसिडा-डायल्यूटा-[ले० acida-dilnta] जल-मिश्रित अम्ल । डायल्यूट एसिड । मृदु अम्ल ।

एसिडिक-आक्साइड-[अं० acidic-oxide] आधुनिक रसायन-शास्त्र के अनुसार अम्लजिद (Oxide) का एक भेद । अम्लीय अम्लजिद । अम्लोद्भिद ।

एसिडिटी-[अं० acidity] (१) अम्लता । अम्लत्व । (२) अम्ल पित्त ।

एसिडोल-[अं० acidol] बीटेन का एक हाइड्रोक्लोराइड ।

एसिड्स-[अं० acids] [अं० एसिड का बहु०] तेज़ाब । अम्ल । दे० "एसिड" ।

ए० सी० ई० मिक्सचर-[अं० A. C. E. mixture] एलकोहल, क्लोरोफार्म और ईथर का एक योग विशेष । दे० "क्लोरोफार्मम्" ।

एसीट(ऐसे-)-[अं० acet] सिरका (Vinegar) । शुक्र ।

एसीट-एनीलाइट-[अं० acet-anilide] दे० "एसीट-एनीलाइडम्" ।

एसीट-एनीलाइडम्-[ले० acet-anilidum] एक डाक्टरी औषध, जो शुद्ध शुक्राम्ल और एनीलीन (Aniline) को परस्पर मिलाकर उत्ताप पहुँचाने और परिस्रावित करने से प्राप्त होता है ।

इसके वर्णरहित, निर्गन्ध चमकदार और पर्तदार कण होते हैं, जिनका स्वाद किसी प्रकार तीव्र होता है। यह २३६·५ अंश फारनहाइट के ताप पर द्रवीभूत हो जाता है।

पर्य्याय—ज्वर हरी, ज्वरारि, ज्वरघ्नी–(सं०, हिं०)। ऐण्टिफेब्रीन Antifebrin, फेनिल एसीट एमाइड Phenylacetamide, एसीट-अनीलाइड Acetanilide–(अं०)।

नोट—ऐण्टिफेब्रिन संज्ञा दो शब्दों ऐण्टि= विरोधी+फेब्रीन का जो यूनानी शब्द फेब्रिस अर्थात् ज्वर से व्युत्पन्न है, यौगिक है। अस्तु, ऐण्टिफेब्रीन का अर्थ ज्वरघ्नी हुआ।

ऑफिशल (*Official*) अर्थात्
सम्मत
रासायनिकसूत्र
($C_8 H_9 NO.$)

इतिहास—जर्मन देश निवासी डाक्टर चरहर्ड महाशय ने सन् १८५३ ई० में रासायनिक विधि से उक्त औषध को प्रस्तुत किया और इसका नाम एसीट-अनीलाइड रखा। पर इसके उपरांत डाक्टर काहन प्रभृति ने इसके विशद गुण-धर्म का अन्वेषण कर इसका नाम एण्टि-फेब्रीन रख दिया और तब से यह इसी नाम से सुप्रसिद्ध हो गया। सन् १८८० ई० में इसे ब्रिटिश फार्माकोपिया में सम्मिलित कर लिया गया।

विलेयता–एक भाग ऐण्टिफेब्रीन १९० भाग शीतल जल में, एक भाग १६ भाग खौलते हुये पानी में, एक भाग ४ भाग रेक्टीफाइड स्पिरिट (मद्यसार) में तथा ईथर, बेंज़ोल और क्लोरोफार्म में सुगमतापूर्वक घुल जाता है।

मिश्रण वा खोट—एसीटीन, फेनाजून और एनीलीन के लवण इत्यादि।

प्रभाव—ज्वरघ्न और वेदनास्थापक।

मात्रा—२ से ५ ग्रेन (१२ से ३० सेण्टिग्राम)

नोट—इसे चार-चार घंटे के उपरान्त उस समय तक दे सकते हैं, जब तक कि इसके प्रभाव प्रगट न हों। किन्तु इसे ५ ग्रेन से अधिक मात्रा में और दिन रात में २० ग्रेन से अधिक कदापि न दें।

प्रयोग-विधि—इसको कीचट्स में डालकर या किंचिद् ब्राण्डी या शराब में विलीन कर और उसमें थोड़ा जल मिश्रित कर व्यवहार में लाएँ। अथवा थोड़ा सा कतीरे का चूर्ण पानी में डाल कर और उसमें इसको मिलाकर दें।

प्रभाव तथा उपयोग—गुण-धर्म तथा प्रभाव में ऐण्टिफेब्रीन फेनाज़ूनम् (Phenazonum) और फेनेसेटीनम् (Phenacetinum) के समान है। इसलिये उक्त औषधत्रय के प्रभाव आदि का एक ही जगह "फ़ेनाज़ूनम्" के अन्तर्गत विशद उल्लेख किया गया है। अस्तु, वहाँ ही देखें। इसके उपयोग से अर्द्धावभेदक नामक शिरःशूल दूर होता है।

नोट—आज कल ज्वर उतारने में इसका व्यवहार नहीं होता। क्योंकि इसके उपयोग से परिणाम भयंकर होकर मृत्यु हो जाती है।

नॉट ऑफिशल प्रिपेयरेशञ्स तथा पेटेन्ट औषधें
(*Not Official Preparations*)

(१) एमोनाल Ammonol—एमोनिएटेड फेनिल एसीट एमाइड Ammoniated-Phenyl-acetamide–(अं०)। एक श्वेत वर्ण का चूर्ण जो जल में अल्प विलेय होता है। इसमें एण्टिफेब्रीन, सोडियम् कार्बोनेट और अमोनियम कार्बोनेट तीनों समभाग होते हैं।

मात्रा—५ से २० ग्रेन=२॥ से १० रत्ती= (·३२ से १·३० ग्राम)

उपयोग—इसे कष्टार्त्तव (Dysmenorrhoea) रोग में देते हैं।

(२) पल्विस एसीट-एनीलाइडाई कम्पोज़िटस Pulvis Acet-anilidi Compositus—यह ऐण्टिफेब्रीन का एक यौगिक चूर्ण है, जो कि ब्रिटिश फार्माकोपिया के परिशिष्ट में भी समाविष्ट है।

नोट—ऐण्टिकामनिया Antikamnia जो अमेरिका की एक प्रसिद्ध औषध है, कहते हैं कि वह वस्तुतः ऐण्टिफेब्रीन का उपर्युक्त यौगिक चूर्ण ही है, जिसमें ७ भाग ऐण्टिफेब्रीन, एक भाग केफीन और २ भाग बाईकार्बोनेट आफ सोडियम् होता है।

उपयोग—ऐण्टिकामनिया को ज्वरहर (Antipyretic), स्पर्शाज्ञताजनक (Anodyne) और वेदनास्थापक (analgesic) रूप से ज्वर, वातज वेदना, शिरःशूल, आमवात-प्रभृति व्याधियों में देते हैं।

(३) ऐण्टिनर्वीन Antinervin—सैलब्रोमैलिड Salbromalid इसमें सैलीसिलिक एसिड, ऐण्टिफेब्रीन और पोटाशियम् ब्रोमाइड मिली हुई होती है।

उपयोग—वातवेदना (Neuralgia) प्रभृति में गुणकारी है।

(४) ऐण्टिसेप्सीन Antisepsin या मोनोब्रोम एसीट अनीलाइड Monobrom-Acet-anilide—इसके सफेद नुकीले स्वाद रहित बारीक-बारीक रवे होते हैं। इसमें भी ऐण्टिफेब्रीन मिली हुई होती है।

उपयोग—यह दवा मुखमंडलगत वातवेदना (Facial neuralgia), नाडी-प्रदाह (Neuritis) और आमवात (Rheumatism) में गुणकारी है।

मात्रा—१ से ८ ग्रेन=$\frac{1}{6}$ से ४ रत्ती तक।

नोट—इस औषध को भी ऐण्टिफेब्रीन की तरह अधिक मात्रा में देने से शरीर नीला पड़ जाता है, इत्यादि। (दे० फेनाजूनम् के अंतर्गत ऐण्टिफेब्रीन जन्य-विषाक्तता आदि)

(५) हिप्नोन Hypnone—यह एक बेरंग तरल औषध है, जो १॥ से ५ बूंद तक की मात्रा में गोंद के लुआब या शर्बत प्रभृति में मिलाकर निद्राजनन प्रभाव के लिए व्यवहार में आती है। परन्तु इसका उक्त प्रभाव विश्वसनीय नहीं है तथा इसके उपयोग में सावधानी नितांत अपेक्षित होती है।

(६) मेरेटीन Maretin—यह भी एक सफ़ेद स्फटिकीय चूर्ण है, जिसमें ऐण्टिफेब्रीन होती है। यह पानी में अत्यल्प विलीन होता है।

वातज शिरःशूल (Neuralgic headache) में यह एक गुणकारी औषध है। इसके उपयोग से शिरोशूल तत्काल निवृत्त होता है। ज्वरघ्न रूप से उरःक्षतजन्य तीव्र ज्वर में भी इसका उपयोग करते हैं।

मात्रा—३ से १० ग्रेन=१॥ से ५ रत्ती तक।

(७) न्युरोनल Neuronal—इसमें ४१ प्रतिशत ब्रोमीन होती है।

मात्रा—१० से २० ग्रेन=५ से १० रत्ती तक।

उपयोग—यह औषध निद्राजनक (Hypnotic) और अवसादक (Sedative) गुण के लिये बहुप्रयुक्त होती है।

नोट—मृगी में यह औषध विशेष उपकारी प्रमाणित हुई है। इसमें अधिक परिमाण में ब्रोमीन होने के कारण यह वात-सूत्रों के क्षोभ निवारण करने में उत्तम सिद्ध होती है। इससे नींद और शांति (तसकीन) दोनों ही गुण भली-भाँति प्राप्त होते हैं।

ब्रिटिश मेडिकल जर्नल के सन् १८७५ ई० के चुने हुये लेखों में यह उल्लेख है कि एक पागलखाने में ४० उन्माद रोगियों पर निद्राजनन एवं अवसादन गुण के लिये इस औषध का उपयोग किया गया, (अर्द्ध ग्रेन की मात्रा से उक्त औषध का प्रयोग प्रारम्भ किया गया। पर जब रोग का वेग होता तो इसकी मात्रा ३ ग्रेन तक कर दी जाती। तथापि अहर्निशि में ६ ग्रेन से अधिक एक रोगी को नहीं दी गई।) फलतः अन्य निद्राजनक औषधों की अपेक्षा इसे आशुप्रभावकारी पाया गया।

लंडन का लैंसेट नामक प्रसिद्ध पत्र भी इसका प्रशंसक है। उसके अनुसार अनिद्रा (Insomnia) और कम तीव्र उन्माद (Subacute mania) में यह एक अत्युपयोगी औषध है। इसको कई दिन तक निरंतर देते रहने से इसका कोई हानिकर प्रभाव प्रकट नहीं होता। जब इसे परित्याग कर दिया जाता है तो अन्य निद्राजनक औषधों के विरुद्ध, इसे त्याग देने से रोगी को किसी प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं होता। क्योंकि वह इसका अभ्यासी नहीं होजाता।

(८) फेनलजीन Phenalgin—यह भी ऐण्टिफेब्रीन और अमोनिया प्रभृति का एक सफ़ेद रंग का चूर्ण होता है, जो जल में अविलेय

होता है। इसको वेदनास्थापक (Analgesic), ज्वरघ्न (Antipyretic) और निद्राकारक (Hypnotic) प्रभावों के लिये ज्वर, अनिद्रा और वातज वेदनाओं आदि में बर्तते हैं।

मात्रा—५ से २० ग्रेन=२॥ से १० रत्ती।

(६) सैलफेब्रीन Salefebrin जिसे सैलीसिल एनीलाइड Salicylanilide भी कहते हैं। यह एक सफ़ेद रंगका चूर्ण है,जो जल में अविलेय होता है। यह सैलीसिलिक एसिड की तरह प्रभाव करता है। यह उग्र आमवात (Acute rheumatism) और अर्द्धावभेदक (Migraine) में लाभकारी है।

मात्रा—५ ग्रेन=२॥ रत्ती।

एसीट-एल्डीहाइड–[अं० acet-aldehyde] एक द्रव जो ईथिल मद्यसार से प्राप्त होता है। शुक्राल्डिहाइड।

एसीटम्–[ले० acetum] [बहु० एसीटा] सिरका। शुक्र।

एसीटम्-अर्जीनिई–[ले० acetum-urgineae] बनपलाण्डु-शुक्र। जंगली काँदे का सिरका।

एसीटम्-इपीकेकाइनी–[ले० acetum-ipecacuanae] इपीकेकाइने का सिर्का।

एसीटम्-कैन्थेरीडिज–[ले० acetum-cantharides] केन्थेरीडीज़ का सिर्का। दे० "कैन्थेरिस"।

एसीटम्-माइलेब्रिडिस–[ले० acetum-mylabridis] स्निग्धमाक्षीय शुक्र। तेलनीमक्खी का सिरका।

एसीटम्-युजिनोल–[ले० acetum-euginol] एक प्रकार का सत्व जो लौंग के तेल से प्राप्त होता है।

एसीटम्-सिल्ली–[ले० acetum-scillæ] विलायती वनपलाण्डु शुक्र। विदेशीय वनपलाण्डु का सिरका।

एसीटम्-हाइग्रोफिली–[ले० acetum-hygrophilae] कोकिलाक्षशुक्र। तालमखाने का सिरका।

एसीटा–[ले० aceta एसीटम् का बहु०] शुक्र। सिरका। दे० "सिरका"।

एसीटिक-ईथर–[अं० acetic-aether] शुक्रेथर।

एसीटिक-एसिड–[अं० acetic-acid] शुक्राम्ल। दे० "एसिडम् एसीटिकम्"।

एसीटिक-एसिड-ग्लेशियल–[acetic-acid-glacial] शुद्ध शुक्राम्ल। दे० "एसिडम् एसीटिकम्"।

एसीटिल-एटॉक्सिल–[अं० acetil-atoxyl] आर्स एसीटीन। आर्सोमीन। सोमीन।

एसीटिल-फेनिल-हाइड्राजीन–[अं० acetyl-phenyl-hydrazin] एक ज्वररोधक औषध, जिसे हाइएसीटीन भी कहते हैं। पाइरोडीन।

मात्रा—३ ग्रेन (१॥ रत्ती)।

एसीटिल-सैलिसिलिक-एसिड–[अं० acetyl-salicylic-acid] दे० "ऐस्पिरीन"।

एसीटिल-सैलोल–[अं० acetyl-salol] वेसिपाइरीन। दे० "सालएसीटोल"।

एसीटीन–[अं० acetin] काडलिवर ऑइल का एक क्रियात्मक सार।

एसीटीलीन–[अं० acetylin] एक विवर्ण, दुर्गंधि एवं ज्वलनशील गैस। खटिक कार्बिद(calcium carbide) पर शनैः शनैः पानी पड़ने से इस गैस की उत्पत्ति होती है।

एसीटेट–[अं० acetate] घन शुक्राम्ल के योग से बने हुए लवण, जैसे, सोडियम् शुक्रित (sodium acetate) आदि। शुक्रित।

एसीटेट-आफ-कॉपर–[अं० acetate of copper] ताम्रशुक्रित। ज़ंगार।

एसीटेट-आफ-पोटाशियम्–[अं० acetate of potassium] पांशु शुक्रित।

एसीटैनीलाइड–[अं० acetanilide] दे० "एसीटएनीलाइड"।

एसीटोजाल–[अं० acetosal] "ऐस्पिरीन"।

एसीटोजून–[अं० acetozone] एक कीटघ्न मिश्रण। दे० "बेञ्जाइल एसीटिल पर आक्साइड"।

एसीटोटार्ट्रेट आफ एल्युमिनियम्–[अं० acetotartrate of aluminium] एक डाक्टरी औषध।

एसीटोन-[अं० aceton] अलकतरेका एक संयोजक द्रव्य ।

एसीटोपाइरीन-[अं० acetopyrin] एक श्वेत स्फटिकीय चूर्ण, जो फीनेज़ून और एसाटिक एसिड (शुक्राम्ल) के योग से प्रस्तुत होता है । दे० "फेनेज़ून" ।

एसीटोफेनून-[अं० acetophenone] यह एक वर्णरहित द्रव है । दे० "फेनेज़न" ।

ए० सी० मिक्सचर-[अं० A. C. mixture] एलकोहल और क्लोरोफार्म का एक योग । दे० "क्लोरोफार्मम्" ।

एसूलीस-[यू०] एक वनस्पति, जिसकी पत्ती क़ुलूमस की तरह होती है और उन पर बहुत से रोंगटे होते हैं । इसकी पत्तियाँ जड़ के आस-पास से फूटती हैं । इसका तना चौकोर खुरदरा एवं मीठा होता है । फल मटर के दाने के बराबर होता है । प्रत्येक फली में दो दाने होते हैं । इसकी जड़ बहुशाखी होती है । शाखाएँ लम्बी और मोटी होती हैं जो सूखकर कड़ी और काले रंगकी हो जाती हैं ।

गुण—इसकी जड़की शाखाओं को क्वथित कर पीने से मुँह की राह रक्तपात होना बंद हो जाता है । सीने और कंठ की खुश्की एवं पार्श्वशूल और गृध्रसी को लाभ पहुँचता है । इसको पीसकर शहद के योग से अवलेह प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें उपरोक्त गुण पाया जाता है । (ख० अ०)

एसेश-[बम्ब०] कुंदुर । लोबान ।

एसेंशल-आइल आफ कैम्फर-[अं० essential oil of camphor] कर्पूर का उड़नशील तैल ।

एसेंशल-आइल्ज़-[अं० essential oils] सुगंधित तैल । उड़नशील तैल ।

एसेंशिया-एनीसाई-[ले० essentia-anisi] (Essence of Anise) अनीसून सार ।

एसेंशिया-कैम्फोरी-[ले० essentia camphorae] कर्पूरसार । कपूरार्क ।

एसेंस-संज्ञा पुं० [अं० essence] (१) रासायनिक प्रक्रिया द्वारा खींचा हुआ पुष्पों की सुगंधि का सार । पुष्प-सार । अतर । (२) वनस्पति आदि का खींचा हुआ सार । अर्क । अरक । (३) सुगंधि ।

एसेंस आफ एनिस-[अं० essence of anise] अर्क अनीसून । अनीसून सार ।

एसेंस-आफ केम्फर-[अं० essence of camphor] कर्पूरार्क । अर्क कपूर ।

एसोपगोल-[गु०] ईसबगोल ।

एस्केरोटिक्स-[अं० escharotics] दे० "कॉष्टिक" ।

एस्केलीन-[अं० escalin] दे० "इस्क्युलस-हिप्पोकैष्टेनम्" ।

एस्कोल्टज़िया-कैलिफोनिका-[ले० escholtgia-californica] एक पौधा विशेष ।

एस्क्युलेण्ट-ओक्रो-[अं० esculent okro] भिण्डी । रामतुरई ।

एस्क्युलेण्टल-फाकुर्शाई-[ले०] बकुची । सोमराजी ।

एस्पीन्हो-डू-लेड्रा-[पुर्त० aspinho-do-ladra] लिमड़ी । कींच । दहन-(मरा०) । काकडोहुली (मल०) ।

एँड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जो अंडी के पत्ते खाता है । यह पूर्वी बंगाल तथा आसाम के जिलों में होता है । नवम्बर, फरवरी और मईके महीने में रेशम बनानेवाले कीड़ों का रेशम उत्तम समझा जाता है । मूंगा से अंडी का रेशम कुछ घटकर होता है । (२) इस कीड़े का रेशम । अंडी । मूँगा । (३) पार्ष्णी । पैर का उभड़ा हुआ पिछला हिस्सा ।

(ऐ)

ऐ-संस्कृत वर्णमाला का बारहवाँ और हिन्दी वा देवनागरी वर्णमाला का नवाँ स्वरवर्ण । इसका उच्चारण-स्थान कंठ और तालु है ।

एकशफ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गदहा । (२) गदही का घी । गईभी घृत । सु० ।

वि० [सं० त्रि०] एक खुरवाले पशु संबंधी। एक खुरवाले पशु का।

ऐकाहिक–वि० [सं० त्रि०] (१) एक दिन में होने वाला। (२) एक दिन छोड़कर होनेवाला। वह जो एक दिन बीच में नागा देकर हो। एक बीच में छोड़कर दूसरा। अंतरा।

संज्ञा पुं० [सं०] ऐकाहिक ज्वर। अँतरा ज्वर।

ऐकाहिक-ज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। अँतरा ज्वर।

ऐक्टिनोडैफ्नी-डाइकोटोमा–[ले० actinodaphne-dichotoma] मयूरशिखा। मोर पंखी। दे० "मोरशिखा"।

ऐक्टिनोडैफ्नी-हूकेराई–[ले० actinodaphne-hookeri, *Meison.*] पिस (बम्ब०)

ऐक्टिनोप्टेरिस डाइकोटामा–[ले० actinopteris-dichotoma] मोरशिखा। मयूरक। मोरपंखी।

ऐक्टीई-रैसीमोसी-रैडिक्स–[ले० actaee-racemosae radix] सीमीसोप्युगा की जड़।

ऐक्टीया-ऐक्युमिनेटा–[ले० actæa-acuminata) पौधा विशेष।

ऐक्टीया-रैसीमोसा–[ले० actæa-racemosa] दे० "सीमीसोप्युगा"।

ऐक्टीयास्पिकेटा–[ले० actaea-spicata] पौधा विशेष।

ऐक्टोल [अं० actol] एक प्रकार का सफेद रंग का चूर्ण, जिसकी सूचिकाकार बारीक कलमें होती हैं। वि० दे० "चाँदी"।

ऐक्नीबैसिलस–[अं० acne-bacillus] यौवन पिड़िका कीट। मुँहासे के रोगाणु।

ऐक्नी-बैसिलस वैक्सीन–[अं० acne-bacillus-vaccine] मुंहासे का टीका। दे० "मुँहासा"।

ऐक्रीफ्लेविन–[अं० acriflavine] Trypaflavine] दे० "पिक्स कार्बोनिस प्रिपेरेटा"।

ऐक्रोनीकिया-लारीफालिया–[ले० acronychia-laurifolia, *Blume.*] अकेंद (सिं०)।

ऐक्रोमिगैली–[अं० acromegaly] एक रोग जो उत्पन्न होने के उपराँत पिट्युटरी नामक ग्रंथि के अग्रखण्ड के अधिक कार्य करने से होता है।

लक्षण—इस रोग में हाथ-पैर नीचे का जबड़ा और चेहरे की हड्डियाँ बड़ी होजाती हैं; पुरुषों में नपुंसकता होती है और स्त्रियों के रजोदर्शन नहीं होता; मूत्र में द्राक्षौज (ग्लुकोसाइड) आने लगती है और शरीर दुबला होता जाता है। (इ० श० र०।

ऐगेरिक–[अं० agaric] दे० "अगारिक"।

ऐगेवी–[अं० agave] दे० "अगेवि"।

ऐगमेल–[अं० agmel] मेक्सिकन अगेवी (mexican-agave or maguey) का सांद्रीकृत स्वरस, जिसे चिरकारी ब्राइट नामक व्याधि में ½ औंस की मात्रा में प्रयोगित करते हैं। मेक्सिको में इसका अभिषुत स्वरस (Fermented-sap) मद्य विशेष (Beer) की प्रतिनिधि स्वरूप स्वच्छन्दतया व्यवहार में आता है।

ऐग्यु–[अं० ague] दे० "मैलेरिया"।

ऐग्यु-मक्सचर–[अं० ague-mixture] मैलेरिया में प्रयुक्त इस नाम का एक डाक्टरी योग जो यह है–क्वीनीनी सल्फ ५ ग्रेन, हाइड्रोक्लोरिक एसिड २० बूंद, फेरीसल्फ १ ग्रेन, मैगसल्फ १ ड्राम और परिस्रुत जल आवश्यकतानुसार। प्रथम क्वीनीनी सल्फ और एसिड को द्रवीभूत कर पुनः फेरीसल्फ मिलाएँ। यह एक मात्रा औषध है। इसे मलेरिया ज्वर के प्रारम्भ में देने से ज्वर आना रुक जाता है।

ऐग्युरिन–[अं० agurin] एक प्रकार का श्वेताभ स्फटिक जो जल में अत्यन्त विलेय होता है। इसे सोडियो-सोडिक-ऐसीटेट (sodio-sodic-acetate) भी कहते हैं। दे० थियोब्रोमीन"।

ऐङ्गार-काश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कार्बन द्वयोषित् (Carbondioxide.)।

ऐङ्गुद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इङ्गुदीफल। हिंगोट का फल। गोंदनी का फल। अम०। भैष०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इङ्गुदी वृक्ष। हिंगोट-वृक्ष।

ऐङ्गुलर-लीह्वड-फिजिक-नट–[अं० angular-

leaved-physic-nut] कानन एरंड । जंगली रेंड । बनभेरण्ड–(बं०) ।

ऐच्छिक–वि० [सं० त्रि०] जो अपनी-अपनी इच्छा या पसंद पर निर्भर हो । जो अपनी इच्छानुसार हो या हो सके । इच्छाधीन । वैकल्पिक । Voluntary. मुतह्रिक-बिल्इरादः–अ० । जैसे–ऐच्छिकगति; ऐच्छिक-मांस ।

ऐच्छिक-कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इच्छाधीन-कला ।

ऐच्छिक-गति–संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर की वह गति, जो हमारी इच्छानुसार होती है और हो सकती है । जैसे, चलना, फिरना, बोलना, हाथ-उठाना, भोजन चबाना । इच्छाधीन-गति ।

ऐच्छिक-मांस-पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का मांस तंतु, जो कंकाल से लगा हुआ और पेशियों में विभक्त होता है । इच्छाधीन मांस । (Voluntary-muscle.) ।

ऐज़ा अरीज़ा–[यू०] एक वृक्ष जो ऊन की तरह होता है । कोई-कोई कहते हैं, कि इसकी डालियों पर ऊन की तरह एक चीज़ होती है । किसी-किसी के मत से यह एक उद्भिज्ज है, जिसकी पत्तियाँ "आस" की पत्तियों की तरह होती हैं । इसकी जड़ और पत्तों में से अंगूर की बेल की तरह एक लंबे डोरे की तरह आकर्षणी निकलती है, जो आस-पास के वृक्षों पर चिमट जाती है । इन तंतुओं की छोरों पर फूल लगते हैं । इसके चर्वण से जिह्वा पर अत्यन्त खिंचावट प्रतीत होती है ।

टिप्पणी–गीलानी के अनुसार यह शब्द फ़ारसी के सदृश है ।

गुण-धर्म, प्रयोग—

इसके नौ माशे चूर्ण खाने से रक्तपात रुक जाता है और अतीसार की शांति होती है । यह आंत्रक्षत में उपयोगी है । इसके प्रयोग से आर्त्तव-स्राव और गर्भाशयिक परिस्राव रुक जाता है । यही गुण-इसके हरे एवं शुष्क पत्तों के प्रलेप से भी होता है । जड़ में संग्राहक शक्ति विशेष है । यह समस्त अंगों से रक्तक्षरण होने को भी रोकता है । (ख० अ०) ।

ऐज़ाडिरैक्टा-इंडिका–[ले० azadirachta-indica] नीम वृक्ष । आज़ाद-दरख़्ते हिंदी ।

ऐजेकोल–[अं० ajecol] एक प्रकार का तैलीय द्रव, जिसे वेदना दूर करने के लिये व्यथा-स्थान पर लगाते हैं । दे० "जाएकोल" ।

ऐज़मा–[अं० asthma] श्वासरोग । दमा । दुहर ।

ऐज़मा-पाउडर–[अं० asthma-powder] श्वासहर चूर्ण । दे० "पोटेशियाई नाइट्रास" वा "शोरा" ।

ऐज़मा-वीड–[अं० asthma-weed] एक प्रकार का पौधा ।

ऐञ्जेलिका–[अं० angelica] आर्कअञ्जेलिका आफिसिनेलिस (Archangelica-officinalis.)

पर्य्याय—आ० ऐट्रोपर्प्युरिया (A. Atropurpurea) ले० । गार्डेन अञ्जेलिका (Garden angelica) इं० । सुम्बुले ख़ताई –अ० । अञ्जलीनह्–फ़ा० । बालछड़ भेद–हिं० । (पी० वी० एम; इं० है० गा०)

गर्जर वा अजमोदादि वर्ग

(*N. O. Umbelliferœ.*)

उत्पत्तिस्थान—यूरुप का उत्तरी भाग, एशिया और अमेरिका ।

वानस्पतिक विवरण—यह क्षुप २ से ४ फीट ऊँचा, द्विवर्षीय एवं जलीय स्थलों में उगता है और लगभग समग्र संयुक्तराज्य में मार्ग-तटों पर सरसब्ज़ नज़र आता है । इसमें जून से सितम्बर मास तक पुष्प आते हैं । कलियाँ हरित-श्वेत होती हैं । इसकी जड़ वृहत् मांसल (गूदादार), रालदार, चरपरी और सुगंधियुक्त होती है । हैम्बर्ग (Hamburg) से यह औषधी शुष्कावस्था-में लाई जाती है । लंडन के चतुर्दिक् भी इसकी कृषि की जाती है ।

प्रयोगांश—मूल, पौधा और बीज ।

औषध-निर्म्माण एवं मात्रा—

जड़ का चूर्ण; ३० से ६० ग्रेन (१५–३० रत्ती) । तरल सत्व (जड़ का); ३० से ६० मिनिम (बूँद) । तरल सत्व (बीज का); ५ से ३० मिनिम (बूँद) ।

प्रभाव तथा उपयोग

इसकी जड़ सुगंधित आमाशय-बलप्रद और वायु-निस्सारक है और आमाशय को शक्तिप्रदान कर क्षुधा उत्पन्न करती है। बलकर (बल्य) औषधियों के साथ संयोजित करने से यह आध्मान, उदरशूल और निर्बलतायुक्त आमाशय की पीड़ा में लाभप्रद है। इसके फल में भी ये ही (प्रागुक्त) गुण हैं। इसके कोमल काण्ड एवं पत्तियों की नसें शर्बत में उबाली जाती है। शुष्क होने पर यह सराकरीय अङ्गलीनह बन जाती है। भोजनानन्तर भक्षण करने से यह अति ग्राह्य एवं आमाशय बलप्रद होती है। इसकी ताजी जड़ को कूट-पीसकर ग्रन्थि पर प्रस्तर करने से वह लय हो जाती है। इसको सिरके में डुबो रखकर उसे पान करने से यह संक्रमण वा क्षत के विपरीत एक अव्यर्थ रक्षक है। (पी० वी० एम०)।

ऐञ्जेलिका-आर्केञ्जेलिका–[ले० angelica-archangelica] बालछड़ का एक भेद। सुंबुलख़ताई। दे० "ऐञ्जेलिका"।

ऐञ्जेलिका-गार्डन–[अं० angelica-garden] बालछड़ का एक भेद। सुंबुलख़ताई।

ऐञ्जेलिका-ग्लाका–[ले० angelica-glauca, *Edge.*] ऐञ्जेलिका भेद।

ऐञ्जेलिका-रूट–[अं० angelica-root] बालछड़ मूल। बीख़ सुंबुलख़ताई। अंगलीनः।

ऐञ्जेलिका-सीड–[अं० angelica-seed] बालछड़ का बीज। तुख़्म सुंबुलख़ताई।

ऐञ्जेलिम्–[अं० angelim] जोंकमारी। जैङ्गनी।

ऐञ्जेलिम्-अमरगोसो–[अं० angelim-amargoso] अरारोबा।

ऐञ्जेलिम्-आर्वेंसिस–[ले० angelim-arvensis] जोंकमारी। जैङ्गनी।

ऐटलैण्टिया-मानोफाइला–[ले० atalantia-monophylla, *Corr.*] अटवी जम्बीर। माकड़-लिम्बु। जङ्गली नीबू।

ऐटालुगल–[उ० प० सू०] मधुमालती।

ऐटिपुच्छ–[ते०] इन्द्रायन। इन्द्रवारुणी।

ऐटिमाल–[ते०] छिरेटा। छिलहिंड। पानीजमा। जलजमनी।

ऐटिलोसिया-बार्बेटा–[ले० atylosia-barbata, *Baker.*] माषपर्णी। वनमाष।

ऐटीब्रीन–[अं० atebrin] एक डाक्टरी औषध, जो हाल ही में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा निर्मित की गई है। यह क्वीनीन से पाँच सो गुना अधिक प्रभाव रखती है। मूल्यवान होने के कारण सर्व-साधारण इसके गुण से अपरिचित हैं। अभी हाल ही में यह जर्मन रसायनशास्त्रियों द्वारा आविष्कृत हुई है।

ऐट्रिप्लेक्स-लेसिनिएटा–[ले० atriplex laciniata, *Linn.*] माषपर्णी। वनमाष।

ऐट्रिप्लेक्स-हार्टेंसिस–[ले० atriplex-hartensis, *Linn.*] पौधा विशेष।

ऐट्रोपा-एक्युमिनेटा–[ले० atropa-acuminata, *Royle.*] बेलाडोना का भेद।

ऐट्रोपा-बेलाडोना–[ले० atropa-belladona, *Linn.*] लुफाह बर्री। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपा मैण्ड्रागोरा–[ले० atropa-mandragora] यबरूजुस्सनम्। लुफ़ाह। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीन–[अं० atropine] धन्तूरीन। जौहरलुफ़ाह। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीन-आइन्टमेण्ट–[अं० atropine-ointment] धन्तूरीनाभ्यङ्ग। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीन-मीथिल-नाइट्रेट–[अं० atropine-methyl-nitrate] एक प्रकार का श्वेत चूर्ण, जो जल में घुल जाता है। इसे युमिड्रीन भी कहते हैं। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीन-सल्फेट–[अं० atropine-sulphate] धन्तूरीन गन्धित। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीना–[ले० atopina] दे० "एट्रोपीन"।

ऐट्रोपीनी-मीथिल-ब्रोमाइड–[ले० atropinæ-methyl-bromide] यह एक सफेद कलमदार चूर्ण है। इसे 'मिड्रिएसीन' भी कहते हैं। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीनी-वैलेरिएनास–[ले० atropinæ-valerianas] दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीनी-सल्फास–[ले० atopinæ-sulphas] धन्तूरीन गन्धित्। दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीनी-सैण्टोनास–[ले० atropinæ-santonas] दे० "बेलाडोना"।

ऐट्रोपीनी-सैलिसिलास-[ले० atropinæ-salicylas] एक प्रकार का श्वेत स्फटिकीय चूर्ण जो केवल में ही किसी प्रकार विलीन होता है।

ऐड़-वि० [सं० त्रि०] बलकारक पदार्थ युक्त।

ऐड़क-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का भेंड़ा।

ऐडजिवर्थिया-गार्डेनरी-[अं०] कचूटी। अरीमली-(नैपा०) इं० हैं० गा०।

ऐडमास-[ले० admas] हीरा। वज्र। अल्मास (फ़ा०)।

ऐडर्सटंग,-विंडिंग-[अं०adder's,-tongue winding] भूतराज। (Ophioglosum floxnosum.)

ऐड्डक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "एड्डुक"।

ऐडमून-[अं० adamon] एक प्रकार का श्वेत स्वादरहित चूर्ण जो अपस्मार और योषापस्मार (हिस्टीरिया) में उपयोगी है।

मात्रा—१० से १५ ग्रेन (५ से ७॥ रत्ती)।

ऐडेलीन-[अं० adalin] एक सफेद रंग का स्फटिकीय चूर्ण, जिसे निक्टाल Nyctal (Browodiethylacetyluren)भी कहते हैं।

गुण-धर्म तथा उपयोग—

जिद्राजनक रूप से इसका प्रचुर प्रयोग होता है। इसमें अल्प वेदनास्थापक गुण भी है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है, कि वात प्रकृति के रोगियों (Neurotic) पर इसका कुछ अवसादक प्रभाव होता है। ५ से ७॥ रत्ती की मात्रा में टिकिया रूप में वा कीचट्स में डालकर रात्रि में शयन से आध घंटे पूर्व सेवन करने से साधारण अनिद्रा रोग में इसका संतोषदायक निद्राजनक प्रभाव होता है। (ब्रि० मे० मे०)।

ऐड्रीनेलीन-[अं० adrenalin] उपवृक्क का क्रियात्मक सार। वि० दे० "एड्रीनलीन"।

ऐड्रीनेलीन-क्लोराइड-सोल्युशन-[अं० adrenalin-chloride-solution] उपवृक्कीन हरिन् विलयन। दे० "उपवृक्क"।

ऐड्रीनेलीनम्-[ले० adrenalinum] उपवृक्कीन। दे० "उपवृक्क"।

ऐड्रीनाल-[अं० adrenal] दे० "उपवृक्क"।

ऐड्रीनेलेनी-हाइड्रोक्लोरिकम्-[ले०adrenalinae-hydrochloricum] दे० "एड्रीनलीन"।

ऐड्रोवेइन-[ले० adrovaine] दे० "उपवृक्क"।

ऐडाटोडा वैसिका-[ले० adhatoda vasica, *Nees.*] अड़ूसा। वासक।

ऐडीसिव-प्लास्टर-[अं० adhesive plaster] दे० "एम्प्लास्ट्रम् रेज़िनी"।

ऐण-वि० [सं० त्रि०] काले हिरन का चमड़ा आदि।

ऐणिक-वि० [सं० त्रि०] काले हिरन का शिकार करनेवाला। एण मृग घातक। व्याक०।

ऐणेय-वि० [सं० त्रि०] काली हिरनी का चमड़ा आदि।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्णसार मृग। कालाहिरन।

ऐणेयक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलबालुक।

ऐण्टएरिस-आइनोक्सिया-[ले० antiaris-innoxia, *Bl.*] पौधा विशेष।

ऐण्टएरिस-ओवेलिफोलिया-[ले० antiaris-ovalifolia.] पौधा विशेष।

ऐण्टएरिस-टाक्सिकेरिया-[ले०antiaris-toxicaria, *Lesch.*] चाँदकुड़ा। चाँदुल-बं०।

ऐण्टएरिस-सैक्सिडोरा-[ले० antiaris-saccidora, *Dalz.*] पौधा विशेष।

ऐण्टएरीन-[ले० antiarin] सोंपसुपड़ी का एक क्रियात्मक सार।

ऐण्टि-ऐन्थ्रैक्ससीरम-[अं० anti-anthrax-serum] दे० "ऐन्थ्रैक्स"।

ऐण्टिकामनिया-[अं० antikamania] ऐण्टिफेब्रीन मिश्रित एक डाक्टरी योग। दे० "ऐसेट-अनीलाइडम्"।

ऐण्टिकारिस-अरेबिका-[ले० anticharis-arabica] पौधा विशेष।

ऐण्टिकोलीन-[अं० anticolin] दे० "कौमिस"

ऐण्टि-गाइटर वैक्सिन-[अं० antigoitre-vaccine] गलगण्ड नाशक सीरम।

ऐण्टिगोनो-काक्कससीरम्-[अं० anti-gonococcus serum] पूयमेहकीटघ्न सीरम्।

ऐण्टि-गोनोरियासीरम-[अं० antigonorrho-

ea-serum vaccine] सूज़ाकहर सीरम वा टीका । दे० "सुज़ाक" ।

ऐण्टि-टाक्सिकसीरम-[अं० antitoxic-serum विषघ्न रक्तवारि ।

ऐण्टिटाक्सीन-[अं० antitoxin] दे० "एण्टि-सीरम्" ।

ऐण्टि-टायफाइड-सीरम्-[अं० anti-typhoid-serum] आंत्रिकज्वरहर रक्तवारि । दे० "टाय-फाइड" ।

ऐण्टि-टेटेनस-सीरम-[अं० anti-tetanus serum]
ऐण्टि-टेटेनिक सीरम्-[अं० anti-tetanic serum]
धनुष्टंकारहर सीरम ।

ऐण्टि-ट्युबरकुलोसिस-सीरम्-[अं० anti-tuberculosis serum]
ऐण्टि-ट्युबरकुल-सीरम्-[अं० anti-tubercle-serum]
यक्ष्मानाशक रक्तवारि ।

ऐण्टि-ट्युसीन-[अं० anti-tussin]दे० "एसिडम् हाइड्रोक्लोरिकम्" ।

ऐण्टि-डिफ्थेरिटिक-सीरम्-[अं० anti-diphtheritic-serum] गलरोहिणीनाशक सीरम् ।

ऐण्टि-डिसेण्टेरिक-सीरम्-[अं० antidysenteric-serum] प्रवाहिकाहर सीरम् ।

ऐण्टि-डिसेण्टेरिका-[ले० antidysenterica] कुरैया । कुड़ा । कुटज ।

ऐण्टिडेस्मा-ऐलेक्सिटेरिया-[ले० anti-desma-alexiteria] नोलि-तलि-मरम्-(मल०) ।

ऐण्टिडेस्मा-घीसेम्बिला-[ले० antidesma-ghaesembilla] जोन्हरी । ज्वार ।

ऐण्टिडेस्मा-डाइएण्ड्रम्-[ले० antidesma-diandrum] अम्लो । अमारी । सरसोली ।

ऐण्टिडेस्मा-ब्युनियस-[ले० anti-desma bunius, *Muell.*] नोलि-तलि-(मरा०) । हिमल चेरी-नैपा०] ।

ऐण्टिडेस्मा-मेनेसु-[ले० antidesma menasu] कुम्युङ्ग । तुङ्गचर-(लेप०) ।

ऐण्टिडोट-[अं० antidote] प्रतिविष । विषघ्न । अगद ।

ऐण्टिथर्मिन-[अं० anti-thermin] संधान-क्रिया-विधि द्वारा प्रस्तुत एक नूतन औषध । यह तापहर है; परन्तु इससे उदरशूल उत्पन्न होता है । अस्तु इसका अधिक व्यवहार नहीं होता ।
मात्रा—८ ग्रेन (४ रत्ती) वयस्क मात्रा ।

ऐण्टिथाइराइड-सीरम्-[अं० anti thyroid serum] चुल्लिकाहर सीरम् ।

ऐण्टिथाइराइडीन-मोबियस-[ले० antithyroidin-moebius]दे० "ऐण्टिथाइराइड सीरम्" ।

ऐण्टिनर्वीन-[अं० anti-nervin] दे० "एसीट एनीलाइडम्" ।

ऐण्टिनोसिन-[अं० anti-nosin] यह नोसोफिन का सोडियम साल्ट है । दे० "आयोडोफार्म" ।

ऐण्टिन्युमोकाकिकसीरम्-[अं० anti-pneumo coccic-serum] न्युमोनियानाशक रक्तवारि । दे० "न्युमोनिया" ।

ऐण्टि न्युरॉल्जिक-[अं० anti-neuralgic] वातजवेदनानाशक ।

ऐण्टि-पर्टस्सिस-वैक्सीन-[अं० anti-pertussis vaccine] कूकरखाँसी का टीका ।

ऐण्टिपायरीन-[अं० anti-pyrin] दे०"फीने-ज़ून" ।

ऐण्टिपायरीन-ऐमिग्डलेट-[अं० anti-pyrine amygdalate] टस्सोल ।

ऐण्टिपायरीन-ऐसीटो-सैलसिलेट-[अं० anti-pyrine-acetosalicylate] ऐसीटोपाय-रीन । दे० "फ़ीनेज़ून" ।

ऐण्टिपायरीन-कैफीनो-साइट्रिकम्-[अं० anti-pyrine-cafeino-citricum] मिग्रेनीन । दे० "क़हवा" वा "काफीना" ।

ऐण्टिपायरीन-केफीनो-साइट्रेट-[अं० anti-pyrine caffeino-citrate] मिग्रेनीन । दे० "क़हवा" ।

ऐण्टिपायरीन-टेबलेट्स-[अं० anti-pyrine-tablets] ऐण्टिपायरीन द्वारा निर्मित टिकिया । दे० "फीनेज़ून" ।

ऐण्टिपायरीन-फव्वार-[अं० anti-pyrine-favvar] ऐण्टिपायरीना एफ़रवेसेंस (बी० पी० सी) । दे० "फ़ीनेज़ून" ।

ऐण्टिपायरीन-मैण्डिलेट–[अं० anti-pyrine-mandilate] एक प्रकार के कणयुक्त स्फटिक जो जलविलेय होते हैं। टस्सोल। दे० "फीनेज़ून"।

ऐण्टिपायरीनसैलिसिलेट–[ले० anti-pyrine salicylate] एक डाक्टरी औषध। इसकी सफेद किंचित् मधुर कलमें होती हैं। यह जलविलेय होती हैं। सैलीपायरीन। दे० "फीनेज़ून"।

ऐण्टिप्लेग इंनाक्युलेशन–[अं० anti-plague-innoculation] ताऊन का टीका।

ऐण्टिप्लेग-वैक्सीन–[अं० antiplague vaccine]
ऐण्टिप्लेग सीरम्–[antiplague serum]
ताऊन का टीका।

ऐण्टिफेब्रीन–[अं० antifebrin] एक डाक्टरी ज्वरनाशक औषध। दे० "एसीटएनीलाइडम्"।

ऐण्टि-फ्लाजिष्टिक–[अं० anti-phlogistic] शोथहर। प्रदाहनाशक।

ऐण्टि-फ्लाजिष्टीन–[अं० anti-phlogistin] एक पेटेन्ट औषध जिसे प्रदाहयुक्त स्थल पर लेप करने से वेदना, सूजन और जलन कम होजाती है। इसलिए इसको न्यूमोनिया (फुफ्फुसौष) और फुफ्फुसावरण प्रदाह (प्लुरिसी) आदि प्रदाहिक रोगों में दर्द एवं प्रदाह स्थल पर प्रलेप करते हैं।

योग-निर्माण—बोरिक एसिड, सैलिसिलिक एसिड, आयोडीन, फेरसकार्बोनेट, ग्लीसरीन और कतिपय सुरभित तैल इत्यादि। वि० दे० "ग्लीसराइनम्"।

ऐण्टि-बेरिबेरीन–[अं० antiberiberin] बेरीबेरी नाशक।

ऐण्टिमनी–[अं० antimony] सुर्मा। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमनी-क्लोराइड–[अं० antimony-chloride दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमनी-टार्टेटम्–[अं० antimony-tartratum] दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमनी-टार्ट्रेटस–[अं० antimony-tartratus] दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमनी-सल्फ्युरेटेड–[अं० antimony-sulphurated] दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमाल्टा-फीवर-सीरम्–[अं० antimalta-fever-serum] माल्टाज्वरनाशक सीरम्।

ऐण्ट-मास्किटो-लोशन–[अं० antim squito-lotion] मशकवारणीय द्रव। दे० "एसिडम्-कार्बोलिकम्"।

ऐण्टिमेनिञ्जाइटिस-सीरम्–[अं० antimeningitis-serum] ऐण्टिमेनिञ्जोकॉकस-सीरम् (Antimeningococcus Serum)। मस्तिष्क-सौषुम्न ज्वरनाशक रक्तवारि। गर्दनतोड़-ज्वरनाशक सीरम्।

ऐण्टिमोनियम्–[ले० antimonium] सुर्मा। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियम्-(–याई) ऑक्साइडम्–[ले० antimonium (–nii) oxidum] अञ्जनोष्मिद। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियम्-टार्ट्रेटम्–[ले० antimonium-tartratum] तिन्तिड़िताञ्जन। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियम्-नाइग्रम्-प्युरिफिकेटम्–[ले०] शुद्ध काला सुर्मा।

ऐण्टिमोनियम्-सल्फ्युरेटम्–[ले० antimonium sulphuratum] स्रोताञ्जन। सुर्मा। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियलपाउडर–[अं० antimonial-powder] अञ्जन चूर्ण। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियल-वाइन–[अं० antimonial-wine] अञ्जन घटित सुरा। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियस-आक्साइड–[अं० antimonious-oxide] अञ्जनोष्मिद। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियस-टार्टरेटम्–[ले० antimonious-tartratum] तिन्तिड़िताञ्जन। दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियस-सल्फाइड–[अं० antimonious-salphide] दे० "अञ्जन"।

ऐण्टिमोनियाई-आक्साइडम्–[ले० antimonii-oxidum] दे० "ऐण्टिमोनियम्-आक्साइडम्"।

ऐण्टिमोनियेलिस-पल्व–[अं० antimonialis-pulv] दे० "पल्विस-ऐण्टिमोनियेलिस"।

ऐण्टिमोनियेलिस-वाइन–[अं० antimonialis-wine] दे० "वाइनम् ऐण्टिमोनिएलिस"।

ऐण्टिरुमीन–[अं० anti-rheumin] दे० "एसिडम् हाइड्रोफ्लोरिकम्"।

ऐण्टिरुमेटिक-सीरम्–[अं० anti-rheumatic-serum] दे० "ऐण्टिष्ट्रेप्टोकाकाइ-सीरम"।

ऐण्टिरुमेटीन–[अं० antirheumatin] मिथिलीन ब्ल्यू और सोडासैलिसिलास का एक योग। दे० "मिथिलीन ब्ल्यू"।

ऐण्टिर्हाइनिकएसिड–[अं०] एक प्रकार का ग्ल्युकोसाइड जो डिजिटेलिस की पत्तियों से प्राप्त होता है। दे० "डिजिटेलिस"।

ऐण्टि-र्रहाइनम्–[अं० anti-rrhinum] (Snap-dragon) पौधों की एक जाति।

ऐण्टि-र्र्हाइनम्-ग्लाकम्–[ले० antirrhinum-glaucum] पौधा विशेष।

ऐण्टि-र्र्हाइनम्-ह्युमाइल–[ले० antirrhinum-humile] शाहतरा।

ऐण्टिलिटिक-सीरम्–[अं० anti-lytic-serum] पर्या०–ऐण्टिल्युसीन (antilusin), (normal horse serum) दो ड्राम की मात्रा में त्वगधोऽन्तःक्षेप द्वारा अथवा मुख द्वारा इसका भूरि प्रयोग होता है और यह द्वादशांगुलीयांत्र क्षत, रक्ताल्पता, टायफाइड ज्वर, उरःक्षत(Tuberculosis) आदि रोगों में उपयोगी सिद्ध होता है। शिथिल व्रणों पर इसका प्रयोग करने से यह अत्यन्त फलप्रद प्रमाणित हुआ है।

ऐण्टिल्युटीन–[अं० antiluetin] एक डाक्टरी औषध जो देखने में टार्टार एमेटिक की आकृति का होता है। इसे ऐण्टिमोनियाई एट अमोनियो पोटेशियाई टार्ट्रेट (Antimonii et ammonio-potassii-Tartrate) भी कहते हैं।

ऐण्टिल्युसीन–[अं० antilusin] दे० "ऐण्टिलिटिक सीरम्"।

ऐण्टि-वीनीन–[अं० antivenene] सर्पविषघ्न रक्तवारि। तिर्याक़ ज़हर मार। दे० "साँप"।

ऐण्टि-सीरम्–[अं० anti-serum] कीटाणुहर रक्तवारि।

ऐण्टिसेप्टिक-लोशन–[अं० antiseptic lotion] पचननिवारक घोल। विशोधक द्रव।

ऐण्टिसेप्टीन–[अं० antiseptin] एक डॉक्टरी योग। दे० "ज़िन्साई सल्फास"।

ऐण्टिसेप्टोल–[अं० anti-septol] दे० "आयोडोफार्म"।

ऐण्टिसेप्सीन–[अं० anti-sepsin] एक डाक्टरी औषध। दे० "ऐसेट अनीलाइडम्"।

ऐण्टिसेरिब्रोस्पाइनल फीवर सीरम–[अं० anti-cerebrospinal fever-serum] दे० "ऐण्टिमेनिंज़ोकाकिक-सीरम्"।

ऐण्टिस्कार्ब्युटिक–[अं० anti-scorbutic] स्कर्वीहर।

ऐण्टि-स्टैफिलो-कॉकिक–वैक्सीन–[अं० anti-staphylo coccic vaccine] स्टैफिलोकाकिकहर वैक्सीन।

ऐण्टिस्ट्रैप्टो-काकिक-सीरम्–[अं० anti-strepto-coccic-serum] स्ट्रैप्टोकाकिकहर रक्तवारि।

ऐण्टि-स्पैज़मीन–[अं० anti-spasmin] नारसीन (narceine) और सोडियम् सैलिसिलेट का एक मिश्रण। दे० "पोस्ता" वा "नारसीन"।

ऐण्टि-हे-फीवर-वैक्सीन–[अं० anti-hay-fever-vaccine] हे-फीवरहर टीका।

ऐण्टेडा-स्कैण्डेंस–[ले० anteda scandens] गिल्ला–बं०। गेरडी–उड़ि०। पाङ्गरा–नैपा०। गरदल–बम्ब०।

ऐण्डर्सन्स-आइण्टमेण्ट–[अं० anderson's-ointment] एक डाक्टरी योग। दे० "बिज़्म्युथम्"।

ऐण्डर्सोनिया-रोहितका–[ले० andersonia-rohituka] रोहितक। रुहेड़ा।

ऐण्डीरा-अरारोबा–[ले० andira-araroba] गोआ पाउडर। दे० "अरारोबा"।

ऐण्डीरा-इनर्मिस–[ले० andira-inermis] (Cabbage-tree of tropical Africa) गोभी विशेष।

ऐण्ड्रैक्नी-कार्डिफोलिया–[ले० andrachne-cordifolia, *Mull-Arg*] गुरगुली, कुर्कुई, कुर्कुली–पं०।

ऐण्ड्रक्नी-कैडिशा-[ले० andrachne-cadis-haw] कोडसिगना, बोददरंग-कना० ।

ऐण्ड्रोग्राफिस-एकिआइडीज़-[ले० andrographis-echioides, *Nees.*] राँचिमीण-द० । पीतुम्ब-मरा० ।

ऐण्ड्रोग्राफिस-पैनिक्युलेटा-[ले० andrographis-paniculata, *Nees.*] भूनिंब-सं० । किरयात-हिं० । कालमेघ-बं० । नील-वेम्बु-मद० ।

ऐण्ड्रोपोगन इवारैंकुसा-[ले० andropogon-iwarancusa, *Roxb.*] लामज्जक । लमज्जक । कारांकुस-बं० ।

ऐण्ड्रोपोगन-एरिक्युलेटस-[ले० andropogon-ariculatus] शंखाहुली ।

ऐण्ड्रोपोगन-ऐरोमेटिकस-[ले० andropogon-aromaticus] भूस्तृण । खवी ।

ऐण्ड्रोपोगन-ओडोरेटस-[ले० andropogon-odoratus] उषधान-बम्ब० । वैदिगवत-मरा० ।

ऐण्ड्रोपोगन-कान्टार्टस-[ले० andropogon contortus, *Linn.*] येद्दी-ते० ।

ऐण्ड्रोपोगन-कैलेमस-ऐरोमैटिकस-[ले० andropogon calamus aromaticus] भूस्तृण । खवी ।

ऐण्ड्रोपोगन-ग्लेबर-[ले० andropogon-glaber] सुगन्ध-गौराना ।

ऐण्ड्रोपोगन-डिस्टैन्स-[ले० andropogon-distans] तृण विशेष ।

ऐण्ड्रोपोगन-नार्डस-[ले० andropogon nardus, *Linn.*] गज़नी-हिं० । मञ्जन-सिं० । कमा-खेर-बं० । कामाची-पुल्लु-मद० ।

ऐण्ड्रोपोगन-पर्टस्सस-[ले० andropogon-pertusus, *Willd.*] पलवल ।

ऐण्ड्रोपोगन-पोच-माडेस-[ले०] भूस्तृण ।

ऐण्ड्रोपोगन-बाइकलर-[ले० andropogon-bicolor] काला ज्वार ।

ऐण्ड्रोपोगन-ब्लेधियाई-[ले० andropogon bladhii, *Retz.*] एरण्डागाछ, लोअरी-बं० ।

ऐण्ड्रोपोगन-मार्टीनी-[ले० andropogon-martini] भूस्तृण ।

ऐण्ड्रोपोगन-मिलिएशियस-[ले० andropogon-miliaceus, *Roxb.*] एक प्रकार की घास ।

ऐण्ड्रोपोगन-म्युरिकेटस-[ले० andropogon-muricatus, *Retz.*] खस । उशीर ।

ऐण्ड्रोपोगन-लैनिजर-[ले० andropogon-laniger, *Desf.*] लामज्जक । लामजक । इज़्ख़िर । खवी ।

ऐण्ड्रोपोगन-साइट्रेटस-[ले० andropogon-citratus, *DC.*] अगियाघास । अगिन घास । गंधबेना-बं० ।

ऐण्ड्रोपोगन-सिरेटस-[ले० andropogon-serratus] देतारा ।

ऐण्ड्रोपोगन-सैकेरस-[ले० andropogon-saccharus] देवधान । तिक्री ।

ऐण्ड्रोपोगन-सार्गम-[ले० andropogon-sorghum] ज्वार । जोन्हरी । जोंधरी ।

ऐण्ड्रोपोगन-स्कीनैन्थस-[ले० andropogon-schoenanthus, *Linn.*] रोहिष । रूसा । रोहासा । गंधेल । मिर्चियागंध ।

ऐण्ड्रोपोगन स्कैन्डेन्स-[ले० andropogon scandens, *Roxb.*] एक घास ।

ऐतल-[अ०] [बहु० अयातिल, आताल, आयातील] कोख । कुक्षि ।

ऐता-[गो०] मरोड़फली । आवर्त्तनी ।

ऐतिह्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आप्तोपदेश । प्राचीन ऋषियों के उपदेश । च० वि० ८ अ० ।

ऐद-[अ०] शक्ति । बल । ज़ोर ।

ऐदअ्-[अ०] दम्मुल् अख़्वैन । हीरादोखी ।

ऐदअ्-अम्साल-[अ०] उत्तम प्रकार की हीरादोखी ।

ऐदअ्-दुक्कः-[अ०] विचूर्णित हीरादोखी ।

ऐदअ्-मिक़्दः-[अ०] निकृष्ट प्रकार का दम्मुल् अख़्वैन ।

ऐदक़ान-[यू०] मेंहदी । हिना । मेंदिका ।

ऐदक़ून-[यू०] बाँस । नै । वंश ।

ऐदस-[यू०] ताम्र । ताँबा ।

ऐदा-[अ०] दे० "ऐदअ्" ।

ऐ.दान–[अ०] [ऊ.द का बहु०] (१) लकड़ियाँ। (२) कायफल।

ऐ.दानुल्बत्वात–[अ०] लालसाग की लकड़ी।

ऐदाबुल–[अ०] दम्मुल्अख़्वैन। हीरादोखी। खूनाखराबा।

ऐन–संज्ञा पुं० दे० "अयन" और "एण"। आसन –मरा०। पियासाल–बं०।

ऐ.न–[अ०] आँख। वि० दे० "नेत्र"।

ऐ.नअनबिय्यः–[अ०] तिब्बकी परिभाषा में एक रोग जिसमें आँख के तीसरे पर्दे (पटल) की बनावट जन्म से ही अपूर्ण होती है और पुतली लम्बोतरी या तिरछी खरहे की पुतली जैसी दिखाई देती है। कोलोबोमा आईरिडिस(Coloboma iridis)।

ऐनलगेसिक–[अं० analgesic] अङ्गमर्द-प्रशमन।

ऐनस्थेटिक–[अं० anaesthetic] अवसन्नता-जनक। बेहिस करनेवाली। वह दवा जो शून्य करदे। जैसे, कोकीन इत्यादि।

ऐ.ना–[अ०] [बहु० ई.न] मृगनयनी। सुन्दर आँख वाली स्त्री।

ऐनाकार्डियम्-आक्सिडेन्टेली–[ले० anacardium-occidentale, *Linn.*] काजू। काजूतक-फल। हिजली बादाम।

ऐनाकार्डियम्-लैटिफोलिया–[ले० anacardium latifolia] भल्लातकी। भिलावाँ।

ऐनागालिस-आर्वेन्सिस–[ले० anagallis-arvensis, *Linn.*] जोंकमारी।

ऐनानास-सेटाइवा–[ले० ananas sativa, *Linn.*] अनन्नास।

ऐनाफेलिस-नीलगिरिएना–[ले० anaphalis-neelgeriana, *D. C.*] काटप्लाष्टर–(नीलगि० प०)।

ऐनाबेसिस-मल्टिफ्लोरा–[ले० anabasis-multiflora, *Meq.*] वाल्मी–पं०।

ऐनामिर्टा-काक्युलस–[ले० anamirta-cocculus, *W.&A.*] काकफल। काकमारी।

ऐनामिर्टा-पेनिक्युलेटा–[ले० anamirta-paniculata] काकफल। काकमारी। Fishberry.

ऐना(ने)ष्टेटिका-हीरोकण्टाइना–[ले० anastatica hierochuntina, *Linn.*] गर्भमूल। कफेमरियम्। कफेआयशा।

ऐनासाइक्लस-पायरीथ्रम्–[ले० anacyclus-pyrethrum, *D.C.*] अकरकरा। आकारकरभ।

ऐनिकोष्टेमा-लिटरल–[ले०] एक ओषधि।

ऐनिसफ्रूट–[अं० anis-fruit] अनीसून।

ऐनिस-वाटर–[अं० anis-water] अर्क अनीसून।

ऐनिसाकिलस-कार्नोसस–[ले० anisachilus-carnosus, *Wall.*] पंजीरी का पात–द०। कर्पूर वल्लि–मद०।

ऐनिसोमेलीस-ओवेटा–[ले० anisomeles-ovata, *R. Br.*] गोबुर।

ऐनिसोमेलीस-मालाबैरिका–[ले० anisomeles-malabarica, *R. Br.*] भूताँकुश। चोधरा–बम्ब०।

ऐनी–[मल०] आसन। पातफणस।

ऐनीक्टोकाइलससीटैसियस–[ले० anaectochilus-setaceus, *Blume.*] वन्नराजः –(सिं०)।

ऐनीटीन–[अं० anytin] दे० "सोडियाई-सल्फोइक्थियोलास"।

ऐनीटोल्स–[अं० anytols] ऐनीटीन का एक योग। दे० "सोडियाई सल्फोइक्थ्योलास"।

ऐनीथाई-फ्रक्टस–[ले० anethi fructus] सोये का बीज। तुख्म सोआ।

ऐनीथोल–[ले० anethol] कर्पूर-अनीसून। दे० "अनीसून"।

ऐनीमून–[अं० anemone] दे० "अनीसून"।

ऐनीमून-आब्ट्युज़िफोलिया–[ले० anemone obtusifolia, *Don.*] रतनजोग, पदर –पं०।

ऐनीलीमा-स्कैपिफ्लोरम्–[ले० aneilema-scapiflorum, *Wight.*] सियाहमूसली –हिं०। दे० "अनीलेमा–स्कैपिफ्लोरम्"।

ऐनीसाई-फ्रक्टस-[ले० anisi-fructus] अनीसून ।

ऐ.नुद्दीक-[अ०] गुंजा । घुँघची । रत्ती ।

नोट—एक वृक्ष के बीज जो चपटे, गोल और दृढ़ होते हैं । यह मुर्गी की आँख की तरह मालूम होते हैं, इसी कारण इसका उक्त नामकरण हुआ। क्योंकि दीक मुर्ग़े को कहते हैं । किसी-किसी के मतानुकूल यह पतंग माना जाता है, जिसे अरबी में बक़म कहते हैं और जिसकी लकड़ी वस्त्र-रञ्जन के काम आती है । यह उसी के बीज का नाम है । पर बहुधा यह प्रसिद्ध है कि यह घुँघची का नाम है । किंतु मुहीत आज़म में इसे मिथ्या प्रमाणित किया गया है । उसमें लिखा है कि जिन्होंने ऐसा समझा है, उन्हें भ्रम हुआ है । गुंजा की ऐसी आकृति नहीं होती । उन्होंने घुँघची के प्रकरण में भी लिखा है, कि जिन लोगों ने ऐनुद्दीक का हिंदी नाम घुँघची लिखा है, उन्होंने भूल की है । इस बात को सिद्ध करने के लिये, उन्होंने यह लिखा है कि हकीमोंने ऐनुद्दीक के हृद्य एवं तफ़रीह (उल्लास प्रद) आदि जितने गुणों का उल्लेख किया है, वह घुँघची में बिलकुल नहीं पाये जाते; बल्कि यह तो उपविष-द्रव्यों में से है और इसके खाने से प्रायः अतिसार और वमन होने लगते हैं एवं निर्बलता तथा व्यग्रता होने लगती है । इसका केवल बहिर प्रयोग होता है । इसका आंतरिक प्रयोग वर्ज्य है । अस्तु, आपके अनुसार यह पतंग का बीज स्वीकार किया गया है । किंतु पतंग एक ऐसा तीव्र-तीक्ष्ण द्रव्य है, जिसे तृतीय कक्षा पर्यंत उष्ण एवं चतुर्थ कक्षा तक रूक्ष लिखा है । अस्तु, यदि ऐनुद्दीक उसका बीज स्वीकार कर लिया जाय, तो वह भी इसके क़रीब क़रीब होना चाहिये । बल्कि पतंग को तो १७॥ माशे तक हकीमों ने सांघातिक लिखा है और घुँघची भी मानव प्रकृति के विरुद्ध एवं असात्म्य है । अस्तु, यह उन दोनों से पृथक् कोई अन्य ही वस्तु है ।

पर्य्या०—चश्मख़रोश-फ़ा० ।

प्रकृति—यह तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है । पर इसमें रतूबत फ़ज़लियः है ।

हानिकर्ता—उष्ण प्रकृति को और शिरःशूल उत्पादक है ।

दर्पनाशक—धनियाँ और ताज़ा दूध या मक्खन या तुरंजबीन के फाण्ट (खेसाँदा) के साथ प्रयोग में लाना उचित है ।

मात्रा—१॥। मा० से ४॥ मा० तक ।

गुण-धर्म-प्रयोग—यह बीज तफ़रीह (उल्लास) पैदा करता है, अंगों को बलप्रदान करता है, शक्तियों की रक्षा करता, वार्द्धक्यका प्रतिषेधक और अत्यन्त कामोत्पादक है । यह वीर्य को बढ़ाता है और माजून मलूकी और हाफ़िज़ुस्सिहत नामक योगों का प्रधान उपादान है । मुहीत में लिखा है कि इसमें रतूबत फ़ज़लियः (अनात्मीकृत रतूबत) वर्तमान रहता है । यह केशोत्पादक और हृदय बलदायक है तथा कफ एवं पित्त के विकारों को दूर करता है । यह नेत्रों को लाभकारी है । इसका प्रलेप फोड़े-फुन्सी को गुणकारी है । यह पेट के कीड़ों को बाहर निकालता है । किसी-किसी के अनुसार यह पित्तोत्पादक एवं वीर्यस्तम्भक है । (ख० अ०)

ऐ.नुल्अअ्.लाऽ-[अ०] बाबूनः गाव । उक़ह्.वान ।

ऐ.नुल्बक़र-[अ०] (१) एक प्रकार का बड़ा अंगूर । (२) एक प्रकार का आलू । (३) उक़ह्.वान ।

ऐ.नुल्ह्.ज़ल-[अ०] एक प्रकार का उक़ह्.वान ।

ऐ.नुल्ह्.यात-[अ०] रसायन की परिभाषा में पारे को कहते हैं । पारद ।

ऐनुल्ह्रः-[अ०] एक प्रकार का पत्थर । लहसुनिया ।

ऐ.नुल्हीवः-[अ०] दे० "ऐनुल्ह्.यात" ।

ऐ.नुल्हुदहुद-[मुअ०] आज़ानुल्-फ़ार रूमी ।

ऐ.नुस्सरतान-[अ०] लिसोड़ा । श्लेष्मान्तक । लभेड़ा ।

ऐनेटिफार्म-[अं० anaetiform] दे० "उपवृक्क" ।

ऐनोजीसस एक्युमिनेटा-[ले० anogeissus-acuminata, *Wall.*] चकवा-बं० । पसी, पंची-उड़ि० । फास-मरा० ।

ऐनोजीसस-लैटिफोलिया-[ले० anogeissus-latifolia, *Wall.*] धव । धातकी । धौरा। बक्ली ।

ऐनोडाइन–[अं० anodyne] अङ्गमर्दप्रशमन। वेदनाहर। वेदनास्थापक। दे० "एनोडाइन"।

ऐनोना–[ले० anona] दे० "अनोना"।

ऐन्थेमिक-एसिड–[अं० anthemic-acid] एक प्रकार का तिक्त सार जो बाबूने के फूल से प्राप्त होता है।

ऐन्थेमिडिस-फ्लोरीज–[ले० anthemidis-flores] बाबूने का फूल। गुल बाबूना।

ऐन्थेमिस–[ले० anthemis] बाबूना। दे० "बाबूना"।

ऐन्थेमिल-कोट्युला–[ले० anthemis-cotula] बाबूना बदबू।

ऐन्थेमिस-नोबीलिस–[ले० anthemis-nobilis, *Linn.*] बाबूनः रूमी। बाबूनः तुफ़्फ़ाही।

ऐन्थेमिस-पायरीथ्रम्–[ले० anthemis-pyrethrum] आकारकरभ। दे० "अकरकरा"।

ऐन्थेल्मिण्टिक–[अं० anthelmintic] कृमिघ्न। कृमिनाशक।

ऐन्थेल्मिण्टिक-बार्बरीज–[अं० anthelmintic-barbaries] रसवत। दारुहरिद्रा सत्व।

ऐन्थोसेफैलस-केडम्बा–[ले० anthocephalus-cadamba, *Miq.*] कदम। कदम्ब वृक्ष।

ऐन्थ्रा-ग्ल्यूको-सैग्रेडीन–[अं० anthra-gluco-sagradin] एक प्रकार का क्रियात्मक सार जो कैस्करा-सैग्रेडा से प्राप्त होता है।

ऐन्थ्रा-पर्प्युरीन-डाइएसीटेट–[अं० anthra-purpurin-diacetate] दे० "रेवन्दचीनी"।

ऐन्थ्रारोबीन–[अं० anthrarobin] एक प्रकार का धूसराभ पीत वर्णीय चूर्ण। दे० "अरारोबा"।

ऐन्थ्रासोल–[अं० anthrasol] एक पाण्डु-पीत वर्ण का तैलीय सांद्र द्रव, जो अलकतरे (Coal-tar) द्वारा विशेष शोधन विधि से प्राप्त होता है। इसमें अलकतरे की सी तीव्र गंध आती है, किंतु इससे त्वचा पर धब्बा नहीं पड़ता। गुद-कंडू की चिकित्सा में इसका १० प्रतिशत का घोल और त्वचा के चिकारी झिल्ली के उतरने के रोगों में २० प्रतिशत का मरहम उपयोगी सिद्ध हुआ है। स्नानार्थ काष्टिक सोडा और कालोफोन रेजिन के साथ इसका दूधिया घोल उत्तम होता है। लाइएण्ट्रल (Liantral) भी इसी प्रकार का एक तैल है।

ऐन्थ्रिस्कस-सेरीफोलियम्–[ले० anthriscus cerefolium, *Hoffm.*] आतरीलाल।

ऐन्थ्रेसीन–[अं० anthracene] एक सत्व विशेष।

ऐन्थ्रेसीन-पर्गेटिव्ज–[अं० anthracene-purgatives] एक प्रकार के विरेचन, जिनमें ऐन्थ्रा-क्विनीन द्वारा निकले हुये सारभूत द्रव्य मिले होते हैं।

ऐन्थ्रैक्स–[अं० anthrax] एक संक्रामक व्याधि जो प्रधानतः भेड़ों में हुआ करती है। परन्तु ऊन धुननेवालों और चमरंगों को भी हो जाती है। इसका कारण एक विशेष प्रकार का अणुवीक्ष्य कीटाणु है जिसे बैसिलस ऐन्थ्रैक्स कहते हैं।

नोट—लक्षणादि के लिये दे० "जम्रः"।

ऐन्दवी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोमराजी। बकुची। रा० नि० व० ४।

ऐन्द्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] देवसर्षप का पौधा।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार की जड़। वन अदरख। जंगली आदी। अरण्यजार्द्रक।

गुण—यह कटु, अम्ल, रुचिकारक, बलकारक और जठराग्निवर्द्धक है। रा० नि० व० ६। (२) वृष्टि का जल। वर्षा का जल।

वि० [सं० त्रि०] इंद्र संबन्धी।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जो ऐश्वर्य युक्त हो। जिसकी आज्ञा को लोग मानते हों, यज्ञ आदि करते हों एवं शूर, ओजस्वी, तेजस्वी, अनिन्दित-कर्मा, दीर्घदर्शी, अर्थ, धर्म और काम में प्रवृत्त हों। च० शा० ४ अ०।

ऐन्द्र-जल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आकाश का पानी।

वह जल जो आकाश से गिरता हुआ पृथ्वी पर गिरने न पाया हो और ऊपर ही ऊपर शुद्ध पात्र में ग्रहण किया गया हो। यह जल राजाओं के पीने योग्य होता है और सब जलों में प्रधान माना जाता है। च० सू० अ० २७।

ऐन्द्रयव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रयव। कुड़ा का बीज। इन्द्रजौ। मद० व० १।

ऐन्द्रलुप्तिक–वि० [सं० त्रि०] इंद्रलुप्त का रोगी। गंजा। खालित्थ रोगी।

ऐन्द्र-वायव–वि० [सं०] इंद्र वायु सम्बन्धी।

ऐन्द्रवारुणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रायन। इन्द्रवारुणी लता। मद० व० १।

ऐन्द्रशिर–संज्ञा पुं० [सं० पु०] हस्ति विशेष। एक प्रकार का हाथी।

ऐन्द्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्रायन। इनारुन।

ऐन्द्राग्न–वि० [सं० त्रि०] इंद्राग्नि-सम्बन्धी। विद्युत् से सम्बन्ध रखनेवाला।

ऐन्द्रापौष्ण–वि० [सं० त्रि०] इन्द्र एवं सूर्य सम्बन्धी।

ऐन्द्रायुध–वि० [सं० त्रि०] (१) इन्द्रप्रदत्त अस्त्र विशिष्ट। (२) इन्द्र के धनुर्बाण से सम्बन्ध रखनेवाला।

ऐन्द्रि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोआ। काक। मे० रद्विक।

ऐन्द्रिय–वि० [सं० त्रि०] इन्द्री सम्बन्धी।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) आयुर्वेद का एक अंश विशेष, जिसमें केवल इन्द्रियों का विषय वर्णन किया गया हो। (२) इन्द्रिय-ग्राम।

ऐन्द्रियक–वि० [सं० त्रि०] (१) इन्द्रिय ग्राह्य। जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हो। इन्द्रिय सम्बन्धी। (२) इन्द्रियाश्रित व्याधि विशेष। शब्दादि विषय के मिथ्या योग, अतियोग वा अयोग से जो रोग उत्पन्न होता है वह "ऐन्द्रियक" कहलाता है। च०।

संज्ञा पुं० [सं०] जल का वह दोष जिसके कारण प्राणियों से उत्पन्न मल वा स्वयं सूक्ष्म कीटाणु हों। सजीव दोष। (Organic impurities)

संज्ञा पुं० [सं०] वे द्रव्य जो प्राणिवर्ग से सम्बन्ध रखते हैं अर्थात् उनसे ही उत्पन्न होते हैं। यथा, शर्करा, आटा, नील, कर्पूर, गोंद, नख, दुग्ध, मूत्र, प्रोटीन, त्वचा, मांस, स्नायु आदि। (Organic Substance)।

संज्ञा पुं० [सं०] वह जीवन शक्ति जो वनस्पतियों वा जीवों में पाई जाती है। (Vital-force)

संज्ञा पुं० [सं०] रसायनशास्त्र का वह विभाग, जिसमें ऐन्द्रियक द्रव्यों का ही उल्लेख हो। (Organic chemistry)।

ऐन्द्रियकाम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अम्ल जो वनस्पतियों वा प्राणियों से या उनके किसी अंग से उत्पन्न हो। वानस्पतिक अम्ल। (Organic-acid)।

ऐन्द्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ी इलायची। बृहद् एला। (२) पूर्वादिक्। पूरब की दिशा। (३) छोटी इलायची। सूक्ष्म एला। रा० नि० व० ६। वै० निघ० २ भ० तालीशादि चूर्ण। (४) इन्द्रायन। इंद्रवारुणी। प० मु०। रा० नि० व० ३। च० सू० ४ अ०। (५) गोरख ककड़ी। गोरख कर्कटी। च० सू० ४ अ० प्रजास्थापन। भा० अने०।

ऐन्द्रीफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इनारुन। इन्द्रायन। इन्द्रवारुणीफल। "पक्वैन्द्रफलमूत्रजम्" च० द० उन्मा०–चि०।

ऐन्द्रीफल-नस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उन्माद में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग—सुपक्व इंद्रायन फल को गोमूत्र द्वारा पीस कर नास लेने से ब्रह्मराक्षस के आवेश से उत्पन्न उन्माद नष्ट होता है। च० द० उन्माद–चि०।

ऐन्द्रीरसायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, जिसके सेवन से परम आयु, युवावस्था, आरोग्यता और स्वर तथा वर्ण में उत्तमता आती है तथा पुष्टि, मेधा, स्मृति, उत्तम बल एवं अन्य अभीष्ट सिद्धियों की भी प्राप्ति होती है।

योग—इन्द्रायन, ब्राह्मी, क्षीरकाकोली, गोरखमुण्डी, महाश्रावणी (महामुंडी) शतावर, विदारीकंद, जीवन्ती, पुनर्नवा, गंगेरन, शालपर्णी, वच, छत्र, अतिच्छत्रा (अवाक्पुष्पी=सौंफ), मेदा, महामेदा, और जीवनीयगण की ओषधियाँ–इन्हें दूध के संयोग से उत्तम चूर्ण प्रस्तुतकर यथाविधि सेवन करने से उक्त लाभ होते हैं। च० चि० अ० १।

ऐन्धन–वि० [सं० त्रि०] ईंधन सम्बन्धी। जलाने की लकड़ी से सम्बन्ध रखनेवाला।

ऐन्हाइड्रा-फ्लक्चुएना–[ले०] हिलमोचिका। हुरहुर। मेः मो०।

ऐन्हाइड्रा-रिपेंस–[ले०] हुलहुल। हिज्जचा–बं०।

ऐन्हेलोनियम्-लेवीनियाई–[ले० anhalonium levinii] पौधा विशेष।

ऐप–[अं० ape] एक प्रकार का वानर जिसे पूँछ न हो। गोरिल्ला। गिब्बन। शिम्पांजी। एप।

ऐपन–संज्ञा पुं० [देश०] चावल और हल्दी को एक साथ पीसकर बनाया हुआ लेपन। यह माङ्गलिक द्रव्य समझा जाता है। इसे लोक में चिक्कस भी कहते हैं। इसके उपयोग से शरीर का वर्ण सुन्दर हो जाता है।

ऐप-वायन-वाव–[बर०] वायविडंग। विडंग।

ऐपिडेण्ड्रम्-ट्रिष्ट्री–[ले० epidendrum-triste] आकाश नीम।

ऐपिस–[ले० apis] शहद की मक्खी। भ्रमर। मधुमक्षिका।

ऐपिस-मेलिफिका–[apis-melliffica]शहद की मक्खी। मधुमक्षिका।

ऐपेन्डिक्स–[अं० appendix] आंत्रपरिशिष्ट। दे० "अपेण्डिक्स"।

ऐपेन्डिसाइटिस–[अं० appendicitis] आंत्र प्रदाह। दे० "अपेण्डिसाइटिस"।

ऐपेरिटोल–[अं० aperitol] दे० "एपेरिटोल"।

ऐपोप्लेक्सी–[अं० apoplexy] मृगी। मिरगी। अपस्मार। दे० "एपोप्लेक्सी"।

ऐपोरोसा-लिंडलिएना–[ले० aporosa-lindleyana, *Bail.*] बालक। वेत्तिल-मरा०।

ऐपोसाइनम–[ले० apocynum] एपोसाइनम्।

ऐप्रीया–[अं० apnoea] कष्टश्वास। श्वासकाठिन्य। श्वासकृच्छ्रता।

ऐप्ल–[अं० apple] सेव। सिंवितिका।

ऐप्लिकेशियो-मेन्थोल–[अं० applicatio-menthol] रोचन्यभ्यङ्ग। दे० "पुदीना"।

ऐप्लोटैक्सिस-आरीक्युलेटा–[ले० aplotaxis-auriculata, *D.C.*] कुट। कुष्ठ।

ऐप्लोपेप्पस-बेलहेन–[ले० aplopappus-baylahuen] (Hysterionica) एक ओषधि।

ऐप्ससरुट–[अं०] (polemonium-reptens.) एक ओषधि।

ऐब–[अ०] [वि० ऐबी] दोष।

ऐबस–[अ०] पिंडली का अगला किनारा जो मांसरहित हो।

ऐबी–[अ०] अंगहीन। जिसके कोई अंग न हो। विकलांग।

ऐबीज़-एक्सेल्सा–[ले० abies-excelsa, *D. C.*] पौधा विशेष।

एबीज-ड्युमोसा–[ले० abies-dumosa, *London.*] चांगथसी धूप-नेपा०। टाँगसिंग-भू०। संगदुंग-लेप०।

ऐबीज़-बालसेमीया–[ले० abies-balsamea] पौधा विशेष।

ऐबीज़-वेब्बिएना–[ले० abies-webbiana, *Lindl.*] तालीशपत्र।

ऐबीज़-साइबिरिका–[ले० abies-sibirica] पौधा विशेष।

ऐबीज-स्मिथ्रिएना–[ले० abies-smithiana, *Forbes.*] राव-हिं०। रेवड़ी, बनलुदर–पं०, हिमा०। तोस-(रावी)। रावरी (सतलज)। कचल–काश०। वेश–अफ़०। सेशिंग–भू०।

ऐबीटिज़-आइल–[अं० abietis oil.] तैल विशेष।

ऐब्युटिलन–[ले० abutilan] दे० "अब्युटिलन"।

ऐब्रस-प्रीकेटोरियस–[ले० abrus-precatorius, *Linn.*] घुँघुची। दे० "अब्रस-प्रीकेटोरियस"।

ऐब्रोमा-ऑगष्टा–[ले० abroma-augusta, *Linn.*] उलटकम्बल।

ऐब्सार्बीफेशन्ट–[अं० absorbe-facient] शोषण करनेवाला।

ऐब्सार्बेन्ट–[अं० absorbant] अभिशोषक।

ऐब्सार्बेन्ट-काटन-वूल–[अं० absorbant-cotton-wool] अभिशोषक तूल।

ऐब्स्ट्रैक्ट्स–[अं० abstracts] शुष्क रसक्रिया। सूखा सत।

ऐब्सिन्थ–[अं० absinth] [यू० एपसिन्थियून] अफ़्सन्तीन ।

ऐब्सिन्थियम्–[ले० absinthium] अफ़्सन्तीन । (Worm-wood.)

ऐब्सिन्थीन–[अं० absinthin] अफ़सन्तीन से प्राप्त होने वाला एक प्रकार का स्फटिकीय सत्व । दे० "अफ़्सन्तीन" ।

ऐब्सिन्थोल–[अं० absinthol] अफ़्सन्तीन द्वारा प्राप्त एक प्रकार के अस्थिर तैल का सान्द्र-भाग । दे० "अफ़्सन्तीन" ।

ऐब्सोल्यूट–[अं० absolute] शुद्ध ।

ऐब्सोल्यूट-एल्कोहल–[अं० absolute alcohol] विशुद्धासव । जलशून्य मद्य । दे० "मदिरा" ।

ऐभी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बड़ीतरोई । हस्तिघोषलता । रा० नि० व० ५ ।

ऐमन–[अ०] दक्षिण ओर । दाहिनी तरफ़ ।

ऐमरन्थस–[ले० amaranthus] दे० "अमारेण्ट (न्थ) स" ।

ऐमल-अमीन–[अं० amalamin] एक प्रकार का क्षारोद जो मत्स्य–यकृत्तैल द्वारा प्राप्त होता है । दे० "काड-मछली" ।

ऐमाइल–[अं० amyl] दे० "एमाइल" ।

ऐमाइलम्–[ले० amylum] दे० "एमाइलम्" ।

ऐमिग्डोफेनीन–[अं० amigdophenin] दे० "एमिग्डोफेनीन" ।

ऐमिटीसांकिफोलिया–[ले०emitisonchifolia] सौदी । मोदी ।

ऐमीटीन–[अं० emetin] एमीटीन हाइड्रोक्लोराइड । दे० "इपीकेकाना" ।

ऐमोनिएकम्–[ले० ammoniacum] दे० "अमोनिएकम्" ।

ऐमोनिएटेड–[अं० ammoniated] अमोनिया मिश्रित । अमोनित ।

ऐमोनियम्(या)–[ले० ammonium(ia)] दे० "अमोनिया" ।

ऐम्–[अ०] स्त्री का अविवाहिता रहना ।

ऐम्पेलाप्सिस-क्विन्कीफोलिया–[ले०ampelopsis-quinquefolia]अमेरिकन आयवी (American ivy.)

ऐम्पेलोसिक्योस-स्कैण्डेंस–[ले० ampelosicyas-scandns] पौधा विशेष ।

ऐम्ब्रियोलाजी–[अं०] उत्पत्ति सम्बन्धी शास्त्र । गर्भ विज्ञान । दे० "गर्भ" ।

ऐर–[अ०] (१) कंधे के सिरे । (२) कान के भीतर का उभार । (३) पीठ की रग का उभार । (४) पलक । पपोटा । (५) कोआ । (६) पुतली ।

ऐर–[अ०] [बहु० उयूर वा आयुर] पुरुषजननेन्द्रिय। शिश्न ।

ऐरनमूल–[बम्ब०] अरनी । अगेथ ।

ऐराकी–संज्ञा पुं० दे० "एराकी" ।

ऐरालू–संज्ञा पुं० [सं० इरा=जल+आलु] एक प्रकार की पहाड़ी ककड़ी जो तरबूज की तरह की होती है । यह कुमायूँ से सिकिम तक होती है ।

ऐरावण–संज्ञा पुं० [सं० ऐरावत] ऐरावत ।

ऐरावत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लकुच वृक्ष । बड़हर । (२) नारंगी । नागरंग । मे० तचतुष्क । रा० नि० व० ११ । प० मु० । (३) क्षुद्र द्वीपांतर खर्जूर ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एलाकरवीर । रत्ना० । (२) ऐरावत फल ।

गुण—यह खट्टा, रक्त-पित्त कारक और दाँतों को गुठलानेवाला है । सु० सू० ४६ अ० ।

ऐरावतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी-सुंडी । हस्तिशुंडी । च० चि० ३ अ० । (२) नारंगी । नागरंग । वै० निघ० ।

ऐरावतपदी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काक-जंघा । मसी । (२) मालकाँगनी । महा ज्योतिष्मती ।

ऐरावती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का पाषाणभेद । रा० नि० व० ५ ।

नोट—इसकी पत्ती बड़ (बरगद) की पत्ती की तरह होती है । फाल्गुन के महीने में इसकी जड़ में से रक्त वर्ण का एक डंठल निकलता है, उसी के सिर पर गुच्छों में श्वेत किंचित् लालिमा लिये पुष्प आते हैं, जो देखने में बहुत सुन्दर मालूम पड़ते हैं । अधिकांश में यह हिमालय के पर्वतों में पाई जाती है । इसे वटपत्री भी

कहते हैं। वटपत्री का पौधा। (२) नारंगी का पेड़। भा०।

गुण—यह रस तथा विपाक में खट्टी, गरम, सुगंधित और वात, खाँसी तथा श्वास रोग को नष्ट करती है। वै० निघ०। (३) विद्युत्। बिजली।

ऐरावतिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नारङ्गी। नागरंगा। रा० नि० व० ५।

ऐरिण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सैंधवलवण। सेंधानमक। (२) पांशुलवण। रा० नि० व० ५।

ऐरीका–[अं० areca] दे० "एरीका"।

ऐरुल्कतिफ़–[अ०] अंसप्राचीरक (Spine of Scapula)

ऐरेकिक–एसिड–[अं० arachic-acid] भूचणकाम्ल। तेज़ाब मूँगफली।

ऐरेकिस-ऑलियम्–[ले० arachis-oleum] मूँगफली का तेजाब।

ऐरेकिस-हाइपोजिया–[ले० arachis-hypogaea, *Linn.*] मूँगफली। भूचणक।

ऐरेक्नी-कार्डिफोलिया–[ले० arachne-cordifolia] एक पौधा जो बंगाल में होता है। पशुओं के लिये यह विष है।

ऐरेबिकगम–[अं० arabic-gum] अरबदेश के बबूल का गोंद। समग़ अरबी।

ऐरेबीन–[अं० arabin] वह गोंद–जो जल में घुल जाय। जैसे–बबूल का गोंद। अर्बीन।

ऐरेय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मद्य। शराब। सुरा। वै० निघ०। (२) एलवालुक। अम०।

ऐरेलिया-स्युडो=गिनसेंग–[ले० aralia-pseudo ginseng, *Benth.*] एक पौधा।

ऐरो-पाइज़न-साउथअमेरिकन–[अं० arrow-poison,south american]युरारी। दे० "क्युरेरा Curara"।

ऐरोमा–[अं० aroma] सुगंधि।

ऐरोमेटिक–[अं० aromatic] सुरभित। सुगंधित। अत्तिर–अ०। ख़ुशबू–फ़ा।

ऐरोमेटिक-पाउडर–[अं० aromatic-powder] सुरभित चूर्ण। दे० "दारचीनी"।

ऐरोमेटिक-पाउडर-आफ चाक–[अं० aromatic-powder of chalk] सुरभित खटिका चूर्ण।

ऐरोमेटिक-पाउडर-आफ चाक विथ ओपियम्–[अं० aromatic-powder of chalk with opium] अहिफेनाक्त सुरभित खटिका चूर्ण। दे० "पोस्ता"।

ऐरोमेटिक-शूगर्ज़–[अं० aromatic-sugars] सुवासित शर्करा। दे० "ईलीओ सैकरा"।

ऐरोमेटिक-सिरप–[अं० aromatic-syrup] सुगंधित शर्बत।

ऐरोमेटिक-स्पिरिट आफ एमोनिया–[अं० aromatic-spirit of ammonia] सुरभित अमोनिया सुरा। दे० "अमोनियाई कार्बोनास"।

ऐरोमेटिक-सिरप आफ कैस्कारा–[अं० aromatic-syrup of cascara] सुवासित कैस्कारा शर्बत। दे० "कैस्कारा-सैगरेडा"।

ऐरोमेटिक्स–[अं० aromatics] सुरभित औषध। सुगंधद्रव्य। दे० "कार्मिनेटिव्ज़"।

ऐरोरुट–[अं० arrow-root] अरारूट। तीखुर।

ऐरोल–[अं० airol] दे० "विज़मथ"।

ऐर्म्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अञ्जन। सुर्मा। काजल। सु०।

वि० [सं० त्रि०] व्रणपूरक। व्रण को सुखाने योग्य।

ऐर्वारु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की ककड़ी। मद० व० ७। च०द० प्रदर चि०। दे० "ऐर्वारु" वा "ककड़ी"।

ऐल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की कँटीली लता, जिसकी पत्तियाँ प्रायः एक फुट लम्बी होती हैं। यह देहरादून, रुहेलखण्ड, अवध और गोरखपुर की नम ज़मीन में पाई जाती है। यह प्रायः खेतों आदि के चारों ओर बाढ़ लगाने के काम में आता है। कहीं-कहीं इसकी पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम में भी आती हैं।

पर्य्या०—अलई। ऊरु। अइल।

ऐलकोहल(-कुहा)–[सं० कुहल] दे० "एलकोहल"।

ऐल-चेट्टि–[ता०] इलायची। एला।

ऐलब–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शोर। क्रोलाहल।

ऐलबा(वा)लुक–संज्ञा पुं० [सं०क्ली०] एलबालुक । श० र० ।

ऐलाइल-ट्रिब्रोमाइड–[अं० allyl-tribromide] एक डाक्टरी औषध ।

ऐलाबष्टर–[अं० alabaster] संगजराहत । सेलखड़ी ।

ऐलिक्सिया-स्टिलेटा–[ले० alyxia-stellata, *Rom. & Sch.*] एक प्रकार का पौधा ।

ऐलिसिकार्पस-लाँङ्गिफोलियस–[ले० alysicarpus-longifolius, *W. & A.*] शिम्बी वर्ग का एक पौधा, जिसकी जड़ मुलेठी की प्रतिनिधि है ।

ऐलिसिकार्पस-वैजिनेलिस–[ले० alysicarpus-vaginalis, *D. C.*] नागबला ।

ऐलीगर–[अं० alegar] यवशुक्र । जौ का सिरका ।

ऐलीपीन–[अं० alypin] दे० "एलीपीन" ।

ऐलेण्ट(न्थ)स एक्सेलसा–[ले० ailant (h)us excelsa, *Roxb.*] महानिम्ब । महारुख ।

ऐलेण्ट(न्थ)स ग्लैण्ड्युलोसा–[ले० ailant(h)us glandulosa, *Desf.*] पौधा विशेष ।

ऐलेण्टस-मालाबैरिका–[अं० ailantus-malabarica, *D. C.*] गुग्गुलधूप–(बम्ब०) । महिपाल–(मद०) ।

ऐलेण्टिक-एसिड–[अं० ailantic-acid] महानिम्बाम्ल ।

ऐलेण्टोल–[अं० ailantol] रासन (Elecampane) का टपकाया हुआ एक प्रकार का अर्क जो $\frac{1}{4}$ बूँद की मात्रा में राजयक्ष्मा में उपयोगी सिद्ध होता है ।

ऐलेय(क)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नलुका । नाड़ीशाक । (२) एलबालुक । अम० । "ऐलेय विश्वधान्यकम्" । सि० यो० । च० द० रक्तपि० चि० । वासाखण्ड कुष्माण्ड ।

ऐलेयक-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग जिसमें एलबालुक ही प्रधान द्रव्य है ।

निर्माण-विधि—एलवालुक स्वरस १ आढक, कुमारी स्वरस १ आढक, आमले का रस २ प्रस्थ, शतावरी का स्वरस २ प्रस्थ, गो दुग्ध १ द्रोण, तिल तैल १ आढक ।

कल्क द्रव्य—दारचीनी, श्वेत चन्दन, सुगंधवाला, धूपसरल, कुमुद, निलोफर, मेदा, महामेदा, मुलेठी, मुनक्का, वंसलोचन, सौंफ, काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, कस्तूरी, वनतुलसी और कपूर प्रत्येक अर्ध-अर्ध पल प्रमाण लेकर जल में पीसकर कल्क बनाएँ । पुनः अग्निसंस्कार करें । सिद्ध हो जाने पर निम्न रोगों में प्रयुक्त करें ।

गुण तथा उपयोग—शिरोरोग और नेत्र रोगों में नस्य, अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, आलेपन आदि द्वारा व्यवहार करना चाहिये एवं कान में डालना चाहिए । इसके व्यवहार से शिरोभ्रमण, कंप, शरीर का दाह, शिर का दाह, नेत्र का अत्यन्त दाह, विसर्प, शिर के घाव, मुखशोष, भ्रम और पित्त जन्य रोगों का नाश होता है । र० र० स० २१ अ० ।

ऐलेयसर्पि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय योग ।

निर्माण-विधि—एलवालुक नामक फल का स्वरस और उसके समान गोदुग्ध तथा चन्दन, मुलेठी, दाख, महुए का पुष्प, वंसलोचन और मिश्री इनके कल्क से घृत सिद्ध करें ।

गुण-प्रयोग—इसके उपयोग से पित्तजन्य विकार, वात और पित्त मिले हुये रोग, शिरोभ्रम और कंप का नाश होता है । र०र०स० २१ अ० ।

ऐल्कलाइड–[अं० alkaloid] क्षारोद ।

ऐल्कलाइन–[अं० alkaline] क्षारीय ।

ऐल्कलाई–[अं० alkali] [अ० अल्कलिय] [बहु०–इस,–ईज़] क्षार ।

ऐल्कलिज–[अं० बहु० alkalis] दे० "ऐल्कलाई" ।

ऐल्कली–[अं० alkali] दे० "ऐल्कलाई" ।

ऐल्कलीज–[अं० बहु० alkalis] दे० "ऐल्कलाई" ।

ऐल्का(के)लाइन डेण्टिफ्राइसेज–[अं०alkaline-dentifrices] क्षारीय दंत-मञ्जन ।

ऐल्कुहाल–[अं० alcohol] दे० "एलकोहल" ।

ऐल्केन्ना-टिंक्टोरिया–[ले० alkanna-tinctoria] रञ्जनजोत ।

ऐल्केकेङ्गी–[अं० alkekengi] [अ० अल्का-कनज] काकनज । पपोटन ।

ऐल्कैनेट–[अं० alkanet] [अ० अल्हिन्ना] रतनजोत ।

ऐल्कोहल–[अं० alcohol] दे० "एलकोहल" ।

ऐल्गा–[अं० alga] [बहु० ऐल्गी] सेवार । शैवाल ।

ऐल्गिनाइड-आयर्न–[अं० alginoid iron] एक प्रकार का भूरे रंग का अविलेय चूर्ण, जिसमें सेवार द्वारा प्राप्त शैवालाम्ल(Alginic-acid) के साथ लोहे का रासायनिक संयोग हुआ होता है । इसे "एल्गिरोन" भी कहते हैं ।

ऐल्गिरोन–[अं० algiron] ऐल्गिनाइड का एक नाम । दे० "ऐल्गिनाइड" ।

ऐल्टिङ्गिएसीई–[ले० altingiaceae] (Liquidambarasceae) ओषधियों का एक वर्ग । शिलारसवर्ग ।

ऐल्टिङ्गिया-एक्सेल्सा–[ले० altingia-excelsa, *Noronha.*] शिलारस । सिल्हक ।

ऐल्डिकाय–[ले०] कड्डकायपु ।

ऐल्डोफार्म–[अं० aldoform] दे० "फार्मेलीन" ।

ऐल्थिया ऑफ गोआ–[अं० althaea of goa] ख़त्मी भेद ।

ऐल्थिया-ऑफिसिनेलिस–[ले० althaea-officinalis, *Linn.*] गुलख़ैरु । ख़त्मी ।

ऐल्थिया-केन्नाबिना–[ले० althaea-cannabina] जंगली भाँग ।

ऐल्थिया-फ्रुटेक्स–[ले० althaea frutex] गुड़हल । जपापुष्प । जासवंदी ।

ऐल्थिया रोज़िया–[ले० althaea rosea, *Linn*] गुलख़ैरु । ख़त्मी ।

ऐल्थीइ-रैडिक्स–[ले० althaee-radix] रीशहे ख़त्मी । ख़त्मी की जड़ ।

ऐल्थीन–[अं० althein] जौहर ख़त्मी । ख़त्मीन । दे० "ख़त्मी" ।

ऐल्नस–[ले० alnus] दे० "आल्नस" ।

ऐल्बर्जीन–[अं० albergine] दे० "अलबर्जीन" ।

ऐल्ब्यूमिन–[अं० albumen] दे० "अल्ब्यूमेन" ।

ऐल्वा–संज्ञा पुं० [देश०] एलुवा ।

ऐल्वालु–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलवालुक । मद० व० ३ ।

ऐल्सोल–[अं०] दे० "फिटकरी" ।

ऐव(वा)नम्–[ता०] मेंहदी । नखरञ्जनी । हिना । वस्मा ।

ऐश–संज्ञा पुं० [अ ऐश] आराम । चैन । भोग-विलास ।

वि० [सं० त्रि०] ईश सम्बन्धी । ईश्वर विषयक ।

ऐश कलर्ड-फ्ली-बीन–[अं० ash-coloured flea bean] कलाय भेद । बाकला ।

ऐशफ्लोरिबण्ड–[अं० ash-floribund] उश्शज ।

ऐशमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लांगलीमूल । कलिहारी की जड़ ।

ऐशान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ईशान कोण की हवा । गुण—यह शीतल और चरपरी है । भा० ।

ऐशानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ईशानकोण ।

ऐशू–संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों का एक रोग जिसमें उनका मुँह बँध जाता है और वे जुगाली (पागुर) नहीं कर सकते ।

ऐश्वर–वि० [सं० त्रि०] (१) प्रभु वा ईश्वर से उत्पन्न । (२) ईश्वर सम्बन्धी ।

ऐषिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पाठा । अंबष्ठा । (२) निशोथ । त्रिवृत् । वै० निघ० ।

ऐषीक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अस्त्र विशेष । (२) एक पर्वत ।

ऐष्टक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ईष्टिका समूह । ईंटों का ढेर ।

ऐस–[अं० ass] गर्दभ । खर । गदहा ।

ऐसर–[बम्ब०] (callicarpa cava) पौधा विशेष ।

ऐसर–[अ०] वाम भाग । बाईं ओर । वाम ।

ऐसिट–[अं० acet] दे० "एसीट" ।

ऐसिड–[अं० acid] दे० "एसिड" ।

ऐसिष्टेसिया-कारोमण्डलिएना–[ले० asysta

sia-coromandeliana, *Nees.*] लक्ष्मण वल्ली ।

ऐसी(से)ट एनीलाइडम्-[ले० acetanilidum] दे० "एसिट एनीलाइडम्" ।

ऐसेप्टोल-[अं० aseptol] दे० "असेपटोल" ।

ऐसेप्टोलीन-[अं० aseptoline] यह एक अमेरिकन पेटेण्ट औषध है । दे० "जैबोरैंडाई" ।

ऐस्क्लीपिअस-इंकारनेटा-[ले०] (*White Indian Hemp*) पौधा विशेष ।

ऐस्क्लीपिअस-एकिनेटा-[ले० asclepias-echinata] उत्तरन । कण्टकफल । इन्द्रीवरा ।

ऐस्क्लीपिअस-एजमेटिका-[ले० asclepias-asthmatica] अन्तमल । अन्तमूल । जङ्गली पिकवन ।

ऐस्क्लीपिअस-ओडोरेटिसिमा-[ले० asclep as-odoratissima] कुंजलता ।

ऐस्क्लीपिअस-करासेविका-[ले० asclepias-curassavica] काकतुण्डी । कुरकी-बम्ब० ।

ऐस्क्लीपिअस-जाइगेंटिका-[ले० asclepias gigantica] आक । मदार । अर्क ।

ऐस्क्लीपिअस-जेमिनेटा-[ले० asclepias-geminata] मेढासिंगी । मेषशृंगी ।

ऐस्क्लीपिअस-ट्युबरोसा-[ले० asclepias-tuberosa] (Pleurisy-root) पौधा विशेष ।

ऐस्क्लीपिअस-वाल्युबिलिस-[ले० asclepias-volubilis] नकछिकनी । छिक्किका ।

ऐस्क्लीपिअस-सिरिएका-[ले० asclepias-cyriaca] (Silk, *Weed.*)] पौधा विशेष ।

ऐस्क्लीपिअस-स्युडोसारसा-[ले० asclepias-pseudosarsa] अनन्तमूल । उपलसरी । सारिवा ।

ऐस्टर-ट्रिनर्विअस-[ले० aster-trinervius, *Roxb.*] पौधा विशेष ।

ऐस्टीरियाछिग्मा-मैक्रोकार्पा-[ले० asteriastigma-macrocarpa, *Bedd.*] वैल्लनङ्ग-(मरा०) ।

ऐस्टेराकैन्था-आरिक्युलेटा-[ले० asteracantha-auriculata, *Nees.*] तालमखाना । कोकिलाक्ष ।

ऐस्ट्रिञ्जेंट-[ले०astringent] (१)कषैला । कषाय । (२) धारक औषध । संकोचक ।

ऐस्ट्रिञ्जेंट-एनिमेटा-[ले० astringent-enemata] धारक वस्ति ।

ऐस्ट्रिञ्जेंट-गार्ग्ल-[अं० astringent-gargle] संग्रहणीय गण्डूष ।

ऐस्ट्रिञ्जेंट-डेंटिफ्राइसेज-[अं० astringent-dentifrices] संग्रहणीय दन्तमंजन । कसेला दंत मंजन ।

ऐस्ट्राकैन्था-[अं० astracantha] तालमखाना । कोकिलाक्ष ।

ऐस्ट्रागैलस-[अं० astragalus] शिम्बी वर्ग के पौधों की एक जाति ।

ऐस्ट्रागैलस-गम्मीफर-[ले० astragalus-gummifer] पौधा विशेष । ट्रागकंथ का पेड़ ।

ऐस्ट्रागैलस-ट्रिब्युलाइडीज-[ले० astragalus-tribuloides, *Delile.*] आंगाई-पं० ।

ऐस्ट्रागैलस-मल्टिसेप्स-[ले० astragalus multiceps, *Wall.*] कण्डेरी, कंडियार, कातरकंद, पोसर, सत्मूल-पं० । दनि-अफ़० ।

ऐस्ट्रागैलस-वाइरस-[ले० astragalus-virus, *Oliver.*] पौधा विशेष ।

ऐस्ट्रागैलस-सार्कोकोला-[ले० astragalus-sarcocolla] गूजर-बम्ब० । गूज़द-फ़ा० । दे० "अज़रूत" ।

ऐस्ट्रागैलस-स्ट्रोबिलिफेरस-[ले० astragalus-strobiliferus, *Royle.*] कून, कुम-फ़ा० ।

ऐस्ट्रागैलस-हेमोसस्- ले०astragalus-hamosus, *Linn.*] पुत्रंक । कतीरा । तज बादशाही ।

ऐस्ट्रागैलस-हेरातेंसिस- ले० astragalus-heratensis] गाबिन-फ़ा० । हेराती कतीरे का वृक्ष । कोन ।

ऐस्पाइरीन-[अं० aspirin] वेअरमान । सैलो-

सीन (Salicin) का एक योग। वि० दे० "सैलिसिलिक एसिड"।

ऐस्पाइरोफेन–[अं० aspirophen] दे० "नोवैस्पेरीन"।

ऐस्पाइरोल–[अं० aspirol] एक डाक्टरी औषध।

ऐस्पिडोस्पर्मीन–[अं० aspidospermine] क्वेब्रैको-बार्क (Cuebracho-bark) द्वारा प्राप्त एक क्षारोद जो $\frac{1}{२५}$ की मात्रा में हार्दीय श्वास और एम्फिसीमा (फुफ्फुसीयाध्मान) में प्रयुक्त होता है। यह अत्यन्त शक्तिशाली औषध है। अस्तु, बहुत सावधानीपूर्वक इसका उपयोग करना चाहिये। बड़ी मात्रा में यह तीव्र उत्तेजन प्रभाव करता है। क्वेब्रैकोन के हाइड्रो-क्लोराइड का त्वगन्तः सूचीवेधन द्वारा और मुख से भी प्रयोग कराया जा चुका है। इसका एपोमार्फीनवत् आशु एवं सबल वामक प्रभाव होता है।

ऐस्पिरीन–[अं० aspirine] दे० "ऐस्पाइरीन"।

ऐस्पीडियम्–[ले० aspidium] दे० "अस्पीडियम्"।

ऐस्पेन–[ले० aspen] उक्त नाम का एक डाक्टरी औषध।

ऐस्पेरागस–[अं० asparagus] पौधों की एक जाति।

ऐस्पेरागस-आफिसिनेलिस–[ले० asparagus-officinalis, *Linn.*] हलियून–सं०।

ऐस्पेरागस ऐडसेंडेंस–[ले० asparagus-adscendens, *Roxb.*] सफ़ेद-मुसली, धोलि मुसली–बम्ब०। शकाकुल–द्र०।

ऐस्पेरागस-कामन–[अं० asparagus-common] हलियून।

ऐस्पेरागस-गोनोक्लेडस–[ले०, asparagus-gonoclados] शतमूली। शतावर।

ऐस्पेरागस-पञ्जाबेंसिस–[ले० asparagus-punjabensis] सेंसरपाल–पं०।

ऐस्पेरागस-फिलिसिनस–[ले० asparagus-filicinus, *Ham.*] अहीपल्लो–पं०।

ऐस्पेरागस-ब्रांचिंग–[अं० asparagus-branching] शतमूली। शतावर।

ऐस्पेरागस-बीन–[ले० asparagus-bean] पहाड़ी बोड़ा।

ऐस्पेरागस रैसीमोसस–[ले० asparagus-racemosus, *Willd.*] सतावर। शतमूली।

ऐस्पेरागस-लिनियर-लीव्ड–[अं० asparagus-linear-leaved] श्वेतमुसली। सफेद मुसली।

ऐस्पेरागस सरमेण्टोसस–[ले० asparagus-sarmentosus, *Willd.*] बड़ी सतावर। सफेद मुसली। शतावरी।

ऐस्पेरागीन–[अं० asparagin] हलियून का एक सत्व।

ऐस्प्लीनियम्-एडिएण्टम्-नाइग्रम–[ले० asplenium-adiantum-nigrum, *Linn.*] (Black Spleen-wort.) पौधा विशेष]

ऐस्प्लीनियम्-ट्रिकोमेनीज़–[asplenium-trichomanes, *Linn.*] पौधा विशेष।

ऐस्प्लीनियम्-पैरासाइटिकम्–[ले० asplenium-parasiticum, *Willd.*] महापान। कारि-वेलि-पान्न-मरवर–मरा०।

ऐस्प्लीनियम्-फैल्केटम्–[ले० asplenium-falcatum] पान। नेल-पान्न-मरवर–मद०।

ऐस्प्लीनियम् रुटा-म्युरेरिया–[ले० asplenium ruta-muraria, *Linn.*](Wall Rue) पौधा विशेष।

ऐस्प्लीनियम्-सिटेरैक–[लेasplenium-ceterach] (Spleen-Wort)। हशीशतुत्तिहाल। इस्क़ूलूक़न्दर्यून।

ऐस्प्लीनियम्-स्कोलो-पेण्ड्रियम्–[ले० asplenium scolopendrium](Hart's-tongue) इस्क़ूलूक़न्दर्यून।

ऐस्प्लीनियम्-हेमियोनाइटीज़–[ले० asplenium-hemeonites, *Linn.*] (Mule's fern) एक प्रकार का फर्न।

ऐहम्–[अ०] मूर्ख। निर्बुद्धि।

ऐहात–[अ०] मांस का सड़ जाना।

ऐहिक–वि० [सं० त्रि०] इह लोक सम्बन्धी। इस दुनियाँ से पैदा।

ऐ(इ)हुक्कान–[फ़ा०] जर्जीर।

ऐक्षव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) इक्षु विकार। गन्ने की बनी हुई चीजें। जैसे; गुड़ आदि। (२) इक्षुमद्य। जटा०।

ऐक्षवी(सुरा)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गन्ने के रस की बनी हुई शराब।

गुण—शीतल और अत्यन्त मदकारक है। रा० नि० व० १४।

(ओ)

ओ–संस्कृत वर्णमाला का तेरहवाँ तथा हिंदी वर्णमाला का दसवाँ स्वर वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान ओष्ठ और कंठ है। इसके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा सानुनासिक और अननुनासिक भेद होते हैं। संधि में अ+उ=ओ होता है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ब्रह्मा।

ओअन्दुकी–[पं०] इन्द्राणी। बीज बंद्-सिंध०।

ओअर–[पं०] ओलची।

ओआ–संज्ञा पुं० [हिं०] हाथी पकड़ने का गड्ढा।

ओआक–[सं० अव्यय] (१) वमन करने की आवाज़। (२) बगला। बकविशेष।

ओई–संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम। साम-सुन्दर-बर०, बं०।

ओएबीन–[अं०] एक स्फटिकीय ग्ल्यूकोसाइड। दे० "ष्ट्रोफैन्थस"।

ओक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) गृह। घर। स्थान। निवास की जगह। (२) आश्रय। ठिकाना। श्रम०। (३) पक्षी।

संज्ञा स्त्री० ["ओ–ओ" से अनु०] (१) वमन करने की इच्छा। मतली। (२) शुद्र। वृषल।

[अं० Oak] बलूत।

ओक-अगारिक–[अं० oak-agarik] दे० "अगारिकस-ऐल्बस"।

ओक-ऐपल–[अं० oak-apple] माजूफल। माया-फल।

ओक-ओपेन–[अं० oak-open] काला चोकमा –बं०।

ओक-गाल–[अं० oak-gall] मायाफल। माजू-फल।

ओकजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोमराजी। बकुची।

ओकट्री–[अं० oak-tree] बलूत का पेड़। शाह-बलूत का दरख्त।

ओक-डायर्स–[अं० oak-dyer's] माजूफल। मायाफल।

ओकण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केश कीट। जूँ। श० र०।

ओकणि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) केश-कीट। जूँ। उकुण। (२) खटमल। मत्कुण।

ओ(ऊ)क़ातरियून–[यू०] शाक्रिम्।

ओकना–क्रि० अ० [अनु० ओ+हिं० करना] ओ-ओ करना। क़ै करना।

ओकनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जूँ। उकुण। श० र०। (२) खटमल। मत्कुण।

ओक-पति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य वा चन्द्रमा।

ओक-पोटेटो–[अं० oak-potato] माजूफल। मायाफल।

ओकप्लम–[अं० oak-plum] एक प्रकार का माजूफल। मायाफल भेद।

ओक-फर्न–[अं० oak-fern] पालीपाडी Poly pody (Smooth three branched)।

ओक-फिग–[अं० oak-fig] एक प्रकार का माजू फल। मायाफलभेद।

ओक-बार्क–[अं० oak-bark] बलूत त्वक्।

ओक-मेन्ना–[अं० oak-manna] शीरख़िश्त–बलूती।

ओकरा–[बं०] भिण्डी, रामतरोई।

ओक़ला-ओक़ा–[यू०] इक्लीलुल् जबल।

ओक-वर्ट–[अं० oakwort] माजूफल। माया-फल।

ओकशित–[बर०] बेल। श्रीफल। बिल्व।

ओकस्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "ओक"।

ओक-सात्म्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आहार विहार का सुखकारी अभ्यास। च० सू० ७ अ०। भोजन करनेवाला प्राणी अपने आधीन भोजन करके उसे यथोथित रीतिपर पचाये, तो उसे "ओक-सात्म्य" कहते हैं। च० वि० १ अ०।

ओक-स्पैंगल–[अं० oak-spangle] एक प्रकार का माजूफल।

ओकाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० ओकना] (१) वमन। क़ै। (२) वमन करने की इच्छा। विवमिषा। उत्क्लेश। मचली।

ओकानु कट्ट–[ते०] पतङ्ग की लकड़ी। बक़म।

ओकारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० ओक=वमन+कारी] वमनकारी। पित्तमारी। पित्तपापड़ा। पित्तबेल। तिनपानी।

ओ (ऊ)क़ास–[यू०] एक बूटी की जड़, जिससे कपड़ा धोया जाता है। अबुक़ानस।

ओकिवस्–वि० [सं० त्रि०] समवेत। एकत्र। मिला हुआ।

ओकी–संज्ञा स्त्री० दे० "ओकाई"।

ओ(ऊ)क़ीमन–[यू०] बाबरी। बादरूज। जंगली तुलसी।

ओक़ीमून–[यू०] बादरूज तुल्य एक अप्रसिद्ध बूटी।

ओक़ीलस–[यू०] रामतुलसी।

ओकुल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोधूमकृत तप्तापक खाद्य विशेष। अपक्व (कच्चा) गेहूँ। गुण—भारी, वृष्य, मीठा, बलकारक, वातरक्तनाशक, चिकना, हृद्य और मदवर्द्धक है। रा० नि०।

ओकोदनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केश कीट। जूँ। यूका। (२) मत्कुण। खटमल।

ओकोदशानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्राचीर। दीवार।

ओकणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उकुण। जूँ। श० र०। (२) मत्कुण। खटमल।

ओक्रा–[?] भिंडी।

ओक्रो–[अं० okro] भिण्डी।

ओक्रोकार्पस-लॉङ्गिफोलियस–[ochrocarpus-longifolius] पुन्नाग। ताम्रनागकेशर(मरा०)

ओक्रो-मस्क–[अं० okro-musk] मुश्कदाना। मुष्कभिण्डी। कालाकस्तूरी। लता कस्तूरी।

ओक्सवानी-संज्ञा स्त्री० [?] लवणाक्त शुक्त। नमक मिला हुआ सिरका।

ओक्सुमाली–[यू०] सिकंजबीन-अस्ली।

ओखद–संज्ञा पुं० दे० "औषध"।

ओखर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शोरा। शोरक। रा०नि०।

ओखरी–संज्ञा स्त्री० दे० "ओखली"।

ओखराड़ी–संज्ञा स्त्री०[देश०]एक पौधा जो १ फुट से ३फुट तक ऊँचा छत्ताकार होताहै और जिसमें बहुत बीज होते हैं। इसमें से बैंजनी नीला रंग निकाला जाता है। यह सूखी तलाइयों की तलहटी में और नदी के कूलों पर भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र होती है।

पर्य्या०—ओखराडी, भिस्सटा, तडागमृत्तिकोद्भवा–सं०। ओखराडी-हिं० ओषड़-बं०। ओखराड्य–मरा०, गु०। गन्धिबूटी–ब्रम्ब०, पं०। सिरुसरीपदी–मरा०, ता०। पोपरंग, कोत्रुक, गंधीबूटी-पं०, सिं०। Molla Gohirta, *Thunb.*–ले०।

(*N. O. Ficoideoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—यह हिन्दुस्तान के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र होती है।

गुण धर्म-तथा प्रयोग—इसकी जड़ की राख बच्चों की श्लेष्म-व्याधियों में प्रयुक्त होती है। इसके पत्तों के काढ़े से धोने से क्षत शुद्ध होता है। इसके बीजों की फंकी देने से दस्त लगता है। इसकी और करौंदे की जड़ कूट-पीस कर टिकिया बनाकर बाँधने से छाला पड़ जाता है। इसके सूखे हुये फल, पत्ते, छाल, जड़ और फूल अर्थात् पञ्चांग को क्वथित कर, उस पर थोड़ी सी राई छिड़क कर पिलाने से रक्त की शुद्धि होती है। इसका पञ्चाङ्ग जलाकर, उस राख में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर तेल में डालकर लगाने से सिरके पुराने क्षत अच्छे हो जाते हैं। जिसका पेशाब रुक गया हो; उसे काली मिर्च के साथ इसे घोट कर पिलाने से मूत्र खुलकर आने लगता है। (ख० अ०)।

इसे पीसकर सिर पर लगाने से शिरकी खुजली, दाद, शोष और व्रण दूर हो जाते हैं। कण्डू और

चर्म रोगों में इसका प्रलेप करते हैं। इं० ड्रू० इं० ५०८ पृ०)

इसका रस दुर्बल बालकों को पिलाया जाता है। वैट के अनुसार पञ्जाब और सिंध में यह अतिसार में प्रयोगित होती है। (फ्रा० इं० २ भ० पृ० १०४)

ओखराणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० [उदूखल। ओखरी।

ओखल–संज्ञा पुं० [सं० ऊषर] (१) परती भूमि। (२) ओखली।

ओखली–संज्ञा स्त्री० [सं० उलूखल] हावन। कूँड़ी।

ओखा–वि० [हिं०] (१) शुष्क। सूखा। (२) दूषित। खोटा। (३) विरल। जो गाढ़ा न हो।

ओगण–वि० [सं० त्रि०] अवगण्य। नफ़रत किया हुआ।

ओगल–संज्ञा पुं० [देश०] परती भूमि।

ओगलदान–संज्ञा पुं० [देश०] निष्ठीवन सराव। वह पात्र जिसमें थूका जाता है। उगलदान।

ओगाई–[पं०] एक ओषधि। (Astragalus-Tribuloidis)

ओगीयस–वि० [सं० त्रि०] उग्र। अत्यन्त तेजस्वी।

ओघ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नदी। (२) नदी की वेग। बाढ़। (३) समूह। ढेर। (४) उपदेश। (५) द्रुत नृत्य। फुर्तीली नाच। (६) परम्परा। पुरानी चाल।

ओघवत्–वि० [सं० त्रि०] जलवेगादि युक्त। तेजी से बहनेवाला।

ओड्–[बर०] नारियल। नारिकेल।

ओड्-सी–[बर०] नारियल का तेल। नारिकेल तैल।

ओज(स्)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० ओजस्वी, ओजित, ओजिष्ठ] (१) शरीर के भीतरके रसोंका सार भाग। रस से लेकर वीर्य पर्यन्त प्रत्येक धातुओं का जो परम तेज है, उसी को "ओज" कहते हैं। वह हृदय में रहता हुआ भी संपूर्ण शरीर में व्याप्त है। वही जीवन का प्रधान कारण है।

पर्याय—तेज। बल। प्रताप।

लक्षण—स्निग्ध, सोमात्मक (शीतवीर्य), कुछ कुछ पीला तथा लाल होता है। इसके नष्ट होने पर जीवन लीला समाप्त हो जाती है और जिसमें यह रहता है, वही सजीव रहता है। इससे ही शरीर सम्बन्धी प्रत्येक भाव निष्पन्न होते हैं। वा० सू० ११ अ०। इसकी वृद्धि से ही देह की तुष्टि पुष्टि तथा बल का उदय होता है। वा० सू० ११ अ०।

"वैद्यक निघण्टु" में लिखा है—यह शरीर में स्थितत्व, स्निग्धता, शीतलता, स्थिरता, शुक्र वर्णता और कफात्मकता उत्पन्न करता है और शरीर को बलवान और पुष्ट करता है।

"सुश्रुत" में लिखा है—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं—इन सातों के सार यानी तेज को "ओज" कहते हैं; उसे ही शास्त्र के सिद्धान्त से "बल" कहते हैं।" "ओज" सोमात्मक चिकना, सफेद, शीतल, स्थिर और सर यानी फैलनेवाला, रसादि धातुओंसे पृथक्, कोमल, प्रशस्त और प्राणों का उत्तम आधार है।

"सुश्रुत" में और भी लिखा है —ओज रूपी बल से ही मांस का संचय और स्थिरता होती है। उसी से सब चेष्टाओं में स्वच्छन्दता, स्वर, वर्ण, प्रसन्नता तथा बाहरी और भीतरी इंद्रियोंमें और मन में अपने-अपने काम की उत्कण्ठा होती है; यानी ओज-बल की शक्ति से ही आँख देखने का, कान सुनने का, जीभ चखनेका और गुदा मलत्याग करने का काम करता है। इसी तरह शेष और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने काम करती हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव में यह "ओज" व्याप्त है। इसके व्याप्त न होने से मनुष्यों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग जर्जरीभूत हो जाते हैं।

"चरक" के अनुसार यह शरीर में आठ बिन्दु प्रमाण होता है और कुछ-कुछ लाल तथा पीला होता है और अग्नि सोमात्मक रूप से यह दो प्रकार का वर्णन किया गया है।

गुण—इसमें प्रधान १० गुण हैं—भारी, शीतल, मृदु, श्लक्ष्ण, बहुल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध। यथा—"गुरु शीतं मृदु श्लक्ष्णं बहुलं मधुरं स्थिरम्। प्रसन्नं पिच्छलं स्निग्धं ओजो दश गुणं स्मृतम् ॥ २१ ॥ च० चि० १२ अ०।

"चरक" में पुनः लिखा है—हृदय में जो किसी क़दर पीले रंग का शुद्ध रुधिर–खून दीखता है, उसी को ओज कहते हैं। उसके नाश होने से शरीर का भी नाश हो जाता है।

ओजक्षय के कारण—चोट लगनेसे, क्षीणता से, क्रोध से, शोक से, ध्यान (चिंता) से परिश्रम और क्षुधा से ओज का नाश होता है। क्षीण हुआ ओज मनुष्यों की धातु प्रभृति को नष्ट करता है।

ओजक्षय के लक्षण—ओज क्षय होने से प्राणी सदैव भयभीत रहता है, शरीर कमज़ोर हो जाता है, हर समय चिन्ता बनी रहती है, सारी इन्द्रियाँ व्यथित रहती हैं, शरीर कांतिहीन, रूखा और क्षीण होजाता है।

"सुश्रुत" में लिखा है—ओज की विकृति के तीन रूप होते हैं—(१) पतन, (२) बिगड़ जाना और (३) क्षय होजाना।

जब ओज का पतन होता है, तब जोड़ों में विश्लेष, अङ्गों का थक जाना, दोषों का च्यवन और क्रियाओं का अवरोध,—ये लक्षण होते हैं। जब ओज बिगड़ जाता है, तब शरीर का रुकना, भारी होना, वायु की सूजन, वर्ण यानी रंग का परिवर्त्तन, ग्लानि, तन्द्रा और निद्रा,—ये लक्षण होते हैं। जब ओज का क्षय होता है, तब मूर्च्छा, मांस, क्षय, मोह, प्रलाप और मृत्यु—ये लक्षण होते हैं।

ओजबर्द्धक उपाय—जो पदार्थ हृदय को प्रिय लगे तथा ओज को बढ़ानेवाला हो एवं धर्म विदों के स्रोतों को प्रसन्न करनेवाला हो, यत्न पूर्वक उसका ही सेवन करना चाहिये।

अन्य छः उपाय—(१) किसी प्रकार की भी हिंसा न करना, (२) वीर्य की रक्षा, (३) विद्याविलास, (४) इन्द्रियों को स्वाधीन रखना, (५) तत्वदर्शी होना और (६) ब्रह्मचर्य का सदा पालन करना, इन्हें ही आयुर्वेदविद मुख्य माने हैं। च० सू० ५ अ०।

(२) प्रकाश। उजाला। (३) आतप।

नोट—आजकल के कुछ विद्वान् इस शब्द की तुलना में "विटामिन" शब्द का जो अँगरेज़ी भाषा का शब्द है व्यवहार करने लगे हैं। किंतु उक्त शब्द में वह भाव कदापि निहित नहीं है। हरिद्वार महाविद्यालय में भाषण देते हुए नारायण स्वामी ने ओज शब्द की पूर्ण व्याख्या करते हुए यह सिद्ध किया था कि किसी भी अन्य भाषा के ग्रंथों में "ओज" शब्द के तुलनात्मक शब्द नहीं मिलते।

ओज़म्–[तुर०] अंगूर। दाख।

ओजस्कर–वि० [सं० त्रि०] ओज नामक धातु का बढ़ानेवाला। ओजवर्द्धक। क़ुव्वत हैवानी को बढ़ानेवाला।

ओजस्वत्–वि० [सं० त्रि०] (१) तेजस्वी। (२) बलवान्।

ओज़ाक–[फ़ा०] देग़दान। चूल्हा।

ओजाग़–[अ०] देग़दान। चूल्हा।

ओजायित–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आतप। गर्मी।

ओजित–वि० [सं० त्रि०] दे० "ओजस्वत्"।

ओजिष्ठ–वि० [सं० त्रि०] तेजस्वी। तेजधारी। बलवान्। प्रभावशाली।

ओजस्विनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक आयुर्वेदीय पेटेण्ट औषध।

ओजस्वी–वि० [सं० त्रि०] दे० "ओजिष्ठ"।

ओज़ीतफ़्स–[रु०] अरवी। घुइयाँ।

ओजीनिया–डैल्बर्जिआइडीज़–[ले० ougeinia-dalbergioides] तिनिश। तिरिच्छ।

ओजीयस्–वि० [सं० त्रि०] तेजस्वी। बलवान्। प्रभावशाली।

ओज़ोकेरीन–[अं० ozokerine] पार्थिव मधूच्छिष्ठ। शम्उल अ़र्ज़। मोम ज़मीन।

ओजोदा–वि० [सं० त्रि०] ओज धातु प्रदान करनेवाला।

ओज़ोन–संज्ञा पुं० [अं० ozone] कुछ घना किया हुआ अम्लजन तत्व। यह वर्णरहित और गन्ध में निराले ढङ्ग का होता है। इसका घनत्व अम्लजन से १½ गुना होता है। इसमें गंध दूर करने का विशेष गुण है। गर्मी पाने से यह साधारण अम्लजन के रूप में परिणत हो जाता है। वायु में इसका बहुत थोड़ा अंश रहता है। नगरों की अपेक्षा गावों की वायु में यह अधिक रहता है। अधिक शीतल करने से यह नील के पानी के

समान बहने लगता है और बड़े ज़ोर से भड़क उठता है। इसका अंश ओषजन में भी पाया जाता है। यह जल में बहुत कम मिलता है। जल को निष्फल बनाने में इसे अधिक व्यवहार करते हैं। इसकी परीक्षा १७८५ ई० में वानमरम (Van-marum) महोदय ने की थी।

ओज़ोन-पेपर–संज्ञा पुं० [अं० ozone-paper] एक प्रकार का काग़ज़, जिसके द्वारा यह परीक्षा हो सकती है कि वायु में "ओज़ोन" है वा नहीं। इसका व्यवहार औषध में भी होता है। दे० "पोटेशियाई नाइट्रास"।

ओज़ोन-बक्स–संज्ञा पुं० [अं० ozone-box] संपुट विशेष। एक प्रकार का संदूक़। इसमें ओज़ोन पेपर को रखकर वायु में "ओज़ोन" रहने व न रहने की परीक्षा की जाती है। इसकी बनावट अनोखी होती है। वायु भिन्न प्रकाशादि द्रव्य इसमें प्रवेश नहीं कर सकते।

ओज़ोनाइज्ड-एयर–संज्ञा पुं० [अं० ozonized-air] ओज़ोनित वायु। ओज़ोन। दे० "हाइड्रोजीनियाई पर आक्साइडाई लाइकर" या "आक्सिजन"।

ओज़ोनिक-ईथर–संज्ञा पुं० [अं० ozonic-aether] यह एक अधिक स्थायी यौगिक है, जो पानी के साथ मिल जाता है। दे० "हाइड्रोजिनियाई पर आक्साइडाई लाइकर"।

ओज्मा–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) शक्ति। ताकत। (२) वेग। तेज़ चाल।

ओझ–संज्ञा पुं० [सं० उदर, हिं० ओझर] (१) पेट की थैली। पेट (२) आँत। अन्त्र। अँतड़ी।

ओझड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] पशुओं का एक विशेष अंग, जो उनमें आमाशय का स्थानापन्न है।

पर्य्या०—शकंबः, हज़्ज़ार-फ़ा०। कर्श, किर्स-अ०। हज़ारखाना।

टिप्पणी—(१) शकंबः सहस्रकोषयुक्त समूह को ओझड़ी कहते हैं। अमीरुल्लुग़ात के अनुसार ओझड़ी जानवरों का मेदा है। हकीमों के अनुसार मनुष्यों में, जिस प्रकार मेदा है, उसी प्रकार पशुओं में ओझड़ी है। अरबी में शकंबः को कर्श और हज़ारखाने को क़िब्बत कहा करते हैं।

(२) उत्कृष्ट ओझड़ी वह है, जो जवान बकरी वा जवान भेड़ की हो। हकीमों की परिभाषा में केवल ओझड़ी कहने से बकरी और भेड़ की ओझड़ी अभिप्रेत होती है।

प्रकृति—गरमतर है और गीलानी इसे सर्द एवं ख़ुश्क बतलाते हैं। यह जितनी अधिक चिकनी होती है, उतनी ही गरमी की ओर मायल होती है।

गुण-धर्म—मांसकी अपेक्षा इससे ख़ून कम बनता है और जो रक्त बनता भी है, वह उत्तम नहीं होता। इससे कैमूस (Chyme) ख़राब बनता है। फेफड़े के गोश्त से इसमें पोषणांश अधिक है। इसके खाने से कफ बहुत पैदा होता है। यह दीर्घपाकी है। इससे सांद्र दोष बनता है। यह मूर्खता, मृगी, सकता (Apoplexy) तथा आँखों में तारीकी (धुन्ध) पैदा करती है। दृष्टि निर्बल हो जाता है। इसका शोधन इस प्रकार करें कि इसे ख़ूब गलाकर पकाएँ और गरम मसाले एवं सिरके के साथ खाएँ। गीलानी लिखते हैं कि जो चीज़ इसको शीघ्र पचाती एवं सूक्ष्म बना देती है, वह पुराना सिरका, सुदाब और करफ़स (अजमोद) हैं। अस्तु, उसमें इन्हें डालकर पकाएँ। जिसकी यह अभिलाषा हो, कि पतला एवं जलीय रक्त उत्पन्न हो, उसे चाहिए कि ओझड़ी खाया करें और जिसे भोजनोपरांत धूम्रोद्गार आता हो, उसे भी इसको व्यवहार करना चाहिये। ओझड़ी पेट में अधिक ठहरती है। इसलिए जो लोग इसे खाएँ, उन्हें चाहिए कि जवारिशात प्रयोग में लाते रहें। (ख० अ०)।

ओझर–संज्ञा पुं० [सं० उदर, पुं० हिं० ओदर। ओझर] [स्त्री० अल्पा० ओझरी] (१) पेट। (२) उदर के भीतर की वह थैली, जिसमें खाए हुए पदार्थ भरे रहते हैं। पचौनी। कर्श, शकंबः (अ०)। हज़ारखानः (फ़ा०)।

नोट—पागुर करनेवाले जानवरों में यह आमाशय की प्रतिनिधि है। पक्षियों में इस अवयव को पोटा (हौस्लः–अ०) कहते हैं।

ओझरी–संज्ञा स्त्री० दे० "ओझर"।

ओट–संज्ञा पुं० [देश० (अवध)] एक प्रकार का वृक्ष, जिसमें बरसात के दिनों में सफ़ेद और

पीले सुगंधित फूल तथा ताड़ की तरह के फल लगते हैं। इन फलों के भीतर चिकना गूदा होता है और इनका व्यवहार खटाई के रूप में होता है। वैद्यक में यह फल रुचिकर, श्रम तथा शूल-नाशक, मलरोधक और विषघ्न कहा गया है।

पर्य्या०—भव। भव्य। भविष्य। भावन। वक्रशोधन। लोमक। संपुटाङ्ग। कुसुमोदर। (रा० नि०। राज०), आविक, सुपुटाङ्ग, ओष्ठ—सं०। चालता, भव्य-हिं०। चालन-बं०। अटाच झाड़, ओंटी चें फल-मरा०। ओंटफल, करमल-गु०। चको-फ्रा०। Garcinia zanthochymus, *Hook.*-ले०।

उत्पत्तिस्थान—कलकत्ता और जगन्नाथ की तरफ़ अधिक होता है। वि० दे० "भव्य"।

ओट, कामन-[अं० oat, common] विलायती जौ।

ओट-फल-संज्ञा पुं० [हिं०] आलूबोखारा।

ओटिङ्गण-[गु०] उटंगन। शिरियारी।

ओटेङ्गण-[आसा०] चालता-बं०।

ओटो ऑफ रोजेज़-[अं० otto of roses] गुलाब का अतर। दे० "गुलाब"।

ओटो डी रोज़ी-[फ्रां० otto de rose] गुलाब का अतर। दे० "गुलाब"।

ओटो-दिल-बहार-संज्ञा पुं० [अं०ओटो otto+दिल हिं०+बहार] गुलाब का इतर। दे० "गुलाब"।

ओठ-संज्ञा पुं० दे० "ओंठ"।

ओडगी-संज्ञा स्त्री० [देश०] अङ्कोल। ढेरा।

ओड(द)ल्लम्-[मल०] (Cerbera-odollam, *Gartn.*) दबूर, ढकुर-बं०। सुकनु-मरा०। फा० इं० २ भ०।

ओड(ढ)हुल-संज्ञा पुं० दे० "अड़हुल"।

ओडा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
ओडाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } जपा पुष्प। अड़उल। गुड़हल।

ओडि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ओडिका। शा० औ० को०।

ओडिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ओड़ी।

ओडिना वोडियर-[ले० odina-Wodier] जिंगिनी। अजश्रृङ्गी। जिगिन।

ओड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तिन्नी। नीवार। देवधान्य। उड़िधान्य-(बं०)।

पर्य्या०—नीवार, ओड़ी (र०)।

गुण—शोषण करनेवाली, रूखी, कफ तथा वायुवर्द्धक और पित्तनाशक है। राज०। दे० "तिन्नी"।

ओडी-कोलोन-[फ्रां० eau-de-cologne] एक पेटेन्ट औषध।

योग—आलियम् बर्गेमोट २ ड्राम, आलियम् लाइमोनिस १ ड्रा०, आलियम् नैरूली २० बूँद, आलियम् आरिगैनी ६ बूँद, आलियम् रोज़मेराइनी २० बूँद, स्पिरिटिस रैक्टिफिकेटस २० औंस, और एक्वा फ्लोरीज़ आरंशियाई(त्र्यग्निक)१ औंस।

निर्माण-विधि—सबको एक साथ मिलालें।

ओडीलूस-[फ्राँ० eaude-luce] एक पेटेण्ट औषध। सर्पविषघ्नार्क। दे० "अमोनिया"।

ओड्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जपा। अढ़उल देवीफूल। जवा कुसुम वृक्ष। जवाफुलेर गाछ-बं० जासविन्द-(म०)। रा० नि० व० १०।

गुण—संग्राही और केशवर्धक है। भा० पू० १ भ० पुष्प व०। पाखाना पेशाबको रोकनेवाला तथा उन्हें रञ्जित करनेवाला है। रा० नि०। कटु, उष्ण, इन्द्रलुप्त (गंज) रोगनाशक, विष, छर्दि तथा जंतुजनक है और इससे सूर्योपासना किया जाता है। रा० नि० व० १०। इसकी मात्रा ३ मा० है।

ओड्रक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "ओड्र"।

ओड्रकाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अढउल। जवापुष्प। रा० नि० व० १०। दे० "ओड्र"।

ओड्र-पर्य्याय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूर्य्यकान्त पुष्पवृक्ष। अढ़उल। अम०। दे० "ओड्र"।

ओड्र-पुष्प-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अढउल। जवा कुसुम। प० मु०। दे० "ओड्र"।

आड्र-पुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अढउल। जवावृक्ष। वै० निघ०। दे० "ओड्र"।

ओड्र-पुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ओड्र"।

ओड्राख्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अढ़उल। रा० नि० व० १०। दे० "ओड्र"।

ओढ़न-संज्ञा स्त्री० [हिं०] ओढ़ाई। शरीर को वस्त्र से ढाकने का कार्य।

ओढ़ना–संज्ञा पुं० [हिं०] (१) देहाच्छादन वस्त्र । (२) बिस्तर की चद्दर ।

ओढ़नी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] छोटी चद्दर । पछौरी । यह स्त्रियों के काम आती है ।

ओढ़ायलङ्कषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरखमुण्डी । वै० निघ० ।

ओणि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सोमरस प्रस्तुत करने का एक पात्र इसके दो भाग होते हैं । (२) स्वर्ग-मर्त्य । पृथ्वी-आकाश । (३) रक्षा करनेवाली शक्ति । (४) रक्षा ।

ओणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ओणि" ।

ओण्डु–[क०] अजवाइन ।

ओण्डुकाख्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अडूसा । रा० नि० व० १० । दे० "ओडू" ।

ओत–संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) सुख । विश्राम । आराम । (२) आलस्य । सुस्ती । (३) अवशिष्टांश । बचत । (४) लाभ ।

वि० [सं० त्रि०] (१) अन्तर्व्याप्त । भीतर भरा हुआ । (२) बुना हुआ । (३) कपड़े के ताने का सूत ।

ओता–[यू०] कान । कर्ण ।

ओतामूनी–[अ०] वनपोस्ता । जंगलीपोस्ता ।

ओतु–संज्ञा स्त्री० [स० पुं०, स्त्री०] (१) बिडाल । बिल्ली । अम० । (२) बनबिड़ाल । जंगली बिल्ली । वै० निघ० ।

ओतुद्भवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुश्कबिलाव । ऊद-बिलाव । उदबिड़ाल ।

ओद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अन्न । अनाज ।

संज्ञा पुं० [सं० उद=जल] नमी । तरी । गीलापन । सील ।

वि० गीला । तर । नम ।

[ते०] ऊदुगडो ।

ओदन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अद्रव सिक्थ । यह माँड़ इत्यादि से भारी होता है । वा० टी० हेमा० । (२) यत्रासिका ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पका हुआ चावल । भात । प० मु० । (२) अन्न । अनाज । रा० नि० व० २० । सा० को० उव० वलि० ।

ओदनपाको–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नील कटसरैया । नीलझिण्टी । आर्त्तगल । च० चि० ३ अ० चन्द० तैल ।

ओदना–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ओदनिका" ।

ओदनाह्वया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महासमङ्गा । कंघी । ककही । रा० नि० व० ४ । (२) बरियारा । खिरिहिटी । वाट्यालक । मद० व० १ ।

ओदनिका–संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कंघी । महासमङ्गा । (२)बरियारा । बला । वाट्यालक । रा० नि० व० ४ ।

ओदनी–संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ओदनिका" ।

ओदनीय–वि० [सं० त्रि०] भक्ष्य वस्तु । खाने योग्य वस्तु ।

ओदर–संज्ञा पुं० दे० "उदर" ।

ओदला–[अ०] गुल् । गूज । कुलु । बलि । इं० मे० प्रां० ।

ओदा–वि० [सं० उद=जल] गीला । नम । तर ।

ओदि (डि) यर–[ता०] जिगिनी । जिगन ।

ओदिय-मरम्–[ता०] जिगन । जिगनी । (odina-wodier, *Roxb.*)

ओदी–[मरा०] अमलवेल । गीदड़-द्राक । अमलोलवा ।

ओदी-फ़रुनस–[यू०] भंग । सिद्धी । विजया ।

ओदीमन–[?] अज्ञात ।

ओदुवन–[ता०] (Cleistanthus-collinus, *Benth.*)

ओदिमानु–[ते०] जिगन । जिगनी । दे० "ओदिय-मरम्" ।

ओधस्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] पशु-स्तन । थन ।

ओनया–[यू०] एक बूटी का निचोड़, जिसके परिचय के संबन्ध में बहुत मतभेद है । (१) किसी-किसी के मत से यह "मामीसा" का निचोड़ है । (२) किसी-किसी के अनुसार यह "ख़ालीदूनियून स्याह" (काली हल्दी) का निचोड़ है । (३) मतान्तर से यह ' अनाग़ालुस" भादा का निचोड़ है । (४) अपर मतानुसार यह काले पोस्ते का उसारा (निचोड़) है । (५) एक वनस्पति का उसारा । यह अफ़रीका के देश में मिश्र के समीप होती है ।

यह "उसारा मामीसा" के उसारे की तरह होता है। इसके पत्ते "तरहतेज़क" के पत्तों की तरह होते हैं। किंतु इनमें ऐसे छिद्र होते हैं जो देखने से कीट भक्षित की तरह ज्ञात होते हैं। उनमें रस एवं आर्द्रता का अभाव होता है। अतएव कुछ सूखने से प्रतीत होते हैं और किंचिन्मात्र दाब से टूट जाते हैं। पुष्प केशर की तरह का पीले रंग का होता है। परन्तु यह केशर के पुष्प से बड़ा होता है। ऐसे ही अन्य अनेक विभिन्न मत हैं, जिनका यहाँ उल्लेख करना उचित नहीं जान पड़ता। तात्पर्य यह कि यह एक संदिग्ध एवं अनिश्चित अज्ञात औषध है। प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय में रूक्ष है।

गुण-धर्म—यह औषध अत्यंत तीव्र है, जो प्रदाह उत्पन्न करती है। इसे आँख की ऐसी औषधियों में, जिनसे नेत्रगत मलों का उत्सर्ग अभिप्रेत होता है, योजित करते हैं। इससे धुंध जाती रहती है। यह दमा और सलाक़ावाह्मनी (Blepharitis) को दूर करता है। इसमें तीक्ष्णता अधिक होने के कारण, इसको अकेले व्यवहार में लाना वर्जित है।

ओनूतोलियून—[यू०] कहू की तरह की एक बूटी। अनूतीलून।

ओनूदेक़ी—[?] असदुल अदस।

ओनूबरुख़िया—[यू०]
ओनूबरुख़ीस—[यू०] } एक वनस्पति, जिसकी पत्ती मसूर की पत्ती की तरह होती है। इसका तना एक बालिश्त ऊँचा होता है। फूल कालापन लिये लाल और जड़ छोटी होती है। यह आर्द्र भूमि में उत्पन्न होती है। यह स्रोतों को प्रस्तारित करती है। इसका लेप क्षतों को लाभकारी है, विशेषकर सद्यः जात क्षतों को। इसको कुचलकर ज़ैतून के तेल के साथ शरीर पर मलने से पसीना आने लगता है। इसी प्रकार इसके सूखे अंगों की मालिश से भी स्वेद का प्रवर्त्तन होता है। इसको मद्य के साथ पीने से रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। इससे अतिसार बंद हो जाता है।

ओनू (नू) माली—[यू०] एक प्रकार की मदिरा, जो शराब और शुद्ध मधु से तैयार होती है। ओनूमाली ओनू=मद्य और मालो=(मधु) का यौगिक है। अस्तु, इसका शब्दार्थ माध्वी मद्य हुआ; पर यूनानी भाषा में शहद के शर्बत का नाम है। इसके प्रस्तुत करने की विधि यह है—पुरानी मदिरा २ भाग, शहद १ भाग—इन दोनों को मिलाकर क्वथित करते हैं। जब चाशनी हो जाती है। तब उतार लेते हैं और यही उत्तम है। कभी अंगूर के रस को शहद के साथ क्वथित कर चाशनी कर लेते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है या प्रथम कक्षा में रूक्ष है।

गुण-धर्म—यह शोथविलीनकर्त्ता, रोधोद्घाटक और मलावरोधनिवारक है तथा पाखाना खुलकर लाता है। इससे पेशाब भी अधिक होता है। यदि भोजनोपरांत इसका सेवन करे, तो आमाशय को हानि पहुँचता है। क्योंकि पाचन के निश्चित समय से पूर्व ही खाद्य आमाशय से नीचे उतर जाता है। इसको भोजन करने से पूर्व सेवन करने से यह भूख बन्द करदेता है और फिर भूख पैदा करता है। दूसरी भाँति जो शर्बत प्रस्तुत किया जाता है वह स्वच्छता उत्पन्न करने एवं दोष पाचन में प्रबलतर होता है। यदि मुलायम दस्त आना इष्ट हो, तो पकाया हुआ अंगूर का रस ६ भाग, शहद १ भाग, दोनों मिलाकर शीतल करलें और पुनः सेवन कराएँ। यह जितना पुराना होता जायगा, उतनी ही दस्त लाने की शक्ति कम होती जायगी। यह शर्बत उष्ण प्रकृति वालों को हानिकर और शीतल प्रकृति को सात्म्य होता है। (ख० अ०)।

ओनेई—संज्ञा स्त्री० [?] खस। उशीर।

ओनेगर—[अं० onager] [बहु० ओनैगर्स, ओनेग्राइ] [यू० आनैग्रोस] (ओनोस=गदहा+अग्रियूस=जङ्गली) जङ्गली गर्दभ भेद।

ओनोमा—[यू०] रतनजोत।

ओनोसालियूस—[यू०] करफ्सुल्माऽ।

ओनोस्मा—दे० "आनोस्मा"।

ओन्तरीसा—[यू०] छत्रिका। शिलीन्ध्र। खुम्बी।

ओन्दन—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मङ्गल। (२) कनिष्ठ।

ओन्दि—[अर०] नारिकेल। नारियल।

ओप–संज्ञा पुं० [हिं० क्रि० ओपाना] वमन । ओकाई ।

ओपङ्ग–[बं०] अपामार्ग । चिर्चिटा ।

ओपश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिरोभूषण । जुल्फ । (२) शृङ्ग । सींग ।

ओपिएनीन–[अं० opianine) अहिफेन का सत ।

ओपियम्–[अं० opium] [यू० ओपियून=पोस्ते का रस, ओपोस (=रस) का संक्षिप्त रूप] अहिफेन । अफीम ।

ओपियम्-आबकारी–[अं० opium-abkari] अफ्यून आबकारी ।

ओपियम्-ऐलकलाइड–[अं० opium-alkaloid] अहिफेन के क्षारोद ।

ओपियम्-खानदेश–[अं० opium-khandesh] खानदेश में होनेवाली अफीम ।

ओपियम्-टर्की–[अं० opium-turkey] अफ़्यून तुर्की । दे० "अफ़्यून स्मर्ना" ।

ओपियम्-दूधी–[अं० opium-dudhi] दूधी अफीम ।

ओपियम्-पटना–[अं० opium-patna] पटने की अफीम ।

ओपियम्-पर्सियन–[अं० opium.persian] अफ़्यून फार्सी ।

ओपियम्-प्लास्टर–[अं० opium-plaster] अहिफेन प्रस्तर । दे० "अफ़्यून का पलस्तर" ।

ओपियम्-बनारस–[अं० opium-benares] बनारसी अफीम । काशी में होनेवाली अफ़ीम ।

ओपियम्-बिहार–[अं० opium-bihar] बिहार में होनेवाली अफीम ।

ओपियम्-मालवा–[opium-malwa] मालवा में होने वाली अफीम ।

ओपियम्-मेडिसिनल–[अं० opium-medicinal] औषध में बर्ती जानेवाली अफीम ।

ओपियम्-लेवांट–[opium-levant] दे० "अफ़्यूनस्मर्ना" ।

ओपियम्-सिंध–[opium-sindh] सिंध देशीय अफीम ।

ओपियम्-स्मर्ना–[अं० opium-smyrna] दे० "अफ्यून स्मर्ना" ।

ओपियामीन–[अं० opiamine] दे० "ओपिएमीन" ।

ओपुंशिया-डाइलीनियाई–[ले० opuntia dillenii, *Haw.*] नागफनी । नागफण ।

ओपुंशिया-दूना–[ले० opuntia-tuna] पौधा विशेष ।

ओपेन-हेमर्स-लाइकर-कालोफिल्लाई-एट-पल्सिटिल्ला–[ले० oppen-hemer's liquor caulphylli etpulsatilla] एक योग, जिसमें पल्साटिल्ला और कालोफिल्लीन दोनों समिश्रित होते हैं । दे० "पल्साटिल्ला" ।

ओपोन–[अं० opon] मार्फिया रहित आम्नोपोन का नाम । दे० "आम्नोपोन" ।

ओपोपेनैक्स-शिरोनियम्–[ले० opopanax chironium, *Koch.*] जावशीर ।

ओपोसेरीब्रीन–[अं० opocerebrin] पाइल्स सेरोब्रीन ।

ओपोस्सम–संज्ञा पुं० [अं० opossum] दक्षिणी अमेरिका में रहनेवाली बिल्ली की तरह का एक जंतु । यह कई प्रकार का होता है ।

ओफक़लस–[यू०] बारतंग ।

ओ(ऊ फ़र्यून–[यू०] फ़ग़्यून ।

ओ(ऊ)फारीकून–[यू०] चोड़ का गोंद । हूफ़ारीकून ।

ओफिआक्सिलीन–[अं० ophioxylin] छोटी चंदन का सत । धवलबरुआ का सत ।

ओफिआक्सीलोन-सर्पेण्टिनम्–[ले० ophioxylon-serpentinum] चन्द्रिका । धवल बिरवा । छोटा चाँद–बं० ।

ओफिओर्हाइज़ामङ्गोज़–[ले० ophiorrhiza-mungos, *Linn.*] सरहटी । सर्पाक्षी । गंधनाकुली ।

ओफ़ीमूनदास–[यू०] अप्रसिद्ध–बूटी ।

ओफीमूनस–[यू०] ग़ाफिस ।

ओफीमूबजास–[यू०] अज्ञात ।

औफेलिक एसिड–[अं० ophelic-acid] किरातामल । दे० "चिरायता" ।

ओफेलिया–[अं० ophelia] दे० "आफेलिया"।

ओफ्लूस–[अ०] आँख के नासूर की वह प्रारम्भिक अवस्था, जब कि वह विदीर्ण न हुआ हो। ग़र्ब। फिस्चुला-लैक्रिमेलिस (Fistula-lachrimalis)–अं०।

ओबि(पि)यानुस–[यू०] एक प्रकार का बाबूना। सोभल।

ओबुल–[पं०] जंगली पालक। बनपालक–बं०।

ओमत्तीनीर–[ता०] / ओमद्रावकम्–[ते०] अर्क अजवायन।

ओमती–[ते०] अजवायन।

ओममु–[ते०] अजवाइन।

ओममुआकु–[ते०] (१) अजवायन का पत्ता। (२) पंजीरी का पात। सीता की पंजीरी। अजवायन का पत्ता–द०।

ओमम्–[ता०, सिं०] अजवाइन।

ओमम्-प्लाण्ट–[अं० omam-plant] अजवाइन का पौधा।

ओमम्-वाटर–[अं० omam-water] अर्क अजवाइन।

ओमलोटी–[बं०] आमरूल। चांगेरी। अम्लोटी।

ओमाज–[तु०] अम्लतारहित सोय्यान। इसको आशबवा भी कहते हैं।

ओमारीक़ा–[यू०] अनीसून।

ओमाली–[यू०] वह शराब जो केवल पानी और शहद से बनी हो।

ओमासियाना–[?] ज़रदालू। मिशमिश।

ओम्–[कना०] अजवाइन।

ओम्बा– [मरा०] अज्ञात।

ओम्लु–[लाहौ०] बीस। शलकट–पं०। (Myricara germanica, *Desv.*)।

ओर–[बं०] बम्बूसा ब्राण्डेसियाई–ले०।

[अं० ore] [सं० आयस=धातु] कच्ची धातु। उपधातु।

ओरंगोटंग–संज्ञा पुं० [मला० ओरंग=मनुष्य+ऊटन=वन] सुमात्रा और बोरनियो आदि द्वीपों में रहनेवाला एक प्रकार का बंदर वा बनमानुष। यह चार फुट ऊँचा होता है।

ओरहा–संज्ञा पुं० दे० "होरहा"।

ओराइजा-सेटाइवा–[ले० oryza-sativa *Linn.*] (l'addy) धान।

ओरॉक्सिलम्-इण्डिकम्–[ले० oroxylum-indicum, *Vent.*] अरलु। सोनापाठा। श्योनाक।

ओरिगैनम्–[अं० origanum] दे० "आरिगैनम्"।

ओरिलैत्तामरै–[ता०] रतनपुर्ष। रतनपुरुष–दे०।

ओरीज़– / ओरूज़ा– [यू०] चावल।

ओरीष–[का०] जिगन। जिगनी।

ओरूज़ा–[यू०] चावल।

ओरूस–[फ़ा०] अभल। हाऊबेर।

ओरेकी–[अं० orache, garden] सरमक। क़ताफ़। मलुव।

ओ(ऑ)रेञ्ज–[अं० orange] [अ० नारञ्ज] नारंग। नागरंग।

ओरेड–[नैपा०] रेंड। एरण्ड वृक्ष।

ओरोर (ल)–[बं०] अरहर। आढ़की।

ओर्य–[बं०] सुन्दरिञ्जन—उड़ि।

ओर्रा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत लम्बा बाँस जो आसाम और ब्रह्मा में होता है। इसकी ऊँचाई १२० फुट तक की होती है और घेरा २५–३० इञ्च।

ओल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरन। जिमीकन्द। ओल गाछ–बं०। र० मा०। भा० पू० १ भ०। गुण—अग्निकर, कफनाशक, रुचिकारक, हलका और अर्श में पथ्य है। ग्राम्यकन्द दोषकारक होता है। रा० नि०। दे० "सूरन"।

वि० [सं० त्रि०] आर्द्र। गीला। ओदी। मे० लद्विक।

ओल–[बिहार] दे० "ओल"।

ओलः–[?] जलीद–(अ०)। तग्रगुज़ालः (फ़ा०)। गड्डु–पं०।

ओल(ल्ल)कन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूरन। जिमीकन्द। र० मा०। (२) जंगली सूरन। वनौल्ल। पानीय भक्तवटी।

ओलची–संज्ञा स्त्री० [सं० आलु] आलूबालू नामक वृक्ष का फल। गिलास। ई० मे० प्लां०।

ओलक-तम्बोल–दे० "उलट कंबल"।

ओल-मरुथु–[ता०] किंजल (मरा०)।

ओला–संज्ञा पुं० [सं० उपल] (१) गिरते हुये मेह के जमे हुये गोले। पत्थर, बिनौरी, बिनौली, इन्द्रोपल–हिं०। वर्षोपल–सं०। अम०। तग्रग़ ज़ालः, संगचः (फ़ा०)। जलीद, बरूदगुराब, गर्बान, इन्नइन्आम –(अ०)। कन्ज़ुल् लुग़ात में "हब्बुल-ग़माम" लिखा है। हेल (Hail) (अं०)।

वर्णन—इन गोलों के बीच में बर्फ़ की कड़ी गुठली सी होती है, जिसके ऊपर मुलायम बर्फ़ की तह होती है। ये कई आकार के गिरते हैं। इनके गिरने का समय प्रायः शिशिर और वसन्त है।

टिप्पणी—मुजर्रिबात फिरंगी में फ़ारसी भाषा में लिखा है कि जब वाष्प वायु में जाते हैं, तब वे सर्दी की प्रतिक्रिया द्वारा सांद्र होकर मेह के बूँदों के रूप में परिणत होजाते हैं। यदि गिरते समय उसमें सर्दी अधिक हुई तो वे ही ठिठुर कर ओले बन जाते हैं.....इत्यादि।

प्रकृति—शीतल और तर, कभी (बिलअर्ज़)। इससे गर्मी तथा ख़ुश्की भी प्रगट होती है।

गुणधर्म—येप्रायः सभी गुणों में बर्फ़के समान हैं और उससे अधिक गुरु हैं। यह बूढ़ों को असात्म्य है। इसका पानी उष्णता जनित दंतशूल के लिए लाभकारी है। यदि कंठ में जोंक चिपट जाय, तो उसके लिए भी गुणकारी है। घेघा के रोग में इसे कपड़े पर फैलाकर रोगी की गर्दन पर बाँधने से उपकार होता है। घेघा की सूजन उतर जाती है। किंतु, इससे अत्यधिक वेदना एवं प्रदाह होता है। जले हुए स्थान पर मलने से दर्द और प्रदाह निवृत्त होती है। ओला लेकर प्रथम उसे ज़मीन पर डाल दें, जिसमें वह गलकर पानी होजाय। पुनः उस स्थान की मिट्टी लेकर फोड़े पर मलें, तो दर्द एवं प्रदाह दूर होता है। यदि उस मिट्टी की गोली बनाकर सुखा लें और आवश्यकता होने पर उसको पानी में भिगोकर लेप करें, तो भी प्रभाव होता है। एक पुस्तक में लिखा है कि यदि ओले की मिट्टी पीसकर जलने के कारण उत्पन्न हुये क्षत पर छिड़कें, तो दुर्गन्धित मांस को दूर कर देती है। और शुद्ध मांसाङ्कुर उत्पन्न करती है। इसके लिये कोई भी अन्य वस्तु इससे अधिक गुणकारीनहीं। किंतु यह ध्यान रहे, कि अधिक मांस न जमजाय। जले हुये क्षत को ओले के पानी से धोना भी हितकारी है। इसके खाने से खाँसी पैदा होती है, विशेषकर उस मनुष्य को, जिसके आमाशय में शैत्य का प्राधान्य होता है। उष्ण प्रकृति के पट्ठों और पाचन शक्ति को बल प्रदान करता है। पिपासा-जनक भी है।

(२) मिस्री के बने हुये लड्डू, जिन्हें गर्मी के दिनों में घोलकर पिया जाता है। अथवा सफ़ेद शर्करा को जल में घोल कर अंडे की सफेदी या दूध की झाग से साफ़ करके तीन बार पकाकर गोले बना लेते हैं। इन्हें ही ओले के लड्डू कहते हैं। क़ंद मुकर्रर (फ़ा०)। अब्लूज–(अ)।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण है। किसी-किसी का ऐसा विचार है, कि यह खाँड़ से अधिक उष्ण है।

गुण–खाँड़ से अधिक ग़लीज़ (गाढ़ा)है। खाँसी, वक्षःशूल और दमेको लाभकारी है। इससे खुलकर मलोत्सर्ग होता है। यह गर्भाशय और आँत की सर्दी का निवारण करता है।

ओलाइव–[olive] दे०"आलिव"

ओलिया(ए)एंडर–[अं० oleander] दे० "आलियाण्डर"।

ओलियातियूम–[यू०] एक प्रकार का कीड़ा। मु० अ०।

ओलियातूम–[यू०] अंगूर की बेल। दाख का झाड़।

ओलिंद–
ओलिंद अट्ट– } [सिं०] गुंजा। घुँघची।

ओलीबेनम्–[अं० olibanum] दे० "आलिबेनम्"।

ओलीसून–[यू०] सेवार। शैवाल। काई।

ओलुत चन्दल–[बं०] नाट का बच्छनाग।

ओलेन(ली)किरैत–[मरा०] कलफ़नाथ–द०। कालोमेघ–बं०। यवतिक्ता–सं०।

ओलेन-चाहा–[मरा०] अगिया । अगिन घास । गंध बेना–बं० ।

ओलैक्स-नाना–[ले० olax-nana] मेरोन-मेत–संता० ।

ओलैक्स-स्कैण्डेंस–[ले० olax-scandens, *Roxb.*] धिनियानी–हिं० । हरदुली–ब्रम्ब० । कोकोअरु–बं० ।

ओल्डमैन्स बीयर्ड–[अं० old-man's beard] (chionanthus-virginica)

ओल्डेन लैण्डिया-अम्बोलेटा–[ले० oldenlandia-umbellata, *Linn.*] चिरवल । सुरबुली–बं० ।

ओल्डेनलैण्डिया-अलेटा–[ले० oldenlandia-alata] गंधप्रसारणी । गन्धाली लता । गंधल पाता–बं० ।

ओल्डेन लैण्डिया-कारिम्बोसा–[ले० oldenlandia-corymbosa, *Linn.*] पित्तपापड़ा । क्षेत्रपर्पट ।

ओल्डेनलैण्डिया-क्रिष्टेलाइन–[अं० oldenlandia-chrystalline, *Roxb.*] पंकः ।

ओल्डेनलैण्डिया-क्रिस्टेलीना–[ले० oldenlandia-chrystallina, *Roxb.*] पंकः ।

ओल्डेनलैण्डिया-टू-फ्लावर्ड–[अं० oldenlandia two flowered] खेतपापड़ा । क्षेत्रपर्पट ।

ओल्डेनलैण्डिया-डिफ्युज़ा–[ले० oldenlandia-diffusa, *Roxb.*] एक वनस्पति ।

ओल्डेनलैण्डिया-बाइफ्लोरा–[ले० oldenlandia biflora *Roxb.*] पित्तपापड़ा । खेतपापड़ा । क्षेत्रपर्पट ।

ओल्डेनलैण्डिया-लैम्बेटा–[ले० oldenlandia-lambata] चिर ।

ओल्डेनलैण्डिया-हर्बेसिया–[ले० oldenlandia-herbacea] पित्तपापड़ा । पर्पट ।

ओल्डेनलैण्डिया-हेनिआई–[ले० oldenlandia-heynei, *Hk.*] नोंगनम्-पिल्लु–मद० ।

ओल्ल–संज्ञा पुं० [सं० पु०] दे० "ओल" ।

ओल्लकन्द–संज्ञा पुं० [सं० पु०] दे० "ओलकन्द" ।

ओवम्–[ले० ovum] दे० "ओवा" ।

ओवरी–[अं० ovary] डिम्ब-कोष । स्त्री-बीज कोष ।

ओवल–वि० [अं० oval] अण्डाकार ।

ओवल-लीव्ड-कैशिया–[अं० oval-leaved-cassia] एक पौधा ।

ओवल-लीव्ड-रोजबेरी–[अं० oval-leaved-roseberry] एक पौधा ।

ओवली–[मरा०] मौलसरी । वकुल ।

ओवा–[ले० ova] [ए० व० ओवम्] [अल्पा० ओव्यूल] (१) स्त्री-बीज कोष । डिम्ब । (२) अण्डा । अजवाइन–मरा० ।

ओविस्–[ले० ovis] भेड़ । मेष ।

ओवेट–वि [अं० ovate] अण्डाकार ।

ओवेरियन सब्सटैंस–[अं० ovarian-substance] डिम्बाशय का सत ।

ओवोगल–[अं० ovogal] एक प्रकार का स्वाद वर्जित सब्ज़ीमायल चूर्ण, जो अल्ब्यूमेन के साथ पित्त को योजित करने से प्रस्तुत होता है ।

मात्रा–१५ ग्रेन (७½ रत्ती) । यह पैत्तीय लवणों की प्रतिनिधि स्वरूप आंत्रीय अजीर्ण, पित्ताश्मरी और मलावरोध आदि रोगों में व्यवहृत होता है ।

ओवोफेरीन–[अं० ovoferrin] लौहमिश्रित एक डाक्टरी औषध । इसे आयर्न-विटेलीन (Iron-vitellin) भी कहते हैं । दे० "लोहा" ।

ओवोलेसीथीन–[अं० ovolecithin] दे० "लेसीथीन" ।

ओव्यूल–[अं० ovule] [ओवम् का अल्पा० रूप] (१) बीज । (२) स्त्री-बीज कोष । डिम्ब ।

ओष–संज्ञा पुं० [सं० पु०] दाह । जलन । प्रदाह ।

पर्य्या०—प्रोष । प्लोष । अम० भरत ।

ओषजन–संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्वाचीन रसायनशास्त्र के अनुसार एक वायवीय मौलिक तत्व । ऊष्मजन । Oxygen.

ओषजनीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] एक रासायनिक क्रिया, जिसमें ओषजन गैस किसी और पदार्थ से संयोग करती है । इस पदार्थ और ओषजन के

रासायनिक संयोग से नए पदार्थ बन जाते हैं। (Oxidation.)

ओषण(-णि)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटुकरस। चरपरा रस। झाल। हे० च०।

ओषणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का शाक। पुरातिशाक। पुरतिशाक–बं०।

गुण—कफ-वायुनाशक। राज०। (२) पुनर्नवा। गदहपुरना।

ओषध–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] औषध। दवा।

ओषधि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पौधे जो एकबार फलकर सूख जाते हैं। पौधे, जो फल पकने तक ही रहते हैं। फलपाकांतवृक्षादि। जैसे, धान, गेहूँ, जव, कलाय इत्यादि। हे० च०। (२) द्रव्य।

नोट—आयुर्वेद के अनुसार औषधीय द्रव्य दो प्रकार के होते हैं (१) स्थावर और (२) जंगम। इनमें स्थावर के पुनः चार भेद होते हैं। (१) वनस्पति, (२) वृक्ष, (३) वीरुत् और (४) ओषधि। इनमें से जिनमें बिना फूल आए फल लगें, वे वनस्पति कहलाते हैं। पुष्पफलवान् को वृक्ष, प्रतान विस्तार करनेवाली को लता वा वीरुत् और फल-पाकनिष्ठावाले को अर्थात् जो एकही बार फल कर सूख जाते हैं "ओषधि" कहते हैं। जङ्गम-द्रव्य भी चार प्रकार के होते हैं। (१) जरायुज अर्थात् जरायु से उत्पन्न होनेवाले जैसे, पशु, मनुष्य और व्यालादि। (२) अंडज अर्थात् अंडे से पैदा होनेवाले। जैसे, पक्षी, साँप और सरीसृप प्रभृति। (३) स्वेदज अर्थात्, स्वेद (पसीना) से उत्पन्न होनेवाले। जैसे, कृमि, कीट, जूँ, खटमल इत्यादि। (४) उद्भिज अर्थात् भूमि फोड़ कर निकलनेवाले। जैसे, मेढक आदि। (सु० सू० १ अ)।

(३) वनस्पति। जड़ी बूटी, जो दवा में काम आएँ।

ओषधि-खनन-मंत्र—ओषधियों के खनने का मंत्र। जैसे "येनत्वां खनते ब्रह्मा येनत्वां खनते भृगुः येनेन्द्रो येन वरुणोह्यपचक्रमकेशवः॥ ते नाहंत्वां खनिष्यामि सिद्धिं कुरु महौषधिः"। किसी-किसी ग्रन्थ में इस प्रकार का भी पाठ मिलता है। यथा, "येनत्वां खनते ब्रह्मा येनेन्द्रो ये न केशवः। ते नाहंत्वांखनिष्यामि सिद्धिं कुरु महौषधि"। रा नि०, धन्व नि० परिशिष्टे।

ग्रहण-विधि—शास्त्र में किसी ओषधिके ग्रहण करने में जैसी आज्ञा हो उसी के अनुसार उसे ग्रहण करना उचित है। जहाँ शास्त्र ने मौन धारण किया हो, वहाँ परिभाषा के अनुसार कार्य करना चाहिए। कहा है—"निर्देशः श्रूयते तन्त्रे द्रव्याणां यत्र यादृशः तादृशः संविधातव्य शास्त्राभावे प्रसिद्धतः"।

साधारण-विधि—साधारणतः धन्व (मरुभूमि) और जांगल देश के लक्षणों से युक्त देश में उत्पन्न हुई, विकारशून्य, कांटादिरहित, वीर्य युक्त ओषधि उत्तर दिशा एवं पवित्र स्थान से ग्रहण करनी चाहिये। यथा—"धन्व साधारणे देशे मृदावुत्तरतः शुचौ। अवैकृतं नानाक्रान्तं सवीर्यं ग्राह्यमौषधम्"॥

निषिद्धौषध—देवतालय, बामी, कुएँ के पास, रास्ते और श्मशान में उत्पन्न हुई तथा असमय वे मौसम और वृक्षों के छाया में उत्पन्न हुई, उचित परिणाम से कम अथवा अधिक दीर्घ और पुरानी तथा जल, अग्नि, और कीड़ों से विकृत ओषधि फलदायक नहीं होती।

स्थान-भेद से गुण-भेद—विन्ध्य आदि पर्वत आग्नेय गुणवाले और हिमालयादि सौम्य गुणवाले हैं। अतएव उनमें उत्पन्न होनेवाली ओषधियाँ भी यथाक्रम आग्नेय और सौम्य गुणवाली होती हैं। चिकित्सा-काल में इन सभी बातों पर ध्यान रखकर ओषधि का व्यवहार करना चाहिए।

कालभेद से ओषधि-ग्रहण—समस्त कार्यों के लिए रस युक्त ओषधियाँ शरद् ऋतु में ग्रहण करनी चाहिए; परन्तु वमन और विरेचन की ओषधियाँ वसंत ऋतु के अन्त में ग्रहण करनी चाहिए। यथा—"शरद्यखिल कर्मार्थं ग्राह्यं सरस मौषधम्। विरेक वमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत्"।

विज्ञ वैद्य का कर्त्तव्य है कि ओषधियों के मूल शिशिर ऋतु में, पत्र ग्रीष्म ऋतु में, छाल वर्षा

ऋतु में, कन्द वसन्त में दूध शरद् ऋतु में, सार हेमन्त-ऋतु में और फल एवं फूल जिस ऋतु में उत्पन्न हों, उन्हें उसी में ग्रहण करें। यथा—"मूलानि शिशिरेग्रीष्मे पत्रं वर्षावसन्तयोः। त्वक्कन्दौ शरदि क्षीरं यथर्तु कुसुमंफलम् ॥ हेमान्ते सारमोषध्या गृह्णीयात् कुशलो भिषक्"।

आर्द्र-ओषधि—निम्न ओषधियाँ सदैव गीली अवस्था में ही ग्रहण करना चाहिए और इनका परिमाण द्विगुण न करना चाहिये:—

(१) अडूसा, (२) नीम, (३) पटोल, (४) केतकी, (५) बला (खिरेटी), (६) पेठा, (७) सतावर, (८) पुनर्नवा, (९) कुड़े की छाल (१०) असगंध, (११) गन्ध प्रसारिणी (१२) नागबला, (१३) कटसरैया, (१४) गूगुल, (१५) हींग, (१६) आदी और (१७) ईख से बने हुए कठिन पदार्थ (राब, भिरी इत्यादि)। यथा—"वासा निम्बपटोल केतकिबला कुष्माण्ड कन्दावरी। वर्षाभूकुटजाश्वगन्ध सहितास्ताः पूति गन्धामृता। मांसं नागबला सहाचर पुरोहिड्वा-र्द्रके नित्यशः। ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता येचेक्षुजाताधनाः"।

पुरातन-द्रव्य—चिकित्सा कर्म में घृत, गुड़, शहद, धनियाँ पीपल और वायविडङ्ग—इन्हें सदा पुराना लेना चाहिए।

द्रव्याङ्ग-ग्रहण—खदिरादि वृक्षों का सार, निम्बकादि की छाल, दाड़िम आदि के फल, और पटोलादि के पत्र ग्रहण करना चाहिये।

मतान्तर से—वड़ आदि वृक्षों की त्वचा, विजयसार आदि का सार, तालीशादि के पत्र, और त्रिफलादि के फल ग्रहण करना चाहिए।

जिन वृक्षों की जड अधिक मोटी हो उनका समस्त अङ्ग काम में लाना चाहिए। वि० दे० "ओद्भि-द्रव्य"।

सामान्य-विधि—यदि स्पष्ट वर्णन न हो तो "पात्र" का अर्थ मिट्टी का पात्र, "उत्पल" का नीलोत्पल और "शकृद्रस" का अर्थ गाय के गोबर का रस समझना चाहिए। एवं "चन्दन" शब्द से लाल चन्दन, "सर्षप" से सफेद सरसों "लवण" से सेंधानमक और "मूत्र", दूध तथा घी से क्रमशः गोमूत्र, गोदुग्ध और गोघृत समझना चाहिये।

दूध, मूत्र और पुरीष (गोबर) पशु का आहार पच जाने पर ग्रहण करना चाहिए।

प्रतिनिधि—यदि किसी योग में कोई द्रव्य न प्राप्त हो तो उसके स्थान में उसी द्रव्य के तुल्य गुण रखनेवाले द्रव्य ग्रहण करें। यथा—"कदाचिद् द्रव्यमेकं वा योगे यत्र न लभ्यते। तत्तद्द्रव्य गुणयुतं द्रव्यं परिवर्तेन गृह्यते"। पुनः—

यदि किसी योग में एक ही ओषधि दोबार लिखी हो, तो उसे द्विगुण परिमाण में लें। यथा—"एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पु-नरुच्यते। मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यंतत्व दर्शिभिः"।

यदि किसी प्रयोग में कोई ओषधि रोगी के लिए हानिकारक होती हो, तो उसे उस योग में से अलग करदें। इसी प्रकार यदि कोई ओषधि रोगी के लिए हितकारी हो, तो वह योग में न होने पर भी डाली जा सकती है। यथा—"व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपितत् त्यजेत्। अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तत्रतद्बुधैः।"

चूर्ण, स्नेह, आसव और अवलेह में प्रायः श्वेतचन्दन और कषाय तथा लेप में प्रायः लाल चन्दन का व्यवहार किया जाता है।

यदि समय न निर्दिष्ट हो, तो प्रातःकाल, ओषधि का अंग ज्ञात न होने पर मूल (जड़), भाग न होने पर समभाग, पात्र न कहा हो तो मिट्टी का 'पात्र" और द्रव पदार्थ का नाम न बतलाया गया हो तो "जल" तथा तेल का नाम न कहा हो तो तिल का तैल ग्रहण करना चाहिए।

यदि किसी योग में कोई ओषधि प्राप्त न हो तो उसके स्थान में उसके समान गुणवाली अन्य ओषधि का ग्रहण करें।

ओषधि गण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रासायनिक ओषधियों का गण। इस गण की ओषधियाँ सोम के समान वीर्यवाली होती हैं और महौषधि नाम से सुविख्यात हैं। शास्त्र में इनका सोम के सदृश ही क्रिया और स्तवन का उल्लेख मिलता है। औषधो-पयोगी कतिपय ओषधि के विशेष लक्षणों को

ध्यान में रखकर आचार्य सुश्रुत ने उनका नाम भेद किया है। ये अठारह प्रकार की कही गई हैं। जैसे—(१) अजगरी, (२) श्वेत कापोती, (३) कृष्णकापोती, (४) गोनसी, (५) वाराही, (६) कन्या, (७) छत्रा, (८) अतिच्छत्रा, (९) करेणु, (१०) अजा, (११) चक्रका, (१२) आदित्यपर्णी, (१३) ब्रह्म-सुवर्चला, (१४) श्रावणी, (१५) महा-श्रावणी, (१६) गोलोमी, (१७) अजलोमी और (१८) महावेगवती। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) अजगरी—यह कपिल वर्ण की विचित्र मण्डलों से युक्त, सर्पाभा और पंचपत्रयुक्त होती है। यह परिमाण में पाँच मुट्ठी प्रमाण की होती है।

(२) श्वेत कापोती—यह पत्रशून्य, सोने की आभा-प्रभा की, सर्पाकार और प्रान्तदेश में लालिमायुक्त होती है। इसकी जड़ दो अंगुल की होती है।

(३) कृष्णकापोती—यह वीर्ययुक्त, रोइयों से व्याप्त, मृदु, रस और रूप में ईख के तुल्य होती है।

(४) गोनसी—इसमें केवल दो ही पत्ते होते हैं। जड़ इसकी अरुण होती है। यह कृष्णमण्डल युक्त, अरत्नि परिमित और गोनसाकृति (गो नासिकाकृति) की होती है।

(५) वाराही—सर्पाकार और कंदसंभव ओषधि की वाराही संज्ञा है।

(६) कन्या—मनोरम आकृति की, मोर-पंखी के सदृश बारह पत्तों से युक्त, कन्दोत्पन्न और सुवर्ण की तरह पीले दूध की ओषधि की 'कन्या' संज्ञा है।

(७) छत्रा—एक पत्रयुक्त, महावीर्य और अंजन की तरह कृष्णवर्ण की ओषधि का नाम 'छत्रा' है।

(८) अतिच्छत्रा—कंद-संभव और रक्षोभय विनाशक ओषधि की 'अतिच्छत्रा' संज्ञा है।

छत्रा और अतिच्छत्रा ये दोनों जरा-मृत्यु निवारिणी और आकार-प्रकार में श्वेत कापोती के तुल्य होती हैं।

(९) करेणु—यह ओषधि अतिशय वीर्ययुक्त होती है, जिसमें हस्तिकर्ण पलास की तरह दो पत्ते होते हैं। इसकी जड़ हाथी की आकृति जैसी होती है।

(१०) अजा—इस महौषधि के गुप होते हैं, जिसमें दूध होता है और यह शंख, कुंद और चंद्रमा की तरह पांडुरश्वेत वर्ण की होती है। इसकी जड़ बकरी के थन की आकृति की होती है।

(११) चक्रका—यह श्वेत वर्ण की विचित्र पुष्पयुक्त होती है। इस ओषधि का गुप काकादनी की तरह होता है। यह जरा-मृत्यु का निवारण करनेवाली है।

(१२) आदित्यपर्णिनी—यह प्रशस्त मूल-युक्त (मूलिनी) होती है और इसमें अत्यन्त कोमल सुन्दर रक्तवर्ण के पाँच पत्ते होते हैं। जिधर जिधर को सूरज घूमते जाते हैं, यह भी सदा उसी ओर को घूमती जाती है।

(१३) ब्रह्मसुवर्चला—यह सोने के रंग की वीर्ययुक्त और पद्मिनीतुल्य होती है, जो पानी के किनारे चारों ओर चक्कर लगाती है।

(१४) श्रावणी—इसका गुप अरत्नि अर्थात् मुष्टिका प्रमाण का होता है जिसमें दो अंगुल प्रमाण के पत्ते लगते हैं। इसका फूल नीलोत्पल के आकार का और फल अंजन के वर्ण का अर्थात् काले रंग का होता है। यह सोने के रंग की और वीर्ययुक्त होती है।

(१५) महाश्रावणी—यह श्रावणी की भाँति अन्यान्य गुण युक्त और पांडु वर्ण की होती है।

(१६ तथा १७) गोलोमी और अजलोमी—ये दोनों कन्द-संभव और रोमश होती हैं।

(१८) महावेगवती—यह हंसपादी की तरह मूलसमुद्भव और विच्छिन्न पत्रयुक्त अथवा सभी भाँति रूपाकृति में शंखपुष्पी की तरह होती है। यह अतिशय वेगयुक्त और साँप की केंचुली की तरह होती है।

उत्पत्तिस्थान एवं काल

इनमें से आदित्यपर्णी वसंतकाल में होती है।

अजगरी नित्य दिखाई देती है। गोनसी वर्षाऋतु में उत्पन्न होती है। काश्मीर देशीय क्षुद्रकमानस नामक दिव्य सरोवर में करेणु, कन्या, छत्रा, अतिच्छत्रा, गोलोमी, अजलोमी, महती और श्रावणी होती हैं। वसंत में कृष्णसर्पाख्या और गोनसी दिखलाई देती हैं। कौशिकी नदी के पूर्वतः वल्मीक व्याप्त योजनत्रय भूमि में श्वेत कापोती और वल्मीक के शिखरदेश, मलयपर्वत तथा नल सेतु में वेगवती मिलती है। सु० चि० ३० अ०।

ओषधि गर्भ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चंद्रमा। (२) सूर्य।

ओषधिज–वि० [सं० त्रि०] (१) ओषधिगण के मध्य निवास करनेवाला। जो जड़ी बूटियों में रहता हो। (२) ओषधि से उत्पन्न। जो जड़ी बूटियों से निकला हो।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ओषधि से उत्पन्न अग्नि।

ओषधिपति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "ओषधीपति"।

ओषधि-प्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिमालय। अधिकांश ओषधियों के उत्पन्न होने से ही इसका उक्त नाम पड़ा है।

ओषधी–संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) ओषधि। जड़ी-बूटी। भरतः। (२) छोटा पेड़। लघु वृक्ष। वै० निघ०। दे० "ओषधि"।

ओषधी-पति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपूर। हे० च०। (२) चंद्रमा।

नोट—ओषधि वाचक शब्दों में "स्वामी" वाची शब्द लगाने से चंद्रमा वा कपूर वाची शब्द बनते हैं।

ओषधीमान्–वि० [सं० त्रि०] ओषधि संबन्धी।

ओषधीश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपूर। अम०। (२) चंद्रमा।

ओषधीसूक्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] सूक्तविशेष। वेद का एक मन्त्र।

ओषधीसंशित–वि० [सं० त्रि०] ओषधी द्वारा आयत्त। जड़ी-बूटियों से तहरीक किया हुआ।

ओषम्–[सं० अव्य०] शीघ्र-शीघ्र। जल्द-जल्द। बारम्बार।

ओषित-कणरञ्जक–संज्ञा पुं० [सं०] ओषजन और कणरञ्जक के मेल से बना हुआ एक पदार्थ, जो रक्त में रहता है। (oxybaemoglobin)

ओषिष्ट–वि० [सं० त्रि०] अतिशय दाहकारक। अतिप्रदाहक। बहुत जलन पैदा करनेवाला।

ओष्ट–संज्ञा पुं० [देश०] भव्य।

ओष्टश्वित्रनाशनलेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण क्रम—गंधक, चित्रक, कसीस, हरताल, त्रिफला–इन्हें समान भाग लेकर जल में पीसकर लेप करने से मुख का श्वेत कुष्ट एक ही दिन में नष्ट होता है। रसे० चि० म० ६ अ०।

ओष्ठ्राविन्–वि० [सं० त्रि०] दाहकारी। जलन पैदा करनेवाला। प्रदाहक।

ओष्ठ–संज्ञा पुं [सं० पुं०] [वि० ओष्ठ्य] मुँह के बाहरी उभड़े हुये छोर जिनसे दाँत ढके रहते हैं। ओंठ। ओठ। होंठ। रा० नि० व० १८।

संस्कृत पर्याय—दन्तच्छ। रदपट। रदनच्छद। दशनवास (अ०), दन्तवास। दन्तवस्त्र। रदच्छद (रा०नि०)। शफ़्त (बहु० शिफ़ात, द्वि० शफ़्तैन)-अ०। लब–फ़ा०। लिप Lip–अं०। लेबियम् Labium–ले०।

नोट—यद्यपि ओष्ठ शब्द से दोनों होठों का अर्थ लिया जाता है, तथापि यह शब्द विशेषतया ऊपर के होंठ के लिये प्रयोग में आता है।

ओष्ठक–वि० [सं० त्रि०] ओष्ठ में व्याप्त।

ओष्ठ-कोप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "ओष्ठरोग"।

ओष्ठज–वि [सं० त्रि०] ओष्ठ से उत्पन्न। होंठ से निकलनेवाला।

ओष्ठजाह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] ओष्ठमूल। होंठ की जड़।

ओष्ठधर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ओष्ठ। होंठ। लिप (Lip)

ओष्ठ-पल्लव—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ओष्ठ। होंठ।

ओष्ठ-पुट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] ओष्ठोद्घाटन जात विवर। वह गड्ढा जो होंठ खोलने से पड़ा हो।

ओष्ठपुष्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] बन्धुजीव। गुलदुपहरिया।

ओष्ठ-प्रकोप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "ओष्ठ कोप" या "ओष्ठ रोग"।

ओष्ठप्रान्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सृक्क भाग। ओठों का छोर। मुँह का कोना। रत्ना०।

ओष्ठ-फला–(भा)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुन्दरू। कंदूरी। बिम्बी लता। वै० निघ०।

ओष्ठरञ्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पान। ताम्बूल। प० मु०।

ओष्ठ-रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वे रोग जो दोनों होठों में होते हैं। आयुर्वेद में इनका वर्णन मुख रोग के अंतर्गत किया गया है।

पर्या०—होठों की बीमारियाँ। अम्राज़ुल् शफ़त् (अ०)। Diseases of the lips

वैद्यक के मत से यह रोग आठ प्रकार का होता है—वायुजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातज, रक्तज, मांसज, मेदज, और अभिघातज अर्थात् आगन्तुक।

वातजनित ओष्ठ रोग के लक्षण—

वातजन्य ओष्ठ रोग होने से दोनों होठ खरदरे, रूखे, कठोर और ऐंठे से होते हैं तथा उनमें तीव्र वेदना होती है। ऐसा जान पड़ता है, मानो उनके दो टुकड़े हो जायँगे। वे ज़रा-ज़रा फट भी जाते हैं।

नोट—वातज ओष्ठ रोग में होठों का रंग श्यामवर्ण हो जाता है और उनमें सूई चुभाने की सी पीड़ा होती है।

पित्तज ओष्ठ रोग के लक्षण—

पित्त के कोप से दोनों होठ पीले हो जाते हैं, चारों ओर फुंसियाँ हो जाती हैं तथा उनमें पीड़ा दाह और पाक होता है।

कफज ओष्ठ रोग के लक्षण—

कफज ओष्ठ रोग होने से होठ शीतज, चिकने और भारी रहते हैं, उनमें खुजली चलती है और थोड़ा-थोड़ा दर्द होता है। उन पर शरीर के रंग जैसी फुंसियाँ छा जाती हैं।

त्रिदोषज ओष्ठ रोग के लक्षण—

एक साथ तीनों दोषों का कोप होने से होठ कभी काले, कभी पीले, कभी सफ़ेद और अनेक फुंसियों से युक्त होते हैं।

रक्तज ओष्ठ रोग के लक्षण—

खून के कोप से, दोनों होठ पके हुए खजूर के फल की रंग की फुंसियों से व्याप्त होते हैं। उनमें से खून बहता है और होठों का रंग खून की तरह लाल होता है।

मांस-जनित ओष्ठ रोग के लक्षण—

मांस के दूषित होने से होठ भारी, मोटे और मांस के गोले की तरह ऊँचे होते हैं। इस मांसज ओष्ठ रोग में मनुष्य के दोनों गलफरों में कीड़े पड़ जाते हैं।

मेदज ओष्ठरोग के लक्षण—

इस रोग के होने से दोनों होठ घी और माँड की तरह होते हैं। वे भारी होते हैं और उनमें खाज चलती है। उनमें से स्फटिक मणि के जैसा निर्मल मवाद बहता है। उनमें पैदा हुआ व्रण नरम होता है और भरता नहीं।

अभिघातज ओष्ठ रोग के लक्षण

यदि किसी भाँति की चोट लगने से ओठरोग होता है, तो दोनों होठ चिर या फट जाते हैं। उनमें पीड़ा होती है, गाँठ पड़ जाती है और खुजली चलती है।

होठ के रोगों की चिकित्सा-पद्धति

नोट—मुँह के रोग, मसूढ़े के रोग और होठ के रोगों में प्रायः कफ और रक्त की प्रधानता होती है, अतः इन रोगों में बारम्बार गरम और दुष्ट रक्तमोक्षण कराना चाहिये।

वातज ओष्ठ रोग

नोट—गरम स्नेह, गरम सेक, गरम लेप, घी पीना, मांसरस का उपयोग, अभ्यञ्जन, स्वेदन और लेपन इत्यादि उपचार हितकारी हैं। वातनाशक दवाओं द्वारा तेल पकाकर मस्तिष्क में नास देना तथा स्नेह, स्वेद और अभ्यंग इस रोग में रसायन के समान गुणकारी होते हैं।

(१) वातज ओष्ठ रोग में—तेल या घी में मोम मिलाकर मलना चाहिये।

(२) लोबान, राल, गूगल, देवदारु और मुलेठी बराबर-बराबर लेकर पीस-कूट और छान लो। इस चूर्ण को धीरे-धीरे होठों पर घिसने से वातज ओष्ठ रोग आराम हो जाता है।

(३) मोम, गुड़ और राल—इनको समान-समान लेकर तेल या घी में पकालो। इसका लेप

करने से होठ का सूई चुभने समान दर्द, कठोरता और पीप-खून जाना बन्द हो जाता है।

पित्तज ओष्ठ रोग की चिकित्सा

नोट—पित्तज ओठ रोग में फ़स्द देकर रक्त मोक्षण करवाना; वमन-विरेचन कराना, तिक्तक घृत पिलाना वा तिक्त पदार्थ सेवन कराना, मांस-रस खिलाना, शीतल लेप करना और शीतल तरड़े देना हितकारी हैं।

(४) इसमें प्रथमतः जोंक लगाकर खून निकलवाएँ। तदुपरांत शर्करा, खील, मधु और अनंतमूल समान-समान भाग अथवा खस की जड़, रक्तचंदन और क्षीरकाकोली दूध में पीसकर लेप लगाते हैं।

रक्तज ओष्ठ रोग की चिकित्सा

नोट—(१) रक्त एवं अभिघातजन्य ओष्ठ रोग में पित्तजन्य रोग की चिकित्सा करें।

(२) रक्तज और पित्तज ओठ रोग में जोंक लगवाना और पित्तज विद्रधि की तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

कफज ओष्ठ रोग की चिकित्सा

नोट—कफज ओष्ठ रोग में—खून निकलवाने के उपरांत शिरोविरेचन—सिर साफ करनेवाला नस्य देना चाहिये, धूमपान कराना चाहिये, स्वेदन करना चाहिये और मुँह में कवल धारण कराना चाहिये।

(५) इस रोग में त्रिकुटा, सज्जीखार और जवाखार को समान लेकर पीस लो और शहद में मिलाकर—इस दवा से होठों को घिसो।

मेदजन्य ओष्ठ रोग की चिकित्सा

नोट—मेदजन्य ओष्ठ रोग में—स्वेद, भेद, शोधन और अग्नि का संताप देना चाहिए और दूषित मांस निकाल देना चाहिये तथा लेप करना चाहिये।

(६) मेदज ओष्ठ रोग होने से—आग के द्वारा होठों को सेकना चाहिये तथा त्रिभंगूफल, त्रिफला और लोध का चूर्ण शहद में मिलाकर होठों पर घिसना चाहिये अथवा त्रिफले का पिसा-छना चूर्ण शहद में मिलाकर होठों पर लेप करना चाहिये।

क्षतज ओष्ठ रोग की चिकित्सा

नोट—क्षतज ओष्ठ रोग अर्थात् होठ में घाव हो जाने पर पहले स्वेदन करके, पीछे अच्छी तरह दबाना चाहिये और सौ बार का धोया हुआ घी लगाना चाहिये। यदि होठ में क्लिन्नव्रण हो जाय, तो सारी विधि छोड़कर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये।

(७) कुकरौंधे को पानी में पीस छानकर पिलाने से इसमें लाभ होता है।

(८) सौ बार का धुला हुआ घी लगाने से भी होठ के घाव आराम हो जाते हैं। यदि इस धुले, घी में "कपूर" भी मिला लिया जाय, तो होठ के रोगों के लिये इसके समान दवा नहीं।

(९) यदि होठों पर घाव हो, तो धनिया, राल, गेरू और मोम अथवा राल, गेरू, धनिया, तेल घी, सेंधानमक और मोम—इनको बराबर-बराबर लेकर और एकत्र मिलाकर घाव पर लेप करने से होठ का घाव आराम हो जाता है।

(१०) लोबान, धतूरे के फल और गेरू—इनके साथ तेल वा घी पकाकर लगाने से भी घाव अच्छा हो जाता है।

त्रिदोषज ओष्ठ रोग की चिकित्सा

नोट—इसमें जिस दोष का अधिक प्रकोप हो, पहले उसी की चिकित्सा करनी चाहिये, फिर दूसरे दोषों की चिकित्सा करनी चाहिये। यदि होठ पक जाय, तो व्रण रोग की तरह उपाय करना चाहिये।

ओष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुँदरू की लता। बिम्बी। (२) बिम्बाफल। कुँदरू। प० मु०।

ओष्ठागतप्राण—वि० [सं० त्रि०] मृतप्राय। जो मर रहा हो।

ओष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "ओष्ठा"।

आष्ठोन्नमनी पेशी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष। Quadratus-Labii Superioris.

ओष्ठोपमफला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
ओष्ठोपमफलिका—संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०]
बिम्बिका। कुँदरू की लता। भा० पू० १ भ०। बिम्बी। रा० नि०।

ओष्ठोपमाफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुँदरू। बिम्बी। कंदूरी।

ओष्ठ्य–वि० [सं० त्रि०] (१) ओंठ संबन्धी। (२) ओष्ठ से उत्पन्न होनेवाला। जो होंठ से निकलता हो।

ओष्ठ्ययोनि–वि० [सं० त्रि०] ओष्ठ्य शब्द से उत्पन्न।

ओष्ठ्यापेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष (Superior Labial.)

ओषण–वि० [सं० त्रि०] ईषत् उष्ण। थोड़ा गरम।

ओस–संज्ञा स्त्री० [सं० अवश्याय, या उस्राव] हवा में मिली हुई भाप जो रात को सरदी से जमकर और जलविन्दु के रूप में हवा से अलग होकर पदार्थों पर लग जाती है।

पर्य्या०—अवश्याय। शीत। शबनम। ह्यु–(अं०)।

नोट—जब पदार्थों की गरमी निकलने लगती है, तब वे तथा उनके आस-पास की हवा बहुत ही ठंढी हो जाती है। उसीसे ओस की बूँदें ऐसी ही वस्तुओं पर अधिक देखी जाती हैं, जिनमें गरमी निकालने की शक्ति अधिक है और धारण करने की कम; जैसे, घास। इसी कारण ऐसी रात को ओस अधिक पड़ेगी, जिसमें बादल न होंगे और हवा तेज न चलती होगी। अधिक सर्दी पाकर ओस ही पाला हो जाती है।

ओसफ़दनून–[यू०] काकनज।

ओसर–संज्ञा स्त्री० [सं० उपसर्य्या]
ओसरिया–संज्ञा स्त्री० [सं० उपसर्य्या] } वह भैंस जो गर्भ धारण करने योग्य हो चुकी हो, परन्तु अभी गाभिन न हुई हो।

ओसरवेली–दे० "ऊसरवेली"।

ओसारी–संज्ञा स्त्री० [देश० पश्चिमभा०] उचुंटी। Ageratum cordifolium, *Roxb.*

ओसियूस–[यू०]—एक वनस्पति जिसे ईंधन के काम में लाते हैं। इसकी लकड़ी प्रारम्भ में कालापन लिए होती है और अंत में ललाई लिये हो जाती है। इसकी शाखायें पतली होती हैं और कठिनतापूर्वक कट सकती हैं। पत्ते आस के पत्तों की तरह होते हैं। स्वाद तिक्त होता है। इसीलिये यह अधिक रोगोद्घाटक है। इसके पीने से यकृतावरोध का उद्घाटन होता है। यह कामला (यर्क़ान) के लिये गुणकारी है। यदि इसकी लकड़ी का प्याला बनाकर उसमें पानी रख कर पिया जाय, तो भी यकृत में लाभ होता है। (ख० अ०)।

ओसीन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Ossein)

ओस्तियून–[यू०] एक अप्रसिद्ध बूटी। जबः।

ओस्वीकिया–अज्ञात।

ओहरी–संज्ञा स्त्री० [हिं०] क्लान्तभाव। सुस्ती। थकावट।

ओहा–संज्ञा पुं० [सं० ऊधस्] गाय का थन।

ओहीरा–संज्ञा पुं० [देश०] 'आस' नाम का वृक्ष।

ओंकना–[हिं० क्रि० अ०] दे० "ओकना"।

ओंकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोहन चिड़िया। (२) सोहन पक्षी का पर जिससे फौजी टोप की कलग़ी बनती है।

ओंगा–संज्ञा पुं० [सं० अपामार्ग] (Achyranthes aspera) अपामार्ग। लटजीरा। अन्झाझाड़ा। चिचड़ा।

ओंठ–संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ, प्रा० ओट्ठ] (१) ओष्ठ। होंठ। (Labium) Lip

[देश०] ओष्ठ। ओट। (Garcinia zanthochymus, *Hook.*)

ओंति–[बर०] Cocoanut नारियल। नारिकेल-फल।

ओंतिपिड्–[बर०] Cocoanut tree नारियल का पेड़। नारिकेलवृक्ष।

ओंदि–[बर०] Cocoanut नारियल। नारिकेल-फल।

ओंदिपिड्–[बर०] नारियल का पेड़। नारिकेलवृक्ष।

ओंध–संज्ञा पुं० [हिं०] रज्जुविशेष। एक प्रकार की रस्सी।

ओंसी–[बर०] Cocoanut नारियल।

ओंसी-पिड्–[बर०] Cocoanut tree नारियल का पेड़।

ओंसू–[बर०] Cocoanut oil नारियल का तेल। नारिकेल तैल।

(औ)

औ–संस्कृत वर्णमाला का चौदहवाँ और हिन्दी वर्ण माला का ग्यारहवाँ स्वरवर्ण। इसके उच्चारण का स्थान कण्ठ और ओष्ठ है। यह स्वर अ+ओ के संयोग से बना है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनन्त। शेष।

संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] विश्वंभरा। पृथ्वी।

औइ.यः–[अ० बहु०] [विआऽ ए० व०] (१) पात्र। बरतन। (२) तिबकी परिभाषा में शरीर के आभ्यंतरिक कोठवा आशय। जैसे, आमाशय। परन्तु इसका प्रयोग उरूक़ अर्थात् रगों के लिये भी होता है। वासा Vasa–ले०। क़नूबात।

औइ.यतुरूं ह.–[अ०] रूह. का कोठ। इससे हृदय और धमनियाँ अभिप्रेत हैं।

औइ.यतुल् औइ.यः–[अ०] उरूक़ दम्बियः अर्थात् धमनी और शिरा की वे छोटी-छोटी रगें जो पोषणार्थ उनके भीतर जाती है। वासा वैसोरम Vasa vasorum–ले०।

औइ.यतुल् लबन–[अ०] स्तन में दूध की नालियों के चौड़े भाग। ऐम्पुल्ला Ampulla–ले०।

औइ.यः दम्बिय.–[अ०] रक्त प्रणालियाँ। जैसे, धमनी, शिरा और रक्तकेशिका। Blood vessels.

औइ.यतुल्मनी–[अ०] (Vesiculae seminales) शुक्राशय।

औइ.यः लिम्फ़ाविय्यः–[अ०] लिम्फ की रगें। उरूक़ लिम्फ़ाविय्यः। Lymphatics

औइ.यः शअ्रिय्यः–[अ०] रक्तकेशिकायें। उरूक़ शअ्रिय्यः। Capilaries.

औएबीन–दे० "ओएबीन"।

औकअ्–[अ०] जिसके पाँव का अँगूठा अपनी पासवाली अँगुली पर बैठ गया हो।

औक़ात–संज्ञा पुं० [अ० वक़्त का बहु०] समय। वक़्त।

[स्त्री० एक वचन] (१) वक़्त। समय। (२) हैसियत। बिसात। बिसारत।

औक़ातुल् मर्ज़–[अ०] व्याधिकाल। रोग के समय। रोग के वे काल, जिनमें व्याधि विभिन्न दशा में होती है। हकीमों ने उन व्याधियों के लिये जिनका परिणाम स्वास्थ्य होता है, ये चार काल नियत किये हैं।

(१) इब्तिदा—आदि वा प्रारम्भ अर्थात् रोगारम्भकाल। यह वह समय है जिसमें व्याधि उत्पन्न होती है।

(२) तज़ायुद, तज़ायुद—वर्धन अर्थात् रोग वृद्धिकाल। यह वह काल है जिसमें प्रतिक्षण रोग का वेग बढ़ता है।

(३) इंतिहा—अर्थात् रोग के बढ़कर ठहरने का समय। यह वह समय है, जिसमें रोग एक हालत पर ठहरा रहता है अर्थात् न घटता है और न बढ़ता है।

(४) इन्हिताते—रोगावसान वा रोगशमन काल अर्थात् रोग घटने का समय। यह वह समय है जिसमें रोग का घटाव प्रगट होता है और फलतः रोगी रोगमुक्ति लाभ करता है।

नोट—विदित हो कि यदि उपर्युक्त कालचतुष्टय किसी व्याधि के प्रारम्भ से अंत तक लिये जाँय, तो औक़ात कुल्लियः कहलाते हैं और यदि रोग की एक नौबत वा बारी के लिए लिये जाँय, जैसे शीतज्वर की बारी के चारों काल, तो औक़ात जुज़ईय्यः कहलाते हैं। अर्थात् जब किसी व्याधि की नौबत वा बारी में ये चारों काल उपस्थित हों, तो उनकी औक़ात जुज़ईय्यः संज्ञा है और जब सम्पूर्ण व्याधि मात्र में उपस्थित हों, तो उन्हें औक़ात कुल्लियः संज्ञा से अभिहित करते हैं।

अंगरेजी पर्य्याय—

(१) इब्तिदामर्ज़—Outset, Beginning, Attack, Stage of invasion.

(२) तज़य्युद वा वर्धन— Increase, Anabesis, Stage of advance.

(३) इंतिहा–Height, Fastigium, Acme.

(४) इन्हितात—Decrease, Decline.

औक़ातुस्सनः–[अ०] वर्ष की चार ऋतुएँ। साल की चारों फसलें। जैसे—(१) रबी अर्थात् मौसम बहार, (२) सैफ़ अर्थात् ग्रीष्म ऋतु–

मौसम गर्मा, (३) ख़रीफ़ अर्थात् पतझड़—मौसम खिज़ाँ और (४) शिता अर्थात् शरद् ऋतु—मौसम सर्मा, ज़मिस्ताँ।

औक़ाते कुल्लिय्यः—[अ०] किसी व्याधि के प्रागुक्त काल चतुष्टय जो रोगारम्भ काल से रोग के अन्त तक होते हैं। वि० दे० "औक़ातुल् मर्ज़"।

औक़ाते जुज़्इय्यः—[अ०] रोग के वे काल चतुष्टय (इब्तिदा, तज़य्युद, इंतिहा और इन्हितात) जो कभी रोग के प्रारम्भ से लेकर रोगांत तक होते हैं और कभी रोग के प्रति नौबत के समझे जाते हैं। अस्तु, उक्त दशा में उनको "औक़ातजुज़्इय्यः" संज्ञा से अभिहित करते हैं।

औकारी—संज्ञा स्त्री० दे० "पित्तपापड़ा"।

औक़ियः—[अ०] [अवाक़ी बहु०] एक माप जो ४० दिरम (=१ आउन्स=२॥ तो०) के बराबर होती है। ounce.

औक्छार—संज्ञा पुं० [सं० यवक्षार] जवाखार।

औषद—संज्ञा पुं० [सं० औषध] दे० "औषध"।

औखर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उद्भिद। पांशुलवण। धन्व० नि०।

औखल—संज्ञा स्त्री० [सं० ऊषर] वह भूमि जो परती से आबाद की गई हो।

औख्य—वि० [सं० त्रि०] थाली वा बटलोही में पकाई हुई वस्तु। स्थाली पक्व (अन्नादि)।

औख्येयक—वि० [सं० त्रि०] स्थाली पक्व। बरतन में पकाया हुआ (अन्नादि)

औगेंस-कूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धमनी विशेष। (Thoraco-acromial) अ० शा०।

औच्चैःश्रवस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्र घोटक। इन्द्राश्व। इन्द्र का घोड़ा।

औछ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दारुहल्दी की जड़।

औज—संज्ञा स्त्री० दे० "ओज"।

औजस—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोना। स्वर्ण।

औजाऽ—[अ० बहु०] [एक व० वज्अ] दुःख। व्यथा। पीड़ा।

औज़ार—संज्ञा पुं० [अ०] यंत्र। हथियार। इंष्ट्रूमेंट।

औज़ीमा—[अ०] एक प्रकार का मृदुल एवं सफ़ेद सूजन, जिसमें प्रदाह और दर्द नहीं होता। परन्तु भारीपन होता है और कभी हलका दर्द भी होता है। वर्म रिख़्व। (Oedema)—अं०। ढीला वरम।

नोट—औज़ीमा, वर्म रिख़्व और तहब्बुज के अर्थान्तर के लिए दे० "तहब्बुज"।

औज़ीमाउल्-मिज्मार—[अ०] स्वरयांत्रीय मंदशोथ। भिड़मार का तहब्बुज। (Oedema of the Glottis.)।

औटन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] (१) गर्म करने की हालत। (२) एक प्रकार का चाकू।

औटा—वि० [हिं०] उबला हुआ। जो आग पर रखने से जलकर गाढ़ा होगया हो।

औटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० औटना] (१) वह पुष्टई जो गाय को ब्याने पर दी जाती है। (२) पानी मिलाकर पकाया हुआ ऊख का रस।

औड़—वि० [सं० त्रि०] आर्द्र। तर। गीला।

औड़-(ड़)म्बर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार का कोढ़ का रोग। मे०। सात प्रकार के महाकुष्ठों में से एक। इसमें पीड़ा, दाह, लाली और खुजली होती है तथा रोम रोम कपिल वर्ण के होजाते हैं। इसका आकार गूलर के फल की तरह होता है। औदुम्बर। मा० नि०। (२) ताम्र। ताँबा। जटा० (३) गूलर। उदुम्बर फल।

वि० [सं० त्रि०] उदुम्बर सम्बन्धी।

औड्पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अड़उल। जपा। जवाकुसुम। हे० च०।

औ क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वेद का एक गान।

औतादुल् क़ल्ब—[अ०] दंत। मुँह की मेखें।

औतार—[अ० बहु०] [वतर एक व०] करंडराएँ। नसें। (Ligaments)

औत्कण्ठ्य—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औत्सुक्य।

औत्सर्गिक—वि० [सं० त्रि०] (१) प्राकृतिक। स्वाभाविक। (२) त्याज्य। छोड़ने योग्य।

औत्सुक्य—संज्ञा पुं० [सं० क्ली० (१) उत्सुकता उत्कण्ठा। इच्छा (२) चिन्ता। वा० भ० उ० १ अ०।

औद—[अ०] (१) लौटना। पलटना। पुनरावर्त्तन। (२) बीमार पुर्सी करना। (३) किसी काम

का बनना। (४) अवस्थांतरित होना। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना।

औदक-वि० [सं० त्रि०] पानी से भरा हुआ घड़ा। जल पूर्ण घट।

औदकज-वि० [सं० त्रि०] जलीय वृक्षों से उत्पन्न। जो आबी पौधों से पैदा हो।

औदञ्चन-वि० [सं० त्रि०] जलाधार स्थित। घड़े में भरा हुआ।

औदञ्चनक-वि० [सं० त्रि०] जलाधार के निकटस्थ घड़े के पास रहनेवाला।

औदगान-वि० [सं० त्रि०] जलधर सम्बन्धी। जो कूएँ या झरने से निकाला गया हो।

औदनिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भात बनाने वाला। सूपकार। रसोइयादार। अम०। (२) पका चावल अर्थात् भात दाल बेचनेवाला।

औदरिक-वि० [सं० त्रि०] (१) उदर सम्बन्धी। (२) बहुत खानेवाला। पेटू। पेटुक। क्षुधित। भूखा।

औदर्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ताम्र। ताँबा। (२) मैनफल। मदनफल। (३) गूलर।

वि० [सं० त्रि०] उदर सम्बन्धी। पेट का। औदरिक।

औदश्वित-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आधे जल का मट्ठा। अर्द्धजलयुक्त घोल। हे० च०।

वि० [सं० त्रि०] जो मठे से प्रस्तुत किया गया हो।

औदस्थान-वि० [सं० त्रि०] जलवासशील। पानी में रहनेवाला।

औदाज़—[अ० बहु०] [एक व० वदज़] गरदन की रग। (Jugular-vein)।

औदीच्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] थलियभर। (Thullium) अ० शा०।

औदुम्बर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ताम्र। ताँबा। हारा०। (२) एक प्रकार का महाकुष्ठ रोग, जो पके गूलर के फल के समान होता है। यह पित्तज होता है। सु० नि० अ० ५। इसमें व्याधिस्थान के रोएँ पिंगल वर्ण या पीले होते हैं। इसमें पीड़ा, जलन, लाली और खुजली होती है।

नोट—औदुम्बर गूलर को कहते हैं। यह कोढ़ औदुम्बर के समान होता है, इसी से इसका उक्त नामकरण किया गया है।

वि० [सं० त्रि०] (१) उदुम्बर सम्बन्धी वा गूलर का बना हुआ। (२) ताँबे का बना हुआ।

औदुम्बरच्छद-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दन्ती का पौधा।

औदुम्बरादियोग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग—गूलर के मूल की छाल का क्वाथ कर पीने से दाह शांत होता है एवं गिलोय का सत मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तज्वर का नाश होता है। वृ० नि० र० ज्व० चि०।

औदुम्बरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कृमि।

औदूखल(-ली)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) (acetabular)। (२) (Alveol)

औदूखल-कोटि-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] Alveolar point) उक्त नाम की सधि। अ० शा०।

औदूखलच्छिद्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली] Acetabular notch) उक्त नाम का एक छिद्र अ० शा०।

औदाल (क)-संज्ञा पुं० [सं० क्ली] दीमक और बिलनी आदि बाँबी के कीड़ों के बिल से निकला हुआ चेप वा मधु। रा० नि० व० १४।

गुण—कषैला, गरम तथा कटु होता है और कुष्ठ एवं विष का नाश करता है। राज०। यह कुष्ठादि दोषनाशक और सर्व सिद्धिदायक है। रा० नि० व० १४। भावप्रकाश के अनुसार बाँबी के मध्य स्थित कपिल वर्ण के कीट, जो कुछ-कुछ कपिल वर्ण का मधु एकत्रित करते हैं, उसे औदालक मधु कहते हैं। यह रुचिकारक, स्वर को हितकारी, कषैला, गरम, अम्ल, कटुपाकी तथा पित्तकारक है और कोढ़ एवं विष का नाश करता है। भा० पू० भ० मधु व०। धन्वन्तरि तथा राजनिघंटु दोनों के मत से "औदालक मधु" स्वर्ण सदृश होता है।

औदालक-शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उदालक

8580

नाम के मधु द्वारा बनी हुई शर्करा। इसके गुण औद्दाल मधु के समान हैं। रा० नि० व० १४। यह कुष्ठादि दोषों को दूर करती और सर्व सिद्धि प्रदान करती है।

औद्भिज्ज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] (१) पांशु लवण। नोना मिट्टी से निकाला हुआ नमक। रा० नि० व० ६। (२) सौंभरनमक।

औद्भिद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) औद्भिद लवण। सौंभरनमक। राज० (२) वृक्षादि जातद्रव्य। पेड़ इत्यादि से उत्पन्न होनेवाली चीज। वृक्षादि से उत्पन्न होनेवाले मूल, वल्कल, काष्ठ, निर्यास, डंठल, रस, पल्लव, क्षार, क्षीर, फल, पुष्प, भस्म, तैल, कण्टक, पत्र, कन्द और अंकुर, का नाम "औद्भिद" है। वैद्यकशास्त्र में उक्त सभी द्रव्य के ग्रहण की विधि विद्यमान है। च०।

औद्भिद-जल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पृथ्वी फाड़कर बड़ी धार से बहनेवाला जल। औद्भिज्ज प्रस्तर सलिल। झरने का पानी। निम्न भूमि से ऊपर को आया हुआ जल।

गुण—यह मधुर, पित्तनाशक और अत्यन्त विदाही है। सुश्रुत ने वर्षाकाल में वृष्टि के जल का अभाव होने पर इसी का व्यवहार विहित बताया है।

औद्भिद-द्रव्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पृथ्वी को फोड़कर उत्पन्न होनेवाला पदार्थ। वनस्पति और लता आदि को औद्भिद द्रव्य कहते हैं। ये चार प्रकार के हैं। (१) वनस्पति, (२) वीरुध, (३) वानस्पत्य और (४) ओषधी। जिनमें केवल फल लगे उन्हें वनस्पति, जिनमें फूल-फल दोनों लगें उन्हें वनस्पति, जो फल पकने पर सूख जावें, उनको ओषधी और फैलनेवाली लताओं को वीरुध कहते हैं। जड़, त्वचा, सार, गोंद (निर्यास), नाड़ी, रस, कोंपल (पल्लव), खार (क्षार), दूध (क्षीर), फल, पुष्प, भस्म, तेल, काँटे, पत्र, शृंग, कन्द और अंकुर यह सब औद्भिद-द्रव्य के ग्रहणीय हैं। इनमें १६ प्रकार की ओषधियों की जड़ (मूल), १६ प्रकार के फल, शेष के फल, फूल, मूल, त्वक् (छाल) और रसादि उपयोग में लिए जाते हैं। च० सू० १ अ०। मूल प्रधान द्रव्य ये हैं। नागदन्ती, वच, काली निसोथ, रक्त निसोथ, विधारा, सातला, श्वेत अपराजिता, श्वेत वच, दन्ती, इन्द्रायन, मालकांगनी, कन्दूरी, शणपुष्पी, घंटारवा, (झुनझुनियाँ), विषाणिका (मेढासींगी), अजगन्धा, द्रवन्ती और क्षीरिणी।

फल प्रधान द्रव्य—शंखिनी, वायविडंग, त्रपुष (खीरा), मदन फल (मैनफल), आनूपस्थलज, कृतक, प्रकीर्य, उदकीर्य, प्रत्यक्पुष्पी, अभया, अन्तःकोटरपुष्पी, हस्तिपर्णी, शारद, कम्पिल्ल (कबीला), अमलतास, कुड़ा धामार्गव, इक्ष्वाकु, जीमूत (बयरबेल) और कृतवेधन-च० सू० १ अ०।

औद्भिद्य-लवण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का नमक जो भूगर्भ से आपसे आप उत्पन्न होता है। पांशु लवण। सि० यो० ग्रह चि० चित्रगुडिका। च० द० महाषट्पलघृत। गुण—क्षार युक्त, भारी, कटु, स्निग्ध-शीतल और वातनाशक है। भा० पू० १ भ० ह० व०। रक्तजनक, सूक्ष्म, हलका और वायु का अनुलोमन करनेवाला है। म० द० व० २। तीखा, उत्क्लेशजनक, खारा, कटु, तिक्त तथा कोष्ठबद्धता, अफरा और शूल का नाशक है। राज०।

औद्भिद्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वृक्षादि की उत्पत्ति। पेड़ इत्यादि की पैदाइश।

औधस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पशु दुग्ध। चौपायों का दूध।

औधस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पशु दुग्ध।

औन–[अ०] एक यूनानी तौल। अ क्रियः=२॥ तोला।

औनति–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घोड़े का एक रोग। यह गुरु भोजन, अभिष्यन्दादि ग्रास ग्रहण और अश्व सम्बन्धी उपयुक्त सेवाओं के अभाव से स्वस्थानच्युत शुक्र मेहन (लिंग) में मारा जाता है। उससे मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है। पुनः कुपित रक्तमेहन में शूल उत्पन्न कर देता है। मेहन छिन्न, पक्व कण्डुवत् पिड़िकायुक्त तथा मक्षिकावृत रहता है और अपने स्थान में प्रवेश नहीं करता (जयदत्त)।

औन्दूबर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ताम्र । ताँबा । भा० म० १ भ० ।

औपकर्णिक–वि० [सं० त्रि०] कर्ण के समीप उत्पन्न । जो कान के पास पैदा हुआ हो ।

औपकाय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गृह । घर । मकान ।

औपकूलिक–वि० [सं० त्रि०] उपकूल सम्बन्धी । किनारेवाला ।

औपचारिक–वि० [सं० त्रि०] उपचार सम्बन्धी ।

औपजंघी–वि० [सं० त्रि०] (Peroneal A.)

औपजानुक–वि० [सं० त्रि०] घुटनी के पास । जानु के समीप वर्त्ती ।

औपजिह्वी–वि० [सं० त्रि०] उपजिह्वा संबन्धी नाड़ी । Tonsillar nerve.

औपद्रविक– वि० [सं० त्रि०] उपद्रव सम्बन्धी ।

औपधेनव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] धन्वन्तरि के एक शिष्य का नाम । डल्हन मिश्र ने सुश्रुत की टीका में इनके वचन उद्धृत किये हैं ।

औपधेय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रथचक्र ।

औपनासिक–वि० [सं० त्रि०] नासिका के समीप उत्पन्न । नाक के पास निकलनेवाला ।

औपनीविक–वि० [सं० त्रि०] नीविका समीपवर्त्ती । कमर के पास का ।

औपपत्तिक–वि० [सं० त्रि०] युक्तियुक्त । मतलब निकाल देनेवाला ।

औपभृत–वि० [सं० त्रि०] अश्वत्थ काष्ट के बने यज्ञ पात्र में संचित । पीपल की लकड़ी के चम्मच में इकट्ठा किया हुआ ।

औपमस्तिष्क(-ष्की)–वि० [सं० त्रि०] उपमस्तिष्क संबन्धी । अणुमस्तिष्क का । (Cerebellar) ।

औपमस्तिष्क-दात्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०) दात्रिका विशेष । (Falx cerebelli)

औपमस्तिष्क-दूष्यकला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कला विशेष । (Tentorium Cerebelli)

औपमस्तिष्क-निम्निका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खात विशेष । (Cerebellar-Fossa)

औपमस्तिष्कार्धगोलखात-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खात विशेष । (Vallecula-Cerebelli)

औपम्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह विषय जो दूसरे से दूसरे की सादृश्यता को प्रकाशित करता है, "उपमान" कहलाता है । जैसे, दण्डक रोग दण्ड के समान होता है । धनुष्टंभ रोग में मनुष्य धनुष के आकार का टेढ़ा हो जाता है । जो औषधी रोग को शीघ्र दूर कर डाले उसको तीर की उपमा दी जाती है । इसको "उपमान" कहते हैं । उपमा का भाव । समता । बराबरी । तुल्यता । च० वि० ८ अ० ।

औपरोधिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीलुदण्ड । हे० ।

औपल–वि० [सं० त्रि०] पथरीला । प्रस्तर संबंधी ।

औपवस्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपवास । लङ्घन । हे० च० ।

औपवास–वि० [सं० त्रि०] उपवास में देने योग्य ।

औपवासिक–वि० [सं० त्रि०] उपवास के लिये उपयोगी ।

औपवृक्क-सूत्रक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक नाड़ी चक्र विशेष (Suprarenal-plexus.) । अ० शा० ।

औपशमिक–वि० [सं० त्रि०] शांतिकारक । शांतिदायक ।

औपसर्गिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का सन्निपात । वैद्यक के मत से जब कफ अनुलोम गति से वायु और पित्त से मिलता है, तब मनुष्य को पसीना आता है और शीतज्वरता का वेग बढ़ जाता है । पुनः वायु के प्रतिलोम होने से कुछ स्वास्थ्य भी बोध होता है । इसे ही सन्निपातज वा औपसर्गिक रोग कहते हैं । सुश्रुत के कथनानुसार पूर्वोत्पन्न व्याधि के निदानादि द्वारा, जो अन्य रोग साथ में लग जाता है, उसे "औपसर्गिक" कहते हैं । यह रोग उपद्रव से उठता है । कहा है—

"औपसर्गिक रोगश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ।"

(माधव निदान टीका)

नोट—कोई-कोई अर्वाचीन लेखक इस शब्दका उपयोग संक्रामक व छूतदार (Infectious) रोगों के अर्थ में करते हैं ।

(२) पापरोगादि । (३) भूतादि के आवेश से उत्पन्न रोग ।

वि० [सं० त्रि०] (१) उपसर्ग संबन्धी। (२) साथ लगा हुआ।

औपसर्गिक-लिंग-नाशक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र सम्बन्धी रोग।

लक्षण—जब अल्प सत्ववाला रोगी सहसा किसी अद्भुत रूप को देखता है, सूर्य्यादि देदीप्यमान पदार्थों को देखता है, तब चकाचौंधी के कारण उस मनुष्य के नेत्रों में वातादि दोष आश्रय लेकर तेज को संशोषित करके दृष्टि को मुषित दर्शनवाली, वैडूर्यक रंग के समान, स्तिमित और प्रकृतिस्थ की तरह वेदना रहित कर देते हैं। इसीको "औपसर्गिकलिंगनाशक" कहते हैं। वा० उ० १३ अ०।

औपस्थ-प्लक्षक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाड़ी-जाल अर्थात् प्लक्षक विशेष। एक नाड़ी चक्र। (Pudendal Plexus.) अ० शा०।

औपस्थी-वि० [सं० त्रि०] उपस्थ-सम्बन्धी नाड़ी। उपस्थ की नाड़ी। Pudendal N.

औपस्थ्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपस्थेन्द्रिय मुख।

औपीन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बोने योग्य खेत। उप्यक्षेत्र। रा० नि० व० २।

औफ़-[अ०] पुरुष जननेन्द्रिय। शिश्न। लिंग। ज़कर। पेनिस-अं०।

औफ़ा-[देश० सिनेगल] गोरख इमली। गोरख चिञ्च।

औबाऽ-[अ०] वबाऽ का बहु०।

औमीन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तीसी का खेत। अतसीक्षेत्र। (२) अतसीपूर्ण गृह।

औरग-वि० [सं० त्रि०] सर्प सम्बन्धी। साँपका।

औरत-संज्ञा स्त्री० [अ० औरत] (१) पुरुष वा स्त्री की गुह्य इन्द्रिय। वह अवयव जिसके देखने-दिखाने में स्वाभाविक लज्जा प्रतीत हो। स्त्री-पुरुषों में शरीर का वह भाग जो लज्जा के कारण धर्म विधानानुसार गुप्त रखा जाता है। पुरुषों में यह स्थान नाभि से जाँघ तक है। पर स्त्रियों में मुख-मण्डल और दोनों हाथों के सिवा संपूर्ण शरीर गोपनीय है।

नोट—स्त्री को औरत इसलिये कहते हैं, कि चेहरे और हाथों को छोड़कर उसका समग्र शरीर गोप्य है।

(२) स्त्री। (३) पत्नी। जोरू।

औरभ्र-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत के प्रथम के एक आचार्य का नाम। सुश्रुत और चक्रदत्त ने अपने निर्मित संहिता में इनके वचन उद्धृत किये हैं। औरभ्रतन्त्र इन्हीं का लिखा है।

औरभ्र(क)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भेड़ा।

पर्या०—ऊर्णायु। आविक। रल्लक। हे०। मेष। हे० च०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मेष-मांस। भेड़ का गोश्त। म्याडार मांस-(बं०)। मेड़ी कर मांस-मरा०। गुण—मीठा, शीतल, भारी, काबिज और बृंहण। (२) मेष समूह। भेड़ों का झुण्ड। (३)कम्बल। ऊर्णवस्त्र। ऊनी कपड़ा। (४) मेषी क्षीर। भेड़ का दूध। रा० नि० व० १७।

वि० [सं० त्रि०] मेष सम्बन्धी।

औरभ्र-दधि-संज्ञा पुं० [सं०] भेड़ी का दही। दे० "भेड़"।

औरभ्रपय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भेड़ी का दूध। मेषी क्षीर। दे० "भेड़"।

औरसकंठिया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] औरः काकलकी। अ० शा०।

औरसतिरश्चीना-
औरसत्रिकोणा- } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष। ट्रांसवर्सस थोरेकिस (Transversus-Thoracis) अ० शा०।

औरस-पार्शुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बंधनी विशेष। (Sternocostal L.)। अ० शा०।

औरस-पृष्ठि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Dorsal or Thoracic Vertebra) अ० शा०।

औरसप्रणाली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रणाली विशेष। (Thoracic-Duct) अ० शा०।

औरसावर्ता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महा धमनी का वक्षस्थित भाग। (Thoracic portion of aorta) अ० शा०।

औरसावर्तीयप्लक्षक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नाड़ी जाल वा प्लक्षक विशेष। (Plexus Aorticus thoracic) अ० शा०।

औरसी–वि० [सं० त्रि०] उर संबन्धी नाड़ी। सीने की नाडी। Sternal,N. thoracic N. अ० शा०।

औरः कण्ठिकी–
औरः काकलकी– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उर और कण्ठ सम्बन्धी। Sterno Hyoideus.

औरा–संज्ञा पुं० दे० "आँवला"।

औराक़–[अ बहु०] [एक व० वर्क़, वरक़] पत्र। पत्तियाँ। पत्ते (Leaves)

औराक़–[अ बहु०] [एक व० वर्क, वरिक] कूल्हे। (Hips)

औराक़-इनबुद्दुबब–[अ] रीछ दाख के पत्ते। बर्ग अंगूरेख़िरस। (Uva-ursi-folia)।

औराक़-कोका–[अ०] कोका के पत्ते।

औराक़-गुले-सुर्ख़–[अ०] गुलाब की पंखड़ियाँ। गुलाब।

औराक़-जाबोरंदी–[अ०] जैबोरैण्डी के पत्ते।

औराक़-जौज़मासिल–[अ] धतूरे के पत्ते। धुस्तुर पत्र।

औराक़-दीजताल–[अ] डिजिटैलिस के पत्ते। हृत्पत्री के पत्ते (Digitalis folia)।

औराक़-मेतीको–[अ०] मैटिकीपत्र (Maticae-folia)

औराक़-हेमेमेलिस–[अ०] हैमेमेलिस पत्र। (Hamamelis folia)

औराक़ुल्ग़ार–[अ] बर्गे-ग़ार। ग़ार के पत्ते।

औराक़ुल्ग़ारुल्क़र्ज़ी–[अ] दे० "औराक़ुल्ग़ार"।

औराक़ुल-बंज–[अ]
औराक़ुस्सीक्रान–[अ०] } अजवाइन खुरासानी के पत्ते। पारसीकयमानी पत्र।

औरातीस–[अ] एक वसामय प्रवर्द्धन, जो पपोटे पर पैदा हो जाता है। शिर्नाक़। कंजंक्टेवोमा (Conjuncta voma)।

नोट—प्रायः सभी तिब्बी ग्रंथों में "औरातीस" को "शिर्नाक़" का पर्याय लिखा है। पर ज्ञात होता है, कि यह आइराइटिस Iritis (उपतारा प्रदाह) से अरबी बनाया गया है।

औराम–[अ० बहु०] [एक व० वर्म] शोथ। सूजन। आमास। (Swelling)।

औराम-मग़ाबिन–[अ] एक प्रकार की सूजन जो जंघा से वा वंक्षण में होती है। यह प्लेग से भिन्न होता है। इसमें ग्रन्थीय पेशियाँ शोथ युक्त हो जाती है। दे० "ख़ैरजील"।

औरिण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मृत्तिका लवण। खारीनमक। (२) यवक्षार। जवाखार। वै० निघ०। मद०।

औरुता–दे० "औरता"

औरुवुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रेंडी का तेल। एरण्ड-तैल। च० द०।

औरुवेरु–[ते०] ख़स। उशीर।

औरोक्षकसंधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] उर और अक्षक सम्बन्धी। (Sterno-clavicular joint)

औरोक्ष-कचूचुकी–संज्ञा स्त्री०
औरोक्ष-कचूचुकीया–संज्ञा स्त्री० } [सं० स्त्री०] धमनी विशेष Sterno-cleido-mastoid A.। अ० शा०।

और्ण–वि० [सं० त्रि०] मेष लोम जात। ऊनी।

और्णिक–वि० [सं० त्रि०] दे० "और्ण"।

और्ध्व-देह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] मरणान्त क्रिया। अन्त्येष्ठि संस्कार।

और्ध्वन्दमिक–वि० [सं० त्रि०] जो ऊपर से पैदा हो। उर्ध्वन्दमोत्पन्न।

और्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] दे० "और्व्व"।

और्वी–वि० [सं० त्रि०] जाँघ का। ऊरु संबन्धी।

और्वीअन्तः त्वगीया नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक नाड़ी विशेष। ऊरु की अन्तः त्वगीया नाड़ी।

और्वी-कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ की झिल्ली। अ० शा०।

और्वीकला तंसनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] और्वी-कला को ताननेवाली पेशी। (muscle tensor fasciae femoris)। अ० शा०।

और्वीगम्भीर शिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] शिरा विशेष। अ० शा०।

और्वी-जननेन्द्रिया नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु और जननेन्द्रिय सम्बन्धी नाड़ी। अ० शा०।

और्वी-धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ की धमनी। (Femoral artery.)

और्वीनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु वा जाँघ की नाड़ी। (Femoral-nerve.)

और्वीपाश्चात्य त्वगीया नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०

स्त्री०] ऊरु की पाश्चात्य त्वगीया नाड़ी । (Posterior femoral cutaneous nerve)

और्वी-मध्यत्वगीयानाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु की मध्य त्वगीया नाड़ी। (Middle femoral cutaneous nerve.)

और्वी-वाह्या(वहिः)त्वगीयानाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊरु की वाह्य त्वगीया नाड़ी । Lateral femoral cutaneous nerve.

और्वी-शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जाँघ की शिरा । (Femoral-vein.) अ० शा० ।

और्व्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शोरा । शोरक । रोमक । धन्व० नि० ।

और्व्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नोनी मिट्टी । मृत्तिका लवण । (२) यवक्षार । जवाखार । (३) पांशुलवण । रेह का नमक । रा० नि० व० ६ ।

औल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सफेद सूरन । श्वेत सूरण । वै० निघ० ।

संज्ञा पुं० [देश०] जंगली ज्वर । वन्यज्वर । जंगली बुख़ार ।

औलअ्-[अ०] (१) उन्माद । दीवानगी । दीवानापन । पागलपन । (२) दीवाना । पागल ।

औलक़-[अ०] दे० "औलअ्" ।

औला-संज्ञा पुं० [देश०] दे० "आँवला" ।

औली-संज्ञा स्त्री० [सं० आवली] वह नया और हरा अन्न जो पहले-पहल काटकर खेत से लाया गया हो । नवान्न ।

औलूक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उल्लुओं का समूह । पेचकझुण्ड । जटा० ।

औलूखल-वि० [सं० त्रि०] ओखली में कूटा हुआ ।

औल्वण्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अधिकता । ज्यादती । उल्वणता ।

औवल-[अ०] दे० "अव्वल" ।

औशीर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) बालक । सुगन्धवाला । (२) खस वा तृण की चटाई । आसन । बिस्तर (३) चँवर ।

वि० [सं० त्रि०] खस का । उशीर सम्बन्धी । मे० रत्रिकं ।

औशीरिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अंकुर । अँखुआ । कोंपल । (२) आधार पात्र । बरतन ।

औषण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कदुरस । चरपरापन । (२) मिर्च । काली मरिच ।

औषध-संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] वह द्रव्य जिससे रोग का नाश हो । रोग नष्ट करनेवाली वस्तु । व्याधि हर द्रव्य । रोगघ्न वस्तु । ओषधियों द्वारा निर्मित योग ।

पर्य्या०—अगद । अमृत । आयुर्द्रव्य । आयुर्योग । भैषज्य । जायु । जैत्र । गदारति । भेषज । चिकित्सित । व्याधिहर । पथ्य । साधन । प्रायश्चित्त । प्रशमन । प्रकृतिस्थापन । हित । च० चि० १ अ० । चिकित्सित । हित । पथ्य । प्रायश्चित । भिषज्जित । भेषज । शमन । वा० चि० २२ अ० । रा० नि० २० व० । ध० नि० मिश्र ७ व० । रस चूर्ण, कषाय, अवलेह और कल्क भेद से इसके मुख्य पाँच भेद हैं । ध० नि० मिश्र व० ७ ।

चरक के अनुसार इसके दो प्रकार हैं—(१) दैवव्यपाश्रय और (२) युक्ति व्यपाश्रय । उनमें मणि, मन्त्र, औषध, मङ्गल-क्रिया, बलिदान, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपातन और देवयात्रादि को "दैवव्यपाश्रय" कहते हैं और संशोधन, संशमन तथा दृष्टफल की चेष्टा आदि को "युक्तिव्यपाश्रय" कहते हैं । पुनः अंगभेद से वह दो प्रकार की होती है—(१) द्रव्यभूत और (२) अद्रव्य भूत (उपायभूत) । उनमें जो अद्रव्य भूत हैं वह उपाय युक्त होती है; जैसे, भय प्रदर्शन, विस्मापन, क्षोभण, हर्षण, भर्त्सन, प्रहार, बंधन, निद्रा और संवाहनादि । यह सब प्रत्यक्ष रूप से चिकित्सा की सिद्धि के उपाय हैं । जो द्रव्यभूत हैं, उनका वमनादि कार्यों में उपयोग किया जाता है । च० वि० ८ अ० ।

वाग्भट्ट के अनुसार औषध के मुख्य ये चार गुण हैं—(१) बहु कल्प अर्थात् जिससे स्वरस, क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, गुटिका आदि अनेक प्रकार के रोग नाशक कल्प बन सकें, (२) बहुगुण अर्थात् अनेक रोगों को नष्ट करनेवाले गुरु मन्दादि अनेक गुणों से युक्त, (३) सम्पन्न अर्थात् प्रशस्त भूमि देश में उत्पन्न हुई अनेक पाकादि

संस्कार की सम्पत्ति युक्त, (४) योग्य अर्थात् व्याधि, देश, काल, दोष, दूष्य, देह, वय, और कालादि को जानकर देने योग्य उक्त चार गुण औषध के हैं; यथा, "बहुकल्प बहुगुणंसम्पन्न योग्य मौषधम्" वा० सू० ११ अ०।

पुनः शोधन और शमन भेद से औषध के दो प्रकार होते हैं। जो औषध प्रकुपित दोष को बाहर निकालकर रोग दमन करती है, उसे "संशोधन" और जो वहाँ का वहीं रोग शांत कर देती है, उसे "संशमन" औषध कहते हैं।

शरीर में उत्पन्नहोनेवाले वातादि दोषों को शोधनकर्त्ता प्रधान ये तीन औषधें हैं—यथा, (१) वायु का शोधन करनेवाला तेल वा क्वाथादि की वस्ति गुदा में देना।

(२) पित्त को शोधन करनेवाली औषधें वैरेचनिक औषध हैं, जो मुख द्वारा पान करने से भीतरवाले मवाद को गुदा द्वारा बाहर निकाल देती हैं।

(३) कफ को शोधन करनेवाली वमनकारक औषध है, जो मुख द्वारा पान करने से दोषों को बाहर निकाल कर फेंक देती है।

शमन-कर्त्ता—जैसे, बादी में तैल, पित्त में घृत और कफ में शहद मुख्य औषध है।

मानसिक दोषों को दूर करने के लिए धैर्य और बुद्धि परम औषध हैं और आत्मिक विकारों के लिए योगाभ्यास, समाधि और ईश्वर के स्वरूप का विज्ञान परम औषध है। ईर्षा, मद, मोह और कामादि जन्य विकारों की गणना मानसिक विकारों में है।

(२) सोंठ। शुंठी। र० सा० सं० औषध मारण गण।

वि० [सं० त्रि०] ओषधि जात। जड़ी-बूटी से बना हुआ।

औषधकाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औषध सेवन करने का समय। औषध सेवन के ये १० काल हैं।

(१) अन्नन (जो औषध खाई जाती है, उसके पचने के पीछे अन्न खाना), (२) अन्नादि (औषधके सेवन करते ही भोजन करना), (३) मध्यकाल, (आहार के बीच में औषध सेवन), (४) अन्तकाल (भोजन करके औषध सेवन), (५) कवलांतर (एक ग्रास खाकर औषध ले लेना फिर दूसरा ग्रास खाना), (६) ग्रासे ग्रासे (ग्रास-ग्रास में मिलाकर औषध खाना), (७) मुहुर्मुहुः (भोजन करके वा बिना भोजन किए थोड़ी थोड़ी देर के अंतर से औषध खाना), (८) साग्न (आहार के साथ औषध खाना), (९) सामुद्ग (आहार के पहिले और पीछे औषध सेवन) और (१०) निशि (रात में सोने के समय औषध खाना)।

रोगपरत्व से औषध-काल

यदि रोगी और रोग दोनों बलवान हों, तो कफ की अधिकतावाले रोग में "अन्नन" औषध देवे अर्थात् भोजन करने से बहुत पहले औषध देनी चाहिए। जिससे औषध पच जाय। क्योंकि "अन्नन" औषध अतिवीर्य होती है। अपानवायु के प्रकुपित होने पर आहार करने से पहिले औषध सेवन करें अर्थात् औषध सेवन करते ही भोजन करलें। समानवायु के प्रकुपित होने पर भोजन के बीच में औषध सेवन करें। व्यान वायु के कुपित होने पर भोजन के अंत में प्रातःकाल का भोजन करते ही औषध सेवन करें। उदानवायु के कुपित होने पर सायंकाल का भोजन करने के पीछे औषध सेवन करे। प्राणवायु के कुपित होने पर ग्रास-ग्रास में मिला कर वा दो-दो ग्रास के बीच में औषध सेवन करना चाहिये। विष, वमन, हिचकी, तृषा, श्वास और कासादि रोगों में बार-बार औषध देनी चाहिए। अरुचि में अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों के साथ औषध देवें। कंपवात, आक्षेपक और हिक्का रोग में, लघु भोजन करें और आहार के पहिले और पीछे औषध देवें। कण्ठ से ऊपर वाली व्याधियों में रात में सोने के समय औषध सेवन करना उचित है। वा० सू० १४ अ०।

औषध योजना काल

आयुर्वेद में औषधों की सम्यक् योजना के लिए दो प्रकार का काल कहा गया है। (१) क्षणादि और (२) व्याधि का अवस्था काल।

क्षणादि से लव, त्रुटि, मुहूर्त, याम, दिन, रात, पक्ष, महीना, ऋतु, अयन और संवत्सर का ग्रहण है। यथाः—'पूर्वाह्णे वमनं देयं मध्याह्ने च विरेचनम्। मध्याह्ने किंचिदावृत्तेवस्तिं दद्याद्विचक्षणः"।

साम, निराम, मृदु, मध्य और तीक्ष्णादि से औषध्यादिक का प्रयोग व्याधि अवस्था का काल है; जैसे—"लंघनं स्वेदनंकालो यवागूस्तिक्तकोरसः। मलानांपाचनानिस्युर्यथावस्थंक्रमेणवा ॥ ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम्। अहं वा षडहं युंज्याद्वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ मृदुज्वरोलघुर्देहः चलिताश्च मलादयः। । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं योजयेत्तदा"। वा० सू० १ अ०।

सुश्रुताचार्य के अनुसार उक्त दस काल इस प्रकार हैं (१) निर्भक्त, (२) प्राग्भक्त, (३) अधोभक्त, (४) मध्येभक्त, (५) अंतराभक्त, (६) साभक्त, (७) सामुद्ग, (८) मुहुर्मुहु (९) ग्रसि और (१०) ग्रासान्तर। इनमें से निराहार औषध ली जानेवाली अर्थात् जिसमें केवल औषध ही ली जाती है निर्भक्त, खाने से पूर्व प्राग्भक्त, खाने के उपरांत अधोभक्त, खाने के बीच मध्यभक्त, दोनों समय खाने के बीच अन्तराभक्त, खाने में मिलाकर सभक्त, खाने के पहले और पीछे सामुद्ग, बे खाये या खाये बारबार मुहुर्मुहुर्ग्रसि और कौर-कौर पर ली जानेवाली औषध ग्रासान्तर कहाती है। इनमें से निर्भक्त वीर्य बढ़ाता, प्राग्भक्त शीघ्र अन्न पचाता, अधोभक्त बहुविध रोग मिटाता, मध्येभक्त मध्य देह के रोग निवृत्त करता, अन्तराभक्त हृद्यता लाता और सभक्त सब रोगियों के लिये पथ्य समझा जाता है। सु० उ० ६४ अ०।

औषध परीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] औषध के ठीक होने न होने की जाँच। परीक्षा-विधि—जैसे,इस द्रव्यकी प्रकृति कैसी है? इसके क्या-क्या गुण हैं? इसका क्या प्रभाव है? इसके उत्पन्न होने का स्थान कैसा है या किस स्थान में होती है? किस-किस ऋतु में उत्पन्न होती है तथा उसके उखाड़ने तथा ग्रहण करने का कौन सा काल है? संयोगभेद से इसमें कौन-कौन से गुण प्रगट होते हैं? किस मात्रा में देने से उत्तम गुण करती है? किस प्रकार के रोग में और कौन से काल में किस प्रकार के प्राणी के लिये उपयुक्त है? किस प्रकार के दोषों को अपकर्षण करने के लिये एवं किस-किस दोष को शांत करने के लिये इसका उपयोग किया जाता है? इसके सिवाय और भी औषध सम्बन्धी जो-जो उचित परामर्श एवं विचार हों, उन्हें सम्यक् जानकर और समान न्यूनादि गुणों की समालोचना करते हुये औषध की परीक्षा करनी चाहिये। च० सं०।

औषध-प्रमाण—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] औषध मान। दवा की माप-तौल। Weight and measure।

प्राचीन काल में अनेक प्रकार के मान प्रचलित थे; परन्तु सम्प्रति शास्त्रों में दो ही प्रकार की तौलों का अधिक व्यवहार पाया जाता है। (१) मागध और दूसरा कालिङ्ग (सुश्रुतोक्त) मान।

यों तो औषध-निर्माण में चाहे जिस मान का व्यवहार क्यों न किया जाय,औषध के गुणों में कोई अन्तर नहीं आ सकता, परन्तु चरक के प्रयोगों में चरकीय और सुश्रुत के प्रयोगों में सुश्रुत के मान का व्यवहार करना अधिक उत्तम है। अन्य ग्रन्थों के प्रयोगों में चरकीय परिभाषा का व्यवहार विशेष सुविधाजनक प्रतीत होता है। इसलिये यहाँ पर पर उक्त मानों का परिचय देना उचित जान पड़ता है।

चरकोक्त-औषधि मान—झरोखों के भीतर जो सूक्ष्म रजकण दिखाई देता है, उसे वंशी कहते हैं। वही—

६ वंशी=१ मरीचि
६ मरीचि=१ सर्षप
८ रक्त सर्षप=१ तण्डुल
२ तण्डुल=१ धान्यमाष
२ धान्यमाष=१ यव
४ यव=१ अष्टिका
४ अष्टिका=१ माषक, हेम, धानक
३ माषक=१ शाण
२ शाण=१ द्रंक्षण, कोल, बदर
२ द्रंक्षण=१ कर्ष, सुवर्ण, अक्ष, विडालपदक, पिचु, पाणितल
२ कर्ष=१ पलार्द्ध, शुक्ति, अष्टमिका
२ पलार्द्ध=१ पल, मुष्टि, प्रकुञ्च, चतुर्थिका, बिल्व, षोडशिका, आम्र
२ पल=१ प्रसृत, अष्टमान
४ पल=१ कुडव, अञ्जलि
२ कुडव=१ मानिका

४ कुडव=१ प्रस्थ
४ प्रस्थ=१ आढक, घट, अष्ट शराव, पात्री, पात्र, कंस
४ आढक=१ द्रोण, कलस, घट उन्मान, अर्मण
२ द्रोण=१ सूर्प, कुम्भ
२ सूर्प=१ गोणी, खारी, भार
३२ सूर्प=१ वाह
१०० पल=१ तुला

उपर्युक्त मान शुष्क द्रव्यों के लिये बतलाया गया है, द्रव (तरल-पतले) और आर्द्र (तुरन्त के उखाड़े हुये गीले) पदार्थों का प्रमाण इससे दूना होता है।

जिस स्थान में "तुला" अथवा "पल" शब्द लिखा हो, वहाँ आर्द्र और द्रव पदार्थों का प्रमाण भी द्विगुण नहीं होता।

साधारणतः ३२ पल का प्रस्थ+होता है, परंतु वमन, विरेचन और शोणितमोक्षण (फस्द) में १३॥ पल का प्रस्थ माना जाता है।

सुश्रुतोक्त औषध प्रमाण—अब पल कुडवादि नाम से मान की व्याख्या की जाती है:—

१२ मध्यम धान्य माष=१ सुवर्ण माषक
१६ सुवर्णमाषक=१ सुवर्ण अथवा
१२ मध्यम निष्पाव (लोबिया)=१ सुवर्ण माषक
१६ सुवर्ण माषक=१ धरण
$\frac{५}{६}$ धरण (१६ माषक)=×एक कर्ष
४ कर्ष=१ पल
४ पल=१ कुड़व
४ कुड़व=१ प्रस्थ
४ प्रस्थ=१ आढ़क
४ आढ़क=१ द्रोण
१०० पल=१ तुला
२० तुला=१ भार

यह मान शुष्क द्रव्यों के लिये हैं। आर्द्र और द्रव पदार्थों के लिये इससे द्विगुण मान समझना चाहिये।

चरक और सुश्रुत मान की परस्पर तुलना—

चरकोक्त मान में २ द्रंक्षण=४ शाण=१२ माषक या (१२×३२=) ३८४ धान्य माषक का कर्ष माना गया है और सुश्रुतोक्त कर्ष में १६ सुवर्ण माषक=(१६×१२=) १९२ धान्य माषक होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि चरकोक्त मान सुश्रुतोक्त मान से २ गुना है।

मानसार—

शाण, कोल, कर्ष, शुक्ति, पल, प्रसृत, कुडव, शराव, प्रस्थ, अर्द्धाढक, आढक, अर्द्धद्रोण, द्रोण, सूर्प, गोणी और खारी का मान उत्तरोत्तर द्विगुण होता है। यथा—शाण से कोल दो गुना, कोल से कर्ष दोगुना और कर्ष से शुक्ति २ गुनी इत्यादि।

शाणः कोलश्च कर्षश्च शुक्तिश्च पलमेवच।
प्रसृतं कुडवश्चापि शरावः प्रस्थएव च॥
अर्द्धाढकश्चाढकोर्द्ध द्रोणश्च द्रोण एव च।
सूर्पोगोणी च खारी च द्विगुणश्चोत्तरोत्तरम॥

माष, शाण कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण और गोणी का मान उत्तरोत्तर चार गुना होता है। यथा—

माष शाण कर्ष पल कुडव प्रस्थाढकाः।
द्रोणो गोणी भवन्त्येते पूर्व पूर्वाच्चतुर्गुणाः॥

शुष्कार्द्र-द्रव्य भेद से मान

शुष्क द्रव्य, गीले द्रव्यों से अधिक गुरु एवं तीक्ष्ण होते हैं, अतः आर्द्र (गीले) द्रव्यों का प्रमाण शुष्क की अपेक्षा द्विगुण ग्रहण करना चाहिये अर्थात् शुष्क द्रव्यों के स्थान में गीले द्रव्य काम में लाये जाँय, तो लिखित परिमाण से दूना लें। यथा—

शुष्क द्रव्येतु या मात्रा चार्द्रस्य द्विगुणाहि सा।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्द्धं प्रकीर्तितम्॥

+यह द्रव पदार्थ के प्रस्थ के सम्बन्ध में कहा गया है, क्योंकि शुष्क द्रव्यों के प्रमाण में १ प्रस्थ=४ कुडव =१६ पल का होता है।

×—१ धरण अर्थात् १६ माषक का अर्द्धतृतीय (आधा और तीसरा भाग) $९\frac{१}{२}+९\frac{१}{३}=१५\frac{५}{६}$ होता है अर्थात् १६ माषक में कुछ कम होता है। इसे पूरे १६ माषक मान लेने में कोई विशेष अन्तर नहीं आ सकता।

वर्तमान तौल तथा प्राचीन तौल की परस्पर तुलना

(अ) चरकीय मान	वर्तमान मान
३ रत्ती=१ वल्ल.....	.....३ रत्ती
× १० रत्ती=१ माषा	... १। माषा=१० रत्ती
३ माषक=१ शाण.....	३॥ " =३० रत्ती
(४ माषा=१ निष्क).....	५ " .....
२ शाण=१ द्रंक्षण.....	७॥ "=१० आने भर
२ द्रंक्षण=१ कर्ष.....	...१५ "=१। तो०
४ कर्ष=१ पल.....	.....५ तोले=१ छटाँक
४ पल=१ कुडव.....	.....४ छटाँक=१ पावसेर
४ कुडव=१ प्रस्थ.....	.....१ सेर=(८० तो०)
४ प्रस्थ=१ आढक.....	..... ४ सेर
४ आढक=१ द्रोण.....	.....१६ सेर
२ द्रोण=१ सूर्प.....	.....३२ सेर
२ सूर्प=१ भार.....	.....६४ सेर
३२ सूर्प=१ वाह.....	१०२४ सेर=(२५॥)
१०० पल=१ तुला.....	.....६। सेर

(ब) शारंगधरोक्त मागधमान	वर्तमान मान
८ सरसों=१ यव.....	
४ यव=१ रत्ती.....	.....१ रत्ती
६ रत्ती=१ माषक.....	.....६ रत्ती
४ माषा=१ शाण.....	.....३ माषा
२ शाण=१ कोल.....	.....६ माषे (½ तो०)
२ कोल=१ कर्ष.....	.....१ तो०
२ कर्ष=१ शुक्ति.....	.....२ तो०
२ शुक्ति=१ पल.....	.....४ तो०
२ पल=१ प्रसृत.....	.....८ तो०
२ प्रसृत=१ कुडव.....	.....१६ तो०
२ कुडव=१ शराव.....	.....३२ तो०
२ शराव=१ प्रस्थ.....	.....६४ तो०
४ प्रस्थ=१ आढक.....	.....३ सेर १६ तो०
४ आढक=१ द्रोण.....	.....१२ सेर ६४ तो०+
२ द्रोण=१ शूर्प.....	.....२५ सेर ४८ तो०
२ शूर्प=१ द्रोणी.....	.....५१ सेर १६ तो०
४ द्रोणी=१ खारी.....	.....२०४ सेर ६४ तो०
२००० पल=१ भार.....	.....१०० सेर
१०० पल=१ तुला.....	.....५ सेर

× यद्यपि चरक और सुश्रुत में रत्ती का उल्लेख नहीं है.परन्तु सभी विद्वान इस विषय में सहमत हैं कि चरकोक्त माषा १० रत्ती का माषा है एवं विद्वद्वर्य चक्रपाणि ने लिखा है कि तौल ने पर चरकोक्त माषा १० रत्ती के बराबर सिद्ध होता है।

+ १ सेर=८० तोले।

वक्तव्य—

कठिन, तरल, ताप, दीर्घ, काल और देश-प्रान्त भेद से भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतानुसार द्रव्यमान में महान अन्तर प्रतीत होता है। यथा—चरक का मान सुश्रुत के मान से द्विगुण है। एवं शार्ङ्गधर, रसरत्न समुच्चय, रसतरंगिणी, भैषज्य रत्नावली आदि ग्रंथों में भी मानपरिभाषाओं में अन्तर है।

अन्तर होना स्वाभाविक है। आजकल भी एकाधिपत्यराज्य स्थापित होते हुये भी भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रचलित हैं। इसी प्रकार कालिंग तथा मागधमान से अभिप्राय भिन्न-भिन्न काल में मगध (बिहार) और कलिंग देशों (उड़ीसा) में होनेवाले मान से ही है। चरक या दृढ़बल के काल में जो मान मगध देश में प्रचलित था, उन्होंने उसे ही अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है। सुश्रुत के काल में जो मान कलिंग देश में प्रचलित था, उन्होंने उसे ही अपनी पुस्तक में उद्धृत किया। उसके अनन्तर शार्ङ्गधर के काल में जो मान मगध देश वा कलिंग देश में प्रचलित था, उसे शार्ङ्गधर ने अपनी संहिता में उद्धृत किया। चक्रपाणि के काल में इन देशों में और ही मान प्रचलित था। यह चक्रपाणि निर्मित चक्रदत्त के ज्वराधिकार में स्पष्ट है। क्योंकि चक्रपाणि ने चरक और सुश्रुत के प्रायः सब श्लोक और योगादि उद्धृत किये हैं। अतः उन्होंने चरक और सुश्रुत के सारे मान के साथ अपने काल के मान की तुलना करदी है।

चरकोक्त मान, सुश्रुतोक्त कलिंगमान से द्विगुण सिद्ध है। अतः किसी योग को चाहे चरकोक्त विधि से बनाएँ या सुश्रुतोक्त विधि से, परन्तु उसके मान अनुपात में कोई भेद न होगा।

यह हो सकता है कि योग सुश्रुत का हो और हम उसे चरकोक्त विधि से निर्माण करें, तो योग द्विगुण बन जावेगा, परन्तु योगस्थ द्रव्यों के मान अनुपात में कोई अन्तर नहीं आवेगा।

आज क्योंकि चक्रपाणिके समय का मान भी प्रचलित नहीं है, अतः चक्रपाणि के मान की सहायता से हम आधुनिक काल के मान से चरक तथा सुश्रुत के मान की तुलना करेंगे। चाहे चरकोक्त मान शार्ङ्गधरोक्त मागधमान से न मिले; परन्तु यह दोनों ही ठीक हैं। शार्ङ्गधर ने अपनी पुस्तक में यह कहीं भी नहीं लिखा कि मागधमान से अभिप्राय चरक का मान और कलिंगमान से अभिप्राय सुश्रुत के मान से है। अतः शार्ङ्गधरोक्त मागधमान को चरक का मान तथा कलिंगमान को सुश्रुत का मान कहना ठीक नहीं। परन्तु मागधमान तथा कलिंगमान देश के आधार पर हैं, काल भेद से ही इन दोनों मानों में चरक सुश्रुत और शार्ङ्गधर का मतभेद है।

शार्ङ्गधर ने मागधमान का वर्णन करते हुए ६ वंशी से १ मरीचि, ६ मरीचि से १ राई और ३ राई से १ सर्षप अर्थात् १०८ वंशी का १ सर्षप माना है, यथा—

षड्वंशीभिर्मरीचिःस्यात्ताभिःषडभिस्तुराजिका।
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः।
शा० अ० १ श्लो० १८।

परन्तु चरक में ३६ वंशी का १ सर्षप ग्रहण किया है। यथा—

षड्वंश्यस्तु मरीचिः स्यात्षण्मरीच्यस्तुसर्षपः।
अष्टौ तेसर्षपाः रक्तास्तण्डुलश्चापि तद्द्वयम्॥
च० कल्प० १२ अ०।

इस प्रकार चरक और शार्ङ्गधर के मत में स्थूल दृष्टि से भेद प्रतीत होता है। परन्तु चरक का सर्षप से अभिप्राय छोटी रक्त सर्षप(राई)से ही है। क्योंकि उससे तोलने पर मान ठीक उतरता है। चरक के उपर्युक्त श्लोक में 'रक्ता' शब्द आया है, जो सर्षप का विशेषण है, जो उस श्लोक के दूसरे चरण से ही स्पष्ट हो रहा है। चक्रपाणि भी इस श्लोक की टीका करते हुए लिखते हैं कि, "रक्ता" इति सर्षपाणां विशेषणम्" (च० टी० १२अ०)। नव परिभाषाकार ने चरक के इस श्लोक को अपनी पुस्तक में देते हुये 'रक्ता' के स्थान पर 'रक्ति' ऐसा शब्द बना दिया, जो तण्डुल का पर्याय है। वहाँ रक्ता शब्दका अर्थ गुञ्जा नहीं, क्योंकि चरक में गुञ्जाओं द्वारा तोल वर्णित नहीं है और गुञ्जा द्वारा तोलने की प्रणाली चक्रपाणि के काल से ही प्रचलित हुई प्रतीत होती है। पर वस्तुतः रक्ति शब्द तण्डुल का पर्यायवाचक आज तक किसी कोष में दृष्टिगोचर होते नहीं दिखाई देता। नवपरिभाषाकार की रक्ति शब्द से तण्डुल का पर्याय बनाने की चेष्टा व्यर्थ मालूम पड़ती है। चरक का सर्षप से अभिप्राय छोटी रक्त सर्षप (राई) से है और शार्ङ्गधर का सर्षप से अभिप्राय बड़ी रक्त सर्षप से या सम्भवतः गौर सर्षप से है, जो तोलने से शार्ङ्गधर के मतानुसार ३ राई के बराबर होती है। अतः चरक की छोटी रक्त सर्षप में ३६ वंशी और शार्ङ्गधर की बड़ी रक्तसर्षप में १०८ वंशी हो सकती हैं।

शार्ङ्गधर का ८ सर्षप (बड़ी) १ यव के बराबर है। ४ यव=१ गुञ्जा। ६ गुञ्जा=१ माषा। माषा यवादि की भाँति किसी वस्तु का नाम नहीं, अतः यह शार्ङ्गधर के काल में आजकल के सेर आदि की तरह कोई रूढ़ि बाट प्रचलित होगा। मूल से यह स्पष्ट मालूम होता है। यथा—

यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तोगुञ्जास्यात्तच्चतुष्टयम्।
षड्भिस्तु रक्तिकाभिःस्यान्माषकोहेमधान्यकौ॥
शा० १ अ० १६ श्लो०।

चरक के मान का विवेचन निम्न हैः—

८ रक्त सर्षप (छोटी)=१ तण्डुल (बड़ी सौगन्धिक (वासमती) चावलों को तोलने से १ चावल ८ छोटी रक्तसर्षप के बराबर होता है)।

२ तण्डुल=१ धान्य माष (यह भी छोटे आकार के कृष्ण उर्दों के साथ तोलने से ठीक बैठता है।)

२ धान्यमाष=१ यव (यह भी तोलने पर ठीक आता है।

४ यव=१ अण्डक, ४ अण्डक=१ माषा।

यह बाट यवादिकों की तरह किसी वस्तु विशेष के नाम पर नहीं, किन्तु रूढ़ि प्रचलित हुआ प्रतीत होता है। इससे आगे शार्ङ्गधर का मान पश्चात् वर्णन किया जायगा। प्रथम चरक के शेष मान का वर्णन किया जाता है। लेख

वृद्धि के भय से आगे मूल श्लोकों का उदाहरण नहीं दिया गया; किंतु अध्याय नम्बरादि का निर्देश कर दिया गया है। विज्ञ पाठक स्वयं चरक कल्प स्थानादियों में भलीभांति देख सकते हैं। दे० च० कल्प १२ अ०।

३ मा०=१ शाण (यह शब्द भी रूढ़ है)।
२ शाण=१ द्रंक्षण, कोल, बदर, आदि यह भी रूढ़ि शब्द हैं।

अर्थात् चरकोक्त १ कोल या द्रंक्षण में ६ माशे और चरक के १ माशा में ३२ उर्द के दाने घटित होते हैं जो उपर्युक्त से स्पष्ट है।

तात्पर्य यह है, कि चरक का कोल १९२ उर्द के दानों के बराबर है। यहाँ चक्रपाणि का अभिप्राय निम्न है—

१२ उर्द के दाने ५ बड़ी गुञ्जा के बराबर हैं, तो १९२ उर्द के दाने ८० बड़ी गुञ्जा के बराबर हुए। यथा—५×१६=८० बड़ी गुञ्जा। आजकल एक रुपया का तोला माना जाता है। वह तोला आजकल ९६ मध्यम आकार की गुञ्जाओं का माना जाता है, जो सबको विदित है। रुपये को बड़ी गुञ्जा के साथ तोलने से वह ठीक ८० गुञ्जा के बराबर तुलता है और चरक का कोल भी ८० गुञ्जाओं के बराबर है। अतः चरक का कोल=१ रुपया=१ तोला ठीक है। जिस स्थान में चरक का कोल मान लिखा हो, वहाँ निःसंकोच १ तोला ग्रहण करना उचित होगा। आगे चरकाचार्य लिखते हैं।

२ कोल=१ कर्ष, सुवर्ण, अक्ष, विडालपदक, पिचु, पाणितल, तिन्दुक, कवलग्रह, इन नामों में दो नाम सार्थक प्रतीत होते हैं, शेष रूढ़ि हैं; यथा—पाणितल=जितनी चीज़ फैलाए हुए हाथ की तली में आए। तथा तिन्दुक (तेन्दूफल) एक फलका नाम है, तत्समान कर्षमान हो सकता है। अभिप्राय यह है कि चरक का कर्ष २ तोले के बराबर है।

नोट—यदि चरक की किसी भी वस्तुका मान १ कर्ष से अधिक नहीं है, तो उसमें उपर्युक्त मानानुसार ही चीज़ें डालनी चाहिये। इससे आगे कुछ कठिनता होगी, जिसका स्पष्टीकरण आगे होगा।

२ कर्ष=१ पलार्ध, शुक्ति, अष्टमिका। (शुक्ति सीप का नाम है, उसमें २ कर्ष ४ तोले के करीब वस्तु आ सकती है)।

२ पलार्ध=पल, मुष्टि, प्रकुञ्च, चतुर्थिका, विल्व, षोडशिक, आम्र। इन नामों में विल्व तथा आम्र दो संज्ञाएँ फलों के अनुसार हैं एवं मुष्टि बन्द किए हुये हाथ को कहते हैं। अन्य शब्द प्रायः रूढ़ि हैं। अतः चरक का पल=४ कर्ष आजकल के ८ तोले के बराबर होता है। (यह ऊपर स्पष्ट है) क्योंकि आजकल ८ तोले का कोई बाट प्रचलित नहीं; इसलिए चरक की वस्तु १ पल लेने के लिए कठिनता होती है। इसी प्रकार पल से आगे के बाट भी आजकल नहीं मिलते; इसलिए इस सारे झगड़े को मिटाने के लिए एक सरल उपाय है, जिसमें कुछ हानि भी नहीं होती और कठिनता भी दूर हो जाती है। वह है यह कि पल को ८ तोले न लेकर ¼ भाग इसमें और अधिक मिलालें अर्थात् ८×¼=२ तोले। इसका अभिप्राय यह हुआ, कि पल ८+२=१० तोले=२ छटाँक। इस प्रकार करने से आगे का सारा मान हल होजाता है।

यथा—चरक कल्प १२ अ० में।
२ पल=१ प्रसृत, अष्टमान। प्रसृत मुष्टि का प्रसार कर देने से बनता है।

तथाहि—"पाणिन्युर्व्वजः प्रसृतिः" इत्यमरः। वैसे प्रसृति में १६ तोले बनते हैं। पर सब मानों के साथ ¼ भाग बढ़ाते जाने से आधुनिक मान से तुलना करने में बहुत सहूलियत होती है, इसलिए १ प्रसृत=१ पाव बनता है। इसी प्रकार २ प्रसृत=१ कुडव, अञ्जलि (बुक इति प्रसिद्धः) अमर कोष में भी लिखा है, कि—"तौ (प्रसृतौ) युतावञ्जलिः पुमान्"। इसमें ¼ भाग जोड़ देने से कुडव ½ सेर का बनता है।

२ कुडव=१ माणिका, शराव। ¼ भाग जोड़ देने से माणिका १ सेर की बनती है।

नोट—चरकोक्त मानानुसार माणिका (शराव) ६४ तोले की बनती है। यू० पी० आदि कई प्रान्तों में १ सेर ६० तोले का माना जाता है। वहाँ के सेर को हम माणिका कह सकते हैं। पर पंजाबी सेर तो माणिका के साथ ¼ भाग जोड़ने ही से बनता है।

आगे सब मानों में क्रमशः $\frac{1}{4}$ भाग जोड़ देने से आधुनिक मान से निम्न लिखित समता होगी।

२ माणिका=१ प्रस्थ=२ सेर

४ प्रस्थ=१ आढ़क=८ सेर आधुनिक

पर्य्या०—पात्र, कंस, भाजन

४ आढ़क=१ द्रोण=३२ सेर आधुनिक

पर्य्या०—अर्मण, नल्वण, कलश, उन्मान

२ द्रोण=१ शूर्प, कुंभ=६४ सेर आधुनिक

२ शूर्प=१ गोणी=१२८ सेर आधुनिक

पर्य्या०—खारी, भार

नोट—गोणी बोरी को कहते हैं और गोणी (बोरी) में आटा गोधूमादि वस्तु २॥ मन के लगभग आती है। यदि आधुनिक मान से तुलना करने के लिए चरक के मान के साथ $\frac{1}{4}$ भाग न जोड़ा जावे, तो चरक की गोणी भी लगभग २$\frac{1}{2}$ मन के करीब बनती है। हम अपनी सरलता के लिए सब मानों के साथ $\frac{1}{4}$ भाग जोड़ लेते हैं, जिससे कोई भेद नहीं पड़ता। आगे चरक में—

३२ शूर्प=१ वाह $\frac{1}{4}$ भाग जोड़ने से ५१ मन ८ सेर के बराबर बनता है।

नोट—चरक के जिन योगों में कोई भी चीज़ पल से कम नहीं या पूरा पल हो, वहाँ सब द्रव्यों का मान $\frac{1}{4}$ भाग जोड़ने से जो मान ऊपर निकाला गया है, लेने में सरलता रहती है और यदि किसी भी योग में सब द्रव्यों के मान पल से कम हैं, तो भी उपर्युक्त विधि से ही अर्थात् $\frac{1}{4}$ भाग न बढ़ाकर कोल से १ तोला आदि ग्रहण करना चाहिये। और यदि किसी योग में पल से कम तथा पल से अधिक दोनों प्रकार के मान हों तो निम्नलिखित विधि से तालें। वाले द्रव्य यथा—

ऐसे योगों में पलमान या उससे ऊपर मान के द्रव्यों के साथ $\frac{1}{4}$ भाग बढ़ाकर लिया हुआ होता है, इसलिये पल से कम अर्थात् कोलादि मानों के साथ भी $\frac{1}{4}$ भाग बढ़ाकर ही लेना चाहिये अर्थात् कोल से १ तोला न लेकर १$\frac{1}{4}$ तोले या $\frac{1}{2}$ औंस लेना चाहिये और कर्ष से २॥ तोला या १ औंस। ऐसी समता किये बिना और कोई हल है ही नहीं। इन योगों में जो वस्तु गिन कर डाली जाती है, यथा—५०० आमले या २०० हड़ें आदि। उनके साथ भी $\frac{1}{4}$ भाग और बढ़ा लेना चाहिये अर्थात् ५०० के स्थान में ६२५ आमले तथा २०० हड़ों के स्थान में २५० हड़ें आदि। आगे चरक कल्पस्थान के १२ अध्याय में लिखते हैं—

तुलां पलशतं विद्यात्परिमाण विशारदः।
शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवादि प्रकीर्त्तितम्॥

अर्थात् १०० पल=१ तुला (चरक के वास्तविक मान के साथ $\frac{1}{4}$ भाग जोड़ने से तुला १२॥ सेर की बनती है)। चरक के इस श्लोक की दूसरी पंक्ति से स्पष्ट है कि यह मान केवल शुष्क द्रव्यों को तोलने के लिये बरतना चाहिये। बंगाली वैद्य, जो शुष्क द्रव्यों को तौलने के लिये प्रस्थ करके ४ सेर लेते हैं, वह सर्वथा युक्ति शून्य हैं।

द्विगुणंतद्द्रवेष्विष्टं तथा सद्योद्धृतेषु च।
यद्विमानं तुला प्रोक्तं पलं वा तत्प्रयोजयेत्॥
अनुक्ते परिमाणेतु तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम्।
च० कल्प १२ अ०॥

अर्थात् द्रव (तरल) तथा सद्यः उद्धृत (आर्द्र व सरस) द्रव्य लेना हो, तो उस दिए हुए परिमाण से द्विगुण लेना चाहिये। यथा, १ प्रस्थ बादाम कहने से २ सेर लिये जावेंगे। परन्तु १ प्रस्थ घृत कहने से 'द्रव' होने के कारण ४ सेर लिया जावेगा। और यदि गोचुर कहा जावे और उसे सूखी प्रयोग करनी हो, तो १ प्रस्थ के स्थान में २ सेर और यदि गीली प्रयोग करनी हो, तो १ प्रस्थ के स्थान में ४ सेर लेनी चाहिये।

चरक के उपर्युक्त श्लोक में लिखा गया है, कि जिस योग में तुला या पल मान में द्रव या अन्य आर्द्र द्रव्य लेने लिखे हों, वहाँ किसी को भी द्विगुण नहीं करना चाहिये अर्थात् १ पल घृत से द्रव होने पर भी एक पल ही घृत लेना चाहिये।

कई आचार्यों का मत है, कि द्रव द्वैगुण्य परिभाषा कुडव से ऊपर ही करनी चाहिये। कुडव से नीचे तरल होने पर भी द्विगुण नहीं करना चाहिये। तथाहि—

रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्।
शुष्के द्रवार्द्रयोश्चैव तुल्यं मानं प्रकीर्तितम्॥

जतुकर्ण ने भी कहा है, कि "द्विगुणाः कुड-वादयो द्रवाणाम्" इत्यादि।

नोट—यह द्विगुण करने की विधि उन वस्तुओं के लिये प्रयुक्त हो सकती है, जो आर्द्र और शुष्क दोनों अवस्थाओं में प्रयुक्त होती हैं और जो वस्तु केवल आर्द्रावस्था में ही प्रयुक्त होती है, उन्हें आर्द्र लेते हुये भी द्विगुण नहीं करना चाहिये।

यथा—

वासाकुटज कूष्माण्ड शतपत्री सहामृताः।
प्रसारिण्यश्वगन्धाश्च शतपुष्पा सहाचराः॥
नित्यमार्द्राः प्रयोक्तव्या न तेषां द्विगुणं भवेत्।

च० कल्प-चक्र-टीका।

अन्यत्रापि—

वासा निम्ब पटोल केतकिबला कूष्माण्डकेन्दीवरी।
वर्षाभू कुटजाश्वगंध सहितास्ताः पूतिगंधामृता॥
मांसी नागबला सहाचरपुरौ हिंग्वार्द्रके नित्यशो।
ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये चेत्तु जातागणाः॥

शार्ङ्गधरीयमान

शार्ङ्गधरोक्त मागधमान तथा कलिंगमान दोनों परस्पर सम हैं और उन दोनों का पल ४–४ तोले का है अर्थात् चरकोक्त मागधमान से शार्ङ्गधर के मागध तथा कालिंगमान दोनों आधे हैं, और सुश्रुत के कालिंगमान के बराबर हैं। यह आगे स्पष्ट होगा।

यथा–शार्ङ्गधरोक्त मागधमान–(जिसका वर्णन पूर्व में अपूर्ण ही छोड़ दिया गया था)।

८ सर्षप=१ यव (साधारण आकार का)
४ यव साधारण=१ गुञ्जा (मध्यम आकार की तोल कर देखा गया है, ठीक है।)
६ गुञ्जा=१ माषा
४ माषा=१ शाण
४ शाण=१ कर्ष।

चरकीयमागध परिभाषा

इसका अभिप्राय यह हुआ, कि शार्ङ्गधरोक्त मागधमान के एक कर्ष में मध्यम आकार की ६६ रत्ती हुईं, जो आजकल के ५ तोला के बराबर हुआ और इसका पल ठीक ४ तो० का बना। इसका अभिप्राय यह हुआ, कि शार्ङ्गधर का मागधीय पल सुश्रुत के कलिंगीय पल के बराबर है (यह आगे स्पष्ट होगा) इसी प्रकार शार्ङ्गधर का कलिंगीय पल भी ४ तोले के बराबर है। यथा—

१२ गौर सर्षप=१ बड़ा यव (यह भी बड़े यवों से तौलने पर ठीक बैठता है)।
२ बड़े यव=१ बड़ी गुञ्जा (यह भी तौलने पर ठीक बैठता है)।
८ बड़ी गुंजा=१ माषा
१० माषे=१ कर्ष
४ कर्ष=१ पल

इसका अभिप्राय यह हुआ, कि शार्ङ्गधर का कलिंगीय कर्ष ८० बड़ी गुञ्जा का तथा पल ३२० बड़ी गुञ्जा का बनता है और आजकल का तोला भी ८० बड़ी रत्तियों के समान होता है। यह पीछे स्पष्ट कर दिया गया है, कि एक तोला में मध्यम आकार की ९६ गुञ्जाएँ तथा बड़े आकार की सिर्फ ८० गुञ्जाएँ ही होती हैं। अतः अब सिद्ध हो चुका कि शार्ङ्गधर का कलिंगीय कर्ष भी १ तोला का तथा पल ४ तोले का ठीक बैठता है। अतः शार्ङ्गधर के मागधीयमान तथा कलिंगीयमान में कोई भी भेद नहीं और यह दोनों सुश्रुत मान के बराबर (आगे स्पष्ट होगा) तथा चरकीय मागधमान से आधे हैं।

नोट—अब शार्ङ्गधर मान को भी आधुनिक मान से तुलना करने के लिये पूर्ववत् चरकीय मानवत् $\frac{1}{4}$ भाग और बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार शार्ङ्गधर का पल १ छटाँक के बराबर और कर्ष $1\frac{1}{4}$ तोले वा $\frac{1}{2}$ औंस के बराबर हो जायगा। यदि हम इसको भी द्विगुण करलें, यथा–पल=दो छटांक तथा कर्ष २॥ तोले या १ औंस, तो योगों की वस्तुओं की मान Ratio में कोई भी अंतर नहीं पड़ सकता। अतः हम सब योगों (चाहे वह सुश्रुत के हों वा चरकादि) के लिए एक ही मान परिभाषा निर्धारित कर सकते हैं। और वह है चरकीय मागधमान परिभाषा। क्योंकि पूर्वजों ने भी इसी की अधिक प्रशंसा की है।

शार्ङ्गधर मान परिभाषा पल से आगे प्रायः चरक सुश्रुत मान परिभाषा के समान है। अतः उसका और पुनः विशेष वर्णन दुहराने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

अब इससे आगे सुश्रुत के कलिंगीयमान की आधुनिक मान से तुलना का विवेचन आरंभ होता है। यथा—सु० चि० ३१ अ० में

१२ धान्यमाष(मध्यम आकार के उर्द)=१ सुवर्णमाष

१६ सुवर्णमाष=१ कर्ष

४ कर्ष=१ पल

इससे यह सिद्ध होता है,कि सुश्रुत के कलिंगीय कर्षमान में १६२उर्द होते हैं। प्रथम यह चक्रपाणि के मतानुसार स्पष्ट हो चुका है कि १२ मध्यमाकार उर्द=५ बड़ी रत्ती के बराबरहोतेहैं(यह भी तौल कर ठीक देखा गया है) तो १६२ उर्द ८० बड़ी रत्तियों के बराबर होते हैं। यथा—५×१६=८० बड़ी गुञ्जा और ८० बड़ी गुञ्जाएँ १ तोला के बराबर होती हैं। यह पीछे स्पष्ट हो चुका है, इस प्रकार सुश्रुत का कर्ष ठीक १ तोला का तथा पल ४ तो० ही बैठता है।

इसमें भी पूर्ववत् $\frac{1}{4}$ भाग जोड़ देने से सुश्रुत का पल १ छटाँक हो जाता है। इस प्रकार सब मानों की समता हो गई।

अब आगे स्पष्टीकरणार्थ सब मानों की संक्षिप्त तालिका दी जाती है—

चरकीयमानानुसार	शार्ङ्गधर वा सुश्रुत के मानानुसार (चरक से बिलकुल आधा)	(हमारा हल) $\frac{1}{4}$ भाग बढ़ाकर
कर्ष–२ तो०	१ तो०	१$\frac{1}{4}$तो०या२$\frac{1}{2}$तो०
पल–८ तो०	४ तो०	५ तो० ऽ– या १० तो० ऽ=
कुडव–३२ तो०	१६ तो०	२० तो० ऽ।,या ४० तो० ऽ॥
माणिका–६४तो०	३२ तो०	४० तो० ऽ॥या ८० तो० ऽ१
प्रस्थ–१२८ तो०	६४ तो०	८० तो० ऽ१ या १६० तो० ऽ२

नोट—इस प्रकार द्विगुण होने पर भी अनुपात (Ratio) में कोई भेद नहीं पड़ता, चाहे योगस्थ द्रव्यमान द्विगुण हो जाय। इससे आगे मान सरल है, विज्ञ वैद्य स्वयं विचार कर निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं। "अश्विनीकुमार से उद्धृत"।

नोट—अन्य यूनानी एवं डाक्टरी (एलोपैथी) मानों के लिए देखें "मान"।

औषधालय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह स्थान जहाँ नाना विध औषध सदा विक्रयार्थ प्रस्तुत रहे। औषध भाण्डार। औषध गृह। दवाख़ाना।

औषधि, औषधी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुरुच। गुड़ूची। (२) रास्ना। (३) दूब। (४) सफ़ेद दूब। (५) हड़। हरीतकी। (६) मद्य। शराब। (७) औषध। दवा। रत्ना०। (८) फलपाकान्त-वृक्ष आदि। ओषधि। हे० च०। (९) सम्यक् ओषधि। अच्छी जड़ी बूटी।

औषधिगन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूँघने से ज्वरादि उत्पन्न करनेवाली औषध की गंध। जिस जड़ी-बूटी की ख़ुशबू से बुख़ार वगैरः बीमारी लग जायँ। च० द० ज्वरातिसार-चि०।

औषधिगन्धज्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का ज्वर जो तीव्र औषध के सूँघने से होता है। इसमें मूर्च्छा, सिर-दर्द, वमन और छींक—ये लक्षण होते हैं। किसी-किसी ने छींक की जगह हिचकी का चलना लिखा है। वस्तुतः यह ज्वर दुर्गन्धित पदार्थोंकी गंधसे होता है। वैद्यकके मत से इसमें "सर्वगंध का काढ़ा" पिलाना और "अष्टगंध की धूनी" देना उपकारी है।

औषधि प्रतिनिधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] किसी औषधि के बदले दूसरी औषधि का ग्रहण। किसी औषधि के न मिलने पर उसके समान गुणधर्म की अन्य औषधि का लेना। द्रव्यांतर ग्रहण। बदल। प्रतिनिधि लेने के लिये शास्त्र की आज्ञा है। जैसे, यदि चीता न मिले तो दंती लेना चाहिये, दंती न मिले, तो चीता लेना चाहिए। पर इस बात का ध्यान रहे कि, योग की प्रधान औषधि के बदले प्रतिनिधि या बदल न लिया जाय।

नोट—प्रत्येक ओषधि को प्रतिनिधि हर औषधि के वर्णन के साथ दी गई है। अस्तु, वहाँ देखें।

औषधि वीर्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शीतोष्ण आदि रूप औषधि का वीर्य। औषधि की ताकत। यह

आठ प्रकार का होता है। यथा–शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, तीक्ष्ण वा तीव्र, मृदु, पिच्छिल और विशद। औषधि वीर्य बल एवं गुण के उत्कर्ष से रस को दबा अपना काम करता है। सु० सू० ४० अ०। सूर्य और चंद्रमा के कारण जगत के अग्नि और सोमीयत्व गुण से किसी-किसी ने वीर्य दो ही प्रकार का माना है अर्थात् उष्ण और शीत।

औषधी पञ्चामृत–संज्ञा पुं०[सं० क्ली](१) अमृत जैसी इन पाँच औषधियों का समूह–गुरुच, गोखरू, मुसली, मुण्डी और सतावर।

औषर (क)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] (१) एक प्रकार का अयस्कांत। (२) पांशु लवण। शोरा (३) छुटिया नोन। रेह का नमक। मृत्तिका लवण। खारी नमक।

पर्याय–औषरक। सर्व गुण। सर्व्व रस। सर्व्व संसर्ग लवण। ऊषरज। ऊषरक। साम्भर। बहुलवण। मेलक लवण। भिन्नक। (४) सेंधा नमक। सैंधव लवण। (५) ऊषरदेषज लवण।

गुण–क्षार, तिक्त, विदाही, मूत्रसंशोषकारक, ग्राही, पित्तकारक और वात-कफ नाशक है। (रा० नि० व० ६)। (६) क्षार। मद० व० २।

औषधीपति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] औषधी का राजा सोम।

औषधीय–वि० [सं० त्रि०] औषधि संबन्धी। जड़ी बूटी का। दवा का।

औषस–वि० [सं० त्रि०] (१) उषाकालोत्पन्न। जो सवेरे पैदा हो। (२) उषासम्बन्धीय। सहरी। सिदोसी।

औषसिक–वि० [सं० त्रि०] उषा सम्बन्धीय। सहरी। सिदौसी।

औषिक–वि० [सं० त्रि०] उषाकालोत्पन्न। सवेरे पैदा होनेवाला। (२) उषाकाल को भ्रमण करनेवाला। जो प्रातःकाल निकल कर टहलता है।

औषि (षी) ज–वि० [सं० त्रि०] इच्छुक। ख्वाहिशमन्द।

औष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का दूध आदि।

वि० [सं० त्रि०] ऊँट का। ऊँट सम्बन्धी।

औष्ट्रक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटों का समूह।

औष्ट्रतक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी के दूध का मट्ठा।

गुण–ऊँट का मट्ठा फीका, भारी, हृद्य और दोषकारक है तथा पीनस, श्वास एवं कास रोग में हितकारी कहा गया है। वै० निघ०। दे० "ऊँट"।

औष्ट्रनवनीत–संज्ञा पुं०[सं०क्ली०] ऊँटनी का मक्खन। ऊँटनी के दूध से निकाला हुआ नैनू।

गुण–लघुपाकी, शीतल, व्रण, कृमि, कफ तथा रक्त के दोष का नाशकरनेवाला, वातनाशक और विषनाशक है। रा० नि० व० १५।

औष्ट्रमूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँट का पेशाब। उष्ट्रमूत्र।

गुण–उन्माद, सूजन, बवासीर, कृमि और उदरशूल नाशक। मद० व० ८।

औष्ट्रक्षीर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का दूध। उष्ट्रीदुग्ध। दे० "ऊँट"।

औष्ट्रायण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उष्ट्रवंशीय।

औष्ट्रायि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुरु। उस्ताद। शिक्षक।

औष्ट्रिक–वि० [सं० त्रि०] ऊँट से पैदा। उष्ट्रजात।

औष्ट्रीघृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऊँटनी का घी। उष्ट्रीनवनीतज घृत।

गुण–पाक में मधुर, कटु, शीतल, कृमि और कोढ़ नाशक तथा वात, कफ एवं गुल्मोदर रोग का नाश करनेवाला है। रा० नि० व० १५।

औष्ठ–वि० [सं० त्रि०] ओष्ठ के आकार सदृश। होंठ जैसा बना हुआ।

औष्ठ्य–वि० [सं० त्रि०] ओंठ से निकला। होंठ सम्बन्धी। होंठ का।

औष्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उष्णता। गरमी। (२) उत्ताप। धूप। (३) सन्ताप। बुखार।

औष्णज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पगड़ी। साफ़ा।

वि० [सं० त्रि०] पगड़ी से सम्बन्ध रखनेवाला।

औष्णीक–वि० [सं० त्रि०] उष्णीषधारी। पगड़ी बाँधनेवाला।

औष्ण्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्णता। गरमी। धूप। संताप।

औष्म्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्णता। ऊष्मा। गरमी।

औसकामुस–[यू०] दे० "ओसक्वामुस"।

औसज–[अ०] ऊसज।

औसज–[अ० औसज] एक काँटेदार वृक्ष जो ऊँचाई एवं आकार-प्रकार में अनार के पेड़ से मिलता-जुलता होता है। इसकी शाखाएँ खड़ी होती हैं और वे काँटों से व्याप्त होती हैं। काँटे तीक्ष्णाग्र होते हैं। तना पतला होता है। पत्ती हरे रंगकी बादाम की पत्ती की तरह होती है; किंतु बादाम की पत्तियों से बहुत छोटी होती है और उनमें चिपकती हुई रतूबत होती है। फल चने के बराबर और दीर्घाकार लाल रंग का होता है और वृक्ष पर बहुत दिनों तक लगा रहता है, गिरता नहीं। इसके वृक्ष क्षारीय एवं ऊषर भूमि में उत्पन्न होते हैं। इसकी एक जाति के पत्ते ललाई लिये काले रङ्ग के होते हैं और प्रथम प्रकार के पत्तों से चौड़े होते हैं। इन काले पत्तोंवाले पेड़ में काँटे बहुत होते हैं और शाखाएँ भी इसकी बड़ी-बड़ी—चार-चार गज लम्बी होती है। इसका फल चौड़ा और बारीक होता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोषावृत्त है। इसकी एक जाति और है जिसके पत्ते सफ़ेदी लिये होते हैं। शेख़ के अनुसार इसके फल तूत की तरह होते हैं, जिसे लोग खाते हैं। शीत-प्रधान देशों में इसके वृक्ष बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। औसल जंगली और बाग़ी दोनों प्रकार का होता है। जंगली का पेड़ बहुत बड़ा होता है। इनमें हरे पत्तोंवाला सर्वोत्कृष्ट है। इसकी हरी और कोमल पत्तियाँ औषधार्थ व्यवहार में आती हैं। सफेद खार वाशक बर्ज़ी (फ़ा०)

टिप्पणी—बुर्हान के अनुसार यह उल्लैक की भाँति एक वृक्ष है, जिसके पत्ते पकाते और ख़िज़ाब के काम में लाते हैं। किसी-किसी के मत से उल्लैक इसका एक भेद है। इन कथनों से यह प्रतिपन्न होता है कि औसज और उल्लैक प्रायः सजातीय पौधे हैं। दोनों के गुणधर्म में भी समानता है, जैसा ग़ाज़रूनी के मुफ़रिदात कानून की व्याख्या से प्रतीत होता है। क़न्ज़ुल्लुग़ात तुर्की में इसको अम्बरबारीस समझना भूल है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा के अन्त में रूक्ष; कोई-कोई कहते हैं कि यह तृतीय कक्षा में रूक्ष है। पर यथार्थ यह है कि जंङ्गली तृतीय कक्षा में रूक्ष होगा। गीलानी के कथन से भी यही प्रतिपन्न होता है। जहाँ पर उन्होंने इसके जङ्गली और बागी भेदों का निरूपण किया है, वहाँ जंगली को अत्यन्त शोषणकर्त्ता लिखा है। हानिकर्त्ता—प्लीहा को। अधिक भक्षण करने से कुलञ्ज पैदा करता है। दर्पघ्न—कतीरा।

प्रतिनिधि—सुपारी, छड़ीला और अक़ाक़िया।

मात्रा—४॥ माशे।

गुण-कर्म-प्रयोग—इसकी पत्तियों का रस निचोड़कर ७-८ दिन आँख में डालने से जाला कट जाता है। यही नहीं, इसका सर्वाङ्ग नेत्ररोग में लाभकारी है। मुखपाक में भी यह उपयोगी है। पित्तजनित कण्डू और दद्रु प्रभृति सौदावी रोगों में चोबचीनी की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी ख्याल किया गया है।

शरीफ़ और गीलानी के अनुसार यह कुष्ठ में भी उपयोगी है। अंताकी ने इसके काढ़े को तर एवं रुक्ष तथा खुजली और फोड़े फुन्सियों के लिए गुणकारी लिखा है और इसे चोबचीनी से उत्तम माना है। इसकी जड़ को आस के पत्तों के साथ पीस कर फोड़ों और दुष्ट क्षतों पर लगाने से बद-गोश्त उड़ जाता है। क्षत पूरण होता है। इसकी पत्तियाँ रक्तस्रवण में लाभकारी हैं। ये केश उगाती हैं। इसका फल स्तंभक है और दस्त बन्द करता है, इसके सभी गुण-प्रयोग पत्तों के सदृश ही हैं। इनकी धूनी से कीड़े मकोड़े भाग जाते हैं। इसकी टहनी गृह की छत वा द्वार पर लटकाने से जादू का प्रभाव नष्ट होता है और समीप रखने से उसकी प्रतिष्ठा होती है, यह इसकी विशेषता है।

औसल–[अ०] औसज।

औसी–संज्ञा स्त्री० दे० "औली"।

औंधा–वि० [सं० अधः वा अवधा] [स्त्री० औंधी] उलटा । पट । जिसका मुँह नीचे की ओर हो ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का पकवान, जो बेसन और पीठी का नमकीन और आटे का मीठा बनता है, जिसे देश में उलटा, चिल्ला और चिलड़ा भी कहते हैं ।

औंधाहुली–संज्ञा स्त्री० [देश०, हिं० औंधा+हुली] एक क्षुद्र क्षुप जो प्रायः बलुई ज़मीन में पैदा होता है । Trichodesma Indicum.

इसका पौधा अधिक से अधिक १॥ बालिश्त तक ऊँचा होता है । इसकी जड़ सीधी पृथ्वी में घुसी होती है । इसकी टहनियाँ लोमश लाल-रंग की होती हैं । पत्तियाँ लोमश करीब ३-४ अंगुल लम्बी देखने में भालाकार श्वेताभ होती हैं, फूल प्रायः सब महीनों में लगते हैं । फूल श्वेत-किंचित् बैंगनी रंग के होते हैं, जो खिलने पर पृथ्वी की ओर झुक जाते हैं । फूल का बाहरी कोष जिसमें उसकी पंखड़ियाँ लगी हुई होती हैं, श्वेत लोमश होता है । इसके फूल पृथ्वी की ओर औंधा स्थित होने के कारण इसे उक्त संज्ञा दी गई है । इसके संस्कृत पर्य्याय भी उक्त अर्थ के सूचक हैं । फूल अर्कवत् होने के कारण इसे अर्क पुष्पी, औंधा होने के कारण अधःपुष्पी, अधोपुष्पी, चोरहुली, चोरपुष्पी आदि नामों से अभिहित करते हैं । देश में यह औंधाहुली और औंधाहुली नाम से प्रसिद्ध है । ऊँधाहुली

गुण—यह कफ को निकालती है । सूखी खाँसी में इसे १ तोला लेकर क्वाथ करके मिश्री मिलाकर पीने से विशेष लाभ होता है ।

इसकी हरी पत्ती जल में पीसकर १ तोला प्रातः और १ तोला सायंकाल पीने से वीर्य की तरलता, जिसके कारण शीघ्रपतन हुआ करता है, दूर होती है और वीर्य गाढ़ा होजाता है ।

इसकी हरी पत्तियों की टिकिया बनाकर अर्श के मस्सों पर बाँधने से उसका प्रदाह कम होता है । यूनानी "गावज़बां" की यह उत्तम प्रतिनिधि है ।

औंरा–संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० औंरी] दे० "आँवला" ।

औंरी–संज्ञा स्त्री० [औंरा का अल्पार्थक वा स्त्री०] छोटा आँवला । जंगली आँवला । अँवरी ।

औंस–संज्ञा पुं० दे० "आउंस" ।

(क)

क–हिंदी वा संस्कृत वर्णमाला का पहला व्यंजन वर्ण है ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) जल । रा० नि० व० १४ । (२) सुख । मे० । (३) केश । धर० । संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । (२) वायु । (३) यम । (४) सूर्य । (५) आत्मा । (६) मयूर । मे० । (७) मन । (८) शरीर । (९) काल । (१०) धन । (११) शब्द । अने० को० । (१२) ग्रंथि । गाँठ । (१३) कामदेव । (१४) ब्रह्मा । (१५) विष्णु ।

कअ् क्–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० काक से मुअ०] (१) मैदे की रूखी छोटी रोटी । पतली सूखी रोटी । ख़ुश्क नान (फ़ा०) । (२) तनूर में गरम पत्थर पर पकाई हुई मोटी रोटी । (३) अर्वाचीन अर्थ–केक (Cake) बिसकुट (Biscuit) शीरमाल ।

कअ् क, ख़ुब्ज़ और बिक़्सुमात्—

किसी किसी ने कअ्क् को केक (अं०) का भी मुअर्रिब लिखा है; पर इसका प्रयोग प्रायः रूखी रोटी के लिये होता है । ख़ुब्ज़ सामान्य रोटी को कहते हैं, चाहे वह ताज़ी हो वा बासी और बिक़्सुमात् रूखी रोटी का प्रसिद्ध नाम है ।

नोट—किसी किसी ग्रन्थ में रोग़नी या मीठी रोटी के लिये कअ्क् शब्द का प्रयोग हुआ है ।

गुण धर्म तथा उपयोग—यह उष्ण एवं रूक्ष है; दस्त रोकती है, द्रवों का शोषण करती है और कुलंज-रोग-पीड़ितों को हानिकर है । किसी किसी-कुर्स (टिकिया) में पड़ती है ।

क़ऋ क़ऋ–[अ०](१)एक प्रसिद्ध पक्षी। लक़्लक़्। लक़्-लक़् (२) अक़्अक़्। महोखा।

क़ऋ क़बः–[अ] (१) क्षत। ज़ख़्म। (२) ज़ख़्मी-करण। ज़ख़्म करने की क्रिया।

क़ऋ क़हर–[अ०] नील।

क़ऋ क़ा ऋ–[अ०] (१) सूखे छुहारे। (२) शीत ज्वर। जाड़ा बुख़ार। (३) चलते समय जिसके पैर के जोड़ बोलें।

क़ऋ क़ामर–[अ] संदरूस।

क़ ऋ दियः–[अ] मकड़ी का जाला। मर्कटजाल।

क़ ऋ नब–[अ०] (१) सिंह। शेर। (२)नर लोमड़।

[फ़ा०] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) बाज पक्षी का नख़।

क़ऋ ब–[अ] (१) बड़ा प्याला। काठ का बड़ा प्याला। (२) छोटी प्याली। फ़िंजान।

कऋ ब–[अ] [बहु० कुऋबः, किऋाब, अक्ऋब] गुल्फ। टख़ना। गट्टा। वज़ूल। Ankle,

कऋ ब इंसी–[अ] अंदरूनी टख़ना। अन्तर्गुल्फ। Intlernal maleolus.

कऋ ब ग़ज़ाल–[अ] (१) एक प्रकार का हलुआ। (२) फ़ानीज़। (३) शकरपारे की एक किस्म। (४) बताशे का नाम। (५) एक प्रकार की शकर और शराब।

क़ऋ बर–[अ०] गोलमिर्च। काली मिर्च।

क़ऋबल–[नब्त] एक पौधे की जड़ जो प्याज़ के समान होती है।

कऋ ब वहशी–[अ] बाहरी टख़ना। बहिर्गुल्फ। बाहर का गट्टा। External Malleolus.

क़ऋ बाल–[अ] एक प्रकार की खुमी।

कऋ बुल् ग़ज़ाल–दे० "कऋबग़ज़ाल"।

क़ऋ मूस–[?] एक प्रकार की खुमी।

क़ऋ र–[अ] गांभीर्य। गंभीरता। गहराई। Depth.

कऋ ल जौन्सी–[गु०] एक प्रकार का करौंदा। तामरंग। बिलाम्बु। Averrhoea Bilimba बिलिंबी।

क़ऋ लामीनस–[यू०] बख़ुर मरियम।

क़ऋ लूस–[यू०] ग़ार।

क़ऋ स्–[अ०] सीना बाहर उभर आने की क्रिया। कुब्जत्व। कुबड़ापन।

नोट—इसमें छाती टेढ़ी होकर ऊँची हो जाती है। इसका उलटा हदबः है।

क़ऋ स–[अ] आकस्मिक मृत्यु। मर्ग नागहानी। Sudden Death

कऋ स–[अ] (१) हाथ पाँव के पोरों की हड्डियाँ। (२) करभ-प्रपादास्थियाँ। हाथ की हथेली और पाँव के तलवों की हड्डियाँ। बराजिम।

कऋ सम–[अ०] [कऋासम्–बहु० व०] एक प्रसिद्ध जंगली पशु। जंगली गधा। गोरखर।

कऋ सूम–[अ०] [कऋासीम बहु० व०] गदहा। गर्दभ।

कऋाँ–[उड़ि०] इमली। तिंतड़ीक।

कऋाट करताय कलौंग–[ता०] सेवाला (बम्ब०)।

कऋाटजटी–[ता०] लक्ष्मणा।

कऋाटमणक–[ता०] एरंड। रेंड।

कऋादिया–[अ०] मकड़ी का जाला। मर्कट जाल।

क़ऋाल–[अ०] अंगूर का शिगूफ़ा।

कइत–संज्ञा पुं० [हिं० कैथ, सं० कपित्थ] कैथ। कपित्थ। कैथा।

[मल०] केवड़ा। केतकी।

कइत-चक्क–[मल०] अनन्नास। अनानास।

क़इन–संज्ञा स्त्री० [?] बाँस की पतली टहनी (पं०) पवना। मोरेड़।

कइनी–[बर०] ताँबा।

कइप-कोटकप्पाल-वित्त–[मल०] कड़ुआ इन्द्रजौ।

कइपजीर–[मल०] ग्रीष्म सुन्दरक। फाखिज। जीमा। Mollugo spergula, *Linn.*

कइप बातमकोट्ट–[मल०] कड़ुआ बादाम। तिक्त वाताद।

कइपबादम–[मल०] कड़ुआ बादाम। कटु वाताद।

कइपु–[सिं०] कत्था। ख़ैर। खदिर।

कइप्प-पटौलम्–[मल०] जंगली चिचिंडा।

कइप्प-वल्लि–[मल०] करेला। कारवेल्ल।

कइमल–संज्ञा पुं० [?] जिङ्गनी। जिगिन।

कइयनी–[बर०] ताँबा। ताम्र।

कइशो–[आसा०] खाजा। कर्णनेलिया।

कई त–[अ०] (१) बुलबुल। (२) हज़ार दास्ताँ (बुलबुल)।

क़ई द–[अ०] (१) टिड्डी। (२) खरहा। नर-ख़रगोश।

कउ–[?] खवन। शबन (ट्रां० इं०)। जैतून (अफ़्०)।

कउनी–[उ० प० प्रां०] ककुनी। कंगु।

कउर–[पं०] कंडेर।

कऊ–[बर०] गंधक।

क़ऊ़सा–[अ़०] ख़र्बक़।

कक–[फ़ा० । सं० काक का संक्षिप्त] कौआ। काक।

क़क़अ–[अ़०] चूहा। मूसा।

ककइ–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "कंघी"। (२) छोटी-पुरानी ईंट।

क़क़ख़–[सिरि०] काकनज।

ककज–[फ़ा०] (१) राई। (२) जर्जीर।

ककजः–[फ़ा०] बिनौला। कपास का बीया।

ककड़ा–संज्ञा पुं० [पं०] भवन बकरा। पापड़ा। पापड़ी।

ककड़ासींगी–संज्ञा स्त्री० दे० "काकड़ासींगी"।

ककड़ास्रिंगी–[ब०] काकड़ासींगी। कर्कटशृंगी।

ककड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कटी, पा० कक्कटी] (१) जमीन पर फैलनेवाली खीरे की जाति की एक बेल जिसमें लम्बे-लम्बे फल लगते हैं। यह फागुन चैत में बोई जाती है और बैसाख जेठ में फलती है। इसीसे इसे 'जेठुई ककड़ी' भी कहते हैं। इसकी बेल भी खीरे की सी होती है; परन्तु इसके पत्ते खीरे के पत्तों से छोटे और चिकने होते हैं। इसका फूल पीला होता है। इसके फल गोल एक हाथ या उससे अधिक लम्बे कुछ मुड़े हुये, पतले और रेखाबंधुर होते हैं अर्थात् उस पर लंबाई के रुख उभरी हुई रेखाएँ होती हैं। ककड़ी जब छोटी होती है, तब बहुत नरम और रोएँदार होती है। जब पूरी बढ़ जाती है, तब अढ़ाई बित्ता लम्बी हो जाती है। रंग में यह हरी वा कुछ-कुछ पीलापन लिये सफेद होती है और जब पक जाती है, तब ऊपर से चमकदार पांडु-पीत नागरंग वर्ण की हो जाती है। यह तासीर में ठंडी होती है। इसीसे इसको तर ककड़ी भी कहते हैं। किसी-किसी ग्रंथ में लिखा है कि तर ककड़ी इसकी एक ख़ास क़िस्म है। इसका फल कच्चा तो बहुत खाया जाता है, पर तरकारी के काम में भी आता है। लखनऊ की ककड़ियाँ बहुत नरम, पतली और मीठी होती हैं। संयुक्त प्रदेश, सीमा प्रांत–उत्तरी पश्चिमी सूबा, पंजाब और बंग प्रदेश में इसकी खेती होती है।

पर्य्या०—कर्कटी, कटुदल, छर्दासनीका, (छर्द्यायनी), पीतसा, मूत्रफला, त्रपुसी, हस्तिपर्णी (हस्तिपर्णिका), लोमशकण्टा, मूत्रला, नागमिता (वा बहुकण्टा) (रा० नि० व० ७), कर्कटः (शब्दर०), कर्कटाक्षः, शान्तनु (र०), चिर्भटी, वालुकी, एर्व्वारुः, त्रपुषी (हे०), कर्कटाख्या, कर्कटाङ्गा (र० मा०; रा० नि०; सि० यो०, वै० निघ०), एर्वारुः, ऊर्वारुः, दीपनी, स्फोटिनी, नल विवर्द्धनी, शकटी, गजकर्णिका, कर्कटाख्यः, कर्कटिः, कर्कटिका–सं०। ककड़ा, जि(जे)ठुई ककड़ी, तरककड़ी, काकड़ी–हिं०। कँकड़ी, काकड़ी–द०। काँकड़ी, काँकुड़–बं०। क़िस़्स़ाऽ–अ़०। ख़ियार्ज़ः, ख़ियार दराज़, ख़ियार तवील–फ़ा०। क्युक्युमिस युटिलिस्सिमस Cucumis Utilissimus, *Roxb.*,–ले०। ककुंबर Cucumber, Most useful–अं०। कक्करिक्काय, मुलवेल्लिरिक्काय–ता०। मुल्लु–दोसकाय, नक्कदोस–ते०। कक्करिक्क–मल०। मुल्लु-सवते, क्येयसौत, कोयसौत–कना०, का०। तरव्वा–बर०। ख्याट्जाव्–का०। ककरी, कुकड़ी–(काँगड़ा)। काँकड़ी–मरा०, गु०। तार-ककड़ी–पूना। काकड़ी–बम्ब०। काक्ड़ी–द०।

नोट—ठंडाई में और यूनानी चिकित्सा में इसी के बीज काम में आते हैं।

(२) ज्वार वा मक्का के खेत में फैलनेवाली एक बेल जिसमें लम्बे और बड़े फल लगते हैं। इसकी बेल भी प्रायः उपर्युक्त ककड़ी के बेल के समान ही होती है। फल भादों में पककर आप से आप फूट जाते हैं, इसी से 'फूट' कहलाते हैं। ये ख़रबूजे ही की तरह होते हैं, पर स्वाद में फीके होते हैं। इसके ख़रबूजे के सदृश होने के कारण ही कदाचित् अर्वाचीन पाश्चात्य वनस्पतिशास्त्रविदों ने इसे (Cucumis melo) अर्थात् खरबूजा और किसी-किसी यूनानी चिकित्सक ने ख़ुरपूज़ा का अन्यतम भेद स्वीकार किया है। मीठा मिलाने से इनका स्वाद बन जाता है। यह फूट

ककड़ी प्रायः दो प्रकार की होती है। एक मीठी जो कच्चे पर भी मीठी होती है। दूसरी तीती जो कच्चे पर अत्यन्त तिक्त होती है। पर पकने पर मीठी हो जाती है। इसके तिक्त भेद को हिंदी में तीत ककड़ी, कड़वी ककड़ी और बंगला में तित-काँकड़ी वा तित्काँकुड़ कहते हैं। इसके अतिरिक्त वह ककड़ी जो पकने पर फटती नहीं और स्वाद में कुछ कुछ खट्टी होती है, बंगला में 'गुमुक' कहलाती है। कोई-कोई बंगवासी कहते हैं कि 'गुमुक' सफेद ककड़ी को कहते हैं और यह फटती है। इसके सिवा वह जो आकार में छोटी और स्वाद में कड़वी होती है, "वनगुमुक" कहलाती है। हिंदीमें इसे कचरी वा पेहंटुल कहते हैं।

इसकी एक और जाति है, जो ग्रीष्म ऋतु में जेठुई ककड़ी के साथ होती है। इसकी बेल भी उपर्युक्त फूट ककड़ी की बेल के समान होती है और फल भी प्रायः उन्हीं के समान होते हैं। कच्चे पर इसके फल नहीं खाये जाते, क्योंकि अत्यन्त कड़वे होते हैं। पककर फूटने पर इसके फल खाये जाते हैं। उक्त दोनों प्रकार की ककड़ियाँ समस्त भारतवर्ष में बोई जाती हैं।

पारस्य देशी अर्थात् ईरानी चिकित्सकों ने इसके दो भेद लिखे हैं। उनके मतानुसार पहली वह है जो मोटी और बड़ी होती है। इसमें गूदा अधिक और बीज कम होते हैं। यह रबी की फसल के आरम्भ में होती है। इसका नाम 'ख़ियार्ज़ः गाज़रूनी' है। दूसरी वह जो पहली क़िस्म से छोटी होती है। इसके बीज कोमल होते हैं, पर अधिक होते हैं। यह ग्रीष्मांत में उत्पन्न होती है। इसको 'ख़ियार्ज़ः नैशापुरी' वा 'क़िस्सा-उस्सिग़ार' छोटी ककड़ी कहते हैं। यह मधुरता और स्वाद में पहली क़िस्म से बढ़ी हुई होती है। इनमें से कतिपय भेद कड़ुई निकलती हैं। दोनों प्रकार की ककड़ियाँ ख़ूब पक चुकने के उपरांत खट्टी पड़ जाती हैं। विशेषतः दूसरी किस्म की यही दशा है। किसी-किसी के मत से वह ग़ाज-रूनी उत्कृष्ट है, जो लम्बी, नरम और चिकनी हो और वह निशापुरी निकृष्ट है जिस पर खुरदरी धारें हों। गीलानी के मतानुसार इसका जौहर कद्दू के जौहर के समीपतर है; क्योंकि यह भी पार्थिव एवं जलीयांशों से संघटित है। परन्तु उससे शीघ्रतर परिपाचित होजाती है। मौलाना नफीस किर्मानी का यह मत कि किस्साऽ गोल और कच्चा खरबूज़ा है, विलक्षण एवं साथ ही हास्यास्पद भी है।

पर्य्याय—उर्वारुः, कर्कटी, व्यालपत्रा, लोमशा, स्थूला, तोयफला, हस्तिदन्तफला (ध० नि०, रा० नि०), एर्वारुः (रा० नि०), मूत्रफलं, वालुकं, प्रालम्बं (केयदेव) 'एर्वारुः' कर्कटी (भा०)'। उर्व्वारुः, इर्व्वारुक (भरतःद्विरूपकोष), ऐर्व्वारुः (मद० व० ७, च० द० प्रदर-चि०), कर्कारुः, रुर्व्वारुका, कर्कटिका, ग्रीष्म कर्कटी, रुर्व्वारुकं-सं०। बड़ी ककड़ी, फूट की ककड़ी; फूट (पका हुआ), कचड़ा (कच्चा)-हिं०। काँकुड़, फुटी-बं०। क़िस्साऽ-अ०। ख़ियार्ज़ः, ख़ियार्ज़ः गाज़रूनी, ख़ियार्ज़ः निशापुरी-फ़ा०। क्युक्युमिस मोमोर्डिका (Cucumis momordica, *Linn.*) ले०। Cucumber Momordica) अं०। कंतरि-काय-ता०। पेद्द-काय, पेद्द-दोसरै, नक्कदोस, दोसकाया-ते०।

टिप्पणी—धन्वन्तरीय तथा राजनिघण्टु में जो पंद्रह प्रकार के त्रपुष विशेष का उल्लेख देखने में आता है, वे वस्तुतः त्रपुष के भेद नहीं, अपितु उद्भिदशास्त्रानुसार त्रपुष वा कुष्माण्डवर्गीय उद्भिद विशेष हैं। उनमें से उद्भिदद्वय अर्थात् एर्वारु—फूट ककड़ी और कर्कटी—जेठुई ककड़ी का उल्लेख उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है। इनके अतिरिक्त उक्त वर्ग में दो प्रकार को और कर्कटी अर्थात् 'चीणा कर्कटी' और 'गोपालकर्कटी' का उल्लेख मिलता है। इनमें से चीणा वा चीना-कर्कटी को किसी ने चिर्चिडा तो किसी ने चित्रकूट देशीय ककड़ी विशेष वा चीना ककड़ी लिखा है। इसी प्रकार कर्कटी को किसी ने एक प्रकार की अरण्यकर्कटी वा गोपालकाँकुड़ी तो किसी ने कचरी वा पेहंटुल और किसी ने कुंदरू लिखा है। वस्तुतः यह कचरी का एक भेद है। इनका विवेचनात्मक एवं निर्णयात्मक विवरण यथास्थान दिया जायगा। ऐसे ही चिर्भिट, चिर्भट को किसी ने

कचरी और किसी ने फूट ककड़ी लिखा है। हमने इसे कई कारणों से कचरी ही माना है, जिसका शंशाण्डुली एक भेद है। देखो "कचरी"। इनके सिवा वैद्यक निघण्टुमें अरण्यकर्कटी-जंगलीककड़ी का भी उल्लेख पाया जाता है। आरब्य-भाषा के औषध-शब्द-कोषोंमें इसका समानार्थी क़िस्साउल् बर्र वा क़िस्साएबर्री शब्द देखने में आता है, जिसका अर्थ नफ़ाइसुल्लुग़ात में फूट उल्लिखित है। परंतु मख़्ज़न के अनुसार यह इन्द्रायन है और यह ठीक भी मालूम पड़ता है, क्योंकि फूट ककड़ी स्वयंभू नहीं, अपितु उसकी खेती होती है अस्तु,उसे जंगली ककड़ी कहना ठीक नहीं। हाँ! अरण्यकर्कटी को क़िस्साए बर्री कह सकते हैं, किंतु वह यूनानी ग्रन्थकारों के मत के विरुद्ध पड़ता है। सुश्रुत में श्वेतकर्कटक संज्ञा से सफेद ककड़ी वा बालमकाँकडी का उल्लेख मिलता है। यथा-"श्वेतकर्कटकं चैव प्रातस्तं पयसा पिबेत्।" (उ ५८ अ०) अर्थात् सफ़ेद ककड़ी को दूध के साथ प्रातः काल पीवे (इससे मूत्र के दोष और वीर्य के दोष भी दूर होते हैं)

त्रपुष वा कूष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceæ.*)

औषध-निर्माण—कुशाद्यघृत (च० द०), कुशावलेह (च० द०) इत्यादि।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कर्कटी वा ग्रीष्मकर्कटी—(निघंटुकार के मत से छोटा बड़ा भेद से यह दो प्रकार की होती है)

कर्कटी मधुरा शीता त्वक्तिक्ता कफपित्तजित्।
रक्तदोषकरा पक्वा मूत्ररोधार्ति नाशनी॥
मूत्रावरोधशमनं बहुमूत्रकारि कृच्छ्राश्मरी प्रशमनं-विनिहन्ति पित्तम्। वान्ति श्रमघ्नं बहुदाहनिवारि रुच्यं। श्लेष्मापहं लघु च कर्कटिकाफलं स्यात्॥
(रा० नि० मूलकादि ७ व०)

ककड़ी—मधुर और शीतल होती है। इसका-छिलका कडुआ और कफपित्तनाशक होता है। पकी ककड़ी-रक्तदोषकारक और मूत्ररोध को दूर करने वाली है ककड़ी का फल-मूत्रावरोध को दूर करने वाला, अत्यन्त मूत्रजनक, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी का निवारण करनेवाला, पित्तनाशक, रुचिकारी, कफनाशक, हलका और वमन, श्रम तथा अत्यन्त दाह का निवारण करनेवाला है।

स्वादुः गुरुः अजीर्णकरी शीतला च।
तत्पक्वफलं दाहच्छर्दि तृष्णा क्लान्तिघ्नं च॥
(राज० ३ प०)

ककड़ी-स्वादु, भारी, शीतल और अजीर्ण को करनेवाली है। पकी ककड़ी-दाह, वमन, तृषा और क्लान्ति को दूर करती है।

कर्कटी मधुरा रुच्या शीता लघ्वी च मूत्रला।
त्वचायां कटुका तिक्ता पाचकाग्नि प्रदीपनी॥
अवृष्या ग्राहिणी प्रोक्ता मूत्रदोषाश्मरी हरा।
मूत्रकृच्छ्रं वमिं दाहं श्रमञ्चैव विनाशयेत्॥
सा पक्वा रक्त दोषस्य कारिण्युष्णा बलप्रदा।
इति प्रथमा। द्वितीया त्रपुषी कर्कटी (तौंहे काँकडी) कर्कटी)रुच्या मधुरा वातकारिणी।
शीता मूत्रप्रदा गुर्व्वी कफकृद्दाह नाशिनी॥
वमिं पित्तं भ्रमं मूत्रकृच्छ्रं मूत्राश्मरीं हरेत्॥
(वै० निघ०)

ककड़ी—मधुर, शीतल, रुचिजनक, हलकी और मूत्रकारक है। इसकी त्वचा-चरपरी, कड़ुई पाचक, अग्निप्रदीपक, अवृष्य एवं ग्राहिणी है तथा मूत्रदोष (मूत्ररोध), पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वमन, दाह और श्रम का नाश करती है। वही पकी ककड़ी-रुधिरविकारकारक, गरम और बलकारक है।

पक्वा स्यात्पित्तकारी च वह्निदा तृट्विनाशनी।
श्रमदाहहरा प्रोक्ता "केयदेवनिघण्टके"॥
(नि० शि०)

पकी ककड़ी—पित्तकारक, जठराग्निवर्द्धक, प्यास, श्रम और दाह को हरण करनेवाली है।

ऐर्वारु चिर्भटम्

वालं पित्तं हरं शीतं विद्यात्पक्वमथोऽन्यथा।"
(वा० सू० ६ अ०)

अपक्व ककड़ी और फूट पित्तनाशक और ठंढे होते हैं और पकने पर वे पित्तवर्द्धक और गरम हो जाते हैं।

तिक्त कर्कटी

तिक्तकर्कटिकाप्रोक्ता रसे पाके कटुः स्मृता।
तिक्ता मूत्रकरी वान्तिकारिका मूत्रकृच्छ्रहा।
आध्मानवातं चाष्ठीलां नाशयेदिति कीर्तिता॥

कड़वी ककड़ी—रस और पाक में चरपरी, कड़ुई, मूत्रकारक, वमनकारक, मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाली, तथा आध्मान और अष्ठीला को दूर करनेवाली है।

चीना कर्कटी

चीना कर्कटिका शीता मधुरा रुचिदा गुरुः।
कफवात तृप्रकरी हृद्या पित्तरुजापहा॥
दाहशोषहरा प्रोक्ता मुनिभिश्चरकादिभिः।

चीनाककड़ी—शीतल, मधुर, रुचिदायक, भारी, कफकारक, वातकारक, तृप्तिजनक, हृदय को हितकारी, पित्तरोगनाशक तथा दाह और शोथ को हरनेवाली है।

सर्वा कर्कटी

सर्वाकर्कटिका गुर्वी दुर्जरा वातरक्तदा।
अग्निमान्द्यकरीप्रोक्ता ऋषिभिःशास्त्रकोविदैः॥
वर्षाशरदि चोत्पन्ना नो हिता न च भक्ष्येत।
हेमन्तजा रुचिकरा पित्तहा भक्षिताहिता॥
सैवार्द्धपका संप्रोक्ता पीनसोत्पादनी मता।
सम्यक्पका च मधुरा कफनाशकरीमता॥
(नि० र०)

सर्वाःकर्कटिका वर्षा शरदि जाता न हिताः।
परंतु हेमन्तजा रुचिकरी पित्तघ्नी चभोज्या॥
सा चार्द्धपका न भक्ष्या तेन पीनसं जनयति।
सम्यक् पक्का मधुरा कफघ्नी च॥
(भा० म० १ भ० अश्म० चि०)

सर्व प्रकार की ककड़ी भारी और दुर्जर(कठिनता से पचनेवाली) है एवं वातरक्त और मन्दाग्नि उत्पन्न करती है। वर्षा और शरद् ऋतु में उत्पन्न होनेवाली ककड़ी हितकारक नहीं है और न भक्षण करनी चाहिये। हेमन्त ऋतु में होनेवाली ककड़ी रुचिकारक, पित्तनाशक, भक्षणीय और हितकारी है। अधपकी ककड़ी पीनस उत्पन्न करनेवाली है। सम्यक् परिपक्व ककड़ी मधुर और कफनाशक है।

उर्वारु, एर्वारु (फूट ककड़ी)

उर्वारुकं पित्तहरं सुशीतलं मूत्रामयघ्नं मधुरं रुचिप्रदम्। संतापमूर्च्छापहरं सुतृप्तिदं वात प्रकोपाय घनन्तु सेवितम्॥
(ध० नि० १ व०; रा० नि० ७ व०)

ककड़ी—पित्तनाशक, सुशीतल, मधुर, अति तृप्तिदायक एवं रुचिकारी तथा संताप, मूत्रके रोग और मूर्च्छा का नाश करती और अत्यन्त सेवन करने से वायु को कुपित करती है।

कर्कटी शीतला रूक्षा ग्राहिणी मधुरा गुरुः।
रुच्या पित्तहरा सामापक्वा तृष्णाग्निपित्तकृत्॥
(भा० पू० १ भ० शा० व०)

ककड़ी—ठंडी, रूखी, ग्राही, मीठी, भारी, रुचि उत्पन्न करनेवाली, पित्त को शांत करनेवाली और आमकारक होती है। पकी ककड़ी प्यास, अग्नि और पित्त को करनेवाली है।

कोमलैर्वारुकं तिक्तं लघुः स्वाद्वतिमूत्रलम्।
शीतं रूक्षं रक्तपित्तं मूत्रकृच्छ्रास्र दोषजित्॥
तत्पक्वं पित्तलं चाग्निदीपनञ्च तृषापहं।
उष्णं त्रिदोषशमनं क्लमदाहहरं मतम्॥
गृहे जीर्णन्तु तज्ज्ञेयमुष्णं पित्तकरं मतम्।
कफ वायोर्नाशकरं प्रोक्तमायुर्व्विदैर्जनैः॥
क्षुद्रमैर्वारुकं शीतं मधुरं रुचिकारकम्।
कासर्पानसकारि स्यात् पाचकं श्रमपित्तहम्॥
आध्मान वायोः शमनं। (वै० निघ०)

कोमल ककड़ी—हलकी, कड़ुई, स्वादु, अत्यन्त-मूत्रकारक शीतल एवं रूखी है तथा रक्तपित्त मूत्रकृच्छ्र और रुधिर के विकारों को दूर करती है।

पकी ककड़ी—पित्तकारक, अग्निप्रदीपक, प्यास को दूर करनेवाली, गरम, त्रिदोषनाशक, श्रमहारक तथा दाहनिवारक है। घरमें रखने से पकी हुई ककड़ी—गरम, पित्तकारक तथा कफ और वात को नष्ट करती है।

छोटी ककड़ी—शीतल, मधुर, रुचिकारक, कास और पीनस को उत्पन्न करनेवाली, पाचक, श्रम और पित्त नाशक तथा आध्मान और वायु को शमन करनेवाली है।

एर्वारुकं तु मधुरं रुच्यं रूक्षं च शीतलम्।
तृप्तिकृद्ग्राहकं प्रोक्तमत्यन्त वातकारकम्॥
गुरु वातज्वर कफकारकं तापहारकम्।
पित्तं मूर्च्छांमूत्रकृच्छ्रं नाशयेदिति कीर्तितम्॥

ककड़ी—मधुर, रुचिकारक, रूखी, शीतल, तृप्तिकारक, ग्राहक—मलरोधक, अत्यन्त वादी, भारी, वातज्वरकारक, कफकारक एवं तापनाशक है तथा पित्त, मूर्च्छा और मूत्रकृच्छ्र रोग का नाश करती है।

भेदी विष्टंभकारी च त्वभिष्यन्दी च मूत्रलम्।
रक्तपित्तहरंचैव पक्वं स्यात्कफहारकं॥
हृद्यंदीपनमित्युक्तं 'कैयदेवनिघंटुके'॥ (नि०शि०)

ककड़ी—भेदक, विष्टंभकारक, अभिष्यन्दी, मूत्रल और रक्तपित्तनाशक है। पकी ककड़ी—कफनाशक, हृद्य और दीपन है।

अरण्यकर्कटी, वनजातकर्कटी (जंगली ककड़ी) (बुनो कांकुड़—बं०। राणतवसे—मरा०।)

अरण्य कर्कटी चोष्णा रसे तिक्ताच भेदना।
पाकेकटुर्वीकफकृमीपित्त कंडूज्वरापहा॥
(वै० निघ०)

वनककड़ी—गरम, तिक्त रसान्वित, भेदक, पाक में कटु तथा कफ, कृमि, पित्त, कण्डू (खुजली) और ज्वर को दूर करनेवाली है।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा वा द्वितीय कक्षांत में सर्द एवं तर है; क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक जलांश और किंचित् पार्थिवांश से संघटित होती है। अम्लास्वादयुक्त ककड़ी बहुत शीतल होती है। हानिकर्त्ता—यह नफ़्ख़ अर्थात् आध्मानकारक है और वायु एवं कुलंज (उदरशूल) उत्पन्न करती है तथा दीर्घपाकी भी है। यह शीतल प्रकृति को हानि पहुँचाती है। इससे बहुत कैमूस उत्पन्न होता है। यह आमाशय में शीघ्र विकृत हो जाती है। चिरकाल पर्यन्त दर्पघ्न द्रव्यकेविना ककड़ी सेवन करते रहने से ज्वर आने लगता है जो कठिनतापूर्वक पीछा छोड़ता है। दर्पघ्न—शीत प्रकृति को लवण, अजवायन, कालीमिर्च, मवेज़ा-मुनक्का और सौंफ तथा उष्ण प्रकृति को सिकंजबीन और थोड़ा सौंफ। प्रतिनिधि—खीरा और लम्बा-कद्दू-लौकी।

मात्रा—इच्छानुसार।

गुण-कर्म-प्रयोग—पकी ककड़ी सर्वोत्कृष्ट होती है। क्योंकि यह अधिक सूक्ष्म—लतीफ तथा पतली=रक़ीक़ होती है और इसमें जलीयता अधिक होती है। अपने शीत गुण—क़ैफ़ियत के कारण उष्णत्व एवं पित्त को शमन करती है। विशेषतः परिपक्व एवं अम्लयुक्त ककड़ी। किन्तु औष्ण्यप्रशांतकारी होने के साथ ही तत्प्रसूत दोष—क्लिन्न विकारोन्मुख होता है। यह ज्वर उत्पन्न करने वाली है; क्योंकि यह रक्त में जलीयता की वृद्धि करती है। जिससे वह विकार क्षय हो जाता है। पकी ककड़ी अपेक्षाकृत शीघ्रतर विकृत हो जाती है। इससे पूर्व इस बात का उल्लेख किया जा चुका है, कि इसमें सूक्ष्मता और औदकत्व अधिक होता है। अस्तु, यह कच्ची ककड़ी की अपेक्षा शीघ्र प्रतिक्रिया को ग्रहण करती—मुताासिर होती है, इसके विरुद्ध कच्ची ककड़ी की आर्द्रता सांद्रीभूत होती है और जबतक वह कच्ची रहती है, उसके घटक अवयवों में उसका सैलान नहीं होता; इसलिए यह अन्य प्रभावोत्पादकों मुवस्सिरात से प्रभावित नहीं होती और अपने शैत्यकारी गुणके होते हुये सुरभित होने के कारण सूँघने से औष्ण्यजन्य मूर्च्छा को लाभ पहुँचाती है और पिपासा शांत करती है। यह वस्ति वा मूत्राशय के अनुकूल है; क्योंकि यह वस्ति को प्रगाढ़ मलों और सितादि से शून्य करती है। इसमें प्रवर्तनकारिणी शक्ति भी विद्यमान होती है; क्योंकि इसमें प्रक्षालिनी और नैर्मल्यकारिणी शक्ति होती है। इसके अतिरिक्त इसमें आर्द्रता की भी प्रचुर मात्रा होती है। आर्द्रता स्वयमेव मूत्रप्रणालियों की ओर गतिवान् होती है। इसमें कोष्ठमृदुताकारिणी शक्ति भी विद्यमान है; क्योंकि आमाशयस्थ आहार को ककड़ी अपनी प्रचुर आर्द्रताके कारण आर्द्रीभूत करके फिसला देती है और अपने निर्मलीकरण एवं प्रक्षालन गुणके कारण द्रवों वा रतूबतोंको आमाशयगत

द्रव्यों के साथ संश्लिष्ट होने से वंचित कर देती है (जिससे मलावरोध दूर हो जाता है)। (त० न०)

ककडी—प्यास को बुझानेवाली है तथा यह रक्त-प्रकोप, आमाशय एवं यकृत गत तीव्रोष्मा, हरारत की तीव्रता—तीक्ष्ण दाह और पित्त के प्रकोप को शमन करती है। यह मूत्रल, वायुकारक, उदर शूल (कुलंज) जनक, कूल्हे में शूल उत्पन्न-करनेवाली और उसे (कटि) सुखा देनेवाली, पित्तातिसार को दूर करनेवाली और चिरकालानु-बंधी ज्वरों को उत्पन्न करनेवाली है। (मु० ना०)

ककड़ी जाली—कांतिकारिणी है तथा यह रक्त एवं पित्त के प्रकोप को शमन करनेवाली, उष्मा एवं दाह का निवारण करनेवाली और प्यास को बुझानेवाली है। यह उष्ण आमाशय तथा वस्ति-शूल के लिये लाभकारी और कोष्ठमृदुकारिणी है। (ना० मु०)

कच्ची ककड़ी—मीठी, शीतल, भारी, हृद्य और मलावष्टंभकारक है। लेखक के निकट यह मृदुरे-चक, क्षुद्बोधकारक और पित्त के विकारों को नष्ट करनेवाली है।—(ता० श०)

ककड़ी स्वच्छता—जिला करती है तथा तृषा, पित्तज ऊष्मा एवं रक्त और यकृतगत तीक्ष्णता एवं दाह को शमन करती है। यह खूब पेशाब लाती और पुराने से पुराने ज्वरों को उभारती है तथा वायु उत्पन्न करती, उदरशूल—कुलंज पैदा करती और कूल्हे तथा कमर के दर्द को दूर करती है। (म० मु०)

बुस्तानुल् मुफ़्रिदात के अनुसार ककड़ी वस्ति एवं वृक्कगत पथरियों को निकालती है। इस कार्य में कड़वी ककड़ी अपेक्षाकृत अधिक गुणकारी होती है। इसकी जड़ मध्वम्बु (माउल् अस्ल) के साथ क़ै लाती है।

ककड़ी प्यास को बुझाती है और पित्त जनित उष्णता एवं दाह का निवारण करती है तथा रक्त प्रकोप जन्य उग्रता एवं दाह और यकृद्गतोष्मा को शमन करती है। यह मूत्रल है और कूल्हे की संधि एवं कटिशूल को नष्ट करती है। यह क्षुद्बोध उत्पन्न करती और पित्तातिसार को नाश करती है। कद्दू की अपेक्षा इसमें अधिक जलांश होता है। इसी कारण यह कद्दू और खीरा दोनों में श्रेष्ठतर है। यह शीघ्र पच जाती है। किंतु प्रकुपित दोष रूप में परिणत भी शीघ्र होती है। इसमें प्रवर्तनकारिणी शक्ति खरबूज़े से न्यून है। यह वस्ति के बहुत ही अनुकूल है। इसके अत्यधिक सेवन से ज्वर आने लगता है। यह जितना अधिक परिपक्व होती है, उतना ही शीघ्र विकृत हो जाती है। यह आमाशयिक ऊष्मा को अत्यन्त लाभ पहुँचाती है। इसको खूब चाबकर खाना चाहिये, जिसमें शीघ्र पच जाय। आमाशय में विकृत होजाने पर यह अत्यन्त दूषित प्रकार के रोग उत्पन्न करती है। इसमें मीठा मिलाकर खाने से एतज्जन्य विकारों की शांति होती है। परन्तु विकृत हो जाने पर इसे न खाना-चाहिये, क्योंकि यह दूषित हो जाती है। ककड़ी मूत्र मार्ग का प्रक्षालन करती है। ख़रबूज़े में इसकी अपेक्षा शीघ्रतर विकार उत्पन्न हो जाता है। यह खरबूज़े से देर में विकृत होती है। उष्ण वाष्पजनित मूर्च्छा में इससे उपकार होता है। इससे जो दोष समुद्भूत होता है, वह शीघ्र विकृत हो जाता है। यह वस्ति एवं वृक्कजात अश्मरियों का नाश करती तथा रेग—सिकता को निवारण करती है। परन्तु इस विषय में तिक्त कर्कटी अपेक्षाकृत अधिक बलशालिनी होती है। क्योंकि अम्ल की अपेक्षा इसमें अधिक जिला—कांतिकरण की शक्ति होती है। और मधुर की अपेक्षा अम्ल ककड़ी में उक्त गुण अधिक है। कहते हैं कि यह उदर मृदु-कर भी है। इब्न ज़ुहर का कथन है कि यदि यह स्तन्यपायी शिशु के बिछौने में रख दी जाय तो यह उसका ज्वर खींच लेगी और स्वयं अत्यन्त कोमल हो जायगी। उनके अनुसार ककड़ी के पत्ते जलत्रास रोगी अर्थात् पागल कुत्ते के काटे हुये को तथा श्लेष्मार्बुद के लिये गुणकारी हैं। शेख़ के मतानुसार इसकी पत्तियों को पीसकर मधुमिला कफज उदर्द में पत्तियों पर मर्दन करने से उपकार होता है। इसकी सूखी हुई पत्तियाँ पित्तज अतिसार में लाभकारी हैं। वैद्यों के मतानुसार कच्ची ककड़ी भारी होती है, हृदय को शक्ति प्रदान करती और क़ाबिज़ भी है। इससे खुलकर मलोत्सर्ग भी होता है और क्षुधा

की अभिवृद्धि होती है। यह पित्त के विकार को शमन करती; पर पित्त की वृद्धि भी करती है। यह मूत्रकृच्छ्र रोग में लाभकारी है। कच्ची ककड़ी को पकाकर खाने से पित्त शमन होता है, शीत उत्पन्न होता और तृषा शान्त होती है। यह मूत्र प्रवर्तनकारी है। इससे वस्ति एवं वृक्कजात पथरियाँ टूट जाती हैं। इससे मूत्रजात माधुर्य एवं सांद्रता का निवारण होता है। इसके नित्य-सेवन से कफ एवं पित्त उत्पन्न होता है। शुष्क-ककड़ी की तरकारी सेवन करने से खुलकर साफ पाखाना होता है। इससे क्षुधा की वृद्धि होती एवं श्लेष्मा का उत्सर्ग होता है, जो प्रायः मल के साथ निकलती है। यह गुरुत्व तथा वात एवं पित्तका नाश करती है। तर ककड़ी शरीर को वृंहित एवं स्थूल करती है। कतिपय यूनानी वैद्यकीय ग्रन्थों में लिखा है कि ककड़ी ठंडी है, भूख बढ़ाती है, कफ, पित्त एवं रुधिर तीनों के दोष नष्ट करती, पित्तज वमन को दूर करती, दाह-सोजिश शान्त करती और मूत्र प्रवर्तन करती एवं पाचन करती है। पकी ककड़ी पित्त एवं जठराग्नि की वृद्धि करती है। (ख़० अ०)

नव्यमत

कविराज नगेन्द्रनाथ सेन गुप्त—फूट ककड़ी एवं उसकी कोमल पत्तियाँ खाद्यपदार्थ हैं। फल स्वाद में मधुर और शीतल है तथा यह मूर्च्छा एवं त्वग्दाह रोग में लाभकारी है। इसका कोमल-कच्चा फल, मधुर, लघु, शीतल तथा (Anti-arthic) है और यह मूत्रकृच्छ्र एवं रक्तवमन में उपकारी है। Indian Indigenous Drugs & Plants, *pp-58-9, pt.* iii

ककड़ी का बीज

एर्वारुबीज, कर्कटीबीज—सं०। ककड़ी का बीज, ककड़ी का बीया—हिं०। कँकड़ी के बीज—द०। काँकुड़ बीज—बं०। तिवसीचबीज—म०। ब़ज़ुल् क़िस्साऽ—अ०। तुख़्मेख़ियार्ज़ः, तुख़्मे ख़ियारे दराज़—फ़ा०। Seeds of Cucumis Utilissimus—ले०। ककुंबर सीड्स Cucumbr seeds—अं०। कक्करिक्काय-विरै, मुल्-वेल्लिरिक्काय-विरै—ता०। मुल्लु-दोसकाय—वित्तुलु—ते०। कक्करिक्क-वित्त—मल०। मुल्लु-सवते-बीजा—कना०। तख्वा—सी—बर०।

टिप्पणी—वह बीज जो सफेद और भारी हो और पकी हुई ककड़ी में से निकाला गया हो, उत्कृष्ट है, पुराना और खराब अच्छा नहीं होता है। ककड़ी का बीज खीरे के बीज से उत्कृष्टतर है। अस्तु, शेख़ ने क़िस्साऽ-ककड़ी के वर्णन में लिखा है, "ककड़ी का बीज खीरे के बीज से अधिक उत्तम है"। कानून नामक अरबी ग्रन्थ के भाष्य-कार गाज़रूनी ने इस पर यह आपत्ति की है। उक्त महानुभाव का यह कथन है कि शेख़ को वैसा नहीं प्रत्युत यह कहना चाहिये था कि क़िस्साऽ का बीज ख़ियारे तवील के बीज से उत्कृष्टतर है कारण यह है कि क़िस्साऽ और ख़ियार दोनों समानार्थी शब्द हैं। परन्तु उसका उत्तर यह है कि क़िस्साऽ का प्रयोग जिस प्रकार ख़ियार अर्थात् खीरे के लिये होता है, उसी भाँति ककड़ी के अर्थ में भी इसका प्रयोग करते हैं। क्योंकि ख़ियार शब्द का प्रयोग उक्त वस्तुद्वय अर्थात् खीरा और ककड़ी दोनों के लिये होता है। अस्तु, दोनों के बीज तुख़्म ख़ियारैन कहलाते हैं। अतः शेख़ के वचनानुसार क़िस्साऽ से स्पष्टतया ककड़ी अभिप्रेत है और ख़ियार से खीरा। यही कारण है कि साहब मिनहाज ने ख़ियार को क़िस्साऽ की प्रतिनिधि लिखा है। यह स्मरण रहे कि शीराज़ में खीरे को ख़ियार दराज़ कहते हैं, और गाज़रून प्रदेश शीराज़ से दो-तीन ही मंजिल की दूरी पर है। इसी कारण भाष्यकार गाज़रूनी के वचन में खीरे के स्थान में ख़ियार तवील शब्द दृष्टिगत होता है। वरन् ख़ियार दराज़ एवं तवील से प्रायः ककड़ी ही अभिप्रेत होती है, जिसे अरबी में क़िस्साऽ कहते हैं। खीरे को आरब्य भाषा में 'क़स्द' कहते हैं और यदि इस कारण से कि क़िस्साऽ शब्द का व्यवहार प्रायः खीरा और ककड़ी दोनों के लिये ही होता है, यहाँ क़िस्साऽ से खीरा और ख़ियारे तवील से ककड़ी का अर्थ लिया जाय, तो यह अर्थ शेख़ के और प्रायः स्वतन्त्र लेखकों के अभिप्राय के विरुद्ध हो जायगा।

ककड़ी और खरबूजे के बीज में यह भेद है कि ककड़ी का बीज चौड़ा होता है। तथा यह

अत्यन्त श्वेत, लघु और मसृण होता है। इसकी गन्ध में थोड़ी सी हीक होती है। खरबूजे का बीज गुरु और कम चौड़ा होता है और इसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

एर्वारु तैल—(कर्कटीबीजतैल, ककड़ी का तेल, रोग़न क़िस्साऽ, कांकुड़ बीजेर तैल)

विभीतक तैल गुणम्। वातपित्तघ्नंकेश्यं श्लेष्मकरं गुरु शीतलञ्च। (वा० तैल व०)।

ककड़ी के बीज से निकाला हुआ तेल गुण में बहेड़े के तेल के समान होता है। यह वातपित्त नाशक, बालों के लिए हितकारी, कफकारक, भारी और शीतल है।

वैद्यक में एर्वारु का व्यवहार

चरक-अश्मरी, शर्करा.कृच्छ्ररोग में एर्वारु बीज—किसमिस के काथ में एर्वारु बीज भली भाँति पीसकर पीवे। मूत्रकृच्छ्र रोग में यह सब प्रकार हितकारी है। यथा—

"एर्वारुबीज ❀ ❀ ❀। द्राक्षारसेनाश्मरीशर्करासु सर्व्वेषु कृच्छ्रेषु प्रशस्त एषः॥" (चि० २६ अ०)

(२) पित्तकृत कृच्छ्ररोग में एर्वारु बीज—ककड़ी के बीज, मुलेठी और दारुहल्दी इन्हें समानभाग लेकर चावलों के धोवन में पीसकर चावलों के जल के साथ पीने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र का नाश होता है। यथा—

एर्वारुबीजं मधुकं सदार्वि पैत्ते पिबेत्तंडुल धावनेन। दार्व्वीं तथावामलकीरसेन समाक्षिकां पित्तकृते तु कुच्छ्रे॥

(चि० २६ अ० भैष मूत्रकृच्छ्र चि०)

(३) गुल्माश्मरि भेदनके लिए एर्वारुबीज—ककड़ी के बीज प्रभृति का चूर्ण मात्रानुसार मांसरस और मद्यादि के साथ सेवन करने से गुल्माश्मरी का नाश होता है। यथा—

"❀ ❀ एर्वारुकाच्च त्रपुषाच्चबीजम्। ❀ ❀ ❀ ❀ ॥ अम्लैरनुष्णै रसमद्ययूषैःपेयानि गुल्माश्मरि भेदनानि॥" (चि० २६ अ०)

सुश्रुत—(१) मूत्ररोधज उदावर्त रोग में एर्वारु बीज—मूत्ररोधजात उदावर्तरोग में जल के साथ फूट ककड़ी वा एर्वारुबीज पीसकर किंचित् सेंधानमक मिलाकर पान करें। यथा—

"एर्वारुबीज तोयेन पिबेद्वालवणीकृतम्।"

(उ० ५५ अ०)

(२) मूत्राघात में एर्वारु बीज—एर्वारुबीज २ तोला किंचित् सेंधानमक के साथ पीसकर काँजी मिलाकर पीने से मूत्ररोध निवृत्त होता है। यथा—

"कल्कमेर्व्वारु बीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्। धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते॥"

(उ० ५८ अ० भैष० मूत्राघात चि०)

वक्तव्य—

चरक के फलवर्ग में एर्वारु प्रभृति का पाठ नहीं मिलता। चरक ने मूत्रविरेचनीय वर्ग में भी एर्वारु और त्रपुष का उल्लेख नहीं किया है। चरक ने कर्कारु और चिर्भिट के शाक का अतिसार रोग में व्यवहार किया है। (चि० १० अ०) सुश्रुत लिखते हैं—"त्रपुसेर्व्वारु कर्कारुकतुम्बी कुष्माण्ड स्नेहाः मूत्रसङ्गेषु" (चि० ३१ अ०) अर्थात् त्रपुष, कर्कारु, तुम्बी और कुष्माण्ड के बीज का तेल मूत्ररोध में हितकारी है।

यूनानी मतानुसार गुणदोष—

प्रकृति—प्रथम कक्षा में सर्द एवं तर (मतांतर से द्वितीय कक्षा में शीतल एवं स्निग्ध)। रंग-श्वेत। स्वाद-विस्वाद एवं किंचित् मधुर। हानिकर्त्ता—प्लीहा को। ये ठहरे हुये मवाद-घटकों को उभारते हैं और प्रतिश्यायके रोगी को हानिकर हैं। दर्पघ्न—सिकञ्जबीन (मतांतर से शहद वा मकोय)। प्रतिनिधि—खीरा के बीज। मात्रा—६ माशे से ९ माशे तक (मतांतर से १७॥ माशे से ३ तोले तक)।

गुण, कर्म, प्रयोग—कर्कटी का बीज मूत्रादि प्रवर्त्तन कर्त्ता—मुदिर, रोधोद्घाटनकर्त्ता, कांतिकर्त्ता तथा रगों को गाढ़े मवादों से रहित करता है अर्थात् रग संशोधनकर्त्ता-मुनक्का उरूक है एवं यह रक्तोद्वेग, पित्तोल्वणता और पिपासा के वेग को शमन करता है। यह पित्तज वा उष्णप्रधान

ज्वरों को लाभकारी, स्थिर घटकों-मवादों को उभारनेवाला और खीरे के बीज की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। प्रलेप रूप से यह कपोलों को कांतिप्रदान करता है। (मु० ना०; ना० मु०)

मख़्ज़न मुफ़रिदात—में यह अधिक लिखा है कि यह उल्लासप्रद है। बुस्तानुल् मुफ़रिदात के मत से यह प्रभाव में खीरे के बीजों की अपेक्षा निर्बल है। यह उष्ण प्रकृति को उल्लासप्रद है। इसका प्रलेप त्वग्मृदुकर है। शेष गुणधर्म पूर्व वर्णनानुसार। मक़ालात इह्सानी के अनुसार ककड़ी के बीज की गिरी के गुणधर्म भी ककड़ी के ही सदृश हैं; परन्तु यह अधिक है कि इसका शीरा आमाशय को सांद्रकर्त्ता है। क्वाथ वा फांट रूप में जौकुट किये हुए इसके बीजों का सेवन अधिक उत्तम है।

ख़ज़ाइनुल् अद्विया में उल्लेख है कि यह मूत्रप्रवर्त्तक है और इसमें खीरे के बीजों की अपेक्षा प्रवर्त्तन की शक्ति अधिक है। किंतु ख़रबूज़े के बीजों से यह इस विषयमें हीन है। यह अवरोधोद्घाटन करता, स्वच्छताकरता-जिला करता, रगों में से पिच्छिल एवं ल्हेसदार दोषों को निकालता, उष्ण-प्रधान ज्वरों की ऊष्मा को मूत्र द्वारा निःसृत करता, मूत्र का दाह व जलन मिटाता और प्यास बुझाता है। इसको पीसकर मुखमंडल पर मर्दन करने से चेहरे का रंग स्वच्छ होता है। परन्तु इसके उपयोग में इतना दोष अवश्य है, कि इसमें स्थिर दोषों को प्रकुपित करने की थोड़ी शक्ति ज़रूर है। इसे खीरे के बीजों के साथ मिलाकर सेवन करने से जलन, प्रदाह और सिर्रह सफ़रा-एक प्रकार का अप्राकृतिक सफ़रा वा पित्त जो पतले कफ के साथ मिला हुआ हो-का प्रकोप शमन होता है। यदि दोष उल्वण हो गये हों, तो स्थिर हो जाते हैं। यह फुफ्फुसजात क्षत एवं वेदना को लाभकारी है और उसकी शुद्धि करता है। यह पैत्तिक कास वा गरम खाँसीको आराम पहुँचाता है। यदि आमाशय और यकृत में ऊष्मा अत्यधिक हो जाय या उक्त ऊष्मा के कारण सूजन आजाय, तो इसके उपयोग द्वारा उपकार होते देखा गया है। यह प्लीहागत उष्ण शोथ को भी विलीन करता है। मूत्र-विरेचनीय होते हुये भी यह किंचित् मृदुरेचनीय-मुलय्यिन भी है और यह उसकी विशेषता है। क्यों कि मूत्रप्रवर्त्तनकारी पदार्थ सर्वदा ही मलावष्टंभकारी अर्थात् क़ाबिज़ होते हैं और क़ाबिज़ प्रवर्त्तनकारी। इसका छिलका वायु एवं उदरशूल-कुलंज उत्पन्न करता है, दीर्घपाकी है और क़ै लाता है। वैद्यगण कहते हैं कि ककड़ी के बीज शीतल, मृदुल और वल्य हैं। जिस रोगी के पेशाब बनना रुक गया हो उसे ७॥ मा० इसके बीज पानी में पीस-छानकर पिलाने से अधिक पेशाब आने लगता है। ककड़ी के बीज और जवाखार दोनों को पानी में पीस-छानकर पीने से मूत्र की जलन मिटती है और मधुमेह रोग-पेशाब में शर्करा का आना-आराम होता है। अतएव रोगी को भी उक्त बीजों का सेवन अतीव गुणकारी सिद्ध होता है। इसके बीजों को सेंकी हुई मींगियों का चूर्ण अत्यन्त मूत्रल है। बीजों को सुखा और पीसकर भक्षण करने से शरीर बहुत बलिष्ट होता है (कदाचित् इसी कारण बीजों को सुखा और छीलकर चीनी में पाग लेते हैं और सेवन करते हैं। यह खाने में भी अत्यन्त सुस्वादु होता है)। इनकी मींगियों द्वारा निकाला हुआ तेल-एर्वारुबीज तैल जलाने और खाने के काम में आता है।

(ख० अ० भा० ५ पृ० ४६२-३)

नव्यमत

वैट—फूट के बीज शैत्यकारक औषध रूप से व्यवहार किये जाते हैं।

उ० चं० दत्त—ककड़ी का बीज शीतल, खाद्योपयोगी, पुष्टिकर तथा मूत्रल है और सशूल मूत्रण-मूत्रकृच्छ्र, रोग एवं मूत्ररोध में इसका उपयोग होता है। ककड़ी के बीज २ ड्राम पानी में पीसकर कल्क बनाते हैं और उसे अकेले वा लवण और काँजी के साथ सेवन कराते हैं।

नादकर्णी—दो ड्राम ककड़ी के बीज जल वा दुग्ध में पीसकर सेवन करने से अथवा केवल बीजों के चूर्ण में १० रत्ती सेंधानमक का चूर्ण मिला सेवन करने से सशूल मूत्रप्रसाव-मूत्रकृच्छ्र और मूत्ररोध रोग आराम होते हैं।

शुद्ध शिलाजीत, गोखरू, पाषाणभेद, इलायची, केशर, ककड़ी के बीज और सेंधानमक-इन सबको बराबर बराबर लेकर पीस-छान लो। इसमें से

चार या छः माशे चूर्ण चावलों के धोवन के साथ खाने से घोर असाध्य मूत्रकृच्छ् भी आराम हो जाता है।

पाषाणभेद, बरुना, गोखुरू और ब्राह्मी—इनको कुल दो तोले लेकर काढ़ा करो। फिर इसमें "शुद्ध शिलाजीत और गुड़" तथा "खीरे और ककड़ी के बीजों का कल्क" (सिलपर पिसी लुगदी) खूब मिलाओ और पीओ। इससे वह पथरी भी नष्ट हो जाती है, जो सैकड़ों दवाओं से नष्ट नहीं होती। जिस तरह इंद्र के वज्र से पर्वतों का नाश होता है। उसी तरह इस योग से पथरियों का नाश होता है।

झाड़ की सीकों के फूल दो तोले लेकर पावभर भानी में ८ घंटे तक भिगो रखो; फिर इस पानीको छान लो। पुनः उसमें खीरे ककड़ी के बीज ६ माशे और भाँग १ माशे सिलपर पीसकर मिला दो और ऊपर से दो तोले चीनी भी डाल दो और कपड़े में छानकर पीलो। इस दवा से पथरी नष्ट होती और मूत्रावरोध दूर होता है।

हिक्का रोग में ककड़ी का पानी—ककड़ी के फल से निकाला हुआ स्वरस, मुलेठी, मयूरपंख की भस्म, भ्रमर के छत्तों की भस्म और अपामार्ग के बीज, इन्हें समान भाग लेकर मधु के साथ सेवन करने से हिचकी शीघ्र दूर होती है। बसव रा० ८ प्र० पृ० १५५।

राक्सबर्ग के अनुसार इसके शुष्क बीजों का चूर्ण तीव्र मूत्रल है और इससे अश्मरी रोग में उपकार होता है।

चोपड़ा के मत से यह शान्तिदायक और मूत्र-वर्द्धक है।

संज्ञा स्त्री० [पं०] जंगली चिचिंडा।

ककन-भेड़—संज्ञा स्त्री० [हिं] एक प्रकार का प्रसिद्ध जलीय पक्षी जो बत्तख़ के समान, किन्तु उससे बड़ा होता है। यह उड़ नहीं सकता। यह दो प्रकार का होता है। धूमिल-काला और सफेद। हिंचड़ो। हवासिल (अ) मु० आ०।

प्रकृति—उष्ण तथा स्निग्ध।

हानिकर्त्ता—दीर्घपाकी। दर्पघ्न—दालचीनी के साथ पकाना। गुण, कर्म, प्रयोग—इसका मांस दीर्घपाकी तथा गुरु है और खाल उष्ण प्रकृति को सात्म्य, पर पित्तज प्रकृति को हानिप्रद है। ना० मु०।

ककनस—[?] पित्तपापड़ा। शाहतरा।

कंकना—संज्ञा पुं० इमली का फल।

ककनी—[बं०] कँगनी। कंगु।

संज्ञा स्त्री० (१) एक अनाज। दे० "कँगनी" (२) कँगनी की तरह की एक मिठाई। (३) इमली का छोटा फल।

ककन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोना। स्वर्ण।

ककर—सज्ञा पुं० [?] तंबाकू। सुरती।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक चिड़िया।

ककर खिरुणी—[कों०] करुणी पुष्प।

ककरघाट—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वृक्ष जिसकी जड़ ज़हरीली होती है।

ककरा—[हिं०, बं०] कंकरा।

ककराच-गोंद—[म०] पलाश का गोंद। कमरकस।

ककरा-च-झाड़—[म] पलाश वृक्ष। पराश। ढाक-का पेड़।

ककरा-च-बी—[म०] पलाश बीज। पलाशपापड़ा। परास का बीया।

ककरा चुरा—[बं०] कंकरा।

ककराली—संज्ञा स्त्री० [सं० कच+वाली (प्रत्य०)] एक प्रकार का फोड़ा जो काँख में होता है। कंछराली। कंखवाली। कखवार। कँखौरी।

ककरा सींगी—संज्ञा स्त्री०। दे० "काकड़ासींगी"।

ककरिया गोंद—[गु०] पलाश की गोंद। कमरकस।

ककरी—संज्ञा स्त्री०। दे० "ककड़ी"।

संज्ञा स्त्री० [पं०] कबरा बेर (हिं०)। कौर। कियारी। (पं०)। कबर (बम्ब०)। (Cadaba Murayana, Graham.) The edible caper or Caper plant. इं० मे० प्रां०।

ककरी काय—[ता०] ककड़ी।

ककरी मुख—संज्ञा पुं० [स० पुं०] केश। बाल। रा० नि० व० १८]।

ककरोंदा—संज्ञा पुं० दे० "कुकरौंधा"।

ककरोल—संज्ञा पुं० [देश० बं०] खेखसा। ककोड़ा। ककोंटकी।

[बं०] गुल काकर।

ककरौल–संज्ञा पुं० खेखसा। ककोड़ा।
ककरोहन–संज्ञा पुं० [?] बथुआ। वास्तुक।
ककरौंदा, ककरौंधा ककरौन्हा–संज्ञा पुं० दे० "कुकरौंधा"।
ककश–संज्ञा पुं० [?] कचूर।
ककस–[?] (१) केसर। (२) गुग्गुलु।
कक्कस:–[सिरि०] काकनज।
ककसल–[?] दे० "ककस"।
ककसा–संज्ञा पुं० [?] खेखसा। ककरौल।
क़क़साला–[?] आलूबुखारा।
ककसी–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्कशा, प्रा० कक्कसा] एक प्रकार की मछली। इसका मांस रूखा होता है। यह गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्र और सिंधु आदि नदियों में होती है। ककसा।
ककहर–संज्ञा पुं० [?] कचूर। कचूर।
कक़हर–[अ०] (१) राल। धूप (२) साल। सालू।
ककहिया–संज्ञा स्त्री०। दे० "ककही"।
ककही–संज्ञा स्त्री० [सं० कंकती, प्रा० कंकई] (१) एक प्रकार की कपास जिसकी रूई कुछ लाल होती है। (२) कंघी। दे० "कंघी"।
ककाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ललाटास्थि। माथे की हड्डी।
ककादावण्टा–संज्ञा पुं० [?] हुरहुर। हुलहुल।
ककापत्री–[सं० द०] अज्ञात।
ककायु–[सं० ?] सोनवेल। स्वर्णवल्ली।
ककारपूर्वद्रव्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वे पदार्थ जिनके नाम का पहला अक्षर 'क' हो। 'क' से प्रारम्भ होनेवाले पदार्थों के नाम; जैसे, कटुक, (कुटकी), कालशाक, कुष्माण्ड, कर्कटी, कर्कंधु, कर्कोटक, कलिंग, करमर्द, करीर, कतक, कशेरु, और काँजी। ये रक्तपित्त में वर्जित हैं। भा० म० १ पि० चि०।
ककारु–संज्ञा पुं० [सं० कर्कारु] कोंहड़ा।
ककुआ–[?] गिन्दाल (पं०)।
ककुई आइल–संज्ञा पुं० [सैण्डविच द्वीप] जंगली अखरोट का तेल। केकुनी आइल (लंका)। फा० इं० ३ भ०।
ककुङ्गिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मालकंगनी। ज्योतिष्मती। भा० म० १ भ०।
ककुञ्जल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
ककुञ्जला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } चातक। पपीहा। राज०।
ककुटी–संज्ञा स्त्री० [खुरा०, हरीरूद घाटी] मिश्क तरामशी। फा० इं० ३ भ०।
ककुन्दनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मालकाँगनी। ज्योतिष्मती।
ककुन्दर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुकरौंधा। कुकरछिद्दी। यह कटु, तिक्त, ज्वरघ्न, उष्णकृत् और रक्त एवं कफदाह के दोष मिटानेवाला है।
ककुन्मत्–दे० "ककुभत्"।
ककुप्(भ)–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) चम्पा के फूलों की माला। चम्पे का हार। (२) प्रवेणी। मे० मत्रिक। (३) दिक्। दिशा।
ककुभ–संज्ञा पु० [सं० पुं०] (१) अर्जुन वृक्ष। कहू। कोह। प० मु०। (२) वृष। बैल। (३) एक चिड़िया।
ककुभचूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कास रोग में प्रयुक्त उक्त नामक एक आयुर्वेदीय योग।

विधि—अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण करके उसमें अडूसे के रस की भावना देकर रखलें।

गुण वा उपयोग-विधि—इसे ३–४ माशे की मात्रा में शहद, घृत और मिश्री मिलाकर सेवन करने से क्षय, कास और रक्तपित्त का नाश होता है। यो० र० कास चि०।
ककुभत्वक्–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] अर्जुन वृक्ष की छाल। अर्जुन की छाल। च० द०। सि० यो० यक्ष्म-चि०।
ककुभलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय योग।

निर्माण-विधि—दे० "ककुभचूर्ण"।
ककुणक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक प्रकार का बालरोग। कुथुआ। ककूणक। रोहुआ। रोहा।
ककुत्(द्)–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) बैल के कंधे का कुब्बड़। डिल्ला। डील। (२) प्राधान्य। अम०। (३) ध्वजा। निशान। छत्र चामरादि। (४) राजचिह्न। मे०। (५) ककुदिन्

द्राक्ष (ऋषभ) । (६) पहाड़ी की चोटी । (७) एक प्रकार का दर्वीकर सर्प ।

ककुत्सल–संज्ञा पुं० [सं० (वै०) क्ली०] ककुद नामक वृषावयव । डील ।

ककुद्मती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कटि । कमर । अम० । (२) नितम्ब । चूतड़ ।

वि० [सं०] जिसे डिल्ला हो । ककुद्वाला । ककुद् विशिष्ट ।

ककुद्मत्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृष । बैल । (२) पर्वत । पहाड़ । (३) ऋषभक नाम की ओषधी । वैद्यकोक्त द्रव्य विशेष ।

ककुद्मान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऋषभ नाम की एक ओषधि । ऋषभक । रा० नि० व० ५ । (२) वृक्ष । पेड़ । हे० च० । (३) बैल । वृष ।

ककुद्मिन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृषभ । बैल । (२) पर्वत । पहाड़ ।

ककुद्वत्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वृषभ । बैल । (२) नितम्बस्थल के उभय पार्श्वस्थ गर्तद्वय । कूल्हे के गड्ढे । चूतड़ के दोनों ओर का गड्ढा ।

ककुनक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] दे० "ककुणक" ।

ककुनी–संज्ञा स्त्री० [सं० कंगुनी] कंगु । काँक । कँगनी ।

ककुभ-शाखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भारंगी । भार्गी । रत्ना० ।

ककुभा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भूर्जपत्र । भोजपत्र ।

ककुभाण्डा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मीठा कद्दू । मिष्टअलाबू ।

ककुभादनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नला नामक गंध द्रव्य । नलिका । श० च० ।

ककुभादि(द्य)चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग ।

निर्माण-विधि—(१) अर्जुन की छाल, वच, रास्ना, बला, नामबला, हड़, कचूर, पुष्करमूल, पीपर, सोंठ प्रत्येक समानभाग—इनको बारीक चूर्ण कर रखलें ।

मात्रा—१ माशे ।

गुण—इसे घृत के साथ सेवन करने से हृद्रोग का नाश होता है ।

(२) अर्जुन की छाल, गंगेरन, आमला, एरण्डबीज और सुहागे की खील । प्रत्येक समानभाग लेकर चूर्ण करके रखलें ।

गुण तथा प्रयोग-विधि—३-४ माशे की मात्रा में लेकर शहद घृत मिलाकर सेवन करने से यक्ष्मा और कासादि रोगों का नाश होता है । वृ० नि० र० क्षय चि० ।

(३) अर्जुन वृक्ष की छाल लेकर उचित मात्रा में घृत, दूध अथवा गुड़ के साथ सेवन करने से हृद्रोग, जीर्णज्वर, रक्त पित्तका नाश होता है एवं दीर्घायु प्राप्त होती है । यो० र० हृदय रो० चि० ।

ककुम्बर–संज्ञा पुं० [अं० cucumber] दे० "कुकुम्बर" ।

ककुरवँदा–[मरा०] कुकरौंधा ।

ककुरवदा–
ककुरौंदा–
ककुरौंधा–
ककुरौन्हा–

संज्ञा पुं० [सं० ककुन्दरः] कुकरौंधा ।

ककुलक–[अ०] गंदुम दीवाना । मूछनी । (Lolium temulentum, *Linn.*) (फा० इं० ३ भ०)

ककुवल्ली–संज्ञा स्त्री० [मल०] कंकेई । काखर । लङ्गर ।

ककुवाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृग । मृगा । हिरन ।

ककूक–दे० "ककूल" ।

ककूटिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुरर पक्षी । कर्कटिया । an osprey

ककूणक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कुथुआ । कुथरू । रोहा । कुकूणक । मा० वात रो० नि० । भा० म० ४ भ० ।

ककूल,ककूलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (१) गाय के गोबर आदि के चूर्ण की गरमी । करसी की आँच । वा० टी० अरुण । (२) पूआ बनाने का मिट्टी का पात्र । पूरी पकाने का मिट्टी का बरतन । "ककूलं शङ्कुभिः कीर्णे स्वभ्रे ना तु तुषा-

नलः। तेनच मृण्मयमुत्तानमपूपपचनपात्रंलक्ष्यते" वा० टी० हेमा०।

ककेई–[पं०] काखस।

ककेड़ा–संज्ञा पुं० [सं० कर्कटक, प्रा० कक्कटक] एक लता जिसके फल साँप के आकार के होते हैं और तरकारी के काम में आते हैं। चिचिंड़ा। चिचड़ा। कर्कटक।

ककेरुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पुरीषज कृमि। यह पाकस्थली में उत्पन्न होता है।

ककैडाका–[राजपु०] खेखसा। ककोड़ा।

ककैया–संज्ञा स्त्री० [?] लखावरी ईंट। लखौरी।

ककोडा–संज्ञा पुं० [सं० कर्कोटकः, पा० कक्कोड़क] एक वृक्षारोही लता का फल जिसकी पत्ती बंदाल की पत्ती की तरह पँचकोनी होती है। यह फल-पाकांत बहुवर्षीय बेल है। यह गर्मी में पुरानी जड़ से ही निकल कर बढ़ती है और बरसात में फूलती-फलती है। फूल पीले रंग का होता है। फल अंडाकार परवल के आकार का होता है और उसके ऊपरी भाग में बँदाल के फल की तरह हरे कोमल काँटे होते हैं। बँदालमें ये काँटे अपेक्षाकृत अधिक मोटे, लम्बे, कड़े और घनावृत्त होते हैं। कच्चा ककोड़ा हरा होता है, किंतु पककर यह पिलाई लिए रक्तवर्ण अर्थात् नारंगी के रंग का होजाता है। इसके भीतर बीज भरे होते हैं। बीज परवल के बीज की तरह पकने पर कलौंछ-लिए होते हैं। स्वाद भेद से यह दो प्रकार का होता है। मीठा ककोड़ा और कड़वा ककोड़ा। मीठे ककोड़े की तरकारी अत्यन्त सुस्वादु होती है। कड़ुआ तरकारी के काम नहीं आता है। इसका मूल कन्द (Tuber) होता है। इसका वह भेद जिसमें फल नहीं लगते, फल के स्थान में खाली एक कोष होता है, "बाँझ ककोड़ा" कह लाता है। बाँझ-ककोड़े की बेल बिलकुल ककोड़े की बेल की तरह होती है। इसकी जड़ के नीचे खोदने से एक कंद निकलता है।

पर्या०—कर्कोटकी; स्वादुफला, मनोज्ञा, कुमारिका; अवन्ध्या, देवी, विषप्रशमनी, (ध० नि०) कर्कोटकी, स्वादुफला, मनोज्ञा, मनस्विनी, बोधना, बन्ध्य कर्कोटी, देवी, कण्टफला (रा० नि०) कर्कोटकी, पीतपुष्पा, महाजाली (भा०) पीतपुष्पी, महाजालिनिका, बोधनाजालि, कर्कोटः, कर्कोठकः (च० द०), कर्कोटकं (सु०, प्रज०, अत्रि०) कुमारी, कर्कोटजः, कर्कोटिका, पीतपुष्पा; जाली, (मद०)–सं०।

खेकसा, खेखसा, ककोड़ा, ककरोल, ककरोल, ककोरा, बनकरैला–हिं०। कँकरोल–बं०। कर्टोली, कंटोली–मरा०। आगाकर–ते०। अगारचक्की –ता०।

मोमोर्डिका कोचीनचाइनेन्सिस Momordica Cochin chinensis, *Sprenq.* म्युरिसिया कोचीन चाइनेन्सिस Muricia Cochin chinensis, *Loureiro*–ले०

संज्ञानिर्णायिनी टिप्पणी—

बङ्गाल में 'जिसे विकरला' कहते हैं, वनौषधि दर्पणकार के अनुसार वह एक प्रकार की अरण्य कर्कोटकी मात्र है। ककोड़े के उस भेदको, जिसमें फल नहीं लगते हैं, 'बाँझ-ककोड़ा' कहते हैं। फिर अनुभूतचिकित्सासागर–के रचयिता ने कैसे यह लिख मारा, कि इसके सूखे फल को पीसकर सूँघने से छींकें बहुत आती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लिखते समय उन्हें बंदाल वा देव-दाली की सुधि आगई होगी। तिबमुस्तफ़वी के अनुसार इसके फल को बाकर वा बाकल कहते हैं। यह भी प्रमादपूर्ण ही है। मालूम होता है कि भंग के नशे में ये व्यवस्थापत्र दिये गए हैं। इनसे भी हास्यास्पद बात ख़ज़ाइनुल् अदविया के रचयिता की है। आप उक्त लेखकों की सत्यालोचना करने तो बैठे, पर अपनी बारी पर आप भी उन्हीं की तरह नशे में होकर लिख गए कि इसके नर और मादा ये दो भेद होते हैं। उक्त वर्णन डिमकोर्प धारकरेले (M. Dioica, *Roxb.*) का है, जिसमें फल होते हैं। परन्तु वह बाँझ-ककोड़े से सर्वथा भिन्न पौधा है।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceæ.*)

उत्पत्तिस्थान—बंगाल से टेनासरिम तक,

दक्षिण भारत, कनाडा, कोचबिहार राज्य में सर्वत्र और रंगपुर के अंचल में तथा इसी तरह हिन्दुस्तान के प्रायः सभी भागों में यह प्रचुर मात्रा में उपजता है और इसके फल भारतीय बाज़ारों में विक्रीत होते हैं।

रासायनिक संघटन—छिलका उतारे हुये बीज में एक प्रकार का कुछ-कुछ हरे रंग का तेल ४३·७% और एक तिक्त ग्ल्युकोसाइड होता है तेल अत्यन्त प्रबल शोषण (Siccative) गुण विशिष्ट होता है।

औषधार्थ व्यवहार—बीज फल और कन्द आदि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कर्कोटकी युगं तिक्तं हन्ति श्लेष्मविषद्वयम्।
मधुना च शिरोरोगे कन्दस्तस्याः प्रशस्यते॥
(ध० नि०)

दोनों प्रकार का ककोड़ा—कड़ुआ होता है और श्लेष्मा एवं स्थावर तथा जंगम दोनों प्रकार के विषों का नाश करता है। शिरोरोग में शहद के साथ इसके कन्द का सेवन गुणकारी होता है।

कर्कोटकी कटूष्णा च तिक्त विषनाशनी।
वातघ्नी पित्तहृच्चैव दीपनी रुचिकारिणी॥
(रा० नि० ७ व०)

ककोड़ा (कर्कोटकी)—तिक्त, चरपरा, गरम, विषनाशक, वातनाशक, पित्तनाशक, दीपन और रुचिजनक है।

कर्कोटकं फलं ज्ञेयं कारवेल्लकवद्गुणैः।
(राज० ३ प०)

ककोड़ा (फल)—गुण में करेला के समान है।

कर्कोटकं त्रिदोषघ्नं रुचिकृन्मधुरं तथा।
(अत्रि० १६ अ०)

ककोड़ा (कर्कोटक)—त्रिदोष नाशक, रुचिकारक और मीठा होता है।

कर्कोटकी मलहृत्कुष्ठ हृल्लासारुचिनाशिनी।
कास श्वास ज्वरान्हन्ति कटुपाका च दीपनी॥
(भा०)

ककोड़ा—मल को हरनेवाला और कुष्ठ, हृल्लास अरुचि, श्वास, खाँसी तथा ज्वरको दूर करनेवाला, कटुपाकी और दीपन है।

कर्कोटकी रुचिकरा कटुवीचाग्नि प्रदीपनी।
तिक्तोष्णा वातकफहृद्विषं पित्तं विनाशयेत्॥
फलमस्यास्तु मधुरं लघु पाके कटु स्मृतम्।
अग्निदीप्तिकरं गुल्मशूल पित्त त्रिदोषनुत्॥
कफकुष्ठ कासमेह श्वास ज्वर किलासनुत्।
लालास्रावारुचिर्वात किलास हृदयव्यथाः॥
नाशयेत्पर्णमस्याश्च रुच्यं वृष्यं त्रिदोषनुत्।
कृमि ज्वर क्षय श्वासकास हिक्कार्शनाशनम्॥
कन्दोमाक्षिक संयुक्तः शीर्षरोगे प्रशस्यते।
(नि० र०)

ककोड़ा—रुचिकारक, कटु, अग्निप्रदीपक, तिक्त, गरम, तथा वात, कफ, विष एवं पित्त का नाश करता है। इसका फल—मधुर, लघु, पाकमें चरपरा, अग्निप्रदीपक तथा गुल्म, शूल, पित्त, त्रिदोष, कफ; कुष्ठ, कास, प्रमेह, श्वास, ज्वर, किलास, लालास्राव, अरुचि, वात और हृदय की पीड़ा को दूर करता है। इसका पत्ता—रुचिकारक, वृष्य, त्रिदोष नाशक तथा कृमि ज्वर, क्षय, श्वास, कास, हिचकी और बवासीर को दूर करनेवाला है। इसका कन्द—मधु के साथ मस्तिष्क के रोगों में हितकारी है।

कर्कोटपत्र—वमन में हितकारी है। (वा० ज्वर चि० १ अ०) कर्कोटमूल—ककोड़े की जड़ का नस्य दिया जाता है। (च० द० पाण्डु-चि०) कर्कोटिका—कन्दरज (खेकसा को जड़ का चूर्ण) (भा० म० १ भ० शीतलाङ्ग, सा० ज्व-चि०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—समशीतोष्णानुप्रवृत्त, पर किसीभाँति तर वा स्निग्ध (मतान्तर से शीतल किसी-किसी के समीप उष्ण) है।

हानिकर्त्ता—आध्मानकारक और दीर्घपाकी है।

दर्पघ्न—गरम मसाला और आदी।

गुण, कर्म, प्रयोग—गुण में यह करेला के समान है और अपने प्रभाव से यौवनपिड़का वा मुँहासे को दूर करता है तथा कफ, रक्तपित्त और अरुचि को दूर करता है। (ता० श०)

यह फोड़े और फुन्सियों को लाभकारी है तथा सूजन उतारता है। (म० मु०)

यह खाँसी, फेफड़े एवं शरीर के दर्द और जीर्णज्वरों को लाभकारी है। इसकी जड़ का लेप बालों की जड़ों को दृढ़ करता है और बाल झड़ने को रोकता है। यह केशपात वा बालखोरा (दाउस्सालब) को भी लाभकारी है। बंगाल निवासी इसको कतरकर मांस में पकाकर खाते हैं। (बु० मु०)

ककोड़ा खाँसी को दूर करता है। यह फेफड़े के दर्द और जीर्णज्वर को लाभकारी है। यह अर्श में लाभ करता और वृक्कशूल एवं पार्श्वशूल को दूर करता है। इन रोगों में इसकी जड़ भी गुणकारी है। यदि इसे गोघृत में तलकर उक्त घृत को नाक में टपकाएँ, तो अर्द्धावभेदक तुरत नष्ट हो जाता है। इसके रससे नासिकागत समस्त कृमि नष्ट होजाते हैं। यह कर्णशूल में भी गुणकारी है। एक तोला इसकी जड़ महीन पीसकर पीने से वृक्काश्मरी नाश होती है और यह अश्मरी का निर्माण नहीं होने देती है। इसकी जड़ के लेप से केशमूल दृढ़ होते और केश बढ़ते हैं। ककोड़ा विषों का अगद है। इसका रस कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है। इसकी जड़ के लेप से बालखोरा दूर होता है। (ख़ा० अ०)

छिलका उतारे हुये बीज अकेले वा अन्य भोज्य पदार्थ के साथ खाये जाते हैं। (मख़्ज़न)

नव्यमत

डिमक—यह उरो शूल और कास में उपकारी स्वीकार किया जाता है। इसका चूर्ण बंगदेशीय क्षार नामक द्रव्य का एक उपादान है, जो द्रवीभूत नवनीत के साथ प्रसूता नारियों को, प्रसवोत्तर तुरत और इसके उपरान्त कुछ दिन तक आह्निक दी जाती है।

बाँझककोड़ा (वन्ध्या कर्कोटकी)

पर्या०—वन्ध्यकर्कोटकी, देवी, मनोज्ञा, कुमारिका, नागारिः, सर्पदमनी, विषकण्टकिनी, नागदमनी, सर्वभूतप्रमर्दिनी, व्याघ्रपाद (वन्ध्यापुत्रदा), प्रजा, योगीश्वरी, (ध० नि०), वन्ध्या, देवी, वन्ध्यकर्कोटकी, नागारातिः, नागहन्त्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिव्या, पुत्रदात्री, सुकन्दा, श्रीकन्दा, कंदवल्ली, ईश्वरी, सुगन्धा, सर्पदमनी, विषकण्टकिनी, वरा, कुमारी, विषहन्त्री (रा० नि०) विषमाशमनी, निष्फला, नागघातिनी, मज्जादमनी, (के० दे०), वन्ध्याकर्कोटकी, देवी, कान्ता, योगेश्वरी, नागारिः, भक्षदमनी, विषकण्टकिनी, नागारातिः, वन्ध्या, नागहन्त्री, मनोज्ञा, पथ्या, दिवा, पुत्रदा, सकंदा, कंदवल्ली, ईश्वरी, श्रीकंदा, सुगंधा, सर्पदमनी, विषकन्दकिनी, वरा, नक्रदमनी, कंदशालिनी, भूतापहा, सर्वौषधी, विषमोह प्रशमनी, महायोगेश्वरी—सं०।

बाँझ खखसा, बाँझ खेकसा, बाँझ खखसा, बाँझ ककोड़ा (ड़), बनककोड़ा, बाँझ ककोली, बन परवल, कड़ू काकड़ा—हिं०। तिक्काँकरोल, तिक्काँकड़ी, गोल ककड़ा, बाँझ कंकरोहल—बं०। बाँझ कटोली, बाँझ कंटोली, वंझा कंटोली—मरा०। बाँझ कंटोलो, फलवगरना, कंटोला—गु०। वंजेमडु वागलु—कना०। मोमोर्डिका डायोइकामल Momordica Dioicamal, ले०।

बाँझ खाखा	—पं०।
पुलप, घेलुकुलंग	—ना०।
वंजेमड़वागलु	—का०।
वंझा कंटोलो	—बर०।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

नागारिलूता विषजिद्धन्ति श्लेष्मविषद्वयम्।
(ध० नि०)

बाँझ ककोड़ा (नागारि)—लूता (मकड़ी) के विष को दूर करनेवाला, श्लेष्मानाशक और स्थावर-जंगम दोनों प्रकार के विषों को हरण करनेवाला है।

वन्ध्यकर्कोटकी तिक्ता कटूष्णा च कफापहा।
स्थावरादि विषघ्नी च शस्यते सा रसायने॥
(रा० नि० ३ व०)

बाँझ ककोड़ा—कड़वा, चरपरा, गरम, कफनाशक, स्थावरादि विषनाशक और पारेको बाँधने वाला है।

वन्ध्याकर्कोटकी लघ्वी कफनुद् व्रणशोधिनी।
सर्पदर्प हरी तीक्ष्णा विसर्प विषहारिणी॥
(भा०)

बाँझ खेखसा—हलकी, कफनाशक, व्रणशोधक और तीक्ष्ण है तथा साँप के दर्प को दूर करता एवं विसर्प और विष का नाश करता है।

वन्ध्याकर्कोटकी तिक्ता कटूवी चोष्णा लघुः स्मृता। रसायिनी शोधिनी च स्थावरादि विषापहा॥ कफनेत्रा शिरोरोग व्रणवीसर्पकासहा। रक्तदोषं सर्पविषं नाशयेदिति कीर्त्तिता॥

(नि० र०)

बनककोडा—कड़वा, चरपरा, गरम, हलका, रसायन, शोधक, स्थावरादि विषनाशक तथा कफ, नेत्ररोग, शिरो रोग, व्रण, विसर्प, खाँसी, रुधिर-विकार और साँप के विष को दूर करनेवाला है।

गण निघण्टु—के अनुसार यह पाकमें चरपरा, और उष्ण वीर्य है।

केयदेव—के अनुसार इसका कंद विषद्वय (स्थावर-जंगम) और शिरोरोग का नाश करता है।

बाँझ ककोड़ा के वैद्यकीय व्यवहार

वन्ध्याकर्कोटकी कन्दद्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम्। तालकं च मृतं ताम्रं द्विगुञ्जं मधुना लिहेत्। पिबेत्तारोदकं चानु स्थौल्य रोगं विनाशयेत्॥

अर्थात् १ रत्ती मृत ताम्र और १ रत्ती शुद्ध हरताल लेकर बाँझ ककोड़े के रस में तीन दिन मर्दन कर शहद के साथ भक्षण करने और चार जल पान करने से स्थौल्यरोग का नाश होता है। बसव रा० १८ प्र० पृ० २७४।

रसरत्न समुच्चय—के मतानुसार बाँझ ककोड़े के कंद को सुखाकर उसके चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में शहद और शक्कर के साथ सेवन करने से पथरी नष्ट हो जाती है। इसी प्रयोग से जिन लोगों को गर्मी के कारण तालू में लिद्र पड़ गया हो वह भी मिट जाता है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—उष्ण है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह हलका एवं कफ और विष के विकारों को दूर करता है तथा व्रण विस्फोटकादि और क्षत विशेष (मांसख़ोरा) को लाभकारी है। यह कड़ुआ और विषविकारनाशक है तथा समस्त प्रकार के प्रकोपों को शमन करता है। इसकी जड़ जहरबाद फोड़े को बिठाती और गाढ़े सूजन को लाभ पहुँचाती है। यह दंशज विष और कास को दूर करता है। (ता० श०)

वैद्यों के कथनानुसार बाँझ ककोड़ा कड़ुवा चरपरा, रुधिर विकारनाशक एवं विषघ्न है। यह हलका है और कास को लाभ पहुँचाता है। यह-फोड़े फुंसी और बालख़ोरे को लाभकारी है तथा सूजन उतारता, प्राणिज विषों का अगद है और बहुमूत्र (ज़ियाबेतुस) रोग को लाभ पहुँचाता है। इसके कंद का मुरब्बा खाने से पलकों का रोग नाश होता है। साढ़े सात माशे वा इससे किंचित् अधिक ऐसी एक-एक मात्रा दिन में दो बार देवें। आँत्र के कई रोगों में इसके कंद का मुरब्बा लाभ प्रदान करता है। शिरोरोग की यह अत्युत्तम औषध है। खोपरे की गिरी, काली मिर्च, लाल चंदन और अन्य औषधियों के साथ इसका कंद पीसकर प्रलेप करने से सर्व प्रकार का शिरः शूल निवृत्त होता है। छिपकली के मूत से जो सूजन हो जाती है उसे मिटाने के लिये इसकी जड़ का रस सेवनीय है। साँप, बिच्छू और बिल्ली प्रभृति विषधर प्राणियों के काटे हुये स्थान पर इसका कंद पानी में पीसकर प्रलेप करने से तज्जन्य विष शांत होजाता है। इसका एक तोला कंद शहद और चीनी के साथ चटाने से पथरी गल जाती है। विष प्रभाव जन्य मूर्च्छा में रोगी को इसके कंद की छाल मूत्र में भिगोकर काँजी के साथ पीसकर सुँघाने से वह होश में आ जाता है। (ख़० अ०)

तिब्ब मुस्तफ़वी—में उल्लिखित है कि यह हलका, कफ एवं विषनाशक, फोड़ा-फुंसीनिवारक, कफ एवं पित्तविकारनाशक, सूजन को उतारनेवाला और क्षत (क़ुरूह साइयः अर्थात् जो शीदगी सारी) का नाश करनेवाला है। इसका फल ? शीतल और अम्ल होता है और उसका रस हृद्य, क्षुधावर्द्धक और पित्तनाशक है।

इसके कंद को १॥ तोले की मात्रा में पानी के साथ पीस कर पिलाने से वमन होकर हर प्रकार का स्थावर और जंगम विष नष्ट हो जाता है।

ककोर—संज्ञा पुं० [देश० चुनार] बेर की जाति की एक प्रकार की कँटीली झाड़ जिसके फल झड़बेरी के आकार के गोल किन्तु उससे बड़े और गूदारहित होते हैं। इसकी गिरी ग़रीब लोग खाते हैं। फल स्वाद में-कषाय युक्त होते

हैं। गुण—इसकी छाल रक्तावरोधक है रक्तातिसार में इसका क्वाथकर पीने से यह लाभ होता है। कठबेर। काष्ठ बदर।

ककोरन्दा–संज्ञा पुं० [सं० ककुन्दर] कुकरौंधा। कुक्कुरद्रु।

ककोल–संज्ञा पुं० दे० "कंकोल"।

क(का)कट शिंगी–[ता०] काकड़ा सींगी। कर्कटशृंगी।

ककरिक–[मल०] ककड़ी।

ककर तमाकु–[पं०] बिलायती तमाखू। (Nicotiana Rustica, *Linn.*)

ककरिक कायविरै–[ता०] ककड़ी का बीज।

ककरिक-वित्त–[मल०] ककड़ी के बीज।

ककरी–[मल०] ककड़ी।

ककवी–अज्ञात।

ककानन–[म०] अज्ञात।

ककानन-कोड़ी–[ता०] अपराजिता।

ककाय कोल्लि-विरै–[ता०] काकमारी। काकरुज।

ककायि–[कों०] } अमलतास। आरग्वध।
ककायि-मर–[कना०] } सियारजाठी।

ककुन–[सिं०] अखरोट। अक्षोट।

ककुभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बकुल वृक्ष। मौलसिरी का पेड़।

ककेकायि–[कना०] अमलतास। सियार लाठी।

ककोल,ककोलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) काकोली नाम का एक प्रकार का प्रसिद्ध सुगंध द्रव। काँकला (बं०)। दे० "काकोली"। (२) एक प्रकार का सुगंध-द्रव्य। कंकोल। शीतलचीनी। कबाबचीनी। राज० अनुलेपे। रा० नि० व० १२। भा० म०। च० द० यक्ष्म चि०-लवङ्गादौ। दे० "कङ्कोल"। (३) गंधशटी। गंधपलाशी। च० द० वा० व्या० एकादशशतिक प्रसारिणी तैल।

ककखट–वि० [सं० त्रि०] कठिन। कठोर। कड़ा। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खड़िया। खड़िया मिट्टी। खड़ी। अम०। (२) एक पेड़। पाट का वृक्ष।

ककखटपत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
ककखट-पत्रक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } एक प्रकार का पौधा। पाट। सन। नालितपात, पाटगाछ, कोष्ठा (बं०)। (Crcohorus olitorius, *Linn.*)

संस्कृत पर्याय—पट्टः, राजशणः, शाणिः, चिमिः (शब्द मा०)। इसका शाक मधुर, दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला) और गुरुपाकी होता है। राज० शा० व०।

ककखटी–संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] खड़िया। खड़ी। खड़िया मिट्टी। त्रिका० शैल व०।

संस्कृत-पर्य्याय—खटिका, वर्णलेखा, कठिनी, खटी।

ककयुमिस–[अं०] दे० "कुकयुमिस"।

ककरहन–[बम्ब०] महापीलू। बड़ा पीलू। दरख़्ते मिस्वाक। अ० सि० मे०।

कखज–[?] नखज। अलकी।

कखन–[मरा०] पीलू। झाल।

कखनेला–[?] पीलू तैल।

कखवाली–संज्ञा स्त्री०। दे० 'ककराली"।

कखसा–संज्ञा पुं०। दे० "खेखसा"।

कखारू–[उड़ि०] पेठा।

कखुम–[पं०] पहाड़ी चाय।

कखौरी–संज्ञा स्त्री० (१) काँख का फोड़ा। बगल का फोड़ा। कखवाली। (२) दे० "काँख"।

कगली–[कना०] खैर। कत्था।

कगशा–संज्ञा पुं० [?] जंगली अञ्जीर।

कगशी–[कना०] किरम (नैपा०)।

कगहिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] ककहिया। कङ्घी। महासमङ्गा।

कगालः–[?] कड़। कुसुम। बर्रे।

कगित्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ। कैथा। कपित्थ अ० टी०।

कगीरी–[खसि०] बड़ अत्तबड़ (बं०)।

कगेड़ी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो भारतवर्ष में प्रायः सब जगह होता है।

कग्गी–[कना०] सरफोंका। शरपुंखा।

कग्गेर–[ते०] करञ्ज। कंजा।

कग्लीनारा–[म०] अज्ञात।

कग्शा–संज्ञा पुं० [?] जंगली अञ्जीर। काकोदुम्बर।

कघुटी–[नैपा०] सेतबरुआ। अरमिली (नैपा०)।

कं–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० कम्] (१) जल। रा०

नि० व० १४ । (२) मुख । मे० । (३) केश। धर० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । (२) वायु । (३ यम । (४) सूर्य । (५) आत्मा । (६) मोर । मे० । (७) मन । (८) शरीर । (९) काल । (१०) धन । (११) शब्द । अने० को० ।

कङ्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कंका, कंकी (हिं०)] (१) एक प्रकार का आम जो बहुत बड़ा होता है । महाराज चूत । रा० नि० व० १९। (१) चंदन । (३) एक मांसाहारी पक्षी जिसके पंख बाणों में लगाये जाते थे ।सफेद चील। काँक । बगला ।चूटीमार । काँक पाखि, हाड़गेला (बं०) । मे० कङ्किकं । हारा० ।

संस्कृत पर्याय—लोहपृष्ठः (अ०), सन्दंशवदनः, खरः, रणालङ्करणः, क्रूरः, आमिषप्रियः, (रा०), अरिष्टः, कालपृष्ठ, किंसा(शा)रुः, लौहपृष्ठकः (ज), दीर्घपादः, दीर्घपात् (शब्दर०) कमलच्छदः कोलपुच्छः (हे०), महाराजचूतः (रा०), लौहपुच्छः ।

गुण—कंक एवं भासक का मांस वृष्य, वीर्यवर्द्धक और कफनाशक होता है । अत्रि० २२ अ० । (४) बगला ।

कङ्कट, कङ्कटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का खैर का पेड़ । खदिर । कदर । हारा० ।

कङ्कटेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हलदी । हरिद्रा । वै० निघ० ।

कङ्कण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कलाई में पहनने का एक आभूषण । ककना । कड़ा । खड़ुवा । चूड़ा । ककन ।

संस्कृत पर्याय—करभूषणं (अ०). कौन्तकं (शब्दर०), हस्तसूत्रं, मण्डनं, शेखर (वि०)। वै० निघ० ।

कङ्कत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वृक्ष । शेयाकुल, बँइची (बं०) । वै० निघ० २ भ० अतिसा० पथ्ये ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बालों को साफ़ करनेवाली । कंघा । ककवा । कंघी । केशमार्जन । काँकुइ (बं०) । हला० ।

संस्कृत पर्याय—प्रसाधनी (अ०), कङ्कती, कङ्कतं, प्रसाधनं (अ० टी०), केशमार्जनं (ज०) फणिः, फणिका (शब्दर०) ।

गुण—कंघी कांतिजनक, खाज को दूर करनेवाली, बालों को साफ करनेवाली, केश्य (बालों के लिये हितकर), रजोजन्य मलों का निवारण करनेवाली और मूर्द्धा वा शिरोरोग को दूर करनेवाली है । राज० । (२) एक प्रकार का वृक्ष । (३)एक अल्पविष प्राणि विशेष ।

कङ्कतदेही–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] एक जानवर जिसकी आकृति श्लेष्म पिण्ड–जैसी होती है और उस पर कंघे की भाँति रेखायें होती हैं । सिडिप Cydippe (अं०) ।

कङ्कता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बलिका । अतिबला। वाट्यपुष्पी । वृष्या । वृष्यगन्धा । भूरिबला । रा० नि० व० ४ । घण्टा । शीता । शीतपुष्पा । वृष्यगन्धिका । बल्या । विकङ्किता । वाट्यपुष्पिका। धन्व० नि० ।

कङ्कतिका, कङ्कतीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का औज़ार जिससे बाल साफ किया जाता है । कंघी । ककही । चिरुणि, काँकुइं (बं०)। अम० । (२) एक प्रकार का पौधा । अतिबला । कंघी । (३) गुलशकरी । गंगेरन । नागबला । भा० पू० १ भ० गु० व० ।

कङ्कती,-कङ्कतीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंघी । प्रसाधनी ।

कङ्कतोट, कङ्कतोटि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कंकत्रोटी] (१) एक प्रकार की मछली जिसका मुँह बगले के मुँह के समान होता है। कौआ मछली । काँकिला माछ (बं०) । त्रिका० । हारा० । जटा० । (२) खलसा नाम की मछली। खलिश । खलिशा माछ (बं०) । श० र० ।

पर्याय—जलव्याधः (त्रि०), जलसूचिः (ज०), खल्लिश मत्स्य ।

कङ्कद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुवर्ण, । सोना । वै० निघ० ।

कङ्कनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रियंगु । काँक। ककुनी ।

कङ्कपत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंक पक्षी का पर ।

कङ्कपर्वा-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।

कङ्क पक्ष-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंक पक्षी का पर ।

कङ्कपुरीष-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंक नामक पक्षी का पाखाना । कंकबिष्ठा । यह व्रणदारण-फोड़े को फोड़नेवाला है । सु० सू० ३६ अ० ।

कङ्कपृष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मछली ।

कङ्कभोजन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कहू । कोह । अर्जुन वृक्ष ।

कङ्कमुख-संज्ञा पुं० [सं० पुं०; क्ली०] एक प्रकारकी सँड़सी जिससे चिकित्सक किसी के शरीर में चुभे हुये काँटे आदि निकालता है । संदंश । सँड़सी । हे० च० । "शल्यं प्रगृह्योद्धरते च यस्मात् यन्त्रेष्वतः कंकमुखं प्रधानम्" । सु० सू० ७ अ० ।

नोट—एक प्रकार का यन्त्र जिससे अस्थि में प्रविष्ट शल्य वा तीर प्रभृति निकाला जाता है । इस यन्त्र का अग्रभाग कंक पक्षी के मुख जैसा होता है । मोर की आकृति के कील द्वारा ककमुख आवद्ध रहता है । सुश्रुत में अन्यान्य यन्त्रों की अपेक्षा इस यन्त्र का उत्कर्ष वर्णित है । कंकमुख यन्त्र सहज में ही भीतर घुस शल्य ग्रहणपूर्वक निकल आता है और सर्व स्थान पर उपयोगी होने से सकल यन्त्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ समझा जाता है ।

कङ्कर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का तक्र । कञ्जर । छाछ । मठा । हे० च० ।

वि० [सं० त्रि०] कुत्सित । खराब ।

कङ्कराल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिस्ता का पेड़ । वै० निघ० । पेस्ता गाछ (बं०) ।

कङ्करोल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Alangium hexapetalum ढेरा । अंकोल । निकोचक वृक्ष । (२) एक प्रकार की फल लता ककोड़ा । खेखसा । काँकरोल (बं०) ।

कङ्कलोड्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चिञ्चोटकमूल । चेंच की जड़ । अङ्कलोड्य । राज० । चेंचको । चिञ्चोड़मूल (बं०) । यह गुरु, अजीर्णकारी और शीतल होता है ।

कङ्कशालु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिठवन । पृश्निपर्णी श० च० । प्रयोगानुसार इस उद्भिद् द्वारा कंकपक्षी विनष्ट होता है ।

कङ्कशाय-संज्ञा पु० [सं० पुं०] कुत्ता । कुक्कुर । श० मा० ।

कङ्का-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गोशीर्ष नामक चंदन । पद्म गन्ध । उत्पलगन्धिक । यथा—

"गोशीर्षं चन्दनं कृष्णं ताम्रमुत्पलगन्धिकम् कङ्का ।" श० मा० ।

(२) कँगनी ।

कङ्काल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] त्वक् एवं मांसादि रहित तथा स्वस्थान पर अवस्थित देह का अस्थि-समुदाय । यथा—

त्वङ् मांसादिरहितः स्वस्थानस्थितः शरीरास्थिचयः कंकालसंज्ञो भवति ।" (चरक)

त्वङ् मांसरहित समुदित शरीरास्थिसङ्घात ।

(अ० टी० भ०)

पर्या०—करङ्कः । अस्थिपञ्जरः (वै०), शरीरास्थि, कङ्कालः-सं० ।

ठठरी, ढाँचा-हिं० । मज्मूउल् इ.ज़ाम, हैकल अज़्मी, इ.जाम-अ० । स्केलेटन Skeleton-अं० ।

कङ्काल वा अस्थिपंजर देह का सार होता है । त्वचा और मांस आदि के विनष्ट होने पर भी अस्थि का नाश नहीं होता । इसी से कहा गया है—

"अभ्यन्तरं गतैः सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः ।
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥
तस्माच्चिर विनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् ।
अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम्॥
मांसान्यत्र निबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा ।
अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यन्तेपतन्तिवा॥"

(सुश्रुत)

अर्थात् जैसे वृक्ष अभ्यन्तरस्थ सार के सहारे स्थिर रहता है, वैसे ही अस्थिसार के सहारे मनुष्य देह धारण करता है । शरीरस्थ त्वचा, मांस प्रभृति के नष्ट होते भी अस्थि का विनाश नहीं होता । अस्थि समस्त देह का सार है । उसमें शिरा और स्नायु द्वारा मांस बद्ध रहता है । अस्थि के अवलम्बन से ही मांस शीर्ण वा पतित नहीं होता ।

चरक के मत से ठठरी इन छः अंशों में विभक्त है—चार शाखा, पञ्चम मध्याङ्ग और षष्ठ मस्तक। ऊर्ध्व शाखाद्वय को बाहु और अधःशाखा द्वय को सक्थि कहते हैं।

युरोपीय शरीर तत्वविदों ने भी कङ्काल को मुख्यतः तीन अंगों में विभक्त किया है—(१) उत्तमाङ्ग वा मस्तक (Head), (२) मध्याङ्ग वा स्कंध (Trunk) और (३) शाखा (Extremities)।

महर्षि सुश्रुत के मत से अस्थि पाँच प्रकार की होती है—कपाल, रुचक, तरुण, वलय और नलकास्थि। जानु, नितम्ब, अंश, गण्ड, तालु, शङ्ख, एवं मस्तक का अस्थिखंड 'कपाल' कहलाता है। दन्त के अस्थिखंड का नाम 'रुचक' है। नासिका कर्ण, ग्रीवा तथा चक्षुकोष की अस्थि को 'तरुण' कहते हैं। हस्त, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, उदर और वक्षःस्थल की अस्थि 'वलय' है। शेष अन्य सकल अस्थिसमूह नलकसंज्ञक अस्थि कहलाती है। यथा—

"कपाल रुचक तरुण वलय नलक संज्ञानि। तेषां जानु नितम्बांश गण्ड तालुशङ्ख शिरःसु-कपालानि। दंशकास्तुरुचकानि। घ्राण कर्णग्रीवा क्षिकोषेषु तरुणानि। पाणिपाद पार्श्व पृष्ठो दरोरःसु वलयानि। शेषाणि नलकसंज्ञानि।"

(सुश्रुत)

महर्षि सुश्रुत के लेखानुसार वेदज्ञ अस्थिकी संख्या ३०६ मानते हैं। किंतु शल्यतन्त्र के मत में ३०२ ही अस्थियाँ होती हैं। चरक ने अस्थियों की संख्या ३६० लिखी है। पूर्वकालीन यूनानी शारीरतत्वविदों यथा जालीनूस तथा शेख़ुर्रईस के मत से इनकी संख्या २४८ है। पर अर्वाचीन शारीरज्ञों अर्थात् युरोपीय चिकित्सकों के मत से नरकङ्काल में सब मिलाकर २२३ (२४६) अस्थियां पाई जाती हैं। सारांश यह कि कङ्कालगत अस्थियों के संबंध में विभिन्न आचार्यों में काफी मतभेद पाया जाता है।

कङ्कालय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीर। देह। जिस्म।

कङ्काबीज—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोशीर्ष नामक चन्दन का बीज। योगरत्न० उ० ख० केशर पाके।

कङ्किरात—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीलेफूल की कट सरैया। कुरुंटक। हला०।

कङ्कु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कँगनी। काँक। कंगु-तृण। द्विरूपकोषः।

कङ्कुका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कँगनी। काँक।

कङ्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का जंगली हुलहुल।

कङ्कुष्ठ, कङ्कुष्ठक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की पहाड़ी मिट्टी जो भावप्रकाश के अनुसार हिमालय के शिखर पर उत्पन्न होती है। किसी किसी के मत से (र० सा० सं०) यह हिमालय के पाद शिखर में उत्पन्न होनेवाला हरताल जैसा एक पत्थर है। किसी ने लिखा है कि यह तत्काल के उत्पन्न हुये हाथी के बच्चे की ताजी लीद है जो श्याम और पीली प्रभावाली और रेचन होती है। यथा—

'केचिद्वदन्ति कंकुष्ठं सद्यो जातस्य दन्तिनः। वर्च्चश्च श्यावपीताभं रेचनं परिकथ्यते॥ कति चित्तेजिवाहानां नाल कंकुष्ठसंज्ञितम्। वदन्ति श्वेतपीताभं तदतीव विरेचनम्॥"

ख़ज़ाइनुल् अदविया नामक यूनानी चिकित्सा विषयक बृहन्निघण्टु-ग्रंथ में लिखा है कि यह एक भारतीय वृक्ष है जिसमें इक्षुवत् ग्रन्थियाँ होती हैं। इसका फूल स्वर्णाभ और पीतवर्ण का होता है। इसकी शाखाओं और पत्तियों से दूध निकलता है जो स्वाद में तिक्त होता है। पत्तियाँ अर्धांगुली के बराबर होती हैं। इसके मुहीतआज़म नामक पारस्य निघण्टुगत वर्णन के अनुसार जो तज़किरतुल्हिंद नामक ग्रन्थ की प्रतिलिपि मात्र है, यह अनुमानतः कुठ (क़ुस्त) का अन्यतम भेद प्रतीत होता है। उसके संकलयिता के कथनानुसार इसकी कतिपय संस्कृत संज्ञाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मेढ़ासींगी है। (ख़० अ० ५ खं० पृष्ठ ४६१-२)।

तात्पर्य यह कि कंकुष्ठ के विषय में इसी

प्रकार के नाना परस्पर विरोधी मत पाये जाते हैं। अभी तक इसका कोई सर्वमान्य निर्णय नहीं हो पाया है और इसका नाम भी संदिग्ध द्रव्यावली के अंतर्गत सन्निविष्ट है। इसके विषय में इस समय दो प्रमुख मत देखने में आते हैं।

(१) मुरदाशङ्खवादी और (२) उसारहे-रेवन्दवादी। भावप्रकाश, शालिग्राम निघण्टु इत्यादि निघण्टुग्रन्थ एवं बहुशः प्राचीन वैद्य प्रथम मत के अनुयायी हैं और जैपूर के सुप्रसिद्ध वैद्य स्व० स्वामी लक्ष्मीराम जी और बंबई के ख्यातनामा वैद्य जादव जी त्रिकम जी द्वितीय मत के समर्थक हैं। वि० दे० "उसारहे रेवंद"।

पर्य्याय—कंकुष्ठं, कालकुष्ठं, विरङ्गं, रङ्गनायकं (रङ्गदायकं), रेचकं, पुलकं, ह्रासं, शोधनं (कं), कालपालकं (ध० नि०, रा० नि०), कंकुष्ठं, काक-कुष्ठं, विरङ्गं, कोलकाकुलं (भा०)-सं०।

भेद—आयुर्वेद में कंकुष्ठ के इन दो भेदों का उल्लेख पाया जाता है—नालिक और रेणुक। इनमें नालिक रौप्यवर्ण अर्थात् सफेद और रेणुक स्वर्णवर्ण अर्थात् पीला होता है। दोनों में रेणुक ही अधिक गुणकारी समझा जाता है। राजनिघण्टुकार ने ताराभ्रक और हेमाभ्रक संज्ञा द्वारा उक्त कंकुष्ठ द्वय का उल्लेख किया है। भाव-प्रकाशकार ने इन्हें रङ्गकाल और दण्डक नाम से स्मरण किया है और लिखा है—

"पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कंकुष्ठमादिमम्।
श्यामंपीतं लघु त्यक्तसत्वंनेष्टं तथाऽण्डकम्" ॥

(भा० पू० वर्ग प्र० ६)

रसेंद्रचूड़ामणि तथा रसरत्नसमुच्चय में इसके संबन्ध में यह लिखा है—"हिमालय की तलहठी के ऊपर के भाग में कंकुष्ठ पैदा होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक नलिका कार और दूसरा रेणुकाकार। नलिका कंकुष्ठ पीला, भारी और स्निग्ध होता है, यह उत्तम है। रेणुका कंकुष्ठ वज़न में हलका, सत्वरहित और कालापन लिए होता है। यह निकृष्ट जाति का होता है।"

पूर्वोक्त वर्णनानुसार कुछ लोग, तुरत के जन्मे हुए हाथी के बच्चे के मल को जो काले और पीले रंग का होता है, कंकुष्ठ कहते हैं। कुछ लोग घोड़े के बच्चे की लाल को कहते हैं जोकि हलके पीले रंग को और अत्यन्त रेचक होता है। परन्तु ये दोनों ही बातें मिथ्या हैं।

आयुर्वेदप्रकाश में भी यही मत दिया गया है। मूल-सुश्रुत में कंकुष्ठ शब्द केवल एक स्थान पर मिलता है। वि० दे० "सत्यानासी"।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

कङ्कुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्येचोष्णं प्रकीर्तितम्।
गुल्मोदावर्त शूलघ्नं रसरङ्गं व्रणापहम्॥

(ध० नि० चन्दनादि ३ व०)

कंकुष्ठ तिक्त, चरपरा और उष्णवीर्य है तथा गुल्म, उदावर्त एवं शूलनाशक, रसरङ्गक (रस, जन्तु) और व्रणनाशक है।

कटुकं कफवातघ्नं रेचकं व्रणशूलहृत्।

(रा० नि० १३ व०)

कंकुष्ठ चरपरा (मतांतर से कटु एवं उष्ण), कफनाशक, वातनाशक, रेचक और व्रण तथा शूल नाशक है।

कंकुष्ठं रेचनं तिक्तं कटूष्णंवर्णकारकम्।
कृमिशोथोदराध्मान गुल्मानाह कफापहम्॥

(भा० प्र० पू० वर्ग ६)

कंकुष्ठ रेचक, तिक्त, कटु-चरपरा, उष्णवीर्य और वर्णकारक है तथा शोथ, कृमि, उदरआध्मान गुल्म, आनाह और कफ के रोगों का नाश करता है।

कंकुष्ठं पित्तकृद्भेदि विबंधकफ गुल्मनुत्।
भजेदनं विरेकार्थे ग्राहिभिर्यवमात्रया॥
नाशयेदामपूतिं च विरेच्यंक्षणमात्रतः।
सुभक्षितं च ताम्बूलं विरेकं तं विनाशयेत्॥

कंकुष्ठ—पित्तकारक और भेदक है तथा यह विबंध, कफ और गुल्म का नाश करता है। इसे एक जौ की मात्रा में मलावरोध पीड़ित को देने से क्षणमात्र में दस्त होने लगते हैं और दुर्गंध आम दूर होजाती है। (ताम्बूल भक्षण) पान खाने से वे दस्त बन्द होजाते हैं।

रसरत्नसमुच्चय के मतानुसार कंकुष्ठ रस में तीखा, कड़वा, उष्णवीर्य, तीव्ररेचक और व्रण, उदावर्त, शूल, गुल्म, प्लीहा वृद्धि और अर्श का नाश करनेवाला है। एक जौ के बराबर सेवन करने से यह मलावरोध को दूर करता है। इसका विरेचन देने से आमज्वर का शीघ्र नाश होता है। यदि इसके अधिक उपयोग से उपद्रव हो, तो बबूल की जड़ के क्वाथ में जीरा और टंकण क्षार (सुहागा) देने से उपद्रव की शांति होती है।

अन्य मत

यह समस्त त्वग् रोगों, जैसे कुष्ठादि को लाभकारी है और शित्र एवं दद्रु को मिटाता है तथा भूत बाधाओं-अमराज़ शैतानी को दूर करता है। (ख० अ०)

कङ्कूष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आभ्यन्तर देह। शरीर का आभ्यन्तर प्रदेश। देह का भीतरी भाग।

कङ्केर–संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा।

कङ्केरु–संज्ञा पुं०[सं० पुं०](१)एक प्रकार का कौआ। (२) बगला। वक पक्षी। त्रिका०।

कङ्केल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक का पेड़। हला०। रा० नि० व० १०। त्रिका०।

कङ्केलि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक का पेड़।

कङ्केल्ल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बथुआ। वास्तूकशाक। श० मा०।

कङ्केल्लि–संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] अशोक का पेड़। हे० च०।

नोट—अमर ने इस शब्द को स्त्रीलिङ्ग माना है।

कङ्कोल, कङ्कोलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक प्रकार की कबाबचीनी की बेल जिसके फल कबाबचीनी से बड़े और कड़े होते हैं। इसके वृक्ष में एक प्रकार का रालवत् गोंद निकलता है। कङ्कोलकी। कङ्कोलतिक्ता।

(२) एक प्रकार का गोल दाना जो आकृति में कालीमिर्च के सदृश, पर उससे अपेक्षाकृत वृहत्तर एवं श्यामता में उससे न्यूनतर होता है। इसी हेतु इसे 'कंकोल मिर्च' वा 'मिर्च कंकोल' भी कहते हैं। शीतलचीनी और इसमें यह अंतर होता है कि इसका बक्कल शीतलचीनी के बक्कल की अपेक्षा स्थूलतर होता है। कबाबचीनी का छिलका इसकी अपेक्षा पतला होता है। फल भी इसका शीतलचीनी से बड़ा और कड़ा होता है। अस्तु, यह दोनों एक पदार्थ नहीं, जैसा कि बहुशः लेखकों ने लिखा है; प्रत्युत यह एक ही वर्ग के दो पृथक् पौधे के फल हैं। कङ्कोल की टीका में प्रायः सभी ग्रन्थों में इसका शीतलचीनी अर्थ किया गया प्रतीत होता है। अस्तु, भावप्रकाश में भी कंकोल को शीतलचीनी का पर्याय स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार वनौषधिदर्पण और अनुभूत चिकित्सासागर प्रभृति ग्रन्थों में जो उक्त दोनों को समानार्थी माना है, वह भ्रमात्मक है। डिमक ने जो यह लिखा है, कि 'राजनिघंटु' में जिसे लिखे आज लगभग ६०० वर्ष हो रहे हैं, कंकोल नाम से कबाबचीनी का उल्लेख मिलता है, वह भी भ्रम पूर्ण ही है। इनके भ्रमपूर्ण होने का कारण मैंने ऊपर बतला दिया है। अभल, समरतुल् अरअर और तुहफ़मसरीकोही किसी किसीके मत से यही है और दूसरों के मत से हाऊबेर है। कतिपय यूनानी ग्रन्थों में प्रमादवश यह लिखा है कि यह पीपल के बराबर वा पीपलवत् एक दाना है। वस्तुतः यह पीपलवत् लंबा नहीं, वरन् कालीमिर्चवत् गोलाकार एक प्रकारका दाना है। कंकोल के फलों में मँहक होती है। ये दवाके काम में आते हैं और तैल के मसालों में पड़ते हैं। वि० दे० "कबाबचीनी"।

पर्याय—कङ्कोलः, कङ्कोलकं, कृतफलं, कोलकं, कटुकं, फलं, चूर्णं, कंदफलं, द्वीपं मारीचं, माधवोचितं (ध० नि०), विद्वेष्यं, स्थूलमरिचं, कंकोलं, माधवोचितं, कट्फलं, मारीचं, रुद्रसंमितम् (रा० नि०) कंकोलं, कोलकं, कोशफलं (भा०), कक्कोलः (राज०) कोश (ष) फलं, कोलकं, फलं, (अ) कोरकं, (मे०) काकोलं, गन्धव्याकुलं, तैलसाधनं (श०) कटुककोलं (मदनपाल) कटुकफल, द्वेष्यं स्थूलमरिचं, कक्कोलं, काल, मरिचं, कोल, मारिच, मागधोषित, द्वीपसंभव, सुगन्धिफल–सं०। कंकोल कंकोलदाना, कंकोलफल, कंकोल मरिच, कंकोल मिर्च, मिर्च कंकोल–हिं। काँकला–बं।

पिप्पली वर्ग

(*N. O. Piperaceae*)

उत्पत्तिस्थान—भारतवर्ष में हिमालय पर्वत आदि तथा सुमात्रा जावा प्रभृति टापू।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कङ्कोलं कटुतिक्तोष्णं वक्त्रवैरस्यनाशनम्।
मुखजाड्यहरं रुच्यं वातश्लेष्महरं परम्॥

(ध० नि० चन्दनादि–३ व०)

कंकोल चरपरा, कड़ुवा, उष्णवीर्य तथा मुख की विरसता दूर करनेवाला है एवं यह मुख की जड़ता को नष्ट करनेवाला, रुचिकारक और अत्यंत वातकफनाशक है।

कङ्कोलं कटुतिक्तोष्णं वक्त्रजाड्यहरंपरम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं कफवातनिकृन्तनम्॥

(रा० नि० १२ व०)

कंकोल कटु, तिक्त, उष्ण, मुख की जड़ता को नष्ट करनेवाला, अग्निवर्द्धक पाचक, रुचिजनक एवं कफवात विनाशक है।

कङ्कोलं लघु तीक्ष्णोष्णं तिक्तं हृद्यं रुचिप्रदं।
आस्य दौर्गन्ध्य हृद्रोग कफवातामयाऽऽनध्यहृत्॥

(भावप्रकाश पू० १ भ०)

कंकोल लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, तिक्त, (चरपरा) हृद्य, रुचिप्रद, मुखदौर्गन्ध्यहर, हृद्रोगनाशक, कफवातहर एवं अन्धतादि–चक्षुदोषनाशक है।

"कक्कोलः कटुको हृद्यः सुगंधिः कफवातजित्।"

(राज० अनुलेप)

कंकोल कटुक—चरपरा, हृद्य, सुगंधित और कफ एवं वात को जीतनेवाला है।

कंकोलं कटुकं तिक्तमुष्णं दीपनपाचकम्।
रुच्यं सुगन्धि हृद्यं च लघु च कफनाशकम्॥
मुखजाड्यं वातरोगं हृद्रोगं च कृमींस्तथा।
अन्यत्वं मुखदौर्गन्ध्यमामं चैवाग्निमांद्यकम्॥
नाशयेदिति च प्रोक्तमृषिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः।
एतेगुणास्तु सुबृहत्कंकोलस्य समीरिताः॥

कंकोल—चरपरा, कड़वा, गरम, दीपन, पाचन, रुचिकारी, सुगंधि, हृदय को हितकारी, हलका, एवं कफनाशक है, तथा मुख की जड़ता, वात रोग, हृद्रोग, कृमि, अन्धता, मुख की दुर्गन्धता और मंदाग्नि को नाश करता है। बड़े कंकोल के गुण इसीके समान जानना चाहिये।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष। रंग–भूरा। स्वाद—कटुतिक्त। हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को और शरीर को कृश करता है। दर्पघ्न—पीली हड़ वा शीतल पदार्थ। प्रतिनिधि—पीपल तथा काली मिर्च। मात्रा—२-३ रत्ती से १ मा० तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह उष्ण एवं क्षुधाजनक है तथा हृद्रोगनाशक और वातकफ के विकार दूर करता है। ता० श०। ना० मु०। मख़्ज़न मुफ़रिदात में इसे ग्राही–काबिज भी लिखा है।

यह सूजन को उतारनेवाला, आध्मानहर, पाचक, आमाशय बलप्रद और कफरोग नाशक है। यह प्रायः सरदी के रोगों को लाभकारी, अतिसारहर तथा ग्राही भी है और शीतल प्रकृतिवालों के लिये वाजीकरण है। –बु० मु०।

यह भूख बढ़ाता, आहार पाचन करता और आमाशय को बलप्रदान करता है तथा कफ एवं वात व्याधियों को दूर करता, उत्क्लेश वा मिचली का निवारण करता और मूत्र एवं आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता है। यह कफज एवं मिश्र ज्वरों को लाभ पहुँचाता है। हिन्दी की किताब में लिखा है कि कंकोल शक्तिप्रद है। इसका चूर्ण फाँकने से उदराध्मान नष्ट होता है। इसके चूसने से खाँसी का जोर मिटता है। गरम मसाले का यह उत्कृष्ट उपादान है। मिश्री के साथ इसको चूर्ण की फँकी देने से मूत्रावरोध दूर होता है। ख़० अ०।

कङ्कोलकी, कङ्कोलतिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कङ्कोल का पौधा। पश्चिम देश में इसे कड़वी कङ्कोली कहते हैं। वैद्यकनिघंटु में इसे तिक्त, ग्राही, उष्ण, रुचिकारक, मलविबंधकारक, पित्तकारक और अग्निदीपक तथा कफ, प्रमेह, कोढ़ और जंतुओं का नाश करनेवाला लिखा है। वि० दे० "कङ्कोल"।

कङ्कोल पर्ण्यका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्राह्मी। नि० शि०।

कङ्ग, कङ्गक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्लोम। हे० च०।

कङ्गु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] एक प्रकार का कदन्न। कँगनी। ककुनी। प० मु०। रा० नि० व० १६। वा० टी० हे० धान्य व०। राज०। वै० निघ०। भा०। वि० दे० 'कँगनी"।

कङ्गुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रियंगु। ककुनी। काँक। कँगनी।

कङ्गुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कँगनी। कंगु। (२) प्रियंगु। फूलप्रियंगु। रत्ना०।

कङ्गुणिका कङ्गुणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ी मालकँगनी। महाज्योतिष्मती। रा० नि० व० ३। (२) कँगनी। ककुनी। कंगु। रा० नि० व० १६।

कङ्गुणीपत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की प्रसिद्ध घास। पण्यन्धा नामक तृण विशेष। रा० नि० व० ८।

कङ्गुणीपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पण्यन्ध नामक तृण। रा० नि० व० ८। दे० "पण्यन्ध"।

कङ्गुधान्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काँक। कगुनी। कँगनी।

कङ्गुनिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मालकाँगनी। ज्योतिष्मती। नि० शि०।

कङ्गुनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) प्रियंगु। फूलप्रियंगु। (२) कँगनी। कंगुणी धान्य। रा० नि० व० १६। (३) मालकँगनी। ज्योतिष्मती। (४) बड़ी मालकाँगनी। तेजोवती। अग्निदीप्ता। नि० शि०।

संस्कृतपर्याय—ज्योतिष्मती, कटभी, वह्निरुचि, चिणक, ज्योतिका, पारावतपदी, पण्यालता, पीततण्डुला, सुकुमारी और कुकुन्दनी।

गुण, प्रयोग—कंगुनी धातुशोषक, पित्तश्लेष्म नाशक, रूक्ष, वायुवर्द्धक, पुष्टिकारक, गुरु और भग्नसन्धानकारी होती है। राजवल्लभः।

कङ्गुनीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कँगनी। ककुनी। कंगुनी धान्य। चक्र०।

कङ्गुनीपत्रा–संज्ञा स्त्री० [स० स्त्री०] पण्यन्धतृण। पण्यन्ध नामकी एक घास।

कङ्गुल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथ। हस्त। श०च०।

कङ्गू–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कँगनी। कङ्गु धान्य। अ० टी०।

कङ्गूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्त। हाथ।

कच–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बालक। सुगंधबाला। भा० म० १ भ० तन्द्रिक ज्वर-चि०। "मरिच कच पचस्पचाव चारुक्।" रा० नि० व० १८। (२) केश। बाल। अम०। (३) सूखा फोड़ा वा ज़ख्म। पपड़ी। शुष्कव्रण। मे०चद्विक। (४) वत्स। बछड़ा। जटा०। (५) मेघ। बादल। (६) बंध। पट्टी।

[तु० क़च] मेढ़ा।

कचकड़–संज्ञा पुं० [हिं० कच्छ=कछुआ+सं० कांड= हड्डी] (१) कछुवे का खोपड़ा। (२) कछुए वा ह्वेल की हड्डी। दे० "कछुआ"।

नोट—चीनी और जापानी लोग कचकड़ के खिलौने बनाते हैं।

कचकड़ा–संज्ञा पुं० दे० "कचकड़"।

कचकूसाँकी–[?] तरोई।

कचकेला–संज्ञा पुं० [हिं० कठकेला] एक तरह का केला जिसके फल बड़े-बड़े और खाने में रूखे वा फीके होते हैं। इसी कारण इसे कचकेला कहते हैं

कचकोल–संज्ञा पुं० [देश०] कशकोल। कपाल। खोपड़ा।

कचक्कू–संज्ञा पुं०[सं०?]समुद्र का कछुआ। Turtle (Chelonia)

कचग्रह, कचङ्गल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्र। त्रिका०।

कचङ्गलिन्दोर–[मल०] डेंडश। डिंडिश।

कचट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कच्चट नाम का शाक। भा० पू० १ भ० तृण। घास। (२) पत्ता। पत्र। उष्णा०।

कचड़ा–संज्ञा पुं० दे० "कचरा"।

कचदग्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अलाबु। लौआ। लौकी।

कचद्रावी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलवेत। अम्लवेतस। प० मु०।

कचनार—संज्ञा पुं० [सं० काञ्चनारः] मध्यमाकार का एक प्रकार का छोटा पेड़ जो १५-२० फुट

ऊँचा होता है। इसका तना ठिंगना और खड़ा होता है। इसका घेरा ४-५ फुट होता है। इसकी डालियाँ पतली २ और झुकी हुई होती हैं। छाल धूसर वर्ण की एक इंच मोटी किंचित् खुरदरी होती है। इसका अन्तस्तल श्वेत होता है। कूटने पर यह लाल रङ्ग की होती है। इसलिए इसकी छाल का चूर्ण लाल रंग का होता है। स्वाद में यह कुछ कुछ कसैला होता है। कचनार कई तरह का होता है और भारतवर्ष में प्रायः हर जगह मिलता है। इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर दो फाँकों में कटी होती हैं, देखने में ये ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो दो पत्तियाँ पत्रवृंत की ओर से जुड़कर सिरे की ओर पृथक् हो गई हों। कदाचित् इसी कारण आयुर्वेदीय निघण्टु ग्रन्थों में इसे 'युग्म-पत्र' संज्ञा द्वारा अभिहित किया गया है। पत्तों पर बारीक-बारीक नसें उठी होती हैं। पत्ते ३ से ५ इंच तक लम्बे चौड़े होते हैं। यद्यपि इनका अधस्तल स्वच्छ होता है, पर ऊर्ध्व तल सूक्ष्म रोमावृत होजाता है। यह पतझड़-वाला वृक्ष है। माघ में या उसके कुछ समय बाद इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। फागुन से जेठ तक नये पत्र आजाते हैं। यह पेड़ अपनी कली के लिए प्रसिद्ध है। कली हरी और लम्बी होती है और इसकी तरकारी होती और अचार पड़ता है। यह वसन्त-ऋतु में खिलती है। फूलों में भीनी सुगंध रहती है। प्रत्येक फूल में पाँच-पाँच पंखड़ी होती हैं, जिनके नीचे का भाग चीण और सिरे की ओर का चौड़ा होता है। ये पाँचों विषमाकृति की होती हैं। इसमें पुं०केशर की संख्या पाँच होती हैं। उनके मध्य में एक स्त्री-केशर होती है। पर इसके विपरीत निर्गन्ध-पुष्प श्वेतकांचन में केसरों की संख्या १० होजाती है। पीतकाञ्चन में भी इतने ही केसर होते हैं। फूल के रंग के विचार से कचनार की संख्या इस प्रकार है—(१) बैंगनी या गम्भीर गुलाबी रंग का जिसे लाल फूल का कचनार कहते हैं। (२) सफेद फूल-वाला—निर्गन्ध और सुगन्ध पुष्प भेद से पुनः इसके दो भेद हो जाते हैं। इससे भिन्न एक प्रकार का सफेद कचनार और होता है। जिसे 'आपटा' वा 'अश्मन्तक' कहते हैं। (३) पीला कचनार जिसे पीत काञ्चन कहते हैं। कचनार विशेष (Bauhinia tomentosa.) इसका अन्यतम भेद है। इनके अतिरिक्त हरे वा सफेद, पीला और हरा आदि मिलित रंग के फूल वाला कचनार भी देखा गया है। आगे इनमें से प्रत्येक का पृथक् २ वर्णन होगा। इनमें से लाल कचनार फागुन चैत में पुष्पित होता है। सफेद कचनार का वृक्ष लाल कचनार के सर्वथा तुल्य होता है। यह शीत ऋतु में क्वचित् शरद ऋतु में पुष्पित होता है। पीले कचनार का वृहत् वृक्ष प्रायः पर्वतों पर उत्पन्न होता है। अतएव इसका एक नाम 'गिरिज' भी है। इसका पत्र उक्त काञ्चन-द्वय की अपेक्षा वृहत्तर होता है। इसलिए संस्कृत में इसे "महायमलपत्र" कहा गया है। इसका पुष्प भी वृहत्तर होता है। इसी कारण निघण्टु-कार इसे "महापुष्प" कहते हैं। फूलों के झड़जाने पर कचनार में लम्बी लम्बी चिपटी फलियाँ लगती हैं और हर एक फली में ६ से १२ तक बीज हुआ करते हैं। ये बीज फूल आने से दो महीने के बाद पक जाते हैं। फली लंबी और तलवार की आकृति की होती है। इसके पेड़ से एक प्रकार का भूरे रंग का गोंद निकलता है जो पानी में तो फूल जाता है, पर घुलता बहुत कम है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल निकला जाता है।

कचनार की जाति के बहुत पेड़ होते हैं। ऐन्सली मेटीरिया इन्डिका के द्वितीय भाग में लिखते हैं कि तेरह प्रकार के कचनार के पेड़ कलकत्ता के वनस्पत्युद्यान में लगाये गये हैं। प्रायः ये सभी भारतीय वृक्ष हैं। इनमें से एक प्रकार का कचनार कुराल वा कंदला (Bauhinia Retusa, *Ham.*) कहलाता है, जिसका गोंद "सेम का गोंद" वा "सेमलागोंद" के नाम से बिकता है। डोमकके मतसे यह आपटा(B. Racemosa)का गोंद है। यह कतीरेकी तरह का होता है और पानी में घुलता नहीं। यह देहरादून की ओर से आता है और इन्द्रिय जुलाब तथा रज खोलने की दवा माना जाता है। एक प्रकार का कचनार बनराज वा अश्मन्तक (B. Racemosa) कहलाता है जिसकी छाल के रेशों की रस्सी बनती

है। देश (चुनार) में इसे 'कठमहुली' कहते हैं। विशेष 'आपटा' में देखो। मालजन (B. Vahlii, *W. A.*) भी एक प्रकार का लताजातीय कचनार ही है जिसे लताकचनार कहना संगत प्रतीत होता है। इसकी पत्ती और फली कचनार की पत्ती और फलीवत् किन्तु उसकी अपेक्षा बहुत बड़ी होती है। यह इतनी बड़ी होती है कि हरद्वार में इससे पत्तल और खौने का काम लिया जाता है। इनके अतिरिक्त नागपूत (B.anguina), गुण्डागिल्ला (B. Monostachya, *Wall.*) प्रभृति भी कचनार के ही भेद हैं, जिनका यथा-स्थान वर्णन होगा। यहाँ पर आयुर्वेद शास्त्रोक्त रक्त, श्वेत और पीत कांचनका क्रमशः वर्णन किया जायगा।

आयुर्वेद के मत से कोविदार के भेद

पुष्प के वर्ण-भेद से कोविदार वा कचनार तीन प्रकार का होता है। श्वेत पुष्प, रक्त वा ताम्र पुष्प एवं पीत। पुष्प, सुगन्ध और निर्गन्ध पुष्प-भेद से श्वेत कांचन पुनः दो भागों में विभक्त हो जाता है। वैद्यक में पुष्प के श्वेत, रक्त वर्ण-भेद से कोविदार का नाम-भेद स्वीकृत नहीं होता। केवल कोविदार शब्द से ही श्वेत रक्त दोनों प्रकार के कचनार का संबोधन होता है। भावप्रकाश में कांचनार और कोविदार का पृथक् २ वर्णन हुआ है। टीकाकारों ने कांचनार को रक्तकांचन और कोविदार को श्वेतकांचन लिखा है। प्रचलित भावप्रकाश का पाठ विशुद्ध है ऐसा स्वीकार कर लेने पर टीका-कर्त्ताओं की यह उक्ति अंशतः निर्मूल मानी जायगी। यदि श्वेत कांचन को ही कोविदार मानना भावप्रकाशकार को अभिप्रेत होता तो वे 'ताम्र-पुष्प" शब्द कोविदार के पर्याय रूप में कदापि न लिखते। पूर्वाचार्यों ने भी कोविदार शब्द का प्रयोग किसी विशेष वर्ण के पुष्प वाले कचनार के लिये नहीं किया है। सुप्रसिद्ध टीकाकार एवं आचार्य चक्रपाणि लिखते हैं—

"कोविदार युगपत्रः स द्विविधो लोहित सित पुष्प भेदात्।" (सु० सू० टी० ३६ अ०)

टीकाकारगण ने भी पुष्पके वर्ण-भेदके विचारानुसार कोविदार एवं काञ्चनार शब्द का अर्थ नहीं किया है, अपितु उन्होंने इनका काञ्चन वा कचनार के अर्थ में अभिन्नोल्लेख किया है। निघण्टु द्वारा अर्थात् धन्वन्तरीय एवं राजनिघण्टु के "कोविदारः काञ्चनारः कुद्दालः कुण्डली कुली" पाठ में भी कोविदार और काञ्चनार दोनों का पर्याय रूप में अभेदोल्लेख दिखाई देता है। यही क्यों, उक्त निघण्टुद्वय के अवलोकन से तो यहाँ तक ज्ञात होता है कि उनमें कोविदार के अंतर्गत केवल रक्त और श्वेत इन दो ही नहीं, अपितु पीत भी, इन तीन प्रकार के कचनारों का एकत्र उल्लेख पाया जाता है और कोविदार एवं कांचनार, कचनार की एक सामान्य संज्ञा है, ऐसा स्वीकार किया गया प्रतीत होता है। "शोण-पुष्प" शब्द भावप्रकाश में कांचनार का पर्याय स्वरूप पठित हुआ है। शोण का अर्थ कोकनदच्छवि अर्थात् कोकनद वा रक्तोत्पल की तरह सुन्दर रक्त-वर्णवाला है। किन्तु सम्यक् रक्तोत्पल वर्णीय कोविदार का सर्वथा असद्भाव देखने में आता है। अस्तु; यदि शोण शब्द का अर्थ रक्तवर्ण किया जाय, तो ताम्रपुष्प शब्द के साथ अभिन्नार्थ होने के कारण, काँचनार और कोविदार का उक्तभेद लुप्त होजाता है। अतः यदि कोई यह अनुमान करे कि भावमिश्र ने काँचनार शब्द का प्रयोग राजनिघण्टूक्त "पीत-पुष्प", "गिरिज", "महायमल पत्र" वा "कांचन" अर्थात् पीत कचनार के अर्थ में किया है, तो उनका उक्त अनुमान असङ्गत ठहरेगा। चरक के मत से कर्व्वुदार श्वेत कांचन वा सफेद कचनार है (दशेमानि के वमनोपवर्ग की टीका देखें)। स्वरचित ग्रन्थ विशेष में मान्य नगेंद्रनाथ सेन महोदय ने कर्बुदार को सफेद कचनार, और कोविदार को पीत कांचनार लिखा है। परन्तु कोविदार शब्द से किसी भी आयुर्वेदीय निघण्टुकार ने पीत कचनार का अर्थ लिया हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता है। सारांश यह कि इस विषय में इसी प्रकार के परस्पर विरोधी एवं भ्रमात्मक नाना भाँति के भिन्न भिन्न मत प्रायः ग्रन्थों में पाए जाते हैं। उन पर वर्तमान लेख में यथा-स्थान समुचित प्रकाश डाला गया है।

यहाँ पर यह स्मरण रहे कि लाल और सफेदादि

सभी प्रकार के कचनार गुण-धर्म में प्रायः समान होते हैं। इसलिये इनमें से प्रत्येक परस्पर एक दूसरे की जगह व्यवहार किया जा सकता है। परन्तु इन में से लाल कचनार अन्य की अपेक्षा अधिक प्रचुरता के साथ एवं सहज सुलभ होता है। अस्तु, प्राचीन कालसे यह लाल कचनार ही औषध में व्यवहृत होता आ रहा है और आज भी इसी के उपयोग का अधिक प्रचलन है और अन्य कचनारों को तो लोग एक प्रकार से भूल ही चुके हैं। अतः कांचनार या कचनार हिन्दी शब्द से साधारणतया लाल कचनार ही अभिप्रेत होता है और सर्व प्रथम इसी का वर्णन यहाँ किया जायगा।

लाल कचनार या कांचनार

संस्कृत पर्याय—कांचनार, काँचनक, गण्डारि. शोणपुष्पक (भा०), स्वल्पकेस(श)री, रक्तपुष्प, कोविदारः, युग्मपत्र, कुण्डल, रक्तकांचन। हिं०—कचनार, कचनाल, लाल कचनार। पं०—कोलिआर, कुराल, पद्रियान, खैराल, गुरियल, गुरियार, बरियाल, कनियार, कार्दन, खैबाल, कचनाल। बं०—लाल कांचन, रक्तकांचन, रक्तपुष्प, कोविदार, युग्मपत्र, कुण्डल, कांचनफुलेर गाछ। अं०—माउण्टेन एबोनी (Mountain ebony)। ले०—बौहीमिया वेरीगेटा (Bauhimia Vari gata, *Roxb, Linn.*)। ता०, मरा०—सेगापु-मंथरी, शेम्मनदारै। ते०—देवकांचनमु। मल०—चुवन्न मंदरम्। कना०—कोचाने कचनार, केम्पुमंदर, काँचिबालदो। मरा०—कोरल, कांचनु, एतकांचन, कांचन। कों०—कांचन, कंचनगाच्। गु०—कोविदार, चंपाकाटी। कोल०—कुरमङ्गमेची, सिंग्या। संथाल—टिंग्या। नैपा०—टाकी। लेप०—रबा। बम्ब०—कोविदार। उड़ि०—बोराडू।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminoseae.*)

उत्पत्ति-स्थान—हिमालय की तराई में इसके पेड़ प्रचुरता से मिलते हैं, इसके सिवा भारतवर्ष और ब्रह्मा के जङ्गलोंमें लगभग यह हर जगह पाया जाता है। आजकल इसके पेड़ भारतवर्ष के प्रायः हर एक अच्छे उद्यान में मिल जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसकी छाल में एक प्रकार का कषाय सार (Tannic acid or Tannin), ग्ल्यूकोस और एक भूरे रङ्ग का गोंद पाया जाता है।

औषधार्थ व्यवहार—यद्यपि अधिकतया इसकी छाल वा जड़ की छाल ही औषधार्थ व्यवहार में आती है; पर इसके पत्र, पुष्प बीज और गोंद भी परमोपयोगी पदार्थ हैं।

प्रभाव—इसकी छाल धातु-परिवर्तक, बल्य और संकोचक है। जड़—आध्मानहर और फूल—कोष्ठ मृदुकर (Laxative) है।

औषधि-निर्माण—इमलशन, वटिका, कल्क, गण्डूष और क्वाथ (१० में १), मात्रा—½ से १ औंस तक। मूलत्वक्—मात्रा—१० मा० से ४० माशे तक।

आयुर्वेदोक्त योग—कांचनगुटिका, कांचनसूप, कांचनार गुग्गुलुः, गण्डमाला-कण्डन रस इत्यादि इसके अतिरिक्त निम्न प्रयोगों में भी यह व्यवहृत होता है। यथा—

(१) गुलकन्द कचनार—कचनार पुष्प १ भाग, खाँड़ दानेदार २ भाग—दोनों को मिला कर खूब जोरदार हाथों से मलें। इसके बाद उन्हें मरतबान में डालकर दो सप्ताह तक धूप में रख छोड़ें। पुनः काम में लावें।

गुण—उत्कृष्ट मलवद्धतानाशक है तथा यह रक्तशोधक एवं अर्शोघ्न है।

(२) कांचनारादि क्वाथ—कचनारवृक्ष की छाल १ सेर, शाहतरा (पित्तपापड़ा) आधसेर, मुंडी आध सेर, बरना के पेड़ की छाल पावसेर, कुटकी, उसबा आधा-आधा सेर। इन समग्र औषधियों को जौ-कुट करके एक में मिलावें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—प्रातः सायंकाल उक्त काथ्य द्रव्य में से आध छटाँक (२॥ तो०) के लगभग लेकर आध सेर पानी में क्वाथ करें। जब जल चौथाई भाग रह जाय, तब चूल्हे से उतारकर मल कर छानलें। फिर उसमें एक तोला मधु मिलाकर पिला दिया करें।

गुण—रक्त-विकार रोग में परमोपकारी है। कंठमाला के लिये विशेषतया लाभकारी एवं परीक्षित

है। यदि सुबह शाम प्रथम कांचनार गुग्गुल खाकर ऊपर से उक्त काढ़े को पी लिया जाय, तो उक्त रोग अतिशीघ्र नष्ट हो जाय।

(३) मज्बूत हफ्तरोज़ा—निम्बत्वक्, कांचनार वृक्ष त्वक्, इन्द्रायन की जड़, बबुरी (बबूर की फली), छोटी कटाई मय फल व पत्ती, गुड़ पुराना प्रत्येक १०-१० तोले। इनको ३ सेर पानी में क्वाथ करें। पञ्चमांश जल शेष रहने पर छानकर रखलें।

मात्रा तथा सेवन-विधि—एक बोतल उक्त काढ़े की सात मात्रायें बनावें। इसमें से एक मात्रा औषध प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करें। इससे रेचन होने पर प्रत्येक विरेक के उपरान्त अर्क सौंफ वा अर्क मकोय कोष्ण सेवन करें। तीसरे पहर मूँगकी मुलायम खिचड़ी खावें। इसी प्रकार निरन्तर सप्ताह पर्यन्त करें। यदि इससे पेचिश हो जाय, तो अर्क पीना बन्द करदें। आराम होने पर पुनः प्रारम्भ करें। पेचिश होने की दशा में अधोलिखित योग का सेवन करें।

(४) बिहीदाने का लुआब ३ माशे, रेशा खत्मी का लुआब और मधुरिका स्वरस (शीराबादियान) प्रत्येक ५ माशे, रुब्ब-बिही २ तोले मिलाकर ७ माशे समूचा ईसबगोल छिड़क कर पी लिया करें।

गुण-कर्म—यह अखिल वात-रोग, रक्त-विकार, फिरङ्ग और आमवात रोगमें उपकारी है तथा वातज दोषों को शरीर से मलमार्ग द्वारा उत्सर्ग करता है।

सफेद कचनार वा कोविदार

पर्याय—सं —कोविदार, कांचनार, कुद्दाल, कुण्डली, कुली, ताम्रपुष्प, चमरिक, महायमलपत्रक (ध० नि०), कोविदार, कांचनार, कुद्दाल, कनकारक, कान्तपुष्प, कटक, काञ्चार, यमलच्छद पीतपुष्प, सुवर्णार, गिरिज, कांचनारक, युग्मपत्र, महापुष्प, (रा० नि०), कोविदार, मटिक (चमरिक), कुद्दाल, युगपत्रक, कुंडली, ताम्रपुष्प, अश्मन्तक, स्वल्पकेशरी, (भा०) श्वेत काञ्चन (प० मु०) कर्बुदार, कर्बुदारक, (प० मु०; च०) कांचनाल, कर्बूदार, पाकारि (र०) युगपत्र (हे०), कांचनाल, ताम्रपुष्प, कुद्दार, रक्तकांचन, (ज०) चम्प (शब्द मा०), विदल (शा० र०), कांडपुष्प, कांडार, यमच्छद। हिं०—सफेद कचनार। बं०—श्वेत कांचन। लेटिन में—निर्गन्ध श्वेतकोविदार को बौहिनिया अक्युमिनेटा, (Bauhinia acuminata, *Roxb.*) और सुरभिकुसुम कोविदार का बौहिनिया कैण्डिडा (Bauhinia candida, *Roxb.*) कहते हैं।

टिप्पणी—धन्वन्तरि तथा राजनिघण्टु को देखने से ऐसा प्रतिभास होता है कि उन्होंने 'कोविदार' में ही तीनों प्रकार के कचनार के पर्यायों का संग्रह कर दिया है और बिना किसी भेद के तीनों के गुण भी एक ही स्थान में कोविदार के अन्तर्गत लिख दिये हैं। गुण-धर्म की दृष्टि से ऐसा करना संगत भी जान पड़ता है; क्योंकि पुष्प-भेद से इनके गुणों में परस्पर कोई विशेष अन्तर नहीं होता। हमने उक्त निघण्टुद्वय के सभी पर्य्याय यहाँ देकर, उनके पृथक् पृथक् भेदों के पर्य्याय भेदों के अन्तर्गत भी दे दिये हैं। इसके सिवा आयुर्वेदोक्त एवं यूनानी मतानुसार सभी प्रकार के कचनार के गुणधर्म तथा प्रयोग आदि लाल कचनार के अंतर्गत देकर नव्यमतानुसार उनके भेदों के गुणधर्म आदि पृथक् दिये हैं। यहाँ यह भी एक विचारणीय बात है कि सफेद कचनार के जिन दो भेदों का ऊपर उल्लेख हुआ है। उनमें से गन्ध-रहित फूलवाले कचनार के फूल के केसरों की संख्या दस और वही सुरभी-युक्त फूलवाले के केसरोंकी संख्या केवल पाँच होती है। यह उक्त कचनारद्वय का मुख्यभेदक चिह्न है, जिससे उनकी सन्देहरहित पहचान होसकती है। उक्त दो भेदोंके अतिरिक्त सफेद कचनारका एक भेद और है जिसे 'आपटा' कहते हैं। विशेष विवरण के लिए दे० "आपटा"।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेद मतानुसार—

कोविदारः कषायस्तु संग्राही व्रणरोपणः।
गण्डमाला गुदभ्रंशशमनः कुष्ठकेशहा॥
(ध० नि०)

कोविदार—कचनार कसेला, संग्राही, व्रण-रोपण है तथा यह गण्डमाला, गुदभ्रंश (काँच-निकलना) एवं कुष्ठ-रोग को शमन करनेवाला और केशघ्न है ।

कोविदारः कषायः स्यात्सग्राही व्रणरोपणः ।
दीपनः कफवातघ्नो मूत्रकृच्छ्र निबर्हणः ॥
(रा० नि० १० व०)

कोविदार—कचनार, कसेला, ग्राही, व्रणरोपण, दीपन तथा कफ और वातनाशक है ।

काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्मपित्तनुत् ।
कृमि कुष्ठ गुदभ्रंश गण्डमाला व्रणापहः ॥
कोविदारोऽपि तद्वत्स्यात्तयोः पुष्पं लघुस्मृतम् ।
रूक्षं संग्राहि पित्तास्र प्रदर क्षय कासनुत् ॥
(भावप्रकाश)

काञ्चनार—लाल कचनार शीतल, ग्राही, कसेला तथा पित्त एवं कफ नाशक है और यह कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला तथा व्रण को नाश करता है ।

कोविदार—सफेद कचनार भी गुणधर्म में लाल कचनार के समान होता है । इन दोनों प्रकार के कचनार के फूल हलके, रूखे, संग्राही हैं और ये रक्तपित्त, प्रदर, क्षय और खाँसी के रोग नष्ट करते हैं ।

श्वेतस्तु कांचनो ग्राही तुवरो मधुरः स्मृतः ।
रुच्यो रूक्षःश्वासकासपित्तरक्तविकारहा ।
क्षत प्रदरगुत्प्रोक्तो गुणाश्चान्ये तु रक्तवत् ॥
(वै० निघ०)

कर्बुदार—सफेद कचनार, ग्राही, कसेला, मधुर, रुचिकारक और रूखा है तथा यह श्वास, खाँसी, पित्त एवं रक्त-विकार को दूर करनेवाला तथा क्षत और प्रदर-रोग का नाशक है । इसके अन्य गुण रक्त कचनार के समान हैं ।

कांचनारः ग्राही रक्तपित्ते हितश्च (पथ्यश्च)
—राज० ।

कचनार ग्राही और रक्त-पित्त में हितकारी है ।

कोविदारो दीपनः स्यात् कषायो व्रणरोपणः ।
संग्राही सारकः स्वादुः पर्णशाकेषु चोत्तमः ॥
मूत्रकृच्छ्रं त्रिदोषञ्च शोथं दाहं कफं तृषा ।
वातं हरेत् पुष्प गुणा रक्तकाञ्चन पुष्पवत् ॥
(वै० निघ०)

कोविदार—कचनार मधुर, कसेला, दीपन, संग्राही, सारक, व्रणरोपण, और पर्णशाकों में उत्तम है तथा त्रिदोष, कफ, वात, शोथ, दाह और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है । पुष्प-गुणधर्म में रक्तकाञ्चन पुष्पवत् होता है ।

धारकः रुचिकरः रक्तपित्ते पथ्यश्च ।
(राज०)

कोविदार—कचनार धारक, रुचिकारी और रक्तपित्त में पथ्य है ।

कचनार तैल—

गुण में यह बहेड़े के तेल के समान होता है ।

कोविदार के वैद्यकीय व्यवहार—

वाग्भट्ट—

(१) अर्श में कोविदार मूल—अर्श रोगी को मथित दधि के साथ कोविदार मूलत्वक्चूर्ण पान करना चाहिये । यथा—

"कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजःपिबेत् ।"
(चि० ८ अ०)

(२) मेधावर्द्धनार्थ काञ्चन-पत्र—चतुः कुवलय अर्थात् कमल की डण्डी वा मृणाल, जड़, पत्र और केसर इन चारों को तथा कचनार की पत्ती को खूब पीसकर कल्क बना सेवन करने से गाय आदि पशु भी मेधावी हो जाते हैं, फिर मनुष्य का कहना ही क्या । यथा—

सर्पिश्चतुः कुवलयं सहिरण्यपत्रम् ।
मेध्यं गवामपि भवेत किमु मानुषाणाम् ॥
(उ० ३६ अ०)

चक्रदत्त—

गण्डमाला में काञ्चनार-त्वक्—

कचनार की जड़ की छाल तथा सोंठ चावल के धोवन में पीसकर पीने से गंडमाला नष्ट होता है । यथा—

"पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पेयाः काञ्चनार त्वचः शुभाः । विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालाहराः पराः ॥" (गलगण्ड-चि०)

भावप्रकाश—मसूरिका में कोविदार मूलत्वक्—

कचनार की जड़ को छाल के काढ़े में सेना मक्खी की भस्म का प्रक्षेप देकर पीने से अन्तर्लीन मसूरिका बाहर प्रकट हो जाती है। यथा—

"मसूरिकायां काञ्चनारत्वक् काञ्चनारत्वचः। क्वाथस्तार्क्ष्यचूर्णावचूर्णितः।"

(म० ख ४ भ०)

वक्तव्य—

चरक के वमनोपवर्ग में कोविदार का पाठ आया है। "कोविदाराद्दीनां सूलानि" (सू० ३६ अ०) इस सोपुत वाक्य में कोविदार की जड़ वान्तिकर स्वीकार की गई है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष। कोई-कोई शीतलता लिये समशीतोष्ण बतलाते हैं। हानिकर्त्ता—यह गुरु, चिरपाकी, आध्मान जनक और रहीयुल्गिजा है। दर्पघ्न—गुलकन्द, मांस, लवण तथा गरम मसाला। प्रतिनिधि—कतिपय क्रियाओं में सूखा बाकला। प्रधान-कर्म—आंत्रबलप्रद, अतिसार हर और आर्त्तवरुद्धक।

गुण, कर्म, प्रयोग—

लेखक तालीफ शरीफ़ी ने कचनार के अन्तर्गत इसके भावप्रकाशोक्त गुणों का उल्लेख किया है। वे इतना और लिखते है, "एक ग्रन्थ से यह ज्ञात हुआ कि कचनार संज्ञा का प्रयोग काञ्चनार वृक्ष के अर्थ में हुआ है। पर हमारे नगर में उक्त शब्द का उपयोग इसके अपरिस्फुटित पुष्पों एवं वृक्ष के अर्थ में भी होता है। लेखक के मत से यह ग्राही, दीपन-आमाशय बलप्रद, अर्श तथा आर्त्तव के रक्त का रुद्धक और अतिसारनाशक है। वे कहते हैं कि इसकी छाल को क्वथित कर गण्डूष करने से पारद, हिंगुल, भल्लातकी और रसकपूर भक्षण जन्य मुख-पाक आराम होता है।"

कचनार शब्द के अन्तर्गत मख़्ज़नुल् अदविया नामक वृहन्निघंटु-ग्रन्थ के प्रणेता माननीय मुहम्मद हुसेन महोदय लिखते हैं कि इसकी छाल संग्राही, तारल्यजनक (मुलत्तिफ़) और बल्य है। वे कहते हैं कि अतिसार नाशन एवं आंत्रगत कृमि निवारणार्थ इसका प्रयोग किया जाता है तथा यह शोणित एवं दोषों को विकृत होने वा सड़ने-गलने से बचाता है। इसलिये यह कुष्ठ एवं कंठमाला में उपकारी है। कचनार की छाल, अकाकिया और अनार के फूल—इनके काढ़े का गण्डूष करने से कंठक्षत और लालास्राव आराम होता है। इनकी कलियों का काढ़ा कास, रक्तार्श, रक्तमूत्रता और रक्तप्रदर में उपकारी है।

कचनार चिरपाकी, संग्राही तथा ऐसा आहार है जिस के पचने पर अत्यन्त न्यून अंश शरीरका भाग बनता (रहीयुल् गिज़ा) है एवं रूक्ष होता है। तथा यह आमाशय और आँतों को शक्ति प्रदान करता और पेट को गुंग कर देता है। यह अतिसार का निवारण करता, उदरज कृमियों को नष्ट करता और रक्तविकार को दूर करता है। इसके फूल-मुख द्वारा रक्तस्राव होने के रुद्धक हैं और वे अतिरज को बन्द करते, एवं अन्तःस्थ क्षतों एवं गुदक्षत को आराम पहुँचाते हैं। इसकी छाल का चूर्ण शुक्रमेह को लाभकारी है। मुख-पाक और मुख-रोगों में इसकी छाल के काढ़े का गण्डूष करने से उपकार होता है।—म० मु०।

पारस्य निघण्टु-ग्रन्थों में यह उल्लेख है कि यह संग्राही है और रूक्षता उत्पन्न करता है। यह आमाशय तथा आँतों को शक्ति देता, दस्त बन्द करता, पेट के कीड़े एवं केचुओं को निकालता और रक्तदोष का निवारण करता है। यह कंठमाला को लाभकारी है। समभाग सुमाक़ के साथ इसकी छाल का काढ़ाकर पीने से रक्तनिष्ठीवन, हैज़ के खून तथा आंतरिकक्षत एवं गुदाके क्षतों में उपकार होता है। कचनार की छाल को विशेषतः अकाकिया एवं गुलनार (अनार विशेष के फूल)के साथ क्वथित कर गण्डूष करने से पारद, हिंगुल, भल्लातकी एवं रसकपूर भक्षण जनित मुखपाक तथा कंठ एवं मुखरोगों में उपकार होता है। इसकी छालका चूर्ण शुक्रप्रमेह में गुणकारी है। कास (गरम-तर), अतिसार, अर्श, अतिरज, रक्तप्रमेह और पित्तविकार में इसकी कलियों को पकाकर खाने से उपकार

होता है (यह शुक्रसांद्रकर्त्ता भी है)। बु० मु०। ख० अ०।

कचनार से उदरज एवं गुदगत कृमि भी मर जाते हैं। यह गुदभ्रंश का निवारण करता है।

वैद्यों ने इसके फूलों के रंग के विचार से पृथक् पृथक् गुणोल्लेख किये हैं। अस्तु, उनके मत से सड़े हुए फल एवं दूषित जल-वायु जनित ज्वर में जो शिरःशूल होता है उसके निवृत्यर्थ सफेद कचनारके पत्तों का क्वाथ पिलाना चाहिये। "पीले कचनार" की छाल का क्वाथ पिलाने से आंत्रज कृमि नष्ट होते हैं। इसकी सूखी फलियों के चूर्ण की फंकी देने से आँव और दस्त बन्द होते हैं। इसकी जड़ की छाल का काढ़ा पीने से यकृज्जात सूजन उतरती है। इसकी छाल के क्वाथ वा फांट का गण्डूष धारण करने से मुखपाक (मुँह आना) आराम हो जाता है। इसका फल खाने से मूत्र उत्पन्न होता है। इसके बीज सिरका में पीसकर प्रलेप करने से क्षतज कृमि मृतप्राय होते हैं। इसकी सूखी पत्तियों के चूर्ण की फंकी देकर ऊपर से अर्क सौंफ पिलाने से आँव के दस्त रुकते हैं। इसके छोटे फूलों को औटा-छानकर पिलाने से भी आँव के दस्त बन्द होते हैं।

"लाल कचनार" को जड़ का क्वाथ पिलाने से अपाचन दोष (पाचन नैर्बल्य) मिटता है। तीन माशे अजवायन का चूर्ण फँकाकर ऊपर से इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से उदराध्मान दूर होता है। इसके फूलों का गुलकन्द बनाकर वा सूखे फूलों को कूट पीसकर शकर सफेद मिलाकर खाने से कोष्ठमार्दव उत्पन्न हो जाता है अथवा यह समझिये कि मल ढीला हो जाता है। फोड़े को पकाने के लिये तण्डुलोदक के साथ इसकी जड़ पीसकर पुलटिस बनाकर बाँधना चाहिये। इसी भाँति इसकी छाल और फूलों का भी पुलटिस बनाकर बाँधनेसे फोड़ा शीघ्र पक जाता है। इसकी छालका काढ़ा पिलाने से आंत्रज कृमि नष्ट होते हैं। इसकी सूखी फलियों के चूर्ण की फंकी देने से आँव के दस्त मिटते हैं। इसकी कलियाँ शीतल और संग्राही हैं। इनकी तरकारी खिलाने से अतिसार नष्ट होता है। इसकी कलियों के काढ़े से आंत्रज कृमि नष्ट होते हैं। मिश्री और मक्खन में इसकी कलियों का चूर्ण मिलाकर चटानेसे रक्तार्श नष्ट होता है। ठंडा किये हुये इसकी छाल वा फूलों के काढ़े में मधुमिलाकर पीने से बिगड़ा हुआ खून शुद्ध हो जाता है। गंडमाला निवारणार्थ इसकी छाल का काढ़ा पिलाना चाहिये। इसकी छाल के काढ़े से फोड़ा-फुन्सी धोना चाहिये। इसकी लकड़ी के कोयलों का मंजन करने से दन्तशूल मिटता है। इसकी छाल के काढ़े में शुण्ठीचूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलाने से गंडमाला नष्ट होता है।। इसकी छाल के स्वरस में जीरे का चूर्ण वा कपूर मिलाकर पिलाने से गरमी दूर होती है। इसकी छाल के चूर्ण में सोनामक्खी का भस्म बुरककर खिलाने से शरीर के आभ्यन्तर प्रविष्ट मसूरिका बाहर निकल आती है। इसके फूलों का चूर्ण शहद में मिलाकर चटाने से त्वग्राग रोग (सुर्खबादा) दूर होता है। तण्डुलोदक के साथ कचनाल की छाल पीसकर उसमें सौंफ के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलाने से गण्डमाला नष्ट होती है। इसकी छाल औटाकर गण्डूष करने से मसूढ़ों का दर्द दूर होता है। जामुन की छाल, बकुलत्वक् और कांचनार त्वक् इन तीनों छालों को औटाकर गुदप्रक्षालन करने से रक्तार्श आराम होता है। ख० अ०।

इसकी कली और फूल का अचार तथा तरकारी भी खाई जाती है। म० इ०।

नव्यमत—

खोरी—कचनार का मूलत्वक् एवं पुष्पमुकुल रसायन (Alterative) तथा कषाय होता है। मूलत्वक् का क्वाथ कुष्ठ, गलगण्ड, विविधचर्मरोग एवं क्षत में सेव्य है। गण्डमाला जात गलगण्ड वृद्धि अर्थात् गण्डमाला रोग में सोंठ के चूर्ण के साथ कचनार की जड़ की छाल को चावल के धोवन में पीसकर पिये अथवा शल्लकीनिर्यास (Gum-resin of Boswellia serrata) हरीतकी एवं बहुसुगंधि भेषज के साथ सेवन करें। कचनार की जड़, अनार के फूल और अकाकिया—इनका क्वाथ प्रस्तुत कर गलक्षत एवं लालास्राव प्रतिकारार्थ कवल धारण करें।

इसकी कली का काढ़ा प्रचुर-आर्तवस्राव, श्लेष्म-धराकला द्वारा रक्तस्रुति, कास, रक्तार्श और रक्त-मूत्रता रोग में सेवनीय है। (Materia Medica of India-R. N. Khory. Part. ii. p 193.)

वैट—इसके फूल को पीसकर चीनी मिलाकर भक्षण करने से कोष्ठ परिष्कार होता है। इसकी छाल कसेली वल्य और चर्म-विकारमें हितकर है। सूखी कली रक्तातिसार और अर्श में उपकारी है। डिमक के मत से इसकी पत्ती का काढ़ा मलेरिया ज्वरजन्य शिरःपीड़ा को शमन करनेवाली है।

अजीर्ण और आध्मान रोग में इसकी जड़ का काढ़ा सेवन कराया जाता है। व्रणों को परिपाक क्रिया के अभिवर्द्धनार्थ इसकी छाल, फूल और जड़ को तण्डुलोदक में पीसकर व्रणों पर प्रलेप करते हैं।

उ० चं० दत्त—यह गण्डमाला, चर्मरोगों और क्षत में उपकारी है।

डीमक—गण्डमाला में सोंठ के साथ इसकी छाल का आंतरिक प्रयोग होता है।

नादकर्णी तथा नगेन्द्रनाथ सेन—इसकी जड़ का काढ़ा वसा-नाशक है। इसलिये यह स्थूल मनुष्यों के लिये अतीव गुणकारी है।

बम्बई में इसकी पत्ती में तमाखू भर कर पीने की बीड़ी बनाते हैं। इसके रस के पुट देनेसे सुवर्ण भस्म होता है।

कचनार का गोंद अर्श और प्रवाहिका के लिये अतीव गुणकारी है।

कचनार की छाल और खीरे का छिलका-इनका काढ़ा कर गण्डूष करने से जिह्वा का फटना दूर हो जाता है।

यदि नेत्र में लालिमा हो, तो कचनार की ताजी पत्ती पीस कर टिकिया बना उस पर कुछ दिन बाँधने से लाभ होता है।

कचनार की छाल जला कर कोयला कर पीस-कर चूर्ण बना मंजन करे। इससे हिलते दाँत दृढ़ हो जाते हैं और उनसे खून आना सदा के लिये बन्द होजाता है।

पीला कचनार

पर्य्याय—सं०-गिरिज, महापुष्प, महाद्यमल पत्रक, पीतपुष्प (ध० नि०; रा० नि०), कांचन, पीत-कांचन। हिं०-पीला कचनार, कनियार, कांडन, कोलि यार, कुइल्लार, कोइलारी. खैरवाल, सोना। बं०-देवकांचन, कोइराल। ले०-बौहीनिया पर्प्युरिया (Bauhinia Purpurea, *Linn, Roxb.*))। मद०-पेंयाड़े, मण्डरेह्ता। ते०-पेछोड़े, बोडउट चेट्टु। कना०-सरूल, सुराल, काँचीवाल। मरा०-रक्त चन्दन, झमट्टी, रक्त कांचन, देवकांचन। गोंडा०-कोदबाड़ी। संथाल०-सिंग्याड़। लेप०- काचिक। कोल०-बुर्जू। पं०-कोइराल नैपा०-रब्बयरालो।

शिम्बीवर्ग

(*N. O. Leguminosae.*)

उत्पत्ति-स्थान—रवलिया और हिमालय पर्वत की तराई से लंका पर्यन्त।

प्रयोगांश—वल्कल, मूल और पुष्प।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेद मतानुसार—

'पीतस्तु कांचनो' ग्राही दीपनो व्रणरोपणः।
तुवरो मूत्रकृच्छ्रस्य कफवाय्वोश्च नाशनः॥
(वृहन्निघण्टु रत्नाकर; वै० निघ०)

पीला कचनार—ग्राही, कसेला, दीपन तथा व्रण-रोपण है और यह वात एवं कफ और मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करनेवाला है।

नव्यमत—

इसकी छाल वा जड़ तथा फूल को तण्डुलोदक में पीसकर फोड़े-फुन्सियों के परिपाकार्थ उन पर प्रलेप करते हैं। —टी० एल० मुकर्जी।

इसकी संग्राही छाल प्रक्षालनीय घोल है। —उ० चं० दत्त।

अतिसार में इसकी छाल का धारक प्रभाव होता है। —वैटेन

इसकी जड़ आध्मान-हर है, फूल मृदु-रेचन (Laxative) है। —वैट।

पीतकांचन भेद—

पीले कचनार के उपर्युक्त भेद के सिवा इसका एक भेद और है जो मालाबार आदि स्थानों में

होता है। इसका वृक्ष लगभग १२ फुट वा अधिक ऊंचा होता है। इसका तना लगभग ६ इञ्च व्यास का होता है और इसमें बहुसंख्यक शाखायें होती हैं। कचनार के बहुशः अन्य भेदों की अपेक्षा इसकी पत्ती बहुत छोटी, हृदयाकार दो भागों में विभक्त और (Tomentose) होती है और रात्रि में इसके उक्त खण्डद्वय चकवँड़ की पत्ती की तरह परस्पर जुड़ जाते हैं। फूल की कटोरी हरे रंग की और पंखड़ी पीताभ श्वेत घण्टी के आकार की होती है। फली सर्वथा कचनार तुल्य, पर उससे छोटी पतली और चिपटी होती है। इसमें बहुत छोटे छोटे बीज होते हैं।

पर्या०—हि०-सं०-कचनार, कचनाल। ले०-बौहिनिया टोमेंटोसा (Bauhinia Tomentosa, *Linn.*)। अं०-डाउनी माउण्टेन एबानी (Downy mountain ebony.)। ता०, ते०-काट-अत्ति, कांचनी। ते०-अडवीमन्दारमु। कना०-काडअनिसम्मने। कों०-चामल। मरा०-पीवला-कांचन, अपटू। मद०-एसमदुग। गु०-असुन्द्रो। सिंगा०-पेटन। लंका०-मयूल। मल०-चंशेना।

शिम्बी वर्ग—
(*N. O. Leguminosae*)

उत्पत्ति स्थान-सम्पूर्ण भारतवर्ष लंका पर्यन्त। मालाबार इसका मूल उत्पत्ति-स्थान है। लंका में यह साधारणतया होता है।

रासायनिक संघटन-कषायिन (Tannin)।

प्रयोगांश—समग्र पौधा, विशेषतः मूल, त्वक्, पत्र, पुष्पमुकुल (Buds), क्षुद्रपुष्प (Young Flowers), बीज और फल।

प्रभाव—इसका पौधा प्रवाहिकाहर और कृमिघ्न है। फल मूत्रल है। बीज वाजीकर और बल्य है।

औषध-निर्माण—क्वाथ, फांट तथा कल्क।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—
नव्यमतानुसार—

एन्सली—रक्तामाशयिक विकारों में देशी चिकित्सक इसकी सुखाई हुई छोटी छोटी कलियों और अधखिले क्षुद्र फूलों (फाण्ट रूप में चाय की छोटी प्याली भर, दिन में दो बार) का व्यवहार करते हैं। वैसे तो इसकी पत्ती में न किसी प्रकार की गंध प्रतीत होती है और न स्वाद (वा मन्द कषाय); पर जब वह ताजी होती है और उसे कुचला वा पीसा जाता है, तब उसमें से एक प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध आने लगती है और वह अप्रिय नहीं होती। रीडी (Rheede) के अनुसार मलाबार में यकृत्प्रदाह की दशा में इसके मूलत्वक् का काढ़ा व्यवहार किया जाता है।

(Materia Indica-pt. II p. 48)

सर्जन हिल (मानभूमि)—इसकी जड़ का काढ़ा कृमिहर (Vermifuge) रूप से भी व्यवहार में आता है।

(Indian Medicinal plants.)

डाक्टर इमर्सन—मुखपाक (Aphthae) में इसका स्थानीय उपयोग होता है। इसका फल मूत्रल है। संग्राही केवल रूप से इसकी छाल का फांट काम में आता है। विषधर जानवरों (सर्प-वृश्चिकादि) के काटने से हुए क्षतों पर इसके बीजों को सिरका में पीसकर प्रलेप करने से बहुत उपकार होता है।

टी० एन० मुकर्जी—क्षत एवं अर्बुदों पर इसकी छाल पीसकर लगाते हैं। (इं० मे० प्रां०)

नादकर्णी—बल्य एवं वाजीकरण प्रभाव हेतु इसके बीज सेवन किए जा सकते हैं। कंठमाला जनित क्षतों और अर्बुदों पर इसकी छाल को तण्डुलोदक में पीसकर प्रलेप करते हैं। (इं० मे० मे०)

नोट—कचनार द्वारा सोने और चाँदी को अत्युत्तम निरुत्थ श्वेतभस्में प्रस्तुत होती हैं। इसके लिए 'सोना' और 'चाँदी' शब्द देखें।

कचनारी—संज्ञा स्त्री० [कचनार का स्त्री० वा अल्पा० रूप] छोटा कचनार।

कचनाल—संज्ञा पुं० [देश०] (१) कचनार। (२) गुरियल। अरता।

कचप—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तृण। घास। (२) सब्ज़ी। तरकारी। शाक-पत्र।

कचपक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केश पुंज। केश समूह। अम०।

कचपाश—दे० "कचपक्ष"।

कचबो–[गु०] कचक्रू। turtle (chelonia)

कचमाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धूम। धूआँ। हारा०। कोई कोई 'खतमाल' भी कहते हैं।

कचरा–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा] (१) करीर। करील। टेंटी। (२) कच्चा ख़रबूज़ा। (३) फूट का कच्चा फल। ककड़ी। कर्कटी। (४) सेमल का डोडा वा ढोंढ़। (५) उरद वा चने की पीठी। (६) सेवार जो समुद्र में होता है। पत्थर का झाड़। जरस। जर। (७) रूई का बिनौला वा खूद। कपास का बीया। बिनौला।

संज्ञा पुं० [बम्ब०, म०, हिं०] कसेरू। कवरा।

कचरिपुफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाशमी वृक्ष। छोंकर। छिकुर। शाँई गाछ (ब०)। रा० नि० व० ८।

कचरिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] कचरी। पेहँटा।

कचरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा] (१) ककड़ी की जाति की एक बेल जो चौमासे वा ख़रीफ़ की फसल में खेतों में फैलती है। खीरे की तरह इसकी शाखाएँ पतली होती हैं। पत्ते अत्यन्त छोटे, नरम तथा कोमल होते हैं। फूल पीले रंग का होता है। इसमें ४-५ अंगुल तक के छोटे छोटे अंडाकार फल लगते हैं, इसे ही कचरी कहते हैं। कच्ची कचरी हरे रंग की वा मिलित श्वेत हरित अर्थात् चितकबरे रंग की और अत्यंत कड़वी होती है। यहाँ तक कि इसकी डाल आदि भी कड़वी होती है। इसके अतिरिक्त एक मीठी जाति की भी कचरी होती है। फल पकने पर पीले पड़ जाते हैं। इनमें से किसी किसी के ऊपर लम्बाई के रुख़ हरी रेखाएँ भी होती हैं और ये खटमीठे वा ईषदम्ल स्वादयुक्त हो जाते हैं। इसका बीज खीरे की तरह, पर उससे छोटा होता है। बीज का छिलका श्यामता लिए और गिरी पीताभ श्वेत होती है। कच्चे बीज अत्यन्त तिक्र, पर पकने पर किसी भाँति अम्ल हो जाते हैं।

बड़ा-छोटा, लम्बा-गोल और मीठा-कड़वा आदि भेदों से कचरी अनेक प्रकार की होती है। इनमें से छोटी स्वाद में कुछ-कुछ कड़वी होती है। इसेही बंगला में 'बने-गुमुक' कहते हैं। इसका एक सबसे छोटा भेद है, जिसे संस्कृत में शशाण्डुली कहते है। राजनिघण्टूक्र 'गोपालकर्कटी' कचरी की बड़ी जाति की ही संस्कृत संज्ञा है, जिसे बंगभाषा में संभवतः 'गुमुक' कहते हैं। यह चार पाँच अंगुल तक लम्बी और अत्यन्त कडुई होती है। पकने पर यह ईषदम्लस्वादयुक्र होती है और फटती नहीं। इसी को हमारे यहाँ रमपेहँटवा वा रामपेहँटा कहते हैं। अनुभूतचिकित्सा-सागर के मत से इसका सद्योजात फल सेंध और सुखाया हुआ कचरी कहलाता है। कचरी प्रायः छोटी जाति के पेहँटे से बनती है। इसके कच्चे फलों को लोग काट-काट कर सुखाते हैं और भूनकर सोंधाई वा तरकारी बनाते हैं। जयपुर की कचरी खट्टी बहुत होती है और कडुई कम। कचरी वा पका पेहँटा अत्यन्त सुरम्य एवं सुगंधियुक्र होता है। लोग प्रायः सुगंधि हेतु इसे पास रखते हैं। कहते हैं कि कचरी की एक ऐसी किस्म है जिस पर हिरन भी आसक्र हो जाता है।

पर्याय कचरी छोटी—चिर्भटं, धेनुदुग्धं, गोरक्षकर्कटी (ध० नि०), चिर्भिटा, सुचित्रा, चित्रफला, क्षेत्रचिर्भिटा, पाण्डुफला, पथ्या, रोचनफला, चिर्भिटिका, कर्कटी (रा० नि० व० ७), चिर्भिटं, धेनुदुग्धं, गोरक्षकर्कटी (भा०), गोरक्षी, गोदुग्धं, चिर्भिटी, (केयदेव), धेनुदुग्धं (द्रव्य रत्न०), (वै० निघ०), चिर्भटी, चिर्भिटः, गोपालप(पु)त्रिका, कर्कचिर्भिटा–(सं०)। पेहँटा, पेहँटुल, गुरम्ही, सेंधिया, सेंध, सेंधा, कचरी, कचरिया, कचेलिया, गुरुभीहुँ, भकुर, भुकुर, गोरख ककरी–हिं०। बन गोमुक, बन गुमुक–बं०। शम्माम, दर्दाब–अ०। दस्तम्बूयः, दस्तम्बू–फ़ा०। क्युक्युमिस डुडैम Cucumis Dudaim, *Linn.*, क्युक्युमिस मैडरासपटामस Cucumis Madraspatamus,–ले०। ककुंबर मैडरास Cucumber Madras –अं०। बुडरंगपण्डु–ते०। चिभडां–गु०। चिबुड, चिभूड, बेलसेंधाकं, अरमेके–मरा०। कचरी, कचड़ी, चिभिड़, चिबिड–पं०।

(२) कचरी छोटी (शशाण्डुली)—शंशाण्डुलि, शशाण्डुली, बहुफला, तण्डुली,

क्षेत्रसम्भवा, क्षुद्राम्ला, लोमशफला, धूम्रवृत्तफला (रा नि० व० ७)–सं०।

(३) कचरी बड़ी वा छोटी ककड़ी, फूट की छोटी किस्म है (गोपालकर्कटी)—गोपालकर्कटी, वन्या, गोपकर्कटिका, क्षुद्रवारुः, क्षुद्रफला, गोपाली, क्षुद्रचिर्भटा (रा० नि० व० ७), गोपालककटिका,–सं० । गोपालककड़ी, गोपाल काँकड़ी, जंगली ककड़ी, गोरुभा–हिं०। कुन्दुरुकी, केहुडा–बं ।

(४) मृगेर्वारु—मृगाक्षी, श्वेतपुष्पा, मृगेर्व्वारु, मृगादनी, चित्रवल्ली, बहुफला, कपिलाक्षी, मृगेक्षणा, चित्रा, चित्रफला, पथ्या, विचित्रा, मृग चिर्भिटा, मरुजा, कुम्भसी, देवी (कट्फला, लघुचिर्भिटा)–सं०। सेंध, फूट, गोरखककडी–हिं०। फुटी–बं०।

नोट—दस्तम्बूया फ़ारसी शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में यूनानी ग्रन्थकारों में परस्पर मतभेद है। बहुमत तो इसे कचरी मानने के पक्ष में है। कहते हैं कि यह फूट की छोटी किस्म है जो अत्यंत सुगन्धित होती है और वर्षाऋतु में उत्पन्न होती है। इससे स्पष्ट है कि यह कचरी का नाम है। अधिकांश लेखकों ने इसे कचरी के प्रकरण में ही स्थान भी दिया है। तथापि अन्य लोगों ने इसके विरुद्ध यह लिखा है कि यह एक प्रकार का विजौरे की जाति का छोटा सा नीबू है, जिसमें सुगन्धि होती है। अस्तु, उक्त महानुभावों ने इसका कचरी से पृथक् वर्णन किया है। क़ानून नामक आरब्य वैद्यकोष ग्रन्थ के कतिपय हाशिया लेखकों ने इसे हिंदी फूट लिखा है। किसी-किसी ने मलून वा मलयून अर्थात् खरबूजा विशेष (खुरप्ज़ा गर्मक) माना है। उक्त दोनों ही भ्रम में हैं। मफ़्ज़नुल जवाहिर नामक आरब्य अभिधान ग्रन्थ के प्रणेता मान्य जीलानी ने दस्तम्बूया में लिखा है कि यह एक छोटी क़िस्म का सुगन्धित ख़रबूज़ा वा वह योग है जिसे सूँघने के लिए हाथ में रखते हैं। साथ ही वे फ़ारसी का यह शेर भी उद्धृत करते हैं—

"यार दस्तम्बू बदस्तमदाद व दस्तम बू गिरफ़्त।
वह चे दस्तम्बू कि दस्तम बूये दस्ते ओ गिरफ़्त॥"

निष्कर्ष यह कि यह कचरी और बिजौरे वा तुरञ्ज की जाति का एक प्रकार का छोटा सा और सुगन्धित नीबू, इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। दे० "दस्तम्बूया"।

तृवृत् या त्रपुष वर्ग

(*N. O. Convolvulaceae.*)

उत्पत्ति-स्थान–सम्पूर्ण भारतवर्ष विशेषतः पञ्जाब, संयुक्तप्रांत और जयपुर प्रभृति।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

चिर्भिट—

चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्त कफापहम्।

(ध० नि० १ व०)

कचरी–मीठी, रूखी, भारी और कफ तथा पित्त नाशक है।

बाल्ये तिक्ता चिर्भिटा विंचिदम्ला गौल्योपेता दीपनी सा च पाके। शुष्का रूक्षा श्लेष्म वातारुचिघ्नी जाड्यघ्नी सा रोचनी दीपनीच॥

(रा० नि० ७ व०)

कच्ची कचरी—कडुई किंचिद् अम्ल, गौल्य–और पाक में दीपन हैं। सूखी कचरी–रूखी, कफनाशक, वातनाशक, अरुचिनिवारक, जड़ता नाशक, रुचिकारी और दीपन है।

चिर्भिटं मधुरं रूक्षं गुरु पित्त कफापहम्।
अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि पक्वन्तूष्णञ्च पित्तलम्॥

(भा० पू० १ भ० आम्रव०)

कचरिया—मीठी, रूखी, भारी, पित्त एवं कफ को नष्ट करती है और गरम नहीं है तथा ग्राही और विष्टंभी है। पकी कचरी (सेंध कचरिया) गरम और पित्तकारक है।

पुष्पञ्च चिर्भिटञ्चैव(स्यैव) दोषत्रयकरं स्मृतम्।
अपक्वं जीर्णकफकृत् पक्वं किञ्चिद्विशिष्यते॥

(अत्रि० १६ अ०। हा० सं०)

कचरिया का फूल—त्रिदोषकारक है। कच्चा अजीर्ण और कफ करता है और पका उससे किंचिद् विशेष होता है।

भेदिनी कृमिकण्डुघ्नी ज्वरहा 'गणनामके'।

(नि० शि०)

यह भेदक, कृमिनाशक, कण्डू (खुजली) और ज्वरनाशक है।

रूक्षा गुरुः शीतला च ग्राही विष्टंभकारिणी।
वातप्रकोपना चैव कफ पित्त विनाशिनी।
अभिष्यन्दी तथा 'केये' पक्वमुष्णं तु पित्तलं॥
(नि० शि०)

यह रूखी, भारी, शीतल, ग्राही, विष्टंभकारक, कफपित्तनाशक, वात को प्रकुपित करनेवाली और अभिष्यन्दी है। पकी कचरी—गरम और पित्तकारक है।

चिर्भटः शीतलो ग्राही गुरुश्च मधुरः स्मृतः।
मल स्तम्भकरः पित्तमूत्रकृच्छ्राश्मरीहरः॥
दाहं प्रमेहं वातं च शोषं चैव विनाशयेत्।
तत्कोमल फल वातकोपनं कफपित्तनुत्॥
तत्पक्वं पित्तलं चोष्णं मुनिभिः परिकीर्तितम्।

कचरिया—शीतल, ग्राही, भारी, मधुर मलस्तम्भकारक तथा पित्त, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, दाह, प्रमेह, वात और शोष का नाश करती है। कच्ची वा कोमल कचरी—वात को कुपित करनेवाली और कफपित्त नाशक है। पकी कचरिया—पित्तकारक और गरम है।

समस्त चिर्भटं वातकफकृत्स्वादु शीतलम्।

सर्व प्रकार की कचरिया—वातकफकारक, स्वादिष्ट और शीतल है।

गोपाल कर्कटी—

गोपालकर्कटी शीता मधुरा पित्तनाशनी।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेह दाहशोष निवर्तनी॥
(रा० नि० ३ व०)

गोपाल ककड़ी—शीतल, मधुर, पित्तनाशक तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, दाह और शोष नाश करनेवाली है।

शशाण्डुली (कचरीभेद वा तिक्त कर्कटी)

शशाण्डुली तिक्त कटुश्च कोमला कट्वम्ल युक्ता जरठा कफावहा। पाकेतु साम्ला मधुरा विदाहकृत्कफ(टु)श्च (फाच) शुष्का रुचि कृच्च दीपनी॥ (रा० नि० मूलकादि ७ व०)

कड़वी ककड़ी—कड़ुई, चरपरी नरम, कड़ुआहट और खट्टापन लिये, चिरपाकी-जरठा और कफ को नष्ट करनेवाली है। पाक में यह अम्लता लिये मधुर-खटमीठी, विदाहकारिणी, शुष्क, रुचिकारी और दीपन है।

मृगाक्षी—

मृगाक्षी कटुका तिक्ता पाकेम्ला वातनाशिनी।
पित्तकृत्पीनसहरा दीपनी रुचिकृत्परा॥
(रा० नि०)

सेंध—चरपरी, कड़वी, पचने में खट्टी, वातनाशक, पित्तनाशक, पीनस रोग को दूर करनेवाली, दीपन और रुचिकारी है।

तिक्तं सुतीव्रं मधुरं च साम्लं वातापहं पित्त विनाशनञ्च। श्लेष्माकरं रोचन पाचनं च कोठी वटं चाग्निकरं नराणाम्॥

सेंध—कड़वी, तीव्र, मधुर, खट्टी, वातविनाशक पित्तनाशक, कफकारक, रोचन, पाचक और मनुष्यों की अग्नि को दीपन करती है।

चिर्भिट वा कचरी के वैद्यकीय व्यवहार—

चरक—अतिसार में इसका शाक उपयोगी है। यथा—

"शाल्याःकर्कारुकाणां वा जीवन्त्याश्चिर्भटस्यच"
(चि० १९ अ०)

योग-तरङ्गिणी—कचरी की जड़ को बासी—पर्य्युषित जल में पीसकर तीन रात तक बराबर पीने से हठात् पथरी निःसरित हो जाती है। यथा—

"गोपाल कर्कटी मूलं पिष्टं पर्य्युषितांभसा।
पीयमानं त्रिरात्रेण पातयेच्चाश्मरीं हठात्॥"
इति राजमार्तण्डात्।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष।

हानिकर्त्ता—शिरःशूल उत्पन्न करती है और उष्णप्रकृतिवालों को हानिप्रद है। दर्पघ्न—धनियाँ और दही आदि। प्रतिनिधि—अंजीर (मतांतर से एरण्डखरबूजा और कच्चा अंजीर)। मात्रा—४॥ माशे तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—कचरी मधुर, उष्ण, लघु, कोठे को मुलायम करनेवाली-मुलय्यिन, क्षुद्बोधकारक और पित्तकारक है। यह तिक्त एवं तीक्ष्ण होती है और लेखक के निकट उष्ण है। इसे काट-काटकर दो-दो टुकड़े कर सुखा लेते हैं।

इसके बाद उसे तेल में भूनकर नमक डालकर खाते हैं। पकते समय इसे गोश्त में डालने से यह मांस को बहुत शीघ्र गला देती है। आमाशय को शक्ति देनेवाले दीपन-पाचन चूर्णों में इसे प्रायः मिलाते हैं। यह पाचन-शक्ति को अत्यन्त तीव्र एवं प्रशस्त कर देती है। पुनः वे उसी पुस्तक के फूटके प्रकरण में लिखते हैं कि यह दस्त-म्बूया का हिंदी नाम है और यह गुणधर्म में कच्चे खरबूजे के समीपतर है। लेखक के मत से क्योंकि इसमें सुगन्धि होती है। अस्तु; यह मस्तिष्क तथा हृदय को शक्तिप्रद है। यह आशु-मलावष्टंभकर होती है और दुर्गन्धित ज्वर(हुम्मा अफिनः) पैदा करती है। इसे बारीक कतरकर फालूदे की तरह शर्बत गुलाब वा चीनी के साथ खाते हैं। यह दिल और दिमाग़ की शक्ति बढ़ाती है। ता० श०।

इसकी मँहक मस्तिष्क को शक्तिप्रद तथा अवरोधोद्घाटनी है। पकी वा कच्ची कचरी मूत्रल है। इसके कुछ दिन सेवन करने से पथरी टूट-फूटकर निकल जाती है और यह गोश्त को गलानेवाली है। ना० मु०।

कचरी—वाजिकर और मलावरोधकारिणी है और अपनी ऊष्मा एवं तारल्य व मृदुत के कारण दोषों को संचालित कर स्थानान्तरित करती वा उनके उत्सर्ग की जगह खींच लाती है अर्थात् ज़ाजिब है। इसका छिलका दीर्घपाकी है। यह भोजन में रुचि उत्पन्न करती और आहार को पचाती है। यह कफ वात और काठिन्य का नाश करती है। इसे बीचमें से चीरकर और सुखाकर घी में भूनकर नमक छिड़ककर खाते हैं। यह खानेमें अत्यन्त रुचिकारी होती है। कचरी ताजी भी खाई जाती है। यह गोश्त गलाने के लिए उसमें डाली जाती है। इससे उसमें सुगन्धि आजाती है और वह पाचनकर्त्ता हो जाता है। दाल प्रभृति में प्रायः पाचनार्थ और वायु को नष्ट करने के लिए इसे डालते हैं इसकी धूनी अर्श के लिए असीम गुणकारी होती है। वायुजन्य उदरशूल में इसका चूर्ण उष्ण जल के साथ परीक्षित है। इसका बीज भी वायुनाशक है। यह भूख बढ़ाता है तथा वाजिकारक है एवं कोष्ठावयवों—अन्त्र को शक्ति प्रदान करता है। यह अर्श, अर्द्धाङ्ग, पक्षाघात और अर्दित आदि वायुरोग तथा कफ के रोगों को आराम करता है। यह वाह्य रतूबतों को लाभकारी है। समूचे फल के समग्र गुणधर्म एक समान हैं। यहाँतक कि कचरी के बीज की पृथक् गणना नहीं होती। ख़० अ०।

कचरी कोष्ठावयवों को शक्ति प्रदान करती है और नाड़ियों—पुट्ठों में जो काठिन्य आजाता है, उसे दूर करती है। यह अर्धाङ्ग और अर्दित रोग को और प्रायः कफजन्य व्याधियों तथा अर्श को लाभ पहुँचाती है। यह वातनाशक है और वाह्य रतूबतों का अभिशोषण करती है। यह मलबद्धताकारिणी और वाजिकारिणी भी है। म० मु०। ब० मु०।

इसका धूपन अर्श में उपकारी है। यह आहार पाचनकर्त्ता तथा वातजन्य उदरशूलहर है। (पकते हुए) गोश्त में डालने से यह उसे शीघ्र गला देती है। ब० मु०।

पच्छिम में सोंठ और पानी में मिलाकर इसकी चटनी बनाते हैं।

लोग प्रायः इसे सुगंध के लिए हाथ में रखते हैं और बहुत कम चखते हैं, हिं० वि० को०।

(२) कचरी वा कच्चे पेहँटे के सुखाये हुये टुकड़े। (३) सूखी कचरी की तरकारी। (४) काटकर सुखाए हुए फल फूल आदि जो तरकारी के लिए रक्खे जाते हैं। (५) छिलकेदार दाल। (६) रूई का बिनौला वा खूद।

संज्ञा स्त्री० [?] कपूर कचरी।

कचलू-संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़ जो जमुना के पूर्व में हिमालय पर्वत पर ५००० से ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका वृक्ष प्रियदर्शन होता है। इसकी पत्तियाँ शिशिर में झड़ जाती हैं और बसंत के पहले निकल आती हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं। भारतवर्ष में इसके चौदह भेद पाये जाते हैं। इनके पत्र में भेद होता है।

कचलोन-संज्ञा पुं० [हिं० कच=काँच+लोन=लवण] एक प्रकार का लवण जो काँच की भट्ठियों में जमे

हुये क्षार से बनता है। यह पानी में जल्दी नहीं घुलता और पाचक होता है। कचियानोन। काँच लवण। नमक शीशा (फ़ा०)।

गुण—यह प्रकृति में उष्ण है और क्षुधाजनक, रक्तविकारवर्द्धक एवं पित्तप्रकोपक है। ता० श०।

कचलोरा–संज्ञा पुं०[देश०] एक शिंबीवर्गीय पौधा जो गंगा नदी से पूरबकी ओर हिमालय से बाहर और दक्षिण भारत के जंगलों में होता है। (Pithecolobium Bigaminum, *Benth.*) दर्नापन्थी–(बर०)।

उपयोग—इसके पत्तों का काढ़ा कुष्ठ रोग की दवा है और उत्तेजक रूप से बाल बढ़ाने के लिये इसका उपयोग करते हैं। ऐट्किन्सन। इं० मे० प्लां०।

बरमा में इसके बीज मधुमेह रोग को मिटाने के लिए काम में आते हैं।

कचलोहा–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोहा] कच्चा लोहा।

कचलोही–संज्ञा स्त्री० दे० "कचलोहा"।

कचलोहू–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+लोहू] वह पनछा वा पानी जो खुले घाव से थोड़ा-थोड़ा बहता है। रक्त रस।

कचवस्सल–संज्ञा पुं० [पं०] वन पलाण्डु। जंगली प्याज। काँदा।

कचहस्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केश समूह। अम०। बालों की लट।

कचा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हथिनी। हस्तिनी। मे० चद्विक। (२) संधिच्युति। जोड़ का छूटना। (३) एक प्रकार की घास। (४) छड़ी।

कचाकु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विलेशय। (२) सर्प। मे० कत्रिक।

वि० [सं० त्रि०] कुटिल।

कचाटुर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक पक्षी। संस्कृत पर्य्याय—क्षितिकरठः, दात्यूहः, कोकमद्र। दात्यूह। डहुक पक्षी। चातक। त्रिका०। (२) बनमुरगी जो पानी वा दलदल के किनारे की घासों में घूमा करती है।

कचामोद–संज्ञा पुं०[सं०क्ली०](१)वाला। सुगंधबाला। नेत्रबाला। ह्रीवेर। रा०नि०व०१०। (२) बालों में लगाने की एक सुगंधित चीज़।

कचायँध–संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा+गंध] कच्चेपन की महक। कचाई की गंध।

कचालू–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+आलू] (१) एक प्रकार की अरुई। बंडा। घुइयाँ। (२) एक प्रकार की चाट।

कचावट–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+आवट (प्रत्य०)] एक प्रकार की खटाई जिसे कच्चे आम के पत्ते को अमावट की तरह जमाकर बनाते।

कचिका–[ते०] केमुक (बम्ब०)। कुष्ठ (बं०)।

कचिटामर्थ काई–[ता०] वेलाम्बू (ते०)। बिलिंबी।

कचिपडेल–[ते०] कोथ गंधल। रंगन (बं०)। Ixora parvi flora, *Vahl.*) Torch tree.

कचिया नमक–संज्ञा पुं० [हिं० काँच+नमक] कचलोन। काँच लवण।

कचिया नान–संज्ञा पुं० दे० "कचिया नमक"।

कचिया मछली–संज्ञा स्त्री० [कचिया+मछली] मारमाही। बाम मछली। दे० "बाम"।

कचिरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कचुजातीय एक क्षुप जो बङ्गदेश और चट्टग्राम में उत्पन्न होता है और प्रायः पुष्करिणी आदि के किनारे दिखाई पड़ता है। पत्रवृंत प्रकाशित रहता है। पत्र तलदेश के प्रायः मध्यभाग में वृन्त से मिल जाते हैं। पत्रांश चारों ओर कोणविशिष्ट होता है। कचुके फूल की तरह यह भी त्रिजातीय है। फूल का डंठल ऊपरी भाग पर क्रमशः मोटा पड़ता जाता है। फूल का बहिरावरण डंठल की तरह समान रहता है। इसमें दो-तीन बीज उत्पन्न होते हैं। –हिं० वि० को०।

कची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक बीज। कुचायिबीज। रस० र० बाल-चि०।

[तु०] बकरी।

कचीमूला–संज्ञा स्त्री० [हिं० कच्चा+सं० मूलक] कच्ची मूली। कोमल मूली। बालमूलक।

कचीर–संज्ञा पुं० [?] कचूर।

कचीली–[क०] जंभीरी नीबू।

कचु–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) इस नाम का एक पौधा जिसकी जड़ में कंद होता है। कचु गाछ–(बं०)। (२) कच्ची। अरुई। घुइयाँ। (३) मानकंद। मान कचु (बं०)। कास-आलू (मरा०)। माणक (सं०)। (४) कचूर। (५) हल्दी।

कचुगुन्दवी–[बं०, हिं०] (Hamalomena aromatica.)

कचुबंग–[मल०] धतूर।

कचुरा–संज्ञा पु० [?] कचूर।

कचुरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] साँप का केचुल। कंचुकी।

कचुरीकिज़्ड्ड–[मल०] कचूर। कचूर।

कचुरो–[गु०] कचूर।

कचुल कलंग–[म०] कचूर।

कचुविलायती–संज्ञा स्त्री० [द०] चंद्रमल्लिका।

कचुसाक–संज्ञा पुं० [कचु+साक] कचु। कच्ची। Arum Colocasia.

कचू–संज्ञा पुं० [हिं०, बं०] एक प्रकार की घुइयाँ। Colocasia Antiquorum, *Schott.*

कचूकत्तार–संज्ञा पुं० [सं०] कंघी।

कचूधारा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अम्बाड़े का पत्ता।

कचूमन–[शीराज़ी] काकनज।

कचूमर—संज्ञा पुं०[देश०]जंगली गूजर। दे०"कचूमर"।

कचूर–संज्ञा पुं० [सं० कचूरः] हल्दी की जाति का एक पौधा जो ऊपर से देखने में बिलकुल हल्दी की तरह का होता है, पर हल्दी की जड़ में और इसकी जड़ वा गाँठ में भेद होता है। कचूर की जड़ वा गाँठ सफ़ेद होती है और उसमें कपूर की सी कड़ी महँक होती है। इसको ज़मीन से खोदकर जल में पकाकर सुखा लेते हैं। यह सोंठ के बराबर छोटी गाँठ होती है, जो सुगंधित और तिक्र एवं तीक्ष्ण आस्वादयुक्र होती है। इसमें जो मधुर आस्वादयुक्र और अल्पगंधि होताहै,वह असली कचूर नहीं है। कचूर का पौधा सारे भारतवर्ष में लगाया जाता है और पूर्वीय हिमालय की तराई में आपसे आप होता है। नरकचूर (Curcuma Cœsia, *Roxb.*) इसका एक बड़ा भेद है, जिसे संस्कृत में "शटी" वा 'पृथुपलाशिका' कहते हैं। वि० दे० "नरकचूर"।

पर्य्या०—कचूरं, कर्चूर; गन्धमूलः, द्राविड़ः, कार्श्य, वेधमुख्यः, दुर्लभः, सही, (ध० नि०), कचूरः, द्राविड़ः, कार्शः, दुर्लभः, गन्धमूलकः, वेधमुख्यः, गन्धसारः, जटिलः (रा० नि०) कचूरः, वेधमुख्यः, (वैद्यमुख्यं) द्राविड़ः, कल्पकः, शठी, (भा०), कचोरः, स्थूलकन्दः, सटी, गन्धः (द्रव्य०), शटी (मद०), कारुपकः, वेधमुख्यकः (अ० को०), दुर्लभः (गण०), कचुरः, कचुरकः, जटाल, कार्श्य–सं०। कचूर–हिं०, द०। कोचूर, शोढ़ी, शटी, सूठ–बं०। ज़रंबाद, उरूक़ुल् काफ़ूर, इक़्लुल् काफ़ूर–अ०। कज़्ज़ूर ज़ूरंबाद,ज़ुरंबाद, ज़रंबाद–फ़ा०। कर्कुमा ज़ेडोएरिया Curcuma zedoaria, *Rosc.*, कर्कुमा ज़ेरम्बेट Curcuma zerumbet, *Roxb* (Root of–Long zedoary) –जे०। लांग ज़ेडोएरी (Long) Zedoary,–अं०। ज़ेडोरी Zedoaire–फ्रां०। किचिलिक्किज़ङ्ग, पूलाक्किज़ङ्ग–ता०। किचिलि-गड्डलु, कचोरम्, औकानोकचेट्टा–ते०। कच्चोलम् कचूरि किज़ङ्ग, पुला-किज़ङ्ग, अडवी कछोल–मल०। कचोरा–कना०। कचोर–मरा०, कों०। काचूर, कचूरी–गु०। कचूर–बम्ब०। थानुर्वे–बर०। हिं०–हुर्द–सिं०। कचोर, काचरी, कुव्–मरा०।

आर्द्रक वा हरिद्रा वर्ग
(*N. O. Scitamineœ*)

रासायनिक संगठन—एक प्रकार का अस्थिर तैल, एक तिक्र मृदुराल, कर्कुमीन प्रभृति, राल, शर्करा, निर्य्यास और सैन्द्रियकाम्ल, श्वेतसार, तंतु (Curde fibre), भस्म, आर्द्रता, अल्ब्युमिनाइड्स और अरबीन इत्यादि। इससे प्राप्त तैल पीताभ श्वेत ऐवं चिपचिपा Viscid और (turbid) तथा कर्पूरवत् गंधास्वाद-मय होता है। इसकी जड़ में जदवारीन Zedoarin) नामक सत्व प्राप्त होता है।

औषधार्थ व्यवहार—मूलकन्द तथा पत्र। इसकी जड़ लंका से बम्बई आती है। भारतवर्ष में इस ओषधि का प्रधानतः सौंदर्यवर्द्धन लेपादि

(Cosmetic) में व्यवहार होता है। राक्स-बर्ग के कथनानुसार बंगाल में यह चिटागाँग से आता है।

प्रभाव—उत्तेजक, आध्मानकारक, श्लेष्मा-निस्सारक, स्निग्धतासंपादक, मूत्रल और आरुण्य-कारक (Rubifacient)।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कर्चूरः कटुतिक्तोष्णो रुच्यो वातबलासजित्।
दीपनः प्लीहगुल्मार्शः शमनः कुष्ठकासहा॥
(ध० नि०)

कचूर—चरपरा, कड़ुआ, उष्ण, रुचिकारी, दीपन तथा वात एवं कफनाशक है और यह प्लीहा गुल्म एवं अर्श रोग को शमन करनेवाला और कोढ़ तथा खाँसी को दूर करनेवाला है (पाठांतर से यह केशघ्न=केशहा है)।

कचूरः कटुतिक्तोष्णः कफकासविनाशनः।
मुखवैशद्यजननो गलगण्डादि दोषहृत्॥
(रा० नि०)

कचूर—चरपरा, कड़वा, उष्ण वीर्य, मुख को स्वच्छ करनेवाला तथा कफ, खाँसी और गल-गण्डादि रोगों को नाश करता है।

कर्चूरो दीपनो रुच्यः कटुकस्तिक्त एव च।
सुगंधिः कटुपाकः स्यात्कुष्ठार्शो व्रणकासनुत्॥
उष्णो लघुर्हरेच्छ्वासं गुल्मवात कफ कृमीन्।
गलगंडं गंडमालामपचीं मुखजाड्यहृत्॥
(भा० पू० १ भ०)

कचूर—अग्निदीपक, रुचिकारी, चरपरा, कड़ुआ सुगंधित, लघु, कटुपाकी और गरम है तथा यह कोढ़, बवासीर, व्रण, खाँसी, श्वास, गुल्म, वात, कफ, कृमि, गलगंड, गंडमाला, अरुचि और मुख की जड़ता इन रोगों को नष्ट करता है।

शठी तिक्ता च कटुका चोष्णा तीक्ष्णाग्नि दीपनी। सुगन्धि रुचिरा लघ्वी मुखस्वच्छ-करी मता॥ कोपनी रक्तपित्तस्य गलगण्डादि रोगहा। कुष्ठार्शोव्रणकासघ्नी श्वासगुल्म कफापहा॥ त्रिदोष कृमिवातानां ज्वर प्लीहादि नाशकृत्।
(नि० र०)

कचूर—कड़वा, चरपरा, गरम, तीक्ष्ण, अग्नि-प्रदीपक, सुगंधि, रुचिकारक, हलका, मुख को स्वच्छ करनेवाला, रक्तपित्त को कुपित करनेवाला तथा गलगंड, गंडमालादि कोढ़, बवासीर व्रण, कास श्वास, गोला, कफ, त्रिदोष, कृमि, वातज्वर और प्लीहा इत्यादि रोगों का नाश करनेवाला है।

कचूरो मरुदामघ्नो दीपना रक्तपित्त कृत्।
अजीर्ण जरण श्वासेष्वपस्मारेपि पूजितः॥

कचूर—वात तथा आमनाशक, दीपन, रक्तपित्त-कारक और अजीर्ण रोग को दूर करनेवाला है। मृगी रोग में और श्वास रोग में भी इसका प्रयोग करते हैं।

इनके अतिरिक्त द्रव्यनिघण्टु में इसे त्रिदोष नाशक, मुखरोगनाशक और ज्वरनाशक लिखा है। मदनपालनिघंटु में इसे कुष्ठरोगघ्न, व्रण-नाशक, वात एवं गुल्मनाशक और गुणनिघण्टु में कफनाशक और कृमिनाशक लिखा है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा (वा कक्षांत) में उष्ण तथा रूक्ष। हानिकर्त्ता—मस्तिष्क, हृदय और फुफ्फुस को तथा शिरःशूल उत्पन्न करता है। दर्पघ्न—धनियां। मतांतर से बनफ़शा, सफेद चंदन और जटामाँसी। प्रतिनिधि—अंजीर और आदी। मतांतर से शतावर, दरूनज अक़रबी और तुरंज के बीज। मात्रा—३-३॥ मा० से ४॥ मा० तक। मतांतर से ७ माशा (मु० ना०)। इसमें शक्ति तीन वर्ष तक स्थिर रहती है। प्रधान-धर्म—वाजीकरण, शोथ-विलीनकर्त्ता, उल्लासजनक, हृद्य और मेध्य (मुक़व्वी दिमाग़) है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह उल्लासप्रद (मुफ़रिह), हृद्य, मस्तिष्क एवं आमाशय को बल-दायकर्त्ता, अवरोधोद्घाटक, वाजीकारक, स्थौल्य-जनक वा वृंहण, छर्दिघ्न, अतिसारनाशक, मूत्रल, आर्त्तवप्रवर्त्तक, सौदा का रेचक, शिशु जात प्रवा-हिका को लाभप्रद तथा ख़फ़क़ान (हृत्स्फुरण) जरायुगत वायु एवं दंतशूल, को लाभकारी और शिश्नोत्थापनकर्त्ता (मुनइज़्ज़) है। मु० ना०।

वैद्य कहते हैं कि यह हलका है और मूत्र-विकार को दूर करता है तथा हाथ की हथेली

और पाँव के तलवों की जलन दूर करता, मुख-वैरस्य का निवारण करता, कफ तथा खाँसी को लाभ पहुँचाता, कंठमाले को नष्ट करता, क्षुधा उत्पन्न करता, कोढ़, बवासीर और पोड़े-फुन्सी को आराम पहुँचाता तथा श्वासकृच्छ्रता, वायु के विकार और वायुगोला-गुल्मरोग को नष्ट करता है। यह औदरीय कृमियों का नाश करता है। यूनानी हकीमोंके वर्णनानुसार यह रंधोद्घाटन करता और उल्लासप्रद है। यह हृद्य, मस्तिष्क और आमाशय को बल प्रदान करता एवं मूत्रल और आर्त्तव प्रवर्त्तक है। यह सौदावी मादे को दूर करता, तथा शिशुजात प्रवाहिका एवं पाण्डु (यर्क़ान) को लाभ पहुँचाता है और भूख बढ़ाता है। इसे मुखमण्डल पर प्रलेप करने से मुँहासे नष्ट होते हैं। ख० अ०।

मख़ज़न मुफ़रिदात में यह अधिक लिखा है कि यह खाना खूब खिलाता है और दस्तावर है।

यह हृद्य है और अवरोधों को दूर करता और हृदय, मस्तिष्क एवं आमाशय को बलप्रदान करता है। यह हैवानी तथा तबई रूह को साम्य है तथा कामोद्दीपन करता, शरीर को स्थूल वा वृंहित करता एवं विषैले जानवरों के विष का तिर्याक-अगद है। यह बर्द्धिर, मूत्रप्रवर्त्तक तथा आर्त्तव प्रवर्त्तक है और सौदा का रेचन करता एवं कफज कास, सौदावी अर्थात् वायु के दोष खफ़क़ान, जरायुगत वायु, शिशुजात प्रवाहिका और बाह (बाजीकरण) के लिए लाभकारी है। मुख में रखने से यह दंतशूल मिटाता, चाबने से सर्द एवं तर खाँसी और लहसुन तथा प्याज की दुर्गंधि का अपहरण करता है। शीतल शोथों पर इसके प्रलेप करने से सूजन उतर जाती है। और शूल नष्ट होजाता है। इसका एक बड़ा टुकड़ा कटि में बाँधना बाह को शक्तिप्रद-कामाग्नि-वर्द्धक है। इसका धूड़ा (अवचूर्णन) शोथविलीन कर्त्ता एवं वेदनाहर है। बु मु।

नव्यमत

डीमक—मुखगत पिच्छिलास्वाद के अपहरणार्थ देशी लोग इसे मुख में रखकर चाबते हैं। यह पुष्टि के कतिपय उन पाक आदि में भी पड़ता है। जिन्हें स्त्री-गण प्रसवोत्तर-कालीन निर्बलता के निवारणार्थ सेवन करती हैं। सर्दी में इसके काढ़े में दालचीनी और पीपल का चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करते हैं। शरीर पर इसकी पिसी हुई जड़ का आलेप करते हैं। रीडी (Rheede) एतज्जात श्वेतसार की बहुत प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि इसकी ताजी जड़ शीतल और मूत्रल ख्याल की जाती है और यह श्वेत प्रदर एवं औपसर्गिकमेहजात स्रावों को अवरुद्ध करता और रक्त को शुद्ध करता है। इसकी पत्तियों का स्वरस जलोदर-रोग में दिया जाता है।—फार्माकोग्राफिया इंडिका ३ भ०।

कर्नल वी० डी० बसु—इसकी जड़ सुगंधित (aromatic), उत्तेजक और आध्मानहर है। देशी चिकित्सा में आमाशय बलप्रद-जठराग्नि-वर्द्धक (Stomachic) रूप से इसका व्यवहार होता है। चोट एवं मोच (bruises & sprains) आदि पर भी इसका प्रयोग होता है।—इं० मे० प्लां)

नादकर्णी—इसकी जड़ प्रिय एवं कर्पूर-गंधि होती है। यह अजीर्ण तथा आध्मान में उपयोगी है और रेचनौषधों के मरोड़ आदि दोषों के निवारणार्थ इसका उपयोग होता है। मुखगत पिच्छिलता को दूर करने के लिये भारतीय प्रधानतः गायकगण कंठ-शुद्ध्यर्थ वा आवाज़ खोलने के लिये साधारणतया इसका उपयोग करते हैं। कंठ क्षोभ और वायु-नलिका के ऊर्ध्व भाग के प्रदाह में भी इसका उपयोग करते हैं। सर्दी और बुखार में इसके काढ़े में दालचीनी, मुलेठी और पिप्पली—इनके चूर्ण का मात्रानुसार प्रक्षेप देकर और मधु वा मिश्री मिलाकर इसलिये देते हैं कि उक्त रोग जन्य कास (Bronchitis और कफ (Cough) प्रशमित हो जाय। इसकी पिसी हुई जड़ का शरीर पर प्रलेप करते हैं और इसमें फिटकरी मिलाकर चोट (bruises) पर लगाते हैं। स्निग्धत्व-संपादक (Demulcent), श्लेष्मा निस्सारक (Expectorant) और सुरभित गुणों के लिए इसकी एक ड्राम की मात्रा है। अशुद्ध एवं विकृत रक्त के कारण जो चिरकाला-

नुबंधी त्वग् रोग उत्पन्न हो जाता है, उसके प्रतिकारार्थ व्यहार किये जानेवाले सौंदर्यवर्द्धनीय (Cosmetics) वा अंगरागलेपन औषधादि का यह एक सुगंधिजनक उपादान है। इसकी ताज़ी जड़ के उपयोग से सूजाक और श्वेतप्रदरजात प्रस्राव रुक जाते हैं। शिशुओं के कृमि रोग में इसको जड़ का स्वरस दिया जाता है। इसे प्रायः अन्य औषधियों के साथ व्यवहार करते हैं। यह औषधीय तैलों में पड़ता है। जलोदर में इसकी पत्ती का स्वरस दिया जाता है। इसकी सूखी हुई जड़ के चूर्ण में पतंग की लकड़ी (Wood of the Caesalpinia Sappan) का चूर्ण मिलाने से एक प्रकार का लाल रंग का चूर्ण प्राप्त होता है, जिसे 'अबीर' कहते हैं। होली के त्यौहार में इसे पानी में घोलकर शरीर पर छिड़कते हैं।—इं० मे० मे० पृ० २७६–२८०। इं० इं० डू० एण्ड प्रोंट्स—नगेन्द्रनाथ सेनकृत, पृ० ५३१।

संज्ञा पुं० [बं०, म०] कचूर। कर्चूर।

संज्ञा पुं० [पं०] कपूर कचरी।

कचूरक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कचु नाम का एक प्रकार का कंदशाक। कच्चूर। घुइयाँ। वै० निघ० २ भ० अर्श-चि० पिप्पलिका तैल।

कचूर कच–संज्ञा पुं० [देश०] कपूरकचरी। शेदूरी (हिमा०)।

कचूर कचु–संज्ञा पुं० [पं०] कपूरकचरी।

कचूरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कचूर] कपूर हिंदी।

कचूल कलङ्गु–[मल०, ता०] चन्द्रमूल (हिं०)। चन्द्रमूल। चंद्रमूलिका (सं०)। कपूर कचरी (गुज०) (Kœmpferia galanga, *Linn.*)

कचेरुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसेरू। कशेरू। र० मा०।

कचैटा–[?] अगलागल। किंगली (हिं०)।

कचैतुन–[?] फेकिअल। आसुगाछ (आसाम)।

कचेरा–संज्ञा पुं० [बम्ब०] कसेरू।

कचोड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "कचौरी"।

कचोर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचूर। कर्चूर। वै० निघ० २ भ० अर्श-चि० भल्लातक-हरीतकी।

संज्ञा पुं० [हिं०, बम्ब०] एक पौधा जो हिमालय के जंगलों में होता है। (Mimosa lucida, *Roxb.*)

कचोरम्–[ते०] कचूर।

कचोरम्–[ते०] कचूर।

कचोरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का शालि धान्य। यह पित्तनाशक है। अत्रि० सं० १५ अ०।

संज्ञा पुं० [सं० कर्चूर] कचूर।

कचोरालु–[ते०] कचूर।

कचोलम्–[मल०] कचूर।

कचौड़ी–संज्ञा स्त्री दे० "कचौरी"।

कचौर–[म०]
कचौरम्–[ते०]
कचौरमु–[ते०]
कचौरा–[कना०]
} कचूर। कर्चूर।

कचौरा संज्ञा पुं० [हिं० कचौरी] एक प्रकार की पूरी।

संज्ञा पुं० [म०, कों०, हिं०] कचोर। (Mimosa lucida, *Roxb.*)

कचारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कचरा] पिष्टक विशेष। एक प्रकार की पूरी जिसके भीतर उरद आदि की पीठी भरी जाती है। यह कई प्रकार की होती। जैसे—सादी, खस्ता आदि। संस्कृत में इसे 'पूरिका' कहते हैं। दाल-पूड़ी। कचौड़ी।

कच्चट–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] जलपिप्पली। जल-पीपर। काँचड़ा–(बं०)।

कच्चर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तक्र। छाछ। मट्ठा। मे रत्रिक।

वि० [सं० त्रि०] मलिन। मैला कुचैला। गर्द से भरा हुआ। मल से दूषित।

कच्चा कोढ़–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+कोढ़] (१) खुजली। (२) गरमी। आतशक।

कच्चा चूना–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+चूना] चूने की कली जो पानी में बुझाई न गई हो। कली का चूना।

कच्चा नील–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+नील] एक प्रकार का नील। नीलबरी।

इसके प्रस्तुत करने की रीति इस प्रकार है—कोठी में मथने के पीछे गोंद मिले हौज़ में नील छोड़ते हैं। नील के नीचे बैठ जाने पर पानी को हौज़ के छेद से निकाल देते हैं। फिर नील का

जमा हुआ माढ या कीचड़ कपड़े में बाँध नीचे के गढ़े में रात भर लटकाया जाता है। सवेरे उसे राख पर फैला धूप में सुखाने से कच्चा-नोल बनता है।

कच्चा मोतियाबिंद–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+मोतियाबिंद] मोतियाबिंद का वह भेद जिसमें आँख की ज्योति सर्वथा नष्ट नहीं हो जाती, केवल धुँधला दिखाई देता है। ऐसे मोतियाबिंद में नश्तर नहीं लगता।

कच्चा शोरा–संज्ञा पुं० [हिं० कच्चा+शोरा] वह शोरा जो उबाली हुई नोनी मिट्टी के खारे पानी में जम जाता है। इसीको फिर साफ़ करके कलमी शोरा बनाते हैं।

कच्ची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] एक प्रकार का कंद। अरुई।

कच्ची कली–संज्ञा स्त्री० (१) वह कली जिसके खिलने में देर हो। मुँह बँधी कली। (२) अप्राप्त यौवना।

कच्ची चाँदी–संज्ञा स्त्री० चोखी चाँदी। खरी चाँदी। तुकरए "खाम"। दे० "चाँदी"।

कच्ची चीनी–संज्ञा स्त्री० वह चीनी जो गलाकर खूब साफ़ न की गई हो।

कच्ची शक्कर–संज्ञा स्त्री० वह शक्कर जो केवल राब को जूसी निकालकर सुखा लेने से बनती है। खाँड़।

कच्चीर–संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

कच्चू–संज्ञा स्त्री० [सं० कंचु] (१) अरुई। अरवी। घुइयाँ। (२) बंडा। कचु।

कच्चूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचु नामक एक प्रकार का कंद शाक। कचु गाछ–(बं०)। घुइया। बंडा।

कच्चूरी किज़्ड़्गु–[मल०] कचूर।

कच्चार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शटी। कचूर। प० मु०।

कच्चोरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गंधशटी। गंधपलाशी। चक्र०।

कच्चौलम्–[मल०] कचूर।

कच्छ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जलप्राय देश। अनूपदेश। दे० "अनूप"। (२) तुन का पेड़। तुन्द। तुन्नक द्रुम। मे० छद्विकं। (३) नन्दी वृक्ष। (४) धोती का वह छोर, जिसे दोनों टाँगों के बीच से निकाल कर पीछे खोंस लेते हैं। लाँग। परिधानाञ्चल। हे० च०। (५) जलप्रांत। जलमय देश वा स्थान। अमर०। (६) नदी आदि के किनारे की भूमि। कछार। (७) कच्छदेश का घोड़ा। (८) कछुए का एक अंग। (९) एक प्रकार का कुष्ठ। दे० "कच्छक"।

संज्ञा पुं० [सं० नि०] जलप्रान्त सम्बन्धी। जलमय देश का। "नदीकच्छोद्भवं कान्त मुच्छ्रितं ध्वजसन्निभम्"। भारत, सम्भव ७० अ०।

कच्छक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तुन। तुन्द। तुन्नक द्रुम। तूणी।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अट्ठारह प्रकारके कुष्ठों में से एक, जिसे "कच्छत्वक्" कुष्ठ भी कहते हैं।

लक्षण—यह कफ दोष से उत्पन्न होता है और प्रायः ऊरु, कक्ष और कटि प्रदेश में होता है। यह लाल, चिकना, घना श्यामवर्ण का होता है, जिसमें अत्यन्त खाज होती है। इसे देश में भैंसा दाद भी कहते हैं। यथा—

"रक्तस्निग्धं घनश्यामं मतिकण्डूकफोद्भवम्।
ऊरुकक्ष कटिष्वेवं कच्छत्वक् कुष्ठमाह्वयम्" ॥
वसव रा० १३ प्र० पृ० २०६, २१०।

कच्छकाण्डन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीपलभेद। अश्वत्थ वृक्ष भेद। गया अश्वत्थ।

कच्छाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कच्छ। परिधानाञ्चल। कछनी। काँछ। लाँग। श० र०।

संस्कृत पर्य्याय—कच्छ। कक्षा। कच्छा। कच्छीटिका। कच्छाटिका।

कच्छत्वक्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का कुष्ठरोग। ब० रा०।

कच्छन-थरई–[ता०] जीम–हिं०, बं०। भरसी–मरा०।

कच्छप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कच्छपी] (१) कछुआ। कूर्म्म। रा० नि० व० १६। अत्रि २२ अ०। विशेष दे० "कछुआ"। (२) तुन का पेड़। तुन्द। नन्दी वृक्ष। रा० नि० व० १२। (३) एक प्रकार का वारुणी यंत्र, जिससे

मद्य खींचा जाता है। मदिरा यन्त्र। श० च०। एक प्रकार का तालुगत रोग, जिसमें कफ के कारण तालु में कछुए की पीठ के आकार की ऊंची और नीची पीड़ारहित तथा देर से बढ़नेवाली सूजन होजाती है। यथा—"कूम्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्र जन्मारोगोज्ञेयःकच्छपः श्लेष्मलःस्यात्"।

कच्छप-यन्त्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] औषध पाक यन्त्र विशेष। औषध पाक करने का एक प्रकार का यन्त्र।

कच्छपि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग। तालु रोग जो तालु में होता है।

कच्छपिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) विषमुष्टि कुचला। (२) महानिम्ब। महानीम। रा० नि० व० ४। (३) कृष्ण निर्गुण्डी। काला सँभालू। वै० निघ०। (४) एक प्रकार का क्षुद्ररोग, जिसमें ५-६ फोड़े निकलते हैं जो कछुए की पीठ ऐसे होते हैं। मा० नि०। (५) प्रमेह के कारण उत्पन्न होनेवाली फुड़ियोंका एक भेद। ये फुड़ियाँ छोटी-छोटी शरीर के कठिन भाग में कछुए की पीठ के आकार की होती हैं। इनमें जलन होती है। कच्छपी। मा० नि०।

मुश्रुत के मत से कच्छपिका दाहयुक्त एवं कच्छपाकृति की होती और कफ तथा वायु से उत्पन्न होती है। भावप्रकाश के लेखानुसार इस रोग में प्रथमतः स्वेदक्रिया करें, फिर हलदी, कुठ, शर्करा, हड़ताल और दारुहल्दी इनको पीसकर लेप करें। पकने पर व्रण की भाँति चिकित्सा करें।

कच्छपी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कच्छप की स्त्री। मादा कछुआ। कछुई। अम०। (२) एक प्रकार का क्षुद्र रोग। मे० पत्रिकं। दे० "कच्छपिका"।

कच्छपोलि-
कच्छपोलिका- } संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] जलबेंत। जलवेतस। वै० निघ०।

कच्छमाही-संज्ञा स्त्री० [सं० कच्छ+माही=मछली] एक प्रकार की मछली। सूँस। दुलफ़ीन।

कच्छरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुरालभा। के०।

कच्छरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दूब। दूर्व्वा। जटा०। (२) नागरमोथा। नागरमुस्ता। "नागरोत्था कच्छरुहा"। रा० नि० व० १३।

कच्छलकारक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कास। काश तृण।

कच्छा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भद्रमुस्ता। नागरमोथा। (२) सफेद दूब। श्वेतदूर्वा। (३) एक प्रकार का कीड़ा। झींगुर। चीरिका। चीड़िका। झिंझिपोका (बं०)। (४) बाराही कंद। मे० छद्विकं। (५) परिधेय वस्त्र का अंचल। कच्छ। लाँग।

कच्छाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कछनी। परिधानाञ्चल। कच्छ। लाँग।

कच्छान्तरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद दूब। श्वेत दूर्व्वा। रा० नि० व० ८।

कच्छारुहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीला वा सुनहला केवड़ा। स्वर्णकेतकी। वै० निघ०।

कच्छालङ्कारक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काँस। काश तृण।

कच्छी-संज्ञा पुं० [हिं० कच्छ] घोड़े की एक प्रसिद्ध जाति जो कच्छ देश में होती है। इस जाति के घोड़ों की पीठ गहरी होती है।

वि० [हिं० कच्छ] (१) कच्छ देश का। (२) कच्छ देश में उत्पन्न।

कच्छीर-संज्ञा पुं० [सं०]

कच्छु-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्षुद्र कुष्ठ के अन्तर्गत एक प्रकार का रोग वा खुजली। खर्जू रोग। खाज। कच्छू।

लक्षण—सूक्ष्मा वह्वः पिड़काः स्राववत्यःण मेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः सैवस्फीटैस्तीव्र दाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योःकच्छुरुग्रास्फिचोश्च"॥ मा० नि०।

अर्थात्—खाज, दाह और स्रावयुक्त सूक्ष्म जो बहुसंख्यक पिड़काएँ-फुन्सियाँ निकलती हैं, उसे विद्वान 'पामा' कहते हैं। पुनः दोनों हाथ और हथेली की पीठ पर होनेवाली तीव्र दाहयुक्त पामा ही 'कच्छु' कहलाती है।

(२) केवाँच। कपिरोमफला। वानरी। रा० नि०। नि० शि०।

कच्छुक–संज्ञा पुं० [सं०] तुन का पेड़।

कच्छुकान्तन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हैंस। हीस। अहिंसा। (२) गया अश्वत्थ। के०।

कच्छुघ्ना-कच्छुघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) परवल। पटोल। (२) हाऊबेर। हबुषाफल क्षुप। रा० नि० व० ४।

कच्छुमती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच। शुकशिम्बी। श० च०।

कच्छुर–वि० [सं० त्रि०] (१) जिसे खुजली का रोग हो। कच्छूरोगयुक्त। (२) व्यभिचारी। परस्त्रीगामी। पुंश्चल। मे० रत्रिकं।

कच्छुरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कौंच। केवाँच। कपिकच्छु। रा० नि० व० ३। (२) रक्तदुरालभा। यवास। (३) कर्पूरशटी। (४) आँवाहल्दी। आम्रहरिद्रा। (५) महाबला। सहदेवी। (६) क्षुद्रदुरालभा। छोटा धमासा। नि० शि०। (७) दुरालभा। धमासा। नि० शि०। (८) ग्राहिणी। खिरनी।

कच्छुराल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लिटोरा। लिसोड़ा। शेलु वृक्ष। लसोड़े का पेड़।

कच्छुरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धातकी। धाय का फूल।

कच्छू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कच्छुरोग। दे० "कच्छु"।
संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] कछुआ।

कच्छूघ्ना, कच्छूघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दे० "कच्छुघ्ना"। (२) छोटी हाऊबेर। ध्वांक्ष नाशिनी। नि० शि०। रा० नि०।

कच्छूमती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कच्छुमती"।

कच्छूर–वि० दे० "कच्छुर"।

कच्छूरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कच्छुरा"।

कच्छूराक्षस तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ठ रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक तेल।

योग—कल्कार्थ–मैनसिल, हरताल, कसीस, गन्धक, सेंधानमक, चोक (स्वर्णक्षीरी), पथरचटा (शिलाभेदी), सोंठ, कुठ, पीपल, कलिहारी, कनेर की जड़, पमाड़ के बीज, वायविडंग, चीता, दन्तीमूल, नीम के पत्ते, प्रत्येक १-१ कर्ष। आक और सेहुँड़ का दूध १-१ पल। गोमूत्र १ आढक (६४ पल) और कडुवा तेल २ प्रस्थ–इनसे यथाविधि मंदाग्नि पर तैल सिद्ध करें।

गुण—गात्र पर इसकी मालिश करने से दुःसाध्य कच्छू, पामा, कंडू तथा अन्यान्य चर्मरोग और रक्तदोष आदि रोग नष्ट होते हैं। भा० प्र० कुष्ठ चि०।

कच्छू(च)लोरा–[हिं०, बम्ब०] एक पौधा। Pithecolobium bigeminum, *Benth.*

कचड़ा(रा)–संज्ञा पुं० [देश०] करीर।
संज्ञा स्त्री० [देश०] कपूर कचरी।

कच्छेष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कछुआ। कच्छप। रा० नि० व० १९।

कच्छेष्टा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भद्रमुस्ता। नागरमोथा।

कच्छोटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कछनी। परिधानाञ्चल।

कच्छोत्था–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मोथा। मुस्ता। रा० नि० व० ६।

कच्छोर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कचूर। शठी। र० मा०।

कच्चट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलपीपर। जलपिप्पली। बुकन। वै०।

कच्चर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तक्र। छाछ। मट्ठा। मे०।

कच्ची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कंद। कचु। अरुई। अरवी। घुइयाँ।

कछ–संज्ञा पुं० [सं० कच्छ] कछुआ।

कछमाही–संज्ञा स्त्री० दे० "कच्छमाही"।

कछराली–संज्ञा स्त्री० दे० "ककराली"।

कछुआ–संज्ञा पुं० [सं० कच्छप] [स्त्री० कछुई] एक जलस्थलचारी जन्तु जिसके ऊपर कड़ी २ ढाल की तरह की खोपड़ी होती है। इस खोपड़ी के नीचे वह अपना सिर और हाथ–पैर सिकोड़ लेता है। इसकी गर्दन लम्बी और दुम बहुत छोटी होती है। यह जमीन परभी चल सकता है।

अनेक भाषाओं के नाम—

कच्छपः, कमठः, कूर्मः, गूढाङ्गः, धरणिधरः, कच्छेष्टः, पल्वलावासः, वृत्तः, कठिनष्ठकः, महामत्स्यः, कूर्मराजः, गुप्ताङ्गः, चित्रकुटः, धरणीधरणक्षमः (ध० नि०; रा० नि०), कूर्मः कमठः, (अ०), क्रोड़पादः, चतुर्गतिः, दौलेयः (हे०), माबादः, पञ्चगुप्तः क्रोड़ाङ्गः, (शब्द र०), जलविल्वः, (च०), उद्भटः (मे०), क्रोड़ाङ्घ्रिः, पञ्चांगगुप्तः (त्रि०), पंचनख, गुह्यः, पीवरः, जलगुल्मः (ज०)—सं०। कछुआ, कचक्र—हिं०। काछिम शुन्दि, काठा, बारकोल कच्छप—बं०। कॉंसव—मरा०। कछवो—गु०। लिस्क, कुरकुरा, कुलित, पौना—मल०। सुल्हफ़ात—अ०। संगेपुश्त, कराफ़, बाखः—फ़ा। चिलोनिया Chelonia—ले०। टर्ट्ल Turtle, टॉर्टायज़ Tartoise—अं०।

नोट—वेदों में 'अकूपार' नाम से कच्छप का उल्लेख आया है। निरुक्तकार यास्कने लिखा है—

कच्छपोऽपाकूपार उच्यतेऽकूपारो न कूप मृच्छतीति। कच्छपः कच्छं यातिरुच्छेन पातीतिवा कच्छेन पिवतीति वा। कच्छः खच्छः खच्छदः। अयम पीतरो नदीकच्छ एतस्मादेव कमुदकं तेन छाद्यते।" (निरुक्त ४।१८)

अंग्रेज़ी में स्थल कच्छप को टॉर्टाईज़ (Tortoise) और समुद्र कच्छप को टर्ट्ल (Turtle) कहते हैं। इसका युरोपीय वैज्ञानिक नाम चिलोनिया (Chelonia) है।

विशेष विवरण—

पृथिवी के भिन्न-भिन्न देशों में अनेक प्रकार के कच्छप होते हैं। अरिष्टाटल (अरस्तू) ने ग्रीक भाषा में तीन प्रकार के कछुओं का उल्लेख किया है। यथा—स्थलकच्छप, जलकच्छप और समुद्रकच्छप। युरोपीय प्राणितत्वविदों ने कच्छप जाति को पाँच श्रेणियों में विभक्त किया है। यथा स्थलकच्छप (Testudo), जलकच्छप (Emys), कठिन आवरणयुक्त कच्छप (Chelydos), समुद्रकच्छप (Chelonia) और कोमल कच्छप (Trionyx)। फ्राँसीसी प्राणितत्वविद् डुमेरी ने कच्छप को निम्न-लिखित भागों में विभक्त किया है, यथा—चारसियान (Chersites) वा स्थलकच्छप, इलोदियान (Elodites) वा बिलकच्छप, पोटेमियान (Potamites) वा नदी कच्छप और थालसियान (Thalassites) वा समुद्र कच्छप।

सकल कच्छपों के 'मुंड' सर्पादि सरीसृप की भाँति एक अस्थि से निर्मित होते हैं। परन्तु इन सभी जाति के कच्छपों की करोटि एक तरह की नहीं होती। इनमें से स्थलकच्छप का मस्तक अण्डाकार अग्रभाग विषम और दोनों चक्षुओं का व्यवधान कुछ अधिक रहता है। इनकी नासिका का छिद्र बड़ा और पश्चात् भाग पर चपटा रहता है। अक्षकोटर गोलाकार और बृहत् होता है। पार्श्व कपालास्थि पश्चात् कशेरू के मध्य झुक जाती है। उभय पार्श्व में दो बृहत् शंखास्थि रहती हैं। इन्हीं दोनों के मध्य मस्तक के बड़े स्वरास्थि का गर्त रहता है। कछुए के उत्तमाँग में नासास्थि नहीं होती। सजीव अवस्था में नासिका के छिद्र में सूक्ष्म पत्रों की भाँति सकल अस्थियाँ झलकती हैं। नासिका का अस्थिमय छिद्र एक ओर दीर्घ होता है और फलास्थि, माध्यस्थि, हन्वस्थि तथा दो ललाटास्थि से बनता है।

जल कच्छप का मस्तक चपटा होता है। इसका ललाट सामने विस्तृत होते हुये भी अक्ष के कोटर पर्यन्त नहीं पहुँचता।

कोमल कच्छप का मुण्ड सामने बैठा और पीछे झुका रहता है। इसके पार्श्व कपाल की सूक्ष्मास्थि, ललाट का पश्चाद्भाग है। शंखास्थि और गण्डास्थि परस्पर संलग्न रहती हैं। कोमल कच्छप का मुख और कच्छपों को अपेक्षा छोटा, अक्षकोटर कितना ही लम्बा और नासिका का छिद्र अति सूक्ष्म होता है।

कच्छप के नीचे का मुखकोण कुम्भीर के के मुखकोण की तरह प्रतीत होता है। किसी-किसी प्राणितत्वविद् के मत में वह पक्षी के मुखकोण से सर्वथा मिलता है। सकल अस्थियाँ

पक्षी की अस्थि की भाँति अविच्छिन्न रहती हैं। जलकच्छप मनुष्य के विशेष काम नहीं आता। वङ्गदेश के कुछ नीच लोग इसे खाते हैं। किन्तु समुद्रकच्छप से मानवजाति का अनेक उपकार होता है। कोई उसे खाता और कोई अस्थि से कड़ा बनाता है।

स्थलकच्छप भी जल में बहुत प्रसन्न रहते हैं। यह एकबार में ही अधिक जल पीलेते और कीचड़ में शरीर धुसेड़ देते हैं। सागरवेष्टित द्वीपसमूह में स्थलकच्छप अधिक होते हैं। ये बहुसंख्यक एकत्र दलबाँधकर घूमा करते हैं। जहाँ झरना चलता है, वह स्थानकच्छप को अच्छा लगता है। ये विविध स्थलोंमें गड्ढे बना लेते हैं। यात्री मार्ग में जल न पाने पर उक्त गड्ढों से जलका पता लगा सकते हैं।

जो स्थलकच्छप ऊँचे अथवा ठण्डे स्थान में रहते हैं, वे तिक्त और कटुरसविशिष्ट वृक्षों के पत्ते खाते हैं। चाखामद्वीपवासियों का कहना है कि स्थानीय कच्छप तीन चार दिन तक जल के पास रहते, पुनः निम्न भूमि को चल पड़ते हैं। किसी-किसी जगह स्थलकच्छपों को वृष्टि के जल के सिवा अन्य समय रहने के लिए जल नहीं मिलता; फिर भी जीते जागते रहते हैं। मार्ग में प्यास लगने पर उक्त द्वीपवासी कछुए को मार कर खोल से जल निकालकर पी लेते हैं। यह जल अत्यन्त परिष्कृत रहता है और पीने में कटु प्रतीत होता है। वहाँ का स्थल कच्छप प्रतिदिन दो कोस चल सकता है। शरत्काल कच्छप के मिलन का समय है। इसी समय स्त्री पुरुष एकत्र होते हैं। पुरुष सुख के आवेश में मत्त हो प्राण छोड़ चिल्लाया करता है। वह कर्कश ध्वनि २०० हाथ दूर से सुन पड़ती है। इससे द्वीपवासी समझ जाते हैं, कि अब कछुये के अंडे देने का समय आगया है। बालू से भरे हुये स्थान पर कछुई अंडे देती और फिर उस पर बालू चढ़ा देती है। पर्वत पर इधर-उधर गर्त में भी कछुई अंडे दे देती है। एक स्थान में १५ अंडे रहते हैं। अण्डा देखने में साफ और आठ इञ्च तक बड़ा होता है। इस जाति के कछुये बहिरे होते हैं, इसी से ये किसी को पीछे की ओर से पकड़ने आते देख-सुन नहीं सकते। यह कच्छप प्रायः सौ वर्ष से अधिक समय तक जीवित रहता है।

बिलकच्छप का स्वभाव अन्य कच्छप जाति से स्वतन्त्र होता है। यह स्थल कच्छप की भाँति धीरे धीरे नहीं चलता; प्रत्युत जल-थल दोनों स्थान में अति शीघ्र यातायात करता है। बिलकच्छप केवल शाकपत्र से सन्तुष्ट नहीं रहता। सुविधा होने पर यह जीव-जन्तु इत्यादि पकड़कर भी उदरस्थकर लेता है। इसका अंडा प्रायः गोलाकार, शम्बूकादि की भाँति चूर्णोदवादक आवरण से आच्छादित और वर्ण में स्वच्छ होता है। बिल कच्छपी मिट्टी खोद कर गड्ढे में अंडे देती है। वह सदा बिल के पास ही गड्ढा बनाती और निरंतर इस विषय में विशेष सतर्क रहती है, कि कहीं शत्रु की चोट तो अण्डे पर नहीं पड़ती। यह विविध प्रकार से होता है। एशिया में १६, अमेरिका में १६, यूरोप में २, और अफरीका में १ प्रकार का बिलकच्छप मिलता है।

नदी कच्छप सर्वदा ही जल में रहता है, कभी-कभी स्थल पर आ जाता है। यह बहुत बड़ा होता और हर एक वजन में ३५–३५॥ सेर का होता है। इसकी खोल का परिमाण १३॥ इञ्च है। यह जल में और जल के ऊपर तैरा करता है। इसकी देह का निम्न भाग किंचित् श्वेत वर्ण, गुलाबी अथवा नीला सा दीख पड़ता है। किन्तु उपरि भाग नाना विध रहता है। रात्रि होने पर वह अपने को निरापद समझता और नदी-तट, नदी के समीप गिरे हुये वृक्ष की शाखा अथवा नदी में तैरते किसी काष्ठ पर चढ़कर विश्राम करता है। मनुष्य की आवाज़ अथवा किसी प्रकार का स्वर सुनने पर नदी कच्छप तत्क्षण नदी के गर्भ में डूब जाता है। यह बहुत ही मांसप्रेमी होता और कुम्भीर का छोटा बच्चा भी पातेही उदरसात् करता है। आखेट वा आत्मरक्षा करते समय नदीकच्छप तीरवत् मस्तक और ग्रीवा चलाता है। किसी को काटने पर शीघ्र वह उसे नहीं छोड़ता। दंष्ट्रस्थान उखाड़ डालने पर ही पृथक् होता है। इसी से सब कोई इस जाति के कच्छप से भय खाते हैं। भारतवासी

कहते हैं कि 'कच्छप किसी को एक बार काटने के लिए पकड़ने पर बिना मेघ गरजे नहीं छोड़ता'। इस जाति में स्त्रियाँ अधिक होती हैं। पुरुषों की संख्या अत्यल्प है। स्त्री एक बार ५०-६० अण्डे देती है। स्त्री की आयु के अनुसार अण्डे भी न्यूनाधिक निकलते हैं।

संतरण के लिए समुद्रकच्छप के मत्स्यकी भाँति पर होते हैं। इस प्रकारके पर अन्य किसी जातीय कच्छप के दीख नहीं पड़ते। इसके अंग-प्रत्यंग भी संतरणोपयोगी हैं। अण्डे देने का समय छोड़ यह प्रायः तट पर नहीं आता। कोई कहते हैं कि रात में यह निर्जन स्थान में चरते फिरते हैं।

समुद्र-कच्छप कभी कभी अपनी प्यारी घास-पत्ती खाने को उपकूल पर चढ़ बहुत दूर पर्यन्त चला जाता है। यह समुद्र के जल में निष्पंद भाव से तैरा करता और देखने में मुर्दा मालूम पड़ता है। सन्तरण समुद्र-कच्छप विशेष कटु होता है। सामुद्रिक उद्भिद् ही इसका प्रधान खाद्य है। फिर भी जिस सामुद्रिक कच्छप के गात्र से कस्तूरी की भाँति गन्ध आती है, वह घोंघे पकड़ पकड़कर खाता है।

अण्डे देते समय इस जाति की स्त्री रात में पुरुष के साथ समुद्र छोड़ बहुत दूर किसी द्वीप में वालुकामय स्थान में उपस्थित होती है। वह बालू में दो फीट गहरा गड्ढा कर लेती और उसी गड्ढे में एक समय १०० अंडे देती है। इसी प्रकार दो-तीन सप्ताह में फिर वह दो बार अण्डे दिया करती है। अण्डे का आयतन छोटा और गोलाकार होता है। वह सूर्य के उत्ताप से १५ से २६ दिन के बीच फूट जाता है। अण्डा फटने से पूर्व कच्छप शिशु के पृष्ठ का आवरण नहीं होता। उस समय यह श्वेत वर्ण का दीख पड़ता और दारुण विपद का वेग रहता है। ज़मीन पर इसे पक्षी मारते और जल में जा गिरने से कुम्भीर एवं सामुद्रिक मत्स्य खा डालते हैं। अति अल्पसंख्यक शिशु जीते-जागते शेष रह जाते हैं। उस समय एक-एक समुद्र-कच्छप वज़न में २० मन तक तुलता है। इस जाति का कच्छप मानव जाति का अनेक उपकार करता है। नाना स्थानों के लोग इसका मांस खाते हैं। विशेषतः जहाँ कच्छप का बड़ा कोष पाते हैं वहाँ लोग उससे नौका, कुटीर के आच्छादन, गौ आदि को सानी देने का पात्र और व्यवहारोपयोगी अन्य कई प्रकार के वस्तु बनाते हैं।

यह जाति प्रधानतः तीन श्रेणियों में विभक्त है। पुनः इसके ६–१० भेद होते हैं। इस कछुये के कोष से उत्कृष्ट कड़े बनते हैं।

हम लोग महाभारत में गज-कच्छप का युद्ध पढ़ विस्मित हो जाते हैं। किंतु वर्तमान चाखाम द्वीप के कच्छप का विवरण सुनने से वह घटना असंभव समझ नहीं पड़ती। डार्विन साहब ने चाखाम द्वीप में अत्यन्त वृहदाकार कच्छप देखा था। आर्किपेलेगो द्वीप-पुंज में बहुत बड़े बड़े कच्छप विद्यमान हैं। उनमें एक-एक कच्छप का केवल मात्र मांस वज़न में प्रायः ढाई मन होता है। संदेह करते हैं कि एक कच्छप को सात आठ आदमी उठा सकते हैं या नहीं। स्त्री की अपेक्षा पुरुषों की पूछ भी लम्बी होती है। यह कच्छप जब जलशून्य स्थान में रहते हैं या जल-पान कर नहीं सकते, तब वृक्ष के पत्तों का रस पिया करते हैं।

(हि० वि० को०)

भगवान मनु के मत से कच्छप भक्ष्य पंचनखी में गिना जाता है—

"श्वाविधं शल्यकं गोधा खड्गकूर्मशशांस्तथा।
भक्ष्यात् पञ्चनखेष्वाहुरुष्टांश्च कतोदतः॥"

(मनु ५। १८)

वराहमिहिर ने कच्छप जाति का लक्षण इत्यादि इस प्रकार हैं—

"स्फटिक रजतवर्णो नीलराजीविचित्रः कलससदृश मूर्त्तिश्च रुक्षांशश्च कूर्म। अरुणसमवपुर्वा सर्षपाकारचित्रःसकलनृपमहत्वं मन्दिरस्थः करोति॥ अञ्जनभृङ्गश्यामवपुर्वा विन्दुर्विचित्रोऽव्यङ्ग शरीरः। सर्षपशिरा वा स्थूलगलीयः सोऽपि नृपाणां राष्ट्रविवृद्ध्ये। वैदूर्यत्वस्थूल कण्ठस्त्रिकोणो गूढच्छिद्रश्चारुवंशश्च शस्तः।

क्री व प्या तोयपूर्णे मनौ वा कार्यः कूर्मो मङ्ग-
लार्थं नरेन्द्रैः ॥" (बृहत्संहिता)

जिस कच्छप का वर्ण स्फटिक एवं रजत के समान तथा ऊपर नील पद्म की भाँति चित्रित, आकार कलस सदृश, पृष्ठ मनोहर अथवा देह अरुण वर्ण और सरसों के सदृश चित्रित होता है। उसे घर में रखने से राजा का महत्व प्रकाश करता है। जिस कच्छप का शरीर अंजन एवं भृङ्ग की भाँति श्याम वर्ण, सर्वांग बिंदु-बिंदु चित्र-विचित्र अथवा मस्तक सर्प की तरह या गला स्थूल दिखाता है वह राजा का राष्ट्र बढ़ाता है। जो कच्छप वैदूर्य वर्ण, स्थूलकण्ठ, त्रिकोण, गूढ़ छिद्र और मनोहर पृष्ठ-दण्ड विशिष्ट होता है, वह कूप, वापी प्रभृति अथवा जलपूर्ण कलस में मंगलार्थ रखने पर राजा का कल्याण करता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार गुण-दोष—

कच्छपो बलदः स्निग्धो वातघ्नः पुंस्त्वकारकः
(ध० नि०)

अर्थात् कछुआ बलकारक, स्निग्ध, वातनाशक और पुंस्त्व-कारक है।

कछुए का मांस वातनाशक, शुक्रजनक, नेत्र के लिये हितकारी, बलकारक, स्मृतिवर्द्धक शोथ-नाशक और पथ्य है। इसका चर्म पित्तनाशक, पाद कफनाशक और इसका डिम्ब (अण्डा) स्वादु और वाजीकर होता है। (रा० नि०)

कछुआ मधुर, स्वादु, शुक्रवर्द्धक, वातकफ-जनक, बृंहण और रूक्ष है। (अत्रि २२ अ०)

कछुए का मांस बलदायक, वातपित्तनाशक और नपुंसकता नाशक है। (भा०)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—दरियाई तथा नहरी कछुआ द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में तर है। जंगली व बर्री उष्ण एवं रूक्ष है। इसका अंडा भी उष्ण तथा रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—इसका मांस-भक्षण आँतों को हानि-कर है।

दर्पघ्न—शहद।

मात्रा—जलाया हुआ ३॥ मा०। अण्डा ४। जौ भर। रक्त तीन रत्ती पौन जौ भर।

गुण, कर्म, प्रयोग—कछुए का मांस कामो-दीपक है और यह कटि को भी शक्तिप्रदान करता है। इसके मांस का कबाब आर्त्तव के खून को बन्द करता है और वायु का अनुलोमन करता है। नये फ़ालिज के भरलाने में यह जुन्दबेदस्तर के साथ उपकारी है। इसके मांस के लेप से शोथ विलीन होता है। बर्री कछुए का रक्तपान करना आक्षेप एवं अपस्मार के लिये गुणकारी है। यदि जौ के आटे और शहद में मिलाकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बनालें और प्रातः सायं-काल एक-एक बटी निहार मुँह खाते रहें, तो मृगी को बहुत लाभ हो। उक्त रोग के लिये यह उपाय अनुपमेय है। इसके रक्त का बार-बार लेप करने से आमवात तथा वात-रक्त (निक्रसिस) जनित वेदना का निवारण होता है। जुन्दबेदस्तर के साथ इसकी वस्ति करने से आक्षेप में उपकार होता है। इसके पित्त को सुखाकर शहद के साथ आँख में लगाने से मोतियाबिन्दु और जाला नष्ट होता है। इसके पित्त का लेप खुनाक़ गुलू, योगापस्मार और दुष्ट-व्रणों को गुणकारी है। अपस्मार रोगी की नाक पर इसका मलना लाभप्रद है।

कछुए की खोपड़ी वा हड्डी—

पर्य्याय—कचकड़ा, कछुए की खोपड़ी, कछुए की हड्डी—हिन्दी। ज़ब्ल—अ०।

यह स्वच्छताकारक अर्थात् जाली और संग्राही है। इसका बुरादा सेवन करने से अर्शांकुर नष्ट होते हैं। इसे जलाकर अण्डे की सफेदी के साथ लगाना गर्भाशय-गत विशरण के लिये उपकारी है फुफ्फुसप्रणालीगत क्षत और चातुर्थक ज्वर में इसे मधु के साथ चाटने से उपकार होता है। सूजन, अर्बुद (सर्तान) और अर्श रोग में इसका प्रलेप उपयोगी है। योनि में इसकी वर्त्तिका धारण करने से जरायु सम्बन्धी स्रावों में उपकार होता है और यह गर्भपातकारी और वन्ध्यत्व दोष निवारक है। इसकी कंघी जूँ एवं रौक्ष्यहारी है।

—बु० मु०

इसकी अस्थि कच्ची या जलाकर और खून

पीसकर आँख में लगाने से दृष्टि शक्ति नष्टप्राय हो हो जाती है। इसकी हड्डी की राख काँच निकलने को गुणकारी है। इसकी हड्डी को पीसकर इसकी वर्त्तिका योनि में धारण करने से योनि से तरह २ के स्राव और क्षत नष्ट होते हैं। एक मित्र इसकी अत्यन्त प्रशंसा करते थे। उनके कथनानुसार कैसा ही पुराना रोग हो और स्त्री को किसी प्रकार आराम न होता हो, इसकी हड्डी पीसकर रूई में रखकर योनि में रखने से कल्याण होता है। बवासीर के मस्सों को तीन दिन तक निरन्तर इसकी अस्थि की धूनी देने से वे बिल्कुल गिर पड़ते हैं। अस्थि को तेल में जलाकर और उसके अन्दर पीसकर पीठ और हाथ-पैर के दाद पर लगायें तो कई दिन पीला पानी निःसृत होकर उसकी जड़ जाती रहती है। परीक्षित है।

हरीरे में कालीमिर्च के बराबर कछुए का अंडा मिलाकर खिलाने से बच्चों की पुरानी खाँसी जाती रहती है। इसमें दसवाँ हिस्सा सोंफका चूर्ण मिलाकर अण्ड-शोथ पर लेप करने से लाभ होता है। इसकी चर्बी आक्षेप तथा धनुष्टंकार (कुज़ाज़) के लिये गुणकारी है। दरियाई कछुए की चर्बी, जावशीर और कुंदुश समभाग लेकर पीसकर गदहे के पेशाब में गूँध कर छाया में सुखालें। जिस स्थान में पक्षीगण एकत्रित हों, वहाँ इसे जलावें और स्वयं नाक-कान पर कपड़ा बाँधलें, जिसमें धुँआ न लगे, जिस जानवर को धुँआ लगेगा वह मूर्च्छित होकर गिर जायगा। उसको पकड़कर जब गरम पानी में उसके बाल धोए जायेंगे, वह होश में आजायगा।

इसके पित्ते से नये कागज पर लिखने से रात में अक्षर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो सोने से लिखे हों।

वैद्यों के कथनानुसार कछुए का मांस बल्य एवं कामोद्दीपक है। यह वायु तथा पित्त के विकारों को उपशमित करता है। कछुए को खुनाक रोगी के पास इस प्रकार रखें कि उसके मुँह की हवा खुनाक को पहुँचे। इससे वह बहुत जल्द आराम हो जायगा। हकीम शरीफ ख़ाँ महाशय खुनाक में इसी प्रकार चिकित्सा करते थे। घाव पर प्रथम तेल लगाकर उसे चिकना करदें। पुनः कछुए की जलाई हुई अस्थि को पीसकर उस पर छिड़कें। तीन दिन में आराम हो जायगा। कर्कट (सर्तान) पर छिड़कने से भी उपकार होता है। यदि कोई ऐंद्रजालिक पुरुष को इस प्रकार बाँध दें, कि वह स्त्री से समागम न कर सके, तो इसकी अस्थि में जो प्यालानुमा होती है, पानी कर सिर पर डालने से खुल जाता है।

(ख़० अ०)

इसकी खोपड़ी के खिलौने बनते हैं।

नव्यमत

आर० एन० चोपरा—कछुए की चर्बी, कण्ठमाला (Scrofula), अस्थिवक्रता वा शोषरोग (Rickets), रक्ताल्पता (Anæmia) और फुफ्फुस विकारों में प्रयुक्त होती है। (इं० डू० इं० पृ० ५४६)।

नादकर्णी—कछुए से एक प्रकार का तेल प्राप्त होता है जो पांडु-पीतवर्णीय द्रव है इससे मत्स्यवत् गंध आती है और इसका स्वाद अप्रिय होता है। औषध में यह परिवर्तक, पोषणकर्त्ता और स्निग्धतासंपादक रूप से व्यवहार में आता है। यह विशेषतः कंठमाला, अस्थिवक्रता (Rickets) रक्ताल्पता (Anæmia) और फुफ्फुसविकारों, में प्रयोगित होता है।

मात्रा—१ से २ ड्राम तक।

कच्छपीय वैक्सिन (Vaccine of tortoise) यक्ष्मोपचारार्थ डाक्टर फ्रेंडमैंस वैक्सिन (Dr. Friendmau's vaccine) के गुणों की परीक्षा के लिये जर्मनी द्वारा नियोजित कमीशन की रिपोर्ट इस प्रकार है—"यक्ष्म प्रतिषेधनीय संघर्ष में यह वैक्सिन मूल्यवान् है। जैसा कि इसके १ या २ इंजैक्शन से ही आश्चर्यजनक फल हुआ। यह वैक्सिन कच्छप के यक्ष्मकीट के शुद्ध कल्चर से प्रस्तुत होता है।"

(Indian Materia Medica)

कछुए के अंडे की ज़र्दी का पापड़ बनाकर शिशुओं का खिलाने से उनका शोष रोग आराम होता है। कछुए के एक अंडे की ज़र्दी ब्रांडी २० बूँद, १॥ तोले गोदुग्ध और मात्रानुसार मिश्री

मिलाकर सेवन करने से भी उपर्युक्त लाभ होता है। —लेखक।

कछुई–दे० "कच्छपी"।

कछुवा–संज्ञा पुं० दे० "कछुआ"।

कछूर, कच्छूर–[कों] चन्द्रमूल। सुगंधबच। कपूरकचरी–(गु०, मरा०)।

कछूरम् कच्छूरम्–[मल०] चन्द्रमूल। कपूरकचरी–(गु०, मरा०)।

कछोल-कलंगु–[ता०] चन्द्रमूलिका। चंद्रमूल। कपूरकचरी (गु०)। (Kaempferia galanga, *Linn.*) कचूलकलंगु (ता०)।

कज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमल। पद्म। रा०। (२) अमृत। मे० जट्टिक।

कज़्–[फ़ा० । क़ज़ अ०] एक प्रकार का रेशम।

कज़...–[फ़ा०] दे० "क़ज़"।

क़ज़्–[अ०] छोटी पथरी।

क़ज़ड–[अ०] (१) आज्ञा। आदेश। (२) अनुमान। अंदाजा। (३) पूरा करना। (४) अंत करना। (५) मृत्यु। मौत।

कज़्ज़बीन–[फ़ा०] एक प्रकार का मधुर द्रव्य जो ओस की तरह झाऊ वा अन्य वृक्षों पर तुरंजबीन के समान जम जाता है। झावुकशर्करा।

कज़्डुगु–[ते०, मल०] सुपारी। क्रमुक। गुवाक।

क़ज़्ज़–[अ०] छोटी पथरी।

क़ज़्ज़–[अ०] पिस्सू।

कज़्ञ्जिक-कुरु–[मल०] कंजा। कठकरंज।

कजनन–[हिं०] बोरहे अरमनी।

कजपूती–संज्ञा स्त्री० [अं० केजुपुटी] कयपूती। कायापुटी। केजुपुटाई।

कजब–[?] कच्चा अंगूर। ग़ोरः (फ़ा०)।

क़ज़ब–[अ०] (१) बड़ा पेड़। (२) शलगम। इसपस्त।

क़ज़बः–[अ०] रतबः। इसपस्त।

क़ज़्या–[अ०] (१) आँख में किसी बाहरी चीज़ जैसे, तिनका आदि का पड़ जाना। Foreign-body in the Eye, (२) वह चीज़ जो आँख में पड़ जाय।

कज़्याउल्-उज़्न–[अ०] कान में किसी चीज़ का पड़ जाना। (Foreign body in the Ear)

क़ज़्र–[अ] (१) मैला कुचैला होने का भाव। अपवित्रता। निजासत। (२) कराहत होना। घिन मालूम होना।

कज़्र–[फ़ा०] कचूर। ज़रंबाद।

कज़्र-शिकाय–[ता०] कंजा। कठकरंज। सागर-गोला।

कजरा–संज्ञा पुं० [?] (१) दे० "काजल"। (२) एक प्रकार का बैल जिसकी आँखें काली रहती हैं। [म०] कुचिला। कुचला।

कजरी–[संज्ञा स्त्री०] दे० "कजली"।

संज्ञा पुं० [सं० कज्जल] (१) एक प्रकार की ईख। काला गन्ना। कृष्णेक्षु। (२) एक धान जो काले रंग का होता है।

कजल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अञ्जन। कज्जल। काजल।

कजला–संज्ञा पुं० [हिं० काजल] (१) कजरा। काजल। (२) एक काला पक्षी। मटिया (३) काली आँख का बैल।

कजली–संज्ञा स्त्री० [सं० कज्जली, हिं० काजल] (१) कालिख। श्यामता। (२) एक जाति की ईख जो बर्दवान (वर्द्धमान)में होती है। (३) पोस्ते की फसल का एक रोग जिसमें फूलते समय फूलों पर काली-काली धूलसी जम जाती है जिससे फसल को हानि पहुँचती है। (४) एक साथ पिसे हुये पारे और गंधक का चूर्ण। कज्जली। वि० दे० "पारा"। (५) एक गाय जिसकी आँख काली हो। (६) एक प्रकार की सफ़ेद भेंड़। इसकी आँख के पास काले बाल होते हैं।

संज्ञा स्त्री० [बं०] ईख। ऊख। गन्ना।

संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] विष्णुक्रांता। अपराजिता।

कज़्ह–[फ़ा०] लहात।

क़ज़्ह [अ०] पिस्सू।

कजा–संज्ञा स्त्री० काँजी। माँड़।

क़ज़्ज़ह–[अ०] सोने का टुकड़ा।

कज़्...नः–[फ़ा०] रेशम का कीड़ा।

क़ज़ाफ़त–[अ०] (१) दौर्बल्य। कार्श्य। दुबला-

पन । दुर्बलता । क्षीणता । (२) कृश होने का भाव वा क्रिया । दुबला पतला होना ।

क़ज़ाब–[मिश्र०] अज़ानुल् अ़ज़ का एक भेद ।

क़ज़ाबः–[अ़०] वज़ाग़ । साम अबर्स ।

क़(क़ु)ज़ाम–[अ़०] चने का पौधा । चणक ।

क़ज़ार–[अ़०] शीशा ।

क़ज़ारत–[अ़०] क़ज़र ।

क़ज़ाल–[अ़०] (१) सिर का पीछे का भाग । शिर पश्चात् भाग । (२) कान की लौ के पास का वह स्थान जहाँ बाल नहीं उगते । तस्निय: क़ज़ालान । अक़्ज़लः, कज़्ल (बहु०) ।

कज़िन्नील–[मल०] सरफोंका ।

कज़िन्निला–[मल०] सरफोंका ।

क़ज़ी–[फ़ा०] एक नमकीन बीज ।
तु०] जंगली राई ।

कजी–संज्ञा स्त्री० [?] बलूती । खजूर बूटी ।

क़ज़ाज़–[?] संगमरमर ।

कजीत– तु०] उटंजन । अंजुरह ।

कजीतकन–
कजीतन– } [तु०] अंजुरह ।

क़ज़ानून, क़ज़्नयून–[यू०] कटाई । जंगली बैंगन ।

क़ज़ीफ़–[अ़०] [बहु० क़ज़ाफ़, क़ज़्फ़ान] अतिकृश । अत्यन्त क्षीण । बहुत दुबला पतला ।

क़ज़ीब–[अ़०] [?] जननेंद्रिय । शिश्न । लिंग । ज़कर । उज़्बुल्ज़क़र । क़ुज़ुब (बहु०) Fenis (२) पेड़ की डाली । वृक्ष की शाखा । क़ज़्बान (बहु०) । (३) अंगूर की बेल ।

कजीम–[?] ग़ोरह ।

क़ज़ीम क़रीश–[अ़०] ख़र्नूब नय्ती ।

क़ज़ील–[?] ख़ार । तुर्मुश । Common black berry

कजु–[सिं०] काजू ।

कज़ु–[लेप०] बिछुवा । अवा । अल्ल ।

कजुअट्ट–[सिं०] काजू ।

कज़ुतप्पाल–[मल०] गदही का दूध । गर्दभी दुग्ध । शीर ख़र ।

कज़ुत्थई थुम्बई–[ता०] छोटा कुलफा (हिं०, बं०) । काटमण्डू (पं०) । गावजबान (सिं०) ।

कज़ुदैप्पाल–[ता०] गदही का दूध ।

कज़ूक–[फ़ा०] एक प्रकार का गोबरैला । ख़नाफ़स । ख़ुन्फ़सा ।

कजूर–[बं०, हिं०] खजूर । खर्जूर ।

कज़ूर–[फ़ा०] कचूर । जरंबाद ।

कज़ूरु–[गोआ] दमनपापड़ा । खेतपापड़ा ।

कजूली–[बं०] लाल गन्ना । रक्तेक्षु ।

क़ज़्आयन–[अन्दलु०] एक प्रकार का पौधा ।

कज़्ग़ा, कज़्ग़ाव, कज़्ग़ा, कज़्ग़ाव–[अ़०, फ़ा०] सुरा गाय ।

क़ज़्ज़–[फ़ा० कज़, कज से मुअ़०] रेशम की एक जाति ।

क़ज़्ज़–[अ़०] (१) नाक बींधना । (२) छेद करना । छिद्रीकरण । (३) कुमारित्व हरण । सतीत्व हरण ।

क़ज़्क़ानुल् उज़्नान–[अ़०] पिस्सू ।

क़(क़ि)ज़्ज़बः–[अ़०] छोटी सी पथरी । (२) चूना । (३) सिकता । रेत । (४) गच का पत्थर । ह़बसीन ।

कज्जल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नील कमल । निलोफर । (२) अंजन । काजल । हे० च० । त्रिका० । सि० यो० कामला–चि० । इसका अपर संस्कृत नाम लोचक है ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कज्जली । कज्जली । अत्रि० । (२) मेघ । बादल । शब्दमा० । (३) कालिख । स्याही । (४) सुरमा । (५) कज्जली । एक मछली । (६) काजल. अंजन आँजन । जब अंजन लगाना हो तो प्रथम अंगुली को ज़मीनमें घिसकर फिर अंजन करने से तिमिर काँच, अर्श और धूमिका का नाश होता है ।

(१) सीसा को पिघला कर त्रिफला, भांगरा, सोंठ, शहद, घृत, बकरी का दूध और गोमूत्र में बुझाकर इसकी सलाई तैयार करें । फिर इस सलाई को घिसकर आँजन करने से गरुड़ की सी दृष्टि होती है ।

(२) सीसा को पिघलाकर त्रिफला जल, भाँगरा रस, घृत, अफीम का घोल, बकरी का दूध और मुलहठी का रस इनमें सात-सात बार बुझा और सलाई तैयार कर प्रति दिन प्रातःकाल अंजन करने से स्वर्ण तुल्य पीला दिखाई देना तथा अर्म पैच्चिट्य रोग और नेत्र के श्वेत, कृष्ण भाग और

सन्धिमर्म में होनेवाले समस्त रोगों को यह दूर करता है।

(३) एक गूलर वृक्ष के काष्ठ का बना पात्र ले, उसमें अमली के पत्तों को डालें। पुनः उसमें गुञ्जा की जड़ को भिगोकर धूप में सुखाकर पीस लेवें। इसमें थोड़ा सेंधानमक मिलावें। फिर इसे सुन्दर अंजन में मिलाकर नेत्रों में लगाएँ, इसके प्रयोग से नेत्र के समस्त रोग जैसे—काच, अर्म, अर्जुन, पिच्छिट, तिमिर, स्राव इत्यादि दूर होते हैं।

(४) जल में खस, सेंधानमक बारीक पीस कर घृत मिलाएँ। पुनः इसे नेत्र में लगानेसे नेत्र में ठंडक प्रतीत होती है यह नेत्र के प्रत्येक बीमारी में हितकर है।

(५) सुरमा, मूँगा, समुद्रझाग, मैनशिल, कालीमिर्च, इनको जल में बारीक पीस बत्ती बनाएँ और नेत्र में लगाएँ। यह नेत्र के समस्त रोगों को दूर करता है।

(६) कमलके पुष्पकी धूली। को गौ के गोबर में पीसकर गोली बनावें। इसे नेत्रों में लगाने से रतौंधी और दिन में धुन्ध दिखाई देने में लाभ होता है।

(७) शंखनाभी, सोंठ, मिर्च, पीपर, सुरमा, मनशिल, हल्दी, दारुहल्दी, गौ के गोबर का रस, सफेद चन्दन—इन्हें बारीक पीसकर गोली बनाएँ। इसका अंजन करने से रात और दिन में धुन्ध दिखाई देना दूर होता है। (भै० र०)

(८) एक टुकड़ा नवीन स्वच्छ कपड़ा लें और उस पर कपूर, अफीम, रसवत, लवंग, फिटकिरी, हल्दी, जोरा सफेद और सोयाके बीज इनको जलमें पीस कर लेप करें। जब कपड़ा अच्छी तरह सूख जावे, इसकी एक बत्ती बना लें और कटु तेल में भिगोकर लोह के पात्र में काजल पारें।

गुण—इसे प्रति दिन बालकों के नेत्रों में आँजने से नेत्र रोग शून्य रहते हैं। —लेखक

कज्जलध्वज—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दीपाधार दीयट। दीवट।

पर्य्या०—कज्जलरोचकः, कौमुदीवृक्षः, दीपवृक्षः शिखातरुः, दीपध्वजः (ज०), ज्योत्स्नावृक्षः, (त्रिः)। (२) चिराग। प्रदीपशिखा।

कज्जलरोचक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०-क्ली०] दे० "कज्जलध्वज"।

कज्जला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मछली। C(yprinus atratus)। इसका संस्कृत पर्याय कज्जली और अनण्डा है। दे० "कज्जली वा पारा"।

कज्जलि, कज्जलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कज्जली"।

कज्जलित—वि० [सं० त्रि०] (१) काजल लगा हुआ। आँजा हुआ। अंजनयुक्त। (२) काला स्याह।

कज्जली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार की मछली। मीन विशेष। (२) एक साथ पिसे हुये पारे और गंधक की बुकनी। श० र०। वि० दे० 'कज्जली" वा "पारा"।

शुद्ध पारद और शुद्ध गंधक आमलासार समान भाग लेकर खरल में डालकर इतना घोटें कि पारद अदृश्य हो जाय और दोनों आपस में मिलकर कजल के समान स्याह हो जायँ। इसे कज्जली कहते हैं। यह वृंहणी, वीर्यवर्धनी और अनुपान भेद से समस्त रोगों का नाश करनेवाली है। वृ० रस रा० सु०। ज्वर-चि०।

कज्जली भेद

कटेली, संभालू और नाटाकरंज के रस को एक ठीकरे में डालकर उसमें गंधक का चूर्ण डाल कर मन्दाग्नि पर रक्खें। जब गंधक पिघल जाय, तब उसमें समान भाग पारा डालकर उसे जल्दी से मिलाकर नीचे उतार लें और फिर यहाँ तक खरल करें कि वह कजल के समान स्याह हो जाय।

सेवन-विधि—सन्निपातज्वर में—१ रत्ती कज्जली और १ माशा जीरे का चूर्ण तथा १ माशा सेंधानमक मिलाकर पान में रखकर खिलायें और ऊपर से गरम पानी पिलायें।

वमन में इसे—मिश्री के साथ, आमदोष में गुड़ के साथ, क्षय में बकरी के दूध के साथ, रक्तातिसार में कुड़े की जड़ की छाल के रस के साथ और खून की उल्टी में गूलर के रस के साथ दें।

यह कज्जली सर्व व्याधिनाशक, आयुर्वर्धक और आसन्नमृत्युमनुष्य को भी जीवन दान देनेवाली है। वृ० रस रा० सु० ज्वर-चि०।

पारे और गंधक की कज्जली को गौ मूत्र में और एरण्ड के तेल के साथ पीने से अण्डवृद्धि का शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० अण्डवृद्धि चि०। (३) स्याही।

कज्ज्वल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कज्जल। अञ्जन। सुरमा।

कज़्.त़ख़ूर्न, कज़्त़ख़ूर्न–[फ़ा०] अकरकरा। आकरकरभ।

क़ज्दी (ज्वी)–[अ़०] एक पौधा। जिससे नमक बनाते हैं।

क़ज्दीर– अ़०] राँगा। बँग। अर्ज़ीज़।

कज़्.दुम–[फ़ा० कज़्..=टेढ़ा+दुम=पूँछ] (१) बिच्छू। वृश्चिक। (२) अकरकरा।

क़ज़्..दुम जरारह–[फ़ा०] एक प्रकार का बिच्छू जो अपनी पूँछ जमीन पर घसीटता चलता है।

नोट—बुर्हान ने भूल से जरारह की जगह ख्वारह लिखा है।

कज़्..दुम दरियाई–[फ़ा०] दरियाई बिच्छू। नादेय वृश्चिक। सिंगी मछली।

कज़्..दुमबहरी–[फ़ा०] सिंगी मछली।

कज्नः–[फ़ा०] तुख्म अंजुरह।

कज्नहे दश्ती–[फ़ा०] लामजक। खवी इज़ख़िर।

कज्प(ज्ब) रना–[सिरि०] धनियाँ।

कज्फ़–[फ़ा०] जलाई हुई चाँदी। क़ीर।

क़ज़्.फ़–[अ़०] क़ै करना। उगिलना। फेंकना।

क़ज़्.फ़ुल्कल्ब–[अ़०] एक प्रकार का हृद्रोग जिसमें रोगी को ऐसा प्रतीत होता है, मानो उसका हृदय छाती से बाहर निकला आता है।

टैकी कार्डिया Tachy cardia अं०।

क़ज़्बः–[अ०] रतबा।

कज्बः–[?] उसारहे रोग़न।

कज़्बा–[फ़ा०] एक प्रकार का रेबास।

कज्बुन–[काश०] गावज़वाँ।

क़ज़्म–[अ़०] (१) पुरानी रूई। (२) दाँतों या दाढ़ों के किनारे से खाना। सूखी चीज़ खाना। दे० "ख़ज़्म"।

क़ज़्म–[अ़०] चिड़ा जैसी एक चिड़िया। नग़र।

क़ज़्म क़रीश–[अ़०] चिलगोजा (चाहे छोटे हों वा बड़े)।

कज़्माज़–
कज़्माज़क–
कज़्माज़क़–
कज़्माज़ज़–
} [मुअ़०] झाऊ का फल। झावुक फल।

कज़्.रः–[फ़ा०] एक सुगन्धिमय पौधा।

कज़्..रफ़–[फ़ा०] एक प्रकार की घास जो इतनी दुर्गन्धित होती है कि यदि वह हाथ में पकड़ जाय तो चिरकाल तक उसकी दुर्गन्धि दूर नहीं होती।

कज्वा–[फ़ा०] एक प्रकार का रेबास।

कज्वाँ–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक सुगन्धिमय उद्भिज्ज जिसमें तना नहीं होता और उसमें पत्र जड़के समीप से निकलते हैं। आकृति में ये जर्जीर या तरामिरा के पत्तों की तरह होते और ये हरियाली लिये होते हैं। इनका सिरा गोल और नीचे का भाग थोड़ा कटवाँ होता है।

नोट—अरबी में इसे बक़्लहे उत्रुजियः कहते हैं; क्योंकि इसमें उत्रुज अर्थात् बिजौरा नीबू की सी सुगध आती है। इसे बक़्लहे फ़िल्फिल्यः इसलिये कहते हैं, कि इसके स्वाद में कालीमिर्च जैसी तीक्ष्णता होती है। इसको बादरंजबूया भी कहते हैं। यद्यपि बादरंजबूया वस्तुतः एक भिन्न चीज़ है।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष। हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को। इसका अत्यधिक उपयोग शिरःशूल एवं पेशाब में जलन उत्पन्न करता है। दर्पघ्न—सिकञ्जबीन और शीतल रबूब इत्यादि।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह मनोल्लासजनक है। हृदय और आमाशयिक द्वार (फ़म मेदा) को शक्ति प्रदान करती, चिंता एवं उदासीनता को निवारण करती, ख़फ़क़ान सर्द को नष्ट करती, बिच्छू का ज़हर उतारती और हर प्रकार के शीतल विषों को गुणकारी है। यह शरीर में खूब गरमी पैदा करती है। ख़० अ०।

क़ज़्.ह–[अ़०] पिस्सू।

क़ज़्ह़–[अ़०] (१) कुत्ते का पेशाब। श्वानमूत्र। (२) प्याज का बीज। (३) मसाला।

क़ज़्ह़्.य्यः–[अ़०] आँख का अंगूरी परदा। उपतारा। इ़नबिय्यः (अ़०)।

कञ्चिकी, सी–[बर०] गर्जन तैल।

कच्च–संज्ञा पुं० [सं०] काँच। शीशा। [मज़०] गाँजा।

कच्चट, कच्चड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) गजपिप्पली। गजपीपर। बड़ी पीपर। वै० निघ०। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध जलज शाक। जल चौलाई। जल तण्डुलीय। र० मा०। च० द०। सि० यो० कच्चटादि। भा० म० १ भ० अ० सा० चि०। जलचौलाई वा कच्चट के संस्कृत पर्य्या०—जलभूः, लाङ्गली, लाङ्गली (श०), शारदी, तोयपिप्पली, शकुलादनी (र०), जल-तण्डुलीयं।

गुण—यह धारक, कफकारक, शीतल, रक्तपित्त नाशक और हलका है। राज०। यह वातनाशक और कड़ुआ है। भा० पू० १ भ० शा० व०। वि० दे० "चौलाई"। (३) महाराष्ट्री। मराठी। मरेठी। के० दे० नि०। नि० शि०।

कच्चटपत्रक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल चौलाई की पत्ती। कच्चटच्छद। रस० र० ग्रहणी कपाट रस।

कच्चट पल्लव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जलचौलाई। कच्चट। सि० यो० ग्रह० चि० जम्ब्वादि।

कच्चटादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चक्रदत्त में एक काढ़ा जिसका व्यवहार अतिसार में होता है। इसमें पड़नेवाली जलचौलाई आदि ओषधियों की पत्ती ग्रहण करनी चाहिये। जैसे, जलचौलाई की पत्ती, अनार की पत्ती, जामुन की पत्ती, सिंघाड़े की पत्ती, सुगंधवाला, नागरमोथा और सोंठ। इनको समभाग लेकर यथाविधि काढ़ा प्रस्तुत कर सेवन करने से गंगा के समान वेगवान् अतिसार का भी नाश होता है। च० द० अतिसार–चि०।

नोट—इसमें उपर्युक्त ओषधियाँ २–२ तो० ले आध सेर जल में पादावशेष जल रहने तक पकाने का विधान है।

कच्चटावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक अवलेहौषध जिसका उपयोग ग्रहणी रोग में होता है।

योग तथा निर्माण-क्रम—कच्चट और तालमूली प्रत्येक १–१ सेर को १६ सेर जल में यहाँ तक पकायें, कि ४ सेर जल शेष रह जाय। फिर इसे छानकर एक सेर चीनी मिला पुनः पाक करें। जब पकते पकते चौथाई रह जाय, तब उसमें वराहक्रान्ता, धायकीपुष्प, पाठा, बेलगिरी, पीपल, भाँग की पत्ती, अतीस, जवाखार, सोंचल, रसौंजन और मोचरस प्रत्येक का चूर्ण २–२ तो० मिलायें। ठंडा होने पर इसमें एक पाव शहद मिलादें। बस "कच्चटावलेह" तैयार है। इसे दोष, बल एवं काल विचारपूर्वक मात्रा के अनुसार उपयोग करने से यह अवलेह, अतिसार, ग्रहणी, अम्लपित्त उदररोग, कोष्ठज विकार, शूल और अरुचि का निवारण करता है। च० द०। सा० कौ०।

कच्चटु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कच्चट। छोटे पत्तों का कच्चट शाक।

कच्चड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कच्चट का एक भेद।

पर्य्या०—कच्चटः, काचः, चक्रमर्दः, अम्बूपः (श)।

कच्चन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कचनार। रक्तकांचन। वै० निघ०।

कच्चार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरज। सूर्य।

कच्चिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काञ्जिक। काँजी। अ० टी० भ०।

कच्चिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वेणुशाखा। कनखी। कनई। बाँस की डाल। श० च०।

पर्य्या०—कुञ्चिका, क्षुद्रः (श०)। (२) छोटा फोड़ा। क्षुद्र स्फोट। कुंजिया। रा० नि० व० २०। (३) सोंचल नमक।

कच्ची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काला जीरा। (२) वंशशाखा। बाँस की कनई।

कच्चु, कच्चुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कच्चुकी] (१) केचुल। सर्प की काँचली। सर्पत्वक्। हे० च०। (२) ऊँट। (३) स्तर। (Coat) अ० शा०। (४) चोलक। जामा। चपकन। अचकन। (५) एक औषध। मे० कत्रिकं। (६) वस्त्र मात्र। (७) चोली। अँगिया। सीने पर पहना जानेवाला कपड़ा।

संस्कृत पर्य्या०—चोलः, कञ्चुलिका, कुर्वासक, अङ्गिका।

कच्चुक शाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का शाक। एक प्रकार की सब्ज़ी का पौधा। वैद्यक-निघंटु में इसे वातकारक, ग्राही, क्षुधाजनक और कफपित्तनाशक लिखा है।

कच्चुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) असगंध। अश्वगंधा। (२) कच्चुकशाक। वै० निघ०।

कच्चुकालु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सर्प।

साँप। (२) काल सर्प। श० च०।

कञ्चुकि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जौ। यव रा० नि० व० १६।

कञ्चुकी-संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] चोली। अँगिया। (२) क्षीरीवृक्ष। क्षीर खजूर। र० मा०। र० सा० सं०। क्षीर कञ्चुकी। रस० र० वह्नि भल्लातके, महाभल्लातक गुड़े। (३) शरपुंखा। सरफोंका। (४) कञ्चुक शाक। (५) एक ओषधि। मे०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं० कञ्चुकिन्] (१) छिलकेवाला अन्न, जैसे—जौ, चना, धान इत्यादि। (२) साँप। सर्प। रा० नि० व० १६। (३) जोङ्गक वृक्ष। अगर। मे० नचतुष्कं। (४) उक्त नाम का एक प्रकार का घोड़ा। दोषान्वित घोड़ा।

लक्षण—"स्कन्धे वक्षसि वाहोश्च अंसदेशे तथैव च। अन्यवर्णो भवेद्राजी कञ्चुकी सः प्रकीर्त्तितः।" ज० द० ३ अ०।

जिस घोड़े का कंधा सीना और बाहु देश अन्य वर्ण का होता है उसे विद्वान् "कंचुकी" कहते हैं।

(५) अलता। यव। जौ। धान्य राज। धन्व नि०।

[मरा०] असगंध। अश्वगंधा।

कञ्चुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] अँगरखिणी। काँचुली। हे० च० नाना० (२) चोली।

कञ्च-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिर के बाल। केश। मे० जद्विकं (२) ब्रह्मा।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमल। पद्म। (२) अमृत। वै० निघ०।

कञ्चक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पक्षी। मैना। श० च०। मदनपक्षी।

कञ्चन, कञ्चल-संज्ञा पुं०[सं०पुं० (१) मैना नाम की चिड़िया। कञ्चक। श० च०। (२) कन्दर्प। कामदेव।

कञ्चन-बीर-संज्ञा पुं० [सं०] मृदु-निर्विषा।

कञ्चमूल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमलकन्द। भसींड। कमल की जड़। वै० निघ०।

कञ्चयोनि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] शालूक। भसींड़। कमलकन्द। श० च०।

कञ्चर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी। गज। (२) शिर के बाल। केश।

संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] (१) धातकी। (२) पाटला। पाढ़ल। (३) उदर। पेट। मे० रत्निक०।

कञ्चलता-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक बेल। (Asclepias Odoratissima)

कञ्चलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अँगरखिणी। काँचुली। चोली। हे० च०।

कञ्चार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जठर। उदराग्नि। (२) गज। हाथी। मे० रत्निकं। (३) सूर्य। (४) ब्रह्मा। (५) मोरपंखी। मयूर। (६) व्यञ्जन। (७) अगस्त्यमुनि।

कञ्जिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काँजी। काञ्जिक। अ० टी० भ०।

कञ्जिका-संज्ञा स्त्री० [स० स्त्री०] भारंगी। भार्गी। ब्राह्मणयष्टिका। श० र०।

कञ्जी-संज्ञा स्त्री० [सं०=करंजी] डिठोहरी।

कञ्जुरिण-[मल०] भँगरा। भृङ्गराज।

कट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी का गण्डस्थल। हाथी की कनपटी। (२) किलिञ्जक। दरमा। चटाई। (३) गण्डस्थल। (४) खस, सरकंडा आदि घास। तृण। घास फूस। (५) कटि प्रदेश। कमर। (६) शव। लाश (७) नरकट वा नर नाम की घास। नल। (८) समय। अवसर। वक्र। (९) ओषधि विशेष। एक जड़ी बूटी। (१०) शर नामक तृण। (११) कटि के पार्श्व का स्थान। (१२) तृण रज्जु।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) अश्व की चालनाके लिए रचित भूमि। घुड़दौड़का मैदान। (२) पराग। फूल की धूल। इस अर्थ में यह शब्द समासांत में आता है।

वि० [सं० त्रि०] (१) अतिशय। बहुत। (२) उग्र। उत्कट।

कट अवेरी-[म०] कलकीतक। सुरमैनिल। Indigofera argentea, *Linn.*

कट-इलिमवम्-[ता०] माकड़लिम्बू। मतंगनार (म०) atalantia monophylla, *Corr.*

कट इल्लिपी-[ता०] मदुआ। मधूक।

कटइल्लुपी–[ता०] देशी महुआ ।

कटएलु-मिच्छई–[ता०] जंगली जंभीरी ।

कटक–संज्ञा पु० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सामुद्र लवण । सामुद्रिक नमक । समुद्रलोन । संधव लवण । रत्ना० । (२) हाथी के दांतों पर पीतल के चढ़े हुए बंद वा साम । मे० कत्रिक । (३) पर्वत का मध्य भाग । पहाड़ के बीच की जगह । इसका संस्कृत पर्याय—नितंब और मेखला है । (४) नितंब । चूतड़ । (५) परिहार्य्य । (६) रज्जु । रस्सी । डोरी ।

कटक काल्ल–[कना०] तिधारा सेहुँड़ । सेहुण्ड । स्नुही ।

कटकटिका–संज्ञा स्त्री० [हिं० कटकट] एक प्रकार की बुलबुल । शीतकाल में यह पर्वत से नीचे समतल भूमिपर उतर आती और वृक्ष वा भित्ति के खोखले में घोंसले बनाती है ।

कटकटेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहल्दी ।

कटकडलक्का–[मल०] खत्मी भेद । Country Mallow.

कटकमी–[ते०] निमेली । कतक ।

कटकम्बा–[कना०] पिरडार । करहाट ।

कटकरंज–संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+सं० करंज] एक प्रकार का कंजा । सागरगोला । पूतिकरंज । कटकलेजा । दे० "करंज (२)" ।

कटकली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अल्पायुषी । कुवाजी ।

कटकलेजा, कटकलेजी–संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं० काठ +कलेजा] कटकरंज । सागरगोला । पूतिकरंज ।

कटकामतो–[कों०] चिनचिनी (मरा०) ।

कटकारी–संज्ञा स्त्री० दे० "कंटकारी" ।

कटकालिका–संज्ञा स्त्री० दे० "कंटकालिका" ।

कटकिलङ्ग–[ते०] मौ आलु (बं०) । मध्वालु । मनालू ।

कटकी–संज्ञा स्त्री० [बं०, हिं०] कुटकी ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गज । हाथी । श० र० । (२) पर्वत ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल मिर्च ।

कटकुम्बला–[कना०] पिरडार ।

कटकेलेङ्ग–[मदरास] मध्वालु । मनालू । Dioscorea aculeata, *Linn*,

कटकोमजङ्ग–[संथाल०] डुरचु (नैपा०) ।

कटकोमल–[ता०] वस्त्रा । मसंदरी (बं०) ।

कटकोल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीकदान । निष्ठीवन पात्र । थूकने का बरतन ।

कटखदिर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कौआ । काक । (२) सियार । गीदड़ । शृगाल । मे० ।

कटखादक–संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१)काचलवण । काचियानोन । (२) काचकलस । शीशे का घड़ा । (३) कौआ । बलिपुष्ट । (४) सियार । गीदड़ । जम्बुक । मे० कपञ्चक ।

वि० [सं० त्रि०] (१) भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला । सर्वभक्षी । (२) शवभक्षक । मुर्दाखोर ।

कटगूलर, काटगूलर–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+गूलर] कठूमर । काकोदुम्बरिका । जंगली अंजीर । Ficus Hispida, *Linn.*)

कटङ्कट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अग्नि । आग । (२) दारुहरिद्रा । दारहल्दी । भैष० मु० रो० वृहत् खदिरवटी । (३) स्वर्ण । सोना ।

कटङ्कटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आच्छुक वृक्ष । आल का पेड़ । द्रव्याभि० । पर्य्याय—महाभद्रा, पीतभद्रा, पीतदारु विदारिका ।

कटङ्कटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहलदी दारुहरिद्रा । वै० निघ० ।

कटङ्कटेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] (१) दारुहल्दी । दारुहरिद्रा । प० मु० । (२) हल्दी । हरिद्रा । त्रिका० ।

कटजीरा–संज्ञा पुं० [सं० कणजीरक] काला जीरा । स्याह ज़ीरा । कृष्णजीरक ।

कटचूर–[द०] कचूर ।

कटड़ा–संज्ञा पुं० [सं० कटार] भैंस का पँड़वा या नर बच्चा ।

कटडूवायट्ट–[मल०] ग्वारपाठा ।

कटतुरक्षी–[ता०] सोरन ।

कटतेल्लु–[ता०] काला तिल ।

कटन–संज्ञा पुं० [?] सफ़ेद सेंमल । श्वेत शाल्मली ।

कटनास–संज्ञा पुं० [देश०] नीलकंठ । नीलागडांस ।

कटनीम–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+नीम] सुरभिनिम्ब । कड़ी नीम । मीठा नीम । Murraya Koenigii, *Spreng.*

कटनूस पाउडर–संज्ञा पुं० [अं० Kutnow,s powder] एक चूर्णौषध विशेष।

कटपञ्चक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] घुड़दौड़ के लिये इन पाँच प्रकार की भूमियों का समाहार। मण्डलाकार, चतुरस्र, गोमूत्राकार, अर्द्धचन्द्राकार और नागपाशाकार। नकुल ने लिखा है—

"धनुरष्टादशे योज्यं वाजिनां मण्डलं क्रमात्। संकोचयेज्जवं यावद्यावत्कटपञ्चकम्। तदूर्द्धं मण्डली याज्या गोमूत्रा तदनन्तरम्। ऋजुवर्त्मसु वर्त्तौ च गोमूत्रा सर्व्वे कर्म्मसु। युज्यमाना न दृश्यन्ते प्रायशो हि विचक्षणैः।

ज० द० ७ अ०।

कटपाडरी–संज्ञा स्त्री० [सं० काष्ठपाटला] एक प्रकार का पाटला। पाढर। पाढल। अधकपारी।

कटपून–[कना०] केल पूने।

कटपोरा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की पूरी।

कटप्पा–[मल०] जगली बादाम।

कटप्रोथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूतड़। नितम्ब। स्फिच्। (२) कटि। कमर। श० चि०।

कटफल–संज्ञा पु० दे० "कट्फल"।

कटफिट–[सिरि०] पारसीक यमानी। अजवायन खुरासानी।

कटबेर–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+बेर] (१) सीता बेर। (ककोर) दे० ककोर।

कटबेल–संज्ञा पुं० [हिं० कठबेल] कैथ। कपित्थ।

कटबेल की गोंद–संज्ञा स्त्री० [हिं०] कैथ की गोंद। कपित्थ निर्यास।

कटभङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथ से अनाज के काटने की क्रिया या भाव। लुनना। हारा०। (२) सोंठ। शुंठी। त्रिका०।

कटभि, कटभी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कण्टक शिरीष। काँटा सिरस। रत्ना०। (२) लता सिरस। लता शिरीष। वल्लीशिरीष। प० मु०। (३) लघु ज्योतिष्मती लता। छोटी मालकँगनी। रा० नि० व० ३, २३। वै० निघ० २ भ० उन्मा० चि० निशादिवृत। (४) मुसली। मुषली। रा० नि० व० २३। (५) अपसजिला। कोयल। अप० चि० स्मृति सागर रस। (६) अश्व चुरक। (७) गर्दभी। (८) एक प्रकार का वृक्ष जो सभोले आकार का होता है। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिए लम्बे होते हैं और फल अंडखरबूजे के समान छोटे होते हैं। फूल सफेद किंचित् दुर्गन्ध युक्त होता है। इसमें चार पँखड़ियाँ होती हैं। इसकी छाल हलके भूरे रंग की होती है। यह भारतवर्ष, लका, मलाया प्रायद्वीप और श्याम में उत्पन्न होती है।

पर्याय—कटभी, नाभिका, शौण्डी, पाटली, किणिही, मधुरेणुः, क्षुद्रशामा, कैडर्यः, श्यामला (स्वादुपुष्प, कटम्भर, किणिही, भद्रेन्द्राणी) रा० नि० व० ६।–सं०। हरिमल, करभी, कटभी –हिं०।

श्वेत कटभी—सितकटभी, श्वेत किणिही, गिरिकर्णिका, शिरीषपत्रा, कालिन्दी, शतपादी, विषघ्निका, महाश्वेता, महाशौण्डी, महाकटभी –सं०। रा० नि० व० ६।

नोट—कृष्ण और श्वेत भेद से कटभी दो प्रकार की होती है। इनमें से श्वेत के महा और ह्रस्व ये दो उपभेद और होते हैं।

गुणधर्म

कटभी भवेत्कटूष्णा गुल्मविषाध्मानशूलदोषघ्नी।
वातकफाजीर्णरुजाशमनी श्वेताच तत्रगुणयुक्ता॥

(रा० नि० व० ६)

कटभी (कृष्ण)—चरपरी, गरम तथा गुल्म, विष, आध्मान, शूल, वात, कफ और अजीर्णरोग को दूर करती है। श्वेत कटभी भी इसी के समान गुणवाली है।

कटभी तु प्रमेहार्शो नाड़ीव्रण विषकृमीन्।
हन्त्युष्णा कफकुष्ठघ्नी कटूरूक्षा च कीर्त्तिता॥
तत्फलं तुवरं ज्ञेयं विशेषात्कफशुक्रजित्। भा०

कटभी—प्रमेह, बवासीर, नाड़ीव्रण (नासूर), विष, कृमि, कफ और कोढ़ को नष्ट करती है। यह गरम, चरपरी और रूखी है। इसका फल–कसेला है और विशेषतः कफ तथा शुक्रनाशक है।

कटभी कटुका चोष्णा तुवरातिकफामता।
नाड़ीव्रणं रक्तरुजं प्रमेहञ्च विषंकृमीन्॥
श्वेतकुष्ठं कफञ्चैव त्रिदोषञ्च व्रणन्तथा।
शिरोरोगमजीर्णञ्च नाशयेदिति कीर्त्तिता॥
फलञ्चास्या धातुवृद्धिकरं कफवर्द्धकञ्च।
निर्यासोऽस्या गुरुर्वृष्यो वल्योवार्तावनाशनः॥

कटभी (महाश्वेत)—चरपरी, कसेली, कड़वी

और गरम है तथा नाड़ीव्रण (नासूर) रक्तविकार प्रमेह, विष, कृमि, सफेद कोढ़, कफ, त्रिदोष, व्रण, शिर के रोग और अजीर्ण—इनका नाश करती है। इसका फल धातुवर्द्धक एवं कफवर्द्धक है और इसका निर्यास गुरु, दृष्य, वल्य तथा वायुनाशक है।

क्षुद्रा च कटभी चोष्णा कटुका कुष्ठहा मता।
कफहा रक्तदोषघ्नी मेदोरोगहरः परा॥
नाड़ीव्रणं विषं मेहं कृमींश्चैव विनाशयेत्।
कटभीवत् फलैर्गुणा ज्ञेयाः.....॥
(वै० निघ०)

कटभी (ह्रस्व)—चरपरी, गरम, कुष्ठरोगनाशक, कफनाशक, रक्तविकार को दूर करनेवाली, मेदरोगनाशक तथा नाडीव्रण (नासूर) विष, प्रमेह और कृमि इनको नष्ट करती है। इसके फल गुण में कटभी की तरह होते हैं।

कटभी तैल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक साधित तैलौषध। योग-कटभी, नीम(बकायन ?)सोनापाठा, और मीठे सहिजन की छाल के क्वाथ और गोमूत्र से सिद्ध तैल मदन करने से अपस्मार (मिरगी) नष्ट होता है। यो० र० अपस्मार चि०

कटभीत्वक् संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटभी वृक्ष की छाल। कटभी वल्कल। च० द० उन्मा० चि०।

कटमट–संज्ञा पुं० [?] एक बूटी जो प्रायः बगीचों में होती है। उस रोगी को जिसे कै आती हो, एक दो बार इसका स्वरस पिलाने से लाभ होता है; किंतु उसमें तीन काली मिर्चें भी मिला लेवें। इसके रस में सीसे को खरल करने से सीसा मर जाता है। मक्खन में देने से सूज़ाक शुक्रमेह, शुक्रतारल्य, शीघ्रपतन और हृदयौष आराम होता है। (ख़ा० अ०)।

कटल इम्बुल–[सिं०] सेमल। शाल्मली।

कटमा–[ता०] पियार। अचार। पियाल।

कटमाम्र–[ता०] अम्बाड़ा।

कटमानक–[मल०] जंगली रेंड़।

कटमालनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मदिरा। शराब। श० च०।

कट(काट) मोरगं–[ता०] अडवी मूनग (ते०)। (Ormocarpum sennoides, *D.C.*) फा० इं० १ भ०।

कटमावा–[गढ़वाल] वकलवा। मोवा।

कटम्पम–[द०, मदरास, ता०]एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा। (Siegesbeckia orientalis, *Linn.*) कटम्पू (ता०)। ही-किएन, काउकाउ (चीन)। लिकुरा। (गढ़०)।

कटम्पू–[ता] एक झाड़ी जो १ से ३ फुट ऊँची और बहुत शाखादार होती है। इसकी पत्तियाँ सम्मुखवर्ती, चौड़ाई लिए त्रिकोणाकार वा अंडाकार होती हैं। फूल पीले रंग के होते हैं। कटम्पम, ही किएन, काउ-काउ (चीन)। (Siegesbeckia orientalis, *Linn.*)

कटम्बरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] कुटकी। कटम्भरा। दे० "कटम्भरा"।

कटम्बल–[हिं०] पिरनी।

कटम्बी– [बम्ब०] कोकम।

कटम्भर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (?) अरलु। सोनापाठा। श्योणाक वृक्ष रा० नि० व० ६। (२) कटभी नामक वृक्ष। करभी। वै० निघ०। (३) भद्रपर्णी।

कटम्भ(म्ब) रा, कटुम्भरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१)। कुटकी। कटुकी। मे० र० मा०। भा० पू० १ भ० गु० व०। (२) गंधप्रसारिणी। पसरन। (३) दन्ती का पौधा। (४) गोह। गोधा। (५) बधू। हारा०। (६) अरलु। सोनापाठा। श्योणाक वृक्ष। भा० पू० १ भ०। अने०। (७) हथिनी। करिणी। (८) कलम्बिका। (९) मूर्वा। चुरनहार। (१०) पुनर्नवा। मे० रचतुष्क। (११) राजबला। अम०। महाबला। सहदेई। रा० नि० व० ४।

कटयालु–[ता०] मास्वर (म०)।

कटर–संज्ञा स्त्री० [सं० कट=नरकट वा घास फूस] एक प्रकार की घास जिसे पलवान भी कहते हैं।

कटरना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली।

कटरली, कटराली–[ता०] एक प्रकार का सुहावना पेड़, जो भारतवर्षके समुद्रतटों, सुन्दरबन और लंका आदि स्थानों में होता है। आडलम् (मल०)। दबूर, धकुर–(बं०)। फा० इं० २ भ०।

कटरा–संज्ञा पुं० [?] पँड़वा। भैंस का नर बच्चा।

कटरिया–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान, जो आसाम में बहुतायत से होता है।

कटरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] धान की फसल का एक रोग।

संज्ञा स्त्री० [बम्ब०] निर्गुंडी। सम्हालू। म्योंड़ी।

संज्ञा स्त्री० [सं० कट=नरकट] किसी नदी के किनारे की नीची और दलदल भूमि।

कटरे-इरिकि–[सिंगा०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।

कटरैन–[पं०] गिदड़ द्राक। द्राक्षी।

कटल–[आसाम] शरीफा। सीताफल।

कटल टेङ्गा–[मल०] दरियाई नारियल।

कटलता–[बं०] दुपहरिया। बंधूक पुष्प।

कटलतीगे–[ते०] पाताल गरुड़ी। छिरेटा। जल जमनी।

कटलाकटु तौगरी–[का०] अरहर।

कटलाटी (ती)–[मल०] अपामार्ग। चिचिंटा। खटजीरा। चिचिड़ी।

कटला वणक्कु–[मल०] जङ्गली जमालगोटा।

कटलेती–[ते०] जमती। छिरहटा। पाताल गरुड़। फ़रीद बूटी।

कटले तीगे–[ते०] जमती। छिरहटा। फरीद बूटी।

कटल्ली-कल्ली-कई–[ता०] अज्ञात।

कटव जाटे–[ता०] लक्ष्मणा।

कटवा–संज्ञा पुं० [हिं० कांटा] एक प्रकार की छोटी मछली जिसके गलफड़ों के पास कांटे होते हैं।

[अफ़गा०] काकादनी। कबर (अ०)।

(Gapparis Spinosa, *Linn.*)

कटविश–[बं०] बच्छनाग। वत्सनाभ।

कटवेल–[म०] विशाला। विषलम्भी। महा इन्द्रायण। बड़ा इनारून।

(Cucumis Trigonus, *Roxb.*)

कटव्यञ्जनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी। नि० शि०।

कटवाँसी–संज्ञा पुं० [हिं० काठ + बाँस, वा कोट + बाँस] एक प्रकार का बाँस जो प्रायः ठोस और कँटीला होता है। और जिसकी गाँठें बहुत समीप समीप होती हैं, यह सीधा नहीं बढ़ता और घना जमता है। इसे ग्राम के चारों तरफ लगा देते हैं। बहुपीला नहीं होता।

कट शर्करा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गाङ्गेष्ठी लता। नाटा (बं०)। हारा०। (२) औषधि विशेष।

कटसरैया–संज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] अड़ूसे की तरह का एक काँटेदार पौधा जिसमें पीले, लाल, नीले और सफ़ेद कई रंग के फूल लगते हैं। कटसरैया कार्तिक में फूलती है।

कटसरैया के सामान्य पर्य्या०—कटसारिका, झिण्टी, झिण्टिका, झिण्टिरीटिका, अल्मानः, कण्ट कुरुण्टः, कण्टकुरण्टः, सहचरः, सहाचरः, सौरीयकः, सैरेयकः, सैरेयः, कुरुण्टिका, कुरुण्टी, महासहा– सं०। कटसरैआ, कटसरैया, पियावासा, पियाबाँसा, झिण्टी–हिं०। झांटी गाछ, कुलझांटी, झिंटि–बं०। करोण्ट, कोरण्ट, आबोलि–मरा०। काँटा असेलीयो–गु०। गोरंटे–कना०। पैकुटी (पीत तुष्पीय)–कों०। गोरेण्डु–तै०। गिरितिल्व–सिं०। Barleria

नोट—उपर्युक्त संज्ञाओं में फूल के वर्णका वाचक शब्द जोड़ देने से तत् तत्पुष्पीय झिण्टी वा कटसरैये का बोध होता है। अलग अलग रंग के फूलों के भेद से कटसरैया विविध प्रकार की होती है।

धन्वन्तरीय निघण्टु—में लिखा है, "सैरेयकः सहचरः सैरेयश्च सहाचरः। पीतो रक्तोऽथ नीलश्च कुसुमैस्तं विभावयेत्। पीतः कुरण्टको ज्ञेयो रक्तः कुरबकः स्मृतः।" उक्त वर्णन से यह ज्ञात नहीं होता कि 'सैरेयक' शब्द से किस रंग की फूल वाली कटसरैया अभिप्रेत है और नीले रंग की फूल वाली कटसरैये की विशेष संज्ञा क्या है।

भावमिश्र—कहते हैं, "सैरेयकः श्वेतपुष्पः", नरहरि लिखते हैं—"नीलपुष्पा तु सा दासी", सुतरां धन्वन्तरि के मतसे झिण्टिका (कटसरैया) चार प्रकार की हुई,—श्वेतपुष्प, पीतपुष्प, रक्तपुष्प, नीलपुष्प। इनका नाम यथाक्रम सैरेयक, कुरण्टक, कुरबक एवं दासी। नरहरि के मत से पुष्पवर्ण भेद से झिण्टिका छः प्रकार की होती है। यथा– रक्तपुष्प, रक्ताल्मानपुष्प, पीतपुष्प, पीताल्मानपुष्प, नीलपुष्प, नीलाल्मानपुष्प, इनका नाम क्रमशः रक्तसहाख्य, कुरबक, किङ्किरात, कुरण्टक, दासी और च्छादन है। नरहरि ने श्वेतपुष्पीय झिण्टिका का

उल्लेख नहीं किया है। नरहरि ने फूल के मलिन एवं उज्ज्वल रंगके विचारसे झिण्टिका का नामभेद स्वीकार किया है। ख्यातनामा अर्वाचीन उद्भिद् वेत्ता राक्सवर्ग ने भी नील एवं उज्ज्वल नील पुष्प भेद से दो प्रकार की झिण्टी का प्रथक् उल्लेख किया है। उनके मत से नीले फूल वाली का नाम बारलेरिया सीरुलिया Barleria Caerulea एवं उज्ज्वल नीले फूलवाली का नाम बा० क्रिष्टेटा B. Cristata है। मैंने उक्त दोनों की संस्कृत संज्ञा 'दासी' लिखी है। किन्तु नरहरि के मत से बा० सीरुलिया B. Caerulea च्छादन और बा० क्रिष्टेटा B. Cristata दासी है। नीले फूल वाली की भाँति मलिन उज्ज्व पुष्पभेद से लाल आदि फूल वाली कटसरैया भी अधुना देखने में आती है वा नहीं, राक्सवर्ग ने इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। कुरण्टक शब्द पीत झिण्टिका बोधक होते हुए भी, निघन्टु एवं चिकित्सा ग्रंथ विशेष में नील रक्तादि झिण्टिका के अर्थ में भी उक्त शब्द का व्यवहार हुआ है। किसी किसी यूनानी ग्रंथ में लिखा है कि यह बादावर्द का नाम है, जो अत्यंत भ्रमकारक है। बादावर्द इससे सर्वथा भिन्न ओषधि है। खजाइनुल् अदविया में अड़ूसा के अंतर्गत जो यह लिखा है कि पीले फूल के अड़ूसा को पियाबाँस कहते हैं, यह भी प्रमाद पूर्ण एवं हास्यास्पद है। क्योंकि इसी ग्रंथ में तथा अन्य मख़्ज़न वालीफ शरीफी आदि आरब्य एवं पारस्यभाषाके ग्रंथोंमें पियाबाँसको पीली कटसरैया लिखा है। उनके वर्णन पढ़ने से भी यही बात निष्पन्न होती है। अस्तु,पियाबाँसा कटसरैया ही है और यद्यपि यह तथा अड़ूसा वा बाँसा एक ही वर्ग की वनस्पति हैं, तथापि ये एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। आगे इनमें से प्रत्येक के विस्तृत परिचय, पर्याय एवं गुण-प्रयोग आदि पृथक् पृथक् दिये जाते हैं।

विशेष प्रकार कीकटसरैये के—
वर्णन-पर्यायादि

१—पीले फूल की कटसरैया—अड़ूसे की तरह की एक क्षुप जाति की वनस्पति, जिसके क्षुप जंगल एवं वीरान स्थानों में यत्रतत्र देखने में आते हैं। इसका पौधा प्रायः दो हाथ से अधिक ऊँचा (२–३ फुट वा अधिकाधिक ४ फुट) नहीं होता। कांड वा तना ठिंगना, गोल, कठिन, झाड़दार (Herbaceous) और सीधा होता है। यह बहुशाखी होती है। शाखाएँ जड़ से निकलती हैं और सम्मुखवर्त्ती, गोल, मसृण, और सीधी होती हैं। पत्ती आरम्भ में छोटी लम्बी एवं नोकदार होती है। ज्यों ज्यों पौधा बढ़ता जाता है। इसकी पत्ती भी लंबाई चौड़ाई में बढ़ती जाती है। अंततः यह जामुन की पत्ती इतनी बड़ी हो जाती है। पत्तियाँ सम्मुखवर्त्ती, भालाकारडाकार लंबी, सरु किंचित्,कर्कश,अन्योन्य लंघित (Decussate) पत्रवृंत ह्रस्व, पत्रप्रांत किंचित् तरङ्गायित,सर्वथा अखंडित (Entire), नुकीली (Mucronate), और मसृण होती हैं। पत्ती और शाखा के बीच पत्रवृंत के सन्निकट एक ही केन्द्र पर शाखा की प्रत्येक ग्रन्थि पर चार नोक वाले सरल, तीक्ष्ण तीक्ष्णाग्र कण्टक होते हैं। पुष्प वृन्तशून्य (Sessile); पत्रवृन्तसन्निधान-स्थित (Axillary), प्रायः एकांतिक (Solitary) बड़े, सुर्खीमायल, पीले रंग के होते हैं। पुष्पकाल—प्रायः सर्व ऋतु। फल (Capsule) अड़ूसे की तरह यवाकृति के; गावदुमी होते हैं। प्रत्येक फल में दो-दो बीज अलग-अलग कोषों में होते हैं। जड़ काष्ठीय (Woody) एवं बहुवर्षीय होती है, जिसमें असंख्य पार्श्विक उपमूल होते हैं।

पर्य्याय—कुरण्टकः (ध० नि०), किङ्किरातः, पीताम्लानः, कुरण्टकः, कनकः, पीतकुरबः, सुपीतः, पीतकुसुमः, कुण्टः (कण्टः); कुरण्टः (कुरटः), झिण्टी; वन्या, सहचरी, पीता (रा० नि०), कुरण्टक, किङ्किरातः, हेमगौरः, पीतकः, पीतभद्रकः (भा०),पीतझिंटी,पीताम्लानः,आम्लानिकः,आम्लादानः, कुरुण्टः,कुरुण्टकः,सहचरः,सहचरा,कुरण्टका, पीतकुरवकः—सं०। पीलीकटसरैया, पीला पियाबाँसा, कटसरैआ, झिंटी—हिं०। लाल फूल के कोलसे—द०। पीतपुष्प झाँटी गाछ, पीतझाँटी, काँटाझाँटी—बं०। बार्लेरिया प्रायोनायटीज़

Barleria Prionitis, *Linn*–ले०। येलो बारलेरिया Yellow Barilerta, थॉर्नी बार्लेरिया Tharny Barleria–अं०। शेम्मूल्लि एल्लेय, वरमुल्लि–ता०। मूल्लगोविदं, मूलि (मूल्लू) गोरंटा, कोंड़ गौगु–ते०। होवणद गोरटे, गोरटी; मुल्लु गोरंट, गोरतीगे–कना०। पीवला गोरटा (कोरांट, कोरंटा, कोरेटा)–मरा०। कालसुंद, कोरहंटी, वज्रदंती–बम्ब०। काँट शेलियो काँटा सेरियो–गु०। वज्रदंत–कच्छ०। गोरटी–कों०। शेमुल्लि, कोलेट्ट-वित्तला–मल०। वासक-अरंटोद–उड़ि०। कटुकरंडु–सिं०। लंडूल–जावा। वाणपुष्प गौड़।

कटसारिका वा आटरूष वर्ग

(*N. O. Acanthaceæ*)

उत्पत्ति स्थान—उष्णकटिबंधस्थित समग्र भारतवर्ष हिमालय से लंका पर्य्यन्त। बंबई, मदरास, लंका, आसाम, सिलहट आदि स्थानों में इसके क्षुप बहुतायत से पाये जाते हैं।

रासायनिक संघटन—इसमें बड़ी मात्रा में लघु पेट्रोलियम् ईथर में विलेय एक उदासीन एवं अम्लराल पाया जाता है। कोई क्षारीय सार नहीं पाया गया।

औषधार्थ व्यवहार—समग्र-क्षुप, विशेषतः पत्र एवं मूल।

औषध-निर्माण—कल्क, पत्र-क्वाथ, चूर्ण और औषधीय तैलादि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कुरण्टको हिमस्तिक्तः शोफतृष्णाविदाहनुत्।
केश्यो वृष्योऽथ बल्यश्च त्रिदोष शमनो मतः॥
(ध० नि०)

कटसरैया—शीतल, कड़ुई, वीर्य वर्द्धक, बलवर्द्धक, त्रिदोष नाशक और केशों के लिये हितकारी होती है तथा यह सूजन, प्यास और विदाह को दूर करती है।

किङ्किरातः कषायोष्णस्तिक्तश्च कफवातजित्।
दीपनः शोफकण्डूतिरक्त त्वग्दोषनाशनः।
(रा० नि०)

पीली कटसरैया—कसेली, कड़ुई, गरम, दीपन और कफ वात नाशक है तथा यह सूजन, खुजली, रक्त विकार एवं त्वचा के रोगों को नाश करती है।

किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ।
कफपित्त पिपासास्र दाह शोष वमि कृमीन्॥
(भा० पू० १ भ०)

पीली कटसरैया—ठंढी, कषैली, कड़ुई है और यह कफ, पित्त, प्यास, रक्तदोष, दाह, शोष, वमन और कृमि रोग को दूर करती है।

'पीतः कुरण्टक'श्चोष्णस्तिक्त श्चतुवरः स्मृतः।
अग्निदीप्तिकरो वातकफ कण्डूहरः स्मृतः।
शोथं रक्तविकारञ्च त्वग्दोषञ्चैव नाशयेत्॥
(निघण्टु रत्नाकर)

पीले फूल की कटसरैया—गरम, कड़वी, कषैली अग्निदीपक तथा वात, कफ, कण्डू, सूजन, रक्त-विकार और त्वचा के दोषों को दूर करती है।

वैद्यकीय व्यवहार

चक्रदत्त—कटसरैया के पत्तों को उबालकर उससे कुल्ले करने से हिलते दाँत मजबूत हो जाते हैं।

आर्य औषधि—इसके पत्तों की राख के घी में मिलाकर लगाने से सड़े हुये क्षत और नहीं पकने वाले फोड़े अच्छे हो जाते हैं।

रस रत्नाकर—संध्याकाल में पीली कटसरैया का काढ़ा करके सारी रात पड़ा रहने देकर दूसरे दिन पिलाने से अथवा पीली कटसरैयाकी जड़ को चाबकर उसका रस पान करने से सूतिका रोग के सब प्रकार के उपद्रव शांत होते हैं। इस काढ़े में यदि थोड़ा सा पीपर का चूर्ण भी मिला दिया जाय तो, विशेष लाभदायक हो जाता है।

यूनानी मतानुसार गुण दोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष (मतांतर से सर्द एवं तर म० मु० वा गर्मतर) है। फूल में अधिक उष्णता होती है। स्वाद—तिक्त और तीक्ष्ण। हानिकर्त्ता—शीतल प्रकृति को। दर्पघ्न—काली मिर्च एवं मधु।

प्रतिनिधि—किसी किसी स्थल पर गदह पूरना।

प्रधान कर्म—मूत्र प्रवर्त्तक एवं आर्त्तव प्रवर्त्तक।

मात्रा—४ माशे।

गुण, कर्म, प्रयोग—स्वाद में यह कड़ुई एवं गरम होती है। यह अपने प्रभाव से केश्य वा केशों को पुष्ट करती और उन्हें काला करती है। तथा यह विष, चोट, त्वग्‌राग (सुर्ख़बादा) एवं कोढ़ को दूर करती है। (ता० श०)

यह ज्वर एवं श्वास के रोग को नष्ट करती है। शहद के साथ खाने से यह नासिका एवं मुख से रक्त आने को रोकती है। यह मूत्र एवं आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता, कफ का छेदन करता; कोढ़ रोग का नाश करता और वेदना को शांत करता, तथा क्षुधा उत्पन्न करता है। इसके पीने से खुजली दूर होती है। इसके काढ़े का गण्डूष धारण करने से दंतशूल मिटता है। इसकी जड़ कास रोग में काम आती है। (बु० मु० म० मु०)

यह बालों को बढ़ाती, और उन्हें स्याह करती है। यदि पारा खाने से मुंह आ जावे, तो इसकी जड़ और पत्ते सुमाक के साथ क्वथित कर कुल्ली करने से उपकार होता है। यह त्वग्‌राग (सुर्ख़बादा) को लाभकारी एवं विषों की नाशक है। यदि पत्र मूल सहित इसके क्षुप को छांह में सुखाकर पीस छानकर रख लें और उस चूर्ण में से प्रतिदिन प्रातः को एक मुट्ठी भर फाँक लिया करें, तो श्वास रोग एवं कफज कास आराम हो। साढ़े दस माशे इसकी जड़ पानीमें पीसकर यदि स्त्री दुग्ध के साथ सेवन करे, तो गर्भवती होजाय—यह गर्भधारक योग है। इसका लघु क्षुप जलाकर पानी में सानकर चना प्रमाण की वटिकायें बनाकर रखले। रात को गुलखैरू के पानी में भिगो दें और प्रातःकाल मल छानकर उसका लबाब निकालें। इस लबाब के साथ १-२ गोली सेवन करने से पुराना से पुराना सूजाक जाता रहता है। इसके फूल शीघ्रपाकी है तथा वायु एवं कफ को नष्ट करते, क्षुधा को वृद्धि करते और पित्त उत्पन्न करते हैं, ग्रन्थकार के मत से इसका स्वाद तीक्ष्ण, स्निग्ध एवं मधुर होता है। इसकी पत्तियाँ मलने से हाथ काला होजाता है। यह श्यामता निरंतर २-३ दिन तक रहती है। बाँसें (अड़ूसे) की अपेक्षा इसमें अधिक उष्णता होती है।

(ख़० अ०)

इसका काढ़ा वा चूर्ण कफज कास एवं तर श्वासकृच्छ्रता को उपकारी है और यह आर्त्तव प्रवर्त्तक; श्लेष्मा को छेदन करने वाला एवं क्षुधा जनक है। इसके काढ़े का गण्डूष करने से दंत-शूल मिटता है। इसकी जड़ वा छाल का सुनक्का के साथ गोली बनाकर मुंह में रखने से तर खांसी आराम होती है। (म० इ०)

नव्यमत—

खोरी—झिण्टी ईषत्तिक्त एवं कषाय है। यह बालकों के कफ ज्वर एवं अगम्भीर शोथ (Anasarca) में सेवनीय है। इसकी पत्ती का स्वरस हाथ पैर पर मर्दन करने से हस्त-पदतल के फटने की अर्थात् पादरारी की शंका दूर हो जाती है। सामान्य कारण से अथवा जब मसूड़े फूलकर पिलपिले हो गये हों। (Spongy-gums) और उनसे रक्त स्राव होता हो, तब सैंधव लवण मिश्रित झिण्टी पत्र स्वरस का कवल धारण करावें। स्फोटक एवं ग्रन्थि-शोथ पर इसकी जड़ का प्रलेप करने से वे विलीन होते हैं, झिण्टी के कल्क में पकाया हुआ तेल कदर्यक्षत में हितकारी है।आर० एन० खोरी, द्वि० खंड, पृ० ४६६

ऐन्सली—कहते हैं कि शिशुओं के कफोल्वण ज्वर में इसकी पत्ती का स्वरस जो ईषत् तिक्त एवं अम्ल होता है, दक्षिण भारत के हिंदुओं की सर्व प्रिय औषधि है। वे प्रायः इसमें किंचित् मधु या शर्करा तथा जल मिश्रित कर दो (Table-spoonfuls) की मात्रा दैनिक दिन में दोबार सेवन करते हैं।

मैटीरिया इंडिका, भ० २, पृ० ३७६।

डीमक—देशी लोग वर्षा ऋतु में हाथ-पैर पर इसकी पत्तियों का स्वरस मर्दन करते हैं, जिसमें वे कड़े पड़ जायँ, जिससे (हस्त-पदतल) तलवों व हथेलियों के फटने व फूलनेकी आशंका मिट जाय। कोंकण में इसकी सूखी छाल कूकर खाँसी (Whooping cough) में दी और इसकी ताजी छाल का स्वरस २ तोले की मात्रा में अगम्भीर शोथ (Anasarca) में दिया जाता है। डाक्टर बिडी (Dr. Bidie) के अनुसार

कटसरैया घर्म्मकारक एवं कफनिःसारक है।—फा० इं० ३ भ०, पृ० ४४।

डाक्टर थाम्पसन—यह शिश्वतिसार एवं कफ (Cough) में उपकारी है।

डा० स्ट्युवर्ट—फिरंग जनित विकारों में परिवर्तकरूप से इसका व्यवहार होता है।

सखाराम अर्जुन—मसूढ़ों की पुष्टि के लिये एवं कृमि भक्षित (Caries) दंतशूल निवारणार्थ इसकी कषेली पत्तियों और साधारण लवण का दंतमंजन बनाते हैं।

नादकर्णी—इसकी पिसी हुई पत्ती वा पत्रस्वरस अकरकरे के साथ वा अकेला शूलयुक्त दंतकोटर में स्थापित किया जाता है।

इ० मे० मे० पृ० १०४।

जंगलनी जड़ी बूटी नामक गुजराती ग्रंथ के रचयिता के अनुसार पीली कटसरैया के पत्ते और अकरकरा को सम्मिलित पीसकर डाढ़ के नीचे रखने से डाढ़ का दर्द तत्काल दूर हो जाता है। इसी प्रकार से दाँतों से खून गिरना भी इससे बंद हो जाता है।

चोपरा के अनुसार जुकाम, खाँसी और सर्वांगीण शोथ में यह गुणकारी है।

(२) लाल फूल की कटसरैया—पीतझिण्टीवत् भेद केवल यह है कि इसका फूल लाल होता है। यह सर्वत्र सुलभ नहीं है।

पर्य्याय—रक्ताम्लानः, रक्तसहाख्यः (रक्तसहा, रक्तसहः) अपरिम्लानः, रक्तामलान्तकः, रक्तप्रसवः, कुरुबकः, रामालिंगनकामः, (-कामुकः), रागप्रसवः, मधूत्सवः, प्रसवः, सुभगः, भसलानन्दः, (भ्रमरानन्द) शोणी, कुरबकनाम्नी, कण्टकिनी, शोणझिण्टिका, (रा० नि०), कुरबकः, (ध० नि०), कुरबकः, पाठांतर से कुरुबकः (भा०), रक्ताम्लानकः, रक्तकुरुण्टकः, (वै० निघ०), शोण झिण्टी (अम०), रक्ताम्लानपुष्पवृक्ष, रक्त पुष्पझिण्टी क्षुप, कुरवः, कुरवकः (श० र०), कण्ट कुरण्टः (वै० निघ०), रक्तपुष्प, रक्तझिण्टी, रक्तझिण्टिका,—सं०। लाल कटसरैया, कटसरैया -हिं०। लाल झाँटी, रक्तपुष्पझाँटीगाछ, रक्तझाँटी, लालझाँटी-फुलेरगाछ-बं०। वाण झाड़-मरा०। वणदगिडु-कना०। बार्लेरिया सिलिएटा Barleria ciliata, *Roxb.*-ले०।

कटसारिका वा आटरूष वर्ग

(*N. O. Acanthaceae.*)

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

उष्णः कटुः कुरबको वातामय शोफनाशनो ज्वरनुत्
आध्मानशूल कासश्वासार्ति प्रशमनो वर्ण्यः॥

(रा० नि० व० १०)

लाल कटसरैया—गरम, चरपरी और रंग को निखारनेवाली (वर्ण्य) है तथा वायु के रोग, सूजन, ज्वर, आध्मान, शूल रोग, कास और श्वास इनको उपशमित करती है।

'रक्तः कुरण्टक' स्तिक्तो वर्ण्यश्चोष्णः कटुः स्मृतः शोथं ज्वरं वातरोगं कफं रक्तरुजन्तथा। पित्तमाध्मानकं शूलं श्वासं कासञ्चनाशयेत्।

(निघण्टुरत्नाकरः)

लाल फूल की कटसरैया—कड़वी, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाली, गरम, चरपरी, तथा सूजन, ज्वर, वातरोग, कफ, रक्तविकार, पित्त, आध्मान, शूल, श्वास और खाँसी को दूर करनेवाली है।

३—सफेद फूल की कटसरैया—

पर्य्या०—सेरेयकः, सैरेयः, सहचरः, सहाचरः, (ध० नि०) झिण्टिका, कण्टकुरुण्टः, सैरेयकः, (रा० नि०) सैरेयकः, सैरेयः, श्वेतपुष्पः, कटसारिका, सहचरः, सहाचरः, भिंदी, (भा०), सौरीयकः, सैरीयः, सैरीयकः, (अम०) श्वेतकुरुण्टकः, (वै० निघ०) सौरेयः, सौरेयकः, कण्टसारका, सचरः, सैर्य्यः, सैर्य्यकः, सहा (स्), श्वेत झिण्टी, शुक्त झिण्टी, झिण्टी, झिण्टिरीटिका, महासहः, मृदुकण्टबाण, उद्यानपाकी झिण्टिका, सं०। सफेद कटसरैया, कटसरैया, हिं०। झांटी गाछ, कुलझाँटी श्वेतझांटी, सादाझांटी, -बं०। झिंटी-आसाम।

बार्लेरिया डाइकोटोमा Barleria Dichotoma, *Roxb.* -ले०। तद्रेलु, चं० (बाँसा स्याह-बाजा०) गोर्पजिब्, काला बाँस -उ० प०

सू० । कोइल्का- उड़ि० । काला बाँसा -उ० प० सू० ।

आटरूषवर्ग—

N. O. Acanthaceae.

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

झिण्टिकाः कटुकास्तिक्ता दन्तामयशान्ति-दाश्च शूलघ्न्यः । वातकफ शोफकास त्वग्दोष विनाश कारिण्यः ॥

(रा० नि० १० व०)

सफेद कटसरैया—चरपरी, कड़वी और वात कफ नाशक है तथा यह दन्तरोग, शूलरोग एवं सूजन कास और चर्म रोग को नष्ट करती है ।

सैरेयकः कुष्ठवातास्र कफकण्डूविषापहः । तिक्तोष्णो मधुरो दन्त्यः सुस्निग्धः केशरञ्जनः ॥

(भा०)

सफेद कटसरैया तिक्र, उष्ण, मधुर, दाँतों को हितकारी, सुस्निग्ध और केशरञ्जक—बालों को रंगने वाली है तथा यह कोढ़, वात, (बादी), रुधिर के दोष, कफ, खुजली और विष इनको नष्ट करती है ।

'श्वेतकुरण्टक' स्तिक्तः केश्यः स्निग्धोलघुस्मृतः । कटुश्चोष्णो दन्तहितो वलीपलित नाशनः ॥ कुष्ठंवातं रक्तदोषं कफं कण्डूं विषन्तथा । नाशयेदारुणञ्चैव ऋषिभिः परिकीर्तितम् ॥

(निघण्टु रत्नाकरः)

सफेद फूल की कटसरैया—कड़वी, केशों को हितकारी, स्निग्ध, मधुर, चरपरी, गरम, दांतों को हितजनक, तथा वली (देह पर झुर्रियां पड़ना) पलित (असमय में बाल पकना) कोढ़, वात, रक्तविकार, कफ, कण्डू, विष और घोर वेदना को हरनेवाली है ।

वैद्यक में सफेद कटसरैया के व्यवहार

वाग्भट—चूहे के विष में सैरेयक मूल—चूहा काटने पर सफ़ेद कटसरैये की जड़ पीसकर मधु और तण्डुलधावन मिलाकर पियें । यथा—

"अथवासैर्य्यकान्मूलं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना" ।

(उ० ३८ अ०)

नादकर्णी—शुक्रप्रमेह में इसकी पत्ती के रस में जीरा मिलाकर देते हैं । हाथ-पैर का (Caracking & laceration) रोकने के लिये वर्षा ऋतु में हाथ-पैर पर इसकी पत्ती का रस लगाया जाता है । दांतों से खून आने पर इसके रस में शहद मिलाकर देते हैं । कर्णप्रदाह (Otitis) में यह रस कान में भी डाला जाता है ।—

इं० मे० मे० पृ० १०३-४ ।

(४) नीले फूलकी कटसरैया—इसका क्षुप श्वेत झिण्टी की अपेक्षा किंचित् उच्चतर होता है । शाखा—बहु, सरल, कर्कश, गोल, ग्रंथियुक्त और ग्रन्थिका उपरि भाग किंचित् स्फीत । पुष्पदण्ड, पत्रवृन्त सन्निधान से एवं शाखाग्र से वक्रभाव में बहिर्गत होता है । वक्र पुष्पदण्ड के उपरि भाग पर अर्थात् कुण्ड के पृष्ठ पर पुष्प सन्निवेशित होता है । पुष्प के लिये ही इसे बगीचों में लगाते हैं । पुष्पकाल—शीतऋतु, पुष्प नीलाम्लान । उज्ज्वल-नील पुष्पीय झिण्टी का फूल पत्र-कक्ष में लगता है, पुष्प का कुण्ड कण्टकित और पत्र रोमान्वित होता है ।

पर्य्याय—नीलपुष्पा, दासी, नीलाम्लानः, च्छादनः, वला, आर्त्तगला, नीलपुष्पा, नीलझिण्टी नील कुरण्टः, (कुरुण्टकः) नीलकुसुमा, बाणः, बाणा, कण्टार्त्तगला (रा० नि०) आर्तगलः, दासी, (भा०) बाणपुष्पः,सहचरः,सहचरा,सहचरी, नीलपुष्पः,सैरीयः, सैरीयकः(प० भु०) कण्टार्हलता कण्टार्गलः, बाणी, नीलपुष्पी, शैरीयकः, शैरेयक, सैरेय-सं० । काली कटसरैया, काला (पिया) बाँसा, कटसरैया-हिं० । नील झाँटी-बं० । काला-कोराण्टा-मरा० । करियगोरटे-कना० । बार्लेरिया सोरुलिया Barleria Caerulea(नीलपुष्प, च्छादन) बार्लेरिया क्रिष्टेटा Barleria Cristata, (उज्ज्वल नीलपुष्प वा दासी)बार्लेरिया-ष्ट्रिगोसा Barleria Strigosa, *Willd*-ले० । तदरेलु (बाजारू नाम-बाँसा सियाह)-पं० ।गोर्प-जीभ, काला बाँस (बाग)उ० प० सू० । कोइल्का-उड़ि० ।

आटरूष वर्ग

(*N. O. Acanthaceae*)

उत्पत्ति स्थान—उपोष्णकटिबंधस्थित भारत, उत्तर पश्चिम हिमालय, सिकिम, खसिया, मध्य भारत, नीलगिरि तथा भारतीय उद्यान।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

आर्तगला कटुस्तिक्ता कफमारुतशूलनुत्।
कण्डूकुष्ठ व्रणान्हन्ति शोफ त्वग्दोष नाशनी॥
(रा० नि० १० व०)

नीली कटसरैया—कड़वी एवं चरपरी है तथा कफ, वात, शूल, कण्डू (खाज), कोढ़, व्रण और त्वग् दोष को नष्ट करती और सूजन उतारती है।

'नीलःकुरण्टक' स्तिक्तः कटुर्वातकफापहः।
शोथकण्डू शूल कुष्ठ व्रणत्वग्दोषनाशनः॥
(निघण्टु रत्नाकरः)

नीले फूल की कटसरैया—कड़वा, चरपरी तथा वात, कफ, सूजन, खुजली (कण्डू), शूल, कोढ़, व्रण और त्वचा के विकारों को दूर करती है,।

नीलझिण्टी तु कटुका तिक्ता त्वग्दोषनाशिनी।
दन्तरोगं कफं शूलं वातं शोथं च नाशयेत्॥

काले फूल की कटसरैया—चरपरी, कड़वी तथा त्वग्दोष, दन्तरोग, कफ, शूल, वात और सूजन को दूर करनेवाली है।

काली कटसरैया के वैद्यकीय व्यवहार

वाग्भट—वातज ज्वरोग में आर्त्तगल—नीलझिंटी के क्वाथ और कल्क द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत ज्वरजित् और स्वरवर्द्धक है। यथा—

"साधितं (घृतं) कासजित् स्वर्य्यं सिद्धमार्तगलेन वा"
(चि० ५ अ०)

चक्रदत्त—(१)सिध्मनाशार्थ नीलझिण्टिका पत्र-स्वरस-सिध्म-कुष्ठ विशेष के प्रशमनार्थ नीली कटसरैया की पत्ती का रस गात्र पर भली प्रकार लेपन कर ऊपर से काँजी में पिसे हुये मूली के बीजों का प्रलेप करें। यथा—

"नीलकुरण्टकपत्रं स्वरसेनालिप्य गात्रमतिवहुशः। लिम्पेन्मूलक वीजैः पिष्टैस्तक्रेण सिध्मनाशाय॥"
(कुष्ठ-चि०)

(२) दन्तचालन अर्थात् दाँत हिलने पर आर्त्तगलदल—नीली कटसरैये की पत्ती के काढ़े से गण्डूष करने से हिलते हुये दाँत (चलदंत) स्थिर हो जाते हैं। यथा—

"आर्त्तगलदलकाथगण्डूषो दन्तचालनुत्"
(दन्तरोग-चि०)।

नव्य मत

वैट—इसका बीज सर्प-दंश का अगद ख्याल किया जाता है। शोथ निवारणार्थ इसकी पत्ती एवं जड़ का उपयोग होता है। कफ (Cough) में इसका फांट दिया जाता है।—इं० मे० प्लां०।

कटसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झिण्टी का सामान्य नाम। कटसरैया। भा० पू० १ भ०।

कटसिरिस—[अवध] धोबिन।

कटसोन—संज्ञा पुं० [देश० कुमा०] एक झाड़ीनुमा वृक्ष जो पश्चिमीघाट, मध्य, पूर्वी और उष्ण हिमालय नेपाल, सिकिम, बरमा आदि स्थानों में होता है। शाखाओं पर पीला रोआँ और छोटे कांटे होते हैं। फूल सफेद। फल गोल। कटसोल।

कटसोल—संज्ञा पुं० [देश०] दे० "कटसोन"

बोपेम काँटा—नैपा० Rubus-moluccanus, *Linn.*

कटहर—संज्ञा पुं० दे० 'कटहल"।

कटहरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तरी भारत और आसाम की नदियों में पाई जाती है।

कटहरिया चंपा—संज्ञा पुं० [हिं० कटहर+चंपा] एक प्रकार का चंपा। मदनमस्त।

कटहल—संज्ञा पुं० [सं० कंटकिफल, हिं० काठ+फल]

(१) वृक्ष—(उत्तराषाढ़ा)

पनसः (फनसः) महासर्जः, फलिनः, फलवृक्षकः, स्थूलः, कण्टफलः, मूलफलदः' अपुष्पफलदः पूतफलः, अङ्कमितः (रा० नि० ११ व०), कण्टकिफलः, कण्टाकालः, आशयः, सुरजफलः, पलसः, फलसः, चम्पाकालुः, चम्पा, कोषः, चंपालुः, रसालः, मृदङ्गफलः, पानसः, पनशः (सः) पणशः

(सः) कण्टालुफलवृक्ष, अतिवृहत्फल, पनशः, कंटकिफलः, पनसः, अतिवृहत्फलः (भा०) कणाशः, महासर्ज्जः, फलितः, फलवृक्षकः, स्थूलः, कण्टाफलः, मूलफलदः, कण्टालुफल (वृक्षः) कण्टकमहाफल (वृक्षः), कण्टकफलः, कण्टकफला, कण्टकि (की) फलः, कण्टाफलः, पनसतालिका, कण्टीफल, स्थूलकण्टफलः–सं० ।कटहर, कटहल, कटैर, कंथल, कठैल–हिं० । फणस–द०, को०, मरा० । काँटाल गाछ–बं० । चक्की–फ्रा० । आर्टोकार्पस इंटेग्रिफोलिया Artocarpus integrifolia, *Linn*–ले० । इंडियन जैक ट्री Indian Jack tree–अं० । जाक्वीर Jaquier–फ्रां० । इंडिश्चर ब्राड बाम Indischer broad baum–जर० ।पिल्ला,पलचूता० । पणस–ते०, उत्, उड़ि० । पनस–ते० । पिलव, कंडकि फल–मल० । हलसिन, हणसीन हणु–कना० । हलसीन हणु–का० । पणस, मान फणस, फणस–गु० ।फणसु–मरा०।फणस–बम्ब० । पिला–पञ्.म–मद० । पेहंगनाई–बर० । फणस–औ० ।

पनश वर्ग

(*N. O. Artocarpacea*)

उत्पत्ति-स्थान—कटहल भारतवर्ष के सब गरम भागों में लगाया जाता है, तथा पूर्वी और पश्चिमी घाटों की पहाड़ियों पर एवं पूर्व पर्वत पर यह आप से आप होता है । सह्याद्रि पर्वत के सदा हरिद् वर्ण वन में कटहल लगाया और प्रकृत अवस्था में भी पाया जाता है ।

वानस्पतिक वर्णन—एक सदाबहार घना वृहत् वृक्ष जिसकी पत्तियाँ अंडाकार ४–५ अंगुल लंबी, चर्मवत् कड़ी, मोटी और ऊपर की ओर श्यामता लिये हुये हरे रंग की प्रकाशमान एवं मसृण और नीचे रूक्ष होती हैं । नव पल्लवों पर क्षुद्र एवं रुक्ष कुंतल रहते हैं । मध्य पर्शुका इसके अधः पृष्ठ पर प्रशस्त ज्ञात होती है । उसकी दोनों ओर चार से सात इंच तक ७।८ पार्श्वीय शिरायें निकलती हैं । पत्रों के नीचे का अनुबंध बड़ा होता है । उसका चौड़ा आधार पत्तोंसे मिला रहता और गिर पड़ता है । इसका वृक्ष ४०–५० फुट ऊँचा होता है । इसका तना छोटा, खड़ा और मोटा होता है । इसका अर्द्धगोलाकार शिखर श्याम वर्ण के पत्तों से मंडित होता है । शाखा विकटाकार फलों के भार से झुक पड़ती है ।

शाखाओं पर मंडलाकार उत्थित रेखायें देख पड़ती हैं । इसमें बड़े-बड़े फल लगते हैं जिनकी लम्बाई हाथ,डेढ़ हाथ तककी और घेरा भी प्रायः इतना ही होता है । ऊपर का छिलका बहुत मोटा होता है जिस पर बहुत से नुकीले कंगूरे होते हैं । जिस कटहलके छिलके पर ये कंगूरे जितने अधिक कठिन और लंबे हों,उसके भीतर ये दाने उतना ही उत्तम और बड़े निकलते हैं और मीठा भी होते हैं । फल के भीतर बीच में गुठली होती है जिसके चारों ओर मोटे मोटे रेशों की कथरियों में गूदेदार कोए रहते हैं । कोए पकने पर बड़े मीठे होते हैं । कोयोंके भीतर बहुत पतली झिल्लियों में लिपटे हुये बीज होते हैं, जो वृक्काकार और तैलमय होते हैं । फल माघ फागुन में लगते हैं और जेठ अषाढ़ में पकते हैं । कच्चे फलकी तरकारी और अचार होते हैं और फल के कोए खाये जाते हैं । कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है, जड़ और तने में भी फल लगते हैं । कटहल के वृहत् फल को फल समूह समझना चाहिये । जिसमें ५० से ८० कोये निकलते हैं । क्योंकि अनन्नास की भाँति पुष्प समूह से उत्पन्न होनेवाले फलों का राशीकरण है । विभिन्न फल प्रायः संस्तर कहलाते हैं । प्रत्येक फल में एक बीज होता है ।

कटहल अनेक प्रकार के होते हैं । उनमें से कुछ के दाने छोटे और कोमल होते हैं और उनमें से दुर्गंधि आती है । यह उसकी निकृष्टतम जाति है । परन्तु किसी के दाने मध्यमाकार होते हैं और किसी के सुस्वादु,रेशारहित और सरस होते हैं और शीघ्र टूट सकते हैं और उनसे सुगंधि आती है । इसको "खाजा" कहते हैं ।कुछ कटहल ऐसे हैं,जिनके दाने अति सूक्ष्म, तंतुशून्य और सरस होते हैं,मुंह में डालते ही घुल जाते हैं । यदि फल में से निकाल कर रख दें तो क्षण भर में स्वयं घुल जाते हैं । यह सर्वोपरि जाति का कटहल है ।

ज़मीन के भीतर इसकी जड़ में होनेवाला कटहल सबसे अधिक सुस्वादु, मधुर और सरस और

बहुत बड़ा होता है। कहते हैं कि यह एक सेर से लेकर १ मन तक देखने में आया है, जिसमें एक-सौ तक कोये होते हैं। कटहलमें से दूध निकलता है, जो बहुत चिपकता है। जब यह शरीर में चिपक जाता है, तब बिना स्नेह लगाये साफ़ नहीं होता। इसकी छाल से भी एक प्रकार का बड़ा लसीला दूध निकलता है जिससे रबर बन सकता है। इसका गोंद जल-विलेय होता है। इसकी लकड़ी नाव और चौखट आदि बनानेके काममें आती है। इसके कोये उबालने और टपकाने से कर्कश गंध एवं अद्भुत स्वादविशिष्ट मद्यसार का पेय प्राप्त होता है।

कटहल के उगाने के लिये पहले एक गड्ढा खोदकर उसे गोबर से भर देते हैं। फिर उसमें जून वा जुलाई में कटहल का बीज डाला जाता है।

इतिहास—भारतवर्ष ही कटहल का मूल उत्पत्ति स्थान है, क्योंकि यहाँ अनेक स्थलों में यह आपसे आप होता है। यहीं से ई० सन् ७८२ में एडमिरल रोडनी इसे जमेका ले गये। अब आफ्रिका मॉरिशस आदि स्थानों में भी यह लगाया गया है। अनेक प्रकार की लकड़ी की सामिग्री बनाने के हेतु इसकी लकड़ी भारतवर्ष से युरोप भेजी जाती है। बौद्धों के मंदिरों पर प्रायः कटहल देखने में आता है। कारण बौद्धमतावलंबी इसके वृक्ष को पवित्र समझते हैं। भारतवर्ष में इसके फल का कोया खाद्य के काम आता है। पर युरुपनिवासी बहुधा कटहल नहीं खाते।

औषधार्थ व्यवहार—फल, बीज, पत्र, मूल और वृक्ष जात दूधिया रस वा दूध फल मज्जा वा गूदा अंडवृद्धि में और कोमलपल्लव चर्म्म रोग में हितकारी है।

रासायनिक संघटन—इसकी सूखी लकड़ी में मोरिन् (Morin) और एक स्फटिकीय उपादान (Cyanomaclurin) पाये जाते हैं। बीज में श्वेतसार की प्रचुर मात्रा पाई जाती है।

औषध-निर्माण—काथ (मांसग्रंथिशोफोपयोगी),

प्रभाव वा क्रिया—इसका परिपक्व फल स्निग्धतासंग्राहक, पोषक (Nutritive) और मृदुरेचक (Laxative) है और अपरिपक्व फल संग्राही (Astringent) है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

पनसं मधुरं सुपिच्छिलं गुरु हृद्यं बलवीर्य वृद्धिदम्। श्रमदाह विशोषनाशनं रुचिकृद्ग्राहि च दुर्जरं परम्॥ ईषत्कषायं मधुरं तद्बीजं वातलं गुरु। तत्फलस्य विकारघ्नं रुच्यं त्वग्दोष नाशनम्॥ बालं तु नीरसं हृद्यं मध्यपक्वं तु दीपनम्। रुचिदं लवणाक्तं पनसस्य फलं स्मृतम्॥ (रा० नि० ११ व०)

कटहल—मधुर, अत्यन्त पिच्छिल, भारी, हृद्य, बलवीर्यवर्द्धक तथा श्रम, दाह और शोषनाशक, रुचिकारक, ग्राही और कठिनता से पचनेवाला है। इसका बीज कुछ कुछ कसेला, मधुर, वातकारक और भारी है। इसका फल विकारनाशक, रुचिकारक और त्वग्दोषनाशक है। कच्चा कटहल नीरस और हृद्य है। अधपका कटहल का फल रुचिदायक है।

तन्मज्ज गुणाः—

शुक्रलं त्रिदोषघ्नं विशेषेण गुल्मितां न हितम्। (रा० नि० व० ११)

कटहल की मज्जा शुक्रवर्द्धक और त्रिदोषनाशक है तथा गुल्म रोगी को विशेष रूप से अहितकारी है।

पनसं शीतलं पक्वं स्निग्धं पित्तानिलापहम्। तर्पणं वृंहणं स्वादु मांसलं श्लेष्मलं भृशम्॥ बल्यं शुक्रप्रदं हंति रक्तपित्त क्षत व्रणान्। आमं तदेव विष्टंभि वातलं तुवरं गुरु॥ दाहकृन्मधुरं बल्यं कफमेदो विवर्द्धनम्। पनसोद्भूत बीजानि वृष्याणि मधुराणि च॥ गुल्मिनश्चक्ष विट्कानि सृष्टमूत्राणि संवदेत्। मज्जापनसजो वृष्यो वातपित्त कफापहः॥ विशेषात्पनसो वर्ज्यो गुल्मिभिर्मंदवह्निभः। (भा०)

कटहर का पका फल अर्थात् पका कटहल शीतल, स्निग्ध, वात पित्तनाशक, तर्पण (तृप्ति जनक) बृंहण, मांस और कफ को बढ़ानेवाला वल्य और शुक्रजनक है तथा यह रक्तपित्त, क्षत एवं व्रण को दूर करता है। कटहर का कच्चाफल विष्टंभी, वातकारक, कषैला, भारी, दाहकर्त्ता, मधुर, बलकारी तथा कफ मेद को बढ़ाने वाला पाठांतर से कफमेद (क्षय) नाशक है। कटहर के बीज वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, मल को बाँधनेवाला और मूत्र को निकालनेवाले हैं। अन्यत्र लिखा है कि कटहर की मज्जा वृष्य, वात, पित्त और कफ की नाशक है। गोला वा गुल्म-रोगी और मंदाग्निवालों को कटहर के खाने की सख्त मनाही है।

कण्टाफलं सुमधुरं बृंहणं गुरु शीतलम्।
दुर्ज्जरं वातपित्तघ्नं श्लेष्म शुक्रबलप्रदम्॥
कण्टाफलमपक्वं तु कषायं स्वादु शीतलम्।
कफपित्तहरं चैव तत्फलास्थ्यपि तद्गुणम्॥
तद्बीजं सर्पिषा युक्तं स्निग्धं हृद्यं बलप्रदम्।
(राज०)

पका कटहल—मधुर, पुष्टिकारक, भारी, शीतल दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला), वात और पित्त नाशक तथा कफ, शुक्र और बलवर्द्धक है। कच्चा कटहर और उसके बीज—कसैले, स्वादिष्ट, शीतल तथा कफ और पित्त नाशक है। इसके बीज घृत के साथ—स्निग्ध, हृदय को हितकारी और बलवर्द्धक हैं।

पनसस्य फलं चामं मलावष्टम्भकृन्मतम्।
मधुरं दोषलं बल्यं तुवरं गुरुवातलम्॥
कोमलं तच्च मधुरं गुरु वल्यं कफप्रदम्।
मेदो वृद्धिकरं चैव दाहवात पित्तनुत्॥
तत्पक्वं शीतलं दाहि स्निग्धं वै तृप्तिकारकम्।
धातुवृद्धिकरं स्वादु मांसलं च कफप्रदम्॥
बल्यं पुष्टिकरं जन्तुकारकं दुर्जरं वृषम्।
वातं क्षतक्षयं रक्तपित्तं चाशुव्यपोहति॥
तस्य बीजं तु मधुरं हृद्यं विष्टम्भकं गुरुम्।
तस्य पुष्पं गुरुस्तिक्तं मुखशुद्धिकरं मतम्॥
(नि० र०)

कटहर का कच्चा फल—मलस्तम्भक, मधुर, त्रिदोषकारक, बलवर्द्धक, कषैला, भारी और वातकारक है। कोमल कटहल—मधुर, भारी, बलवर्द्धक, कफकारक, मेदोवर्द्धक तथा दाह और वात पित्तनाशक है। पका कटहल—शीतल, विदाही, स्निग्ध, तृप्तिकारक, धातुवर्द्धक, स्वादिष्ट, मांस वर्द्धक, कफकारक, बलवर्द्धक, पुष्टिजनक, जन्तुजनक दुर्जर, वीर्यवर्द्धक तथा वात क्षतक्षय और रक्तपित्त का नाश करता है। इसके बीज—मधुर, वृष्य-वीर्यवर्द्धक, विष्टम्भक और भारी हैं। इसके फूल—भारी, कड़वे और मुख को शुद्ध करनेवाले हैं।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में रूक्ष। (मतांतर से प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष) पर ठीक यह है कि यह द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है और रतूबत फज़लिया (मलभूत द्रव) भी है।

हानिकर्त्ता—आध्मान जनक है और वायु के सौदावी रोग उत्पन्न करता है। सौदावी सांद्ररक्त उत्पन्न करता है।

दर्पघ्न—लवण, शीतलजल, कस्तूरी, केसर और इसके बीज भूनकर खाना।

मात्रा—इच्छानुसार।

गुण, कर्म, प्रयोग—पका कटहल वात एवं पित्त के दोष दूर करता है तथा यह वल्य, कामसंदीपन (मुबही), रक्तपित्तनाशक, दीर्घपाकी तथा विष्टम्भी-काबिज़ है। यह सीने के लिये लाभकारी, वीर्यवर्द्धक एवं पिपासाहर है। कोई २ कहते हैं कि आप से आप पका हुआ कटहर मातदिल—समशीतोष्ण होता है और वह जो अधपका लाकर कुछ दिन रख देने से पक गया हो, शीतल होता है। इसका बीज इसके गुरुत्व दोष का निवारक है, अस्तु, कटहल खाने के बाद आग पर भूने हुये इसके कुछ बीज खाना चाहिये। सेव के बीज की भाँति इसके बीजों को पके गोश्त वा रोटी के साथ खाते हैं। यह अत्यन्त सुस्वादु होता है। नाश्ते के साथ कटहल खाना अत्यन्त हानिकारक है।

कटहल वाजिकरण है। यह शिश्न को प्रहृष्ट करता, वीर्यस्तम्भन करता, रक्तको दूषित एवं विकृत करता और सांद्र सौदावी खून उत्पन्न करता है। यह आध्मान कारक एवं चिरपाकी है तथा इसे लवणाक्त करके खाना अथवा इसके भक्षणोपरांत लवण खा लेना, इसके बीजों को भूनकर खाना तथा शीतल जल पान करना, इसके दर्पघ्न हैं। यह वायु एवं पित्तजन्य रोगोंको लाभकारी है तथा शरीरावयवों को बलप्रद है। इसके बीज भी वाजी करण हैं और शुक्र उत्पन्न करते हैं। कच्चा कटहल पकाके खाने से क्षुधाधिक्य का निवारण होता है। इसके वृक्ष के कोमल पत्तों को घी से चिकना करके कई बार उकौंते पर बाँधने से उकौंता आराम हो जाता है। यदि सर्पदष्ट व्यक्ति को यथा संभव खूब अफर कर कटहल खिलाया जाय, तो विष उतर जावेगा। यदि खूब पेट भर कटहल भक्षणोपरांत केला खालें, तो वह शीघ्र परिपाचित हो जायगा। और यदि खूब कटहल खाकर ऊपर से निरन्तर पान सेवन करें, तो काल कवलित हों। इसका प्रमाण यह है कि जब कटहल पर पान की पीक डाली जाती है, तब वह फूल जाता है।

किसी-किसी प्रकृति में एतज्जन्य दर्प का नाश ताजा नवनीत के भक्षण से भी हो जाता है। इसका मुरब्बा और हलुआ भी उत्तम होता है। परन्तु इन्हें ऐसे कटहल से बनाना चाहिये जो किंचित् अर्द्धपक्व एवं रेशा रहित हो और उसमें थोड़ी कस्तूरी और केसर भी गुलाब जल में घिसकर मिला देवें। इसका मूसला जलाकर अकेले वा कपोत-विष्ठा और चूने के साथ फोड़े पर लगाने से उसमें मुंह हो जाता है। खुलासतुल् इलाज नामक ग्रंथ में लिखा है कि कटहल के फूल को पानी में पीस छान कर तुरत पी लेने से विशूचिका जन्य छर्दि का नाश होता है। नुसख़ा सईदी नामक ग्रंथ के प्रणेता का कथन है कि कटहल में फूल नहीं होता। ज़खीरा अकबरशाही में लिखा है कि यह चिरपाकी है। इसके भुने हुये बीजके भक्षण से इसके उक्त दोष का निवारण होता है। इसका नीहार मुख खाना अत्यन्त वर्जित है। वैद्यों के मत से कटहल शीतल, बादी, कसेला, गुरुपाकी, क्षुधाभिजनन, मधुर, वीर्य एवं शक्तिवर्द्धक, दिल-पसन्द, विष्टभी (काबिज़) और शरीर को उज्ज्वल करनेवाला है। इसके कच्चे पत्तों को पीसकर त्वग्रोगों पर प्रलेप करते हैं। इसकी जड़ के चूर्ण को फंकी देने से दस्त बन्द होते हैं। इसका कच्चा फल—मलावरोधकारक, पर पका फल मृदुरेचक—मुलय्यिन है। यह शरीर को स्थूल करनेवाला होने पर भी कठिनता पूर्वक हज़म होता है। ग्रन्थि शोथ के शीघ्र परिपाकार्थ उसपर इसके पत्तों का प्रलेप करते हैं।

इसकी जड़ को औटा-छानकर नाक में टपकाने से शिरःशूल नष्ट होता है। उसे पीसकर पानी के साथ पिलाने से कै होकर साँप का विष उतर जाता है। इसका चूर्ण प्रतिदिन १-१ माशा उत्तरोत्तर बढ़ा बढ़ाकर खाने से वमन तथा रेचन होकर फिरङ्ग रोग का नाश होता है। धन्वन्तरी कहते हैं कि पका हुआ कटहल खाने से वायु और पित्त का नाश होता है; शरीर के अंग प्रत्यङ्गों को तथा बाह को शक्ति प्राप्त होती है। यह शुक्र उत्पन्न करता, पिपासा को न्यून करता, वक्ष को श्लेष्मादि से स्वच्छ करता, उष्मा का निवारण करता, शरीर को दीप्तिमान करता, चित्त को प्रफुल्लित करता, मूत्र-प्रस्राव को घटाता, उदरज कृमियों को नष्ट करता, और काबिज मलावरोधकारक एवं गुरु है। वृक्ष की जड़ से उत्पन्न कटहल समशीतोष्ण वा मातदिल है। यह वात एवं पित्त को नष्ट करता, हृदय को शक्ति प्रदान करता, प्रकृति में किसीभाँति शीत संजनित करता, शरीर को क्षीण करता, पर रूह तवाना रहती है, पाखाना साफ लाता, कफ एवं उदरस्थ मलादि को दूर करता, और उस ज्वर को दूर करता है जिसे आते हुये ६ मास व्यतीत हो गये हों। कटहल को नीहार मुंह न खाना चाहिये। कच्चे कटहल की तरकारी खाना खाज में लाभकारी है। परन्तु गुरुपाकी होती है। यह पित्त को नष्ट करती है तथा जलोदर एवं सोजिश बाह को लाभकारी है और यह श्लेष्मा की वृद्धि करती है। कटहल अधिक न खाना चाहिये। इसके अत्यधिक सेवन से खाना खा लेने के कुछ देर उपरांत वमन हो जाने का रोग लग जाता है

जिससे शरीर क्षीण होजाता है। वैद्यों ने इसके बीजों को मधुर एवं कषाय वा तिक्त लिखा है। उन्होंने यह भी लिखा है कि ये वाजीकरण की शक्ति को वर्द्धित करते एवं शुक्र को गाढ़ा करते हैं और स्तम्भक हैं। ये गुरु, मल-वष्टंभकारक, शरीर के वर्ण को निखारते, पेशाब कम करते और वायु-जनक हैं। —ख० अ०

मतमत

डीमक—कटहल का दुधिया रस जल में अविलेय सुतासार में अंशतः विलेय और बेञ्जोल में पूर्णतया विलेय होता है। यह रबर (Caoutchouc) का एक भेद है और स्वाभाविक अवस्था में (Bird lime) की भांति काम में आ सकता है और टूटे बर-तनादि के जोड़ने के लिए सीमेंट की भाँति व्यव-हार किया जा सकता है। उबलते हुए जल में प्रक्षालित करनेसे यह कड़ा होजाता है और साधा-रण कामों में भारतीय रबर की भाँति काम आ सकता है। इसकी लकड़ी द्वारा प्राप्त पीला रंग क्षारीय स्वभाव का होता है। और खौलते हुए पानी वा सुतासार द्वारा प्राप्त किया जा सकता है फा० इं० ३ भ० पृ० ३५५।

नादकर्णी—यह अत्यन्त सुस्वादु एवं सुवि-ख्यात भारतीय फल है। इसे अत्यधिक परिमाण में भक्षण करने से दस्त आने लगते हैं। रिक्त आमाशय में और विशेष कर प्रातःकाल इसका भक्षण करना सर्वोपरि होता है इसका कच्चा फल साधारणतः (Pickles) बनाने के काम में आता है। पकाने पर इसकी उत्तम कढ़ी बनती है। इसका भुना हुआ बीज उत्तम खाद्य है। और यह अखरोट के तुल्य होता है। वृक्ष का दूधिया रस सिरके में मिलाकर ग्रंथि शोथ एवं विस्फोटों (Absces-es) पर प्रलेप करने से उनकी विलीनीभवन (Absor-ption) वा पूयोत्पादन (Suppuration) की क्रिया अभिवर्द्धित हो जाती है। इसकी कोमल पत्तियाँ एवं जड़ त्वग्रोगों में लाभकारी हैं। जड़ का काढ़ा तथा जड़ से स्रावित रस द्वारा बना हुआ सांद्र पदार्थ (Concretions) ये दोनों अतिसार रोग में दिये जाते हैं। इसकी पत्तियां सर्प-विष का अगद समझी जाती हैं। The Indian Materia Medica P, 86.

कच्चे फल की तरकारी और अचार होते हैं और फल के कोए खाये जाते हैं। इसकी छाल से बड़ा लसीला दूध निकलता है जिससे रबर बन सकता है। इसकी लकड़ी नाव और चौखट आदिके बनाने के काममें आती है। इसकी छाल और बुरादे को उबालनेसे पीला रंग निकलता है जिससे बरमा के साधु अपना वस्त्र रंगते हैं।

इसके बल्कल से अत्यन्त श्याम वर्ण का निर्यास निकलता है। जिसका भेद तिन्दुलिप्त रहता और जल में घुल सकता है। रस मूल्यवान् लेप और लासे की भाँति व्यवहृत होता है। उससे लचीला, चमड़े-जैसा पानी रोकनेवाला और पेंसिल के चिन्ह मिटाने योग्य रबड़ बन सकता है किंतु अधिक रबड़ नहीं निकलता।

कटहल का काष्ठ वा चूर्ण उबालने से पीला रंग तयार होता है। उससे ब्रह्मदेश वासी साधुओं के वस्त्र रंगे जाते हैं। कटहल के रंगकी माँग मदरास-भारत के अन्य प्रांत और जावासे भी आया करती है। वह फिटकरी डालने से पक्का और हलदी छोड़ने से गहरा पड़ जाता है। नील मिलाने से कटहल का रंग हरा निकलता है। उसे रेशम रंगने में प्रायः व्यवहार करते हैं। बङ्गाल में फल और काष्ठ दोनों से रंग बनता है। अवध में वल्कल और सुमात्रा में कटहल के मूल से रंग निकालते हैं। वल्कल में तन्तु होता है। कुमायूँ में तन्तु से रज्जु बनती है।

वृक्ष का रस मांस के शोथ और स्पोट पर सामयिक की वृद्धि के लिए लगाया जाता है। नवीन पत्र चर्म रोग और मूल अतीसार पर चलता है। बीजमें जो मज्जवत् द्रव्य रहताहै, वह उसको सुखाने और कुटाने-पिटाने से पृथक् हो सकता है अपक्व फल स्तम्भक और पक्व फल सारक होता है। परन्तु अत्यन्त पौष्टिक होने हुये भी यह कुछ कठिनता से पचता है। बीज को भूनकर खाते हैं। इसे पीसने से सिंघाड़े के आटे-जैसा निक-लता है। कच्चे फल की तरकारी बनती है।

भीतरी काष्ठ पीत अथवा पीत प्रभ धूसर वर्ण,

निबिड़, समकण विशिष्ट एवं ईषत् कठोर होता है। प्रदर्शन से तिमिरावृत जान पड़ता, सम्यक् परिणत पड़ता और सूक्ष्म परिष्कार को पहुँचता दारुकर्म में यह अधिक व्यवहृत होता है। कटहल के काष्ठ की मंजूषा और सज्जा बनती है। काष्ठान्तर कार्य और मार्जनी-वृष्ठ के लिए इसे यूरोप भेजते हैं।

(हिं० वि० कोष ३य खण्ड पृ० ६३५)

कटा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी।

कटाई-संज्ञा स्त्री० [सं० कंटकी] (१) भटकटैया। कँटेरी। कटाई। (२) बनभंटा। बरहंटा। बहती संज्ञा स्त्री [बं०] स्वादु-कण्टक। बिलङ्गरा। इं० मे० प्लां०।

कटा कण्ठल-संज्ञा पुं०, मृगभङ्गी।

कटाकीफल-संज्ञा पुं० [सं०] समष्ठील। कोकुआ। कंटकफल।

कटाकु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारकी चिड़िया उणा०।

कटाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] घास फूस की आग। तृणाग्नि। (मनु ८। २७७)

कटायण, कटायन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वीरण। खस। श० च०।

कटार-संज्ञा पुं० [सं० कट्टार] एक प्रकार का बनबिलाव। कटास। खीखर।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का काँटेदार पेड़ जिसका फल खाया जाता है। (२) गेंठी। गृष्टी। गाँठ आलू।

कटारा-संज्ञा पुं० [हिं० कटार] इमली का फल।

संज्ञा पुं० [हिं० काँटा] ऊँटकटारा।

कटा(ता)रे-संज्ञा पुं० [सं० कांतार] एक प्रकार की ईख। केतारा। कांतारेक्षु।

कटाल-संज्ञा [सं० ?] कटला नाम की मछली। (Catla-catla-Ham&Buch) एक प्रकार की मछली जो भारतवर्ष विशेषतः बंगाल के पोखरों नदियों में प्रायः पाई जाती है। इसका मांस मधुर, उत्तेजक, गुरुपाकी और त्रिदोषघ्न होता है।

कटाल-मरेली-[संथाल] बिलङ्गरा। इं० मे० प्लां०।

कटाली-संज्ञा स्त्री० [हि० काँटा] भटकटैया।

कटास-संज्ञा पुं० [हिं० काटना] एक प्रकार का बनबिलाव। कटार। खीखर।

कटाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कछुए का खोपड़ा कूर्म-कपर। मे० हृन्निकं। (२) भैंस का पँड़वा जिसके सींग निकल रहे हों। हारा०। (३) कड़ाह बड़ी कड़ाही। तैलपाकपात्र। श० च०। (४) सूप। त्रिका०, (५) कर्बूर। कचूर। (६) सूर्य। (७) कूप। कूआं।

कटाहक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कड़ाह। भाजन पात्र। (२) मातुलुंग वा बिजौरे के कोये वा फाँक। अग्नि० सू० ११ अ०।

कटाह्वय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पद्मकंद। पद्ममूल। भसींड़। कमल की जड़। रा० नि० व० १०।

कटाक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तिरछी चितवन। तिरछी नज़र। अपांगदृष्टि। अमर०। (२) घोड़े की कनपुटी और कना के बीच का भाग। ज० द० २ अ०।

कांट-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] शरीर का मध्य भाग जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कमर। लक। संस्कृत पर्य्याय—श्रोणिः श्रोणिफलं, कटी (अ० टी०), श्रोणिफलकं, श्रोणी, ककुद्मती, कटः (अमर०), फलत्रं, कटीरं, काञ्चीपदं (हे०), करभः (ज) श्रोणिफल, कटी, श्रोणि, कलत्र। अरबी पर्य्या०—क़तून, सुल्ब। लाइन (अं०)। (२) हाथी का गंडस्थल। हाथी की कनपटी। (३) पीपल। पिप्पली, (४) काञ्ची। घुँघची।

कटिकशेरुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रीढ़ की वह हड्डी जो कमर में स्थित है। (Lumber vertebra) प्र० शा०।

कटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खटिका। खड़िया-मिट्टी।

कटिकामेरा-[कों०] चिनचिनी।

कटिकुष्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] श्रोणि का कुष्ठ रोग। कमर का कोढ़।

कटिकूप-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ककुन्दर। चूतड़ का गड्ढा। सुत्रव।

कटिङ्ग-संज्ञा पुं० [अं० Cutting] एलोपैथी में औषधि-निर्माण प्रक्रिया में वह क्रिया जिससे

औषधियों के विविध अंगों, जैसे, जड़, छाल आदि को बारीक कूटने और भिगोने से पूर्व टुकड़े टुकड़े करते हैं। जैसे— जेंशन रूट (जितियाना मूल) मेज़ेरैन (माजरियून त्वक्). सासाफ़रास रूट (सासाफ़रास की जड़) इत्यादि,कर्त्तन। काटना। स्लाइसिंग (Slicing) (अं०)।

कटिकाविग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Carpus callo sum) अ० शा०।

कटिगुहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pelvic cavity) कटीगुहा। अ० शा०।

कटिज–संज्ञा पुं [सं० ?] मकाई।

कटितट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नितम्ब। चूतड़। कटि देश। कमर।

कटि तरुण संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (Sacro-iciac articulation) संधि विशेष। अ० शा०।

कटित्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रसना। जिह्वा जीभ। मे० रत्रिकं। (२) कटि वस्त्र। (३) घुघुरु। क्षुद्र घंटिका। के०।(४ परिधेय वस्त्र। धोती।

कटिदेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटि। कमर। श्रोणी। जघन। (Loin, Lumber region।

कटिनड़ी–[ता०] पियार। अचार। पियाल।

कटिनाड़ी जाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक नाड़ी जाल जो कमर में स्थित है। षट्चक्रों में से एक।) (Lumber plexus) कटिप्लवक।

कटिपार्श्वच्छापेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष। कटिपार्श्वप्रच्छदा। (Lattissi musdorsi) अ० शा०।

कटि प्रदेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटिदेश। कमर।

कटिप्रोथ, कटीप्रोथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूतड़। स्फिच्। नितम्ब। रा० नि० व० १८। सं० पर्य्या०—स्फिक्, पूलक, कटीप्रोथ, कटिप्रोथ, पूल। (२) कमर का मांसपिण्ड। अम०।

कटिबंध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमरबंद।

कटिरोहक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जो हाथी के पीछे बैठता हो। हस्ती के पश्चाद् भाग पर आरोहण करनेवाला।

कटियाली–संज्ञा स्त्री० [सं० कंटकारि] भटकटैया।

कटिल्ल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) करेला। कारवेल्ल फल। भा० पू० १ भ०। (२) हड़जोर अस्थिसंधार। रा० नि०। नि० शि०।

कटिल्लक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करेला। कारवेल्लक। प० मु०। (२) लाल पुनर्नवा। गदह पूरना। सोंठ। मे० कवचुक। रक्तपुनर्नवा।

कटिल्लिपि–[ता०] महुआ। मधूक।

कटिबंध–दे० "कटिबंध"।

कटिवात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वात रोग। इसे किक्किसवात भी कहते हैं।

लक्षण—

कटीभङ्गो विकारश्च महाशूलं च क्रोध कृत्।
अपस्मारीच दुर्भागी कटिवातस्य लक्षणम्॥

चिकित्सा—

हिंगुलं वत्सनाभं च चक्राङ्गीं त्रिकटुं वचाम्।
चित्रमूल कषायेण समभागं विमर्दयेत्॥
दोलायन्त्रेपचेद्यामं कटिवातं निहन्ति वै।

कटिशीर्षक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमर। कूला। कटिदेश। हला०। पुट्ठा।

कटिशूल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमर का दर्द। कटिदेशस्थ शूल-रोग। कुमरी। (Lumbago) कफ और वायु से कटिदेश में शूलरोग उत्पन्न होता है। एक भाग कुठ और दो भाग हरीतकी का चूर्ण उष्ण जल के साथ सेवन करने से कटिशूल मिट जाता है। दे० "शूल"।

कटिशृङ्खला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटिकिङ्किणी। कमर में पहनने का एक आभूषण। करधनी। हारा०।

कटिसूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमर में पहनने का डोरा। मेखला। सूत की करधनी। करगता। कमरबंद। स्मृति शास्त्र के मत से केवल कार्पास का सूत्र बांधना निषिद्ध है। (२) चन्द्रहार। करधनी।

कटी–संज्ञा स्त्री० [कटिन् सं० पुं०] (१) हाथी। हस्ती। (२) खैर का पेड़। रा० नि० व० ८।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्रोणिफलका अम०। (२) पीपल। पिप्पली। मे० टङ्किकं। (३) स्फिक् प्रदेश। चूतड़। रत्ना०। (४)

एलुआ। (२) अपामार्ग। नि० शि०। रा० नि०। (६) टोक नाम की पक्षी। कुक्कुटि। विष्टिहि। रा० नि०। धन्व० नि०।

कटीकतरुण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुश्रुत में कालांतर-प्राणहर अस्थि मर्मों में से एक वह जो पृष्ठवंश के प्रत्येक भाग में प्रत्येक श्रोणिकर्ण से ऊपर त्रिक के समीप होता है। यहां चोट लगने से मनुष्य के रक्त का क्षय हो जाता है और वह पांडु एवं विवर्ण होकर अंत में मर जाता है। (क्योंकि इससे श्रोणिफलक के बाह्य एवं आन्तरिक अवयवों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, भीतर सूजन होती है, जिससे बहुत पीड़ा होती है।) इसका परिमाण आधा अंगुल मात्र है। सु० शा० ६ अ०।

कटीकपाल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कटीफलक। बिज० र०। कूल्हा। पुट्ठा।

कटी-गुहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Pelviccavity)

कटी-गुहाधर द्वार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Inferior Aperture of lesser Pelvis.) अ० शा०।

कटीगुहोत्तर द्वार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] Superior Aperture of lesser pelvis.) अ० शा०।

कटीग्रह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का वात रोग जो कटयाश्रित वायु के आम युक्त और स्तब्ध होने से उत्पन्न होता है। कटीगत वातरोग।

लक्षण—"वायुः कटयाश्रितः स्तब्धः सामो वा जनयेद्रुजम्। कटिग्रहः स एवोक्तः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्॥" भा० म० १ भ०।

कटीचक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कटिस्थित नाड़ी जाल। (pelvis girdle) अ० शा०। प्र० शा०।

कटीचतुरस्रा पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटि की एक चौकोर पेशी। (Quadratus Lumborum.) प्र० शा०।

कटी तरुण सन्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सन्धि विशेष। अ० शा०। दे० "कटि तरुण सन्धि"।

कटीधान्य–संज्ञा पुं० [सं०] मकाई। बड़ा ज्वार।

कटीप्रोथ–दे० "कटिप्रोथ"।

कटीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जघन स्थल। जटा०। (२) कटि देश। कमर। हे० च०। (३) कटि पार्श्व। अ० टी०। (४) चञ्चू। चेंच। नि० शि०। ५ नितम्ब। चूतड़।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कटिफलक। कूल्हा।

संज्ञा पुं० [गोंडा] कण्टाई। विलङ्गरा।

संज्ञा पुं० [गु०] अज्ञात।

कटीरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नितम्ब स्थल चूतड़। रा० नि० व० १८। (२) जघन। पेड़ू।

कटीरज–संज्ञा पुं० [सं० पु०] चञ्चू। चेंच। कुटिञ्जर। नि० शि०।

कटीरा–संज्ञा पुं० दे० "कतीरा"।

कटील–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे बरदी, निमरी और बँगई भी कहते हैं।

कटीलम्बिनी पेशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटि की एक पेशी। (psoas muscle) प्रा० शा०।

कटीलम्बिनी लघ्वी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटि लम्बिनी छोटी पेशी। (psoas minor)

कटीलम्बिनी वृहती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटि की वह बड़ी पेशी जो कटिकशेरुकाओंसे लेकर रान की हड्डी तक लम्बी होती है। (psoas magnus)

अज़्लः सुलविय्यः कबीरः–अ०।

कटीला–संज्ञा पुं०। दे० "कतीरा"।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) अराकू। (२) वृहती। वन भंटा। (३) कटेरा गोंद। अङ्गिरा। (४) सत्यानाशी। बु० मु०। (५) एक कंटकाकीर्ण तृण जिसके फूल में भी काँटे होते हैं। इसकी पत्ती हरी और फूल पीला होता है। इसकी जड़ औषध के काम में आती है। म० मु०।

वि० (१) कंटक युक्त। काँटेदार। (२) तीक्ष्णाग्र। नोकदार।

कटीला नोन–संज्ञा पुं० [देश०] सोंचर नोन। संचल नमक।

कटु–वि० [सं० त्रि०] (१) कटु रस विशिष्ट। चरपरा। कड़ुआ। झाल। (२) तीता। तिक्त। कड़ुवा। रत्ना०। (३) सुगंध। खुशबू। मे०।

(३) दुर्गन्ध । बदबू । (४) तीक्ष्ण । तेज़ । अ० टी० स्त्रा० । (५) तिक्त । बदज़ायका । (६) उष्ण । गर्म । (७) कसैला । कषाय

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) लता । बेल । (२) राई । राजिका । मे० यद्विकं । (३) कुटकी । कटुकी । रा० नि० व० ६ । (४) एक प्रकार की लता । कटुवल्ली । रा० नि० व० ३ । (५) प्रियङ्गु वृक्ष । फूल प्रियंगु का पेड़ । हे० च० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटु पटोल । तिक्त परवल । वै० निघ० २ भ० उन्माद चि० । (२) चम्पा का पेड़ । चम्पक वृक्ष । (३) मदार का पौधा । अर्क वृक्ष । श० च० । (४) एक प्रकार की घास जो जल में होती है । (५) छत्रक विष, छतरिया विष । श० र० । (६) कुरैया का पेड़ कुटज तरु । (७) बड़ी सरसों । राज सर्षप । हारा० । (८) चिनिया कर्पूर । चीन कपूर । रा० नि० व० १२ । (९) कटवी लता । (१०) नीम । (११) गौर सुवर्ण चित्रकूट में प्रसिद्ध एक प्रकार का शाक । रा० नि० । धन्व० नि० वर्ग ७ । (१२) छः रसों में से एक रस जिसका अनुभव जीभ से होता है । यह कालाग्नि आदि में व्यक्त होता है और वायु अग्नि गुण भूयिष्ठ होता है । रा० नि० व० २० । तीक्ष्ण । कटुक । कड़ुआहट । कड़वाहट । चरपरापन । चरपराहट । झाल । हरीफ (अ०) तुंद मज़ा । तेज़ मज़ा, चरपरा, चटपटा, (उ०) । एक्रिड Acrid, पंजेंट Pungent (अं०) । झालदार (बं०) तिखट् (मरा०) । सु० सू० ४२ अ० । च० । भा० म १ भ० । वि० दे० "चरपरा" ।

[पं०] ब्रुम्ब चीन (बं०, पं० ।

कटु अलन्दु–[ता०] मयवन । मायपर्णी ।

कटु इर्री–[सिंगा०] तालमखाना । कोकिलाक्ष ।

कटुई दही–संज्ञा स्त्री० [हिं० काटना+दही] वह दही जिसके ऊपर की सरी वा मलाई काट या उतार ली गई हो । छिनुई दही । छिका ।

कटुआ–संज्ञा पु० [हिं० काटना] (१) एक प्रकार का काले रंग का कीड़ा जो धान की फसल को जमते ही काट डालता है । बाँका । (२) छिका या साढ़ी उतारे दूध का दही ।

कटुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) । मे० कत्रिकं । (२) मिर्च । मरिच । रा० नि० व० ६ । "कटुकटफलाम्भोधरैः ।" भा० म० १ भ० करट कुब्ज० स० ज्व० चि० । (३) कुटकी । कटुकी । "कटुकं चित्रकं निम्बम् ।" च० द० कफज्व० चि० । (४) कड़ोलक । (५) त्रिपुष । खीरा ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) रस का कड़ुआ वा चरपरा विपाक । सु० सू० ४० अ० । (२) कटुरस । कड़ुआपन । चरपराहट । (३) तिक्त परवल । कटुपटोल । वै० निघ० २ भ० ज्व० चि० कटुफलादि । (४) एक प्रकार का सुगंधि तृण । श० र० । (५) कुरैया का पेड़ । कुटज वृक्ष । (६) मदार का पौधा । अर्क वृक्ष । श० च० । (७) अदरक । आर्द्रक । (८) राजसर्षप । राई । हारा० । (९) लहसुन । लशुन । मे० ।

संज्ञा पुं० [मल०] रुई ।

वि० [सं० त्रि०] कड़ुआ । कटु । चरपरा ।

कटुक कोल–संज्ञा पुं० [सं०] कबाबचीनी । शीतल-चीनी । मद० ।

कटुकण्टक–संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] पेमल का पेड़ । शाल्मली वृक्ष । रा० नि० व० ८ ।

कटुकत्रय–संज्ञा० पुं० [सं० क्ली०] मिर्च, सोंठ और पीपल, इन तीन कड़वी वस्तुओं का वर्ग । त्रिकटु । च० द० ज्व० चि० कवलधारण । "सैन्धवं कटुक त्रयम् ।"

कटुकत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] कटुक का भाव । कटुता । कड़ुवापन । चरपराहट ।

कटुकन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सहिंजन का पेड़ । शिग्रु वृक्ष । (२) आदी । आर्द्रक । (३) लहसुन । लशुन । मे० चतुष्कं ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली] मूली । मूलक । प० मु० ।

कटुकन्दरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक औषधि । किढिणी । गोविन्दी (कों०) । वाघेंची । (प्रा०)

गुण—कटुकन्दरिका गरम, तिक्त, वात कफ-

नाशक और विसूचिका आदि रोगों की नाशक है वै० निघ०।

कटुक पाणि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मकोय। काकमाची।

कटुकपेल–संज्ञा पुं० [मल०] मुरहरी। मूर्वा। चुरनहार।

कटुकफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शीतलचीनी। कक्कोलक। रा० नि० व० १२। वै० निघ० २ भ० वा० व्या० महारास्नादि।

कटुकमञ्जल–संज्ञा पुं० [सिं०] लोबान।

कटुकरञ्ज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करञ्ज। करंजुवा।

कटुक रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छः रसों में से एक रस। चरपरा रस। झालरस। चरपराहट। दे० 'कटु"।

कटुकरोंगनी–संज्ञा स्त्री० [ते०] काली कुटकी।

कटुक रोनी–संज्ञा स्त्री० [ते०] काली कुटकी।

कटुक रोहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी। कटुकी। वा० चि० १ अ० पटोलादि। "पत्रं कटुकरोहिणी।" च० द० ज्व० चि० मुस्तादिगण। "वलाकटुक रोहिणी"।

कटुकरोहिण्यावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पु०] उक्त नाम का एक योग—कुटकी के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से पुराना वमन और हिचकी का शीघ्र नाश होता है। भा० प्र० वा० रो० चि०।

कटुकर्कोटक–संज्ञा पुं० [सं०] कड़ुआ खेखसा।

कटुकवर्ण–संज्ञा पुं० [सं] सोनापाठा। अरलु। श्योणाक।

कटुकवर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत में चरपरी ओषधियों का एक समूह। उन ओषधियों के नाम ये हैं, जैसे—सहिजन, मीठा सहिजन, लाल सहिजन, मूली, लहसुन, सुमुख (सफेद तुलसी) मौरी। (सितशिफ=सौंफ) कूट, देवदारु, रेणुका–हरेणुका, सोमराजी के बीज, शंखपुष्पी (चंडा), गूगल, मोथा, कलियारी, शुकनासा और पीलु तथा पिप्पल्यादि गण, सालसारादि गण और सुरसादिगण की ओषधियाँ। सु० सू० ४२ अ०।

नोट—पिपल्यादि गण की और ओषधियाँ यह हैं—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चीते की जड़, सोंठ, मरिच, गजपीपर, रेणुक, इलायची–एला, अजवायन, इन्द्रयव, अर्क वृक्ष, जीरा, सरसों, महानीम, मैनफर, हींग, ब्राह्मणयष्टिका–भारंगी, मूर्वा की जड़, अतीस, वच, विडङ्ग और कुटकी।

सुरसादिगण की ओषधियाँ यह हैं—तुलसी, सफेद तुलसी, गन्धपलाश, बबई, गंधतृण, महागंधतृण, राजिका, जंगली बबई, कासमर्द, वनतुलसी, विडंग, कट्फल, श्वेतनिसिन्धु, नील निसिन्धु, कुकुरमुत्ता, मूसाकानी, पाना, ब्राह्मणयष्टिका—भारंगी, काकजंघा, काकाङ्घा, और महानिम्ब।

सालसारादि गण की ओषधियाँ यह हैं—साल, पियासाल, खदिर, श्वेतखदिर, विट्खदिर, सुपारी, भूर्जपत्र, मेषशृङ्गी, तिन्दुक, चंदन, रक्त चंदन, सहिंजन, शिरीष, वक, धव, अर्जुन, ताल, करञ्ज, छोटा करञ्ज, कृष्णागुरु, अगुरु और लताशाल।

कटुक वल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटुकी। कुटकी संस्कृतपर्य्या०—कट्वी। कटुकवल्ली। सुकाष्ठा। काष्ठवल्लिका। सुवल्ली। महावल्ली। पशुमोहिनिका। कटः। गुण—चरपरी, ठंडी, कफ और श्वास नाश करने वाली और नाना प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने वाली, रुचिकारि तथा राजयक्ष्मा को नष्ट करने वाली है। रा० नि० व० ३

कटुकशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी और शर्करा का एक योग जो पित्तश्लेष्म–ज्वर में प्रयुक्त होता है। इनमें से प्रत्येक एक–एक तो० लेना चाहिये। वैद्य प्रसार के कु० टी०। चक्रदत्त के अनुसार कुटकी १२ माशे और चीनी ४ माशे लेनी चाहिये।

कटुकस्नेह—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरसों का पौधा। सर्षप वृक्ष। वै० निघ०

कटुका, कटुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुटकी रा० नि० व० ६। वि० दे० "कुटकी"। (२) कड़वी तुम्बी। तितलौकी। (३) छोटे चेंच का चुप। क्षुद्र क्षुद्र चुप। रा० नि० व० ३४। (४) पीतरोहिणी। नेत्रपाषाण। रत्ना०। (५) लताकस्तूरी। मुश्कदाना। च० द० वा० व्या० चि०। (६) पान। ताम्बूली। (७) सोंचर नमक। (८) तिक्तशुण्डी, कड़ुआ कुन्द्रु। नि० शि०। (९) राजसर्षप। राई। (१०) कुलिकवृक्ष।

कटुकाख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी। कटुकी सु०।

कटुकाद्य-कषाय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटुकी, चित्रकमूल, नीम की छाल, हल्दी, अतीस तथा वच इन औषधियों को उचित मात्रा में लेकर क्वाथ बनाएँ।

गुण तथा उपयोग विधि—मधु युक्त इसको पीने से श्लैष्मिक ज्वर नष्ट होता है। चक्रद०।

कटुकाद्यलौह—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शोथ में प्रयुक्त उक्त नाम का योग—कुटकी, त्रिकुटा, दन्ती, बायविडंग, त्रिफला, चीता, देवदारू, निसोथ और गजपीपल प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग, और लोह चूर्ण सब से दूना लेकर एकत्र मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से सूजन नष्ट होती है। र० र० शोथ चि०। भैष० रत्न० शोथ चि०।

कटुकापाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हैंस। हिंसा। कण्टकपाली वृक्ष। रत्ना०। प० मु०।

कटुकारोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी

कटुकालाबु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तितलौकी। तिक्तुम्बी। र० मा०।

कटुकालांबुनी—संज्ञा स्त्री [सं स्त्री०] कटुतुम्बी। तितलौकी। इक्ष्वाकु।

कटुकावल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटुकी। कुटकी, रा० नि०। नि० शि०।

कटुकिना—[सिं०] चीर फल (बम्ब०)।

कटुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुटकी। कुटका, रा० नि०। नि० शि०। (२) वृहती। बड़ी कटेरी नि० शि०।

कटुकी चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं क्ली०] (१) कुटकी का चूर्ण २-३ माशे की मात्रा में शहद के साथ चाटने से पुरानी हिचकी और वमन का नाश होता है। वृ० त्रि० र० वात रोग चि०। (२) १ तोला परिमित कटुकी के चूर्ण में समान भाग मिश्री मिलाकर खायें। तदनन्तर (चौगूना) गरम पानी पीएँ। गुण—इसके सेवन से पित्तश्लैष्मिक ज्वर नष्ट होता है। (यह मल वद्ध में विशेष गुण करता है।) चक्र द०।

कटुकीट, कटुकीटक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मशक। मच्छड़। डाँस। मसा। जटा०।

कटुकुरोगनी—[ता०] कुटकी।

कटुकुरोनी—[ते०] कुटकी।

कटुकोशातकी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़वी तोरई।

कटुकाण, कटुकाण—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] टिटिहरी टिट्टिभ पक्षी। हे० च०।

कटुकापिक्षी—[मल०] जंगी हड़।

कटुकामार—[मल०] हड़।

कटुगुणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़वी औषधियाँ। कड़वे द्रव्य।

कटुगुणा—चरपरी औषधियाँ गुण में—चरपरी, कफ, कंठज दोष, सूजननाशक और कुछ वातकारक, श्वित्र रोग नाशक तथा अधिक सेवन से क्षय कारक, और बलवीर्य को नाशक हैं। रा० नि०। धन्व० नि०।

कटुग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) पिपरामूल। पिप्पलीमूल। (२) सोंठ। रा० नि० व० ६। (३) लहसुन। वै० निघ०।

कटुङ्कता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नित्यकर्म एवं आचार की निष्ठुरता। हारा०।

कटुचातुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चार कड़वी वस्तुओं का समूह अर्थात् इलायची, तेजपात, दालचीनी (वा तज) और मिर्च।

यथा—

"एलात्वक् पत्रकैस्तुल्यैर्मरिचेन समन्वितैः
कटुपूर्वमिदञ्चातुर्जातकमुच्यते।"

रा० नि० व० २२।

कटुच्छद—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तगर का पेड़। श० र०। (२) गंधतुलसी। सुगंधार्जक। वै० निघ०।

कटुचुरम—[मल०] जंगली लौकी।

कटुजालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़वी तरोई। कोशातकी। नि० शि०।

कटुजीरक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीरा। जीरक। रा० नि० व० ५।

कटुता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कड़वाहट। कड़वापन। कड़ुवाई। (२) तीक्ष्णता। (३) दौर्गन्ध्य।

कटुतिक्त, कटुतिक्तक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चिरायता। किरातितिक्तक। भा० पू० १ भ०।

(२) बड़े सन का पेड़। महाशणवृक्ष। पटसन। (३) सन का पेड़। शणचुप रा० नि० व० ४।

कटुतिक्तका, कटुतिक्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाशण। सन का पौधा। पटसन। प० मु०। (२) तितलौकी। कटुतुम्बी। श० र०। (३) शणपुष्पी। धन्व० नि०।

कटुतिक्ततुण्डी–संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] बिम्बी। कड़ुवा कुन्दरु।

कटुतिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तितलौकी कटुतुम्बी। (२) कड़वी तोरई। कटुतुण्डी। रा० नि० व० ३।

कटुतिन्दुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचला। कुचेलक। श० च०।

कटुतिप्पली–[मल०] भुइ ओकरा। वशीर। बुकन। (Lippia Nodiflora, *Rich.*) जलपीपर।

कटुतुण्ड–संज्ञा पुं० [सं०] कड़ुआ कुनरू।

कटुतुण्डिका, कटुतुण्डी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कड़वी तुरई। तिक्ततुण्डी। तीतीतरोई। संस्कृत पर्य्याय—तिक्ततुण्डी, तिक्ताख्या और कटुका। गुण—यह कटु तिक्त तथा कफ, वान्ति, विष, अरोचक एवं रक्तपित्त नाशक और रोचन होती है। (२) कड़ुवा कुन्दरू। नि० शि०। रा० नि० व० ३। (३) कुनरू। बिम्बी। तेलाकुचा (बं०)। वि० दे० "तुरई"।

कटुतुम्बिका, कटुतुम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तितलौकी। तिक्तालाबु। कड़वी तुम्बी। राज०। वै० निघ०।

कटु-तुम्बिनी–संज्ञा स्त्री० सं० स्त्री] तितलौकी। तिक्त अलाबु। रा० नि० व० ३।

कटु-तुम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़ुवी तुम्बी। तितलौकी। तिक्त अलाबु। रा० नि०।

कटु-तुम्बी तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गलगण्ड रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग, यथा—

निर्माण विधि—बायविडंग, जवाखार, सेंधानमक, चव्य, रास्ना, चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल और देवदारु इन्हें समान भाग लेकर कल्क बनाएँ, कड़वी तुम्बी का रस (स्वरस सबसे चौगुना) और कड़वा तेल (१ भाग) लेकर तेल सिद्ध करें। इसका नस्य लेने से पुरातन गलगण्ड का नाश होता है।

कटु-तुम्ब्यादि तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

निर्माण विधि—कड़वी तुम्बी के ४ गुने रस में और पिप्पल्यादि गण (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, गजपीपल, रेणुका, इलायची, अजमोद, इंद्रजौ, पाठा, सरसों, बकाइन, मैनफल, हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, वच, वायविडंग और कुटकी) के कल्क से सिद्ध तैल से गण्डमाला और गलगण्ड का नाश होता है। वृ० नि० र० गलगण्ड चि०।

कटु-तुम्ब्यादि लेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्श रोग में प्रयुक्त होने वाला एक लेप।

निर्माण क्रम—कड़ुवी तुम्बी के बीजों को कांजीमें पीसकर गुड़ मिलाकर लेपकरने से बवासीर का समूल नाश होता है। वृ० नि० र० अर्शचि०।

कटु-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कड़ुआ तेल। सरसों का तेल। सार्षप तैल। दे० "सरसों"। अत्रि० सू० १४ अ०। वा० टी० हेम०। तैल व०। रा० नि० १५ व०।

कटु तैल मूर्च्छा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कड़ुवे तेल की मूर्च्छा विधि—हड़, हल्दी, मोथा, अनार, केशर, बेल की जड़, काला ज़ीरा, सुगंधवाला, बहेड़ा, नलिका (नली) और आमला १-१ कर्ष, मजीठ २ पल, तेल कड़ुआ २ प्रस्थ, जल २ आढक। प्रथम हल्दी पुनः मजीठके चूर्ण का पुनः अन्य ओषधियों का प्रक्षेप डाल कर विधिवत् तेल सिद्ध करें। यह आमदोषहारक है। भैष० र०। वि० दे० "सरसों"।

कटुत्रय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तीन कड़ुई ओषधियों का समूह। यथा—सोंठ, मिर्च और पीपर। पर्याय—कटुत्रिक, त्रिकटु। रा० नि० व० २२। भा०। गुण—इसके सेवन से स्थूलता, अग्निमांद्य, श्वास, कास, श्लीपद और पीनस रोग नष्ट होता है। वा० भ० सं०।

कटुत्र्यादि चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कास रोग में प्रयुक्त, उक्त नाम का एक योग। यथा—सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, देवदारु, रास्ना, वायविडंग, त्रिफला और गिलोय। इन्हें समान भाग लेकर यथाविधि चूर्ण करें।

गुण तथा उपयोग—इसे २-३ मा० की मात्रानुसार मिश्री के साथ सेवन करने से कास रोग का नाश होता है। वृ० नि० र० कास चि०।

कटुत्रिक लेह—संज्ञा पुं० [सं० पु०] हिक्का रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग—त्रिकुटा, जवासा कायफल, काली जीरी, पुष्करमूल और काकड़ा-सिंगी के चूर्ण को शहद मिलाकर चाटने से हिचकी खाँसी और कफ श्वास का अत्यन्त शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० हिक्का चि०।

कटुत्रिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "कटुत्रय"।

कटुत्रिकादि–संज्ञा पुं० [सं० पु०] उक्त नाम का एक योग, जो कास रोग में प्रयुक्त है।

योग-निर्माण—सोंठ मिर्च, पीपल इन्हें समान भाग में लेकर यथा विधि चूर्ण करें। मात्रा—२-४ मा०, इसे गुड़ और घृत के साथ निरन्तर सेवन करने से खाँसी नष्ट होती है। वृ० नि० र० कास चि०।

कटुत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कड़ुआपन। चरपराहट कड़ुवाहट। झाल।

कटुदला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की ककड़ी। कर्कटी। कर्कटिका। रा० नि० व० ७।

कटु-दुग्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तितलौकी। तिक्त अलाबु। वै० निघ०।

कटुनिरुरी–[मल०] पानजोली–हिं०। कमूनी।

कटु-निरुरे–[मल०] पानजोली–हिं०। कमूनी।

कटु-निष्पाव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का धान, जिसे नदी निष्पाव वा बोरोधान भी कहते हैं। श० च०।

कटु-निष्प्लाव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "कटु निष्पाव"।

कटु-पड़वल–[स०] जंगली परोरा। तिक्त पटोल। जंगली परवल।

कटुपत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
कटुपत्रक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पित्तपापड़ा दवन पापड़ा। पर्पट। (२) सफेद पत्ते की छोटी तुलसी। सितार्जक। रा० नि० व० ५। सुमुक। कुठेरक। कठिञ्जर।

कटुपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
कटुपत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटा-चेंच। लघु चुंचु तृप। (२) भटकटैया। भू-रिंगनी। (३) एक प्रकार का तृप। कारी।

नोट—ख़ज़ाइनुल् अदविया के अनुसार एक हिंदुस्तानी औषधि जो उष्ण एवं कषाय होती है। इसका फल शीतल होता है, और स्तम्भन करता है। यह पित्त शामक एवं वायु कारक है। (ख़० अ०)।

कटुपरनी–संज्ञा स्त्री० [सं० कटुपर्णी] चूका।

कटुपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] दे० "कटुपर्णी"।

कटु पर्णिका, कटुपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भँड़भाँड़, सत्यानाशी। हीरिणी। इसकी जड़ को चोक कहते हैं। संस्कृत पर्य्याय—कटुपर्णी, हैमवती, हेमजीरी, हिमावती, हेमाह्वा, पीलदुग्धा, गुण—हेमाह्वा रेचक, तिक्त, भेदिनी और उत्क्लेश कारिणी होती है और कृमि, खुजली, विष, आनाह तथा कफ पित्त, रक्त और कोढ़ को नष्ट करनेवाली होती है। भा० म० १ भ०। वि० दे० "सत्यानाशी" (२) काञ्चन जीरी। काञ्चनी। कर्पणी। पिसौरा रा० नि०। नि० शि०।

कटुपाक–वि० [सं० त्रि०] पाक भेद। दे० "कटुविपाक"।

कटुपाकी–वि० [सं० त्रि०] जिसका विपाक कटु हो। चरपरे विपाक वाला। पचने पर जो चरपरा हो।

कटुफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) परवल। पटोल। पर वल। रा० नि० व० ३। (२) कंकोल। कक्कोल। (३) तीती ककड़ी। तिक्त कर्कटिका। (४) करेला। कारवेल्लक। (५) कायफल। (६) कीकर की फली। बबुरी।

संज्ञा पुं० (सं० क्ली०) इन्द्रजौ। इन्द्रयव। वै० निघ० १ भ० या० व्या० चि०।

कटुफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) श्वेत बबूल। सीकाकाई। (२) तितलौकी। तिक्तालाबु। रा० नि० व० ३। (३) बृहती। बन भंटा। (४) भटकटैया। कंटकारी। (५) चिर्भोटक। चेंच। (६) काकमाची।

कटु बदरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खट्टे बेर का पेड़।

कटुवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कट्वी । कुटकी । दे० "कटुवल्ली" ।

कटुबिम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़ुवा कुन्दरू ।

कटुबीजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिप्पली । पीपर । पीपल् ।

कटुभङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोंठ । त्रिका० ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जङ्गली भांग । जिसकी पत्तियाँ खाने में बहुत कड़वी होती हैं ।

कटुभद्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोंठ । रा० नि० व० ६ (२) अदरक । आदी । भा० पू० १ भ० ।

कटुभेदिनिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्णजीरक । स्याह जीरा । धन्व० नि० ।

कटु मच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीरनी ।

कटु मञ्जरिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
कटु मञ्जरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
शुक्लापामार्ग । सफेद चिचड़ी । लटजीरा । रा०नि० व० ४ । दे० "अपामार्ग" ।

कटुमारी–सं० स्त्री० [सं० ?] पीरनी ।

कटुमदर–[का०] अदरक । आदी ।

कटु मल्लिगे–[ता०] वन मल्लिका ।

कटुमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पिपरामूल । पिप्पली मूल । रा० नि० व० ६ ।

कटुमोद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का ज्वर नाशक सुगन्ध द्रव्य । गन्धराज । जवादि । रा० नि० व० १२ ।

कटुम्बरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कठूमर] जंगली अंजीर ।

कटुम्बरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुटकी । (२) राजबला । प्रसारणी ।

कटुम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़वा कुनरू ।

कटुम्भरा–संज्ञा स्त्री० सं० स्त्री०] (१) गंधप्रसारणी प्रसारणी । गंधाली । च० द० वा० व्या० एकादश शतिक प्रसारणी तैल । (२) कुटकी । वृ० नि० र० (३) कर्कटी । ककड़ी ।

कटुम्भी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मालकँगनी । ज्योतिष्मती ।

कटुर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तक्र । छाछ । मट्ठा । जटा० । (२) मूषकभारी । मूसामारी । श्रुत श्रेणी । नि० शि० ।

कटुरव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेंढक । भेक । दादुर । रा० नि० व० १९ ।

कटुरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मेंढक । दादुर ।

कटुरा–संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री] (१) ताजी हल्दी । आर्द्रहरिद्रा । कच्ची हल्दी । (२) कण्टालु । जवासा । लाल जवासा । कुनाशक । कषाय । नि० शि० ।

कटुरुणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] निसोथ । त्रिवृता । रत्ना० ।

कटुरोहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुटकी । कटुकी । र० मा० । रा० नि० व० ६ । वा० सू० १५ अ० पटोलादि । च० द० पित्तज्व० चि० दुराल भादि । "भूनिम्ब वासा कटुरोहिणीनाम् ।" च० द० कफज्व० चि० मुस्तादि । "त्रिफला कटुरोहिणी ।" अष्टादशाङ्ग कषाय । "पटोलं कटुरोहिणी ।" च० द० ज्व० चि० शठ्यादि ।

कटुलता–संज्ञा स्त्री– [सं० स्त्री] कुटकी । भैष० ।

कटुलम–[कों०] पानी वेल (बं०) ।

कटुलमस्तक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चविका लता । रा० नि० । धन्व नि० ।

कटुल्ली–[मल०] जंगली प्याज़ ।

कटुवरा–[मल०] सर्व जया ।

कटुवर्ग–दे० "कटुकवर्ग ।"

कटुवर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] ध्यामक ।

कटुवल बट्टु–[सिं०] कटेरी । कटाई ।

कटुवल्लरी–[मल०] लाल इन्द्रायन । महाकाल ।

कटुवल्ला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गुम्मडु ।

कटुवल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तिल ।

कटुवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं स्त्री०] कट्वी । कुटकी ।

कटुवाताद–संज्ञा पुं० [सं०] कडुआ बादाम ।

कटुवार्त्ताकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लक्ष्मणा । नि० शि० । श्वेत कटेरी ।

कटुवार्त्ताकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़ुआ बैंगन । तिक्त वार्त्ताकी । (२) सफेद भटकटैया । श्वेत कण्टकारी । (३) क्षुद्रबृहती । छोटा बैंगन । रा० नि० व० ४ ।

कटुवार्त्ताकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) क्षुद्र बृहती । वै० निघ० (२) लक्ष्मणा । नि० शि० ।

कटु वाष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महाराष्ट्री मरेठी। गलफुलना। प० मु०। पानी पीपर।

कटु विपाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चरपरा-विपाक कटुपाक। द्रव्य का पाक कटुत्व। तीते, चरपरे और कसैले रस वाले द्रव्य मात्र इसके आश्रय स्थान हैं, वा यूं कहिये कि उक्त रसमय द्रव्यों का विपाक चरपरा होता है। कटु विपाक वाले द्रव्य गुण में हलके, वायुकारक, शुक्रनाशक और कफ एवं पित्त नाशक होते हैं। सु० सू० ४० अ०। वि० दे० "विपाक"।

कटुबीजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीपल। पिप्पली। रा० नि० व० ६।

कटुवीरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल मिर्च। रक्त मरिच। कुमरिच। यह अग्नि जनक, दाहक और बलास, अजीर्ण, विशूची, व्रण, क्लेद, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वर भङ्ग एवं अरोचक नाशक है। कटवीरा सन्निपात-जड़ीभूत और हतेन्द्रिय मनुष्य को मरने नहीं देती। अत्रि०। दे० "मिर्च"।

कटुश्रवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ुवा कुनरू।

कटुशृङ्गाट, कटुशृङ्गाल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का साग, जिसे गौर सुवर्ण वा सोन-भाजी भी कहते हैं और जो चित्रकूट में अधिकता से होता है। रा० नि० व० ७।

कटुषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चकवँड़। पवाँड़।

कटुसिंह पुत्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटा पिठ-वन। क्षुद्र पृश्निपर्णी।

कटुसिंही–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कड़वा बैंगन। कटु वार्त्ताकी।

कटुस्नेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सरसों। सर्षप। त्रिका० (२) कड़वा तेल। कटु तैल। भैष० बाल०-चि०। (३) सफेद सरसों। गौर सर्षप। रा० नि० व० ७।

कटुहुञ्ची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) करेली। कारबेल्ल। रा० नि० व० ७। (२) कर्कटी। ककड़ी।

कटूत्कट, कटूत्कटक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोंठ। शुण्ठि। (२) अदरक। आदी। र० मा०।

कटूदरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रसिद्ध औषधि जिसे कोंकण में गोविंदी कहते हैं। यह कटु, उष्ण, कफनाशक, वातनाशक और विसूचिका की नाशक होती है। वै० निघ०।

कटूमर–संज्ञा स्त्री० [सं० कटु+उदुम्बर, हिं० कठूमर] जंगली गूलर का वृक्ष। कट गूलर।

कटूषण–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) पिपरामूल, पिप्पलीमूल। (२) सोंठ। रा० नि० व० ६। (३) पीपल। पिप्पली। वै० निघ०।

कटूषणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० [दे० "कटूषण"।

कटेन्थ–[मल०] जंगली खजूर।

कटेरनी–[सिंध] रेंड। अरंड। करबिला। (पं०)। इं० मे० प्लाँ०।

कटेरा–संज्ञा पुं० [फा० कतीरा] (१) कंट पलास। गनिआर। (२) कतीरा। सम्गुल कताद (अ०)।

संज्ञा पुं० [फा०] कसेरू।

कटेरा गोंद–संज्ञा स्त्री० [हिं० कटीरा + गोंद]। कतीरा।

कटेराए हिन्दी–संज्ञा पुं० [फा०] हिंदी कतीरा–गोंद।

कटेरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा] एक भूलुण्ठित क्षुद्र क्षुप जो छत्ते की भाँति भूमि पर आच्छादित होता है। यह ऊँची एवं शुष्क भूमिमें उत्पन्न होती है। नदी तीर में यह बहुत सुख मानती है और खूब बढ़ती है। शीतकाल में यह संकुचित रहती है और गरमी के दिनों में फूल-फल से सुशोभित होती एवं बरसात का पानी पड़ते ही क्लिन्न होकर नष्ट होजाती है। इसमें अत्यधिक शाखाएँ होती हैं। जड़ न्यूनाधिक द्विवर्षीय होती है। क्षुप काँड रहित होता है। पत्ती आकृति में बनगोभी की पत्ती की तरह की प्रायः युग्म दीर्घायताकार, कलशाकार (Pinnatifid) वा भालाकार एवं मसृण होती है, किंतु इसके दोनों पृष्ठ पर दीर्घ सुदृढ़ एवं सरल कण्टक होते हैं। पत्र मध्य से पुष्प-स्तवक निकलते हैं। पुष्प दंड प्रायः इतना लम्बा होता है, जिस पर ४–६ तक एकाँतरीय, सवृंत, बृहत्, उज्ज्वल नीलवर्ण के पुष्प आ सकते हैं। फूल की कटोरी वा पुष्प बहिरावरण पर सीधे काँटे होते हैं। शाखा, पत्र पृष्ठोदर, पत्र-

वृंत और पुष्प दंड इन सभी पर सर्वत्र तीक्ष्णाग्र प्रचुर कंटक होते हैं। अस्तु, इसकी "दुःस्पर्शा" संज्ञा यथार्थ में अन्वर्थ है। पुष्प दल मिलित होता है और अशाख पुष्प दण्ड पर स्थित होता है। दलाग्र पाँच भाग में चिरित होता है। पराग कोष स्थूल पीतवर्ण का होता है। फल वर्त्तुलाकार बड़ी रसभरी की आकृति का, अति मसृण, नीचे की ओरझुका हुआ होता है। अपक्वावस्था में यह हरा वा सफेद वा चितले रंग का होता है। फल के गात्र पर सफेद धारियाँ पड़ी होती है। पकने पर यह पीला पड़ जाता है। बीज भंटे के बीज की तरह होते हैं। सफेद कटाई के फूल सफेद रंग के होते हैं। इस जाति की कटाई सुलभ नहीं होती। खोजने पर कहीं कहीं मिल जाती है।

सफेद कटाई के केशर प्रायः पीले होते हैं, पर किसी-किसी सफेद कटेरी के पुष्प और केशर दोनों ही सफेद होते हैं और समग्र पत्तों और शाखाओं पर सफेद रोओं सा होता है। देखने से समग्र क्षुप एक श्वेत वस्त्र खण्ड की तरह जान पड़ता है है। इसकी यह जाति दुर्लभ होती है और प्रायः रसायन के काम आती है।

पर्य्याय—कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका, कण्टालिका, कण्टकिनी, धावनी, दुष्प्रधर्षिणी (ध० नि०), कण्टकारी, कण्टकिनी, दुःस्पर्शा, दुष्प्रधर्षिणी, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धा, धावनी, (धाविनी), क्षुद्र-कण्टिका, बहुकण्टा, क्षुद्रकण्टा, क्षुद्रफला, कण्टारिका, चित्रफला (रा० नि०) कण्टकारी, दुःस्पर्शा, क्षुद्रा, व्याघ्री, निदिग्धिका, कण्टालिका, कण्टकिनी, धावनी, बृहती (भा०) धावनी (के० दे०), प्रचोदनी, बहुगूढाकुञ्जी, वार्ताकी, स्तृशी, राष्ट्रिका, कुञ्जी, (अ०), अनाक्रान्ता, भंटाकी, सिंही, धावनिका (र०) कुलिः (शब्द र०) कासघ्नः (वै० निघ०) कासघ्नी (प० मु०) कण्टश्रेणी, कण्टकफलः, कण्टकफला कण्टकश्रेणी, कण्टका, कण्टकारिः, कण्टकारिका, कण्टकार्य्याः, कण्टकालिका, कण्टारिका, कण्टाली, कण्टानिका-सं०।

परिचयज्ञापिका संज्ञा—'क्षुद्रा' "बहुकण्टा" "क्षुद्रकण्टा" "क्षुद्रफला" "चित्रफला"। कटेरी, छोटी कटेरी, कटाई, छोटी कटाई, लघु कटाई, कँटेरी, कटाली, कटेली, कटियाली, कटैया, कटखुरी, कांडयारी, भटकटाई, भटकटैया, महूकड़ी, रूपाखुरी, रेंगनी, बहुपत्र डोरला-हिं०। द०। मरा०। कण्टिकारी जंगली बैगुन, कांटाकरी-बं०। बादंजान बरी। बादंजानदश्ती। शौकतुल अक़रब हृदक़, इ्सिम्-अ। बादंगानबरी, कटाई ख़ुर्द=फ़ा०। सोलेनम ज़न्थोकार्पम् Solanum xanthocarpum, Schrad, & Wendl. सोलेनम जैक्वीनाई Solanum Jacquini, *Willd* (Frint or berry of.) ले०। वाइल्ड एग्स प्लांट Wild Eggs plant; Bitter. sweet Woody night shade,-अं०। Jacquin's night-shade। कण्डङ् कत्तिरि, चंदन वृतक-ता०। वाकुडु, नेलमुलक, पिन्नमुलक, श्वटीमुलंजा, वेरटी मुलङ्ग, वाकुडिचेट्टु-ते०। कण्टम् कत्तिरि, वेलबोट्टु वालुटिना-मल०। तेलगुल्ला-कना०, का०। चिन्चार्टी-कों०। दोरली, डोरली, रिंगणी, लघुरिंगणी, मुहरिंगणी, भूरिंगणी, काँठेरिंगनी-मरा०, बम्ब०। रिंगनी, वेंगनी, पाथ रिंगनी, बेठी भोरिंगनी-गु०। कटु वल्बटु, कटुवेल-वाटु-सिंहली। ख़यान क़ो-ब्रह्मी। कण्टमारिष-उत्०, उड़ि०। वरूंवा, महोड़ी ममोलो-पं०। कंटाली-मार०। कटाली, कव्याज़ी राजपु०।

वृहती वा वृन्ताकी वर्ग
(*N. O. Solanaceœ*)

उत्पत्ति स्थान—इसके क्षुप भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते हैं। भारतवर्ष के पूर्वीय और पश्चिमी घाटों पर ये विशेष रूप से होते हैं। हिंदुस्तान में पंजाब से आसाम और लंका तक इसकी पैदायश होती है।

रासायनिक संघटन—इसके फल में वसाम्ल (Fatly acids), मोम (Wax) और एक क्षारोद-ये द्रव्य पाये जाते हैं। सूखी पत्ती में एक क्षारोद और एक सेन्द्रियाम्ल (Organic acid होता है।-मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया आर० एन० खोरी, खं० २, पृ० ४५०; इं० मे० मे० पृ० ८०५।

औषधार्थ व्यवहार—समग्र क्षुप, फूल, केसर, फल, बीज इत्यादि।

मात्रा—क्वाथ-५-१० तो०; स्वरस १-२ तो०; कल्क।

औषध निर्माण—कण्टकत्रय, कण्टक पञ्च-मूल, कण्टकारि (री) त्रय, कण्टकारी घृत, कण्ट-कारी द्वय, कण्टकार्यादि, कण्टकार्यावलेह और भृगु-हरीतकी प्रभृति योगों का कण्टकारी एक प्रधान उपादान है। इससे निम्नलिखित औषधें भी प्रस्तुत होती हैं—

कंटकारी क्षार—कटाई के समग्र क्षुप को छाया में सुखाकर जला लेवें और जलाने से जो भस्म प्राप्त हो, उससे क्षार-निर्माण-विधि द्वारा लवण प्रस्तुत करें। अर्थात् उक्त भस्म को पानी में घोलकर तीन दिन तक पड़ा रहने दें। इसके उपरांत ऊपर का साफ पानी लेकर पकायें। पानी जल जाने पर जो बचे उसे खुरचकर रखें। यही कण्टकारी का लवण है।

गुण प्रयोग—यह श्वास और कास में परम गुणकारी है और आहार पाचक एवं क्षुधाजनक है। इसमें सम भाग जौहर नौसादर मिलाकर इसमें से थोड़ा नाक में नस्य लेने से अपस्मार और योषा-पस्मार आराम होते हैं।

मात्रा—१-१ रत्ती।

कण्टकारी रस क्रिया (सत)—कण्टकारी का समग्र क्षुप लेकर मिट्टी प्रभृति से शुद्ध करके खूब कूटें। पुनः उसमें अठगुना पानी मिलाकर अग्नि पर चढ़ाकर पकायें। जब जलते जलते द्विगुण पानी शेष रह जाय तब उसे कपड़े से छान कर स्थिर होने के लिये रख देवें। इससे उसकी मैल प्रभृति नीचे बैठ जायगी। तदुपरांत ऊपर का तरल भाग लेकर पुनः क्वथित करें। जब अवलेह की भाँति गाढ़ी चाशनी हो जाय, तब अग्नि से उतार कर ठंढा होने के लिये रख देवें। ठंढा होने पर इसे चीनी के बर्तन में सुरक्षित रखें।

नोट—वाटर-बाथ पर पकाने से सत्व के जलने का डर नहीं रहता।

गुण प्रयोग—यह पाचक, क्षुधाजनक और कृमिघ्न है तथा श्वास एवं कास को दूर करता है।

मात्र—१ मा० तक।

कंटकारी-तैल—कटेरी के पके फल लेकर चीर कर दो-दो टुकड़े कर लेवें। इन टुकड़ों को एक खुले मुंह की बोतल में डालकर, उसमें इतना तिल-तैल डालें जिसमें वे फल डूब जाँय। फिर बोतल का मुंह बंद करके उसे ४० दिन धूप में रखें। इसके बाद तेल को साफ करें।

गुण प्रयोग—शिरःशूल, अर्द्धावभेदक, पीनस, अपस्मार और योषापस्मार रोग में यह तेल थोड़ा थोड़ा नाक में सुड़कें और संधिशूल अंगमर्द एवं सुस्ती के लिये शरीर पर इसका अभ्यंग करें।

अन्य विधि—कंडियारी के समग्र क्षुप को कूट कर रस निकालें। यह रस एक भाग, दो भाग तिल-तैल में मिलाकर लोहे की कड़ाही में डालकर चूल्हे पर चढ़ायें। कड़ाई के नीचे मध्यम अग्नि जलावें। जब रस जलकर तैल-मात्र शेष रह जाय, तब कड़ाई को आग से पृथक करें। ठंढा होने पर तेल को छानकर शीशी में सुरक्षित रखें।

गुण, प्रयोग—इसके अभ्यंग से संधियों का शूल सप्ताह वा पक्ष के भीतर दूर हो जाता है।

कण्टकारी द्वारा धातु मारण

कटेरी के विविध अंगोपांगों से सोना, चांदी, प्रभृति अनेक धातुओं की उत्तम भस्में प्रस्तुत होती हैं। सफेद कटेरी की एक विधि ऐसी है, जिससे चाँदी की सालिमुल् हरूफ एवं निरुत्थ भस्म तैयार होती है। इसी प्रकार की अन्य अनेक परीक्षित विधियाँ और हैं, जिसका सविस्तारोल्लेख उन-उन धातुओं के अन्तर्गत किया गया है। अस्तु, वहां देखें। यहांपर भी दो-एक विधि का उल्लेख किया जाता है—

(१) मल्ल भस्म विधि—कटेरी के समग्र क्षुपों को जलाकर २ सेर राख प्राप्त करें। फिर उसमें से १ सेर राख किसी मिट्टी के बरतन में दबाकर रखें और उसपर १ तोला सफेद संखिया की समूची डली रखें और उसके ऊपर शेष अर्द्ध सेर राख भी खूब जमाकर रखें, पुनः बरतन को चूल्हे पर रखकर नीचे मन्द अग्नि जलायें, जब राख ऊपर तक गरम होजाय, तब मल्ल की जगह सलाई प्रविष्ट कर देखें, जब मल्ल नरम होकर

सलाई उसके आर-पार निकल जाय तब अग्नि बुझा देवें और स्वांग शीतल होने पर उसे निकालें मल्ल खिल कर भस्म हो गया होगा। गुण, प्रयोग—यह भस्म कास, श्वास के लिए अव्यर्थ महौषधि है और भूख लगाता एवं पाचक है। मात्रा—अर्द्ध चावल नवनीत के साथ।

(२) रजत भस्म—कटेरी का समग्र क्षुप लेकर कूटकर रस निकालें, और उसे बोतल में भर देवें, जब गाद नीचे बैठ जाय; तब ऊपर का निथरा हुआ साफ पानी ले लेवें; फिर आवश्यकता नुसार चाँदी का बुरादा लेकर इस रस से चार पहर खरल करके टिकिया बनायें और १ सेर उपलों में आग देवें, फिर निकालकर यथाविधि कटेरी के रस से खरल करके आग देवें, इसी प्रकार कई बार आँच देने से चाँदी की उत्तम भस्म प्रस्तुत होती है। गुण, प्रयोगादि—उत्तम क्षुधा-कारक एवं वाजीकरण है। यह शरीर को शक्ति प्रदान करता है। मात्रा—आधी रत्ती तक।

सफेद कटेरी—कासघ्नी, क्षुद्रमाता, वार्ताकिनी, वनजा, आटव्या, कपटा; कपटेश्वरी, मलिना, मलिनाङ्गी, कटुवार्ताकिनी, गर्दभी, बहुवाहा, चन्द्र-पुष्पा, प्रियंकरी, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूती, सितासिंही, कुमर्तिका, सुश्वेता, कण्टकारी, दुर्लभा, महौषधि, (ध० नि०), सितकण्टारिका, श्वेता, क्षेत्रदूती, लक्ष्मणा, सितसिंही, सितक्षुद्रा, क्षुद्रवार्ताकिनी, सिता, क्लिन्ना, कटुवार्ताकी, क्षेत्रजा, कपटेश्वरी, निःस्नेहफला, रामा, सितकण्टा, महौषधि, गर्दभी, चन्द्रिका चान्द्री, चन्द्रपुष्पा, प्रियंकरी, नाकुली, दुर्लभा, रास्ना (रा० नि० व० ४) श्वेता, क्षुद्रा, चन्द्रहासा, लक्ष्मणा, क्षेत्रदूतिका, गर्भदा, चन्द्रमा चन्द्री, चन्द्रपुष्पा, प्रियंकरी, (भा०)। चन्द्र-पुष्पी, वनजा, धूर्ता, दूतिका, श्वेतलक्ष्मा (के०दे०) चन्द्रहासा सितकंटकी, (मद०)। श्वेतकण्टारिका, लक्ष्मणा, शुक्लपुष्पकंटकारी, श्वेतकंटकारिका,—सं०। श्वेत कंटकारी, सफेद कटेरी, सफेद कटाई, श्वेतरिंगिनी, श्वेतभटकटैया, कटीला—हिं०। शादा कंटिकार, श्वेतकंटिकारी—बं०। श्वेतरिंगणी—मरा०। विलियनेल गुल्लु—का०, ते०। दौरलिकाफल—द०। कंदनपत्री,—ता०। वकुदकाया, नेलमुल्लकू—ता०। कटाई सफेदगुल—फ़ा०।

वृहत्यादि वर्ग

(*N. O. Solanaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—क्वचित्।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीयमतानुसार—

कटेरी—

कण्टकारी कटुस्तिक्ता तथोष्णा श्वासकासजित्।
अरुचि ज्वर वातामदोषहृद्गदनाशिनी॥

(ध० नि० व० १)

कटाई-कड़ुई, चरपरी, उष्णवीर्य एवं श्वास तथा कास को जीतनेवाली है और यह अरुचि, ज्वर वात, आमदोष, हृदय के रोग को नाश करनेवाली है।

कण्टकारी कटूष्णा च दीपनी श्वासकासजित्।
प्रतिश्यायार्तिदोषघ्नी कफवातज्वरार्तिनुत्॥

(रा० नि० व० ४)

कटेरी—चरपरी, गरम, अग्निप्रदीपक तथा श्वास, कास, प्रतिश्याय, कफ, वात और ज्वर नाशक है।

कण्टकारी सरातिक्ता कटुका दीपनी लघुः।
रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान्॥
निहन्ति पीनसं पार्श्वपीड़ा कृमि हृदामयान्।

(भा० पू० १ भ०)

कटेरी सर—दस्तावर, स्वाद में कड़वी, चरपरी दीपन, लघु, रूक्ष, उष्णवीर्य एवं पाचक है तथा यह खाँसी, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्व पीड़ा—पसली का दर्द और हृदय के रोग—इनको दूर करती है।

कटेरी और बनभंटा का फल—

तयोः फलं कटु रसे पाके च कटुकं भवेत्।
शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु॥
हन्यात्कफमरुत्कंडू कासभेदक्रिमिज्वरान्॥

(भा० पू० १ भ०)

दोनों कटेरी का फल स्वाद और पाक में चरपरा वीर्यरेचनकर्त्ता, भेदक, कड़वा, पित्तकर्त्ता, अग्निवर्द्धक, लघु और कफ वात नाशक है तथा यह खुजली, खाँसी, कृमि और ज्वरादि रोग का निवारण करता है।

कटेरी कटुका चोष्णा दीपन्यग्नेश्च भेदिका।
कटवीरुचा पाचनी च लघ्वीतिक्ताचसारिका॥
श्वासं कासं कफं वातं पीनसं च ज्वरंजयेत्।
हृद्रोगारुचिकृच्छ्रघ्नी पार्श्वशूलस्य नाशिनी॥
आमंकृमींश्च शूलं च नाशयेदितिकीर्तितम्॥
(नि० र०)

कटेरी—चरपरी, गरम, अग्निप्रदीपक, भेदक, कड़वी, रूखी, पाचक, हलकी, कड़वी और दस्तावर है तथा श्वास, कास, कफ, वात, पीनस, ज्वर, हृदय के रोग, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, पार्श्वशूल, आम, कृमि और शूल का नाश करनेवाली है।

कण्टकारी फलं तिक्तं कटुकं भेदि पित्तलम्।
हृद्यंचाग्नेर्दीप्तिकरं लघु वातकफापहम्॥
कण्डू श्वास ज्वर कृमि मेहशुक्रविनाशनम्।

कटेरी के फल—कड़ुए, चरपरे, भेदक, पित्तकारक, हृदय को हितकारी, अग्निदीपक, हलके, वात कफनाशक तथा कण्डू—खाज, श्वास, ज्वर, कृमि प्रमेह और वीर्य विनाशक हैं।

सफेद कटेरी—

श्वेतकण्टारिका रुच्या कटूष्णा कफवातनुत्।
चक्षुष्यादीपनी ज्ञेया प्रोक्तारसनियामिका॥
(रा० नि० व० ४)

सफेद कटेरी—रुचिकारी, चरपरी, उष्ण, कफनाशक, वातनाशक, दीपन, चक्षुष्य और पारे को बाँधनेवाली है।

कण्टकारीद्वयं तिक्तं वातामकफकासजित्।
फलानिक्षुद्रिकाणां तु कटुतिक्तज्वरापहा॥
कण्डूकुष्ठ कृमिघ्नानि कफवात हराणिच।

दोनों प्रकार की कटेरी—कड़ुई है तथा वायु आम, कफ और कास को दूर करनेवाली है। छोटी कटेरी का फल कड़वा, चरपरा, ज्वरनाशनक तथा कफ और वातनाशक है तथा यह खुजली, कोढ़ और कृमि नाश करता है।

तद्वत्प्रोक्ता सिता क्षुद्रा विशेषाद्गर्भकारिणी।

कटाई के समान छोटी सफेद कटाई के भी गुण हैं, विशेषकर यह गर्भकारक है।

कटाई के वैद्यकीय व्यवहार

चरक—(१) वातोल्वण अर्श में कंटकारी—औषध-सेवन के थोड़ी देर बाद जो वस्तु सेवन की जाती है, उसे अनुपान कहते हैं। वायुप्रधान अर्श रोगी के वायु सरल करने एवं कोष्ठ परिष्कृत रखने के लिये, कण्टकारी का क्वाथ अनुपेय है। यथा—

कण्टकार्य्या श्रृतं वापि[illegible]।
अनुपानं भिषग्दद्यात् वातवर्चोऽनुलोमनम्॥
(चि० ९ अ०)

(२) मद्यात्यय जात पिपासामें कण्टकारी—मद्यात्यय जनित पिपासा में षड्ङ्ग परिभाषानुसार प्रस्तुत कण्टकारी-जल पान करने को देवें। यथा—

तृष्यते सलिलञ्चास्मै…।
कण्टकार्य्याऽथवा श्रृतम्॥ (चि० १२ अ०)

(३) कास में कण्टकारीकृत यूष—षड्ङ्ग परिभाषानुसार प्रस्तुत कण्टकारी-जल में मूँग की दाल को पकाकर यूष तैयार करें। इसमें हल्दी और इतना आँवले का रस मिलायें, जितने में वह खट्टा हो जावे। कास रोग में इसका सेवन हितकारी है। यथा—

कण्टकारी रसे सिद्धो मुद्गयूषः सुसंस्कृतः।
सगौराऽऽमलकः साम्लः सर्वकासभिषग्जितम्॥
(चि० २२ अ०)

(४) अश्मरी में कण्टकारी—बृहती और कंटकारी इन दोनों को जड़ की छाल को मीठे दही में पीसकर सप्ताह पर्यन्त पीने से पथरी चूर्ण २ हो जाती है। यथा—

"……बृहती द्वयञ्च। आलोड्य दध्ना—
मधुरेण पेयम्। दिनानि सप्ताऽश्मरिभेदनाय"
(चि० २६ अ०)

सुश्रुत–अलस (खरवात) रोग में कण्टकारी—कटेरी के चतुर्गुण रस में पकाकर सिद्ध किया हुआ सरसों का तेल सेवन करने से अलस रोग प्रशमित होता है। यथा—

"सिद्धंरसे कण्टकार्य्या स्तैलं वा सार्षपं हितम्"

(चि० २० अ०)

(२) श्वास में कण्टकारी—आमल की प्रमाण कंटकारी का कल्क और उसका आधा हींग—इसमें शहद मिलाकर सेवन करने से प्रबल श्वास भी तीन दिन में प्रशमित होता है। यथा—

"निदिग्धकाञ्चामलक प्रमाणम्। हिङ्गूवर्द्ध युक्तां मधुना सुयुक्ताम्। लिहेन्नरः श्वासनिपीड़ितोहि, श्वासं जयत्येव बलात् त्र्यहेण"।

(उ० ५१ अ०)

(३) वाताभिष्यन्द में कंटकारी—वातज अभिष्यंदरोग (आँखआना) में कटेरी की जड़ को बकरी के दूध में पकाकर ठंडा होने देवें। सुहाता गर्म रहते इस दूध से नेत्र सेचन करें। यथा—

"कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम्"

(उ० ६ अ०)

(४) शकुनी ग्रह प्रतिषेधार्थ कण्टकरी—शकुनीग्रह प्रतिषेधार्थ शिशु को कण्टकारीमूल धारण करावें। (उ० ३० अ०)

(५) कास में कण्टकारी—द्विगुण कंटकारी के रस में पकाया हुआ घी पीने से कास एवं स्वर भेदादि रोग प्रशमित होते हैं। यथा—

"सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिः। निदिग्धिकायाः स्वरसेन चैतत्। श्वासाग्निसाद स्वरभेदभिन्नान्। निहन्त्युदीर्णानपि पञ्चकासान्"

(उ० ५२ अ०)

(६) मूत्रदोष हरणार्थ कण्टकारी—कटेरी का स्वरस अथवा कल्क सेवन करने से मूत्रदोष (कृच्छ्रत्वादि) निवृत्त होता है। यथा—

'निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेत् कुड़वसंमितम्। मूत्रदोषहरं कल्क मथवा क्षौद्रसंयुतम्"

(उ० ५८ अ०)

चक्रदत्त—(१) कास में कण्टकारी—कटेरी के काढ़ों में पीपल का चूर्ण मिलाकर पियें। यह सभी प्रकार कासनाशक है।

(२) मूत्रकृच्छ्र में कण्टकारी—कटेरीका रस शहद मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। यथा—

"निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः"

(मूत्रकृच्छ्र चि०)

(३) मूत्राघातरोगमें कण्टकारी—कण्टकारी स्वरस को वस्त्र पूत कर पीने से, मूत्ररोध प्रशमित होजाता है।

यथा—

"निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वस्त्रान्तरस्रुतम्"

(मूत्राघात चि०)

नोट—मूत्रकारिणी होने से कटेरी उभय रोगों में प्रयोज्य है। वङ्गसेन—शिशु के चिरकारी कास में व्याघ्रीकुसुम–केसर—कटेरी के फूल के केसर का चूर्ण शहद के साथ चटाने से शिशुओं का चिरकारी कास रोग नाश होता है। यथा—

"व्याघ्रीकुसुम सञ्जातं केसरैरवलेहिकाम्।
जग्ध्वाऽपि चिरजं जातं शिशोःकासं व्यपोहति।"

(बालरोगाधिकार)

नोट—उपर्युक्त प्रयोग केवल शब्दभेद से भाव प्रकाश में भी आया है।

वक्तव्य

चरक—ने कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहण, कासहर, शोथ हर, शीत प्रशमन और अङ्गमर्दप्रशमन वर्ग में कण्टकारी का पाठ दिया है (सू० ४ अ०)। जिसके सेवन करने से कण्ठ स्वर की वृद्धि होती है एवं जो कंठ के लिये हितकर होता है, उसे कण्ठ्य कहते हैं। इस लिये स्वर भेद में कण्टकारी प्रयोजित होती है। शीत प्रशमन होने से यह सन्निपात ज्वर में हित कर होती है। अङ्गमर्द–प्रशमनार्थ वात और ज्वर में इसका प्रयोग होता है। सुश्रुत ने वृहत्यादि वर्ग में कण्टकारी का पाठ दिया है (सू० ३८ अ०)। श्वेत कंटकारी को भाव प्रकाशकार ने "गर्भकारिणी" संज्ञा से

अभिहित किया है। सुतरां यह वन्ध्यत्व दोष निवारणार्थ सेवन की जाती है।

यूनानी मतानुसार गुण दोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षामें उष्ण और रूक्ष(मतांतर से तृतीय कक्षा में गरम और खुश्क)। स्वाद—फ़ीका, किंचित्कटु और कुस्वाद। हानिकर्त्ता—आकुलताजनक। यह कर्ब--बेचैनी पैदा करती है। इसका सदा खाना मस्तिष्क को हानिप्रद है। दर्पघ्न—व्याकुलता के लिये सिकंजबीन। कार्य्य मिर्च एवं शुद्ध मधु। प्रतिनिधि—ऊँटकटारा। प्रधान कर्म—खाँसी के लिये अतिशय गुणकारी है। मात्रा—२ माशा (४-५ फूल और फल आधा)।

गुण, कर्म, प्रयोग—यूनानी हकीमोंके कथनानुसार इसके रस का नस्य, योपापस्वार—इस्तिनाकुर्रहिम एवं मृगी जात मूर्च्छा के लिये परमोपयोगी है। इससे तुरत होश आ जाता है। लटके वा ढीले पड़े हुये स्तनों पर इसकी जड़ और अनार के पेड़ की छाल एवं कंदूरी के पौधे की छाल--इनको पीस कर लेप करने से, वे दृढ़ एवं कठोर हो जाते हैं। इसके फल का लेप वायु एवं कफज शोथों को सम्यक् विलीन करता है और वात एवं कफ जनित शूल को शांत करता है। इसके भक्षण से कास और श्वास रोग आराम होते हैं। इससे उदरज कृमि भी नष्ट प्राय होते हैं। परन्तु इससे मूर्च्छा उत्पन्न होती है। यह पाचक भी है और भूख लगाती है। केवल फल अथवा इसके सर्वांग को जलाकर मधु के साथ एक रत्ती वा चार रत्ती वा एक माशा खाने से खाँसी और दमा जाते रहते हैं। इसकी पत्तियाँ अर्श को गुणकारी है। इसकी जड़ के चूर्ण का खांड और गो दुग्ध के साथ सेवन प्रबल स्तंभन कर्त्ता है। इसके फलों के लेप से बाल काले होते हैं। इसके खाने से कफ एवं पित्त दोष मिटते हैं। यह कफ ज्वर और पार्श्वशूल में लाभकारी है। सूंघने की शक्ति का ह्रास हो जाने पर, यह औषधि अतीव गुणकारी है। भटकटैया साबुन की भांति मलिनता को दूर करती है और इस हेतु यह उसकी प्रतिनिधि है। वृश्चिक आदि जीवों के काटने पर इसका लेप गुणकारी है। यह क्लान्ति एवं भ्रम को निवारण करती है। इसके फूल का जीरा मलावरोध को दूर करता और वस्तिगत अश्मरी को निकालता है। कटाई के रस की विधि—

प्रथम जमीन में एक बड़ा गड्ढा खोदें और उस गड्ढे की तह में एक और छोटा गड्ढा खोदें छोटे गड्ढे में चीनी का प्याला या और कोई पात्र रख देवें और उसके ऊपर एक बड़ी हाँड़ी जिसके पेंदे में कतिपय छिद्र हों, रखें। हाँड़ी को कटाई के पौधों से भर देवें और ऊपर से ढकन रखकर कपड़ मिट्टी कर देवें। फिर हाँड़ी के चतुर्दिक् और उसके ऊपर उपले चुनकर आग लगा देवें। कोई-कोई हाँड़ी न रखकर बड़े गड्ढे में ही कटाई के पौधों को रख कर ऊपर घास फूस फैलाकर आग लगा देते हैं। इससे कटाई का रस टपक टपक कर प्याले में एकत्रित हो जाता है। इसे बोतल में भरकर रखें।

गुण, उपयोगादि—इसके पीने से सर्द एवं तर खाँसी और दमा में परम उपकार होता है। (नेत्राभिष्यंद रोग में इसे आंखों में लगाने से उपकार होता है। इसे शहद में मिलाकर चटाने से सूज़ाक आराम होता है। तर कास, कृच्छ्र श्वास, क्षतज क्षय, वातज एवं कफज कास, सीने का दर्द, शीतज्वर, कंप—इन रोगों में कुछ बूंद यह रस पान के साथ खाने से उपकार होता है।)—ख० अ०।

सफ़ेद फूल की कटाई कटाई खुर्द अर्थात् लघु कटाई की ही एक क़िस्म है। दोनों कटाई अर्थात् लघ्वी और बृहती जिसके फूल लाल रंगके होते हैं, कटु, तीक्ष्ण एवं कृमिघ्न होती है तथा वायु, ज्वर पार्श्वशूल, मूत्रकृच्छ्र वा मूत्राघात, प्राणशक्ति का ह्रास—इन्हें दूर करती और उदरज कृमि एवं गर्भस्थ स्त्री तथा हृदय के रोगों को नष्ट करती है। प्रकृति—उष्ण और रूक्ष है। यह लघु गुण विशिष्ट है और अपने प्रभाव से कोष्ठ मृदुकर—मुलय्यिन, क्षुधाजनक, आहार पाचक एवं कास तथा श्वास कृच्छ्रता को लाभ पहुँचाता है।—ता० शा०।

कटेरी के अन्य प्रयोग

समग्र क्षुप

इसके उपयोग से श्वास, कास, प्रतिश्याय और वक्ष के रोग निवृत्त होते हैं। इसके फलमें भी वेही गुण होते हैं, जो इसकी जड़में हैं। यह औपसर्गिक मेह, कुष्ठ, मलबद्धता तथा वस्त्यश्मरी को दूर करती है और मूत्रल है। इसका काढ़ा पीने से उदरशूल मिटता है। इसका लेप करने से पाँव के तलुवों की गर्मी और छाले आराम होते हैं। इसका काढ़ा करके पिलाने से ज़ुकाम (प्रतिश्याय) नष्ट होता है। ऋतु-परिवर्तन होने पर जलवायु, भूमि और वनस्पति आदि की दुर्गंधि के कारण जो ज्वर होता है, उसके निवारणार्थ शाहतरा (पित्तपापड़ा), गुरुच और लघु कटाई इनका काढ़ा करके पिलाना चाहिये। कटाई को रातभर पानी में भिगोकर प्रातः काल वस्त्र-पूत कर मिश्री मिलाकर पिलाने से सूज़ाक आराम होता है। यकृत की वातज व्याधियों के निवारणार्थ इसको क्वथित करके पिलाना चाहिये। इसकी जड़, छाल, पत्ते और फल—इनको क्वथित कर गण्डूष करने से कीट-भक्षित दन्तशूल निवृत्त होता है। पानी में इसका काढ़ा करके कुल्लियाँ करने से दंतशूल आराम होता है। इसको पानी में पीसकर सिर के तालु पर लगाने से या पत्तों और जड़ का रस निकालकर नाक में टपकाने से नकसीर बंद होती है। इसको पीसकर खाने से सभी प्रकार के विष शांत होते हैं। इसके रस में मधु मिलाकर चटाने से सूज़ाक आराम होता है। इसका शुद्ध रस लेकर छाछ में मिलायें और फिर उसे वस्त्र-पूत करलें। इसके पीने से मूत्रावरोध दूर होता है। इसको पीपल के साथ पीसकर शहद में मिलाकर चटाने से खाँसी दूर होती है। इसका रस और गुरुच का रस हर एक ५१ तो० ३ मा० लेकर सेर भर घी में मिलाकर पकायें। जब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब उतार सुरक्षित रखें। यह घी खिलाने पिलाने से वातज कास एवं अजीर्ण दूर होता है। इसके काढ़े में पिप्पली-चूर्णका प्रक्षेप देकर पिलानेसे कास दूर होता है। इसको पीसकर खिलाने से साँप का जहर उतरता है। ख़० अ०।

आर० एन० खोरी—कटेरी सर अर्थात् मृदु-रेचक, आध्मानहर, वायुनाशक, कफनिःसारक एवं मूत्रल है। श्वास, कफरोग, फुस्फुसान्वित कफदोष, ज्वर, आध्मान और वक्ष एवं पार्श्वशूल में 'कण्ट कार्यवलेह' (जिसका प्रधानतम उपादान कण्टकारी है) उपयोग में आता है। मूत्रकृच्छ्र, वस्तिगत अश्मरी एवं शोथ रोग में मूत्रकारक रूप से कण्टकारी का क्वाथ हितकारी है। सरत्वहेतु कोष्ठबद्ध में इसका उपयोग होता है।—मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया, ख० २, पृ० ४५०।

डीमक—कटेरी, सारक (Aperient), कटु, तिक्त, पाचक, मूत्रल, परिवर्त्तक, संग्राही एवं कृमिघ्न है तथा यह ज्वर, कफ (Cough), श्वास, आध्मान, मलबद्धता और हृदय के रोगों में उपकारी है। यह स्त्रियों में प्रजास्थापन वा गर्भ धारण करानेवाली भी ख्याल की जाती है। चिकित्साकर्म में इसे प्रायः अन्य श्लेष्मानिःसारक स्निग्धतासंपादक एवं सुगंधित ओषधियोंके मिश्रित कर व्यवहार करते हैं।

कोंकण में कटेरी के ताजे क्षुप का स्वरस २ तो० और अनंतमूल (Hemidesmus) का स्वरस २ तोला इनको छाया में मिलाकर मूत्रकारक रूप से व्यवहार करते हैं। ज्वरहरणार्थ कटेरी की जड़—चिरायता और सोंठ का काढ़ा व्यवहार्य होता है।

डाक्टर पीटर्स (Bombay Medical Service) हमें यह सूचित करते हैं कि बंगाल में शोथरोग (Dropsy) में मूत्रकारक रूपसे कटेरी के क्षुप का बहुल प्रयोग होता है।—फा० इं० २ भ० पृ० ५५८-५६।

कण्टकारी पत्र

कटेरी के पत्तों को पीसकर और उसकी टिकिया बनाकर आँख पर बाँधने से नेत्रशूल दूर होता है। इसका रस आँख में लगाने से भी उक्त लाभ होता है।—ख़० अ०।

इसके पत्ते अर्श में लाभकारी हैं।—म० मु०।

कटेरी का दूध

यदि आँख दुखने को आ जाय, तो इसके सिरे से पत्तों को तोड़ें और इससे जो दुधिया रस निकले

उसे आँखों में लगावे। इसके दो-तीन बार के प्रयोग से आँखों से पानी निःसृत होकर रोग आराम हो जाता है।

इसका दूध नाक में टपकाने से मृगी रोग का उन्मूलन होता है। इसे आँख में लगाने से नेत्राभिष्यंद आराम होता है।—ख० अ०।

कण्टकारी मूल

इसकी जड़ और भंग के बीज दोनों बराबर २ लेकर शिशु-के सूत्र में पीसकर नस्य देने से मृगी दूर होती है और प्रतिश्याय आराम होता है। इसकी जड़ को नीबू के रस में घिसकर आँख में लगाने से धुन्ध और जाला ये दूर होते हैं। —ख० अ०।

ऐन्सली—देशी चिकित्सकों के मतानुसार कटेरी का क्षुद्र, किंचित्क्रिक और इषदम्ल फल तथा मूल दोनों श्लेष्मानिःसारक होने हैं अतएव वे इन्हें कफ रोग (Coughs) क्षयरोग (Consumptive Complaint) एवं दीपज श्वास रोग में भी क्वाथ, अवलेह और गुटिका रूप में योजित करते हैं। काढ़े की मात्रा १॥ तोला की है और इसे दिन में २ बार देते हैं।—मेटीरिया इंडिका, खं० २. पृ० ६०१।

उ० चं० दत्त—कण्टकारी-मूल कफनिःसारक है तथा कास (Cough), श्वास, प्रतिश्याय ज्वर एवं उरःस्थ वेदना में इसका उपयोग होता है। औषधों में क्वाथ, अवलेह और घृत प्रभृति नाना रूपों में कण्टकारी व्यवहृत होती है। कास एवं प्रतिश्याय रोग में कटेरी की जड़ के काढ़े में पीपल का चूर्ण और मधु मिलाकर व्यवहार करते हैं और आक्षेपयुक्त कास (Cough) में सैंधव और हिंगु के साथ यह सेव्य है।—हिंदूमेटीरिया मेडिका।

छर्दि निग्रहणार्थ—कण्टकारी-मूल को पीसकर मदिरा के साथ व्यवहार करते हैं।

यह कफनिःसारक एवं मूत्रल है। अतएव प्रतिश्याय एवं ज्वर में इसकी जड़ का बहुल प्रयोग होता है।

नादकर्णी—कटेरी की जड़ का प्रयोग बृहतीमूल की भाँति होता है। श्वासरोग विशेष (Humoralasthma), कफ (Cough) प्रतिश्याय-ज्वर तथा उरःशूल एवं मूत्रकृच्छ्र (Dysuria), वस्त्यश्मरी, मलावरोध, जलोदर, उग्र ज्वर के परिणाम स्वरूप होनेवाला रोग, क्षय रोग, कुष्ठ, सार्वांगिक शोथ (Anasarca) सार्वांगिक शक्ति की मंदता, यकृदुदर और प्लीहोदर इन रोगों में कटेरी व्यवहृत होती है। प्रवाहिका एवं शोथ रोग में इसके साथ कुटज वा कुड़ा योजित होता है। कटेरी के जड़ के काढ़े के साथ सुरासार और खनिज मूत्रलौषध मिलाकर व्यवहार करते हैं और सेवन काल में दूध का पथ्य देते हैं।—इं० मे० मे० पृ० ८ ५-६)

आर० एन० चोपड़ा—कण्टकारी-मूल भारतीय चिकित्सकों द्वारा प्रयुक्त औषधों का एक प्रधान उपादान है। उन्हें बहुत पहले से इसका प्रबल मूत्रकारक, श्लेष्मानिःसारक और ज्वरघ्न प्रभाव ज्ञात है। ज्वर एवं काम में कटेरी की जड़ और गुरुच के काढ़े को बल्य बतलाते हैं।—इं० ड्रु० इं० पृ० ५१६।

गोदुग्ध और घृत के साथ इसकी जड़ का (वा मूलत्वक्) चूर्ण प्रबल स्तंभक है।—म० मु०। ब० मु०

कटेरी की जड़ के काढ़े का गंडूष करने से कीड़े खाये हुये दाँतों का दर्द आराम होता है।

जलंधर और ज्वर (तप मुफ़रद व मुरक्कब) में कटाई की जड़ परीक्षित औषधि है।

अर्द्धावभेदक और मृगी में इसकी जड़ और हल्दी दोनों को घिसकर गोघृत मिला शिरोऽभ्यंग करने से उपकार होता है।

ज्वर में कटाई की जड़ की धूनी लेने से ज्वर शांत होता है।

गलगण्ड में एवं अर्बुद रोग में इसकी जड़ गले में लटकाने से उपकार होता है।

इसकी जड़ को स्त्री-दुग्ध में घिसकर नाक में सुड़कने से मृगी रोग आराम होता है।

गर्भपात, मृतवत्सा वा जात शिशु का जीवित न रहना आदि स्त्री-रोगों में कटाई की जड़ और पीपल को भैंस के दूध के साथ पीसकर पिलाने से

उक्त दोष मिट जाते हैं और गर्भ सुरक्षित रहता एवं स्वस्थ शिशु का प्रसव होता है।

कण्टकारी त्वक्—आध पाव कटाई की छाल पोटली में बाँधकर दो सेर ताज़े गोदुग्ध में आधा दूध शेष रहने तक पकायें। तदुपरांत उसे साफ करके पियें। बादी और अम्ल पदार्थ खाने पीने से परहेज़ करें। इससे असाध्य क्लीवत्व का रोगी भी पुनरपि पुंस्त्व शक्ति प्राप्त करता है। उसकी स्वाभाविकी पुंस्त्व शक्ति स्थिर हो जाती है और वह मर्द बन जाता है।

कटाई के फूल

इसके फूल शीघ्रपाकी एवं वात कफनाशक और क्षुधाजनक हैं तथा कास और हिक्का को लाभ प्रद हैं।

इसके फूलों का जीरा विबंधनाशक है और वस्त्यश्मरी को निकालता है। यदि इसे पीसकर मधु में मिलाकर शिशु को चटायें, तो तज्जात कास रोग दूर हो।—ख़० अ०।

डाक्टर विलसन (Calcutta Med. Phys. Trans, Vol !!, P. 406) के मतानुसार इसके कांड, पुष्प और फल तिक्त एवं वायु निस्सारक हैं और जलपूर्ण विस्फोटक युक्त पाद-दाह Ignipelitis) में प्रयोजित होते हैं।—फ्रा० इं० २ भ० पृ० ५५८।

बंध्या स्त्री को श्वेत कटेरी का फूल खिलाने से उसे गर्भस्थापन होता है। उसे खाने से आमाशय की शक्ति बढ़ जाती है और आहार-पाचन में सहायता प्राप्त होती है और कफ, कास, कृच्छ्र, कुष्ठ और कफ ज्वर आराम होते हैं।

कटाई और फल के बीज

इसके फलों को मस्तक पर लगाने से शिरःशूल आराम होता है।

इसके फलों को कूटकर सम भाग तेल मिला कर क्वथित करें। जब द्रव भाग जलकर सूख जाय और तैल मात्र शेष रह जाय तब तेल को वस्त्र-पूत करलें। इस तेल के अभ्यंग से कठिन से कठिन वायु के रोग शांत होते हैं।

इसके रस में मधु मिलाकर चटाने से सूजाक आराम होता है।

कटेरी के बीजों को मक्खन निकाले हुये दूध में औटावें और फिर शुष्क कर लेवें। इसके बाद उन बीजों को छाछ में भिगोकर रात भर रहने दें और दिन में सुखा लिया करें। इस प्रकार चार-पाँच दिन तक करें। इन बीजों को घी में तलकर खाने से उदरशूल और पित्तज व्याधियाँ शांत होती हैं।

इसके बीजों को पानी में पीसकर प्रलेप करने से सूजन उतरती है।

इसके बीजों को पीसकर इन्द्री पर मर्दन करे और ऊपर से एरण्ड-पत्र बाँध देवें। इससे मैथुन शक्ति पैदा होती है और नपुंसकता का नाश होता है।

इसको (फल) पीसकर खिलाने से साँप का विष उतरता है।—ख़० अ०।

इसके फल का लेप कफजात सूजन को सम्यक् विलीन करता है एवं यह उसके लिए गुणकारी है। इसके खाने से कास एवं श्वास दूर होते हैं। परन्तु यह आकुलताजनक है अर्थात् इससे व्याकुलता एवं मूर्च्छा उत्पन्न होती है। (उत्तम यह है कि इसे शुद्ध करके काम में लावें) फल पाचक (और क्षुधाजनक) है। म० मु०।

इसके फल का प्रलेप कफज शोथों को विलीन करता और बाल काले करता है। कास, श्वास, कफ और पित्त के दोष, ज्वर, पार्श्व-शूल, मूत्र कृच्छ्र, मलावष्टंभ-क़ब्ज, सूंघने की शक्ति का जाते रहना, उदरज कृमि और बंध्या स्त्रियों के रोग—इनमें कटेरी के फूल और फल का सेवन लाभकारी है। बु० मु०।

इसका फल हुक्का में तमाकू की भाँति सेवन करने से दंत कृमि नष्ट होजाते हैं।

यदि इसके फल को पानी में पकाकर गो घृत में भून लें, और मांस, मसाला एवं प्याज के साथ पकाकर खायें, तो वात, पित्त, कफ, श्वास, कास, पार्श्व शूल, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, घ्राण शक्ति का नष्ट होजाना इन रोगों में उपकार हो तथा यह उदरज कृमि नष्ट करने और बन्ध्या स्त्रियों के रोग निवारण करने के लिये यह बहुत ही गुणकारी है। यह पाचक और बल्य है। इससे चित्त प्रसन्न रहता

है और शरीर में शक्ति आजाती है तथा नेत्र रोग आराम होते हैं।

यदि इसके फल को तिल तैल वा बादाम तैल में भूनकर तैल को साफ करलें, और आवश्यकतानुसार उस तैल को कान में डालें तो इससे कर्णशूल तुरन्त शांत होताहै। शरीर पर इस तैल के मलने से क्लान्ति एवं श्रान्ति दूर होजाती है। शहद में मिलाकर इसकी गुदवर्ति करने से गुदा जात कृमि नष्ट होते हैं।

इसके फल को जलाकर भस्म कर लेवें। यह भस्म १ रत्ती से ४ रत्ती तक या एक माशा तक सेवन करने से कास और श्वास दूर होजाते हैं।

इसके फल का रस लगाने से सफेद बाल काले होजाते हैं।

कटाई के बीजों की भस्म, काला नमक, और पीपल सम भाग लेकर लऊक सपिस्ताँ के साथ थोड़ा प्रयोग करावें। पुरातन कास में यह परीक्षित हैं।

आर० एन० खोरी—अपक्व, स्फोटक एवं व्रध्नादि पर कटेरी के बीजों का पीसकर प्रलेप करने से, वे पक्वता को प्राप्त होते हैं। कटेरी के बीजों की धूनी (Fumigation) को लाला स्राव वर्द्धक जानकर प्रतदर्शीय लोग इसका व्यवहार करते हैं। अधिकन्तु क्रिमि-भक्षित दंत-शूल निवारणार्थ यह धूम अति प्रशस्त है। मे० मे० आफ इं २ य० खं०, पृ० ४२०।

डीमक—कटेरी के जलते हुये बीजों के वाष्प की धूनी लेने से दंत,शूल आराम होता है। यह धूनी बहुत प्रसिद्ध है। देशी लोग इन बीजों को चिलम में रखकर तमाखू की भाँति पीते हैं। और उनका यह विचार है कि इसके धूम से वे कीड़े नष्ट होजाते हैं जो शूल उत्पन्न करते हैं। पुराने लोग पारसीक यमानी बीज (The Seeds of Henbane) को भी इसी प्रकार सेवन करते थे। ये प्रबल लालास्राव वर्द्धक प्रभाव करते हैं। अस्तु, इनसे रोग शमन हो जाता है। फा० इं० २ भ० पृ० ५५८—५६।

नोट—दंतशूल में इसकी धूनी लेने की विधि ठीक गोनी बोज्जन्त् ही है। अस्तु,दे० "गोनी"।

बी. डी. बसु के अनुसार इस पौधे का काढ़ा सुज़ाक रोग में लाभकारी है। इसकी कली और फूल आंखों से पानी जाने की बीमारी में लाभ पहुँचाते हैं।

पञ्जाब में इसके पत्तों का रस कालीमिर्च के साथ आमवात रोग में दिया जाता है।

बंगाल में यह औषधि जलोदर रोग में मूत्रल वस्तु की तरह काम में ली जाती है।

कटेरे की झाड़-[द०] कटेरा। गनियार।

कटेली-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की कपास जो बङ्गाल प्रांत में बहुतायत से होती है।

कटेली अवलेह-संज्ञा पुं०—१ सेर कटेली लेकर १६ सेर पानी में क्वाथ करें जब ४ सेर शेष रहे तब ४ सेर मिश्री की चाशनी प्रस्तुत कर पुनः इसमें गिलोय १ टंका भर, चव्य १ टं०, चित्रक १ टं०, नागरमोथा १ टं०, काकड़ासिंगी १ टं०, सोंठ १ टं०, पीपर १ टं०, धमासा १ टं०, भारङ्गी १ टं० कचूर १ टं०, इन्हें महीन पीस चाशनी में मिलाएँ फिर इसमें १ सेर शहद और १ पाव वंशलोचन का चूर्ण तैयार कर मिलाएँ। गुण—१ टंका भर नित्य खाने से हर प्रकार की खांसी नष्ट होती है। अम० सा०।

कटेली-पाक-हिं संज्ञा पुं०—कण्टकारी अवलेह। योग-पञ्चमूल सहित कटेरी १ तुला (१०० पल) १ द्रोण (४०९६ टंक) जल में १०० टंक हड़ डाल के औटाएँ, जब चौथाई शेष रहे तब कपड़े से छानकर उसमें १०० पल गुड़ मिलाके औटाएँ जब चाशनी ठीक आजाए तब फिर उसमें त्रिकुटा ३ पल, शहद ६ पल मिलाएँ। इसके बाद इसमें वंशलोचन, खैरसार, ब्राह्मी, भारङ्गी, काकड़ासिंगी, कायफल, पुष्कर मूल और अडूसा प्रत्येक अर्द्ध अर्द्ध पल। दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, एक एक तोला बारीक चूर्ण करके मिलाकर उत्तमअवलेह प्रस्तुत करें। मात्रा—१-४ माशा।

गुण तथा प्रयोग-विधि—इसे विधि-पूर्वक सेवन करने से वात, पित्त, और कफ से उत्पन्न रोग दो दोषों से उत्पन्न व्याधियां, खांसी, त्रिदोष विकार, क्षत रोग, क्षयी, पीनस, श्वास, उरःक्षत तथा ११ प्रकार की यक्ष्मा रोग को नष्ट करता है। (योग चि०)

कटैकरा–संज्ञा पुं० [कसेरा]

कटैया–संज्ञा स्त्री० [सं० कंटक] भटकटैया। कण्टकारी।

कटैर–संज्ञा पुं० [हिं० कटहर] कटहल। पणस।

कटैला–संज्ञा पुं० [?] एक क़ीमती पत्थर।

कटोएड–[पं०] मरवलवा (पं०)।

कट्टोद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटोरा। च० सू० १५ अ०।

कटोन (टौ)-कैड-मरवर– } [मल०] मानकंद।
कटोन-थेक मरवर– } अंबरकंद। भुइकाकली
(Eulophia Nuda, *Lindl.*)

कटोर-कटोरक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का मिट्टी का बरतन। कटोरा। श० च०

कटोरा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] धातु का प्याला। बेला। श० च०।

कटोरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कटोरा का अल्पा०] छोटा कटोरा। बेलिया। प्याली। कटोरिया।

संज्ञा स्त्री० [पं०, सिंध] अम्बष्ठा। पाठा।

कटोल-कटूल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटुरस। चरपरा रस। चरपराहट। उणा०।

वि० [सं० त्रि०] कटु। कड़वा।

संज्ञा पुं० [?] (१) उश्नान।

नोट—इलाजुलग़ुर्बा में उश्नान के विषय में उल्लेख है, कि यह आतशक में उपयोगी है। कटोल को कूट छानकर पहले दिन एक माशा, दूसरे रोज़ दो माशे इसी प्रकार प्रतिदिन एक-एक माशा बढ़ाकर सप्ताह पर्यन्त सेवन करें। इसके उपरांत त्याग दें। इस बीच में एक बार कै और विरेचन होगा। इसके सेवनकाल में केवल अम्ल वस्तुओंके और किसी चीज़का परहेज नहीं। कटोल कूट छानकर पानी में मिलाकर सर्पदष्ट व्यक्ति को पान करावें। इससे कै आयेगी और साँप का ज़हर नष्ट होगा।

(२) बाँझ ककोड़े की जड़। दे० "खेखसा"।

कटौंसी–संज्ञा पुं०, दे० "कटवाँसी"।

कटंकटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
कटंकटेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } दारुहल्दी। दे० दे० नि०। नि० शि०।

कट्कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृहती। बड़ी कटेरी। वन भंटा।

कट्काली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अल्पायुषी। बजर बट्टू। ताली। (Corypha Umbraculifera)

कट्की–[बं०, हिं०] कुटकी।

कट्कोमजंग–[संथाल] पुदु (हिं०)। Viscum-articulatum, *Burm.*)

कट्ग मुर्गम्-नितूरु–[ते०] हीरादोखी। दम्मुल् अख़वैन।

कट्ट–[ता०] [बहु० कट्टलु] काष्ठ। काठ। लकड़ी।

कट्टइ जाति–[ता०] यबरूज।
(Mandragora officinarum, *Linn.*)

कट्ट-इत्तुलसा–[मल०] वन तुलसी।

कट्टक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्मली। कतक फल।

कट्ट (त्त)-काम्बु–[ता०] कत्था। खैर।

कट्ट-कस्तूरी–[मल०] लता कस्तूरी। मुश्कदाना।

कट्ट-गिरि–[कना०] कीड़ामार। गंधानी। धूम्रपत्रा।
Aristolochia bracteata, *Retz.*

कट्टट्टी–[मल०] कचनार।

कट्ट-बोग्गु–[ते०] लकड़ी का कोयला।

कट्टम–[ता०] पटचउली (बं०)।

कट्ट-मणक्–[ता०] जंगली रेंड।

कट्ट-मणक्कु–[ता०] जंगली रेंड।

कट्टमर–[मदरास]
(Dolichos falcatus, *Klein.*)

कट्टमल्ली–[मदरास] धनियाँ। धन्याक। कांथमीर।

कट्टरतैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक तैलौषधि जो ज्वर एवं विदाह में उपयोगी होती है।

योग और निर्माण विधि—मूर्च्छित तिल तैल ४ शराव, कल्क द्रव्य सब मिलाकर १ शराव और तक्र २४ शराव इनसे यथाविधि तैल सिद्ध करें।

कल्क द्रव्य ये हैं—सोंचर नमक, सोंठ, कुट, मूर्वा की जड़, लाक्षा, हल्दी, और मजीठ।

गुण—इस तेल के लगाने से ज्वर में होने वाला शीत और दाह दूर होता है। वै० निघ०।

कट्टरम्-तुलसी–[मल०] रामतुलसी।

कट्टली-पापस-[कना०] नागफनी । नागफणा ।

कट्टलै-[ता०] घीकुआर । घृतकुमारी ।

कट्टवलि-[मल०] घीकुआर ।

कट्टवेन्तियम-[मल०] नागबला । गुलशकरी । इं० मे० प्लां० ।

कट्टा-संज्ञा पुं० (१) शिर का कीड़ा । जूँ । ढील । (२) कच्चा । जबड़ा ।

कट्टा-मणक्कु-[ता०] काननैरण्ड । जंगली रेंड़ ।

कट्टामीठ-[पं०] जंगली पालक । चूका ।

कट्टार-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटार । कटारी ।

कट्टालै-[मदरास] घीकुआर । घृत कुमारी ।

कट्टाव-संज्ञा पुं० [?] एक वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है ।

कट्टिगे-[कना०] [बहु० कट्टिगेगलु] काष्ठ । काठ । लकड़ी । चोब ।

कट्टिगे-इङ्गल्लु-[कना०] लकड़ी का कोयला । काष्ठ अङ्गार ।

कट्टिगे-गलु-[कना०] लकड़ियाँ । काठें ।

कट्टु-इम्बुल-[सिंगा०] लाल सेमल । शाल्मली । (Bombax malabaricum, *D. C.*)

कट्टी-[हिं०] स्वादुकण्टक । विलङ्गरा ।

कट्टी-मण्ड्-[ते०] युफॉर्बिया ट्रिगोना । फा० इं० ३ भ० ।

कट्टीवतीगै-[मह०] काकोली ।

कट्टु अलंदु-[मदरास] माषपर्णी । मुगवन ।

कट्टु-इल्लुपै-[ता०] जंगली महुआ ।

कट्टु-एलुपै-[ता०] बहेड़ा । विभीतक ।

कट्टु कउलै-[ता०] खुब्बाजी ।

कट्टु-कपेल-[मल०] मूर्वा मुरहरी । चुरनहार ।

कट्टु क-कोडि-[ता०] फरीद बूटी । जमती की बेल ।

कट्टु करुराक-पट्टै-[ता०] मूर्वा ।

कट्टु करोगनी-[ता०] कुटकी ।

कट्टु (क) कस्तूरी-[मल०, ता०] लता कस्तूरी । मुश्कदाना । दे० "काट्टु (क) कस्तूरी" ।

कट्टु कुरनेय-[ता०] तेजपात । जंगली दालचीनी ।

कट्टु कार चम्मर्थी-[ता०]

कट्टेल्लु-[मदरास] रामतिल । Guizotia aby

कट्टै-[ता०] [बहु० कट्टैगल्] काष्ठ । काठ । लकड़ी चोब ।

कट्टैकरि-[ता०] लकड़ी का कोयला । काष्ठाङ्गार ।

कट्टैगल्-[ता० बहु०] लकड़ियाँ । काठें ।

कट्ठा-संज्ञा पुं० [हिं० काठ] (१) धातु गलाने की भट्टी । दवका । (२) एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है । (३) लाल गेहूँ जो प्रायः मध्यम श्रेणी का होता है ।

कट्तृण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मिरचियागंध गंधतृण । रूसाघास । रोहिष । सि० यो० वा० व्या० चि० माषवलादि । (२) एक प्रकार का सुगंधित रूसा घास । सुगंधरोहिषतृण । रामकपूर । वा० उ० ३७ अ० । दे० "रूसा (कत्तृण)" । (३) नीलकमल । (४) गंधपाषाण । (५) भूनिम्ब । (६) भूतृण ।

कट्नीम-संज्ञा पुं० [हिं० कट्=सं० कटु+नीम] सुरभिनिम्ब । कड़ी नीम ।

कट्फल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कायफल । प० मु० । र० मा० । दे० "कायफल" । (२) बैंगन का क्षुप । वार्ताक वृक्ष । वै० निघ० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कायफल । भा० । मद० व० १ । सि० यो० कपर्दज्वरारलोह । वा० सू० १५ अ० । वि० दे० "कायफल" । (२) कङ्कोल । कबाबचीनी । रा० नि० व० १२ ।

कट्फला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गंभारी । गंभारीवृक्ष । कमहार । खंभारी । र० मा० । रा० नि० व० ६ । (२) बृहती । बनभंटा । (३) मकोय । काकमाची । कवैया । (४) बैंगन वार्ताकी । रा० नि० व० ४ । (५) देवदाली । बंदाल । घघरबेल । रा० नि० व० ३ । सफेद इन्द्रायन । मृगेर्वारु । रा० नि० व० ७ । (६) काश्मरी ।

कट्फलादि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कायफल । मुलहठी, लोध और अनार के फल का छिलका—इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करें ।

मात्रा—१-४ मा० ।

गुण—इसे चावलों के पानी के साथ सेवन करने से वात-कफज अतिसार नष्ट होता है । भा० प्र० अतिसार चि० ।

कट्फलादिकाथ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कायफल, नागरमोथा, भारंगी, धनिया, रोहिषतृण, पित्तपापड़ा, वच, हड़, काकड़ासिंगी, देवदारु और सोंठ समान भाग। मात्रा—१-२ तो० इनका क्वाथ बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से खाँसी, ज्वर, श्वास और गलग्रह का नाश होता है। (योग चि०)

(२) एक प्रकार का कषाय जो खाँसी में काम आता है। योग इस प्रकार है—कायफल, रूसा, भार्गी, मुस्तक, धनिया, बच, हड़, शृङ्गी, पित्तपापड़ा, सोंठ और सुराह्वा इनको जौकुट कर गरम पानीमें भिगोकर छानले और हींग तथा मधु मिला पान करें। मधु और हींग प्रत्येक १-१ मा० की मात्रा में मिलायें। (चरकः)।

कट्फलादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, त्रिकुटा, जवासा और कालीजीरी इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करे।

मात्रा—१-४ मा०।

गुण तथा उपयोगविधि—इसे अदरक के रस के साथ सेवन करने से पीनस, स्वरभेद, तमक, हलीमक, सन्निपात, कफ, वायु, खाँसी और श्वास का नाश होता है। यो० र० नासा रो० चि०।

कट्फलादिपान, कट्फलादि पाचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का पेय जो पुराने बुखार में गुणकारी है। इसके सेवन से त्रिदोष, दाह और तृष्णा का नाश होता है।

योग और निर्माण-क्रम—कायफल, त्रिफला, देवदारु, लालचंदन, फालसा, कुटकी, पदुमकाठ, और खस प्रत्येक १६-१६ रत्ती तथा जल २ शराव मिलाकर पकायें। जब पानी आधा अर्थात् एक शराव रह जाय, उतार कर व्यवहार करें। भा०।

कट्मोरंगी-[मदरास] (Ormocarpum sennoides, *D. C.*)

कट्यस्थि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमर की हड्डी। Hip-bone

कट्युदूखल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Acetafbulum) कूल्हे की हड्डी का प्यलानुमा गड्ढा, जिसमें रान ही हड्डी का ऊपरी गोल सिर टिका रहता है। वंक्षणोलूखल। ढुक्कुल् हर्क़फ़ी। ढुक्कुल् वर्क़। ढुक्कुल् क़ज़ज़-अ०।

कट्रु-वायूह-[मल०] घीकुआर। घृतकुमारी।

कट्ल फिश बोन-[अं० Cuttle-fish-bone] समुद्रफेन। समुन्दरझाग।

कट्ला-[बं०] एक प्रकार की मछली। कटला। (Catla-catla, *Han & Bach.*)

कट्वक-सं० पुं० [सं० क्ली०] निर्मली। कतकफल।

कट्वङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तेंदू का पेड़ तिन्दुकवृक्ष। गाव। वा० टी० वत्सकादिगण-हेमाद्रि। (२) सोनापाठा। अरलु। श्योणाक वृक्ष। रा० नि० व० ६। भैष० क्षीरो०। पुष्यानुग चूर्ण। च० सू० ४ अ० ३१ दशक्। वै० निघ० अप० चि० कटभ्यादि तैल। वा० सू० ३५ अ० अम्बष्ठादि। "कट्वङ्गः कमलोद्भवं रजः"। सु० सू० ३८ अम्बष्ठादि।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोनापाठा। टुण्टुक फल। अरलू का फल। 'कट्वङ्ग फलाजमोद...'।

कट्वङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटभी।

कट्वम्बरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गंधप्रसारणी। परसन। प्रसारणी। ज० द०।

कट्वर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दही के ऊपर की मलाई। दधिसर। र० मा०। दधिस्नेह। त्रिका०। (२) तक्र। छाछ। मट्ठा। 'तक्रं कट्वरमिष्यते' प० प्र० ३ ख०। (३) व्यञ्जन। मसाला। उणा०।

कट्वर तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) ज्वर रोगाधिकारोक्त एक आयुर्वेदीय तैलौषधि जिसका व्यवहार दीर्घ कालानुबन्धी ज्वरों में होता है। यह स्वल्प और वृहत् भेद से दो प्रकार का होता है। इनमें से स्वल्प कट्वर तैल इस प्रकार प्रस्तुत होता है—तिल तैल ऽ४, कट्वर (मट्ठा) ऽ४॥ और सोंचर नमक, सोंठ, कुट, मूर्वा की जड़, लाक्षा, हल्दी तथा मजीठ इनका कल्क ऽ१ इनको कढ़ाई में डाल यथा विधि तैल सिद्ध करें। इस तैल के मलने से शीत और दाहयुक्त ज्वर निवारित होता है।

वृहत् कट्वर तैल का योग यह है—तिल तैल ऽ४, शुक्त ऽ४, काँजी ऽ४, दधिसर ऽ४, बिजौरे नीबू का रस ऽ४, तथा पीपल, चीते की जड़, बच, अडूसे की छाल, भँजीठ, मोथा, पीपरामूल, इलायची (एला), अतीस, रेणुक, सोंठ, मरिच,

अजवायन, दाख, कटेरी, चिरायता, बेल की छाल, लालचन्दन, ब्राह्मणयष्टिका (बभनेटी), अनन्तमूल, हड़, आमला, शालपर्णी, मूर्वा की जड़, जीरा, सरसों, हींग, कुटकी और बायविडङ्ग प्रत्येक समान भाग। इनको ऽ१ सेर लेकर जल में पीस कर कल्क प्रस्तुत करें। पुनः इस कल्क को प्रागुक्त तैल काँजी आदि में मिला यथाविधि तैल सिद्ध करें। इस तैल के लगाने से विविध प्रकार के विषम ज्वर छूट जाते हैं। दे० "कट्टरतैल"।

(२)सुवर्चिका, सोंठ,कूठ,मूर्वा, पीपल की लाख, हल्दी, मुलहठी, मजीठ इनका कल्क बनाएँ और छः गुने तक्र में तैल मिलाकर सिद्ध कर मालिश करने से विदाह और शीत का नाश होता है।

नोट—मलाई सहित दही को कट्वर कहते हैं। इस लिये यहाँ ऐसे ही दही के तक्र की योजना करें। (भैष० र० ज्वर चि०)

कट्वा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकमांची। मकोय। नि० शि०।

कट्वाङ्गा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] महानीम।

कट्वी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुटकी। कटुकी। रा० नि० व० ६। वै० निघ० २ भ०। कण्ठकुष्ठ ज्वर चि०। भैष० कुष्ठ-चि० भल्लातक गुड़। सु० सू० ४० अ०। (२) एक प्रकार की बेल जो बंगाल और दक्षिण भारत में होती है।

पर्य्याय—कटुकवल्ली, सुकाष्ठा, काष्ठवल्लिका, सुवल्ली, महावल्ली. पशुमोहिनिका। कटुः।

गुण—यह कटुक, शीतल, कफ तथा श्वासरोग नाशक और नाना प्रकार के ज्वरों को हरण करनेवाली, रुचिकारी, एवं राजयक्ष्मा रोग को दूर करनेवाली है। रा० नि० व० ३।

कठ–संज्ञा पुं० [हिं० काठ] (१) (केवल समस्त पदों में) काठ। लकड़ी। (२) (केवल समस्त पदों में फल आदि के लिये) जंगली। निकृष्ट जाति का। जैसे, कठकेला, कठगुलाब, कठूमर।

[गु०] (१) कुट। (२) गंधपलाशी। कचूर।

कठ इल्लुपि–[ता०] जंगली महुआ।

कठकरंज–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+सं० करंज] एक प्रकार का कंजा। कठकलेजी।

कठकलेजा, कठकलेजी–संज्ञा पुं०, स्त्री०। दे० "कटकलेजा"।

कठकथा–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+कन्था] पीला कत्था। चीनी कत्था। गंबीर (मल०)।

कठकेला–संज्ञा पुं० [हिं काठ+केला] एक प्रकार का केला जिसका फल रूखा और फीका होता है।

कठकोला–संज्ञा पुं० [हिं काठ+कोलना=खोदना] कठफोड़वा। काष्ठकूट।

कठगुलाब–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+गुलाब] एक प्रकार का जंगली गुलाब जिसके फूल छोटे छोटे होते हैं।

कठगूलर–संज्ञा पुं० [पं०] गूलर। उदुंबर। संज्ञा पुं० [हिं० काठ+गूलर] जंगली गूलर। कठूमर।

कठचंपा–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+चंपा] कनियार। कर्णिकार। कनकचंपा (बं०)।

कठ चिबडो–[सिंध] विलायती रेंड। पपीता। अरंड खरबूजा।

कठतुम्बी–संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+तुम्बी] गोरख इमली।

कठपाड (ढ़)रो-ल–संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ+पाडर] सफ़ेद पाड़र। काष्ठ पाटला।

कठपुंखा–संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठपुङ्ख] एक प्रकार का सरफोंका।

कठफुला–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+फूल] कुकुरमुत्ता। खुमी। छत्रक नामक उद्भिद्।

कठफोड़वा–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+फोड़ना] ज़ाकी रंग की एक चिड़िया जो अपनी चोंच से पेड़ों की छाल को छेदती रहती है और छाल के नीचे रहनेवाले कीड़ों को खाती है। इसके पंजे में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। जीभ इसकी लंबी कीड़ेकी तरहकी होती है। चोंच भी बहुत लंबी और दृढ़ होती है जिससे वृक्ष में ठोंगें मार कर छेद कर देता है। यह कई रंग का होता है। यह मोटी डालों पर पंजों के बल चिपट जाता है और चक्कर लगाता हुआ चढ़ता है। जमीन पर भी कूद कूद कर कीड़े चुनता है। दुम इसकी बहुत छोटी होती है। उत्तम वह है जिसका रंग हरा हो। कठफोड़वा सैकड़ों प्रकार का होता है। परों का रंग काला, सफेद, भूरा, जैतूनी, हरा, पीला, गुलेनारी और नारंजी मिला रहता है। इसके शरीर पर रंग-रंग की धारियाँ, बुंदियाँ और गोकें होती हैं। आरम्भ

के परों का रंग भद्दा होता है। उनके नीचे कितनी ही धारियाँ और बुंदियाँ पड़ी रहती हैं। सिवाय मेडागास्कर, आष्ट्रेलिया, सिलेबेस और फ्लोरेस के यह पृथ्वी मंडल के प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है। इजिप्त वा मिश्र में कठफोड़वा कभी नहीं देख पड़ा। यह प्रायः छः चमकीले सफ़ेद अंडे देता है।

पर्य्याय—कुठाकुः—सं०। कठफोरवा, कठफोड़ा, पेड़खुदा, खुटक बढ़ैया—हिं। काठ्ठोकूरा—बं०। दारकोब, दारबर, सारज—फ़ा। सोदानी (सोदानियात—बहु० व०)—अ०। दार्मक-शीराजी। Wild pecker, Wood pecker—अं०।

टिप्पणी—बहूरुल जवाहिरनामक आरब्य अभिधान-ग्रंथ में इसका एक वचन 'सवानियः' वा "सोदानिय." लिखा है। सुतरां बुर्हान नामक ग्रन्थकार का यह कथनकि सोदानियात सिरियानी भाषाका शब्द है, सर्वथा असंगत है। किसी किसी ने आरब्य सुरद शब्द को भी इसका पर्याय लिखा है। परन्तु ऐसा मानना ख़ज़ाइनुल् अदविया के लेखक के मत से ठीक नहीं। वि० दे० "सुरद"।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

इसका मांस शीतल, लघुपाकी, अग्निदीपक, हृद्य, शुक्रजनक और वायुनाशक है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—गरम तथा ख़ुश्क। इसलाम धर्म के अनुसार इसका गोश्त हलाल है।

गुण, कर्म, प्रयोग—क्षीण एवं कृश व्यक्तियों और मस्तिष्क को अत्यन्त हानिप्रद है।—मु० ना०, ना० मु०।

इसके मांस में हिद्दत—गरमी की उग्रता बहुत है। यह कीड़े-मकोड़े खाता रहता है। इसलिये इसका मांस दुर्गंध युक्त भी होता है। इसका गोश्त खराब है, इसलिये न खाना चाहिये। खासकर दुबले मनुष्य को तो कदापि न खाना चाहिये। इसके खाने से कामाग्नि उद्दीप्त होती है। इससे मस्तिष्क को हानि पहुँचती है।—ख़० अ०।

सर्द रोगों में इसका खाना गुणकारक है। इसका शोरबा कोष्ठ मृदुकर है।—म० इ०।

कठफोड़ा—संज्ञा पुं०, दे० "कठफोड़वा"।

कठफोरवा—संज्ञा पुं०, दे० "कठफोड़वा"।

कठबरूकी—संज्ञा स्त्री०, मेंढक।

कठबेर—संज्ञा पुं० [हिं० काठ × बेर] (१) ककोर। (२) घूँट नाम का पेड़ या झाड़।

कठबेल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ×बेल] (१) कैथ का पेड़। कपित्थ। (२) कठकरंज।

कठबैंगन—संज्ञा पुं० [हिं० काठ×बैंगन] जंगली बैंगन।

कठबेला—संज्ञा पुं० [हिं० काठ×बेला] एक प्रकार का फूल।

(Gasminum multiflorum)

कठभेमल—संज्ञा पुं० [हिं० काठ×भेमल] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो प्रायः सारे उत्तरी भारत और ब्रह्मा में पाया जाता है। यह वर्षा ऋतु में फूलता और जाड़े में फलता है। कक्की। फिरसन।

कठमहुली—संज्ञा स्त्री० [देश० चुनार] कचनार की जाति का एक प्रकार का जंगली पेड़। इसके वृक्ष सर्वथा कचनार वृक्षवत् दीख पड़ते हैं। पत्तियाँ भी कचनार की पत्तियाँ जैसी होती हैं। इसकी फलियां कचनार की फलियों से अधिक बड़ी—२ इञ्च से फुट भर लंबी और प्रायः ½ इंच चौड़ी, कठोर एवं खुरदरी होती हैं। बीज चिकना अंडाकार अमलतास के बीज जैसा होता है। इसकी कच्ची फलियाँ हरे रंग की होती हैं। इन्हें तोड़ने पर उसमें से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता है। छाल का रंग गंभीर रक्त वर्ण का होता है। इसकी छाल रक्तप्रदर, रक्तातिसार तथा रक्त पित्त में अत्यन्त गुणकारी सिद्ध होती है। छाल की बनी रस्सियां बहुत ही दृढ़, मजबूत और टिकाऊ होती है। वि० दे० "कचनार"।

कठमाटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काठ×माटी] कीचड़ की मिट्टी जो बहुत जल्दी सूखकर कड़ी हो जाती है।

कठर—वि० [सं० त्रि०] कठिन। जटा०।

कठरक—संज्ञा पुं० [सं० कुठेरक] भुइ तुलसी।

कठरा, कठड़ा—संज्ञा पुं० [सं० कटाह] भैंस का नर बच्चा।

कठलै—[मदरास] कंटाल। खेटकी।

(Ageevipara, *Linn*)

कटल्यागोंद—[मह०] कटीरा गोंद। कतीरा। कुक्षी। इ० मे० प्रा०।

कठशिम्-[बं०] कुडसम्बर (बम्ब०)।
(Canabalia virosa, *W&a*)

कठसरैया-संज्ञा स्त्री० [सं० कटसारिका] दे० "कट-सरैया"।

कठसेमल-संज्ञा पुं० [हिं० काठ× सेमल] सेमल की जाति का एक प्रकार का पेड़।

कठसेलो-[राजपु०] कटसरैया। पियाबाँसा।

कठसोला-संज्ञा पुं० [हिं० काठ×सोला] सोला की जाति की एक प्रकारकी झाड़ी या छोटा पौधा जो प्रायः सारे भारत, स्याम और जापान में होता है। वर्षा ऋतु में इसमें सुन्दर फूल लगते हैं।

कठा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हथिनी। करिणी। श० च०।

कठाई-[बर०] करिंग घोड़ा (मल०)

कठाकु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पक्षी। चिड़िया।

कठार-संज्ञा पुं० [देश० चुनार] एक प्रकार का रतालू। कटार।

कठारटी-[पं०] आड़ू।

कठाल-संज्ञा पुं० [ ] डुरडुर।

कठाली-[राजपु०] कटाई। भटकटैया। रेंगनी।

कठालीगिडा-[कना०] घीकुआर। घृतकुमारी।

कठालू-संज्ञा पुं० [हिं० काठ+आलू] काष्ठालू। गाँठ आलू। गेंठो।

कठाहक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दात्यूह पक्षी। चातक। पनडुब्बा। (Agallinule) श०र०।

कठिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तुलसी का पौधा। (२) खड़िया मिट्टी। खटिका। छूही। वै० निघ०।

कठिञ्जर-संज्ञा पुं० [स० पुं०] (१) छोटी तुलसी का पौधा। अर्जक वृक्ष। रा० नि० व० १०। (२) काली तुलसी। पर्णास।

पर्य्या०—पर्णास कुठेरक, लोणिका, जातुका, पर्णिका, पत्तूर, जीवक, सुवर्चला, कुरुवक, कुन्तलिका, कुरण्टिका, तुलसी, सुरसा, ग्राम्या, सुलभा, बहुमञ्जरी, अपेतराक्षसी, गौरी, भूतघ्नी और देवदुन्दुभि। भावप्रकाश के मतानुसार कठिञ्जर कटु एवं तिक्त रस, उष्णवीर्य, दाहकारी, पित्तकारक, अग्निदीपक और कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र, रक्तदोष, पार्श्वशूल, कफ तथा वायुनाशक है। वि० दे० "तुलसी" भा० पू० १ भ० पु० व०।

कठिण-संज्ञा पुं० [सं०] नर्त्तक।

कठिन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) यवानी, अजाजी, त्रिकटु और भूनिम्बादि द्रव्य। श०च०(२)स्थाली। थाली। रकाबी। (३) गैरिक। पाषाण गैरिक। स्वर्ण गैरिक। रा० नि० व० ३।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रीहि धान्य।

वि० [सं० त्रि०] (१) कड़ा। सख्त। कठोर। (२) स्तब्ध। रोका हुआ। मे०।

कठिनपृष्ठ, कठिनपृष्ठक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कूर्म। कछुआ। बारवा। रा० नि० व० १६।

कठिनफल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथे का पेड़। कपित्थ वृक्ष। रा० नि० व० ११।

कठिना-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुड़शर्करा। गुड़ के नीचे पड़नेवाला दाना। मे० नत्रिक। (२) कठूमर। काकोदुम्बरिका। गोबला। कठगूलर। रा० नि० व० ११। (३) शर्करा। शकर। चीनी।

कठिनिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खड़िया मिट्टी। खड़ी। खटिका। हारा०। (२) स्थाली। हंडी।

कठिनी, कठिनीक-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं० स्त्री०, पुं०] खड़िया मिट्टी। खड़ी। खटिका। र० मा०। प० मु०। त्रिका० मे० नत्रिक।

संस्कृत पर्य्या०—पाकशुक्ला, अमिलाधातु, कक्खटी, खटी, खड़ी, वर्णलेखिका, धातुपल और कठिनिका। दे० "खड़ी"।

कठिनोपल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का शालिधान्य। कौसुम्भी शाली। रा० नि० व० १६।

कठिन्यादिपेया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकारका वैद्यकोक्तपेय विशेष। योग यह है—खड़िया८तो०, मिश्री ४ तो०, गोंद ४ तो०, सौंफ २ तो० और दालचीनी २ तो० इनको जौ-कुटकर एक सेर जल के साथ किसी मिट्टी के बरतन में रात को भिगो दें। प्रातः काल छानकर इसे स्थिर भाव से पड़ा रहने दें। जब साफ़ पानी ऊपर निथर आवे, तब उसे ही ग्रहण कर सेवन करें। इसके सेवन से

ग्रहणी, आमाशय और रक्तपित्त का नाश होता है। (भैष० र० अरोचक चि०) पूर्वोक्त द्रव्य-समूह के साथ २ तो० लौंग और २ तो० धनियाँ भी मिला देने से यह अम्लपित्त के लिये भी उपयोगी हो जाता है। यदि पूर्वोक्त सकल द्रव्यों के साथ २ तो० बेल का चूर्ण भी योजित कर दें, तो यह रक्तातिसारमें भी लाभकारी सिद्ध हो। हिं०वि०को०।

कठिया गेहूँ–संज्ञा पुं० [हिं०कठिया ×गेहूँ] एक प्रकार का गेहूँ जिसका छिलका लाल और मोटा होता है। इसे "ललिया" भी कहते हैं। इसके आटे में चोकर बहुत निकलता है।

कठिल्ल, कठिल्लक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करेला। कारवेल्लक। प० मु०। भा० पू० २ भ०। (२) जंगली करेला। कर्कट। कँकरोल। प०मु०। च० चि० ३ अ०। "कर्कटोऽरण्यसम्भूतः कठिल्लः शठवातकः।" वै० निघ०। (३) पुनर्नवा। रा० नि० व० ५। भैष० मध्यम नारायण तैल। (४) रक्तपुनर्नवा। गदहपूर्ना। भा० पू० २ भ०। (५) तुलसी का पौधा। त्रिका०।

कठिल्लिका, कठिल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) करेले का बेल। कारवेल्ल वृक्ष। (२) तुलसी। (३) रक्तपुनर्नवा। गदहपूर्ना। ज० द० १२ अ०।

कठीर–संज्ञा पुं० [सं० कंठीरव] सिंह। शेर, –डिं०।

कठुंबर–सज्ञा पुं०, दे० "कठूमर"।

कठूमर–संज्ञा पुं० [हिं० काठ×ऊमर] जंगली गूलर जिसके फल बहुत छोटे छोटे और फीके होते हैं। कठगूलर। वि० दे० "गूलर"

कठै–[बर०] निएप (मदरास)। (Samadera Indica, *Gaertn*)

कठैल–संज्ञा पुं० [देश०] कटहल।

कठोदर–संज्ञा पुं० [हिं० काठ×उदर] पेट का एक रोग जिसमें पेट बढ़ता है। और बहुत कड़ा रहता है।

कठोर, कठोल–वि० [सं० त्रि०] [संज्ञा कठोरता] कठिन, सख्त। कड़ा। अ० टो०।

कड़–संज्ञा पुं० [देश०] (१) कुसुम। बर्रे। (२) कुसुम का बीज। बर्रे।

वि० [मल०] काला। कृष्ण।

कड अरिशिना–[कना०] वनहरिद्रा। जंगली हल्दी।

कडउ–[क०] कदम। कदंब।

क (का) ड उद्धु–[कना०] मापपर्णी। मषवन।

कड़क–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सामुद्रलवण। समुद्रनोन समुन्दरी नमक। कड़कच लवण। र० मा०।

संस्कृत पर्य्याय–सामुद्र, त्रिकूट, अब्धीव, वशिर, सामुद्रज, सागरज और उदधि सम्भव। भावप्रकाश के मत से कड़क मधुर विपाक, ईषत् तिक्त एवं मधुर रस युक्त, गुरु, न अतिशय शीतल और न अतिशय उष्ण, अग्नि दीपक, भेदक, क्षारयुक्त, अविदाही, कफकारक, वायुनाशक, तीक्ष्ण और अरुच होता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़कड़] (१) कसक। पीड़ा जो ठहर ठहर कर हो। (२) एक प्रकार का मूत्ररोग जिसमें रुक रुककर और जलन के साथ पेशाब होता है।

संज्ञा पुं० [ते०] हड़ का पेड़।

कड़कच–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सामुद्र लवण। समुन्दरी नमक। यह लवण सफेद और काला दो प्रकार का होता है। बंगाल के वीरभूम जिले में सफेद के सिवा काला नहीं मिलता। काले की अपेक्षा सफेद कुछ कड़ा होता है। कड़कच सैंधव लवण की भाँति विशुद्ध रहता है। इसीसे स्मृतिशास्त्र में विधवाओं के भोजन के लिये सैंधव और सामुद्र दोनों प्रकार के लवण का विधान है।

कड़कण्डू–[ता०] मिश्री। सितोपल।

कड़कशा–सज्ञा पुं० [सं०?] काला कुड़ा।

कडकाइ–[ता०] हड़ का पेड़। हरीतकी।

कड़काटक शिंगी–[ता०] काकड़ासिंगी।

कड़ कुंदुरुक्कम्–[मल०] काला डामर।

कड़को–[राजपु०] कड़ाका। उपवास। लंघन।

कड़क्काय–[ते०] हड़।

कड़ङ्कर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तुष। भूसी। वै० निघ०।

कड़ङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मदिरा सुरा विशेष। उणा०।

कडङ्गवी–[लेप०] क्रोरेंडॅून कोलेबुकिएनम्।

कड़ङ्गर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० कड़ङ्गरीय] तुष। तुष। बुष। तुड़ी। हे० च०।

कड़ङ्गी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कड़म्बी"।
कड़ङ्गो–[ता०] राई। घोराई।
कडटङ्गन–[बर०] कनेडा ओडेरेटा।
कडट-ड़ेङ्गाय–[ता०] दरियाई नारियल। नारजीले बहरी।
कडनु-चलकाई–[का०] कद्दू। कदुआ। लौआ।
कडन्ताथी–[मदरास] हावर। मचिंगी।
(Dolichandrone falcata, *Seem*)
कडपहुला–[कों०] जंगली परोरा। वनपटोल।
कडपर–[ते०] कीड़ामार। गंधानी। धूम्रपत्र।
कडपाल–[ता०] कपाल भेदी।
कडपुम–[ता०] समुद्रफल। हिज्जल।
कड़बड़ा–वि० [सं० कर्बर=कबरा] कबरा। चित-कबरा।
कड़बी–हिं० [संज्ञा स्त्री०] दे० "कड़वी"।
कडमीक–[ते०] समुंदरफल। हिज्जल।
कडमी–[विहा०] नारी। नाली।
कडमेरो–[नैपा०] बड़ा मैदा लकड़ी।
कड़म्ब, कड़म्बक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कलमी शाक। करेमू। कलम्बी। नाड़ी। (२) शाक नाड़िका। शाक का डंठल। (३) अंकुर। कोंपल। (४) कदम्ब।
कड़म्बी, कड़म्बुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलमी शाक। कलम्बी। करेमू। नाड़ी।
कडम्बे–[ते०] कदम। कदंब।
कड़रबून–संज्ञा पुं० [?] एक पौधे का नाम।
कडर्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] किरात तिक्त। चिरायता। रा० नि० व० १।
कडल तङ्गाय–[ता०] दरियाई नारियल।
कडल नागल–[ता०, कना०] समुद्रफेन।
कडल पालै–[ता०] समुन्दर सोख। समुद्र शोष।
कडलपाच्च–[ता०] दरिया की पाची। मोस।
(Gracilaria Lichenoides, *Greville*) Ceylon moss)
कडलमु–[ते०] जंगली केला। गिरि कदली। अरण्य कदली।
कडलया–सं० पुं०।
कडले-काडि–[मल०] चने का सिरका। सिरकहे नख़ुद।
कडलै–[ता०, मल०, का०] चना। चणक।
कडलै-काडि– } [ता०] चने का सिरका।
कडलै-पुलिप्पु– } वूँट का सिरका।
कडल्य–[ता०] ऑलिया ग्लैण्ड्युलिफेरा।
कडवंची–संज्ञा स्त्री० [मरा०, बम्ब०] एक लता-वर्गीय उद्भिद का फल। इसकी बेल ज्वार के खेत में वर्षारम्भ में उत्पन्न होती है। इसकी शाखायें भूमि पर फैली होती हैं. पत्ती १ से २ इञ्च चौड़ी पञ्चकोण वा कुछ कुछ पंच-खंड युक्त होती हैं और जिसका मध्य खण्ड नाति दीर्घ होता है। यह श्यामता लिए, हरे रंग की कोमल, मसृण वा किंचिल्लोमश होती है जिसके दोनों पृष्ठ (Punctu late) होते हैं। पत्र प्रांत करातदंतित अर्थात् आरी की भाँति दन्दानेदार होते हैं। पत्र-वृंत आधा से १॥ इञ्च लम्बा होता है पुंपुष्प-स्तवक १–२ इञ्च होता है और उसमें साधारणतः केवल २ से ४ तक पुष्प होते हैं। पुष्प बाह्यावरण खंड भालाकार पुष्पांतरावरण वा पंखड़ी ¼ इंच दीर्घ एवं सफेद रंग की होती है (किसी-किसीने पीत रंगकी पंखड़ीका भी निर्देश किया है) पराग केसर दो होते हैं,जिनमें से एक द्विशीर्ष और दूसरा त्रिशीर्ष होता है, इनमें से प्रत्येक एक पराग कोष युक्त होता है। केसर वा तुरी कटोरी के सिरे के समीप से प्रारम्भ होते हैं। स्त्री-पुष्प वृंत ⅜—२ इं० दीर्घ, एक पुष्पीय, पौष्पिक पत्र विहीन (नर पुष्प-वृंत में एक लघु पौष्पिक-पत्र होता है।) फल—¾ १ इञ्च अर्थात् उंगली के पोर्वे के बराबर लम्बा और ¼ इञ्च (चौड़ा) तथा पतला होता है। फल का उपरिस्वक् कुर्रीदार होता है और उस पर आठ प्रशस्त पशुकाएँ होती हैं। छिलका पतला और रेशमी रोइयों से परिव्याप्त होता है। अभी जब कि यह हरा ही होता है चार खण्डों में विदीर्ण हो जाता है और बीज निकल पड़ते हैं। बीज ⅛-¼ इञ्च कुछ-कुछ गोल और कठोर, छोटी मिर्च के बराबर, चिकना और चमकीला होता है और उस पर अणुसंयोजक (Hilum) स्पष्ट दिखाई देता है। इसकी जड़ शलगम की तरह गोल और कड़ी होती है और इसमें से ककड़ी (Cucumbe) की भाँति गन्ध आती है। यह अत्यन्त तिक्त और तीक्ष्ण होती है। सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करने पर इसके केन्द्रभाग

में श्वेतसार की सी लें दृग्गोचर होती हैं। उक्तकेन्द्र भाग और उपचर्म-स्तर के मध्य में रालदार पदार्थ के विषम टुकड़े होते हैं। इसकी समग्र बेल स्वाद में कुछ-कुछ कड़वी होती है।

पर्य्याय—कडुतुम्बी, क्षुद्रकारलिका, शीफलिका, प्रतिपत्रफला, शुभ्रवी, कारवी, बहुफला, कन्दलता क्षुद्रादिकारवल्ली (रा० नि०) लघुलता, व्रणघ्नी, कृष्णमृद्भवा (द्रव्य०), क्षुद्रकारवेल्लक, कडुतुम्बी, कटुतुम्बी, ह्रस्व कारवेल्ल, कारवल्ली, क्षुद्रकारवेल्लिका, सुभवी, कन्दफला, क्षुद्रकारवेल्ली—सं०। कड़वंची—हिं०, मरा०। कासरकाई—हिं०। छोट उच्छे, छोट करला—बं०। मोमोर्डिका सिम्बलेरिया Momordica cymbalaria, *Fenzl*., लुफा ट्युबरोसा Luffa Tuberosa, *Roxb*—ले०।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—दक्षिण भारत, मैसूर, कोंकण इत्यादि।

औषधार्थ व्यवहार—कंद।

रासायनिक संघटन—एक तिक्त ग्ल्युकोसाइड।

प्रभाव—गर्भपातक।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कुडुतुम्बी कटुरुष्णातिक्तारुचिकारिणीचदीपनदा।
रक्तानिलदोषकरी पथ्याऽपि च सा फलेप्रोक्ता॥
कारलीकन्दमर्शोघ्नं मलरोध विशोधनम्।
योनिनिर्गत दोषघ्नं गर्भस्राव विषापहम्॥
(ध० नि०)

कडवंची—चरपरी, कड़वी, गरम, रुचिकारी, और दीपन है तथा यह रक्त एवं वायु के दोष उत्पन्न करनेवाली और इसका फल पथ्य है। इसका कन्द (कारलीकन्द)—बवासीर को नष्ट करता, मलावरोध को मिटाता, योनिदोष और गर्भस्राव का निवारण करता है एवं विषघ्न है।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष। स्वाद—तिक्त।

हानिकर्त्ता—रक्तवमन के रोगी को।

दर्पघ्न—खुरफ़े की पत्ती का रस।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसके फल को मांस में या किसी शाक के साथ पकाकर ज्वार की रोटी से खाते हैं। यह शीघ्रपाकी और पोषणौषधि है। यह पिच्छिल श्लेष्मा का छेदन करती और नेत्र रोगों को लाभ पहुँचाती है। यह क्षुधाजनक, पाचक पित्तनाशक और कोष्ठबद्धता निवारक है। इसकी जड़ रजः प्रवर्तक एवं प्रसवकालीन रक्तनिस्सारक है। योनि में इसकी वर्त्ति धारण करने वा पिलाने से यह दोनों प्रकार से गर्भपात कराती है। इसका प्रलेप कण्ठमाला को विलीन करता है। निम्बपत्र स्वरस और काँजी के साथ यह प्रत्येक उष्ण एवं शीतल विष को अपने प्रभाव से नष्ट करती है। यह अर्श एवं तज्जन्य कोष्ठबद्धता का निवारण करती है। कहते हैं कि इसकी बेल के आस-पास सर्प नहीं रहता। किसी-किसी स्त्री की योनि से जो बुद्बुदवत् एक चीज निकलती है, उसे यह बन्द करती है। ख़० अ०

डीमक—समग्र क्षुप चरपरा होता है। इसके औषधीय प्रभाव के सम्बन्ध में बम्बई सरकार के रासायनिक विश्लेषणकर्त्ता डॉक्टर लियान कहते हैं कि गत चार वर्षों के भीतर तीनबार कडवंची के कन्द जिनका व्यवहार गर्भपातनार्थ किया जा चुका है, उनके पास भेजे गए हैं। सन् १८८६ई० में पुनरपि ये कन्द तात्कालीन विश्लेषण कर्त्ता डा० बेरी के पास, गर्भपात के एक मामले के सम्बन्ध में, भेजे गये थे। फा० इं० २ भ० पृ० ७६-८०)

कडवनीची—[म०] आल। आच्छुक।

कडवला—[कना०] कदम। कदम्ब।

कड़वा—वि० दे० "कड़ुवा"।

कड़वा इंदरजौ—संज्ञा पुं० [हिं० कड़वा+इंद्रजौ] एक प्रकार का इन्द्रजौ। तिक्त इन्द्रयव। कुटज बीज।

कड़वा ककैडाका—[राजपु०] कड़ुवाखेखसा।

कड़वा ककोड़ा—संज्ञा पुं०। वन ककोड़ा। कड़ुवा खेखसा।

कड़वा कुंदरू—संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुवा+कुंदरू] तिक्त बिम्बी। तीता कुनरू।

कड़वा खेखसा–संज्ञा पुं० दे० "कड़ुवा खेखसा"।

कड़वा गोखरू–[गु०] बड़ा गोखरू। (Pedalium Murex, *Linn.*)

कड़वा चिचिंडा–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुवा+चिचिंडा] वन चिचिंडा।

कड़वा तुम्बा–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुवा+तुम्बा] तितलौकी। कद्दू तल्ख़। कटुतुम्बी।

कड़वा परवल(र)–
कड़वा परोरा– } संज्ञा पुं०। जंगली परोरा। तिक्त पटोल।

कड़वा तेल–संज्ञा पुं०, दे० "कड़ुआ तेल"।

कड़वा बादाम–संज्ञा पुं० दे० "कड़ुआ बादाम"।

कड़वा लमड़ा, कड़वा लमर–[कना०] (१) शंखाहुली। गोखरू कलाँ (पं०, सिंध), बन आकरा (बं०)। ख़ारे ख़सक (फ़ा०)। (Xanthium strumarium, *Linn.*) Broadleaved Burweed. (२) कदम।

कड़वाहट–संज्ञा स्त्री० दे० "कड़ुआहट"।

कड़वी–[?] नैनो कंदो (गु०)। महामूला। राकसगड्डु।

[कना०] बारहसिंगा।

कड़वी–वि० दे० "कड़ुई"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] ज्वार का पेड़ जिसके भुट्टे काट लिये गये हों और जो चारे के लिये छोड़ दिया गया हो। ठेंठा।

संज्ञा स्त्री० [देश०, बम्ब०, मरा०] एक प्रकार का चिरायता। (Swertia Paniculata, *Wall.*) यह वनस्पति असली चिरायते की प्रतिनिधि स्वरूप काम में ली जाती है। वी० डी० वसु। चोपरा।

संज्ञा स्त्री० [द०] अफीम। अहिफेन।

कड़वी ककड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़वी+ककड़ी] कड़ुई ककड़ी। तिक्त कर्कटी।

कड़वी कंदूरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़वी+कंदूरी] कड़ुआ कुनरू। कड़ुई कंदूरी। तिक्तभिम्बी।

कड़वी काठे–संज्ञा स्त्री० [देश०] चालमुगरा की जाति का एक वृक्ष। वि० दे० "चालमुगरा"।

कड़वी घिसोदी–[गु०] कड़वी तुरई। कटु कोशातकी

कड़वी जीरी–[द०] बकुची। आतरीलाल।

कड़वा जीवन्ती–संज्ञा स्त्री०[हिं कड़वी+सं० जीवंती] कड़ुई डोड़ी शाक।

कड़वी तराइ–संज्ञा स्त्री० दे० "कड़ुई तुरई"।

कड़वी तुमड़ी–संज्ञा स्त्री०
कड़वी तुम्बड़ी–[गु०]
कड़वी तुम्बड़ी–संज्ञा स्त्री०
कड़वी तुम्बी–संज्ञा स्त्री० वि० दे० "कद्दू" } कड़ुआ-कद्दू। कद्दू-तल्ख़। कटुतुम्बी।

कड़वी तुरइ–संज्ञा स्त्री० दे० "कड़ुई तुरई"।

कड़वी तूँबी–संज्ञा स्त्री० कड़ुई तुंबी। तितलौकी। दे० "कद्दू"।

कड़वी तोरइ–संज्ञा स्त्री० दे० "कड़ुई तुरई"।

कड़वी नई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बेल जो बरसात में उत्पन्न होती है। आकाश गिड्डा (Corallocarpus Epigeous)

कड़वीनायी–[बम्ब०] छोटा किरायत। (Enicostema littorab, *Blume*)

कड़वी नानुपिण्डा–[?] अज्ञात

कड़वी परवल–[हिं०] कड़ुआ परवल।

कड़वी नै–[गु०] छिलिहिण्ट। छिरेट। पातालगरुड़ी। जलजमनी।

कड़वी मसूर–संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़वी+मसूर] एक प्रकार का मसूर।

कड़वी वगेटी–[म० बम्ब०] नटकांत (नैपा०)। मूनक (लेप०)। (Paramignya monophylla, *Wight*)

कड़वी हरकाई–[बम्ब०] छोटा चाँद।

कड़वु जीरि–[गु०] आतरीलाल। बकुची। काली ज़ीरी। (Vernonia Anthelmintica, *Willd*)

कड़वो इन्दरजौ–[गु०] कड़ुआ इन्द्रजौ।

कडवु बदाम–[गु०] कड़ुआ बादाम। कटु वाताद।

कड़वे परवल–संज्ञा पुं० [देश०] तिक्त पटोल।

कड़वे बादाम–संज्ञा पुं० [देश०] कड़ुआ बादाम।

कडवो–[राजपु०] चिरायता।

कडवो जीरि–[गु०] बकुची। आतरीलाल। काली ज़ीरी।

कड़-शुण्णाम्बु–[ता०] कली का चूना। अनबुझा चूना।

कडसरा-चोक–[द०] सत्यानाशी। भँड़भाँड़।

कडसिगे–[कना०, कुर्ग] काला सरसों । बिलकम्बी । मोटो सरसियो (गु०) ।

कडसिंगे–[?] महानीम । बकायन ।

कड़हन–संज्ञा पुं० [हिं० कठधान] एक प्रकार का धान । एक प्रकार का मोटा चावल । कठधान ।

कडहोगे-सप्पु–[कना०] धवल (महा०) । (Lobelia Nicotianaefolia, *Heyne*) Wild Tobacco

कड़ाँ–संज्ञा पुं० [सं० कणा] पीपल ।

कड़ाँमूल–संज्ञा पुं० [सं० कणामूल] पिपरामूल । पीपरामूल ।

कड़ा–संज्ञा पुं० [सं० कटक] (१) एक प्रकार का कबूतर । [ता०] (२) सूरण ।

कड़ाका–संज्ञा पुं० [हिं० कड़कड़] उपवास । लंघन । फ़ाका ।

कड़ाचूर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मिठाई ।

कडाय खंज–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] वातव्याधि का एक भेद जिसमें मनुष्य चलना प्रारम्भ करने के समय काँपता हुआ खंजन पक्षी की तरह चलता है अथवा चलने में लँगड़ाता है और संधियों के बंधन ढीले पड़ जाते हैं । कलायखञ्ज । यथा—

"कंपते गमनारंभे खंजन्निव च याति यः ।
कडायखंजं तं विद्यान्मुक्त संधि प्रबंधनम् ॥
(वा० नि० १५ अ०)

कडार–संज्ञा० पुं० [सं० क्लीं०] मुण्ड लोह भेद । रा० नि० ब० ६ ।

कड़ार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पिङ्गल वर्ण । भूरा रंग । पीला रंग अम० ।

वि० [सं० त्रि०] "पिंगलवर्ण युक्त" । गंदुमी । भूरा ।

कडिकपान–[बम्ब०] (Polypodium quercifolium, *Linn*)

कड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलिका । कूँड़ी । कली ।

कडिमि चेट्टु–[ते०] मैनफल ।

कड़िया–संज्ञा स्त्री० [सं० कांड, हिं० काँड़ी] लकठा । काँड़ी । रहटा ।

कडिलिकम्–[ता०] कुचला ।

कडिरो–[ते०] अज्ञात ।

कड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० कांड] भेड़ बकरी आदि चौपायों की छाती की हड्डी ।

—[का०] डोडी । जीवंती ।

कड़ी वेप–[कना०] } सुरनि निंब ।
कड़ी वेपचेट्टु [ते०] } कड़ी निंब ।

कड़ी वगेटी–[बम्ब०] नटकांत (नैपा०) झनक (लेप०) । दे० "कड़ु वगेटी" ।

कडु–[महाबालेश्वर] शिलाजीत । (S. Decussata)

कडु, कडू–संज्ञा पुं० [देश०] (१) नीलकण्ठ । कमलफूल (Gentiana kurroo, *Royb*) फा० इं० २ भ० । (२) कुटकी । (३) खप्पर ।

[नैपा०] चावलमुगरा । कुष्ठ वैरी । [गु०, महा०] कुटकी । [महाबालेश्वर] शिलाजीत ।

कडुआ–वि० [सं० कटुक, प्रा० कडुआ] [स्त्री० कड़ुई] (१) जिसका तीक्ष्ण स्वाद जीभ को असह्य हो । स्वाद में उग्र । कटु । तीक्ष्ण । झालदार । जैसे—मिर्च, सोंठ, पीपल आदि । (२) स्वादु में कटु परन्तु झालरहित । तिक्त । कटु । जैसे—नीम चिरायता, इन्द्रायन आदि ।

कडुआ इन्द्रानी–[म०] इन्द्रायन ।

कडुआ खेखसा–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुआ + खेखसा] कड़ुआ-ककोड़ा । तिक्त ककोटक । जंगली ककोड़ा ।

कडुआ-तेल–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुआ + तेल] सरसों का तेल जिसमें बहुत झाल होती है । कटु तेल । कटु तेल । सार्षप ।

कडुआ बादाम–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुआ+बादाम] तिक्त बादाम । कटु वाताद । बादाम तल्ख़ ।

कडु इन्दु–[ता०] बन खेखसा । बघाछुरा (बं०),

कडु इन्दरजौ–[म०] कड़वा इन्द्रजौ, । तिक्त इन्द्रयव ।

कडुई तुरई–संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ुई+तुरई] एक प्रकार की तोरई जो खाने में तीती होती है । कडवी तुरई । तिक्त कोषातकी । दे० "तुरई" ।

कडुई तूँबा–संज्ञा स्त्री० [हिं० कड़ुई+तूँबी] तितलौकी । तिक्तालाबु ।

कडुक-[मल०] राई । गौर सर्षप ।
कडुकंगल-[कों०, हिं०, बं०] चलता नामक वृक्ष ।
कडु-कडले-सोप्पु-[कना०] खुब्बाजी ।
कडु-कवत (थ)-[म०, बम्ब०] जंगली बादाम। कौटी । Hydnocarpus wightiana) दे० "अरण्यवाताद" (१) तथा "चावल-मुगरा" ।
कडुकवात-[का०] चावलमुगरा ।
कडु-कस्तूरी-[कना०] मुश्कदाना । लताकस्तूरी ।
कडुका-[मल०] राई । गौर सर्षप ।
कडुकार-[ते०] हड़ का पेड़ । हरीतकी ।
कडुक्काय-
कडुक्कै- } [ता०] हड़ का पेड़ ।
कडुक्काय, कडुक्काय-पिंजी-[ता०] जंगी हड़ । हरीतकी । बालहड़ । कालीहड़ ।
कडुक्काय-पू-[ता०, मल०] हड़ का फूल । हरीतकी पुष्प ।
कडु-खजूर-संज्ञा पुं० [बं०, गु०, बम्ब०] काला खजूर । दिनकरलिंग । (Melia Dubia, *Car*)
कडुग-[मल०] राई । राजिका ।
कडुगु-[ता०] राई । गौर सर्षप । (Sinapis juncea, *Linn*) । (२) हुरहुर ।
कडु घिसोदी-[गु०] कड़वी तुरई । घोषा लता ।
कडु घोसली-[कों०] कड़वी तुरई ।
कडुङ्गथी-[लेप०] क्रोरोडेण्ड्रन कोलेबुकिएनम् ।
कडु चिरायता-[गु०] नीलकांत । कमलफूल ।
कडु जिरगे-[कना०] कलौंजी । बकुची ।
कडु जीरो-[गु०] काला जीरा ।
कडु डोड़क-[म०] कड़ुई तुरई ।
कडुत्-[बर०] कठूमर । काकोदुम्बरिका ।
कडुत्तउप्प-[मल०] काला नमक ।
कडु दालचीनी-[कना०] जंगली दालचीनी ।
कडु दुदीली-[ ] कड़वी तुम्बी । तितलौकी ।
कडु दुदी-[कों०] तितलौकी । जंगली कद्दू ।
कडु निम्ब-[म०] नीम ।
कडु नुगे-[कना०] अडवी मूनग । (ते०)। (Ormocarpum sennoides, *D. C.*)
कडुन्य-[लेप०] भंटा । बैंगन । वार्ताकी ।
कडु परवल-[म०] जंगली चिचोंडा (Trichosanthes cucumeraina, *Linn.*)
कडुप्प-वि० [मल०] काला । कृष्ण ।
कडुप्पु मणत्तक्कालि-[मल]
कडुप्पु मणत्तक्कालि-[ता०]
कडुप्पु मणत्तान्कण्णि-[मल०] } काला मको ।
कडुप्पु मरुत मरम-[ता०] आसन । जंगली करञ्ज (द०) । आशान, पियाशाल (बं०)। (Terminalia Tomentosa, *W. et A.*)
कडुवेल्लुल्लि-[कना०] छोटा जंगली प्याज ।
क(का)डु बोगि वित्तुलु-[ते०] बकुची । बाबची । (Psoralia Corylifolia, *Linn.*)
कडु भोपला-[बम्ब०, म०] तितलौकी । कटुतुम्बी ।
कडु मल्लिगे-[कना०] वन मल्लिका ।
कडु मेन्ध्या-[मल०, कों०, सिं०, कना०] (१) जंगली काली मिर्च । (२) गुलशकरी । नाग बला ।
कडुर मिरिस-[मल०, कों०, क०, सिं०] जंगली काली मिर्च ।
कडुलिम्बे-[कना०] जंगली जंभीरी । माकरलिंब ।
कडुली-[ता०] आभ्रर । आसा । जरुल (बं०)।
कडु वगेटी-[म०]
कडुवप्पु-[ता०] लौंग ।
कडुवा बादाम-संज्ञा पुं० [हिं० कड़ुवा+बादाम] कड़ुआ बादाम ।
कडुवेप्पिलै-[ता०] कड़ी निम्ब । सुरभिनिम्ब ।
कडुसम्पिगे-[कना०] गुलाचीन ।
कडुसल्लेरुकु-[कों०] सतिवन । सप्तपर्ण । छातिम ।
कडु ससिवा-[ ] जंगली हुरहुर ।
कडु सिरोल-[म०]
कडुसिरोली-[बम्ब०] } कड़वी-तुरई । घोषालता ।
कडु हुड्डी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटा करेला । क्षुद्रकारवेल्ल । करेली । रा० नि० व० ७ । (२) कड़वंची । दे० "कडवंची" ।
कडू-वि० [सं० कटु] दे० "कडुआ" ।

कड़ूतेल–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ू+तेल] कड़ुआ तेल।
कड़ूपर–[लंका] हिरनखुरी। शुक्रिमुदि (बं०)।
(Emilia sonchifolia ,*D. C.*)
कड़ूपरवल–[म०] दे० "कड़ू परवल"।
कड़ू बादाम–[म०] कड़ुआ बादाम। कटुवातादं।
कड़ू भोपला–[म० दे० "कड़ुभोपला"।
कड़ैल–संज्ञा पुं० [सं० करवार] दे० "कनेर"।
कडेंरु–[पं०] थुनेर।
कडो–[बर०] कस्तूरी। मृगनाभि। मिश्क।
कडो-किरयात–[गु०] नै। नाई।
कड़ौंची–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल जो वर्षा के आरम्भ में जमती है। इसकी पत्तियाँ छोटी और कंगूरेदार होती हैं, फूल छोटा पीले रंग का होता है और फल आध गिरह लंबा, बारीक, चुन्नटदार होता है। इसके ऊपर का छिलका पतला होता है। फल में दो खाने होते हैं, जिनमें से हर एक में एक-एक बीज होता है। जड़ शलगम के आकार की गोल और कड़ी होती है। कासिरकाइ कड़वंची। मु० आ०।
कडौल–[सिं०] पौरुष (बं०, सं०)।
कड्डल शिंगी–[ता०] चिल्ल। चिलार। बैरी।
(Casearia esculenta, *Roxb.*)
कढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कढ़ना=गाढ़ा होना, वा सं० कथिका] एक प्रकार का सालन। इसके बनाने की विधि यह है—आग पर चढ़ी हुई कढ़ाई में घी वा तेल, हींग और हल्दी की बुकनी डालदे। जब सुगंध उठने लगे तब उसमें नमक, मिर्च समेत मठे से घोला हुआ बेसन छोड़ दे और मंदी आँच से पकावे। जब यह सिद्ध हो जाय, तब उतार लेवे। देश में इसे कढ़ी कहते हैं। वैद्यक निघण्टु और भावप्रकाश में क्रमशः 'कथिका" तथा कथिता नाम से इसका उल्लेख हुआ है। उक्त ग्रंथों में इसके गुण इस प्रकार लिखे हैं।

कथिका पाचनी रुच्या लघ्वी च वह्निदीपनी।
कफानिलविबन्धघ्नी किञ्चित् पित्तप्रकोपिनी॥
(वै० निघ०)

कढ़ी—पाचक, रुचिकारी, हलकी, अग्नि को दीपन करनेवाली, कफ, वात एवं विबन्ध-बद्धकोष्ठ का निवारण करनेवाली और किंचित् पित्त को प्रकुपित करनेवाली है।

नोट—उपर्युक्त श्लोक में भावप्रकाश में कथिका की जगह 'कथिता' और प्रकोपिनी के स्थान में 'प्रकोपणी' ऐसा पाठ भेद आया है।

(२) कोई-कोई उक्त कढ़ी में बेसन की पकौड़ी छोड़ देते हैं और हींग प्रभृति के साथ राई भी मिलाते हैं। कढ़ी में पड़नेवाली पकौड़ी फुलौड़ी कहाती है। बेसन की जगह कभी मूँगकी धोई हुई दाल का आटा डालते हैं। छः कच्चे अनारों को पानी में घोटकर भुनी हुई मूँग की दाल का आटा मिला कढ़ी प्रस्तुत करें। दस्त बन्द करने में यह गुणकारी है। इसी प्रकार यह कभी आम की केरी से भी बनाई जाती है।

(३) इस शब्द को मुहीत आज़म में नुसख़ा सईदी से उसी की इबारत के साथ उद्धृत किया है।

कढ़ी निंब, कढ़ी नीम–संज्ञा पुं० [हिं० कढ़ी+नीम] सुरभी निम्ब। मीठा नीम।
कढुवा–संज्ञा पुं० पात्र विशेष। पुरवा। बोरका।
कढुई–[पं०] तिलपत्र।
कण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पीपल। पिप्पली। "कणलवणवचैला" वा० सू० १५ अ० शोधन व०। (२) धान्य आदि का अत्यन्त छोटा टुकड़ा। किनका। रवा। ज़र्रा। मे० णद्विक। (३) चावल का बारीक टुकड़ा। कना। (४) लेश। बहुत थोड़ा। हे० च०। (५) वनजीरक, जंगली जीरा। रा० नि० व० ६। (६) अनाज की बाल।
कणकच–संज्ञा पुं० [देश०] (१) केवाँच। कौंछ। कपिकच्छु। (२) करंज। कंजा।
कणकक्षार–सं० पु० [सं० क्ली०] सोहागा। टंकण। रा० नि०। नि० श०।
कणगच, कणगज–संज्ञा पुं०, दे० "कणकच"।
कणगज, कणगजा–[राजपु०] कंजा। करंज।
कणगन–[राजपु०] कंजा।
कणगुग्गुल–संज्ञा पुं०, दे० कणगुग्गुलु"।
कणगुग्गुलु–संज्ञा पु० [सं० पु०] (१) सफ़ेद

जीरा। श्वेतजीरक। (२) एक प्रकार का गुग्गुल।

संस्कृत पर्य्याय—गन्धराज, स्वर्णवर्ण, सुवर्ण कनक, वंशपीत, सुरभि, पलङ्कष।

गुण—कटु, उष्ण, सुगंधित, वातनाशक और रसायन है तथा शूल, गुल्म, उदराध्मान एवं कफ नाशक है। रा० नि० व० १२।

कणगूगल, कणगूगुल—संज्ञा पु०,दे० "कणगुग्गुल"।

कणङ्गल—[कना०] कनेर। करवीर।

कणजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कंघी। ककही। मङ्गलमंगा। (२) सारिवा। अनंतमूल। (३) बहुपुत्रिका। सतावर वा भुइँ आमला। रा० नि० व० २।

कणजीर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफेद जीरा। श्वेत जीरक। मद० व० २। (२) कृष्ण जीरा। रा० नि०। नि० शि०।

कणजीरक—संज्ञा पुं० (सं० क्ली०] (१) छोटा जीरा। क्षुद्र जीरक। श० च०। रा० नि० व० ६।

संस्कृत पर्य्या०—हृद्यगन्धि और सुगंधि। भावप्रकाश के मत से कणजीरक रूक्ष, कटु, उष्ण वीर्य, अग्निदीपक, लघु, धारक, पित्तवर्द्धक,मेधाजनक गर्भाशय शोधक, पाचक, बलकारक, शुक्रवर्द्धक, रुचिकारक, कफनाशक, चक्षु के लिये हितकर और वायु ज्वर, उदराध्मान, गुल्म, वमन तथा अतिसार रोग नाशक है। वि० दे० "जीरा"। (२) श्वेत जीरा। सफेद जीरा। रा० नि०। नि० शि०।

कणजीरा—सं० पुं० [सं० कणजीरः] सफेद जीरा। कणजीरक।

कणजीर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद जीरा। शुक्ल जीरक। रा० नि० व० ६।

कणनिर्यास—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गुग्गुल। गूगुल। रत्ना०।

कणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गौरैया चिड़िया। बाम्हन चिरैया। सूक्ष्म चटक। वै० निघ०।

कणभ—संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१) एक प्रकार का पुष्प-वृक्ष। रत्ना०। (२) सुश्रुत के अनुसार चौबीस प्रकार के अग्नि-प्रकृति-कीटों में से एक, जिसके डँसने से पित्त के रोग होते हैं। यह चार प्रकार का होता है। जैसे—त्रिकटक, कुणी, हस्तिकक्ष, और अपराजिता। ये तीक्ष्ण वेदना करनेवाले हैं। इनके काटने से सूजन, अंगों का टूटना, शरीर का भारी होना और दंश की जगह काला पड़ना ये लक्षण होते हैं। सु० कल्प० ८ अ०। (३) इस नाम का एक कीड़ा। इसके काटने से विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर और वमन ये होते हैं। तथा दंश-स्थल अवसन्न हो जाता है। भा०। मा० नि०।

कणभक्ष, कणभक्षक—संज्ञा पुं० [सं० पु०] भरत पक्षी। भरुई। श्याम चटक। भारिट पक्षी। बबुई। रा० नि० व० १९।

कणमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] कणगुग्गुल। (?) पीत गूगुल।

कणमूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (?) पिप्पलीमूल। पिपरामूल। (२) पञ्चतिक्तघृत। पांच कड़ुई चीजों से सिद्ध किया हुआ घी।

कणवीरका—संज्ञा पु० [सं० स्त्री०] मैनशिल। मनःशिला।

कणही—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लताशिरीष। प० मु०। वल्लिशिरीष।

कणा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीपल। पिप्पली। प० मु०। रा० नि० व० ६। (२) जीरक। जीरा। (३) सफेद जीरा। शुक्ल जीरक। (४) काला जीरा। कृष्ण जीरक। भा० पू० १ भ०। (५) कुम्भीर मक्षिका। यथा—कणा जीरक कुम्भीर मक्षिका पिप्पलीषु च। हारा०। मे०णद्विक। (६) वनपिप्पली। जंगली पीपल। (७) वनजीरक। वन जीरा। कड़ुजीरा। वनजीर। धन्व० नि०। नि० शि०। (८) अल्प। थोड़ा। नि० शि०।

कणाग्रन्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपलामूल।

कणाच—संज्ञा पुं० [देश०] केवाँच। करेंच। कौंछ।

कणाजटा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिपरामूल। पिप्पलीमूल। वै० निघ० २ भ० अजीर्ण बड़वानल चूर्ण।

कणाटीन, कणाटीर, कणाटीक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

खंजन। खंडिरिच। ममोला। त्रिका०। श० र०। खड़रैचा।

कणाटीरक–संज्ञा पु० [सं० पु०] दे० "कणाटीर"।

कणादि, कषाय–संज्ञा पु० [सं० पु०] उक्त नाम का एक योग—पीपर, शतावर, दोनों करंज, देवदारु, भारंगी, कुलथी और काला तिल इनका क्वाथ लहसुन और हींग युक्त पीने से रक्तगुल्म का नाश होता है। व० श०।

कणादिगण–संज्ञा पु० [सं० पु०] चक्रदत्त में पीपल आदि ओषधियों का एक वर्ग। जैसे—पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मरिच, इलायची, अजमोदा, इन्द्रजौ, पाठा, रेणुका, जीरा, भारंगी, महानीम, मैनफल, हींग, रोहिणी, सरसों, वायविडंग, अतीस और मूर्व्वा। च० द० कफज्व० चि०।

कणाद तैल–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] पीपल, मुलहठी कूट, इन्द्रजौ, रेणुका, दारुहल्दी, सजीठ, शारिवा, लोध और धाय के फूल। इनके कल्क तथा चार गुने पानी से सिद्ध तैल फोड़े फुन्सियों को शुद्ध करता और घाव को भरता है।

कणाद नस्य–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] पीपल, आमला, हींग, दारुहल्दी, बच, सफेद सरसों और लहसुन को बकरी के मूत्र में पीसकर नस्य लेने से दैनकादि ज्वर नष्ट होते हैं। वृ० नि० र० ज्वर० चि०।

कणाद वटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की वटी जिसका उल्लेख श्लीपदाधिकार में हुआ है। योग इस प्रकार है—पीपल, वच, देवदारु, पुनर्नवा, बेलछाल और विधारा के बीज–इनका बराबर-बराबर चूर्ण लेकर घोटकर ३–३ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा—३ रत्ती।

अनुपान—काँजी।

गुण—इससे घोर श्लीपद रोग का नाश होता है। र० सा० सं०।

कणाद्वीप्य–संज्ञा पु० [सं० पु०] सफेद जीरा। श्वेत जीरक। रा० नि० व० ६।

कणाद्यञ्जन–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] पीपल, मिर्च, बच, सेंधा नमक, करंज की मींगी, हल्दी, आमला, हड़, बहेड़ा, सरसों, हींग, और सोंठ को बकरे के मूत्र में पीस गोलियाँ बनालें।

गुण—इन्हें घिसकर आँखों में अंजन करने से बेहोशी, चित्त विभ्रम, अपस्मार, भूत दोष, शिर और आँखों के रोग तथा भ्रम का नाश होता है। वृ० नि० र० सन्निपात चि०।

(२) पीपल को बकरी के मेंगनियों के बीच रखकर पकाएँ और फिर उन्हें बकरी की मेंगनियों के निचोड़े हुये रस में ही खरल करें। पुनः इसका अंजन करने से शीघ्र ही रतौंधी का नाश होता है। इसी प्रकार काली मिर्च को शहद में मिला कर अंजन करसे रतौंधी का शीघ्र नाश होता है। वृ० नि० र० नेत्र राग चि०।

कणाद्यवलेह–पीपल, सोंठ, पाठा, हड़, बहेड़ा, आमला, मोथा, चीता, बायविडंग, बेल, चन्दन, और सुगंधवाला। इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण बनाय शहद में चाटने से हर प्रकार के अतिसार और उपद्रव युक्त प्रवाहिका का नाश होता है। इस अवलेह के समान संग्रहणी नाशक अन्य ओषधि नहीं है। रसें० चि० ६ अ०।

(२) पीपल, पीपलामूल, बहेड़ा और सोंठ का चूर्ण या अडूसे का रस शहद के साथ चाटने से खाँसी नष्ट होती है। वृ० नि० र० ज्वर चि०।

कणाद्यलौह–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] वैद्यकोक्त एक रसौषध जिसका प्रयोग अतिसार रोग में होता है। योग यह है—पीपल, सोंठ, पाठा, आमला, बहेड़ा, हड़, मोथा, चीता, बायबिडंग लालचंदन, बेल और सुगंधवाला—इनको बराबर लेकर सब के बराबर लौह-भस्म मिला जल के साथ घोंट कर रखें यह सब प्रकार का अतिसार और संग्रहणी नाशक है। रस० र०। र० चि० ६ अ०।

कणाप्रयोग–बकरी के यकृत के मध्य भाग में पिप्पलीको रखकर पानीके साथ यथाविधि पाक करें। पक जाने पर पिप्पली को अवशिष्ट पानी के साथ पीसकर वर्तिका बनाऐं।

गुण—इसे पानी के साथ घिसकर आँखों में अञ्जन करने से रतौंधी नष्ट हो जाती है। इसी प्रणाली से मिर्च का प्रयोग होता है और पूर्ववत गुण होता है। चक्रद० नेत्र रो० चि०।

कणामूल–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] पिपरामूल। पिप्पली मूल। के० दे० नि०। रा० नि०। नि० शि०।

कणासुफल–संज्ञा पुं० [सं०] अङ्कोल । ढेरा

कणाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफ़ेद जीरा । श्वेत जीरक । रा० नि० व० ६ ।

कणिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पीपल । पिप्पली (२) शुष्क गोधूम-चूर्ण । सूजी । गेहूँ का आटा । रा० नि व० १६ । (३) अन्न का कण । चावल का दाना ।

कणिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अरणी । अग्नि-मंथ वृक्ष (२) अत्यंत छोटा टुकड़ा । कण । किनका । टुकड़ा । ज़र्रा । । मे० कत्रिक । (३) शुष्क गोधूम चूर्ण । गेहूँ का आटा । यथा—"शुष्क गोधूम चूर्णन्तु कणिका समुदाहृता ।" रा० नि० व० १६ कण । (४) एक प्रकार का चावल । अ० टी० रा० ।

कणित—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आर्त्तनाद । हे० च० ।

कणिश–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शस्यमञ्जरी । अनाज की बाल । जौ, गेहूँ आदि की बाल । अम० । हे० च० ।

कणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हय-कण्ठ-लता । एक बेल । श० र० । (२) कणिका । कनी । टुकड़ा । अ० टी० भ० । (३) एक प्रकार का चावल ।

कणीक–वि० [सं० त्रि०] अत्यल्प । सूक्ष्म । छोटा । बारीक । उ० ।

कणीच–वि [सं० त्रि०] अत्यल्प । उ० ।

कणीचि–संज्ञा पुं० [स० पुं] (१) छोटी डाली । पल्लवी । (२) निनाद । आवाज ।

संज्ञा [सं० स्त्री०] (१) फूलदार बेल । पुष्पिता लता । (२) गुंजा घुंघची । (३) शकट । गाड़ी ।

कणीची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुंजा । घुंघची (२) किरांची नाम की प्रसिद्ध पुष्पलता । (३) शाटक । मे० चत्रिक ।

कणीनिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नेत्रतारक । दे० "कनीनिका" ।

कणीसक–संज्ञा स्त्री० [सं० कणिश] अनाज की बाल । जौ, गेहूँ इत्यादि की बाल । डि० ।

कणेर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णिकार वृक्ष । उणा० । अमलतास का पेड़ ।

कणेरा–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] हथिनी । श० च० । हस्तिनी ।

कणेरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णिकार वृक्ष । मे० ।

कण्ट–संज्ञा पुं० [स० पुं०] (१) मौलसिरी का पेड़ । बकुल वृक्ष । (२) काँटा । कण्टक ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लोह । लोहा ।

कण्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] [वि० कंटकित] (१) गोखरू । गोक्षुर क्षुप । रा० नि० व० ४ (२) मैनफल । मदनवृक्ष । रत्ना० । (३) मछली आदि की नोकदार हड्डी । मत्स्यादि कीकस । (४) काँटा । द्रुमाङ्ग । मे० कत्रिक । (५) बेल का पेड़ । विल्व वृक्ष । (६) हिंगोट । इंगुदी वृक्ष । (७) सुगवन । बनसूँग । बनसुदरा (८) बबूल । कीकर का पेड़ । (९) रोमाञ्च । रोंगटे खड़ा होना । त्रिका० । (१०) कमल-गट्टा । पद्मबीज । (११) बाँस । वेणु । हे० च० (१२) सुई की नोक । (१३) तीव्र वेदना । तेज़ दर्द । (१४) मकर । मगर यह कामदेव का चिन्ह है । (१५) शारीर शास्त्र की परिभाषा में हड्डी का नोकीला प्रवर्द्धन । (spinous process)

कण्टक करञ्ज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कंजा । काँटा करंज । अ० टी० भ० ।

कण्टक किंशुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] फरहद । पालिता मंदार । कण्टकी पारिजात । वै निघ० ।

कण्टक कीट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का काँटेदार कीड़ा ।

कण्टकच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केवड़ा । सफेद केतकी का पौधा । श्वेत केतक वृक्ष । वै० निघ० ।

कण्टकटेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ट+हिं० कटेरी] दारुहल्दी । किनगोड़ा ।

कण्टकण्ट–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] कसौंदी । अजन । द्रव्य र० ।

कण्ट-कमल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मखाना । मखान्न ।

कण्टकत्रय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तीनों कटैया । कण्टकारीत्रय । रा० नि० व० २२ । बन भंटा (वृहती); भटकटैया और गोखरू इन तीन औषधियों का समूह ।

गुण—त्रिदोष नाशक, भ्रमनाशक, ज्वर, पित्त, हिचकी, तंद्रा और आलापनाशक है। वै० निघ० दे० "कण्टकारीत्रय"।

कण्टकत्रिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गोखरू। गोक्षुर।

कण्टकदला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केतकी का पेड़। वै० निघ०।

कण्टक देही–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शल्यक। खारपुश्त। साही। (२) एक प्रकार की मछली। कँटवा।

कण्टकद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सेमल। शाल्मली वृक्ष। रा० नि० व० ८। (२) खैर। का पेड़। खदिर वृक्ष। र० मा०। (३) कण्टकयुक्त वृक्ष। काँटेदार पेड़। बबूल आदि कँटीले पेड़ों को कण्टकद्रुम कहते हैं।

कण्टक पञ्चमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पांच कटीले क्षुप समूह की जड़। कण्टकपञ्चमूल की पाँचों ओषधियाँ ये हैं। करौंदा, गोखरू, हैंस, (हिंसा), कटसरैया और शतावरी। ये पक्वाशय शोधक और वात कफनाशक हैं। (प०प्र० ३ ख०) सुश्रुत में इनको रक्तपित्त नाशक, तीनों प्रकार की सूजन दूर करनेवाला, समस्त प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करनेवाला और शुक्रदोषनाशक लिखा है। (सु० सू० ३८ अ०)। स्वल्प, महत्, तृण, वल्ली और कंटक संज्ञक पाँच प्रकार के पंचमूल। सु० सू० ३८ अ०, चि० १७ अ० विसर्प रोग। सि० यो० तृष्णा-चि० श्रीकण्ठः।

कण्टक पत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घीकुआर। घृतकुमारी।

कण्टक पत्रफला–संज्ञा स्त्री० दे० "कण्टपत्रफला"।

कण्टकपाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रसिद्ध कटीला लता वृक्ष हींस। अहिंसा। प० मु०। Capparis sepiaria, *Linn.* कालिया कड़ा–बं०।

कण्टकप्रावृता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) घीकुआर। घृतकुमारी। रा० नि० व०२। (२) कण्टसेवती। वै० निघ०।

कण्टकफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
कण्टकफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) कटहल का पेड़। पनस वृक्ष। अ० टी० भ०। (२) गोखरू। गोक्षुर। र० मा०। (३) भटकटैया। (४) रेंड। एरण्ड वृक्ष। (५) धतूर का पौधा धुस्तुर वृक्ष। (६) बंदाल। देवदाली। मोखल (७) कुसुम का पौधा। बर्रे। (८) ब्रह्मदंडी का क्षुप। (९) करञ्ज। करञ्जवृक्ष। जिस वृक्ष का फल काँटेदार होता है उसे संस्कृतज्ञ "कंटकफल" कहते हैं।

कण्टकमुक्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट। उष्ट्र।

कण्टकरञ्ज–संज्ञा पुं० [सं०] लता करञ्ज। सागरगोटा।

कण्टकलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खीरा। त्रपुषा। (२) ककड़ी। कर्कटिका।

कण्टक वृन्ताकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भंटा। बैंगन। वार्त्ताकी वृक्ष। रा० नि० व० ७ (२) कटाई।

कण्टकशिरीष–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] एक प्रकार का कँटीला सिरस का पेड़।

कण्टक श्रेणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कटेरी। कंटकारी। भटकटैया। श० च०। (२) शल्लकी मृग। साही। खारपुश्त।

कण्टका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भटकटैया। कंटकारी। (२) दुरालभा। जवासा। (३) बन मूँग। मुद्गपर्णी। मोठ। (४) ककड़ी। वै० निघ०।

कण्टकाख्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शृङ्गाटक। सिंघाड़ा।

कण्टकागार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गिरगिट। शरट। रा० नि० व० १६। (२) साही नामक जंतु। शल्लकी। सजारु। खारपुश्त।

कण्टकाढ्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का पुष्प वृक्ष जो कोकण में प्रसिद्ध है। कूजा। कुब्जक वृक्ष। वेला। रा० नि० व० १०। (२) बेल का पेड़। विल्ववृक्ष। (३) शाल्मली वृक्ष। सेमर का पेड़।

कण्टकाढ्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सेमल। शाल्मलि वृक्ष। वै० निघ०। (२) कुब्जक। कूजा।

कण्टकार–संज्ञा पुं० [सं] [स्त्री० कण्टकारी]

(१) भटकटैया। कटेरी। (२) सेमल। (३) एक प्रकार का बबूल। विकंकत वृक्ष। बैंची।

कण्टकारि, कण्टकारिका–सं० स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भटकटैया। कण्टकारी।

"विश्वौषधि कण्टकारिका काथः"। च० द० विषमज्व० चि०। दे० "कटेरी" (२) सफ़ेद भटकटैया। श्वेत कण्टकारी।

कण्टकारित्रय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कण्टकारी त्रय। कटेरी, बन भंटा और सफेद कटेरी इन तीनों प्रकार की कटेरियों का समाहार। (२) दे० "कण्टकारीत्रय"।

कण्टकारी–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) भटकटैया कटेरी। भा० पू० १ भ०। दे "भटकटाई"। (२) सेमल। जटा०। (३) एक प्रकार का बबूल। विकंकत वृक्ष। बैंची। श० र०। (४) कारी। (५) लक्ष्मणा।

कण्टकारी घृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) स्वरभेद रोग में गुणकारी एक घृतौषधि।

(२) कास रोग में प्रयुक्त एक योग—गव्यघृत–४ सेर। कथनीय द्रव्य—कण्टकारी ३० पल तथा गिलोय ३० पल। पाकार्थ–जल ६४ सेर, अवशिष्ट क्वाथ–१६ सेर। इस क्वाथ के साथ यथा विधि घृत पाक करें।

गुण—यह जठराग्नि दीपक तथा वातप्रधान कास–नाशक है।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक।

(३) पाकार्थ—गव्य घृत ४ सेर कण्टकारी का स्वरस १६ सेर। कल्क-द्रव्य—रास्ना, बला-मूल, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, गोखरू ये ओषधियाँ मिलित १ सेर। इन ओषधियों के साथ यथा विधि घृत पाक करें।

गुण—इसके उपयोग से पाँचों कास दूर हो जाते हैं।

मात्रा—२ माशे से आधा तोला तक। यदि कण्टकारी स्वरस न प्राप्त हो तो कण्टकारी ८ सेर, पाकार्थ जल ६४ सेर, अवशिष्ट क्वाथ १६ सेर लें। चक्रदत्त कास चि०।

(४) दोनों कटेरी, भारंगी, अडूसा, इनका स्वरस, बकरी का दूध और गज पीपल, मिर्च, मुलहठी, बच, पीपलामूल, चन्दन, जटामांसी, चित्रक, लालचन्दन, चव्य, नागरमोथा, गुरुच, अजवाइन, जीरा, खरेटी, सोंठ, मुनक्का, अनार और देवदारु इनके कल्क से घृत सिद्ध करें।

गुण—इसके उपयोग से बालकों की श्वास, खाँसी, ज्वर, अरुचि, शूल, कफ का नाश और बल की वृद्धि होती है। भैष० बालरोग चि०।

कण्टकारीत्रय–संज्ञा पु० [सं०क्ली०] बृहती, गणिकारी और दुरालभा इन तीन ओषधियों का समाहार। राजनिघण्टु के अनुसार बृहती, अग्नि दमनी और दुःस्पर्शा–दुरालभा इन तीन औषधियों का समूह जिसे त्रिकण्ट और कण्टकत्रय भी कहते हैं। यथा–"बृहती चाग्नि दमनी दुःस्पर्शाचेति तु त्रयम्। कण्टकारी त्रयं प्रोक्तं त्रिकण्टं कण्टकत्रयम्॥" रा० नि० व० २२। सिद्ध योग में गणिकारी के स्थान में गोक्षुर—गोखरू लिखा है।

गुण—कण्टकारीत्रय तन्द्रा, प्रलाप और भ्रम नाशक तथा पित्त, ज्वर और त्रिदोष को नष्ट करने वाला है। वै० निघ०।

कण्टकारीद्रु कण्टकारीद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकंकत वृक्ष। कंटाई। बैंची। वै० निघ०।

कण्टकारीद्वय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वैद्यक में भटकाई और बनभंटा (बृहती) इन दो औषधियों का वर्ग। उपर्युक्त छोटी और बड़ी दोनों प्रकार की कटाई। भा० म० सन्निपात ज्व०।

कण्टकारीफल–सं० पुं० [सं० क्ली०] कटाई का फल। भटकटाई। गुण—तिक्त, चरपरा, दीपन, हलका, रूखा, गरम, श्वास तथा कास (खाँसी) नाशक है। भा० पू० १ भ० शाकव०। दे० "भट-कटाई"।

कण्टकार्य्य–संज्ञा पु० [सं० पुं०] कुरैया। कुटज वृक्ष।

कण्टकार्य्या–दे० "कण्टकारी"।

कण्टकार्य्यावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक आयुर्वेदीय लेह्यौषधि। योग यह है—

१ तुला कटेरी को १ द्रोण पानी में पकाकर चौथा भाग शेष रहने पर छान लेवें। और फिर उसमें धमासा, गिलोय, भारंगी, काकड़ासिंगी,

रास्ना, नागरमोथा, कपूर कचरी, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च और पीपर प्रत्येक का १-१ पल कल्क तथा २० पल खांड और ८-८ पल घी तथा तेल डालकर पकाएँ एवं पाक के अंत में उसमें पीपल और वंशलोचन का ४-४ पल चूर्ण और ठंढा होने पर ८ पल शहद मिलाएँ। यह अवलेह पाँचों प्रकार की खाँसी को नष्ट करता है। वं० से० का० चि०।

कण्टकार्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भटकटैया। कण्टकारी वृक्ष। यथा—

कुलुमैः कण्टकार्य्यायाः.....।" रस० र० बाल—चि०।

कण्टकार्य्यादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कफपित्त-ज्वर में प्रयुक्त एक कषायौषध जिसमें कण्टकारी इत्यादि औषधियाँ पड़ती हैं। वे इस प्रकार हैं—

कटेरी, गुरुच, वभनेटी, (ब्राह्मणयष्टि) सोंठ, इन्द्रजव, दुरालभा, चिरायता, लालचन्दन, मोथा, परवल, और कुटकी प्रत्येक १४ रत्ती, (सब २ तोला) इन्हें ३२ तोला, (ऽ॥ सेर) पानी में पकायें, जब ८ तोला (ऽ= पाव) पानी शेष रह जाय, उतारकर छानलें, और प्रयोग में लावें, (भैष०) चक्रदत्त के अनुसार कण्टकार्यादि की औषधियाँ ये हैं—सोंठ, इन्द्रजव, और दुरालभा। इन्हें बराबर बराबर लेकर उसमें से २ तोला द्रव्य लेकर यथाविधि क्वाथ प्रस्तुत करें। च० द० ज्व० चि०।

कण्टकार्य्यादि लेप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ी कटेली के स्वरस में शहद मिलाकर लेप करने से इन्द्रलुप्त का नाश होता है। इसी प्रकार गुञ्जा की जड़ वा फल का अथवा भिलावे के रस का लेप करने से गंज का नाश होता है। वृ० नि० र० क्षुद्र रो० चि०।

कण्टकाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कटहल। पनस वृक्ष। श० च०। (२) मदार। मंदार।

कण्टकालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भटकटैया। छोटी कटाई। कण्टकारी। भा० पू० १ भ०।

[बं०] तालमखाना।

कण्टकालुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जवासा। यास क्षुप। दुरालभा। रा० नि० व० ४। (२) लाल जवासे का पौधा। यास क्षुप।

कण्टकाशन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ऊँट। हे० च०।

कण्टकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सेमल। शाल्मली-वृक्ष।

कण्टकाष्ठील–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली। कुड़ची। बाटा। कुलिश। कुड़िश। (Cyprinus curchius) त्रिका०।

कण्टकित–वि० [सं० त्रि०] (१) जिसके रोम खड़े हुए हैं। रोमांचित। पुलकित। जातपुलक। (२) काँटेदार। कँटीला। दे० "कण्टकी"।

कण्टकित्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छोटी मछली।

कण्टकिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भंटा। बैंगन का पौधा। वार्त्ताकी क्षुप। (२) भटकटैया। कण्टकारिका। कटेरी। रा० नि० व० ४। (३) लाल कटसरैया का पौधा। रक्तझिण्टी। रा० नि० व० १०। (४) मीठाखजूर का पेड़। मधु खर्जूरी वृक्ष। रा० नि० व० ११। (५) पीले फूल की कटसरैया। शोणझिण्टी। कुरण्टक। (६) भट-कटैया। छोटी कटेरी। नि० शि०। (७) दीप्या।

कण्टकिफल, कण्टकीफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कोकुआ। समष्ठीलक्षुप। रा० नि० व० ४। (२) कटहल का पेड़। पनसवृक्ष। अ० टी० भ० संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खीरा। त्रपुष फल। भा०।

कण्टकिफला, कण्टकीफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ककड़ी। कर्कटी। वै० नि०। (२) समष्ठीला। काकुम्बा। नद्यास्र। कोशास्र। कोशफला नि० शि०।

कण्टकिल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बाँस। श० च०। कँटीला बाँस।

कण्टकिलता, कण्टकीलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्कटी। ककड़ी की बेल। (२) खीरा। त्रपुषीलता। रा० नि० व० ७।

कण्टकिला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का बाँस। दे० "कण्टकिल"

कण्टकी–वि० [सं० त्रि० कण्टकिन्] काँटेदार। कँटीला।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शमी का पेड़ । छिकुर । प० मु० । (२) बनभंटा ।बृहती । मद० व० । (३) कण्टक वार्त्ताकी । काँटा बैंगन ।

गुण—चरपरा, तिक्त, गरम, दोषजनक, रक्त पित्त प्रकोपक तथा खुजली (कण्डू तथा कच्छ) को नष्ट करनेवाला है । राज० । (४) भटकटैया । (५) बदरी । बेर । (६) खदिर ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं० कण्टकिन्] (१) छोटी मछली । कँटवा । श० र० । (२) मैनफल का पेड़ । मदन वृक्ष । प० मु० । (३) खैर का पेड़ । खदिर वृक्ष । श० मा० । (४) गोखरू । गोक्षुर क्षुप । रा० नि० व० ४ । सु० सू० ३८ अ० । (५) बेर का पेड़ । बदर वृक्ष । बैर ।रा० नि० व० ११ । (६) एक प्रकार का बाँस । एक कँटीला बाँस । रा० नि० व० ७ । (७) विकंकत वृक्ष । बँची । सु० चि० ८ अ० ७० । (८) गूहकीकर । विट् खदिर । प० मु० । (९) बेल का पेड़ । विल्व वृक्ष । (१०) फरहद । पारिभद्र वृक्ष । वै० निघ० । (११) खजूर का पेड़ । (१२) काँटेदार पेड़ । (१३) बड़ा गोखुरू । व्याल दंष्ट्रा । क्रमश । रा० नि० । नि० शि० (१४) वंश । बाँस । नि० शि० ।

कण्टकीद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खैर का पेड़ । खदिर वृक्ष । रत्ना० (२) मैनफल का पेड़ । मदनवृक्ष । र० । (३) बाँस । (४) बैर का पेड़ । (५) वार्त्ताकी वृक्ष । बैंगन का पौधा ।

कण्टकी पलाश–संज्ञा पु० [सं० पुं०] ढाक भेद । रस० यो० सा० ।

कण्टकी पारिजात–संज्ञा पुं० [सं० पुं० । फरहद । पालिता मंदार । पारिभद्रक । वै० निघ० । पांगरा । पालुतो–बं० ।

कण्टकीफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटहल । पनस वृक्ष । कण्टकि फल ।

कण्टकीफला–दे० कण्टकिफला ।

कण्टकीलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बालम खीरा । कण्टकिलता ।

कण्टकीशरपुङ्खा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का सरफोंका । यह चरपरा, गरम तथा कृमि और शूल नाशक है । वै० निघ० ।

कण्टकीशुक, कण्टकिशुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पालिता मंदार । पारिभद्र वृक्ष । वै० निघ० । पांगरा ।

कण्टकुरण्ट–संज्ञा पुं० [सं० पु० (१) पीले फूल वाली कटसरैया । पीतझिण्टी । पीली कटसरैया । वै० निघ० । (२) कटसरैये का पौधा । झिण्टी क्षुप । रा० नि० व० १० ।

कण्टगुरकामाई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कँटीली झाड़ी । Azima Tetracantha

कण्टतनु–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) बृहती । बड़ी कटाई । । रा० नि० व० ४ । (२) केतकी पुष्प । केवड़े का फूल ।

कण्टदला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केतकी वृक्ष । केवड़े का पौधा । रा० नि० व० १० ।(२) केवड़ा । सफेद केतकी । वै० निघ० ।

कण्टपत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विकंकत वृक्ष । कंटाई । बँची । श० मा० ।(२) शृङ्गाटक । सिंघाड़ा ।

कण्टपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०पुं०]शृङ्गाटक ।सिंघाड़ा ।

कण्टपत्रफला, कण्टपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्रह्मदंडी का पौधा । ब्रह्मदंडी वृक्ष । रा० नि० व० ५ ।

कण्टपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बैंगन का पौधा वार्त्ताकी वृक्ष । रा० नि० व० ७ ।

कण्टपाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विकंकत वृक्ष । कंटाई । बँची । रा० नि० व० ९ ।

कण्टपुङ्खा, कण्टपुङ्खिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का सरफोंका । कँटीला सरफोंका । कण्टक शरपुङ्खा । कण्टालुः ।

गुण—चरपरा, गरम और कृमि तथा शूल-नाशक है । रा० नि० व० ४ ।

कण्टपुङ्खिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सरफोंका । शरपुङ्खा ।

कण्टफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) देवताड़ का पौधा । सनैया । घघरबेल । देवदाली । रा० नि० व० ३ । २३ । (२) छोटा गोखरू । क्षुद्र गोक्षुर । रा० नि० व० ४ । (३) कटहल ।

पनस। रा० नि० व० ११। (४) धतूरा। धुस्तूरक। रा० नि० व० १०। (५) लताकरञ्ज। रा० नि० व० ६। (६) रेंड। एरण्ड। (७) कोकुआ का पौधा। नद्याम्र। रा० नि० व० ४। (८) कुसुम्भ। कुसुम का पौधा। बर्रे। (९) ब्रह्मदंडी। रा० नि० व० २३। (१०) तेजबल। (११) कारका। कारबल्ली।

बहुव्रीहि समास करने से उक्त फलों के पेड़ का भी बोध होता है।

कण्टफलस्तनु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा गोखरू (२) वनश्रृङ्गाटक।

कण्टफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) घघरबेल सोनैया। देवदाली लता। रा० नि० व० ३। (२) छोटा करेला। लघुकारवेल्ली। रा० नि० व० ७। (३) ब्रह्मदंडी का पौधा। रा० नि० व० ५। (४) खेखसी। ककोंटी। ककोड़ा। रा० नि० व० ७। (५) बृहती। बड़ी कटाई। रा० नि० व० ४।

कण्टफली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झिंझिरीटा। मुरहुरी। रा० नि०। नि० शि०।

कण्टमञ्जरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अपामार्ग। रा० नि०। नि० शि०।

कण्टमूल–संज्ञा पुं० [सं०] औंधाहुली।

कण्टल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बबूल का पेड़ जिसमें तीक्ष्ण काँटे होते हैं। श० च०। वै० निघ०।

संस्कृत पर्य्याय—बाबल, स्वर्णपुष्प और सूचमपुष्प।

कण्टवल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्रीवल्ली। सोकाकाई। शीतला। बाघेण्टी (कों०)। वै० निघ०।

कण्टवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्रीवल्ली वृक्ष। सोकाकाई। शिववल्ली। बाघेंटी। रा०नि०व० ८।

कण्टवार्त्ताकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कँटीला बैंगन। रा० नि० व० ७।

कण्टवृन्ताकी–संज्ञा स्त्री० [सं० सं०] वृन्ताकी छोटा बैंगन।

कण्टवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पु०] तेजफल का पेड़। तेजबल। रा० नि० व० ११।

कण्टसारका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सफेद फूलकी कटसरैया। सैरेयक। वै० निघ०। श्वेतझिण्टी वृक्ष।

कण्टाकरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कटहल। पनस वृक्ष। वै० निघ०।

संज्ञा स्त्री० [सं० पु०] विकंकत वृक्ष। बैंची का पौधा।

कण्टाकुम्भाडु—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की कँटीली लता। कण्टकलता विशेष। कुमिर के। च० द०।

कण्टाफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धतूर का पौधा। धुस्तूर वृक्ष। रा० नि० व० १०। (२) कटहल, पनस वृक्ष। रा० नि० व० ११। (३) पनसफल। कटहल।

कण्टारवी–संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] वासा।

कण्टारिका–संज्ञा० स्त्री [सं० स्त्री०] (१) अग्निदमनी वृक्ष। (२) कण्टकारी। भटकटैया। कटंग, रा० नि० व० ४।

कण्टार्गल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } नीले फूल
कण्टार्त्तगला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } वाली-कटसरैया। नीलझिण्टी। आर्त्तगल। रा० नि० व० १०।

कण्टार्हलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नीले फूल की कटसरैया। नीलझिण्टी।

कण्टाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मैनफल का पेड़। मदन वृक्ष। रा० नि० व० ८। (२) कटहल। पनस वृक्ष।

कण्टालिका, कण्टाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भटकटैया। कण्टकारी। वै० निघ०।

कण्टालु–संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] (१) बबूल। वर्बूरक वृक्ष। रा० नि० व० ८। (२) बाँस। वंश। रा० नि० व० ७। (३) बृहती। बनभंटा। (४) वार्त्ताकी वृक्ष। बैंगन का पौधा। रा० नि० व० ४। (५) एक प्रकार की ककड़ी। रा० नि० व० ७। (६) बेंगन। (७) जवासा। लाल धमासा। कुनाशक। कटुरा। कषाय। नि० शि०। (८) कण्ट पुल्ला।

कण्टाह्वय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल की जड़। पद्मकन्द। भसींड़। रा० नि०। व० १०।

कण्टिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंघी। अतिबला। वै० निघ०।

कण्टी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० कण्टिन्] (१) सफेद चिरचिटा। श्वेतापामार्ग। (२) अपामार्ग। चिचड़ी। रा० नि० व० ८। (३) गोखरू। गोक्षुर (४) छोटा गोखरू। क्षुद्र गोक्षुर। रा०नि० व० ४। (५) खैर। खदिर (६) मटर। कलाय। (७) गोक्षुर। गोखरू।

कण्टोलन–[मरा०] धार करेला। वाहस (सं०) इं० मे० मे०।

कण्ठ–संज्ञा पुं० [सं०पु० [वि० कण्ठ्य] (१) गला। टेंटुआ (Pharynk) (२) स्वर। आवाज़। शब्द। हारा०। (३) मैनफल का पेड़। मदन वृक्ष। मे० ठद्विक। (४) किनारा। तट। तीर। (५) फेन। (६) स्वरयंत्र। Organ of voice.

कण्ठक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंठ। टेंटुवा।

कण्ठकाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मत्स्य। मछली।

कण्ठकान्तरीया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] Interspisali पेशी विशेष। अ० शा०। (२) एक बंधनी विशेष।

कण्ठ-कर्णी-नाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक नाली जो कंठ और कान के मध्य में स्थित है। नुग्नुग (बहु० नग़ानिग़)–अ०। (Eusta Chiantube) अ० शा०।

कण्ठ-कर्णी-सुरङ्गा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कण्ठकर्णीनाली"।

कण्ठ-कुब्ज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का सन्निपात रोग। सन्निपात ज्वर का एक भेद।

लक्षण—सिर में दर्द, गले में दर्द, दाह, मोह, कम्प, वातरक्त की पीड़ा। ठोड़ी जकड़ जाना, संताप, प्रलाप (आन तान बकना), और मूर्च्छा ये लक्षण "कण्ठकुब्ज" सन्निपात ज्वर में होते हैं। यह कष्टसाध्य होता है। यथा—

शिरोर्तिकंठ ग्रह दाह मोह कंप ज्वरारक्त समीरणार्तिः। हनुग्रहस्ताप विलाप मूर्च्छा स्यात्कंठ कुब्जः खलु कष्टसाध्यः। भा० प्र० ज्वर चि०।

माधव निदान में इसके लक्षण इस प्रकार है—

कण्ठग्रह यः कुरुते हनुग्रहं मूर्च्छाप्रलाप ज्वर कंप वेदनाः। मोहं च दाहं हृदये शिरोरुजं तं कण्ठकुब्जं प्रवदन्ति सायवः॥

कण्ठ-कुब्जक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "कण्ठ-कुब्ज"।

कण्ठ-कूजन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गल कूजन। गले में शब्द होने की क्रिया वा भाव। "प्रतत-कण्ठकूजनम्"। भा० नि०।

कण्ठ-कूजिका–
कण्ठ-कूणिका– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वीणा-नामक वाद्य। बीन।

कण्ठ-कूप–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गले के सामने का गड्ढा। (Jugularnotch) Supra sternal noteh अ० शा०।

कण्ठ-कोत्तर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Supra-spinal ligament)

कण्ठगत–वि० [सं० त्रि०] गले में आया हुआ। कंठ में अटका हुआ। गलेमें प्राप्त। गले में स्थित। कंठस्थ।

कण्ठगलीया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंठ और स्वर-यंत्र संबंधिनी नाड़ी। (Laryngopharyngeal nerve) अ० शा०।

कण्ठ-ग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्ठ कुब्जक। यथा—"इह द्वौ कर्ण कण्ठग्रहौ"। भा० प्र० म० १ अ०।

कण्ठ-जिह्वक कास–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की खाँसी। वा० रा०।

लक्षण—कफ का विकार हो, जीभ काली पड़ जाय, मूर्च्छा, के करने से थकावट उत्पन्न हो, नींद न आवे और सुख न प्रतीत हो। यथा—

गरला जिह्विका श्लेष्मा वान्ति मूर्च्छापरिश्रमः। निद्राभंगो विदाहश्च कण्ठ जिह्वक लक्षणम्॥

वा० रा० ८ प्र० पृ० १४६

भांगरे के पत्तों के चूर्ण में शहद मिलाय गोली बनाकर मुख में धारण करने से लाभ होता है।

कण्ठ-तलासिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घोड़े को बाँधने की रस्सी। अश्व बंधन रज्जु। श० मा०।

कण्ठ-द्वार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंठ मुख। (Laryngeal-Orifice) अ० शा०।

कण्ठ-नाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गले की नली। कण्ठ नाली।

कण्ठ-नाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कण्ठ-नाड़ी"।

कण्ठ-नीड़क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चील नाम की चिड़िया। चील्ह। चिल्ल। त्रिका०।

कण्ठ-नीलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उलूक। लुक। श० मा०। (२) चील। चिल्ल पक्षी।

कण्ठ-पाशक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी के गले में बाँधने की रस्सी। करिगलवेष्टन रज्जु। श० मा०। (२) कंठ पाश।

कण्ठ-पुड्डा– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सरफोंके-
कण्ठ-पुड्डिका– } का एक भेद। कण्ठालु। यह चरपरी और गरम है। तथा कृमि और शूल को नष्ट करती है। बिशेष दे० "सरफोंका"।

कण्ठ-पूर्वांश-मुद्रणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की एक पेशी विशेष। (Cricoarytaenoideus-Lateralis) अ० श०।

कण्ठ-पृष्ठांश-मुद्रणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की पेशी बिशेष। (Arytaenoideus) अ० शा०।

कण्ठ-प्रदाह–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] कंठशोथ। कंठ की सोजिश।

कण्ठ-बन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१) हाथी के गले में बांधने की रस्सी। करिकण्ठ बंधन रज्जु (२) गलबंधन। गले की डोर।

कण्ठ-भूषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गले का हार। (neck-lace) अ० शा०।

कण्ठ-मणि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े की एक भँवरी, जो कंठ के पास होती है। ग्रैवेयमणि।

कण्ठ-मध्यांश-मुद्रणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की पेशी बिशेष। (thyreoarytaenoideus) अ० शा०।

कण्ठ-रोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गले का रोग। दे० "कण्ठमाला"।

कण्ठ-रोहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुश्रुत के अनुसार गले का एक रोग, जिसे गलरोहिणी भी कहते हैं। (Diphtheria) दे० "गल-रोहिणी"।

कण्ठ-लता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कण्ठ भूषण। गले में पहने जानेवाला आभूषण। कण्ठ भूषा।

कण्ठ-वात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वातजन्य कंठ का रोग। यथा—प्रलाप, शिरोभंग कंप, रक्त की वमन इसके प्रधान लक्षण हैं। इसमें सद्यः मृत्यु होती है।

लक्षण—

"सद्योमृत्युः कण्ठवातः शिरोभङ्गः पलापनम्। वान्ती रक्तस्य कम्पश्च कंठवातस्य लक्षणम्॥"

कण्ठ-शालुक– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंठगत
कण्ठ-शालूक– } मुखरोग विशेष। गले का एक रोग। सुश्रुत के अनुसार कफ के प्रकोप से उत्पन्न एक ग्रंथि जो गले में होती है। और काँटे के समान तथा धान की अनी के समान वेदना उत्पन्न करनेवाली एवं बड़े बेर की गुठली के बराबर होती है। यह खरदरी, कड़ी, स्थिर और शस्त्र साध्य होती है। यथा—

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रंथिर्गलेकंटक शूकभूतः। खरः स्थिरः शस्त्र निपात साध्य स्तं कंठशालूकमिति ब्रुवंति॥"

सु० नि० १६ अ०। मा० नि०।

कण्ठमाला–संज्ञा स्त्री० [सं० क्लीं०–गण्डमाला] एक प्रकार की बीमारी जो मेद और कफ से उत्पन्न होती है -इसमें काँख, कन्धे गरदन, कण्ठ, वंक्षण (जांघ) मेढ़ और संधि देश में छोटे बेर या बड़े बेर अथवा आमले के समान बहु काल में धीरे धीरे पकने वाली बहुत सी गाँठें उत्पन्न होती हैं, उन्हें कठमाला या गण्डमाला कहते हैं, यथा—

कर्कन्धु कोलामलक प्रमाणैःकक्षांसमन्या गल वंक्षणेषु। मेदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्चगण्डैः।

मा० नि०।

यह बातादि दोष भेद से तीन प्रकार की होती है (१) वात। (२) कफ और (३) मेद।

वातिक गलगण्ड के लक्षण—

इसमें सुई चुभने कीसी पीड़ा हो, काली नसों से व्याप्त हो, लाल अथवा धूसर रंग हो, रूखापन

लिये बहुत काल में बढ़ने वाला और पकने वाला होता है और कभी स्वयं भी पक जाता है। मुख में विरसता, तालु और गले में शोष होता है। यथा—

तादोन्वितः कृष्णसिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु। पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छयापाकमियात्कदाचित्। वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तो र्भवेत् तथा तालुगलप्रशोषः।

कफज गलगण्ड के लक्षण—

कफ का गलगण्ड निश्चल, गले की त्वचा की समान वर्ण वाला, अल्प पीड़ा युक्त अत्यन्त खुजली हो और अति शीतल हो, बहुत समय में बढ़ने वाला और पकने वाला तथा पाकावस्था में अल्प वेदना हो, मुख में मीठापन, वायु और कंठ में कफ लिपासा रहे। यथा—

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकन्डूः शीतोमहांश्चापि कफात्मकस्तु। चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित्। माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तो र्भवेत्तथा तालु गल प्रलेपः।

मेदज गलगण्ड के लक्षण—

मेद से उत्पन्न गलगण्ड-चिकना, भारी, पांडुवर्ण, दुर्गन्ध युक्त, अल्प पीड़ा युक्त, खुजली से व्याप्त पतली और तुम्बी सी लटकनेवाली शरीर के अनुरूप छोटा और बड़ा होता है। इसमें मुख स्निग्ध और गले में घुर-घुर शब्द होता है। यथा—

स्निग्धोगुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदो भवः कण्डुयुतोऽल्परुक्च। प्रलम्बतेऽलाबुवदल्प मूलो देहानुरूपक्षय वृद्धि युक्तः॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्चजन्तो र्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यं। मा० नि०।

असाध्य गलगण्ड के लक्षण—

जो कष्ट से श्वास लेता हो, जिसका सब देह शिथिल हो गया हो, और रोग के आक्रमण का काल एक वर्ष से अधिक होगया हो, रोगी अरुचि से पीड़ित हो, दुर्बलता हो और स्वर से क्षीण हो तो रोगी को असाध्य समझें, यथा—

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीत मरोचकातम्। क्षीणं च वैद्यो गलगण्ड युक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत्तु॥ मा० नि०।

अन्य चिकित्सा—

दशमूल, सहिजनमूल और निचुल जल में पीस गरम-गरम लेप करने से वातज कण्ठमाला दूर होती है।

देवदारु, बड़ा इन्द्रायण मूल दोनों को पीसकर लेप करने से कफज गण्डमाला दूर होती है।

श्वेत अपराजिता की जड़ लेकर जल से पीसकर प्रातःकाल सेवन करने से मेदज गलगण्ड का नाश होता है। सिरा वेधन द्वारा रक्त निकालने से भी मेदज गलगण्ड दूर होता है।

शुद्धताम्र चूर्ण ऽ।, शुद्ध मंडूर ऽ।, दोनों को महिषी के मूत्र में १ मास पर्यन्त भिगो रक्खें। पुनः अर्कक्षीर में सात दिवस खरल कर टिकिया बनालें। पुनः जंगली कंडे की आँच दें। इसी प्रकार ७ आँच दें तो उत्तम भस्म हो। प्रत्येक पुट में शुद्ध गंधक १-१ तोला मिलाकर शराव सम्पुट में बंदकर आँच दें

मात्रा—१ से ३ रत्ती शहद के साथ। इसके उपयोग से हर प्रकार के गंडमाला में अत्यन्त लाभ होता है।

सिरस की छाल ४ सेर लेकर १६ सेर जल में क्वाथ करें, जब अच्छी तरह गाढ़ा होकर हलुवा सा होजावे, तो वरुण वृक्ष की छालका चूर्ण कर १ सेर मिलाकर द्विगुण शहद मिलाकर किसी घृत के पात्र में रख १ मास पर्यन्त यव के ढेर में गाड़ दें, जब ४० दिन व्यतीत होजाय, तो निकाल कर कार्य में लावें।

मात्रा—३-६ मा० उक्त भस्म के साथ सेवन करने से अपूर्व लाभ होता है।

सोंठ, मिर्च, पीपल, प्रत्येक ६-६ भाग। नारियल की गिरी, पुराना गुड़ प्रत्येक ४-४ भाग। सिन्दूर १ भाग, भिलावा ४ अदद लेकर एरण्ड और तिल के तेल में पकाएँ। जब तेल का वर्ण काला होजाय, तो उक्त द्रव्यों के साथ पाचन करके अच्छी तरह मर्दन कर रखलें।

मात्रा—१-४ माशा।

इसके सेवन करने वाले प्राणी को लवण और अम्लरस न खाना चाहिये।

कृष्ण सर्प की हड्डी १ भाग, कुचिला जलाया हुआ १ भाग, संखिया १ भाग, भिलावा का तेल १ भाग, अर्कक्षीर में मर्दन कर रखलें। इसके प्रलेप से गण्डमाला, अपची, और अर्बुद रोग का नाश होता है। (लेखक)

कंठमाला की चिकित्सा—पथ्य-यव, मूंग, परवल, और रूक्ष भोजन का सेवन वमन और रक्त मोक्षण का यथोचित प्रयोग हितकारी होता है।

(१) हस्तिकर्ण पलाश की जड़ चावलों के धोवन के साथ पीसकर लेप करने से कंठमाला दूर होता है।

(२) सरसों, सहिजन की छाल, यव, सन के बीज, अलसी और मूली के बीज समान भाग लेकर खट्टे मठा में पीसकर लेप करने से कंठमाला, ग्रंथि और दारुण गलगण्ड का नाश होता है।

(३) पुरातन कर्कारु के रस में सेंधा और विड नमक मिलाकर नस्य लेने से तरुण गलगण्ड का नाश होता है।

(४) जल कुम्भी के भस्म में गोमूत्र मिलाकर गर्म करके पीने से और कोदो के भात का पथ्य लेने से गलगण्ड शांत होता है।

(५) सूर्यावर्त्त (हुलहुल) के रस से उपनाह नामक स्वेद देने से गलगण्ड शांत होता है।

(६) कड़ुवे तुम्बे के पात्र में सात दिन तक जल रखकर मदिरा के साथ सेवन करने और पथ्य पूर्वक रहने से गलगण्ड का नाश होता है।

(७) कायफल का चूर्ण घिसकर गलगण्ड पर लेप करने से गलगण्ड का नाश होता है।

(८) सफेद अपराजिता की जड़ पीसकर घृत मिला पान करने से उक्त रोग शमन होता है।

कण्ठमाला में प्रयुक्त अन्य योग—तुम्बीतैल, अमृताद्य तैल, कांचन गुटिका, सिन्दुरादि तैल, शाखोटक तैल, बिम्बादि तैल, निर्गुण्डी तैल, व्योषाद्य तैल, चन्दनाद्य तैल, गुञ्जाद्य तैल, गण्डमाला कण्डन रस।

कण्ठशुण्डी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गले का एक रोग जिसे गलशुण्डी वा तालुशुण्डी भी कहते हैं। सुश्रु०। दे० "गलशुण्डी"।

कण्ठशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कण्ठ का कफादि से रहित होने का भाव। गला साफ होना।

कण्ठशूक—संज्ञा पुं० दे० "कण्ठशालुक"।

कण्ठशूल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] घोड़े के गले की एक भौंरी जो दूषित मानी जाती है।

कण्ठशोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रोग जो पित्तजन्य होता है। गला सूखना। गले की खुश्की।

कण्ठा—संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] गलदेश।

कण्ठाग्नि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की चिड़िया जो अपने गले में ही भोजन पचाती है। त्रिका०। पक्षी। चिड़िया। गलाधः करण से ही पक्षी का आहार परिपाक हो जाता है।

कण्ठाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूरन। जमीकन्द। (२) ऊँट। मे०। (३) एकप्रकार की गोणी। मे०। (४) गाय या बैल के गलेकी लरी। (५) एक पेड़। वृक्ष विशेष।

कण्ठालङ्कार(क)—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] काँस। काश। रा० नि० व० ८।

कण्ठाला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जालगोधिका, फाँस की रस्सी। त्रिका०। (२) ब्राह्मणयष्टिका। (३) द्रोणिविशेष। मटकी।

कण्ठालु—संज्ञा पुं०[सं० स्त्री०] (१) कण्ठपुङ्खा। गलफोंका। (२) त्रिपर्णी नामक कंदशाक। (Dioscorea triphylla, *Linn.*) रा० नि० व० ७।

कण्ठिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गले की माला। कंठी।

कण्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गलदेश। गला। गुलू। अ० टी० भ०। (२) अश्व-कंठ-वेष्टन-रज्जु। अगाड़ी। घोड़े के गले की रस्सी।

कण्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं० कण्ठिन्] (१) मटर। कलाय। रा० नि० व० १६। (२) मत्स्य। मछली।

कण्ठीरव—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सिंह। शेर। हारा०। (२) कबूतर। पारावत। रा० नि० व० १७। (३) मतवाला हाथी। मत्तगज।

कण्ठीरवी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अडूसा । वासक वृक्ष । बाँसा । बसौंड़ (गढ़वाल) । रा० नि० व० ४ ।

कण्ठील–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊँट । क्रमेलक । मे० लत्रिक० । (२) सूरन । जमीकंद ।

कण्ठीला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की द्रोणी । मे० लत्रिक० । मटकी । मथने का बर्तन ।

कण्ठशोथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंठ की सूजन । गले की सूजन ।

कण्ठसूत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) माला । हार । (२) एक प्रकार का आलिंगन यथा—

य: कुर्वते वक्षसि वल्लभस्य, स्तनाभिघातं निविड़ोपघातात् । परिश्रमार्त्त: सनकैर्विदित्वा स्तत्कण्ठ सूत्रं प्रवदन्तिज्ञाः ॥ (रतिशास्त्र)

कण्ठागत–वि० [सं० त्रि०] बहिर्गमनोन्मुख । कंठ में उपस्थित । जो गले में आकर लगगया हो ।

कण्ठिकास्थि–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक अस्थि विशेष (Lingual ar Hyaidbone) । अ० शा० ।

कण्ठ्य–वि० [सं० त्रि०] (१) गले से उत्पन्न । (२) कंठ वा स्वर के लिये हितकारी । जैसे—कण्ठ्य औषध । (३) कफ निकालनेवाला । श्लेष्म प्रसेकि । स्वरचर । Eupectorant.

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह वस्तु जिसके खाने से ज्वर अच्छा हो जाता है वा गला खुलता है । कण्ठ, कण्ठरोग वा स्वर के लिये हितकारी पदार्थ या औषध । स्वर्य । स्वर शोधिनी ।

कण्ठ्य-महाकषाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंठ रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक कषाय ।

योग—सारिवा, ईख की जड़, मुलहठी, पीपल, मुनक्का, विदारीकंद, काकफल, हंसराज, बड़ीकटेरी, और छोटी कटेरी इन १० चीजों का नाम कण्ठ्य महाकषाय है ।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे उचित मात्रा में क्वाथ कर पीने से कंठ रोग का नाश होता है । च० सू० ४ अ० ।

कण्ठ्यवर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंठ के लिये दस उपकारी ओषधियों का समूह । कण्ठ्यमहाकषाय । च० सू० ४ अ० । दे० "कण्ठ्यमहाकषाय" ।

कण्डक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कास रोग । खाँसी । वै० निघ० ।

कण्डन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (कडि=काँदना, भूसी अलग करना)] (१) धान को कूटकर चावल और भूसी अलग करना । कूटना काँदना । निस्तुषीकरण । हे० च० । (२) तुष । भूसी । अनाज का उतरा हुआ छिलका ।

"क्रियां कुर्यात् भिषक् पश्चात् शाली तण्डुल कण्डनैः ।" (सुश्रुत)

कण्डनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ओखली । काँड़ी । उलूखल । (२) मूसल । त्रिका० ।

कण्डरव्रण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रणरोग । वै० निघ० ।

कण्डरा–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) बाहु पृष्ठ से अंगुलि पर्यन्त आनेवाली कंडराओं के वात से पीड़ित होने पर बाहुद्वय का कार्य बिगड़ जाता है । इस रोग का नाम "विश्वाची" है । (२) अस्थिवत् स्थूलशिरा । महास्नायु । रा० नि० व० १८ । ये शरीर में सोलह हैं । यथा—पैर में चार, हाथों में चार, पीठ में चार और गरदन में चार—इस प्रकार कुल सोलह हुई ।

"करपादस्थ कंडराणां प्ररोहरूपा नखा जायन्ते । पृष्ठ कटि कंडराभ्यो विम्बः, ग्रीवा हृदय कंडराभ्यो मेढ्रश्च जायते ॥ (सु शा० ५ अ०) । महत्य: स्नायव: प्रोक्ताः कंडरास्तास्तु षोडश ॥ प्रसारणाकुञ्चनयोः दृष्टंतासां प्रयोजनम् ॥ भा० । Tendon

कण्डरा कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कण्डरा के मध्य स्थित झिल्ली ।

कण्डरा कल्पा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] पेशी विशेष । (Semiten dinosus musele) प्र० शा० । ह० श० र० ।

कण्डराधर–वि० [सं० त्रि०] कण्डरा के अधो भाग में स्थित । (Snbten dinous) अ० शा० ।

कण्डरावितान–संज्ञा पुं० [सं०] कण्डरा का खिंच जाना । (Sprain of tendon)

कण्डला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपिकच्छु । केवाँच ।

कण्डवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करेला। कारव-वल्ली। वै० निघ०।

कण्डाग्नि–संज्ञा पुं०[सं० पुं०] पक्षी। चिड़िया।

कण्डीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) छोटा करेला। लघुकारवेल्लक। करेली। च० चि० ३ अ० अगुरु-तैल। (२) पीली मूंग। पीत मुद्ग। पीलो-मोठ।

कण्डु, कण्डू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का रोग जिसमें खुजली होती है और जो वायु से होता है। सूखी खुजली। खाज़।

संस्कृत पर्य्याय—खर्जू, कण्डुया (अ०) कण्डूति (अ० टी०), कण्डू (रा०)। दे० "खुजली"। (२) कान का एक रोग। (३) केवाँच। शुकशिंबी। रा० नि० व० २०।

कण्डुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिलावा। (२) तमाल, (नाम माला)। (३) काँटा। कंटक। (४) कण्डु। खुजली।

कण्डुघ्न–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफेद सरसों। श्वेतसर्षप। वै० निघ०। (२) अमलतास का पेड़। आरग्वध वृक्ष। रा०।

कण्डुर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करेले की बेल। कारवेल्ल लता। (२) कुन्दर नाम की घास। रा० नि० व० ३। कुंदरू की बेल।

कण्डुरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवाँच। कपिकच्छु लता। (२) कपूर कचरी। कर्पूरकच्चो-रक कन्द। रा० नि० व० १०। रामचना वा खटुआ नाम की बेल। अमलोलवा। अत्यल्पपर्णी। रा० नि० व० ३।

कण्डुल–संज्ञा पुं० [सं० पु०] सूरन। जमींकंद। रा० नि०। नि० शि०।

कण्डुला, करडूला } –सं स्त्री० [सं० स्त्री०] रामचना,
कण्डुली, कण्डूली } अमलोलवा। अत्यम्लपर्णी। रा० नि० व० ३।

कण्डू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] (१) कण्डु। खुजली।

कण्डूक–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] कण्डु। खुजली।

कण्डूकरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच। शुकशिंबी यथा—"कण्डूकरी जीवन ह्रस्वसंज्ञे।"–रा० नि० व० १०। वा० सू० १५ अ० विदार्य्यादि।

कण्डूका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकतुण्डी। वै० निघ०। घुंघची। रत्ती। चिरमिटी।

कण्डूघ्न–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अमलतास का पेड़। आरग्वध वृक्ष। रा० नि० व० ९। (२) सफेद सरसों। गौर सर्षप। रा० नि० व० १६।

कण्डूघ्न महाकषाय,–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्डू रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का महा कषाय योग। इसकी औषधियां कण्डू अर्थात् खाज़ दूर करने वाली है, औषधियों का समूह ये हैं—चन्दन, जटामांसी, अमलतास, करञ्ज, नीम, कुड़ा, सरसों, मुलहटी, दारुहल्दी, और मोथा। इन चीजों के योग का नाम "कण्डूघ्न महा कषाय है।" चरक में इसे "कण्डूघ्न वर्ग" लिखा है।

गुण तथा उपयोग विधि—इन्हें समान भाग में लेकर यथा विधि उचित मात्रा में क्वाथ बना कर पीने से खाज रोग का नाश होता है। च० सू० ४ अ०।

कण्डूति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खुजली। खर्जू। रा० नि० व० २०। कण्डूयन। खाज़।

कण्डूमका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कीड़ा जो आठ प्रकार का होता है, जैसे, कृष्ण, सार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ और भ्रुकुटी। इसके काटने से रोगी का अंग पीला पड़ जाता और वह वमन, अतिसार ज्वर प्रभृति से काल कवलित हो जाता है। सु०।

कण्डूयन–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] (१) खुजली। खाज़। कण्डु। खर्जू। रा० नि० व० २०। (२) खुजलाने का यंत्र। कृष्ण शृंग। कण्डूयनी। खुजलाने की कूची।

कण्डूयना–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खुजली। कण्डूति। अम०।

कण्डूया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खुजली। कण्डू। कण्डूयन। रा० नि० वि० २०। कण्डूयन।

कण्डूयित–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] खुजली। कण्डूयन।

कण्डूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मानकन्द। माणक। प० मु०। मानकच्छू।

कण्डूरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच। कौंछ। शूकशिंबी लता। अ० टी०।

कण्डूल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्डूरकारक रोग

प्रभृति। सूरन। ज़मीकन्द। शूरण। रा० नि० व० ७।

वि० [सं० त्रि०] कण्डू युक्त। रोगविशेष।

कण्डूला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अत्यम्लपर्णी लता। अमलोलवता। रामचना। वै० निघ०।

कण्डेर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चौलाई। तण्डुलीय। भा०।

कण्डोष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूक नाम का कीड़ा।

कण्डोल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ऊँट। उष्ट्र उणा०। (२) बाँस आदि का बना धान्य रखने का पात्र। अम०।

पर्य्या०—पिट, पिटक, पेटक। भ०। (३) एक प्रकार की गोणी। डोल। बोरा।

कण्डोलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कण्डोल। हे०च०। बाँस का बना डोल।

कण्डोलवीणा, कण्डोली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चण्डालवीणा। कँदड़ा। छोटा बीन। अम०।

पर्य्याय—चण्डालिका, चण्डालवल्लकी, कटोलवीणा (भ०), कन्डोली, शब्द र०। चण्डालिका।

कण्डोष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोषकार। झांझा। बूट का कीड़ा।

कण्डूवोध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शूक कीट। श० चे०। झांझा।

कण्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पाप।

वि० [सं० त्रि०] वधिर। बहरा।

कत, कतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) निर्मली वृक्ष। निर्मली का पेड़। (strychnos potatorum, *Linn.*) रा० नि० व० ११। भा० म० आम्रव०। वि० दे० "निर्मली" (२) कसौंजा। कसौंदी। (३) कुचला। कुचेलक। र० मा०। च० सू० ४ अ० विषघ्नव०। (४) जंबीरी नीबू। जंबीर वृक्ष। त्रिका०। (५) रीठा।

कत–संज्ञा पुं० [देश०] कत्था। खैर।

क़त–[अ०] इस्पस्त। रतबा।

क़तअ, क़तअः–[अ०] एक प्रकार का लाल रंग का कोड़ा जो लकड़ी में उत्पन्न हो जाता है।

कतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्मली का पेड़।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्मली (फल)।

क़तक़–[तु०] (१) दही। (२) सालन।

कतक-कर्ल्ली–[मल०] तिधारा सेंहुड़।

कतकफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) निर्मली का पेड़। कतक वृक्ष। रा० नि० व० ११ (२) तमाल का पेड़। दमपेल।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्मली (फल)। वारिप्रसादन फल। यथा—

"कट्फलं कतकफलम्। शशकपुरीषप्रतिमफेनमम्बुप्रसादनम्"। ड०। सु०सू०३८ परूषकादि। वा० सू० १५ अ० परूषकादि।

कतक-फलादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) निर्मली के फलों को कपूर के साथ घिसकर शहद के साथ अंजन करने से नेत्र स्वच्छ होते हैं। (२) निर्मली के फल, शंखनाभि, सेंधा नमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसवत, वायविडंग, मैनशिल और शहद। इन्हें समान भाग लेकर स्त्री के दूध में बारीक पीसकर रक्खें।

गुण—इसका अंजन करने से तिमिर, पटल, काच, (मोतियाबिन्दु) अर्म, शुक्र, (फूली) खुजली, क्लेद, (रतूबत) और अर्बुदादि नेत्र रोगों का नाश होता है। योग० र०। नेत्र रोग चि०।

कतकबीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] निर्मली बीज।

कतक बीज योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] निर्मली के बीज १ कर्ष लेकर छाँछ में पीसकर शहद के साथ सेवन करने से समस्त प्रकार के प्रमेह अत्यन्त शीघ्र नष्ट होते हैं। वृ० नि० र०।

कतकाद्यञ्जन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नेत्र रोगों में प्रयुक्त एक प्रकार का अंजन। विधि—निर्मली के फल का बीज, शङ्खचूर्ण, सेंधा नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री, समुद्रफेन, सुर्मा, वा रसवत, शहद, विडंग, मैनसिल, कुक्कुटाण्ड, कपाल, इन्हें समान भाग लेकर कूट कपड़ छानकर स्त्री के दूध से मर्दन कर अंजन तैयार करें।

गुण—इसके उपयोग से तिमिर, पटल, काच, नेत्र कण्डू, नेत्र का अर्बुद, अर्म, शुक्र, क्लेद, और नेत्रगत बाहरी मल दूर होता है। वासव रा० १७ प्र० पृ० २६६।

क़तन–[?] एक प्रकार की मछली।

क़तना–[शामी] बाँस। क़सब।

क़तना वेस्मा–[शामी] चिरायता ।

क़तन्दूस–[यू०] मवेज़ । मुनक्का ।

क़तफ़–दे० "क़त्फ़" ।

कतफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) निर्मली वृक्ष । निर्मली का पेड़ । (२) निर्मली का फल ।

कतबूत:–[?] एक गज़ ऊंचा एक पौधा जिसका तना पतला और कठोर होता है । इसके नीचे के पत्ते अलसी की पत्ती की तरह लंबे और कोमल होते हैं तथा भूमि पर बिछे हुये होते हैं । इनका रंग कालापन लिये हरा होता है । तने के ऊपरी आधे भाग पर पुष्प लगते हैं, जो नील, श्वेत और कोई कोई पीत वर्ण के भी होते हैं ।आकृति अतसी पुष्पवत् होती है । किंतु उनसे लघुतर होते हैं । बीज शाहतरे के बीज जैसे होते हैं । इसका स्वाद तिक्त होता है । इसकी एक जाति वह है जो कठोर भूमि में उगती है और जिसके तने से महीन शाखायें फूटती हैं । ये पत्र शून्य होते हैं और इसमें से दूध निकलता है ।

प्रकृति—प्रथम कक्षा के अंत में ऊष्ण एवं रूक्ष है ।

मात्रा—पहली किस्म=७ माशे; दूसरी किस्म= ५। माशे ।

गुण धर्म तथा प्रयोग—इसके उपयोग से अपक्व श्लेष्मा निःसृत होती है । इस कार्य्य के निमित्त इसकी दूसरी किस्म अधिक वीर्यवान् होती है । कूल्हों एवं संधिगत शीतजन्य वेदना को लाभ पहुँचता है । इसको पकाकर पीसकर लगाने से दद्रु का नाश होता है । दूसरी क़िस्म को पीसकर योनि में धारण करने से गर्भपात होता है । (ख़ अ०)

कतबूत–[?] एक बूटी ।

कतब बर्री–[अ०] गाँजा ।

कतम–[अ०] नील के पत्ते । वस्मः ।

क़तम–[अ०] पुराने दुंबे का मांस ।

कतमाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अग्नि । आग । इसका पाठान्तर कचमाल और खचमाल है ।

कत(ट)म्पम् । कत(ट)म्पु–[ता०] को-कौ । ही-कीन । (Siegesbeckia orientalis, *Linn*)

कतरनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कतरना] एक मछली जो मलाबार देश की नदियों में होती है ।

कतरली–[ता०] दबूर । ढाकुर (बं०) । ओडल्लम् (मल०) । हांडे (कना०) । सुकनु (मरा०) ।

क़तरा–संज्ञा पुं० [अ पुं० क़त्रः] बूँद । विंदु ।

कतरीक–संज्ञा पुं० [सं०] काला नमक ।

कतरु मुरंग–[सिं०] अगस्त ।

क़तल–संज्ञा पुं० [अ० क़त्ल] दे० "क़त्ल" ।

कतल–[फ़ा०] सेब ।

[बर०] वरुण । बरना ।

कतला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जो ६ फुट तक लंबी होती और बड़ी नदियों में पाई जाती है । यह छः फुट तक लंबा होता है । यह अधिक बलिष्ट होता है । कभी कभी पकड़ते समय कतला मछुओं को झपटकर गिरा देता और काट लेता है ।

क़तस हूमा–[सिरि०] इन्द्रायन ।

क़ता–[अ०] लवा पक्षी । संग ख़ारः (फ़ा०) ।

क़तात–[अ०]

क़तात्–[अ०] लवा ।

क़ताद–[अ०] एक कँटीला पेड़ जिसका गोंद कतीरा कहलाता है ।

क़ताद–संज्ञा पुं० [अ०] एक दृढ़ और कंटकाकीर्ण वृक्ष जिसको अरबी में "शज्रतुल् क़ुद्स" "मिस्वाकुल् अब्बास" और "मिस्वाकुल् मसीह" कहते हैं । इसके काँटे अत्यन्त तीक्ष्ण और नीचे की ओर झुके हुये होते हैं । कांड कंटक शून्य होता और देखने में बाँस की तरह प्रतीत होता है । ऊंट इसे नहीं खाते । किंतु जब अनावृष्टि के कारण चारे आदि का अभाव होता है, तब वे इसे खाने के लिये बाध्य होते हैं । इसके चरने से पशु मोटे हो जाते हैं । इसका फूल पीले रंग का होता है और उसमें लाल टुकड़े होते हैं । फूल में से इसका फल निकलता है जिसका रंग छुहारे की गुठली की तरह होता है । किताबों में इसके जो चित्र दिये हैं, उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि इसके काँटे सीधे नुकीले और बहुत लम्बे होते हैं । उक्त काँटों के

कारण वृक्ष अत्यन्त भयावह प्रतीत होता है। इसी हेतु किसी कठिन कार्य करने के समय 'ख़िर्तुल् क़ताद' अर्थात् क़ताद का काँटा कठिन है, ऐसा कहते हैं।

क़ताद के पेड़ (शज्रे क़ताद) ईरान और हेरात में बहुतायत से होते हैं। उक्त स्थान-भेद से ही क़ताद के भी दो भेद यूनानी ग्रन्थों में स्वीकृत किये गये हैं, यथा—हेराती कतीरे का वृक्ष—दरख्त कतीरा हेराती अर्थात् कोन जिसे लेटिन में (Astragalus Heraten sis, *Bunge*) कहते हैं और (२) कुम, बालिशे-आशिकाँ (फ़ा०), मिस्वाकुल् अब्बास (अ०) और Astragalus sp of (Astragalus Stro biliferus *Royle*) —ले०।

गीलानी के अनुसार उक्त वृक्षों में चीरा देने से गुलू-निर्यासवत् एक प्रकार का गोंद निकलता है, जिसे पारस्य देशवासी 'कतीरा' नाम से अभिहित करते हैं। एलोपैथीय चिकित्सा में प्रयुक्त 'ट्रैगा-कंथा' भी क़ताद की ही जाति के एक वृक्ष का गोंद है जो Astragalus Gummi fera) नामक वृक्ष से प्राप्त होता है। इसके वृक्ष एशिया-माइनर में होते हैं। वि० दे० 'कतीरा'।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminosae.*)

गुण-धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है इख़्तियारात के लेखक के मत से उष्ण और तर है। शेख़ द्वारा लिखित क़ानून के एक प्राचीन योग में यह शीतल और तर उल्लिखित है। किसी२ के मत से इसका वृक्ष तो शीतल है, परन्तु जड़ अत्यन्त उष्ण होती है।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसकी जड़ को घिसकर सिरके या शहद के साथ व्यङ्गादि पर या अन्य दागों पर लगाने से वे दूर हो जाते हैं। इसके पत्तों को क्वथित कर खाँड़ मिलाकर पीने से पुरातन गरम खाँसी में बहुत उपकार होता है। इससे कृच्छ्र श्वास और उरःक्षत को भी लाभ होता है। परन्तु ६-१० तोले से अधिक न पियें। इसकी जड़ में इतना स्नेहांश होता है कि बिना तेल के यह मसाल की तरह जलती है। ख़ा० अ०।

क़तान- } [अ०] धूलि। गर्द।
क़ताम- }

क़ताम-[अ०] एक श्यामवर्ण का चौड़ा बिंदु, जो आँख के काले भाग पर धूएँ के समान पैदा हो जाता है। गुब्बार चश्म। Penis

क़तामियून-[सिरि०] मिश्केतरामशीअ।

क़तायिफ़-[अ०] (१) एक प्रकार की रोटी। (२) रोग़नी रोटी।

क़तायस-[?] वनपलाण्डु। काँदा

कतारा-संज्ञा पुं० [सं० कान्तार, प्रा० कंतार] [स्त्री० अल्पा० कतारी] एक प्रकार की लाल रंग की ऊख जो बहुत लम्बी होती है। केतारा।

संज्ञा पुं० [हिं० कटार] इमली का फल।

कतारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कतारा] कतारे की जाति की ईख जो उससे छोटी और पतली होती है।

कतिद-[अ०] [बहु० अक्ताद] (१) कंधा। स्कंध। (२) कंधे से पृष्ठवंश तक का भाग। (३) दोनों कंधों के मिलने की जगह।

कतिफ़-[अ०] [बहु० अक्ताफ़] कंधे की हड्डी। स्कंधास्थि। शाना।

क़तिरान-[अ०] दे० "क़त्रान"।

क़तीदाउक़तीरा-[यू०] अफीम। अहिफेन।

क़तीदऊस, क़तीदाउस-[यू०] इलायची। एला।

क़तीफ़ः-[अ०] मख़मल वा रोएँदार कपड़ा।

कतीरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का खूब सफेद गोंद जो गुलू नामक वृक्ष से निकलता है और गोंदों की भाँति इसमें लसीलापन नहीं होता और न यह पानी में घुलता है। कुल्ली का लासा। वि० दे० "गुलू"।

कतीरा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गुलू नामक वृक्ष का गोंद जो खूब सफ़ेद होत है और पानी में घुलता नहीं। और गोंदों की भांति इसमें लसीलापन नहीं होता। बोतल में बंद करके रखने से इसमें सिरके की सी गंध आ जाती है। प्रसवोत्तर इसे स्त्रियों को खिलाते हैं। यह बहुत ठंढा समझा जाता है और रक्तविकार तथा धातु विकार के

रोगों में दिया जाता है। कहते हैं कि कतीरा अधिक सेवन करने से पुरुष नपुंसक बन जाता है,

पर्य्याय—कुल्ली का लासा कटीरा, कटीला, कतीला, कतीरा, रामनामी वृक्ष का गोंद, गुलू का गोंद, कुलु का गोंद। कूलू गोंद हि०।
The Gum of Sterculia Urens, *Roxb.*

वक्तव्य—प्रायः अरबी फारसी के कोषों में कतीरा को फ़ारसी भाषा का शब्द लिखा है, जिसका 'कसीरा' मुअर्रिब—अरबीकृत है। परन्तु उम्दतुल मुहताज के संकलनकर्त्ता लिखते हैं कि कतिपय तबीब इसे यूनानी तरागाकन्सा(Tragacantha) शब्द का आरब्य उल्था बतलाते हैं। यह विदेशीय ट्रैगाकंथ की प्रतिनिधि स्वरूप काम में आता है।

फ़ारस तथा ईरान में कतीरा शब्द का प्रयोग क़ताद के गोंद के लिये(बहुत पहले से)होता आरहा है और ऐसा ज्ञात होता है कि अति प्राचीन कालसे ही भारतवर्ष में इसका निर्यात हो रहा है। यह बिल्कुल ट्रैगाकंथ-विलायती कतीरा के समान होता है। बंबई में गुलूका गोंद जिसे गुजराती व्यापारी 'कड़े गोंद' कहते हैं देशी टैगाकंथ के रूप में व्यवहार में आता है और मुसलमान औषध-विक्रेता इसे कतीरा के नाम से बेचते हैं। यह गुलू निर्यास भी उक्त पारस्य क़ताद निर्यास के सर्वथा समान होता है। कदाचित् उक्त सादृश्य के कारण ही यह भी कतीरा नाम से सुविख्यात हो गया। वि० दे० "गुलू"। (२) गुलू-निर्यास की तरह का एक प्रकार का गोंद जो फ़ारस आदि में क़ताद नामक वृक्ष से प्राप्त होता है। इसके पीताभ श्वेत कड़े, स्वाद एवं गंध रहित विविध आकार प्रकार के खंड होते हैं जिनका चूर्ण करना सहज नहीं। ये सुरासार और ईथर में अविलेय होते हैं और जल में स्वल्प विलेय होते हैं। जल में ये फूल जाते हैं। वृक्ष के विवरण के लिये "कताद" शब्द के अन्तर्गत देखें। कतीरा। कसीरा।

प्रतिनिधि—देशी कतीरा (गुलू निर्यास), ट्रैगाकंथ (विलायती कतीरा) और पीली कपास का गोंद प्रभृति।

गुण धर्म तथा प्रयोग

प्रकृति—शीतल और रूक्ष। मुहम्मद शर्फ़ुद्दीन ने मुफ़्रिदात हिंदीमें लिखा है कि यह प्रथम कक्षा में शीतल और रूक्ष है। मतान्तर से यह सरदी और गरमी में मातदिल और प्रथम कक्षा में तर है। किसी किसीके मतसे प्रथम कक्षामें शीतल और रूक्ष है। किन्तु रूक्षता शैत्य की अपेक्षा कम है। किसी-किसी के मत से प्रथम कक्षा में उष्ण एवं तर और दूसरों के मत से द्वितीय कक्षा में शीतल है और कोई परस्पर विरोधी गुणधर्म विशिष्ट (मुरक्किबुल्कुपा) बतलाते हैं। परन्तु शेख़ के मत से रूक्षता लिये शीतल है।

हानिकर्त्ता—गुदा को और सुद्दा पैदा करता है।

दर्पघ्न—गुदा के लिये अनीसूँ, और कद्दू के बीजों की गिरी। सुद्दों के लिये करफ़स।

प्रतिनिधि—कद्दू के बीजों की गिरी, समभाग बबूल का गोंद या बादाम का गोंद और भार का $\frac{1}{5}$ बादाम का तेल।

मात्रा—२। माशा से ३॥ माशा वा ७ या १७॥ माशा तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह सुरमों में पड़ता है। क्योंकि इसमें पिच्छिलता (लज़ूजत) और शीतलता होती है,जिससे यह नेत्रक्षत, नेत्राभिष्यंद और तद्गत फुंसियों को लाभ पहुँचाता है। यह विरेचन औषधों के दर्प निवारणार्थ उनमें पड़ता है, जिसमें यह अपनी पिच्छिलता के कारण उनकी तीक्ष्णता को दूर कर देवे और तबिअत पर उनको अधिक बोझ डालने से रोके। (नफ़ी०)

यह आंतरिक अवयवों के रक्तस्राव का रोधक, पिच्छिलताकारक, रुधिर सांद्रकर्त्ता, कठोरता का उपशमनकर्त्ता और दोषों की तीक्ष्णता का शामक है तथा कास, नेत्ररोग, उरःकंठ की कर्कशता और फुफ्फुसगत व्रण का निवारण करता है। (मु० ना०)

यह रक्त को सांद्र करता और प्रायः स्रोतों के मुख में चिपक कर सुद्दा डालता है; कठोरता को दूर करता, तीव्र औषधों की तीक्ष्णता का उपशमन करता है। यह आँतों को शक्ति प्रदान करता

और आंतरावयव की रक्तस्रुति को रोक देता है। कास कंठ और सीने की खुरखुराहट तथा फुप्फुसजात क्षत को लाभ पहुँचाता है। प्रायः औषधों के विषाक्त प्रभावादिको निवारण करता है। (म० मु०)

इसे उपयुक्त औषध के साथ पीसकर नेत्र में लगाने से चक्षुगत पूय और विस्फोटादि में उपकार होता है।

इसे गदही वा छागी दुग्ध के साथ पीने से अखिल आंतरावयव से रक्तस्राव होना रुक जाता है।

यदि जयपाल सेवनोत्तर विरेचन आना बन्द न हो सके, तो कतीरे को पीसकर दधि में मिलाकर सेवन करें।

इसे शहद में मिला वटिका वा चक्रिका बना मुख में धारण करें और रस चूसें। यह उरो रोग में लाभकारी है।

इसे उपयुक्त औषधियों के साथ पीने से वृक्कशूल, वस्तिशूल. मूत्रमार्गस्थ व्रण और दाहमूत्रता आदि रोग शांति होते हैं।

यह प्रायः औषधियोंके विषप्रभाव एवं तीक्ष्णता को दूर कर उन्हें दर्पशून्य करता है

इसे वात, पित्त और पिच्छिल श्लेष्मा का उत्सर्ग कर्त्ता बतलाते हैं।

कतीरा, बादाम को गिरी, निशास्ता और शर्करा —इन सबको बराबर बराबर लेकर हरीरा तैयार करके सदैव इसी तरह सेवन करने से शरीर स्थूल एवं परिवृंहित होता है।

इसके प्रलेप से झाँई तथा व्यंग भेद (नमश) का नाश होता है। इससे शरीरगत त्वचा कोमल हो जाती है।

होंठ फटने पर इसके लगाने से उपकार होता है।

सिरके के साथ झींपादि व्यंग रोगों (बहक़) एवं श्वित्र के लिये और लबाबों के साथ केशों के लिए इसका प्रलेप उपकारी होता है।

गंधक के साथ प्रलेप करने से खुजली और (आकिलः) आराम होते हैं।

प्रायः औषधियों के अनुपान स्वरूप कतीरा व्यवहार में आता है। उदाहरणतः मिक्सचर निर्माण में जो वस्तुएँ जल विलेय नहीं होतीं, उन्हें इसके लबाब में मिलाकर देते हैं। (ख० अ०)

गला बैठना तथा आंत्रव्रणजन्य शोथ एवं शूल में इसके पीने से उपकार होता है।

दो दिरम कतीरा मैफ़्तज में तर करके थोड़ा सा बारहसिंगा और चार रत्ती फिटकरी मिलाकर पिलाने से वृक्कशूल और वस्तिस्थसूजन और दाह तत्काल प्रशमित होती है। (बु० मु०)

(३) एक प्रकार का गोंद जो पीली-कपास के वृक्ष से प्राप्त होता है। उत्तर भारत में इस गोंद का उपयोग ट्रैगाकंथ की प्रतिनिधि स्वरूप होता है। अरबी और फ़ारसी निघंटु-लेखकों का कतीरा या कसीरा—क़ताद निर्यास वस्तुतः ट्रैगाकंथ या उसका एक भेद मात्र है। अतः भारतोपनिविष्ट मुसलमान उक्त शब्द का प्रयोग इस वृक्ष के गोंद के लिये करने लगे। वि० दे० "पीली कपास"।

वक्तव्य—यद्यपि भारतीय बाजारों में उपर्युक्त निर्यास साधारणतः उन्हीं संज्ञाओं से सुपरिचित है, जिनसे वास्तविक ट्रैगाकंथ, तथापि इस विचार से कि उन संज्ञाओं द्वारा उक्त पदार्थों का निश्चित ज्ञान प्राप्त करनेमें भ्रम न हो, प्रथमोक्त द्रव्य अर्थात् पीली-कपास के गोंद की संज्ञाओं के पूर्व भारतीय या देशी उपसर्ग जोड़ देना उचित जान पड़ता है। यथा—

हिंदी कतीरा गोंद-हिं०, द०। क़तीराये हिंदी हिंदी-फ्रा०। कसीराये हिंदी, समुगुल् क़ताद हिंदी-अ०। Cochlospermum Gossypium *D. C.* (Gum of Indian Tragacanth)

(४) एक प्रकार का गोंद जो क़ताद की जाति के एक पौधे से जिसे लेटिन भाषा में Astragalus Gummifer कहते हैं। प्राप्त होता है। वि० दे० "ट्रैगाकंथा"।

नोट—यह गोंद इस जाति के कतिपय अन्य पौधों से भी प्राप्त होता है, जिसका यथा स्थान उल्लेख होगा।

[पं०] बाडवीस (पं०)। गिउर (काश०)

कतीरा शामी—[फ्रा०] कतीरा। (Syrian Tragacanth)

कतीरए हिंदी–[फ़ा०] पीली कपास का गोंद ।

क़तीला–[?] दरदार ।

क़तीलुर्अ्द–[अ०] बटेर । सुमानी

क़तूना क़तूबरी–[अ०] इसबगोल का पौधा ।

क़तूरियून–[यू०] जंगली खीरा । ख़यार सहराई ।

क़तूर–[अ०] [बहु० क़तूरात] वह तरल औषध जो शरीर के किसी छिद्र, जैसे, कान आदि में बूँद २ टपकाई जाय अथवा उसमें तूल वर्ति तर करके रक्खी जाय । बूँद बूँद डाली जानेवाली दवा ।

कतूल–[?] केवाँच ।

क़तूशा हूत–[?] इंद्रायन का फल ।

कतूस–[नैपा०] हलोसरी (लेप०) ।

क़तूस–[सिरि०] सरख़्स ।

कत्तइ तुल्लुवा–[मल०] जंगली तुलसी ।

कत्तट्टी–[मल०] कचनार ।

कत्तम–[ता०] पटचउली (बं०) ।

कत्तमणक्कु–[ता०] जंगली रेंड़ । काननैरण्ड ।

कत्तर–[आसाम] अमलोसा । अम्लो ।

कत्तरा असी–[बर०] क़ीर । कील । अलकतरा । (Pix Liquida) Tar

कत्तराम-तुलसी–[मल०] रामतुलसी ।

कत्तरोंदु–[सिंगा०] अपराजिता ।

कत्तरोंदु बीज–[सिंगा०] अपराजिता के बीज ।

कत्तवला–[ ] गुम्मडु ।

कत्तान–[अ०, फ़ा०] तीसी । अलसी । अतसी ।

कत्तान मुसहिल–[अ०] रेचनातसी । (Linum Catharticum) Purgingflax

कत्तानुल् माऽ–[अ०] काई ।

कत्तालि–[कना०] छोटा ग्वार ।

कत्तारो–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मझोले आकार का सदाबहार वृक्ष जिसकी टहनियाँ बहुत लम्बी और कोमल होती है और इसके पत्ते प्रायः एक बालिश्त लंबे होते हैं । इसमें जाड़े में फूल लगते हैं । हिमालय में हज़ारा से कुमायूँ तक, ५००० फुट की ऊचाई तक, और कहीं कहीं छोटा नागपुर और आसाम में भी इसके पेड़ पाये जाते हैं । कत्तावा ।

कत्तावा–संज्ञा पुं० दे० "कत्तारी" ।

कत्तृण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रूसा नाम की एक सुगंधित घास । रोहिष तृण । सोंधिया घास । गन्धतृण । प० मु० । रा० नि० । भा० । पृश्निपर्णी । पिठवन । यथा–"कत्तृणं तृणमित् प्रश्न्योः ।"–मे० रात्रिक ।

कत्तोय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० (स्त्री०)] मद्य । मदिरा । (२) मैरेय नामक मदिरा । त्रिका० ।

कत्तहालु–[कना०] गदही का दूध ।

कत्थ–संज्ञा पुं० [हिं० कत्था] दे० "कत्था" ।

कत्था–संज्ञा पुं० [सं० क्वाथ] (१) खैर । खदिर- (२) खैर का पेड़ । कथ-कीकर । दे० 'खैर"

कत्थाचिनाई–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कत्था जो अकोरिया गेम्बियर (Uncaria gambier) नामक एक प्रकार की नाजुक लता से प्राप्त होता है । वि० दे० "खैर" ।

कत्थील–संज्ञा पुं० दे० "कथील" ।

कत्थु ओलुपा–[ते०] बहेड़ा । विभीतक ।

कत्थो–[द०] कत्था । खैर ।

क़त्फ़–[अ०] बथुआ । वास्तुक ।

क़त्फ़ बहरी–[अ०] (१)देशी बथुआ । बथुआ हिंदी । (२) सन ।

क़त्फ़ रूमी–[अ०] जीवंती ।

क़त्फ़ः, क़त्फ़ा–[अ०] बथुआ ।

क़त्बतः–दे० "कतन्तः" ।

क़त्बूस–[सिरि०] सरख़्स ।

क़त्म–[अ०] पुराने दुंबे का गोश्त ।

क़त्मीर–[अ०] जंगली भाँग ।

क़त्रगः–[?] कौआ ।

कत्र बंग–[?] कीड़ा मार ।

कत्र मक्का–संज्ञा पुं० [अ० इल् क़ातिरुल् मक्की] हीरा दोखी । दम्मुल् अख़्वैन ।

कतरस–[?] अच्छा ताँबा ।

क़त्रहे ऐनिय्यः–[अ०] आँख में टपकाने की दवा । आँख धोने की दवा । ग़ुसूलुल् ऐन । Collyrium, Eyedrop.

क़त्रान–संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का कालापन लिये भूरे रंग का सांद्र वा अर्द्ध तरल अलकतरे की तरह का पदार्थ जो विशिष्ट गंधि एवं सुगंधि

युक्त होता है। यह एक प्रकार के चीड़ अर्थात् पाइनस सिल्वेष्ट्रिस (Pinus Sylvestris) वा शर्बीन या सनोबर बर्री तथा अन्य प्रकार के सरल जातीय वृक्ष (Pinaceœ) की लकड़ी से *विनाशक तिर्यक् परिश्रावण (Destructive Distilla tion) की विधि से परिस्रावित किया जाता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १.०२ से १.१५ है। जल में डालकर हिलाने से इसकी रंगत हलकी भूरी और प्रतिक्रिया अम्लता युक्त हो जाती है।

पर्य्याय—कांतरान,कील–हिं०।चुड़ैल का तेल, क़तरान ष्टॉकहाल्म–उ०। क़ील, क़त्रान चोबी–फ़ा०। जिफ़्त रतब, क़त्रान, क़ित्रान, क़त्रान शज्री,क़त्रान चौबी,क़त्रान सनोबर–अ०। पिक्स लिक्विडा Pix Liquida–ले०। टार Tar, वुड-टार Wood Tar। ष्टॉकहाल्म टार Stockholm Tar. पाइनटार Pine Tar. पिक्स पाइनाइ Pix Pine–अं०। कील,तार–ता०। कीलु, तारु–ते०। कीलू–कना०। कील–सिं०। तिन्युसी, कत्ता-असी–बर०।

संज्ञा-निर्णायिनी टिप्पणी—(१) पिक्स लिक्विडा का समीचीन आरब्य पर्य्याय अज़िफ़्तुस्साइल या जिफ़्त रतब और टार का क़त्रान प्रतीत होता है। जिफ़्त और क़त्रान के अर्थों में यह भिन्नता है—'ज़िफ़्त' ऐसी रतूबत द्रव को कहते हैं जो वृक्ष के तने में से स्वयं या चीरा देने से निकले। परन्तु जब उसे किसी विशेष उपाय द्वारा प्राप्त करते हैं, तब उसे 'क़त्रान' कहते हैं। चूँकि पिक्स लिक्विडा अर्थात् टार को भी ख़ास तरकीबसे निकालते हैं, अस्तु, इसका ठीक पर्य्याय 'क़त्रान' ही हो सकता है।

(२) यूनानी चिकित्सा-शास्त्र में ज़िफ़्ते रतब को क़त्रान भी कहते हैं। मुहीत आज़म में ज़िफ़्त का वर्णन देखें। क़त्रान मश्क़ूद (सांद्रीभूत क़त्रान) को श्याम, स्पेन और बाबुल देशवासी ज़िफ़्त (ज़िफ़्तेस्याह) कहते हैं।

(३) बहरुल् जवाहर में क़त्रान का हिंदी नाम चुड़ैल का तेल और मुहीत आज़म में कांतरान लिखा है, जो क़तरान का अपभ्रंश है।

तिब्बी ग्रंथों में क़त्रान के विषय में कतिपय प्राचीन तत्वान्वेषक हकीमों का केवल शाब्दिक मतभेद है, तात्विक वा वास्तविक नहीं। क्योंकि अरअर और तनूब, जिसको मुहीत आजम प्रभृति में तंबूब (त) लिखा है, वे सब सनोबर अर्थात् देवदारु के ही भेद हैं। जैसे—

(१) हकीम बोलस अरअर(सरोकोहा) को शज्र क़त्रान कहते हैं। (२) हकीम मुहम्मद बिन अहमद भी अरअर को शर्बीन या दरख़्त क़त्रान बतलाते हैं। (३) इब्न मासूयः शर्बीन को सनोबर का एक भेद लिखते हैं। (४) साहब मिन्हाजुल् बयान लिखते हैं कि क़त्रान शज्रतुल् क़त्रान का रोग़न है और इसे अरअर, अनम तथा तनूब इत्यादि से भी प्राप्त करते हैं किन्तु जो अरअर से प्राप्त होती है,वह अति उत्तम होती है और तालिबसे प्राप्त निकृष्ट। साहब किताब मालायसअ् लिखते हैं, कि शर्बीन क़त्रान का वृक्ष है, जो सनोवर का ही एक भेद है इत्यादि। अतः उपर्युक्त शाब्दिक भिन्नतासे इसके लक्षणमें कोई अंतर नहीं आता। इनमें प्रत्येक योग्य हकीम का कथन स्वयं सत्य है।

नोट—आयुर्वेदीय ग्रंथों में जिन सरल तथा देवदारु आदि वृक्षों का उल्लेख हुआ है, वे भी उसी जाति के एक प्रकार के वृक्ष हैं, जिससे क़त्रान उपलब्ध होता है। हकीम दीस्क़ूरीदूस ने दो प्रकार के कत्रान अर्थात् (१) क़तरान सनोबर और (२) क़त्रान फ़र्अ़ार का उल्लेख किया है प्रागुक्त कथनानुसार क़तरान को 'ज़िफ़्त रतब' भी कहते हैं। तिब के ग्रंथों में चतुर्विधि जिफ़्त का उल्लेख पाया जाता है। जैसे—(१) ज़िफ़्त रतब, (२) ज़िफ़्त याबिस, (३) ज़िफ़्त जबली और (४) ज़िफ़्त बहरी। इनमें से ज़िफ़्त रतब या क़त्रान तो वही है जिसका वर्णन हो रहा है और जब उसे धूप या आगपर उड़ाकर शुष्क कर

*नोट—ऊंची ज़मीन या टीले पर गढ़ा खोदकर उसके भीतर चतुर्दिक् पकी ईंट और चूने की दीवाल खड़ी कर देते हैं। पुनः गढ़े के भीतर ऐसे काष्ठ वा जड़ों को बंद आँच देने से टार वा क़त्रान प्राप्त होता है। इस विध को ही 'विनाशक तिर्यक् परिश्रावण विधि' के नाम से अभिहित करते हैं।

लिया जाता है। तब उसे ज़िफ्त थाबिस कहते हैं ज़िफ़्त जबली से क़त्रान मश्रूदनी (खालिज) अर्थात् अलकतरा अभीष्ट है, जिसका वर्णन अलकतरे में होगा। ज़िफ़्त बहरी भी वस्तुतः ज़िफ्त जबली या क़ीर ही है या संभवतः क़त्रान सनोबर बहरी हो।

देवदार्वादि वर्ग

(*N. O. Coniferœ*)

उत्पत्ति स्थान—फ्रांस, पुर्त्तगाल, यूनान इत्यादि।

विलेयता—एक भाग क़त्रान १० भाग सुरासार ९०% में और किसी प्रकार रोग़न जैतून तथा रोग़न तारपीन में विलीन हो जाता है।

रासायनिक संघटन—इसकी रासायनिक बनावट बहुत पेचीदा है। इसमें (१) क्रियोज़ूट वा क्रेसोल, (२) फेनोल, (३) ऑइल ऑफ टर्पेनटाइन, (४) एसीटिक एसिड, (५) पाइरो कैटेकोल, (६) टोलुएन, (७) ज़ाइलोल, (८) एसीटोन, (९) मीथिलिक एसिड (१०) खायकोल और (११) रेज़िन अर्थात् राल ये घटक होते हैं।

मात्रा—२ से १० ग्रेन वा ०.१२ से ०.६ ग्राम। अथवा ५ से १० मिनिम (=.३ से .६ घन शतांशमीटर) कैप्शूल में डालकर प्रयोग करें।

नोट—इसकी मात्रा क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ाकर २० से ६० मिनिम तक दे सकते हैं।

टार की चाशनी किंचित् भिन्न होती है। अतएव इसकी वटी निर्माण करने में बड़ी दिक़त होती है। इसमें इतना अनुपान द्रव्ययोजित करना पड़ता है कि ५ ग्रेन की वटी में अत्यल्प टार रह जाती है। चूर्णाकृत मधुयष्टिका मूल वा लाइकोपोडियम् से एतद्वटी निर्माण की आज्ञा पाई जाती है, किंतु उनसे उत्तम वटिकायें प्रस्तुत नहीं होती हैं। टार, कर्डसोप, लिक्रिस रूट (मुलेठी) चूर्ण और गम अकेशिया (बबूल का गोंद) चूर्ण इन चारों को बराबर-बराबर मिलाने से इसकी उत्तम वटिकायें प्रस्तुत होती हैं।

असम्मत योग

(*Non-official Preparations*)

(१) सिरुपस पाइसिस लिक्विडी (Syrupus Picis Liquidœ)शर्बत क़त्रान।

योग—टार ५.० ग्राम, शर्करा ८५० ग्राम, सुरासार (९०%) ५२. ५ मिलिग्राम, (Mil.) जल १००० मिलिग्राम (Mils.) पर्यन्त।

गुण प्रयोगादि—यह शारदीय कास (Winter Cough) राजयक्ष्मा और जीर्ण कास में सेव्य है। कभी २ इसे वाइल्ड चेरी के शर्बत के साथ मिलाकर वा उसमें कोडील मिलाकर देते हैं।

मात्रा—२॥ ड्राम या १० घन शतांशमीटर।

(२) अंग्वेण्टम् पाइसिस पाइनाई—(Unguentum Picis Pini, *U. S. P.*) –ले०। टार आइण्टमेंट (Tar Ointment) –अं०। क़त्रानानुलेपन। मरहम क़त्रान।

निर्माण-विधि—टार ५०, पीत मधूच्छिष्ट १५, पेट्रोलेटम् ३५ भाग। मोम को पिघलाकर उसमें टार को मिश्रीभूत करें।

नोट—यह कृष्णवर्ण की अधिक ठोस मरहम प्रस्तुत होती है। परन्तु तदपेक्षा अंग्वेण्टम् पाइसिस मॉली (बी० पी० सी०) अधिक मृदु होती है।

(३) एक्वा पाइसिस—(Aqua Picis) –ले०। टार वॉटर (Tar water) ऑडी गॉडरून (Eau de Gondron) –अं० अर्क क़त्रान।

योग निर्म्माण विधि—टार १० भाग, परिश्रुत वारि १०० भाग, दोनों को मिलाकर फिल्टर कर लेवें।

मात्रा—८ आउंस प्रतिदिन। अल्सर्ज़ और अंडज (क्षत व्रणादि) प्रक्षालनार्थ भी इसका उपयोग करते हैं।

(४) कैप्शूल्ज़ ऑफ टार—(Capsules of Tar) प्रत्येक कैप्शूल में ५ बूंद टार पड़ती है।

(५) ऑइल ऑफ टार—(Oil of Tar) रोग़न क़त्रान एक प्रकार का सूक्ष्म तेल

जो टार से परिस्रावित किया जाता है। यह ताजा बेरंग, पर पड़ा रहने से ललाई लिये गहरा भूरा होजाता है।

(६) पिगमेंटम् पाइसिस लिक्विडी—(Pigmentum Picis Liquidæ) -ले०। क़त्रान प्रलेप। तिलाए क़त्रान।

योग—टार १ भाग, सुरासार (६० प्रति०) १ भाग दोनों को मिश्रीभूत कर लेवें।

प्रयोग—विचर्चिका (Psoriasiz) और चिरकारी शुष्क पामा (Ecsema) में इसका उत्तेजक रूप से व्यवहार करते हैं। पर चिरकालानुबन्धी शुष्क पामा में इसका सावधानी पूर्वक उपयोग करना चाहिये।

(७) पिल्युला पाइसिस लिक्विडी—(Pilula Picis Liquidæ) क़त्रान बटी, हब्ब क़त्रान।

योग—टार १ भाग, मधुष्टी चूर्ण २। भाग, साबुन १ भाग, पल्विस ट्रैगाकंथ कंपाउंड ¼ भाग।

मात्रा—३ से ६ ग्रेन।

(८) अंग्वेण्टम् पाइसिस मॉली—(Unguentum Picis Molle) मृदु क़त्रानुलेपन, मरहम क़त्रान मुलायम।

योग—७१ भाग, बीज वैक्स १४·२० भाग, बादाम का तेल (आमण्ड ऑइल) वज़न से १४·२० भाग पिघलाकर मिश्रित कर लेवें।

गुण धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—शेख़ ने चौथी कक्षा में उष्ण और रूक्ष और साहब मिनहाज ने तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष लिखा है और यह सत्य प्रतीत होता है।

प्रतिनिधि—सम भाग मिट्टी का तेल, जावशीर और अर्द्ध भाग (वजन में) बेद सादा का तेल।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह प्रबल अवसन्नता जनक है और शीत जन्य वेदना को शमन करता है। शीतजन्य शिरःशूल में इसे ललाट पर लगाने से बड़ा उपकार होता है। इसे चक्षु के आस-पास लेप करने से ज्योति बढ़ती है, इसे शरीर पर लगाने से शरीरगत दाग़ और धब्बे मिटते हैं। इसे अकेला कान में टपकाने से कर्ण कृमि नष्ट होते हैं। इब्न ज़ुहर ने इस हेतु इसे सिरके में मिलाकर उपयोग करने का विधान किया है। इसे जिफ़्त के साथ पानी में घोलकर कान में डालने से कर्णनाद रोग शमन होता है।। इसके दाँतों पर मलने से वायु एवं शीत जन्य दंत शूल मिटता है। यदि दांतों में कीड़े लग जायें तो उक्त अवस्था में भी इसे लगाना चाहिये। जैतून के तेल और जौ के आटे तथा पानी में मिलाकर उर अर कंठ पर प्रलेप करने से भीतर जो द्रव संचित होता है, वह द्रवीभूत हो जाता है और वह फेफड़े से निःसृत होकर फेफड़ा शुद्ध हो जाता है। इसको मधु में मिलाकर चाटने से पुरानी खाँसी मिटती है। शेख़ के लेखानुसार इसे १॥ औंकिया (३ तो० ५ मा० ५ रत्ती) की मात्रा में चाटने से फुप्फुसीय व्रण और छातीं आराम होते हैं। सदीद गाज़रूनी ने क़ानून की टीका में उक्त कथन पर अत्यंत आश्चर्य प्रकट किया है। इनके कथनानुसार यदि १॥ औंकिया के स्थान में शेख़ १॥ दाँग अर्थात् ६ रत्ती भी लिखते, तो भी अनुपयुक्त ही होता। क्योंकि फुप्फुसगत विस्फोट रोग में ज्वर साथ होता है और शेख़ के मत से क़त्रान चतुर्थ कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष है। कारण यह जान पड़ता है कि शेख़ ने बिना समयानुकूल मात्रा को कम किये। दीसक़ूरीदूसोक्त कथन की अक्षरशः नक़ल करदी है, जो उचित नहीं है। साहब मिनहाज तो यहां तक कहते हैं कि क़त्रान को केवल बाह्य उपयोग में लाने के सिवाय इसका आभ्यंतर उपयोग ही न करें। इसमें संदेह नहीं कि वास्तव में यथा संभव अकेले वा बिना दर्पघ्न द्रव्य के इसका भक्ष्य-औषध में व्यवहार न करें। इसे शिश्न पर लगाकर स्त्री-संग करने से गर्भधारण नहीं होता। इसे गर्भाशय के भीतर स्थापन करने से गर्भपात हो जाता है और खून जारी हो जाता है। इसे अल्प मात्रा में गुदा के भीतर रखने से आंत्रकृमि नष्ट होते हैं। इसकी वस्ति निरापद नहीं है। यदि बिना इसके काम न चले, तो अल्पतर मात्रा में वस्ति में प्रयोगित करें। इससे वीर्य विकृत हो जाता है। इसके खाने से श्लीपद और पिंडली की रग फूल जाने

(दवाली) में उपकार होता है। परन्तु उक्त लाभार्थ इसका प्रलेप श्रेयस्कर होता है। क्योंकि इसका भक्षण निरापद नहीं है। थोड़ी मात्रा में इसके सेवन से जलोदर नष्ट होता है। इसके मर्दन से जूएँ और जमजूएँ मर जाती हैं। इसके लगाने से वृश्चिक विष और शृंगयुक्त साँप का विष उतर जाता है। इसे मृत शरीर या शव पर लगाने से न मांस विकृत होता है, न उसके अंगोपांग ही अलग अलग होते हैं। कंडू खाज आदि पर इसका लेप गुणकारी होता है। इससे कुत्ते आदि चतुष्पद जीवों की खुजली भी जाती रहती है। इसकी गंध से कीटादि पलायन हो जाते हैं। बारहसिंगे की चर्बी पिघला कर उसमें इसे मिला कर शरीर पर मलने से कीट पतंगादि पास नहीं आते। इब्न ज़हर के कथनानुसार यदि कुष्ठी इसे सदैव चाटा करे, तो वह रोग मुक्त हो जाय। इसे पशमीने के भीतर रखकर यदि स्त्री अपने हाथ में ले लेवे, तो भ्रूण अविलंब पतित हो जाय। यदि थोड़ा सा क़त्रान च्यूंटियों के बिल में डाल दिया जाय, तो वे मर जायें। (ख़० अ०)

टार की फार्माकालॉजी

क़त्रान के गुणधर्म तथा प्रभाव

वाह्य प्रभाव

उड टार (Wood tar) गुणधर्म में तारपीन तैलवत्, किंतु तदपेक्षा निर्बलतर होता है। इसमें क्रियोज़ूट, फेनोल, तारपीन तैल प्रभृति उपादान की विद्यमानता के कारण यह पचन निवारक एवं (Vascular stimulant) प्रभाव करता है। यद्यपि यह इतना उग्र नहीं है कि इससे त्वचा पर छाले पड़ जाँय। तथापि इसके अभ्यंग से कभी-कभी उग्र प्रदाह उत्पन्न होकर, त्वचा पर फुन्सियाँ निकल आती हैं, विशेषत: घन रोमावृत्त स्थलों पर। वातनाड़ियों पर इसका अवसादक प्रभाव होता है। इसके चिरकालीन प्रयोग से मुँह पर प्राय: अतीव कष्टप्रद युवानपिड़िकाओं के निकलने की बहुत सम्भावना रहती है, जिन्हें डाक्टर हेब्रा (Hebra) के शब्दों में टार एक्नी (क़त्रान जनित मुखदूषिका) कहते हैं।

आभ्यंतर प्रभाव

इससे अपाचन विकार हो जाता है। इसके अधिक मात्रा में सेवन करने से कारबोलिकाम्ल जनित विषाक्तता के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं अर्थात् इससे उदर और सिर में कठिन वेदना होती है, वमन होता है और मूत्र का रंग काल हो जाता है। यह अभिशोषित होकर रक्ताभिसरण में मिल जाता है और उत्सर्ग काल में वायुप्रणालीस्थ श्लैष्मिक-कलागत चिरकालानुबन्धी शोथ पर संक्रमण विरोधी (Disinfectant) और जीवाणुहर (Deodorising) प्रभाव करता है और स्वेद स्रावाधिक्य को रोकता है तथा श्लेष्म स्राव को सुगम बनाता है। डॉक्टर येओ (Yeo) के अनुसार इसे सूँघने (Inhalation) वा छिड़कने (Spray) और आंतरिक उभय विध प्रयोग करने से उक्त प्रभाव होते हैं।

आमयिक प्रयोग

वाह्य—टार वाटर क्षत और शिथिल व्रणों के लिये उत्तेजक द्रव है। विचर्चिका जैसे चिरकारी चर्म रोगों के लिये इसका मरहम उत्कृष्ट अनुलेपनौषध है। चिरकारी पामा (Eczema) में भी इससे उपकार होता है।

त्वचा के रोगों में टार सोप (साबुन क़त्रान) का उपयोग भी लाभकारी होता है। यह कई प्रकार का होता है। इनमें से विर्च टार एण्ड सल्फर सोप (Birch Tar and Sulphur soap) या इक्थियोल एण्ड टारसोप अधिक उत्तम होता है।

आभ्यंतर—श्लेष्मानि:सारक रूप से ऊड टार (Wood Tar) को केवल जीर्ण कास, वायु प्रणाली विस्तार और शारदीय कास में प्रयोगित करते हैं। यह शर्बत, कैप्शूल्ज और वटिकारूप में सेव्य है। परन्तु इसे कैप्शूल्ज में देना श्रेयस्कर होता है। सिरप ऑफ टार और सिरप आफ वर्जिनियन् प्रून के योग से निर्मित एपोमॉर्फीन का अवलेह चमत्कारी कासघ्न है।

टार वाटर (अर्क क़त्रान) और लाइकर पाइसिस एरोमेटिकस, (सुगंधित क़त्रानार्क) भी उपर्युक्त लाभ के लिये व्यवहृत होते हैं।

परीक्षित योग

(१) अंग्वेण्टम् पाइसिस लिक्विडी, अंग्वेण्टम् हाइड्रार्जिराई एमोनिएटी पैराफीनम्‌मॉली सबको समांश में लेकर मरहम बनायें। यह विचर्चिका में लाभकारी है।

(२) वैफ्थेलीन १ ड्राम,
अंग्वेण्टम् पाइसिस लिक्विडी १ आउंस,
अंग्वेण्टम् सल्फ्युरस ७ आउंस,
सबको मिलाकर मरहम प्रस्तुत करें। यह कण्डू में उपकारी है।

(३) लाइकर पाइसिस एरोमेटिकस २० मि०
सिरुपस प्रूनी वर्जियानी ३० मि०
सिरुपस कोडीनी ३० मि०
इन्फ्युजम् कस्करेली ½ आउंस पर्यन्त
ऐसी एक-एक मात्रा औषध दिन में तीन बार देवें। यह शारदीय कास (Winter Cough) और जीर्ण कास में लाभकारी है।

क़त्‌रान चोबी–[फ़ा०] कांतरान। चुड़ैल का तेल। दे० "क़त्‌रान"।

क़त्‌रान ज़ग़ाल संग–[फ़ा०] अलकतरा। कोलटार। क़ीर।

क़त्‌रान फ़रआन्–[अ०] एक प्रकार का क़त्‌रान।

क़त्‌रान मअ्‌क़ूद–[अ०] जिफ़्त।

क़त्‌रान मअ्‌दनी–[अ०] अलकतरा। कोलटार। क़ीर।

क़त्‌रान मअ्‌दनी मुसफ़्फ़ा–[अ०] साफ़ किया हुआ अलकतरा। साफ को हुई कोलटार। क़ार मुसफ़्फ़ा।

क़त्‌रान सनोबर–[अ०] एक प्रकार का क़त्‌रान।

क़त्‌रान स्टाकहाल्म–[अं०] क़त्‌रान। कांतरान। चुड़ैल का तेल।

क़त्‌राय–[?] करील। कबर।

क़त्सवर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंधा। स्कंध। श० च०।

क़त्ल–[अ०] (१) वध। हत्या। मारना। (२) वह स्थान जहां पर आघात पहुँचने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाय। मर्म्म स्थान। क़ित्ल।

क़त्लुल् इंसान–[अ०] मनुष्य वध। Homicide

क़त्लुन्नफ़्स–[अ०] आत्म हत्या। खुदकुशी। Suicide.

क़त्लुल् जनीन–[अ०] भ्रूणहत्या। Feticide

क़त्लुल् तिफ़्ल–[अ०] बाल हत्या। शिशु वध। Infanticide

कत्सवर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्कन्ध। कन्धा।

कथ–संज्ञा पुं० [हिं० कत्था] खैर। कत्था।

कथई–संज्ञा स्त्री० [देश०] लोंगंडी। Samadera Indica

कथ-कीकर–संज्ञा पुं० [हिं० कत्था+कीकर] खैर का पेड़।

कथबोल–संज्ञा पुं० [हिं० कत्था+बोल] कत्था और बोल का एक यौगिक जो प्रसूता स्त्रियों को प्रसव के बाद ताकत और दूध बढ़ाने के लिये प्रायः दिया जाता है

कथरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंथारी। रा० नि० व० ८।

कथाप्रसङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विष वैद्य। सँपेरा। मदारी।

वि० [सं०त्रि०] वातुल। बहुत बोलनेवाला। पागल। त्रिका०।

कथिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तक्रादि साधित खाद्य-द्रव्य विशेष, एक प्रकार का सालन। कढ़ी। महेरी। दे० "कढ़ी" यह पाचन, रुचिकारी, लघु, वह्निदीपक, कफ-वात तथा विबन्धघ्न और किंचित् पित्त प्रकोपक है। वै० निघ०। वि० दे० 'कढ़ी"।

कथीर–संज्ञा पुं० [सं० कस्तीर, पा०कत्थीर] राँगा। हिरनखुरी राँगा। वंग। कस्तीर।

कथीरा–[?] कतीरा। कसीरा (अ)।

कथी (सी) रुल् रकब–[अ०] शुकाई। कंगर-खार।

कथील, कथीला–संज्ञा पुं० दे० "कथीर"।

कथु–[कों०] खैर। कत्था।

कथुइम शिकुआ–[मल०] महाबरी बच।

कथो–[गु०] खैर। कत्था।

कथोरी–[सिं०] जंगली हुरहुर।

कद–संज्ञा पुं० [सं० कम्=जल+द, ददाति] बादल। मेघ।

वि० [सं० त्रि०] पानी देनेवाला। जलदाता।

क़द–संज्ञा पुं० [अ० क़द] डील । ऊँचाई । क़ामत । Statuie

कद असिना–[कना०] आँबा हल्दी । जंगली हल्दी ।

कद एरडि–[कों०] जंगली रेंड ।

कदक–संज्ञा पुं० [सं० पुं० चंद्रातप । चाँदनी ।

कदग्नि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मंदाग्नि । थोड़ी आग ।

वि० [सं० त्रि०] मन्दाग्नियुक्त । थोड़ी आग रखनेवाला ।

कद जेमुडी, कदजेमुडु–[ते०] सेहुँड़ । बड़ा थूहर ।

कद तोदाली–[बं०] जंगली काली मिर्च । (Toddalia aculeata,)

कदत्ती–[कना०] कचनार ।

कदन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मरण । विनाश । (२) मारनेवाला । घातक । (३) मारण । मारना । विनाश । (४) मर्दन । मलाई । रौंदाई ।

कदनिक–[ते०] समुन्द्रफल । समुंदर फल ।

कदन्ताथी–[मदरास] हावड़ । मंचिंगी (बम्ब०) । (Dolichandrone falcata, *Seem*)

कदन्न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वह अन्न जिसका खाना शास्त्रों में वर्जित वा निषिद्ध है, अथवा जिसका खाना वैद्यक में अपथ्य वा स्वास्थ्य को हानिकारक माना गया है । कुत्सित अन्न । कदर्य्य अन्न । बुरा अन्न । कुअन्न । मोटा अन्न । जैसे, कोदो, खेसारी, साँवा ।

"हविर्विना हरिर्याति विना पीठेन माधवः ।
कदन्नैः पुंडरीकाक्षः प्रहारेण धनञ्जयः ॥
(उद्भट०)

(२) कुत्सितान्न । खराब खाना ।

कदन्नभोजी–वि० [सं० त्रि०] जघन्य अन्न भोजन करनेवाला । जो खराब अन्न खाता हो ।

कद पट्टु ला–[कों०] कड़ुआ पटोल ।

कद पम–[ता०] समुन्दर फल ।

कदपाल–[ता०] कपाल भेदी ।

कदाप्पि लवु–[मल०] आल । आच्छुक ।

कदबन–[कना०] बन दमनक । बन दौना । (Artemisia Indica)

कदबा–[कना०] बारहसिंगा ।

कदम–संज्ञा पुं० [सं० कदम्बः] (१) एक घास का नाम । (२) एक सुपरिचित सदाबहार बड़ा पेड़ जिसके पत्ते महुए के से पर उससे छोटे और चमकीले होते हैं । इसमें बरसात में गोल गोल लड्डू के से पीले फूल लगते हैं । अतएव संस्कृत में इसे 'प्रावृषेण्य' कहते हैं । पीले पीले किरनों के झड़ जाने पर गोल गोल हरे फल रह जाते हैं । जो पकने पर कुछ कुछ लाल हो जाते हैं । ये फल स्वाद में खटमीठे होते हैं और चटनी अचार बनाने के काम में आते हैं । यह ज्ञात रहे कि पुष्प दण्ड नानाकृति का होता है । जिस वर्त्तुलाकार प्रत्यंगोपरि कदम का फूल सन्निविष्ट होता है, वह वास्तव में फूल वा फल नहीं होता, अपितु कदम के फूल के वर्त्तुलाकार पुष्पदण्ड से भिन्न और कुछ नहीं । यद्यपि ऊपर इसके पुष्पागम का समय बरसात लिखा गया है । पर इसका पुष्पाविर्भाव काल नियत नहीं है । मृत्तिका और जलवायु की अवस्था के साथ पुष्पागम का विशेष सम्बन्ध होता है । बंगाल (राढ़) में रथयात्रा से पूर्व कदम नहीं फूलता है । कोचबिहार में चैत के अंत में कदम का पेड़ फूलता है । बैसाख की रात में कदम के फूल की गन्ध अति मनोरम होती है । वर्षा प्रधान प्रदेश होने के कारण कोच बिहार में ऐसा होता है । इसकी लकड़ी की नाव तथा और बहुत सी चीजें बनती हैं ।

बड़ी शाखाओं से संगृहीत छाल के मोटे चपटे टुकड़े होते हैं जो बाहर से देखने में भूरे और भीतर से देखने में रक्त एवं तन्तुविशिष्ट होते हैं । स्वाद में ये तिक्त और कषाय होते हैं ।

पर्य्या०—कदम्बः, वृत्तपुष्पः, नीपः, ललनाप्रियः, कादम्बरी, अङ्कवृक्षः, सुवासः, कर्णपूरकः, धारा कदम्बः, प्रावृष्यः, कादम्बर्यः, हरिप्रियः, (ध० नि०) कदम्बः, वृत्तपुष्पः, सुरभिः, ललनाप्रियः, कादम्बर्यः, सिन्धुपुष्पः, मदाढ्यः, कर्णपूरकः, धाराकदम्बः, प्रावृष्यः, पुलकी, भृङ्गवल्लभः, मेघागमप्रियः, नीपः, प्रावृषेण्यः, कदम्बकः (रा० नि०), कदम्बः, प्रियकः, नीपः, वृत्तपुष्पः, हलिप्रियः (भा०), अशोकारिः, निपः, (श०),

कादम्बः (अ० टी०), षट्पदेष्टः, (र०) जालः (मे०), सीधुपुष्पः, जीर्णपूर्णः, महाढ्यः (र० मा०), नीपकः, शततारका, हारिद्र प्रियक,–सं० कदम, कदंब, –हिं०, बं० । कदम गाछ –बं० । बाइल्ड सिङ्कोना Wild Cinchona –अं० । ऐन्थोसेफेलस केडंबा (Anthocephalus) Cadamba, *Mig* नाक्लिया कैडंबा (Nau clea cadamba) साकोंसेफेलास कैडंबा Sarco Cephlas Cadamba, *Kurz*) Cadamba, *Roxb.*–ले० । वेल्ल कदंब,–ता० । कड़िमि चेट्टु, कंबे, रुद्राक्षकंब, कदंब चेट्टु,–ते० । कलंबु, कलंब, न्ह्यु, कदम, कदंब, न्हीव, राज कदम–मरा० । कडवाल मर, कड़ेब, कडऊ, कडग, कडबेलु कदबेदु,–कना० । कदंब–गु०, कलम, न्हीओ, न्हीयू–(पंच महल) । हेल तेगा, अरसन तेगा–मैसू० । कदंब, न्ह्यु–बम्ब० । कदंबो उड़ि० । रोधू–आसा० । कोदम–(मीची) । पंदूर लेप० । संको–कोल० । बोल कदम–(चिटागाँग) । कलोन्–सिंहली ।

कदंब वर्ग

(*N. O. Rubiaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—उत्तरी और पूर्वीय बंगाल, पेगू और पश्चिमी समुद्र–तट पर यह जंगली होता है । उत्तर भारतवर्ष में इसके वृक्ष लगाये जाते हैं । इसके सिवा बंबई, पंच महल, ब्रह्मा और सिंहल में भी यह सुन्दर वृक्ष उत्पन्न होता है । सारांश यह कि हिमालय से लंका पर्यंत इसके वृक्ष या तो जंगली होते हैं वा लगाये जाते हैं ।

कदम-भेद—धन्वन्तरीय निघन्टु में धारा एवं धूलि कदंब और राजनिघन्टु में धारा, धूलि एवं भूमि इन तीन प्रकार के कदम के वृक्ष का उल्लेख दिखाई देता है । धाराकदंब के "प्रावृष्य" वा "प्रावृषेण्य" एवं "सुपास" इन पर्य्यायों का यह अर्थ है कि यह बरसात में फूलता है और इसका फूल सुगंधित होता है । इससे यह प्रतीत होता है कि जिसे सचराचर लोग कदम कहते हैं, वही "धाराकदंब" है । धूलिकदंब के नामांतर "वसन्तपुष्प" और "क्रमुक प्रसून" हैं, जिसका यह अभिप्राय है कि धूलि कदंब वसंतकाल में पुष्पित होता है और इसका पुष्प(वस्तुतः पुष्प नहीं प्रत्युत पुष्पधि) सुपारी की तरह होता है । जहाँ तक हमें ज्ञात है, इस देश में 'केलिकदम' शब्द से जिस कदम का अर्थ लिया जाता है, वह भी वसंतकाल में ही फूलता है और उसका फूल आकार में बड़ी बेर वा सुपारी की तरह होता है । अस्तु, धूलिकदंब का ही भाषा-नाम केलिकदम् है, इसमें और किसी प्रकार का संदेह नहीं होना चाहिये । धन्वन्तरीय निघंटुकार ने धारा एवं धूलि उभय कदंब के पर्यायों में नीप शब्द का पाठ दिया है । इससे यह बोध होता है कि "नीप" कदम्ब की साधारण संज्ञा है । धूलिकदंब अर्थात् केलिकदंब का फूल भी सुगंधित होता है । परन्तु धारा कदंब वत् सुन्दर नहीं होता । कोचविहार में केलिकदम को 'खेलिकदम्' कहते हैं । डाक्टर उदय चाँद, डिमक और खोरी प्रभृति ने धाराकदंब का बंगला नाम केलिकदंब लिखा है । वैद्यक शब्दसिंधु के संकलयिता महोदय भी उन्हीं के मत का अनुसरण करने से भ्रम में पड़ गये हैं । केलिकदंब का संस्कृत नाम धूलिकदंब है, धाराकदंब नहीं । इसका विवेचन प्रथम हो चुका है । इस प्रकार धारा एवं धूलिकदंब का निर्णय हो जाने के उपरान्त अब यह देखना है कि 'भूमिकदंब' क्या है ।

धन्वन्तरीय निघंटुकार ने भूमिकदम्ब नाम से किसी प्रकार के कदम का उल्लेख नहीं किया है । भूमिकदम्ब और भूकदम्ब वस्तुतः एक ही उद्भिद् के दो नाम हैं । एक होने पर, भूमिकदंब को कदंब से निर्वासित करके, धन्वन्तरीय निघंटुकार ने सुविचार प्रदर्शन किया है । कारण भूमिकदंब, "मुण्डतिका" अर्थात् मुंडी को कहते हैं और मुण्डतिका वा मुंडी वृक्ष नहीं, अपितु प्रतानवती है । वरन् इस प्रकार के वृक्ष विटपका एक नाम से उल्लेख करना दोषावह न होता । विटप करञ्ज वृक्ष करञ्जवत्, विटपकदम्ब वृक्ष कदम्बवत् ग्राह्य होता । ग्रंथों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इसी कारण टीकाकारों ने कदम्ब शब्द की व्याख्या में "कदम्बः वृक्षकदम्बः" लिखकर (उल्वण सू० ३६ अ० रोध्रादि व० टी०)विटपकदम्ब (भूकदम्ब) का प्रतिषेध किया है । अथवा भूकदम्ब शब्द से क्षुद्र कदम्ब वृक्ष(Nau clea tetrandra)

का अर्थ लिया जा सकता है। रॉक्सवर्ग ने इसे श्वेत कदम्ब (Nauclea tetran dra) लिखा है। उनके अनुसार इसका जन्म स्थान श्रीहट्ट आकृति ६–१२ हाथ उच्च, काण्ड सरल, पुष्पकाल ग्रीष्म ऋतु है। इसको भूकदम्ब वा एक प्रकार का केलिकदम्ब कहा जाता है।

भूमिकदंब के पर्य्याय—भूमिकदंबः, भूनीपः, भूमिजः, भृङ्ग वल्लभः, लघुपुष्पः, वृत्तपुष्पः, विषघ्नः व्रणहारकः–सं०। भूकदम, भुँइकदम–हिं०।

इतिहास

भारतवर्ष कदम का आदि उत्पत्ति स्थान है हिमालय से लंका पर्यंत समग्र भारत-वर्ष में इसके वृक्ष जंगली होते हैं वा लगाये जाते हैं। एतद्देशवासी इसके वृक्ष को अति पवित्र मानते हैं। इसलिये देवालय एवं ग्रामों के समीप इसके वृक्ष प्रायः देखने को मिलते हैं। काली वा पार्वती को यह प्रिय है। श्रीकृष्ण को तो यह वृक्ष बहुत ही प्रिय था। अतएव आज भी झूलने में कदम के फूल व्यवहृत होते हैं। प्राचीन काल में इसके फलों से एक प्रकार की मदिरा बनती थी, जिसे कादम्बरी कहते थे। कादम्बरी मद्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हरिवंश में इस प्रकार लिखा है—किसी दिन बलराम अकस्मात् शैलशिखर पर घूमते-घूमते एक प्रफुल्ल कदंबतरु की छाया में बैठ गये। अकस्मात् मदगंधयुक्त वायु चलने लगी। उक्त वायु के नासाविवरण में प्रविष्ट होते ही उनके मदपिपासा का वेग भड़क उठा। वह कदम्ब वृक्ष की ओर देखने लगे, वर्षा का जल उस प्रफुल्ल कदम के कोटर में पड़ मद्य बन गया था। बलराम अत्यन्त तृष्णाकुल हो वह मदवारि पुनः पुनः पान करने लगे। उस वारि-पान से बलराम मत्त हो गये शरीर विचलित पड़ा था। उनका शारदीय मुखशशी ईषत् चंचल लोचन से घूमने लगा। उस अमृतवत् देवानंद–विधायिनी वारुणी का नाम कदम के कोटर में उत्पन्न होने से ही कादंबरी पड़ा है। यथा—

'कदम्ब कोटरे जाता नाम्ना कादम्बरीति सा।'

(हरिवंश ६६ अ०)

विष्णु पुराण में भी लिखा है—बलराम को गोप-गोपियों के साथ घूमते देख वरुण ने वारुणी (शराव) से कहा था—'हे मदिरे! तू जिनकी अभिलाषा की पात्र हो, उन्हीं अनन्तदेव के उप-भोगार्थ गमन करो। वरुण की बात सुन वारुणी वृंदावनोत्पन्न कदंब-वृक्ष के कोटर में आ पहुँची। बलराम को घूमते–घूमते उत्तम मदिरा की गंध मिली थी। जिससे उनका पूर्वानुराग जाग उठा था। कदम्ब वृक्ष से विगलित मद्य देख वह परम आनन्दित हुये थे। पुनः गोप-गोपियों ने गान करना आरम्भ किया और बलराम ने उनके साथ मदिरा पान की। वि० दे० 'कादम्बरी"

रासायनिक संघट्टन—इसके वल्कल में एक कषाय तत्व होता है। यह कषायत्व सिङ्कोटैनिक एसिड से मिलता जुलता एक अम्ल के कारण होता है। उक्त औषधि में रक्त सिंकोना के स्वभाव का एक सद्योजात ओषित पदार्थ विद्यमान होता है। (इं० मे० मे०—नादकर्णी।

औषधार्थ व्यवहार—फल, पत्र और त्वक्। फल स्वरस—मात्रा १–२ तो०। त्वक् चूर्ण–मात्रा १–२ आना भर। त्वक् क्वाथ एवं स्वरस (१० में १ मा०)।

मात्रा—½ छ० से १ छ०।

प्रभाव—त्वक् वल्य एवं ज्वरघ्न है। फल शैत्यजनक Refrigerant है।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कदम्बस्तु कषायः स्याद्रसे शीतो गुणेऽपि च।
व्रणसंरोहणश्चापि कासदाहविषापहः॥

(ध० नि०)

कदम—कषेला, रस और गुण में शीतल तथा व्रणरोपण और कास, दाह और विष को नाश करने वाला है।

कदम्बस्तिक्त कटुकः कषायो वातनाशनः।
शीतलः कफ पित्तात्ति नाशनः शुक्र वर्धनः॥

(रा० नि०)

कदम—कड़ुआ, चरपरा, कषेला, शीतल, वात–नाशक, कफ नाशक, पित्त के रोगों को नष्ट करने वाला, और शुक्र वर्धक है।

कदम्बो मधुरः शीतः कषायो लवणो गुरुः।
सरो विष्टम्भ कृद्रूक्षः कफ स्तन्यानिलप्रदः॥
(भा० पू० व० ६)

कदम—मधुर, शीतल, कषैला, नमकीन, भारी, दस्तावर, विष्टंभ कारक, स्तनों में दुग्ध उत्पन्न करने वाला और वातकारक है।

कदम्बः कटुकस्तिक्तो मधुर स्तुवरः पटुः।
शुक्रवृद्धिकरः शीतः गुरुर्विष्टम्भ कारकः॥
रूक्षः स्तन्यप्रदो ग्राही वर्णकृद्योनि दोषहा।
रक्त रुङ् मूत्रकृच्छ्रं च वातपित्तं कफं व्रणम्॥
दाहं विषं नाशयति ह्यंकुराश्चास्य तूवराः।
शीतवीर्य्या दीपकाश्च लघवोऽरोचकापहाः॥
रक्तपित्तातिसारघ्नाः फलं रुच्यं गुरु स्मृतम्।
उष्ण वीर्यं कफकरं तत्पकं कफपित्त जित्॥
वातनाशकरं प्रोक्त मृषिभिस्तत्वदर्शिभिः।
शा० नि० भू०

कदम—चरपरा, कड़वा, मधुर, कषेला, खारा, शुक्रवर्द्धक, शीतल, भारी, विष्टंभकारक, रूखा, स्तनों में दूध बढ़ानेवाला, ग्राही, वर्णकारक तथा योनिरोग, मूत्रकृच्छ्र, वात, पित्त, कफ, व्रण, दाह, और विष इनका दूर करने वाला है। इसके अंकुर कषेले, शीतवीर्य, अग्निदीपक और हलके हैं तथा अरुचि, रक्तपित्त और अतिसार को दूर करते हैं। इसके फल—रुचिकारक, भारी, उष्ण वीर्य्य और कफ कारक हैं। इसके पके फल—कफ, पित्त और वातनाशक हैं।

धारा कदम्ब

धारा कदम्बक स्तिक्तो वर्ण्यः शीतः कषायकः।
कटुको वीर्य कृच्छ्रोथ विष पित्त कफ व्रणान्॥
वातं नाशयतीत्येवमुक्तश्च ऋषिभिः किल।
(शा० नि० भू०)

धाराकदम—कड़वा, कषेला, चरपरा, शीतल, वर्ण को उज्ज्वल करने वाला, और वीर्यकारक है तथा सूजन, विष, पित्त, कफ और वात का विनाश करने वाला है।

कदम्बिका

कदम्बिका तु मधुरा शीतला तुवरा गुरुः।
मलस्तम्भ करौ क्षारा रूक्षा स्तन्यकफप्रदा॥
वातला मुनिभिः प्रोक्ता फलं त्वस्यान्तु शीतलं।
तुवरं मधुरं पित्तरक्त दोषहरं मतम्॥
वै० निघ०

कदम्बिका (कदम्बी)—मधुर, शीतल, कषेली, भारी, मलस्तम्भकारी, खारी, रूखी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाली, कफकारक और वातवर्द्धक है। इसका फल—शीतल, कसैला, मधुर तथा पित्त और रक्तविकार नाशक है।

कदम्ब द्वय

कदम्ब युगलं वर्ण्यं विषशोथहरं हिमम्।

दोनों प्रकार के कदम (धूलि और धारा वा महाकदंब)—वर्ण को सुंदर करनेवाले, शीतल तथा विष और सूजन को उतारनेदाला है।

कदम्ब त्रय के गुण—

त्रिकदम्बाः कटुवर्ण्या विषशोफहरा हिमाः।
कषायस्तिक्त पित्तघ्ना वीर्य्यवृद्धिकरा परा॥
(रा० नि०)

तीनों प्रकार के कदम कड़ुवे, चरपरे, कसैले, शीतल, वर्ण्य, विषनाशक, पित्तनाशक, परम वीर्यवर्द्धक और सूजन उतारनेवाले हैं।

कदम के वैद्यकीय व्यवहार

चरक—(१) व्रणाच्छादनार्थ कदम्ब पत्र—कदम की पत्ती से क्षत को आच्छादित करना चाहिये। यथा—

"कदम्वार्जुन निम्बानां.....।
व्रणप्रच्छादने विद्वान् पत्राण्यर्कस्य चाऽऽदिशेत्"।
(चि० १३ अ०)

(२) मूत्र की विवर्णता एवं कृच्छ्रता में कदम—कदम के काढ़े और गोदुग्ध के साथ यथा विधि पक्व घृत पान करने से मूत्र की विवर्णता और उसका कष्ट से आना दूर होता है। यथा—

"विदारीभिः कदम्बैर्वा...घृतम्। घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्ण्ये कृच्छ्र निर्गमे"
(चि० २२ अ०)

वक्तव्य

चरक के वमनोपवर्ग में नीप एवं वेदना स्थापन वर्ग में कदम्ब तथा शुक्रशोधन वर्ग में कदम्ब निर्यास का पाठ आया है। सुश्रुत ने रोध्रादि एवं न्यग्रोधादि गण में कदंब का उल्लेख किया है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—सभी प्रकार के कदम शीतल और रूक्ष हैं। इसके बड़े भेद वा महाकदम्ब को उष्ण लिखा है।

हानिकर्त्ता—शीतल प्रकृति को हानिप्रद है। यह आध्मानकारक एवं कफजनक है।

दर्पघ्न—गरम मसाला और मांस।

प्रतिनिधि—आलूबालू।

प्रधानकर्म—पित्तघ्न।

मात्रा—१-२ तो०।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह कफ और पित्त के दोष को मिटाता और रक्त को सांद्र करता है। अपने प्रभाव से यह स्त्रियों एवं ख्वाजा सराओं के स्तन दीर्घ करता है। यह मांस को सुस्वादु बनाता और निर्विषैल है। —म० मु०।

इसकी पत्ती अत्यन्त शीतल है और यह कफ पित्त एवं रक्त के दोष मिटाती है। —ता० श०।

ग्रामीण लोग इसे अधिकता से खाते हैं, यह पित्तघ्न, हृल्लास निवारक, उष्माहारक, और पिपासाहर है। यह अम्लस्वाद युक्त होता है और मांस के साथ कच्चा पकाया हुआ सुस्वादु होता है। —बु० मु०।

वैद्य कहते हैं कि यह चरपरा, कड़ुआ, मीठा कसेला, खारा, शीतल, रूक्ष और गुरुपाकी है तथा दुग्ध, वीर्य, और शारीरिक शक्ति को बढ़ाता है। यह रक्तदोष, सूजाक, अतिसार, बादी कफ, पित्त, विष और गरमी को दूर करता है। इसकी छाल का काढ़ा पिलाने से ज्वर छूटता है। इसका त्वक् बल्य है। इसके पत्र क्वाथका गंडूष करनेसे मन्वां ? दूर होता है। इसकी हरी कोंपलें कसेली, शीतल, पाचन शक्तिवर्द्धक, तथा लघुपाकी है और अरुचि को निर्मूल करती है। ये सुर्खबादा और अतिसार को लाभ पहुँचाती है। इसके फल चुद्बोधकारक गुरु एवं उष्ण होते हैं, कफ एवं वीर्य उत्पन्न करते और खाने के काम में आते हैं। इसके पके हुये फल बादी, पित्त और श्लेष्मा का नाश करते हैं। फूल और पत्ते पित्तज रोगों एवं रक्तविकार में लाभकारी है और फोड़े फुंसी एवं खाज़ को दूर करते हैं। अपने प्रभावज गुण के कारण कदम के प्रत्यंग स्त्रियों तथा ख्वाजा सराओं के स्तनों को दीर्घता प्रदान करते हैं और कण्ठगत रोगों को लाभकारी है। —ख़० अ०।

नव्यमत

डीमक—कदम का फल जो आकार में प्रायः छोटी नारंगी के बराबर होता है, यहाँ के निवासी खाते हैं और इसे शीतल एवं कफ तथा रक्तदोष को नष्ट करनेवाला मानते हैं। इसकी छाल वल्य और ज्वरघ्न मानी जाती है। तालुपात-रोग में शिशु के सिर पर इसका ताजा रस लगाया जाता है और साथ ही थोड़ा रस जीरा और चीनी के साथ मुख द्वारा प्रयोजित किया जाता है। चक्षु शोथ वा अभिष्यन्द रोग में इसकी छाल का रस नीबू का रस (Lime-juice) अफीम और फिटकरी इन सबको बराबर बराबर लेकर अक्षि गुहा (Orbit) के चतुर्दिक लगाएँ।

(फार्माकोग्राफिया इंडिका, खं० २, पृ० १७०)

आर० एन० खोरी—धारा कदम्ब अर्थात् कदम को लोग वन्य सिङ्कोना कहते हैं। इसका त्वक् बलकारक है, एवं त्वक्-स्वरस जीरे के चूर्ण और चीनी के साथ शिशुओं के वमन-प्रतिकारार्थ व्यवहार किया जाता है। फल शीतल, श्रमापह और ज्वरघ्न होता है। ज्वर में प्यास का प्रबल वेग होने पर फल का रस सेवन किया जाता है। (मेटीरिया मेडिका ऑफ इण्डिया—२ य खं० ३२५ पृ०)

नादकर्णी ने यह अधिक लिखा है—

"इसकी छाल का काढ़ा ज्वर में दिया जाता है मुखपाक (Aphthæ or Stomatitis) रोगमें इसके पत्र क्वाथसे गंडूष कराया जाता है।" (इं० मे० मे० पृ० ७४)

ए० सी० मुकर्जी—मुखपाक रोग में इसके पत्र-क्वाथ का गरगरा वा कुल्लियाँ कराई जाती हैं। (वैट्स डिक्शनरी)

कभी-कभी कदम की पत्ती मवेशियों को खिलाई जाती है। लकड़ी मुलायम एवं सफेद रंग की होती है। पर उसमें कुछ-कुछ पीलापन भी झलकता है। इससे कछार और दारजिलिंग में चाय के सन्दूक बनते हैं। कदम से कड़ियों और बरंगों का भी काम निकलता है। कारण इसकी

लकड़ी हलकी एवं सुलभ होती है। कदम के काष्ठ से नौका और नानाविध उपयोगी वस्तु बनाते हैं। –हिं० वि० को०।

कविराज एन० एन० सेन गुप्त—यह किंचित् तिक्त, चरपरा, कसैला, क्लान्तिहर, (Refrigerant), कामोद्दीपक (Aphrodisiac) पित्तघ्न और विष एवं आक्षेप में उपकारक है।

–पक्की फली का रस मालाबार में उदरशूल में व्यवहृत होता है। विस्फोटों पर इसकी पत्ती और वंशलोचन–दोनों को पीसकर इसका पलस्तर लगाते हैं और ऊपर से पत्तियों की घनी तह रखकर बांध देते हैं। इससे वे पाक को प्राप्त होते हैं। (इं० मे० मे० पृ० ५८६)

(३) कैमा (धूलिकदम्ब वा केलिकदम्ब) एक प्रकार का कदम्ब जिसके पत्ते कचनार की तरह चोड़े सिरे के होते हैं। केलिकदम्ब का वृक्ष धाराकदम्ब वृक्ष की अपेक्षा क्षुद्रतर एवं बहुशाखी होता है। इसके फूल एवं पत्र भी धाराकदम्ब के फूल और पत्र की अपेक्षा क्षुद्रतर होते हैं। वसंत ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसके फूल के ऊपर सफेद २ जीरे नहीं लगते। इसमें वसन्त काल में फूल आना प्रारम्भ होजाता है। सावन तक वा वर्षान्त पर्यन्त आता रहता है। इसकी कड़ुई छाल औषधि के लिए सर्वत्र भारतवर्ष में सुविदित है और बहुमूल्य पीतकाष्ठ नाना प्रकार के कार्यों में व्यवहृत होता है। इसकी छाल के मोटे वक्राकार टुकड़े होते हैं जो बाहर से हलके भूरे वा धूसरित श्वेत और भीतर से रक्ताभ-धूसर और तंतुल होते हैं। इसका स्वाद कड़वा और कसैला होता है।

पर्य्याय—नीपः, धूलिकदम्बः, सुवासः, वृत्तपुष्पकः, (ध० नि०), धूलीकदम्बः क्रमुकप्रसूनः पराग पुष्पः, बलभद्रसंज्ञकः, वसन्तपुष्पः, मकरन्द वासः, भृङ्गप्रियः, रेणुकदम्बकः, (रा० नि०) –सं०। कैमा, करमा, करम, हलदू, हरदू, कदमी, –हिं०। केलिकदम, बँगका, पेट-पुड़िया, दकोम, –बं०। अडिना कॉर्डिफोलिया (Adina Codifolia, *Hook F.*) नॉक्लिया कॉर्डिफोलिया (Nauclea Cordifolia, *Roxb.*) –ले०। मत्तकदम्बे –ता०। पस्पु कदंबे, डडगू, बेत्तगनप, बंदारु, पस्पुकडिमि–ते०। हेदु–मरा०। हेदे, येत्तेग-पेत्तेग, अरसन-तेग, येत्तद, अहुनान–कना०। हरदुआ, हरदू –मध्य० प्रां०। करम-नैपा०। कुरुंब, कोंबसंको–कोल०। कराम –संथाल। बड़ा करम –मल० तिक्का। –(वहराइच एवं गों०)। हरदू, पसपु, करमी, –गों०। होलोंडा –उड़ि०। शांगदोंग, –(गारो) रोघु, केलिकदम –आसाम, अरसनतेग –मैसू०। हलध्वान – गु०।

कदम्ब वर्ग

(*N. O. Rubiaceœ*)

उत्पत्ति-स्थान—शुष्क वन ३००० फुट की ऊँचाई पर। कुमाऊँ से सिक्किम तक और भारतवर्ष के समग्र पर्वती प्रदेशों से लंका पर्यन्त।

रासायनिक संघट्टन—इसमें सिंकोटैनिक एसिड, एक रक्त ओषिद (Oxidised) पदार्थ एक तिक्त तत्व, श्वेतसार और कैलसियम् ऑक्ज़ेलेट ये द्रव्य होते हैं। (मेटीरिया मेडिका आर० एन० खोरी, खं० २, पृ० ३२५)

औषधार्थ व्यवहार—त्वक्।

प्रभाव—तिक्त, बल्य और ज्वरघ्न।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—धाराकदम्बवत्।

धूलीकदम्बकस्तिक्तस्तुवरः कटुको हिमः।
वीर्य्य वृद्धिकरो वरण्यो विष शोथ विनाशकः॥
वातं पित्तं कफं रक्त दोषं चैव विनाशयेत्।

धूली कदम—कड़वा, कसैला, चरपरा, शीतल वीर्य्यवर्द्धक, वर्ण को सुन्दर करनेवाला तथा विष, सूजन, वात, पित्त, कफ और रुधिर के विकारों को दूर करनेवाला है।

नव्यमत

डीमक—यह तिक्त औषधीय छाल और बहुमूल्य पीली लकड़ी के लिए जो नाना भाँति की दस्तकारी के काम आती है। भारतवर्ष में सर्वत्र प्रसिद्ध है।

नादकर्णी—कहते हैं कि इसकी छाल सिंकोना की तरह कड़ुई होती है और मरक ज्वरों (Eudemic fenrs) तथा आंत्र-रोगों की चिकित्सा में व्यवहृत होती है।

(इ० मे० मे० पृ० ५८६)

ए० कैम्पबेल—कठिन शिरःशूल रोगमें इसकी छोटी कली गोल मिर्च के साथ पीसकर नाक में नस्य करते हैं।

आसाम में इसकी जड़ औषध रूप से व्यवहार की जाती है। (इं० मे० प्रां०)

आर० एन० खोरी—केलिकदम्ब की छाल कड़ुई, वल्य एवं ज्वरघ्न है। सिंकोना की भाँति यह भी ज्वर, अजीर्ण, ग्रहणी एवं अग्निमांद्य रोग में लाभकारी है। (मेटीरिया मेडिका ऑफ इण्डिया; खं० २, पृ० ३२५)

भूमि कदम्ब

भूमेः कदम्बकस्तिक्तो वर्ण्यःशीतः कटुःस्मृतः।
वीर्य्यवृद्धि करश्चैव तुवरो विषशोथहा॥
पित्तं कृमींश्च सर्वां श्च मेहान्नाशयतीरितः।
(नि० र०)

भूमि कदंब—कड़वा, वर्ण को उज्ज्वल करनेवाला, शीतल, चरपरा, वीर्यवर्द्धक तथा कसेला है और बिष, सूजन, पित्त, कृमि और सर्व प्रकार के प्रमेह रोगों को दूर करनेवाला है।

राज कदम्ब

नीपस्तु चाम्लस्तुवरो मधुरः शीतलः स्मृतः।
विषं रक्तरुजं पित्त कफं चैव विनाशयेत्॥
फलं तु मधुरं चास्यं शीतलं गुरु पित्तहृत्।
रक्तदोषहरं प्रोक्तमृषिभिस्तत्वदर्शिभिः॥

राजकदम—अम्ल, कषेला, मधुर, शीतल है तथा बिष, रुधिर विकार, पित्त और कफ को दूर करता है। इसका फल मधुर, शीतल, भारी है तथा पित्त और रुधिर के दोषों को दूर करता है।

[नैपा०] सफेद अंड।

क़दम–सज्ञा पुं० [अ० पुं०] [बहु० अक़्दाम] (१) पैर। पग। पाँव। पद। (२) एक माप जो १ फुट वा तिहाई गज का होता है। (३) घोड़े की एक चाल।

नोट—अरबी शब्द क़दम और अंगरेजी शब्द फुट दोनों का अर्थ है पाँव वा पाँव के बराबर की माप। परन्तु भारतवर्ष में कदम की माप साधारणतः ५ फुट की मानी जाती है।

क़दम और रिज्ल का अर्थांतर—टखने से नीचे के भाग को क़दम (पैर) और रान की जड़ से लेकर टखने के जोड़ तक को रिज्ल कहते हैं।

कदम गाछ–[बं०] कदम का पेड़।

कदमा–संज्ञा स्त्री० (पुं०) [हिं० कदम] एक प्रकार की मिठाई जो कदम के फल के आकार की बनती है। बंगदेश के राढ़-अञ्चल में कदमा का प्रचुर व्यवहार है।

[ता०] ढाकुर।

क़दमिया–[यू०] अक़ीमिया। क़दीमिया।

कदमोठ–[ता०] पीला कनेर।

कदम्ब–संज्ञा पुं० [सं० पुं० (१) कदम। कदंब। शततारका। रा० नि० व० ६। भा० पू० १ भ०। वै० नि०। वि० दे० "कदम"। (२) सरसों। सर्षप वृक्ष। मे०। (३) देवताड़क। देवताड़ वृक्ष। रत्ना०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०। माक्षिक। शहद। हे० च०। (४) बलभद्र। बलीवर्द। साँड़। (५) समूह। झुण्ड।

कदम्बक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कदम का पेड़। त्रिका०। (२) हलदुआ। हरिद्रु वृक्ष। रा० नि० व० ६। (३) सरसों। सर्षप वृक्ष। प० मु०। हे० च०। (४) घोड़े के पैर का एक प्रकार का रोग। अश्व के खुरतल में कदम के फूल जैसा उठनेवाला मांसाङ्कुर कदम्बक कहलाता है। यह श्लेष्मा और शोणित से उत्पन्न होता है। (५) देवताड़ वृक्ष। हरिद्रा। हलदी का पौधा। (७) दारुहरिद्रा। दारुहलदी।

कदम्बका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलहंसी। राजहंसिनी। वै० निघ०।

कदम्बचेट्टु–[ते०] कदम।

कदम्बद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सरसों। सर्षप। श० च०।

कदम्ब निर्य्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कदम का गोंद। कदम्बबेष्टक। च० सू० ४ अ०।

कदम्ब पुष्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हलदुआ। हरिद्रु वृक्ष।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कदम का फूल। कदंब कुसुम।

कदम्बपुष्प गन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलम-

शालि । जड़हन । एक प्रकार का धान । रा० नि० व० १६ ।

कदम्ब पुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरखमुंडी । महाश्रावणी । रा० नि० व० ५ । मुण्डितिका वृक्ष ।

कदम्ब पुष्पिका, कदम्बपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोरखमुण्डी । महाश्रावणिका । यथा—"कदम्ब पुष्पी मन्दारी ।" भा० पू० १ भ० । सु० चि० १६ अ० ।

कदम्बम्–[ ] एक प्रकार का कदम जो दक्खिनी हिन्दुस्तान में होता है । कटम्पम, (Siegesbeckia Orientalis)

कदम्ब-वायु–सं० पुं० [सं० पुं०] सुगंध वायु । ख़ुशबूदार हवा ।

कदम्बा, कदम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घघरबेल । वंदाल । देवदाली लता । रा० नि० व० ३ ।

कदम्बानल–दे० "कदम्बवाय" ।

कदम्बादिकषाय–स० पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का क्वाथ । योग—कदम्बमूल की छाल, खदिर और पीली कटसरैया की जड़ समान भाग मिश्रित कर क्वाथ बनायें । इसके सेवन से एक मास में स्त्री का योनि शूल नष्ट होता है । बसवरा० १६ प्र० पृ० २४६ ।

कदम्बिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कदम का पेड़ वै० निघ० । कदम्ब वृक्ष ।

कदम्ब–[ते०] कदम ।

कदर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफेद खैर । श्वेत खदिर । पपरिया कत्था ।

पर्य्याय—सोमवल्क, ब्रह्मशल्य, खदिरोपम, सोमवल्कल, खदिर,श्वेतसार, (२) बबूल,बबूरक वृक्ष–र० मा० ।

गुण—भावप्रकाश के मत से यह विशद, वर्ण के लिये हितकर और मुखरोग, कफ तथा रक्तदोष विनाशक है ।

"खदिराकृतिः श्वेतसारः यथा ।—"खदिर कदर भंडी ।" वा० सू० १५ अ० असनादि–गण । "कदरः खदिराकरः श्वेतसारः सु० सू० ३८ अ० ड० । च० सू० ४ अ० ४३ दश के (३) लकड़ी चीरने का आरा । क्रकच । मे० । (४) अंकुश । आँकुस ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक रोग । मे० रत्रिकं । वह बेर के समान ऊंची गाँठ जो पैर में काँटा वा कंकड़ी (वा ठीकरी) चुभने से पड़ जाती है । और कड़ी होकर बढ़ती है । गुलाबुर । चाँई । टाँकी । गोखरू–हिं० । कुल आँटी, कड़ा, जामुड़ा–बं० । सु० नि० १३ अ० । मा० नि० क्षु० रो० ।

नोट—कीलवत् के स्थान में कहीं कहीं कीलवत् पाठ आया है । वहां उसका अर्थ "कील के समान ऊँची गाँठ समझना चाहिये । यह रोग हाथों में भी होता है ।

चिकित्सा—अस्त्रद्वारा कदर को निकालकर तप्त तैल तथा अग्नि से उक्त स्थान जला देना चाहिये ।

(२) एक प्रकार का पायस । जमा हुआ दूध श० मा० ।

संज्ञा पुं० [अ] (१) केवड़ा कादों (अ०) कादी (फ़ा०) । (२) गँदलापन । अस्वच्छता गँदला होना । धुँधला होना ।

कदरफल–[?] उप्पी ।

कदरम–[मल०] खैर ।

कदरा–संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) असगंध । अश्वगंधा । के० दे० नि० । नि० शि० ।(२)दे०"कदर"

कदरू–[शीराज़ी] अंजरूत ।

कदरो–संज्ञा स्त्री० [सं० कद=बुरा+रव=शब्द] मैना के आकार का एक पक्षी ।

कदर्थन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वेदना । व्यथा । तकलीफ ।

कदल, कदलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) केला । कदलीवृक्ष । (२) पिठवन । पृश्निपर्णी । मे० । श० र० ।

कदल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कपाल । नराङ्गुर । मे० लत्रिक ।

कदलडी–[मल०] अपामार्ग । चिचिंटा ।

कदल तङ्गाय–[मल०] दरयाई नारियल ।

कदल नोराय–[मल०] समुंदरफेन । समुद्रफाग ।

कदलमु–[ते०] केला । कदली ।

कदला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केले का पेड़ । कदली वृक्ष । (२) पिठवन । पृश्निपर्णी । (३) सेमल का पेड़ । शाल्मली वृक्ष । (४) डिम्बिका । मे० लत्रिक ।

कदलय–संज्ञा पुं० [देश०] जंगली मेथी। (Desmodium Triflorum)

कदला वल्ली–[?] ठीकरी बूटी।

कदलिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुचिला।

कदलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कदली"।

कदलिया–संज्ञा स्त्री० [सं० कदली] मोथा।

कदलित्वता, कदलीत्वता–[संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की ककड़ी। वै० निघ०।

कदली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

(१) आदी वा हल्दी की ही जाति का उष्ण कटिबंध स्थित प्रदेशों में होनेवाला एक वृक्ष जिसे उद्भिद् तत्ववेत्ता कोमलकाण्ड–वृक्षों की श्रेणी में गिनते हैं। उद्भिद्शास्त्र में कोमलकाण्ड–वृक्ष उसे कहते हैं जिसके कांड अर्थात् तने में काष्ट का भाग अल्प होता है। पर केले में वस्तुतः कोई कांड नहीं होता। जिसे भ्रमवश कांड मान लिया जाता है, वह पत्र का शेष भाग अर्थात् काण्डकोष रहता है। हिंदी में केले का बकला कहानेवाला अंश उसका समष्टिमात्र है। केले के पेड़ में पिंड-मूल (*Roots, stalks*) होता है। इसी पिण्डमूल से पत्र निकलते हैं। पिण्डमूल के मध्य स्थल से एक सरल गोलाकार श्वेत वर्ण मज्जा (Pith) उत्पन्न होती है। इसी के चारो ओर स्तर-स्तर में कोष छिप काण्ड की भाँति आकार धारण करते हैं। केले के कोमलकाण्ड कहलाने का यही कारण है। काल आने पर उक्त मज्जा पुष्पदण्ड में परिणत हो जाती है। जब नूतन पत्र निकलता है, तब यह मूल से उत्पन्न होकर और मज्जा के पार्श्व पर लटक कर ढालू सूँड़ जैसा बढ़ने लगता है और अन्ततः कल से बाहर हो पत्र दिया करता है। केले का पत्रांश अत्यंत विस्तृत होता है। केले के कच्चे पत्र को मध्य पत्र कहते हैं।प्रत्येक पत्र ६–८ फुट लंबा और १–२ फुट चौड़ा होता है। पत्र की मध्य पशुंका से किनारे तक एक लंबी सरल शिरा पड़ती है। उक्त सरल शिराओं के मध्य अश्वत्थपत्र की जाल की भाँति सूक्ष्म विन्यास होता है। सुतरां थोड़ा प्रबल वायु लगते ही उक्त शिरा फट जाती है। केले के पेड़ का पत्र भाग, वृन्त भाग और काण्डकोष सभी अंशुविशिष्ट रहता है। मज्जा बहुत कोमल होती है। यह केवल पकी-पकी कुछ रसाधार शिराओं का समष्टिमात्र है। मज्जा का दंड ही बढ़कर पुष्प दंड बन जाता है, केले के फूल को संस्कृत में 'मोचा' कहते हैं। मोचा आने से पूर्व केले के स्कन्ध-देश से एक 'असिफलक' निकलता है, जिसे पत्ते का मोचा कहते हैं। पत्तेवाले मोचा के भीतर ही मोचा रहता है। मोचा के पुष्ट होने पर पत्ते के मोचा का तल फटता और मोचा नीचे की ओर लटकने लगता है। नारियल, ताड़, सुपारी, खजूर, प्रभृति वृक्षों में भी पत्ते का मोचा रहता है। मोचा कदली वृक्ष के स्कंध से ऊर्ध्वमुख निकलकर, बाद को कुछ बढ़ने पर निम्नमुख झुक पड़ता है। यह देखने में कोणाकार होता है। लंबाई प्रायः एक फुट और मध्य भाग की चौड़ाई कोई ६ इञ्च रहती है। प्रत्येक मोचा में अनेक विभाग होते हैं। प्रत्येक विभाग में दो सार मुकुल पुष्प चर्मवत् पौष्पिक पत्रावर्त से आवृत रहते हैं। प्रत्येक सार में ९ या १० पुष्प आते हैं। प्रत्येक पुष्प में फल लगता है। पुष्पों के मध्य पुं पुष्प (Male-flowers) निम्न श्रेणी और स्त्री पुष्प वा उभय लिंग पुष्प (Female flowers or Hermaphrodite flowers) ऊर्ध्व श्रेणी में रहते हैं। प्रत्येक भाग के पुष्प जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे उनके आवरक के पौष्पिक पत्रावर्त खिसक पड़ते हैं। जड़ की ओर से पुष्प फल में परिणत होते हैं। प्रत्येक पौष्पिक पत्रावर्त्त में ९ से १० तक फल लगते हैं। एक-एक फलसमूह को हिंदी में 'गहर' कहते हैं। पौष्पिक पत्रावर्त में जितने पुष्प लगते हैं, उतने फल हो नहीं सकते। एक वृक्ष में एक ही समय एक से अधिक गहर नहीं आती। गहर काट लेने से कुछ दिन पीछे केले का पेड़ सूख जाता है। बहुत पुराना हो जाने पर वा गहर छोड़कर नष्ट हो जाने पर वृक्ष के पिंडमूल में ९ से ८ तक कल्ले फूटते हैं।

केला अति शीघ्र शीघ्र बढ़ता है। अच्छी भूमि में इसे लगाने पर यह वृद्धि सहज ही देख पड़ती है।

केला अनेक प्रकार का होता है। प्रायः केले में बीज नहीं होता। पर जंगली और चट्टग्राम प्रदेश

की एक जाति के केले में बीज होता है। इसी बीज से वृक्ष उपजता है। किसी-किसी अन्य जातीय केलेमें बीज होते हुयेभी उससे कोपल नहींफूटती। पहाड़ी प्रदेशों में केलेका वृक्ष बहुत कम होता है। वहाँ यह बढ़ नहीं सकती क्योंकि अन्यान्य वृक्षोंकी प्रतियोगिता में केले के पेड़ को पहाड़ी प्रदेश की कठिन मृत्तिकासे रस खींचकर अपना पोषण करना असम्भव देख पड़ता है। इसी से इसमें कल्ले नहीं फूटते। कल्ले न फूटने से ही पहाड़ी केले में बीज रहता है। फिर भी बीज इतना आता है कि कालपर शस्य वा गूदा बिलकुल नहीं दिखाई देता। बीजों पर पतली मलाई की भाँति कुछ कोमल, चिपचिपा शस्य रहता है। पक्षीगण उक्त शस्य खाने के लिए ही बड़ी दूर से आकर पक्व फल ले जाते हैं। इसी प्रकार सब जगहों में इसी उपाय द्वारा बीज लाये जाने पर केले का वृक्ष उत्पन्न होता है।

केले की कोई एक फ़सल निश्चित नहीं है। प्रत्युत यह वर्ष भर-साल के बारहों महीने सदा फलता रहता है। परन्तु वर्षाऋतु में अधिक फलता है।

केले के पर्य्याय—

केले का पेड़—कदली, सुकुमारा, रम्भा, स्वादुफला दीर्घपत्रा, निःसारा, मोचा, हस्तिविषाणिका (ध० नि०) कदली, सुफला, रम्भा, सुकुमारा, सकृत्फला, मोचा, गुच्छफला हस्तिविषाणी, गुच्छदन्तिका, काष्ठीरसा, निःसारा राजेष्टा, बालकप्रिया, उरुस्तम्भा, भानुफला, वनलक्ष्मी, (रा० नि०) कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसारा, अंशुमतीफला, (भा०) वारणबुषा, रम्भा, मोचा, अंशुमत्फला, काष्ठीला (अ०), कदलः, वारवुषा, वारणवृषा, (अ० टी०), तत्पत्री, नगरौषधिः, (श०), कदलकः, मोचकः, रोचकः, लोचकः, वारवृषा (शब्द र०), वारणवल्लभा, चर्मण्वती, आयतच्छदा, तन्तुविग्रहा, कदलिका, कदेला, सुफलं, -सं०। केला वृक्ष केरा का पेड़, सवेज्, केले का पेड़, -हिं०। कला गाछ-(बं०) शजरतुल्तल्ह्, शजरतुल्मौज़-अ० दरख्ते मौज़-फ़ा०। मुसा सापीण्टम्। Musa sapientum, *Linn.* ले०। प्लाण्टेन ट्री The Plantain tree, बनाना ट्री Banana tree -अं०। बनानीर Bananier, *Platanier* -फ्रां०। जेमीनर पिसंग Gemeiner Pisang-जर०। Fico d Adamo -इट०। मौज़ का झाड़ -द०। वाज़ैचेडि, कदलि, वाट्टे, बलई, बल, बेला, -ता०। अरटिचेट्टु, अनटि-चेट्टु, अरिट-चेट्टु, कदलि, वुरुगचेट्टु, दोंड़तोगे, चक्राकेली, -ते०। पिस्यां, वाश, वाज़मरम्, वल, -वेल्लकाय, पिज़ंग-मल०। बाले गिड, बाले, बाले नडु, -कना०। केलझाड़, केली-चझाड़, केलि-मरा०। केलु-नु-झाड़ केल्य-गु०। केहल्-गहा, कहिकाङ्ग, केहेल्-सिंह०। नपियाबिङ्, नेपियान, अंगहेट्, याथिलन्, हगायी-बर०। केविरो-सिं०। केठ्ठ-मद०। कदली, -कना०। कावालेतव-का०। तल, तत्पमपज-(पाह्नवी) वाह्ना -लु० (छुसाई) गोदङ्ग -(जावा)। केला। -हिं०, बम्ब० गु०, पं०। बिषु (बालिद्वीप) गड़ङ्ग-(जापान)।

केले के फल—कदली फलम् -सं०। केरा, केला-हिं०। कला-बं०। मौज़-द०। मौज़ तल्ह्-अ०, फ़ा०। मुसा सापीण्टम् Musa Sapientum, *Linn.* (Fruit of-Plantain or Banana)-ले०। प्लाण्टेन Plantain। बनाना Banana-अं०। कदली-ता०। अरटि-पंडु, अनटि-पंडु, अमृटि-पंडु कदली, चक्रा केली ते०। वाज़प्-पज़म्, पेसंग-मल०। बाले हण्णु-कना०। केल, पिकूलि केल, मठेली-मरा०। केल, केलिया गु०। केहल, केस्सेल-सिंह०, सिंगासी। डपियासी, हगापी-बर०। गोदंग-(जावा)। कदली, काखाली, तब-करना०।

परिचयज्ञापिका संज्ञा-अम्बुसारा, निःसारा, दीर्घपत्रा, स्वादुफला, सकृत्फला, गुच्छफला।

कदली भेद—

(१) काष्ठकदली—रवेता. राज कदली, विषघ्नी, कदली, पाषाण कदली—पाठांतरे वन कदली, स्वादुकदली-(ध० नि०) काष्ठकदली, कुकाष्ठा, वन कदली, काष्ठिका, शिलारम्भा, दारु कदली, फलाढया, वनमोचा, अरम कदली (रा० नि०)-सं०। कठकेला, जंगली केला-हिं०।

बुनो कला–बं० । काष्ठकेले–म० । Wild Plantain (Musa spientum)

(२) कृष्ण कदली—(यह महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है)—

(३) गिरिकदली—(पार्वतीय कदली वृक्ष-पहाड़ी केला) गिरिकदली, गिरिरम्भा, पर्वतमोचा, अरण्यकदली बहुबीजा, वनरम्भा, गिरिजा, गजवल्लभा (रा० नि०)–सं० । पहाड़ी केला, पर्वती केरा–हिं० ।

(४) सुवर्ण कदली—सुवर्ण कदली, सुवर्ण रम्भा, कनकरम्भा, पीता, सुवर्णमोचा, चम्पकरम्भा, सुरम्भिका, सुभगा, हेमफला, स्वर्णफला, कनकस्तम्भा, पीतरम्भा, गौरा, गौरम्भा, काञ्चन कदली, सुरप्रिया (रा० नि०) कणक मोचा, कणकरंभा–सं० । सोनकेला, रायकेला, – हिं० । चाँपाकला –बं० ।सोनकेली–कों० ।पाटोया–उत्० ।

(५) चम्पक—सुवर्णकदली, चम्पक रम्भा (रा० नि०)–सं० ।चंपा केला–हिं० । चाँपा कला –बं० ।

(६) मर्त्यकदली– मर्त्यमान कला–बं० । मर्तबान केला–हिं० ।

संज्ञा निर्णायनी टिप्पणी—अति पूर्वकाल में भारत में इसे 'मोचक' कहते थे । मोचक का अर्थ 'मुक्त हुआ' है । प्रथमतः वृक्ष के गर्भ से इसका जो फूल निकलता है, वह एक आवरणी के भीतर रहता है । उसी आवरणी के फटने पर फूल आता है । प्रत्येक फूल गुच्छगात्र में दूसरे आवरण से आवृत रहता है । वह आवरण युक्त होनेपर फल निकलता है । इसीसे फल को मोचक कहते हैं। शिवपूजा के मंत्र में हम केले का मोचा नाम देखते हैं—

"एतत् मोचाफलं नमः शिवाय नमः ।"

कोई भी इस स्थल पर कदली, रम्भा वा अन्य संज्ञा का व्यवहार नहीं करता । प्राचीन निघण्टु ग्रन्थ में 'मोचा' शब्द कदली वृक्ष के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । राजवल्लभकार ने मोचा (केले का फूल) के अर्थ में मोचक शब्द का व्यवहार किया है । कदली का अर्थ जल में ही पुष्टि पाना है । केले का वृक्ष कुछ जल प्रधान होता है यह सरस भूमि में ही अच्छी तरह उपजता है । अंशुमत्फला से अंशु वा तन्तु रखनेवाले द्रव्य का अर्थ निकलता है । केले के वृक्षका तन्तु विशेष विख्यात है । वारणवुषा और वारणवल्लभा का अर्थ हस्तिप्रिया है । सकृत्फला शब्द से साल में एक वृक्ष के एक ही वार फल देने का अर्थ निकलता है । भानुफला का अर्थ सूर्योत्तापप्रिया है । वनलक्ष्मी वन की शोभा बढ़ानेवाले फल का द्योतक है । इससे वन में भी घनागम वा प्राणधारण होता है । हस्तिबिषाणी से ऐसा फल अभिप्रेत है जो हस्तिदन्त की भाँति सुगोल, दीर्घ, अथच ईषत् वक्र हो । चर्मण्वती का अर्थ चर्म की भाँति आवरणयुक्ता है । इसी प्रकार अन्य संस्कृत शब्दों के अर्थ भी समझे जा सकते हैं ।

इसकी आरब्य संज्ञा 'मौज़' संस्कृत मोचा शब्द से व्युत्पन्न है । लाटिन भाषा का 'मिउसा" वा "मुजा" शब्द अरबी मौज़से व्युत्पन्नहै । इसकी अंगरेजी संज्ञा 'बनाना' 'ग्रीक' 'अरियाना' Ariana शब्द से व्युत्पन्नहै । ग्रीक अरियाना संभवतः तैलङ्गी भाषा के अरिति शब्द से व्युत्पन्न है । ग्रीक अरियाना का अन्यतम पर्याय औराना (Ourana) है । कितने ही लोग ग्रीक औराना शब्दको संस्कृत के वारणवुषा शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं । क्योंकि ग्रीक भाषा में भारतीय जिन औषधियों का उल्लेख हुआ है, उनका देशीय नाम अधिकांश दक्षिण देशीय भाषा सेही संगृहीत हुआ है । प्राचीन शब्द ग्रीक ग्रंथकार सावफरिस्तुस (Theophrastus) वा रूमीप्लाइनी (Pliny) द्वारा उल्लिखित पल नामक शब्द से व्युत्पन्न है । तदुक्त पल वृक्ष और उसके फल का वर्णन सर्वथा कदली वृक्ष और कदली फल से मिलता-जुलता है। पुनः उन्होंने उसे हमारे ऋषियों का खाद्य भी बताया है । अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'पल' संस्कृत फल वा तामिल 'वल' शब्द से व्युत्पन्न है । मलावार में अब भी इसे 'पल' नाम से ही अभिहित करते हैं ।

उत्पत्ति स्थान और भेद—भारतवर्ष ही केले का आदि वास स्थान है और वह यहाँ सर्वत्र होता है । किंतु पाश्चात्य प्रदेश की अपेक्षा पूर्व प्रदेश और दाक्षिणात्य में ही अधिक होता है ।

पूर्ववंग और दाक्षिणात्य मलावार उपकूल में केला बहुत लगाया जाता है।

पहाड़ी, कोकनी, जंगली और बागी, छोटे, बड़े, हरे वा पीले छिलके के विचार से भारतीय केला नाना प्रकार का होता है। कहा है—

माणिक्यमर्त्यामृत चम्पकाद्या भेदाः कदल्या बहवोऽपिसन्ति। भा०

अर्थात्—माणिक्य, मर्त्य, अमृत और चम्पक आदि केले की अनेक जातियाँ होतीहैं। धन्वन्तरीय निघण्टु में कदली और काष्ठ कदली इन दो भेदों का और राजनिघण्टु में कदली, काष्ठ-कदली, गिरि कदली और सुवर्ण मोचा, इन चार भेदों का उल्लेख पाया जाताहै। इसकेसिवा अधुना नाना स्थान में नाना प्रकार का केला होता है। आसाम प्रदेश में यह पन्द्रह प्रकार का केला जन-साधारण के निकट सुपरिचित है। आठोया, जेया आठिया, भीमकला, कनकधोल, बरत्मानि, छेनिचंपा, मनुहर, भोट् मनुहर, सिमुल मनुहर, पूरा, मालभोग, बरट-मानि, बनकला, जाहाजि और दावजोया, बंगाल में रामरम्भा, अनुपान, मालभोग, अपरिमर्त्य, मर्त्यमान, चम्पक, चीनीचंपा, कन्हाईबाँसो, घीया, कालीबऊ, कांठाली, प्रभृति कई जाति के केले सर्वापेक्षा उत्कृष्ट रहते हैं। इनमें प्रथम चार पहली श्रेणी, द्वितीय चार दूसरी श्रेणी और तृतीय तीन तीसरी श्रेणी के केले हैं। मर्त्यमान को चाटिम वा मर्तवानी केला भी कहते हैं। संस्कृत में मर्त्य नाम से जिस कदली भेद का उल्लेख हुआ है, वह यही है। संस्कृत का चंपक चंपा नाम से विख्यात है इन सबमें बिलकुल बीज नहीं होता। कांठाली जाति के अन्यान्य फलों में भी बीज न रहने पर भी जिसका नाम शुद्ध कांठाली प्रचलित है। उसमें भी बहुत दिन तक एक स्थान पर रहने से बीज पड़ने लगता है इसके सिवा मदनी, मदना, तुलसी, मनुवाँ, रङ्गवीर, प्रभृति कई जाति के केलों में से किसी किसी में थोड़ा बीज होता है और किसी किसी में बिलकुल दिखाई नहीं देता, बंग देश में नाना प्रकार के बीजू केले होते हैं। इनमें यथेष्ट बीज रहने पर भी सिष्टता बढ़ जाती है। यशोहर में 'दये' नामक एक प्रकार का बीजू केला होता है। इसका शर्बत बहुत अच्छा होता है। कलकत्ते के निकटवर्ती स्थानों में 'डोंगरे' नामक जो बीजू केला, उपजता है, उसका फल खाया नहीं जा सकता, किन्तु मोचा अत्यन्त सुस्वादु लगता है। मोचे के लिये ही इसे लगाया जाता है 'सोया' नामक बीजू केला के रस से भाँति भाँति के नेत्र-रोग आराम होते हैं। 'काँच' केला, 'कच्चा' केला, 'अनाजी' केला, प्रभृति केला 'काँच' केला की जाति के हैं। इस श्रेणी में नाना प्रकार के केले देख पड़ते हैं। पकने पर यह सुमिष्ट लगता है। पर तरकारी में ही अधिक व्यवहृत होता है। किसी ने इसे कच वा कच्छ भी लिखा है। क्योंकि इसे कच्ची पकाकर खाते हैं। यह अन्य केला की अपेक्षा बहुत बड़ा, यहांतक कि एक बित्ता तक लम्बा होता है। यह त्रिकोणाकार, बेमज़ा, चिपकता हुआ और फ़ीका होता है। काँच केले को अंगरेजी में 'मुसा पाराडिसिका' (Musa Paradisica) कहते हैं। 'कांठाली' केले को कच्चा भी खाते हैं। इसका नाम 'ठंठा' केला है। अतः कांठाली जातीय केले को 'ठंठा' केला कह देते हैं। यह कंठाली जातीय 'कन्हाईबाँसो' केला कोई एक फुट से भी अधिक लम्बा होता है। और 'कालीबऊ' बहुत मोटा होता है। घीया कांठाली से घृतकी भाँति सुगंध निकलती है। यह उष्ण दुग्ध में डाल देने पर मक्खन की भांति घुलता है।

पकने पर कांठाली केले का रंग कुछ पीला पड़ जाता है और चाटिम पीताभ आता है। किंतु चाटिम के ऊपर फुटकी-जैसे दाग़ उभरते हैं। चंपा केला पकने पर घोर पीत वर्ण का होता है। कांठाली परिपुष्ट होने पर कुछ चौपहल तथा टेढ़ा, चाटिम गोल एवं सोधा और चंपा केला गोल और मोटा होता है। लाल केले को सिंदूरिया या चीना केला कहते हैं। मर्त्यमान और कांठाली केले का उद्भिज्ज शास्त्रोक्त नाम 'मुसा सापीएटम्' (Musa sapientum) है।

बंगाल में कांठाली जाति के केले का गूदा—शस्य कुछ कड़ा होता है। पर 'मर्त्यमान' जातिवाले का शस्य अधिक श्वेत एवं मक्खन की तरह

कोमल तथा 'चम्पक' जातिवाले का ईषत् अम्ल-रसयुक्त, सुगंधित एवं फल के मध्य पीताभ वर्ण होता है। कांठाली के फल का छिलका मोटा और चम्पा का पतला होता है। बंगाली मर्त्यमान केले का ही अधिक आदर करते हैं। किंतु इस देश के युरोपीय प्रवासी 'चंपा' केले को अच्छा समझते हैं। कांठाली और कांच केले का व्यवहार अधिक है।

दाक्षिणात्यवाले हिंदीगुल प्रदेश के पर्वत और वन में साधारणतः जो केला मिलता है उसे अँगरेजी में 'मूसा सुपर्बा' (Musa Superba) कहते हैं। बेसिन प्रदेश का केला सुगंधिविशिष्ट होता है। भड़ौंच में यह प्रचुर परिमाण में उपजता है।

नैपाल में होनेवाले केलों को 'नैपाली केला' वा 'अरटी'(Musane palensis) कहते हैं।

मद्रास में होनेवाले केलों में 'रसकली' नाम का केला सर्वोत्तम होता है। 'नण्डो' जातीय केले का शस्य अत्यंत कड़ा होता है। पर मद्रास के लोग इसे ही उत्तम समझते हैं और पाल डालने के उपरांत पकने पर बेचा करते हैं। 'पाछा' बहुत लंबा होता है। पर पुष्ट होते ही झुक पड़ता है। इसका हरापन पकने परभी नहीं बदलता। 'पेबेल्ली' केला मीठा होता है। परन्तु रंग खाकी देता है। 'सेबेल्ली'संज्ञक केला बहुत बड़ा होता और लोहित वर्ण दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त बंथा,बंगला जमेई पे, सेरवा, जेल्लेपान्नियान, पिदीमोथा प्रभृति कई दूसरी श्रेणी के भी केले उपलब्ध होते हैं।

मर्त्यमान केला चट्टग्राम और तेनासरिम प्रदेश में बहुल परिमाण में उत्पन्न होता है। उक्त दोनों प्रदेश के दक्षिण मर्तवान उपसागर है।अस्तु,किसी किसी के कथनानुसार इसी उपसागर से प्रथम भारत में उक्त केले के आने के कारण इसका 'मर्त्यमान' नाम पड़ा है। पर 'मर्त्य' नामक कदली ही 'मर्त्यमान' केला कहाती है।

बंबई में नौ प्रकार का केला होता है—बसरई, मुखेली, तांबडी, रजेली, लोखसड़ी, सोनकेली, बेसकेली, करजेली और नरसिंही। इनमें तांबड़ी केला लाल होता है। यहाँ कोकनी केला अत्यन्त सुस्वादु होता है। यह खसता होता है। इसके गूदे को सुखाकर भी बेचते हैं।

ब्रह्मदेश में पीत एवं स्वर्ण वर्ण नाना प्रकार का केला देख पड़ता है।

सिंगापुर, मलय और भारतसागरीय द्वीपपुंज में प्रायः ८० प्रकार के आहारोपयोगी केला उपजाते हैं। इसमें बहुत से वृहदाकार और सुगंधि विशिष्ट होते हैं। 'पिस्यांटिम्बाना' नामक केला लाल होता है। इसे वहाँ के लोग 'तामाटे' या 'कांकडा' केला कहते हैं। 'पिस्यां मुलुत बेबेक' जातीय केले के तल में कुछ छिलका वक्रभाव से हंसकी चोंच-जैसा निकल पड़ता है। 'पिस्यां राजा' को राजा केला कहते हैं। 'पिस्याँसुसु' दूधिया केला कहलाता है। इस प्रकार के दूसरे केले का नाम सोनकेला है। शेषोक्त तीनों प्रकार के केले अति सुन्दर, सुमिष्ट और सुगंधि विशिष्ट होते हैं।

यवद्वीप में 'पिस्यां टण्डक' नामक एक प्रकार का केला होता है। इसकी लंबाई प्रायः दो फुट होती है। कदाचित् बंगाल में इसे कन्हाईबांसी कहते हैं।

यवद्वीप में एक प्रकार का और केला होता है। इसके एक वृक्ष में एकही फल लगता है।अन्यान्य वृक्षों की भाँति उक्त मोचे के साथ कांड से नहीं निकलता, वह कांड के भीतर ही पका करता है। सम्पूर्ण पक जाने पर कांड फट जाता है। वह इतना बड़ा होता है कि एक फल से चार मनुष्यों का पेट भली भाँति भर सकता है। उपर्युक्त केलों को छोड़कर यवद्वीप में जो अन्य कांठाली या मर्त्यमान केले उत्पन्न होते हैं, उनमें बीज पड़ते हैं। इस श्रेणी के केलों को उस देश में 'पिस्यां-बुट्ट' कहते हैं।

फिलिपाइन द्वीप के पहाड़ी प्रदेश में उपजनेवाला केला इतना बड़ा होता है, कि एक मनुष्य को उसे उठाकर ले चलने में बोझ जान पड़ता है।

मलयद्वीप के साधारण केले की अँगरेजी वानस्पतिक संज्ञा (Musa glanea) है।

मारिशस द्वीप में गुलाबी रंग का मिलनेवाला केला 'मुसा रोजेशिया' (Musa rosacea) कहलाता है।

पश्चिम भारतीय द्वीप में एक प्रकार का क्षुद्राकार बँगनी केला होता है। इसकी गंध अत्यन्त मनोहारिणी होती है। उस देश के धनीमानी व्यक्ति इसी केले का समधिक आदर करते हैं। इस जाति के केले को अंगरेज 'फिगबनाना' (Fig banana) कहते हैं। इसी जाति का एक प्रकार का क्षुद्राकार केला भी होता है। निम्न श्रेणी के लोग इसका भी अति आदर किया करते हैं। अँगरेज़ी में उसे 'फ़िग सकरीयर' (Fig Sucrier) या लेडी फ़िंगर' (Lady Finger) कहते हैं। लेडी फ़िंगर की वैज्ञानिक लेटिन संज्ञा 'मुसा ओरिएण्टम्' (Musa Orientum) और 'फ़िग बनाना' का 'मुसा मसकुलाटा' (Musa Musculata) है।

केला प्रायः अरब के उपकूलों पर तथा यमन, अमान और बसरा में भी पाया जाता है, यह दो ईशन के बंदरगाहों में भी कम कम होता है। कहते हैं कि ये भारतीय केले की अपेक्षा अधिक सुस्वादु एवं मधुर होते हैं।

चीन देश में उपजनेवाला एक प्रकार खर्वाकार केला होता है। अँगरेजी इसे (Dwarf plantain) अर्थात् 'बौना केला' कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—'मुसा ओकसिनिया'(Musa occinea) और 'मुसा नाना' (Musa nana)।चीनका एक केला 'मुसा कावेण्डिशी' (Musa Cauendishi) कहलाता है। इसके सिवा वहां अन्य खर्वाकार केले भी होते हैं।

अफरीका और पश्चिम भारतीय द्वीप समूह में कांठाली और मर्त्यमान केला ही लगाया जाता है। अबीसीनिया के अति सुन्दर केले का नाम 'मुसा इनसीट' (Musa Ensete) है।

अमेरिका के फ्लोरिडा प्रांत का 'ओरङ्को' केला अति उत्तम होता है। यह उक्त प्रांत के सभी स्थानों में मिलता है। डाल का पका होने पर इसके सदगन्धसे मनुष्य,पशु और पक्षी तक उन्मत्त होजाते हैं।

यूरोप के दक्षिण स्पेन में केला हुआ करता है। किंतु उसके उत्तर काच के मकान वा उष्णगृह के सिवा खुले क्षेत्र में यह नहीं उपजता। क्यूबा द्वीप में कहीं कहीं केला होता है।

एतद्भिन्न अन्यान्य स्थलों में भी केला उपलब्ध होता है। प्रधानतः उष्ण प्रधान प्रदेशों में भी यह होता है। एशिया के पूर्व चीन एवं भारतीय द्वीप समुदाय और पश्चिम तुर्की के अंतर्गत युफ्रेतिस नदी तट पर्यन्त समस्त देश में केला मिलता है। अन्यान्य अंश में जो भूभाग पृथिवी के मध्य-भाग पर स्थित है, वहां ही यह पाया जाता है। भारत में हिमालय के शीत देश में केला दिखाई पड़ता है। उक्त पर्वत के पाद देश पर ३०० उत्तर अक्षांतर पर्यन्त यह अधिक उपजता है। मसूरी, कुमायूँ और गढ़वाल प्रदेश भी इसकी उत्पत्ति से वञ्चित नहीं, किंतु उक्त प्रदेश के केले में बीज के सिवा शस्य बहुत कम रहता है। समुद्र से ७०२० फुट ऊर्ध्वस्थान तक यह उत्पन्न हो सकता है। दक्षिण अमेरिका में आजकल यथेष्ट केला लगाया जाता है। काराकास, गोयेना, डेमेरेरा, जामेका त्रिनिनाद प्रभृति स्थानों में बराबर कितनी ही भूमि पर इसकी कृषि होती है। चट्टग्राम प्रदेश के बनों में केले का वृक्ष इतना अधिक उपजता है। कि उसे देख विस्मित होना पड़ता है। वहाँ हाथी और गयाल नामक महिष जातीय पशु एक प्रकार के केले का वृक्ष खाकर जीवन धारण कर सकते हैं।

पहाड़ी प्रदेश के केले अर्थात् मुसा ऑर्नेटा (Musa ornata) और वनजात केले को जंगली केला अर्थात् 'मुसा सुपर्बा' (Musa saperba) कहते हैं।

चट्टग्राम प्रदेश में भी यह घास की तरह पर्याप्त होता है। अन्यान्य जगहों में खाली मैदान पड़ा रहने से जैसे दूर्वा, मुस्तक प्रभृति तृण उपजता है, वैसे ही चट्टग्राम के खाली मैदान में पहले घास के साथ केला भी निकल पड़ता था। लगाने में जितने केले उखाड़ कर फेंक दिये जाते थे, उनकी संख्या करना असंभव है। आजकल भी नये लगाये जानेवाले केलों का ऐसा ही हाल होता है।

छोटे केले को जिसकी फली एक उँगली के बराबर मोटी और लंबी होती है 'सोनकेला' और 'रायकेला' कहते हैं। बहुत बड़े केले का नाम "भैंसा" व "भैंसिया" है।

केले की कृषि

कठिन, नीरस और केवल बालुकामय स्थान को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की भूमि में केला लग सकता है। गीली और तालाब की निकली मट्टी में यह बहुत अच्छी तरह उत्पन्न होता है। केले में कचिज़ा मट्टी और ख़ाक की खाद दी जाती है।

कदली संबंधीय प्रवाद

तालीफ़शरीफ़ नामक फ़ारसी के निघंटु ग्रन्थ में लिखा है कि केले से कपूर निकलता है। किन्तु आईन-अकबरी इस बात को नहीं मानता। हिंदी के व्रजचंद्र नामक किसी कवि ने भी नायिका भेद में जंघा का वर्णन करते हुये कहा है—"कपूर खायो कदली।" परन्तु यह सत्य नहीं, कपूर इससे सर्वथा एक भिन्न वृक्ष से प्राप्त होता है।

अंगरेजी में लोग इसे बाइबिलोक्त निषिद्ध फल बतलाते हैं। लडलफ के कथनानुसार बाइबिलोक्त 'डुडोइम' (Dudoim) फल ही केला है। कोई कोई इसे निषिद्ध फल न मान स्वर्गोद्यान में मानव का प्रथम खाद्य समझते हैं। अंततः चाहे जो हो पर स्वर्गोद्यान का संभव रहने से ही संभवतः केले का नाम पाराडिसिका(Paradisica) पड़ा है क्योंकि अँगरेज़ी में पाराडाइज़ (Paradisi) स्वर्ग को कहते हैं।

बंगालियों में भी केले के संबंध में इसी प्रकार की अनेककिंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उनमें से एक के अनुसार केले के पेड़ पर गिरने से फिर वज्र स्वर्ग को उठकर नहीं जा सकता। चोर लोग इस वज्र को रात के समय चुपके से उठाकर खिड़की से लोहार के घर डाल आते हैं। और लोहार उससे चोर का खंता बना उसी खिड़की में रख देते हैं। चोर भी रात को आकर चुपके से वह खंता उठा ले जाते हैं। इससे कहते हैं—चोर और लोहार कभी नहीं मिलते। दूसरा प्रवाद केले को षष्ठी देवी का प्रिय खाद्य बतलाया जाता है। तीसरे प्रवादके अनुसार केला बुड्ढोंको खानेमें बहुत अच्छा लगताहै।

इतिहास

भारतवर्ष ही केले का आदि वास स्थान है। यह भारत के अनेक प्रदेशों में अब भी जंगली होता है। जहाँ तक ज्ञात होता है भारतवर्ष में इसकी कृषि प्रागैतिहासिक काल से हो रही है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं। प्लाइनी के अनुसार यूनानी सम्राट् सिकंदर महान ने जब (३२५ ई० सन् से पूर्व) भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, तो उसके साथियों ने भारतवर्षमें इसका अवलोकन किया था। उसके अनुसार ऋषि वा साधुगण उक्त वृक्ष की साया में ठहरते और इसका फल खाते थे। इसी से इसकी लेटिन संज्ञा (Sapientum) हुई। मध्ययुग में इसने औषधार्थ रूप से कुछ प्रसिद्धि प्राप्त की। डिमक के मत से सावफरिस्तुस (Theophrastus) और प्लाइनी दोनों ने पल नामक एक वृक्ष का उल्लेख किया है। उनके अनुसार इसकी पत्ती पक्षियों के पक्ष सदृश और तीन घन फुट (Cubits) लंबी होती है। इसकी छाल से ही फल उत्पन्न होता है जो अपने मधुर एवं सुस्वादु स्वरस के लिये विख्यात है। इसका केवल एक फल (गहर ?) चार व्यक्तियों को तुष्ट करने के लिये पर्याप्त होता है। यह वृक्ष ही कदली अनुमान किया जाता है। 'पल' का अर्थ पत्र है। किंतु मुझे यह ज्ञात नहीं कि केले के अर्थ में कभी इसका प्रयोग हुआ है। (फा० इं० भा० ३ पृ० ४४३)।

अरब्य भाषा में इसे 'मौज़' और 'तल्ह्' कहते हैं। क़ुरान में 'तल्ह्' नाम से इसका उल्लेख हुआ है। मौज़ शब्द के अंतर्गत (Mesne) इसके फल का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार यह कासयुक्त कंठ एवं उरः क्षत और वस्ति प्रदाह में उपकारी है। वे इसे कामोद्दीपक मूत्रल और मृदुरेचक मानते हैं और शर्करा वा मधु के साथ पकाने की सिफ़ारिश करते हैं। इसके अत्यधिक सेवन से अजीर्ण हो जाता है। अबु-

हनीफ़ा (नवीं शताब्दी) ने केले के उत्पादन की विधि का यथावत् वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त अवीसीना, राज़ी, सराबियून मीरमुहम्मद हुसेन, आज़मखाँ आदि। बहुशः यूनानी चिकित्सा शास्त्र के पंडितों ने भी इसके गुण धर्म आदि का विस्तृतोल्लेख किया है।

भारतीयों की दृष्टि में यह अति पवित्र वस्तु है। पूजा, श्राद्ध, विवाह आदि सकल कार्यों में केला व्यवहार में आता है। हविष्यान्न में दूसरा शाक खाना मना है; किंतु कच्चा केला पकाकर उसमें भी खा सकते हैं। बंगाल में षष्ठी पूजा, विवाह और अधिवासादि मंगल कार्य के अवसर पर एक डाल का समूचा केला काम आता है। युक्त प्रदेश में सत्यनारायण की कथा, जन्माष्टमी और रामनवमी आदि पर केले के स्तंभ खड़े किये जाते हैं। बीच के कोमल पत्ते की झाँकी बनती है। मुसलमान भी पीरों को शीरीनी चढ़ाते समय केले से काम लेते हैं। वासंती और दुर्गा पूजा के समय नवपत्रिका में केले के कल्ले काम में आते हैं। भारतीयों के शुभ कर्म में केले का कल्ला मंगलचिह्न की भाँति व्यवहार किया जाता है। उत्सव, पूजा और विवाहादि के समय हिंदू द्वारा तथा पथ में केले के वृक्ष सज्जा देते हैं। हिंदुओं के विवाहादि संस्कार के समय केले की भूमि बनती है। इसी स्थान पर संस्कारार्ह व्यक्ति का स्नान कार्य, चौर कर्म, चूड़ाकरण, कर्णवेध, वरण इत्यादि होता है। बंबई की पतिव्रता कामिनियाँ कदली वृक्ष को धन एवं आयुप्रद समझ पूजती हैं। श्राद्ध में इसका कांडकोष अत्यन्त आवश्यक होता है। इसके द्वारा श्राद्धीय नैवेद्य, जल एवं फल प्रदान के लिये एक प्रकार की नौका प्रस्तुत होती है। पौष-संक्रान्ति को बंगाल की संतानवती रमणियाँ कदली के काण्डकोष की नौका बनाती और गेंदे के फूल से सजाती है। पुनः उसमें दिया जला पुत्र द्वारा नदी वा पुष्करणी के जल पर बहा देती हैं। यह व्रत भगवती भवानी के उद्देश्य से संतान की मनोकामना के लिये किया जाता है।

आर्द्रक वा हरिद्रा वर्ग

(*N. O. Scitamineæ*)

औषधार्थ व्यवहार—बल्कल, नाल, मूल, कन्द, कांड, पुष्प, पत्र, फल और मोचारस।

रासायनिक संघटन—इसके पौधे में ३७% शुष्क द्रव्य होता है। इसके कलले में अत्यधिक टैनिक और गैलिक एसिड (कषायाम्ल) होते हैं। पूर्णतया परिपक्व फल में २२% शर्करा होती है, जिसमें १६% स्फटिक में परिणत होने योग्य होती है। फल के पूर्ण परिपक्व होने के उपरांत उक्त स्फटिक में परिणत होने योग्य शर्करा की मात्रा अनुपाततः घटकर इनवर्टेड शर्कराकी मात्रा परिवर्द्धित होजाती है वही अत्यधिक पके हुये फल में स्फटिकीय और अस्फटिकीय दोनों प्रकार की शर्कराओं का कुल जोड़ (स्फटिकीय=२·८% + अस्फटिकीय=११·८४%) केवल १४·६५% अर्थात् मौलिक मात्रा का ½ रह जाता है। शर्करा के अतिरिक्त इसमें श्वेतसार, अलब्युमिनॉइड्स ४·८ प्रतिशत, वसा १ प्रतिशत तक। अनत्रजनीय सार (Extractives) ६ से १३% तक और भस्म जिसमें फॉस्फोरिक अन्हाइड्राइड, चूर्ण, क्षार, लौह और क्लोरिन प्रभृति होते हैं। पाये जाते हैं। इसमें प्रचुर मात्रामें वाइटामीन'सी' और कुछ मात्रामें वाइटामिन'बी' पाये जाते हैं। परंतु वाइटामीन 'ए' के सम्बन्ध में बहुत विवाद है। कहते हैं कि केले में वे जीवोज (Vitamins) पाये जाते हैं जो जीवोज 'ए' (Vitamin 'A') की कमीके कारण उत्पन्न रोगों को निर्मूल एवं प्रतिरोध करने में समर्थ हैं; पर कम सीमा तक वा किसी प्रकार अत्यन्त मंदगति से। कदली गत जीवोज वर्द्धन शक्ति को बढ़ाते हैं। Promotegrowth) (नादकर्णी इं० मे० मे० पृ० ५७१-२)

पके फल के छिलके की भस्म में (Carbonates of potash and soda), पांशुहरिद (Chloride of potassium) किंचित् सल्फेट संयुक्त क्षारीय फॉस्फेट्स से चूर्ण (Lime), सिलिका (Silica), मृण्मय फॉस्फेट्स (Earthy phosphates) प्रभृति द्रव्य वर्तमान होते हैं। हरे वा कच्चे केले में प्रचुर मात्रा में कषायिन (Tannin) होता है। इसमें श्वेतसार की मात्रा लगभग आलूगत श्वेतसार के बराबर ही होती है। पर पोषण की

दृष्टि से यह उससे अधमतर होता है। केले का पुष्प-दण्ड-स्वरस पोटाश, सोडा, चूर्ण, मैग्नेसिया एल्युमिना (जिसमें किंचित् Ferric acid होता है) क्लोरिन, सल्फ्युरिक अन्हाइड्राइड, फॉस्फोरिक अन्हाइड्राइड, सिलिका और कार्बन अनहाइड्राइड प्रभृति द्रव्यों से संघटित होता है कोमल मूल के स्वरस में अधिक मात्रा में कषायिन तत्व (Tannin) होता है।

औषधि निर्माण—कदल्यादि घृत, हिम प्रपानक (शर्बत), मुरब्बा, फल चूर्ण, चूर्ण का बिसकुट, पत्र व वृक्ष क्षार, पक्व-फल मद्य इत्यादि इत्यादि।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

केला—

कदली मधुरा शीता रम्या पित्तहरा मृदुः।
कदल्यास्तु फलं स्वादु कषायं नाति शीतलम्॥
रक्तपित्तहरं बृष्यं रुच्यं कफकरं गुरुः।
कन्दस्तु वातलो रूक्षः शीतोऽसृक्कृमिकुष्ठनुत्॥

(ध० नि० करवीरादि ४ व०)

केला—मधुर, शीतल, रम्य, मृदु और पित्त नाशक है।

केलेका फल—स्वादु कषैला, किंचित् शीतल-रक्त पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, कफजनक और भारी है।

केले का कन्द—वातकारक, रूक्ष, शीतल, रक्तदोष, कृमि और कुष्ठनाशक है।

बालं फलं मधुरमल्पतया कषायं पित्तापहं शिशिर रुच्यमथापि नालम्। पुष्पं तदप्यनुगुणं कृमिहारि कन्दंपगुं च शूलशमकं कदलीभवं स्यात्॥ अपिच—रम्भापक्वफलं कषाय मधुरं बल्यं च शीतं तथा पित्तं चास्र विमदेनं गुरुतरं पथ्यं न मन्दानले। सद्यः शुक्रविवृद्धिदं क्लमहरं तृष्णापहं कान्तिदं दीप्ताग्नौ सुखदं कफामयकरं संतर्पणंदुर्जरम्॥

(रा० नि० आम्रादि ११ व०)

केले की कच्ची फली—मधुर, थोड़ी थोड़ी कसैली, पित्त नाशक, शीतल और रुचिकारी है इसकी नाल (डंडी) भी पूर्वोक्त गुण विशिष्ट होती है। केले का फूल उससे भी अल्प गुण (अनुगुण) और कृमिनाशक होता है। केले का कंद और पत्र शूल प्रशामक होते हैं।

केले की पकी फली—कसैली, मधुर, बल कारक, शीतल रक्त पित्त नाशक, गुरुतर, मंदाग्नि वाले मनुष्य को अहित कारी सद्यः शुक्रवृद्धि कर्त्ता, क्लमहारक (थकान को दूर करने वाली) तृष्णानिवारक, कांति दायक, प्रदीप्त जठराग्नि वाले को सुखकारक, कफ के रोग उत्पन्न करती संतर्पण और दुर्जर—कठिनता से पचने वाली है।

मोचाफलं स्वादु शीतं विष्टम्भि कफकृद् गुरु। स्निग्धं पित्तास्र तृड्दाह क्षतक्षय समीरजित्॥ पाकं स्वादु हिमं पक्के स्वादु वृष्यञ्चबृंहणम्। क्षुत्तृष्णा नेत्ररुगदहृन्मेहघ्नं रुचि मांस कृत्॥ माणिक्य ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ बहवोऽपि सन्ति। उक्ता गुणास्तेष्वधिका भवन्ति। निर्दोषितास्य लघुता च तेषाम्।

(भा० पू० वर्ग प्र० ६)

कच्चा केला—स्वादु, शीतल, विष्टंभी, कफ कारक (पाठांतर से कफ नाशक) भारी एवं स्निग्ध होता और रक्त पित्त, तृषा, दाह, क्षत क्षय, तथा वायु—इनको दूर करता है। पका केला—स्वादु, शीतल, मधुर पाकी, वृष्य एवं बृंहण है और क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग तथा प्रमेह इनको दूर करता और रुचिकारक एवं मांस वर्द्धक होता है। केले की मणिक्य, मुक्ता, अमृत और चम्पकादि अनेक जातियां हैं इन सबमें उपर्युक्त गुण होते हैं, किन्तु निर्दोषता और लघुता ये गुण अधिक होते हैं।

कदली शीतला गुर्व्वी वृष्या स्निग्धा मधुः स्मृता। पित्त रक्त विकारं च योनि दोषं तथाऽश्मरीम्॥ रक्त पित्तं नाशयतीत्येवमाचार्य्य भाषितम्।

(शा० नि० भू०)

केला (साधारण फल)—शीतल, भारी, वीर्य वर्द्धक, स्निग्ध, मधुर तथा पित्त, रुधिर विकार, योनिदोष, पथरी और रक्त पित्त को दूर करता है।

कोमल कदली फल

कोमलं कदलं शीतं मधुरंच कषायकम्।
रुच्यमम्लं समुद्दिष्ट पित्तनाशकरंच तत्॥
(शा० नि० भू०)

केले की कोमल फली—शीतल, मधुर, कषेली, रुचिकारी, खट्टी और पित्तनाश करने वाली है।

मध्यम कदली फल

तृड्रक्तपित्तादि गद प्रमेहान् फलं कदल्यास्त रुणं निहन्ति। संग्राहिकं तिक्त कषाय रूक्षं तिक्कातिसारं शमयेज्ज्वरं च॥

केले की तरुण फली—प्यास, रक्तपित्तादि रोग और प्रमेहों को दूर करती है तथा यह संग्राहिक, कडुई, कसेली और रूखी है एवं रक्तातिसार और ज्वर को शांत करती है।

मध्यम कदलं किञ्चित्तुवरं मधुरं गुरुः। अग्निमांद्यकरं चैव ऋषिभिः परिकीर्तितम्॥

केले की तरुण (कुछ कच्ची और कुछ पकी) फली—किंचित् कषेली, मधुर, भारी और मन्दाग्नि कारक है।

कदलं मधुरं वृष्यं कषायं नातिशीतलम्। रक्त पित्तहरं हृद्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरुः। तदेव चम्पकाख्यन्तु वातपित्तहरं गुरुः। वृष्यञ्चै वाति शीतञ्च मधुरं रसपाकयोः। कदली मोचकं हृद्यं कफघ्नं कृमिनाशनम्। तृष्णा प्लीहा ज्वरं हन्ति दीपनं वस्ति शोधनम्। कदल्या वलकन्मूलं वात पित्तहरं गुरुः।
(राज०)

केले की साधारण फली—मधुर, वीर्यवर्द्धक, कसेली, किंचित् शीतल, रक्तपित्तनाशक हृदय को हितकारी, रुचिकारी, कफकारक और भारी है। चम्पक केला—वात पित्त नाशक, भारी, वीर्य वर्द्धक, अत्यंत शीतल, मधुर और पाक में भी मधुर है। केले का मोचा—हृदय को हितकारी कफ नाशक, कृमिनाशक, तृष्णानिवारक, प्लीहा नाशक, ज्वरहारक, दीपन और वस्तिशोधक है। कदली मूल—बलकारक, भारी और वात पित्त नाशक है।

संपक्वं पनसं मोचं राजादन फलानि च।
स्वादूनि सकषायाणि स्निग्ध शीत गुरूणि च॥
कषाय विषदत्वाच्च सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्।
(चरक सू० २७ अ० फ० व०)

खूब पका हुआ केला, कटहल और खिरनी इत्यादि फल मीठे, कसेले, स्निग्ध, शीतल और भारी होते तथा कषाय, विशद और सुगंधि युक्त होने से रुचिकारी होते हैं।

मोचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम्।
रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरुः॥
(सुश्रुत सू० ४६ अ० फ० व०)

पका केला मीठा, कसेला, किंचित् शीतल, रक्तपित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, रुचिकारक, कफजनक और भारी है।

कदली वर पक्वफलं मधुरं रुचिरं मृदु वात हरं शिशिरम। क्षतज क्षय दाह निवार्य्यसृजा-युत पित्तविकार निवृत्तिकरम्॥ प्रदराश्मगदं निहरे ल्लघु च प्रतिबंधकरं बलदं न सरम्। अशनात्प्रथमं यदि भुक्तमिदं न शुभं शुभदं त्व शना विरतौ॥
(शा० नि० भू०)

केले की पकी फली—मधुर, रुचिकारक, कोमल, वातनाशक, शीतल तथा क्षतज, क्षय, दाह, रक्तपित्त, प्रदर और पथरी रोग को दूर करती है तथा हलकी निबन्धकारक, बलवर्द्धक, सारक नहीं और भोजन से प्रथम खाई हुई केले की फली शुभ नहीं है और भोजन करते समय हित है।

पक्वं तु कदलं बल्यं तुवरं मधुरं गुरुः।
शीतं वृष्यं शुक्रवृद्धिकरं सन्तर्पणं मतम्॥
मांसकांत्यरुचीनां च वर्द्धनं दुर्जरं मतम्।
कफकृच्च तृषा ग्लानि पित्त रक्त रुजस्तथा॥
मेह क्षुधा नेत्ररोगनाशकं परमं मतम्।
मन्दाग्नीनां विकृतिदमृषिभिः परिकीर्त्तितम्॥
(नि० र०)

हृद्यं मनोज्ञं कफवृद्धि कारि शान्तक्षसन्तर्प-

णमेव वल्यम्। रक्तं सपित्तं श्वसनञ्च दाहं रम्भाफलं हन्ति सदा नराणाम्॥ संग्राह्यपक्वञ्च सुशीतलञ्च कषायकं वातकफंकरोति। विष्टम्भि वल्यं गुरुदुर्जरञ्च आरण्यरम्भा फलमेव तद्वत्॥ (अत्रि० १७ अ०)

सामान्य कदली फल—हृद्य को हितकारी मनोज्ञ, कफवृद्धिकारक, शान्तिकारक, तृप्तिदायक बलवर्द्धक, तथा रक्तपित्त एवं श्वसन—और दाह को दूर करता है। केले की कच्ची फली—संग्राही सुशीतल, कषेली, वातकफकारक, बलवर्द्धक, भारी और दुर्जर—देर में पचनेवाली होती है। जंगली केले के गुण इसी के समान जानना चाहिये।

कदली कन्द—रम्भामूल। केराकन्द—हिं०। कलार पुटे—बं०। अरटिंदुप—ते०।

शीतलः कदलीकन्दोवल्यः केश्योऽम्ल पित्तजित्। वह्निकृद्दाहहारीच मधुरो रुचिकारकः॥ (मद० व० ६) (भा० पू० खं० वर्ग प्र० ६)

केराकन्द—शीतल, बलकारक, बालों के लिए हितकारी, अम्लपित्तनाशक, अग्निवर्द्धक, दाहनाशक, मधुर और रुचिकारक है।

कन्दःकदल्या रूक्षः स्याद्वातलस्तुवरो गुरुः। शीतोवल्योमधुरः केश्यो रुच्योऽग्निमांद्य कारकः॥ कर्णशूलं चाम्लपित्तं दाहं रक्त रुजं तथा सोमदोष रजोदोष कृमीन्कुष्ठं च नाशयेत्॥ (नि० र०)

केले का कन्द—रूखा, वातल, कषेला, भारी, शीतल, बलकारक, मधुर, केशों को हितकारी, रुचिजनक, मन्दाग्निकारक तथा कर्णशूल, अम्लपित्त, दाह, रुधिर विकार, सोमदोष, रजोदोष, कृमि और कुष्ठ—इनका नाश करता है।

वल्यः कदल्याःकन्दः स्यात्कफपित्तहरो गुरुः। वातलो रक्तशमनः कषायो रूक्ष शीतलः॥ कर्णशूलं रजोदोषं सोमरोगं नियच्छति।

केले का कन्द—बलकारक, कफपित्तनाशक, भारी, वातकारक, रक्तविकार को दूर करनेवाला कषेला, रूखा, शीतल तथा कर्णशूल, रजोदोष, और सोमरोग दूर करता है।

कदली कुसुम—रम्भापुष्प। केले का फूल। —हिं०। कलार मोचा वा फूल —बं०।

कदल्याः कुसुमं स्निग्धं मधुरं तुवरं गुरुः। वातपित्तहरं शीतं रक्तपित्त क्षय प्रणुत्॥ (वै० निघ०)

केले का फूल—स्निग्ध, मधुर, कषेला, भारी, शीतल, और वातपित्तनाशक है, तथा रक्त पित्त और क्षय रोग को नाश करता है।

पुष्पं कदल्याः सुस्निग्धं मधुरं तुवरं गुरुः। ग्राहितिक्तं चाग्निदीप्तिकरं वातविनाशनम्॥ किञ्चिदुष्णं च वीर्ये स्याद्रक्तपित्तं क्षयंकृमीन्। पित्तंकफ नाशयतीत्येवं च ऋषिभिर्मतम्॥ (नि० र०)

केले का फूल—स्निग्ध, मधुर, कषेला भारी, ग्राहि—मलरोधक, कड़वा, अग्निदीपक, वातनाशक किंचित् उष्णवीर्य तथा रक्तपित्त, क्षय, कृमि, पित्त और कफ का नाश करनेवाला है।

कदली जल—कदली रस, कदलीसार, केले का रस, केले का पानी, कलार जल—बं०।

कदल्यास्तु जलं शीतं ग्राहकं मूत्रकृच्छ्रहृत्। मेहेतृषां कर्णरोगं चातिसारञ्च नाशयेत्॥ अस्थिस्रावं रक्तपित्तं विस्फोटं रक्तपित्तकं। योनिदोषञ्च दाहञ्च नाशयेत्……॥

कदली जल—शीतल एवं संग्राही है। तथा यह मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, तृषा, कर्णरोग और अतिसार इनको दूर करता है तथा अस्थिस्राव, रक्तपित्त, विस्फोट, योनिदोष और दाह इनका निवारण करता है।

सारं कदल्याः संग्राही चाप्रियंगुरुशीतलम्। तृड्दाह मूत्रकृच्छ्रातिसारमेहांश्च सोमकम् अस्थिस्रावं रक्तपित्तं विस्फोटांश्चैवनाशयेत्। (वै० निघ०)

कदली सार—संग्राही, अप्रिय, भारी और शीतल है। तथा तृषा, दाह, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, प्रमेह, सोमरोग, अस्थिस्राव, रक्तपित्त और विस्फोट इनको नष्ट करता है।

रम्भातोयं शीतलं ग्राहि तृष्णा कृच्छ्रान्मेहान्कर्णरोगातिसारान्। अस्रस्रावं स्फोटकान् रक्तपित्तं दाहं हन्यादस्रयोनिं च शोषान्॥

केले का जल—शीतल तथा ग्राही है और

मूत्रकृच्छ्र, तृषा, प्रमेह, कर्णरोग, अतिसार, रुधिर स्राव, स्फोटक, रक्तपित्त, दाह, रुधिविकार, योनि रोग और शोष—इनको दूर करता है।

कदलीदण्ड—कदलीनाल। केले के वृक्षस्तंभ के भीतर का सफ़ेद कोमल दण्डवत् भाग। कंजियाल, थोड़।

योनिदोषहरो दण्डः कादल्योऽसृग्दरं जयेत्।
रक्तपित्तहरः शीतः सुरुच्योऽग्निवर्द्धनः॥

कदलीदण्ड—रक्त पित्तनाशक, शीतल, रुचिजनक, अग्निवर्द्धक, योनिदोषनाशक और असृग्दर—रक्तप्रदर को दूर करता है।

कदलीमूल—केले की जड़—

वल्यं वातपित्तघ्नं गुरु च।

यह बलवर्द्धक, भारी और वात पित्तनाशक है।

कदलीवल्कल—केले की छाल वा बकला कलार पेटो—बं०।

तिक्तं कटु लघु वातहरञ्च;

(वै० निघ०)

केले की छाल—कड़ुई, चरपरी, हलकी और वातनाशक है।

कदली भेद—

काष्ठकदली—

स्यात्काष्ठकदली रुच्या रक्तपित्तहरा हिमा।
गुरुर्मन्दाग्नि जननी दुर्जरा मधुरा परा॥

(ध० नि०। रा० नि०)

काष्ठकदली (कठकेला) रुचिकारी, शीतल, भारी, मंदाग्निकारक, दुर्जर और अत्यन्त मीठी होती है।

तृष्णादाह मूत्रकृच्छ्र रक्तपित्तघ्नी विस्फोटकास्थि रोगहरी च। वै० निघ०)

यह तृषा (प्यास), दाह, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, विस्फोट और अस्थिरोग का नाश करनेवाली है। (यह ग्राही और हृद्य है)

कृष्णकदली—

कृष्णा तु कदली रुच्या तुवरा मधुरा लघुः।
वायोर्धातोर्वृद्धिकरौ मेहपित्त तृषा हरा॥

(वै० निघ०)

काला केला—रुचिकारक, कषैला, मधुर, हलका, वातकारक, धातुवर्द्धक तथा प्रमेह, पित्त और तृषा को दूर करता है।

गिरिकदली (और आरण्य कदली—जंगली केला)—

गिरिकदली मधुर हिमा बलवीर्य विवृद्धिदायिनी रुच्या। तृष्पित्त दाह शोषप्रशमनकर्त्री च दुर्जरा च गुरुः॥ (रा० नि० व० ११)

पहाड़ी केला—मधुर, शीतल, रुचिकारक, दुर्जर, भारी तथा बलवीर्यवर्द्धक है और प्यास, दाह, पित्त और शोष को निवारण करती है। (इसका फल कषैला, मधुर और भारी है)

सुवर्ण कदली—

सुवर्णमोचा मधुरा हिमाच स्वल्पाशने दीपनकारिणी च। तृष्णापहा दाह विमोचनी च कफावह (कफापहा) वृष्यकरी गुरुश्च॥

(रा० नि० व० ११)

अम्लवर्द्धनीति हृष्टफलं—

सोनकेला—मधुर, शीतल और थोड़ा खाने से जठराग्नि वर्द्धक है तथा प्यास को बुझानेवाला, दाहनाशक, कफवर्द्धक (कफनाशक), वीर्यवर्द्धक और भारी है। निघण्टु रत्नाकर में बल्य और अग्निदीपक इतना अधिक लिखा है।

चम्पक कदली—चम्पकरम्भा, सुवर्णकदली (रा०),

वातपित्तहरं गुरु वीर्यकरं अतिशीतं रसे पाके च मधुरम्। (रा० नि० व० ११ राज०)

चम्पा केला—वातपित्तनाशक, भारी, वीर्यजनक, अत्यन्त शीतल तथा रस और पाक में मधुर है।

सोनकेला—कफवात नाशक, विष्टम्भकारक, अग्निप्रदीपक, दुर्जर, दाहनाशक और रक्तपित्तनाशक है।

महेन्द्रकदली—

महेन्द्रकदली चोष्णा वातस्य च विनाशिनी।
प्रदरं पित्तरोगं च नाशयेदिति कीर्तिता॥

महेंद्रकदली—गरम और वात नाशक है तथा प्रदर एवं पित्तज रोगों को नष्ट करती है।

केले के वैद्यकोक्त आमयिक प्रयोग—

सुश्रुत—कर्णरोग में कदलीस्वरस—कर्णशूल के प्रतीकारार्थ केले के दण्ड-स्वरस को सुहाता गर्म कर उससे कर्णपूरण करें। यथा—

"कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कटुष्णः कर्णपूरणे"

(उ० २१ अ०)

चक्रदत्त—प्रदर रोग में अपक्व कदलीफल—छिलके सहित कच्चे केले को चूर्ण कर गुड़ मिला कफपित्त जनित असृग्दर रोग में सेवन करावें। यथा—

"गुड़ेन चदरोचूर्णं मोचमामम्"

(असृग्दर चि०)

वङ्गसेन—सिध्मरोग में कदली-क्षार—केले का क्षार और पिसी हुई हलदी को एकत्र मिला लेपन करने से सिध्म रोग का नाश होता है। यथा—

"सिध्मम् क्षारेण वा कदल्या रजनी मिश्रेण नाशयति"। (कुष्ठ चि०)

(२) सोमरोग में पक्व कदली फल—कच्चा आमले का स्वरस, चीनी और मधु के साथ पका केला खाने से सोम रोग जाता रहता है। यथा—

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफल रसं मधु।
शर्करासहितं खादेत् सोमधारण मुत्तमम्॥

(सोम रोग-चि०)

भावप्रकाश—श्वास रोग में कदली पुष्प—केला कुन्द और सिरस इन तीनों के फूलों को छोटी पीपरों के साथ पीसकर चावलों के पानी के साथ पीने से श्वास रोग नाश हो जाता है। यथा

रम्भा कुन्द शिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम्।
पिष्ट्वा तण्डुल तोयेन पीत्वा श्वासमपोहति।

(भा० श्वास-चि०)

नोट—यह योग "सुश्रुत" में भी आया है।

बसवराजीयम्—कास में कदलीफल योग—केले का फल एक भाग और काली मिर्च का चूर्ण अर्ध भाग दोनों को खूब मिलाकर खाने से पुरातन श्लेष्म विकार वा कास दूर होता है। यथा—

विकारे श्लेष्मणा जाते भक्षयेत्कदली फलम्।
मर्दितैर्मरिचैस्सार्धं हन्ति श्लेष्म चिरन्तनम्॥

(अष्टमप्रकरण पृ० १४६)

वक्तव्य

प्राचीन निघण्टु ग्रन्थों में 'मोचा' शब्द का व्यवहार कदली वृक्ष के अर्थ में हुआ है। राजवल्लभकार ने मोचा (कदली-पुष्प) के अर्थ में मोचक शब्दका व्यवहार किया है। राजनिघण्टुकार ने कदली कन्द-कदली पुष्प और कदली नाल के गुण पृथक्-पृथक् निर्देश किया है। इनके मत से केले का पत्ता शूल प्रशमक है। चरक के 'दशेमानि' वर्ग में कदली का पाठ नहीं आया है। सुश्रुत ने क्षारयोग्य वृक्ष वर्ग में कदली का पाठ दिया है। (सू० ११ अ०)। कदली कंद संभव क्षार जल को कोच बिहार के लोग 'छयाँका' कहते हैं। उक्त छयाँका लवण के बदले व्यंजन में पड़ता है। विशेषतः शाक पाक काल में छयाँका का व्यवहार उसमें भी अधिक होता है। वहाँ यह प्रथा बहुत काल से प्रचलित है। टीकाकार विजय रक्षित ने लिखा है "क्षारोदक साधितं व्यजनमनन्ति काम-रूपादौ" (प्रहणी व्याख्या मधुकोष) गरीब लोग केले के क्षार से मैला कपड़ा धोते हैं।

यूनानी मतानुसार गुण दोष

प्रकृति—प्रथम कच्चा में गर्म एवं तर। किसी किसी के मत से समशीतोष्णानुप्रवृत्त। मतांतर से सर्दी और गर्मी में मातदिल और तर द्वितीयकक्षा में है। कच्चा केला शीतल है। किसी-किसी के मत से इसकी जड़ उष्ण एवं रूक्ष है।

हानिकर्ता—वायु और श्लेष्मा उत्पन्न करता है। सुद्दा (अवरोध) डालता है। आध्मानकर्ता है। अति मात्रा में भक्षण करने से यह आमाशय को निर्बल करता है। यह कुलंज और पेचिश पैदा करता है। पाचन शिथिल हो जाता है। प्रधानतः शीतल प्रकृतिवालों के अंगों और अंड के भीतर पानी उतर आता है विशेषतः उस समय जब इसके ऊपर पानी पिया जाय। वैद्यों के कथनानुसार मूत्रगत पीतवर्णता और औदरीय प्रदाह उत्पन्न करता है।

दर्पनाशक—लवण, मधु और शुण्ठी वा (सोंठ का मुरब्बा) तथा शर्करा। वैद्यों के मतसे उष्ण जल और काली मिर्च।

प्रतिनिधि—शर्करा और कन्द-मिश्री।

गुण, कर्म प्रयोग—यह अल्पाहार-क़लीलुल् ग़िज़ा और प्रकृतिमार्दवकर है। सांद्रता के कारण इसका अधिक भक्षण अवरोधजनक है। शैत्योत्पादन के साथ साथ यह आमाशय में अधिक तरी भी उत्पन्न कर देता है। अस्तु यह गुरु एवं विष्टंभी है। यह भक्षण करनेवाले की प्रकृति के अनुकूल पित्त एवं श्लेष्मा उत्पन्न करता है। निज मार्दव कारी गुण के कारण वक्ष और कंठगत दाह को लाभकारी है। अपनी रतूबत फ़ज़लिया अवशिष्ट आर्द्रता के कारण शुक्र वृद्धि करता है और वृक्क एवं वस्ति के लिये सात्म्य है। क्योंकि मूत्र प्रवर्तन करता है।—त० न०।

केला अत्याहार—क़सीरुल्ग़िज़ा, कांतिकारी (जाली) स्थौल्यकर, चिरपाकी, हृद्य और वक्ष मार्दवकर है तथा यह शुष्क कास एवं तालु और कंठगत दाह एवं कर्कशता (खरखराहट) को लाभ पहुँचाता है। यह आमाशय को क्लेदित करता अतिसार को नष्ट करता और (उष्ण प्रकृति वालों को) कामोद्दीपन करता है। मु० ना० ब० मु०।

यह वृक्क की कृशता को दूर करता है। सिरके और अर्क नीबू के साथ इसका प्रलेप खालित्य वा गंज, कंडू तथा खर्ज रोग को लाभकारी है। इसकी पत्तियों का प्रलेप शोथ विलीनकर्त्ता है। इसका छिलका जलाकर अवचूर्णित करने से व्रण द्वारा स्रावीभूत रक्त रुकता, व्रण पूरण होता और घाव सूख जाता है। इसकी जड़ पिलाने से उदरज कृमि निःसरित होते हैं। इसका नोहार मुंह खाना हानिकर है। इसके भक्षणोपरांत जल पान करना भी अहितकर है। —ब० मु०।

कदलीमूल शीतल एवं शरीर शक्तियों और अंगों को बलप्रद तथा कफ, पित्त एवं रक्त विकार नाशक है। सूज़ाक में इसे पानी में पीसकर पीने से उपकार होता है पर कहते हैं कि इससे कामावसाद उत्पन्न होता है। जामा इब्न बेतार के कथनानुसार इसका पका मीठा फल प्रथम कक्षा के मध्य में उष्ण और प्रथम कक्षा के अंत में तर है। इसका कच्चा फल शीतल, तर, गुरु, आध्मान कारक और कफकारक है तथा पित्त, वात एवं रक्त के दोष वह प्रदाह और आघात-प्रत्याघात जनित क्षतों का निवारण करता है। उष्ण प्रकृति वालों के काम का उद्दीपक और वृक्क की कृशता एवं वक्ष की कर्कशता को लाभकारी है। भारत निवासी इसके कच्चे फल को गोश्त के साथ वा बिना गोश्त के पकाकर खाते हैं यह शुक्रप्रद, कामशक्तिप्रद और मस्तिष्क बलप्रद है, ऐसा लेखक के अनुभव में भी आया है। यह आमाशय को निर्बल करता तथा भारी है। इसका दर्पघ्न इलायची का दाना है। यूनानी चिकित्सा शास्त्र विद् इसका अवगुण नाशक कंद—मिश्री तथा सोंठ का मुरब्बा लिखते हैं—ता० श०।

यह अत्याहार—क़सीरुल् ग़िज़ा और चिरपाकी है। पाचनोपरांत सांद्र एवं श्लैष्मीय रक्त उत्पन्न करता है। यह शरीर को स्थूल करता और उल्लास प्रद है तथा वक्ष में मृदुता उत्पन्न करता एवं उष्ण प्रकृति वालों को कामोद्दीपक है। यह व्रणादि को कांति प्रदान करता और वृक्क-कार्श्य का निवारण करता है और शुष्क कास एवं कंठस्थ कर्कशता एवं दाह को लाभ पहुंचाता एवं अतिसार वा दस्त को बंद करता है। परन्तु शेख़ के मत से यह मृदुसारक—मुलय्यिन है। इसके अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से पेट में भारीपन उत्पन्न होता है। वैद्यों के मत से भारी नहीं है। अनुभवी लोगों का कहना है कि यदिकेला भक्षण करने से पेट में गुरुत्व एवं विष्टंभ उत्पन्न हो जाय, तो छोटी किस्म का कालादाना ३॥ माशे पीसकर शीतल जल से खा लेवें। तुरन्त उपकार होगा। उत्तम यह है कि उष्ण प्रकृतिवाला इसे खाकर थोड़ी सी सिकञ्जबीन बजूरी चाट ले और शीतल प्रकृति वाला मधु चाट ले। यह वस्तिगत दाह का निवारण करता, अधिक पेशाब लाता और निज प्रभाव से कुत्ते के लिए विष है।

सिरका और नीबू के रस के साथ प्रलेप करने से खाज तथा सिरका गंज आराम हो जाता है।

खरबूजे के बीजों के साथ इसे पीसकर लगाने से छींप वा झांई मिटती है।

इसके मर्दन करने से कपोलों का रंग निखरता है।

इसकी पत्ती गर्मी की सूजन पर बांधने से सूजन उतर जाती है।

केले के पेड़ की जड़ उदरज कृमि को नष्ट करती है। यह जलत्रास वा हलकाव रोग को लाभकारी है।

यदि स्त्री केले की फली के महीन चूर्ण का हमूल करे—योनि में पिचुवर्ति धारण करे, तो गर्भ रह जाय।

ज़ाद ग़रीब में लिखा है कि कदली-वृक्ष-कांड को ज़रा सा चीरकर रात को उसमें मिला एक बरतन रख देवें, जिसमें पानी टपक कर उक्त पात्र में एकत्रित होजावे। दिन में उसे लेकर उस आदमी को पिलावें, जिसे सदाह मूत्र आता हो अवश्य उपकार होगा।

जब कोई प्राणी विष के कारण आसन्नमृत्यु हो, तब उसे केले के पेड़ का पानी तीन-तीन छटाँक की मात्रा में आध-आध घण्टे पर पिलाना चाहिये। शीघ्र लाभ होगा।

विद्वानों का कथन है कि साँप केले से भागता है। अस्तु, कदली-वृक्ष चाहे कितनी ही घनी झाड़ियों के मध्य हो (सिवाय एक विशेष प्रकार के साँप के जो हरे रंग का होता है और देश के केवल कतिपय विशिष्ट भागों में पाया जाता है), उनमें साँप कदापि नहीं मिलेगा।

ज्योंही किसी को सर्प काटे, उसे चाहिये कि केले के पेड़ से तुरत ताजा अर्क निकालकर दो प्याले की मात्रा में पिला देवें। यह उपचार अनुभव द्वारा ९४ प्रतिशत सफल प्रमाणित हो चुका है। केले का ताजा अर्क यद्यपि बे स्वाद होता है। किंतु परीक्षित उपाय है।

केले का नीहार मुँह खाना उत्तम नहीं तथा शीतल प्रकृति को एवं शीतल स्थान में हानिप्रद है। उष्ण प्रकृति को एवं उष्ण स्थान में सात्म्य और गुणकारी है।

वैद्यों के वर्णनानुसार इसकी कच्ची फली शीतल और रूक्ष किंचित् बिकसी और कड़वी है। पकी फली उष्ण और तीक्ष्ण है। किसी से मत से शीतल, मधुर, स्निग्ध और किंचित् बिकसी है। इसके तने का गाभा बिकसा और शीतल है। इसका पानी किंचित् तिक्त एवं शीतल है। इसकी जड़ भी शीतल है।

कच्ची फली की तरकारी शुक्रमेह, वीर्यस्राव और स्वप्नदोषाधिक्य में उपकारी है। इससे रक्त तिसार आराम होता है।

पकी फली गुरु एवं वल्य और देह स्थौल्य कारक है। यह प्यास बुझाती कास श्वास को दूर करती है। इससे शूल, पित्त एवं रक्त के दोष मिटते और वक्ष गत प्रदाह का नाश होता है।

पकी फली खाने से बहुमूत्र रोग मिटता है। किंतु यूनानियों ने इसे मूत्र-प्रवर्त्तक लिखा है। स्त्री के गुह्यांग से जो श्वेत द्रव स्रावित होता है, उसके लिये इसकी पकी फली खिलाना चाहिये।

बहुमूत्र रोगी को वैद्य लोग एतत्साधित घृत सेवन कराते हैं।

अग्निदग्ध और छालों की दाह मिटाने के लिये शिशु केले के पत्र खिलाना चाहिये।

जिस रोग में गीली पट्टी बाँधी जाती है, उसे गीली बनी रहने के लिये, उस पर कदली-पत्र बाँध देना चाहिये।

दुःखती हुई आँख पर वा अन्य नेत्र रोगों में आँख के ऊपर छांह रहने के लिये, कदली-पत्र बाँधना चाहिये।

विशूचिका जन्य पिपासा शमनार्थ केले के तने का स्वरस पिलाना चाहिये अथवा उससे गण्डूष कराना चाहिये। उक्त स्वरस द्वारा गण्डूष करने से मसूढ़े के रोग आराम होते हैं।

देह को सुदृढ़ एवं बलिष्ठ बनाने के लिये केले की फली अत्युत्तम फल है।

आग से जल जाय, तो उस पर केले की फली का प्रलेप करें।

केले को उबाल कर आतशक के क्षतों पर बाँधना चाहिये।

कदली-वृक्ष-मूल को क्वथित कर पिलाने से आँत्रस्थ कृमि मृत प्राय होते हैं।

पित्त प्रकृति वालों को केले की फली खाने से आमाशय, यकृत तथा फुस्फुस और मूत्र की गर्मी मिट जाती है।

केले की छोटी और पकी फली खिलाने से चिरकालानुबंधी अतिसार और आँव बंद होते हैं।

केले की बड़ी क़िस्म की सूखी फली खिलाने से मसूढ़े के रोग आराम होते हैं।

कदली क्षार निर्माण विधि—केले के वृक्ष को जलाकर उसकी राख को छः गुने पानी में घोलकर अष्ट प्रहर पर्यन्त धर रखें। तदुपरांत उसे भली भाँति मलकर गाढ़े कपड़े में छानकर स्वच्छ जल ले लेवें। पुनः उक्त जल को मिट्टी वा कलई चढ़े हुये पात्र में भर कर आग पर चढ़ा कर औटावें। जब जल मात्र जल कर तल भाग में चूने की तरह की एक चीज़ शेष रह जाय, तब उसे उतार सुखा कर बोतल में भरकर रख लेवें यह लवण की जगह काम आती है और अम्लपित्त को मिटाता है।

उपर्युक्त विधि से केले के पत्र और छाल को भी जलाकर नमक निकालते हैं इसकी राख में इतनी शोरियत—है कि बंगाले में रजकगण इसे साबुन की जगह काम में लाते हैं। केले की कच्ची फलियों को छील कर पकावें और दही में मलकर शक्कर वा नमक-मिर्च डाल कर खिलायें, इससे दस्त और आँव बंद होते हैं।

पुरानी इमली का गूदा थोड़े पानी में मलकर उसका शीरा—निकालें। फिर उसमें पकी फली का गूदा और पुराना गुड़ वा मिश्री मिलाकर आँव पड़ने के प्रारम्भ में पिलायें।

हरे कच्चे केले को दूध में सुखाकर महीन पीस लें। मंदाग्नि वाले को उक्त आटे की रोटी बनाकर खिलाने से न तो उसे अध्मान होता है और न अम्लोद्गार आते हैं। केले की फली के आटे की रोटी लवण के साथ देने से शिशु के दस्त और आँव बन्द होते हैं।

केले की कोमल जड़ के स्वरस में दम्मुल अख़्वैन— ख़ूना खराबा पीसकर पिलाने से उदर शूल मिटता है।

केले का खार और खाँड पानी में मिलाकर पिलाने से दिल की गर्मी शांत होती है।

केले की कच्ची फली खिलाने से रक्त वमन और बहुमूत्र रोग आराम होता है।

इसकी फली में लवण मिलाकर खिलाने से आँव बंद होती है।

इसकी जड़ पीसकर पिलाने से पित्त विकार शांत होता है।

रक्ताल्पता वा पांडु रोग अर्थात् पित्त में इसकी जड़ पीसकर पिलाना चाहिये।

केले की जड़ का रस मुर्छावादा और रक्तोष्मा को दूर करता है।

उस शिशु को, जिसे मात्रा से अधिक अफीम देदी हो, केले की छाल और पत्तों का रस पिलाना चाहिये।

इसकी छाल के अढ़ाई तोले रस में हल करके पिलाने से पेशाब की रुकावट मिटती है।

इसके फूलों के रस में दही मिलाकर खिलाने से आँव और असमय ऋतु का आना आराम होता है।

केले की कच्ची फली सुखा पीसकर बालकों को फँकाने से उनके दस्त बन्द होते हैं।

केलेकी कच्ची फलियाँ सुखा-पीसकर उसमें खाँड मिलाकर फँका देवें और ऊपर से दूध की लस्सी पिला देवें। इससे सूज़ाक आराम होता है।

संखिया का ज़हर उतारने के लिये कदलीमूल स्वरस पिलायें।

केले की जड़ के स्वरस में घृत और शर्करा मिलाकर पिलाने से सूज़ाक आराम होता है।

पुराने दस्त बंद हो जाने के उपरांत शेष रहे हुए अजीर्ण के लिये केले की कच्ची फली की तरकारी बनाकर खिलाते रहें।

इसके पेड़ का रस सुँघाने से नकसीर बंद होती है।

इसकी जड़ आदमी के पेशाब में पीसकर कुछ गर्म करके कपड़े पर लगाकर बद पर बाँधने से वह विलीन हो जाती है।

इसका फल घी में तलकर काली मिर्च के साथ खाने से कफ का विकार दूर होता है।

कदलीमूल-स्वरस में समान भाग मधु मिलाकर पिलाने से वमन बंद होता है।

इसका रस पिलाने से शराब का ज़ोर कम हो जाता है।

इसके पके फल और आँवलों के रस में मधु और खाँड़ मिलाकर सेवन करने से सोम रोग नष्ट होता है।

इसके खार और हलदी के प्रलेप से श्वित्र के धब्बे दूर होते हैं।

इसके पत्तों की राख में थोड़ा लवण मिलाकर फंकी देने से खाँसी और कफ दूर होता है।

केले के तने का रस पिलाने से मूत्र प्रणालीस्थ प्रदाह का निवारण होता है।

केले के पीले पत्तों को कड़ुए तेल में जलाकर, उस तेल में मुरदासंख मिलाकर लगाने से श्वित्र के धब्बे दूर होते हैं।

इसके पके फल की २४ तोले मींगी घी के साथ निरंतर ४१ दिन तक खाने से पुरख़ोरी-का रोग दूर होता है।—ख़० अ०

नव्य मत

खोरी—कदलीफल तर्पक, पोषक एवं कषाय है। यह गलक्षत, शुष्क कास एवं मूत्रकृच्छ्रादि वस्ति-उत्तेजनजात पीड़ाओं में हितकर है। कदली-मूल क्रिमिघ्न है। शुष्कीकृत अपक्व कदली-चूर्ण उत्तम पुष्टिप्रद खाद्यौषध है। यह उदरामयग्रस्त रोगी के लिये प्रशस्त पथ्य है। पुराण कास रोग में केले का शर्बत (Syrup) फलप्रद होता है। रक्त पित्त एवं रक्त निष्ठीवन रोग में केले के तने में चीरा देने से निर्गत हुआ रस पिलाने से बहुत उपकार होता है। इसकी कोमल पत्तियाँ व्रण बंधनादि के लिये 'गट्टा पार्चा' को प्रतिनिधि स्वरूप काम में आती हैं। अधिकन्तु यह ब्लिष्टर के लिये स्निग्ध एवं शीतल आच्छादक है। एतद्देशीय लोग नेत्ररोग में केले के नये कोमल पत्ता द्वारा नेत्र को आच्छादित कर रखते हैं। इसमें चक्षु शीतल रहता है और सूर्योत्ताप से सुरक्षित रहता है। (मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया—आर० एन० खोरी—२ य खंड, पृ० ५६६)

डिमक—एमर्सन के अनुसार कदली वृक्ष का रस विशूचिका जात तृष्णा प्रशमनार्थ व्यवहृत होता है। पेरीरा (मेटीरिड मेडिका—२ खं०, पृ० २२२) ने अपक्व कदली-फल-चूर्णका पुष्टिकरत्व गुण स्वीकार किया है। प्रचुर परिमाण में निशास्ता होने के कारण इसके तने का अधोभाग भारतवर्ष में अकाल कालीन बहुमूल्यवान् खाद्य सामग्री है। केलेके अपक्व फल द्वारा प्रस्तुत श्वेतसार बंगालमें उदरामयोपचारमें व्यवहृत होता है। इसका एक नमूना जिसका हमने परीक्षण किया, किञ्चित् कषाय तत्व के साथ बहुधा पूर्णांश में विशुद्ध श्वेतसार घटित था। कहते हैं कि अमेरिका में केले के फल का प्रपानक (Syrup), चिर कालानुबंधी कास रोग की एक मात्र फलप्रद औषध है।

केले के फल का प्रपानक प्रस्तुत करने की विधि—केले के फल के अत्यंत छोटे छोटे टुकड़े कर समान भाग चीनी मिला किसी आवृतमुख-पात्र (Syrup) में स्थापन करें। फिर उक्त पात्र को किसी ऐसे शीतल जल परिपूर्ण पात्र में स्थापन करें जिसमें उक्त पात्र उत्तम रूप से निमज्जित होजाय। तदुपरांत उसे चूल्हे पर चढ़ाकर मंदाग्नि से यहाँ तक पकायें कि जल खौलने लगे। फिर शीतल होने के लिये उसे आग से उतार दें। शीतल होने पर पात्र मध्य स्थित शर्बत का व्यवहार करें।

मात्रा—चाय के चम्मच से १-१ चमचा घंटे घंटे पर देवें।

(डिमक—फार्माकोग्राफिया इंडिका—२ य खंड, पृ० ५४४—५)

उदय चन्द दत्त—केले के कच्चे फल को संस्कृत में 'मोचक' कहते हैं और यह शीतल एवं कषाय माना जाता है। बहुमूत्र (Diabotes) रोग में कदल्यादि घृत रूप में इसका अत्यधिक व्यवहार होता है।

ऐन्सली—केला समग्र भारतीय फलों में निःसंदेह सर्वाधिक सुस्वादु और अम्लता से सर्वतः रिक्त एवं नाजुक आमाशय के लिये सबसे अधिक निरापद फल है। इसके अतिरिक्त यह अत्यन्त पोषक है और हिंदू चिकित्सक उष्ण प्रकृति वाले एवं पित्त रोगी को सर्वदा पथ्य रूप से इसकी व्यवस्था देते हैं। फलत्वक् के ठीक नीचे के खुरदरे आवरण को खुरचकर पृथक कर देते हैं। इसमें ऊपर से शर्करा और मिष्ट दुग्ध मिलाने से

इसका स्वाद और बढ जाता है। पूर्वीय द्वीपोंका यह प्रधान मेवा है। वहां इसके कच्चे फल के छोटे २ टुकड़े कर उसकी कढ़ी प्रस्तुत करते हैं। यह स्वाद में आलू की तरह होते हैं। (मेटीरिया इंडिका–१ खं० पृ० ३१६–७)

सी० टी० पीटर्स, एम० बी० जंद्रा दक्षिण अफ़ग़ानिस्तान—उत्तम जाति के केले का पका फल चिरकारी प्रवाहिका अतिसार में गुणकारी है। बड़ी जाति के केले का शुष्क फल मूल्यवान् स्कर्वी रोग निवारक (Anti-Scorbutic) है। उत्तरी बंगाल में इसके शुष्क पत्र और वस्तुतः समग्र वृक्ष को जला देते हैं। फिर राख को एकत्रित कर पानी में घोलकर वस्त्रपूत कर लेते हैं। इससे एक प्रकार का क्षारीय घोल प्राप्त होता है। जिसमें प्रधानतया पोटास के लवण पाये जाते हैं। जिनका प्रयोग अम्लपित्तहर और स्कर्वीहर औषध रूप से विशेषतया कढ़ी में होता है। जहाँ साधारण लवण सहज सुलभ नहीं, वहाँ कढ़ियों को व्यञ्जित करनेके लिए लोग इसका व्यवहार करते हैं।

—इं० मे० प्लॉ०

एन० सी० दत्त असिस्टेंट सर्जन दरभङ्गा—(१) मुझे प्रवाहिका और अतिसारोपयोगी यह एक खाद्यौषध ज्ञात है। भली-भांति उबाला हुआ हरा केला और दही में रुचि के अनुसार शर्करा वा लवण मिला सेवन करें।

(२) पका केला और पुरानी इमली का गूदा—इनको खूब मलकर पुराना गुड़ वा मिश्री मिला देवें। बंग देशवासियों की यह घरेलू दवा है, जिसका व्यवहार प्रवाहिका के प्रारम्भ में होता है।

(३) कष्टप्रद आध्मान और अम्लत्व युक्त अजीर्ण रोग में तिरहुत के कतिपय भागों में धूप में सुखाये हुये कच्चे केले के आटे की चपाती काम में आती है। मुझे एक ऐसे रोगी का ज्ञान है जिसमें यह स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि केवल पानी में पकाया हुआ सादा साग्दाने के पथ्य से भी सख्त उदरशूल होगया था। चपातियां सूखी ही थोड़े लवण के साथ खाई जाती हैं।

—इं० मे० प्लॉ०

आर० ए० पार्कर, एम० डी०, सिविल सर्जन—"मिलित पक्व कदलीफल, इमली और साधारण लवण प्रवाहिका रोग में बहुत ही उपयोगी है। प्रवाहिका की उग्र और चिरकारी दोनों दशाओं में मैंने उक्त औषध का व्यवहार किया और कभी असफल नहीं रहा। निःसंदेह इसे अमोघौषध कह सकते हैं। और जनसाधारण एवं चिकित्सा-व्यवसायी दोनों से मैं इसको विश्वास पूर्वक शिफ़ारिस कर सकता हूं। यह सामान्य एवं सुलभ है तथा शिशुओं को इसका निरापद व्यवहार कराया जा सकता है। यह खाने में अप्रिय नहीं होता और न इसका कोई कुप्रभाव ही होता है। सुतरां यह इपीकाक्वाना की अपेक्षा श्रेयस्कर होता है। साधारण दशा में केवल एक मात्रा ही पर्याप्त होता है और इसकी तीन-चार मात्रा से पूर्ण आराम हो जाता है। रोगी को चुपचाप और हलके पथ्य पर रखें। इसकी वयस्क मात्रा यह है—

पका केला १ आउंस, पकी इमली का गूदा ½ आउंस, साधारण लवण ¼ आउंस भली भाँति मिलाकर तुरत सेवन करें। दिन में दो या तीन बार इसका उपयोग किया जा सकता है।"

जे० एच० थार्नटन, बी० ए०, एम० बी० सिविल सर्जन मुँगेर—"केले की कोमल जड़ में प्रचुर परिमाण में कषायिन (Tannin) होता है। और वायुप्रणाली तथा प्रजननांगों द्वारा रक्तस्राव होना रोकने के लिये इसका बहुल प्रयोग होता है। प्रदग्ध कदलीवृक्ष की भस्म में प्रचुर मात्रा में पोटाश के लवण होते हैं, जिनका अम्लपित्त (Acidity), हृद्दाह और उदरशूल (Colic) में अम्लता निवारक रूप से व्यवहार होता है। रक्तनिष्ठीवन और बहुमूत्र (Diabetes) रोगियों में इसकी कच्ची कोमल फली पथ्य रूप से व्यवहार की जाती है।—इं० मे० प्लां०

मेजर डी० आर० थॉम्सन्स, एम० डी०, सर्जन, सी० आई० ई० मदरास—"प्रवाहिका रोग में केले के फल में लवण मिलाकर उपयोग करते हैं। इसकी जड़ का चूर्ण पित्तहर (Antibitions) है और यह रक्तार्शता और प्रकृति

दोष (Cachexia) रोग में व्यवहृत होता है।

आर० एल० दत्त सर्जन पटना—कहते हैं कि इसके वृक्ष का रस लघु गुण विशिष्ट होता है।

जे० मेरलॉगे सर्जन, पूना—उन शिशुओं को जो मात्रा से अधिक अफीम देने के कारण दुख भोग रहे हों, केले के पत्र और वृक्ष-बरकल का स्वरस प्रायः दिया जाता है। एक आउन्स (२॥ तोला) केले के वृक्ष-बरकल के स्वरस में एक आउन्स घी मिलाकर देने से रेचन (Brisk purgative) कार्य करता है।

ई० ए० मारिस आनरेरी सर्जन—प्रवाहिका वा चिरकारी अतिसार ग्रस्त एतद्देशवासियों को केले की क्षुद्र अपक्व फली की कढ़ी बनाकर सेवन करते हुये देखा है।

टी० आर० मुदेलियर, सर्जन, मदरास—"साधारण मूत्ररोधजन्य रोगोंमें कदली-मूल-स्वरस में सोहागे का लावा और कलमी शोरा घोलकर प्रयोजित करते हैं। अतिसार और प्रवाहिका रोग में कदली पुष्प स्वरस में दही मिलाकर देते हैं।

लाल मुहम्मद, होशंगाबाद, सी० पी०—शिश्वतिसार में धारक रूप से इसके सुखाये हुये कच्चे फल का चूर्ण काम में आता है। बहुशः प्रकार के अतिसार एवं सूजाक में भी यह उपयोगी है।

जे० पार्कर, एम० डी०, डिप्युटी सेनिटरी कमिशनर, पूना—"अधम प्राणियों में मल्ल द्वारा विषाक्तता निवारणार्थ केले की जड़ का रस काम में आता है। कहते हैं कि इसमें घी और शर्करा मिलाकर पिलाने से सूजाक आराम होता है।

एस० एम० सरकार, सर्जन, मुर्शिदाबाद—"चिरकारी अतिसार से मुक्त होने के उपरान्त, भली प्रकार उबाला हुआ, इसका कच्चा फल, एतद्देशवासियों का उत्तम खाद्य है।

दातव्य चिकित्सालयों में व्रण-बंधनार्थ गट्टापारचा टिश्यू की प्रतिनिधि रूप से इसकी पत्ती बहुत प्रयोग में आती है।

एच० डी० टटलियम्, एम० डी०, एम० आर० ई० पी० (लंडन) अहमदनगर—"जहांतक मुझे ज्ञात है, क्लिष्टर लगाये हुये सतह के लिये केले की पत्ती सर्वाधिक स्वच्छ एवं सर्वोत्कृष्ट व्रण-बंधन है। अन्य व्रण-बंधनाच्छादनार्थ भी यह उपयोगी है।.....।" —इं० मे० प्रां०।

आर० एन० चोपरा, एम० ए०, एम० डी०—"केले का वृक्ष समग्र भारतवर्ष में सामान्य रूप से होता है। इसकी हरी कोमल पत्ती संक्रांत धरातल (Denuded surfaces) के लिए उत्तम आच्छादन का काम देती है और देशीय शल्यकर्म में इसका प्रचुरता से उपयोग होता है। पका फल-मृदुता-कारक, स्निग्धतासंपादक और जीवोज सम्बन्धी उपादानों (Vitamin content) से परिपूर्ण है।

केले (Musa paradisiaca) की जड़ कृमिघ्न; पुष्प (मोचक) कषाय, काँड-स्वरस कर्णशूल एवं रक्तनिष्ठीवनोपयोगी है। जंगली केला (Musa sapientum) भी गुणधर्म में केले के समान होता है। और यह सर्प विशेष (Boa-con trictor) के दंश में उपयोगी होता है।" —इं० ड्रु० इं०।

नादकर्णी—"पका केला स्निग्ध एवं पोषक है। कच्चा केला शीतल और संग्राही है और यही सुखाया हुआ। स्कर्वीनाशह (Antiscorbutic) है। प्रातःकाल सेवन करने से सम्यक् परिपक्व केला मृदुसारक (Laxative) होता है। जड़ पित्त निवारक (Antibilions) होती और मूल्यवान् परिवर्तक मानी जाती है। वृक्ष-स्वरस रक्तस्तम्भक होता है।

केला पुष्टिप्रद फल है। यह वृक्ष के तने पर सर्वोत्तम प्रकार से पकता है। तने से भिन्न अन्यत्र पकाया हुआ उतना अच्छा नहीं होता। इसका कच्चा फल बिलेषतः रक्तनिष्ठीवन एवं बहुमूत्र रोगी के लिए बहुमूल्य खाद्य सामग्री है। सुखाया हुआ वा शर्करा द्वारा संरक्षित केला स्कर्वीरोग नाशक (Antiscorbutic) है। यह अतिसार में भी गुणकारी है। धूप में सुखाये हुये हरे केले के आटे की बनी चपाती आध्मान एवं

अम्लपित्त (Acidity) संयुक्त अजीर्ण रोग में प्रयोगित होती है। कहते हैं कि आमाशयदाह (Gastritis) में दुग्ध मिश्रित केले के आटे का लघु आश (Gruel) सुपाच्य खाद्य-सामग्री है। खाद्य विशेष Banana dessert शर्बत, केला, खाद्य विशेष (Banana toast) शुष्क केला, भृष्ट केला प्रभृति नाना प्रकार से यह उपयोगी फल खाने के काम आता है। इसके पके फल में लौह होता है, अतएव यह पांडु के रोगियों (Anaemic persons) को अतिशय लाभकारी है। चिरकारी प्रवाहिका एवं अतिसार में अर्धभाग इमली और किंचित् लवण मिला हुआ केला बहुमूल्य आहार है। आमाशय नैर्बल्य-जनित अजीर्ण (Atonicdy-pepsia) रोग में पके केले का आसुत स्वरस (Fermented juice) व्यवहार में आता है। संग्रह-ग्रहणी (Sprue), अतिसार और स्कर्वी रोग में एक केले को खूब धोकर आधपाव दूध में मिलावें। और इसी प्रकार प्रतिदिन तीन-तीन बार देवें। उक्त अभिप्राय के लिए कच्चे केले का शोरबा (Soup) भी प्रस्तुत होता है। शिशुओं के व्यवहारार्थ लवण के बदले इसमें चीनी वा मिश्री का उपयोग करना चाहिये। अमेरिका में एक प्रकार का शर्बत केला ख्यात है जिससे क्लांतिहर पेय और कासहर प्रभावकारी औषध प्रस्तुत होती है। केले के वृक्ष के जलाने से प्राप्त हुये राख में पोटास के लवण पाये जाते हैं। अस्तु; अम्लपित्त (Acidity). हृदाह और उदर-शूल में उपयोगी होते हैं। शोथ युक्त (Inflamed) और विस्फोट-युक्त धरातल के लिये इसकी मृदु कोमल पत्ती आच्छादन (Dressing) का काम देती है।

विधि यह है—सर्व प्रथम ब्लिस्टर को हटा देवें पुनः केले की पत्ती के एक टुकड़े पर किसी मीठे तेल (Bland oil) से चुपड़ कर उक्त धरातल Denuded surface) पर चिपका देवें।

पट्टी दिन में दो बार वा आवश्यकता पड़ने पर बारम्बार बदलते रहना चाहिये।

अन्यमत

कच्चा केला बहुत कड़ा होता है और खाने के काम नहीं आता। इसकी तरकारी अवश्य बनती है। खाना भी सुस्वादु बनता है। कच्ची फली गुण में शीतल और स्वादु में कसैली और कुछ कुछ मधुर एवं अम्ल होती है। यह गरिष्ट, गुरु एवं संग्राही है, और कफ एवं वात के रोग उत्पन्न करती है। यह वल्य है और गर्मी को दूर करती है। इसकी अधपकी फली तीव्र पिपासा को शांत करती और बहुमूत्र रोग को लाभ पहुँचाती है। यह कड़ुई, कसैली और रूखी होती है और रक्तातिसार को भी लाभकारी है। इसे ज्वर में भी देते हैं। यह नेत्र को लाभप्रद है, किंतु पाचन विकार उत्पन्न करती है। केले की पकी फली अत्यंत सुस्वादु, मधुर और किंचित् कसैली होती है। यह समशीतोष्ण वीर्यवर्द्धक क्लांतिहर, उग्र पिपासाहर और कांतिदायिनी है। परन्तु यह चिरपाकी होती है। अस्तु, अजीर्ण-रोगी को हानिप्रद है। अलबत्ता यह उत्तम पाचन शक्तिवाले को गुणकारी है। यह रक्तप्रदर श्वेतप्रदर आदि की रोगों में असीम गुणकारी एवं सिद्धौषधि है। यह अरुची-रोग में भी गुणकारी है। यह शक्तिप्रद है एवं वीर्य स्तंभन करती, शरीर को स्थूल करती, मांस की वृद्धि करती, उष्ण प्रकृति वालों में कामोद्दीपन करती, इक्षुमेह (डियाबेटस) को लाभ पहुँचाती, दृढ़-कार्य को दूर करती और यह शुष्क कास और गले की खरखराहट को लाभकारी है। इसकी जड़ उदरज-कृमि नष्ट करती है। यह उल-आस रोग (दाउल् कलब) को लाभकारी है। इसके पत्तों की राख रजोरोध में गुणकारी है। यह वायु और कफकारक है। दर्पघ्न इसका लवण, सोंठ और मधु है। परन्तु बंगाले की तरफ प्रथम इसे भक्षण कर ऊपर से कच्चा चावल चबाते हैं इससे यह हज़म हो जाती है। खाने से पहले खाना हानिप्रद है। जड़ी बूटी में खबास।

पके हुये केले की पत्ती, दूध में कई बार सानकर, लगातार कुछ दिन खाने से, योनि से खून जाना बंद हो जाता है।

पका हुआ केला और आमले का स्वरस लेकर

इन दोनों से दूनी शक्कर भी मिला लेवें। इस नुस्खे के कुछ दिन बराबर सेवन करने से प्रदर रोग निश्चय ही आराम हो जाता है। अथवा प्रथम दो द्रव्यों में मिश्री और शहद मिलाकर, कुछ दिन सेवन करने से प्रमेह या पानी-समान धातु का गिरना आराम हो जाता है।

सवेरे-शाम, एक-एक पका हुआ केला छः-छः माशे घी के साथ खाने से, आठ दिन में ही प्रदर रोग में लाभ जान पड़ता है। इससे यदि किसी को सर्दी प्रतीत हो तो इसमें चार बूँद शहद भी मिला लेवे, इससे प्रमेह, प्रदर और धातुरोग दोनों आराम हो जाते हैं, केला प्रमेह-नाशक है।

केले के पत्ते खूब महीन पीसकर, दूध में खीर बनाकर, दो-तीन दिन खाने से प्रदर रोग में उपकार होता है।

केले की पकी फली, विदारीकंद और शतावर इनको एकत्र मिलाकर, दूध के साथ, सवेरे ही पीने से सोम रोग नष्ट हो जाता है।

केले की पकी फली, आमलों का स्वरस, शहद और मिश्री इन सबको मिलाकर खाने से सोमरोग और मूत्रातिसार अवश्य आराम हो जाते हैं।

केले की राख और श्योनाक के पत्तों की राख हरताल, नमक और छोंकरे के बीज—इनको एकत्र पीसकर लेप करने से बाल गिर जाते हैं।

केले के पेड़ के भीतरी भाग को छाया में सुखाकर, पीस-कूटकर चूर्ण बना लेवें। इसमें से ६ माशे या १ तोले चूर्ण मिश्री मिलाकर खाने और ऊपर से जल पीने से प्रमेह रोग का नाश होता है।

पका केला वातज और पित्तज कास को दूर करता है। एक केले को गहर में छिलका हटाकर २ काली मिर्च या १ पीपर खोंसकर, रात में, ओस की जगह में रख देवें, सवेरे ही छिलका हटाकर पहले मिर्च या पीपर खा लेवें। तदुपरांत केला। इस उपाय से सूखी और पित्त की खाँसी जाती रहती है।

पका केला स्वादिष्ट, शीतल वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारक और मांसवर्द्धक है। भूख प्यास, चक्षुरोग और प्रमेह का नाश करता है। कच्चा केला तासीर में शीतल, चिरपाकी, दस्त के रोकने और बाँधनेवाला, कफ-पित्त, रुधिर-विकार, घाव, क्षय रोग और बादी को नाश करता है।

अतिसार-संग्रहणी में, कच्चे केले को उबालकर छील लेते हैं। पुनः दो-चार लौंगों का छौंक देकर केले को दही, धनिया हल्दी, सेंधानमक, गोल मिर्च मिलाकर पकाने से अत्यंत स्वादिष्ट तरकारी बन जाती है। यदि खानेवाला रोगी न हो तो ज़रा-सी अमचूर की खटाई और लाल मिर्च डाल देने से ऐसा स्वादिष्ट साग बनता है कि, खाने वाले उँगलियाँ चाटते हैं।

प्यास के लिये हैज़े—विशूचिका में केले के खंभे का जल निकालकर देना अच्छा है। इससे विशूचिका के रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। इसकी मात्रा ४ तोले की है। उक्त जल के पीने और लगाने से साँप का विष, संखिया-विष, हरताल विष और चूहे का विष नष्ट होता है। केले के पानी से पेशाब साफ़ होता है।

हमारे यहाँ तो सर्प आदि विषैले जानवरों के काटने पर केले का जल देने की पुरानी चाल है। अब तो डाक्टर भी इसे सर्प-विष की उत्तम दवा कहते हैं।

इसके सिवा, केले के पानी के पिलाने से सूजन, खाँसी, श्वास, अम्लपित्त, पीलिया, कामला, पित्त विकार, दाह, यकृत की सूजन, तिल्ली का बढ़ना, रक्तपित्त, अतिसार, खून की गरमी, कफ का जमाव, जलोदर, शीतपित्त, फीलपाँव, प्रदररोग, योनिरोग, प्रमेह और उपदंश—गरमी रोग आराम होते हैं। पारद विष, और वृश्चिक विष प्रभृति में भी यह परमोत्तम है सारांश केले का रस अनेक दुःसाध्य और भयंकर रोगों का निःसंदेह बीजोन्मूलक है।

केले के खम्भ का रस सूज़ाक रोग को अमूल्य औषधि है। विधि यह है—केले के खम्भ वा तने को कूट पीसकर, कपड़े में रखकर उसे निचोड़ लेवें। इसमें से निकला हुआ पानी सा द्रव ही केले का पानी वा रस है। इसकी साधारण मात्रा ४ तोले की है। इसे दिन में तीन बार सेवन करना चाहिये। इस रस को मात्रा से पीने से पेशाब खूब

साफ होता और सूजाक आराम हो जाता है। प्रति दिन ताजा रस निकाल पीना चाहिये। बासी रस हानिकारक होता है।

केले का पानी आध पाव के लगभग रात को ओस में रखें और प्रातः २ तोले मिश्री मिलाकर पियें। इससे सूजाक बहुत शीघ्र आराम हो जाता है।

बन केले के पत्ते जलाकर राख कर लेवे। इसकी मात्रा १ माशा की है। एक मात्रा राख, १ तोले शहद में मिलाकर चाटने से हिचकी आराम हो जाती है और कभी-कभी श्वास में भी लाभ देखा गया है।

केले के भीतर का रेशेवाला भाग कुरेद कर, उसमें कुछ काली मिर्च रख देवें। सवेरे हो उन्हें केले से निकालकर मंदी आग पर भूनकर खा लेवें, इस उपाय से श्वास चला जाता है।—हरिदास वैद्य।

केले का पानी एक सेर लेकर और कलमीशोरा आध पाव एक हँड़ियां में डाल देवें। फिर मुँह बन्द करके मंदाग्नि पर रखें। जब पानी जल जाय तब आग बंद कर देवें। पर पात्र का मुँह उसी प्रकार रात्रि भर बन्द रहने देवें। प्रातः काल उसे निकालकर पीसकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—अर्ध माशा गाय के दूध की लस्सी के साथ सुबह शाम खावें। सूजाक में अत्युपयोगी है।

केले का पानी दो सेर कोरी हँडिया में डालकर २ तोले कलमीशोरा मिलाकर चूल्हे पर रखकर जलावें। जब समस्त जल जावे, तब हाँडी से खुरचकर समग्र दवा निकाल लेवें। इसे २ रत्ती की मात्रा में खावें।

इससे सप्ताह के भीतर-भीतर सूजाक आराम हो जाता है।

केले की जड़ ६ मा०, फालसे की जड़ की छाल ६ मा०, तुख्म ख़यारैन ६ मा०, मुठेली ६ मा०, मिश्री २ तो० इनको पीनी में रगड़ कर शीरा निकालकर मिश्री मिलाकर प्रातःकाल पीने से सूजाक की जलन आदि दूर होती है।

धौत सफेद काशगरी, कत्था सफेद, मुरदासंख, हरा तुतिया और कपूर प्रत्येक १ माशा—इनको केले के पानी में घोंटकर बारीक वर्त्ति बनाकर इन्द्री को सुराख़ में रखें। इससे सूजाकगत व्रण पूरण होता है।

नोट—कपूर की विधि—सफेद फिटकरी ३ तो०, कपूर ६ मा०, विलिया गोंद ३ मा०, सबको कूटकर मिला लो और केले के अर्क में खरल करो और तांबे की डिबिया में बंद करके पकती हुई हंडिया में रख दो। शीतल होने पर निकाल लो। बस कपूर तैयार है इसे ही ऊपर के प्रयोग में डालना उचित है।

अनविधि मोती को कदल्यर्क में खरल करके एक डोली में बंद कर देवें। मात्रा—एक सुर्ख़ (= $\frac{1}{2}$ रत्ती)। हृदयोष्मा के दूर करने और प्रकृत्यूष्मा को उद्दीप्त करने में अनुपम है और यह उत्तमांगों को बल प्रदान करता है।

केले की पत्ती की राख ६ मा०, छिली हुई मुलेठी का महीन चूर्ण ५ मा०। तबाशीर ४ मा० नसपाल ३ मा०, छोटी इलाइची ३ मा०, कद्दू की गिरी ६ मा० इन सबको कूट पीसकर ४ तो०, मधु में लऊक तैयार करें। इसमें से दिन में कई बार शिशु को थोड़ा थोड़ा चटायें। काली खांसी के लिये रामबाण है।—जड़ी बूटी में खबास।

भारतवर्ष में कच्चे केले, मोचे और डाल की तरकारी बनती है। इसका कच्चा पत्र (बीच का पत्ता) ब्लिष्टर के ज़ख़्म पर आच्छादित कर देने से ज्वाला मिटती है। बीच का पत्ता काट सीधी और मक्खन लगा घाव पर ४-५ दिन बंधा रखने से ब्लिष्टर अच्छा हो जाता है पश्चिम भारत में बीड़ी और चुरुट केले के सूखे पत्ते में लपेट कर प्रस्तुत करते हैं। किसी भी द्रव्य लपेटने के लिये वहां केले का पत्ता व्यवहार में आता है। चक्षुरोग पर केले का कच्चा पत्ता बड़ा उपकार करता है। अफ्रीका में कच्चे पत्ते से घर छाते हैं। कलकत्ते के तंबोली केले के कच्चे पत्ते में लपेट लगे-लगाये पान बेचते हैं। बंगाल में गरीब लोग केले का पत्ता फूंक खाक से कपड़े धोते हैं। बहु मूत्ररोग पर कविराज महाशय कदल्यादि घृत में इसकी डाल का रस डालते हैं। यह घृत वायु

और पित्त के दोष मिटाता है, कोल्हापुर जिले में इस वृक्ष के रस से रक्त पात निवारण करते हैं। जमेका में भी इसका रस इसी प्रकार व्यवहृत होता है। वहाँ वृक्ष में एक खोंचा लगाकर रस निकाला जाता है। यवद्वीप में एक प्रकार कदली वृक्ष के पत्र के उलटी ओर मोम-जैसा जो पदार्थ जमता है। वह बत्ती बनाने में काम आता है।

कदली वृक्ष का समस्त अंग गवादिका खाद्य है। यह पशुओं के लिये विशेष उपकारक है। जमेका द्वीप के निम्न श्रेणी वाले अधिवासियों का केला ही एक मात्र सुलभ खाद्य है। अमेरिका के आदिम अधिवासी भी इसे प्रधान खाद्य समझ कर व्यवहार करते हैं।

सूखा केला अति बलकारक और शैत्यनिवारक होता है। पुनः गाल फूलजाने पर भी यह बड़ा उपकार करता है। समुद्र की यात्रा में सूखा केला विशेष व्यवहार्य्य है। बम्बई के रहने वाले घर में खाने को पक्का केला बांस की खपाच से पतला पतला चीर धूप में सुखाकर रख छोड़ते हैं। इससे जो मुरब्बा बनता है। वह खाने में बहुत अच्छा लगता है।

वेसकेली केले को सुखा कूट-पीस कर बम्बई वाले एक प्रकार का खेसाँदा बनाते हैं। वह शिशु रोगी और सद्यःप्रसूता कामिनी के लिये अति उपकारक एवं बलकारक खाद्य है। मॉरिशस, पश्चिम-भारतीय द्वीप और दक्षिण-अमेरिका में भी ऐसा ही खेसाँदा (हिम) प्रस्तुत होता है। मेक्सिको देश में क्या केला सुखाकर रक्खा नहीं जाता। हबशी पक्के केले को सिद्धि वा मण्डका उपादेय समझ खाते हैं। दक्षिण अमेरिका, अफरीका और पश्चिम-भारतीय द्वीप में इसका चूर्ण बनता है। दक्षिण अमेरिका में उक्त चूर्ण से बिस्कुट तैयार होता है बृटिश-गीनिया मे कच्चा केला प्रधान खाद्य गिना जाता है। इक्षु के बाद इसी को अधिक लगाते हैं। वृक्ष के रस से क्षार वा लवणवत् द्रव्य प्रस्तुत होता है दक्षिण अमेरिका में पके केले से ताड़ी की तरह एक प्रकार का मद्य बनता है, जो तीव्र नहीं पड़ता। पके फलक शस्य पत्ते में लगा सुखाते और छोटे-छोटे टुकड़े काटकर बनाते हैं। प्रयोजनानुसार एक टुकड़ा तोड़ पानी में घुलाने से शर्बत तयार हो जाता है। यह शर्बत अत्यंत शीतल और श्रमापहारक होता है। भारतवर्ष में इसके छिलके से चमड़े का काला रंग बनता है।

दधि, दुग्ध और घोल के साथ केला खाने से अतिशय दुष्पच्य होता है। चम्पक केला बहुमूत्र रोग में उपकारप्रद है। मुसलमान हकीम भी केले को पित्त, वायु, रक्त और हृद्रोगनाशक मानते हैं। डाक्टर ब्रे-फेयर के कथनानुसार यह शुक्रवृद्धिकर मस्तिष्क दोष निवारक है। किंतु मोचा दुष्पच्य होता है।—

हिं० वि० को०

स्वानुभूत प्रयोग

(१) केले के खम्भे का रस ऽ१ एक सेर, मधु ऽ। एक पाव मिलाकर चाशनी कर शर्बत तैयार करें। इसमें से १ तो० शर्बत प्रातः सायं काल सेवन करने से कास-श्वास अवश्य आराम होता है।

(२) केले के खम्भे के भीतर का कोमल सफेद भाग वा गूदा लेकर छोटे २ टुकड़े कर धूप में सुखा लेवें। पुनः इनको कूट-पीसकर बारीक चूर्ण बनायें।

मात्रा—१ रत्ती से ६ रत्ती तक। इसे मधु के साथ प्रातः सायंकाल चटाने से कुक्कुर कास दूर होता है।

(३) केले के खम्भे का रस अग्निदग्ध पर लगाने से उपकार होता है। किसी किसी के मत से क्षय रोग में भी १ तो० की मात्रा में इसका रस सेवन करने से उपकार होता है।

(४) केले के पत्ते को जलाकर राख बना लेवे। इसमें से २-३ रत्ती राख सुबह शाम शहद में मिलाकर चटाने से सूखी खाँसी व कूकर खाँसी जाती रहती है।

(५) कदली कंद को सुखाकर कूट-पीसकर बारीक चूर्ण करें। इसमें से एक माशा चूर्ण शहद के साथ चाटने से सूखी खाँसी दूर होती है।

(३) नीलकन्ठी नमक १ छ० और अफीम १ छ० इन दोनों को घोंटकर एक पिंड सा बना

लेवें इस गोले को कदलीकंद के भीतर रखकर ऊपर से उसी के गूदे से छिद्र को ढाँक देवे। पुनः इस कंद के ऊपर कपड़ामिट्टी कर सुखा लेवें। सूखने पर उसे २॥ सेर कंडों के भीतर रख कर आँच देवे। स्वांग शीतल होने पर उसे निकाल कर कपड़मिट्टी दूर करके जले हुये कंद का बारीक चूर्ण कर रखें। इसमें से यथा शक्ति १ रत्ती से ३ रत्ती तक अहिफेन पिप्पली चूर्ण १ रत्ती और शहद के साथ सुबह-शाम सेवन करने से श्वास रोग अवश्य आराम होता है।

(७) केले के बीज सर्प विष नाशक हैं। ऐसा किसी-किसी का मत है।—लेखक

कदली द्वारा पारद भस्म

विधि—शुद्ध पारा १ तो० लेकर एक दिन अर्क रतनजोत और एक दिन अर्क ब्रह्मदंडी में खरल करें। पुनः एक फुट लम्बा और मोटा केला लेकर उसमें अर्ध फुट गहरा छिद्र बना उक्त पारा और एक पाव गोमूत्र इन दोनों को उसमें डालकर ऊपर से उसी गूदे से छिद्र के मुँह को बंद कर देवे और उसे सन की रस्सी से दृढ़ता पूर्वक बाँधे, फिर उस पर चतुरतापूर्वक कपड़मिट्टी करके १० सेर उपलों की आग देवे। अति उत्तम भस्म प्रस्तुत होगी। कपड़मिट्टी अच्छी न होने से पारा उड़ जावेगा। इस बात का ध्यान रखे। जड़ी बूटी में खवास।

(२) काले और लाल रंग का एक हिरन जिसका स्थान महाभारत आदि में कंबोज देश लिखा गया है। इसके चर्म का आसन बनता है। कृष्णसार।

(३) पिठवन। पृश्निपर्णी। मे०।

(४) एक पेड़ जो बरमा और आसाम में बहुत होता है।

कदली कन्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केराकंद। रम्भामूल। केले की जड़।

गुण—यह शीतल, वल्य, केश्य, अम्लपित्त नाशक, अग्निदीपक, मधुर और रुचिकारक होता है। मद० व ६। दे० "कदली"।

कदलीकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केले का फूल। रम्भापुष्प।

गुण—यह स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी एवं शीतल है तथा वातपित्त रक्तपित्त एवं क्षय को दूर करता है। वै० निघ०। दे० "कदली"।

कदलीजल—संज्ञा पु० [सं० क्ली०] केले का रस। कदली रस।

गुण—यह शीतल एवं ग्राही है तथा मूत्रकृच्छ्र प्रमेह, तृषा, कफरोग, अतिसार, अस्थिस्राव, रक्तपित्त, विस्फोट, योनिरोग तथा दाह को शांत करता है। वै० निघ० दे० "कदली"।

कदलीदण्ड, कदलीनाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केले के खम्भे (पेड़) के भीतर का दण्डाकार कोमल भाग। केले का भीतरी हिस्सा।

गुण—यह शीतल, अग्निवर्द्धक रुचिकारक, रक्तपित्तनाशक, योनिदोषनाशक और असृग्दर नाशक है। रा० च० दे० "कदली"।

कदलीनाल—संज्ञा पुं० दे० "कदलीदण्ड"।

कदलीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] केले का फूल।

कदलीफल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केला।

कदलीमूल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केले की जड़। कदलीकंद। केराकंद।

गुण—यह बलकारक, वातनाशक, पित्तनाशक और भारी होता है। वि० दे० "कदली"।

कदलीमृग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मृग। शबल मृग। सु० चि० ८ अ०।

नोट—निबन्ध-संग्रह नामक सुश्रुत की टीका में उल्लेख लिखते हैं। "कदलीमृगः पूर्वदेशे प्रायशः शबलो दृष्टः सतु वृहत्तमबिडालसमो व्याघ्राकारो बिलेशयः॥

कदली वल्कल—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केले की छाल। कदली त्वक्।

गुण—यह तिक्त, चरपरी, हलकी और वात नाशक होती है। वै० निघ०।

कदली वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केले का पेड़। केला।

कदली सार—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केले का रस। कदली का रस। केले का निचोड़।

कदलीक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की ककड़ी। वै० निघ०।

कदलीक्षया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ककड़ी।

कदल्यादि घृतम्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केला कन्द के रस में ४०० तो० केले के पुष्पों को पकाएं। जब चतुर्थांश रहे तब छानकर इसमें ६४ तो० घृत और चन्दन, सरल की गोंद, जटामांसी, केला कन्द, इलायची, लवङ्ग, त्रिफला, केश को गूही, और 'न्यग्रोधादिगण" की औषधियों का कल्क बनाय, उपर्युक्त क्वाथ में घृत सहित विधिवत् मन्दाग्नि से घृत सिद्ध करें।

गुण तथा प्रयोग—इसे उचित मात्रा में सेवन करने से स्त्रियों के सांसर्गज, समस्त मूत्ररोग वीर्य विच्छल रोग, बीसों प्रमेह, तेरह प्रकार के मूत्राघात, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग का नाश होता है।

नोट—"न्यग्रोधादि गण"—बरगद, गूलर, पीपल, पियालवृक्ष, आम, अश्वत्थ, दोनों प्रकार के जामुन, बेर, महुआ, अर्जुन वृक्ष, तिनक वृक्ष, (सेंभुर्निवृक्ष) पाटला वृक्ष, कदुक वृक्ष, कदम्ब, पाकर, गर्दभाण्ड (पारस पीपर) और पलाश इनकी छाल लेना उचित है।

(भैष० र० सांसर्गज वि०)

कदश्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्सित अश्व।

कदाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सान्तानोत्पादक कोटाणु। सूक्ष्मबीज (Nucleolus.)

क़दह–[अ०] हाथाजोड़ी। बखुर मरियम।

क़दह किर्रीती–[अ०] गंधक का प्याला।

कदह मरियम–[अ०] (१) हाथाजोड़ी। बखुर-मरियम। (२) क्रोटूलीजून।

कदहरलु–[कना०] जंगली रेंड़। काननैरण्ड।

कदाद–[अ०] साही।

कदाख्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुट नाम की औषधि। कूट। कुष्ठ। श० च०।

क़दाह–[?] मक्खी।

कदाला–[?] कपर्दी।

कदाह कुकेर–[कना०] जंगली काली मिर्च।

क़दाही–[अ०] चिड़ियों के पर।

कदार्ची–संज्ञा [सं० क्ली० कदाचित्] कुत्सित नेत्र।

कदिट–[बर०] बरना। वरुण।

कदिब–[अ०] (१) ताज़ा खून। (२) वह सफेदी। जो युवकों के नख पर पाई जाती है।

कदियिरत्तम्–[ता०] पुनर्नवा। गदहपूर्ना।

कदिर–[अ०] (१) केवड़ा। (२) गंदला। धुँधला। मुकद्दर। अस्वच्छ।

कदिरमंसूर–[अ०] वह अस्वच्छ पदार्थ जिसमें सर्वत्र गुलाहट फैली हो। अस्वच्छता-व्याप्त वस्तु।

कदी–[फ़ा०] खड़िया मिट्टी।

कदीदे गरगे–[कना०] भँगरैया। भृङ्गराज।

क़दीद–[अ०] वह गोश्त जो नमक लगाकर खुश्क किया गया हो। खुरक गोश्त। सुखठी।

कदीमा–[बिहा०] (१) सीताफल। शरीफ़ा। (२) मीठा कद्दू।

[बं०, हिं०] (१) सफेद कद्दू। कुम्हड़ा।

क़दीमुल् बित–[अ०] भँगरा। भँगरैया। भृंगराज।

क़दीमुल् मुल्क–[अ०] खुब्बाज़ी।

कदीमा चेट्टु–[ते०] कदम। कदम्ब।

क़दीर–[अ०] देग में पकाया हुआ मांस।

कदीरा–[सिंहला] शंगज्ञा। कलूवो (पं०)।

क़दीह–[अ०] शोरबा। यूष।

कदुआ–संज्ञा पुं० [दे०] कद्दू। आल (भूपाल)।

कदुष्ण–वि० [सं० त्रि०] इतना गर्म कि जिसके छूने से त्वचा न जले। थोड़ा गर्म। शीर गर्म। सीतगरम। कोसा। ईषदुष्ण। अम०।

संस्कृत पर्य्याय—कोष्ण। कवोष्ण। मंदोष्ण यथा—

कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणः।

(सुश्रुत)

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्णता। गरमी। अम०।

कदुचणःपल्लू–[?] अज्ञात।

कदुबेल्लुल्ली–[?] अज्ञात।

कदुला–[?] रेंका।

कदू–[फ़ा०] कद्दू।

कदूतल्ख–[फ़ा०] तितलौकी। तुमड़ी।

क़दूमः–[असफ़हानी] तोदरी।

कदूरात–[अ०] वह दवाएँ जो मुँह में एक तरफ डाली जायँ।

कदूशीरी–[फ़ा०] कद्दू। लोबा।

क़दूह.–[?] मक्खी।
कदेप-तागे–[ते०] अमलवेद।
कदेल्लु–[कना०] काला तिल।
कदो–[बर०] कस्तूरी मुश्क।
कदोट–[बर०] जंगली अंजीर।
कद्कद्–[अ०] एक प्रकार की सनोवर के आकार की कड़ी सूजन जो बात से (सौदावी) होती है और साधारणतः आँख के ऊपरी पपोटे में पैदा होती है।
क़द्द–[अ०] क़द।
कद्दम–[बम्ब०. हिं०] कलम। Stephegyno parviflora, *Korth.*
संज्ञा पुं० [हिं० कदम] कदम। कदंब।
कद्दमिया–[यू०] अकलीमिया।
कद्दलाशिंगी–[ता०] चिल्ला। बेरी।
कद्दिल तयङ्ग–[ता०] दरियाई नारियल।
कद्दू—संज्ञा पुं० [फ़ा० कद्दू] कुम्माडंजातीय एक बेल का फल जो बहुत प्रकार का होता है। इस की बेल बहुत विस्तृत होती है और वृक्षादि के आश्रय से वा भूमि पर प्रतान विस्तार करती है। इसमें सफेद फूल आते हैं स्वाद एवं आकृति भेद से फल अनेक प्रकार के होते हैं। परन्तु उनमें से सभी प्रकार के कद्दू के फल के ऊपर का छिलका बहुत कड़ा मोटा, और काष्ठीय होता है। फल मज्जा स्पंजवत् और सफेद होती है जो मीठे कद्दू में मीठी और कड़ुए में अत्यंत कड़ुई होती है। बीज भूरा, चिपटा और सिरे पर त्रिशीर्ष युक्त होता है। बीज की गिरी सफेद, तैलाक्त और मीठी होती है। परंतु तितलौकी का बीज तिक्त होता है।

भेद—स्वाद के विचार से कद्दू मुख्यतः दो प्रकार का होता है–मीठा और कड़ुआ। आकृति के विचार से मीठा कद्दू के पुनः अनेक उपभेद हो जाते हैं, यथा—गोल, लम्बा, सुराहीदार, डमरु वा कमंडल के आकार का जिसके दो पेट होते हैं। उनमें नीचे का बड़ा और ऊपर का छोटा होता है। इन सभी की एक जाति कड़ुई भी होती है। छोटा, बड़ा और चकैया आदि भेद से गोल कद्दू नाना, प्रकार का होता है। इनमें से कोई-कोई वजन में एक मन तक होता है। गोल कद्दू की बेल प्रायः बरसात में होती है फल की तरकारी भी होती है यह या तो जंगली होता है या लगाया जाता है।

परन्तु लंबा कद्दू वा लौकी दोनों फ़सल में (बरसाती और जेठुई) होती है। एक प्रकार लौकी के फल एक गज से २ गज तक लम्बे होते हैं। रंग बाहर में हरा वा हरापन लिये सफ़ेद और भीतर से सफेद होता है। गूदे का स्वाद फीका होता है।

कड़ुआ कद्दू को देश में तितलौकी वा तुमड़ी कहते हैं। यद्यपि यूं तो उपर्युक्त सभी प्रकार के मीठे कद्दू की तिक्त जातियाँ भी होती हैं पर वस्तुत तितलौकी शब्द से जिस प्रकार की कटुतुम्बी का अर्थ लिया जाता है, इसके फल छोटे एवं सुराही दार होते हैं। जाल में लगाने के लिए मल्लाह लोग इसे अपने घरों में लगाते हैं। योगी और सपेरे इससे सितार, बीन, तंबूरा, वा महुवरादि बनाते हैं। यह जंगली भी होता है। पर यह स्मरण रहे कि प्रत्येक प्रकार की तुंबड़ी कड़ुई होती है और मीठी भी। कड़ुई तुम्बड़ी के बीज भी कड़ुवे होते हैं और मीठी के मीठे होते हैं। कदूएं तल्ख की तुंबड़ी एक किस्म है। मुहीत आजम में यह लिखा है कि वह कदूएतल्ख़ तुंबड़ीकी एक किस्म है।……कि जिसका बीज भी तिक्त होता है। हिन्दुस्तान में तुंबड़ी को इसी नाम से बोलते हैं। कदुयेतल्ख किताबी संज्ञा है। कदूएतल्खका जंगली भेद अत्यन्त कड़वा होता है. अस्तु; जामा तमीमी में उल्लेख है कि कदू को बोते हैं और जंगल में स्वयम् भी होता है और यह अत्यन्त कड़वा होता है। तालीफ शरीफ के मत से भी तिक्त और मिष्ठ दोनों प्रकार के बीजवाली तुँबड़ी होती है। गोल, महुअरिया, सुराहीदार, कमण्डलाकार, प्रभृति आकार भेदसे यह अनेकप्रकार की होती है। इनमें से कमण्डलाकार तितलौकी को गिरनारी तुंबड़ी भी कहते हैं। इसका छिलका बहुत मोटा और कड़ा होता है। इसमें कुम्हेंड़े की तरह के और सफेद बीज होते हैं। तितलौकी के बीज वर्षारम्भ में बोये जाते हैं जो वर्षान्त से लेकर फाल्गुन तक फूलते फलते रहते हैं।

पर्य्या०—(मीठा कद्दू, मिष्ट तुम्बी)

तुम्वः, तुम्बकः तुम्बा, तुम्बी, पिण्डफला, महाफला, आलापूः, एलाबूः, लाबुः, लाबुका, (अ० टी०) तुम्बिका, आलाबुः तुम्बिः अलाबु, तुम्बुकः (शब्द र०), अलाबूः, लाबूः, तुम्बिका, तुम्बिनी, मिष्टतुम्बी, –सं० । मीठा कद्दू, मीठा लोआ, मीठीतुम्बी, घिया, लौआ, लौका, लौकी, लोवा, गड़ेरू, गड़ेली, लवलौआ, ग्रहलोआ, तुँबी मीठी तुम्बी, तूंबा, हिं० । मीठा कद्दूदु० । लाऊ कदु, मिठा लाऊ, मिष्ट लाऊ, –बं० । कदूए शीरी कदू, –फ्रा० । क़रअ, क़र्उल्हुलो –अ० । (Sweet or White gourd, White pumpkin) –अं० । तीयातु खड़िकाया, –ते० का० । दुध्या, भोपट्टा दुध्या भोपला –मरा० । आल–भूपाल । दुधीयूँ, दुधलुँ दुधी, –गु० । कण्ड उबलकाथि, लाबु–सिंहली । दुद्दि –कों० ।

गोल मीठा कद्दू—(वर्त्तुलातुम्बी)

गोरख तुम्बी, गोरखी, तवालाम्बुः, घटामिधा, कुम्भालाम्बुः, गटालाम्बुः कुम्भतुम्बी (रा० नि०) कुम्भालाबूः, नागालाबूः, घटालाबूः, वृहत्तुम्बी –सं० । कद्दू, गोलकद्दू, गोरखतुंबी –हिं० । गोल लाऊ –बं० । गोरख दुद्दिके ।

लम्बा मीठा कद्दू—(दीर्घा तुम्बी)

क्षीरतुम्बी, दुग्धतुम्बी, दीर्घवृत्तफलाभिधा, इक्ष्वाकुः, क्षत्रियवरा, दीर्घबीजा, महाफला, क्षीरिणी दुग्धबीजा दन्तबीजा, पयस्विनी, महाबल्ली, अलाम्बुः, ४मध्नी, शरभूभिता, (रा० नि०) सं० । लौकी, लौका, लौआ, लौवा, घिया, घीआ, लँबा कद्दू, आल, गड़ेली, गड़ेरू, लेउआ –हिं० । मिठा लाऊ, –बं० । दुग्धतुम्बी, –मरा० । हालु गुम्बुल –कना० । ख़ियार कदू, कदूए दराज़, कदूए शीरी –फ्रा० । क़रअ, क़र्उल् हुलो –अ० ।

संज्ञा-निर्णायनी-टिप्पणी—हमारेयहां आकृति भेद से कद्दू के भिन्न नाम होते हैं । परंतु बंगदेश में ऐसा नहीं है । वहाँ सभी प्रकार के कद्दू को 'लाऊ' वा 'कदु' कहते हैं । हमारे यहां गोल फल वाले को 'कद्दू' और लम्बे फल वाले को 'लौकी', 'लौआ' प्रभृति सँज्ञाओं से अभिहित करते हैं । राजनिघण्टुकार ने 'गोरक्षतुम्बी' और 'क्षीरतुम्बी' ये दो प्रकार के मिष्ट अलाबू का गुण वर्णन किया है । परन्तु उन्होंने इनके और किसी व्यवच्छेक चिह्न का उल्लेख नहीं किया है । केवल भाषा नाममात्र का निर्देश कर दिया है । राज निघण्टूक्त नाम कर्णाटी भाषा और महाराष्ट्रीय भाषा के नाम जान पड़ते हैं । क्योंकि ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में यह लिखा है कि—"व्यक्तिःकृतात्र कर्णाटमहाराष्ट्राय भाषया" । काशी से प्रकाशित राजनिघण्टु आदर्श पुस्तक में गोरक्षतुम्बी का भाषानाम "गोरखदुद्दिक" और क्षीरतुम्बी का भाषानाम "हालुगुम्बलु" लिखा है भूतुम्बी का भाषानाम "तेलसार" है । वि० दे० "भूतुम्बी" कुम्भतुम्बी गोरक्षतुम्बी का नामान्तर है ।

तिब की पुस्तकों में जहां कदूए शीरीं वा क़र्उल्हुलो उल्लिखित होता है, वहाँ लौकी वा कदूए दराज़ ही अभिप्रेत होता है । इनमें से व्यवहारोपयोगी एवं सर्वोत्कृष्ट वह है, जो सफेद, कोमल ताजा एवं मधुर हो और जिसमें रेशे न हों, जो न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा बल्कि मध्यमाकार का हो और उसकी बेल को मीठा पानी लगा हो । इसकी जड़ पतली, लम्बी, किंचित् मधुर और मदकारी होती है (ख़० अ०) ।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucur bitaceœ*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष में इसकी बेल लगाई जाती है या जंगली होती है ।

औषधार्थ व्यवहार—मूल, पत्र, फल, फूल–मज्जा, बीज, बीज-तैल ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

अलाबू, तुम्बी, मीठा कद्दू—

'मिष्ठतुम्बीफलं' हृद्यं पित्त श्लेष्मापहं गुरु ।
वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टि विवर्द्धनम् ॥

भा०

मीठी तुम्बी का फल(मतांतर से 'दल' अर्थात् पत्र) अर्थात् कद्दू—हृदय को हितकारी,

कफपित्तनाशक, भारी, वृष्य, रुचिकारी और धातु वर्द्धक एवं पुष्टिकारक है।

'मिष्टतुम्बीफलं' हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु।
वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तमिति च। (द्रव्यगु०)

कद्दू—हृद्य, कफपित्तनाशक, भारी, रुचिकारक और वीर्यवर्द्धक है।

गुरु मधुरं मलभेदकं वातश्लेष्मकारि रुक्षं पित्तनाशित्वञ्च। (राज०)

कद्दू—भारी, मधुर, मलभेदक, रूक्ष, वात तथा कफकारक, शीतल और पित्तनाशक है।

"तुंबं रुक्षतरं आहि"
(वा० सू० ६ अ०)

तूंबी (कद्दू) बहुत रूक्ष और आही है।

मीठा गोल कद्दू (गोरक्षतुम्बी)—

कुम्भ तुम्बी समधुरा शिशिरा पित्तहारिणी।
गुरुः संतर्पणी रुच्या वीर्य पुष्टि बलप्रदा॥
(रा० नि० ७ व०)

कद्दू—मधुर, शीतल, पित्तनाशक, भारी, संतर्पण (तृप्तिकारक), रुचिकारक, वीर्यजनक, पुष्टिकारक, और बलकारक है।

मीठा लंबा कद्दू लौकी (क्षीरतुम्बी)

तुम्बी सुमधुरा स्निग्धा पित्तघ्नी गर्भ पोषकृत्।
वृष्या वातप्रदा चैव बलपुष्टि विवर्धनी॥
(रा० नि० ७ व०)

लौकी, मधुर, स्निग्ध, पित्तनाशक, गर्भपोषक, वृष्य, वातकारक तथा बल और पुष्टिकारक है।

अलाबूर्भेदनी गुर्वी पित्तघ्नी कफला हिमा।
(शा० नि० भू०)

कद्दू—भेदक, भारी, पित्तनाशक, कफकारक और शीतल है।

तुम्बी तु मधुरा स्निग्धा गर्भपोषण कारिणी।
वृष्या वातप्रदा बल्या पौष्टिका रुच्यशीतला॥
मलस्तम्भकरी रुक्षा भेदका गुर्रुपित्तनुत्।
काण्डमस्याश्च मधुरं वातलं कफकारकम्॥
स्निग्धं शीतं भेदकं च पित्तनाशकरं जगुः।
(नि० र०)

कद्दू—मधुर, स्निग्ध, गर्भको पोषण करनेवाला वृष्य (वीर्यवर्द्धक), वातकारक, बलकारक, पुष्टिजनक, रुचिकारक, शीतल, मलस्तम्भक, रूखा, भेदक, भारी और पित्तनाशक है। इसकी बेल के कांड—मधुर, वातकारक, कफकारक, स्निग्ध, शीतल, भेदक और पित्तनाशक हैं।

अपुष्पस्य प्रवालानां मुष्टिं प्रदेशसंमिताम्।
क्षीर प्रस्थे घृतं दद्यात् पित्तोद्रिक्ते कफज्वरे॥
फलस्वरसभागञ्च त्रिगुणक्षीरसाधितम्।
उरःस्थिते कफे दद्यात् स्वरभेदे सपीनसे॥
हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं यदा दधि।
जातं स्यात् कफजे कासे श्वासे वम्यञ्चतत्पिबेत्
मस्तुना फलमध्यं वा पाण्डुकुष्ठ विषार्दितः।
तेन तक्रं विपक्वं वा सक्षौद्रलवणं पिबेत्॥
तुम्ब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम्।
च्छर्द्यतीसारमाध्मान गन्धसम्पत्सुखोचितः॥
चरकसंहिता कल्पः ३ अ० (दृढ़बलः)।

वैद्यक में मीठे कद्दू के व्यवहार

वाग्भट्ट—अश्मरी रोग में तुम्बी बीज—कद्दू के बीजों का चूर्ण शहद में मिलाकर खायें और ऊपर से भेड़ का दूध पियें। इस तरह सात दिन करने से अश्मरी रोग जाता रहता है। यथा—

नृत्यकुण्डल बीजानां चूर्णं माक्षिक संयुतम्।
अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरीपातनम्॥
अरुणदत्त (चि० ११ अ०)

भावप्रकाश—प्रदर रोग में अलाबु—कद्दू के गूदे को चूर्णकर चीनी और मधु मिलाकर मोदक प्रस्तुत करें। प्रदर की शान्ति के लिये यह मोदक सेव्य है। यथा—

अलाबुफल चूर्णस्य शर्करासहितस्य च।
मधुना मोदकं कृत्वा खादेत् प्रदर शान्तये॥
(म० ख० ४ र्थ भा०)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—(लंबा कद्दू लौकी)

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल और तर। मतांतर से द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में सर्द और तर। कोई-कोई तृतीय कक्षा में सर्द एवं तर मानते हैं।

स्वाद—किंचित् मधुर और हरायँद होता है।

हानिकर्त्ता—कच्चे कद्दू के दोषों का उल्लेख तो आगे होगा, यहाँ पर उससे होनेवाले सामान्य दोषों का उल्लेख किया जाता है। कद्दू शीतल प्रकृतिवालों को हानिकर है। यह बुड्ढों को हानिप्रद है। शीतल स्थान एवं शीतल ऋतु में उदर शूल (कुलंज), आध्मान और उदर में गुरुता उत्पन्न करता है। भूख घटाता है। इसके अधिक सेवन करने से कफ को वृद्धि होती है। और कफ के दूषित होने से वायु सौदा भी बनता है। वात एवं कफ प्रकृति को हानिप्रद है। यह वस्ति को भी हानिप्रद है।

दर्पघ्न—राई, पुदीना, सातर, जैतून का तेल, लहसुन, गरम मसाला और इसके ऊपर मदिरापान करना, उष्ण गुणविशिष्ट जवारिशें सेवन करना, आव कामा, और इसे तरेदिकवाले को भी देवें। यह सुनिर्णीत है कि उष्ण प्रकृतिवालों के लिये केवल लवण, थोड़ा पुदीना या कालीमिर्च काफी है। इससे भिन्न दर्पघ्न ओषधियों की आवश्यकता शीतल प्रकृतिवालों के लिये होती है। सिरका और काँजी (आबकामा) सांद्रत्व दोषहारी है, न कि शैत्यहर। शीत का निवारण तो गरम मसाले और उष्ण पदार्थों से होता है। उत्तम तो यह है कि इसे गोश्त में पकायें। (मतान्तर से लौंग और जीरा, ऊदहिंदी, कालीमिर्च इत्यादि।

प्रतिनिधि—तरबूज, ककोरा को भी इसकी प्रतिनिधि मानते हैं। मतांतर से पालक, खुरफा, पेठा और सर्द एवं तर शाकादि इसके प्रतिनिधि द्रव्य हैं कद्दू और लौकी परस्पर दोनों एक दूसरे का प्रतिनिधि है।

प्रधान कर्म—यह शैत्यजनक, एवं स्निग्ध है तथा उष्ण ज्वर, यकृद्दोष्मा और पिपासा को शमन करता है और रक्त एवं पित्त के प्रकोप का निवारण करता है।

मात्रा—शक्ति अनुसार। लौकी का रस १—तो० २ तोला।

गुण, कर्म प्रयोग—कद्दुए दराज़ी आशु पतनाभिमुखी—सरीउल् इन्हिदार है। क्योंकि जलीयांश के प्राचुर्य के कारण यह आशु परिणितशील एवं शीघ्रपाकी होती है। इसी कारण यह अति शीघ्र आहार बन जाता है। और क्योंकि यह शीघ्रपाकी विस्वाद एवं कैफियात रहिया से रिक्त होती है। अतएव एतजन्य दोष शुद्ध वा निर्दोष होता है। परन्तु ऐसा उस समय होता है, जब कि आमाशय में हजम होने से पूर्व या पश्चात् विकृति को प्राप्त नहीं हो गया होता। अस्तु, आमाशय से जब इसको अंतः प्रविष्ट होने में विलम्ब हो जाता है, तब यह विकृति को प्राप्त हो जाती है। क्योंकि आशु परिणति शील होने के कारण यह आमाशय स्थित ऊष्मा से अति शीघ्र प्रभावित होती है। पर यदि इसके साथ कोई एसी वस्तु सम्मिलित कर दी जाय, जो इसकी कैफियत पर ग़ालिब आजाय उदाहरणतः यदि इसको राई (ख़ारदिल) के साथ सम्मिलित कर दिया जाय, तो इसका दोष—ख़िल्त तीक्ष्ण हो जाता है। क्योंकि इसमें राजिका—स्वभाव की उपलब्धि हो जाती है अर्थात् यह राई का स्वभाव ग्रहण कर लेता है। यदि इसको कच्चे अंगूर या खट्टे अनार वा सुमाक के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाय, तो यह पित्त प्रकृति वालों के लिये उपकारी सिद्ध होती है। क्योंकि एतजन्य दोष उक्त अम्लत्व विशिष्ट द्रव्यों के कारण उनके तद्वत् उत्पन्न होती है। परन्तु उदरशूल—कुलंज रोग में इसका हानिकर प्रभाव द्विगुण हो जाता है। कद्दू स्वयं अकेले भी कुलंज रोग पैदा करता है। क्योंकि यह पिच्छिल (लेसदार)होता है। इसके अतिरिक्त जब इसका जलीय तत्व—माइयत यकृताभिमुख आकर्षित होता है, तब इससे पिच्छिल फोंक (सुफ्ल) अवशिष्ट रह जाता है जिसमें पार्थिव तत्व—अर्ज़ियत का प्राधान्य होता है। पुनः जब उक्त पिच्छिल मलभाग (फुज़्ला) में शरीरोष्मा कार्य करती है, तब इसमें और भी अधिक पिच्छिलता उत्पन्न हो जाती है। इसलिये वह आंतों से संश्लिष्ट हो जाता और उन्हीं में बंद होकर रह जाता है। इसके अतिरिक्त इससे ग़लीज़ वायु प्रचुरता के साथ उद्भूत होती है जो स्रोतों को अवरुद्ध करने में इससे मलांश—सुफ्ल की सहायता करती है। जब इसमें यह संग्राही द्रव्य मिल जायेंगे तो इसमें इन द्रव्यों का असर आ जायगा इससे अवरोधोत्पादन क्रिया अवश्य

मेव वर्द्धित हो जायगी। लवण के साथ मिलाने से इससे लवणाक्त दोष उत्पन्न होता है। कद्दू पिपासाहर है। क्योंकि इसमें प्रचुरता के साथ जलीयांश होता है। परन्तु अपरिपक्व कद्दू मेदे के लिये रद्दी होता है। क्योंकि—कच्चे में पार्थिवांश अधिक और जलीयांश सांद्रीभूत होता है।—त० न०।

कद्दू मूत्रल, स्निग्ध, शीतल, एवं अवरोधोद्घाटक है और पेट को मृदु करता है। यह पैत्तिक एवं उष्ण-प्रधान ज्वरों, संग्रहणी (खिलफा) कामला (यर्कान) शुद्ध एवं पैत्तिक दोषोत्पादन, सरेसाम, उन्माद (हज़ियान) सिर एवं मस्तिष्क की रूक्षता को लाभकारी है।—मुफ़० ना०

यह प्यास बुझाता, ऊष्म यकृत की ऊष्मा और पित्तजन्य आकुलता को दूर करता, सर्दी और तरी पैदा करता, अवरोधोद्घाटन करता अधिक पेशाब लाता, कामला—यर्कान को दूर करता एवं चिरकालानुबंधी संग्रहणी में उपकार करता और पेट को मुलायम करता है। यह उष्ण एवं रूक्ष व्याधियों और गरम वा पित्त के ज्वरों में असीम गुणकारी है। यह कांति प्रदान करता—जिला करता है। इसको पकाकर खाने से ख़ून कम बनता है किंतु आमाशय से शीघ्र नीचे उतर जाता है अस्तु, यदि हज़म होने से पूर्व किसी कारण वश यह विकृत न होजाय, तो इससे दुष्ट दोष उत्पन्न नहीं होता। परन्तु आमाशय में रही दोष से मिलने पर यह विकृति को प्राप्त हो जाता है। हजम से पूर्व या पश्चात् जब किसी वाह्य वा आभ्यंतरिक कारण से यह विकृति हो जाता है, तब इससे ख़राब ख़िल्त—दोष बनता है। किंतु जब लवण या राई से इसकी शुद्धि कर ली जाती है, तब उक्त अवगुण जाता रहता है। एक बात यह भी है कि कद्दू अकेला मेदे में शीघ्र विकृत हो जाता है और शीघ्र प्रकुपित दोषाभिमुख परिणत हो जाता और विषैला दोष उत्पन्न करता है। इसका हेतु यह है कि इसमें लताफ़त (मृदुता एवं सूक्ष्मता) है। यदि किसी ऐसी वस्तु के साथ जो दोषानुकूल हो, खाया और पकाया जाय, तो उसकी कैफ़ियत बदल जाती है। किंतु जिन्हें कुलंज-उदरशूल के रोग की आदत हो, उन्हें इसका खाना उचित नहीं है। क्योंकि वायु उत्पन्न करने एवं फोक की पिच्छिलता के कारण यह कुलंज रोग उत्पन्न करता है शीतल प्रकृति वालों में यह आनाह उत्पन्न करता अर्थात् पेट फुलाता और वायु पैदा करता है यह साथ भक्षण की जाने वाली चीज के तद्वत् दोष उत्पन्न करता है अतः तीक्ष्ण पदार्थ, जैसे राई और मसाला के साथ भक्षण करने से तीक्ष्ण दोष उत्पन्न करता है। और लवणाक्त पदार्थ के साथ भक्षण करने से लावण दोष विस्वाद वा विकसे एवं कषैले पदार्थ के साथ भक्षण करने से संग्राही दोष उत्पन्न होता है, इत्यादि। पिसलाने-वाली शक्ति—क़ुव्वत ज़ुलाक़ के कारण यह उष्ण मलों को निः सारित करता है और इसी कारण आमाशय और आंतों को शिथिल एवं मंद करता है तथा दीर्घपाकी है। वृक्क की उष्णता तथा पैत्तिक और रक्त प्रकोप जन्य ज्वरों में इसका व्यवहार उचित है। शीतल प्रकृति वालों के लिये इसका सेवन उचित नहीं। अनिद्रा रोगी को इसके खाने से नींद आने लगती है और शरीर में तरावट पैदा होती है।

पित्त प्रकृति वालों को इसे अनार (खट्टा) या सुमाक व खट्टे अंगूर के साथ खाना चाहिये। इसके खाने से शरीर गत फुंसियां मिट जाती हैं। यह वीर्यवर्द्धक है।

यदि यह आमाशय से नीचे न उतरे, तो विकृत होकर विष बन जाता है। कद्दू की परिणति पित्त की अपेक्षा कफ एवं वायु की ओर अधिकोन्मुखता है। यह इस बात से सिद्ध है कि यह पित्त के जौहर के साथ उतनी मुनासिबत नहीं रखता जितनी कफ के जौहर के साथ रखता है। और आमाशय में यह जिस दोष की उल्वणता पाता है। स्वयं भी उसी में परिणत हो जाता है। इस लिये अधिक हानि होती है। क्योंकि उक्त दोष अत्यधिक बढ़ जाता है। वात एवं कफ स्वभाव वालोंको यह अतिशय हानिप्रद है। क्योंकि उनकी ओर अत्यधिक परिणतिशील होता है या शीघ्र परिवर्त्यभिमुख होजाता मस्तिष्क जात शोथ और सरेसाम को भी लाभ पहुँचाता है। ताजे

कद्दू के सूंघने से मस्तिष्क गत ऊष्मा का निवारण होता है।

कच्चे कद्दू का रस निकाल कर लड़की की माँ का दूध या गुलरोग़न मिलाकर या अकेला कान और नाक में टपकाने से और उसमें कपड़ा भिगोकर खोपड़ी पर रखने से गरमी का सिर दर्द, सरेसाम, प्रलाप, उन्माद और अनिद्रा रोग आराम होते हैं। इसका टुकड़ा सिर पर धारण करने और इसका लेप करने से भी उक्त लाभ होता है।

कद्दू का ऐसा लघु फल जिसका फूल अभी न गिरा गिरा हो, लेकर आटे में लपेट कर अग्नि में भून लेवें, फिर उसे निकाल कूट-पीसकर रस निचोड़ें। इस रस के आँख में लगाने से नेत्र की पीत वर्णता दूर होती है। कद्दू के फूल के रस से भी उक्त लाभ होता है। गरमी से आँख आने में भी यह गुणकारी है।

इमली और खाँड़ के साथ कद्दू को पकाकर मल-छानकर पीने से मस्तिष्कजात ऊष्मा गरमी का सिर दर्द वसवास (अशुभ चिंता) और उन्माद—ये आराम होते हैं। यदि वाष्पारोहण—तबख़ीर के कारण आँख दुखने को आ जाय, तो उसे भी लाभ पहुँचता है।

यदि गरमी के कारण कान में दर्द हो, तो इसका रस गुलरोगन में मिलाकर टपकायें।

यदि कंठ के भीतर गरमी के कारण दर्द और सूजन हो तो इसके रस से कुल्लियाँ करें।

इसको बकरी के मांस या आशजौ या मूँग की धोई दाल के साथ खाने से गरमी के कारण हुये सीने के दर्द और गरमों को खाँसी को लाभ होता है।

शेख़ का कथन है कि यद्यपि कद्दू का रस एक कारण से उपकारक है; पर मूत्रल होने के कारण, अवगुण भी करता है। इसे सिरके के साथ खाने से इसकी ग़िलज़त (सांद्रता) जाती रहती है और यह मेदे से शीघ्र तले उतर जाता है। मांस के साथ पकाकर भक्षण करने से यह सम्यक एवं शीघ्र परिपाचित हो जाता है। इसे मुर्ग़ी के बच्चे के साथ पकाकर भक्षण करने से मूर्छा दूर होती है और विषाक्त दोषों की विषाक्तता मिटती है तथा गरम पित्त ? छूटती हैं।

कच्चा कद्दू पीसकर वृक्क, यकृत एवं आँतों पर लेप करने से उनकी गर्मी दूर होती है।

कद्दू का सूखा छिलका पीसकर भक्षण करने से बवासीर का खून और आँतों से रक्त आना रुकता है।

राजयक्ष्मा के रोगी के लिये इससे हितकारी अन्य कोई तरकारी नहीं है।

इसको भुलभुलाकर पानी निचोड़ कर पियें। यह हृदय, यकृत और आमाशय की गरमी तथा ज्वर शमन करने में अनुपम है।

चीनी की चाशनी में इसका मुरब्बा पकाकर खाने से किसी भाँति गर्मी होती है। यह मुरब्बा भी अवरोधोद्घाटन करता है, दोषों को पतला—लतीफ़ करता है मलों को छाँटता है और शरीर को स्थूल करता है। विशेषतः बादाम की गिरी के साथ आमाशय एवं यकृत को शक्तिप्रद और वाजीकरण है। यह उत्तम रक्त उत्पन्न करता और शीघ्र पच जाता है। परन्तु शर्त यह है कि आमाशय में कफ की उल्वणता न हो। यह मस्तिष्क की तरफ वाष्प चढ़ने नहीं देता और पेशाब की चिनक के लिये लाभकारी है। यह पोस्ते वा ख़सख़ास के साथ नींद लाता है। परन्तु शेख़ के कथनानुसार इसका मुरब्बा औषध में समाविष्ट नहीं होता। इसमें तनिक भी सर्दी या गर्मी उत्पन्न करने का गुण नहीं है। केवल स्वाद के लिये इसका व्यवहार करते हैं। यदि इससे निर्मित रायते में केवल उतनी मात्रा में नमक डालें, जितने में यह स्वादिष्ट हो जाय और इसके सिवा और कोई अन्य उष्ण एवं तीक्ष्ण वस्तु न डालें, तो यकृत की ऊष्मा एवं याकृतीयातिसार (इसूहाल कबिदी) में अत्यन्त उपकार हो।

कच्चा कद्दू आमाशय के लिये अत्यन्त हानिप्रद है। यदि युवा पुरुष इसे खा ले, तो उसे भी कभी कभी अतिशय हानि करता है। इसकी जलीयता—माइयत, ठीक बिकसाहट एवं विस्वाद आमाशय में गुरुत्व, शैत्य, उत्क्लेश और वमन उत्पन्न कर देते हैं। कभी कभी ये दोष इतना बढ़ जाते हैं कि इनका निवारण असंभव हो जाता है। उस समय शहद का पानी या सोये का काढ़ा पीकर क़ै करना चाहिये एवं ऊद हिंदी, लौंग, जीरा, सुअद

(मुस्तक), पुदीना और गरम जवारिश से दर्पघ्न औषध सेवन करना चाहिये। यथाशक्य बिना दर्पघ्न औषध के इसका सेवन उचित नहीं और विशेषकर कच्चा तो कदापि नहीं खाना चाहिये। क्योंकि यह आँतों को अतिशय हानिप्रद है और विशेषतः क़ोलून (वृहदन्त्र विशेष) नाम्नी आँत के लिये तो यह बहुत ही हानिप्रद है। अम्ल पदार्थों के संयोग से उक्त आँत के लिये इसका वह अवगुण और भी बढ़ जाता है। कद्दू में तेल डालना वा कालीमिर्च, राई, लहसुन, जीरा तथा और अन्य उष्ण पदार्थ मिलाना और लवण सम्मिलित करना, शीतल प्रकृति वालों के लिये उत्तम है। उष्ण प्रकृति एवं पित्त प्रकृतिवालों के लिये इसमें कच्चा अंगूर, अनार के दानों का रस और सिरका मिलाना चाहिये।

वैद्य कहते हैं कि कद्दू स्निग्ध, मधुर, गुरुपाकी बीर्यबर्द्धक, बाजीकरण, शीतल एवं बादी है। इसके गूदे से अधिक पेशाब आता है। यह कफ और पित्तके दोष, खाँसी तथा कई अन्य व्याधियों को नष्ट करता है। इसका प्रलेप करने से पित्तज सूजन उतरती है। प्रलाप करनेवाले रोगी के शिर के बाल मुंड़वाकर उस पर कद्दू का गूदा बाँध देना चाहिये। कद्दू के पत्ते सारक हैं। इसके पत्तों का काढ़ा पीने से कामला रोग नष्ट होता है। कद्दू को जलाकर उसकी राख आंख में लगाने से नेत्ररोग नाश होते हैं। पित्तज शिरोशूल में शिर पर कद्दू का गूदा लगाना चाहिये। कद्दू का रस तेल में मिलाकर लगाने से कई रोग नष्ट होते हैं। —ख़० अ०

कद्दू का बीज (अलाबू बीज)

पर्य्या०—अलाबू बीज, तुम्बी बीज —सं०। कद्दू का बीज, लौकी का बीज, लौआ का बीज, —हिं०। तुख़्म कदू, तुख़्म कदू ए दराज़ —फ़ा०। बज़्रुल्क़र्अ, हब्बुल् क़र्अ —अ०।

टिप्पणी—जब केवल कद्दू का बीज' लिखा हो, तब उससे 'मीठा कद्दू' वा 'मीठा लोआ' अभिप्रेत होता है।

प्रकृति—यह द्वितीय कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा में तर है।

हानिकर्त्ता—शीतल प्रकृति को और वस्ति को।

दर्पघ्न—सौंफ (और शहद प्रभृति) तुख़्म करफ़्स।

स्वरूप—ऊपर से मैला वा भूरा और गिरी सफेद तथा चिकनी।

स्वाद—मधुर, स्निग्ध, सुस्वादु और किंचित् होकदार।

प्रतिनिधि—खीरा, ककड़ी (खियारैन) के बीज। और तरबूज के बीज और (कतीरा)

मात्रा—१०॥ मा० से २ तो० ७॥ मा० तक (मतांतर से ६ या ६ मा०)

गुण, कर्म, प्रयोग—इसकी गिरी शरीर को परिबृंहित करती, चलायमान दोषों को शांत व स्थिर करती और मूत्र का प्रवर्त्तन करती है। यह सीने को कर्कशता—खुशूनत (खुरखुराने) को तथा मुख द्वारा रक्तस्राव होने को और गरमी की खांसी को गुणकारी है। यह प्यास बुझाती तथा पेशाब की चिनक एवं वस्ति-शोथ को लाभ पहुँचाती है। यह गरमी के ताप और अनिद्रा को मिटाती है। हृदय तथा मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करती है। शाराक्र कफ (बलग़म शोर) को प्रकृतिस्थ करती (म० मु०) और उसमें नुज़ुज (परिपक्वता) पैदा करती है। यह उष्ण वा पित्तज शिरोशूल को लाभ पहुँचाती, मस्तिष्क जात रूक्षता का निवारण करती, मूर्च्छा दूर करती और विषाक्र औषधोंकी विषाक्रता का नाश करती है। वैद्यों के कथनानुसार ये बीज शीतल होते हैं और शिरोशूल निवारणार्थ अनेक प्रकार से व्यवहार किये जाते हैं। इनकी मींगों को पीसकर लेप करने से जिह्वा और होठों के चीरे मिटते हैं। —ख़० अ०।

मुफ़रिदात नासिरी और बुस्तानुल् मुफ़रिदात में यह अधिक लिखा है कि—फेफड़े से खून आना, वस्ति और आंत्र-क्षत, वृक्क-कार्श्य, प्रकृति जात ऊष्मा, इन व्याधियों में यह लाभकारी है।

कद्दू का तेल

पर्य्याय—तुम्बी-बीज तैल—सं०। कद्दू का तेल —हिं०। रोग़न मग़ज तुख़्म कद्दू—फ़ा०। दुह्न हब्बुल् क़र्अ—अ०।

निर्माण-क्रम—इलाजुल् अमराज में उल्लिखित है कि कद्दू का छिलका छीलकर गूदा और बीज दोनों को कूटकर रस निकालें। पुनः जितना यह रस हो। उसका चतुर्थांश तिल तैल मिलाकर तैलावशेष रहने तक मंदाग्नि से पकायें और शीतल होने पर उतार कर छान लेवें और बोतल में भर रक्खें।

अथवा रोगन बादाम की भाँति मीठे कद्दू के बीजों की गिरी से तेल तैयार करें। (इसे कोल्हू में पेलकर भी तेल निकाला जाता है) यह अधिक लतीफ है।

कभी इस तरह भी तेल तैयार करते हैं कद्दू का छिलका पृथक् करके सबको कुचलकर बकरी के गुर्दे की चरबी के साथ क्वथित करें और फिर शीतल करें। इसके बाद ऊपर-ऊपर से चरबी को उतार लेवें। गुण में यह भी पहलेवाले की अपेक्षा अधिक बलशाली है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा में तर (सर्द तर) है।

स्वरूप—पीताभ श्वेत।

स्वाद—किंचिन् मधुर पर हीकदार।

हानिकर्त्ता—अवगुण रहित है, पर आर्द्र (मरतूब) आमाशय को हानिप्रद है।

दर्पघ्न—आवश्यकतानुसार मीठे बादाम का तेल।

प्रतिनिधि—काहू के बीजों का तेल, रोगन बनफसा वा रोगन नीलोफर (मतांतर से कुष्मांड बीज तैल)

मात्रा—६ मा० ९ मा०।

प्रधान कर्म—मस्तिष्क और शरीर को तरी पहुँचाता तथा अनिद्रा को दूर करता है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह शरीर में स्फूर्तिलाता और मस्तिष्क की रूक्षता दूर कर उसे तरावट वा स्निग्धता प्रदान करता है। यह शरीर नाक के नथुनों और कानों की रूक्षता को दूर करता, मस्तिष्क को शक्तिप्रदान करता, नींद लाता और शरीर को परिवर्द्धित वा स्थूल करता है तथा शरीर, अनिद्रा' मालीखोलिया, पुट्ठों की ऐंठन, कर्णशूल, कान की गरम सूजन, उष्ण एवं रूक्ष कास, राजयक्ष्मा, तपेदिक, और रूक्ष आक्षेप-तशन्नुज इनको लाभकारी है। खाने, नाक में सुड़कने, स्थान स्थान विशेष में टपकाने और अभ्यंग करने आदि किसी प्रकार से इसका उपयोग करने से उपकार होता है। प्रायः कठोरता को दूर कर उसे मृदुता प्रदान करता, गरम सूजन को उतारता और वाजीकरण है। वैद्यों के कथनानुसार कद्दू के बीजों का तेल लगाने से शिरःशूल नाश होता है। ख० अ०

बुस्तानुल् मुफ़रिदात में यह अधिक लिखा है यह गरम तापों और मरोड़ के लिये अतिशय गुणकारी है। दम्मुल् अखवैन के साथ सिर एवं शरीरस्थ क्षतों को लाभ पहुँचाता है। किसी-किसी प्रकृतिवाले के लिये वाजीकरण है। विशेषतया उन लोगों के लिये जिनमें उष्मा और रूक्षता अधिक हो, यह अतीव गुणकारी है।

नव्यमत

आर० एन० खोरी—बहुशः अवलेह और मोदकादि में मिष्टअलाबू का गूदा व्यवहृत होता है। मिष्ट अलाबू का बीज पोषक और मूत्रकारक होता है एवं कुष्मांडादि बीज पंचक का यह एक उपादान है। मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया—२ य खं० पृ० ३१२।

के० एम० नादकर्णी—इसकी पत्तियाँ और फल खाद्योपयोगी हैं। पत्तियां रेचक हैं। आरोपित कद्दू के फल का गूदा सफेद, मधुर, खाद्य, शीतल मूत्रकारक और पित्तघ्न है। बीजजात तैल शीतल होता है। बीज पोषक और मूत्रकारक होता है। इसके बीजों से एक प्रकार का स्वच्छ गाढ़ा तेल प्राप्त होता है जो शिरः स्निग्ध कर एवं शिरःशूल निवारण रूप से व्यवहार में आता है। इसका आभ्यन्तर प्रयोग भी होता है। कभी-कभी आरोपित कद्दू का गूदा विरेचन औषधों के उपादान स्वरूप अनेक अवलेह एवं मोदकादि में भी पड़ता है। यह कास में गुणकारी है और कतिपय विषों का अगद है। पाददाह में तलुओं पर और प्रलाप में वालमुंडित सिर पर इसके गूदे की पुल्टिस रखी जाती है। इससे तलुओं की जलन दूर होती है और शिर ठंडा होकर प्रलापादि दोष निवृत्त होते हैं। इलाजुल् गुर्बा में लिखा है कि काहू के

बीज, कद्दू के बीज, तरबूज के बीज और पोस्ते के बीज—इन्हें बराबर-बराबर लेकर कोल्हू में पेलवाकर तेल निकालें इसे सिर पर मर्दन करने से अनिद्रा रोग नारा होता है। योनि-संकोचनार्थ कद्दू के बीज और लोध—इन दोनों को पानी में पीसकर योनि में लेप करें। इसकी पत्तियों के काढ़े में शर्करा मिलाकर पीने से कामला रोग आराम होता है।—इं० मे० मे० पृ० ४९६-७

तितलौकी या कटुतुम्बी

पर्य्या०—कटुकालाम्बुनी, तुम्बी, लम्बा, पिण्डफला, इक्ष्वाकुः, क्षत्रियवरा, तिक्तबीजा, महाफला (ध० नि०), कटुतुम्बी, कटुफला, तुम्बिनी कटुतुम्बिनी, वृहत्फला, राजपुत्री, तिक्तबीजा, तुम्बिका (रा० नि०) इक्ष्वाकुः, कटुतुम्बी, तुम्बी महाफला (भा०) विट्फला, राजन्या, प्रवरा, वरा, तिक्तालाँबू, दुग्धनिका, दुग्धिका, (केयदेव) फलिनी, चरः,पिण्डफला, (ज०), लम्बा (मे०) इक्षाकुः (अ०), तिक्ततुम्बी, कटुकालाबुः, नृपात्मजा, (र०) तिक्तका, कटुतिक्तिका, तिक्तालाबुः, कटुतुम्बिका, तुम्बा, तुम्बिः, तुम्बिका, कटुकफला, —सं०। तितलौकी, कड़वी तुम्बी, कड़वी लौकी, जंगली कद्दू, कड़ूलौकी, तुंबी, तुमड़ी, कड़ुदुभिया तूंबा, —हिं०। तितलाऊ, तेंतोलाऊ, तिक्तलाऊ, —बं०। कदूए तरुश —फ़ा०। कर्उल् मुर —अ०।

The (bitter) bottle gourd, बिटर पंप्किन् bitter pumpkin —अं०। लैजीनैरिया वल्गैरिस Lagenaria Vulgaris, *Seringe* कुकुरविटा लैजीनैरिया Cucurbita Lagenaria —ले०। गोर्ड Gourde —फ्रां०। फ्लैशेन कुर्बिस Flaschen kurbis —जर०। शोरैकाय —ता०। मद०। चेनिआनब, सुरकाय, अनप्काय —ते०। गारदुदि, कट्टु चुरम्, अनपकाय —मल०। रान भोपला, कडूभोम्पट्टा, कहिसोरै, कडु भोंपला, कडुदुधी कडुदुधि (भोपला) —मरा०, कना०, कडु भोपला —बम्ब०। कड़वी तुम्बड़ी, कड़वीभोंपला —गु०। कडुदुद्दी —कों०। तिक्त लाबु —सिंहली।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceæ*)

उत्पत्ति-स्थान—इसकी बेल समग्र भारतवर्ष में या तो जंगली होती है, या लगाई जाती है।

औषधार्थ व्यवहार—मूल, पत्र, फल, बीज, बीज-जात तैल।

औषध-निर्माण—तुम्बी तैल, (च० द०; भैष), । इक्ष्वाकु कल्प।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कासश्वासच्छर्दिहरा विषार्ते कफकर्पिते।
इक्ष्वाकुर्वमने शस्तः प्रशाम्यति च मानवः॥
कटुतुम्बीकटुस्तिक्ता वातकृच्छ्रवासकासजित्।
❀ कासघ्नी शोधनी शोफव्रणशूलविषापहा॥
❀ द्वितीयाभिन्नविक्रान्ता गुर्वीरूक्षाऽतिशीतला।
(ध० नि०)

तितलौकी—कास, श्वास, और छर्दि (वमन) का नाश करती है। विष और कफ से पीड़ित मनुष्य को इससे वमन करना श्रेष्ठ उपाय है। इससे उसको आराम होता है।

कटुतुम्बी कटुस्तीक्ष्णा वान्तिकृच्छ्रवास वातजित्। (कासघ्नीशोधनी शोफव्रणशूल विषापहा॥)

(रा० नि०)

तितलौकी—कटु, तीक्ष्ण, वान्तिजनक, श्वास और वातनाशक (कास निवारक, शोधक, तथा सूजन, व्रण, शूल और विषनाशक है।

कटुतुम्बा हिमाहृद्या पित्तकासविषापहा।
तिक्ता कटुविपाके च वातपित्त ज्वरान्तकृत्॥
(भा०)

कड़ुवी तुम्बी वा तितलौकी शीतल, हृद्य है तथा यह पित्त, खाँसी और विष को दूर करती है। यह स्वाद में कड़वी, विपाक में चरपरी, और वात पित्त ज्वर को दूर करती है।

कटुतुम्बी रसेपाके कटुर्हृद्या च शीतला।
तिक्ता वान्तिकरी श्वास-कास-हृच्छोधनीमता॥

वातशोफ व्रण विषशूल पित्त ज्वरापहा।
पर्ण पाके तु मधुरं मूत्रशोधनमुत्तमम्॥
पित्तशान्तिकरं ज्ञेयं फले पर्णसमा गुणाः।
(वै० निघ०)

तितलौकी रस और पाक में चरपरी, हृद्य, शीतल, कड़वी, वामक, श्वास-खाँसी और हृदय को शुद्ध करनेवाली है तथा वात, सूजन, व्रण, विष, शूल, पित्त और ज्वर को नाश करनेवाली है। इसकी पत्ती पाक में मधुर, उत्कृष्ट मूत्रशोधक और पित्तनाशक है।

राजवल्लभ के मत से यह लघुपाकी, कफवातनाशक, पाण्डुहर और कृमिनाशक है। गण निघंटु में इसे रस और पाक में शीतल और लघु लिखा है। केयदेव के मत से यह पाक में कटु वात और पित्तनाशक, ज्वरनाशक, अहृद्य और शीतल है।

तितलौकी के वैद्यकीय व्यवहार

चक्रदत्त—(१) अश्मरी में तिक्तालाबुरस—पकी तितलौकी का स्वरस जवाखार और चीनी मिला सेवन करने से अश्मरी का नाश होता है।

मात्रा—रस २ तोला, यवक्षार चीनी २॥ तो० यथा—

"अश्मर्य्यां तिक्तालाबुरसः क्षारः सितायुक्तोऽश्मरीहरः" (अश्म-चि०)

(२) गलगण्ड में तिक्तालाबु—पकी तितलौकी के भीतर एक सप्ताह पर्यन्त जल वा मद्य भर कर रखें। इसके बाद उक्त मद्य वा जल को पियें और गलगण्डोपयोगी पथ्य सेवन करें। यह गलगण्ड में हितकारी है। यथा—

"तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम्।
मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्यानुसेविनः॥
(गलगण्ड-चि०)

(३) अर्श में तिक्तालाबु बीज—तितलौकी के बीजों को उड़िद लवण के साथ काँजी में पीसकर तीन गोली बनायें। इन्हें गुदा में धारण कर भैंस का दही मिलाकर भोजन करें। यह अर्श में हितकारी है। यथा—

"तुम्बीबीजं सौद्भिदन्तु काञ्जिपिष्टं गुदीत्रयम्।
अर्शोहरं गुदस्थं स्यादधि माहिषमश्नतः॥
(अर्श-चि०)

भावप्रकाश—योनि रोग में तिक्तालाबु पत्र—प्रसूता स्त्री की योनिमें क्षत हो जाने पर तितलौकी की पत्ती और लोध्रत्वक् इनको बराबर बराबर लेकर जल में पीसकर योनि में लेप करें। यथा—

"तुम्बी पत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत्।
तेन लेपो भगे कार्य्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता"॥
(म० खं० ४ भा०)

(२) दशनक्रिमि में तिक्तालाबुमूल—तितलौकी की जड़ का बारीक चूर्ण कर क्रिमिभक्षित दन्तच्छिद्र में भर देवें। यह दन्तकृमिनाशक है। यथा—

"कटुतुम्बीमूलम्। सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिनाशनं प्राहुः।" हारीत—

(१) शोथ में कटुतुम्बी—

"लोमशा कटुतुम्बीच काञ्जिकेन जलेनवा।
निःकाथ्य चापि संस्वेद स्तथैवोष्णेन तेन च"॥
(चि० २६ अ०)

(२) कर्णरोग में कटुकालाबु—कर्णरोग में तितलौकी के फल का रस कान में धारण करने से उपकार होता है। यथा—

"तुम्बी रसञ्च धार्येति कर्णरोगे प्रशस्यते।
(चि० ४३ अ०)

नोट—चरकोक्त कतिपय अन्य प्रयोगों के लिये देखो—"इक्ष्वाकु कल्प"।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—उष्ण वल्कि अतिशय उष्ण और रूक्ष है। यह विषैली वस्तु है। मफ़्रजन मुफ़रिदात के अनुसार तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष)। वैद्य भी उष्ण वीर्य लिखते हैं। पर किसी-किसी के मत से तिक्त बीजा तुम्बी शीतल होती है।

स्वरूप—बाहर से हरी और पीली तथा भीतर से सफ़ेद होती है।

स्वाद—अतिशय तिक्त एवं तीक्ष्ण।

हानिकर्त्ता—आमाशय को (म० मु०), प्रायः अंगों के लिये हानिकर है और लगभग विष है। (ब० मु०)

दर्पघ्न—क़ै करना, तैल और स्निग्ध पदार्थ (म० मु०, ब० मु०)। यह विष है, अस्तु अभक्ष्य है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह तुमड़ीकी एक किस्म है, जिसके बीज कड़ुए होते हैं। यह शीतल एवं हृद्य है तथा विष, कास और पित्त का नाश करती है। इससे बीज प्रत्येक मासांत में लाकर पीस लेवें और उसे आदी-स्वरस की इक्कीस भावना देकर तैल खींचे और उसे शीशी में सुरक्षित रखें। इकतालीस दिन इस तेल का अभ्यंग करने से अंग दृढ़ होता है। कहते हैं कि इस तेल में पारा बँध जाता है। कड़ुए बीज की तुँबड़ी की जड़ सूर्य ग्रहण के समय ले आवें। यह जड़ जब तक कटि में बँधी रहेगी, वीर्य स्खलित नहीं होने देगी। ता० श०।

यह प्रबल वामक है। तर दमा और खाँसी में इसके द्वारा क़ै करने से उपकार होता है। इसके दाँतों पर मलने से दाँत दृढ़ होते हैं। पकी हुई सूखी तितलौकी लेकर चीरें। उसके सिर (गूदा और डंडी का मध्य भाग) में मकड़ी के जाले की तरह एक सफ़ेद पर्दा होता है, उसे लेकर बारीक चूर्ण करें। पित्तज कामला रोगी (यर्क़ान ज़र्द) को यह चूर्ण थोड़ा थोड़ा सुँघायें। इसमें नाक से पीले रंग का द्रव स्रावित होकर रोगी आरोग्य लाभ करेगा। ताजी हरी तितलौकी को काटकर रात को ओस में रख देवें। प्रातःकाल उस पर पड़ी हुई ओस की बूँदें लेकर कामला रोगी की नाक में टपकायें। आँख की पीतवर्णता निवारणार्थ यह अनेकों बार का परीक्षित है। यदि बंदाल का फल और तितलौकी का गूदा—इनको पीस कर सुँघायें। इससे भी उपर्युक्त रोग में बहुत उपकार होता है। इसका सिर काटकर पानी में तर करें और इसे दिन भर धूप में और रात भर ओस में रखें। फिर प्रातः काल इसमें से दो बूँद कामला रोगी की आँख में लगायें। इसके दो घड़ी बाद, हड़ का बक्कल और मिश्री इन दोनों का चूर्ण हथेली पर रखकर फँकायें। उस दिन दही-भात खिलायें। इससे कामला रोग आराम होता है। बक़ाई के संकलनकर्त्ता ने इसे अपना परीक्षित वर्णन किया है।

तितलौकी की जड़ उष्ण और रूक्ष है। यह सरदी के शोथों को विलीन करती है और सरदी के दर्द को लाभ पहुँचाती है।

वैद्यों के कथनानुसार तुँबड़ी गुरु एवं तीक्ष्ण है किसी किसी के अनुसार यह लघु है एवं कफ तथा पित्त का नाश करती है। इसका पानी या बीजों की गिरी पीसकर नाकमें टपकाने से कामला रोग आराम होता है। तिक्तबीजा तितलौकी को कतिपय वैद्य हृद्य लिखते हैं। वे इसे विष, पित्त एवं कासनिवारक भी लिखते हैं। इसका तेल शरीर पर मर्दन करने से अंग पुष्ट होते हैं। इस काम के लिये इसका तेल इस प्रकार प्रस्तुत करें तो यह अधिक गुणकारी सिद्ध हो। विधि यह है—प्रथम इसके बीजोंको आदीके रसमें भिगोकर सुखा लेवे। फिर इसका तेल खींचें। इस तेल में पारा अग्नि-स्थायी हो जाता है। कड़ुये बीज की कद्दू की जड़ सूर्य ग्रहण के समय उखाड़ लावें। यह जड़ जब तक कटि में बँधी रहेगी, वीर्य-स्खलित नहीं होगा। तितलौकी की बेल के सभी अंगों को लेकर सुखा लेवें। फिर उसे कूटकर गरम पानी में घोलें और उस पानी में दोनों पाँवों को डुबो रखें थोड़ी देर पश्चात् जब मुख का स्वाद कड़ुआ हो जाय, तब पाँवों को उस पानी के बाहर निकाल लेवें और काफी कपड़े ओढ़कर पसीना लावें। इससे कुष्ठ एवं पुरानी खुजली आराम होती है। परीक्षित है। तितलौकी के भीतरी भाग को बिना पूर्णतया साफ किये, उसमें खान-पान की वस्तु भरी रखकर, कुछ देर पश्चात् उसे खाने-पीने से विशूचिका की तरह क़ै-दस्त होने लगते हैं। यदि इसका समय से उचित उपाय न किया गया, तो इसे खाने वाले मनुष्य के जीनेकी कोई आशा नहीं की जा सकती।

इसके गूदे का रस एक-दो बूँद नाक में डालने से सिरका दूषित जल बहने लगता है और नाक की दुर्गंधि जाती रहती है। इसको गुड़ और काँजी के साथ पीसकर लेप करने से बवासीर आराम होता है। इसमें सप्ताह पर्यन्त जल भरा रखकर, उस जल को पीने से गंडमाला मिटती है। इसके बीजों के लेप से फ़ालिज आराम होता है। इसके पत्ते और लोध पीसकर लेप करने से व्रणपूरण होता है।—ख़० अ०

थोड़ी मात्रा में खाने से यह बहुत क़ै लाती है। इसको खाकर क़ै करने से सर्द और तर दमा एवं चिरकारी तर खाँसी में उपकार होता है। इसके

फूलों (तुम्बी पुष्प) का रस नाक में टपकाने वा सुड़कने से कामला एवं मस्तिष्क की तर व्याधियाँ दूर होती हैं। सूखी हुई तुंबी को चीरकर उसके सिरे के गट्टे का पर्दा निकालकर उसे महीन पीस लेवें, उस कामला रोगी को जिसकी आँख और मुखमंडल तक पीला पड़ गया हो एवं प्रायः तर मस्तिष्क व्याधियों में इसका नस्य देने से पीले रंग का द्रव और कफ नाक से निकल कर उक्त रोग आराम होते हैं। यह लगभग विष है।—बु० मु०।

नव्यमत

आर० एन० खोरी—तिक्त अलाबू का गूदा वामक और रेचक है। तिक्तालाबू बीजजात तैल शीतल एवं शिरः स्निग्धकर है। (मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया—खं० २, पृ० ३१२)

डीमक—इसका सफेद गूदा बहुत कड़वा और प्रबल वामक और विरेचक होता है। भारतवर्ष में इसका गूदा विरेचनार्थ अन्य औषधियों के साथ देशी चिकित्सा में व्यवहृत होता है। पुल्टस रूप में इसका बहिर प्रयोग भी होता है। इसका बीज प्रथमतः प्राचीनों के शीतल चातुर्बीज का एक उपादान था, परन्तु अधुना कद्दू (Pumpkin) के बीज प्रायः उसकी जगह काम में आते हैं। कामला में हिन्दू लोग इसकी पत्ती का काढ़ा व्यवहार करते हैं। यह विरेचक होता है। फा० इं० २ भ०।

डुरी—कामला में इसकी पत्तियों का काढ़ा शर्करा मिलाकर दिया जाता है।

नादकर्णी—इसका गूदा कड़वा, वामक और इन्द्रायन की भाँति तीव्र विरेचक (Drastic-purgative)है। बीज पोषक एवं मूत्रल है। बीजजाततैल शीतल है। इसके फल को जलाकर राख करें। इसे शहद में मिलाकर आंख में लगाने से रतौंधी दूर होती है। इसके फल का रस और मीठा तेल (Sweet oil) दोनों सम भाग लेकर तैलावशेष रहने तक पकायें। इस तैल के लगाने से गंडमाला आराम होता है। इलाजुल् गुर्बा में प्रलापावस्था में इसका शिरोऽभ्यंग करने को लिखा है। नासारोग में (Atrophic Rhinitis) इसके रस की कुछ बूंदें नाक में टपकावें। —इं० मे० मे० पृ० ४६६-७

डॉक्टर वर्टन ब्राउन (Dr. Burton Brown) =एतज्जन्य विषाक्तता के लक्षण प्रायः बंदाल वा इन्द्रायन जनित विषाक्तता के सदृश लक्षण होते हैं। फा० इं० २ भ०।

कद्दूदाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का उदर कृमि जो कद्दू के बीज की तरह होता है। स्फीत कृमि। ब्रध्नाकार कृमि। (Fap worm) दे० "कृमि"।

कद्रु—वि० [सं० त्रि०] पीला। पिंगल वर्ण विशिष्ट। गंदुमी का भूरा।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०], (१) पीला रंग। पिंगल वर्ण। भूरा वा गेहुवाँ रंग। (२) चिरौंजी का पेड़। पियार। प्रियाल वृक्ष। अ० टी० भ०।

कद्रुज—संज्ञा पुं० [सं०] कद्रु से उत्पन्न। नाग। सर्प। सांप।

कद्रुण—वि० [सं० त्रि०] पिंगल वर्ण युक्त। गंदुमी। भूरा।

कद्रुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नाग। सर्प। साँप।

संस्कृतपर्य्याय—काद्रवेय, कद्रुकालु और कद्रुसुत।

कद्वर—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दधि स्नेह युक्त तक्र। पानी मिला मट्ठा। (२) दुग्ध का पानी। आब-शीरा। तोड़।

कदूह्—[अ०] [बहु० कुदूह्] ज़ख्म का निशान। व्रण चिह्न। क्षत चिह्न। (Scar)

नोट—कदूह् ख़ादश से बढ़ी हुई अवस्था के लिये प्रयुक्त होता है।

क़दूह्—[अ०] (१) दे० "क़तह्"।

कधि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] जल, पानी।

क़नः—[अ] नारफील। (Common Galbanum)

क़नः क़नः—[फ़ा०] कुनैन।

कन—संज्ञा पुं० [सं० कण] (१) चावलों की भूल। कना। (२) बालू वा रेत के कण। (३) कनखे वा कली का महीन अंकुर जो पहले रवे के ऐसा दिखाई पड़ता है। (४) कान का संक्षिप्त रूप

जो यौगिक शब्दों में आता है। जैसे—कनपटी, कनपेड़ा, कनछेदन।

संज्ञा पुं० [मल०] वरना। वरुण।

संज्ञा पुं० [गु०] कंद। गड्डा (गु०)। (Bulb or Tuber)

कनअद–[अ०] एक प्रकार की मछली।

कनइल–संज्ञा पुं० [देश०] कनेर। करवीर।

कनई–संज्ञा स्त्री० [सं० कांड वा कंदल] (१) कनखा नई शाखा। कल्ला। कोपल। (२) कीचड़। गीली मिट्टी।

कनउँगली–संज्ञा स्त्री० [सं० कनीयान, हिं० कानी× उंगली] सबसे छोटी उंगली। कनिष्ठिका, कानी उँगली। कान खुजलाने में प्रायः काम आने से हाथ की सबसे छोटी उँगली 'कन उँगली" कहलाती है।

कनक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कसौंजा। कासमर्द चुप। रा० नि० व० ४। के० दे० नि०। (२) जयपाल वृक्ष। जमालगोटे का चुप। (३) पलाश (रक्त)। टेसू का पेड़। ढाक। च० चि० १ अ०। (४) नाग केसर का पेड़। (५) चंपे का पेड़। चम्पक वृक्ष। (६) काली अगर कृष्णागुरु वृक्ष। मे० कत्रिक। (७) धुस्तूर वृक्ष। धतूरे का पेड़। यथा—"निशाकनक–कलका भ्यां।"—प० मु०। (८) एक प्रकार का गुग्गुल कण गुग्गुल। कनक गुग्गुल। रा० नि० व० १२। (९) लाख का पेड़ अर्थात् पलास) लाक्षातरू। श० मा०। (१०) काला धतूरा। कृष्ण धुस्तूर। रा० नि० व० १०। भैष० वात रक्तचि० विषतिंदु तैल। (११) लाल कचनार का पेड़। कांचनार वृक्ष। (१२) कालीय वृक्ष। कलम्बक। पीला चन्दन। (१३) खजूर। (१४) तून। तूणी।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना। सुवर्ण (२) सुहागा, टङ्कण। (३) कसौंदी। नि० शि०।

संज्ञा पुं० [सं० कणिक=गेहूं का आटा] (१) गेहूं का आटा। कनिक। (२) गेहूं।

संज्ञा पुं० [ते०] बांस।

संज्ञा पुं [पं० गेहूं।

कनकइया–[कना०] लताफटकरी। कानफटा। कर्ण स्फोटा, दे० "कनफोड़ा"।

कनक कदली–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का केला।

कनक कन्दर्प रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वाजीकरण औषधि। शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोने की भस्म और लोह भस्म बराबर बराबर लेकर ताँबे के खरल में कज्जली बनायें। फिर इसे सरसों और काले धतूरे के स्वरस में ३-३ दिन तक खरला करें। इसके पश्चात् ३ दिन तक सरसों के तेल में घोंट कर धूप में सुखायें। फिर इसे यथा विधि बालुका यंत्र में तब तक पकायें, जब तक कि बालू गरम हो जाय। इसके पश्चात् उसे स्वाङ्ग शीतल हो जाने पर निकाल कर रखें। इसे "हेमाङ्ग सुन्दर रस" कहते हैं। इसमें पारे का चौथा भाग स्वर्ण भस्म तथा कान्त लोह भस्म और वैक्रान्त भस्म मिलालें तो इसका नाम "कनक कन्दर्परस" हो जाता है।

गुण तथा उपयोग विधि—इसे १ माशा की मात्रानुसार मिश्री, शहद और घी में मिलाकर कोष्ण गो दुग्ध के साथ १२ दिन तक सेवन करने से धातु क्षीणता दूर होकर अत्यन्त काम की वृद्धि होती है। व्यवहारिक मात्रा १ रत्ती है। रस० र० वाजी०।

कनक गैरिक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खूब लाल गेरु। सोनागेरु। स्वर्ण गैरिक भा० म० ४ भ० विषचि०।

कनक चम्पक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "कनकचम्पा,

कनकचम्पा–संज्ञा पुं० [सं० कनकचम्पकः] मध्यम आकार का सुचकुन्द जातीय एक वृक्ष जिसकीछाल खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियों और फल के दलों के नीचे की हरी कटोरी रोएँदार होती है। इसके पत्ते बड़े और कुम्हड़े, नसुए आदि की तरह के होते हैं। फल इसके अत्यन्त सफेद और मीठी सुगंध के होते हैं। यह दलदलों में प्रायः होता है। बसंत और ग्रीष्म में फूलता है फूल सुगंधिविशिष्ट होता है। इसकी लकड़ी के तख्ते मजबूत और अच्छे होते हैं।

पर्य्या०—कनकचम्पकः, कर्णिकार, कर्णिकारक –सं०। कनियार, कनकचंपा, कनिआरी, कलियारी,

कलिआर, कनिआर, काठचम्पा-हिं०। कर्णिकार, कनक चांपा, मूस-बं०, बम्ब०। मत्सकंद ते०, मद०। रेल्ल चेट्टु, कोंडगोगुचेट्टु, गोगुचेट्टु-ते०। हाथी पाइला-सिक्कि, नैपा०। मचकुन्द-संथाल। लैदीर-मेची। तौंग-पेट्-बुन, था-मजम-वेई-सोके बर०। टेरोस्पर्मम् असेरीफोलियम् Pterosper mum acerifolium, *Willd.*-ले०। अबार्नब्लैट्टीगर फ्लुजेल्सामेन Aborn blattri ger Flugelsamen-जर०। गैक-मग०।

मुचकुन्द वर्ग

(*N. O. Stercvliaceœ*)

उत्पत्ति-स्थान--यह वृक्ष भारतवर्ष के नाना स्थानों में उत्पन्न होता है। आर्द्र भूमि में यह प्रायः पनपता है। उत्तर पश्चिम हिमाचल से कुमाऊँ, बंगाल चिटागाँग और कोंकण में पाया जाता है। हिमालय के नीचे के हिस्से में व पहाड़ियों पर ४००० फुट की ऊँचाई तक होता है बम्बई प्रांत में काफी बोया जाता है और श्याम में भी पैदा होता है।

औषधार्थ व्यवहार—पत्र, छाल, फूल

गुणधर्म तथा प्रयोग

कटुतिक्तः लघुः शोधनस्तुवरः रञ्जनः।
सुखदः शोथ श्लेष्म रक्तव्रण कुष्ठहरश्च॥

(रा० नि० व० ९)

कनकचंपा—कडुआ, चरपरा, हलका, कसेला शोधक, रञ्जक एवं सुखद है तथा यह सूजन, कफ रक्त, व्रण और कोढ़ का नाश करता है।

नव्यमत

डीमक—इसकी पत्ती के पृष्ठ पर लगी हुई सफेद रोई का पहाड़ी लोग रक्तस्तंभनार्थ व्यवहार करते हैं। सप्पूय मसूरिका (Suppura tingsmall-pox) में कोंकण-निवासी इसके फूल और वृक्ष की छाल (Charred) को कमीला के साथ मिलाकर लगाते हैं।—फा० इं० १ भ० पृ० २३३।

गैम्बल—पत्तियों पर लगे हुये रोएँ क्षतजात रक्तस्राव स्तंभनार्थ व्यवहार किये जाते हैं।

टी० एन मुकर्जी—कनकचंपा के फूल सार्व दैहिक वल्य औषधरूप से व्यवहार में आते हैं। इं० मे० प्रां०

नादकर्णी—इसके पीताभ सुरभित पुष्प श्वेत-प्रदर एवं आमाशयिक वेदना (Gastralgia) में और पत्रावृत रोम रक्तस्तंभक रूप से व्यवहार किये जाते हैं।—इं० मे० मे० पृ० ७१९

चोपरा के अनुसार इसके फूल और इसका छिलका छोटी माता की फुन्सियों के पीव को बन्द करने के लिये काम में लिया जाता है।

कनकचूर-संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान। कनकचूर की लाई से गुड़ को आमन बनती है।

कनकजीर, कनकजीरा-संज्ञा पुं० [सं० कनक+हिं० जीर] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिन नहीं बिगड़ता।

कनकजोद्भव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राल। लोबान रा० नि० व० १२।

कनकझिङ्गा-संज्ञा पुं० एक पेड़। (Polygonum elegans)

कनकटा-वि० [हिं० कान काटना] जिसका कान कटा हो। बूचा।

कनकटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+काटना] कान के पीछे का एक रोग जिसमें कान का पिछला भाग जड़ के समीप लाल होकर कट जाता है और उसमें जलन और खुजली होती है।

कनकतैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शिरो रोग में प्रयुक्त उक्त नाम की तैलौषधि-धतूरा, आक, बला, दूर्बा, अडूसा, अरनी, संभालू, करञ्ज, भारंगी, निकोठक (अंकोल), पुनर्नवा, बेर, भांग के पत्ते, बेरगिरी, बड़ी कटेली, चीता, सेहुँड़ की जड़, अरनी, वायबिडंग, निशोथ, मजीठ, गोमठी (गोरोचन) और अमलतास के पत्ते प्रत्येक २-२ पल। सबको १ द्रोण पानी में पकावें जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार कर छानलें। इस क्वाथ और इन्हीं चीजों के कल्क से १ प्रस्थ तैल तीव्र अग्नि पर पकाएं।

गुण—यह तेल नेत्र पीड़ा, शिरःशूल, मांस रक्तज श्लीपद, आमवात, हृदयपीड़ा, अण्डवृद्धि, गलगण्ड, सूजन, बधिरता, उदर रोग खाँसी, और कफ रोगों का नाश करता है।

परीक्षा—यदि इस तेल की बूंद दूर्बा घास पर डालते ही वह तत्काल सूख जाय तब तेल

उत्तम सिद्ध समझना चाहिये। भै० र० शि० रो० चि०।

(२) मधु के कषाय में एक कुडव तैल और प्रियंगु, मंजीठ, लालचन्दन, नीलोत्पल और नागेश्वर प्रत्येक का चार-चार तोले कल्क डालकर पाक करने से यह तैल प्रस्तुत होता है। इसके प्रयोग से मुख की कांति बढ़ती और चक्षुःशूल शिरःशूल प्रभृति रोग मिटते हैं।—च० द०।

कनकधत्तूर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धतूरा।

कनकपराग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुवर्ण रेणु। सोने का बुरादा।

कनकपल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सोना प्रभृति तौलने का एक मान जो १६ मासे के बराबर होता है। हारा०। इसका दूसरा नाम कुरुविस्त है। (२) एक प्रकार की मछली। इसका मांस सुवर्ण जैसा होता है।

कनकपुष्पिका, कनकपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटी अरनी। गणिकारिका। (२) उलटकंबल। द्रुमोत्पल। वै० निघ०।

कनकप्रभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की सोमलता। सु० चि० २६ अ०। दे० "सोम"।

कनकप्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बड़ी मालकँगनी। महाज्योतिष्मती लता। रा० नि० व० ३। (२) सोनजूही। पीलीजूही। स्वर्णयूथिका। रा० नि० व० १०। (३) हड़ताल। (४) एक रसौषध जिसका प्रयोग ज्वरातिसार में होता है। योग यह है—सुवर्ण बीज, मरिच, मरालपाद, कणा। टंकणक, विष और गंधक–इनको बराबर-बराबर ले चूर्ण करें। फिर उसे भाँग के रस में घोंट कर गुञ्जाप्रमाण वटिका प्रस्तुत करें। इसके सेवन से अतिसार ग्रहणी और अग्निमांद्य रोग छूट जाता है। र० सा० सं०।

कनक प्रभा वटी– } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
कनक सुन्दर रस– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

(१) शुद्ध हिंगुल मिर्च, शुद्ध गन्धक, पीपर, सोहागा भुना, शुद्ध सिंगीमोहरा, धत्तूर के बीज, प्रत्येक समान भाग ग्रहण करें। बारीक चूर्ण कर भांग के रस में १ पहर अच्छी तरह घोटे फिर चना प्रमाण गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से ग्रहणी रोग का नाश होता है। योग–चिन्ता०। भैष० र० ज्वरातीसा० चि०।

(२) शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, काली मिर्च, भुना सोहागा, एक एक भाग, सबके बराबर धत्तूर बीज, सिंगिया विष १ भा०। बारीक चूर्ण कर भाँगरे के रस में दोपहर अच्छी तरह घोटें।

मात्रा—२ रत्ती।

गुण—इसके सेवन से वातातिसार शीघ्र दूर होता है।

पथ्य—भात के साथ बकरी या गऊ का दही (बृहत् रस रा० सु० १)

(३) धतूर बीज, काली मिर्च, हंसपदी, पीपर, भुनासोहागा, सिंगिया विष, और शुद्ध गंधक, प्रत्येक समान भाग। चूर्णकर भंग के रस में अच्छी तरह खरलकर १ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा प्रयोग—इसके उपयोग से अतिसार, संग्रहणी, ज्वरातिसार, और मन्दाग्नि का नाश होता है।

पथ्य—दही, भात, शीतल जल, तीतर और लवा पक्षी के माँस का यूष। (बृहत् रस रा० सु०।)

कनक प्रसवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वर्ण केतकी वृक्ष, केतकी केवड़े का पेड़। रा० नि० व० १०।

कनकप्रसून–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धूली कदम्ब। वै० निघ०।

कनकफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) धतूरे का फल। धुस्तूर फल। (२) जमालगोटा। जयपाल।

कनकबीर, कनकमृग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वर्ण वर्ण मृग। सुनहले रंग का हिरन।

कनकमोचा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोनकेला, चंपाकेला। स्वर्ण कदली।

कनक रम्भा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोनकेला। सुवर्ण कदली। पीलाकेला। चंपाकेला। रा० नि० व० ११। कनकवर्णा, कलिकारम्भा।

कनकरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) हरताल। रा० नि० व० १३। (२) सोने का पानी शीतल स्वर्ण द्रवीभूत सुवर्ण। माउज़्ज़हब। दे० "सोना"।

कनकलोद्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सर्जरस। राल। धूना। रा० नि० व० १२।

कनकवती रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अर्शोधिकारोक्त एक रसौषधि।

योग तथा निर्माण-क्रम—पारा, गंधक, हरिताल, सेंधा नमक, लौंगली, (करिहारी) इन्द्रजौ, और तुम्बी हरएक एक पल और लहसुन ४ पल इनको करेली की पत्ती के रस में घोंटकर गुंजा प्रमाण वटिका प्रस्तुत करें।

गुण तथा सेवन-विधि—कनकवती रस में एक वटी प्रतिदिन सेवन करने से रक्त, वात एवं कफ तीनों के विकार से उत्पन्न होनेवाला अर्शरोग बवासीर आराम होता है। (रस रत्नाकर)

कनक-विन्दु-अरिष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आयुर्वेद में एक अरिष्ट विशेष। स्वर्णत्वक् (धतूरे की छाल) त्रिफला, त्रिकुटा, हल्दी, मोथा, भिलावाँ, वायविडंग, वाकुची, गुरुच धवपुष्प, प्रत्येक १–१ पल। इन्हें चौगुने जल में क्वाथ करे। जब चौथाई शेष रहे तब इसमें शुद्ध शहद १०० पल (४०० तोला) मिलाकर सन्धानित कर अक्की रास में गाड़ दें। एक मास पश्चात् छानकर रखें।

मात्रा—१ तोला।

गुण—इसके सेवन से १ मास में कुष्ट १ पक्ष में अर्श, तथा श्वास, खाँसी भगंदर, किलास, प्रमेह, और सूजन का नाश होता है। वंग से० सं० कुष्ट चि०।

(२) खदिर कषाय १ द्रोण। त्रिफला, त्रिकुटा, विडंग, हल्दी, मोथा, अडूसा, इन्द्रजौ, दारुहल्दी, दालचीनी और शल्लकी (सलई) इनका चूर्ण छः-छः पल लेकर एक मिट्टी के पात्र में जो घृत से स्नेहित किया गया हो। यथाविधि सन्धानित कर धान के रास में १ मास तक रक्खें पुनः छानकर बोतल में रखलें।

गुण—युक्तिपूर्वक सेवन करने से महाकुष्ट १ महीने में और साधारण कुष्ट १ पक्ष में नष्ट होता है। और यह अर्श, श्वास, भगन्दर, कास, प्रमेह, किलास और शोष को भी नष्ट करता है। तथा यह कनकबिन्द अरिष्ट सेवन से शरीर कनक वर्ण होजाता है। च० चि० ७ अ०।

कनक बीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] धतूर का बीया। धुस्तूर बीज। दे० "कनकसुन्दररस"।

कनक सङ्कोच रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुष्ठरोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग—सोने की भस्म अभ्रकभस्म और सोंठ, प्रत्येक १–१ भाग, पारा ३ भाग, एवं गन्धक ६ भाग लेकर काँजी में घोटकर गोला बनाएं और फिर उसे कड़वे तेल में लोहे के पात्र में मन्दाग्नि पर पकाएं। जब जलाँश बिलकुल सूख जाय तब उसका चूर्ण करके उसमें चीते की जड़, त्रिकुटा, दालचीनी, वायविडंग और शुद्ध मीठा तेलिया १–१ भाग और त्रिफला ३ भाग, सबका चूर्ण मिलाकर १ दिन तक बकरी के मूत्र में घोटकर १–१ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनालें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे १ रत्ती की मात्रानुसार १ निष्क (२, ३ रत्ती) बकुची के तेल के साथ सेवन करने से विस्फोटक और कुष्ठ का नाश होता है। रस र० कुष्ठ० चि०।

इसकी मात्रा क्रमशः बढ़ाकर २ रत्ती तक की जा सकती है।

कनक सिंदूर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्षय रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का रस।

योग—शुद्धपारा, स्वर्णभस्म, सोना मक्खी की भस्म, हरताल भस्म, मनसिल, खपरिया भस्म, गन्धक और नीलाथोथा सब समानभाग लेकर कजली करके आक के दूध, अरनी, अगस्त, बहेड़ा चीता, भांगरा और अडूसे के रस की १–१ भावना दें। फिर गोला बनाकर "मृगाङ्क" रस की बिधि से पकाएं। फिर अदरख और सोंठ, मिर्च, पीपल के रस या क्वाथ की ७–७ भावना दें।

गुण तथा उपयोग बिधि—इसके उपयोग से क्षय का नाश होता है। इसे अदरख के रस के साथ देने से सन्निपात और सोंठ के चूर्ण के साथ तथा घृत के साथ देने से वातज गुल्म और शूलादि नष्ट होता है। इसके सेवन में समस्त आहार-बिहार "मृगांक" रस में कहे अनुसार करना उचित है। वृ० नि० र०।

कनक सुन्दरतैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बच, धतूरा, दुद्धी, हल्दी और सोंठ इनके कल्क को

धतूरे के रस और कडू तेल चौगुने में मिलाकर पकाएँ। जब तेल सिद्ध होजाये छानकर रखलें। यह दुष्ट श्वेद और वादी के विकार नाशक तथा कान्तिकारक है। (योग चि०)

कनक सुन्दर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] ज्वरातिसार में प्रयुक्त उक्त नाम का एक रस योग। हिंगुल शुद्ध, मिर्च, गंधक, भूना सोहागा, पीपल, मीठा तेलिया और धत्तूर बीज छिला हुआ। समान भाग लेकर चूर्ण करके १ पहर तक भाँग के रस में घोटकर चना प्रमाण की गोलियां बनाएं।

गुण तथा उपयोग विधि—इसे यथोचित अनुपान से सेवन करने से संग्रहणी, अग्निमांद्य ज्वर और प्रबल अतिसार का नाश होता है। रस० सा० सं० ज्वरातिο।

(२) स्वर्ण भस्म १ भाग, पारा, मनसिल, गंधक, तूतिया, सोना मक्खी की भस्म, हरताल, मीठा तेलिया और भुना सुहागा ४–४ भाग लेकर चूर्ण करके स्वच्छ खरल में जयन्ती, भाँगरा पाठा, अडूसा, अगस्त, कलिहारी और चीते के रस की १–१ भावना दें। फिर सुखाकर अदरख के रस की ७ भावना दे कर रखलें।

मात्रा—१–२ रत्ती।

गुण—इसे शहद और पीपल या मिर्च तथा घी के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा का नाश होता है। सन्निपात में अदरख के रस के साथ सेवन करने से लाभ होता है। और गुल्म अथवा शूल में जमालगोटे के आधा रत्ती चूर्ण के साथ।

पथ्य—बल्य- हृद्य, रसायन पदार्थ।

परहेज—खटाई, नमक, हींग, छाछ, और विदाही पदार्थ। र० सा० सं० यक्ष्मा चि०।

कनकस्तम्भा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोनकेला। स्वर्णकदली वृक्ष। चंपा केले का पेड़। रा० नि० व० ११।

कनकक्षार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोहागा।

कनकक्षीर तैलम्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ट रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का योग—

कल्क द्रव्य—कनकक्षीरी (सत्यानाशी), मनशिल, भारंगी, दन्तीमूल और फल, जायफल, प्रवाल, सरसों, लहसुन, वायविडंग, करञ्ज की छाल, छातिम, आक के पत्ते और जड़ की छाल, नीम, चीता, आस्फोता (हापड़माली) गुञ्जा, अरण्डमूल, कटेरी बड़ी, मूली, तुलसी, अर्जक (तुलसी भेद) के फल, कूठ, पाठा, मोथा, तुम्बुरु मूर्वा, वच, पीपलामूल, पमाँड, कुड़ा, सहिजन, त्रिकुटा, भिलावाँ, नकछिकनी, हरताल, अवाकपुष्पी तूतिया, कबीला, गिलोय, सोरटी मिट्टी, कसीस, दारुहल्दी की छाल, सज्जी, सेंधानमक।

इनके कल्क और कनेर की जड़ तथा पत्तों के क्वाथ एवं चौगुने गोमूत्र के साथ सरसों का तेल यथा विधि सिद्ध करके कड़वी तूम्बी में भर कर रखदें।

गुण—इसके उपयोग से कृमी, कण्डू और कुष्ट रोग का शीघ्र नाश होता है। च० चि० ७ अ०।

कनकक्षीर तैल–टङ्कण क्षार। रा० नि० व० १३।

कनकक्षीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भड़ भांड। धन्व० नि०।

कनकक्षीरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सत्यानाशी। भँड़भाँड़। सुवर्णक्षीरी। (२) पीत कण्टक धुस्तूर। (३) सातला।

कनकादि लेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धत्तूरा, पान चमेली के पत्ते, मूर्वा, रसौत, कूट, मनशिल और पारद का अच्छी तरह घोट कर तेल मिलाकर लेप करने से कोढ़, खुजली, विसर्प, बिवांई और त्वचा की श्यामता नष्ट होती है। वृ० नि० र० विसर्प चि०।

कनकान्तक, कनकारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल कचनार। कोविदार वृक्ष। रा० नि० व० १०। दे० "कचनार"।

कनकानी–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की एक जाति।

कनकारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोविदार। कचनार भेद।

कनकारका–[फ़ा०] अरनी, अगेथू।

कनकारिष्ट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कूटे हुये नवीन आमले १ तुला, वायविडंग, पीपल और मिर्च १–१ कुडव, पाठा, पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चीता, मजीठ, एलवालुक और लोध। प्रत्येक १–१ पल। कूठ, दारुहल्दी, देवदारु, दोनों सारिवा, इन्द्रजौ

नागरमोथा प्रत्येक आधा आधा पल और नवीन नागकेसर ४ पल लेकर सबको २ द्रोण पानी में पकायें । जब चौथा भाग शेष रह जाय तब छानकर ठंडा करके उसमें मुनक्का का क्वाथ २ आढक, उत्तम खाँड़ २ तुला (२०० पल),नवीन शहद आधा प्रस्थ, दालचीनी, इलायची, मोंथा, तेजपात, सुगन्धवाला, खस, सुपारी और नागकेशर प्रत्येक १–१ कर्ष का चूर्ण मिलाकर पवित्र घृत के चिकने और खाँड तथा अगर से धूपित बरतन में संधान करके १५ दिन तक रक्खा रहने दें । इसके पश्चात् निकाल कर छान लें और बोतल में बन्द करके रक्खें ।

गुण—मधुर, हृद्य, रुचिकर, ग्रहणी दोष, अर्श अफरा, उदर रोग, ज्वर हृद्रोग पाण्डु,शोथ, गुल्म, विबन्ध, खाँसी, कफज रोग और बली पलित तथा खालित्य(गंज) नाशक है । च० चि० १४ अ० ।

कनकारिष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक अरिष्ट विशेष । खैर का क्वाथ १ द्रोण, त्रिफला, त्रिकुटा, हल्दी, निर्मली, दालचीनी, बावची, गिलोय और बायविडंग का चूर्ण १–१ पल, तथा शहद २०० पल, और धव का फूल ८ पल लेकर सबको घृत से चिकने किये हुये मिट्टी के घड़े में भरकर संधान करके रक्खें ।

गुण—इसको प्रातः काल उचित मात्रा में पान करने से पुरातन कुष्ठ नष्ट होता है । इसे १ मास तक सेवन करने से सूजन, प्रमेह, खाँसी, श्वास, मस्से और भगन्दर आदि सप्रस्त रोग नष्ट होकर शरीर कुन्दन के समान हो जाता है । ग० नि० ६ अ० ।

कनकारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] गोखुरू ।

कनकालुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोने की सुराही । सुवर्ण भृङ्गार । हला० ।

कनकावती वटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शुद्ध पारा, गंधक, हरताल, सेंधानमक, कलिहारी और तुम्बी का फल प्रत्येक १–१ पल, एवं लहसन ४ पल लेकर चूर्ण करके एक दिन तक करेले के रस में घोटकर १–१ रत्ती की गोलियाँ बनायें ।

गुण—इसके उपयोग से बवासीर, वातरक्त, विशेषतः कफज बवासीर का नाश होता है ।

अनुपान—भिलावाँ, त्रिफला, दन्ती, चीता प्रत्येक का चूर्ण समान भाग और सेंधानमक का चूर्ण सबके बराबर लेकर मिट्टी के ठीकरेमें मंदाग्नि पर बहुत समय तक भूनें । यह चूर्ण १ कर्ष और उक्त वटी १ गोली खाकर ऊपर से तक्र पियें । र० र० अर्श० चि० ।

कनकासव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिक्का और श्वास रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक आसव । योग—शाखा, मूल, पत्र और फल सहित कुटा हुआ धतूरा और बाँसे की जड़ की छाल ४–४ पल, मुलहठी, पीपल, कटेली, नागकेसर, सोंठ, भारंगी और तालीशपत्र प्रत्येक का चूर्ण २–२ पल । धव के फूल १ प्रस्थ, मुनक्का २० पल, पानी २ द्रोण खाँड़ १ तुला और शहद आधी तुला लेकर सबको एकत्र करके यथा विधि संधान करके १ मास तक रक्खा रहने दें ।

गुण—इसके सेवन से हर प्रकार की खाँसी, श्वास, यक्ष्मा, क्षत क्षीणता, जीर्ण ज्वर, रक्त पित्त और उरः क्षत का नाश होता है । भैष० र० हिक्का चि० ।

कनकाह्व,कनकाह्वय–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली] (१) सफेद धतूरा ।श्वेत धुस्तूर ।(२) चौलाई ।तण्डुलीय शाक ।वै० निघ० ।(३)जमालगोटे का पौधा । जयपाल वृक्ष ।प० मु० ।(धतूरेका फुप। धुस्तूर वृक्ष । रा० नि० व० १० ।(५) नागकेसरका पेड़ । रा० नि० व० ६ । र० मा० ।

कनकी–संज्ञा स्त्री० [सं० कणिक] (१) चावलों के टूटे हुये छोटे छोटे टुकड़े । (२) छोटा कण ।

कनकुटकी–संज्ञा स्त्री० [हि० कुटकी] रेवन्दचीनी की जाति का एक प्रकार का वृक्ष, जो खसिया की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल और लंका आदि में होता है । इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है, जो दवा के काम आती है ।

कनकुटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+कुटी] जंगली हुल-हुल का एक भेद । इसका पौधा लगभग आध गज ऊँचा होता है । पत्ते कुलथी के पत्ते की तरह होते हैं और शाखान्त में एक में तीन-तीन पत्ते लगते हैं । फूल और फली ३ नालीकी तरह होती हैं । इसको फली को 'कनकुटी' कहते हैं । इसके

पत्ते से उत्तस गंध आती है। गुण-धर्म हुलहुल के समान। ख़० अ०।

कनकूट–संज्ञा पुं० दे० "कुरकुंड"।

कनको–[बर०] जमालगोटा। जयपाल।

कनकोद्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महासर्ज वृक्ष। वै० निघ०। आसन वृक्ष।

कनकोली–[पं०] विवई। घाई।

कनकौवा–संज्ञा पुं० [हिं० कवा+कौवा] एक प्रकार की घास जो प्रायः मध्य भारत और बुंदेलखंड में होती है।

यह जड़ से आध गज ऊँची होती है और उसकी शाखाएँ गाँठदार होती हैं। गाँठों से तंतु निकलते हैं। यह तर भूमि और बगीचों में उत्पन्न होती है। इसके पत्र बारतंग पत्रवत्, पर उनसे किंचित लघु होते हैं। ये कोमल समतल होते हैं और उन पर रुआँ भी होता है। फूल का रंग लाजवर्दी एवं दो वर्गी होता है। यह टोपीनुमा एक परदे से निकलता है, जिसमें बीज होते हैं। इसका एक अन्य भेद भी है, जिसके पत्ते कौवे की चोंच की तरह होते हैं। इनमें से किसी किसी का रंग लाल और किसी का पीला होता है। फूल भी लाल होता है। देहाती लोग इसका साग पकाकर खाते हैं। इसको "कौआ साग" भी कहते हैं। "कौआ बूटी" इससे भिन्न वस्तु है। अरबी भाषा में इसे 'बक़्लतुल् ग़ुराब' कहते हैं। क्योंकि जब कौआ रोगाक्रांत होता है, तब इसके खाने से रोग मुक्त होता है। कोई कोई कहते हैं कि इसके पत्ते कौएकी चोंच की तरह होते हैं,इसलिये इसका उक्त नाम पड़ा।

प्रकृति—उष्णता लिये हुये।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह पिच्छिल कफ (बलग़म लज़िज) उत्पन्न करता है। पित्त का नाश करता है और हृदय को प्रफुल्लित रखता है। यह कामोद्दीपन करताहै, सरदी उत्पन्न करताहै और नेत्र रोग तथा मूत्र सम्बन्धी रोगों को गुणकारी है। इसकी पत्ती कूटकर थोड़ा लवण मिलाकर बाँधना अंगुल बेड़ा वा दाख़िस (Whitlow) के लिये रामबाण औषध है। इसके लिये इससे बढ़कर अन्य कोई दवा नहीं। (ख़० अ०)

कनक्नक–संज्ञा पुं० [वै० पुं०] एक प्रकार का विष।

कनक्री–संज्ञा स्त्री० [हिं०] ढाक। पलास।

कनखजूरा–संज्ञा पुं०[हिं० कान+खर्जू=एक कीड़ा]

पर्य्या०—चित्रांगी, शतपदी, कर्ण जलूका (रा० नि०), कर्णजलोका, शतपदी (हे०),चित्रांगी, पृथिका, कर्षदुंदुभी, कर्णकीटा, कर्णकीटी, कर्णजालूक, शतपात् (द्) शतपादिका–सं०। गोजर, कनखजूरा, खनखजूरा, खान् खोजारा कनगोजर–हिं०। काणक्रोटारी, केन्नुई, काणविच्छा–बं०। हज़ारपा–फ़ा०। अरबश्, अरबए्न (प्राची०) अबु सबश्, अबु सबए्न–(अर्वाचीन)–अ०। सेण्टिपीड Centi pede–अं०। जूलस कार्निफेक्स Gulus Cornifex–ले०।

वर्णन—लगभग एक बालिश्त का एक ज़हरीला कीड़ा जिसके बहुत से पैर होते हैं। उनमें कोई छोटा और कोई बड़ा होता है। इसीसे इसको संस्कृत में शतपदी (सैकड़ों पैर वाला) और फ़ारसी में हज़ारपा (हज़ारों पैरवाला) कहते हैं। इसका पैर प्रायः छः खंडों में विभक्त होता है। कनखजूरा अपनी टाँगो से दूसरे को मार और अपने को बचा भी सकता है। इसकी पीठ पर बहुत से गंडे पड़े रहते हैं। इसका शरीर गिरहदार होता है। इसकी बाहरी रक्षा की ऊपरी रगों में पश्चात् कोष रहता है जो प्रायः दो अनुबन्धों से प्रबल पड़ता है। प्राक्रन् कोण पर शिरः फलक होता है जिसमें चक्षु देख पड़ते हैं और जिस पर दो बारीक शाखें होती हैं। इसके प्रायः आँख नहीं होती। परन्तु जिसके आँख होती है, उसके एक से चालीस तक देख पड़ती हैं। यह कृष्ण रक्तादि कई रंगों का होता है। लाल मुँहवाले बड़े और ज़हरीले होते हैं। इसकी दुम पतली और छोटी होती है। यह ज़बान रखता है। कनखजूरा काटता भी है और शरीर में पैर गड़ाकर चिपट भी जाता है और अत्यन्त कठिनाई से छूटता है, जिस प्रकार यह शरीर के अग्र भाग से आगे को चल सकता है उसी प्रकार शरीर के पश्चात् भाग से पीछे को चल सकता है। भारतवासी कनखजूरे को लक्ष्मी पुत्र कहते हैं। जहां यह निकलता है, वहां धन-

राशि रहने का अनुमान किया जाताहै। कनखजूरे को हिन्दू नहीं मारते।

सुश्रुत के मत से कनखजूरा (शतपदी) आठ प्रकार का होता है। यथा—"शतपद्यस्तु परुषाकृष्णा चित्रा कपिलिका पीतिका रक्ता श्वेता अग्नि प्रभा इत्यष्टौ।" (सु० कल्प० ८ अ०) अर्थात् परुष, कृष्ण या काला, चितकबरा, कपिल रंग का, पीला, लाल, सफेद, और अग्नि के वर्ण का।

ख़ज़ाइनुल् अदबिया के लेखक ने भौम और सामुद्र भेद से इसे दो प्रकार का लिखा है।

सुश्रुत के अनुसार इसके काटने वा शरीर में चिपट जाने से सूजन, वेदना और हृदय में दाह होता है। सफेद तथा अग्निवर्ण के कनखजूरे के काटने में दाह, मूर्च्छा और बहुत सी सफेद फुँसियों की उत्पत्ति के लक्षण होते हैं। (सु० कल्प ८ अ०)

प्रकृति—(तृतीय कक्षा में) उष्ण तथा रूक्ष

हानिकर्त्ता—खर्ज्जू, शोथ और दाह आदि एवं घातक बिष है।

दर्पघ्न—रोगन तथा सिरका।

नोट—यह अभक्ष्य है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

यह अत्यन्त तीव्र एवं घातक बिष है। कतिपय तबीबों का यह कथन है कि नादेय कर्ण जलौका को जैतून के तेल में पकाकर मलने से बाल उड़ जाते हैं। किंतु इसके उपयोग से उक्त स्थान पर खाज उत्पन्न होजाती है। इसके पैरों में ज़हर होता है। यह जहां काटता है वहां किसी कदर प्रदाह होने लगता है, तदनन्तर वह शांत होजाता है। इस जाति के अत्यन्त बिषधर जंतुओं के काटने से तीव्र वेदना होती है। सांस कठिनाई से ली जाती है। हृदय में भय उत्पन्न होजाता है। मधुर पदार्थों के खाने को जी चाहता है। इसका प्रतिबिष वही कनखजूरा है, जिसने काटा है। बिधि यह है कि जिस जगह उसने काटा हो, उस जगह उसे कुचलकर बांध दें, अथवा यह प्रयोग काम में लावें।

ज़राबन्द तवील, पाखान भेद, करील मूलत्वक् और मटर का आटा, हरएक समभाग लेकर कूटकर मद्य या मधुवारि—माउल् अ.स्ल के साथ खिलावें, तिर्याक अरबा और दवाउल् मिस्क भी कल्याण कारक है। अथवा नमक और सिरके का लेप करें।

यदि कनखजूरा पानी में गिरकर मर जाय तो उसे काम में न लाएं; क्योंकि उससे सूजन खाज और दाह होजाता है। इसका उपचार भी उक्त पदार्थ का मलना है। यदि तेल गरम करके कनखजूरे पर डालें, तो वह मरजाय और उसके प्रत्येक गण्ड संधि-स्थान से पृथक होजांय।

कनखजूरे को एक मिट्टी के बरतन में रखकर बरतन का मुंह बन्द करदें और उसे आग में रखकर जलालें। इस प्रकार प्राप्त राख को अपस्मार-रोगी की नाक में फूंकें। इस बिधि से उसके मस्तिष्क से दो कीड़े निकलेंगे और रोगी अच्छा होजायगा। यह प्रयोग हकीम नूरुल् इस्लाम साहब की व्याज (योग-ग्रन्थ) से नकल किया गया है।

कतिपय अनुभवी व्यक्तियों ने यह लिखा है कि पुराने ढाक के पेड़ में कनखजूरा रहने लगता है वह ढाक में रहने के कारण रक्त वर्ण का हो जाता है। यदि उसको जीते जी पकड़ कर तमाखू की हरी पत्ती में सुखा लिया जाय और उसे खूब महीन पीसकर एक चावल की मात्रा में उसका नस्य दिया जाय तो कैसा ही दुसाध्य मृगी रोग हो उसका भी इसके एक सप्ताह के उपयोग से नाश होता है। ढाक में रहने का भी इस रोग पर अवश्य प्रभाव होता है। क्योंकि वैद्य लोग ऐसा कहते हैं कि ढाक की जड़ को पानी में घिसकर दौरे के समय मृगी वाले की नाक में टपकाने से लाभ होता है।

कहावत है कि एक व्यक्ति को चूतड़ों के जोड़ों से पैर की उंगलियों तक वेदना होती थी और प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। अकस्मात् ऐसा हुआ कि तीसरे या चौथे दिन रात्रि में सोते समय उसको कनखजूरे ने काट लिया। थोड़ा सा दर्द मालूम हुआ, प्रातःकाल वेदना बिलकुल

जाती रही, केवल दंष्ट स्थान में वेदना थी जो गरम तेल के मलने से जाती रही।
(ख० अ०)

बड़े कनखजूरे को पकड़कर सुखालें। उसे एक फतीले या वर्तिका में लपेटकर तिल तैल में उसका काजल पारकर उसे सुरक्षित रखें। यह क़लउल् अज्फान अर्थात् पलकें उखड़ने की बीमारी में गुणकारी है। (म० मु०)

कनखा–संज्ञा पुं० वृक्ष की छोटी टहनी।

कनखाब–[अ०] डोकामाली। बंशपत्री।

कनखुरा–संज्ञा पुं० [देश०] रीहा घास की घास जो आसाम देश में बहुत होती है। बंगाल में इसे "कुरकुंड" भी कहते हैं।

कनखो–[बर०] जमालगोटा।

कनखो-सि–[बर०] जमालगोटा। जयपाल।

कनगरच–[फ़ा० ककरजद] हर्शफ का गोंद।

कनगी–[ते०] समुन्दरफल। हिजल।
[कना०] जंगली जायफल।
(Myristica Malabarica)

कनगु–[ते०] कंजा। करंज। नक्रमाल।

कनगुज–संज्ञा पुं०। कान का एक रोग। कर्णरोग-बिशेष।

कनगुरिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० कानी+अंगुरी या अंगुरिया] सबसे छोटी उंगली। छिगुनिया। छिंगुली। कनिष्ठिका उंगली।

कनगोजरा–संज्ञा पुं० [हिं० कान+गोजर] कनखजूरा।

कनछेदन–संज्ञा पुं० [हिं० कान+छेदना] कर्ण वेध संस्कार।

कनज्ञ करै–[ता०] कांचड़। कञ्चट।
(Commelina bongalensis, *Linn*)

कनज–[फ़ा०] पनीर।

कनजो–[बर०] काला बगोटी।

कनटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रक्तमल्ल। लाल संखिया।

कनत–[फ़ा०] शहद की मक्खी।

कनतूतुर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा मेंढक जो बहुत ज़हरीला होता है, और बहुत ऊंचा उछलता है।

कनन–वि० [सं० त्रि०] काना। काण। श० च०।

कनप–[ते०] समुन्दरफल। हिजल। दे० "कणप"

कनप-तीगे–[ते०] गोदड़ द्राक, अमलबेल।
(Vitis Carnosa,, *Wall.*)

कनपट–संज्ञा पुं० दे० "कनपटी"।

कनपटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+सं० पट] कान और आंख के बीच का स्थान। कनपट। कनपुटी, शंख देश। Temporal region,

कनपेड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० कान+पेड़ा] एक रोग जिसमें कान की जड़ के पास सूजन होती है।

कनफटा–सं० पुं० दे० "कनफोड़ा"।

कनफुटा–[मरा०] जंगली हुरहुर। Cleome Viscosa.

कनफुटी–[बम्ब०] (१) बुंदर। कुपरुंत।
(Flemingia Strobilifera, *R. Br.*) (२) हुरहुर।
संज्ञा स्त्री० [मरा०] कनफोड़ा। कर्णस्फोटा

कनफूल–सं० पुं० दे० "कानफूल"।
[पं०] दूध बत्थल। बरन। दूधल।
Iaraxacum Officinale, *Wigg*

कनफेड़–संज्ञा पुं० दे० "कनपेड़ा"।

कनफोड़ा—संज्ञा पुं० [स० कर्ण स्फोटा] एक वार्षिक सकांड, आरोही लता जो दवा के काम में आती है। पत्र और पत्रवृंत प्रायशः मसृण (Glabrous) पत्र (Biternate); पत्रक (Leaflets) सवृंत, लंबे (Oblong), अधिक नुकीले, कोरदार कटे हुये होते हैं। फूल छोटे सफेद वा गुलाबी; फल त्रिकोणाकार पतली झिल्ली के तीन कपाटों द्वारा तीन कोषों में विभक्त और पतली हरे रंग की झिल्ली से आवृत फली है, जिसके प्रत्येक कोष में एक-एक काला बीज होता है। फल पटकने से आवाज आती है। बीज घुँघची की तरह गोल और काले रंग का होता है, इसी से इसे 'काली घुँघची भी कहते हैं। जिस प्रकार लाल घुँघुची के आधार पर एक काला धब्बा होता है, उसी प्रकार इसमें उक्त स्थल पर सफेद धब्बा होता है जो द्वि० विभक्त (Aril)

होता है। जड़ सफेद और तंतु बहुल, अप्रिय गंधि और स्वाद में किंचित् तिक्त चरपरी और उत्क्लेशप्रद होती है।

पर्य्या०—कर्णस्फोटा, श्रुतिस्फोटा, त्रिपुटा, कृष्णतण्डुला, चित्रपर्णी, स्फोटलता, चन्द्रिका, अर्ध चन्द्रिका (रा० नि०) पारावतपदी, ज्योतिष्मती डी० ३ भ० कृष्णतण्डुला, कोपलता–सं०। कानफोड़ा, कनफोड़ा, कानफुटो, कानफटा, कानफाटी–हिं०। लताफट्करी। लताफटकी, नया फट्की, कानछिड़ी, काणफोटा–बं०। कार्डियोस्पर्मम हेलिकेकेबम् Cardiospermum Halicacabum, *Linn*–ले०। बैलून वाइन Baloon vine, विंटरचेरी Winter cherry, हार्टस पी Heart' s pea–अं०। पोइ-डी-कोकर Poi-de-Cocur Pois de Marveille, Cocur des Indes–फ्रां० जेमीनर-हर्ज़-सामीन Gemeiner-herz-samen–जर०। मूद-कोट्टन–ता०। बूध (बुद्ध) ककरा, नेल्ल-अगु-लिसे टेंड, वेक्कु-दी तेगे–ते०। काणफोड़ी, बोध, शिब्जल, कानफुटी काकुमर्दनिका–मरा०। कनकैया, कानाकइया–कना०। करोडि (टि) यो–गु०। शिब्जब–द०। उलिंजा–मल०। माल-मै–बर०। बोध–बम्ब०। हबुल् कुलकुल (बीज)–पं०। पैनैर-वेल–सिंगा०। लफ्तफ़–अं०। गनफोड़ा, घनफोड़, धनवेल–मरा०, द०।

फेनिल वर्ग

(*N. O.* (*Sapindaceœ*)

उत्पत्ति स्थान—समग्र भारतवर्ष विशेषतः महाराष्ट्र, बंगाल और संयुक्त प्रांत।

रासायनिक संघटन—इसके फल और बीजों में एक प्रकार का तिक्त और उत्तेजक उड़नशील तैल होता है। इसके गुणधर्म इसमें वर्तमान (Saponin) पर निर्भर करते हैं।

औषधार्थ व्यवहार—जड़, पत्र, बीज, समग्र लता।

औषध निर्माण—जड़ का काढ़ा (१० में १)

मात्रा—४ से १० ड्राम।

मिश्र चूर्ण—सर्जिका (Carbonate of potash), बच, बहेड़े की जड़ का छाल (वा अंसनत्वक्) कसफोड़े की पत्ती—इनको बराबर-बराबर लेकर बारीक चूर्णकर लेवें। अथवा दूध के साथ कल्क प्रस्तुत करें।

मात्रा—१ ड्राम प्रतिदिन तीन दिन तक देवें। रजोरोध (Amenorrhoea) में उपकारी है। यह आर्त्तव रजः स्रावकारी है। (भा०); उ० चं० दत्त।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कर्णस्फोटा कटुस्तिक्ता हिमा सर्प विषापहा।
ग्रहभूतादि दोषघ्नी सर्वव्याधि विनाशिनी॥
(रा० नि० गुडू० ३ व०)

कनफोड़ा—चरपरा, कड़वा, शीतल, सर्पविषघ्न, ग्रहभूतादि दोषनाशक और सभी व्याधियों का नाश करनेवाला है।

कर्णस्फोटा तु कटुका चोष्णाचाग्नि प्रदीपनी।
वातगुल्मोदर प्लीह कर्ण व्रण विषापहा॥
कफपित्त ज्वरानाह कफशूल विनाशिनी।
सा तु पीता बुधैर्ज्ञेया चाञ्जने च प्रशस्तिका॥
(वै० निघ०)

कनफोड़ा—चरपरा गरम तथा अग्निदीपक है एवं यह बात, गुल्मोदर, प्लीहा, कर्ण-व्रण, बिष, कफ, पित्त, ज्वर, आनाह और कफज शूल, इनको नष्ट करता है। इसे पान और अंजन के काम में लेते हैं।

चरक और वाग्भट्ट के मतानुसार यह बिच्छू के ज़हर में भी लाभदायक है।

नव्य मत

डोमक—संस्कृत ग्रन्थकार इसको जड़ को वामक मृदुसारक, (Laxative), जठराग्नि दीपक (Stomachic) और लौहित्योत्पादक (Rubifacient) लिखते हैं और आमवात वातव्याधि एवं अर्श आदि में इसका उपयोग करते हैं। रजोरोध (Amenorrhoea) में इसके पत्र काम में आते हैं। कर्णशूल और कर्णशूल निवारणार्थ समग्र लता का स्वरस कान में डालो

जाता है। इसी से संस्कृत और हिंदी में इसे क्रमशः कर्णस्फोट और कानफोटा कहते हैं।

इंडोचीन में यह वनस्पति कृमि नाशक और प्रमेह निवारक मानी गई है। मेडागास्कर में इसकी जड़ वमनकारक, विरेचक, मूत्रल और स्वेदक मानी जाती है। इसकी जड़ और पत्ते रक्तार्श, नष्टार्त्तव, सुजाक, आमवात और आंत्र कृमियों को नाश करने के काम में लिए जाते हैं।

फूलू लोग इस वनस्पति को कई कामों में लेते हैं। इसके पत्ते और छाल का शीत निर्यास आमातिसार और रक्तातिसार में वस्तिक्रिया के काम में लिया जाता है। सिरदर्द में इसके पत्तों को कुचल कर उसका धूम्रपान करते हैं। मूत्राशय की पीड़ा में इसकी पत्तियों की पुलटिस बनाकर गुदा पर बांधते हैं। उपदंश जन्य घावों पर भी इसकी पत्तियों का लेप किया जाता है।

रॉबर्ट्स के मतानुसार लंका में इसका स्वरस सर्प-विष-निवारण के लिए पिलाया जाता है।

कामस और म्हस्कर के मतानुसार इसकी जड़, लकड़ी और पत्ते सभी साँप और बिच्छू के ज़हर में निरुपयोगी हैं।

नादकर्णी प्रभाव—कनफोड़े की जड़ और पत्ती मूत्रकारक, मृदुकारक (Laxativi), जठराग्नि दीपक (Stomachic) और रसायन है, बाह्यतः आरुण्यजनक (Rubifacient) है।

आमयिक प्रयोग—आमवात, वातव्याधि, अर्श, चिरकारी कास, (वायुप्रणाली शोथ) और क्षय (Phthisis) में कनफोड़े की जड़, और पत्ती का उपयोग होता है। रजोऽल्पता में आर्त्तव रजः स्राव वर्द्धनार्थ इसके मृष्ट-पत्र भग पर लगाये जाते हैं। आमवातिक शूल, शोथ और नाना भांति के अर्बुदों पर एरण्ड तैल जैसे तेलों में इसकी पत्ती उबालकर बांधते हैं। अर्श और रजोऽल्पता (Amenorrhoea) में आध आउन्स की मात्रा में इसकी जड़ का काढ़ा व्यवहार्य होता है। (इं० मे० मे० पृ० १६६-७)

आर० एन० चोपरा—४ से ६ आउन्स की मात्रा में कनफोड़े की जड़ का काढ़ा मूत्रकारक स्वेदकारक और मृदुसारक ख्याल किया जाता है। आमवात और कटिशूल में समग्र लता का बाह्यांतरिक उभय विधि प्रयोग किया गया है।

(इं० ड्रु० इं० पृ० ५७०)

इसका रस मासिकधर्म को नियमित करने के लिए व्यवहार किया जाता है।

सुजाक और फुप्फुस सम्बन्धी पीड़ा में यह शांतिदायक माना गया है।

कर्णशूल निवारणार्थ इसे कान में डालते हैं।

इसके (घनफोड़) बीज गुर्दे और मसाने की पथरी को दूर करते हैं। पागलपन को मिटाते हैं, कटिशूल में उपकारी है, मूत्र का प्रवर्त्तन करते हैं। गर्भाशय का मुंह बन्द होजाय, तो उसे खोल देते हैं, कामेन्द्रिय को शक्ति देते हैं, और वीर्य को गाढ़ा करते हैं। इसके पत्ते शस्त्रों के ज़ख़्म पर बाँधे जाते हैं। यदि शरीर के भीतर बन्दूक की गोली आदि भी रह गई हो, तो उसपर इसके पत्ते का लेप करने से गोली खिंची जा सकती है।

कनब–[फ़ा०] (१) भाँग। विजया। (२) एक प्रकार का खीरा। कंबीरः।

क़नबाद, कंदवाक़ज़ो–[?] वस्तियाज। खिलाल मक्का।

कनब बेद–[?] जंगली बेद का फल जो उसकी शाखाओं में गुच्छों के रूप में लगता है।

कनबहिंदी–[फ़ा०] भांग। विजया।

कनबार–[अ०] नारियल के रेशे की रस्सी।

क़नबिर–

क़(क)नबिस–[यू०] भाँग।

कनबीरम्–[ता०] कनेर।

क़नबीर–[फ़ा०] एक प्रकार का खीरा।

क़नबीर–[अ०] कमीला।

क़नबीरस–[अ०] एक प्रकार का दही।

क़नबीरा–[सिरि०] भाँग।

क़नबीस–[यू०] विजया बीज। भाँग का बीया। तुख्म भंग। शहदानज।

कनभेंड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का सन का पौधा। जिसके पत्ते, फल और फूल भिंडी की तरह होते हैं। यह अमेरिका से भारतवर्ष में लाया गया है। इसको "बनभेंड़ी" भी कहते हैं।

कनभो–[मल०] रास्ना। नाई।

कनमार–[देश०] रीठा। अरिष्टक।

कनमीन, कनमू–[?] कदम।

कनमू–[देश०] पिंडार।

कनय–संज्ञा पुं० [सं० कनक] सोना। सुवर्ण।

कनयर–[कुमा०] कनेर।

कनयिर्न्ना–[बर०] गर्जन। तेलिया गर्जन।

कनयून–संज्ञा पुं० [सं० कण+हिं० ऊन] एक प्रकार का सफेद काश्मीरी चावल जो उत्तम समझा जाता है।

कनयूर्टस–[पं०] बुरमार।

कनयौङ्ग–[मग०] गर्जन। तेलिया गर्जन।

कनरयी–संज्ञा स्त्री० एक वृक्ष जिसे गुलु भी कहते हैं। कतीरा कनरयी से ही उत्पन्न होता है।

कनराडू–[पं०] बुई।

कनरी–[मल०] जंगली बादाम। (Canarium Commune) java almond tree

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) कपूरकचरी। (२) छोटा जंगली प्याज। छोटा काँदा। कँदरी।

कनरू–[ते०] शेरवानी। खटाई। ज़रगल (पं०)। निरपागौड़ी (ते०)। (Flacortia Sepiaria)

कनलु–[पं०] सफेद सिरस।

कनल्ल, कन्नल–संज्ञा पुं० [?] अज्ञात।

कनवा–संज्ञा पुं० [बिहार] एक प्रकार का बाट जो एक छटाँक का होता है ८।

कनवई–संज्ञा स्त्री० छटाँक। पाँच तोले।

कनवमि–[अ०] वंशपत्री।

कनवल–[हिं०] चिरभिटा।

कनविलाच–[फ़ा०] कमीला।

कनवा–संज्ञा पुं० कनवई। छटाँक।

कनवी–संज्ञा स्त्री० [सं० कण, हिं० कन] एक प्रकार की कपास जो गुजरात में होती है। इसके बिनौले बहुत छोटे होते हैं।

कनवीरम–[ता०] कनेर।

कनवैल–[बम्ब०] रक्तवल्ली। रक्तपित्त।

कनशक्कर–[ते०] शक्करकन्द।

कनशरुक्करई–[ता०] कन्द।

कनश्तू–[फ़ा०] ग़ौरः। कच्चा अंगूर। कंशू।

क़नस–[अ०] रासन। बाइसुरई ?। अलनियून। जनाह्। (Inula Helenium, Elecampane *Linn.*)

कनसलाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० कान+हिं० सलाई] कनखजूरे की तरह का और उसी जाति का एक छोटा कीड़ा। यह कनखजूरे से पतला होता है। इसके भी बहुत से पांव होते हैं, किंतु इसकी आकृति वैसी भद्दी नहीं होती और यह लाल रंग का होता है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह कान में घुस जाता है। 'मादनुल् शिफ़ा' में लिखा है कि कनसलाई आठ प्रकार की होती है इनमें से दो प्रकार की कनसलाई के विष की कोई दवा नहीं। इनके काटने से मूर्च्छा आजाती है। छोटा कनखजूरा।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

कनसलाई को पकड़कर सुखालें और एक बत्ती में लपेट कर तिल तैल में उसका काजल पार लें। यह काजल पलक उखड़ने के रोग को अतीव गुणकारी है। यदि कनसलाई कान में घुसजाय तो तैल गरम कर कान में डालें या सिरका और नमक डालें। जब वह मर जायतब उसे मोचने से उठा लें।

कनसीरी–संज्ञा स्त्री० [मेवाड़] "हावर" (अवध) नामक पेड़।

कनस्त, कनस्तू कनस्त्वाक्–[फ़ा०] उश्नान। ग़ासूल।

कनः–[अ०] मस्तगी।

कना–संज्ञा पुं० [सं० कण] दे० "कन"।

संज्ञा पुं० [सं० कांड] सरकंडा। सरपत।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कनिष्ठा। सबसे छोटी उंगली। [वै०] कन्या। लड़की।

क़ना–[?] (१) एक प्रकार का अंदरूतालीस या ख़ुश्क। (२) रतवा नाम की बूटी। (३) काकनज।

[अ़०] मकोय ।

[अ़०] बांस

कनाई–संज्ञा स्त्री० [सं० कांड] (१) वृक्ष वा पौधे की पतली व कोमल डाल वा शाखा । कनई । (२) कल्ला । टहनी, नवपल्लव ।

कनाकचू–संज्ञा पुं० [देश०]

एक प्रकार का पौधा । कच्चू की एक जाति

क़नाक़ीनूस–[रू०] उक़हवान । बावूना गाव । काफ़ूरियः ।

कनागी–[कना०] जंगली जायफल । रान जायफल ।

कनागली–[कना०] कनेर ।

क़नागीरस–[यू०] मरोड़फली ।

क़नात–[अ़०] [बहु० कनबात, क़िना] (१) मकोय । (२) प्रणाली । नाली । नल । मजरी (अ़०) । (३) छोटी नहर ।

नोट—शारीर शास्त्र की परिभाषा में शरीरगत प्रणाली वा रसादिवहा नाड़ी को कहते हैं । नाली कंद नाली । मजरी (अ़०) । Canal Duct Tube

कनाद–[फ़ा०] एक पक्षी । दरशान ।

कनादर–[अ़०] गधा । गदहा । गर्दभ ।

कनाबरीदास–[यू०] तेलनी मक्खी ।

कनाबिरी–[अ़०, नब्त] एक प्रकार का साग जो बसंत ऋतु में उत्पन्न होता है । इसके पत्ते पालक के पत्तों की तरह परन्तु उनसे बड़े होते हैं । फूल सफेद और छोटा होता है । इसमें फलियाँ लगती हैं जिनमें बीज होते हैं । स्वाद चरपरा होता है ।

पर्य्या०—बर्ग़श्त–ख़ुरा० । बरंद, बख़ंद–फा० सब्तरह–शीरा० । मोजह–असफ़० । अम्लूल, क़म्लूल, स़ुम्लूल, फ़ूहक, शज्रतुल् बहक़–अ़० । कनावेरी ।

भिन्न मत—(१) वग़दादी के अनुसार यह एक प्रकार का जंगली साग है, जिसके पत्ते कासनी सहराई (जंगली कासनी) के पत्तों से छोटे, स्वाद में किंचित चरपरे और कड़वे होते हैं । फूल सफेद एवं बारीक होता है । बीज भगमैला और छोटा होता है ।

(२) तुह्फ़तुल मोम्नीन में लिखा है कि इसके पत्ते पालक्यपत्रवत् होते हैं । स्वाद में ये किंचित् चरपरे एवं तिक्त होते हैं । पत्ते एक-एक बित्ता दीर्घ होते हैं । तना पतला होता है । फूल सफेद और छोटा होता है । बीज फली में होते हैं। फली की आकृति चने के फल जैसी होती है । प्रत्येक फली में राई के दाने की तरह के ४–४बीज होते हैं ।

(३) हकीम उलवीखाँ के अनुसार इसके पत्ते बथुये के पत्तों जैसे होते हैं और उन पर कुछ रोआँ होता है । उत्तम वह है जिनकी शाखायें किंचित् सुर्खी लिये हों ।

(४) बुर्हान में लिखा है कि यह एक प्रकार का साग है जो मौसम बहार के उगता है । स्वाद तीव्र एवं झालदार होता है । इसे ताजा पकाकर खाते हैं सूख जाने के बाद गायों को खिलाते हैं ।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष । किसी-किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में रूक्ष है । कोई-कोई कहते हैं कि यह गरमी में सम शीतोष्ण है ।

हानिकर्त्ता—वायु उत्पन्न करता है । प्रधानतः इसका अचार । दर्पघ्न—पकाना, घी या तिलतैल प्रभृति में भूनना, काबुली हड़ और खाँड़ ।

प्रतिनिधि—कबर की जड़ ।

गुणधर्म—उष्ण और शीत दोनों प्रकार की प्रकृति वालों को सात्म्य है । यह सीने और फेफड़े का शोधन करता है । यकृत, फुफ्फुस और प्लीहा गत रोधों का उद्घाटन करता है । यह मूत्र-प्रवर्त्तक है । इसके खाने से दूध बढ़ जाता है । यह आर्त्तव प्रवर्त्तक है, मलावरोध का निवारण करता है और कामला (यर्कान) रोग को नष्ट करता है । इसका प्रलेप अर्श के लिये उपकारी है । योनि में इसकी पिचु वर्ति धारण करने से गर्भाशय गत शोथ विलीन होता है । यह झाँईं तथा व्यङ्ग का निवारण करता है, हर प्रकार के जहर के लिए कल्याणकारी है । और सांद्र दोषों का उत्सर्ग करता है । इसके लेप से सूजन मिटती है । यह स्तनव्रण को मिटाता है । इसके पत्तों के लेप तथा उसके स्वरस से साधित तैल के अभ्यंग से झाईं (बहक़ सफेद) मिटती है । अरब निवासी इसको पहचानते हैं और इससे बहक सफ़ेद अर्थात् छींप या झाँईं का उपचार करते हैं । (ख० अ०)

क़नाबिस–[यू०] भाँग।

क़नाबि (ब) स इण्डिया–[यू०] जंगली भांग।

क़नाबूस–[यू०] बिजया बीज। तुख्म भंग। शहदानज।

क़नामिस, क़नामीस, क़ानामीस–[यू०] बिजया बीज। तुख्म भंग। शहदानज।

कनामुल्ल–[मदरास] अगरु।
(Dysoxylum malabaricum, *Bedd.*)

कनार–संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ों का ज़ुकाम वा सर्दी।

कनारियः–[?] एक बूटी जो कंकड़ीली और नमनाक जगहों में होती है। कंकर। हर्शफ।

कनारी–संज्ञा स्त्री० कंटक। काँटा।

कनाला–[?] हुरहुर। अर्कपुष्पी।

कनाली–[?] सेंधी। ताड़ी।
[मदरास] बनचंपक।
(Evodia roxburghiana, *Benth.*)

कनिआ–[पं०] कनेर।

कनिआरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्णिकार] कनकचम्पा का पेड़। कनियार। दे० "कर्णिकार"।

कनिएर–[द०] कर्णिकार। छोटा सोंदाल।

कनिक–संज्ञा स्त्री० [सं० कणिक] (१) गेहूं। (२) गेहूं का मोटा आटा। (महीन आटे को मैदा कहते हैं।

कनिका–दे० "कणिका"।

कनिक्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] समिता। गेहुँ का आटा। मैदा। श० च०। कनिक।

कनिचि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सूरन। शूरण। प० मु०। (२) गुंजा। घुंघची।

कनियार–संज्ञा पुं० [सं० कर्णिकार] कनकचंपा।

कनियाल–[?] केले के तने का गूदा।

कनिष्ठ–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० कनिष्ठा] बहुत छोटा। अत्यन्त लघु। सबसे छोटा।

कनिष्ठक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शूक तृण। श० च०। सूकड़ी घास।

कनिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी उँगली। छिगुनी। कनगुरी। रा० नि० व० १८।

कनिष्ठिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पांचों उंगलियों में से सबसे छोटी उँगली। कानी उँगली। छिगुनी।

कनिष्ठिकाकुंचनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की एक पेशी जो कानी उँगली को आकुंचन करती है।

कनिष्ठिका पकर्षणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की पेशी। यह छिगुनी को अपकर्षण करती है।
(Abductor digiti quinti.)

कनिष्ठिका प्रत्याकुंचनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की एक पेशी। जो कानी उंगली को प्रत्याकुंचन करती है। अ० शा०। (Opponens digitiquinti) दे० "मांसपेशी"।

कनिष्ठिका प्रसारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छिंगुनी को फैलाने वाली एक पेशी।
(Extensor digiti quinti prio rus) दे० "मांस पेशी"।

कनिष्ठिका बहिर नायनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी बिशेष। दे० "पेशी"।

कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी विशेष दे० "पेशी"।

कनी–संज्ञा स्त्री० [संज्ञा स्त्री०] कन्या। लड़की। हे० च०।

कनीगिल–[कना०] कनेर।

कनीचि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गुंजालता घुंघची की बेल। श० र०। (२) सपुष्पलता फूलदार बेल। उणादि कोष। (३) शकट। गाड़ी।

कनीनक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आंख की पुतली। कनीनिका। (२) बालक। लड़का।

कनीनका–सज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्या। लड़की।

कनीनिका (कनीनी)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) आंख की पुतली का तारा। अक्षितारक। आंख की पुतली। (Cornea) रा० नि० व० १८। (२) कनिष्ठांगुली। कानी उँगली। छिगनी मे० कचतुष्क। (३) घोड़े के नाक के समीप का भाग। ज० द० २ अ०। (४) कन्या।

कनीपस जहर–[द०] गोरोचन। बादजहर। पाद जहर। कानी।
Silicate of Magnesia & Iron)
Bezoar Stone.

कनीयस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ताँबा। ताम्र। हे० च०।
वि० [सं० त्रि०] (१) अल्प तर। (२) अपेक्षाकृत अल्प वयस्क। अधिक कमसिन।

कनीयान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की सोमलता। सु० चि० २६ अ०। दे० "सोम"।

कनीयस्–वि० [सं० त्रि०] [स्त्री० कनीयसी] (१) छोटा भाई। अनुज। त्रिका० (२) अत्यल्प। बहुत छोटा। मे०।

कनीयः पञ्चमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गोखरू, भटकटैया, बनभंटा, पिठवन और सरिवन इन पाँच औषधियों का समुदाय। ह्रस्व पञ्चमूल। यथा—"त्रिकण्टक वृहतीद्वय पृथक्पर्णी विदारि गन्धा।" सु० सू० ३८ अ०।

कनुगचेट्टु–[ते०] करंज। कंजा। किरमाल।

कनुपलचोरक–[ते०] ऊख। गन्ना। ईख।

कनू–[फ़ा०] (१) भांग। (२) सेंधी। ताड़ी। (३) पीरनी।

कनूचा–संज्ञा पुं० दे० "कनौचा"।

कनूदान, कनूदानः–[फ़ा०] बिजया बीज। तुख्म भंग। शहदानज।

कनूरक–[पं०, बं०] कंचुरा। कक्षा।

कनूरिया–[उड़ीसा] सन। अम्बारी। (द०)। मेष्टपात (बं०)।

कनूला–[?]

कनूसतबूरी–[तबरिस्तान] ज़ख़्रूर की एक बड़ी जाति।

कनेर–संज्ञा पुं० [सं० कणेर] एक पेड़ जो ८–६ फुट तक ऊंचा होता है। इसमें शाखाएँ प्रायः जड़ से फूटा करती हैं। डालियों के दोनों ओर दो-दो पत्तियाँ एक साथ आमने सामने निकलती हैं। पत्तियाँ एक एक बित्ता लंबी और आध अंगुल से एक अंगुल तक चौड़ी और नुकीली ऊपर से मसृण और नीचे से खुरदरी होती है और उन पर बारीक बारीक सफेद रगें स्पष्ट दिखाई देती हैं। ये कड़ी, स्थूल, चिकनी और हरे रंग की होती हैं। डाल में से सफेद दूध निकलता है। फूल के विचार से यह दो प्रकार का है, सफेद फूल का कनेर और लाल फूल का कनेर। दोनों प्रकार के कनेर सदा फूलते रहते हैं और बड़े विषैले होते हैं। सफेद फूल का कनेर अधिक विषैला माना जाता है। फूल खुरदरे होते हैं और उन पर बालों की तरह एक वस्तु जमा हो जाती है फूलों के झड़ जाने पर आठ दस अंगुल लंबी पतली पतली कड़ी फलियाँ लगती हैं। फलियों के पकने पर उनके भीतर से बहुत छोटे छोटे कुछ कुछ काले रंग के बीज मदार की तरह रुई में लगे निकलते हैं। जड़ लंबी, पतली, खारी तथा प्रायः सफ़ेद और रक्ताभ होती है। वाजीकरण एवं स्तम्भनके लिये सफेद फूल वाला लाल फूल वाले की अपेक्षा बलवत्तर सिद्ध होता है। औषधि में उसी का अधिक व्यवहार भी दिखाई देता है। ५ मा० (४ आना) की मात्रा में कनेर की जड़ की छाल का चूर्ण सेवन कराने से अति तीव्र विष प्रभाव प्रगट होते देखा गया है। कनेर घोड़ों के लिये बड़ा भयंकर विष है, इसीलिये संस्कृत कोषों में इसके "अश्वघ्न" "हयमारक" तुरंगारि" आदि नाम मिलते हैं। अश्व शब्द उपलक्षण मात्र है। वह कुत्ता, बिल्ली और गाय प्रभृति के लिये भी घातक विष है। निघटुओं में केवल सफेद फूल वाले कनेर के पर्याय स्वरूप "अश्वघ्न" "हयमारक" प्रभृति शब्द पठित होने से लाल कनेर के हयमारकत्व गुण में संदेह करना उचित नहीं क्यों कि उक्त संदेह के निवारण के लिये ही निघंटुकार पुनः लिखते हैं—"चतुर्विधोऽयं गुणे तुल्यः"।

सफेद गुलाबी और लाल कनेर भारतवर्ष में बगीचों के भीतर लगाये जाते हैं। ये दोनों प्रकार के कनेर सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

वैद्यक में दो प्रकार के और कनेर लिखे हैं—एक गुलाबी फूल का, दूसरा काले फूल का। गुलाबी फूलवाले कनेर को लाल कनेर के अंतर्गत ही समझना चाहिये; पर काले रंग का सिवाय राजनिघंटु तथा निघंटुरत्नाकर ग्रंथ के और कहीं देखने या सुनने में नहीं आया है। काला कनेर अपेक्षाकृत दुर्लभतम है। इसकी पत्ती चमनेटी वा

बामुनहाटी की पत्ती की आकृत की होती है। वृक्ष पीला कनेर के वृक्ष जैसा वृहत् नहीं होता। फल गोलाकार होता है। फल के ऊपर तीक्ष्णाग्र दीर्घ कंदक होता है। फल पक जाने पर बीच से विदीर्ण होकर दो भागों में विभक्त हो जाता है। इसमें ६–७ बीज होते हैं जो एक के ऊपर एक उपर्युपरि विन्यस्त होते हैं। बीज चक्राकार होता है। जो सिकि की अपेक्षा वृहत्तर नहीं होता।

पर्य्या०—कृष्णकुसुम (रा० नि०)–सं०। कलि करवी, काल करवीगाछ, कृष्ण करवी–बं०।

एक और पेड़ होता है जिसकी पत्तियाँ और फल कनेर (सफेद और लाल) ही के ऐसे होते हैं। उसे भी कनेर कहते हैं, पर उसकी पत्तियाँ पतली, छोटी और अधिक चमकीली होती हैं। फूल भी बड़ा और पीले रंग का होता है। फूलों के गिर जाने पर उसमें गोल गोल फल लगते हैं जिनके भीतर गोल गोल चिपटे बीज निकलते हैं। इन बीजों को हिन्दी में गुल्लू कहते हैं। बालक गोलियों में 'गुल्लूरीद' खेला करते हैं। हरा, १॥ २ ई० व्यास का और बीच में फल आलि द्वारा उभरा होता है। फलत्वक मांसल होता है। फल के भीतर हलके भूरे रंग की, त्रिकोणाकार एक कड़ी गुठली होती है। प्रत्येक गुठली में दो पांडु पीत, किंचित् पक्षयुक्त, चपटे बीज होते हैं। इन बीजों और छिलके के अंतः स्तर को लवणाम्ल Hydro chloric acid में उबालने से एक प्रकार का गंभीर बैंगनी वा बैंगनी लिये हरा रंग प्राप्त होता है।

बीजशस्य एवं त्वक् अति तिक्त होता है। इसके बीजों में से प्रशस्त पीतवर्ण का तेल निकलता है जो जलने में धुंआं कम देता है। खाने से यह स्वास्थ्य प्रद एवं बल्य है। इसके सौ तोले बीजों में ३६॥ तोला से ४१ तो० तक तेल निकलता है। इसकी कोपल शाखा, कांडत्वक् पत्र, पत्रवृंत और फल सभी को अर्थात् वृक्ष के भग्न करने से प्रचुर मात्रा में सफेद झालदार दूध निकलता है। यह अरण्य वृक्ष है। भारतवर्ष के जंगलों में यह बहुत होता है। फूल के लिए इसे घरों में भी लगाते हैं। बंगाल (गढ़) में यह "कल्के फुलेर गाछ" नाम से प्रसिद्ध है।

जल कनेर के पौधे नदी, तालाबों या उनके भीतर होते हैं। इसमें लाल फूलों की बालियां लगती हैं।

भेद—श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण पुष्प भेद से कनेर चार प्रकार का होता है। वैद्यक में इनमें से सफेद कनेर का ही अधिक प्रयोग दिखाई देता है। धन्वन्तरि निघण्टुकार ने श्वेत और रक्त केवल दो ही प्रकार के कनेर का उल्लेख किया है। किसी किसी ने इसमें गुलाबी (पाटल) कनेर को और सम्मिलित कर इसे पाँच प्रकार का लिखा है।

उत्पत्ति स्थान—भेद से हकीमों ने इसके दो भेदों का उल्लेख किया है। (१) बुस्तानी वा बागी और (२) जंगली। इनमें से बागी का वर्णन ऊपर किया गया है। और जंगली के पत्ते खुरफे के पत्तों की तरह और बहुत पतले होते हैं। शाखायें पतली और भूमि पर आच्छादित होती हैं। यह बहुत अधिक नहीं बढ़ता। इसके पत्तों के पास कांटे होते हैं। यह ऊसर एवं वीहड़ स्थानों में उत्पन्न होता है। बुस्तानी में काँटे नहीं होते।

कनेर की सामान्य संज्ञायें—

पर्य्या०—कणैली, कनेर, कनेल, करबीर–हिं०। गनेर–द०। करबीर, हयमार, हयमारक तुरंगारि, चंडातरुः–सं०। करवी गाछ, करबी, कनेर–बं०। दिफ़्ली, सुम्मुल् हिमार, सम्मुल्मार–अ। ख़रज़हूरा–फ़ा०। Sweet scented Oleander (Nerium Odorum, Aiton)। अलरि–ता०। गन्नेरु–ते०। अलरि–मल०। कणगले, वाफ़णलिंगे–कना०। कणैरु, कह्नेर–मरा०। बैकँड़–पश्तो।

कनेर सफेद

पर्य्या०—करवीरः, अश्वहा, अश्वघ्नः, हयमारः अश्वमारकः, श्वेतकुन्दः, श्वेतपुष्पः, प्रतिहासः, अश्वमोहकः (ध० नि०) करवीर, महावीर, हयमार, अश्वमारक, हयघ्न, प्रतिहास, शतकुन्द, अश्वरोधक, हयारि, बीरक, कन्दु, शकुन्द, श्वेतपुष्पक, अश्वान्तकः, अश्वघ्न, नखराश्व, अश्वनाशक, स्थूलादि कुमुद, दिव्य पुष्प, हरप्रिय, गौरीपुष्प, सिद्ध-

पुष्प, त्रिकराङ्ग (रा० नि०) शतकुम्भ, करवीर, श्वेतपुष्प, अश्वमारक (भा०)–सं० । सफेद कनेर, उजला कनैल–हिं० । श्वेत करवी, सादा करवी बं० । Syn. Nerium Oleander–ले० । आलियाण्डर Oleander, रोज़बेरी स्पर्ज Roseberry spurge–अं । वूहल्रीखेण्डर Wohlriechender–जर० । अलारीर रोज Alaurier Rose–फ्रां० । अम्मेज़ा केवेल्लो Ammazza-cavallo, अम्मेज़ा लेसिनो Ammazza-lasino–इट० । कनवीरम्, अलरि–ता० । कानेरचेट्टु, गन्नेरु, करवीरमु, कस्तूरी पत्ते–ते० । वाकन लिंगे, कंगील (लु), पडुले–कना० । कनेर, घोंला, फुलनी, कह्नेर, राता फुलनी, धूलि कणेर–गु० । कह्नेर पांडरी, श्वेत कणेर, कनेर–मरा० । धावे कनेरी–कों० । किंगण लिंगे, वाँकण लिंगे–का० ।

शतावरी वर्ग

(*N. O. Apocynaceœ.*)

उत्पत्ति स्थान—पश्चिमीय हिमालय; नेपाल से मध्यभारत तथा सिंध पर्यन्त । अफगानिस्तान और उत्तर भारत में इसके वृक्ष जंगली होते हैं और फूल के लिये बगीचों में लगाये जाते हैं । फूल देवताओं को चढ़ते हैं ।

औषधार्थ व्यवहार—जड़, मूलत्वक्, पत्र, पुष्प ।

वर्णन—इसकी जड़ वक्राकार और त्वक् स्थूल एवं कोमल होता है । त्वग् वहिः पृष्ठ धूसर कार्कवत् होता है । छोटे पौधे की जड़ के ऊपर उक्त कार्कवत् स्तर पतला होता है जिससे होकर छाल के भीतरी पृष्ठ का पीला रंग प्रतिभासित होता है । अंतः पृष्ठ पीतवर्ण होता है । छाल को काटने वा क्षतपूर्ण करने पर उससे एक प्रकार का पाँडुचीत रस स्रावित होता है । जो रालदार और अत्यंत पिच्छिल वा चिपचिपा होता है । गन्ध ईषत् कटु । स्वाद तिक्त और कटु होता है ।

रासायनिकसंघट्टन—इसकी जड़ (Tuber) में कारवारीन वा नीरीओडोरीन "Neriodorin" (जल में अविलेय) और (Neriodorein) नामक दो तिक्त अस्फटिकीय सार पाए जाते हैं । ये दोनों हृदय के लिये भयंकर विष हैं । इनके अतिरिक्त इसमें ग्लूकोसाइड (Glucoside), रोज़ैगिनीन (Rosaginine), एक स्थिर तैल, एक स्फटिकीय द्रव्य, डिजिटैलीनवत् नेरीन (Neriene) नामक एक पदार्थ, कषाम्ल (Tannic acid) और मोम–ये द्रव्य पाये जाते हैं । कनेरकी पत्ती में आलिएण्ड्रीन (Oleandrine) नामक एक क्षारोद, एक ग्लुकोसाइड, स्युडोक्युरारीन (Pseudo-curarine) तथा नेरीन (Neriene) और नेरिएण्टीन (Neriantine) भी पाये जाते हैं । मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया—आर० एन० खोरी, खं० २, पृ० २८८, इं० मे० मे०–नादकर्णी, पृ० ४९३ ।

मात्रा—$\frac{1}{8}$ आना से $\frac{1}{4}$ आना भर तक ।

औषध-निर्माण—करवीराद्यतैल (च० द०, रस० र०) आदि ।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

करवीरः कटुस्तिक्तो वीर्ये चोष्णो ज्वरापहः ।
चक्षुष्यः कुष्ठकण्डूघ्नः प्रलेपाद्विषमन्यथा ॥
'करवीर द्वयं' तिक्तं सविषं कुष्ठजित्कटु ।
(ध० नि० ४ व०)

कनेर—चरपरा, कड़वा, उष्णवीर्य, ज्वरनाशक, और आँखों को हितकारी है तथा लेप से कोढ़ और खुजली को दूर करता है । अन्यथा यह विषवत प्रभाव करता है, दोनों प्रकार के कनेर (श्वेत और रक्त) कड़वे, चरपरे, कुष्टघ्न और विषैले हैं ।

करवीरः कटुस्तीक्ष्णः कुष्ठकण्डूतिनाशनः ।
व्रणार्ति विष विस्फोट शमनोऽश्वसूतिप्रदः ॥
(रा० नि० १० व०)

कनेर—चरपरा एवं तीक्ष्ण है तथा यह कोढ़ खुजली, व्रण, विष और विस्फोट को शमन करता है तथा घोड़ों के लिए मारक है ।

'करवीरद्वयं' तिक्तं कषायं कटुकञ्च तत् ।

व्रणलाघव कृन्नेत्रकोप कुष्ठव्रणापहम्।
वीर्योष्णं क्रिमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम्॥
(भा०)

सफेद और लाल दोनों प्रकार के कनेर कड़वा, कसेला, चरपरा एवं उष्णवीर्य होते हैं तथा ये व्रण, नेत्रकोप, कोढ़, घाव, कृमि एवं खुजली आदि को दूर करते हैं और भक्षण करने से ये विष की तरह प्राण हरण करते हैं।

हलिनी करवीरौच कुष्ठ दुष्ट व्रणापहौ।
(राजवल्लभः)

हलिनी (कलिहारी) और करबीर दोनों कुष्ठ और दुष्ट व्रण नाशक हैं।

शालिग्राम निघण्टु भूषण में इसे ग्राही और वात, अर्श तथा प्रमेह नाशक, यह अधिक लिखा है।

कनेर के वैद्यकीय व्यवहार

चरक-(१) कुष्ठमें करवीर त्वक्—कुष्ठरोगी को करवीर मूलत्वक् साधित जल स्नान और पानार्थ व्यवहार करना चाहिये। यथा—

"स्नाने पाने च मता तथाष्टमश्चाश्वमारस्य"
(चि० ७ अ०)

(२) पालित्यमें करवीर मूलत्वक्—दुग्धिका एवं कनेर की जड़ की छाल-इन दोनों को दूध में पीसकर, प्रथम सिर के पके वा श्वेत बालों को उखाड़ कर फिर इसे सिर पर लेप करे, इससे फिर बाल नहीं पकते। यथा—

"❀ क्षीर पिष्टौ दुग्धिका करवीरकौ।
उत्पाट्य पलितं देयौ तावुभौ पलितापहौ॥"
(चि० २६ अ०)

सुश्रुत (१) अश्मरी में करवीरक्षार—सुखाई हुई कनेर की जड़ की छाल को मिट्टी के बन्दमुख पात्र में रखकर अन्तर्धूम दग्ध करें। उक्त क्षार $\frac{1}{4}$ आना—$\frac{1}{2}$ आना की मात्रा में मधु के साथ अश्मरी के रोगी को सेवन करायें। औषध सेवन करनेवाले को मधुर रस तथा घृत एवं दुग्ध बहुत भोजन करना चाहिए। यथा—

"पटला करवीराणां क्षारमेवं समाचरेत्"
(चि० ७ अ०)

टीका—"पाटलेत्यादि। एतेन वात कफ समुद्भूताया अश्मर्य्याः मधुर क्षीरघृताशिनः क्षार योगा योज्याः" डल्हणः।

(२) उपदंश में करवीर-पत्र—कनेर की पत्ती से सिद्ध जल द्वारा उपदंश के क्षत को धोना चाहिये यथा—

"करवीरस्य पत्राणि ❀। प्रक्षालने प्रयोज्यानि"
(चि० १८ अ०)

चक्रदत्त (१) व्रणदारणार्थ करवीर-मूलत्वक्—पके फोड़े पर जल में पिसी हुई कनेर की जड़ की छाल लेप करने से वह विदीर्ण होजाता है। यथा—

"❀ चित्रको हयमारकः। ❀ दारणम्॥
(व्रणशोथ चि०)

(२) पामा रोग में करवीर-मूलत्वक्—कनेर की जड़ की छाल द्वारा पक्व तिल-तैल का लेप करने से पामा रोग आराम होता है। यथा—

"लेपाद्विनिहन्ति पामां तैलं करवीर सिद्धंवा,'
(कुष्ठ० चि०)

(३) नेत्रकोप रोग में कनेर की कोमल पत्ती तोड़ने से जो रस निकलता है, उसको नेत्र में अञ्जन करने से, बहुअश्रुपातान्वित नेत्रकोप रोग आराम होता है। यथा—

"करवीर तरुण किशलय छेदोद्भवो बहुल सलिलसंपूर्णम्। नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात् कुपितम्।
(नेत्ररोग-चि०)

भावप्रकाश—उपदंश रोग में करवीर-मूलत्वक् कनेर की जड़ की छाल को जल में पीसकर प्रलेप करने से उपदंश रोग आराम होता है। यथा—

"करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा। असाध्याऽपि व्रजत्यस्तं लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात्"।
(उपदंश-चि०)

वक्तव्य—

चरक (चि० २५ अ०) और सुश्रुत (क० २ अ०) ने करवीर अर्थात् कनेर को 'मूलविष'

लिखा है। सुश्रुत ने शिरो-विरेचक-वर्ग में करवीर पाठ दिया है 'करवीरादीनामर्कान्तानं मूलानि" वाक्य में कनेर की जड़ को ही शिरोविरेचक लिखा है। धन्वन्तरीय निघण्टुकार ने केवल प्रलेपादि कार्य में करवीर के व्यवहार का उपदेश किया है—"प्रलेपाद्विष मन्यथा"। भावप्रकाशकार ने भी लिखा है—'भक्षितं विषवन्मतम्"।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—यूनानी चिकित्सकों के मत से कनेर तृतीय कक्षा के अंत में उष्ण और रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—फुफ्फुस को। वैद्यों के अनुसार यह दृष्टि-शक्ति को कम करता है।

दर्पघ्न—मधु एवं तैल (ज़ुफ़ा, बादाम, इसब-गोल, दूध, यख़्नी) वैद्यों के मत से हड़ इसका दर्पघ्न है।

प्रतिनिधि—एक प्रकार का कनेर दूसरे प्रकार के कनेर की प्रतिनिधि है तथा मवेज़ज, इक्लीलुल् मलिक—नाख़ूना, बाबूना, मेथी ये सब समान भाग और तृतीयांश एरण्ड-पत्र। किसी किसी ने एरण्ड-पत्र अर्ध भाग लिखा है।

मात्रा—इसके अवयव घोरतम विष हैं।मनुष्य तथा पशु आदि प्राणियों पर इसके भक्षण से विष प्रभाव प्रगट हो जाता है।यदि १॥ माशे से अधिक खाया जाय, तो मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है। अधिकतया इसका बाह्य प्रयोग होता है और क्वचित ही मुख द्वारा प्रयोजित होता है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यूनानी चिकित्सकों के लेखानुसार कनेर कठोर सूजन उतारता, रुक्षता उत्पन्न करता, कांति प्रदान करता और पुरातन कटिशूल को दूर करता है। इसकी सूखी पत्ती का बारीक चूर्ण घाव पर बुरकने से व्रणपूरण होता है। परन्तु इसका भक्षण उचित नहीं, क्योंकि यह विष है।इसकी पत्ती भक्षण करने से प्रत्येक प्राणी पर इसका विष-प्रभाव प्रकाशित हो जाता है इसे १॥। माशे से अधिक सेवन करने से वह मृत्यु को प्राप्त होता है। यह नेत्रशोथ, कुष्ठ विस्फोटक, उदरज कृमि, लक़वा फ़ालिज और कफज शिरोशूल इन रोगों को लाभकारी है।

एतद्वारा साधित तैल पीठ की पुरातन पीड़ा को दूर करता है तथा इससे एक ही घंटे में खुजली मिटती है। यह तर व खुश्क दोनों प्रकार की खाज में असीम गुणकारी है। तेल इस प्रकार तैयार करें।

प्रथम कनेर के पत्ते या फूल को पानी में डालकर अग्नि पर चढ़ा क्वथित करें। पुनः जितना वह काढ़ा हो उससे आधा उसमें जैतून का तेल मिला कर यहां तक पकायें, कि केवल तैल मात्र शेष रह जाय। यदि उसमें तेल का चौथाई मोम मिला लिया, जाय, तो और भी उत्तम हो।

तैल पाक की एक और विधि है, जिसके द्वारा प्रस्तुत तैल तर खुजली के लिये बहुत ही गुणकारी है। इसमें रक्त विकार के कारण नाभि के नीचे से एड़ी तक फुंसिया हो जाती हैं, जिनमें तीव्र खाज उठती है। इनके दीर्घ काल तक रहने और बहुत खुजलाने से चमड़ा हाथी के चमड़े की तरह काला और मोटा पड़ जाता है और किसी प्रकार आराम नहीं होता, यह तेल उसे भी लाभ पहुँचाता है। विधि यह है—

सफेद कनेर के पत्ते ३३ तीन सेर लेकर छोटे छोटे टुकड़े कतर लेवें और पानी से भरे एक बड़े बरतन में डालकर अग्नि पर तीन पहर तक क्वथित करें। इसके बाद आँच से उतार कर उसे ठंडे पानी से, भरे पात्र में डाल देवें। जब पत्तियाँ नीचे बैठ जाँय और तैलांश ऊपर उतरा आये। तब जिस प्रकार दही को बिलोकर मक्खन निकालते हैं, उस प्रकार उस तेल को हाथ से लेकर कटोरे के किनारे में संगृहीत करलें। पुनः उक्त तेल में नीलाथोथा ३॥ मा०, सफ़ेदा ७ मा०, फिटकिरी ३॥ मा०, मुरदासंख ४॥ मा०, रसकपूर ६ मा०—इनको बारीक पीसकर मिलायें और व्यवहार करें।

इसके पत्तों को मदिरा और अंजीर में पकाकर छान लेवें। १४ माशे की मात्रा में यह क्वाथ मक्खन मिलाकर पीने से कीट-दंश से प्राण-रक्षा होती है। चतुष्पद जीवों को भी इससे उपकार होता है।

नोट—गीलानी के योग में मदिरा व शराब के स्थान में सुदाब लिखा है और ३॥ माशे की मात्रा में उपयोग करने का आदेश किया है।

शेख़ के लेखानुसार यद्यपि कनेर विष है, पर सुदाब एवं मदिरा के साथ क्वथित कर पीने से कीट-दष्ट विष-प्रभाव दूर हो जाता है। किंतु सत्य यह है कि उक्त उपाय से भी यह निरापद नहीं हैं। इसे अकेला क्वथित कर तो कदापि न पीना चाहिये। सुदाब, अंजीर और मक्खन या शराब, अंजीर और मक्खन या केवल शराब और सुदाब के साथ भी इसे १२ या १४ माशे से अधिक न पियें। मनुष्य और क्षुद्र चतुष्पद जीवों तथा कुत्तों के लिये कनेर विष है। मदिरा और सुदाब से केवल इतनी बात और होती है कि उसका विष प्रभाव कुछ कम हो जाता है अर्थात् ये उसके दर्पघ्न हैं।

इसकी पत्ती से छींकें आती हैं। अतएव मस्तिष्क की शुद्धि के लिये कतिपय नस्यौषधों में इसका रस डालते हैं।

सफेद कनेर के पीले पत्तों को कूट-पीसकर बारीक चूर्ण बनायें। जिस ओर सिर में दर्द हो, उस तरफ की नाक में एक-दो चावल भर इस चूर्ण के सुँघाने से छींकें आकर और नाक टपककर सिर का दर्द मिट जाता है।

नोट—इसके फूलों के चूर्ण का नस्य पत्तों के चूर्ण की अपेक्षा अधिक बलशाली होता है।

इसके फूल मलने से मुखमंडल का रंग निखर आता है। इसके काढ़े से सिर धोने से इंद्रलुप्त वा गंज आराम होता है। यही नहीं, प्रत्युत इससे चौपायों की खुजली में भी उपकार होता है। इसका काढ़ा घर में छिड़कने से दीमक और पिस्सू मर जाते हैं।

टपकाया हुआ दही, पीला गंधक और कनेर की पत्ती इनको बराबर बराबर लेकर बारीक पीसकर बकरी की चर्बी में मिला मर्दन करने से एक सप्ताह के भीतर तर खुजली नष्ट होती है। यदि सम्यक् संशोधनोपरांत बारह बार इसे शिवत्र पर लगाया जाय, तो अतिशय उपकार हो।

सफेद फूलवाले कनेर की जड़ को गोदुग्ध में खूब पकाकर दूध को पृथक् कर लेवें और उसका दही जमा देवें। पुनः उक्त दहीको बिलोकर मक्खन निकालें और थोड़ी मात्रा में इसे सेवन करें। यह वाजीकरण और स्तंभक है। घी की मात्रा १–२ बूँद तक, यह मालिश और खाने के काम आता है एवं उभय विध उपयोगी है।

जब दाँत हिलते हों, तब सफेद कनेर की दातौन बार २ करने से दाँत की जड़ दृढ़ हो जाती है (और उसमें कीड़े नहीं लगते)

कहते हैं कि—३॥ माशे की मात्रा में इसकी पत्ती वा फूल पकाकर या कच्चा पीसकर सेवन करने से खुनाक रोग उत्पन्न होजाता है। इससे व्याकुलता, प्रदाह और उदराध्मान होता है। नेत्र लाल होकर उबल आते हैं और अंत में मृत्यु हो जाती है। उक्त लक्षणों के उपस्थित होते ही वमन करायें। (या वमनकारी यन्त्र द्वारा आमाशय को शुद्ध करें। यदि बिष आमाशय से उतर कर आंतों पर प्रभाव कर चुका हो तो) वस्ति देवें, और रोगी को आराम से सुलाएं। तदुपरांत जब आमाशय और आंत्र शुद्ध हो जाँय, तब मुर्गे का चिकना शोरबा शीतल करके पिलाएं, छाछ और ईसबगोल का लबाब, मीठे बादाम के तेल में कतीरे का लबाब मिलाकर पिलायें। ताज़े खजूर भक्षण करना इसके लिए अतीव गुणकारी है।

इसकी पत्तियों को ओटा पीसकर और तेल में मिलाकर लेप करने से संधिगत वेदना शाँत होती है।

इसकी पत्तियों के काढ़े से आतशक के क्षत धोने से उपकार होता है।

इसको जड़ शीतल जल में पीसकर, उससे बबासीर के मस्सों को धोने से मस्से दूर हो जाते हैं। —ख़ा० अ०।

कनेर लघु, उष्ण एवं दृष्टि शक्ति को कम करने वाला है और यह शरीर की जोशीदगी, कोढ़, व्रण, विस्फोट और समस्त प्रकार के बिषों को दूर करता है। कहते हैं कि भारतवासियों के गृह में इसका फूल रखने से उनमें परस्पर युद्ध का कारण बनताहै। वाजिकारक प्रलेपों और तिलाओं में इसकी छाल काममें आती है। —ता० श०।

सफेद कनेर के पके फल के बीज का महीन चूर्ण कर रखें, क्लीव एवं शक्तिहीन व्यक्ति को प्रथम दिन एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में

खिलायें, दूसरे दिन डेढ़ रत्ती, तीसरे दिन दो रत्ती इसी प्रकार प्रति दिन आधी रत्ती बढ़ाते हुये सप्ताह पर्यन्त सेवन करें। अम्ल एवं वादी चीजों से परहेज करना आवश्यक है। रूक्षता प्रतीत होनेपर गोदुग्ध पान करें। परमेश्वर की दया से नपुंसक भी पुंसत्व लाभ करेगा। —गिफ़्ताहुल् खजाइन

नव्य मत

आर० एन० खोरी—ओलियेण्ड्रीन् (रक्त और श्वेत करवीर का उपादान भूत एक द्रव्य) को पिचकारी द्वारा त्वगभ्यंतर प्रवेश कराने (Injection) से नाड़ी स्पन्दन जहाँ एक मिनट में ७५-८० बार होता था, वहाँ घटकर मिनट पीछे १०-१२ बार रह जाता है। इतने पर भी यदि उसे अधिक क्षण तक जारी रखा जाता है, तो इससे हृत्स्पंदन और साथ ही श्वास-प्रश्वास भी अवरुद्ध होजाता है। करवीर मूल एवं मूल त्वक् दोनों ही असोद मूत्रकारक और स्ट्रोफैन्थायन एवं डिजिटैलीन वत् हृदय वलप्रद है। हृद्वैकल्य विशेष (Cardiac Systole) और शोथ रोग (Dropsy) में इसका क्वाथ (Infusion) व्यवहृत होता है। गर्भ-पात एवं आत्महत्या के लिये करवीर-मूल प्रायशः व्यवहार किया जाता है। शूलरोग में एवं शिरो विरेचनार्थ ग्रामवासीगण कनेर की सूखी पत्ती का चूर्ण व्यवहार में लाते हैं। इसकी लकड़ी मूषक विष (Rats bane) रूप से व्यवहार की जाती है। फिरंग क्षत, शिश्न क्षत और दद्रु में इसकी जड़ की छाल का प्रलेप लाभकारी होता है। (मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया—२ य खं०, ३८९ पृ०)

ऐन्सली—कनेर की, जड़ की छाल एवं मधुर गन्धि पत्रों को वैद्यगण प्रबल Repellents (मवाद को लौटाने वाला) मानते हैं और उनका बहिःप्रयोग करते हैं। जड़ भक्षण करने से बिषैला प्रभाव करती है। हिन्दू रमणीगण डाह के कारण आत्महत्या के लिए बहुधा इसका आश्रय ग्रहण करती हैं। —मेटीरिया इंडिका, २ खं० पृ० २३।

वैट—कनेर के प्रभावकारी सार हृदय के लिये प्रचंड विष है। प्रो० ई० पेलिकन के अनुसार क्योंकि हृदय पर इसका अवसादक वा नैर्बल्यकर (Depressing) प्रभाव होता है, अस्तु इसका डिजिटेलिस के प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार हो सकता है।—वैट्स डिक्शनरी।

कर्नल वी० डी० वसु—कनेर के सर्वांग, प्रधानतया इसकी जड़ को एतद्देशवासी विषाक्त मानते हैं। इसलिये वे आत्महत्या एवं अन्य प्रकार की हत्या के लिये इसका व्यवहार करते हैं। तथापि तालीफ़ शरीफ़ (पृ० १३४) एवं अन्य भारतीय द्रव्य-गुण-शास्त्र विषयक ग्रंथों में कुष्ठ तथा अन्य व्याधियों में इसकी व्यवस्था देखने में आती है।

के० एम० नादकर्णी—कनेरका सर्वांग विषैला है। इसकी जड़ और जड़ की छाल दोनों प्रबल मूत्रल एवं स्ट्रोफैन्थस और डिजिटेलिनवत् हृदय वलप्रद होती हैं। ओलिएंड्रीन के पिचकारी द्वारा त्वगधोऽन्तः क्षेप करने से नाड़ी-स्पंदन जहाँ प्रति मिनट ७५ या १०० होता था, वहाँ घट कर १० या १२ तक रह जाता है। यदि इसका प्रयोग कुछ समय तक और जारी रक्खा जाता है, तो हृदय का स्पंदन रुक जाता है और साथ ही श्वास प्रश्वास की गति भी अवरुद्ध होजाती है।

यह पौधा दो तरह का होता है—सफेद फूल का और लाल फूल का। गुण धर्म में ये दोनों समान होते हैं। इनमें से सफेद फूलवाले की जड़ें जिन्हें बंगाल में 'श्वेत करबी' कहते हैं, अत्यन्त विषैली होती है। इसी भाँति उसकी पत्तियाँ, छालें और फूल भी ज़हरीले होते हैं। इसकी छाल किसी प्रकार खाने के काम नहीं आती। जड़ बाह्य प्रयोग में आती है और इसे पानी में पीसकर अर्शांकुरों पर (Cancers), तथा क्षतों पर एवं कुष्ठ में भी लेप करते हैं। ज्वर रोगी को कान में इसकी जड़ बाँधते हैं। इस अभिप्राय के लिये रविवार के दिन इसकी जड़ ग्रहण की जाती है। वृश्चिक-दंश एवं सर्प-दष्ट विशेषतः फुरसा सर्प के काटने पर इसका प्रलेप गुणकारी होता है। शिरो-शूल में इसकी जड़ का चूर्ण सिर में मलते हैं। दद्रु एवं अन्यत्वग् रोगों में मूलत्वक् एवं पत्र का लेप करते हैं। सूजन उतारने के लिये इसकी पत्ती

का काढ़ा काम में आता है। सर्प-दष्ट तथा अन्य प्रबल विषैले दष्टों में इसकी पत्ती का स्वरस अस्यल्प मात्रा में दिया जाता है। घी इसका अगद है। सर्प-दंश में एक नस्य काम में आता है, जिसमें इसका फूल पड़ता है। योग यह है—

सफेद कनेर का सुखाया हुआ फूल और तंबाकू वा सुरती की पत्ती—इन दोनों को बराबर बराबर लेकर, इसमें थोड़ी छोटी इलायची मिलाकर सब को कूट-पीसकर बारीक चूर्ण बनायें। बस नस्य तैयार है। सर्प-दष्ट रोगी को इसका व्यवहार करायें। इं० मे० मे० पृ० ५६३-४।

इसके पत्र के कोमल रोम को सिकिम के पहाड़ी लोग क्षत द्वारा रक्त-स्राव रोकने में व्यवहार करते हैं।

कोंकण में पत्र एवं बल्कल झुलसा एवं कमल के साथ मिला चेचक पर लगाया जाता है।

बंगाल और बम्बई प्रांत के लोग पत्रों को तम्बाकू बाँधने में व्यवहार करते हैं।

फिर बंगाली विषघ्न समझ पुष्पों से कीड़े मकोड़े दूर रखने का काम लेते हैं।

पत्तों में जल को सांद्र बनाने का भी गुण विद्यमान है। शङ्कर पर सिवाय कनेर के दूसरा कोई रंगदार फूल नहीं चढ़ता। इसका सारकाष्ठ श्वेतवर्ण और हृद्काष्ठ मृदु एवं ईषत् कठिन होता है। बंगाल में कभी-कभी कनेर की लकड़ी के तख्ते तैयार किये जाते हैं। लोग कहते हैं कि इसकी लकड़ी पर घोटाई का काम अच्छा चलता और बढ़िया साज सामान बनता है।—हिं० वि० को०।

कनेर द्वारा होनेवाली धातु-भस्में

ताम्र-भस्म—एक तोला ताँबे को आग में गर्म कर करके एक-सौ बार कनेर की जड़ के ताजे काढ़े में बुझा लेवे। इसके बाद सफेद कनेर के फूल एक सेर लेकर पीसकर कल्क प्रस्तुत करें। और शुद्ध ताँबे को उक्त कल्क के भीतर रखकर ऊपर से कपड़मिट्टी करें। फिर उस गोलेको निर्वात स्थानमें एक मन उपलों की आग देवें। अत्यन्त श्वेतवर्ण की भस्म प्रस्तुत होगी।

गुण, प्रयोग—वाजीकरण एवं स्तम्भनार्थ यह अनुपम वस्तु है। चावल भर यह भस्म मक्खन या बताशा में रखकर खाये और ऊपर से दूध में गोघृत मिला पान करें।

कनेर लाल—

पर्य्या०—रक्तपुष्प, चण्डक, लगुड, चण्डातक, गुल्मक, प्रचण्ड, करवीरक (ध० नि०), रक्त करवीरक, रक्तप्रसव, गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम, क्रूर, भूतद्रावी, रविप्रिय (रा० नि०), रक्तपुष्प, चण्डात, लगुड, (भा० प्र०)–सं०। लाल कनेल लाल कनेर (कनइल)–हिं०। लाल करवी गाछ, रक्तकरवी–बं०। नेरियम् ओडोरम् Nerium Odorum, Soland.–ले०। कानेर चेट्टु –ते०। केंगण लिगे, केगन लिंगे–कना०। केंगण लिंगे–का०। रक्त करवीर, ताँबड़ी कणेर–मरा०। गुलाबी फुलनी, राता फुलनी, रातीकणेर–गु०। कन्हेर–बम्ब०।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

रक्तस्तु करवीरः स्यात्कटुस्तीक्ष्णो विशोधकः।
त्वग्दोषव्रण कण्डूति कुष्ठहारी विषापहः॥
(रा० नि० व० १०)

लालकनेर कटु, तीक्ष्ण और शोधक है तथा यह त्वग्दोष, व्रण, कण्डु (खाज), कोढ़ और विषनाशक है।

रक्तवर्णः शोधकः स्यात्कटु पाके च तिक्तकः।
कुष्ठादिनाशको लेपादथ पाटलवर्णकः॥
शीर्षपीडां कफं वातं नाशयेदिति कीर्तितः।
रक्तादिचतुरो भेदा गुणाः श्वेतहयारिवत्॥
(नि० र०)

लाल कनेर—शोधक, चरपरा और पाक में कड़ुआ होता है। इसका लेप करने से कोढादि दूर होते हैं।

गुलाबी कनेर—मस्तक शूल तथा कफ और वात का नाश करता है। इसके तथा पीला और काला कनेरों के लेष गुण में सफेद कनेर की तरह जानना चाहिये।

शेष गुणधर्म के लिए "सफेद कनेर" देखो।

यूनानी मतानुसार—

हकीम नूरूल् इस्लाम साहब की व्याज़ में उल्लिखित है—"रविवार को लाल कनेर के पत्ते, फूल और डालियां लेकर पानी में पीसकर रस निचोड़ और उस रस में दो मोटे कपड़ों को तीन बार तर करके सुखा लेवें। फिर उक्त कपड़ों की बत्ती बनाकर मिट्टी के नये चिराग में तेल डालकर उसे जलायें। उक्त प्रकाश में स्त्री-संग करने से वीर्य-स्खलित नहीं होगा।"

इब्न ज़हर के रिसाला अरबी में उल्लेख है। "कनेर को तीव्र सिरके में डाल मिट्टी की हाँड़ी में भरकर मन्दाग्नि पर क्वथित करें, जब कनेर की सम्पूर्ण शक्ति द्रव में आजाय, तब उसे साफ करके उसमें कोई अन्न भिगोकर कुलंग (कराँकुल) को खिलायें, इससे वह निश्चेष्ठ हो जायगा।"

यदि इसको हरे सौंफ और काकनज के रस में पीसकर आँख में लगायें तो प्रारम्भिक मोतिया विन्दु, नेत्रकण्डु, जाला, फूला और पपोटों का मोटा पड़ जाना ये रोग आराम हो।

इसके पत्तों को अंगूरी सिरके में पीसकर प्रलेप करने से दिन-रात अर्थात् २४ घण्टे के भीतर दद्रु रोग निर्मूल होजाता है।

वैद्यों के कथनानुसार बागी कनेर की जड़ बड़ी विषैली होती है। इसकी जड़ का प्रलेप करने से फोड़े फुन्सी आदि त्वग्रोग आराम होते हैं। इसका ताजा स्वरस दुखती हुई आंख में डाला जाता है।

इसके पत्तों को क्वथित कर उस काढ़े से आँख पर धार देने से सूजन उतर जाती है।

इसकी जड़ की छाल का तेल बनाकर लगाने से कई तरह का दाद और कोढ़ आराम होता है। इस तेल के मलने से तर और खुश्क खुजली जाती रहती है।

इसके पत्तों का तेल बनाकर लेप करने से रोगोत्पादक जीवाणु शरीर पर नहीं बैठते।

इसके पत्तों का दुधिया रस दाद पर लगाया जाता है।

गर्भाशय से मृत वा शुष्क शिशु आहरणार्थ इसकी जड़ व्यवहार की जाती है।

इसके पत्तों को पीसकर तेल में मिलाकर प्रलेप करने से क्षतज कृमि नष्ट हो जाते हैं।

इसकी जड़ के काढ़े को राई के तेल में यहाँ तक ओटायें कि तैल मात्र शेष रह जाय। त्वग्रोगों में इस तैल के अभ्यंग से उपकार होता है।

यदि रक्तविकार के कारण शरीर की त्वचा हाथी की त्वचा की भाँति स्थूल हो गई हो, तो इसकी छाल का लेप करने से वह पूर्ववत् हो जाती है। —ख़० अ०

इसके पत्तों को पका-पीसकर तेल में मिला लेप करने से संधिगत शूल निवृत्त होता है।

कनेर भक्षण जनित विषाक्त लक्षण और उसका अगद

इसकी जड़ भक्षण से उत्पन्न विष-प्रभाव के लक्षण यह हैं—पुट्ठों की जड़ें अपना कार्य स्थगित कर देती हैं, हृत्स्पंदन रुक जाता है, नाड़ी की गति एक मिनट में १०-१५ तक रह जाती है। और जब यह १० तक रह जातीहै, तब मनुष्य स्वर्ग सिधारता है। इसकी छाल के विष का प्रभाव हृदय पर होता है। इसकी पत्ती, छाल और फूल इन सब में विष होता है; परन्तु मूलत्वक् में सर्वाधिक विष होता है। यह विष है। यह विषाक्त वस्तु राल की जात से है और उड़नशील नहीं है। कनेर के स्वयंभू वृक्षों में यह विष अधिक पाया जाता है, आरोपित वृक्ष में यह अल्प होता है। राल को पानी में घोलने से उक्त विष जल में मिश्रीभूत हो जाता है। इसकी छाल और पत्तों के खिंचे अर्क में विष की उग्रता अत्यधिक होती है। इसकी जड़ अधिक मात्रा में सेवन करने से हस्त-पाद में आक्षेप होने लगता है। इसकी जड़ के विष से नाड़ी की गति प्रति मिनट घटकर ३६ तक हो जाती है, किंतु निर्बलता नहीं होती।

कनेर विष का उपाय

जब कनेर के भक्षण से विषाक्त लक्षण प्रगट हो जायँ, तब रोगी को क़ै करावें या वमनकारी यंत्र द्वारा आमाशय को प्रक्षालित कर डालें। परन्तु जब विष आमाशय से उतर कर आँतों पर प्रभाव

कर चुका हो, तब वस्ति का उपयोग लाभकारी सिद्ध होता है। रोगी को आराम से सुलाएँ। वमन और वस्ति के उपरांत जब आमाशय और आँत्र शुद्ध हो जाँय, तब मुर्गे का चर्ब वा शोरबा शीतल करके पिलाएँ। छाछ में इसबगोल का लबाब मिलाकर देवें या कतीरे के लबाब में मीठे बादाम का तेल मिलाकर पिलायें, इसके लिये तर और ताज़ा खजूर खाना अत्यन्त गुणकारी होता है।

कनेर, पीला—

पर्य्या०—पीतप्रसव, सुगन्धि कुसुम, (रा० नि०)–सं०। पीला कनेर, पीले फूल का कनेर, पीली कनइल–हिं०, द०। पीत करवी (कल्के फुल)–बं०। थेवेटिया नेरिफोलिया Thevetia Nerifolia, Nerium Psidium guss,–ले०। The Exile or yellow Oleander–अं०। पच्चै अलरि, तिरुवाच्चिप्यू–ता० पच्चगन्नेरु। पच्च-अरलि ते०–मल०। मोलमियाइ–पान–बर०। पिं० वट्टी, पीपला कन्नेर, शेरानी–मरा०। पीलाफुलनी, पीला कनेर–गु०। थिवटी–बम्ब०।

शतावरी वर्ग

(*N. O. Apocynaceæ*)

उत्पत्ति-स्थान—पश्चिम भारतीय द्वीप-समूह और भारतवर्ष। भारतीय उद्यान एवं मैदानों में इसे लगाते भी हैं।

रासायनिक संघटन—इसके बीजों में ४१% तेल, थेवीटीन (Thevatin), थेव-रेजिन (Theve-resin), कार्यकारी सार और स्युडो-इंडिकन (Pseudo Indican)—ये द्रव्य पाये जाते हैं। छाल में थेवेटीन (Thevatin) होती है। इसके बीज तैल में ट्रिआलीन Triolein ६३%, ट्रिपामेटीन Tripalmatin २३%, और ट्रि-स्टियरीन Tri-Stearin २७% ये द्रव्य होते हैं। इसकी खली में थेवेटीन Thevetine नामक एक विषैला ग्लुकोसाइड पाया जाता है। शुद्ध स्थिर तैल नादकर्णी और खोरी" बिल्कुल प्रभाव शून्य (Inert) होता है।

औषधार्थ व्यवहार—छाल।

मात्रा—त्वक्चूर्ण, ¼ से ½ आना भर

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

'पीतकरवीरको'ऽन्यः ❀ ❀ ❀।
कृष्णस्तु चतुर्विधोऽयं गुणे तुल्यः॥
रा० नि० १० व०

पीतादि चारों प्रकार के कनेर गुण में समान हैं

यूनानी मतानुसार—वैद्यों के कथनानुसार पीले कनेर का दुधिया रस अतिशय विषैला होता है। इसकी छाल कड़ुई दस्तावर और ज्वर उतारनेवाली है। इसका अर्क उचित मात्रा में सेवन करने से कई तरह के जूड़ी-तापों को और ज्वर के दौरों को रोकता है। इसके बीजों की मींगी अत्यंत कड़ुई होती है। इसके चबाने से जिह्वा में कुछ सुन्नपन एवं रुक्षता प्रतीत होती है। इसके बीजों की मींगी का तेल वमन एवं विरेक् लाता है। किसी २ को इससे अत्यंत कै-दस्त होते हैं। इस की मींगी अत्यन्त विषैली होती है।—ख़० अ०

नव्यमत

आर० एन० खोरी—पीले कनेर के त्वक् चूर्ण में सिंकोना त्वक् चूर्ण से पचगुनी ज्वरघ्नी शक्ति विद्यमान होती है। अर्थात् एक रत्ती यह छाल ५ रत्ती सिंकोना की छाल के बराबर है। इसकी छाल कड़ुई और नियतकालिक ज्वर नाशक (Anti-periodic) है। नवज्वर (Remittent) और विषम ज्वर में इसके सेवन से उपकार होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से इसका वामक एवं विरेचक प्रभाव होता है और विषाक्त मात्रा में सेवित होने से 'एसिड-विष' के लक्षण प्रकाश पाते हैं। बीजजात तैल वांतिकर और विरेचक है तथा जैतून के तेल की भाँति इसका बाह्य प्रयोग होता है। (मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया—२ य खं०, ३१२ पृ०)

पीले कनेर की छाल की ज्वरनिवारणी शक्ति का परीक्षण और समर्थन डा० जी० बिडी और डा० जे० शार्ट ने भी किया है।

जल कनेर

यह सूजन उतारता, शुक्र प्रमेह का नाश करता, कफनाशक और विषघ्न है तथा वायु के रोगों में उपकारी है। यह उदर के भारीपन को दूर करता है।

क़नेर चेट्टु–[ते०] कनेर का पेड़ । दे० "कनेर"

कनेर काला–संज्ञा पुं० काला कनेर । कृष्ण करवीर । दे० "कनेर" ।

कनेर गुलाबी–संज्ञा पुं० कनेर,लाल । दे० "कनेर" ।

कनेर ज़र्द–संज्ञा पुं० [हिं० कनेर × फ़ा० ज़र्द] पीला कनेर । पीत करवीर । दे० "कनेर" ।

कनेर, पीला–संज्ञा पुं० पीला कनेर । दे० 'कनेर"

कनेर, लाल–संज्ञा पुं० लाल कनेर । दे० "कनेर" ।

कनेर सफ़ेद–संज्ञा पुं० सफ़ेद कनेर । दे० "कनेर"।

कनेर सुर्ख–संज्ञा पुं० [हिं० कनेर फ़ा० सुर्ख] लाल कनेर ।

कनेरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हथिनी । हस्तिनी । वै० निघ० ।

कनेरियम् कम्यून–[ले० Canarium Commune,] दरख्त हब्बुलमन्शम् ।

कनेल–संज्ञा पुं० दे० "कनेर" ।

कनैर, कनैल–संज्ञा पुं० दे० 'कनेर" ।

कनोम–[लेपचा] बहेड़ा ।

कनोर–[देश०] बनखोर । Aesculus Indica खानोर । काकरा ।

कनेरी–संज्ञा स्त्री० [अं० कैनरी (टापू)] प्रायः तोते के आकार की एक प्रकार की बहुत सुन्दर चिड़िया । जिसका स्वर बहुत कोमल और मधुर होता है और जो इसीलिए पाली जाती है । यह अनेक जाति और रंग की होती है ।

कनोन्ना–संज्ञा पुं०
कनौचा–संज्ञा पुं० } [देश० पं०] एक प्रकार का (मरोजातीय) पौधा जिसकी शाखायें लम्बी और कुछ गोलाई लिए हरे सुगंधिमय होती हैं । फूल पीत कृष्ण वर्ण का होता है । बीज अलसी की तरह के भूरे, त्रिकोणाकार, मसृण और कोषावृत होते हैं । ये ऊपर से जालीनुमा कोमल गहरे भूरे रंग की रेखाओं से चित्रित $\frac{१}{१०}$ इञ्च लम्बे, उससे कुछ कम चौड़े और एक ओर मेहराब नुमा होते हैं । इनका छिलका कड़ा और भंगुर होता है पानी में भिगोने से यह पानी सोखकर फूल जाता है । अर्थात् शीघ्र अर्द्ध स्वच्छ लबाब द्वारा घना वृत होजाता है । इसकी गिरी तैलाक्त और स्वाद में गिरिवत् (Nutty) एवं मधुर होती है । उक्त लबाब के लिए ही इसका औषध में उपयोग होता है ।

पर्य्या०—कनौचा, हिं० पं० । नलउसरे को मरा० । सैल्विया स्पाइनोसा Salvia Spinosa, फायलैन्थस मैडरास पेटेंसिस (Phyllanthus maderas patensis, *Linn., Wight.*) –ले० । कनोड़ा । –गु० ।

उत्पत्ति स्थान—पंजाब, लंका के शुष्क भाग, अफ्रीका के गरम भाग तथा अरब, जावा, चीन और आस्ट्रेलिया में पैदा होता है ।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष । किसी-किसी के मत से समान रूप से उष्ण एवं रूक्ष । किसी किसी के अनुसार द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में तर है । पर औरों ने इसे द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष लिखा है ।

हानिकर्त्ता—प्लीहा को और शिरः शूल उत्पन्न करता है ।

दर्पघ्न—गुलनार तथा रक्त गुलाब । किसी-किसी के मत से रोगन बादाम, तुख्म हुम्माज और अर्क बादियान ।

प्रतिनिधि—तुख्म रेहाँ, तुख्म बालंगो और दोष परिपाकार्थ अलसी के बीज ।

मात्रा—अकेले ७ मा० से १०॥ मा० तक और दूसरी दवा के साथ ४॥ मा० तक ।

प्रधान कर्म—अवरोधोद्घाटक, आमाशय बल प्रद और प्रवाहिका एवं रक्तातिसार नाशक है ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

अबु जरीह के अनुसार तुख्म कनौचा में यद्यपि अलसी की अपेक्षा कम उष्णता है तथापि अर्शों के पकाने में यह उससे अधिक शक्तिशाली है । ये कोष्ठ मृदुकर है । और अल्प मात्रा में मलमार्ग से कफ निःसृत करते हैं । परन्तु भून लेने से ये संग्राही हो जाते हैं । इसे भूनकर यदि तुख्म हुम्माज़ (चुक्र-बीज) के साथ फाँके, तो यह खून के दस्त बन्द करदे । और आंत्र-व्रण एवं क्षत

को बहुत लाभ पहुँचावे। यदि इसे पीसकर मधु में मिलाकर कठिन से कठिन सूजन पर लगाएं। तो वह पक जाय। इसका लबाब चमेली के तेल के साथ नीहार मुंह पीने से सौदावी अर्थात् वातज पित्ती बिलकुल जाती रहती है। परीक्षित है। दस्तों की दशा में कनौचे के बीज से आँतों की परीक्षा करते हैं। उससे यह मालूम करते हैं कि आया उनमें ऐसा मल है या नहीं जिसका निकलना उचित है। उसकी परीक्षा की रीति इस प्रकार है—तुख्म कनौचा को गरम २ गुलाब में मिलाकर रोगी को पिलावें। यदि उक्त बीज शीघ्र ही उदर से बाहर निकल जायँ और उसे दोबारा पिलाने की आवश्यकता न हो तो समझ लें कि आंतें मल से रिक्त हैं और यदि ऐसा न हो, तो, उससे यह प्रमाणित होगा कि वह मल से परिपूर्ण हैं। परन्तु यह स्मरण रहे कि जब रोगी की प्रकृति में उष्णता एवं पिपासा का प्राबल्य हो, तो इसबगोल या तुख्म रेहां से परीक्षा करें। उक्त अवस्था में तुख्म कनौचा या तुख्म बारतंग न दें। क्योंकि उक्त बीज अपनी खासियत से शुक्र को कम करते हैं। (ख० अ०)

कनौचा का बीज तारल्यकारक (मुलत्तिफ़) है। यह वायु, आध्मान और कफ को नष्ट करता, हर जगह के अवरोधों का उद्घाटन करता और वायु निःसारक है। स्त्री के दूध के साथ इसकी बूंदें कान में टपकाने से कर्णशूल शाँत होता और नाक में डालने से शिरःशूल निवृत होता है। यह आंत्र और आमाशय को बलप्रद, जलन्धर को लाभदायक और मूत्रप्रबर्त्तक एवं स्वेदक है। यह आमाशयिक कफ को विलीन करता एवं आमाशय शूल को प्रशमित करता है। यदि जलोदर का रोगी ७ माशे इसके बीज एवं पत्र उतनी ही शर्करा के साथ कुछ दिन तक प्रतिदिन सेवन करे तो यह मूत्र तथा स्वेद-पथ से जल को निःसृत करता है। बादाम के तेल में भूने हुये इसके बीज आन्त्र-प्रदाह तथा प्रवाहिका में उपयोगी है। चुक्र बीज के साथ दस्तों को रोकते हैं और आंत्रक्षत को लाभ पहुँचाते हैं। इसका प्रलेप व्रण को परिपक्व करता है। (बु० गु०)

आर० एन० चोपरा—लिखते हैं कि जब कनौचा के बीजों को जल में भिगोया जाता है, तब इससे एक प्रकार का सांद्र पिच्छिल पेय प्रस्तुत होता है, जिसका पूयमेह और मूत्रप्रणाली-प्रदाहमें बहुल उपयोग होता है। —इं० ड्र० इं० पृ० ५६३।

कन्अ़द–[अ०] एक प्रकार की मछली।

कन्खेनफीऊ–[बर०] चीता। चित्रक।

कन्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अतिबला। कंघी। भा० प्र०। नि० शि०।

कन्तु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हृदय। वै० निघ०। (२) कामदेव। (३) धान्यागार। खाता। वि० [सं० त्रि०] सुखी। खुश।

कन्तुकिलंग–[ता०] मौआलु।

कन्थरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक वृक्ष। दे० "कन्थारी"।

कन्था–संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) गुदड़ी। कथड़ी। अम०।

कन्था–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] (१) स्यूतकर्पट, कन्थारी। कथरी। गुदड़ी (अ० म०) (२) चीर। (३) एक वृक्ष। (४) रुईदार कपड़ा। तूलपूर्ण गात्रवस्त्र।

कन्थारी–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री] एक प्रसिद्ध वृक्ष वा झाड़ी जिसके पत्ते गोल, डंडी हरी और फूल सफेद रंग के सफ़ेद केशर युक्त होते हैं। इसमें चैत बैशाख में फूल लगते हैं। फल छोटे छोटे चने के बराबर होते हैं। कंथारी तीन-चार जाति की होती है।

नोट—किसी किसी ने इसे नागफनी (नागफणः माना है। दे० "नागफनी"।

पर्य्या०कंथारी, कंथरी, कंथा, दुर्धर्षा, तीक्ष्णकण्टका, तीक्ष्णगंधा, क्रूरगंधा, दुःप्रवेशा, रा० नि० व० ८। (अहिंस्रा, जालि, गृध्रनखी, कंथारिका, क्रूरकर्मा, वक्रकंटकी, कन्था, कपालकुलिका, अम्लफला, गुच्छगुल्मिका)–सं०। कंथारी, कंधारी कंतार, हैंसा–हिं०। कांथारी–मरा०। कांतरु–कना०। फणीनिवडुंग–कों०। काला कंथारो, कंथारो, कंथार–गु०, मरा०। Capparis Sepiaria–ले०। कंथार, कारो ह्यूमरन, ह्यूस–

पं० । करिंदू, करुंजरी–ता० । नलपुई–ते० । कांथार (कच्छी) कांतरु कना० ।

गुण, प्रयोग—कटु तिक्तोष्णा वातकफघ्नी, शोथघ्नी दीपनी रुचिकारी रक्तग्रंथिरुजाघ्नी ज्वरघ्नी च । रा० नि० व० ८ । अर्थात् कंथारी कड़वी, चरपरी, गरम, वात कफनाशक, शोथनाशक, दीपन रुचिकारी, रक्तविकार, ग्रंथिरोग और ज्वर-नाशक है ।

कंथारी दीपनीरुच्या कटूष्णा तिक्तकामता ।
रक्तदोषं कफं वातं ग्रन्थिरोगं च नाशयेत् ॥
स्नायुरोगं च शोफं च नाशयेदिति कीर्तिता ।
(नि० र०)

अर्थात्–कंथारी अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, चरपरी, गरम और कड़वी है तथा रुधिर विकार, कफ वात, ग्रंथि रोग, स्नायुरोग और सूजन को दूर करती है ।

इसकी पिसी हुई जड़ गोधेरक नामक सर्प के काटने पर नाक के द्वारा सुँघाई जाती है ।

आँख की सूजन पर इसकी जड़ को अफीम के साथ पीसकर आँख पर लगाई जाती है, जिससे सूजन बिखर जाती है । उदर शूल में इसकी जड़ कालीमिर्च के साथ पिलाई जाती है । रक्तविकार और चर्म रोगों पर इसके पत्तों का काढ़ा दिया जाता है ।

कन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वनस्पति-शास्त्र में वह जड़ जो गूदेदार और बिना रेशे की होती है; जैसे—सूरन, शकरकंद इत्यादि ।

पर्य्या०—बल्ब Bulb ट्युबर Tuber (अं०) । अ.स्लुस्सितम्र (बहु० उ.सूलस्सितम्र), अस्लुल् मुदव्वर (बहु० उ.सूलुल् मुदव्वर) –(अ०) । बीख़े मुदब्बर (बहु० बीख़हाए मुदब्बर) –फ़ा० । गड्ड (बहु० गड्डे) –द० किज़्.ङ्ग् (बहु० किज़्.ङ्ग् गल) –ता० । गड्डु (बहु० गड्डुलु) –ते० । किज़्.ज्ज (बहु० किज़्.ज्जुकल्) –मल० । गड्डे (बहु० गड्डेगलु) –कना० । गोल-मूल –बं० । गड्डा (गड्डे बहु०) –मरा० । कन०; गड्डा (बहु० गड्डो) –गु० । अल (सिंगा०) । अऊ, उ (बहु० अऊमियाआ, उमियाआ) –बर० । (२) योनि का एक रोग जिसमें बतौरी की तरह गांठ बाहर निकल आती है । योनिकन्द । दे० "कन्दरोग" । (३) उतरन । इन्दीवरा । रा० नि० व० २३ । (४) लाल मूली । रक्तमूलक । (५) जिमीकन्द । सूरन । ओल । रा० नि० । र० सा० सं० । सि० यो० । बाहुशाल गुड़ । च० द० अ० पि० चि० अश्रशुद्धिः । (६) एक प्रकार का विष । (७) ऋद्धि नामक ओषध । (८) कासालुक । कॉसालू । (९) मेघ । बादल । (१०) एक प्रकार का श्वेत श्लक्ष्ण बहुपुट –कंदे विशेष । लोग इसे सर्पच्छत्रक (साँप का छाता) कहते हैं उ० सु० सू० ३९ अ० । पित्त शमन । (११) हस्तिकन्द । सफेद बड़ी मूली । वै० निघ० अलस चि० । हस्ति कर्ण योग । (१२) शालूक, शालगम । (प० मु० १३) एक प्रकार की सुगंधित तृण । एक सुगंधित घास । राम कर्पूर । प० मु० (१४) गुड़ । (१५) शर्करा । शकर । च० द० अर्श–चि० काङ्क्षायन मोदक । (१६) पिण्डालुक । गोल आलू । पिंडारू । सुथनी । (१७) शस्यमूल । अनाज की जड़ । मे० दद्रिकं । (१८) फलहीन ओषधि की जड़ ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गृञ्जन । गाजर । रा० नि० । नि० शि० ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] जमाई हुई चीनी । मिस्री ।

कन्दक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मुरब्बालु शकरकन्द । रा० नि० व० ७ । (२) वन सूरण । जंगली सूरन । भैष० कुष्ठ० चि० कन्दर्प सार तैल (३) कन्द । दे० "कन्द"

कन्दका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रुद्रवन्ती ।

कन्द गुडूची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का गुरुच । कंद गिलोय ।

संस्कृत पर्य्याय—कन्दोद्भवा, कन्दामृता, बहुचिक्षा, बहुग्रहा, पिण्डालु और कन्दरोहिणी, पिण्डगुडूचिका और बहुरुहा ।

गुण—कन्दगुडूची, कटु एवं उष्ण और सन्निपात, विष, ज्वर, भूत-बाधा तथा बली पलित नाशक है ।

वि० दे० "गुरुच" । रा० नि० व० ३ ।

कन्द ग्रन्थि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पिंडालु नामक कंद शाक । पिंडालू । सुथनी । पेडार । रा० नि० व० ७ । (२) श्वेत राजालुक । वै० निघ० ।

कन्दज–वि० [सं० त्रि०] कन्द की जड़ से उत्पन्न । लहसुन ।

कन्दजविष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह विष जो औषध मूल में होता है । कंदजात बिष । कन्द का जहर, जैसे—सींगिया, कनेर इत्यादि । आयुर्वेद में यह आठ प्रकार का होता है । जैसे, शृङ्गक मुस्तक, कौम्भ्यं, दर्वीक, सर्षप, सैकत, वत्सनाभ, और शृङ्गी । औषध में व्यवहार करने से पूर्व इनकी शुद्धि का बिधान है । विना शुद्धि के इनका प्रयोग शास्त्र वर्जित है । अस्तु इनमें से प्रत्येक बिष की शुद्धि का प्रकार उन-उन बिषों के वर्णन क्रम में दिया गयाहै । वहाँ देखें । इनकी साधारण शुद्धि इस प्रकार होती है । सर्व प्रथम कंद के छोटे छोटे टुकड़े कर किसी बर्तन में रखकर ऊपर से इतना गोमूत्र डालें, जिसमें वे डूब जायँ । इसी प्रकार तीन दिन तक बराबर ताज़ा गोमूत्र डाल-डालकर धूप में सुखालें । बस शुद्ध होगया । यह बिष प्रयोगों में भाग के मान से पड़ता है ।

कन्दट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शुक्लोत्पल । सफेद कुमुद । कूई । नीलोफर । श० र० ।

कन्द तृण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की घास । गुंठ तृण । वै० निघ० ।

कन्द नालका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोभी नाम की घास । गोजिह्वा । गोजिया । वै० निघ० ।

कन्दनीचक–संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रवन्ती ।

कन्दपञ्चक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तैलकंद, अहिनेत्रकन्द, सुकंद, क्रोड़कंद (वाराहीकंद) और रुदंतीकंद इन पाँच ओषधि-कंदों का समूह ।

गुण—ये पाँचो प्रकार के कंद ताँबा इत्यादि धातुओं को मारण करनेवाले हैं और सब प्रकार के रोगों को हरण करनेवाले हैं । वै० निघ० ।

कन्दपत्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] महातालीश पत्र । वै० निघं० । तालीस पत्र । के० दे० नि० । नि० शि० ।

कन्द-फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंकोल ।

कन्दफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटा करेला । करेली । क्षुद्र कारवेल्लक । (२) भूई कोंहड़ा । पाताल कोंहड़ा । विदारी । रा० नि० व० ७ ।

कन्दबहुला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तिलकन्द । त्रिपर्णी नामक कन्द । अमलोलवा । गवालिया लता । रा० नि० व० ७ ।

कन्दमूल–संज्ञा पुं० सं० क्ली] (१) मूली । नैपाल की तराई में बहुत बड़ी मूली होती है । मूलक । रा० नि० व० ७ । (२) दे० "कन्दमूल" ।

कन्दर–संज्ञा पु० [सं० पुं०] [स्त्री० कन्दरा] (१) श्वेत खदिर । (२) एक प्रकार का क्षुद्र रोग । दे० "कदर" ।

संज्ञा पुं [सं० क्ली०] (१) आदी । अदरक । (२) सोंठ । शुंठी । रा० नि० व० ६ । (३) गुफा । गुहा । (४) ओल । ज़मीकन्द । (५) अंकुर । कल्ला । (६) गाजर ।

कन्दरा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कन्दर । गुहा । दर्रा । बिल । ग़ह्वर । देव खात । गुफा ।

कन्दराल-कन्दरालक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाकर का पेड़ । प्लक्ष वृक्ष । (२) पारिस पीपल । गर्दभाण्ड वृक्ष । गंधीभाट । गजहंद । (३) अखरोट का पेड़ ।

कन्दरूल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कटु शूरण । कड़ुआ ज़मीकन्द । वै० निघ० ।

कन्दरोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का योनि रोग जो वातादि दोष भेद से चार प्रकार का होता है । कन्द । योनिकंद । Prolapsus Uteri

निदान तथा लक्षण—दिन में सोने, अति क्रोध, व्यायाम तथा अति मैथुन से एवं नख, दंत और कंटक आदि के क्षत से कुपित हुये वातादिक दोष पूयरक्त मिलित रंग की बडहर की आकृति की जो छोटी गाँठ उत्पन्न करते हैं, उसे योनिकंद कहते हैं । इनमें से वह जो रूखा, विवर्ण और फटा सा होता है, वह वातिक, और जो दाह; राग और ज्वर युक्त होता है वह पैत्तिक होताहै । और जो योनिकंद नील आदि फूलों के रंग का खुजली युक्त होता है वह श्लैष्मिक होता है । जिस योनिकन्द में उक्त तीनों दोषों के चिन्ह मिले हुये होते है वह सन्नि-

पातिक कंद होताहै। मा० नि०। इनमें से सन्निपातिक कंद रोग को छोड़कर शेष तीनों प्रकार के कंद रोग चिकित्सा से आरोग्य हो जाते हैं।

कन्दरोद्भवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (?) क्षुद्र पाषाण भेद वृक्ष। छोटा पाखान भेद। छोटी पथरचटी। पत्थर फोड़ी। रा० नि० व० ५। (२) एक प्रकार का गुरुच।

कन्दरोहिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्द गिलोय कन्द गुडूची। रा० नि० व० ३।

कन्दर्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कामदेव। (२) पलाण्डु। प्याज।

कन्दर्पकूप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) योनि। (२) कुस।

कन्दर्पगेह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] योनि।

कन्दर्प जीव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कामज वृक्ष। काम वृद्धि क्षुप। मनोज वृक्ष। स्मरवृद्धि। रा० नि० व० ५। (२) कटहल। (३) काम वृद्धि कारक द्रव्य।

कन्दर्प ज्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं० (१) काम (२) काम के विकार से उत्पन्न ज्वर। काम ज्वर।

कन्दर्प मुशल, कन्दर्प मूषल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लिंग। शिश्न, उपस्थ। त्रिका०।

कन्दर्प रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यकोक्त एक रसौषध।

योग—पारद, गधक, प्रवाल (मूंगा भस्म) सुवर्ण भस्म, गैरिक (गेरु)। वैक्रांत भस्म, रौप्य (चाँदी भस्म)। शंख भस्म और मुक्ता इनको बराबर २ ले कूट पीसकर बड़ की जटा के काढ़े से सात वार भावना देकर १-१ वल्ल (२-३ रत्ती) प्रमाण की गोलियां बनाए। इसे त्रिफला देवदारु, अर्जुन या कवाबचीनी के काढ़े के साथ सेवन करने से औपसर्गिक मेह रोग शीघ्र नाश होता है। (भैष० औप० मेह)

कन्दर्प-वटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इलायची, तज, पत्रज, जटामांसी, लौंग, अगर, केशर, मोथा, कस्तूरी, पीपर, सुगन्धवाला, कपूर, विदारीकन्द अकरकरा, सोंठ, मुलहठी, गुलशकरी, कसेरू, शतावर, रूमी मस्तगी, जायफल, जावित्री, आमला प्रत्येक एक-एक तोला। शुद्ध अहिफेन ४ तोले, बड़ का दूध ४ तोले, ऊमर का दूध ४ तोले, सत कुचिला ४ तोले प्रथम काष्टीय औषधियों का चूर्ण कर पुनः अहिफेनादि को उक्त चूर्ण में मिलाकर शतावरी के रस की ७ भावना देकर रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएं।

गुण—इसे रति काल के २ घण्टा पूर्व गोदुग्ध मिश्री और घृत मिलाकर इसके साथ सेवन करने से वीर्य की वृद्धि होती है और स्तम्भन होता है। और इसके उपयोग से मनुष्य स्त्री प्रसंग में पूर्ण आनन्द प्राप्त करता है।

कन्दर्प शृङ्खल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रतिबन्ध विशेष।

कन्दर्पसार तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कुष्ट रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का तैल।

योग—छतिवन, काली (काली निशोथ), गिलोय, नीम, सिरस, महातिक्ता (चिरायता, यवतिक्ता), अरनी, कड़वी तरोई, इंद्रायण और हल्दी प्रत्येक वस्तु १०-१० पल। एक द्रोण जल में क्वाथ करें। यह क्वाथ ४ प्रस्थ, गोमूत्र, अमलतास, भांगरा, अरनी, अरूसा, हल्दी, भंग, चीता, खजूर, गोबर का रस, आक और सेहुँड़ के पत्ते का रस १-१ प्रस्थ स्वरस एवं निम्नलिखित कल्क के साथ यथा विधि १ प्रस्थ तैल पकाएँ।

कल्क द्रव्य—इंद्रायन, बच, ब्राह्मी, कड़वी तुम्बी, चीता, बिकुवार, कुचला, मैनसिल, हल्दी, मोथा, पीपलामूल, अमलतास, आक का दूध, कसोंदी, ईश्वरमूल, आल, भजीठ, महानीम, महाकाल (बड़ा इंद्रायन) विछुवा, करञ्ज, आस्फोतक मूर्वा, छातिम, सिरस, इन्द्रजौ, नीम, महानीम, गिलोय वाकुची, चन्द्ररेखा (वकुची भेद) चकवड़, धनियां, भांगरा, मुलहठी, सुपारी, कुटकी, कपूर कचरी; दारुहल्दी, निसोथ, पद्माख; पीपलामूल, अगर, पुष्करमूल, कपूर, कायफल, जटामांसी मुरामाँसी, इलायची, अडूसा और हड़। प्रत्येक १-१ कर्ष।

यह तेल १८ प्रकार के कुष्ठ, ग्रन्थि और मज्जागत कुष्ट, हाथ पैरों की उंगलियों और जोड़ों का गल जाना, माँस बढ़ जाना, नाक, कान और मुख का विकृत होजाना, त्वचा का मेंढक की त्वचा के

समान होजाना, सफेद कोढ़, लालकोढ़, विपादिका पामा, विस्फोटक, नीली, कृमि, वृद्धि, दाद, मसूरी किटिभ, लाल चकत्ते, और औदुम्बर, पद्मकुष्ठ,महा पद्मकुष्ठ, लगण्ड, अर्बुद, गण्डमाला, भगन्दर, और वातज, पित्तज, कफज, तथा द्वन्द्वज और सन्निपातिक आदि सब प्रकार के कुष्ठों का नाश करता है। भैष०।

कन्दर्प सुन्दर रस–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शुद्ध पारा, हीरे की भस्म, मोती भस्म, सीसे की भस्म चाँदी भस्म, सोने की भस्म, श्वेत अभ्रक भस्म इन्हें अरिमेद के स्वरस से खरल करें। पुनः मूंगा की भस्म २ कर्ष, गन्धक का चूर्ण २ कर्ष मिलाकर असगन्ध के रस से खरल कर सबका मिश्रण कर एक मृग के सींग में भर कपर मिट्टी कर संपुट में रखें। सुखाकर हल्के आग की आँच से फूंक दें, पुनः इस प्रस्तुत भस्म में धव के फूल के रस तथा काढ़े की भावना दें, इसी तरह काकोली, मुलहठी, जटामांसी,बला, गुलसकरी, कंघी, कमल कन्द, हिंगोट, दाख, पीपल, बाँदा, सतावर, साल पर्णी, पृष्टिपर्णी, मुग्दपर्णी, मासपर्णी, फालसा, कसेरू, महुवा, केबांच प्रत्येक के रस की पृथक पृथक भावना देकर सुखाता जाय, पुनः इस चूर्ण में इलायची, तज, पत्रज, जटामाँसी, लवङ्ग, अगर, केशर, नागरमोथा, कस्तूरी, पीपल, सुगन्ध वाला और भीमसेनी कपूर एक-एक शाण चूर्ण कर मिलावें।

मात्रा—४ मा०।

गुण तथा प्रयोग—मिश्री ४ मा० आमला ४ मा० और बिदारी कन्द ४मा० इनका बारीक चूर्ण बनाएँ पुनः १० मा० घृत, १० मासे चूर्ण और ४ मा०, रस मिलाकर भक्षण करें, और ऊपर से ८ तो० गोदूध पान करें, इसके सेवन से अनेक स्त्रियों से रमण करने की शक्ति होजाती है। और वीर्य की हानि कभी भी नहीं होती। शा० ध० सं०।

कन्दल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपाल। खोपड़ा। (२) सोना। कनक। –धरणिः। (३) करसायल। कृष्णसार मृग। काला हिरन हे० च०। (४) गंडदेश। गाल। कनपटी। (५) एक प्रकार का केला।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शिलीन्ध्र पुष्प। खुमी। त्रिका०। (२) कमल बीज। कमलगट्टा। (३) कदली पुष्प। केले का फूल। (४) आदी। अदरक। रा० नि० व० ६। (५) सूरन। शूरण। भा० पू० १ भ० शा० व०। (६) गण्डस्थल। (७) अंकुर। नया अंखुआ, नवांकुर। (८) कोमल शाखा। नर्म डाल।

कन्दलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) माला कन्द। रा० नि० व० ७। (२) क्षुद्रकार वल्ली। कुडुहुज्झी। छोटी करेली। वै० निघ०।

कन्दली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, पुं० कन्दलिन्] (१) पद्मबीज। कमलगट्टा। रा० नि० व० १०। सु० सू० ३९ अ० पित्तशमन। (२) एक प्रकार का हिरन। (३) एक प्रकार का गुल्म। मे०। लत्रिक।

"आविर्भूतप्रथममुकुला कन्दलीश्चानुकच्छम्।
(मेघदूत)

दे० "कन्दली"। (४) केला। (५) एक प्रकार का पक्षी।

कन्दली कुसुम–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खुमी। शिलीन्ध्र। श० च०। (२) केले का फूल।

कन्द वर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कन्दों का समाहार कन्दजाति मात्र। जैसे—बिदारीकंद, शतावरी, मृणाल, बिस, कशेरू, शृङ्गाटक, (सिंघाड़ा), पिंडालु, मध्वालु, हस्त्यालु, काष्ठालु, शङ्खालु, रक्तालुक, इन्दीवर और उत्पल आदि कंदों के समूह को 'कन्दवर्ग' कहते हैं।

गुण—उक्त कंद रक्त पित्तहर, शीतल, मधुर, गुरु, बहुशुक्रकर और स्तन्यबर्द्धक होते हैं। सु० सू० ४६ अ०। अत्रि संहिता के अनुसार "शूरणः पिण्डपिण्डालू पलाण्डुर्गृञ्जनस्तथा, ताम्बूलपर्णकन्दः स्यात् हस्तिकन्दस्तथा परः। वराहकन्दः अप्यन्यः कन्दस्याङ्का इमेस्मृताः"। आदि कन्दो के समूह को कन्दवर्ग कहते हैं। अत्रि० १६ अ०।

कन्दवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूरन। ज़मीकन्द। रा० नि० व० ७। (२) कटु शूरण वै० निघ०। गला काटनेवाला सूरन।

कन्दबल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बाँझ खेखसा । बन ककोड़ा । बन्ध्या ककोंटकी । रा० नि० व० ३ । (२) भूमि कुष्माण्ड । पाताल कोंहड़ा, वै० निघ० ।

कन्द बिष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह पौधा जिसका कंद विषैला हो । वह पौधा जिसके कन्द में बिष हो । सुश्रुत के अनुसार कालकूट, वत्सनाभ, सर्षप पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक शृंगीबिष, प्रपौंडरीक, मूलक, हालाहल, महाबिष, और कर्कटक ये तेरह कन्दबिष हैं । इनमें वत्सनाभ चार प्रकार का होता है और मुस्तक दो प्रकार का तथा सर्षप छः प्रकार का और शेष सब एक-एक प्रकार के ही होते हैं । सु० कल्प० २ अ० ।

कन्दशाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह पौधा जिसका कंद तरकारी के काम आता है । शाक में व्यवहृत होनेवाला कन्द समस्त शाक में सूरन श्रेष्ठ होता है ।–भा० । दे० "कन्दवर्ग" ।

कन्द शालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाँझ खखसा वन्ध्या ककोंटकी । वै० निघ० ।

कन्दशूरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरन । ओल । जमीकंद । रा० नि० व० ७ ।

कन्द संज्ञ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कन्दरोग । योन्यर्श योनिकंद । त्रिका० । दे० 'कंदरोग" ।

कन्द सभव–वि० [सं० त्रि०] कन्द से उत्पन्न होनेवाला ।

कन्दसार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सूरन आदि कंद समूह ।

कन्द सूरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरन । नि० शि० रा० नि० ।

कन्दा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कन्द गुडूची कंद गिलोय । वै० निघ० । (२) बन्ध्या ककोंटकी । बांझ खेखसा । रा० नि० । नि० शि० ।
संज्ञा पुं० दे० "कन्दा" ।

कन्दाढय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार के कंद का नाम । धरणी कंद । रा० नि० व० ७ । वै० निघ० । (२) भूमि कुष्माण्ड । भूंई कोंहड़ा ।

कन्दाद्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धरणी नाम का कन्द ।

कन्दामृता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्द गुडूची । कन्द गिलोय । रा० नि० व० ३ ।

कन्दार्ह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरन । कन्द सूरन । रा० नि० व० ७ । जमीकन्द ।

कन्दाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिलकन्द । रा० नि० ।

कन्दालु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) त्रिपर्णीलता । त्रिपर्णिका । अमलोलवा । (२) कासालु । कसालू । (३) धरणीकन्द । रा० नि० व० ७ । भूमि कुष्माण्ड ।

कन्दिरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री] लजालू । छुईमुई । लज्जालुका । श० चि० ।

कन्दी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० कन्दिन्] कट्वशूरण, किनकिना ज़मीकंद । सूरन । रा० नि० व० ७ ।

कन्दु–संज्ञा पुं० [सं० पुं० स्त्री० । (१) स्वेदनपत्र । तवा । स्वेदनी । अ० हला० । (२) सुरा बनाने का बरतन । सुराकरण पात्र । (३) गण्डक । गेंडुआ । (४) करवीर । कनेर । रा० नि० । (५) लौहनिर्मित पाकपात्र । लोहे की कड़ाही । (६) भर्जनपात्र । भूंजने का बरतन ।

कन्दुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सुपारी । पुंगीफल । पूगफल । (२) अंकुर । कोंपल । वै० निघ० । (३) गोल तकिया । गल-तकिया । गेंडुआ । संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गेंद । गेण्डुक ।

कन्दुपक्व–वि० [सं० त्रि०] बिना पानी लगाये तवे पर पका हुआ । भुनी हुई चीज (चावल आदि) जलोपसेक बिना, केवल पात्र में अग्नि से भुना हुआ (तण्डुलादि बहुरी भुना हुआ दाना) । स्मृतिकार कहते हैं—

कंदुपक्वानि तैलानि पायसं दधि शाकवः ।
द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि ॥"
(कूर्मपुराण)

कन्दुभेदन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार की पिड़िका ।

वात दूषित होकर उत्पन्न कठिन पीत वर्ण की पीड़िका को कन्दुभेदन कहते हैं । यथा—

'वातेन कठिनं पीतं जायते कन्दु भेदनम् ।

चिकित्सा—पीपल वृक्ष की छाल जलाकर भस्म करें, पुनः उसमें मक्खन समान भाग मिश्रित

कर मर्दन करें। इसके प्रलेप से मुख, गुदा और कटि भाग में उत्पन्न पिटिका नष्ट होती है। बासव रा० २२ प्र० पृ० ३६१)

कन्दूरी–संज्ञा स्त्री० दे० "कंदूरी"।

कन्देक्षु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काशभेद। एक प्रकार का काँस का पौधा। वै० निघ०।

कन्दोट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सफेद कमल। शुक्लोत्पल। (२) कुमुद। कुई। कोकाबेली। बधोला। (३) नीलकमल। नीलोत्पल। श० र०।

कन्दोत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुई। कुमुद। कोकाबेली। त्रिका०। (२) सफेद कमल। श्वेत पद्म। श० र०।

कंदोत्थ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नीला कमल। नीलोत्पल। रा० नि० व० १०।

कंदोद्भवा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) कन्द-गुडूची। कंदगिलोय। रा० नि० व० ३। (२) क्षुद्र पाषाणभेदी। छोटा पथरचटा। रा० नि० व० ५।

कंदौषध–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आदी। अदरक। वै० निघ०। द्रव्य र०। नि० शि०।

कंध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मेघ। बादल। शब्दर०। (२) अभ्रक नामकी धातु। अबरख। के०। (३) कंधा। दे० "कंध"। (४) एक प्रकार का मोथा। मुस्तक भेद।

कंधर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मरसा। मारिष शाक। (२) मेघ। बादल। संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ऐसे दही से तैयार किया हुआ तक्र जिससे मलाई अलग न की गई हो। "ससारस्य दध्नः तक्रं कन्धरमिष्यते।" कु० टी० श्रीकण्ठः। (२) सस्नेह दधि। स्नेहयुक्त दही। सि० यो० षट्कन्धर तैल।

कंधर-वात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] असी प्रकार के वात रोगों में से एक। इसमें दाह, सूजन, तन्द्रा, निद्रा, ज्वर, तृष्णा, मतिभ्रम और गात्र में सूखापन होता है।

कंधरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का मान। वै० निघ०। (२) ग्रीवा। गरदन। रा० नि० व० १८।

कंधि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ग्रीवा। गरदन। हारा०। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] समुद्र। सागर।

कंधिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बन मूँग। मुद्गपर्णी। मुगवन।

कंधु, कंधुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) झड़-बेरी। भूमिबदर। (२) जंगली बेर। आरण्य बदर। वै० निघ०। बन कूल–बं०।

कन्न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मूर्च्छा। बेहोशी। श० मा०।

कन्ना–संज्ञा पुं० [सं० कण] चावल का कन। –[पं०] कञ्चरा। कनूरक।

कन्नाड़ी–[ते०] सावरशृंग।

कन्नी–संज्ञा पुं० [सं० स्कंध] (पेड़ोंका नया कल्ला। कोपल। [मल०] भँगरा।

कन्नूपल्ली–[ता०] खिरनी। राजादन।

क़न्फ़ज़्–[अ०] चूहा।

क़ंक़ख़र–[?] बर्दी की जड़। लु० क०। पटेरा। पटेरा की जड़। पटेरा से चटाइयाँ बुनते हैं। ख० अ०।

क़ंफ़ज़:–[अ०] मादा साही।

कन्बेगु चेट्टु–[ते०] विकंकत।

कन्बेर–[वम्ब०] श्वेत करवीर। सफेद कनेर।

कन्मः–[अ०] (१) मैल। (२) ख़राब अखरोट।

कन्यका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) घीकुवार। गृहकन्या। रा० नि० व० ५। (२) कन्या। बेटी। (३) बड़ी इलायची। रा० नि०, नि० शि०। (४) दृष्टि। नजर। (५) कुमारी। लड़की। स्मृति शास्त्र में दस वर्ष की अवस्था की कुमारी को "कन्यका" कहते हैं।

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी।
दशमे कन्यका प्रोक्ता अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥

अर्थ—आठ की गौरी, नौ की रोहिणी, दश की कन्यका और इससे ज्यादा की कन्या रजस्वला कहलाती है।

कन्यका चल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लड़की को धोखा देने का काम। प्रलोभन। फुसलावा।

कन्यकाजात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अविवाहिता स्त्री के गर्भ से उत्पन्न। कन्या समुद्भव।

कन्यसा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कनिष्ठांगुली। सबसे छोटी उंगली। कानी उंगली।

कन्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) धृत कुमारी । ग्वार । घीकार । रा० नि० व० ५ । (२) बड़ी इलायची । स्थूलैला । रा० नि० व० ६ । (३) बाराहीकन्द । वाराही नामक महा कन्द शाक । गेंठी । रा० नि० व० ७ । (४) कुमारी । दश वर्षीया लड़की । क्वारी लड़की। रा० नि० व० १८ (५) स्त्री जाति नारी । (६) एक महौषध । सुश्रुत के मत से कन्या में मयूर के पक्ष की भाँति १२ मनोज्ञ पत्र लगते हैं । इनमें सोने के रंग का पीला दूध निकलता है । और यह कन्द से उत्पन्न होता है । दे० "ओषधि" । (७) बन्ध्या कर्कोटकी । बाँझ खेखसा । रा० नि० व० ३ । (८) मुसब्बर । कन्या स्सोज़्वा । (९) बन्दाक । बाँदा । वंदा । बंका । (१०) कंद गिलोय । कंद गुडूची । वै० निघ० । (११) पुत्री । बेटी । (१२) मृदु । कोमल । (१३) नारी शाक । करेमू । (१४) अविवाहितास्त्री । वह स्त्री जिसकी शादी न हुई हो ।

कन्याका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कन्या । बेटी । (२) कुमारी । लड़की ।

कन्याकार–वि० [सं०] कन्या की तरह ।

कन्या-कुमारी-गड्डु–[ते०] सफेद मुसली । श्वेत मूसली ।

कन्या-गर्भ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अविवाहिता स्त्री का गर्भ ।

कन्या-गोपी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गौड़ पाला की जड़ ।

कन्याट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लड़कियों के पीछे-पीछे फिरनेवाला । लम्पट । कामुक । हारा० (२) आभ्यंतर गृह । अंतःपुर । ज़नानखाना।

कन्यात्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कन्या का भाव । विकारत ।

कन्या-दूषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अविवाहिता बालिका के साथ बलात्कार करने की क्रिया ।

कन्या भाव–संज्ञा पुं० सं० पुं०] कन्यात्व । कन्या वस्था । अक्षत योनि बालिका । विकारत ।

कन्यारासी–वि० [सं०] नपुंसक । नामर्द ।

कन्या हरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कन्या को निकाल लेजाने का कार्य । लड़की ले भगाने का काम ।

कन्यिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कन्यका । कन्या अविवाहिता लड़की ।

कन्यित–[बर०] गर्जन । गर्जन का पेड़ ।

कन्युष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बकरे की पूंछ वत्सपुच्छ । हारा० । (२) बाँझ खेखसा । वन्ध्या कर्कोटकी । बांझ ककोड़ा। वन्ध्या कर्कोटकी फल । भा० पू० १ भा० । (३) हस्तपुच्छ । कलाई के नीचे का हाथ ।

कन्यो-सी–[बर०] शतावर । सतावर । शतमूली ।

कन्योंसी–[बर०] गर्जन का पेड़ ।

कन्रात–[मारवाड़] वीरवृक्ष । वरतुली । खेरी । Mimosa cinerea

कन्रेगू–[ते०] विकंकत । कंघई । बेंचा ।

कन्रही–[मरा०] नकोली । बांदर भिरिस । बिधुआ (Dalbergia Lancoolaria, *Linn.*)

कन्वॉलव्युलस आर्वेंसिस–[ले० convolvulus arvensis *Linn*] हिरनपदी ।

कन्वालव्युलस टर्पीथम–[ले० convolvulus turpethum,] निसोथ । तुर्बुद । त्रिवृत् ।

कन्वालव्युलस निल–[ले० convolvulus nil] काला दाना ।

कन्वालव्युलस पर्गा–[ले० convolvulus purga] जलब । जलापा । जलाबा ।

कन्वालव्युलस पेनिक्युलेटा–[ले० convolvulus paniculata] पताल कोंहड़ा । भूमि कुष्माण्ड ।

कन्वालव्युलस प्लुरिकालिस–[ले० convolvulus pluricaulis] गोरखपान ।

कन्वालव्युलस बटेटास–[ले० convolvulus batatas] पिंडालू ।

कन्वालव्युलस स्कैमोनियां–[ले० convolvulus scammonia] सकमूनिया । महमूदा ।

कन्वालव्युलीन–[अं० convolvuline] एक ग्ल्युकोसाइड जो जलापा निर्यास (jalapae resina) में पाया जाता है । यह ईथर विलेय नहीं होता ।

कन्वैलेमेरीन–[अं० convallamarine] एक प्रकार का ग्ल्युकोसाइड (सार) जो कन्वै

लेरिया मैजेलिस से प्राप्त होताहै और डिजिटेलिस की तरह हृदय बलदायक (Cordiac tonic) है।

मात्रा—$\frac{1}{4}$ से १ ग्रेन।

कन्वैलेरिया मैजेलिस–[ले० convallaria majalis] एक ओषधि।

कन्वैलेरीन–[अं० convallarine] एक प्रकार का ग्लयुकोसाइड जो कन्वैलेरिया मैजेलिस नामक बेल से निकाला जाता है। यह तीव्र रेचक है।

मात्रा—३ से ४ ग्रेन तक।

कन्हेर–संज्ञा पुं० [वस्ब०, गु०] कनेर।

कन्हिल–[लेप०] चकलो। खौरा। सिद।

कन्हैया–संज्ञा पुं० [देश०, नेपा०] एक पहाड़ी पेड़ जो पूर्वी हिमालय पर आठ हजार फुट की ऊंचाई पर होता है। खरहर खेनन।

कप–वि० [सं० त्रि०] जलपायी, पानीपीनेवाला।

कपट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चीड़ा देवदारु। चीढ़। चीड़ा। गन्धवधु। चिड़ा। रा० नि० व० १।

कपट चीड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीढ़। चीड़ा नामक देवदारु। रा० नि० व० १२।

कपटा–संज्ञा पुं० [हिं० कपटना] एक प्रकार का कीड़ा जो धान के पौधों में लगता है।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ह्रस्व वृहती, छोटी कटाई। (२) लक्ष्मणा। नि० शि०।

कपटिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चीढ़। चीड़ा नामक गंध द्रव्य वा देवदारु। रा० नि० व० १२।

कपटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की माप। एक नाप। श० र० इसमें २ अञ्जलि परिमित द्रव्य आता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कपटना] (१) धान की फसल को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा। दे० "कपटा"। (२) एक रोग जो तमाखू के पौधों में लगकर उन्हें नष्ट कर डालता है। इसे "कोढ़ी" वा कौड़ा भी कहते हैं।

कपटेश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सफेद भटकटैया। श्वेत कण्टकारी। रा० नि० व० ४। लक्ष्मणा। नि० शि०। (२) ह्रस्व वृहती। वै० निघ०। छोटी कटाई।

कपड़गन्ध–संज्ञा स्त्री० कपड़ा जलने की गन्ध। वस्त्र का गन्ध।

कपड़छन, कपड़छान–संज्ञा पुं० [हिं० कपड़ा + छानना] किसी पिसे हुये चूर्ण को कपड़े में छानने का कार्य। मैदे की तरह बारीक करना। वस्त्रपूतकरण।

वि० कपड़े से छाना हुआ मैदे की तरह महीन।

कपड़मिट्टी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कपड़ा+मिट्टी] धातु वा ओषधि फूंकने के संपुट पर गीली मिट्टी के लेप के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया। कपड़ मिट्टी। कपड़ौटी। कपरौटी। मृत्पट। गिल हिकमत।

कपड़ौटी–संज्ञा स्त्री० दे० "कपड़मिट्टी"।

कपथाचक–[?] सुरंजान।

कपन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कंपन। कँपकपी। घुणादि कीट। घुन आदि कीट।

कपना–संज्ञा स्त्री० [वै० स्त्री०] कीट। कीड़ा।

कपरौटी–संज्ञा स्त्री० दे० "कपड़ौटी"।

कपर्दिका रस–संज्ञा पुं० [सं० पु०]

मृत या मूर्च्छित पारद को नर्मा के फूल के रस में एक दिन खरल कर कौड़ियों में भर कर उनका मुख बन्द कर देवें। फिर अन्धमूषा में रख गजपुट की आँच दें। जब स्वांग शीतल हो जाय, निकाल कर दूनी काली मिर्च मिलाकर बारीक पीसें।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण तथा प्रयोग—प्रातःकाल घी के साथ खाने से रक्त पित्त का नाश होता है। इसे नील कमल, मिश्री, कमल केशर के साथ खाकर ऊपर से चावल का पानी पीने से अत्यन्त लाभ होता है वृहत् रस रा० सु० रक्त पित्त चि०।

कपर्दिकाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ा बगला। काचाचपची।

कपर्दिकेश्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

पारा १ मा०, गंधक १ मा० दोनों की कज्जली कर एक बड़ी पीली कौड़ी में भरें। पुनः कौड़ी के मुँह को भूने सुहागे की पिट्ठी से बन्द कर सरवा

में रख कपड़ मिट्टी करके गजपुट को आँच दें। शीतल होने पर निकाले। इसे पीसकर रक्खें।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण—इसके सेवन से राजरोग, कास, श्वास, संग्रहणी और ज्वरातिसार रोग दूर होता है। अमृ० सा०।

कपर्द-कपर्द—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौड़ी। वराटक। रा० नि० व० १३। वै० निघ०। दे० "कौड़ी"।

कपर्दक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कपर्दिका] कौड़ी। वराटिका। रा० नि०। दे० "कौड़ी"।

कपर्दक रस—संज्ञा पुं० [सं० पुं०]

रक्त पित्त में प्रयुक्त एक नाम का योग—रस सिंदूर को १ दिन पर्यन्त कपास के फूलों के रस में घोटकर कौड़ियों के अन्दर भर दें और अंधमूसा में बन्द करके उस मूसा को किसी बरतन के अंदर बन्द करके पुट लगावे। जब स्वांग शीतल हो जाय निकाल कर दुगुनी मिर्च के साथ मिलाकर खूब महीन खरल करें।

मात्रा—१ रत्ती।

गुण तथा उपयोग विधि—इसे १ रत्ती लेकर घी के साथ खाकर उसके ऊपर गूलर के पके फलों को मिर्च और मिश्री के साथ घी में पकाकर खाने से दुस्साध्य रक्त पित्त का नाश होता है। रस र० रक्त पि० चि०।

कपर्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कौड़ी। वराटक। वै० निघ०।

कपर्दि—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोड़ी। कपर्दक। रा० नि० व० १३।

कपर्दिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कौड़ी। वराटिका।

कपला—[उड़ि०] कंटगुर।

कपाशि—[बं० (कापास)] कपास। कपिश।

कपसा—संज्ञा स्त्री० [सं० कपिश] (काबिस) एक चिकनी मिट्टी जिससे कुम्हार बरतन रँगते हैं। (२) गारा। लेई।

कपसी—[हिमालय] क्रिंक्रक।

कपसेठा—संज्ञा पुं० [हिं० कपास+एठा] [स्त्री० अल्पा० कपसेठी] कपास के सूखे हुये पेड़।

कपसेठी—संज्ञा स्त्री० दे० "कपसेठा"।

कपाट—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [स्त्री० अल्पा० कपाटी] किवाड़। पाट।

संस्कृत पर्य्या०—अरर (अ०), कवाटः, कपाटी, कवाटी, अररी, अररिः (अ० टी०), द्वारकपटकं, असारं (शब्दर०) द्वाराच्छादक।

संज्ञा [गु०] कंवो। ककड़ी।

कपाटवक्षा—वि० [सं० त्रि०] जिसका सीना किवाड़ की तरह हो। चौड़ी छातीवाला।

कपाटशयन—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीठ को जमीन पर और छाती को आकाश की ओर करके सोने की क्रिया। चित सोना। उत्तानशयन। (२) किवाड़ (लम्बे तख़्ते) पर सुलाने की क्रिया। सु० चि० ३ अ०।

कपाटसन्धिक—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सुश्रुतोक्त कर्ण रोग विशेष।

कपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] किवाड़। कपाट।

कपाटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चाकड़ा नामक एक प्रकार का देवदार। चाड़। रा० नि० व० १२।

एक प्रकार की सुगन्धित लकड़ी।

कपाण्डुक—[?] आँवला। मु० अ०।

कपार—संज्ञा पुं० दे० "कपाल"।

कपाल—संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सुश्रुत के अनुसार पाँच प्रकार की हड्डियों में से एक। इस प्रकार की (शरावाकृति) अस्थियाँ, घुटने, चूतड़, स्कन्ध (खभे), गंड (गाल), तालु, कनपटी और सिर में पाई जाती हैं। यथा—

"तेषां जानु नितंबांसगंड तालु शंखशिरःसु कपालानि।"—सु० शा० ५ अ०। दे० कङ्काल। (२) खोपड़ा। खोपड़ी। सिर की हड्डी। (Cranium)। (३) ललाट। मस्तक। मत्था। (४) मिट्टी के घड़े आदि का टुकड़ा। खपड़ा। खर्पर। ठीकरा। रा० नि० व० १८। भा० म० ४ अ० मु० रो० चि०। (५) काकादनी का पौधा। (६) तालमखाना। कोकिलाक्ष वृक्ष। (६) भड़भूजे का दाना भूनने का बर्तन। नाद। खपड़ी। भांड़। (८) अंडे के छिलके का आधा भाग। यथा—कुक्कुटाण्ड कपालानि सुमनो मुकुलानि च। (सु०) (९) कछुवे का खोपड़ा (१०) कोढ़ का एक भेद। दे० "कपालकुष्ठ"। (११) शिर। सिर।

संज्ञा पुं० [सं० कम्पिल्ल] कमीला । कबीला

कपालक–संज्ञा पुं० [सं०] सरहटी ।

कपालकुष्ठ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुश्रुत के अनुसार महाकुष्ठ का एक भेद । यह कृष्णकपाल (काली सिकता) की तरह वा काले ठीकरे के समान होता है । यथा—कृष्णकपालिका प्रकाशानि कपालकुष्ठानि ।–सु० नि० ५ अ० ।

भावप्रकाश में लिखा है—"कृष्णारुणंकपालाभं यद्वृत्तं परुषं तनु । कपालतोदबाहुल्यं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥"

कपाल गण्ड माला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का रोग ।

लक्षण—यह दुर्गन्धयुक्त श्वेत और रक्तवर्ण का उत्तमांग में होता है । यह कंठमाला का भेद है ।

चिकित्सा—(१ पृष्ठपर्णी मूल का कल्क बना तेल में पकाएँ । इसके उपयोग से लाभ होता है ।

(२) अम्लपर्णीमूल, रक्तगुञ्जामूल, और मिर्च समान भाग लेकर तेल में पकाएँ । इसके सेवन से भयंकर गण्डमाला का नाश होता है ।

(३) आक की जड़, मुंडी, पुन्नाग की जड़ इन्हें समान भाग लेकर सर्व तुल्य घृत और छाग मूत्र अर्ध भाग मिलाकर पाक करें ।

गुण—इसके प्रलेप से ३ प्रहर में गण्डमाला दूर होता है । तीन प्रहर के पश्चात् उष्णोदक से स्नान करे ।

पथ्य—गेहूँ, चावल का लवण रहित भोजनदें।

कपालनालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] टकुआ । तकुटो । टेकुआ । तकला । त्रिका० । तकवा । दृक ।

कपालभेदी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कदपाल–ता० ।

कपालरोग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिरोरोग । सिर की बीमारी ।

कपालसन्धि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] मस्तक की अस्थियों का मिलन स्थान । खोपड़ी की हड्डी का जोड़ ।

कपालस्फोट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मस्तक वा खोपड़े का फोड़ा ।

कपालास्त्र–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का अस्त्र । ढाल । चर्म ।

कपालास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) सुश्रुत के अनुसार शरीर की पाँच प्रकार की हड्डियों में से एक । इस प्रकार की हड्डियाँ खोपड़ी की हड्डी की तरह चिपटी होती हैं । दे० "कपाल" (१) (२) खोपड़ी की हड्डी ।

कपालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दाँतोंका एक रोग जिसमें दाँत टूटने लगते हैं । यह दंत शर्करा रोग की ही एक अवस्था है जिसमें मैल जमने के कारण दाँतफूटे घड़े की ठीकरियों की तरह हो जाते हैं । यहसदा दाँतों का नाश करनेवाली है । सुश्रुत केअनुसार इसमें जमी हुई शर्करा के साथ दाँतों के छिलके गिरते हैं । यथा—

"दलंति दंतवल्कानि यदा शर्करया सह ।
ज्ञेया कपालिका सैव दशनानां विनाशनी॥

—सु० नि० १६ अ० ।

"कपालेष्विवदीर्यंत्सुदन्तानां सैव शर्करा ।
कपालिकेति विज्ञेया सदा दन्त विनाशनी ॥

मा० नि० ।

(२) खोपड़ी । शवकर्परिका । सु० चि० १ अ० । (३) घड़े के नीचे वा ऊपर का भाग । खपड़ा । ठीकरा । खर्पर । (४) कर्परकूट । (Olecranon process.) ।

कपालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रात । रात्रि । रजनी । निशा । यामिनी ।

कपाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वायविडंग । रा० नि० व० ६ । (२) दरवाजे के ऊपर लगी हुई लकड़ी । वि० [सं० त्रि०] कपालविशिष्ट । खोपड़ीवाला ।

कपास–सं० स्त्री० [सं० कर्पास] [वि० कपासी] एक कार्पास वर्गीय पौधा जिसके टेंट से रुई निकलती है । इसके कई भेद हैं । किसी-किसी के पेड़ ऊंचे और बड़े होते हैं, किसी का झाड़ होता है । किसी का पौधा छोटा होता है, कोई सदाबहार होता है । और कितने की काश्त प्रतिवर्ष की जाती है । इसके पत्ते भी भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं । और फूल भी किसी का लाल, किसी का, पीला, तथा किसी का सफेद होता है । फूलों के गिरने पर उनमें डेंढ़ लगते हैं, जिनमें रुई होती है । डेंढ़ों के आकार और रंग भिन्न २ होते हैं । भीतर की

रुई अधिकतर सफेद होती है। पर किसी-किसी के भीतर की रुई कुछ लाल और मटमैली भी होती है। और किसी-किसी की अन्य रंग की होती है। किसी कपास की रुई चिकनी और मुलायम और किसी की खुरखुरी होती है। रुई के बीच में जो बीज निकलते हैं वे बिनौले कहलाते हैं।

कपास के भेद—

कपास की बहुत सी जातियाँ हैं। जैसे—नरमा, नंदन, हिरगुनी, कील, बरदी, कटेली, नदम रोजी, कुपटा, तेलपट्टी, खानपुरी इत्यादि। वनस्पति शास्त्र वेत्ताओं ने कपास की ऐसी चौबीस उपजातियों का उल्लेख किया है, जिनकी काश्त होती है। परन्तु इसकी उक्त उपजाति-वृद्धि का मुख्य कारण केवल एक स्थान से दूसरे स्थान की मिट्टी और जलवायु की विभिन्नता मात्र है, जिससे उनमें यह सूक्ष्म भेद उत्पन्न हो गया है। इन्हें निम्नप्रधान उपजातियों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) कपास वा मनवाँ (Gossypium Herbacrum)

(२) देवकपास वा नरमा (Gossypium Arboreum)

(३) ब्राजील कपास (Gossypium Accuminatum)

(४) बर्बदी या अमेरिकन कपास (Gossypium Barba dense)

इन्हें देशी और विदेशी इन दो भागों में सुगमतापूर्वक बांट सकते हैं, जैसे—(क) देशी उपजातीय कपास। (१) कपास। Indian Cotton (Gossypium Herbaceum) और (२) देव कपास नरमा Religions Cotton (Gossypium Arboreum, *Linn.*)

देशी कपास आधोलिखित वर्गों में भी बाँटा जा सकता है। (१) कृषि कपास—खेतों में होनेवाली और (२) उद्यान कपास जो वगीचों घरों और देवालयों में भी होती है। इसे नरमा वा देवकपास भी कहते हैं।

कृषि कपास वा मनवाँ सबके परिचय का २ से ३ हाथ तक ऊंचा और केवल वर्षायु होता है। भारतवर्ष में बहुल परिमाण में इसकी काश्त होती है। इसका विस्तृत विवरण आगे कपास शब्द के अंतर्गत होगा। देवकपास लगभग १२ से १५ फुट ऊंचा बड़ा वृक्ष सा होता है और कई वर्षों तक रहता है।

देवकपास की ही एक जाति वन कपास—अरण्यकार्पासी वा भारद्वाजी—(Thespasia Lampas; *Dalz.*) है जिसका पुष फैलने वाला या वृक्षों के सहारे ऊपर चढ़नेवाला होता है खानदेश और सिंधप्रांतमें वनकपास बहुत होता है। काला कपास अर्थात् कालांजनी (Gossypium Nigrum) भी वनकपास की ही एक उपजाति है।

वनकपास के पत्ते छोटे २ फूल १॥ इंच लम्बे ताजी अवस्था में पीतवर्ण के, किंतु सूखने पर गुलाबी होजाते हैं इसकी कपास कुछ पिलाई लिए, हुये होती है।

वन कपास का बीज कुछ विशेष लम्बा और काले रंग का होता है। काले कपास की भी ये दो जातियां होती हैं। १—काला कपास और (२) बेणी। काले कपास के बीज वन-कपास के बीजों की तरह, पर काले होते हैं। इसकी पत्ती बेणी से छोटी और चोटी की ओर तीन खण्डों में विभक्त होती है। इसके फूल कुछ तॉबड़े रंग के होते हैं। इसका कपास मध्यम श्रेणी का होता है। बेणी का बीज लंबाई लिये बेणी के समान रहता है। इसके पत्ते काले कपास के पत्तों से बड़े होते हैं। और उसके पांच भाग ऐसे होते हैं कि पांच चोटी से जान पड़ते हैं। इसका फूल पिलाई लिये होता है। इसका फूल बत्ती बनाने के लिए अच्छा होता है। किंतु सूत कातने के लिये उत्तम नहीं होता। देव कपास के पत्ते काले कपास के पत्तों से छोटे और उनकी चोटी की ओर पांच भाग होतेहैं। इसके बीज हरापन लिये और फूल ललाई लिये रहते हैं। इसका धागा लम्बा और मज़बूत होता है। इसकी रुई सबसे अच्छी समझी जाती है।

(ख) बिदेशी उपजातीय कपास

(३) ब्राजीलीय कपास Brazil Cotton Gossypium Accumintum

(४) बर्बदी वा अमेरिकन कपास American Cotton Gossypium Barbadense, *Linn.*

इतिहास—कपास का आदि प्रभव स्थान भारतवर्ष ही है, यहाँ यह प्रागैतिहासिक काल से ही वन्य अवस्था में पाई जाती है। यद्यपि यह अमरीका में भी जंगली होती है। किन्तु पुरानी दुनियां के समस्त देशों में भारतवर्ष से ही इसका प्रसार हुआ। सिकंदर महान जब सतलज तक आया था, तब उसके साथी कपास का पौधा देख कर बहुत आश्चर्य चकित हुये थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में इसका नाम 'ऊर्ण वृक्ष' लिखा है और उसका यह अर्थ लगाया है कि युनान में जो ऊन भेड़ों की पीठ पर उत्पन्न होता है, वह हिन्दुस्तान में पेड़ों पर फलता है। वेचारों ने कदाचित् प्रथम रुई कभी नहीं देखी थी, केवल पोस्तीन और ऊर्ण वस्त्र धारण करते थे। अस्तु, पश्चात् कालीन युनानी लेखकों ने इस बात का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। और इसे बुस्सूस संज्ञा से अभिहित किया है। सावफरिस्तुस ने एरियोफोरा नाम से और रोमनिवासी प्लाइनी ने गासिम्पिनस वा गासीपियून नाम से इसका उल्लेख किया है। आरव्य भाषा में रुई को कुत्तुन और .कुर्फुस कहते हैं। इनमें से .कुर्फुस स्पष्टतया संस्कृत 'कर्पास' से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। कपास भारतवर्ष से ही प्रथम फ़ारस फिर अरब और मिश्र आदि देशों में पहुँचा जहाँ से यह पश्चिम अफरीका और सिरिया एशिया माइनर, लेवांट और दक्षिण युरुप के कतिपय भागों में प्रसारित हो गया। वहाँ इसे मूर लोग ले गये, जिन्होंने ग्यारहवीं शताब्दी में वहाँ इसकी खेती की। अब यह प्रायः संसार के सभी भागों में कुछ न कुछ होती है।

कपास वा मनवाँ

पर्य्या०—कार्पासी, सारिणी, चव्या, स्थूला, पिचु, बादर, बदरी, गुणासू, तुण्डिकेरिका, मरुद्भवा, समुद्रांता (रा० नि०) कार्पासी, तुण्डकेरी, समुद्रान्ता (भा०), वदरा, तुण्डिकेरी, समुद्रान्ता (अ०), पट्ट, वादरा, सूत्रपुष्पा, वदरी, कार्पासिका (शब्दर०), कार्पासी (भ०), कर्पास (अ० टी०) कार्पासआच्छादनफला, पथ्या, अनग्ना, पटप्रदा, भद्रा, वन्ध्यफला, कर्पास, वरद्रुम स्थूल, पिचव्या, वादर, (केयदेव), बदरी, स्थलपिचुर (द्रव्य र०), आच्छादनी, सोमवल्ली, चक्रिका, मेनिक (गण नि०) वामनी, वासनी, विषघ्नी, महौजसी, पटतूल, खापिणी, चव्या, तुलागुड़, तुण्डकेरिका, कार्पास, कार्पासक, कार्पासकी, कर्पास, कर्पासक, कर्पासी, पिचुल—सं०: कपास, कपास का पेड़, मनवाँ, रुई का पेड़—हिं०। कपास का झाड़—द०। कर्पाश गाछ, शूतेर गाछ, तुला गाछ, कापास गाछ—बं०। नबातुल् कुत्न्, शज्रतुल् कुत्न्—अ०। दरख़्ते पुंबः—फ़ा०। गासीपियम् हर्बेसियम् Gossypium Herbaceum, *Linn.* गा० इंडिकम् G. Indicum, *Linn.* गासीपियम् ष्टाकसियाई Gossypium Stocksii, *Mast.*—ले०। इंडियन काटन प्लांट Indian Cotton plant, काटन ट्री Cotton tree.—अं०। काटनीरडी इण्डी Cotonnier de Inde, काटोनीर Cotonnier Herbace—फ्रां०। इंडिश्चे-बाम Indische baum वूलेनष्टाडी, Wollen Staude, *Baum wollp flanze*—जर०। परुत्ति चेडि—ता०। पत्ति चेट्टु, कार्पासमु—ते०। परित्तिच्-चेटि—मल०। हत्ति-गिडा—कना०। कापूसा-च-झाड़—मरा०। रू-नु-झाड, कपास-नु-झाड—गु०। कपुगहा—सिंगाली। वा-विङ्—बर०।

गुण प्रकाशिका संज्ञा—'गुणासू' (सूत्रोत्पादक)

कार्पासी वर्ग

(*N. O. Malvaceœ.*)

उत्पत्ति-स्थान—इस जाति की कपास संसार के उष्ण प्रधान प्रदेशों तथा समशीतोष्ण कटिबंध स्थित सर्वाधिक उष्ण भागों में उपजती है और प्रायः समग्र भारतभूमि में इसकी कास्त होती है। इस उपजाति की बहुत सी नस्लें हैं, जो चीन, मलाया और मिश्र में पाई गई हैं। नानकिन

कपास भी जिसकी काश्त विशेषतः चीन में होती है और अब भारतवर्ष के विविध भागों में होने लगी है, इसी की एक उपजाति है।

वर्णन--यह एक वर्षजीवी पौधा है, जिसकीखेती प्रति वर्ष होती है, किंतु जब इसे बढ़ने दिया जाता है, तब यह बहुवर्षी हो जाता है। इसका पौधा ४ से ८ फुट ऊँचा होता है और यह जिस विशिष्ट नस्ल का होता है, उसी के अनुसार ४ से ८ मास के भीतर इसका बीज अंकुरित होता और परिपक्व होता है। प्रकांड सरल होता है जिसमें १० से १२ लघु शाखाएँ होती हैं। प्रकांड के लघुतर भाग, शाखाएँ, पत्र, पत्रवृंत और पुष्प रोमावृत्त, वृन्ताधार एवं ऊर्द्ध्व भाग रंजित, कतिपय कुलों में हलका लाल, पत्रवृंत दीर्घ एवं हृष्टरोमावृत्त, पत्र-प्रायः एरंड-पत्र तुल्य, केवल तदपेक्षा क्षुद्रतर, गाढ़ हरित वर्ण का होता है, पत्रवृन्त दीर्घ, पत्र-प्रांत पंच विभाग युक्त, विभाग परिविस्तृत वृत्ताकार और किसी किसी नस्लमें किंचित् तीक्ष्णाग्र होताहै अर्द्ध भालाकार या न्यून कोणीय-तीक्ष्णाग्र (Stipules) युक्त, (Hooked) और भालाकार, पुष्प चमकीला पीत वर्ण का पंजा (Claw) के समीप बैंगनी चिन्ह युक्त, शाखांत की ओर एकांतिक और वृत्तीय होता है। आधार स्थित वाह्य कुण्ड वा पौष्पिक पत्र-खंड हृदयाकार धार करातदंतित और कभी कभी समान होती है। ढेंढ (Capsules) अंडाकृति, नुकीला और तीन वा चार कोष युक्त होता है। बीज स्वतंत्र श्वेत रोमावृत्त और कपास वा रुई से आवेष्टित होता है। बीज में एक प्रकार का तेल होता है। इसकी जड़ ऊपर से पीताभ एवं भीतर उज्वल श्वेत वर्ण की होती है। उक्त जड़ की शुष्क छाल औषध में काम आती है। इसकी पतली पतली लचीली पट्टियाँ या बल खाये हुये टुकड़े होते हैं। इनकी बाहरी सतह पर एक पीताभ भूरे रंग की झिल्ली होती है। यह निर्गंध और स्वाद में किंचित् कटु एवं कषाय होती है।

रासायनिक संघटन--कर्पास-मूल-त्वक्--में श्वेतसार (Starch) और २८ प्रतिशत क्रोमोजन (Chromogen) होता है। इसमें द्राक्षोज (Glucose), एक पीतराल, एक स्थिर तैल, कुछ टैनीन और ६% भस्म होती है। (Materia Medica of India R.N. Khory, *Part II. P, 74*) बीज--में १० से २६% तक एक प्रकार का तेल, एल्ब्युमिनाइड्स तथा १८ से २५% तक अन्य नत्रजनीय पदार्थ और १५ से २५ सैकड़ा तक काष्टीन (Lignin) होता है। एक प्रकार का पीत वा वर्णरहित अम्ल-राल, डाइहाइड्राक्सबेंज़ोइक एसिड और फेनोल ये कर्पास-मूल-त्वक् के प्रधान संयोजकतत्व हैं। फूलमें एक रंजक पदार्थ और गासिपेटिन (Gossypetin) नामक ग्ल्युकोसाइड होता है। इसको जब काष्टिक पोटाश के साथ सम्मिलित करते हैं, तब यह इन दो स्फटिकीय पदार्थों में वियोजित हो जाता है--(१) फ्लोरोग्ल्युसिनोल (Phloroglucinol) और (२) प्रोटोकैटेक्युइक एसिड (Protocatechuic acid)।

औषधार्थ व्यवहार--वल्कल, पत्र, फूल, फल, बीज, मूलत्वक् और तैल।

गुणधर्म तथा उपयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार--

कार्पासी मधुरा शीता स्तन्या पित्त कफापहा।
तृष्णा दाह श्रम भ्रांति मूर्च्छा हृद्बल कारिणी॥
(राजनिघण्टुः)

कपास--मधुर, शीतल; स्तन्य जनन (स्तनों में दूध बढ़ानेवाला), पित्त तथा कफ नाशक है और इसके सेवन से तृषा, दाह, श्रम, भ्रांति और मूर्च्छा का नाश होता है और यह हृदय को बल प्रदान करती है।

कार्पासकी लघुः कोष्णा मधुरा वातनाशनी।
तृष्णादाहारतिश्रान्ति भ्रान्ति मूर्च्छाप्रणाशनी॥
तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्र वर्द्धनम्।
तत्कर्णपीड़कानाद पूयास्राव विनाशनम्॥
तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरुः॥
(भावप्रकाश)

कपास--हलकी, किंचित् उष्ण, मधुर और वातनाशक है। तथा इसके सेवन करने से तृषा

दाह, चित्त की बेकली, परिश्रम, भ्रम और मूर्च्छा इनका नाश होता है। कपास की पत्ती—वायुनाशक मूत्रवर्द्धक और रक्त जनक है। इसके सेवन से कान का घाव, कर्णनाद और कान से पीव बहना आराम होते हैं। कपास के बीज स्तनों में दूध प्रगट करते हैं एवं वृष्य, स्निग्ध कफजनक और भारी है।

तद्बीजं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं।
(केयदेव निघण्टु)

कपास के बीज—कफकारक, स्निग्ध और वृष्य हैं।

योग रत्नाकर वृहन्निघण्टु रत्नाकर और सुबोध वैद्यक प्रभृति आयुर्वेदीय ग्रंथों के अनुसार इसकी जड़ और पत्ते का रस सर्पदंश में उपयोगी माना जाता है। परन्तु काय और महस्कर के मतानुसार यह साँप और बिच्छू के बिष में निरुपयोगी है।

कपास के वाह्यांतर प्रयोग

कपास की पत्ती—

पर्य्या०—कार्पासीपत्र। कपास की कोंपल। कपासकेकोप्लियान-द०। Young shoots or leaves –अं०।

गुणधर्म

कपास के पत्ते स्नेहन और मूत्रल हैं तथा अतिसार, आमवात, प्रदर, सर्पदंश, मूत्रकृच्छ्रादि को नष्ट करते हैं।

आमयिक प्रयोग

आयुर्वेद में—

अपस्मार में—कार्पास पत्र रस—एक मास तक नीबू का रस, कपास की पत्ती का रस, नीम की पत्ती का रस इनमें काली मिर्च के चूर्ण का प्रक्षेप देकर सेवन करे। यथा—

"एक मासावधि निम्बु रसेन कार्पास पत्र निम्बपत्र रसः समरिचः पेयः।"

(२) श्वेत रक्तप्रदर में कार्पास पत्र स्वरस—कपास की पत्ती के स्वरस में शर्करा मिली हुई वंगभस्म सेवन करें। यथा—

"❀ ❀ कार्पास ❀ ❀ पत्र रसे ❀ ससितं बङ्गभस्म देयम्।" (बस० रा० पृ० ४२०)

प्रसूता स्त्री के स्तन में पर्य्याप्त दुग्ध न होने पर कपास की पत्तीका स्वरस सेवन कराना चाहिये।

वात रोगी की स्फीत संधियों पर कपास की पत्ती पीसकर तैल मिला लेप करें। (Materia Medica of India—R. N. Khory Part II. page 96.)

कपास के कोमल पत्तों का स्वरस आमातिसार की उत्कृष्ट औषधि मानी जाती है। आमवात या वातरक्त जन्य संधि शोथ पर पत्तों को पीसकर तथा तैल में सिद्धकर बाँधते हैं। गर्भाशयिक शूल में इसकी कोमल पत्तियों के काढ़े में कटिस्नान कराने से उपकार होता है। ज्वर के पश्चात् त्वचा की रूक्षता या खुजली दूर करने के लिये देव कपास (अथवा साधारण कपास) के पत्तों के रस में कालीजीरी Vernonia Anthelmistica) पीसकर, शरीर पर उबटन सा लगाते हैं। (इसके लगाने के तीन घंटा बाद स्नान करना चाहिये।) मूत्रकृच्छ्र निवारणार्थ पुडुकोट में इसके पत्तों को पीसकर दूध के साथ पिलाते हैं। देवकपास के पत्ते इस कार्य में शीघ्र गुणकारी है। फा० इं० १ भ० पृ० २२५।

कपास के पत्ते का काढ़ा बल्य है और ज्वरातिसार में इसका उपयोग होता है। (पेट्किन्सन)

आमातिसार में इसके कोमल पत्तों का ताज़ा स्वरस उपयोगी है। अर्श, मूत्रकृच्छ्र एवं अश्मरी रोग में इसे २ से ३ तोले की मात्रा में गोदुग्ध के साथ देते हैं। आंत्र शैथिल्य एवं अतिसार में इसके कोमल पत्तों का शीतकषाय (Infusion) वा चाय प्रस्तुत कर व्यवहार करते हैं। गुद-व्याधि-विशेष (Tenesmus) होने पर गुदा के लिए वाष्प स्वेद प्रस्तुत करने में इसका उपयोग होता है। गर्भाशयिक शूल में इसके कोमल पत्तों के काढ़े में कटि स्नान करने से उपकार होता है। इसके पत्तों की पुल्टिस बाँधने से ग्रंथि या व्रण शीघ्र पकते हैं। वातरक्त जन्य संधि शोथ पर तेल के साथ इसका प्लास्टर काम में आता

है। बिच्छू के दंश पर इसकी पत्ती और राई एकत्र पीसकर लेप करें। (इं० मे० मे० पृ० ४०३)

इसके पत्ते सेंककर बाँधने से दर्द आराम होता है। इसके पत्तों का स्वरस सेब के शर्बत के साथ दस्त बंद करताहै, वातरक्त वानिकरिस (Gont) पर लगाने से उपकार होता है। खुरफे के साग के साथ गठिया को लाभ पहुँचाता है। इसके पत्तों के काढ़े में बैठने से योषापस्मार में लाभ होता है इससे वेदना शांत होती है। इसके पत्तों का चाय पिलाने से दस्त बंद होता है। यदि क्षण-क्षण पर मलोत्सर्ग की प्रवृत्ति बनी रहती हो, तो इसके पत्तों के काढ़े से गुदा में भपारा देने से लाभ होता है। इसके पत्तों का रस पिलाने से आंव के दस्त बंद होते हैं। पत्तों को तेल से चुपड़ कर बांधने से संधिशोथ मिटता है। इसके पत्तों को दही में पीसकर लेप करने से नेत्र शूल नष्ट होता है। इसके और पाखर के पत्तों के खालिस रस में मधु सम्मिलित कर पिलाने से दस्त बन्द होते हैं इसके पत्तों को तिल तैल में पकाकर लेप करने से वायुजनित शूल निवृत होता है। (ख० अ०)

प्रदर पर पत्तों का रस प्रातः सायं उचित मात्रा में पिलावे।

गर्भाशय की पीड़ा निवारणार्थ कोमल पत्ते और जड़ को एकत्र कूट तथा जल में उबाल, टब में भरकर कटि-स्नान करें।

इसकी पत्ती छाछ में पकाकर आँख के ऊपर बाँधने से उपकार होता है। (म० मु०)

शिश्वतिसार निवारणार्थ इसकी पत्तियों का स्वरस सेवनीय है।

संधिशोथ जन्य शूल पर गुलरोगन के साथ इसकी पत्ती का लेप गुणकारी होता है।

इसकी पत्ती का बारीक चूर्ण अवचूर्णित करने से क्षत जात रक्तस्राव बंद होता है।

कपास के पञ्चाङ्ग का प्रलेप आमशयबलप्रद और बिलायक है। (ब्रु० मु०)

कपास के पत्तों का रस, चावलों के धोवन के साथ, पीने से प्रदर रोग आराम होजाता है।

कपास के पत्ते और फूल आधपाव लाकर, एक हाँड़ी में एक सेर पानी के साथ जोश दो। जब एक पाव जल शेष रह जाय, उसमें चार तोले गुड़ मिलाकर छान लो और पीओ। इस तरह करने से मासिक धर्म होने लगेगा। चि० चं० ४ भा०।

फूल

पर्य्या०—कार्पास पुष्प, कपास का फूल-हिं०।

गुणधर्म

हकीम इसे गरम तर लिखते हैं।

आमयिक प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

चरक—कुष्ठ पर कार्पासी त्वक् एवं पुष्प—

वाग्भट—चतुर्विध कुष्ठ पर कार्पासी पुष्प और कपास के फूल को सिल पर पीसकर लेप करने से चारों प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं। यथा—

"❀ ❀ पुष्पं कार्पास्या ❀ ❀ ।
पिष्टा ❀ चतुर्विधः कुष्ठहा लेपः॥"
(चि० १६ अ०)

नव्यमत

डीमक और खोरी—(उत्तेजक एवं मनोल्लासकारी होने के कारण) कपास के फूल का शर्बत (Syrup) विमर्शात्मक मनोविकार (Hypochondriasis) में सेवनीय है। अग्निदग्ध किंवा अत्युष्ण तरल वस्तु द्वारा दग्ध अंग पर इसके फूल का प्रलेप हितकर है। फा० इं० १ भा० पृ० २२५। मे० मे० इं०, २ य खंड, १६ पृ०। इं० मे० मे० ४०४ पृ०। ख० अ०।

नादकर्णी—इसके फूल और बिनौले का काढ़ा धतूरे के विष का अगद है। इं० मे० मे० ४०४ पृ०।

एक तोला इसके फूलों की भस्म फाँकाने से नियत मात्रा से अधिक रजःस्राव का निवारण होता है। ख० अ०।

नेत्राभिष्यन्द पर फूलों की पखुरियों को गायके दूध में पीसकर, ऊपर से बाँधे और लेप करें।

इसके फूलों का शरबत पिलाने से सभी प्रकार के उन्माद आराम होते हैं और चित्त प्रफुल्लित होता है।

कपास की ढेंढ़

पर्य्या०—कर्पासफलं-सं०। कपास के ढेंढ़, कपास की ढोंढ़, बोंड-हिं०। कपास के पिंडे-द०। Young or tender Cotton fruit or capsules-अं०। परुत्ति-पिञ्जि-ता०। पत्ति-पेंडे-ते०।

गुणधर्म

कपास के कच्चे फल—ढेंढ़ और कोमल पल्लव स्नेहन (Demulcent), मूत्रल और संकोचक है। इसकी मात्रा मुट्ठी भर है। बिनौले के अन्तर्गत कथित पेय के सदृश ही इससे भी एक प्रकार का पेय प्रस्तुत कर उपयोग किया जाता है। (मे० मे० मै०-मो० श० पृ० ५२)

यह मूत्रवर्द्धक, वात. रक्तविकार, कर्णनाद, कर्णान्तर्गत व्रण, पूतिकर्ण, अतिसारादि नाशकहै।

इसकी ढेंढ़ (Carpel) संकोचक है। (खोरी)

आमयिक प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

सुश्रुत—कर्णस्राव में कार्पासी फल—सर्जक त्वक् चूर्ण और मधु संयुक्त कपास के फल (डल्वण के मत से अरण्यकार्पास के फल) का रस कानमें डालने से कर्णस्राव प्रशमित होता है। यथा—

सर्ज्जत्वक् चूर्ण संयुक्तः कार्पासी फलजो रसः।
यःजितो मधुना वापि कर्णस्रावे प्रशस्यते॥
(उ० २१ अ०)

नव्यमत

मोहीदीन शरीफ़—आमातिसार और पूयमेह के किसी-किसी रोगी पर इसकी कच्ची ढेंढ़ और कोमल पल्लव का उत्तम प्रभाव होते देखा गया है। (मे० मे० मै० पृ० ५२)

खोरी—कपास की कच्ची ढेंढ़ के भीतर (उचित मात्रा में) अहिफेन और जायफल भरकर इसका (निर्धूम अग्नि में) पुट पाक विधानानुसार पाक करके चूर्ण करले और मात्रानुसार आमातिसार रोग में व्यवहार करें। (मे० मे० इं० भ० २, पृ० ६६)

इसके फूल और फल (ढेंढ़) पकाकर पीने से रजः प्रवर्तन होता और गर्भपात होता है। (ख० अ०)

व्रण की सड़ान को रोकने के लिये फलों को कूट पीस एवं पुल्टिस बना लेप करें।

कर्णान्तर्गत व्रण एवं कर्णनाद पर फलों को कूट पीसकर तिल तेल अथवा सरसों के तेल में सिद्ध कर तेल को अच्छी तरह डालकर शीशी में भर रखें। इसकी ४-५ बूँद रोज दोबार कान में छोड़ना चाहिये।

नादकर्णी—आमातिसार निवारणार्थ इसका कच्चा फल दिया जाता है। इं० मे० मे० ४०४ पृ०।

रुई वा कपास

पर्य्या०—कार्पास तूलक, पिचुतुल, पिचुतूल, पिचु तूल, तूला, कार्पास, कर्पास, पिचुतूल। -सं०। रुई, कपास-हिं०, द०। रुई, फूटा, कर्पास, कपास-बं०। गासिपियम् Gossypium -ले०। काटन Cotton, काटन वूल Cotton wool-अं०। कोटून Cotton-फ्रां०। बमवोल्ली Bamwolle-जर०। क़ुत्न्, क़ुतुन, क़ुर्फ़ुस-अ०। पुंबः, पश्म पुम्बः, पंबः-फ़ा०। रूई-उ०। परुत्ति-ता०। पत्ति, प्रत्ति-ते०। परुत्ति-मल०। हत्ति-कना०। कापूस-मरा०। रु, रू-गु०। कपु-सिंगा०। गूँ, गों, वाबर०।

संज्ञा-निर्णायिनी टिप्पणी—किसी किसी बंगला और संस्कृत कोषों में 'कर्पास' वा 'कार्पास' और 'तूल' वा 'तूला' पर्य्याय रूप से व्यवहार किये गये हैं। पर प्रथमोक्त संज्ञाद्वय का उपयोग साधारण कपास की रुई के लिये और शेष दोनों संज्ञाओं का सेमल की रुई के अर्थ में प्रयोग करना चाहिये। मुसल्लमान चिकित्सकों ने 'क़ुत्न्' और 'क़ुर्फ़ुस' नाम से इसका उल्लेख किया है। इनमें से क़ुर्फ़ुस संस्कृत कर्पास से ही अरबीकृत शब्द है।

रासायनिक संघटन—कपास वा रुई किंचित् रूपांतर प्राप्त काष्ठ-तंतु ही है और कज्जल, उदजन तथा ओषजन इसके मुख्य उपादान हैं। इनकी ठीक आनुपातिक मात्रा अभी निश्चित नहीं हुई है। पर अपने सभी आवश्यक रासायनिक गुणों में यह साधारण काष्ठ-तन्तुओं के समान होती है।

उत्तम जाति के तंतु अत्यंत महीन और रेशम की तरह मुलायम होते हैं और ये ही निकृष्ट जाति का होने पर कड़े और खुरखुरे होते हैं।

रासायनिक गुण–कपासका विशेषगुरुत्व १.१८८ है। यह स्वाद रहित और निर्गंध होता है। कर्पास तंतु जल, सुरासार, ईथर, स्थिर एवं अस्थिर तैल और वानस्पतीय तेजाबों में अविलेय है। जल मिश्रित (Alkoline leys) का कपास पर कोई व्यक्त प्रभाव नज़र नहीं आता, परन्तु जब ये अति तीक्ष्ण होते हैं और उन्हें काफी उत्ताप पहुँचाया जाता है तब ये उसे विलीनकर देते हैं। नाइट्रिक एसिड और सल्फ्युरिक एसिड (गंधकाम्ल) के साथ रुई के योग से एक प्रकार का विस्फोटक द्रव्य प्रस्तुत होता है, जिसे 'गन काटन' (Gun Cotton) वा "पाइराक्सिलीन (Pyroxyline) कहते हैं। यह पुनः कोलोडियन" (Collodion) बनाने के काम आता है। वि० दे० "पाइराक्सिलीनम्" तथा कोलोडियम्"।

कतिपय पार्थिव पदार्थों, विशेषतः (Alumina) के लिये कपास में तीव्र मुमुक्षा पाई जाती है। इसीलिये रुई पर पक्का रंग चढ़ाने के लिये इसका उपयोग होता है। लोहे से रुई पर पीला दाग पड़ जाता है और यदि उसे क्षार वा साबुन आदि से तुरत दूर न किया गया. तो पुनः उसका मिटाना असंभव हो जाता है। वंग भस्म (Oxide of tin) भी रुई से संप्रक्त हो जाती है। फलतः रंग पक्का करने के लिये इसका प्रायः उपयोग होता है।

कपास तुरत कषायाम्ल (Tannic acid) से संप्रक्त हो जाती है और एक पीत या धूसर वर्ण का यौगिक बनाती है।

उत्ताप देने पर नत्रिकाम्ल (Nitric acid), कपास को वियोजित कर देता है। गंधकाम्ल उसे जलाकर कोयला कर देता है। हरित क्षारद्रव्य उसे श्वेत कर देता है और जब इसका सांद्रीभूत अवस्था में ही प्रयोग किया जाताहै, तब संभवतः यह उसे परिवर्तित वा विलीन कर देता है। कपास अत्यन्त ज्वलनशील है और यह साफ तीव्र लौ से जलती है। इसे परिस्रुत करने पर थोड़ी मात्रामें तेल प्राप्त होता है। इसमें अमोनियां नहीं होता, रुई में १०% उक्त स्थिर तैल पाया जाता है। इस तेल के ही कारण रुई जल में कठिनतापूर्वक क्लेदित होती है। इसलिये इसे शोषण विरोधी कपास (Non Absorbent Cotton Wool) अर्थात् नाज़ाज़िब रुई कहते हैं। परंतु जब इस रुई में से तेल निकाल लिया जाता है और वह जल का शोषण करने लगता है। तब उसे शोषणकारी या ऐब्सार्बेंट काटन वूल (Absorbent Cotton Wool) अर्थात् क़ुन ज़ाज़िब या ज़ाज़िब रुई कहते हैं।

इसके बनाने की विधि—

रुई को सर्वप्रथम जलमिश्रित क्षार में भिगोकर निकाल लें, इसके उपरांत इसे चूने के घोल में भिगोयें, अंत में इसे लवणाम्ल द्वारा अम्लीभूत जल में डुबोकर फिर उसे साफ पानी से भलीभाँति धो डालें इससे रुई की चिकनाहट जाती रहती है और वह क्रियता शोषण कारिणी हो जाती है।

गुण—व्रण एवं क्षत के लिए यह बहुमूल्य व्रण बंधन हैं। शस्त्र क्रिया में इस रुई का बहुत प्रयोग होता है। उल्लिखित प्रयोजन के लिए इसे नाना भाँति की जीवाणु नाशक औषधियों जैसे टंकणाम्ल, कार्बोलिकाम्ल, सैलिसिलिकाम्ल, थाइमोल, आइडोफार्म, युकेलिप्टोल इत्यादि में भिगोकर सुखा रखते हैं और बोरिक वूल आदि नामों से अभिहित करतेहैं। पचन निवारक कपास प्रभृति का जीवाणुनाशक व्रण बंधन में साधारणतया उपयोग होता है। जीवाणु विषयक परीक्षण एवं प्रयोगों में शीशियों के मुँह पर काग की जगह विशोधित वा जीवाणुशून्य कीहुई रुई (Sterlized Cotton) का उपयोग श्रेष्ठतर होता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष।

जली हुई रुई का प्रलेप सूजन उतारता, खाज मिटाता, जली हुई जगह आबला नहीं उठने देता और अग्निदग्ध को लाभ पहुँचाता है। चिरकारी व्रणों के बदगोश्त का अवसादन वा छेदन करती है। व्रणों की गहराई में होनेवाली अस्वच्छता का शोषण करती है। वेदना-स्थल पर पुरानी रुई गरम करके बाँधनेसे, विशेषतः उस अवस्था में जब कि वहाँ पर सोंठ और नरकचूर समभाग को ले कूट पीसकर खूब मर्दन किया हो, उपकार होता है। ताजी रुई को कूट कर गरम करके गरम किये हुये रेंड के पत्ते पर फैलाकर अण्डशोथ पर बाँधने से लाभ होता है।

मोहीदीन शरीफ़—किम्बा अत्युष्ण तरल वस्तु द्वारा दग्ध।

अग्निदग्ध (Burns and Scalds) अग्निदग्ध एवं अत्युष्ण तरल वस्तु द्वारा दग्ध में तथा कतिपय अन्य शस्त्रसाध्य व्याधियों में बाह्य प्रयोगार्थ रुई एक अत्युपयोगी भेषज है। रुई एक ऐसी बहुप्रयुक्त एवं सर्वसुविदित वस्तु है जिसका यहाँ परिचय देना अनावश्यक प्रतीत होता है। आग से जले हुये की यह एक अतीव उपयोगी एवं गृह भेषज है। जिसमें यह प्रायः कैरन आइल (समभाग चूने का पानी और अलसी का तेल) के साथ प्रयोग में आती है। क्योंकि बाहरी हवा का स्पर्श न होने देने और तापक्रम को एक समान स्थिर रखने के कारण यह व्रणरोपण-क्रिया में सहायक होती है। इन्हीं कारणों से कतिपय अन्य व्याधियों, जैसे, वृद्धावस्थाजात गैंग्रीन (Senile-gangrene) में तथा कतिपय शस्त्र-कर्मों जैसे, धमन्यर्बुद (Aneurism) में धमनी बंधन इत्यादि के उपरांत भी शरीरांग तथा अन्य भागों के आच्छादन एवं आवेष्टन के लिए यह एक अतीव उपयोगी वस्तु है। उपर्युक्त प्रयोजनार्थ इसकीगद्दी बनाकर सदैव आतुरालयोंमें प्रस्तुत रखना चाहिये। अस्थिभग्नोपयोगी खपाचियों के लिये गद्दी निर्माणार्थ रुई अत्यन्त उपयोगी, सस्ती, सुलभ और उपयुक्त सामग्री है। मे० मे० मै० १ म खं० पृ० ५२-३)

खोरी—शोथग्रस्त अंग, पक्षाघाताक्रांत, प्रत्यंग, स्फीत पद तथा वातरक्त एवं आमवाताक्रांत संधिदेश और कास एवं फुफ्फुसौष में शिशु-वक्ष इन अंगों पर जली रूई छिड़क कर बाँध रखने से उत्ताप एवं क्लेद को रक्षा होती है और स्वेद का कार्य भी करता है। (मे० मे० इं० २ य खड पृ० १७०)

डीमक—रुई या मिलित रुई एवं ऊन वा रुई तथा रेशम का बना वस्त्र धारण करने से शरीर स्वस्थ रहता है। कपास को जलाकर जो राख हो, उसे व्रण, क्षत, जख्म में भर देने से वे शीघ्र भर आते हैं। सूजे हुये एवं पक्षाघाताक्रांत अंगों पर सोंठ एवं नरकचूर का लेप कर ऊपर से उन्हें रुई से आवेष्टित कर दें। (Moxa) की तरह भी रुई का प्रयोगहोता है। फा० इं० १ म खं०।

नादकर्णी—अग्निदग्ध और व्रणादि से वायु निष्कासन के अभिप्राय से रक्षक की तरह रुई का स्थानीय उपयोग होता है। आमवाताक्रांत संधि आदि पर उन अंगों को शीत से बचाने के लिये तथा हानिकर व्यवसायों में मुख एवं नासिका को सुरक्षित रखने के लिये और छनना रूप से बोतल आदि में डाट देने के लिये रुई काम में आती है। कीटाणु शास्त्र में कीटाणुओं को निकालने (Exclude) के लिये इसका व्यवहार होता है, क्योंकि यह वातावरण स्थित रोगाणुओं के लिये छनने का काम करती है और क्षत, व्रणादि तक पहुँचने में उन्हें रोकती है। व्रणरोपणार्थ यह व्रण क्षत, जख्म आदि पर लगाने के काम आती है। नक्सीर फूटने (Epistaxis) तथा मसूढ़ों से रक्तस्रवण होने पर आग पर पुरानी रुई को जला कर उसका धूआँ नाक या मुख से खींचे। इसके उपरांत इसकी पत्ती का स्वरस २ तोला, एक तोला मिश्री मिलाकर पीवें। इं० मे० मे० पृ० ४०४-५।

सर विलियम ह्विटला—मृदुता, स्थिति स्थापकता आदि अपने भौतिक गुणों के कारण रुई का उपयोग होता है। जली हुई तथा आबला पड़ी हुई सतह के रक्षार्थ यह आच्छादन प्रदान करती है। यथा आमवात, वातरक्त और विसर्प इत्यादि व्याधियों में। शस्त्र चिकित्सा में भी इसका उपयोग होता है। अस्तु, अस्थिभग्न, संधिस्थान अंश

आदि पर बाँधने की खपाचियों पर इसकी गद्दी बनाकर रखते हैं। फ्लैग्मेशिया डोलेंस (टाँग की सफ़ेद सूजन) में विकृत जाँघ वा टाँग पर धुनकी हुई रुई की एक तह लपेट कर उसके ऊपर आइस लिक्विड रखकर पट्टी बाँध देना एक उत्कृष्ट स्थानीय उपचार है। इसी प्रकार कास, न्युमोनिया, और पार्श्वशूल (Pleurisy) आदि में रुई की जाकिट का धारण उपकारी होता है।

शोथ या अपक्व फोड़े की तीव्रता निवारणार्थ—साफ़ कपास लेकर, जल में एक घंटा तक भिगो रक्खे, पश्चात् अच्छी तरह निचोड़ कर, टिकिया-सी बना, एक कटोरी में घी डालकर उसमें वह टिकिया मिला आग पर चढ़ावे। ध्यान रहे घी इतना लेवे कि जिसमें टिकिया अच्छी तरह भीग जावे। जब अच्छी तरह पक जाय, तब उसे सुखा कर शोथ या फोड़े पर रख, बाँध देवे वेदना शीघ्र-ही दूर हो जावेगी। फोड़ा शीघ्र ही पक जावेगा। किसी वेदना युक्त व्रण पर, इसी तरह बाँधने से अवश्य लाभ होता है।

अत्यार्तव या गर्भपात के कारण से स्त्री की जननेन्द्रिय में से रक्तस्राव रोकने के लिये बाह्योपचार की तरह रुई बहुत सफलता के साथ कामयाब होती है। प्रयोग विधि यह है—

प्रथम तुरत धुनकी हुई रुई स्त्री की जननेन्द्रिय में दबाकर भरने को कहें। इससे डाट लगकर रक्त का आना रुक जाता है। साथ ही भीतरी तौर पर आर्द्रक स्वरस में शुद्ध की हुई अफीम को एक मात्रा देवें। इससे स्थायी लाभ होते देखा गया है।

बिनौला—

पर्य्या०—कार्पास बीज, तूल शर्करा, कार्पास-कोकसं, कार्पासास्थि—सं०। बिनौला, बनौर, कुकटी, कपास का बीज, बेनडर—हिं०। बनोला, बनोलः—हिं०, द०। हब्बुल् क़ुत्न्—अ०। पंबहे दानः, पुंबहदानः—फ़ा०। काटन सीड्स Cotton seeds—अं०। परुत्ति विरै—ता०। पत्ति-वित्तुलु, कार्पास-वित्तुलु, प्रत्ति-वित्तुलु—ते०। परित्ति-वित्त परुत्ति-बित्त—मल०। हत्ति-बीज—कना०। कर्पाशबीज, कप्पास बीज, कर्पास बी (चि) कपासेर बीज—बं०। कापसी, कापुस्, कापूसा-च-बी, सरकी—मरा०। रु-नु-बीज, कपास-नु-बीज—गु०। कपु-अट्ट—सिंगा०। वा-सी—बर०। काँकड़े—मार०।

गुणधर्म

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में गरम और तर।

हानिकर्ता—वृक्क को।

दर्पघ्न—ख़मीरा बनफ़शा और कंद सफेद।

प्रतिनिधि—कुसुम बीज, बादाम और ख़श-ख़ास सफेद।

मात्रा—बिनौले की गिरी ६ माशा से १ तोला १०॥ माशा तक।

यह तर, भारी, कफजनक, शुक्रजनक और स्तन्यवर्द्धक है। ता० श०।

छिलका उतारी हुई गिरी वक्ष एवं कोष्ठ मृदुकर, उष्ण कास निवारक है तथा दालचीनी और शर्करा के साथ शीतल प्रकृति के लिये और सिकंजवीन के साथ उष्ण प्रकृति वालों के लिये कामसंदीपन है। (यह श्वासकृच्छ्रता तथा श्वास रोग को नष्ट करती और) सोने के लिये उपयोगी है। मु० ना० पृ० ५६। ना० मु० पृ० ८३।

यह कामोद्दीपक और वीर्य स्तम्भक है, उदर तथा वक्ष को मृदु करता और गरमी की खाँसी को दूर करता है। यह खुनाक़ (इख़्तिनाक़) रहम को लाभ पहुँचाता, वीर्य को सोद्र करता और दूध, घी पैदा करता है। इसको गिरी पीने से कामोद्दीप्त होता है। इसका तेल मर्दन करने से लिंग दृढ़ होजाता है। इसके तैलाभ्यंग से झाँईं और चेहरे के काले धब्बे आदि और फुल आराम होते हैं। निर्विषैल है। म० मु०।

इसकी गिरी सीने को मृदु करती और गरम खाँसी को निवारण करती है। उष्ण प्रकृति में सिकंजबीन और शीत प्रकृति में दालचीनी और शर्करा के साथ कामोद्दीपक है। मुख-व्रण, झाँईं, व्यङ्ग तथा जहसुनादि (गोल काले या ललाई लिए काले चट्टे जो त्वचा से उभरे हुए होते हैं,) मुख रोगों पर इसका तेल उपयोगी होता और योषापस्मार में गुणकारी एवं अत्यन्त मदकारक है। ख़ु० मु०।

हकीम आबिद सरे-हिंदी ने शरह असबाब के हाशिये पर ज़ियाबेतुस (बहुमूत्र) के प्रकरण में लिखा है कि बिनौले को पानी में भिगोकर मलें और उस पानी में मिश्री या खाँड़ मिलाकर अग्नि पर यहांतक पकायें कि अवलेह सा होजाय, इसमें से प्रतिदिन प्रातःकाल निहार मुँह चाटा करें और इसके तीन घण्टा उपरांत भोजन किया करें, इससे बहुमूत्र (ज़ियाबेतुस) रोग बिलकुल जाता रहेगा। इसकी अनेक बार परीक्षा की, कभी विफल मनोरथ नहीं होना पड़ा।

बिनौले की गिरी और गंधा-बिरोजा इन दोनों को मिलाकर जननेन्द्रिय के छिद्र में धारण करने से लिंगोत्थान होता है। आकारकरभ के साथ भी उक्त लाभ होता है।

बिनौला—दूध और घी उत्पन्न करता और श्वास रोग को आराम पहुँचाता है।

जाड़ों में इसका हरीरा सीने के रोगों को लाभ पहुँचाता है।

बारह रत्ती समुद्रफेन को कूट छानकर पौने दो तोला बिनौले की गिरी के तेल में मिलाकर रखें, और आँख में लगाया करें। इसके चिरकाल सेवन से मोटे से मोटा आँख का जाला कट जाता है। परीक्षित प्रयोग है।

इसका तेल झाँईं, काले दाग़, चुनचुनों और क्षतों का निवारण करता है।

वैद्यों के मत से बिनौला तर और भारी है। यह कफ की वृद्धि करता, वीर्य उत्पन्न करता एवं कफ और पित्त को लाभकारी है, यह शारीरिक ताप, पिपासा, क्लान्ति और भ्रमी को निवारण करता और स्तन्यबर्द्धक है, इसकी गिरी पुट्ठों को शक्तिप्रदान करती है। इसकी मींगी की खीर पकाकर खाने से कामावसाय दूर होता है, चेहरा दीप्ति होता और उसका रंग निखर आता है। शिरःशूल निवारणार्थ बिनौलों की गिरी और पोस्ते के दाने इनकी हरीरा पकाकर खिलाना चाहिये। इससे उपकार होता है। यदि आगसे जल जाय वा छाला पड़ जाय, तो बिनौले की मींगी को पीसकर लेप करें। इससे तज्जन्य प्रदाह की शांति होती है।

इसके तैल मर्दन से गठिया-जनित वेदना निवृत्त होती है।

बिनौले की गिरी पानीमें पीस छानकर चावलों के साथ खीर पकाकर खिलाने से नारी स्तन्य की वृद्धि होती है।

२॥ पाव बिनौलों को सवासेर पानी में पकायें जब पाव भर पानी शेष रहे तब उतारकर छानलें। १२॥ तोले की मात्रामें यह काढ़ा शीतका वेग होने से एक या दो घण्टा पूर्व पिलाने से आनेवाला ज्वर रुक जाता है।

इसकी मींगी का दुधिया पानी प्रस्तुत कर आमातिसारी को पिलाते हैं।

दबाकर निकाला हुआ बिनौले का तेल लगाने से शरीर त्वग्गत नीले चट्टे मिटते हैं।

बिनौले की गिरी और सोंठ इनको पानी में पीसकर प्रलेप करने से फ़ोतों की सूजन मिटती है।

इनको औषध में मिलाकर पिलाने से शुष्क कास आराम होता है।

इनकी मींगों का हरीरा बनाकर पिलाने से पाखाना मुलायम होजाता है।

इसका हलुआ प्रस्तुत कर खाने से कामोद्दीपन होता है।

उरोव्याधि निवृत्यर्थ मींगों का दुधिया रस पिलाना चाहिये।

मींगों को पीसकर कनपुटियों पर लेप करने से शिरःशूल निवृत्त होता है।

बिनौलों को क्वथित कर गण्डूष करने से दंत शूल मिटता है।

तीन तोला बिनौलों की गिरियों को पानी में पीसकर पिलाने से धतूरे का ज़हर उतर जाता है।

बिनौले को मींगियों को दूध में औटाकर पिलाने से सभी भाँति के ज़हर उतर जाते हैं।

बिनौला ७ माशा रात को पानी में भिगो दें। प्रातःकाल उन्हें पीस छानकर थोड़ा सेंधा नमक मिला पियें। इससे कामला (यर्कान) नष्ट होता है।

मींगों को पीसकर रोटी बना बाँधने से बादीका दर्द आराम होता है।

इसकी मींगी को बारीक पीस शहद में मिला आंख में लगायें, तो गई हुई नींद पुनः आने लगती है।

इसका तेल खाने के काम आता है। किसी किसी दशा में यह साफ़ किये हुये तेल का भी काम देता है। मालूम हुआ है कि बिनौले का तेल खाने में भी मधुर स्वाद युक्त होता है। इसमें सुगंधि भी खासी होती है। यह सूख जाता है। बिनौले का आटा भी तैयार होता है जो गेहूं के आटे से पाँच गुना, मांस की अपेक्षा अढ़ाई गुना शक्तिशाली बताया जाता है। (खं० अ० २ य खं० पृ० ४३५-६)

नव्यमत

खोरी—कपास के बीजों कीचाय वा फाण्ट—विधि—कूटे हुये कपास के बीजों का खौलते हुए अत्युष्ण जल में प्रक्षेप देकर, थोड़ी देर रहने दें, फिर उसे वस्त्रपूत करलें, यही बिनौले की चाय वा फाण्ट है।

गुण—यह पिच्छिल और स्निग्ध है। अस्तु, अतिसार और रक्तातिसार (Dysentery) में सेवनीय है। यह मृदुरेचक कफ निःसारक एवं स्तन्यवर्द्धक है।

अण्डशोथ वा कुरण्ड (Orchitis) पर—(२) कपास के बीज और सोंठ समभाग एकत्र पीसकर किंचित् जल मिला और गरम कर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(मे० मे० इं० २य खंड पृ० ३६) फ्रा० इं० १म भ० पृ० २२५।

मुहीदीन शरीफ़—बिनौला पोषणकर्त्ता (Nutrient) और स्निग्ध (Demulcent) है तथा पूयमेह, चिरकारी सूजाक (Gleet) चिरकालानुबन्धी वस्तिप्रदाह, क्षय एवं कतिपय प्रतिश्यायिक विकारों पर बीजों का किसी क़दर उत्तम प्रभाव होता है। अकेले की अपेक्षा पूयमेह एवं चिरकालानुबन्धी सूजाक पर बीजों का उस समय अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण उद्भासित होता है, जबकि उनके साथ कतिपय अन्य औषधि द्रव्य सम्मिलित कर लिये जाते हैं। लेखक ने पूयमेह एवं चिरकालानुबन्धी सूजाक के अनेक रोगियों को उक्त प्रकार का यह योग सेवन कराया, जिसके उत्साह वर्द्धक परिणाम नज़र आये।

विधि—बिनौला २ से ४ ड्राम तक, ज़ीरा १॥ से ४ ड्राम तक, सोंफ १ से २ ड्राम तक, और वंशलोचन १५ से ३० ग्रेन तक। इनमें से वंशलोचन को छोड़ और शेष औषधियों को पत्थर के खरल में ३ या ४ आउंस जल के साथ घोंट रगड़ कर वस्त्रपूत करले। फिर इसमें वंशलोचन मिला सेवन करें। मात्रा—लक्षण की उग्रता के अनुसार इस पेय को दिन रात में ४-५ बार सेवन करें। मे० मे० मै० १ भ० खंड पृ० ५२-५३।

डीमक—आमातिसार पर अमेरिका में बिनौले का चाय काम में आता है। बीज स्तन्यवर्द्धक रूप से भी प्रसिद्ध है। फा० इं० १ म खंड पृ० २२६।

नादकर्णी—बिनौले स्निग्ध, मृदुरेचक, कफ-निःसारक और कामोद्दीपक वा (Nervine tonic) हैं। बीजों के ऊपर का छिलका निकाल तथा खरल में घोंटकर और २ ड्राम (५ से ७मा०) की मात्रा में दूध के साथ सेवन करावें।

गुण—यह वात नाड़ी-बलप्रद (Nervine tonic) है और शिरःशूल एवं मस्तिष्क विकारों में इसका उपयोग होता है। कपास के बीज लैक्टोगाल (Lactogol) नामक एक प्रकार के महीन श्वेत चूर्ण के बनाने में काम आते हैं। जिसको ½ से १ ड्राम की मात्रा में स्तन्यवर्द्धनार्थ व्यवहार करते हैं।

बिनौलों का इमलशन—दुधिया घोल वा चाय (घनीभूत क्वाथ) आमातिसार में प्रयोजित होता है।

अमेरिका में विषमज्वर या पारी से आने वाले शीत पूर्व ज्वर में सुपरिचित भेषज रूप से इसका सफलतापूर्वक प्रयोग होता है। बीजों का यथा विधि काढ़ा बनाकर ज्वर चढ़ने के १ या दो घण्टे पूर्व चाय की प्याली भर पिलाने से लाभ होता है, कहते हैं कि अपस्मार में तथा सर्प दंश के प्रतिविष स्वरूप भी बिनौले उपयोगी हैं। भारतवर्ष में कपास के बीज बिनौले और संयुक्त राज्य अमे-

रिका में कर्पास-मूल-त्वक् (त्वक् घटित प्रवाही सार) गर्भशातनार्थ उपयोग में आता है। कुरंड (Orchitis) पर बिनौला और सोंठ सम भाग जल के साथ एकत्र पीसकर प्रलेप करें। अग्निदग्ध एवं अत्युष्ण तरल द्वारा दग्ध (व्रण) पर पुल्टिस की तरह इसका लाभकारी उपयोग होता है। मस्तिष्क को शीतलता प्रदान करने के लिए तथा शिरःशूल निवारणार्थ बीजों से दबाकर निकाला हुआ तेल शिरोभ्यङ्ग की एक उत्कृष्ट वस्तु है। आमवातिक संधि-शोथों पर इससे उत्तम मालिश की चीज़ तयार होती है; यह त्वचागत धब्बों के दूर करने के लिए उपयोगी है। कपास के फूल और बीजों का काढ़ा धतूरे के ज़हर का अगद है। इं० मे० मे० पृ० ४०३-४।

नोट—१ भाग बीज में २ भाग जल मिला आधा जल शेष रहने पर, १० तोला से २० तो० तक की मात्रा में पिलावें।

स्त्री के नष्ट पुष्प पर या अनियमित ऋतुस्राव पर बिनौला के तेल में इलायची, जीरा, हल्दी, और सेंधा नमक प्रत्येक एक २ माशा महीन चूर्ण कर, एकत्र मिला, महीन वस्त्र में बाँध छोटी सी पुटली बना, ऋतुस्राव के चौथे दिन से योनि मार्ग में रखना प्रारम्भ करे, नित्य नवीन पुटली बनाकर रखे। १० या १५ दिन में सब शिकायत दूर हो जावेगी। चि० चं० ५ भ० पृ० ४०७।

अफीम के बिष पर—बिनौला का चूर्ण और फिटकरी चूर्ण समभाग, एकत्र कर खिलावे।

धतूरे के बिष पर—कपास के बीज, बिनौला, और फूलों को एकत्र जोकुटकर, दुगुना जल मिला अर्धावशिष्ट काढ़ा तैयार कर, बार-बार पिलावे, अथवा चार तोला कपास के बीजों को सोलह गुने पानी के साथ औटाकर चतुर्थांश जल शेष रहने पर उसे उतार छानकर आधे आधे घण्टे के अंतर से ऐसी चार तोले की खुराक उस समय तक पिलाते रहें, जब तक धतूरे का बिष नष्ट न हो जाय।

हिन्दुस्तान में विशेषतः देशी कपास के बीज पशुओं को और प्रायशः गाड़ी के बैलों तथा दूध देने वाली गौओं को दिन में एक बार १ से २॥ सेर तक की मात्रा में खाद्य रूपमें दिया जाता है। बिनौलों को केवल जल में भिगोकर उनके सामने रख दिया जाता है। पर विदेशी बिनौलों में यह बात नहीं, प्रथम तो उनका छिलका बहुत कड़ा होता है और फिर उनमें देशी बिनौलों की तरह मधुरता भी नहीं पाई जाती, फलतः पहले पशु उसे रुचिपूर्वक खाते नहीं, परन्तु जब अभ्यास होजाता है तब वो इसे भी देशी बिनौलों के समान ही प्रेम से खाने लगते हैं। एक बात ध्यान रखना चाहिये; कि इसे पानी में भिगोने से पूर्व चक्की आदि में पीस लेना चाहिये। यह बात प्रायः सभी विदेशी बिनौलों के लिए उपादेय है।

बिनौले का तेल
(*Oleum Gossypii Seminis*)
Cotton Seed Oil.

कपास के बीजों से एक प्रकार का तेल निकलता है। जिसकी विधि यह है। पहले बिनौले को रुई आदि से साफकर बराबर दो दिन तक धूप में सूखने दें। तत्पश्चात् चक्की में पीसकर इसकी टिकियाँ बनाले, और फिर किसी मज़बूत स्क्रू-प्रेस द्वारा तेल निकलवा लें।

यह पांडु पीत वा पीतवर्ण का एवं लगभग निर्गन्ध होता है। स्वाद (Bland) होता है सुरासार (९०%) में किंचित् विलेय और ईथर क्लोरोफार्म और हलके पेट्रोलियम् के साथ मिलनीय होता है। यदि रखने से यह जम गया हो तो उपयोग से पूर्व इसे मन्द आँच पर गरम करके खूब मिला लेना चाहिये।

मात्रा—आधे से १ आउंस वा १५ से ३० मिलिग्राम।

गुण धर्म तथा प्रयोग—जैतून तेल के स्थान में इसका उपयोग होता है। सस्ता होने के कारण बहिःप्रयोगों के लिए अन्य तैलों की अपेक्षा यह अधिक पसंद किया जाता है। —मे० मे० घोष।

यह तेल पोषणकर्त्ता एवं मृदुताकारक है तथा यह रगड़ और उद्वर्तन में अतीव उपयोगी है। त्वचा को मुलायम और ढीला करने में इसका बड़ा असर है और यह बालों में लगाने की प्रधान वस्तु है। धब्बों को दूर करने के लिए भी इसकी परीक्षा की जाती है।

बिनौले की खली हलके भूरे रंग की होती है। जिसमें बीज के छिलके का बहुत भाग होता है। इसका स्वाद फीका और हल्लासकारक होता है। यह पशु खाद्य एवं खाद के काम आती है। प्रारंभ में इसमें किंचित् मधुर पदार्थ गुड़ादि सम्मिलित कर देने से इसे पशु रुचिपूर्वक खा जाते हैं।

कर्पास मूल-त्वक्

पर्य्या०—कपास की जड़ की छाल। -हिं०। पोस्त बीख़ पंबः (फ़ा०) Cotton Root Bark काटन रूट बार्क -अं०। गासीपियाई रेडिसिस कार्टेक्स Gossypii Radicic Cortex -ले०।

नोट—एलोपैथी में कर्पास भेद (Gossypium Herbacium) जो भारतवर्ष तथा अमेरिका आदि देशों में होता है, उसकी जड़ की छाल ग्रहण की जाती है, इसकी पतली २ लचीली पट्टियां या वक्राकार खण्ड होते हैं, जिनके भीतरी पृष्ठ पर एक भूरे रँग की पीताभ झिल्ली होती है। यह गंध रहित और किंचित चरपरे और कसैले होते हैं।

औषध-निर्माण—

एलोपैथी में—(परिशिष्ट जात औपनिवेशिक एवं भारतीय औषध)

सम्मत योग—Official Preparations (१) डिकॉक्टम् गॉसीपियाई रेडिसिस कॉर्टीसिस Decoctum Gossypii Radicis Corticis -ले०। डिकाक्शन आफ काटन रूट-बार्क Decoction of Cotton Root Bark -अं०। कार्पासी मूल-त्वक्काथ-सं०। कपास की जड़ की छाल का काढ़ा -हिं। मत्बूख़ पोस्त पंबः। जोशांदहे पोस्त बीख़ पंबः -फ़ा०।

निर्माण विधि—४ आउंस कपास की जड़ की छाल को २ पाइंट पानी में इतना क्वथित करें कि कुल १ पाइंट रह जाय। पुनः इसे वस्त्र पूत कर लें।

मात्रा—आधे से १ फ्लु० आउंस।

(२) एक्स्ट्रैक्टम् गासीपियाई रेडिसिस कार्टीसिस लिक्विडम्—Extractum Gossypii Radicis Corticis Liquidum-ले०। लिक्विड एक्स्ट्रैक्ट आफ काटन रूट Liquid Extract of Cotton Root-अं०। कर्पास-मूल प्रवाही सार-सं०। कपास की जड़ की छाल का प्रवाही सत्व। खुलासहे पोस्त बीख़ पंबः सय्याल -फ़ा०।

निर्म्माण विधि—कपास की जड़ की छाल का ३० नम्बर का चूर्ण २० आउन्स, ग्लीसरीन ५ फ्लुइड आउंस, सुरासार (६०%) आवश्यकतानुसार। ग्लीसरीन को १५ फ्लुइड आउंस सुरासार में मिलाकर और उसमें से १० आउंस लेकर उससे चूर्ण को क्लेदित करें और परकोलेटर में स्थापित कर ४८ घंटे तक रखा रहने दें। फिर उसे इतना परकोलेट करें कि छाल सर्वथा परिष्क्राष्ट हो जाय। प्रथम १४ आउंस परिस्रुतद्रव को पृथक् करके उसे आँच पर इतना उड़ाएँ कि वह मृदु सारवत् शेष रह जाय। पुनः इसे १४ आउंस पृथक्कृत द्रव में विलीन करके इतना और सुरासार सम्मिलित करें कि कुल द्रव्य मान एक पाइंट हो जाय।

मात्रा—½ से १ फ्लुइड ड्राम।

असम्मत योग

(*Not official Preparations*)

(१) एक्स्ट्रैक्टम गासीपियाई रेडिसिस कार्टिसिस Extratum Gossypii Radicis Corticis-ले०। कर्पास-मूलत्वक् रसक्रिया। कपास की जड़ की छाल का सत। रुब्ब पोस्त बीख़ पंबः (फ़ा०)।

नोट—यह एक ईषत् सुरासारीय योग है।

मात्रा—१ से ४ ग्रेन।

(२) पिल्युला गासीपियाई कंपाजिटा Pilula Gossypii Composita-ले०। मिश्रित कार्पास वटिका। हब्बुल् क़ुत्न मुरक्कब।

निर्माण विधि—एक्सट्रैक्टम् गासीपियाई कार्टिसिस, एक्सट्रैक्टम् हाइड्राष्टिस, अगोंटीन प्रत्येक १ ग्रेन। इनकी एक वटी प्रस्तुत करें और ऐसी एक-एक वटी दिन में तीन या चार बार दें। कन्जष्टिम डिस्मेनोरिया (रक्तावष्टंभ जनित कष्ट रज) में उपकारी है।

परीक्षित डाक्टरी प्रयोग

(१) एक्सट्रैक्टम् गासोपियाई	२ ग्रेन
एपियोल	३ मिनिम

दोनों की एक गोली बनायें और ऐसी १-१ गोली दिन में दो बार दें।

उपयोग—कष्टरज में उपयोगी है।

(२) एक्सट्रैक्टम् गासोपियाई लिक्विडम्	१५ मि०
टिंक्चुरा सिमिसिफ्युगी	१५ मि०
स्पिरिटस क्लोरोफार्माई	१० मि०
इन्फ्युजम् वेलेरियानी	½ आउंस तक

ऐसी एक-एक मात्रा दिन में तीन बार दें। कष्ट रज में कल्याणकारी है।

गुणधर्म

कपास मूल और मूल त्वक् रजः प्रवर्त्तक तथा स्तन्य जनन है। (इं० मे० मे०—नादकर्णी)

गर्भाशय उत्तेजक आर्त्तव जनक और स्नेहन है। इसकी क्रिया गर्भाशय पर 'अरगट की अपेक्षा उत्तम होती है, गर्भाशय का उत्तमतया संकोचन होकर रक्तस्राव बंद होता है। गंडमाला, अपची और स्तनरोगादि निवारक है।

कर्पास-मूल मूत्रल, रजः प्रवर्त्तक और स्निग्धता संपादक (Demulcent) है।—(Atkinson)

आमयिक प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

चरक—कुष्ठ रोग में कार्पासी त्वक् एवं पुष्प—कपास को जड़ की छाल और पुष्प को पीसकर कुष्ठ पर प्रलेप करें। यथा—

"❀त्वक् पुष्पं कार्पास्याः। पिष्ट्वा चतुर्विधः कुष्ठनुल्लेपः" (चि० ७ अ०)

वृन्द—कफजातिसार में कार्पासीमूल स्वरस—कपास की जड़ की छाल का रस मधु के साथ कफातिसारी को पान करना चाहिये। यथा—

"तद्वत् कार्पास पर्कट्योः स्वरसः समधुर्मतः" (अतिसार—चि०)

चक्रदत्त—श्वेत प्रदर में कार्पासीमूल—पाण्डु या कफजनित श्वेतप्रदर ग्रस्त नारी को कपास की जड़ की छाल चावल के धोवन में पीसकर पीना चाहिये। यथा—

"❀मूलं कार्पासमेववा। पाण्डुप्रदर शान्त्यर्थं प्रपिबेत् तण्डुलाम्बुना" (असृग्दर—चि०)

नव्यमत

अमेरिका में गर्भाशयगत रोगों में अर्गट की जगह इसका बहुल प्रयोग होता है। अस्तु, इसका काढ़ा गर्भशातक, आशुप्रसवकारक और रजः प्रवर्त्तक रूप से व्यवहार किया जाता है। शिशु प्रसव काल में इसके सेवन से गर्भाशयिक द्वार खुल जाता है। इसको कष्टरज रजःरोध एवं गर्भाशयिक रक्तस्राव में वर्तते हैं और गर्भशातनार्थ भी इसका उपयोग करते हैं।

नोट—अमेरिका देश वासी ललनाएँ गर्भशातनार्थ इसकी छाल बहुलता के साथ काम में लाती थीं, इसलिये वहाँ के डाक्टरों ने विस्तृत परीक्षण करके इसको वहाँ के फार्माकोपिया में सन्निविष्ट कर लिया। (म० अ० डा०)

कपास की जड़ छाल एवं मूलत्वक् निर्मित प्रवाही सार ये दोनों संयुक्त राज्य अमेरिका की फार्माकोपिया में आफिशल—अधिकृत हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री-हबशियों को गर्भशातनार्थ इसका उपयोग करते देखकर ही प्रथम तद्देशीय चिकित्सकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं कि यह गर्भाशय पर 'अर्गटवत् प्रभाव करता है और पीड़ितार्त्तव तथा शीतजन्य अनार्त्तव में उपयोगी है। इस हेतु इसका काढ़ा काममें आता है जिसके प्रस्तुत करने की विधि यह है—

काथ निर्माण विधि—कपास की जड़ की छाल १० तोला लेकर जौकुट कर ६० तोला जल में मिला आग पर चढ़ावें। जब ३० तोला जल शेष रहे, तब छान कर २॥ तोला या ५ तोला की मात्रा में दिन में ३-४ बार पिलावें। यदि रोग की तीव्रता ज्यादा हो तो २०-२० मिनट वा आध आध घंटे में इसे पिलाना चाहिये। प्रारम्भ में इसकी मात्रा बड़ी अर्थात् ६ से ७ तोला तक की देवे, बाद में कम करे। ३० से ६० बूँद तक की मात्रा में इसका प्रवाही सार इंडियन मेटीरिया मेडिका के अनुसार टिंक्चर भी व्यवहार किया जा सकता है। (फ्रा० इं० १ भ०—डी, पृ० २२५-६)

नोट—इसका काढ़ा प्रसवोत्तर देते हैं। इससे गर्भाशय का उत्तम रीति से संशोधन हो रक्तस्राव नहीं होता, आर्त्तव साफ हो और गर्भाशय शैथिल्यजन्य कष्ट, ज्वर शूल आदिकी शांति होती है बच्चा होने के उपरान्त जब जाल गिर जावे तब ही इसका काढ़ा पिलाना चाहिये यदि आधे घंटे में गर्भाशय शैथिल्य दूर न हो, तथा नाड़ी की गति तीव्र हो, तो पुनः इसी काढ़े की एक मात्रा देनी चाहिये। डा० नादकर्णी के अनुसार यह स्त्रियों के हरित रोग में भी उपकारी है। ध्यान रहे सगर्भा स्त्री को यह काढ़ा कदापि न देना चाहिये।

गर्भाशयिक विकृति में जड़ की छाल का स्वरस ३० से ६० बूँद तक पिलायें अथवा उपर्युक्त काढ़े का उपयोग करें। इं० मे० मे०।

गर्भाशय के शूल निवारणार्थ स्त्री को जड़ की छाल के काढ़े में बिठाकर कटि-स्नान कराते हैं। डी०। इं० मे० मे० पृ० ४०३।

इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से मूत्रोत्सर्ग-कालीन प्रदाह एवं शूल का निवारण होता है।

योषापस्मार में इसके काढ़े में बैठने से उपकार होता है। इससे वेदना शांत होती है। (ख० अ०)

स्तन में दूध आने के लिये कपास की जड़ और ईख की जड़ समभाग, एकत्र काँजी में पीस सेवन करावें।

स्तन-रोगों पर (स्तनव्रण एवं सूजन) पर कपास की जड़ और लौकी को, गेहूं की बनाई हुई काँजी में पीसकर लेप करे।

गर्भपात कराने के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका में कपास की जड़ की छाल (मूलत्वक् निर्मित प्रवाहीसार) काम में आती है।

अनार्त्तव वा रजोरोध में 'इलाजुल्गुर्बा' में यह काढ़ा उपयोगी लिखा है—

काढ़े की विधि—कपास की जड़ को छाल २ छटाँक लेकर जबकुट कर एक सेर पानीमें मिला आग पर चढ़ावें। जब ४ छटांक जल शेष रहे, तब उतार छानकर उसमें अंदाज की चीनी मिलाएं।

मात्रा—२॥ तोला से १ तो० तक दिन में दो बार।

स्त्रीरोग—कर्पास की जड़ की छाल का काढ़ा गर्भस्रावकारी, आर्त्तव-प्रवर्त्तक एवं त्वरित प्रसव कर्त्ता है। विलम्बित प्रसव में लुप्तप्राय प्रसववेदना के पुनरानयनार्थ इसका उपयोग किया जाता है। अनार्त्तव वा रजोरोध, कष्टरज एवं गर्भाशयिक रक्तपात के निवारणार्थ तथा गर्भपात कराने के लिए भी इसका उपयोग करते हैं।—मे० मे० इं० २य खं० पृ० ६६।

स्त्री रोगों में, जिनमें आशु कार्यकारित्व उतना आवश्यक नहीं। कपास का अर्क्क अर्गट की अधिक श्रेयस्कर एवं निरापद है और इस कारण भी कि उसके सेवनोत्तर कोई अप्रिय प्रभाव नज़र नहीं आता और न उसका कोई हानिकर गौण प्रभाव ही होता है। जैसा कि अर्गट के अंतः त्वगीय वा मौखिक दीर्घकालीन प्रयोग के उपरांत देखने में आता है। इं० मे० ग०, नवंबर, १८८४ पृ० ३३४-५।

देवकपास वा नरमा

(Gossypium Arboreum, *Linn* Gossypium Religiosum, *Roxb.*) –ले०। Silk Cotton tree, *Religions Cotton tree.* –अं०। Fairy Cotton bush Sacred Cotton bush. Cotonnierarborescent, *Cotonnier desnonnes* –फ्रां०। Chinesische Baumwollenstande –जर०। नरमा, मनवाँ, देवकपास, रामकपास, लालकपास, हिं०।

कार्पास वर्ग

(*N. O. Malvaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान एवं वर्णन—इस जाति की कपास घरों तथा उद्यानों में शोभा के लिए लगाई जाती है। भारतवर्ष के अनेक भागों में इसकी काश्त होती है। अपने गंभीर रक्तवर्ण के पुष्पों के कारण यह हिन्दू देवालयों के समीप साधु की कुटियों और उद्यानों में लगी हुई यह प्रायः देखने में आती है। इसका लघु पौधा रक्त-मंजित और तना ऊँचा एवं झाड़ीदार होता है, जिससे यह पहचानी जाती है। बंगाल और दक्षिण चीन में

इसका आदि उत्पत्ति स्थान है। यह ऐलीबीज टाप्, अरब और मिश्र में भी होती है।

देवकपास का पोधा साधारणतः झाड़ीदार (Arborens), लगभग १२ से १५ फुट (कहीं कहीं ६ से ९ फुट) की ऊँचाई का बड़ा वृक्ष सा होता है, और कई वर्षों तक रहता है। इसके क्षुद्र भाग लोमश होते हैं और समग्र क्षुप रक्तवर्ण रंजित होता है। पत्ते करपत्राकार पंच वा सप्तखंड युक्त, लोमश, गम्भीर हरे रंग के धब्बे से अंकित; खंड गंभीर कटावदार, दीर्घाकार, भाला कार और क्वचित् (Mucronete) होते हैं। (Sinus) अधिक कोणी अतीक्ष्ण और ग्रंथियां १ से ३ तक होती हैं। (Stipules) अंडाकार; पुष्प एकांतिक, लघुवृन्तयुक्त, रक्तवर्णीय और पंजे (Claws) के समीप किंचित् पीत-वर्ण रंजित होता है। कुण्ड (Calyx) पत्रक हृदयाकार, अंडाकार, धार समान और क्वचित करात दंतित होता है। डेंढ़ (Capsules) अंडाकार तीन या चार तीक्ष्णाग्र, कोषयुक्त, बीज किंचित् हरे रंगके रोमों से व्याप्त और उत्तम महीन रेशमवत् श्वेतवर्ण की रूई से परिवेष्टित होते हैं।

इसके पत्ते और बोंड़ सर्वसाधारण कपास के पत्ते और बोंड़ की अपेक्षा बड़े होते हैं। बीज और बिनौला, साधारण कपास के बिनौला जैसा किंतु कुछ विशेष हरितवर्ण का होता है।

प्रायः इसकी काश्त नहीं होती; और न यह मालूम होता है कि बड़े पैमाने पर यह बोया जाता है।

गुण धर्म तथा प्रयोग

प्रागुक्त साधारण कपास के गुणधर्म इसमें पाये जाते हैं, इसमें स्निग्धता विशेष होती है। इसके पत्ते और जड़ लेप करने के काम में विशेष आते हैं।

ज्वर के पश्चात् त्वचा की रूक्षता या खुजली दूर करने के लिये देव कपास के पत्तों के रस में कालीजीरी (Vernonia anthelmintica) पीसकर शरीर पर उबटन सा लगावे, बाद ३ घंटे के स्नान करे। डी० १ म० पृ०।

मूत्र में धातु जाती हो तो देवकपास के २-३ पत्ते और थोड़ी मिश्री, नित्य प्रातः सायं चबाकर खावे।

अर्श पर देवकपास के पत्तों का रस ३ तो० तक गाय के दूध के साथ सेवन करें।

आगंतुक ज्वर पर देवकपास के पत्ते गोदुग्ध के साथ पीसकर, तथा गरमकर, शरीर पर लेप करें।

व्रण रोपणार्थ देवकपास के कोमल पत्ते और पानड़ी के पत्ते बाँटकर बाँधे।

अफीम के विष पर देवकपास के पत्तों का रस पिलावे।

कच्चे फल (बोंड़)

बालक के अतिसार पर देवकपास के बोंड़ को गोबरी की गरम-गरम राख या भूभल में दबाकर १५ मिनट बाद निकाल तथा कूट पीसकर स्वरस निकाल पिलावे अथवा बालक की माता को उस बोंड़ को अपने मुख में चबाकर, उसकी पीक बच्चे के मुख में डालना चाहिये।

आमातिसार पर इसके कच्चे डेंढ़ के भीतर मात्रानुसार अफीम तथा जायफल भर कर पुटपाक की विधि से पका सेवन करने से बड़ा उपकार होता है।—सखाराम अर्जुन। (इं० मे० मे० पृ० ४०५, इं० मे० प्रां०)

कामला पर देवकपास के बोंड़ का रस नाक में डाले या नस्य लेवे।

रूई

बंगाल में इसकी रूई के सूत से यज्ञोपवीत बनता है। (इं० मे० मे० पृ० ४०५)

जड़

व्रणरोपणार्थ कोंकण में इसकी जड़ को पानड़ी के पत्तों (Patchouli leaves) के रस में पीसकर प्रलेप करते हैं। (डी० १ खं०)

बिच्छू के दंश पर देवकपासकी जड़का मनुष्यके मूत्र में पीस, दंश-स्थान पर लेप करें, तथा पत्तों को बाँट कर जहाँ तक दर्द हो वहाँ तक मर्दन करें।

वनकपास

पर्या०—अरण्य कार्पासी, वनजा, भारद्वाजी, वनोद्भवा (रा० नि०, भा० प्र० भरद्वाजी, वनकार्पासी, त्रिपर्णा, वनोद्भव कार्पास, भार्द्वाजी, यशस्विनी, वन सरोजनी, बहुमूर्ति (र० मा०)

खिलायें, दूसरे दिन डेढ़ रत्ती, तीसरे दिन दो रत्ती इसी प्रकार प्रति दिन आधी रत्ती बढ़ाते हुये सप्ताह पर्यन्त सेवन करें। अम्ल एवं वादी चीजों से परहेज करना आवश्यक है। रूक्षता प्रतीत होनेपर गोदुग्ध पान करें। परमेश्वर की दया से नपुंसक भी पुंसत्व लाभ करेगा। —गिफ़्तारुल् खजाइन

नव्य मत

आर० एन० खोरी—ओलियेण्ड्रीन् (रक्त और श्वेत करवीर का उपादान भूत एक द्रव्य) को पिचकारी द्वारा त्वगभ्यंतर प्रवेश कराने (Injection) से नाड़ी स्पन्दन जहाँ एक मिनट में ७५-८० बार होता था, वहाँ घटकर मिनट पीछे १०-१२ बार रह जाता है। इतने पर भी यदि उसे अधिक क्षण तक जारी रखा जाता है, तो इससे हृत्स्पंदन और साथ ही श्वास-प्रश्वास भी अवरुद्ध होजाता है। करवीर मूल एवं मूल त्वक् दोनों ही अमोघ मूत्रकारक और स्ट्रोफैन्थायन एवं डिजिटैलीन वत् हृदय बलप्रद है। हृद्वैकल्य विशेष (Cardiac Systole) और शोथ रोग (Dropsy) में इसका क्वाथ (Infusion) व्यवहृत होता है। गर्भ-पात एवं आत्महत्या के लिये करवीर-मूल प्रायशः व्यवहार किया जाता है। शूलरोग में एवं शिरो विरेचनार्थ ग्रामवासीगण कनेर की सूखी पत्ती का चूर्ण व्यवहार में लाते हैं। इसकी लकड़ी मूषक विष (Rats bane) रूप से व्यवहार की जाती है। फिरंग क्षत, शिश्न क्षत और दद्रु में इसकी जड़ की छाल का प्रलेप लाभकारी होता है। (मेटीरिया मेडिका आफ इंडिया—२ य खं०, ३८६ पृ०)

ऐन्सली—कनेर की, जड़ की छाल एवं मधुर गन्धि पत्रों को वैद्यगण प्रबल Repellents (मवाद को लौटाने वाला) मानते हैं और उनका बहिःप्रयोग करते हैं। जड़ भक्षण करने से विषैला प्रभाव करती है। हिन्दू रमणीगण डाह के कारण आत्महत्या के लिए बहुधा इसका आश्रय ग्रहण करती हैं। —मेटीरिया इंडिका, २ खं० पृ० २३।

वैट—कनेर के प्रभावकारी सार हृदय के लिये प्रचंड विष है। प्रो० ई० पेलिकन के अनुसार क्योंकि हृदय पर इसका अवसादक वा नैर्बल्यकर (Depressing) प्रभाव होता है, अस्तु इसका डिजिटेलिस के प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार हो सकता है।—वैट्स डिक्शनरी।

कर्नल वी० डी० वसु—कनेर के सर्वांग, प्रधानतया इसकी जड़ को एतद्देशवासी विषाक्त मानते हैं। इसलिये वे आत्महत्या एवं अन्य प्रकार की हत्या के लिये इसका व्यवहार करते हैं। तथापि तालीफ़ शरीफ़ (पृ० १३४) एवं अन्य भारतीय द्रव्य-गुण-शास्त्र विषयक ग्रंथों में कुष्ट तथा अन्य व्याधियों में इसकी व्यवस्था देखने में आती है।

के० एम० नादकर्णी—कनेरका सर्वांग विषैला है। इसकी जड़ और जड़ की छाल दोनों प्रबल मूत्रल एवं स्ट्रोफैन्थस और डिजिटेलिनवत् हृदय बलप्रद होती हैं। ओलिएंड्रोन के पिचकारी द्वारा त्वगधोऽन्तः क्षेप करने से नाड़ी-स्पंदन जहाँ प्रति मिनट ७५ या १०० होता था, वहाँ घट कर १० या १२ तक रह जाता है। यदि इसका प्रयोग कुछ समय तक और जारी रक्खा जाता है, तो हृदय का स्पंदन रुक जाता है और साथ ही श्वास प्रश्वास की गति भी अवरुद्ध होजाती है।

यह पौधा दो तरह का होता है—सफेद फूल का और लाल फूल का। गुण धर्म में ये दोनों समान होते हैं। इनमें से सफेद फूलवाले की जड़ जिन्हें बंगाल में 'श्वेत करबी' कहते हैं, आद्यन्त विषैली होती है। इसी भाँति उसकी पत्तियाँ, छालें और फूल भी ज़हरीले होते हैं। इसकी छाल किसी प्रकार खाने के काम नहीं आती। जड़ बाह्य प्रयोग में आती है और इसे पानी में पीसकर अर्शांकुरों पर (Cancers), तथा क्षतों पर एवं कुष्ठ में भी लेप करते हैं। ज्वर रोगी को कान में इसकी जड़ बाँधते हैं। इस अभिप्राय के लिये रविवार के दिन इसकी जड़ ग्रहण की जाती है। वृश्चिक-दंश एवं सर्प-दष्ट विशेषतः फुरसा सर्प के काटने पर इसका प्रलेप गुणकारी होता है। शिरो-शूल में इसकी जड़ का चूर्ण सिर में मलते हैं। दद्रु एवं अन्यत्वग् रोगों में मूलत्वक् एवं पत्र का लेप करते हैं। सूजन उतारने के लिये इसकी पत्ती

चरक के बृंहणीय वर्ग सूत्र-स्थान चतुर्थ अध्याय में भारद्वाजी का पाठ आया है।

नव्यमत

कैम्प-बेल—पूयमेह और फिरङ्ग रोग पर—इसकी जड़ और फल काम में आता है। इसकी प्रकृति उष्ण और रूक्ष है। पर कोई कोई शीतल और कोई तर बतलाते हैं। रविवार को उखाड़ी हुई जड़ चाबने से बिच्छू का ज़हर उतरता है। इसके पत्तों को तिल-तैल में पकाकर लेप करने से बादी का दर्द नष्ट होता है। वैद्यों के अनुसार जंगली कपास (रुई) शीतल, मुख के स्वाद को सुधारनेवाली और क्षत के लिए गुणकारी है।

—ख० अ०।

काली कपास

पर्य्या०—कालाञ्जनी, अञ्जनी, रेचनी, असिताञ्जनी, नीलाञ्जनी, कृष्णाभा, काली, कृष्णाञ्जनी (रा० नि०), कृष्ण कार्पासिका कृष्ण कार्पासी, कृष्णकार्पास, शिलाञ्जनी, काली, -सं०। काली कपास -हिं०। कालिकार्पासिकनी (तुला), काल कापास -बं०। Gossypium Nigrum-ले०। काली कापशी -मरा०। हिंखणी कपाशिया-गु०।

कार्पास वर्ग

(*N. O. Malvaceoe*)

यह देव कपास की जाति का ही एक पौधा है विशेष विवरण के लिए कपासान्तर्गत टिप्पणी अवलोकन करें।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कालाञ्जनी कटूष्णा च मलामकृमिशोधनी।
अपानावर्त्तशमनी जठरामय हारिणी॥
(राजनिघण्टु ४ वर्ग)

अर्थात् काली कपास चरपरी एवं उष्ण है और यह मल (पाठांतर से अम्ल) आम तथा कृमि नाशक और अपानवायु के आवर्त्त को शमन करती तथा जठर रोगों का नाश करती है।

कृमिश्लेष्मोदरहरा हृद्रोग हारिणी।
(द्रव्य० नि०)

अर्थात् यह कफ, कृमि रोग, उदर रोग और हृद्रोग का नाश करती है।

कृष्णकार्पासिका कटूवी चोष्णा हृद्रोगनाशिनी।
कृमिं मलं चामवातं उदरं चार्शकं हरेत्॥
(भा०)

अर्थ—यह स्वाद में चरपरी तथा गरम है और हृद्रोग, कृमि, मल, आमवात, उदर, एवं बवासीर इन रोगों को दूर करती है।

नोट—पूर्वोक्त कपासों के अतिरिक्त एक प्रकार की कपास और है। जिसे "पीली कपास" कहते हैं और जिसका गोंद "कतीरा" कहलाता है। वि० दे० "पीली कपास"।

कपास-[बं०] रूई।

कपास-का-झाड़-[द०] कपास।

कपास कुहिरी-[म०] केवाँच।

कपास-नु-झाड़-[गु०] कपास।

कपास-नु-बीज-[गु०] बिनौला। कपास का बीया।

कपास-बीज-संज्ञा पुं० [हिं० कपास+सं० बीज] बिनौला।

कपासी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक मझोले डील डौल का एक पेड़ जिसे भोटिया बादाम कहते हैं। इसका फल खाया जाता है और बादाम के नाम से प्रसिद्ध है। फिंदक (२) एक प्रकार का छोटा झाड़ या वृक्ष जो प्रायः सारे भारत, मलयद्वीप, जावा और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह गरमी और बरसात में फूलता और जाड़े में फलता है, इसके फलको 'मरोड़फली' कहते हैं।

कपास्या-[राजपु०] कपास।

कपि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) बंदर। वानर। रत्ना०। (२) शिखारस नाम की सुगंधित ओषधि। सिह्लक। रा० नि० व० १२। (३) अमड़ा। आम्रातक। (४) केवाँच। शुकशिम्बी। (५) कंजा। करंज विशेष। रा० व०। (६) लालचन्दन। (७) सूअर। वराह। (८) धूप। (९) हाथी। गज। (१०) कोकिल। (११) सूर्य। (१२) आँवला। आमलकी। (१३) पिंगलवर्ण।

वि० [सं० त्रि०] पिंगलवर्णयुक्त भूरा ।

कपिक–संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस ।

कपिकच्छु, कपिकच्छू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कौंछ करेंच । केवाँच । शूकशिंबी । यथा—"कपिकच्छूवा थवा तक्षम्" । सि० यो० उन्मा० चि० ।

कपिकच्छुफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केवाँच की फली । केवाँच ।

कपिकच्छुफलोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जन्तुकालता । एक प्रसिद्ध लता जो मालवा देश में होती है । पापड़ी । रा० नि० व० ३ । पद्मावती कृष्णवल्लिका । कृष्णरुहा । नि० शि० ।

कपिकच्छुरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच । करेंच । मर्कटी । बानरी । कौंछ । प० मु० ।

कपिकच्छू–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केवाँच । बानरी ।

कपिकन्दुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खोपड़ा । कपाल । सिर की हड्डी । श० च० ।

कपिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नीला सँभालू । नीलसिन्धुवार वृक्ष । नीला सँभालू । रा० नि० व० ४ । (२) मदार । अर्कवृक्ष । रत्ना० ।

कपिकोटै–[ता०] क़हवा । काफी ।

कपिकोलि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बेर । शृगाल कोलिका । शेयाकुल (बं०) । र० मा० ।

कपिखेल–संज्ञा स्त्री० [सं० कपिलता] केवाँच । कौंछ ।

कपिगन्धिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर । गजपिप्पली ।

कपिचञ्चल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस । तुरुष्क । शब्दर० ।

कपिचूड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमड़ा । आम्रातक-वृक्ष । रा० नि० व० ११ ।

कपिचूड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'कपिचूड़" ।

कपिचूत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अश्वत्थभेद । एक प्रकार का पीपल । पलाश पीपल । (२) गजहुण्डसहोरा । भा० पू० १ भ० वटा० व० । (३) आमड़ा । आम्रातक वृक्ष । त्रिका० ।

कपिच्छ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वर्ण । सोना ।

कपिज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस । सिह्लक । तुरुष्क । रा० नि० व० १२ ।

वि० [सं० त्रि०] वानरजात । बन्दर से उत्पन्न ।

कपिजङ्घिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तैल पिप्पलिका । श० च० । तिलचट्टा ।

कपिञ्जल (क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चातक । पपीहा । (२) तीतर । गौर तित्तिरी । जैसे–'कपिञ्जल इति प्राज्ञैः कथितो गौर तित्तिरिः'। भा० ।

गुण—इसका मांस ठंडा, मीठा और हलका है । अस्तु, रक्तपित्त, रक्त श्लेष्म विकार और मन्द वात विकार में उपयोगी है । च० द० । राजनिघंटु कार के अनुसार इसका मांस गौरे (चिड़ा)के मांस से शीतल वृष्य और रुचिकारक होताहै । रा० नि० व० १७ । इसका मांस सर्वदोष नाशक, बल्य, प्रसन्नताकारक और हिक्का तथा वायु रोग नाशक है । गौर तित्तिरी (सफेद तीतर) अन्यान्य तीतर की अपेक्षा अधिक गुण होता है । (सुश्रुत) (३) शिलारस । (४) किसी-किसी के मत से काकातुआ । (५) गौरा पक्षी । (६) भरद्वाज । भरुही ।

वि० [सं० त्रि०] पीला । पीले रंग का । हरे ताली रंग का ।

कपिञ्जला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का शालि धान्य । यह कफ वर्द्धक होता है । अत्रि० १५ अ० ।

कपित–[मरा०] कमीला । कबीला ।

संज्ञा पुं० [सं० ?] छोटी इलाइची । इं० मे० मे० ।

कपितैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तुरुष्क नाम की सुगंधित ओषधि । भा० शिलारस । रत्ना० ।

कपित्थ– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कैथ ।
कपित्थक– } (२) कैथ का फल । रा० नि० व० ११ । अत्रि० सं० १७ अ० । सु० सू० अ० ४० । भा० दे० 'कैथ' । (३) पीपल का वृक्ष । अश्वत्थ वृक्ष ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलवालुक । रा० नि० ।

कपित्थका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिठवन । पृष्ठपर्णी नि० शि० ।

कपित्थ-तैल–संज्ञा पुं० [स० क्ली०] कैथ के बीज से निकाला हुआ तैल।

गुण—यह कसेला, स्वादु और चूहे के विष को दूर करता है। वै० निघ०।

कपित्थ-त्वक्–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) एलवालुक। रा० नि० व० ४। (२) कैथ की छाल।

कपित्थ-निर्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथकागोंद।

कपित्थ-पत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एलवालुक। एलाफल। नि० शि०।

कपित्थ-पत्रा– / कपित्थ-पत्री– / कपित्थ-पर्णी– संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का वृक्ष, जिसकी पत्ती कैथ की तरह होती है।

पर्य्या०—कपित्थानी। कपित्थाली। कवट-पत्री। (मरा०) कैतपत्री–ता० श०। गंधबिरजार गाछ–बं०। रत्ना०।

गुण—यह तीक्ष्ण, गरम, पाक में कटु और कसेला तथा तिक्त रस युक्त है। यह कृमि, कफ, मेद, प्रमेह, विष एवं स्नायु रोग नाशक है। वै निघ०।

संस्कृत पर्य्या०—विराजा, सुरसा और चित्र पत्रिका।

गुण—यह स्वाद में तीक्ष्ण है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। कफोल्वणता और शुक्र स्राव को उपकारी है। ख० अ०। यह गरम तर है, एवं विष के प्रभाव तथा कफ प्रकोप और शुक्र क्षय को दूर करती है। ता० श०।

कपित्थ-फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कैथ। कठबेल।

कपित्थाजक–संज्ञा पुं० [सं० कपित्थार्जक] सुरंजान विशेष।

कपित्थादिकल्क—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का योग जो स्त्री रोग में प्रयुक्त है।

योग—कैथ और बाँस के पत्ते एक साथ समान भाग पीसकर, एक तोला की मात्रा में शहद के साथ पीने से दुःसाध्य प्रदर को दूर करता है। वृ० नि० र० स्त्री रोग चि०।

कपित्थादि चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग।

विधि—कैथकी शुष्क गिरी, सोंठ, मिर्च पीपल इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करे।

मात्रा—१ से ४ मा०।

गुण—इसे शहद और मिश्री के साथ सेवन करने से उदर रोग शांत होता है। च० चि० १० अ०।

कपित्थादि पेया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण-विधि—कैथ की गूदी, बेल की गूदी चाँगेरी, अनार दाना और तक्र से प्रस्तुत की हुई पेया ग्राहिणी और पाचन होती है। यदि वात की प्रबलता हो, तो इसे पंचमूल के क्वाथ सिद्ध करके पीना चाहिये। च० सू० अ० ३।

कपित्थादि योग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग, जो ग्रहणी और अर्श में दिया जाता है।

विधि—कैथ और बेल की गूदी, सोंठ और सेंधानमक इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करें। और इसमें से उचित मात्रा लेकर सेवन करने से उक्त लाभ होताहै। वसवरा० १४ प्र० पृ० २३०.

कपित्थानी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपित्थानी। गंधा बिरोजे का पेड़।

कपित्थाम्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आम्र भेद। एक प्रकार का आम। वै० निघ०।

कपित्थार्जक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की तुलसी। सफेद तुलसी। श्वेतार्जक (मद० व० ३) बबुई तुलसी। ख़ाजाइनुल् अद्विया के रचयिता के अनुसार यह एक प्रकार का सुरंजान है। वे लिखते हैं—वैद्य कहते हैं कि यह तीक्ष्ण, शीतल और रूक्ष है तथा अवयवोंमें सूजन एवं पित्त उत्पन्न करती है। रक्त विकार तथा कफ का नाश करती है, और दाद, उदरस्थ कृमि तथा विष विकार में लाभ पहुँचाती है। ख़० अ०।

कपित्थाष्टक-चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ग्रहणी रोग नाशक एक प्रकार का योग।

विधि—कैथ की गूदी ८ भाग, मिश्री ६ भा०, अनारदाना ३ भा०, अम्ली का गूदा ३ भाग, बेल गिरी ३ भा०, धाय के फूल ३ भा०, अजमोद ३ भाग, पीपल ३ भा०, काली मिर्च १ भाग, जीरा १ भा०, धनियाँ १ भाग, पीपलामूल १ भाग, नेत्रवाला १ भा०, सौंभरनोन १ भाग, अजवायन

१ भाग, दालचीनी १ भाग, इलायची के दाने १ भाग, तेजपत्र १ भा०, नागकेशर १ भा०, चित्रक की जड़ १ भा० और सोंठ १ भाग। इन सबको कूट छान कर चूर्ण बनाएँ।

गुण—यह चूर्ण अतिसार, संग्रहणी, क्षय, गुल्म और कंठ के रोगों को नष्ट करता है। च० द०।

कपित्थास्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बंदर जिसका मुँह कैथे जैसा गोल होता है। लंगूर। गोलांगूल। मुखपोड़ा–(बं०)। त्रिका०। (२) मृग विशेष।

कपित्थनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वह स्थान जिसमें कैथे के पेड़ बहुत हों। कपित्थयुक्त देश। (२) कपित्थपर्णी।

कपित्थिल–वि० [सं० त्रि०] कपित्थ युक्त। कैथा से भरा हुआ।

कपिद्रुमु–[ते०] कपित्थ। कैथ।

कपिध्वज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दग्पगड्ढ।

कपिनामक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस। भा०।

कपिनामा–संज्ञा पुं० [सं० पुं० कपिनामन्] शिलारस। रत्ना०।

कपिपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रक्तपुष्पी। लाल चिरचिरा। रक्तापामार्ग। भा० पू० २ भ०। (२) वानरपिप्पली। वै० नि०। (३) हुलहुल वा सूरजमुखी। सूर्य्यावर्त्त चुप। र० मा०।

कपिपुच्छिका, कपिपुच्छी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच। कपिकच्छुलता।

कपिप्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवाँच। कौंछ। आलाकुशी। श० र०। (२) लटजीरा। अपामार्ग।

कपिप्रिय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) आमड़े का पेड़। आम्रातक वृक्ष। रा० नि० व० ११। (२) कैथे का पेड़। कपित्थ वृक्ष। भा०।

कपिभक्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वानरों का भक्ष्य-द्रव्य। बंदरों के खाने की चीज। (२) कदली। केला। यह वानरों का अतिप्रिय खाद्य है।

कपिभूत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारिस पीपल। वै० निघ०। पारिशारवत्थ।

कपिमानक–संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस।

कपिरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कपिल-वर्ण। पिंगल वर्ण। भूरा रंग।

कपिरस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस।

कपिरसाढ्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमड़े का पेड़। आम्रातक वृक्ष। रा० नि० व० ११।

कपिरोमफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच। कौंछ। कपिकच्छु। रा० नि० व० ३। इसका फल वानर की लोम की भाँति पिंगलवर्ण शूक से आवृत रहता है।

कपिरोमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवाँच। कपिकच्छु। (२) रेणुका। रा० नि० व० ६।

कपिल–वि० [सं० त्रि०] (१) भूरा। मटमैला। तामड़ा रंग का। (२) सफेद। (३) पीला। पिंगल वर्ण।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस। रत्ना०। (२) कुत्ता। कुक्कुर। हारा०। (३) पीतल। (४) सुश्रुत के अनुसार १८ प्रकार के ज़हरीले चूहों में से एक। इसके काटने से व्रण में सड़ाँध होती है, शरीर में गाँठे पड़ जाती हैं और ज्वर होता है। श्वेत पुनर्नवा को त्रिफला और शहद के साथ चाटने से इसमें लाभ होता है। इसका ज़हर जहाँ लगता है वहाँ व्रण हो जाता है। सु० कल्प ६ अ०। (५) शिलाजीत। शिलाजतु। (६) एक प्रकार का सीसम। बरना। (७) एक रंग। मटमैला रंग।

[मरा०, ता०] कमीला। कबीला। [मद्रास कों०] कमीला का एक भेद।

कपिलक–वि० [सं० त्रि०] कपिल। भूरा। तामड़ा।

कपिलच्छाया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कस्तूरी। मिरक़। मृगनाभि। भा० म०।

कपिलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) भूरापन। मटमैलापन। (२) सफेदी। पीलापन। (४) ललाई। (५) केवाँच। कौंछ।

कपिलद्युति–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरज। सूर्य।

कपिलद्राक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उत्तरा पथिका। एक प्रकार की बड़े आकार की दाख जो भूरे रंग की होती है। इसे अंगूर कहते हैं।

पर्याय—मृद्वीका, गोस्तनी, कपिलफला, अमृत रसा, दीर्घफला, मधुवल्ली, मधुफला, मधुलि, हरिता

हारहूरा, सुफला, मृद्वी, हिमोत्तरा, पथिका, हैमवती, शतवीर्य्या, काश्मीरी गोस्तना, गोस्तनिका–स० । अंगूर, काली दाख, भूरी दाख, मुनक्का, काला मुनक्का–हिं० । मनेक्का, आंगुर–बं० । कार्ले द्राच–मरा० । कालिधराख–गु० । वेडगणद्राचे–कना० । द्राक्ष, पोंडु–ते० । कोडिमुन्दि–ता० । ग्रेप Grape अं० । Vitis Veniera,

गुण—मधुरा शीतलाहृद्या, मदहर्षदा दाह मूर्च्छा ज्वर श्वास तृष्णा हृल्लासघ्नीच । रा० नि० व० ३ । वृष्या स्याद्गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत् । भा० । द्राक्षा तु गोस्तनी शीता हृद्या वृष्या गुरुमता । वातानुलोमनी स्निग्धा हर्षदा श्रमनाशनी ॥ दाह मूर्च्छाश्वासकास कफपित्तज्वरापहा । रक्तदोषं तृषां वातं हृद्व्यथाचैव नाशयेत् ॥ शा० नि० भू० ।

कपिलद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काली नाम की एक सुगंधित लकड़ी ।

कपिलधारा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपिला गाय के दूध की धारा ।

कपिल फला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपिल-द्राक्षा मुनक्का । रा० नि० व० ३ ।

कपिल लौह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पीतल । पित्तल हे० च० । वै० निघ० ।

कपिल शिंशपा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शीशम का एक भेद । जिसके पत्ते पीले रंग के होते हैं । इसकी लकड़ी कुछ श्यामता और ललाई लिए भूरे रङ्ग की होती है । वि० दे० "शीशम" ।

पर्य्या०—पीता, कपिला, सारिणी, कपिलाक्षी भस्मगर्भा, कृशिंशपा, –सं० । कपिल वर्ण शीशम, काली सीसो, भूरे रंगका सीसम ।–हिं० । कपिल पत्र शिशु गाछ, काला शिशु । –बं० । काला शिशवा, शिवला शिशव –मरा० । हॉवदबीड –कना० । शिशम –गु० । पशकेदर –ता० । Black wood Sisoo tree. *Tawny leaved Sisn.*

गुण—कपिला शिंशपा तिक्ता शीतवीर्य्या श्रमापहा । वातपित्त ज्वरघ्नी च च्छर्दि हिक्का विनाशिनी ॥

कपिला—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीतल । भा० म० १ भ० । (२) एक प्रकार का पीतल । राजरीति । (३) घीकार । गृहकन्या । रा० नि० व० ५ । (४) रेणुका नाम की सुगंधित औषधि रा० नि० व० ६ । (५) कपिल शिंशपा । रा० नि० व० ६ । (६) एक प्रकार की जोंक जो बिना ज़हर के होती है । सु० सू० १३ अ० । (७) एक प्रकार की सुनहली कामधेनु । मे० लत्रिक । (८) एक प्रकार की मकड़ी जिसका डसा हुआ कठिनता से अच्छा होता है । (९) शीशम । (१०) एक प्रकार की चूँटी । माटा । (११) सफेद रंग की गाय । (१२) श्यामलता । कपिल वर्णा । भूरी ।

वि० स्त्री० [सं०] (१) कपिल वर्ण की । भूरे रंग की । मटमैले रङ्ग की । (२) सफेद रंग की ।

कपिलाधिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तैल पिपीलिका । तिलचिटा ।

कपिलाञ्जक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफेद तुलसी । कपिल वर्ण तुलसी वृक्ष । वै० निघ० ।

कपिलाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कपिल शिंशपा । रा० नि० व० ६ । (२) मृगाक्षीत । मृगवारुक । सेंध । रा० नि० व० ७ ।

कपिलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सुश्रुत के अनुसार ८ प्रकार के कनखजूरों में से एक । एक प्रकार का गोजर जो कपिल वर्णका होता है । सु० कल्प० ८ अ० । (२) सुश्रुत में ६ प्रकार का चींटियों में से एक । सुनहरी बालू कोड़ी । सु० कल्प० ८ अ० ।

कपिली–[कोंकण, मदरास,] उ० प० सू० । कमीला का एक उत्तम प्रकार । ग्रंथियों को भिन्न करने के लिए यह फलों को टोकरी में झाड़ने से प्राप्त होता है ।

कपिलो–[गु०] कमीला ।

कपिलुक–[?] पुनर्नवा, गदहपूर्ना ।

कपिलोमफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] केवाँच । कौंछ । कपिकच्छु । रा० नि० व० ३ ।

कपिलोमा, कपिलोला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेणुका नाम की सुगन्धित औषधि । रेणुक बीज । रा० नि० व० ६ ।

कपिलोला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रेणुका ।

कपिलोह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पीतल । हे० च० । (२) राजरीति । उत्तम पीतल ।

कपिल्लिक–सं० पुं० [सं० पुं०] (१) कमीला । कम्पिल्लक । वै० निघ० । (२) पुनर्नवा । गदह-पुरना ।

कपिल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक ओषधि । (कोई गजपीपर को कहते हैं और कोई कमीला को) र० मा० ।

कपिवदान्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं० आमड़ेका पेड़ । अम्लातक वृक्ष । आम्रातक वृक्ष ।

कपिवल्लिका, कपिवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गजपीपर । गजपिप्पली । भा० पू० १ भ० । (२) कैथे का पेड़ । कैथ । कपित्थ वृक्ष ।

कपिवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गज पीपल । धन्व० ।

कपिवास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारिसपीपल । पारिशाश्वत्थ ।

कपिवित्तुल–[ते०] क़हवा ।

कपिविरोचन, कपिविरोधि–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मिर्च । मरिच । रा० नि० व० ६ ।

कपिविरोधि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मरिच । मिर्च ।

कपिवीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली] केवाँच का बीया । वानरी । शूक शिम्बी वीज । भैष० कामेश्वर-मोदक ।

कपिवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारिस पीपल । पारिशाश्वत्थ । वै० निघ० ।

कपिश–वि० [सं० त्रि०] (१) श्यामवर्ण । मे० शत्रिक । (२) काला और पीला रंग मिलाने से जो भूरा रंग बने, उस रंग का । मटमैला । (३) पीला भूरा । लाल भूरा ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिलारस नाम की सुगंधित औषधि । सिल्हक । (२) द्राक्षामद्य । अंगूरी शराब । वै० निघ० । "ग्रामान पश्यत् कपिशं पिपासतः" माघ । (३) आमड़ा ।

कपिशा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का मद्य । सुरा । त्रिका० । (२) माधवी लता । मे० शत्रिक ।

कपिशायन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का मद्य । त्रिका० । यह कपिश देशमें अंगूरसे बनाया जाता है ।

कपिशिका, कपिशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कपिशा" ।

कपिशीका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का मद्य ।

कपिशीर्षक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इंगुर । शिंगरफ़ हिंगुल । श० च० ।

कपिहस्तक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केवाँच । कौंछ । कपिकच्छु । रत्न० र० ।

कपी–संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा । अम्रातक ।

कपीकच्छु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केवाँच । कपि-कच्छुलता । श० र० ।

कपीज्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खिरनी का पेड़ । क्षीरिका वृक्ष । जटा० ।

कपीत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] श्वेत बुद्धावृक्ष । श्वेत बोना । र० मा० ।

कपीतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाकर प्लक्ष-वृक्ष । रा० नि० व० ११ । (२) सिरस का पेड़। शिरीष वृक्ष ।

कपीतन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गूलर का पेड़ । उदुम्बर वृक्ष । ज० द० । (२) आमड़ा । आम्रातक । वा० सू० १५ अ० न्यग्रोधादि । च० सू० ४ अ० । (३) सिरस का पेड़। शिरीष वृक्ष । रा० नि० व० ६ । (४) पीपल का पेड़ । अश्वत्थ वृक्ष । मे० नचतुष्क । (५) सुपारी का पेड़ । (६) बेल का पेड़ । श० र० । (७) गंध भादुली । गण्डमुण्ड । रत्ना० । (८) पाकर का पेड़ । प्लक्ष वृक्ष । रा० नि० व० २३ । (९) पारिस पीपल । गर्दभाण्ड वृक्ष ।

कपीता–[मरा०] कमीला ।

कपीन्द्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हनुमान । श० र० ।

कपीला–[ता०] कमीला ।

कपील–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तिन्दुक । तेन्दु । तेम्बु रा० नि० ।

कपीलो–[गु०] कमीला ।

कपीष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खिरनी का पेड़ । राज-दनी वृक्ष । वै० निघ० । (२) कैथेका पेड़ । कैथ । रा० नि० व ११ ।

कपु–[सिंगा०] रुई ।

कपुअट्ट–[सिंगा०] बिनौला । कपास का बीया ।

कपुकन्द–संज्ञा पुं० [देश० कपु+सं० कन्द] एक प्रकार का कन्द जो मालाकार काले रंग का होता है । यह नैनीताल के जंगलों में पाया जाता है । वहाँ के लोग इसे विष समझते हैं ।

कपुकिमिरस–[सिंगा०] मुश्कदाना । लता कस्तूरिका ।

कपु-गहा–[सिंगा०] कपास ।

कपुरु–[सिंगा०] कपूर ।

कपुरु तेल–[सिंगा०] कपूर का तेल ।

कपूतुङ्ग–[?] सूरजमुखी ।

कपूय–वि० [सं० त्रि०] दुर्गन्धि । बदबूदार । खराब ।

कपूर–[गु०] दे० "कपूर" ।

कपूर–संज्ञा पुं० [सं० कर्पूर पा० कप्पूर, जावा० कापूर]

पर्य्या०—कर्पूर, शीतलरजः, शीताभ्रः, स्फटिकः, हिमः, चन्द्रः, तुषार, तुहिनः, शशि, इन्दुः, हिम-वालुकः (ध० नि०) कर्पूरः, घनसारकः, सितकरः, शीतः, शशांकः, शिला; शीतांसुः, हिमवालुका हिमकरः, शीतप्रभः शांभवः, शुभ्रांशुः, स्फटिकः, अभ्रसारः, मिहिका, ताराभ्रः, चन्द्रेन्दुः, चन्द्रआलोकः, तुषारः, गौरः, कुमुदः (रा० नि०) सोमसंज्ञः, सिताभ्रकं (रा०), तरुसारः (हा०), भस्माङ्गयः (त्रि) हनुः, हिमाङ्गयः, चन्द्रभस्म, वेधकः, रेणुसारकः (शब्दर०) शीतमरीचिः, भस्म वेधकः, विधुः, शीतमयूखः (से०) घनसारः, चंद्र संज्ञः, जैवातृकः, ग्लौः,कुमुदबान्धवः सिताभ्रः, हिमवालुका, ओषधीशः इन्दुः,द्विजराजः, नक्षत्रेशः, निशापतिः, यामिनीपतिः, शशधरः, सोमः, क्षपाकरः (अ०), हिमाङ्कः, क्षपापतिः (के०) सिताभ्रः (अ० टी०) कर्पूरः, सिताभ्रः, हिमवालुकः, घनसारः (भा० प्र०)—सं० ।

नोट—भावप्रकाश के अनुसार चंद्रमा और हिम के जितने पर्य्याय हैं वे सब कर्पूर के भी पर्य्याय हैं । यथा—

"चंद्र संज्ञो हिमनामापि तस्मृतः ।" कपूर, कापुर–हिं० । कापूर–द० । कप्पूर, कर्पूर, कापूर, काफूर–बं० । काफ़ूर–अ० । कापूर–फा० ।काफ़ूरा–यू० । कैम्फोरा Camphora–ले० । वृक्ष–कैम्फोरा आफिसिनेलिस (C. Officinales) कैम्फर Camphor–अं० । कैम्फ्रे Camphre–फ्रां० । काम्फेर Kampher–जर० । करुप्पूरम्, कर्प्पूरम्, शूडन–ता० । कर्पूरम्, कर्पूरामु–ते० । कर्पूरम्–मल० । कर्पूर–कना० ।कापूर मरा० । कपूर, कर्पूर–गु० । कपुरु,कर्पूर–सिंगा० । पयो, पियो–बर० ।

टिप्पणी—इसकी अरबी और फ़ारसी संज्ञा काफ़ूर कफ़र से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ 'गोपन' अर्थात् छिपाना है । कपूर की गंध समग्र सुगंध द्रव्यों की गंध को छिपा लेती है अर्थात् उनको ढक लेती है, अतएव इसे उक्त नाम से अभिहित किया गया । इसको लेटिन, आंग्ल और युनानी सभी संज्ञाएँ आरब्य काफ़ूर शब्द से व्युत्पन्न हैं और काफ़ूर संस्कृत कर्पूर से व्युत्पन्न जान पड़ता है ।

कर्पूर वर्ग

(*N. O. Laurineœ*)

उत्पत्ति-स्थान—चीन (फारमूसा), जापान, पूर्वी द्वीप-समूह, सुमात्रा बोर्नियो । भारतवर्ष में इसका आयात बहुधा चीन और जापान से होता है ।

वर्णन तथा प्राप्ति—एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित द्रव्य जो वायु में उड़ जाता है और जलाने से जलता है । इसकी बे रंग, श्वेत, अर्द्ध-स्वच्छ, स्फटिकीय डली या आयताकार टिकिया अथवा स्थाली होती है । कभी कभी यह चूर्ण रूप में भी पाया जाता है, जिसे आंग्ल भाषाविद "फ्लावर्स आफ कैम्फर" कहते हैं । हिंदी में इसे कपूर का फूल और फ़ारसी में गुले काफूर कह सकते हैं । इसका सापेक्षिक गुरुत्व ०.९९५ है । इसको जलाया जाय तो तुरत जल जाता है । साधारण उत्ताप पर यह धीरे धीरे उड़ता है । परन्तु तीव्र उत्ताप देने से सर्वतः ऊर्द्ध-पातित हो जाता है । गंध तीक्ष्ण, भेदनीय और स्वाद किंचित् तिक्त एवं कटुक होता है । इससे पश्चात् को मुख में ठंढक का अनुभव होता है ।

विलेयता—यह एक भाग ७०० भाग पानी

में, एक भाग एक भाग सुरासार (९०%) में चार भाग एक भाग क्लोरोफार्म में, एक भाग ४ भाग ज़ैतून तैल में, एक भाग १॥ भाग तारपीन तैल में विलीन हो जाता है। यह क्षारों (Alkalies) में अविलेय है। ईथर में यह अत्यंत विलेय होता है।

टिप्पणी—तीन भाग कपूर एक भाग स्फटिकीय कार्बोलिकाम्ल के साथ मिलाकर रगड़ने से एक स्वच्छ द्रव बन जाता है। तीन भाग कपूर उतना ही क्लोरल हाइड्रेट के साथ मिलाकर रगड़ने से द्रवीभूत हो जाता है। अथवा कपूर को जब मेन्थल (पिपरमिंट), थाइमल (सत अजवायन), फेनोल, नेफ्थोल, सैलोल, ब्युटल क्लोरल या सैलिसिलिक एसिड में से किसी के साथ सम्मिलित किया जाता है, तब वह द्रवीभूत हो जाता है—दोनों मिलकर तरल हो जाते हैं। कहते हैं कि तीव्र सिरकाम्ल में भी यह विलेय होता है।

कपूर वस्तुतः एक प्रकार के उड़नशील तैल—गोंद का सांद्र भाग है जिसे आजकल कई वृक्षों से निकाला जाता है। ये सबके सब वृक्ष प्रायः दारचीनी की जाति के हैं। इनमें प्रधान पेड़ दारचीनी कपूरी Cinnamomum Camphora, *Nees*) मध्यम आकार का सदाबहार पेड़ है जो चीन, जापान, कोचीन और फारमूसा में होता है। अब इसके पेड़ हिन्दुस्तान में भी देहरादून और नीलगिरि पर लगाये गये हैं और कलकत्ते तथा सहारनपुर के कंपनी बागों में भी इसके पेड़ हैं। इसका वृक्ष ६० से ८० फुट तक ऊँचा होता है। पत्ते—अण्डाकार, मसृण, नोक की ओर संकुचित, ऊपर की ओर कुछ फ़ीका पीलापन लिये हरे रंग के और नीचेकी ओर धुमले होते हैं। इस वृक्ष के मौर आते हैं। फूल सफेद रंग के छोटे छोटे और फल मटर के समान होते हैं। इन बीजों में कपूर के समान सुगंध आती है। इस वृक्ष की छाल को गोदने से एक प्रकार का दूध निकलता है। उसी से कपूर प्रस्तुत किया जाता है।इससे कपूर निकालने की विधि यह है—इसकी पतली पतली चैलियों तथा डालियों और जड़ों के टुकड़े बन्द बर्तन जिसमें कुछ दूर तक पानी भरा रहता है, इस ढंग से रक्खे जाते हैं कि उनका लगाव पानी से न रहे। बर्तन के नीचे आग जलाई जाती है। आँच लगने से लकड़ियों में से कपूर उड़कर ऊपर के ढक्कन में जम जाता है। उन्हें पृथक् कर पुनः ऊर्द्धपातन विधि द्वारा साफ कर लेते हैं। यही उल्लिखित 'कपूर' है। इसकी लकड़ी भी संदूक आदि बनाने के काम में आती है। वृक्ष की छाल और पत्तों को भभके से भाफ के द्वारा भी तेल निकाल कर जमाते हैं।

दारचीनी जीलानी (Cinnamomum Zeylanicum, *Nees*) इसका पेड़ ऊँचा होता है। यह दक्खिन में कोंकन से दक्खिन पश्चिमी घाट तक और लंका, टनासरम, बर्मा आदि स्थानों में होता है। इसका पत्ता तेजपात और छाल दारचीनी है। इससे भी कपूर निकलता है। वि० दे० "दारचीनी"।

बरास Borneo Camphor (Dryobalanops Aromatica, *Gœrtn*) यह बोर्नियो और सुमात्रा में होता है और इसका पेड़ बहुत ऊँचा होता है। इसके सौ वर्ष से अधिक पुराने पेड़ के बीच से तथा गाँठों में से कपूरका जमा हुआ डला निकलता है और छिलकों के नीचे से भी कपूर निकलता है। इसके छोटे छोटे कुछ सफेद पर्त भी होते हैं जो वृक्ष के केन्द्र भाग में वा उसके समीप विषमाकार बर्सों में लंबाई के रुख होते हैं। इस कपूर को बरास भीमसेनी आदि कहते हैं। और प्राचीनों ने इसी को अपक्व कहा है। पेड़ में कभी २ छेद लगाकर दूध निकालते हैं। जो जमकर कपूर होजाता है। कभी पुराने पेड़ की छाल फट जाती है और उससे आप से आप दूध निकलने लगता है। जो जमकर कपूर होजाता है। यह कपूर बाजारोंमें कम मिलता है। और मंहगा बिकता है।

अधुना साधारण कपूर से विशेष विधि द्वारा अन्य औषधियों के योगसे भीमसेनी कपूर बनाया भी जाता है। इसकी अनेक विधियाँ हैं, जिनमें से कतिपय का यहाँ उल्लेख किया जाता है, यथा—

शुद्ध कपूर ८ तो०, नागरमोथा, जायफल, जावित्री, प्रत्येक १ तो०, ऊद स्याह, (काली अगर) सफेद चन्दन, खस, प्रत्येक ४ तोले,

शीतलचीनी, सफेद जीरा, बालछड़, लौंग, केसर, बड़ी इलायची के बीज, शुद्ध कस्तूरी, समुद्रफेन, चमेली का इत्र, अर्क गुलाब प्रत्येक २ तो०, समग्र औषधियों को बारीक करके कपूर मिलाकर इतना खरल करें, जिसमें कपूर के कण न दिखाई देवें। फिर अर्क एवं इत्तर डालकर इसे एक काँसी की थाली के मध्य स्थापित करें, और उसके ऊपर एक काँसे का कटोरा औंधा रखकर गूंधा हुआ आटा लगाकर संधि बंद करदेवें, पुनः थाली को चूल्हे पर रखकर उसके नीचे छोटी उंगली जैसी मोटी बत्ती डालकर एक घी का चिराग़ जला देवें। चार पहर आँच रहे और उतने काल तक ऊपर का कटोरा पानी से भीगे कपड़े से तर करके रखना चाहिये। समस्त कपूर उड़कर ऊपर जा लगेगा। शीतल होने पर उतार लेवें। लगभग ७ तोला कपूर प्राप्त होगा। इससे न्यून होने पर पुनः उसी प्रकार आंच देकर उड़ा लेवें। आँच इतनी हो जिसमें औषधि जले नहीं, और कपूर ऊर्ध्व लग्न होजाय, अन्यथा इसका उक्त प्रभाव नष्ट हो जायेगा। यह 'भीमसेनी कपूर' है।

चीनिया कपूर—फार्मोसा टापूमें टामशुई नदी के आस पास में इसका वृक्ष अधिक उत्पन्न होता है। वहाँ के गरीब लोग इसको बनाकर चीनी व्यापारियों के हाथ बेचते हैं और वे लोग यूरोपीय सौदागरों के हाथ बेच देते हैं। इसलिये इसको चीनिया कपूर कहते हैं।

चीनिया कपूर जापान में भी बनता है। कहते हैं कि इसके वृक्ष के नीचे के भाग को छोटे छोटे टुकड़े करके जापानी लोग भाफ के द्वारा उसका तैल निकाल कर जमाते हैं।

पर्य्या०—चीनकः, चीनकर्पूरः, कृत्रिमः, धवलः पट्टः (कट्टः) मेघसारः, तुषारः, द्वीपकर्पूरजः (रा० नि० १२ व०) चोनाक (भा०)—सं०। चीनिया कपूर, चीन कपूर—बं०। चीनी कापूर—म०। चिनाई कपूर—गु०।

टनासरम के इलाके में एक आप से आप उगने वाली घास है, जो ६ से ८ फुट तक ऊँची होती है। इसके पत्तों को मलनेसे तीव्र कर्पूर की सुगंध आती है। एक प्रकार की मिंडी भी है, जिससे कपूर की सी सुगंध निकलती है। खज़ाइनुल् अदबिया के रचयिता लिखते हैं कि "मैंने एक वृक्ष देखा, जो ८ फुट के लगभग ऊँचा होता है। तना लगभग ३॥–४ फुट होता है। खजूर के वृक्ष से उसका तना कुछ पतला होता है। सबसे बड़ा पत्ता अढ़ाई इञ्च के लगभग चौड़ा, नुकीला मसृण और जामुन के पत्ते की तरह होता है। इसकी डाली और पत्ते सूंघने से कपूर की सुगंधि आती है।"

उपर्युक्त पौधों के अतिरिक्त भारतवर्ष में और भी कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जिनसे कपूर प्राप्त किया जा सकता है। जैसे—आर्द्रक, नरकचूर, कुलञ्जन, इलायची, हाशा और इकलीलुल् जबल प्रभृति। इनमें भी कपूर पाया जाता है। पर साधारण तया इसे ऊपर प्रथमोक्त (Cinnamomum Camphora) वृक्ष से ही प्राप्त करते हैं।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि "जंगल की साधारण महत्व की वस्तुओं के परीक्षण से यह ज्ञात होता है कि कारस केम्फोरा (Kaurus Camphora) वृक्ष भारतवर्ष में उत्पन्न नहीं होते हैं। फिर भी ब्लूमीज़ (Blumes) जाति के प्रतिनिधि वृक्ष यहाँ पर पर्याप्त मात्रा में पैदा होते हैं। ब्लूमीज़ की कई जातियाँ, जैसे—(Blumea Balsamifera) कुकरौंधा (Blumea lacera) (Blumea Densiflora) (Blumea malcomii) और (Blumea grandis) इत्यादि नैपाल से सिक्किम तक उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार दक्षिणी पठार में १७०० से लगाकर २५०० फुट की ऊँचाई तक भी उत्पन्न होती हैं। इन जातियों के वृक्षों में से कपूर काफी मात्रा में पैदा हो सकता है।

ब्लूमिया बालसेमिफेरा (कुकुन्दर भेद) आसाम और बरमा में प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होता है। मेसन का मत है कि बरमा में ब्लूमिया बालसेमीफेरा इतना अधिक उत्पन्न होता है कि उससे आधे संसार की कपूर की माँग पूरी की जा सकती है।

डीमक ने कैफोरेशियस ब्लूमिया की तरफ जन साधारण का ध्यान आकर्षित किया है। इसके

अतिरिक्त ब्लूमिया की और कई अन्य जातियाँ होती हैं। जिनमें कि कपूर की अत्यन्त तीव्र गंध आती है और उनसे कपूर प्राप्त भी किया जा सकता है। बंगाल के मैदानों में पाई जाने वाली लिम्नोफिला प्रेटियोलाइडीज (अंबुज, अंबुली) नामक वनस्पतियों से भी बंगाल में कपूर प्राप्त किया जाता है।

इतने उत्तम साधनों के रहते हुये भी भारतवर्ष अपनी कपूर की मांग के लिए विदेशों पर ही निर्भर है। जो कपूर देशी कपूर या इण्डियन कैम्फर के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी वस्तुतः चीन का कपूर है। जो भारतवर्ष में शुद्ध किया जाता है। ब्लूमिया कैम्फर की अल्प मात्रा के अतिरिक्त और कोई भी जाति का कपूर ऐसा नहीं है। जो भारतवर्ष में उत्पन्न हुआ कहा जा सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में ऐसे पौधों की कृषि का प्रयास किया गया था कि जिनसे कपूर प्राप्त हो सके। ड्राथोवैलेनाप्स कैम्फोरा नामक वृक्ष की कृषि यहाँ पर करने का प्रयत्न किया गया था। इसके अतिरिक्त बोर्नियो और सुमात्रा के कपूर के वृक्ष से जिससे कि बरास उपलब्ध होता है। उनको भी यहाँ उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा चुका है। लखनऊ हार्टीकल्चरल गार्डेन्स की सन् १८८२–८३ की रिपोर्ट में यह बतलाया गया है कि "जो भी कपूर के वृक्ष यहाँ पर लगाये गये थे, उनका परिणाम अति उत्तम हुआ, ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि यदि इस विषय में पर्याप्त उत्साह लिया जाय, तो ब्लूमीज़ जातिसे उपलब्ध होनेवाले कपूर से या ड्रायबैलेनाप्स नामके वृक्षों से कपूर प्राप्त करने में व्यापारिक साफल्य प्राप्त हो सकता है।

कर्पूर वृक्ष सदैव हरा रहनेवाला वृक्ष है। यह कोचीन, चीन से शंघाई पर्यन्त और हेनान से दक्षिण जापान तक होता है। प्रथम यह चीन में बहुत उत्पन्न होता था, पर अब वहां की पैदायश बहुत कम हो चुकी है। इस समय जापान और फारमूसा ही इसकी उत्पत्ति के प्रधान केन्द्र हैं। कपूरके सभी वृक्षों में से कुछ गाढ़ा तेल प्राप्त किया जाता है। इसको वैज्ञानिक विधि से साफ करने पर कपूर प्राप्त होता है। लकड़ी और जड़ से जो तेल प्राप्त होता है वह अधिक उपयोगी ठहरता है, उसमें कपूर के अतिरिक्त "साफरल" नामक एक पदार्थ और रहता है।

कृत्रिम कपूर

इसके अतिरिक्त रासायनिक योग से कितने ही प्रकार के नकली कपूर बनते हैं। जापान में दारचीनी कपूरी के तेल से (जो लकड़ियों को पानी में रखकर खींचकर निकाला जाता है) एक प्रकार का कपूर बनाया जाता है। तेल भूरे रंग का होता है और वार्निश के काम में आता है। आजकल तारपीन तैल में लवणाम्ल-हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाकर नकली कपूर बनाया जाता है। बोर्नियो कैम्फर-बरास को रासायनिक विधि से साधारण कपूर में परिणत कर सकते हैं और सामान्य कपूर में ऐल्कोहालिक पोटाश मिलाकर उससे बोर्नियो कैम्फर निर्मित कर सकते हैं। एब्राहनुल अदविया के अनुसार प्रायः केले की जड़ और पत्तियों तथा कपूर की लकड़ी और कई अन्य द्रव्यों से नकली कपूर बनाया जाता है। आईन अकबरी में बनावटी कपूर की विधियाँ लिखी हैं। उसके अनुसार नरकचूर-जरबाद में अन्य चीजें मिलाकर कपूर बनाते हैं और उसे चीनी कहते हैं। संग सफेद के महीन चूर्ण में कपूर, मोम, बनफ़शा का तेल और गुल रोगन मात्रानुसार योजित करके भी कृत्रिम कपूर बनाते हैं। कपूर की छोटी छोटी टिकिया जो बाज़ार में बिकती हैं उसको औषधि के काम में नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि यह कृत्रिम रीति से बनाई जाती हैं। उसे केवल सुगंधि के लिये काम में ले सकते हैं।

इतिहास—भारतीयों का कर्पूर विषयक ज्ञान अति प्राचीन है। अस्तु, प्रागैतिहासिक काल से ही औषध रूप से एवं धार्मिक कृत्योंमें भी इसका बहुल प्रयोग दिखाई देता है। सुश्रुत, चरक, वाग्भट, हारीत प्रभृति प्राचीन आयुर्वेद-ग्रंथों में 'कर्पूर' का केवल नाम ही नहीं, अपितु गुणागुण पर्यन्त उल्लिखित देखने में आता है। फार्माकोग्राफिया के रचयिता डाक्टर फ्लकीजर के कथनानुसार प्राचीन युनानी एवं लेटिन चिकित्सक कपूर से अपरिचित थे। परन्तु अरब्य वैद्यक तत्वविद् इसे

भली भाँति जानते थे। अतएव उन्हीं से युरूप निवासी और उत्तर कालीन युनानी चिकित्सकों को इसका ज्ञान हुआ। इसी कारण इसका युनानी नाम 'काफूरा' है, जो इसके अरबी नाम काफूर से व्युत्पन्न है। युरूपवासियों को मध्य काल (ईसवी सन् की पाँचवी से पंद्रहवीं शताब्दी) में अरब वासियों से प्रथम बोर्नियो कैम्फर का ज्ञान प्राप्त हुआ।

कपूर के सम्बन्ध में प्राचीन अर्वाचीन मत

कपूर भेद—धन्वन्तरीय नामक प्राचीन आयुर्वेदीय द्रव्यगुण विषयक ग्रन्थ में कपूर का कोई भेद स्वीकार नहीं किया गया है। राजनिघंटुकार ने (निघंटु रत्नाकर में) गुण, स्वाद एवं वीर्य के अनुसार इन चौदह प्रकार के कपूर का नामोल्लेख किया है, यथा पोतास, भीमसेनी शितकर, शंकरावास, प्रांशु, पिंग, अब्दसार, हिमयुता, वालुका, जूटिका. तुषार, हिम, शीतल और पक्किा (पच्चिका पच्चिका)। उत्पत्तिस्थान—स्थान भेद से पुनः कपूर इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है, यथा—शिर, मध्य और तल। स्तम्भ के अग्र भाग में होने वाला कपूर शिर संज्ञक, मध्य में मध्यम और पत्तों के तले होनेवाला तल संज्ञक है। प्रकाशवान् स्वच्छ और फूला हुआ—शिर, सामान्य फूला हुआ और स्वच्छ—मध्यम और तल में होनेवाला चूर्णवत् भारी है। स्तम्भ के गर्भ में स्थित कपूर—उत्तम, स्तम्भ के बाहर होनेवाला—मध्यम तथा निर्म्मल और कुछ पीलापन युक्त श्रेष्ठ कपूर, मध्य में होनेवाला है, कड़ा, सफेद, रूखा और फूला हुआ बाह्य कपूर कहलाता है। इससे भिन्न राजनिघंटुकार ने 'चीनकर्पूर' नामक अन्यतम प्रकार के कर्पूर के गुण पर्य्याय लिपिबद्ध किये हैं। राजवल्लभ और भावप्रकाश में पक्व और अपक्व भेद पर इन दो प्रकार के कपूरों का उल्लेख देखने में आता है। इसके अतिरिक्त भावप्रकाश में चीनाककपूर—चिनिया कपूर नामक एक और प्रकार के कपूर का उल्लेख मिलता है। राजनिघंटु में पक्वापक्व कर्पूर का विवरण नहीं पाया जाता। राजनिघंटुकार ने चीनकर्पूर का एक पर्य्याय 'कृत्रिम' लिखा है, जिससे यह विदित होता है कि चीन कर्पूर ही कृत्रिम कपूर है।

अनुभूत चिकित्सा-सागर नामक अर्वाचीन ग्रंथ के अनुसार कपूर कई प्रकार का है। उनमें से मुख्य तीन भेद इस प्रकार है। १—कपूर, (२) चोनिया कपूर और (३) भीमसेनी कपूर। आर्य-औषध नामक ग्रंथ में कपूर के दो भेदोंका उल्लेख पाया जाता है। प्रथम वह जो इसके रस को पका कर तैयार किया जाता है। द्वितीय वह जो बिना पकाये इसके वृक्ष में छेदा आदि देकर प्राप्त किया जाता है। पकाया हुआ लघु एवं बहुत सस्ता होता है। बाजारों में मिलने वाला साधारण कपूर पकाया हुआ कपूर है। बिना पकाया हुआ बहुत साफ और बढ़िया होता है। इसलिये बहुमूल्य होता है। इसके एक पौंडका मूल्य लगभग १००) होता है और पक्व एक पौंड ॥) में मिलता है। अपक्व को 'बरास' और 'भीमसेनी' भी कहते हैं। कपूर बोर्नियो टापू से आता है और एक पेड़ में अधिक से अधिक दश पौंड तक निकलता है।

आईन अकबर नामक फ़ारसी भाषा के ग्रंथ में लिखा है, कि कतिपय ग्रंथों से यह ज्ञात होता है कि जिसे वृक्ष से प्राप्त करते हैं उसे 'भीमसेनी' या 'जौदाना' कहते हैं।

यूनानियों ने तीन प्रकार के कपूर का उल्लेख किया है, यथा—(१) रियाही। यह रक्ताभ श्वेत मस्तगी के समान होता है और आपसे आप वृक्ष के भीतर से उबलकर निकलता है। यह उच्चकोटि का एवं सर्व श्रेष्ठ होता है। गरमी लगने या धूप में रखा रहने से यह नरम हो जाता है और अति शीघ्र पिघलता है। यह बहुत कम उपलब्ध होता है। हिंदी में इसको भीमसेनी कहते हैं। इसका रियाही नाम इस कारण पड़ा कि अत्यन्त सूक्ष्म होने की वजह से यह वायु—रियाह के साथ उड़ता है। किसी किसी के मत से शाह रियाह को लक्ष्य करके इसका नाम काफूर रियाही रक्खा गया है। रियाह वह पहला व्यक्ति है जिसने इसको सर्व प्रथम पहिचाना या जिसको यह सर्वप्रथम मिला, या जिसके जमाने में यह पाया गया, वह हिंदुस्तान का अधिपति था। (२) क़ैसूरी—यह क़ैसूर नामक स्थान से प्राप्त होता है। क़ैसूर संभवतः फारमूसा द्वीप में अथवा लंका से लगा हुआ एक स्थान का नाम है। यह अत्यत

श्वेत, स्वच्छ उज्ज्वल और परतदार होता है। वृक्ष के भीतर से निकलता है। यह भी श्रेष्ठतम, शुद्ध और अल्प प्राप्य है। जिस वर्ष अधिक वज्रपात होता है और भूकम्प होता है, उस वर्ष वह अधिक निकलता है। (३) क़ाफ़ूर मोती—इस प्रकार का कपूर वृक्ष की डाल, पत्ते और लकड़ी प्रभृति टुकड़े-टुकड़े करके क्वथित करने से प्राप्त होता है। यह अस्वच्छ धूमिल रंग का होता है।

फारमूसा या फारमूसा द्वीप का कपूर अधिक प्रसिद्ध है। इसी को काफ़ूर क़ैसूरी कहते हैं। यह फारमूसा से क़ैसूर होकर आता होगा, जो सरान द्वीपस्थ एक स्थान है अथवा यह फारमूसा के सन्निकट कोई स्थान होगा, रियाही काफ़ूर के वृक्ष सुमात्रा और बोर्नियो में उत्पन्न होते हैं।

नोट—क़ाफ़ूर क़ैसूरी, काफ़ूर रियाही और काफ़ूरमोती को, आंग्ल भाषामें क्रमशः इन संज्ञाओं द्वारा पुकारते हैं—(१) Farmosa Camphor फारमूसा कैम्फर, लारेल कैम्फर Laurel Camphor. (२) बोर्नियो कैम्फर Borneo Camphor. या बोर्नियोल Borneol. और (३) ब्लूमिया कैम्फर, Blumea Camphor या निगाई कैम्फर Nagai Camphor.

तालीफ़ शरीफ़ी में, जो आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण विषयक फ़ारसी भाषा का निघण्टु है यह लिखा है कि कपूर चार प्रकार का होता है। बुतासर (पोतास), भीनसेनी, भीम सुबास (?) और उदय भास्कर। गुणधर्म में ये सब समान होते हैं मादनुश्शिफ़ा में वैद्यों के कथनानुकूल केवल इसके ये तीन भेद लिखे हैं, यथा—(१) सफेद, (२) पीताभ श्वेत और (३) थोड़ा सफ़ेद।

नव्यमत—

अर्वाचीन अन्वेषकों ने कपूर के प्रधानतः ये दो भेद स्वीकार किए हैं, यथा—(१) चीन और जापान कर्पूर और (२) बोर्नियो और सुमात्रा कर्पूर। डिमक के अनुसार 'सिन्नेमोमम् कैम्फोरा' अर्थात् दारचीनी कपूरी के वृक्ष से चीन और जापान कर्पूर तथा 'डाइयोबेलानप्स ऐरोमेटिका' के पेड़ से बोर्नियो और सुमात्रा नाम कर्पूर प्राप्त होता है। इनमें से प्रथम प्राचीनोक्त पक्व एवं द्वितीय अपक्व कर्पूर है। इस देश में विशुद्ध चीन और जापान कर्पूर अत्यल्प मात्रा में और अधिकतया अविशुद्ध रूप में ही आता है। इस अविशुद्ध कर्पूर को भारी करने के हेतु बम्बईमें इसे प्रणाली विशेष द्वारा पुनः ऊर्द्ध्वपातित करते हैं, जिससे १४ भाग कपूर में २॥ भाग जल (इस अनुपात से उसमें जल) अभिशोषित हो जाता है। अविशुद्ध चीन और जापान कपूर में से जापान कपूर अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होता है। साधारणतः यह दो प्रकार के कपूर ही बाजार में विक्रीत होते हैं। जापान से जो विशुद्ध कर्पूर भारतवर्ष में आता है वह बृहत् चतुष्कोण; पिष्टाकृति स्थालों के आकार का डेढ़ इञ्च मोटा होता है और उसके केन्द्र भाग में छिद्र होता है। विशुद्धता में यह प्रायः यूरोप से आये हुये कपूर के तुल्य होता है। विशुद्ध जापान कपूर टिन मढ़े हुए पेटियों में रहता है। प्रत्येक पेटी में दो सेर तेरह छटांक कपूर होता है।

अविशुद्ध जापान—कर्पूर दानेदार होता है और एक में लिपटकर प्रायः पिण्डाकृति ग्रहण कर लेता है। यह अविशुद्ध चीनियाँ कपूर के समान आर्द्र नहीं, अपितु शुष्क होता है और वर्णान्तरित नहीं होता। कभी-कभी यह कुछ गुलाबी रंग का होता है। अविशुद्ध चीनिया-कर्पूर के ईषद् शुभ्र वा धूसरवर्ण के छोटे २ दाने होते हैं। और जल की विद्यमानता के कारण न्यूनाधिक आर्द्र होते हैं। यह टिन मढ़ी हुई पेटियों में आता है। इनमें से प्रत्येक पेटी में एक मन सोलह सेर कपूर होता है। बोर्नियो और सुमात्रा कर्पूर—बोर्नियो कर्पूर अर्थात् बरास साधारण कपूर की अपेक्षा किञ्चित् कठिन एवं भारी होता है अतएव यह जल में डूब जाता है।

डिमक के मत से बोर्नियो कपूर ही भीमसेनी कपूर है। आजकल आधसेर उत्तम बोर्नियो कपूर का मूल्य १००) और अपेक्षाकृत हीन गुणान्वित का मूल्य ७०)-८०) है।

ईसवी सन् १७१३ में मि० जान मेकडोनल्ड ने सुमात्रा-कर्पूर के संग्रह की प्रणाली इस प्रकार

लिखी है—"सुमात्रा द्वीप के कर्पूर-संग्राहकगण संग्रह के निमित्त यात्रा करने के पूर्व नाना प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। इसके बाद वे कर्पूर के पुराने वृक्ष का अन्वेषण कर उसके कांड को विद्ध करते हैं। और यदि उससे प्रचुर तैल-स्राव होता है, तो इससे उनको उसके भीतर जमे कर्पूर-सांद्रीभूत कर्पूर होने का निश्चय होजाता है। पुराने और बड़े वृक्षों में जड़ से लेकर १७–१८ फुट ऊपर के भाग तक कर्पूर होता है। फिर वे वृक्ष को काटकर उसके काण्ड और शाखा को खंड २ और बहुधा विभक्त कर चतुरतापूर्वक कर्पूर का संग्रह करते हैं। एक पेड़ से लगभग ७½॥ से अधिक कर्पूर नहीं प्राप्त होता। संगृहीत कर्पूर को साफ करने के लिए उसे साबुन के पानी में डुबा कर बार-बार धोते हैं। साफ होजाने पर यह जल में डूब जाता है और देखने में श्वेत; उज्ज्वल, मसृण एवं कुछ-कुछ पारदर्शक होता है। धोने के बाद तीन प्रकार के भिन्न-भिन्न छिद्रों की चलनी से चालकर उक्त कर्पूर को शिर, उदर और पाद इस प्रकार उक्त तीन श्रेणियों में पृथक् करते हैं। पुनः उक्त तीनों प्रकार में से थोड़ा-थोड़ा लेकर एकत्र मिला विक्रयार्थ चीन देश को प्रेषित करते हैं।

कपूर की प्राप्ति एवं लक्षण विषयक भ्रमपूर्ण विचार

कवियों का और साधारण गँवारों का विश्वास है कि केले में स्वाती की बूंद पड़ने से कपूर उत्पन्न होता है। जायसी ने पद्मावत में लिखा है—'पड़े धरनि पर होय कचूरु। पड़े कदलि महं होय कपूरु' किसी-किसी के विचार से यह केले के बहुत पुराने वृक्षोंसे निकलता है। दस्तूरुल्-इत्तिबा में तो यहाँ तक लिखा है कि वह कपूर जो केले के तने से निकलता है वह अत्यन्त श्वेत होता है। और उसके बड़े-बड़े चौड़े-चौड़े टुकड़े होते हैं। और पत्तों से निकला हुआ उससे निर्बल होता है तथा जड़ से प्राप्त खराब और बालू रेत की तरह होता है। किसी-किसी के विचारानुसार कतिपय पौधों को नीबू की चपकियों में डालकर सड़ाने से कर्पूर प्राप्त होता है, इत्यादि। इसी प्रकार वंश-लोचन, गोरोचन, आदि के संबन्ध में भ्रमकारक विचार प्रचलित हैं, जिनका परिहार परम आवश्यकीय है।

आईन अकबरी में उल्लिखित है कि कपूर उड़ाने से साफ और सफेद होजाता है। इब्न बेतार के अनुसार यह लाल और चमकीला होता है और उड़ाने से सफेद हो जाता है। आईन अकबरी में लिखा है कि कदाचित् एक किस्म ऐसी भी हो, अर्थात् वह जो वास्तविक कपूर है और संपूर्ण संसार में जिसका व्यवसाय होता है। इससे ज्ञात होताहै कि उस समय लेखकको कपूर के वास्तविक रूप का स्पष्ट ज्ञान न था।

कपूर की परीक्षा

स्वच्छं भृङ्गारपत्रं लघुतर विशदं तोलने तिक्तकं चेत्। स्वादे शैत्यं सुहृद्यं बहलपरिमलामोदसौरभ्यदायि। निःस्नेहं दाढर्यपत्रं शुभतर मिति चेद्राजयोग्यं प्रशस्तं। कर्पूरं चान्यथा चेद्बहुतरमशने स्फोटदायि व्रणाय॥

(रा० नि० १२ व०)

अर्थ—भाँगरे के पत्तों के समान जिसके छोटे छोटे टुकड़े हों, जो अत्यन्त हलका हो, और तौल में अधिक चढ़े, खानेमें कड़वा लगे, शीतल, हृदय को प्रिय, अत्यन्त सुगंधि की लपट देने वाला, चिकनाई रहित और कठोर-पत्र का हो, ऐसा शुभ कर्पूर राजाओं के योग्य है। इससे विपरीत प्रायः फोड़े तथा घाव को प्रगट करनेवाला कहा है।

नकली असली कपूर की परीक्षा

कपूर को पाले या बरफ में लपेटकर जलाएँ, यदि वह दिया की तरह जले तो असली, वरन् नकली समझें, इसे गरम रोटी के टुकड़े में रक्खें, यदि पसीज जाय और नमी पैदा होजाय, तो शुद्ध अन्यथा अशुद्ध जानें, इसके अतिरिक्त यदि इसे भौं के ऊपरी भाग में मलने से आंख में प्रदाह एवं शीत प्रगट हो और आँख से जल प्रवाहित होने लगे, तो भी शुद्ध जानना चाहिए। हकीम कमालुद्दीन हुसेन शीराजी से उद्धृत है कि कपूर को बोतल में भरकर उसे अग्नि पर रक्खें, यदि वह धुआँ बनकर उड़ जाय, तो उसे उत्तम सम-

झना चाहिये। इसके विपरीत हो तो निकृष्ट। वस्तुतः शुद्धाशुद्धि में भेद करना बहुत कठिन है। ख० अ०।

श्रेष्ठ कपूर के लक्षण

भैषज्य रत्नावली में लिखा है—

पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्,
तत्रापि स्यात्यदच्छुण्णं स्फटिकाभं तदुत्तमम्।
पक्वञ्च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तरम्,
भङ्क्त्वेमनागपि न चेटिपतन्ति ततः कणाः॥
हस्तेनिघृष्य कर्पूरं रेखां हस्तस्य लक्षयेत्,
यदि सा दृश्यते विद्धि कर्पूरमिति भद्रकम्।

कपूर को सुरक्षित रखने की विधि—

कपूर वायु में विशेषतः गर्मी में शीघ्र उड़ जाता है। इसलिएइसमें जौ या कालीमिर्च के कुछ दाने या कोयला मिलाकर बोतल में भरकर मजबूत डाट लगादें। जिसमें उसके भीतर बाह्य वायु का प्रवेश न हो सके। ऊपर से थोड़ा मोम भी जमा दें।

औषधार्थ व्यवहार—सांद्रीभूत, उड़नशील, तैल अर्थात् कपूर (Stearoptene.)

रासायनिक संघटन—सङ्केत सूत्र ($क_{१०}$ $उद_{१६}$ ओष)

मात्रा—(ब्रिटिश फार्माकोपिया में) १ रत्ती से २॥ रत्ती (=०·१२ से ०·३ ग्राम) १ से ३ ग्रेन वा ०·०६ से ०·२ ग्राम तक त्वगधोऽन्तःक्षेप द्वारा।

औषध-निर्माण—आयुर्वेदीय मतानुसार—

वटी, चूर्ण, दूधिया घोल, आसव, स्पिरिट, प्रलेप, तैल, अभ्यंग अर्क; मिश्रणादि। यह निम्न आयुर्वेदीय योगों में पड़ता है। यथा—कर्पूर तैल, कर्पूरादि तैल, कर्पूराद्य तैल, कर्पूर वटी, कर्पूरासव, कर्पूराद्य चूर्ण, कर्पूर रस, कर्पूरादि योग, कर्पूराद्य रस, लवङ्गादि चूर्ण, एलोपैथी में यह कैम्फर (कर्पूर) नामक योगों में एवम् अंग्वेण्टम् हाइड्रार्जिराई कंपाजिटा तथा फार्माकोपियान्तर्गत १५ में से लिनिमेंटम् टेरीबिन्थिनी (Lint. Terebinthinœ) आदि १० लिनिमेंटेसमें और निम्न योगों में पड़ता है।

अधिकृत एलोपैथीय योग—

(*Official Preparations*)

(१) एक्वा कैम्फोरी Aqua Camphoræ ले०। कैम्फर वाटर Camphor water –अं०। कर्पूरार्क, अर्क कपूर।–हिं०। माउल् काफूर –अ०। आब काफूर –फ़ा०।

निर्म्माण-क्रम—कैम्फर ७० ग्रेन, परिस्रुत जल एक गैलन, सुरासार (९० प्रति०) आवश्यकतानुसार। कपूर को सुरासार में विलीन कर आध फ्लुइड आउंस घोल प्रस्तुत करें, पुनः उसे क्रमशः परिस्रुत वारि में सम्मिलित करलें।

शक्ति—उक्त घोल के सहस्र भाग में एक भाग कपूर होता है।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड आउन्स=(१५ से ३० घन शतांशमीटर) जिसमें $\frac{७}{१६}$ से $\frac{७}{८}$ ग्रेन कपूर होता है। इसका उपयोग केवल अत्यन्त प्रभावकारी औषधियों के अनुपान-स्वरूप होता है।

(२) लिनिमेंटम् कैम्फोरी–Linimentum Camphoræ–ले०। लिनिमेंट आफ कैम्फर Liniment of Caphor, कैम्फोरेटेड आइल Camphorated oil –अं०। कर्पूराक्त तैल, कर्पूराभ्यङ्ग –हिं०। तमरोग़ काफ़ूर, मुरब्बिग़ काफूर, दुहानुल् काफूर, रोग़न मालिश काफूरी, काफूरी तेल –उ०।

निर्म्माण-क्रम—कैम्फर फ्लावर्स (कर्पूर) १ आउंस, जैतून तेल ४ फ्लुइड आउंस। कपूर को तेल में विलीन करलें।

शक्ति—इसके ५ भाग में १ भाग कपूर होता है। चिरकालानुबंध वेदनापूर्ण व्याधियों में इसका उद्दीपनीय प्रयोग होता है।

यह लिनिमेंटम् क्लोरोफॉर्माई, लिनिमेंटम् हाइड्रार्जिराई और लिनिमेंटम् टेरिबिन्थीनी एसीटेट्स में पड़ता है।

(३) लिनिमेंटम् कैम्फोरी अमोनिएटम् Linimentum Camphoræ Amm-

oniatum–ले० । अमोलिएटेड लिनिमेंट आफ कैम्फर Ammoniated Liniment of Camphor or Lint Camphor Co.–अं० । कर्पूरामोनियाभ्यंग–हिं० । तमरीख़ काफूरी अमोनियाई, मुरब्बिख काफूरी अमोनियाई –उ० । शक्ति—इसके ८ भाग में १ भाग कपूर होता है । वि० दे० "अमोनिया" ।

(४) स्पिरिटस कैम्फोरी Spiritus Camphoræ, टिंक्चर कैम्फोरी Tr Camphor œ–ले० । स्पिरिट आफ कैम्फर Spirit of Camphor–अं० । रूह कपूर । रूह काफूर ।

निर्माण-क्रम—कैम्फर १ आउंस, (सुरासार ९०%) आवश्यकतानुसार । कपूर को इतने सुरासार में विलीन करें कि प्रस्तुत स्पिरिट का द्रव्यमान पूर्ण १० फ्लुइड आउंस हो जाय । शक्ति—इसके १० भाग में १ भाग कपूर होता है ।

मात्रा—५ से ३० बूँद (०.३ से २ घन शतांशमीटर) इमल्शन में मिलाकर ।

(५) टिक्च्युरा कैम्फोरी कंपोजिटा Tinctura Camphoroe Composita टिक्च्युरा ओपियाई कैम्फोरेटा Tinctura opii Camphorata–ले० । कंपाउंड टिंक्चर आफ कैम्फर Compound Tincture of Camphor, टिं० कैम्फर को० Tr Camphor Co. पैरेगोरिक Paregoric, पैरेगोरिक एलिक्सिर Paregoric Elixir–अं० । मिश्र कर्पूरासव, कर्पूराहिफेनासव–हिं० । सबग़हे काफूर मुरक्कब, तअ्फ़ीन काफूर मुरक्कब, तअ्फ़ीन अफ़्यून काफ़ूरी, अक्सीर मुसक्किन–उ० ।

नोट—पैरेगोरिक यूनानी 'पैरेगोरिकोस' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ अवसन्नताजनक औषध है और एलिक्सिर जो अरबी अल्इक्सीर का अपभ्रंश है । अस्तु पैरेगोरिक एलिक्सिर का अर्थ हुआ 'अवसन्नकारी रसायन' ।

निर्माण-विधि—टिंक्चर आफ ओपियम् ५८५ बूँद, बेंजोइक एसिड ४० ग्रेन, कैम्फर ३० ग्रेन, आइल आफ एनिसाई ३० बूँद, सुरासार (६०%) आवश्यकतानुसार ।

बेंजोइक एसिड, कैम्फर और आइल आफ एनिसाई को १८ फ्लुड आउंस सुरासार में विलीन कर उसमें टिंक्चर आफ ओपियम् और इतना सुरासार सम्मिलित करें कि कुल द्रव्यमान एक पाइंट हो जाय । यदि आवश्यक हो, तो इसे छान (फिल्टर कर) ले ।

शक्ति—इसके एक फ्लुइड आउंस में २ ग्रेन या एक फ्लुड ड्राम से $\frac{1}{4}$ ग्रेन अफीम वा $\frac{1}{३७}$ ग्रेन मार्फीन होता है ।

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १ फ्लुइड ड्राम=३० से ६० बूँद (२ से ४ घन शतांशमीटर) जिसमें $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ ग्रेन अफीम होता है ।

प्रभाव—निद्राजनक (Narcotic) और कफ निःसारक ।

अनधिकृत योग

(*Not Official Preparations*)

(१) एसिडम् कैम्फोरिकम् (Acidum Camphoricum) अर्थात् कर्पूराम्ल, कर्पूर सार, तेज़ाब काफूर, जौहर काफूर । यह एक श्वेत स्फटिकीय चूर्ण है जो जल में अल्पविलेय होता है । क्षयगत (Pathisical) रात्रिस्वेद एवं वस्ति-प्रदाह (Vesicle Catarrh) में इसका व्यवहार होता है ।

मात्रा—८ से ३० ग्रेन वा ०.५ से २ ग्राम कीचट में डालकर ।

(२) कैम्फर बाल Camphor Ball अर्थात् कर्पूरीय कंदुक ।

विधि—कैम्फर (कपूर) २ भाग, सफेद मोम ५ भाग, स्पर्मसेटी (ह्वेलमत्स्य शिरोवसा) ३ भाग, बादाम तैल ३ भाग, टिंक्चर आफ टोलू $\frac{1}{4}$ भाग, सब औषधियों को पिघलाकर आध आउंस के गैली-पाट में डालकर गेंद सा बनालें । इसको चैरडस्किन पर मला करते हैं ।

(३) कैम्फोरा कम क्रेटा (Camphora cum Cretæ अर्थात् कर्पूरित खटिका । इसको 'कैम्फोरेटेड चाक' भी कहते हैं ।

निर्माण-विधि—कैम्फर (कपूर) १ भाग, प्रेसिपिटेटेड चाक (तल चिस खटिका) ८ भाग ।

कपूर में सुरासार (९०%) की कुछ बूँदें मिला कर उसे चूर्ण करें। फिर उसे चूर्णीकृत खटिका में मिलाकर बारीक चलनी में चाल लें। दंत-मंजन (Dentifrices) रूप से इसका उपयोग होता है। (बी० पी० सी०)

(४) कैम्फोरेटेड क्लोरोफार्म Camphorated Chloroform अर्थात् कर्पूरित क्लोरोफार्म। दे० "क्लोरोफार्म"।

(५) कैम्फोरेटेड क्विनीन Camphorated Quinine अर्थात् कर्पूरित कुनैन।

निर्माण विधि—कपूर का चूर्ण ८ ग्रेन, अमोनिएटेड टिंक्चर आफ क्विनीन आवश्यकतानुसार एक फ्लुइड आउंस तक। यह साधारण प्रतिश्याय के लिये अत्यंत उत्कृष्ट औषध है।

मात्रा—१ से २ ड्राम।

(६) फेनोल कैम्फर Phenol Camphor दे० "कार्बोलिकाम्ल"।

(७) स्पिरिटस कैम्फोरी फार्शियार Spiritus Camphora Fortior, एसंशिया कैम्फोरी Essentia Camphora–ले०। रूबिनीज़ एसंश Rubini's Essence, एसेंस आफ कैम्फर Essence of Camphor–अं०। उग्र रूह कर्पूर। रूह काफूर तेज।

निर्माण विधि—कैम्फर (कपूर) २ भाग, सुरासार (९०%) आवश्यकतानुसार ५ भाग तक। कपूर को सुरासार में विलीन कर लें या फ्लावर्स आफ कैम्फर १ भाग, जलशून्य सुरासार (Absolutealcohol) १ भाग (अर्थात् दोनों समभाग) दोनों को सम्मिलित करलें।

मात्रा—२ से ५ बूँद हर १५–१५ मिनट के उपरान्त। विषूचिका एवं अतिसार में बहुत गुणकारी है।

(८) आक्सी कैम्फर Oxycamphor—यह एक सफेद स्फटिकीय चूर्ण है जो एक भाग ५० भाग पानी में विलीन हो जाता है। यह श्वासकृच्छ्रता (Dyspoenia) में उपकारी है।

फुफ्फुसीया श्वासकृच्छ्रता में ५ से १५ ग्रेन की मात्रा में साधारणतया आक्सेफर (Oxapher) रूप में जो ५० प्रतिशत का सुरासार घटित विलयन है, इसका मुख द्वारा प्रयोग होता है।

मात्रा—५ से १५ ग्रेन कीचट में या जेलाटीन कैप्शूल में डालकर देना चाहिये।

(९) कैम्फोरा मानोब्रोमेटा (Camphora Monobromata—इसके विवर्ण मंशूरी सोज़नीक़लमें या परत होते हैं, जिनमें कर्पूरवत् गंध एवं स्वाद होता है। विलेयता—यह जल में अविलेय है, परन्तु यह एक भाग १२ भाग सुरासार (९०%) में एवं १० भाग ७ भाग क्लोरोफार्म, १ भाग २ भाग ईथर, १ भाग ८ भाग जैतून तैल में और किसी क़दर ग्लीसरीन में विलीन होता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग—योषापस्मार, कंपवात मदात्यय और मृगी विशेष (Petit mal) में इसका निद्राजनक और नाड़ी गत क्षोभहारक (Nervous Sedative) प्रभाव होता है। शुक्रमेह में भी इसका उपयोग होता है। (मे० मे० घोष) उपयुक्त मात्रा (५ से १० ग्रेन) में मदात्यय (Delirium tremens), मृगी, योषापस्मार कंपवायु (Chorea), वात शूल (Neuralgia), कूकर कास (Pertussis) और श्वास रोग में इसका उपयोग किया गया, परन्तु इसका कोई इच्छित सुपरिणाम नज़र नहीं आया। अस्तु, जब तक इसकी अपेक्षा कोई अधिक सुपरिचित एवं परीक्षित औषध प्राप्य हो, इसका उपयोग कदापि न करना चाहिये। इसका उपयोग चतुराई से करना चाहिये, क्योंकि इसके अधिक मात्रा में देने से अतीव मांसपेशीय क्लांति, आक्षेप, शारीरिक तापक्रम एवं नाड़ी की गति का क्रमिक ह्रास श्वासोच्छ्वास की मंदता तथा मूर्च्छा (Coma) और अंत में मृत्यु उपस्थित होती है। इसके उपयोग में सबसे बड़ी असुविधाजनक बात इसकी अह्रद्य गंध तथा स्वाद, आमाशय पर होने वाला इसका प्रदाहकारी प्रभाव एवं अन्तः त्वगीय सूचिका भरण (Hypodermic injection

के उपरांत होने वाला स्थानीय प्रदाह है। इसे वटी वा कैप्सूल रूप में देना उत्तम है।

मात्रा—२ से ८ ग्रेन=(०.१२ से ०.५ ग्राम)। परन्तु मद्योन्माद में इसे द्विगुण मात्रा में भी देते हैं।

पत्री लेखन विषयक संकेत—डायल्युटेड ग्लूकोज के साथ इसकी वटिकाएँ प्रस्तुत कर व्यवहार करें या इसको बादाम तैल वा ज़ैतून तैल में विलीन कर, पुनः लुआब (म्युसिलेज) और जल के साथ इसका दुधिया घोल—इमलशन प्रस्तुत कर बर्तें। एक्सट्रेक्ट आफ बेलाडोना के साथ सम्मिलित कर भी इसका उपयोग करते हैं।

नोट—कहते हैं कि यह कुचलीन (ष्ट्रिकलीन) के विष का अगद है।

(१०)—(क) क्लोरोल कैम्फर Chloral Camphor. (ख) मेन्थोल कैम्फर Menthol Camphor (ग) फेनोल कैम्फर Phenol Camphor (घ) थाइमोल कैम्फर Thymol Camphor (ङ) रिसार्सीन कैम्फर Resorcin Camphor इनमें से प्रत्येक औषध समभाग कपूर के साथ मिलाकर रगड़ने और गरम करने से तैयार की जाती है। ये समप्रयोग अर्थात् इनमें से प्रत्येक योग अत्यन्त प्रभावकारी स्थानीय वेदना स्थापक या दर्द दूर करनेवाला है।

(११) एसेंशल आइल आफ कैम्फर—Essential oil of Camphor अर्थात् उड़नशील कर्पूर तैल। सीमाब तबा रोगन काफूर।

कर्पूर वृक्ष के सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों का अर्क परिस्रुत करने पर एक प्रकार का कुछ गाढ़ा तैल प्राप्त होता है, जिससे यांत्रिक उपकरणों द्वारा कपूर पृथक् किया जासकता है। उक्त तैल को छानकर साफ कर लेते हैं। यह तैल वृक्ष में छेवा देने से भी प्रायः प्राप्त होता है। जिसका उल्लेख प्रथम किया गया है। कदाचित् यही राजनिघण्टूक्त कपूर तैल है। या सम्भवतः किसी अन्य तैल में कर्पूर को द्रवीभूत कर तयार करते रहें।

प्रयोग—आमवात (Rheumatism) में इस तेल का अभ्यङ्ग हितकर होता है।

नोट—जापानी कर्पूर तैल दो प्रकार का होता है। (१) जापानी (२) चीनी।

जापानी कर्पूर तैल—यह पीला वा पीताभ धूसर वर्ण का द्रव होता है। जिसमें से सेफरोल (रोगन सासफ़रास) की तीव्र गंध आती है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·०१० से ·०२० तक होता है। यदि उक्त तैलमें से सेलरोल पृथक् कर दिया जाय, तो फिर उसका रंग सफेद हो जाता है।

चीनी कपूर—यह किंचित् पीला या पीताभ धूसरवर्ण का द्रव होता है, जिसमें से कपूर की तीव्र गंध आती है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·९५० से ·९६० होता है।

(१२) कैम्फाइड Camphoid—यह सम भाग कपूर और जलशून्य सुरासार (Absolute Alcohol) में पैराक्सेलीन का ४० में १ भाग की शक्ति का विलयन है। यह आयडोफार्म, रिसार्सीन, क्राइसारोबीन और इक्थियाल प्रभृति के बाह्य उपयोग का अर्थात् उनके लगाने का एक उत्कृष्ट माध्यम है। अस्तु, इनमें से किसी एक औषध को उक्त विलयन में मिलाकर इसे आलिप्त करने से त्वचा पर एक झिल्ली सी जम जाती है, जो पानी आदि से धुल नहीं जाती। यह कलोडियन की प्रतिनिधि है।

(१३) कैम्फर नैफ्थोल Camphor Naphthol, नैफ्थोल कम कैम्फोरा Naphthol cum Camphora—ले०।

निर्माण विधि तथा उपयोग—बीटा-नैफ्थोल १ भाग, कपूर २ भाग इन दोनों को गरम करलें। यह एक पिच्छल—चिपचिपा द्रव होता है जो तेल में मिल जाता है। इंद्रलुप्त (Tinea) तथा अन्य कृमि जात त्वग् रोगों में इसका उपयोग होता है।यह क्षत और डिफ्थेरिक मेम्ब्रेन (ख़ुनाक बबाई की झिल्ली जो गले में पैदा हो जाती है) पर लगाने की एक बलशाली निर्विषैल एवं पचननिवारक वस्तु है।

(१४) कैम्फर सैलोल Camphor Salol—सैलोल ३ भाग, कैम्फर कपूर २ भाग

दोनों को रगड़ कर मिला लें। यह एक अतीव प्रभावकारी पचननिवारक तैलीय द्रव बन जाता है। इसे कारबंकल (शब चिराग़, फोड़ा विशेष) एवं इंद्र लुप्त वा गंज (Tinea) पर लगाने से एवं जब मध्यकर्ण में पीव पड़ गई हो तो उसे साफ कर उसमें इसे डालने से बहुत उपकार होता है।

कैम्फर सैलिसिलेट Camphor Salicylate (कैम्फोसिल Camphossil) भी एक उसी प्रकार का ठोस पदार्थ है, जो ७ भाग कपूर को ५॥ भाग सैलिसिलिक एसिड के साथ उत्तप्त करने से प्रस्तुत होता है। इसे गंज (Tinea) रोगमें खोपड़ीकी खालपर वा सपूय व्रणपर इसका मलहम लगाया जा सकता है। १ से ५ ग्रेन की मात्रा में वटी रूप में इसका मुख द्वारा प्रयोग किया गया है।

समभाग कपूर और क्लोरल हाइड्रेट को उत्तप्त करने से एक प्रकार का द्रव प्राप्त होता है जिसे "क्लोरल कैम्फर" कहते हैं। यह स्थानीय अवसन्नताजनक है और वेदना पूर्ण वात नाड़ियों पर इसे लगाते हैं।

समभाग कपूर तथा थाइमल वा रिसार्सीन को एकत्र उत्तप्त करने से एक प्रकार का तैलीय द्रव प्राप्त होता है, जिन्हें क्रमशः थाइमल कैम्फर और रिसार्सीन कैम्फर कहते हैं। ये लगाने की प्रबल रोगाणुहर औषध हैं।

(१५) इञ्जेक्शियो कैम्फोरी हाइपोडर्मिका Injectio Camphoræ Hypodermica) –ले०। कपूर का त्वगधः अन्तःक्षेप।

योग—कर्पूर १ भाग, जीवाणु रहित वा विशोधित जैतून तैल ५ भाग पर्य्यन्त।

मात्रा—१० से ३० बूँद वा (०·६ से २ घन शतांशमीटर)।

(१६) कार्डियाज़ोल (Cardiazol) पेंटामीथिलीनटेट्राज़ोल Pentamethylene tetrazol) –ले०। एक जल विलेय मिश्र योग, जो प्रभाव में कर्पूर के सर्वथा समान, पर कठिन रक्त संभ्रमण विकार की सभी दशाओं में उससे श्रेष्ठतर होता है। इसे मुख द्वारा, त्वगधः अन्तःक्षेप वा शिराभ्यन्तरीय अन्तःक्षेप द्वारा प्रयुक्त कर सकते हैं। यह श्वासोच्छ्वास केन्द्रको उत्तेजित करता है। रोग विशेष। (Collapse of angina) हृत्पेशी शोथ (Myocarditis) रक्त भ्रमण की अपूर्णता (Circulatary insufficiency) में यह अतीव गुणकारी है।

मात्रा—१ घन शतांशमीटर त्वगधः अन्तक्षेप द्वारा या ०·१ ग्राम टिकिया की शकल में मुख द्वारा।

(१७) कार्डिटोन–Carditone सोडियम् कैम्फोसल्फोनेट(Sodium Campho Sulphonate) १५ प्रतिशत जलीय विलयन रूप में। यह सार्वदैहिक हृदयोत्तेजक है। तथा श्वास, प्रश्वास की गति (Rate) और (Volume) को बर्द्धित करताहै। यह प्रत्याघात (Shock) हृद्भेद (Heart failure), मूर्च्छा (Coma) और कोयले की गैस एवं मदकारी (Narcotic) औषधजन्य विषाक्तता में प्रयुक्त होता है।

मात्रा—त्वगधोऽन्तःक्षेपार्थ १से २ घन शतांश मीटर शिराभ्यन्तरीय अन्तःक्षेपार्थ २ घनशतांश मीटर पर्यंत। मुख द्वारा व्यवहारार्थ २५ से १०० बूँद (१·५ से ६ मिलिग्राम) प्रत्यह जल मिलाकर।

(१८) कोरामाइन Coramine—पायरिडाइन कार्बोंविसलिक एसिड डाईईथिल अमाइड (PyridineCarboxylic acid diethyl amide) एक प्रकार का प्रायः वर्ण रहित और स्वाद रहित पीताभ द्रव जो सभी परिमाण में जल-मिश्रेय होता है।

मात्रा—२५% विलयन का १ से २ मिलिग्राम मुख द्वारा, त्वगधोन्तःक्षेप द्वारा अथवा पेश्यभ्यन्तरीय वा शिराभ्यन्तरीय अन्तःक्षेप द्वारा सेव्य है। यह परम गुणकारी श्वासोच्छ्वास एवं हृदयोत्तेजक है। इसका उक्त प्रभाव सुषुम्नागत जीवनीय केन्द्रों के प्रभावित होने से प्रगट होता है। मदकारी औषधियों (Narcotics) को अत्यधिक मात्रा में सेवन करने के उपरांत जो

हृद्भेद एवं श्वासोच्छ्वास कार्य विरोध होजाता है उसमें तथा विष बिशेष (Barbiturale Poisoning) के असाध्य रोगियों में यह बिशेष गुणकारी है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कर्पूरं कटुतिक्तं च मधुरं शिशिरं विदुः।
तृष्मेदोविष दोषघ्नं चक्षुष्यं मदकारकम्॥
(ध० नि० ३ व०)

कपूर—मधुर, तिक्त, चरपरा और शीतल है। यह तृषा, मेद, एवं विष दोषनाशक और नेत्रों के लिए हितकारी तथा मदकारक है।

कर्पूरः शिशिरस्तिक्तः स्निग्धश्चोष्णोऽस्रदाहदः।
चिरस्थो दाह दोषघ्नः स धौतः शुभकृत्परः॥
(रा० नि० १२ व०)

कपूर—शीतल, कड़वा, स्निग्ध; उष्णवीर्य तथा रक्त एवं दाहकारक है। पुराना कपूर दाह और दोषनाशक है। धोया हुआ कपूर परम श्रेष्ठ है।

कर्पूरः शीतलो वृष्यश्चक्षुष्यो लेखनो लघुः।
सुरभिर्मधुरस्तिक्तः कफपित्त विषापहः॥
दाहतृष्णाऽऽस्यवैरस्य मेदोदौर्गन्ध्य नाशनः।
आक्षेप शमनो निद्रा जननो घर्म बर्द्धनः।
वेदनाहारकः कामशान्तिकृच्छुक्रमेह कृत्॥
कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्व प्रभेदतः।
पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्॥
(भा० पू० खं० ३ व०)

कपूर—शीतल, वृष्य, (वीर्यवर्द्धक) नेत्रों के लिए हितकारी, लेखन लघु, सुगंधयुक्त, मधुर तथा तिक्तरस युक्त एवं कफ, पित्त, विष, दाह, प्यास, मुख की विरसता, मेदरोग तथा दुर्गन्ध को नष्ट करनेवाला होता है। आक्षेपवातनाशक, निद्रा जनक, घर्मबर्द्धक, (खूब पसीना लानेवाला) वेदना नाशक, कामवेग को शांतिकर्त्ता और शुक्र प्रमेह कारक (हारक) है। पक्व तथा अपक्व इन भेदों से कपूर दो प्रकार का होता है। पक्व कपूर की अपेक्षा अपक्व कपूर अधिक गुणकारी होता है ऐसा वैद्यलोग कहते हैं।

कर्पूरं शीतलं पाके चक्षुष्यं कफनाशनम्।
पक्व कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्॥
(राज०)

कपूर—पाक में शीतल, कफनाशक और नेत्र को हितकारी है। पक्व कपूर से अपक्व कपूर अधिक गुणकारी है।

सतिक्तः सुरभिः शीतः कर्पूरो लघुलेखनः।
तृष्णायां मुख शोषे च वैरस्ये चापि पूजितः॥
(सुश्रुत)

कपूर—कड़वा, सुगन्धि, शीतल, हलका, लेखन तथा तृषा, मुखशोष और विरसता को दूर करनेवाला है।

कपूरो मधुरस्तिक्तः शीतलः सुरभिर्लघुः।
नेत्र्योलेखनकृद्वृष्यः कटुः प्रीतिकरोमृदुः॥
मदकारी च संप्रोक्तः कफदाहतृषापहः।
रक्तपित्तं कण्ठरोगं नेत्ररोगं विषं तथा॥
पित्तं च मुखवैरस्यं दौर्गन्ध्यमुदरं तथा।
मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहञ्च मलगन्धं च नाशयेत्॥
स एव नूतनः स्निग्धस्तिक्तश्चोष्णाश्च दाहकृत्
सोपि जीर्णो दाहशोषनाशनः परिकीर्त्तितः॥
सोपि धौतोगुणैः श्रेष्ठःप्रोक्तो वैद्यैः पुरातनैः॥
(नि० रत्ना०)

कपूर—मधुर, कड़वा, शीतल, सुगन्धि, हलका, चक्षुष्य, लेखन, वृष्य, चरपरा, प्रीतिकारक, मृदु, और मदकारी है तथा कफ, दाह, प्यास, रक्तपित्त, कण्ठरोग, नेत्ररोग, विष, पित्त, मुख की विरसता दुर्गन्ध, उदर रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और मल की दुर्गन्धि को दूर करता है। नवीन कपूर स्निग्ध कड़वा, गरम और दाहकारक है। पुराना कपूर दाह और शोषनाशक है और धोया हुआ कपूर गुणों में श्रेष्ठ है।

भिन्न-भिन्न कपूर के गुण

पोतास (पोताश्रय) भीमसेनी और बरास गुण—

निघण्टु रत्नाकर के अनुसार ये तीनों स्वादिष्ट शीतल, शुक्रजनक, तिक्त एवं कटु होते हैं और

प्यास, दाह, रक्तपित्त और कफनाशक है। भावप्रकाश तथा राजनिघण्टु के अनुसार भीमसेनी कपूर रस एवं पाक में मधुर, वातपित्तनाशक, शीतल, बृंहण और वल्य है।

शङ्करावास कपूर के गुण

ईशावास कपूर रेचक, वृष्य, मदनाशक, (नशे को दूर करनेवाला) और अत्यंत शुभ्र है। यह उन्माद, तृषा, श्रम, कास, कृमि, क्षयरोग तथा स्वेद और अंगों के दाह को दूर करता है।

(नि० र०)

हिमकर्पूर (हिमकर्पूरकः)

यह शुभ्र, वीर्यजनक, शीतल, रस में चरपरा, तथा तृषा, दाह, मोह, एवं स्वेद को दूर करता है। (नि० र०)

उदयभास्कर कपूर के गुण—

यह एक प्रकार का पक्व कर्पूर है जो सदल निर्दल भेद से दो प्रकार का होता है। यह पीला रेचक, निर्मल, कठिन, कटु, अग्निदीपक, लघु लक्ष्मीदायक, पित्तकारक तथा कफ, कृमि, विष, वात; नासास्रुति नाक से जल बहने, लालास्राव, मुख से लार बहने, गलग्रह और जिह्वा की जड़ता को नष्ट करता है। यथा—

"पीतःसरः स्वच्छकः सम्प्रोक्तः कठिनः कटुः समुदितः स्यादीपकोऽग्नेर्लघुः। श्रीदः पित्तकरः कफकृमि विषात् वातञ्च नासास्रुति लालास्राव गलग्रहौ च शमयेत् जिह्वाजड़त्वापहः।"

(वै० निघ० । नि० र०)

पर्ण कपूर के गुण (पान कपूर, पत्री कपूर)

यह तिक्त, शोधक, उन्मादकारक तथा मूत्ररोग पीनस और दाह निवारक है। (नि० र०)

चीनिया कपूर

चीनकः कटुतिक्तोष्ण ईषच्छीतः कफापहः।
कंठदोषहरो मेध्यः पाचनः कृमिनाशनः॥

(रा० नि० १२ व०)

चीनक—चीनिया कपूर कटुआ, चरपरा, उष्ण वीर्य, कुछ कुछ ठंढा तथा कफनाशक है और कंठदोषहर, मेधाजनक, पाचक एवं कृमिघ्न है।

चीनाकसंज्ञः कर्पूरः कफक्षयकरः स्मृतः।
कुष्ठकंडू वमिहरस्तथा तिक्तरसश्च सः॥

(भा० पू० खं० ३ व०)

चीनिया कपूर को संस्कृत में चीनाक कर्पूर कहते हैं। यह कफ को नष्ट करनेवाला तथा कुष्ठ, खुजली और वमन को भी दूर करनेवाला होता है एवं तिक्त रस से युक्त होता है।

कर्पूर तैल

कर्पूर तैल हिम तैल शितांशु तैल शीताभ्र तैल तुहिनांशु सुधांशु तैलम्। कर्पूर तैल (लं) कटुकोष्ण कफामहारि वातामयघ्न रद दार्ढ्यद पित्तहारि॥

(रा० नि० १५ व०)

कर्पूरतैल, हिमतैल, शितांशुतैल, तुहिनांशु, शिताभ्र तैल सुधांशुतैल ये कर्पूरतैल(Camphoroil) के संस्कृत पर्य्याय हैं। कपूर का तेल चरपरा, गरम कफ और आमनाशक, वातरोगनाशक, दाँतों को दृढ़ करनेवाला और पित्तनाशक है।

शीतांशु तैलमाक्षेप शमनं वायुनाशनम्।
स्वेदनं शूल हृच्चोग्रं ज्वरघ्नं कफनुत्परम्॥
आमवाते तथाध्माने ज्वरे च शिरसो गदे।
दन्तरोगे च भग्ने च द्वैपेयं परियुज्यते॥

(आ० सं०)

कपूर का तेल—आक्षेप को शांत करनेवाला, वातनाशक, स्वेदक, शूलनाशक, उग्रज्वर और कफ का नाश करनेवाला तथा आमवात, आध्मान, ज्वर, शिरोरोग, दंतरोग और भग्न रोग में कपूर तैल बरतना चाहिये।

कर्पूर तैलं कटुकं चोष्णं पित्तकरं मतम्।
दंतदार्ढ्यप्रदं चैव कफवात विनाशकम्॥

(नि० र०)

कपूर का तेल—चरपरा, गरम, पित्तकारक, दाँतों को दृढ़ करनेवाला और कफवात विनाशक है।

वैद्यक में कपूर के व्यवहार

चक्रदत्त—सद्यः शस्त्र-क्षत पर कपूर—शरीर के किसी भाग के शस्त्र से कट जाने पर तत्क्षण

गाय के घी में कपूर का महीन चूर्ण मिलाकर उससे क्षत पूरण कर वस्त्र द्वारा बाँध रखने से पाक एवं व्यथा नहीं होने पाती और क्षत शीघ्र पूरित हो जाता है। यथा—

"कर्पूर पूरितं वद्धं सघृतं संप्ररोहति।
सद्यः शस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाक विवर्जितम्"
(व्रणशोथ-चि०)

भावप्रकाश—परिलेही नाम कर्णपाली रोग पर कपूर—परिलेही (कान की लौ में होनेवाला एक प्रकार का बहुरसस्रावी क्लेदयुक्त क्षत) रोग में तप्त गोमय की पोटली द्वारा वारम्वार स्वेद देकर छागमूत्र में कपूर का चूर्ण पीसकर क्षत पर लेप करें। यथा—

बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं परिलोहितम्।
घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः॥
(कर्णरोग-चि०)

वङ्गसेन—शुक्र नाम अक्षि रोग अर्थात् फूला पर कपूर—कपूर का महीन चूर्ण वरगद के दूध में मिलाकर आँख में आंजने से घन एवं उन्नत शुक्र विनष्ट होता है। यथा—

"वट क्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः।
क्षिप्तमञ्जनतो हन्ति शुक्रं वापि घनोन्नतम्॥
(नेत्ररोग-चि०)

वक्तव्य

चरक के "दशेमानि" प्रकरण में कपूर का उल्लेख नज़र नहीं आता। परन्तु सूत्रस्थान के पञ्चम अध्याय में इसके सम्बन्ध में यह लिखा है—"धार्यमास्येन वैशद्य रुचि सौगन्ध्य मिच्छता। तथा कर्पूर निर्यासं—"। सुश्रुत सूत्र स्थान के ४६ वें अध्यायमें कपूरका गुणोल्लेख दृष्टिगत होता है, यथा—'स तिक्तः सुरभिः शीतः कर्पूरो लघुलेखनः। तृष्णायां मुखशोषे च वैरस्ये चापि पूजितः"। वृद्धवाग्भट (अष्टांग संग्रह) में कहा है—"रुचि वैशद्य सौगन्ध्य मिच्छन् वक्त्रेण धारयेत्। जातो लवंग कर्पूर—"। आकरोक्त किंवा वृन्दवक्र कृत संग्रहोक्त कास श्वास, प्रमेह वा ग्रहणी चिकित्सान्तर्गत कपूर का व्यवहार दिखाई नहीं देता, किंतु रस चिकित्सा के प्रसार के साथ उक्त सब रोगों में कपूर का व्यवहार प्रतिष्ठा लब्ध करता है। आकरोक्त वृष्य योग में भी कपूर का व्यवहार नहीं हुआ है। भावप्रकाश ने कपूर को वृष्य लिखा है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—तृतीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष। डाक्टर इसे गरमी करनेवाला जानते हैं। कतिपय यूनानी चिकित्सा-शास्त्रज्ञों की यह धारणा है, कि कपूर में अंशतः उष्मा भी निहित है और वह इतने परिमाण में है जिसमें उसको मस्तिष्क तक आरोहित कर देती है और केवल उसके वाष्प पहुँचाती है। वैद्य उष्ण और रूक्ष मानते हैं। गीलानी ने मुफ़रिदात क़ानून की शरह में लिखा है कि यह कपूर जो विशुद्ध, साफ और असली होता है और जिसे हिन्दू सुगंध के लिये पान के बीड़े में रखकर खाते हैं और जिसे भीमसेनी कहते हैं, उसके उष्ण एवं रूक्ष होने में कोई संदेह नहीं वह अत्यंत उष्ण है। यहाँ तक कि तृतीय कक्षा से भी इसकी गरमी बढ़कर चतुर्थ कक्षा तक पहुँच गई है। परन्तु इसमें उष्णता की अपेक्षा रूक्षता कम है। किसी किसी का अभिमत है कि जब तक कपूर आमाशयमें रहता है,शीतल है और जब यकृत की ओर जाता है, तब उष्ण हो जाता है।

हानिकर्त्ता—यूनानी चिकित्सकों ने इसे अनेक दशाओं में हानिकर लिखा है। अस्तु, शीतल प्रकृति एवं निर्बल प्रकृति वालों को यह हानि करता है। यह शिरःशूल उत्पन्न करता, आमाशय को निर्बल करता और कामशक्ति के लिये तो यहाँ तक विरुद्ध है कि इसके अधिक सूँघने मात्र से वह कम हो जाती है। अफीम की अपेक्षा यह अधिक हानिकर है। अफीमची जब अफीम के प्रभाव से मुक्ति पाता है,तब वह अपनी जननेन्द्रिय में मैथुन-शक्ति का अनुभव करता है, किंतु कर्पूर से तो वह सर्वथा जाती रहती है। कपूर वीर्य को सांद्रीभूत कर देता है, वस्ति एवं वृक्क को शीतल करता है और उक्त उभय अंगों में अश्मरी पैदा करता है। यह क्षुधा नष्ट करता और अनिद्रा रोग उत्पन्न करता है। इसके अधिक सूँघने से प्रायः नींद कम आती है, यहां तक कि शिरःशूल उत्पन्न हो जाता है। यह पलित और वार्द्धक्य शीघ्र लाता है।

इससे संतानोत्पत्ति रुक जाती है।

दर्पघ्न—अंबर, कस्तूरी, जुन्दबेदस्तर, उष्ण एवं सुगन्धित औषध, गुलकन्द, रोग़न सौसन, रोग़न चमेली, तिल तैल, रोग़न बनफ़्शा और मसाले का तेल। वस्ति एवं वृक्कगत अश्मरी रोग में माजूनवर्द वस्ति एवं गुलाब पाक इसका उत्तम दर्पघ्न है। बनफ़्शा, नीलोफ़र, केशर और गुलकंद शिरः शूल उत्पन्न होने के रुद्धक हैं। वैद्यों के मत से इसका दर्पघ्न पिप्पली, मधु, शुण्ठी, काली मिर्च, विषखपड़े की जड़ और भृंगराज स्वरस है।

प्रतिनिधि—द्विगुण बंशलोचन और समभाग श्वेत चन्दन और कहरुबा।

मात्रा—मिस्राहुल् अद्विया के अनुसार ४। यव से ६ रत्ती तक। किसी-किसी के मत से सप्ताह भर में ३॥ माशा तक खा लेना चाहिये। नौ माशा कामावसाय उत्पन्न करता है और आमाशय को विकृत करता है। हकीम शरीफ़खाँ के पिता ने एक तोला कपूर प्लेग के रोगी को खिलवा दिया। इसके सेवन से वह उसी दिन रोग मुक्त हो गया। वैद्यों के मत से वेदना एवं आक्षेप निवृत्यर्थ एवं शक्ति वृद्धि के लिये तथा स्वेद लाने के लिये कपूर की मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से ५ रत्ती तक है। एलोपैथीय द्रव्य-गुण विषयक ग्रन्थों में इसकी मात्रा २ से ५ ग्रेन=(·१३ से ·३२ ग्राम) लिखी है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह रक्तप्रकोप जनित नकसीर का रुद्धक है; क्यों कि अपनी शीतलता एवं रूक्षता के कारण यह तज्जन्य प्रकोप को शांत करता है (क्योंकि जोश और उबाल हरारत और रतूबत से पैदा होता है)। यह उग्रशोथ एवं पित्तज शिरःशूल को गुणकारी है और क़ुलाअ (मुखपाक) को बहुत लाभ पहुँचाता है। क्योंकि यह सरदी पहुँचाता और रूक्षता उत्पन्न करता है। इसके सूँघने से मस्तिष्कगत आर्द्रता शुष्कीभूत हो जाती है। जिससे अनिद्रा का प्रादुर्भाव होता है। यह उष्ण प्रकृतिवालों की ज्ञानेन्द्रियों को शक्तिप्रदान करता है। क्यों कि यह उनके मस्तिष्क की समता स्थापित करता है। यह बालों को शीघ्र श्वेत करता है। चाहे इसको मुख द्वारा खिलाया जाय अथवा इसका बाह्यरूप से उपयोग किया जाय। इसको मुख द्वारा प्रयोजित करने से जो बाल श्वेत होते हैं, उसका कारण यह होता है, कि यह प्रकृति को शीतल कर देता है, जिससे श्लेष्मीय रतूबतें (कफज द्रव) अधिक हो जाती हैं। परन्तु जब बालों पर इसका बाह्यरूपेण उपयोग किया जाता है, तब उसके श्वेत होने का कारण यह होता है कि यह बालों की ऊष्मा को प्रशमित कर देता है और उनकी रतूबतों (द्रवों) को विलीन होने से रोक देता है। अथवा उसका कारण यह होता है, कि यह बालों को अपने शीत की अधिकता से स्थूल (कसीफ़) कर देता है और उनके घटकों को एकत्रीभूत करता है, जिससे बालों के आहार के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। अस्तु, उसी प्रकार पलित रोग का प्रादुर्भाव होता है, जिस प्रकार अधिक सर्दी पहुँचने के कारण खेती—फ़सल सफेद हो जाती है। यह कामावसाय कारक वा क्लीवताजनक है; क्योंकि यह वीर्य को जमा देता है और वृक्क एवं अंड को शीत पहुँचाता है। इसकी लकड़ी के दरारों से निकला हुआ कपूर अन्य सब प्रकार के कपूरों से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावपूर्ण होता है।—नफ़ी०।

कपूर क़ैसूरी निद्राजनक, मनोल्लासकारी, और हृदय तथा मस्तिष्क को बलप्रद है एवं अनिद्रा, तृषा, यकृत एवं वृक्क-प्रदाह, मूत्र को जलन, गरमी का ज्वर, तपेदिक, फुफ्फुसोष (ज़ातुज्जनब), व्रण, उरःक्षत, संग्रहणी (ज़िल्क़ः) और नकसीर इन रोगों को नष्ट करता है।—मु० ना०।

यूनानी चिकित्सकों के अनुसार कपूर मनोल्लासकारी है और हृदय तथा उष्ण मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करता, तपेदिक एवं दूषित ज्वर—तपेअफ़िनी को निवारण करता है। यह फुफ्फुसोष, अतिसार उरःक्षत और फुफ्फुसोय क्षत को आराम पहुँचाता है। यह पित्तज अतिसार को नष्ट करता, प्यास को कम करता और यकृत वृक्क एवं मूत्र के दाह को शमन करता है।

थोड़ा सा कपूर काहू के तेल में मिलाकर नाक में टपकाने से मस्तिष्कगत ऊष्मा कम हो जाती है। और नींद आ जाती है। खजाइनुल् अदबिया के लेखक लिखते हैं, "मैं प्रायः इसको

चमेली वा तिल के तेल मिलाकर प्रयुक्त करता हूं।"

इसके सूंघने से उष्ण प्रकृतिवालों की प्रकृति बलवती होती है। यह जौहर रूह को बहुत शक्ति प्रदान करता है। परन्तु इसके लिए शीतल प्रकृति वालों को इसे अंबर और कस्तूरी के साथ देना चाहिए। रूक्षता निवारणार्थ इसे रोगन बनफ़्शा या चमेली के तेल के साथ देना चाहिये।

दाँतों में कीड़ा लगने पर इसको दाँतों पर मल वायें और इसका गण्डूष धारण कराएँ।

यह उष्ण बिषों का अगद है। यदि बिच्छू किसी को डङ्क मार दे, तो ३॥ मा० खाने से बिलकुल आराम होजाता है।

यदि फोड़ा फुंसी अत्यन्त बिषैला एवं प्रसरणशील हो, तो इसके उपयोग से आराम होता है। यह क्षत की वेदना निवारण करता है।

यदि किसी अंग से रक्त न रुक सके, तो इसको पीसकर बुरकते हैं। इससे वह रुक जाता है।

इससे चांदी के आभूषण और वर्तन सुरक्षित रहते हैं। इससे उनकी असली चमक-दमक स्थिर रहती है।

नकसीर का रक्त बन्द करने के लिए यह परमोपयोगी है। इसे पानी या गुलाब में पीसकर अवपीड़ित करें, या धनिये के हरे पत्तों के पानी में या बारतंग के पत्तों के पानी में पीसकर मस्तक और शिर पर मालिश करें। अथवा १—१ जौ भर कपूर सिरके में या हरे धनियों के पत्तों के पानी में या तुलसी, बनतुलसी अथवा मरुवेके पत्तोंके पानी मेंघोट कर नाक में सुड़क ले। कपूर की सुगंध से वायु शुद्ध होती है और अनेक प्रकार के कीट भागते और मृतप्राय हो जाते हैं। महामारी फैलने पर बहुत से लोग इसकी टिकिया और डली अपने सिर, हाथ तथा जेब में रखते हैं।

कपूर और नरकचूर प्रत्येक दो तोला पीसकर तीन तोला गुड़ में मिलाकर एक फाहा पर परिविस्तृत करें और उसके केन्द्र में छिद्र रखें। यह फाहा नहरुवा पर चिपका दें। इससे समस्त नहरुवा दो-तीन दिन में उक्त फाहा के छिद्र से होकर निकल जायँगे।

कहते हैं यदि स्त्री इसे अपनी गुह्येंद्रिय में लगाये, तो पुरुष उस पर क़ादिर न हो सके।

इब्न असबद ने लिखा है कि मेरे एक मित्र ने ४॥ माशा कपूर एक दिन खाया, उससे उसकी पुरुषार्थ शक्ति का जोर जाता रहा। दूसरे दिन भी उतना ही खाया, उसकी कामेच्छा बिल्कुल जाती रही। तीसरे दिन भी उतना ही खाया जिससे उसका आमाशय विकृत हो गया, यहाँ तक कि आहार पाचन नहीं होता था।

मुहीत आज़म में लिखा है कि हिंदू कपूर को वृष्य और वाजीकरण-मुक़व्वी बाह बतलाते हैं। इसीलिये इसको प्रायः हलुओं में सम्मिलित कर खाते हैं। ख़ज़ाइनुल् अदविया के लेखक लिखते हैं कि मैंने कतिपय वैद्यों की लिखी किताबों में इसके सम्बन्ध में देखा है कि क्लीवता उत्पन्न करता है। अस्तु, अनुभूत चिकित्सा सागर में लिखा है ५ रत्ती से १० रत्ती तक कपूर खाने से नपुंस्त्व उत्पन्न होता है। हिंदू इसको हलुआ वा खीर में केवल सुगंधि के अर्थ डालते हैं। गुरु पाक आहारों में इसकी धूनी हलुओं को केवल कम खाने और अल्प व्यय होने के लिये देते हैं।

यह कुचले के सत से हुई विषाक्तता को निवारण करता है। इसका प्रथम प्रभाव फैलनेवाला या स्फूर्तिदायक होता है और दूसरा रक्तमें मिलकर सम्पूर्ण अंगों के नियत मात्रा से बढ़े हुये कार्य को स्वाभाविक दशापरले आताहै यहपीड़ा एवं उद्वेष्टन कोमिटाता है। इसकी अधिक मात्रा मूर्च्छाकारक तीक्ष्ण बिष जैसी है। यह ज्वर, शोथ; श्वासहृद्रोग, कूकरखाँसो, हृदय के फूलजाने से उसका अधिक स्पन्दन, मूत्र एवं वीर्य संबन्धी अंगों के रोग वेदना सहित ऋतुस्राव होना, स्त्री कामोन्माद सुर्त (? शुक्र) प्रमेह, नाड़ी व्रण, जरायु, प्रदाह एवं उसमें से नाना भाँति का द्रव स्रावित होना, मूत्र धारण शक्ति की निर्बलता, स्त्रियों के आसेब का रोग, गठिया, शरीरकी सड़न और लघु-संधिशूल प्रभृति रोगों में बहुत गुणकारी है। —ख० अ०

पपोटों, पर इसका लेप करने से सूजन उतरती है।

२॥ रत्ती कपूर और आधी रत्ती अफीम, इन दोनों की गोली बनाकर सोते समय खाने से

बहुत पसीना आता है। जिससे गठिया का पुराना दर्द जाता रहता है। इस गोली पर सोंठि का काढ़ा पिलाकर रोगी को काफी कपड़ा ओढ़ा देना चाहिए।

जब श्वास रोग का वेग हो, तब दूसरे तीसरे घण्टे पर २ रत्ती कपूर में समान भाग हींग मिलाकर गोली बना सेवन करायें। उस समय रोगी की छाती पर तारपीन तैल का अभ्यंग कर उसे सेंक करना चाहिए। इससे कष्ट से साँस आना आराम होता है। उस रोगी को जिसका हृदय जोर से धड़कता हो, इन गोलियों से कभी २ उपकार होजाया करता है।

कपूर को तेल में मिला, गरम कर रात को सोने पर मर्दन करने से शिशुओं का कास रोग मिट जाता है।

अढ़ाई पाव सिरके में २॥ तोला कपूर गलाकर उसमें अढ़ाई पाव या सवा सेर जल मिलाकर रखें। उसमें कपड़ा भिगोकर गठिया और पुट्ठों पर लगाने से वेदना निवृत्त होती है।

दो रत्ती कपूर और $\frac{1}{4}$ रत्ती अफीम इनकी गोली बनाकर सोते समय खाने से स्वप्नदोष और प्रमेह नष्ट होता है। इन रोगों में इससे बढ़कर अन्य कोई औषध नहीं।

सूजाक में मूत्र त्याग के समय होनेवाली वेदना के निवारणार्थ दो रत्ती कपूर और आधी रत्ती अफीम मिलाकर देना चाहिये और जननेन्द्रिय की सीवन से बैठक तक सीवन पर कपूर का लेप करना चाहिये।

जिस स्त्री की योनि में कंडू एवं प्रदाह हो, उसको अढाई-तीन रत्ती कपूर की गोली बना शक्ति के अनुसार दिन में दो-तीन बार खिलाना चाहिये। इसके लिये सर्व प्रथम विरेचन द्वारा कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिये। गर्भाशयिक वेदना में तीन या चार रत्ती कपूर की गोली देना चाहिये।

शीतला रोग में जब रोगी निर्बल हो और ज्वर के प्रबल वेग के कारण प्रलाप करता हो, चित्त व्यग्र हो, नींद जाती रही हो, तो १॥ रत्ती कपूर और १॥ रत्ती हींग की गोली बना हर तीसरे घंटा बर्त्तना चाहिये। पाँव के तलवों और हृदय पर तारपीन का तेल मर्दन करना चाहिये अथवा उक्त दोनों जगह राई का पलस्तर लगाना चाहिये, यदि इससे शिरः शूल हो जाय अथवा खोपड़ी के ऊपर गरमी बढ़ जाय तो इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। उक्त उपचार के लिये बहुत सोच-विचार एवं चतुरता अपेक्षित होती है।

काग़ज़ की नली बना उसमें कपूर का धूआँ साँस के साथ पीने से प्रतिश्याय रोग आराम होता है। परन्तु इसके उपयोग के समय मुख और शिर को आच्छादित कर लेना चाहिये।

पुट्ठों के दर्द पर कपूर का प्रलेप करना चाहिये।

एक रत्ती एलुआ और डेढ़ या दो रत्ती कपूर मिलाकर लगाने से नहरुवा जनित वेदना नष्ट होती है।

यह स्फूर्तिदायक एवं श्लेष्मा निःसारक है। कफ नाशक औषधियों के साथ कपूर खिलाने से चिरकालानुबन्धी कास नष्ट होता है।

कुनैन, नौसादर के फूल और कपूर मात्रानुसार इनकी गोली बनाकर देने से गुजराती रोग नष्ट होता है।

अढ़ाई पाव पानी में दो तोला कपूर पीसकर उसमें हर प्रकार के बीज भिगो या डुबोकर बोने से वे बहुत शीघ्र उगते हैं। जो वृक्ष कलम से लगाये जाते हैं, उनकी कलम को कपूर के पानी में डुबो कर जमीन में रखने से अति शीघ्र जड़ छोड़ देते हैं।

मांसगत बड़े भागों की वेदना में कर्पूर तैलाभ्यङ्ग गुणकारी है।

कास रोग में कासनिवारक अन्य औषधियों के साथ कपूर का उपयोग करना चाहिए।

दंत-कोटर में कपूर भर देने से दंतशूल और दंतविकार जाते रहते हैं।

पित्तज शिरःशूल में सिरके और शीतल जल के साथ कपूर का लेप करना चाहिये।

मांस के बड़े बड़े भागों और रगों के दर्द और संधिशूल में अफीम और कपूर को राई के तेल में मिलाकर मर्दन करने से उपकार होता है।

कपूर और एलुआ की गोलियाँ बनाकर बर्तने से सूज़ाक में जलन एवं खुजली और बारम्बार शिश्नगत उत्तेजना का निवारण होता है।

अढ़ाई रत्ती की मात्रा में कपूर स्फूर्तिदायक एवं स्वेदजनक है और यह वातनाड़ी विषयक वेदना का निवारण करता है। कपूर का लेप करने से क्षत सुधरने लग जाता है। विशूचिका के प्रारम्भ में इसका उपयोग करने से क़ै और दस्त रुक जाता है। विषूचिका में हर चौथे घंटे ५ रत्ती कपूर देने से उपकार होता है। केले पर कपूर बुरक कर खिलाने से सुख पूर्वक शिशु-प्रसव होता है। इसके निमित्त दस रत्ती कपूर पर्याप्त है। ५ से १० रत्ती तक कपूर स्फूर्ति और उद्वेग पैदा करता है, आक्षेप दूर करता है और स्वेद, निद्रा तथा नामर्दी उत्पन्न करता है। दंत-शूल, चिरकारी गाँठिया, कष्ट रज, व्याकुलता, ज्वरोत्तर होनेवाली निर्बलता, कूकर खाँसी, फेफड़े का सड़ जाना, विषूचिका, कंपवायु, स्त्रियों के आसेब का रोग, सूती, प्रसूता ज्वर, दिल धड़कना इत्यादि व्याधियों में कपूर का प्रयोग गुणकारी है। सदा कपूर का व्यवहार करने से शरीर में स्फूर्ति रहती है, इससे कीड़े नष्ट हो जाते हैं, कपूर और मिश्री पीसकर अवचूर्णन करने से मुखपाक आराम होता है।

कपूर और सफेद चंदन घिसकर सूँघने से गरमी का शिरः शूल नष्ट होता है।

कीट-भक्षित दाँतों में कपूर धारण करने से दंत-शूल मिटता है।

सिरका में कपूर मिलाकर लेप करने से भिड़ और मक्खी का ज़हर उतर जाता है।

वट-क्षीर में कपूर को खरल करके आँख में लगाने से फूला कट जाता है।

कपूर की धूनी देने से रक्त-स्रवण निवृत्त होता है।

एक भाग कपूर और ४ भाग सफेद कत्था इनकी गोलियाँ बनाकर एक रत्ती से चार रत्ती तक खिलाने से पित्त ज्वर जाता रहता है। एक माशा कपूर को कई तोला गुलाब के अर्क में घोंटकर पिलाने से संखिया का ज़हर उतरता है।

कपूर को सिरके में पीस कर लगाने से बिच्छू का ज़हर उतरता है। तारपीन तैल में कपूर मिला कर लगाने से वक्षःस्थलस्थ उद्वेष्टन दूर होता है।

पानीसे परिपूर्ण बोतलमें एक तोला कपूर डालकर उसमें डाट लगाकर दो घंटे पड़ा रखें। पुनः उसमें से ३ मा० इमली का गूदा और ३ माशा खाँड़ मिलाकर पिलाने से ज्वरोष्मा तथा लू मिटती है।—ख० अ०।

तालीफ़ शरीफी—मुफ़रिदात हिंदी आदि में जो आयुर्वेद के द्रव्य गुण विषयक ग्रंथों के अरबी वा फारसी अनुवाद ग्रंथ हैं, कपूर के आयुर्वेदोक्त गुण-प्रयोगों का उल्लेख हुआ है।

ग़ायतुल् मफ़्हूम नामक क़ानून की टीका में लिखा है कि कपूर अपने प्रभाव (ख़ासियत) और शीत एवं रूक्षता के कारण शव को सड़ने से बचाता है। इसलिये इसे कफ़न में रखते हैं।

नव्यमत

खोरी—बाह्यरूप से प्रयोग करने पर, कपूर त्वक् लोहित्योत्पादक एवं शोथ तथा अर्बुद का विलीनत्व साधक है। योग्य औषधीय मात्रा में सेवन करने से कपूर हृदय की कार्य-तत्परता, निःश्वासोच्छ्वास एवं रक्तसंवहन क्रिया वर्द्धित करता है। कपूर स्त्री-संभोग-स्पृहावर्द्धक है, पर इसके दीर्घकाल के सेवन से जननेन्द्रिय निर्बल होजाती है। यह गर्भाशय को उत्तेजित करता और आर्त्तव रजःस्राव की वृद्धि करता है। त्वचा पर यह वर्द्धित स्वेदस्राव उपस्थित करता है। 'गनोरिया-सूजाक' रोगी के शिश्न की अति यन्त्रणादायक आकर्षणवत् पीड़ा किंवा शिश्न की अधोवक्रता उत्पन्न होने पर वेदनाहर रूप से कपूर व्यवहार किया जाता है। भक्षित कपूर शरीर के भीतर आत्मीकृत होकर पुनः घर्म, मूत्र तथा श्लेष्मा के साथ बहिःक्षिप्त होता है और प्रायः यह मूत्राल्पता एवं मूत्रणक्लेश उत्पादन करता है। अधिक मात्रा में कपूर सेवन करने से पाकस्थाली तथा आन्त्र में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। एवं उत्तेजक (Irritant) विष भक्षण के अपरापर लक्षण प्रकाश पाते हैं। कपूर के मात्राधिक्य होनेपर हृदय का अवसाद, शरीरोष्मा की कमी के

सहित स्वेद आना, हस्त-पाद की शीतलता, धातूष्मा का ह्रास एवं घर्म, तथा आक्षेप और अन्त में मृत्यु आकर उपस्थित होती है। संतान प्रसवोत्तर जात मनोविकार में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में कपूर व्यवहृत किया जा सकता है। कृमि वहिष्करणार्थ कपूर की वस्ति पिचकारी करना हितकर है। क्षत के लिए प्रक्षालन औषध-धोने की दवा के रूप से कपूर व्यवहृत होता है। कृमि भक्षित दंतशूल-प्रशमनार्थ कपूर को सुरासार में द्रवीभूत कर, इसके द्वारा कृमि-भक्षित दंत-गह्वर पूरण करें। नासास्राव (Coryza) में कपूर का नस्य हितकर है। घृष्ट-पिष्ट एवं मोच आने पर तथा आमवातिक संधिशूल एवं पेशी की आक्षेप वेदना में ४ भाग जैतून-तैल और एक भाग कपूर एकत्र मिश्रित कर मर्दन करें। मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया—२य भाग ५२६-७ पृ०।

नादकर्णी—कपूर एक अति विशिष्ट गंधि-द्रव्य है जो स्वाद में तिक्त, चरपरा और सुरभिपूर्ण होता है। यह अत्यन्त उड़नशील एवं ज्वलनशील होता है। और उज्ज्वल प्रकाश से जलता एवं बहुत धूम्र देता है। टायफस नामक सन्निपात ज्वर (Typhus) बिशेष मसूरिका (Small pox) एवं आन्त्रिक ज्वर (Typhoid) जातीय समस्त प्रकार के ज्वर तथा विस्फोटक (Eruptions) में और शीतला (Measles) ज्वर प्रकोपजन्य प्रलाप, कुक्कुर कास, हिक्का, आक्षेपयुक्त श्वास रोग, योषापस्मार, कामोन्माद (Nymphomania) कष्टरज, प्रसूतिकोन्माद, कंपवात, अपस्मार, वात-रक्त विशेष (Atonic gont) मालोस्रोलिया, उग्र आमवात तथा चिरकालानुबन्धी कास प्रभृति में भी यह उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के अनुसार कपूर उत्तेजक, शांति दायक और उदराध्मान को दूर करता है।

बर्डवुड के मतानुसार यह आक्षेप निवारक, उपशामक, वातमण्डल को शांति प्रदान करने वाला, हृदयोत्तेजक, उदराध्मान निवारक और ज्वरघ्न है। बाह्य प्रयोग करने पर यह वेदनाहर औषध का काम देता है।

एलोपैथी के मत से कपूर के बाह्यान्तर प्रभाव तथा प्रयोग—

बहिः प्रभाव

कठिनीभूत उड़नशील तैल—(Stearopt ene) होने के कारण कपूर सुगंधित तैलों (Volatile oils) की भाँति प्रभाव करता है। यद्यपि अलकतरे (Coal-tar) की श्रेणी तथा फेनोल-समुदाय के द्रव्यों के उदाहरण स्वरूप बहुशः उड़नशील तैलों की अपेक्षा यह निर्बलतर है तथापि सामान्य पचन निवारक (Antiseptic) होता है। यह स्थानीय धमनियों (Vessels) को उत्तेजित करता और लालिमा एवं ऊष्मा उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह लौहित्योत्पादक प्रभाव करता है।

अस्तु, इसके प्रयोग से त्वगीय धमनियाँ परिविस्तृत हो जाती है और वहाँ पर उष्णता का अनुभव होता है। स्थानीय नाड़ियों पर प्रथम इसका उत्तेजक प्रभाव होता है और बाद को नैर्बल्यकारी। इसलिये प्रथम तो उष्णता अनुभूत होती है, परंतु बाद को शैत्य प्रतीत होता है और संज्ञा-शक्ति किसी प्रकार कम हो जाती है। अस्तु, यह किसी भाँति स्थानीय संज्ञाहर—अवसन्नताजनक है।

आंतरिक प्रभाव

मुख—कपूर के भक्षण से प्रथम तो मुँह में शीतलता का अनुभव होता है। परन्तु शीघ्र बाद को ही उष्मा प्रतीत होती है। इससे स्थानीय रक्त-संवहन-क्रिया तीव्र हो जाती है और अत्यधिक श्लेष्मा एवं लाला-स्राव होने लगता है।

आमाशय—कपूर-भक्षण से पाकस्थाली में ऊष्मा का अनुभव होता है, आमाशयगत रक्त नालियों की रगें परिविस्तृत हो जाती हैं, आमाशयिक रसोद्रेक अभिवर्द्धित हो जाता है, आमाशय की गति तीव्र हो जाती है और गुदा की संकोचन क्रिया शिथिल पड़ जाती है। अस्तु, कपूर आमाशोद्दीपक (Gastric-Stimulant) एवं वातानुलोमक (Carminative) है। किंतु बड़ी मात्रा में यह आमाशय को क्षुभित करता और मिचली पैदा करता और वमन लाता है। यह आंत्र को विशोधित (Antiseptic) भी करता है और आक्षेप निवारण करता है।

हृदय एवं रक्त-संवहन—त्वचा और श्लैष्मिक कला द्वारा यह रक्त में अपरिवर्तित रूप में प्रविष्ट हो जाता और रक्त के श्वेताणुओं की संख्या वृद्धि करता है। हृदयपर कपूरका उत्तेजक प्रभाव कुछतो सरल रूप से और कुछ आमाशय द्वारा होता है, जिससे नाड़ी परिपूर्ण और बलवती हो जाती है। परन्तु उसकी गति तीव्र नहीं होती। वरन् कपूर की अधिक मात्रा से नाड़ी क्षीण एवं द्रुतगामिनी हो जाती है। यद्यपि रोगी-शय्यागत अनुभव (Clinical experience) से यह प्रगट होता है कि कपूर रक्तपरिभ्रमणोत्तेजक है, तथापि इसका शोणित-संक्रमण एवं हृद्गत प्रभाव विषयक ज्ञान अपूर्ण तथा अनिश्चित है। सोधा शोणित (Circulation) में इसका अंतः क्षेप करने से यह धामनिक चाप को वृद्धि करता है। परन्तु इसका उक्त प्रभाव अक्षुण्ण वा सार्वदिक नहीं होता और प्रायशः इससे कुछ भी वृद्धि नहीं होती। कतिपय प्रयोगों में इससे हृदयोद्दीप्ति प्रत्यक्ष देखी गई है; जब कि अन्यों को कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं हुआ। संभवतः यह हृत्पेशियों को उत्तेजित करता है। इसके प्रयोग से हृदयगत रक्तनलिकाएँ (Coronary vessels) परिविस्तृत हो जाते हैं। परन्तु यह निश्चित नहीं है कि ऐसा इसे औषधीय मात्रा में प्रयुक्त करने से भी होता है (कुशनी)। यह बात सुझाई गई है, कि यद्यपि स्वस्थ हृदय पर कपूर का कोई प्रभाव नहीं होता, तथापि असंयत वा निर्बल हृदय को यह सुस्थता प्रदान करता है। यह त्वगीय रक्तप्रणालियों को विस्फारित करता है और सुरासारवत् औष्म्यानुभूति प्रदान करता है। संभवतः यह त्वगीय रक्तप्रणालियों एवं हार्दीय धमनियों को विस्फारित कर, ठीक उसी प्रकार पुनः रक्तवितरण संपादन करता है, जिस प्रकार कुचलीन Strychnim (दे० "कुचला")। संज्ञोमक होने के कारण, जब इसका अंतः क्षेप किया जाता है, तब यह परावर्तित सोषुम्नोद्दीप्ति को उत्तेजित करता है (Gunn)। (मे० मे० घोष)

निःश्वासोच्छ्वास—इससे श्वासोच्छ्वास किसी भाँति तीव्र हो जाता है और वायु प्रणाली गत द्रव क्षरण अभिवर्द्धित हो जाता है। इस हेतु कपूर किंचित् कफ निःसारक [Expectorant) है।

वातनाड़ी-संस्थान—यह मस्तिष्क को उत्तेजित करता है। इसके अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से उद्वेग (Excitement), शिरोभ्रमण, विचार-विभ्रम, असंबद्ध गति और कभी कभी आक्षेप—ये लक्षण उपस्थित होते हैं। तदुपरांत निःसंज्ञता एवं घोर निद्रा (Stupor) उपस्थित होना संभाव्य होता है। किसी किसी पर इसका मनोल्लासकारी प्रभाव होता है जिससे उसमें नृत्य और हास्य के विचारयुक्त रुचिकर कल्पनायें उत्पन्न होती हैं। इसके विपरीत अन्य लोगों में इससे किसी प्रकार का उद्वेग दृष्टिगत नहीं हुआ है। अपितु इससे एक प्रकार का तंद्रा एवं निद्रायुक्त अवसाद को प्रतीत हुई है। इसके सेवन से प्रथम तो उद्दीपक प्रभाव होता है, तदुपरांत परावर्तित गत्यवसादक, फलतः यह आक्षेप निवारक प्रभाव करता है। इससे रक्तनालियों को गति देने वाले (Vaso-motor) एवं श्वास-प्रश्वास केन्द्र उत्तेजित होते हैं।

त्वचा—संभवतः आमाशयगत क्षोभ के कारण मुख द्वारा कर्पूर सेवन के बाद ही त्वगीय रक्त वाहनियों का विस्तार उपस्थित होता है। यह पसीने के साथ बहिः क्षिप्त होता है। अस्तु, स्वेदोत्पादक वात-केन्द्रों पर प्रत्यक्षतया एवं स्वेद ग्रन्थियों पर स्थानीय प्रभाव करके यह स्वेद की उत्पत्ति को अभिवर्द्धित करता है।

संवर्तन—शरीर रचना संबन्धी संवर्तन क्रिया पर इसका क्या प्रभाव होता है, यह अभी तक अज्ञात है; सिवाय इसके कि यह रुग्णावस्था एवं स्वस्थावस्था में शारीरिक ताप को कम करता है और मूत्र में 'कैम्फो-ग्लाइक्युरोनिक एसिड' रूप में इसका उत्सर्ग होता है।

तापक्रम (Temperatue)—स्वस्थावस्था में शारीरिक ताप-क्रम पर इसका अत्यल्प प्रभाव होता है, परन्तु मुख्यतः त्वगीय रक्तप्रणालीय विस्तारजन्य संतापाभाव के कारण ज्वरावस्था में इसका मंद ज्वरहर प्रभाव होता है।

जननेन्द्रिय—कहते हैं कि साधारण मात्रा में देने से यह वृष्य वा वाजीकरण (Aphrods-

iac) है। परन्तु बड़ी मात्रा में देने से यह कामावसाय (Anaphrosiac) उत्पन्न करता है।

नोट—भारतीय चिकित्सक भीमसेनी कपूर—बरास (Borneo Camphor) को वृष्य मानते हैं, परन्तु इसके विपरीत इसलामी हिकिम्बा इसे और काफ़ूर क़ैसूरी दोनोंको अवृष्य—कामावसाय जनक बतलाते हैं।

उत्सर्ग—शरीर धातुओं में कपूर अंशतः ऊष्मीकृत (Oxidise) होता है और कैम्फोरोल नामक द्रव्य का निर्माण करता है। उक्त द्रव्य ग्लाइक्युरोनिकाम्ल (Glycuronic acid) के साथ संयुक्त होकर वृक्कों के द्वारा उत्सर्गित होता है। शरीर से लगभग अपरिवर्तित दशा में वृक्क, त्वचा और वायु प्रणालियों की श्लैष्मिक कलाओं के रास्ते कपूर का उत्सर्ग होता है।

कपूर के विषाक्त प्रभाव

उग्र विषाक्त प्रभाव—यद्यपि कर्पूर द्वारा विषाक्तता क्वचित् ही होती है, तथापि इसे अधिक परिमाण में खा लेने से, पाकस्थली की जगह वेदना (Epigastric pain) होती है, जी मिचलाता और कभी-कभी क़ै आती है। इसके सिवाय शिरोघूर्णन, दृष्टिमांद्य, प्रलाप, मृगी वत् आक्षेप, शरीर की नीलवर्णता, पक्षाघात इत्यादि लक्षण होते हैं। शीतल, चिपचिपा, स्वेद आता और पेशाब का आना वा उसकी उत्पत्ति रुक जाती है। अंततः संमोह वा अचेतावस्था में मृत्यु उपस्थित होती है।

उपचार—वामक औषधि देकर वमन करायें वा ष्टमक-पंप से आमाशय को प्रक्षालित करें। शीघ्र प्रभावोत्पादक सेलाइन अर्थात् क्षारीय रेचन दें। शीतल एवं उष्ण डूश का प्रयोग करें। काउंटर इरिटेंट्स काम में लावें। निर्बलावस्था में उत्तेजक वस्तुओं का व्यवहार करायें और यदि आवश्यकता हो, तो कुचलीन ष्ट्रिकनीन का त्वगीय अन्तःक्षेप करें।

चिरकालानुबन्धी विषाक्त प्रभाव—नवयुवती रमणीगण अपने सौंदर्य वर्द्धनार्थ वा अपना वर्ण कर्पूरवत् सफेद बनाने के लिए कभी २ कपूर खाने का अभ्यास करती हैं। परन्तु एक बार इसकी आदत पड़जाने पर पुनः इसका परित्याग कर देना अतीव कठिन होजाता है। इस प्रकार आदती तौर पर थोड़ा सा कपूर खाने से मनोल्लास एवं आत्मानंद का अनुभव होता है। अत्यन्त निर्बलता एवं शरीर की पांडु-वर्णता इसके प्रधान लक्षण हैं।

कपूर के प्रयोग

बहिः प्रयोग

कपूर एक सुलभ द्रव्य है। अस्तु, कटिशूल, मांसपेशीगत वेदना; चिरकालानुबंधी आमवात प्रभृति कतिपय रोगों में शूल निवृत्यर्थ गृह अभ्यङ्गौषधों में प्रायः इसका उपयोग करते हैं।

उत्तेजक प्रभाव के लिए मोच खाये हुये स्थान (Sprains) पर तथा प्रदाहजन्य संधिशोथ पर (चाहे वह संधिवात के कारण हो अथवा किसी अन्य कारण से) लिनिमेंट आफ कैम्फर का अभ्यंग किया करते हैं। कास (Bronchitis) पार्श्वशूल (Pleuritis) एवं फुप्फुसौष (Broncho-Pneumonia) रोग में लिनिमेंटम् कैम्फोरी एमोनिएटेड, टर्पेनटाइन—तारपीन तेल तथा एसीटिक एसिड लिनिमेंट का काउंटर इरिटेंट रूप से उरोभ्यंग अतीव उपयोगी सिद्ध होता है। उद्धूलन की औषधियों में कपूर का महीन चूर्ण मिलाकर कतिपय त्वग्रोगों, जैसे—पामा (Eczema) एवं इंटर ट्राइगो प्रभृति पर अवचूर्णन करते हैं। एक आउंस ज़िंक आइंटमेंट में आधा ड्राम कपूर मिलाकर उत्पादकांगजात पामा पर लगाने से खाज कम होजाती है। कपूर को सुरासारमें घटितकर फिर उसे सादे मलहम में मिलायें। इसे अर्श (Piles) पर लगाने से ख़राश एवं वेदना कम होजाती है।

फोड़ा फुन्सी (Boils) तथा शय्या-क्षत पर यदि रोग प्रारम्भ होते ही स्पिरिट आफ कैम्फर लगाया जाय, तो रोग बढ़ने नहीं पाता, उपरितन वातशूल (Superficial neuralgia) के निवारणार्थ स्थानीय वेदना स्थापक रूप से, क्लोरोल कैम्फर और मेंथोल कैम्फर अत्यन्त उपादेय होते हैं।

उत्तेजक रूप से त्वग्रोग विशेष पाददारी (Chilblains) में कपूर का उपयोग होता है। मृदु, लौहित्योत्पादक गुणोंके कारण यह आम वातिक व्याधियों में प्रयुक्त बहुशः अभ्यंगौषधों का एक लोकप्रिय उपादान है। अमोनिएटेड कैम्फर लिनिमेंट एक प्रबल काउंटर इरिटेंट है और यह छाला डालने के काम आ सकता है।

आन्तरिक प्रयोग

मुख—मुख दौर्गन्ध्यनिवारणार्थ प्रायः कर्पूरित खटिका (Camphorated Chalk) दंत-मंजन का व्यवहार किया जाता है। या पानमें कपूर डालकर खाते हैं। कीट-भक्षित दंत में क्लोरल कैम्फर लगाने से तत्क्षण वेदना शांत होती है। शिशुओं के उदराध्मान एवं उदरशूल के लिए कर्पूर जल (Camphor water) एक घरेलू दवा है। उदराध्मान तथा वयस्क उदर शूल में स्पिरिट आफ कैम्फर का व्यवहार करने से बहुत उपकार होता है। ग्रीष्मातिसार (Summer Diarrhoea) तथा विषूचिका की तो यह अतीव गुणकारी औषध है। अस्तु, उक्त रोग में प्रारम्भ से ही रोगी को दस या पंद्रह मिनट पर ५–६ बूँद स्पिरिटस कैम्फोरी फार्रियार उस समय तक देते रहें। जबतक कि रोग के लक्षण घट न जायँ, इसके बाद इसे एक-एक घण्टाके उपरांत दें।

नोट—विषूचिका की अंतिम अवस्था में यह उपयोगी सिद्ध नहीं होती।

श्वासोच्छ्वास पथ—कपूर सूँघने या इसके नस्य लेने से प्रतिश्याय (Coryza) रोग वा छिक्का विशिष्ट चिरकारीनजला (Catarrh) आराम होजाता है। इसके साथ ही ५-५ बूँद स्पिरिट प्रति १५ मिनट पर मुख द्वारा सेवन कराना चाहिये। पैरेगोरिक के रूप में अथवा पार्सीक यवानी संयुक्त वटी-योग के रूप में चिरकारी कास (Bronchitis) में इसका सेवन विशेष गुणकारी होता है।

रक्त परिभ्रमण—(Circulation) अन्नमार्ग से कपूर का अभिशोषण बहुत मंदगति से होता है। अतएव रक्तपरिभ्रमणोद्दीपक रूप से इसका त्वगधोऽन्तःक्षेप करना चाहिए। औपसर्गिक ज्वरों, फुफ्फुस शोथ (न्युमोनिया) जीवाणुमयता (Septicœmia) इत्यादि रोगी की अंतिम अवस्था में हृदय को उत्तेजित रखने वा उसे बल-प्रदान करने के लिए इसका उपयोग करते हैं। जब सहसा श्वास प्रश्वास तथा हृदय का कार्य बन्द हो जाता है, तब तैल वा ईथर (१ घन शतांशमीटर में ½-१ रत्ती कपूर) विलीन कपूर का सेवन अतिशय गुणकारी होता है। परंतु बहुतों को इसकी उपादेयता में संदेह है।

नाड़ी-संस्थान—बहुशः आक्षेप विशिष्ट रोगों यथा,—वातज हृत्स्पंदन, कंपवात, योषापस्मार इत्यादि में इसके उपयोग से संदेहपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए।

जननेन्द्रिय (Genital organs) अधिक परिमाण में सेवन करने से यह कामेच्छा और (Chordee) को रोकता है। सीने पर लगाने वा १॥ रत्ती की मात्रा में मुख द्वारा सेवन करने से यह स्तन्यहर प्रभाव करता है।

पत्रीलेखन विषयक संकेत—इसके उपयोग का सर्वोत्कृष्ट प्रकार यह है कि इसे दुग्ध में (२॥ तोले वा १ आउंस दुग्ध में १ ड्राम कपूर) विलीन करके सेवन करें। इससे इसके अप्रिय स्वाद का भी निवारण हो जाता है। इसके स्पिरिट को चीनी के ऊपर डालकर या इमलशन बनाकर सेवन कर सकते हैं। कर्पूर चूर्ण को केचट में डालकर वा गोली बनाकर सेवन कर सकते हैं। त्वगधोऽन्तःक्षेप के लिए इसे जैतून तेल (५ में १) वा ईथर में विलीन करके उपयोग कर सकते हैं। मे० मे० घोष।

(२) कचूर। कर्चूरकंद। शटी। (३) कच्ची हलदी। आर्द्र हरिद्रा। काँचा हलुद (बं०) श० च०।

कपूर इंग्रिस–[मल०] (Calcii carbonas) विलायती चूना। गिले क़ीमूलिया।

कपूर कचर–[बम्ब०] कपूर कचरी।

कपूर कचरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कपूर+कचरी] एक बेल वा क्षुप, जिसकी जड़ सुगंधित होती है और दवा के काम में आती है। हिमालय में इसे

'शेदूरी' कहते हैं। आसाम के पहाड़ी लोग इसकी पत्तियों की चटाई बनाते हैं। जड़ को प्रायः जलमें औटाकर उसके टुकड़े २ कर सुखाकर रखते हैं। जिसमें वह कृमि और वायु आदि दोष से सुरक्षित रहे कचूर की तरह ही इसकी जड़के प्रायः गोलाकार टुकड़े बाज़ार में मिलते हैं। ये टुकड़े १ से १॥ (lines) मोटे और लगभग दुअन्नी वा चवन्नी इतने बड़े अत्यन्त श्वेत एवं सुरभियुक्त होते हैं और उनके सिरे पर ललाई लिए भूरे रंग की छाल लगी होती है। इसका उपयोग उन्हीं २ स्थलों में होता है, जिनमें कि कचूर का। तो भी यह उसकी अपेक्षा अधिक उत्तम ख्याल की जाती है। किसी-किसी ने क्षुद्र और बृहत् भेद से इसे दो प्रकार का लिखा है। डीमक के मत से ये क्रमशः भारतीय और चीनी संज्ञा से अभिहित हुए हैं। उनके वर्णन के अनुसार ये दोनों प्रकार की कपूरकचरी बंबई के बाजारों में उपलब्ध होती है। इनमें से भारतीय कपूर कचरी के बहुधा वृत्ताकार चपटे टुकड़े होते हैं। पर कभी २ इसके लंबे टुकड़े भी होते हैं। ये टुकड़े विविध मोटाई के तथा $\frac{1}{2}$ इंच वा उससे न्यून व्यास के और श्वेत रंग के एवं श्वेतसार परिपूर्ण होतेहैं। इसकी ताजी कटी हुई जड़ में केन्द्र भाग से बल्कल भाग को प्रथक् करनेवाली एक धुँधली विभाजक रेखा आलोकित होती है। प्रत्येक टुकड़े के दोनों सिरे ललाई लिए भूरे रंग के वल्कल से आच्छादित होते हैं। और उनपर असंख्य क्षतचिह्न (Scars) एवं वृत्ताकार छल्लों (Rings) के चिह्न पाये जाते हैं। उनपर जहाँ-तहाँ पतली-पतली जड़ें (Rootlets) संलग्न रहती हैं। इसकी गंध इंद्रधनुषपुष्पीमूल (Orris root) वत्, पर उसकी अपेक्षा अधिक ज़ोरदार एवं तीव्र कर्पूर गंधमय होती है। खाने में यह कड़ुई, चरपरी और तीक्ष्ण सुगंधिमय होतीहै। इससे भिन्न चीनी कपूरकचरी भारतीय की अपेक्षा किञ्चिद् वृहत्तर श्वेत तर और न्यूनतर चरपरी होती है। छिलका अपेक्षाकृत अधिक मसृण और हलके रंग का होता है। देखने में यह भारतीय की अपेक्षा अधिक सुन्दर पर गंध में उससे घटिया होती है।

सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र के नीचे रखकर देखने से इसकी जड़ (Rhizome) में एक पतला पैरेन् कायमा (parenchyma) पाया जाता है। जिसकी बहुसंख्यक सेलें बृहद् अंडाकार श्वेतसारीय कणों से लदी होती है। उनमें से कुछ सेलों में एक प्रकार का पीताभ राल और अस्थिर तैल वर्तमान होता है। उपचर्म पिच्छित, लगभग रिक्त, रक्ताभ धूसर सेलों की अनेक पंक्तियों से निर्मित होता है।

श्वेतसार की अपरिवर्तित अवस्था के कारण ऐसा विदित होता है कि जड़ें धूप में सुखाई नहीं गई हैं।

पर्य्या०—गन्धपलाशः, स्थूलकः, तिक्तकन्दकः तापसी, ज्वलनी, हरिद्रा, पत्रकन्दका (ध० नि०) शठी, पलाशी, षड्ग्रंथा सुव्रता, गंधमूलिका, गंधारिका, गंधवधूः, वधूः, पृथुपलाशिका, गंधपलाशी, (भा०) सुगन्धचन्द्रा, सौम्या, सोमसंभवा, काष्ठपलाशिका, सुग्रहांतिका (के० नि०) गधौली, गधशटी, गन्धपलाशिका, गन्धपलासी, गन्धपल्लवा गन्धपीता, स्थूलिका—सं०। कपूरकचरी, कापूरकचरी, काफूर कचरी, कचरी, कचूरकच, सितरुत्ती ?—हिं०। कपूरचकरी (ली)विलायती कचूर—द०। शेदूरी—हिमा०। कपूर कचरी—बं०। हेडिकियम् स्पिकेटम् Hedychium Spicatum, *Smith* Ham (Root of)—ले०। शीमै-किच्चिलिक्-किज़ङ्गु—ता०। सीम-किच्चिलिगड्डलु ते०। कपूर-कचरी—मरा०, गु०। कपूरकचूर—पं०, मरा०, गु०, हिं०। सीर-सुत्ती—बम्ब०। खोर, कचूर कचु, बनकेला, शेदूरी, शाल्वी, साकी, (पण्यमूल)=कपूर कचरी, कचूर—पं०। कचूर कच, कपूरकचरी, बन हल्दी—उ० प० मा०।

टिप्पणी—कपूर कचरीकी समूची (Whenentire) जड़ ललाई लिये भूरे रंग की होती और सफेद रंग के गोल गोल चिन्हों से व्याप्त होती है। इसलिये यह 'सितरुत्ती' वा 'सित-रित्ती' अर्थात् छोटा कुलंजन भेद Alpinia khulaujan (दे० 'कुलंजन') और इनमें भी प्रधानतया छोटा कुलंजन भेद से विशेष समानता रखती है। परन्तु यह उक्त दोनों से सर्वथा भिन्न है। तोड़ने पर यह भीतर से उक्त दोनों की अपेक्षा अत्यधिक श्वेत, श्वेतसारीय रचनायुक्त (amyl-

aceous in struture),सुरभियुक्त,किंचिद् उष्ण एवं सुगंधास्वादयुक्त होती है, परन्तु मरिचवत् वा चरपरी नहीं होती. गंध, आस्वाद, आभ्यंतरिक वर्ण और गुणधर्म आदि में यह कचूर Long zedoary Curcuma Lerumbet of Ronburgh) के समान होती है, अस्तु, इसकी विलायती कचूर, शीमै किचिलिकिज़ङ्ग, और सीम-किचिलि-गड्डलु प्रभृति देशी संज्ञायें जिनका अर्थ विदेशी कचूर है, अन्वर्थक हैं।

किसी किसी ग्रंथमें काकूरकचरी जो कपूरकचरी का ही एक पर्य्याय है, 'सित्तरित्ती' और 'सुतरुत्ती' संज्ञा के पर्य्याय स्वरूप उल्लिखित है, जो सर्वथा भ्रमात्मक है, क्योंकि ये छोटा कुलंजन की तामिल संज्ञायें हैं जो कपूरकचरी से एक भिन्न जड़ होती है।

आयुर्वेदोक्त शटी वा पृथुपलाशिका अर्थात् नरकचूर कपूरकचरी की ही जाति की, पर इससे भिन्न औषधि है। राजनिघंटु में गंधपलाशी का उल्लेख नहीं हुआ है। राजनिघंटूक्त गन्धपत्रा वा वन सटी अर्थात् जंगली कचूर (कचूर भेद) का हमने गंधपलाशी से पृथक् तीखुर (तवक्षीर) के अंतर्गत वर्णन किया है।

प्राचीन यूनानी ग्रंथों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उस समय यह औषधि सदिग्ध हो गई थी। मुहीत आज़म प्रणेता हकीम मुहम्मद आज़म खाने रमूज़ आज़म नामक स्वरचित ग्रंथ के जो संभवतः उनकी सर्व प्रथम रचना है, वमनाधिकार में छर्दि की चिकित्सा लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा है कि 'ज़रंबाद' को कूट छानकर गुलाब जल में मिलाकर मूंग के बराबर वटिकाएँ प्रस्तुत करें। और अक्सीर आज़म में जो उसके बाद की रचना है, जरंबाद की जगह कपूर कचरी लिखा है। इसके भी बाद के रचित क़राबादीन आज़म नामक ग्रन्थ में यही कपूरकचरी उल्लिखित है। मुहीत आज़म में जो सर्वापेक्षा पीछे की कृति है, यह उल्लिखित है कि जरंबाद की एक किस्म नरकचूर है, जिसको कपूर कचरी भी कहते हैं। फलतः उनके कथनानुसार निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है, यथा—(१) जरंबाद और कपूर कचरी एक वस्तु है, (२) कपूरकचरी जरंबाद का एक भेद है, (३) नरकचूर और कपूरकचरी एक है। पर वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है अर्थात् उक्त दोनों में महदन्तर है। नरकचूर हल्दी की तरह होता है और कपूरकचरी के टुकड़े होते हैं। दोनों के गंध और स्वादमें भी अंतरहै। इसी प्रकार प्रायः आरव्यआदि यूनानी औषधि-कोषों में जरंबाद का कपूरकचरी तथा नरकचूर के अर्थ में भ्रमात्मक प्रयोग किया गया है ऐसा प्रतीत होता है।

आर्द्रक वा हरिद्रा वर्ग

(*N. O. Scitamineœ.*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष के हिमालय (*Subtropical Himalaya*), कुमाऊँ और नैपाल प्रभृति स्थान और चीन देश में ५००० से १००० फुट की ऊँचाई तक पैदा होती है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में लिखा है कि यह एक सुगंधद्रव्य है, जो काश्मीर में गंधपलाशी नाम से प्रसिद्ध है।

औषधार्थ व्यवहार—कंद

रासायनिक संघटन—इसमें ग्ल्युकोसाइड वा सैकरीन मैटर, लबाब (mucilage), अल्ब्युमिनाइड्स, सैन्द्रियकाम्ल इत्यादि तथा श्वेतसार, आर्द्रता, भस्म, काष्ठोज (cellulose) प्रभृति तथा राल, स्थिर तैल (Fixed oil) और एक सुगंध-द्रव्य ये वस्तुएँ पाई जाती हैं।

औषध-निर्माण—चूर्ण, क्वाथ, सौन्दर्यवर्द्धक लेपादि और अबीर।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कास श्वासहरा सिध्माज्वरं शूलानिलापहा।
सटी स्वर्या त्वधोमूला कषाय कटुकासरा॥

(ध० नि०)

अधोमूलासटी वा कपूर कचरी—कास, श्वास, सिध्म, (कुष्ठ भेद) ज्वर, शूल और वातनाशक कसेली, चरपरी, दस्तावर और स्वर के लिए हितकारी है।

भवेद्गंध पलाशीतु कषाया ग्राहिणी लघुः।
तिक्ता तीक्ष्णाच कटुकानुष्णास्य मलनाशिनी।
शोथ कास व्रणश्वास शूलाहृध्मग्रहापहा॥

(भा०)

गन्धपलाशी अर्थात् कपूर कचरी—कषेली ग्राही, लघु, कड़वी, तीक्ष्ण, कटु, अनुष्ण, (उष्णता रहित) मुख के मल को दूर करनेवाली तथा ग्रह दोषनाशक है और सूजन, खाँसी, व्रण, श्वास, शूल तथा हिचकी इन्हें नष्ट करती है।

ससुगंधः कचुरकस्तीक्ष्णो दाहीकटुःस्मृतः।
तिक्तश्च तुवरश्चैव शीतवीर्यो लघुः स्मृतः ॥
किञ्चित्पित्तं कोपयति कासश्वास ज्वरापहः।
शूल हिक्का गुल्म रक्तरुजं वातं त्रिदोषकम् ॥
मुखवैरस्यदौर्गन्ध्य व्रणामच्छर्दिहिध्महा।
(नि० र०)

कपूर कचरी—तीक्ष्ण, दाहजनक, चरपरी, कड़वी, कषेली, शीतवीर्य, हलकी, किंचित् पित्तकारक, तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, शूल, हिचकी, (हिक्का), गोला, रुधिर रोग, बादी, त्रिदोष, मुख की विस्सता, दुर्गंध, घाव, आम, वमन और हिध्म रोग को नष्ट करती है।

द्रव्य रत्नाकर—में इसे मुखरोग तथा गुल्म रोग नाशक लिखा है। निघण्टु संग्रह के अनुसार यह खाँसी, दमा, हिचकी, उदरशूल, ज्वर, गुल्म, रक्तविकार और बादी को मिटाती है।

यूनानी मतानुसार गुणदोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष। (वैद्यक के मत से यह शीतल है)।

हानिकर्त्ता—हृदय को और शिरःशूल उत्पन्न करती है।

दर्पघ्न—बनफ़्शा, चंदन और पुदीना।

प्रतिनिधि—शतावर और दरूनज अक़रवी।

मात्रा—४ से ४॥ माशे बल्कि ६ माशे तक (समूज़ आज़म अतिसाराधिकार)।

गुण, कर्म, प्रयोग—कपूर कचरी, हृदय, मस्तिष्क, और आमाशय को शक्ति प्रदान करती है, अवरोधोद्घाटन करती वा सुद्दा खोलती है, उल्लास-प्रद है और बाह को शक्ति प्रदान करती, अर्थात् बाजीकर है। यह लिंगोत्थापन करती, मूत्र एवं आर्त्तव का प्रवर्त्तन करती तथा सर्दी की खाँसी और बच्चों की पेचिश को लाभकारी है। यह खूब अधोवायु त्याग कराती और आमाशय गत वायु को विलीन करती, तथा पाचन करती है। शोथ पर इसका चूर्ण मर्दन करने से सूजन उतरती है, यह वेदना शमन करती है। इसकी छोटी किस्म को जिसे कीड़े न खाये हों, बारीक पीसकर पानी में सानकर मटर के दाने के बराबर वटिकाएँ प्रस्तुत कर एक दो गोली खिलाने से अत्यधिक कै आना रुक जाता है। छः माशे कपूर कचरी के चूर्ण में सम भाग खांड मिलाकर ठंडे पानी से फाँकने से अतिसार रोग नष्ट होता है। वैद्य कहते हैं कि कपूर कचरी कब्ज पैदा करती है और आमदोष (ख़ाम मादा) खाँसी तथा रक्त विकार को दूर करती है। —ख़० अ० म० मु०।

नव्यमत

डौट—उत्तर पश्चिम प्रांत में प्रसिद्ध-मलयागिरी नामक वस्त्र के सुवासनार्थ इसकी सुगंधित जड़ मेंहदी के साथ काम में आती है।

डीमक—यह अधोलिखित अबीरत्रय का एक प्रधान उपादान है। यथा—

(१) सफेद अबीर—इसमें खस, कपूर कचरी, चंदन और भारतीय अरारोट अर्थात् तीखुर वा (Flour of Sorghum) प्रभृति द्रव्य पड़ते हैं।

(२) घाँसी—नामक अबीर जिसे गुजराती में 'पदी' कहते हैं—उपर्युक्त द्रव्य समूह के सिवा इसमें ये द्रव्य और पड़ते हैं—कचूर, लौंग, इलायची, प्रियंगु (Seeds of Prunus mahalile) दमनक भेद (Artemisia Sieversiana) और देवदारु (Cedrus Deodara)।

(३) काला अबीर—वा दक्षिण में प्रसिद्ध बुक्का नामक अबीर—इसमें उपर्युक्त सर्व द्रव्य समूह के अतिरिक्त ये द्रव्य और पड़ते हैं। यथा—अगर, कूठ, बालछड़ और शिलारस।

जैनियों के वासखेप वा वासक्षेप, नामक सुवासित चूर्ण में यह नहीं पड़ती। उसमें ये द्रव्य पड़ते हैं—चंदन, केसर, कस्तूरी और बरास कपूर। पावेल (Powell) के मत से पंजाब में इसे तमाकू में पीसकर धूम्रपान करते हैं।—(फार्माकोग्राफिया इंडिका भ० ३ पृ० ४१७-८)

नादकर्णी—यह जठराग्नि, उद्दीपक Stomachic) वातानुलोमक, वल्य और उत्तेजक है। अजीर्ण रोग में इसका चूर्ण वा आधी छटाँकसे एक छटाँककी मात्रामें काथ (२० में १) उपकारी होता है। केशवर्द्धनोपयोगी अंगराग लेपों वा सौंदर्य वर्द्धक चूर्णों के निर्माण में यह काम आती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह अग्निवर्द्धक, उदर को शांति देनेवाली, पौष्टिक और उत्तेजक है। यह मंदाग्नि और उपदंश में उपकारी है।

कायस महस्कर के अनुसार सर्पदंश में इस औषधि की कोई उपयोगिता नहीं है।

[गु०] चन्द्रमूल। चन्द्रमूलिका।

(Kaempferia galanga, *Linn.*)

कपूरकचली–[गु०] कपूरकचरी।

कपूर कचिली–[गु०] कपूरकचरी।

कपूर कचूर–[हिं०, गु०, मरा०, पं०] कपूरकचरी।

कपूरकाचली–संज्ञा स्त्री० [हिं०] कपूरकचरी।

कपूर का तेल- संज्ञा पुं० [हिं० कपूर×का×तेल] कर्पूर तैल। दे० "कपूर"।

कपूर कुचरी–[बम्ब०] चन्द्रमूलिका।

कपूरकचरी–[मरा०] कपूरकचरी।

कपूरकाट–संज्ञा पुं० [हि० कपूर+काट] एक प्रकार का महीन जड़हन धान जिसका चावल सुगंधित और स्वादिष्ट होता है।

कपूर त्वर्ण–संज्ञा पुं० [?] छोटी इलायची।

कपूर फुटी–संज्ञा स्त्री० [मरा०] (Aerula Lanata, *Juss.*) चय। भुइ कद्दाँ।

कपूरवेल–संज्ञा पुं० [सं० कर्पूर+वेल] एक पुष्प वृक्ष जो पंच-पत्रयुक्त होता है। इसका फल केसर पुष्पवत् होता है और यह फिरंग देश से आता है। ता० श०।

कपूरभिंडी–
कपूरभेंडी–
} संज्ञा स्त्री० [मरा०] पित्तबेल। पित्तमारी। [देश० बम्ब०] एक बड़ी झाड़ी।

(Naregamia alata *W. &A.*)

कपूर मधुर–संज्ञा पुं० [मरा०] (Aerula Lanata, *Juss.*) चय। भुइ कद्दाँ।

कपूरलि–[मरा०] पंजीरी का पात। सोवाकी पंजीरी

कपूरहरदी, कपूरहल्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्पूर हरिद्रा] (१) नरकचूर। (२) आम आदा। दे० "आमआदा"।

कपूरा–[गु०] बाँस।

संज्ञा पुं० [हिं० कपूर=कपूर के समान सफेद] भेंड़, बकरी आदि चौपायों का अंडकोश।

कपूरी–वि० [हिं० कपूर] (१) कपूर का बना हुआ (२) हलके पीले रंग का।

संज्ञा पुं० (१) कुछ हलका पीला एक रंग। (२) एक प्रकार का पान जो बहुत लम्बा और कड़ुआ होता है। इसके किनारे कुछ लहरदार होते हैं। सुनने में आता है कि कपूरी पान खाने से पुरुष नपुंसक हो जाता है।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की बूटी जो पहाड़ों पर होती है। इसकी पत्तियाँ लम्बी-लम्बी होती हैं जिनके बीच में सफेद लकीर होती है। इसकी जड़ में से कपूर की सी गन्ध निकलती है। अनन्तमूल। सारिवा। (Hemi desmus dnoica) वि० दे० "सारिवा"।

कपूरी जड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बहु वर्ष जीवी वनस्पति। गोरखबूँटी। (Aerva Lanata)

कपूरी लता–संज्ञा स्त्री० [हिं० कपूरी+सं० लता] कर्पूरवल्ली। दे० "कपूरी"।

कपूस–[मरा०, कों०] कपास।

कपृथ–[सं० पुं०] पुरुषत्व। मर्दानगी।

कपेत बेल–[बं०] कैथ।

कपेलो–[राजपु०] कमीला। लालमिट्टी।

कपोत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कपोतिका, कपोती] (१) कबूतर। पारावत। अग्नि० २१ अ०। रा० नि० व० १७। राज०। वि० दे० "कबूतर"। (२) परेवा–कपोत जाति की एक चिड़िया। पेंडुकी। फाख़्ता। मे० विश्व० तन्त्रिक।

पर्य्याय—चित्रकण्ठ (मे०), कोकदेव, धूसर धूम्रलोचन. दहन, अग्निसहाय, भीषण, गृहनाशन

गुण—इसका मांस बलकारक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, कसेला, मधुर, कफनाशक, रक्तपित्तनाशक और विरुद्ध है।

(३) सुश्रुत के अनुसार १८ प्रकार के ज़हरीले चूहों में से एक। सु० कल्प० ६ अ०। (४) कपोत समूह। (५) पारा। पारद। (६) सज्जी। सर्जिक्षार। (७) पक्षीमात्र। चिड़िया। (८) पारिस पीपल। पारीश वृक्ष। भा०। (९) भूरे रंग का कच्चा सुरमा।

कपोत, कपोतक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सौवीरांजन रा० नि० व० १३। कपोतांजन। भूरा सुरमा। मे० तन्त्रिकं।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारावत। छोटा कबूतर।

कपोतक निषादी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घोड़े का एक प्रकार का वातरोग।

लक्षण—

"कृच्छ्रादुत्थापितश्चापि पुनर्योयाति मेदिनीं।
कपोतक निषादीति स ज्ञेयः कृच्छ्रजीवनः॥

ज० द० ५५ अ०

अर्थात्—कठिनता से उठाने पर भी जो भूमि पर गिर पड़ता है, वह इस रोग से पीड़ित समझा जाता है। उक्त रोग से पीड़ित अश्व मुश्किल से जीता है।

कपोतका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्राह्मी। के० दे० नि०। नि० शि०।

कपोतकोपाक्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सज्जीखार। नि० शि०। रा० नि०।

कपोत चक्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कवाटचक्र वृक्ष। कराड़िया। रत्ना०। बेंटुवा।

कपोत चरणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नलिका नामक सुगंधित ओषधि। नली। जटा०। (२) खिरनी। क्षीरिका।

कपोतत्राणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नली।

कपोतपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इलायची का पेड़। एला। रा० नि० व० १२।

कपोतपाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कबूतर का बच्चा।

कपोतपुट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पुट का एक भेद। औषधों के पुट देने का एक प्रकार। भावप्रकाश के मतानुसार ऐसे गड्ढे में पुट देने को 'कपोतपुट' कहते हैं, जिसमें आठ अंगुली उपला आ सके। यथा—

यत् पुटं दीयते खाते अष्टसङ्ख्यैर्वनोपलैः।
कपोत पुटमेतत्तु कथितम्.....॥"

भा० म० १ भ०।

कपोतपुरीष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कबूतर का बीट। पारावतविष्ठा। यह फोड़े का फोड़नेवाला है। दे० "कबूतर"

कपोतवक्रा, कपोतवक्त्रा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकमाची। कौआठोंठी। कटई। केवैया। च० द० अरो० चि० कषाय तैल।

कपोतवङ्का–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ब्राह्मी बूटी। यथा "कपोतवङ्काश्योणाकः,"–भा० म० ४ भ० पूतना-ग्रह-चि०। (२) लताफट्की नाम से प्रसिद्ध एक लता। कनस्फोटा। कनफोड़ा। यथा–"कपोतवङ्का सुवर्चला।" सु० सू० ३८ अ०। अन्ये "शिरीशसदृशपत्रस्वल्प विटप वृक्षे" इति द्रव्यान्तरमाहुः। ड०। सु० चि० ७ अ०।

कपोतवर्णा, कपोतवर्णी संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] छोटी इलायची। सूक्ष्मैला। रा० नि० व० ६।

कपोतवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्राह्मी।

कपोतवाणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नलिका। नलुका। रा० नि० व० १२।

कपोतविष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कबूतर का बीट। पारावतपुरीष। यह व्रणदारण है। सु० सू० ३६ अ०।

कपोतवेगा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ब्राह्मी नाम का महाक्षुप। रा० नि० व० ३

कपोतसार–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] स्रोतोऽञ्जन। सुरमा (धातु)।

कपोताङ्घ्री–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नलिका नाम की एक सुगंधित ओषधि। अम०।

कपोताञ्जन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नीलांजन। सुरमा (धातु)।

कपोताण्डोपमफल–एक प्रकार का नीबू। कागज़ी नीबू विशेष। वै० निघ०।

कपोताभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कपोतवर्ण। पीला या मैला भूरा रंग। (२) एक प्रकार का चूहा जिसके काटने से दष्टस्थान पर ग्रन्थि, पिड़का और सूजन की उत्पत्ति होती है।

फिर उससे वायु, पित्त, कफ और रक्त चारों बिगड़ जाते हैं। (सु०)।

वि० [सं० त्रि०] कबूतर के रंग का। चमकीला भूरा।

कपोतारि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाज़ पक्षी। श्येन। श० र०।

कपोतिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चणक मूली। चाणक्य मूलक। कोमल मूलक। वै० निघ०। बड़ी मूली। नि० शि०। (२) कपोती। कबूतरी।

कपोती–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० (१) कबूतरी। कबूतर की मादा। (२) पेंडुकी। (३) कुमरी।

वि० [सं०] कपोत के रंग का। ख़ाकी। धूमले रंग का। फ़ाख़्तई रंग का।

कपोर–[मल०] कली का चूना। सुधा।

कपोल–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्लो०] [स्त्री० कपोली] (१) मस्तक। मत्था। (२) गाल। गण्डस्थल। रा० नि० व० १८।

कपोलक–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] गाल।

कपोलकाष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी की कनपटी। हस्तिगण्डस्थल। (२) वृक्षादि का स्कन्ध स्थान। हाथी के अपनी कनपटी रगड़ने का स्थान। पेड़ का खवा।

"नीलालिः सुरद्विपानां कपोलकाषः।"
(भारवि)

कपोलगेंदुआ–संज्ञा पुं० [सं० कपोल+हिं० गेंदा] गल-तकिया। गण्डस्थलोपधान।

कपोलफलक–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] प्रशस्त कपोल। संभवतः कपोलास्थि को ही कपोलफलक' कहते हैं।

कपोलास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपोल की अस्थि। गाल की हड्डी। (Molar bone) प्र० शा०।

कपोली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जान्वग्रभाग। घुटने का अगला हिस्सा।

कप्पक–[मल०] करेला।

कप्पमावकुरु–[मल०] काजू।

कप्पुमावु–[मल०] काजू।

कप्पमेणसु–[कना०] काली मिर्च।

कप्पल चेट्टु–[मल०] काजू।

कप्पलम–[मल०] अरंड खरबूज़ा। पपीता। विद०–यती रेंड़।

कप्पलमेलक–[मल०] लाल मिर्च। कुमरिच।

कप्पु–[कना०] काला। कृष्ण।

कप्पुमाणकाल–[कना०] सेंदुरिया। लटकन। (Bixa Orellana, *Linn.*)

कप्फा–संज्ञा पुं० (फ़ा० कफ़=झाग गाज] अफ़ीम का पसेव।

कप्यक–[सं०] पलपल।

कप्याख्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शिलारस। सिल्हक। (२) वानर। बंदर।

कप्यास–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बंदर का चूतड़। वानरगुद। बंदर की पीठ के सामने का हिस्सा।

वि० [सं० त्रि०] लाल। रक्त।

कप्ली–[ता०] कमीला।

कफ–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क=देह+फल् गति] (१) वह गाढ़ी लसीली और अंठेदार वस्तु जो खाँसने व थूकने से मुँह से बाहर आती है तथा नाक से भी निकलती है। श्लेष्मा। बलग़म। (Phlegm)–अं०।

(२) वैद्यक के अनुसार शरीर के भीतर की एक धातु जिसके रहने के स्थान आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधि हैं। इन स्थानों में रहनेवाले कफ का नाम क्रमशः क्लेदन, अवलंबन, रसन, स्नेहन और श्लेष्मा है आधुनिक पाश्चात्य मत से इसका स्थान साँस लेने की नलियाँ और आमाशय है। कफ दूषित होने से दोषों में गिना जाता है। वि० दे० "श्लेष्मा" रा० नि व० २१।

(३) कैथ का पेड़। कपित्थ वृक्ष। रा० नि० व० ११। (४) समुद्रफेन। च० द० अर्श चि० प्रलेप।

कफ–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) झाग। फेन। (२) खुर्रा।

कफ अज़्दम–[अ०] (१) संभालू। म्योंड़ी। (२) सुंडुल रूमीकी जड़। (३) कर्महे बैज़ा फ़ाशरा। (४) ख़ुस्युल् कल्ब।

कफ आबगीन:–[फ़ा०] मस्हूक़ूनिया।

कफक–[फ़ा०] (१) झाग। (२) खुर्रा।

कफकर–वि० [सं० त्रि०] कफजनक। कफकारक।

कफवृद्धिकारक। जो श्लेष्मा उत्पन्न करे। महर्षि सुश्रुत के मत से काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा छिन्नरुहा, कर्कटशृङ्गी, तुगाक्षीरी, पद्मक, प्रपौण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मृद्विका, जीवन्ती, और मधुक काकोल्यादिगणोक्त सकल द्रव्य कफकर हैं। वि० दे० "श्लेष्मा"।

कफघः-[फ़ा०] एक प्रकार का साँप।

कफकुञ्जर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारा, गन्धक, सीप का मांस, आक और थूहर का दूध। प्रत्येक एक पल, पांचो नमक एक-एक पल, सबको एकत्र घोटे और बड़े शंख में भर फिर पीपल, विष और त्रिफला का चूर्ण कर उस शंख को इसी चूर्ण से बन्द करें। फिर सम्पुट में रख एक पहर को अग्नि दें। जब भस्म हो जाय, तब निकाल चूर्ण कर रखलें।

मात्रा-½ रत्ती।

गुण-इसके उपयोग से श्वास, खाँसी और हृदय रोग का नाश होता है। (वृहत् रस० रा० सु०)।

कफ कुठार रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, त्रिकुटा, ताम्रभस्म, लोहभस्म समान भाग लें। चूर्णकर दो पहर कटेरी, कुटकी क्वाथ और धतूरा के रसमें घोट दो रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनाएँ। इसे नागर पान के रस में सेवन करने से कफज्वर का नाश होता है। (वृहत् रस० रा० सु०)।

कफकुष्ठहर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वर्ण भस्म अभ्रक भस्म केसर, (फिटकरी,) गंधक, मीठा तेलिया, त्रिकुटा, नागरमोथा, बायविडंग और दारचीनी प्रत्येक १ भाग, चीता ३ भाग। सबका चूर्ण करके तेल में पकाकर रखलें।

मात्रा-१ रत्ती।

गुण तथा उपयोग विधि-इसे बकरीके मूत्र के साथ सेवन करने से कफज कुष्ठ का नाश होता है। र० र० स० २० अ०।

कफकूर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाला। खार। थूक। हे० च०।

कफकेतु रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शंखभस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुना सुहागा तुल्य भाग और सबके बराबर विष। बारीक चूर्ण कर अदरख के रस की ३ भावनाएँ। फिर १ रत्ती प्रमाण गोलियाँ बनाएँ।

गुण तथा प्रयोग-इसे सायं प्रातः दो गोली अदरख के रस के साथ भक्षण करने से कंठ रोग, शिर के रोग, पीनस, कफ समूह और सन्निपात का नाश होता है। (वृहत रस रा० सु०)।

कफकोप-भारी, मधुर, अत्यन्त शीतल, दही, दूध, नवीन अन्न, जल, तिल के पदार्थ और ईख के पदार्थ खाने तथा दिनमें सोना, विषमासन, भोजन पर भोजन, एवं खीर, पिष्ट (चून, मैदा, पिट्ठी,) आदि खाने से कफ कुपित होता है। प्रातः और वैशाख में इसका अधिक कोप होता है। (योगत०)।

कफक्षय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शरीरस्थ स्वाभाविक कफ के नाश का भाव वा क्रिया।

कफगण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गलेका एक रोग। कफज गलगण्ड रोग विशेष। यह स्थिर और गले की त्वचा के समान वर्ण वाला। अल्प पीड़ा युक्त, अत्यंत खाज युक्त, बड़ा और बहुत समय में बढ़ने और पकनेवाला होता है। इसमें पाक-काल में थोड़ी पीड़ा होती है। मुख में मीठापन और कंठ में कफ लिपा सा रहता है। मा० नि०।

कफगुल्म-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का गुल्म रोग जो कफसे उत्पन्न होता है। कफजगुल्म। श्लेष्मज गुल्म। इसका रूप-स्तैमित्य, शीतज्वर गात्रसाद, हृल्लास कास, अरुचि, गौरव, शैत्य और कठिनोन्नतत्व है। च० चि० १ अ०।

कफघ्न-वि० [सं० त्रि०] श्लेष्म नाशक। कफजनित पीड़ा नाशक। सुश्रुतोक्त-आरग्वधादि, वरुणादि, सालसारादि, लोध्रादि, अर्कादि, सुरसादि, पिप्पल्यादि, एलादि, वृहत्यादि, पटोलादि, ऊषकादि, तथा मुस्तादि गणोक्त और त्रिकटु, त्रिफला, पञ्चमूल एवं दशमूल प्रभृति सकल द्रव्य कफनाशक हैं। वि० दे० "श्लेष्मा"।

कफघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शुकनासा केवाँच। (२) एक प्रकार का हड्डा। हाऊबेर।

रा० नि० व० ४। छोटी हाऊबेर। कच्छूघ्नी। रा० नि०। नि० शि०।

कफघ्नी गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपूर ६ मा०, कस्तूरी ६ मा०, लवंग २ तो०, मिर्च, पीपर, बहेड़े की छाल, और कुलिञ्जन २-२ तो०, अनार के फल का छिलका ४ तो०, और सर्व तुल्य खैरसार (कत्था) इन सबको पीसकर (बबूल की छाल के क्वाथ से) घोट कर मूंग प्रमाणकी गोलियाँ बनाएँ। इसे मुखमें रख चूसने से कफ नष्ट होता है। (योगत० उरःक्षत चि०)

कफघ्नी वटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक वटी विशेष। कफघ्नी गुटिका। वृ० नि० र० कास चि०। दे० 'कफघ्नी गुटिका"।

कफचिन्तामणि रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हिंगुल, कपूर, इंद्रजौ, भुना सुहागा, भंगबीज, कालीमिर्च, प्रत्येक समान भाग। एक ओषधी का तिगुना उत्तम रससिंदूर। सबको चूर्ण कर अदरख के रससे खरलकर चने प्रमाणकी गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से कफ और सम्पूर्ण वात के रोग नष्ट होते हैं। (वृहत् रसरा० सु०)

कफ़ज़-[फ़ा०] (१ झाग। (२) ख़ुर्फ़ा।

क़फ़ज़-[?] कसूस का पौधा।

कफ़ जद्मा-[अ०] दे० "कफ़अज़्दम"।

कफज्वर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का बुख़ार जो कफ से होता है। श्लेष्मजन्य ज्वर। कफज ज्वर।

कफणि, कफणी-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] हाथ और बाहु के जोड़ की हड्डी। केहुनी। कोहनी कफोणि। रा० नि० व० १८।

क़फ़त़-[?] जीरा।

कफ़तर-[फ़ा०, तु०] कबूतर।

क़फ़ताला-[रू०] आलू बुखारा।

कफद-वि० [सं० त्रि०] श्लेष्मकारक। कफजनक।

क़फ़द-[सिरि०] साही।

[?] जीरा।

क़फ़दीर-[यू०) मांस। गोश्त।

कफ़नज-[?] रेगमाही। समकतुस्सैदा।

कफनाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का दंतमूलगत रोग विशेष। एक रोग जो मसूढ़ों वा दाँत की जड़ में होता है। मा० नि०।

कफ़नाफ़स-[?] कनेर। खरज़हरः।

कफनाशन-वि० [सं० त्रि०] कफनाशक।

कफप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बलग़मी मिजाज़ श्लेष्मप्रकृति। वि० दे० "श्लेष्मा"।

कफमन्दिर-संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] एक प्रकार का मण्ड। माँड़। फेन।

क़फ़याल:-[?] आलू बुख़ारा।

कफ़र, कफ़्र-[अ०] क़फ़्रुल्यहूद।

क़फ़रस-[?] हाऊबेर। हबुषा।

कफ़रा-[सिरि०] मेहदी। हिना।

कफरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागरमोथा। नागरमुस्ता।

कफरोग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कफजन्य रोगमात्र।

कफरोधि-संज्ञा पुं० [सं० क्ली० कफरोधिन्] मिर्च।

कफ रोहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गले का एक रोग जो कफ से उत्पन्न होता है। एक प्रकार का कफजन्य गलरोग, कफसंभव गलरोहिणी में कंठ का छिद्र बंद हो जाता है। इसके अंकुर कड़े होते हैं और यह देर में पकनेवाली होती है। यथा—

"स्रोतो निरोधिन्यपि मन्दपाकास्थिराङ्कुरा या कफसंभवा सा"।

मा० नि०। दे० "गलरोहिणी"।

कफल-वि० [सं० त्रि०] कफविशिष्ट। बलग़मी।

क़फ़ल-[अ०] सूखी ओषधि। ख़ुश्क नबात।

कफ़ल्-[अ०] दोनों चूतड़ों का मध्य। नितम्ब मध्य।

कफली-संज्ञा पुं० [हिं० खपेली] एक प्रकार का गेहूं जिसे खपली भी कहते हैं।

क़फ़लूत़-[?] शामी गंदना।

क़फ़लूस-[?] ग़ार।

कफवर्द्धक-वि० [सं० त्रि०] जो कफ को बढ़ाये। कफ बढ़ानेवाला। कफ पैदा करनेवाला। श्लेष्मवर्द्धक।

कफवर्द्धन-वि० [सं० त्रि०] कफवर्द्धक। संज्ञा पुं०। [सं० पुं०] एक प्रकार का तगर-फूल। पिंडीतगर। हजारा तगर। त्रिका०।

कफ वात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वात व्याधि।

लक्षण—देह शोफो ज्वरः कार्श्यं कासश्च

ह्रस्व भाषिता। देह स्थूलं च वहति कफवातस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् इस रोग में ज्वर, देह में सूजन, कृशता खाँसी, अल्प भाषण और देह में स्थूलता होती है। वा० रा०।

कफविरोधि–संज्ञा पुं० [सं० पु० क्ली० कफविरोधिन्] निंब। मरिच। रा० नि० व० ६।

वि० [सं० त्रि०] जो कफ पैदा होने वा बढ़ने को रोके। श्लेष्मरोधक।

कफविलयन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह द्रव्य जिसके सेवन से अतिशुष्क श्लेष्मा तरलता को प्राप्त होती है। यथा—अति मात्रा में शुष्क अम्ल रस।

कफ़शार–[फ़ा०] (१) सुतारा। टंकण। (२) कुह्वर।

कफ़शाः–[फ़ा०] मरुडुकुनिया।

कफ़ संग–[फ़ा०] खुर।

कफसंशमन वर्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कफको शांत करनेवाले द्रव्यों का समूह। कफहर ओषधियों का गण। भावप्रकाश के मतानुसार संशमन वर्गी भेषज पानाहारविहार यह है—रूखे, क्षारीय, कसेले कटुए और चरपरे पदार्थ एवं व्यायाम, निष्ठीवन (थूकना), धूम पान, उष्ण शिरो विरेचन, वमन और उपवास आदि तथा स्त्री सेवा, रातमें जागना जलक्रीड़ा—इन भेषज पानाहार-विहार से उग्र से भी उग्र श्लेष्मा का नाश होता है। भा० पू० २ भ०।

कफसम्भव–वि० [सं० त्रि०] जो कफ से पैदा हो। जिसकी उत्पत्ति कफ से हो। कफोत्थ।

कफ़सुफ़ेद–[फ़ा०] बर्फ़।

कफस्थान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शरीर में वह स्थान जहाँ पर कफ रहता है। कफाशय। वैद्यक शास्त्रानुसार ये स्थान पाँच हैं—आमाशय, हृदय, कंठ, शिर और संधियाँ। सु० सू० २१ अ०।

कफस्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नेत्रसंधिगत रोग का एक भेद। श्लेष्मस्राव। कफज नेत्रसंधिगत रोग में सफेद, गाढ़ी और चिकनी पीव आती है। यथा—

"श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं संस्रवेद्धि श्लेष्मास्रावोऽसौ विकरोमतस्तु।" मा० नि०।

कफहर–वि० [सं० त्रि०] कफ को दूर करनेवाला। कफनाशक।

कफहृत्–वि० [सं० त्रि०] श्लेष्मनाशक। कफ को छाँटनेवाला।

क़फ़हर–[?] क़ैफ़हर।

कफा–[?] छुआरे का कली का आवरण। कुकरा।

क़फ़ा–[अ०] बहु० उक़फ़, अक़्फ़ियः, अ (इ) क़ुफ़ाऽ, क़ुफ़ा क़फ़न। गरदन के पीछे का भाग। गुद्दी। मन्या। Nape, Neuca

कफातिसार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का अतिसार रोग। श्लेष्मातिसार। कफजन्य अतिसार। सा०। मा० नि० वि० दे० "अतिसार"।

कफात्मक–वि० [सं० त्रि०] (१) कफमय। बलग़मी। (२) कफरूपी।

कफान्तक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बबूल का पेड़। बर्बूरक वृक्ष। रा० नि० व० ८।

कफापहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जीरा।

कफाम्लकमत–संज्ञा पुं०, वृक्षाम्ल। कोकम। धन्व० नि०। नि० शि०।

क़फ़ार–[अ०] रूखी रोटी विना सालन के।

क़फ़ारस–[यू०] कबर।

क़फ़ारालियून–[यू०] शाहतरः। पित्तपापड़ा।

कफारि संज्ञा [सं० पुं०] आदी। अदरक। (२) सोंठ। रा० नि० व० ६।

क़फ़ारीस–[सिरि०] हब्बुल् ज़ुल्म।

क़फ़ाला–[?] आलूबुखारा।

कफिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हस्तिनी। हथिनी। (२) कफ प्रधान स्त्री। बलग़मी औरत।

कफ़िर्रा–[अ०] दे० "कुक़रा"।

कफी–वि० [सं० त्रि० कफिन्] कफयुक्त। श्लेष्मयुक्त। बलग़मी।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी। गज। वह स्थान जहाँ पर कफ रहता है। ये स्थान पाँच हैं। आमाशय हृदय, कंठ शिर, और संधियाँ।

कफाशय–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक शास्त्रानुसार कफस्थान।

कफाह्वय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैडर्य। महानिम्ब गिरिनिम्ब। महारिष्ट। रा० नि० १ व०।

क़फ़ीज़–[अ०] [बहु० क़फ़्ज़ः, क़फ़्ज़ान] एक माप जो एक मन सवा दो सेर १० माशे वा ३२४० तोले के बराबर होती है।

क़फ़ीज़ हि़जाज़ी–[अ०] एक माप जो २७० तोले के बराबर होती है।

क़फ़ीर–[अ०] सोंठ।

कफ़ीशून–[यू०] जंगली बैंगन।

क़फ़ीस़–[?] एक प्रकार का क़िर्मिज़ (किरमदाना) जो सीतासुपारी के पेड़ पर पैदा होता है।

कफ़ुज़्ज़इब–[अ०] (१) पाखानभेद। जिंतियाना अर्त़नीसा़।

कफ़ुद्दाबः–[अ०] हुज़ुंबुल।

क़फ़ुन्नज़र–[अ०] जंगली आस। जंगली विलायती मेंहदी।

कफ़ुन्नसर–[अ०] (१) इस्क़ूलूकंदरियून। (२) हुज़ुंबुल।

कफ़ुर्रा–[अ०] कुफ़र्रा।

कफ़ुल् अनब–[अ०] पखानभेद। जिंतियाना।

कफ़ुल् असद–[अ०] अर्त़नीसा़।

कफ़ुल् उ़क़ाब–[अ०] क़ातानीक़ी।

कफ़ुल् कल्ब–[अ०] (१) वदस्काँ। (२) कफ़े मरियम।

कफ़ुल्नसर–[अ०, मि०] इस्क़ूलूकंदरियून। हशीश तुत्तिहाल।

कफ़ुल् हर्रः–[अ०] एक बूटी जो एक बित्ता ऊँची होती है। शाखें छोटी २ होती हैं। प्रत्येक शाखा की पहुँची पर तीन-चार गोल और फटी हुई पत्तियाँ लगी होती हैं। जो ज़मीन से मिली रहती हैं। इसका फूल पीला और अत्यन्त सफेद होता है और उससे सुगंधि आती है। इसकी जड़ जैतून के बराबर होती है और उसमें बहुत उपमूल होते हैं। खरीफ़ (बसंत ऋतु) की प्रथम वर्षा होते ही यह उगती है। किसी-किसी के मत से कफ़्फ़ुल् ज़बुअ के वर्ग की वनस्पति है और गुणधर्म में उसके समान होती है। इसे पीसकर गर्भाशय में स्थापन करने से स्त्री गर्भ-धारण के योग्य होजाती है। दुष्ट क्षतों पर इसे पीसकर बुरकने से उपकार होता है। इसको पीसकर मस्सों पर लेप करने से वे नष्ट होते हैं।

कफ़ुलहिर्रः–[अ०] एक प्रकार का पौधा।

कफ़ुस्स़ अ़लब–[अ़] डिजिटेलिस पत्र। दस्तानः रोबाह।

कफ़ुस्स़बअ़–[अ़] कबीकज। जलधनियाँ। देवकाँड़र।

कफ़ूक़ार वस़्बऊ़स़–[?] सरो।

कफ़ूर–[बं०] कपूर।

कफ़ूर का पत्ता– } [बम्ब०] एक झाड़ीदार वृक्ष जो
कफ़ूर का पात– } एवीसीनिया से भारतवर्ष में लगाई गई है। फूल श्वेत होता है। Mariandra Bengalens.

क़फ़ूरा बंज–[यू०] तुलसी का एक भेद। काफ़ूरियः।

क़फ़ूरा–[?] कफ़ुरी।

क़फ़ूराबंज–[यू०] एक प्रकार की तुलसी। काफ़ूरियः।

क़फ़ूरी–[?] कपूर।

क़फ़ूलाबंज–[यू०] तुलसी का एक भेद।

कफ़े आ़इशः–(१) तरामिरा। जर्जीर। (२) गर्भ फूल। कफ़े मरियम।

क़फ़े आदम–[अ़] एक पौधा जो एक गज़ ऊँचा होता है। इसकी पत्ती गोल और आस की पत्ती के बराबर होती है। जड़ बहमन सुर्ख़ के बराबर मोटी होती है। रंग में ऊपर से यह काली वा पीली होती है और भीतर से लाल। इसके बीज कड़ से पतले होते हैं। किसी किसी मत से बहमन सुर्ख़ इसी की जड़ है।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष।

मात्रा—४॥ माशे।

गुणधर्म—यह खफ़क़ान को दूर करती, वायु को विलीन करती, यकृत को शक्ति प्रदान करती और सब गुणों में बहमनसुर्ख़ के समान होती है। (ख० अ०)

कफ़े इस्सबअ़–[अ़] दे० "कफ़ुस्सबअ़"।

कफ़े दरिया–[फ़ा०] समुन्दर फेन।

कफ़े मरियम–[अ़] हाथा जोड़ी। बख़ुरमरियम्।

कफ़े मरियम–[मि०] सँभालू की पत्ती।

कफ़े मिस–[फ़ा०] ताँबे का झाग। ज़ह्रतुन्नुहास।

कफ़े सफ़ेद–[फ़ा] बर्फ़।

कफेलु–वि० [सं० त्रि०] कफयुक्त। बलग़मी। उणा०। श्लेष्मातक वृक्ष। लसोड़े का पेड़।

कफोणि कफोणी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं० स्त्री०] कुहनी। कोहनी। कफणी। केहुनी। कूर्पर। टिहुनी कपोणी।

कफोत्कट–वि० [सं० त्रि०] कफप्रधान। बलग़मी। यथा–'कणया च कफोत्कटे।'–च० द० सान्निपातिक ज्व० चि०।

कफोत्क्लिष्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का नेत्र रोग जो कफ से होता है। इसमें सफ़ेद, चिकने और मानो जल से शराबोर हो, ऐसे एवं जड़ रूप दिखाई देते हैं।

कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च।
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः॥
मा० नि०।

कफोत्क्लेश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कफ के कारण जी मिचलाना। कफ जन्य मिचली। कफ की ओकाई।

कफोलि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] केहुनी। कोहनी। कफोणी कपोणी। टिहुनी।

कफोदर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कफ से उत्पन्न पेट का एक रोग। इस रोग में शरीर में सुस्ती, भारीपन और सूजन होजाती है, नींद बहुत आती है। भोजन में अरुचि रहती है। खाँसी आती और पेट भारी रहता है, मतली मालूम होती है और पेट में गुड़गुड़ाहट रहती है तथा शरीर ठंडा रहता है।

कफौड़–[वै० पुं०] कफोणि। कोहनी।

कफ्चः–[फ़ा०] एक प्रकार का साँप।

क़फ़्ज़–[?] कसूस का पौधा।

क़फ़्त–[?] जीरा।

कफ़्तर–[फ़ा० तु०] कबूतर।

कफ़्तार–[फ़ा०] लकड़बग्घा। चर्ख़।

क़फ़्द–[?] जीरा।
[सिरि०] साही।

क़फ़्दीर–[यू०] मांस गोश्त।

कफ़्फ़–[अ०] उँगलियाँ सहित हथेली। पंजा। (२) हथेली। (३) हथेली भर चीज़। (४) एक तैल जो एक दिरहम ३॥ माशे का होता है।

कफ़्फ़ुलकल्ब–[अ०] (१) बदस्काँ। (२) कफ़े मरियम।

कफ़्फ़ुल्ज़बुअ़–[अ०] एक प्रकार का पौधा, जो मौसम बहार में पैदा होता है।

कफ़्फ़ुस्सबअ़–[अ०] जलधनियाँ। देव काँडर। कबीकज (Ranunculus sceleratus)

कफ़्फ़ुल्ज़बुअ़, कफ़्फ़ुल्सबुअ़–[अ०] ग़ाफ़क़ी के अनुसार एक वनस्पति जो क्षण-भंगुर होती है। इसकी पत्ती गोल, कटी हुई, अजमोदे की पत्ती के बराबर होती है और भूमि पर परिविस्तृत रहती है। इसमें पत्ती कम होती है। शाखाएँ पतली और रोमावृत होती हैं। तथा ये भी ज़मीन पर फैली होती हैं। रंग में ये पीली होती हैं और एक जड़ से बहुत सी शाखायें फुटती हैं। फूल सुवर्ण पीत और श्वेत रंग के भी आते हैं। इसकी जड़ कटुकी (खर्बक़) मूलवत् और अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। यह जल के समीप एवं तर भूमि में उत्पन्न होती है। किसी-किसी के मत से यह कबीकज का एक भेद है। कोई-कोई इसे नफ़्स कबीकज जानते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष।

गुणधर्म—यह लताफत पैदा करती है, मवाद को काटती है, स्वच्छता प्रदान करती है। और विलायक है। इसको पीसकर आँख में लगाने से जाला कट जाता है। इसके लेप से मस्से कट जाते हैं। यदि इसको पीसकर क्षत पर अवचूर्णित करें तो बदगोश्त को नष्ट करे और क्षत को साफ करे। (ख० अ०)

कफ़्याल–[?] आलूबुख़ारा।

कफ़्र–[अ०] क़फ़्रुल्यहूद।

क़फ़्र–[अ०] (१) क़िर्मिज़। (२) गुग्गुल। मक़ल। (३) सिलाजीत हिन्दी।
[?] (१) क़ीर। अलकतरा। (२) मोमियाई।

क़फ़्रस–[?] हबुषा। हाऊबेर।

क़फ़्रा–[सिरि०] मेंहदी। हिना।

कफ़्रुलयहूद–[फ़ा०] दे० "क़फ़्रुल्यहूद"।

क़फ़्रुलयहूद–[अ०] (१) मिट्टी-का-तेल। (२) एक प्रकार का पत्थर जिसे यहूदिया के समुद्र से

लाते हैं। यह दो प्रकार का होता है, एक ललाई लिए नीला और दूसरा स्वच्छ और ख़ाकी। वि० दे० "मिट्टी का तेल"।

क़फ़्लूत़–[?] शामी गंदना।

क़फ़्लूस–[?] ग़ार।

क़फ़साऽ–[अ०] (१) आमाशय। (२) उदर। शिकम। (३) कमीनी औरत। पुंश्चला स्त्री।

कफ़्सून, कब्सून–[यू०] एक वनस्पति के पत्र और गोल दाने जिसे हबश देश से ले आते हैं। स्वाद में तीव्रता और कटुता एवं तीव्र सुगंधि होती है। किसी किसी के मत से यह 'कसूस' है। कोई बायबिडंग मानते हैं। परन्तु सच तो यह है कि यह एक वनस्पति है जिसके अवयव बरंजासिफ की तरह होते हैं। हबश-निवासी इसका प्रचुर प्रयोग करते हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष। किंतु सत्य यह है कि यह तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

औदरीय कृमि-निःसारण एवं विरेचनार्थ इसका चूर्ण मधु वा शर्करा मिलाकर दूध के साथ खिलाते हैं। कभी इसके साथ अन्य औदरीय कृमि निस्सारक औषध सम्मिलित करते हैं। इसकी जड़ अन्य सभी अंगों से बलवत्तर होती है। इसके उपयोग की सर्वोत्तम विधि यह है कि इसे कूटकर पानी में इमली के साथ मलकर साफ करके पिलादें। यदि अधिक शक्ति की आवश्यकता हो, तो बायबिडंग भी सम्मिलित करदें। यदि अपेक्षाकृत इससे भी अधिक शक्ति की जरूरत हो, तो कालादाने के चूर्ण के साथ खिला दें। यदि कृमि सर्वथा दूर न हो सकें, तो केवल जड़ को पीसकर पानी के साथ फाँक लें। (ख० अ०)

क़फ़्हर–[?] क़ैक़हर।

कब अ़दयून–
कब अ़दया– } [सिरि०] शाहतरा। पित्तपापड़ा।

कबइंग–[बर०] धोरान। गरान।

कबई–संज्ञा स्त्री० दे० "कवयो"।

कबक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] चकोर पक्षी।

कबककू–[फ़ा] तीतर। दुर्राज।

कबक दरी–[फ़ा०] चकोर पक्षी।

क़बक़ब–[अ] (१) ठोढ़ी। ठुड्डी। ग़बग़ब। (२) उदर। पेट। (३) पेट की गुड़गुड़ाहट की आवाज़।

कबकी–[?] बेर।

कबड्या-निंब–[मरा०] बकाइन।

कबत–[फ़ा०] शहत की मक्खी। मधुमक्षिका।

कबतर–संज्ञा पुं० दे० "कबूतर"।

कबता अकमता, कबसू अकमता–[सिरि० अ०] फ़ाशिरस्तीन।

कबन्थ–संज्ञा पुं० दे० "कबन्ध"

कबन्ध–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल। रा० नि० व० १४।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उदर। पेट। (२) बिना सिर का धड़। रुंड। (३) बादल। मेघ। (४) पीपा। कंडाल।

कबमी–[कना०] शमी।

कबद–[अ०] (१) कलेजे पर चोट लगना। (२) कलेजे में दर्द होना। यकृद्वेदना। जिगर की बीमारी। (३) आयास।

कबर–संज्ञा पुं० [देश०] पाकर। खबर।

संज्ञा पुं० [अ० कब्र] करील की जाति का एक वृक्ष। जिसमें सफेद फूल आते हैं। शेष सभी बातों में यह करीर के समान होता है। भारतवर्ष में उष्ण प्रधान पश्चिमी हिमालय की घाटी से पूरब की ओर नैपाल तक तथा पंजाब, सिन्ध, पश्चिमी प्रायद्वीप और महाबलेश्वर की पहाड़ियों में इसके वृक्ष पाये जाते हैं। एसिया, अफरीका और यूरोप, अफगानिस्तान, पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफरीका, आस्ट्रेलिया और सैंडविच टापुओं में यह बहुत होता है।

पर्य्या०—कबर (कब्र) –हिं०, पं०। कबार कारक –फ़ा०। कंटा (कुमाऊँ)। कौर, कियारी, बौरी, बेर, बन्दर, बस्सर, ककरी, कंडर, टाकर, बोड़र, करी, कबार, बेरारी, (पं०)। कबार। (सिरिया और अ०)। कबरिश, कबर–(बम्ब०) कलवरी–(सिंध)। कैपेरिस स्पाइनोस—Capparis spinosa, *Linn.* कैडेबा मुर्रयाना Cadaba Murrayana, *Gra-*

ham ? (ले०) । The edible caper or Caper plant –अं० ।

कबर की जड़

पर्य्या०—कबर की जड़ –हिं० । बीख़कबर, –(फ़ा०) । अस्लुल् कबर । अस्लुल् अस्फ़ (अ०) ।

टिप्पणी—आरव्य भाषा में 'कबर' से करीर का फल जिसका अचार बनाते हैं, अभिप्रेत है और यह स्वयं करील का भी एक नाम है । यह वस्तुतः अरबी भाषा का शब्द है । परन्तु रसीदी ने फरहंगे फ़ारसी में इसका पारस्य कबर शब्द से अरबीकृत होना लिखा है । अंजुमन आराय नासिरी से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है । अंजुमन और ग़ियासुल्लुग़ात प्रभृति में इसका उच्चारण 'कबर' लिखा है । उनके अनुसार यह एक सुस्वादु एवं खट्टा है । परन्तु यह ठीक नहीं । क्योंकि कब्र खट्टा नहीं, प्रत्युत कड़वा होता है ।

करीर वर्ग

(*N. O. Capharideoe.*)

औषधार्थ व्यवहार—मूलत्वक् ।

इतिहास—ऐसा प्रतीत होता है कि सर्व प्रथम मुसलमान चिकित्सकों ने ही इसकी छाल का औषधीय प्रयोग किया । मख़्ज़नुल् अद्विया के लेखक ने इसके पौधे का उत्तम वर्णन किया है । वे लिखते हैं कि मूलत्वक् ही इसका सर्वाधिक प्रभावकारी भाग है और प्रायः प्रयोग में आता है । भारतीयों का करीरफल—टेंटी के प्रयोग का ज्ञान बहुत प्राचीन है । प्रायः सभी प्राचीन अर्वाचीन आयुर्वेदीय निघंटुओं में इसका सविस्तार उल्लेख आया है । परन्तु करीर की छालका प्रयोग उक्त निघंटुओं में नहीं मिलता । कदाचित् मुसलमान चिकित्सकों को इसका प्रयोग करते देखकर ही इसकी ओर भारतीय चिकित्सकों का ध्यान आकृष्ट हुआ हो । संभव है इनका उक्त ज्ञान स्वतंत्र हो । यूनानी और लेटिन इन दोनों भाषा के ग्रन्थों में कबर—करीर भेद (Capparis) का उल्लेख मिलता है । अस्तु, यह संभव है कि इसके औषधीय गुणों का ज्ञान उन्हीं से अरबनिवासियों को हुआ हो । भारतवर्ष में इसकी जड़की छाल का आयात फ़ारस की खाड़ी से होकर होता है ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—जड़ द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष, उष्ण देशों में उत्पन्न वृक्ष की जड़ तृतीय कक्षा पर्यन्त उष्ण एवं रूक्ष। फल तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष, किसी किसी के मत से गरम और तर, बीज तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष और फूल द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है ।

हानि-कर्त्ता—उष्ण प्रकृतिवालों के आमाशय, वस्ति, वृक्क और मस्तिष्क को । इसके बहुल प्रयोग से ख़ाज उत्पन्न होती है ।

दर्पघ्न—आमाशय के लिये सिकंजबीन, वस्ति के लिये अनीसून तथा उस्तोख़ुद्दूस, वृक्क के लिये मधु एवं कुलञ्जन, और मस्तिष्क के लिये शीतल जल और ख़ाज के लिए खीरा ।

प्रतिनिधि—सम भाग ज़रावन्द की जड़ और विजौरा, अर्द्धभाग सफ़ेद कूट, तृतीयांश बेल एवं वृक्ष का प्रत्येक भाग अन्य भाग की प्रतिनिधि है ।

मात्रास्वरस—२ तो० ४ मा० तक, जड़ का चूर्ण १०॥ मा० तक, क्वाथ में १७॥ मा० से २ तो० ७॥ मा० तक ।

कब्र में कटुता, तीव्रता और क़ब्ज—संकोचन गुण वर्तमान होता है, अस्तु, यह विलीनकर्त्ता, छेदनकर्त्ता, तारल्यकर्त्ता और स्वच्छताप्रद है । अपने कटुवंश के कारण यह स्वच्छता प्रदान करता, शोधन करता, अवरोधोद्घाटन करता और छेदन करता है, अपने तीक्ष्णांश के कारण यह औष्ण्य उत्पन्न करता एवं विलीन करता है, क्राबिज़ांश के कारण संकुचित करता और शक्ति उत्पन्न करता है । शुष्क फल की अपेक्षा ताज़े फल में अधिक आहार—पोषणांश होता है । अपने पूर्वोक्त गुणों के कारण यह फ़ालिज—पक्षाघात और अवसन्नता-ग़शी को लाभ पहुँचाता है । अपने अवरोधोद्घाटक छेदक, विलायक और नैर्मल्यकर गुणों के कारण यह प्लीहा के लिये अतीव गुणकारी औषध है । इसी हेतु यह रबू—श्वास को लाभ पहुँचाता है । यह सांद्रीभूत आम दोषों का उत्सर्ग करता है,

क्योंकि यह आमाशयांत्रस्थ श्लेष्मा का छेदन एवं निर्मलीकरण करता एवं उसका मल के साथ उत्सर्ग करता है। यह यकृत् और प्लीहा के अवरोधों का उद्घाटन करता एवं उक्त अंग द्वय का शोधन करता है। अपनी कटुता के कारण यह दीदान—लघु कृमि, कद्दूदाना और (पेट के) केचुओं को नष्ट करता है। इसके काढ़े में सिरका एवं मदिरा मिला कुल्ली करने से वह दंतशूल आराम होता है, जो गलीज़ मवाद के कारण उत्पन्न हुआ हो।—नफ़ी०।

इसकी जड़ शेष सभी अंगों से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकारी है। इसमें क़ुवत तिर्याकिया वर्तमान है। इसलिये विषैले जंतुओं का विष दूर करती है। पत्ते और फल शक्ति में समान हैं। पर सत्यतः फल अधिक शक्ति सम्पन्न है, किंतु वह विकृत दोष उत्पन्न करता है और सोदा—वात में परिणत हो जाता है। कांड एवं पत्र फूल की अपेक्षा निर्बल हैं। कांड पत्र से बलशाली है। फल में पोषणांश कम है। ताजे फल में सूखे की अपेक्षा अधिक पोषणांश—गिज़ाइयत है। जड़-मस्तिष्क के शीतल रोगों को लाभकारी है। इसे अर्श एवं प्लीहा रोग में भी देते हैं। इससे आर्त्तव का प्रवर्त्तन होता है। यह कफ, वात और पिच्छिल लाज़िज दोषों का संशोधन करती है। कोष्ठावयव इहशा तथा बाह को पुष्ट करती है। पत्ते संकोचक है, इनको पीसकर लेप करने से दद्रु और कंठ-माला आराम होता है। पत्र-स्वरस उदरस्थ कृमियों को नष्ट करता एवं निःसरित करता है। जड़ की छाल सिरके में पीसकर दद्रु, व्यंग—झाईं और बहक़ पर लगाने से लाभ होता है। इसके पत्ते व बीज का काढ़ा कर, गंडूष धारण करने से दंतशूल जाता रहता है। जड़ में भी यह गुण पाया जाता है। ये प्लीहा की सूजन मिटाते एवं यकृत के अवरोध का उद्घाटन करते हैं। इसकी जड़ से सिकंजवीन भी प्रस्तुत करते हैं। यह प्लीहा गत वात—सोदा का उत्सर्ग करती है। यह मूत्रल भी है। तीन माशा फल मदिरा के साथ मास पर्यंत सेवन करने से ताप तिल्ली को बहुत उपकार होता है। इसके सूखे फल पीसकर मधु के साथ खाने से मूत्र-प्रवर्त्तन होता है और ख़ून के दस्त आते हैं। इसकी कलियों और कच्चे फलों का नमक और पानी में अचार डालते हैं। सिरके में भी इसका अचार पड़ता है। कच्चे कबरों—फलों की तरकारी बनाते और तेल में अचार बनाते हैं। इनको तेल वा घी में तलकर कालीमिर्च एवं लवण मिलाकर खाते हैं।—ख़० अ०

यह उष्ण एवं रूक्ष, निर्मलताकारक, धारक और हिम द्रव्यों का उत्सर्गकर्त्ता है। इसलिए पक्षाघात, जलोदर, वातरक्त और आमवातिक विकारों में इसकी सिफ़ारिश की जाती है। कर्ण-कृमि निवारणार्थ उसी प्रकार इसके ताजे चुप का रस कान में डाला जाता है, जिस प्रकार हिंदुस्तान में हुड़हुड़िया का रस (Cleome juice) पड़ता है। कहते हैं कि वाह्य रूप से प्रयोग करने पर समस्त चुप उत्तेजक और संकोचक है।—म० अ०।

काँगड़ा में घाव पर इसकी भिगोई हुई जड़ व्यवहार की जाती है। स्थ्युवर्ट।

कबर (Caper) भारतवर्ष में नहीं उत्पन्न होते। इसकी पुष्प कलिकाओं का उत्तम अचार बनता है। अरब निवासी इसको जड़ औषध-कार्य में लाते हैं। उनके विचार से दुष्ट व्रणों (Malignant ulcers) पर इसे पीसकर लगाने से उपकार होता है।—ऐन्सली।

डीमक—कबर की छाल (Caper bark) की इन्द्रिय व्यापारिक क्रिया सेनेगा (Senega) के बहुत समान होती है। इसकी उक्त क्रिया उसमें वर्तमान यद्यपि बिल्कुल सदृश नहीं, पर उससे मिलती-जुलती, सेपोनीन नामक एक सत्व पर निर्भर करती है। इसके चुप से एक उड़नशील तैल प्रगट होता है।—फा० इं० १ भ० पृ० १३५-६।

जड़ की शुष्क छाल मूत्रल ख्याल जाती है। और प्रथमतः यकृत एवं प्लीहा गत अवरोधों, अनार्त्तव (Amenorrhoca) और चिरकारी आमवात में इसका उपयोग किया गया था,—वैट।

यह लक़वा, जलोदर, आमवात और संधिवात में लाभकारी है। इसमें एक प्रकार का ग्लुकोसाइड पाया जाता है। इं० ड्रू० इं०।

कबरक–[फ़ा०] गोखरू का नाम ।

कबर गाज़रूनी–संज्ञा पुं० [शीराज़ी] शामी खर्नूब

कबरा–संज्ञा पुं० [हिं० कौर] करील की जाति की एक प्रकार की फलनेवाली झाड़ी जो उत्तरी भारत में अधिकता से पाई जाती है । इसके फल खाये जाते हैं । कौर ।

नोट—संभवतः यह यूनानी ग्रंथोक्त 'कबर' है । वि० दे० 'कबर' ।

कबरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हिंगुपत्री । बाफली । रा० नि० । नि० शि० । (२) केशबन्ध ।

कबरीश–[तु०] कबरा । कबरा ।

कबरेहिंदी–[फ़ा०] कँदूरी । कुँदरू । बिंबा ।

कबल–[सिंगा] सिम्ब ।

कबलावगुंठका–संज्ञा स्त्री०

कबली–[संज्ञा स्त्री०]काकोली का फल ।

कबलो–[ले०] रक्त सर्षप ।

कबलूल अकया–[ ] बेद सादा के पत्ते ।

कबशा बेरा–[सिरि०] जंगली कबर ।

कबसा अकमता– सिरि०, अ०] फ़ाशिरस्तीन ।

कबसा जोरिया–[सिरि०] बाग़ी अंगूर जिससे मदिरा बनती है ।

क़बस–[अ०] स्फुलिंग । चिनगारी । लौ । आग ।

कबसून–दे० "कबूनूस" ।

कबा–[पं०] कबरा । कबावेर ।

क़बाइलुर्रास–[अ०] सिर की हड्डी । खोपड़ी । शिरोऽस्थि । कपालास्थि । Skull,

क़ (क़ि) बाब–[अ०] एक प्रकार की मछली ।

कबाब–[अ०] सीख़ों पर भुना हुआ माँस ।

कबाबचीनी–संज्ञा स्त्री० [अ० कबाबः+हिं० चीनी] (१) मिर्च, पीपल तथा पान आदि की जाति की एक लिपटनेवाली पराश्रयी झाड़ी जो सुमात्रा जावा, मलाया आदि टापुओं में जो इसके आदि उत्पत्ति स्थान हैं, होती है और अब वहाँ इसकी काश्त भी होती है । भारतवर्ष में भी कहीं २ थोड़ी बहुत इसकी काश्त की जाती है । इसकी पत्तियाँ कुछ-कुछ बेर की सी पर अधिक नुकीली होती हैं और उनकी खड़ी नसें उभड़ी हुई मालूम होती हैं । इसमें फूल गुच्छों में आते हैं । प्रत्येक गुच्छे में वृंतशून्य छोटे-छोटे स्त्री-पुष्प लगे होते हैं । पुं पुष्पस्तबक इससे पृथक् होता है । जब इसमें फल लगते हैं, तो प्रारम्भ में वे भी वृंतशून्य होते हैं । परन्तु ज्यों ज्यों वे परिपक्वावस्था को पहुँचते जाते हैं, त्यों त्यों प्रत्येक फल की डंडी भी दीर्घ होती जाती है । अंततः वे गुच्छे से पृथक् दृगोचर होने लगते हैं । जब फल पूर्णतया वृद्धि को प्राप्त होजाते हैं, पर अभी वे हरे तथा कच्चे ही होते हैं । तो उन्हें गुच्छे से तोड़ लेते हैं । उनमें से कतिपय फलों की डंडियाँ भी उनमें ही लगी रहती हैं । जिससे उन्हें कभी-कभी दुमदार मिर्च' वा 'दुमकी मिर्ची' कहते हैं इन फलों को धूप में शुष्कीभूत कर रख लेते हैं, जिससे हरा रंग कृष्णाभ धूम्र वर्ण में परिणत होजाता है । प्रागुक्त द्वीपों से चीनी व्यापारी उन्हें देशावर भेज देते हैं । वे अधिकतया बटाविया से ऐस्टर्डम और सिंगापूर से लंडन भेज दिये जाते हैं । कदाचित् इसी कारण कबाबा को कबाबचीनी कहते हैं ।

पर्य्या०—पाइपर क्युबेबा Piper Cubeba, *Linn.* क्युबेबा आफिसिनेलिस Cubeba officinalis, *Miquel.* –ले० । शेष पर्य्याय के लिए दे० 'कबाबचीनी का फल' ।

नोट—बाज़ारू कबाबचीनी (Cubeba) उक्त झाड़ी का फल है । परन्तु डाक्टर ब्ल्यूम के विचारानुसार इस जाति की कबाबचीनी का फल यूरोप नहीं भेजा जाता । उनके मत से व्यापारिक कबाबचीनी मुख्यतः कबाबचीनी भेद (P. Caninum, *Rumph*: or P. Cubeba, *Roxb.*) से प्राप्त होताहै । जिसका फल अपेक्षाकृत लघुतर एवं अल्प चरपरा होता है । यूनानी हकीम अबू हनीफा ने अपने उद्भिद शास्त्र विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि कबाबचीनी का पेड़ जंगली आस के पेड़ की तरह होता है । पत्ते रेहाँ के पत्ते से पतले होते हैं । फूल पीताभ श्वेत होता है । यह कठोर भूमि में उत्पन्न होता है ।

(२) कबाबचीनी का फल—इसके फल में प्रायः एक पतली सी गोल या किंचित् चिपटी डंडी लगी रहती है । जो स्वयं फलाधार के सिकुड़ने के कारण बन जाती है । इसलिए यद्यपि वह वास्तविक नहीं, पर देखने में वैसा प्रतीत होती है । फल शीर्षपर फूल कुछ दनदानेदार अवशिष्टांश

भी दृग्गोचर होता है। इसका सूखा हुआ फल श्यामता लिए भूरे रंग का, वृत्ताकार तथा $\frac{१}{६}$ तथा $\frac{१}{५}$ इञ्च व्यास का होता है। इसके बाह्य तल पर चुर्ते वा झुर्रियाँ पाई जाती हैं। जो कच्चे फलों को सुखाने की दशा में साधारणतया उत्पन्न होजाती हैं। कबाबचीनी का छिलका पतला और क्षीण होता है। झुर्रीदार परत के नीचे भूरे रंग का कठोर छिलका होता है। फल के परिपक्व होनेपर जिसके भीतर अकेला बीज नीचे की ओर जुड़ा होता है। कभी २ विकसित बीज की जगह विकृत बीज का स्याही मायल और पिचका हुआ भाग मिलता है। पूर्णतया विकसित होने पर बीज रक्ताभ धूसर होता है। बीज के भीतर गर्भ बहुत छोटा सा और बीज शीर्ष के समीप सफ़ेद गूदे के अभ्यंतर पाया जाता है। श्वेतसार (Albumen) सफ़ेद तथा स्नेहमय होता है। इसका कच्चा फल ही प्रायः संग्रह किया जाता है। जो औषध के काम में आता है। इसे कुचलने से इसमें से मसाले की तरह एक प्रकार की विशिष्ट तीक्ष्ण गंध आती है। ये फल मिर्च से कुछ मुलायम और खाने में कड़वे और चरपरे होते हैं। इनके खाने के पीछे जीभ बहुत ठण्डी मालूम पड़ती है इसमें २ बर्ष तक शक्ति रहती है।

परीक्षा—यद्यपि कालीमिर्च एवं मिर्च विशेष (Pimento) आकृति में कबाबचीनी के समान होते हैं, पर उनमें डंडी नहीं होती और न उनकी गंध ही कबाबचीनी की गंध के सदृश होती है।

इसका चूर्ण ललाई लिए भूरे रंग का होता है जिसकी गंध विशेष प्रकार की, तीव्र एवं मनोहारिणी होती है।

यदि गाढ़े गंधकाम्ल (Concentrated Sulphuric acid) की सतह पर कबाबचीनी के चूर्ण का प्रक्षेप दें, तो गंभीर रक्त वर्ण का प्रादुर्भाव होता है। यह परीक्षा परमावश्यकीय है। नकली कबाबचीनी से केवल रक्ताभ धूसर वर्ण प्रादुर्भूत होता है। कबाबचीनी के काढ़े में आयोडीन का घोल मिलाने से अति सुन्दर नील वर्ण की उत्पत्ति होती है। पुनः समूचे वा चूर्णकृत कबाबचीनी को अणुवीक्षण यंत्र के नीचे रखकर देखने से उसकी जो बनावट देखने में आती है, वह उसके किसी भी प्रतिनिधि द्रव्य की बनावट में कदापि देखने में नहीं आ सकती। कबाबचीनी का छिलका तोड़कर देखने पर उसमें असंख्य स्नेह कोष दृष्टिगत होते हैं और बीज के भीतर छोटे छोटे श्वेतसारीय कण वर्तमान होते हैं। सर्वोत्तम कबाबचीनी वह है जो ताजी, सुगन्धित तीक्ष्णास्वाद युक्त होती है और चीन से आती है। इसके बाद रूमी होती है। भारतीय बुरी और कड़वी होती है। यहाँ पर यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि जहाँ तक इसके तैल का सम्बन्ध है, यह विदेशीय कबाबचीनी से किसी प्रकार कम नहीं। उनमें जो भेद पाया जाता है, वह नाम मात्र का होता है। जहाँ पर २५°. से २८°. सेंटिग्रेड के मध्य के उत्ताप पर परिस्रुति करने से विदेशी कबाबचीनी द्वारा असली तैल ५६ प्रतिशत प्राप्त होता है। वहाँ उतने ही उत्ताप पर भारतीय तैल की मात्रा ५५ प्रतिशत होता है (वि० दे० इं० ड्रू० इं० चोपरा कृत) अब आपने देखा कि इन दोनों के बीच नाम मात्र का भेद है और यह संभव प्रतीत होता है कि औषधीय गुणधर्म में भारतीय तैल व्यापारिक तैल से किसी भी भाँति कम नहीं है। अतः यदि यहाँ कबाबचीनी का उत्पादन बहुल परिमाण में किया जाय, तो औषधीय एवं अन्य कार्यों के लिये इसके तैल का उत्पादन संभव हो सकेगा यह बुद्धिगम्य है।

गंजबादावर्द में लिखा है कि हब्शी, चीनी और हिंदी भेद से कबाबचीनी तीन प्रकार की होती है। केवल आकृति भेद से इनमें भेद होता है। चीनी का दाना क्षुद्र तथा कालीमिर्च से किंचित् वृहत् होता है और उसके सिर पर डंटी होती है। वज़नमें यह हलका और स्वाद में सुगंध पूर्ण होता है। तोड़ने पर यह भीतर से पोला निकलता है। इसके अभाव में इसका हबशी भेद व्यवहार में लाएँ। इसका दाना चीनी के दाने से वृहत्तर होता है। यह भारी और भीतरसे परिपूर्ण होताहै। इसका एक सिरा सफेद होता है और यह सुरभिपूर्ण होता है। चाबने पर चीनी (कबाबा) की तरह जान पड़ता है। यह कुछ लंबोतरा लिये गोल होता

है। उक्त दोनों के अभाव में हिंदी (कबाबचीनी) काम में लावें। इसका दाना गोल होता है और यह चीनी से वृहत्तर, गुरुतर और तोड़ने पर सुगंध देता है। यह भीतर से पीताभ, श्वेत निकलता है। इसमें डंटी नहीं होती। भारतीय बाज़ारों के लिये बंबई में सिंगापुर से कबाबचीनी आती है।

पर्य्या०—कबाबचीनी, शीतलचीनी-हिं०। कबाबचिनि-बं०। दुमकी मिर्ची-द०। कबाबचीनी-उ०। कबाबः, कबाबहे सीनी, हब्बुल् उरूस-अ०। कबाबः, किबाबः-फ़ा०। कबाबचीनी-फ़ा० हिं०, द०, बम्ब०। क्युबेबी फ्रेक्टस Cubebœ fructus-ले०। टेल्ड पेपर Tailedpepper, क्युबेब्स Cubebs-अं०। Cubebes-फ्रां०। वालनिलकु, वलमलकु-ता०; मल०। तोक-मिरियालु, सलव-मिरियालु-ते०। वालमुलक-मल०। बालमेणसु, गंधमेणसु-कना०। कबाबचिनी, हिमसी-मीरे, कंकोल-मरा०, मार०। कबाब-चिनि, तड-मिरी, चणकबाब-गु०। वालमोलगु, वाल-मोलवू-सिं०। सिम-वन-करवा-बर०। सुगन्ध मरिच-सं०। कुमुकुस, कुमक-(जावा)। तिम्मुर्इ-नेपा०। लुरतमर्ज़-कास०। बलगुमदरिस-सिंह०।

टिप्पणी—दक्षिण भारत एवं भारतवर्ष के अन्य स्थानों में कबाबचीनी (Cubebs) के लिये शीतलचीनी संज्ञा का व्यवहार होता है और मिर्च विशेष वा पाइमेंटा (Eugenia Pimenta, 'Allspice') के लिये कबाबचीनी संज्ञा का। परन्तु कलकत्ता तथा बहुत से अन्य स्थानों में इसके विपरीत है, जहाँ शीतलचीनी संज्ञा का व्यवहार पाइमेंटो (Allspice) के लिये और कबाबचीनी का कबाबा (Cubebs) के लिये होता है। क्योंकि भारतवर्ष के लगभग सभी राजकीय आतुरालयों एवं औषध वितरणालयों में इसी संज्ञा (कबाबचीनी) द्वारा क्युबेब (Cubeb) ख्याति है। अस्तु, हमने भी ऐसा ही मानना उचित समझा। इसके अतिरिक्त कतिपय बाजारों विशेषतः मदरास स्थित बाजारों में कबाबचीनी के सम्बन्ध में एक और यह भ्रम है कि वहाँ उक्त संज्ञा का व्यवहार प्रायः नागकेसर (Budr of Mesua feerea) के लिये होता है जो ठीक नहीं। वस्तुस्थिति यह है कि उसकी (Mesua ferrea) हिंदी संज्ञा नागेसर वा नागकेसर है।

हब्बुल् अरूस भी जिसका अर्थ वरवधू फल है, इसकी अन्वर्थक आरब्य संज्ञा है। जैसा ग्रन्थ विशेष (जामा) के संकलयिता के वचन से ज्ञात होता है। बात यह है कि इंद्री पर इसका प्रलेप कर रति करने से स्त्री को इतना आनन्द प्राप्त होता है कि वह उस पुरुष पर आसक्त हो जाती है। अस्तु, इसकी उक्त संज्ञा अन्वर्थ ही है। इसकी अँगरेजी संज्ञा (cubeb) संभवतः आरब्य कबाबः से व्युत्पन्न है। ऐन्सली स्वरचित मेटीरिया इंडिका में लिखते हैं कि यह नैपाल में भी उत्पन्न होता है और वहाँ इसे तिम्मुई (तुम्बुरु) वा तेज बल कहते हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि तुम्बुरु कबाबचीनी नहीं, परन्तु उससे सर्वथा एक भिन्न पौधा है। तुम्बुरु को जिसे नैपाली धनियाँ भी कहते हैं, फ़ारसी में कबाबः खंदाँ वा कबाबः दहन कुशादः संज्ञा द्वारा पुकारते हैं और कबाबचीनी को कबाबः संज्ञा द्वारा। कदाचित् इसी सामंजस्य के कारण ही उन्हें ऐसा भ्रम हुआ है।

पिप्पली वर्ग
(*N. O. Piperaceœ.*)

इतिहास—मध्यकालीन आरब्य चिकित्सकों ने कबाबचीनी का औषध रूपेण व्यवहार किया। अस्तु, हकीम मसऊदी ने जो ईसवी सन की दसवी शताब्दी में हुआ, कबाबचीनी को जावा की उपज होने का उल्लेख किया है। सिहाह के रचयिता ने जिनका स्वर्गवास सन् १००६ ई० में हुआ, इसे चीन की एक प्रमुख औषध लिखी है। इब्नसीना ने भी प्रायः उसी समय में इसका उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि इसमें मञ्जिष्ठाके समान गुण-धर्म पाये जाते हैं। कतिपय तिब्बी ग्रन्थों में जो इसकी यूनानी संज्ञा माहीलियून वा करफियून लिखी है, वह भ्रमपूर्ण है। आयुर्वेद विषयक संस्कृत, हिंदी और मराठी भाषा के निघंटु ग्रन्थों में 'कंकोल' नाम से जिस औषधि का उल्लेख

मिलता है, वास्तव में कबाबचीनी नहीं, प्रत्युत उसका एक भेद है। गुणधर्म में यह कबाबचीनी ही के समान होता है। फार्माकोग्राफिया नामक ग्रन्थ के प्रणेता हमारा ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करते हैं कि यद्यपि प्राचीन आरब्य चिकित्सकों को मूत्र एवं जननावयवों पर होने वाले कबाबचीनी के प्रभावों का ज्ञान था। तथापि यूरोपीय चिकित्सकों को ईसवी सन् की अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उक्त ओषधि का ज्ञान हुआ।

रासायनिक संघटन—इसमें एक क्रियाशील सार ३ प्रतिशत, एक अस्थिर तैल १० से १८ प्रतिशत (जो ब्रिटिश फार्माकोपिया में आफिशल है) यह कबाबचीनी के बहिरत्वक् और आभ्यंतरिक बीज में वर्तमान होता है। कुछ स्नेह-मय-कोष पुष्प-गुच्छ, फल-की डंटियों तथा पत्तों में पाये जाते हैं। परंतु गुच्छांश जो कभी-कभी कबाबचीनी में मिले-जुले पाये जाते हैं। उनका बिश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि उनमें अस्थिर तैल की कुल मात्रा १·७ प्रतिशत थी।

एक स्नेहमय राल—Oleo-resin ३ प्रतिशत जिसमें कबाबीन (Cubebin) एक उदासीन पदार्थ २ प्रतिशत तथा कबाबाम्ल—(Cubebic acid) १ प्रतिशत होते हैं। पाइपरीन; एक वसामय पदार्थ वा स्नेह; मोम (Wax); श्वेतसार, स्नेह, निर्यास (gum) और भस्म ५ प्रतिशत (Malates of magnesium and Calcium.),

कबाबीन (क्युबेबीन) रंगविहीन स्फटिक रूप में प्राप्त की जाती है। गंधकाम्ल में डालने से यह गहरा उन्नाबी रंग पैदा करती है। इसमें कोई लाभकारक वा हानिप्रद गुण मालूम नहीं हुआ।

कबाबाम्ल (क्युबेबिक एसिड) का अनुपात ·६६ प्रतिशत होता है। यह सफेद एवं अनिश्चित आकृति की डलियों के रूपमें होता है। गंधकाम्ल में मिलाने से गंभीर अरुण वर्ण उत्पन्न करता है। यदि इसमें प्रभावशून्य रालदार निर्यास मिल जाय, जिसका अनुपात २·५ प्रतिशत होता है। तो प्रलाव प्रारम्भ हो जाता है। कबाबचीनी में अत्यल्प मात्रा में एक प्रकार का कपूर भी पाया जाता है।

मिश्रण—कभी कभी इसमें मिलावट भी करदी जाती है। प्रायः इसी की जाति के कतिपय अन्य फल जो आकृति आदि में इसी के तद्वत् होते हैं। इसी में मिश्रीभूत कर दिए जाते हैं। संख्या में वे पांच हैं। उनमें से एक कांगो प्रदेश अर्थात् अफरीका का फल है, जो अफरीकी कबाबचीनी के नाम से प्रख्यात है। नकली कबाबचीनी साधारण तया असलीसे किंचित् वृहत्तर एवं रंग और सुगंधि में सर्वथा भिन्न होती है। किसी-किसी की डंडी टेढ़ी होती है और कोई अपेक्षाकृत अधिक कड़वी होती है।

औषधार्थ व्यवहार—पूर्णतया विकसित सूखे कच्चेफल जिन्हें कबाबचीनी कहते हैं। और उन फलों द्वारा प्राप्त तैल।

मात्रा—चूर्ण ३० से ६० ग्रेन=२ से ४ ग्राम= (१५ से ३० रत्ती) एलोपैथी में। आयुर्वेद में २॥ मा० से १० मा० तक।

प्रभाव—सुरभित (Aromatic), उत्तेजक, मूत्रल, आध्मान हर और श्लेष्मानिःसारक।

औषध-निर्म्माण—चूर्ण. मात्रा—५ से १० रत्ती।

कल्क; फाण्ट—(Infusion.)

मात्रा—आधी छँ० से १ छँ०;

स्नेह, मात्रा—५ से १० बूँद। लुआब के साथ वा जल मिश्रित शर्बत के साथ। एलोपैथी में इसका टिङ्कचर और तेल काम में आता है। और ब्रिटिश फार्माकोपिया में ऑफिशल हैं।

टिंक्चुरा क्युबेबी—Tinctura cubebœ –ले०। टिंक्चर आफ क्युबेब्स Tincture of cubebs –अं०। कबाबासव, कबाबारिष्ट –सं०, हिं०। सबग़हे कबाबः, तअ्फ़ीन कबाबः –ति०। यह कुछ कुछ भूरे रंग का तरल है। शक्ति (५ में १)।

निर्म्माण-क्रम—कबाबचीनी का चूर्ण ४ आउंस; सुरासार (६०%) आवश्यकतानुसार, चूर्ण को दो फ्लुइड आउन्स पानी से क्लेदित करके

पकेलिशेन की रीति से १ पाइन्ट टिंक्चर प्रस्तुत करलें।

मात्रा—½ से १ फ्लुइड ड्राम=मिलिग्राम। ३०–६० बूँद (१·८ से ३·६ घन शतांशमीटर)

कबाबचीनी का तेल

पर्य्या०—

ऑलियम क्युबेबी Oleum cubebæ –ले०। ऑइल ऑफ क्युबेब्स Oil of cubebs –अं०। कबाबचीनी का तेल। रोग़न कबाबः।

लक्षण—यह एक उड़नशील तैलहै जो कबाबचीनी से परिस्रुत किया जाता है। यह विवर्ण, लघु एवं पीताभ हरित ईषत् हरिताभ पीत वर्ण का तैल है जो स्वाद और गंध में कबाबचीनी के सदृश होता है। आपेक्षिक गुरुत्व ०·९१० से ०·९३० तक। एक भाग तैल १८ भाग सुरासार (९० प्रतिशत) में विलेय होता है।

रासायनिक संघटन—नूतन कबाबचीनी द्वारा परिस्रुत तैल में टर्पीन्स होती है। पुरानी कबाबचीनी से प्रस्तुत तैल में क्युबेब कैम्फर (संभवतः एक प्रकार का कर्पूर) होता है।

प्रभाव—उत्तेजक और कृमिशोधक (Anti Septic) रूपेण इसे श्लैष्मिक कला संबंधिनी व्याधियों में प्रयोजित करते हैं।

मात्रा—५ से २० बूँद=(·०३से १.२ मिलि ग्राम)।

अन्य योग

(१) कबाबचीनी, मुलेठी, पीपल, हड़ का वक्कल और कुलंजन (Alpina chinansis) इनको बराबर २ लेकर अलग-अलग कूट छान कर एक में मिलावें। जितना यह चूर्ण हो, उसमें १५ गुना जल मिलाकर पादावशिष्ट क्वाथ प्रस्तुत करें। इस काढ़े को आधी छटाँक की मात्रा में दिन में ३–४ बार देवें। इसमें शहद मिलाकर अवलेह भी प्रस्तुत कर सकते हैं। यह उग्र एवं चिरकारी कास में परमोपयोगी है। –(The Indian Materia Medica, p. 263)

(२) कबाबचीनी, देवदारु, मरोड़फली, प्रत्येक १० मा०, कृष्णभृंगराज (काला भाँगरा), कालीमिर्च, अकरकरा, गजवेल, सूरजमुखी के बीज (Sun Seeds) सन का बीज प्रत्येक ७ ड्राम और गूगुल १२ तोले—इसमें मात्रानुसार शहद मिलाकर आध-आध तोले की गोलियाँ बनालें। अपस्मार (Epilepisy) में एक एक गोली दिन में २ बार सेवन करायें।

(इलाजुल् गुर्बा)

(३) कबाबचीनी ५ भाग, मस्तगी ४; चूना ३, चीना कपूर ३, इलायची ४, सनाय ½, बन हलदी (Curcuma Aromatica) ४, पखानवेद (Iris Pseudocorus) ३, जवाखार ४, इन सब को कूट-पीसकर बारीक चूर्ण करलें।

मात्रा—१ से २ ड्राम। यह सूजाक, मूत्रमार्ग गत क्षत वा चिरकारी सूजाक और जनन-मूत्रेन्द्रिय के रोगों में अतीव गुणकारी है। (नादकर्णी)

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

आयुर्वेद में कबाबचीनीका उल्लेख नहीं मिलता वैद्यक शब्दसिंधु में कावाब शर्करा शब्द आया है, परन्तु संदर्भ नहीं दिया गया है। कङ्कोल जिसका उल्लेख धन्वन्तरीय तथा राजनिघण्टुआदि आयुर्वेदीय निघण्टु-ग्रंथों में आया है, वह कबाबचीनी का एक भेद है, न कि स्वयं कबाबचीनी। तथापि ये दोनों गुण धर्म में समान हैं। दे० "कङ्कोल"।

वनौषधिदर्पणकार लिखते हैं—"ग्रन्थान्तर में कबाबचीनी सुरप्रिय नाम से उल्लिखित है। तन्मत से कबाबचीनी वायुप्रशमन, श्लेष्मापहारक, अग्निवर्द्धक तथा मूत्रवृद्धिकर है एवं यह औपसर्गिक मेह, शुक्रमेह, श्वेत प्रदर, अर्श और मूत्रकृच्छ्र का नाश करती है।" यथा—

कबाबचीना–सुरप्रियं वृत्तफलं तद्वायुशमनं मतम्
श्लेष्मोत्सारण मग्नेयं मूत्रवृद्धिकरं तथा॥
औपसर्गिकमेहञ्च शुक्रमेहं सुदारुणम्।
श्वेतप्रदर मर्शांसि कृच्छ्रञ्चापि विनाशयेत्॥

यह कहाँ का पाठ है यह ज्ञात नहीं और न इसका कोई संदर्भ मिला।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—कतिपय हकीमों के मत से कबाबचीनी में ऊष्मा के साथ शैत्यकारक शक्ति भी पाई

जाती है। परन्तु शेख़ बू अलीसीना के कथनानुसार यह द्वितीय कक्षा पर्यंत गरम तथा ख़ुश्क है। कोई-कोई कहते हैं कि यह तृतीय कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष है। मसीह इब्न हुक्म के मत से इसमें गर्मी और सर्दी दोनों हैं, पर गर्मी प्रबलतर है।

हानिकर्त्ता—वस्ति और वृक्क को।

दर्पघ्न—वस्ति के लिये मस्तगी, शिरःशूल में सफेद चन्दन और गुलाब तथा वृक्क में काकनज।

प्रतिनिधि—दालचीनी, इलायची, बालछड़ और अस्तरून, कण्ठ के लिये अकरकरा और यकृत के लिये पिप्पली।

मात्रा—वयस्क ४॥ माशे तक, क्वाथ में ६ माशे तक। अल्पवयस्क, १ से १॥ मा० तक। इसमें १० वर्ष तक शक्ति रहती है।

गुण, कर्म, प्रयोग—कबाबचीनी आमाशय बलप्रद अर्थात् दीपन-पाचन, वाह्य तथा वक्षोदर अंतरावयवों-अह्शा और मसूढ़े को शक्ति प्रदान करती है। यह तारल्यजनक, अवरोधोद्घाटक, वायु को अनुलोम करनेवाली, मूत्रल और मूत्रमार्गस्थ क्षतादि को स्वच्छ करनेवाली है तथा चिरकालानुबन्धी अपस्मार, यकृत एवं प्लीहा के रोग, सूज़ाक और शय्यामूत्र (सलसुल्बोल) आदि रोगों में उपकारी है।—(मु० ना०)

कबाबचीनी तारल्यजनक, अवरोधोद्घाटक, मुख को सुवासित करनेवाली, आमाशय तथा मसूढ़े को बलप्रद, अपस्मारहर, मुखपाक विनाशक, ख़फ़कान को दूर करनेवाली, स्वर को साफ करनेवाली वायु को अनुलोम करनेवाली, मूत्रल, अश्मरीभेद और अतिसारहर है।—ना० मु०

यह रूह को लतीफ़ करती है तथा अवरोधोद्घाटन करती, देह के सूक्ष्म स्रोतों का भी उद्घाटन करती और चिरकारी शिरःशूल को नष्ट करती है। कबाबचीनी का चूर्ण ४॥ माशे मूली के पानी के साथ निरंतर एक सप्ताह पर्यंत प्रत्यह फाँकने से शिरःशूल निवृत्त होता है। इससे कामला रोग-यर्क़ान आराम होता है। यह यकृतीय अवरोध का उद्घाटन करती है। किंतु पुरानी हो जाने पर अवरोधोद्घाटिनी शक्ति क्षीण हो जाती है। शेख़ बू अलीसीना के कथनानुसार इसकी अवरोधोद्घाटिनी शक्ति इतनी क्षीणतर है, कि यह दालचीनी की जगह काम नहीं दे सकती। इसको मुँह में रखने से स्वर शुद्ध होता है। इसके चाबने से मुख सुवासित हो जाता है और उसकी दुर्गंधि जाती रहती है। इससे मुखपाक में भी उपकार होता है। यह आमाशय तथा मसूढ़े को शक्ति प्रदान करती है और कण्ठशूल को लाभकारी है। यह दस्तों को रोकती, ख़फ़कान को दूर करती, वृक्क एवं प्लीहा व यकृतगत व्याधियों को लाभ पहुँचाती, खूब पेशाब लाती, मूत्रमार्गस्थ क्षतों को शुद्ध करती और शय्यामूत्र एवं अवाध-मूत्र-सलसुलबोल को लाभ पहुँचाती है। उदर्द रोग वा पित्ती उछलने पर बारह रत्ती कबाबचीनी पीसकर सिकंजबीन मिलाकर चाटने से उपकार होता है। यह पेट के नलों को शक्तिप्रदान करती है। यह वायु अनुलोमन करती है। इसे चाबकर इंद्री पर लगाने से सहवास में आनन्द प्राप्त होता है और स्त्री को तो इतना आनन्द प्राप्त होता है, कि सिवाय उस पुरुष के वह अन्य किसी भी पुरुष की कामना नहीं करती। दालचीनी, अकरकरा और कबाबचीनी प्रत्येक १ मा० पीसकर शहद में गोली बनाये और सुखाकर रखलें स्त्री सहवास से एक घड़ी पूर्व एक गोली मुंह में रखकर मुख-लाला को इंद्री पर लगाएं और सूखने पर रति करें। स्त्री को असीम आनन्द आयेगा। इस योग से भी दम्पति को आनन्द आयेगा—कबाबचीनी २ मा०, सोंठ २ मा०, अकरकरा २ मा०, सुअद-नागरमोथा २ मा०, लोबान १ मा०, कतीरा १ मा० इनको पीसकर मुँह की लार में मिलाकर इंद्री पर लेपन करें। सूजाक में इसका उपयोग उस अवस्था में होता है, जब प्रदाह एवं सूजन के सभी लक्षण दूर होजाते हैं। ३॥ मा० से ४॥ माशा पर्यन्त कबाबचीनी को पीसकर एक प्याले भर ताजा दही में जो बहुत अम्ल न हो, प्रक्षेप देवें, पुनः उक्त प्याले को गाढ़े कपड़े से दृढतापूर्वक बांधकर ग्रीष्म ऋतु में रात को आकाश के नीचे और शरद-ऋतु में जहाँ चाहे रख दें। प्रातःकाल उसे मिलाकर पीलें। तीन दिन तक

निरंतर इसी प्रकार सेवन करने से सूज़ाक में बहुत उपकार होता है। इसकी पिचकारी सूज़ाक के लिये अनुपम गुणकारी है। कबाबचीनी दो ड्राम, शोरा १० ग्रेन ऐसी एक मात्रा दिन में तीन बार पूयमेही को देने से उपकार होता है। कबाबचीनी, बच और कुलंजन सम भाग—इनके चूर्ण को पान के रस में पीसकर वटिका निर्मितकर मुख में रखने से स्वर शुद्ध होता है। मुखपाक वा मुख के भीतर सूजन मिटानेके लिये इसको चूसते रहना चाहिये। इसके चूसते रहने से गले का भारीपन मिटता है। अफीम के साथ इसकी वटिका बनाकर देने से आँव के दस्त बन्द होते हैं। उक्त अवस्था में पथ्य रूपेण मूँग चावल और कच्चे केले की खिचड़ी देना चाहिये। दूध के साथ इसे फँकाने से प्रचुर मात्रा में मूत्र प्रस्रावित होने लगता है। इसे सोंठ के साथ फाँकने से शारीर शैथिल्य निवृत्त होता है।इसका प्रलेप करने से सूजन और ग्रन्थि विलीन होती है।—ख़० अ०

मक़ालात इहसानी में यह अधिक लिखा है कि मुख में रखने से यह प्यास बुझाती है औरचिरकारी कफज ज्वरों को लाभकारी है।

मख़्ज़नुल् अद्विया, मुहीत आजम, मख़्ज़न मुफ़रिदात और बुस्तानुल् मुफरिदात आदि में भी इसके उपर्युक्त गुणधर्म ही उल्लिखित पाये जाते हैं।

एलोपैथी के मतानुसार—

क्युबेब्स की फार्माकालाजी अर्थात् कबाबचीनीके प्रभाव

वहिः प्रभाव

कबाबचीनी का प्रभाव तज्जात राल एवं स्नेह पर निर्भर होता है। त्वचा पर अभ्यंग करने से इसका आरुण्यजनक (Rubifacient) प्रभाव होता है।

आभ्यंतरिक प्रभाव

आमाशय तथा अन्त्र पथ—आमाशय तथा अन्त्र पर कबाबचीनी का प्रभाव कालीमिर्चवत् होता है। अल्प मात्रा में देने से यह उत्तेजक जठराग्नि वर्द्धक (Stomachic) और वातानुलोमन प्रभाव करती है। अधिक परिमाण में देने से यह पाचनदोष उत्पन्न करती है अर्थात् इससे अजीर्ण वा बदहजमी के लक्षण लक्षित होने लगते हैं। इससे भी अधिक परिमाण में देने से यह आमाशय तथा अंत्र में क्षोभ उत्पन्न करती है और इससे उत्क्लेश, वमन, उदरशूल और अतिसारादि उपसर्ग पीछे लग जाते हैं। यह हृदय को शक्ति देती और इसकी गति को तीव्र करती है।

श्वासोच्छ्वास और जननेन्द्रिय एवं मूत्रेन्द्रिय—

बहुशः अन्य स्नेहमय रालों की भांति कबाबचीनी भी रक्त में प्रविष्ट होती है और शरीरगत विविध अंगों एवं धातुओं में पहुँचकर यह न्यूनाधिक कोपाइबावत् प्रभाव करती है अर्थात् यह श्वासमार्गीय एवं जननेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रिय संबंधिनी श्लैष्मिक कलाओं को उत्तेजन प्रदान करती है जिससे तज्जन्य स्रावोद्रेक वर्द्धित होजाता है तथा उनकी दुर्गन्धि आदि का निवारण (Aseptic) होता है। यह वृक्क की क्रिया को भी तीव्रतर करती है और किसी सीमा तक त्वचा की क्रिया को भी उत्तेजन देती है। अतएव यह मूत्रल एवं जनन-मूत्रेन्द्रिय विशोधक पचन-निवारक (Antiseptic) है। इसके उपयोग से कभी-कभी त्वचा रोगयुक्त होजाती है। अर्थात् उसपर लाल-लाल दद्रोड़े वा धब्बे पड़ जाते हैं। अत्यधिक मात्रा में खाने से वृक्क अत्यंत क्षुभित होता है, जिससे मूत्र में अण्डलाल (Albumen) वा रक्त वा उक्त दोनों ही पाए जाते हैं। कभी २ उसमें अत्यन्त छोटे-छोटे दाने प्रगट होने लगते हैं जो औषध छोड़ देने के कुछ ही दिन बाद मिट जाते हैं।

उत्सर्ग—शरीर से इसका उत्सर्ग वायु प्रणालि जन्य स्रावों (कफादि) एवं मूत्र द्वारा होता है।

पेशाब में सम्भवतः यह कबाबाम्ल (Cubebic acid) के एक लवण के रूप में पाई जाती है, जो (H NO 3.) द्वारा अधःक्षेपित होजाता है। शरीर से उक्त स्नेह घटित द्रव्यों के उत्सर्ग काल में कई विशेष जाति के काटाणु नष्ट प्राय होजाते हैं।

क्युबेब्स के थेराप्युटिक्स अर्थात् कबाबचीनी के रोगानुसार प्रयोग

आंतरिक प्रयोग—

कोपाइबा के विरुद्ध कास (Bronchitis) और कण्ठक्षत (Sore-throat) में कबाब-

चीनी की चक्रिका व्यवहार करते हैं। कास, प्रतिश्याय, कण्ठप्रदाह तथा कण्ठक्षोभ निवृत्यर्थ इसकी धूनी देते हैं। इसका नस्य वा हुलास प्रतिश्याय हर है। तृणज्वर (Hay-fever) में भी इसका उपयोग होता है। इसका सिगरेट पीने से वा इसका वाष्प सूंघने से श्वास वा कृच्छ्रश्वास-कष्ट प्रायः घट जाता है। पर जननेन्द्रिय तथा मूत्रेन्द्रिय पर उक्त औषध का मुख्य प्रभाव होता है। अस्तु, इसे अकेले वा कोपाइबा-तैल के साथ अधिकतया उग्र औपसर्गिक मेह (acute gonrrohoea), चिरकारी सूज़ाक (Chronic gonorrhoea) मूत्र मार्गस्थ क्षत (gleet) और वस्तिप्रदाह में उपयोजित करते हैं।

पत्री लेखन विषयक संकेत—कबाबचीनी के चूर्ण को चक्रिका रूप में वा कीचट में डालकर वा कोपाइबा तैल में मिलाकर अवलेह रूप में व्यवहार करते हैं। इसका तेल कैप्शूल में डालकर वा प्रायः कोपाइबा और ब्युक्यु प्रभृति के साथ इमलशन के रूप में व्यवहार में लाते हैं। कबाबचीनी—तैल श्वेतप्रदरादि योनिस्रावों में उपकारी है।

परीक्षित प्रयोग

(१) आलियम क्युबेबी ५ बूँद
कोपाइबा ४ ,,
आलियम् सेंटेलाई ४ ,,
मिस्युरा एमिग्डली ½ आउंस पर्यंत

ऐसी १–१ मात्रा औषध दिन में तीन बार दें औपसर्गिक मेह वा सूजाक में उपकारी है।

(२) पल्विस क्युबेबी १ आउंस
पल्विस सेक्री ,,
आलियम लाइमोनिस २ बूँद
एक्स्ट्रैक्टम् ग्लीसिर्हाइजो लिक्विड २ ड्राम
सिरूपस आरन्शियाई आवश्यकतानुसार

सबको मिश्रीभूत कर माजून की तरह बनालें इसमें से एक टी-स्पून-फुल (एक चमचा चाय भर) दिन में तीनबार दें। यह चिरकारी सूज़ाक वा क्षत (Gleet) में लाभकारी है।

(३) आलियो-रेजिनी क्युबेबी ५ बूँद
एक्सट्रैक्टम् ब्युक्यु १ ग्रेन कोपाइबा २ ,,

तीनों को एक रिक्त कैप्शूल में डालकर ऐसा एक-एक कैप्शूल दिन में दो बार दें, सूजाक की अंतिम कक्षा में हितकारी है।

(४) आलियम् क्युबेबी २ बूँद
एक्सट्रैक्टम् पाइसिडी लिक्विडम् १० बूँद
टिंक्चुरा सेनीगी १५ बूँद
टेरीबीनी ३ ,,
मिस्च्युरा एमिग्डली ½ आउंस पर्यन्त

ऐसी एक-एक मात्रा औषधी जल मिश्रित कर प्रति चार-चार वा छः-छः घंटा उपरांत व्यवहार करें। यह चिरकारी कास में गुणकारी है।

नव्यमत

खोरी—कबाबचीनी उत्तेजक वा उष्ण एवं मूत्रकारक है। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह पाकस्थली, अन्त्र, गर्भाशय एवं मूत्र तथा जनन पथ को क्षुभित करती (Irritates) है। कबाबचीनी मूत्र घर्म्म एवं श्लेष्मा को कीटशून्य करती (Disinfect) है। गात्र पर प्रलिप्त करने से यह उदर्द एवं कोठ (Urticaria and vesicular eruptions) उत्पन्न करती है। कबाबचीनी मुख में रखकर चर्वण करने से, कष्टप्रद कास निवृत्त होता है। उत्तेजक और मूत्रल रूप से पूयमेह (Gonorrhoea) मूत्रमार्गप्रदाह (Urethritis) वस्तिप्रदाह, पुराण कफरोग, तरुणसर्दी, जनन-मूत्रावयव सबंधी विकारों एवं मूत्रमार्गस्थ प्रदाह में कबाबचीनी व्यवहृत होती है। नासारन्ध्रगत चिरकारी कफरोग (Chronic nasal catarrh) और वागिन्द्रिय के प्रदाह (Follicular pharyngitis) में नासारन्ध्र और कण्ठ में कबाबचीनी का चूर्ण प्रधमित वा अवचूर्णित करने से उपकार होता है। उग्रनासा कफरोग वा नाक की नूतन सर्दी में कबाबचीनी के चूर्ण का सिगरेट पीने से लाभ होता है। स्थानीय क्षोभोत्पादक रूप से कबाबचीनी का तेल सेवन करने से मूत्रस्राव अधिक मात्रा में होता है, और मूत्र को यह एक विलक्षण गंध प्रदान करता है।

(R. N. Khory, Vol.II., P. 517)•

आर० एन० चोपरा—मसाला (Condiment) रूप से कबाबचीनी का प्रचुरता के साथ उपयोग होता है, प्रधानतः उष्णकटिबन्ध, स्थित प्रदेशों में। कहते हैं कि प्राचीन आरव्य एवं पारस्य चिकित्सकों ने इसका जनन-मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में व्यवहार किया है। पश्चिमात्य चिकित्सा में इसका व्यवहार मध्य युग में हुआ। इसकी क्रियाशीलता इसके फल में स्थित एक प्रकार के अस्थिर तैल पर जो इसमें अधिकाधिक १० से १५ प्रतिशत तक होता है, निर्भर करती है। इसका तेल प्रिय एवं विशिष्ट गंधि और हरिताभ बैंगनी रंगका होताहै और जनन-मूत्रेन्द्रिय संबंधिनी व्याधियों जैसे वस्तिप्रदाह, औपसर्गिक मेह और चिरकारी पूयमेह (gleet) में यद्यपि थोड़े पैमाने पर. व्यवहार होता है।—(Indigenous product of India, P. 227)

नादकर्णी—कबाबचीनी आध्मान नाशक मसाले के रूप में व्यवहृत होतीहै। मूत्र-जननेन्द्रिय विषयक व्याधियों जैसे औपसर्गिक मेह, चिरकारी पूयमेह (gleet) श्वेत प्रदर तथा स्त्रियों के नाना प्रकार के अन्य योनिमार्गगत स्रावों में यह श्लैष्मिक कला को उत्तेजन प्रदान करती है। जरा-जन्य कफ रोग में श्लेष्मा निःसारक रूप से इसका व्यवहार होताहै। पोटासियम नाइट्रेट और कबाबचीनी का चूर्ण प्रत्येक ५ रत्ती—इनको मिलाकर सेवन करें। यह औपसर्गिक मेह की उत्कृष्ट औषध है। मूत्रमार्गस्थ पुराण क्षत (gleet) तथा चिरकारी औपसर्गिक मेह में १५ रत्ती कबाबचीनी का चूर्ण और २॥ रत्ती फिटकिरी का चूर्ण मिलाकर दिन में तीन बार सेवन करें। श्लेष्मानिःसारक रूप से ५ रत्ती कबाबचीनी का चूर्ण ३० बूँद लबाब (Mucilage) और आधी छटाँक दारचीनी के अर्क (Cinnamon watr) में मिलाकर, दिन में तीन बार सेवन करने से कास (Bronchitis) तथा स्वर यंत्रप्रदाह (Laryngitis) में उपकार होता है। कबाबचीनी स्वर रज्जुओं में तनाव उत्पन्न करती है और कंठ को पिच्छिल श्लेष्मा से शुद्ध करती है। इसलिये गायकगण इसका बहुत व्यवहार करते हैं। कबाबचीनी के सेवन की सर्वोत्तम विधि इसे दुग्ध में मिलाकर सेवन करना है और तैल को लबाब (Mucilage) में मिलाकर। हकीम लोग इसे वस्ति तथा वृक्कगत सिकता एवं अश्मरी निःसारक मानते हैं। शिरःशूल में इसे गुलाब जल में पीसकर मस्तक पर लगाते हैं।—(The Indian Materia Medica, P. 262-3)

कबाबचीनी और धातु-भस्में

पारद और वङ्ग भस्म—शुद्ध वंग २ तोले, शुद्ध पारा १ तोला। प्रथम वंग को पिघलाकर उसमें पारा मिलायें। फिर इसे लवणाक्त जल से खूब खरल करते जायँ और उक्त जल बदलते जायँ। जब उसकी स्याही दूर हो जाय और वह एक दम सफ़ेद होकर खूब चमकने लगे, तब आदी के रस में घोटकर उसकी टिकिया बनालें। इसके बाद कबाबचीनी ३ तो०, रेवन्दचीनी ३ तोला, चोबचीनी ३ तो०, दालचीनी ३ तो०—इनको आदी के रस में पीसकर कल्क प्रस्तुत करें। फिर उस टिकिया को इसके भीतर रखकर ऊपर से कपड़ मिट्टी कर पाँच सेर उपलों की आग दें। उक्त टिकिया भस्म हुई मिलेगी।

मात्रा—एक चावल बराबर उपयुक्त अनुपान के साथ।

कबाबः—[अ०] कबाबचीनी।

कबाबः खंदाँ—[फ़ा०] तुम्बुरु। फ़ाद्रिरः।

कबाबः दहन कुशादः—[फ़ा०] कबाबा से कुछ बड़ा एक प्रसिद्ध बीज। तुम्बुरु।

कबाबः दहन शिगाफ्तः—[फ़ा०] तुम्बुरु।

कबाबः तबा हब्बुल् उ़रूस—[अ०] कबाबचीनी।

कबाबःशिकम दरीदः—[फ़ा०] प्रियंगु। अफ़लंजः।

कबाबः शिगाफ्तः—[फ़ा०] प्रियंगु।

कबाबः सीनी—[अ०] कबाबचीनी।

कबाबीन—[मुअ०] कबाबचीनी का सत। (Cubebin.)

कबामत् रानः—[?] अनार की वह कली जिसमें गाँठ न पड़ी हो।

कबार—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ वा झाड़ी।

[अ० फ़ा०, सिरि०] कबर । कबरा ।

क़बार-[यू०] कबर । कबरा ।

क़बारदम्बदोस-[यू०] क़ुलाबरी ।

क़बारस-[यू०] कबर । कबरा ।

कबारसीन-[रू०] सरो ।

क़बार्रास-[यू०] कबर । कबरा ।

कबारूस-[फ़ा०] हर्शफ का एक भेद ।

कबालक़श-[?] बाजबर्द ।

कबाश-[?] एक प्रकार का लौंग, जिसका शिर बड़ा हो ।

कबास-[अ०] पीलू का फल जो पककर काला पड़ गया हो ।

कबिच्युता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंबाड़ी ।

कबित्थ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ का पेड़ । अ० टी० । दे० "कपित्थ" ।

कबित्थक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कपित्थ । कबित्थ कैथ ।

कबिद-[अ०] [बहु० अक्बाद, कुबूद] जिगर । कलेजा । यकृत ।

कबिल-वि० [सं० त्रि०] कपिल । भूरा । तामड़ा । संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तामड़ा वा भूरा रंग कपिल वर्ण ।

कबिस्ते तल्ख़-[फ़ा०] इन्द्रायन ।

कबीच:-[फ़ा०] सिरेशम ।

कबीकज-[फ़ा०] Ranun culus sceleratus, *Linn.*) जंगली करैस का भेद । जलधनियाँ । देवकाँडर । जलवेत । दे० "देवकाँडर" ।

कबीठ-संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ, प्रा० कविट्ठ] (१) कैथ का पेड़ । (२) कैथ का फल ।

कबीत-[अ०, फ़ा०] कैथ ।

कबी, कपि-[फ़ा०] (१) लंगूर । (२) एक बीज ।

(क़ु) क़बीत:-[अ०] बर्फ़ी नाम की प्रसिद्ध मिठाई ।

कबीत:, कबीता-[फ़ा०] बर्फ़ी नामक पकवान । कलाकंद । नातिफ़ ।

कबीता अकसना, कबीता अकमीन, कबीता अलमना-[अ०] फ़ाशिरस्तीन ।

कबीता दसरा-
कबीताहुमरा- } [सिरि०] अंगूर की बेल ।

कबीता हूरिया-[सिरि०] फ़ाशरा । शिवलिंगी ।

कबीर-[अ०] सग़ीर का उलटा] बड़ा । महत । वृहत् । Great, Large, Magnus.

क़बीग-[?] गौरा की जाति का एक पक्षी । कुंबुरः । चकावक ।

कबीरुल् अश्जार-[अ०] बरगद । वट ।

कबीरू-[ख़ुरा०] शीरख़िश्त का वृक्ष ।
(Fraxinus Rotundifolia,)

कबीला-संज्ञा पुं० दे० 'कमीला' ।

कबीश-कंबर ।

क़बीस-[अ०] मूली ।

क़बीह्-[अ०] [बहु० क़बाइह, क़बाह्] (१) बाजू की हड्डी का वह सिरा जो केहुनी से मिलता है । (२) पिंडली और रान की हड्डी का जोड़ । (३) बुरा । भोंड़ा । कुरूप ।

कबुएदु-[फ़ा०] एक प्रकार की ईख ।

कबुको-[राजपु०] पीयूष । पेडस ।

कबुलि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंतु के देह का पश्चात् भाग । जानवर के शरीर का पिछला हिस्सा ।

कबूक-संज्ञा पुं० (१) चकवा पक्षी । (२) चकोर पक्षी ।

कबूतर-संज्ञा पुं० [फ़ा० मिलाओ, सं० कपोतः] [स्त्री० कबूतरी]

कबूतर-एक पक्षी जो कई रंगों का होता है । और जिसके आकार भी कुछ भिन्न भिन्न होते हैं । पैरों में तीन उँगलियाँ आगे और एक पीछे होती है । यह कीटभक्षी जीव नहीं है । यह अपने स्थान को अच्छी तरह पहचानता है और कभी भूलता नहीं । यह झुण्ड में चलता है । मादा दो अंडे देती है । केवल हर्ष के समय गुटरगूँ का अस्पष्ट स्वर निकालता है । पीड़ा के तथा और दूसरे अवसरों पर यह नहीं बोलता । इसे मार भी डालें तो यह मुँह नहीं खोलता । पालतू और जंगली भेद से कबूतर दो प्रकार का होता है । पालतू के पुनः निम्न उपभेद होते हैं—

(१) गोला, (२) बुग़दादी—काबुली, (३) नसावरा, (४) लोटन, (५) लक्का ।

(६) याहू, (७) गिरहबाज़, (८) शीराजी इत्यादि, इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। शिखा वाले कबूतर भी होते हैं। इनमें भी गोला दो प्रकार के होते हैं। काबुली–रंग के भेद से पाँच प्रकार का होता है। खगतत्ववेत्ताओं ने आजतक प्रायः तीनसौ से भी अधिक कपोत श्रेणियों का आविष्कार किया है।

पृथ्वी पर कपोत प्रायः सर्वत्र देख पड़ता है। पर आष्ट्रेलिया और भारतीय महासागर के उपकूलवर्त्ती प्रदेशों में यह अधिक देखने में आता है अमेरिका में यथेष्ट कबूतर होनेपर भी वहाँ इनके विभिन्न प्रकार देखने में नहीं आते। भारतवर्ष एवं मलयद्वीप में जिस प्रकार इसकी संख्या अधिक है, उसी प्रकार विभिन्न प्रकार की श्रेणी भी देखी जाती है। युरोप और उत्तर एशिया में इसकी संख्या सर्वापेक्षा अल्प है।

पहले भारतवर्ष में कबूतर के असंख्य भेद रहे। परन्तु आजकल की श्रेणियों को देखकर प्राचीन नामों के निर्णय का कोई उपाय नहीं। प्राचीन कवियों के काव्यों में इस बात का उल्लेख पाया जाता है कि उस समय भी भारतवर्ष में कबूतर पाले जाते थे। कबूतर बहुत कोमल प्रकृति का प्राणी है। प्रायः सभी देशों के लोग इसे पवित्र पक्षी मानते हैं। भारतवासी इसे लक्ष्मी का वरपुत्र मानते हैं। बहुतों का यह विश्वास है कि इसे पालने से गृहस्थों के मंगल की वृद्धि होती है, दरिद्रता का नाश होता है, और लक्ष्मी का दर्शन होता है। मनुष्य के शरीर में इसके पर की वायु लगने से सभी रोग नष्ट होते हैं। इसी से कितने लोग कबूतर पालते हैं। पक्षियों के द्वारा संवाद भेजने की प्रथा भी यहाँ प्राचीन काल में थी। अस्तु, रामायण महाभारतादि में इसका उल्लेख मिलता है। मुसलमानों के धर्मग्रन्थ में कपोत को "स्वर्गदूत" कहा गया है। पहले अँगरेज भी इसे पवित्र पक्षी (Holy bird) समझ आदर करते थे।

पर्य्या०—कपोतः, कलरवः पारावतः (अ०) पारापतः, छेद्यः, रक्तलोचनः (रा०), रक्तदृक् (के०) पारावतः, रक्तनेत्रः, नीलांगः, कपोतकः, गृहस्वामी, वरारोहः, घुर्घुरांग (ध० नि०), पारावतः, कलरवः, अरुणलोचनः, मदनः, काकुरवः, कामी, रक्तेक्षणः, मदनमोहनः, वाग्विलासी, कंठीरवः, गृहकपोतकः, (रा० नि०), पारावतः, कलरवः, कपोतः, रक्तवर्धनः (भा०) झिल्लकण्ठः, पारवतः, वरश्रियः, छेद्यकंठः, कलध्वनिः, गृहकपोतः, गृहकुक्कुटः–सं०। कबूतर, परेवा, पायरा–हिं०। पायरा, कइतर–बं०। हमाम, सलसलः (अ०)। कालूज, फ़ा०। कोलम्बा डोमेष्टिका Columba Domestica–ले०। पीजन Pigeon–अं०। परेवा–मरा०। पारुवापिट्ट–ते०। लेटिन भाषा में कपोत जाति को कोलम्बिडी Columbidœ कहते हैं।

जंगली कबूतर—वन कपोत, चित्रकंठ, कोकदहन, धूसर, भीषण, धूम्रलोचन, अग्निसहाय, गृहनाशन–सं०।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

पारावतो गुरुः स्वादुः कषायो रक्तपित्तहा।
स्वादुः कषायश्च लघुः कपोतः कफपित्तहा॥
(ध० नि०)

परेवा (पारावत)—भारी, मधुर, कसेला और रक्तपित्तनाशक है। कबूतर (कपोत)—कसेला, स्वादु, हलका और कफपित्तनाशक है।

वर्धनं वीर्य बलयोस्तद्वदेव कपोतजम्।
पारावतपलं स्निग्धं मधुरं गुरु शीतलम्।
पित्तास्र दाहनुद्बल्यं तथाऽन्यद्वीर्यवृद्धिदम्॥
(रा० नि०)

कबूतर (कपोत) का मांस—बल वीर्यवर्द्धक है। परेवा का मांस—स्निग्ध, मधुर, भारी, शीतल रक्तपित्त और दाहनाशक एवं बल्य तथा वीर्य वर्द्धक है।

पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः।
संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः कथितो वीर्यवर्द्धनः॥
(भा० पू० ३ भ०)

कबूतर—भारी, स्निग्ध, रक्तपित्तनाशक, वातनाशक, संग्राही, शीतल और वीर्यवर्द्धक है।

रसे पाके च स्वादु कषायं विषदञ्च।
(राज०)

कपोतो बृंहणो बल्यो वातपित्त विनाशनः।
तर्पणः शुक्रजननो हितो नृणां गुणप्रदः॥
तथा पारावतो ज्ञेयो वातश्लेष्म करो गुरुः।
(अत्रि० २१ अ०)

कपोतमांसं पाण्डौ वर्ज्यं।
(च० द० पांडु चि० योगराज)

कबूतर—रस और पाक में मधुर, कसेला और विशद है। कबूतर बृंहण, बल्य, वातपित्तनाशक तर्पण शुक्रजनक और मनुष्यों के लिये हितकारी है। पारावत (परेवा) वातकफकारक और भारी है। पांडु रोग में कबूतर का मांस वर्जित है।

पारावत—

विपाके मधुरं गुरुच। सु० सू० ४६ अ०।

कपोत मांस पाक में मीठा और भारी है। सुश्रुत के अनुसार कपोतविष्ठा व्रणदारण है।

महर्षि चरक के मत से कपोत का मांस कसेला, मधुर, शीतल और रक्तपित्त नाशक है। हारीत इसे बृंहण, बलकर; वातपित्तनाशक, तृप्तिकर, शुक्रवर्धक रुचिकर और मानव को हितकर बताते हैं। सुश्रुत और वाग्भट के मत से काले कबूतर का मांस भारी, लवणयुक्त, स्वादु और सर्वदोषकारक होता है।

वैद्यक में कबूतर के व्यवहार

यक्ष्मा नाशार्थ कपोत मांस—कबूतर का मांस सूरज की किरणों से सुखाकर, हर दिन खाने से अथवा उसमें घी और शहद मिलाकर चाटने से अत्यंत बढ़ा हुआ राजयक्ष्मा भी नाश हो जाता है। यथा—

सशोषितं सूर्यकरैर्हि मासं पारावतं यः—
प्रतिघस्रमत्ति। सर्पिर्मधुभ्यां विलिहन्नरो—
वा निहन्ति यक्ष्माणमति प्रगल्भम्॥

युनानी मतानुसार—

प्रकृति—पालतू की अपेक्षा जंगली कबूतर अधिक उष्ण द्वितीय कक्षांत में और प्रथम कक्षा में रूक्ष है। कपोत विष्ठा वा बीट तृतीय कक्षा पर्यंत उष्ण और रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—इसका मांस उष्ण प्रकृति को हानिप्रद है।

दर्पघ्न—सिरका और धनिया तथा अन्य शीतल पदार्थ।

गुण, कर्म, प्रयोग—इसका मांस फ़ालिज-लक़वा, कंप, सुन्नता, जलोदर और अंग-शैथिल्य में लाभकारी है। यह शरीर को परिवृंहित करता और शुद्ध शोणित एवं वीर्य उत्पन्न करता है तथा वृक्क को शक्तिप्रद और वाजीकरण है। शीतल प्रकृति वालों के लिये इसका मांस रस गुणकारी है। इसको भूनकर सूखा खाना वर्जित है। इसका ताजा संगदाना झिल्ली आदि से साफ करके खाने से सर्प-विष में उपकार होता है। इसका रक्त मस्तक पर लगाने से नकसीर आराम होता है। इसका गरमा गरम ख़ून नेत्र में लगाने से नेत्रक्षत, अभ्र्म, रात्र्यंध्य आदि नेत्र रोग आराम होते हैं। कबूतर के अंडे बहुत उष्ण एवं रूक्ष है। कच्चे अंडे पीने से वक्ष की कर्कशता दूर होती है। कपोलों का रंग निखरता है। बाज़कों को इसे शहद में मिलाकर खिलाने से वे शीघ्र बोलने लगते हैं। कबूतरों के रहने की जगह यदि शीतला का रोगी निवास करे, तो उसके प्रभाव से वह आरोग्य लाभ करे। कबूतरों को गृह में रखना सुखशांति का कारण बनता है। इससे प्लेगादि मरक-रोग-भय एवं दूषित वायु का निवारण होता है। बिच्छू के दंश स्थल पर कबूतर की गरमा गरम बीट बाँधने से विष की शांति होती है। पौने दो माशे जंगली कबूतर की बीट पीसकर रात्रि को पानी में तर करके यदि स्त्री प्रातःकाल वह पानी पी लेवे, तो एकही दिनमें या अधिकसे अधिक तीन दिनमेंबंध्या हो जायगी। इसी प्रकार माशा भर बीट चीनी के साथ खाने से भी तीन दिन में बंध्यत्व प्राप्त होता है। इब्नज़हर के कथनानुसार कबूतर की बीट आटे में मिलाकर खिलाने से प्राणी यमलोक को सिधारता है। इसकी बीट जौ के आटे और क़तरान के साथ मलहम की भाँति बनाकर तीसी के वस्त्र-खंड पर लेप करके श्वित्र पर चिपका देवें और तीसरे दिन उसे हटा देवें। इसी तरह कई बार करने से आराम होता है। १०॥ माशे कपोतविष्ठा ७ माशे दालचीनी के साथ भक्षण करने से पथरी टूट जाती है। यदि उसकी पिंडली (साक़) घी हड्डी जलाकर स्त्री अपनी योनि में धारण करे, तो

पुनः अक्षत योनि हो। यह एक रहस्य है। जंगली कबूतर की हड्डी जलाकर दो चना प्रमाण पान के पत्ते में रखकर खाने से श्वास रोग आराम होता है। सदैव कपोतमांस भक्षण करने से श्वित्र रोग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार गरम मसाले के साथ इसका कबाब अधिक दिन तक खाने से रक्त प्रकोप एवं कुष्ठ हो जाता है। इससे शीघ्र सड़नेवाला विकृत शोणित उत्पन्न होता है, विशेषतः पालतू के मांस का ऐसा ही प्रभाव होता है। शीतल प्रकृतिवालों को बहुत गुणकारी है। कबूतर का वह बच्चा जो उड़ने के योग्य हो, उसका मांस शीघ्रपाकी होता है; क्यों कि उसके उड़ने से फालतू द्रव (रतूबत फुज़लिया) नष्ट हो जाते हैं। ऐसे बच्चे से बना दोष उस बच्चे के गोश्त की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है जिसके पूरे पर और बाल आदि न हो। क्योंकि उसमें अनात्मीकृत वा अप्राकृतिक द्रवांश (रतूबत फुज़्लिया) अत्यधिक होता है। कबूतर के बच्चे का पेट चीरकर सर्प और वृश्चिक दंशस्थल पर बाँध देने से बहुत उपकार होता है। बच्चे का मांस खाने से कंठक्षत (खुनाक) हो जाता है। किंतु शीतल तरकारी या सिरका प्रभृति डालकर रसादार बनाकर खायँ। वह बच्चा जिसे अच्छी तरह पर निकल कर उड़ने लगा हो, अपेक्षाकृत उत्तम होता है। इससे गाढ़ा और पिच्छिल (मतीन) रक्त और रतूबत उत्पन्न होती है। शैत्यप्रधान प्रकृतिवाले को या ऐसे रोगी को जो शीतल रोगों के कारण क्षीण हो गया हो तथा उसके शरीर में रक्ताल्पता हो, इसका सेवन गुणकारी है। परन्तु इससे मलोत्पत्ति अधिक होती है तथा यह शीघ्र सड़ जाता है। कबूतर के बच्चे को तिलतैल में बिना नमक और पानी के पकाकर खाने से शीघ्र वृक्क एवं वस्तिस्थ अश्मरी टूट कर निःसृत हो जाती है।

वैद्यों के अनुसार कपोत मांस शीतल, गुरु, स्निग्ध, रक्तपित्त नाशक और वाजीकरण है तथा ज्यातिवर्द्धक, वायु एवं कफनाशक है। इसके सेवन से मज्जा की वृद्धि होती है। (ख़० अ०)

कबूतर की बीट शालि चावलों के साथ पीने से गर्भस्राव या गर्भपात के उपद्रव दूर हो जाते हैं।

परेवा पक्षी के मांस को धूपमें नियत समय पर सुखाकर, शहद और घी में मिलाकर चाटने से अत्यन्त उग्र यक्ष्मा भी नाश हो जाता है।

कबूतर का झाड़–[द०] पालक जूही।

कबूतर का फूल–संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल।

कबूतर की जड़–संज्ञा स्त्री० एक जड़ी।

कबूतरझाड़–संज्ञा पुं० [हि० कबूतर×झाड़] पित्तपापड़े की तरह की एक झाड़ी जो दक्षिण पश्चिम भारत और सिंहल प्रभृति स्थानों में उत्पन्न होती है।

कबूतरी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० कबूतर] कबूतरकी मादा। कपोतिका।

कबूद–वि० [फ़ा०] [वि० कबूदी] नीला। आसमानी। कासनी। कबूदी।

संज्ञा पुं० (१) बंसलोचन का एक भेद जिसे 'नीलकंठी' भी कहते हैं। नीला बंसलोचन। (२) एक प्रकार का पक्षी। शक़्नीन। बगुला। (३) Weeping-willaw बेतस भेद। इं० हैं० गा०।

कबूदः–[फ़ा०] बेद का एक भेद। स्याह बेद वा बेद मिश्क।

कबूदर–[फ़ा०] बूर्तामार वा एक प्रकार का कीड़ा जो पानी में मछली खाता है।

क(कु)बूदान–[अ०] कलौंजी। शोनीज़।

कबूदानः–[फ़ा०] विजया बीज। भाँग का बीया। शहदानज।

कबूब–[अ०] भपारे की दवा। वह औषधि जिससे भपारा ली जाए।

कबूबुल अर्स–[अ०] अभ्रक। अबरख।

क़बूर–[अ०] जल्दी फलनेवाले छोहारे का पेड़।

कबूस–[अ०] बारीक पिसी हुई सूखी दवा जो ज़ख़्म पर छिड़की जाए। धूड़ा।

क़बूली–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चने की दाल की खिचड़ी।

कबूह–[?] यतूअ का एक भेद। दे० "यतूअ"।

कबेंग–[बर०] शिक्कर।

कब्अ़दिया, कब्अ़दियून–[सिरि०] शाहतरा। पित्तपापड़ा।

कब्क–[फ़ा०] चकोर।

कब्ककर–[फ़ा०] तीतर।

कब्कंजीर–[फ़ा०] तीतर का नाम।

कब्कदरी–[फ़ा०] धूमिल रंग का एक विशेष पक्षी। जो मोर पक्षी से बड़ा होता है और उस पर छोटी-छोटी सफेद रखाएँ होती हैं। यह आकार में चकोर तीतर के बराबर होता है। किसी-किसी के मत से यह तदरद—लवा का नाम है।

कब्कू–[फ़ा०] तीतर। दुर्राज।

कब्चीयंत्र–संज्ञा पुं० [सं० कवचीयन्त्रम्] औषध पाक-यंत्र विशेष। दे० "कवचीयन्त्र"।

क़ब्ज–[फ़ा० 'कब्क' का मुख्र०] चकोर।

क़ब्ज़–संज्ञा पुं० [अ० क़ब्ज़ः] (१) ग्रहण। पकड़। अवरोध। सिमटाव। (२) दस्त का साफ न होना। पेट का गुंग होना। मलावरोध। (३) कसेला स्वाद। कषाय।

क़ब्ज़ा–संज्ञा पुं० [अ० क़ब्ज़ः] (१) इतना जितना कि एक मुट्ठी में आ जाय। मुट्ठी भर (Handful, *Pugil.*)। (२) दंड। भुजदंड। डाँड। बाजू। मुश्क।

क़ब्ज़ियत–संज्ञा स्त्री० [अ०] पायखाने का साफ़ न आना। मलावरोध।

कब्द, कब्दा–[फ़ा०] अबरेशम।

कब्दः–[अ०] ख़र्ज़तुल्हब्ब।

कब्नः–[अ०] सूखी रोटी।

क़ब्क़ात–[?] दरिया की सीपी।

कब्ब–[अ० इसका उल्टा बत्ह्] धात्वर्थ उलट देना। औंधा या पट करना। यूनानी वैद्यक में हाथ को पट या औंधा करना अर्थात् हथेली को ज़मीन की तरफ करना। (Pronation)

क़ब्ब–[अ०] चूतड़ की हड्डी। दोनों चूतरों के बीच की उभरी हुई हड्डी। Sacrum।

कब्बः–[अ०] तीव्रता। सख़्ती। जाड़े की तीव्रता।

कब्बगुम्मुडु–[ते०] निलक कुमिज।

कब्बर–[पं०] दूब।
[सिं०] झाल। खरकनेला।

कब्बिण–[कना०] लोहा।

कब्बिणद-किलुवु (किट्ट)–[कना०] मंडूर। लौह-किट्ट।

कब्बु–[कना०] ईख। ऊख। गन्ना।

कब्बुमिश्क–[अ०] लता कस्तूरी। मुश्कदाना।

कब्बूक–[फ़ा०] चकावक।

कब्र–संज्ञा पुं० [अ०] दे० "कबर"।

कब्रः–[तु०] कब्र। करील।

कब्रगी–[देश० कर्ना०] मरोड़फली।

कब्रबा–[फ़ा० कब्र०+बा=आश] करील के फल द्वारा निर्मित आश। घन क्वाथ। कवरबा। कबरबा। कब्रवा।

कब्रा–संज्ञा पुं० [देश० पं०] करीर। कबरा।

कब्राजुवी (-ई)–[ते०] जियापोता। पुत्रजीवक।

कब्राबेर–संज्ञा पुं० [देश०] कबरा। कौर।
(Cadaba Murayana, *Grahan*)
इं० मे० प्लां०।

कब्रियः–[अ०] आश। टेंटी।

कबूरी–[?] अंजदान के पत्ते।

कब्रीत–[अ०] टेंटी निर्मित आश।

क़ब्ल–[तु०] बाल। रोंग।
[अ०] पहाड़ी बकरा।

कब्श–[अ०] मेंढ़ा।

कब्स–[अ०] दबाना। ठूँसना। भरना। पाटना।

क़ब्सः–[अ०] उतना जितना दो उँगलियों के सिरे में समाए। चुटकी भर।

कब्सून–[यू०] एक अप्रसिद्ध औषधि जो अफरीका में पैदा होती है।

कम्–[सं० अव्यय] (१) मस्तक। श० चि०। (२) जल। पानी। (३) मुख।

कमंगर–संज्ञा पुं० [फ़ा० कमानगर] हड्डियों को बैठानेवाला।

कमंजी–[ता०] खाजा।

कमंडल–संज्ञा पुं० दे० "कमंडलु"।

कम–[फ़ा०] क़ताद का पेड़। गुलू।

क़मअ़–[?] अंगूर प्रभृति की टोपी जो उभाड़ की तरह की होती है।

कमक–[?] एक चिड़िया। बहरी।

क़मक़रीश–[अ०] छोटे सनोबर के बीज।

क़मक़ाम–[अ०] जमजूँ।

कमकाम–[अ०, क़न्ती, फ़ा०] ज़रू (लोबान) वृक्ष की गोंद वा छिलका वा ज़रू का पेड़।

कमकी–संज्ञा स्त्री० [?] अज्ञात।

कमखोरा–संज्ञा पुं० [फ़ा० कमखोर] चौपायों के मुँह का एक रोग, जिसमें वे खाना नहीं खा सकते।

कमची–संज्ञा स्त्री० [तु० सं० कंचिका] लकड़ी आदि की पतली फट्टी। कमचा। कमटी।

कमची-कस्सुवु–[ते०] रूसा घास। भूस्तृण। गन्धबेना।

कमजः–[ज़ंद] टिड्डी।

कमजायन–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का ज़हर।

कमटा–संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा काँटेदार पौधा।

कमठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] [स्त्री० कमठी] (१) कछुआ। कच्छप। (२) साधुओं का तुंबा। मे० ठन्त्रिक। (३) साही। सेह। ख़ारपुश्त। शल्लकी। धरणिः। (४) बाँस। वंश। श० र०।

कमठी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कछुई। कच्छपी। अम० (२) शल्लकी। साही। ख़ारपुश्त।

कमण्डलु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाकर वा पक्कड़ का पेड़। प० मु०। (२) सन्यासियों का जलपात्र, जो धातु, मिट्टी, तुमड़ी, दरियाई नारियल आदि का होता है। करक। कुण्डीय। मे० लचतुष्क। (३) एक प्रकार का पीपल। पारिस पीपल। गजहुण्डसहोरा। भा० पू० १ भ० वटा व०।

कमण्डलुतरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्लक्ष वृक्ष। पाकर का पेड़।

कमण्डलूफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पपीता। अरंड खरबूजा। पपीतक वृक्ष।

कमन–वि० [सं० त्रि०] (१) कामुक। कामी। (२) सुन्दर। कमनीय। खूबसूरत।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अशोक का पेड़। मे० नत्रिक। (२) मदन। कामदेव।

कमनच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं] (१) कंक पक्षी। काँक। सफ़ेद चील। बगला। हे० च०। (२) क्रौञ्च पक्षी। करांकुल नामक पक्षी।

कमनार–[ज़ंद] मछली।

कमन्ध–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल। अ० टी०।

कमपिल्ला–संज्ञा पुं० [बम्ब०, सं० कम्पिल्ल का अपभ्रंश] कमीला।

कमप्यु–[ता०] जंगली मदनमस्त का फूल। अरण्यमदनमस्त पुष्प।

क़मया–[?] चँबेली।

कमरंग–संज्ञा पुं० दे० "कमरख"।

कमर–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शरीर के बीच का घेरा जो पेट और पीठ के नीचे पड़ता है। कटि।

क़मर–[रसा०] चाँदी। रजत। (२) आदी।

कमरः–[अ०] [बहु० कमर, कमरात] शिश्नमुंड। सुपारी। हशफ़ा। Glans Penis.

कमरक–संज्ञा पुं० दे० 'कमरख"।

कमरकस–संज्ञा पुं०[हिं० कमर+फ़ा० कश] (१) एक प्रकार की गोंद जो पलास के पेड़ से आपसे आप निकलती है और पाछकर भी निकाली जाती है। इसके लाल लाल चमकीले टुकड़े बाजारों में बिकते हैं जो स्वाद में कसैले होते हैं। यह गोंद पुष्टई की दवाओं में पड़ती है और मछुए जालों में इसका माझा भी देते हैं। पलास की गोंद। ढाक की गोंद। चुनिया गोंद। वि० दे० "पलास" (२) कत्थई वा भूरे रंग की एक जड़ जो पुष्टई की दवाओं में पड़ती है। (३) दारुहल्दी। (४) आर्य औषध ग्रन्थ के मतानुसार एक वृक्ष का गोंद जिसे आसना वा बाबला कहते हैं। [फ़ा० का०] विजयसार।

संज्ञा पुं० [देश० बम्ब०] एक बीज (Seeds of Salvia plebeia, (*R. Br.*)

कम्मर कस–बम्ब०। मुईतुलसी (बं०) इं०मे०प्लां०

कमरख–संज्ञा पुं० [सं० कर्म्मरंग वा० कम्मरंग] मध्यम आकार का एक पेड़ जो हिंदुस्तान के प्रायः सभी प्रान्तों में मिलता है। इसका वृक्ष १५-२० फुट उँचा होता है। इसकी पत्तियाँ अंगुल-डेढ़ अंगुल चौड़ी, दो अंगुल लम्बी और कुछ नुकुली होती हैं तथा सींकों में लगती हैं। यह जेठ अषाढ़ अर्थात् वर्षारम्भ में फूलता है। फूल छोटे सफेद और बैंगनी रंग के होते हैं। फूल झड़ जाने पर लंबे-लंबे पाँच फाँकोंवाले फल लगते हैं जो पूस, माघ में पकते हैं। किसी किसी फल में छः फाँकें भी देखने में आई हैं। इसकी फाँकें न्यूनकोणीय

होती हैं। प्रत्येक कोण की चौड़ाई भिन्न-भिन्न ½ इंच से लेकर एक इंच तक होती है। कच्चा फल बिल्कुल हरा होता है, परन्तु पकने पर यह खूब पीला हो जाता है। इसका पका हुआ फल अढ़ाई इंच से साढ़े तीन इंच लंबा कुछ पिलाई लिये हरे रंग का होता है। यह अत्यन्त रसपूर्ण एवं अम्ल होता है और इसमें एसिड आक्ज़ेलेट आफ पोटास वर्तमान पाया जाता है। कच्चे फल खट्टे और पके खटमिट्ठे होते हैं। खट्टा और मीठा भेद से कमरख दो प्रकारका होता है। बंगालमें खट्टा खौर खटमिट्ठा इसके ये दो भेद होते हैं। ख़ज़ाइनुल् अदविया के रचयितालिखते हैं–"मामूँ साहबने मालवे में ऐसी कमरखें भी खाई हैं, जिनमें बिल्कुल तुर्शी न थी।" नुस्खा सईदी में लिखा है कि अँगरेज आगरे में किसी देश से ऐसे कमरख के पेड़ लाये हैं, जिसमें जरा भी तुर्शी–अम्लत्व नहीं। मेरे एक मित्र कहते हैं कि मैंने मीठा कमरख खाया है।—ख़० अ०।

"बिलिंबी" नामक कमरख भी इसी का एक अन्यतम भेद है, जिसे लेटिन भाषा में Averrhoa Bilimbi, *Linn.* कहते हैं। इसका वर्णन यथा स्थान होगा। उर्दू भाषा के ग्रन्थों में कमरख शब्द का प्रयोग स्त्री लिंग में हुआ है।

पाश्चात्य मतानुसार यह प्रथम भारतीय महा सागर के मलक्का द्वीप में उत्पन्न होता था। वहाँ से यह सिंहल गया और सिंहल से भारतवर्ष में पहुँचा। परन्तु यह बात ठीक नहीं, क्योंकि बहुत प्राचीन काल से ही कर्मरंग भारतवर्ष में उपजता है। जिसका प्रमाण रामायण में मिलता है। इसके सिवा आयुर्वेदीय ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है। आजकल भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र यह होता है।

पर्य्या०—(वृक्ष) कर्मार, कर्मरक, पीतफल कर्मर, मुद्गरक, मुद्गरफल, धाराफलक, कर्मारक (रा० नि०), कर्म्मरंग (भा०), शिराल, वृहदम्ल, (बृहदल) रुजाकर (श०) कर्म्मार, कर्म्मरक, पीतफल, कर्म्मर, मुद्गर, धाराफल, कर्म्मारक धाराफलः, शुक्रप्रियः, कारुकः–सं०। कमरख का पेड़ –हिं०। कामराङ्गा गाछ –बं०। कर्म्माराचें झाड, –कर्म्मरें मरा०। अविरोआ करम्बोला Averrhoa Carambola, *Linn.* –ले०। कमारक –गु०। तमारटम-मरम् –ता०। तमारटा कया–ते०। चाइनीज़ गूज़बेरी (Chinese Gooseberry –अं०। कमरकखाटां मीठांवेछे –गु०।

(फल) पर्य्या०—

कर्म्मफल, कर्म्मरङ्गफल, कर्म्मरङ्ग, कर्म्मार –सं० कमरख, कमरक, कमरंग, –हिं०। ख़मरक़, कर्मल (मीठा) कामरंग–द०। कमरक, कमरंग, कर्मरंग, कमरंगा –बं०। Frint of Averrhoa Carambola, Adans, *Linn.* ले०। चाइनीज गूज़बेरी Chinese Gooseberry –अं०। तमर्त्तम्–काय, तमरत–ता०। तमर्त काय, तम्म-काय, तामरतमु, करोमोंगा –ते०। तमरत्तूक, तमरत्तुका, तमरत्त –मल०। कमरक, डरेहुली–कना०। तमरक–गु०। कमरख, तमरक मरा०, गु०। जौन्सी, जौन्-या-सो, जुंगया। –बर०। कर्मर, खमरक, कर्मार–बम्ब०। तमरत करमर–मरा०। करम्बल–कों०, कर्डे, करदयी आसा०। करम्बोल–पोर्तुगाज़

चाङ्गेरी वर्ग

(*N. O. Geraniaceæ.*)

उत्पत्ति स्थान—खट्टे फलों के लिए, भारतवर्ष के समग्र उष्ण-प्रधान प्रदेशों में इसकी काश्त होती है। इसके मूल उत्पत्ति-स्थान का पता नहीं। किसी-किसी का अनुमान है कि मलक्का वा नई दुनियाँ से पुर्तगालनिवासी इसे यहाँ ले आये, जो इसे 'करबोला' और 'बिलिंबिनास' संज्ञा से अभिहित करते हैं। आयुर्वेदीय निघण्टु-ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—फल में एक प्रकार का जलीय गूदा होता है, जिसमें अधिक परिमाण में एसिड पोटासियम आक्जैलेट पाया जाता है। बीजों में 'हर्मेलाइन' नामक उपक्षार रहता है। यह जल में अविलेय पर ईथर और सुरासार में विलेय होता है।

औषधार्थ व्यवहार—वैद्यलोग इसके फल जड़, फूल और पत्तियों को औषध के काम में लाते हैं।

औषध-निर्म्माण—पका फल, बड़ा एक ओर छोटा दो, दिन में २-३ बार।

फल का स्वरस—दो से ४ ड्राम।

फलस्वरस द्वारा प्रस्तुत प्रपानक—शर्बत फल का अचार वा चटनी। फूल का गुलकंद। (Conserve)

यूरोपीय औषधियाँ जिनके प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहृत हो सकता है—हैज़ेलीन Hazeline मायाफलाम्ल (Gallic acid), और स्फुराम्ल (Phosphoric acid)।

प्राप्ति—वर्षाऋतु में इसके फल बाजारों में बिकते हैं।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार

कर्मारकोऽम्ल उष्णश्च वातहृत्पित्तकारकः।
पक्वस्तु मधुराम्लः स्याद्बल पुष्टि रुचिप्रदः॥

(रा० नि० ११ व०)

कर्मारक—कमरख स्वाद में खट्टा, उष्णवीर्य वातनाशक और पित्तकारक है। पका कमरख खट-मिट्ठा तथा बलकारक, पुष्टिकारक और रुचिकारक है।

कर्म्मरङ्गं हिमं ग्राहिस्वाद्वम्लं कफवातकृत्।

(भा०)

कमरख-शीतल, धारक, खटमिट्ठा-स्वाद्वम्ल और कफ, वात कारक है।

कर्म्मरङ्गन्तु तीक्ष्णोष्णं कटुपाकेऽम्लपित्तकृत्।

(राज०)

कमरख तीखा—तीक्ष्ण, उष्ण, पाक में कड़वा अम्ल तथा पित्तकारक है।

कर्म्मारस्य फलञ्चाम ग्राह्यम्लं वातनाशनम्।
उष्णं पित्तकरञ्चैव तत् पक्वं मधुरं मतम्॥
अम्लञ्चबलपुष्टीनां रुचेश्चैव तु वर्द्धकम्।

(वै० निघ० तथा निघण्टु रत्नाकर)

कच्चा कमरख धारक, खट्टा, वातनाशक, उष्ण एवं पित्तकारक है। पका कमरख मधुराम्ल, एवं बल, पुष्टि तथा रुचिदायक है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष। खट्टे में मीठे की अपेक्षा शीतलता एवं रूक्षता अधिक होती है।

हानिकर्त्ता—इसके भक्षण करने से जिह्वा फट-जाती है। शीतल प्रकृति वालों को यह हानि पहुँचाता है।

दर्पघ्न—किंचित् लवण और चूना उस पर मलकर खाना और कंद। शीतल प्रकृति वालों के लिये गरम जवारिशें इसको दर्पघ्न हैं।

प्रतिनिधि—रैबास (बु० मु०)।

मात्रा—आवश्यकतानुसार।

गुण, दोष—यह धारक-क़ाबिज है और प्यास की उग्रता को बुझाता है। यह पित्त की तीव्रता का दमन करता, पित्तज छर्दि एवं अतिसार को बंद करता और मुख का स्वाद सुधारता है (म० मु० बु० मु०, ना० मु०)। यह तारल्यकारक—मुलत्तिफ़ एवं मनोल्लासकारक है और आमाशय, उदरावयवों तथा उष्ण यकृत को शक्ति प्रदान करता है। यह क्षुधा उत्पन्न करता, विषमिषा का निवारण करता, रक्त की तीक्ष्णता को शमन करता, शोणित एवं पित्त को स्वच्छ करता। मस्ती और ख़ुमार को तोड़ता है और ख़फ़क़ान, वसवास तथा अर्श को लाभ पहुँचाता है। यह वबा—महामारी, शीतला, कामला—यर्क़ान और गरम बुखार को लाभ करता है। इसका सदैव भक्षण शरीर में फोड़ा-फुन्सी निकलने से रोकता है। इसका रस आँख का जाला काटता है। जौ के आटे के साथ इसका लेप विसर्प—सुर्ख़ीबादे को नष्ट करता है। इसका शर्बत उन्माद और वहशत को गुणकारी है। कच्चे कमरख को कूटकर रस निचोड़ें। फिर उसे यहाँ तक कथित करें कि चतुर्थांश जल जाय। पुनः उसे स्थिर होने के लिये रख छोड़ें। तदुपरांत ऊपर से साफ पानी निथार लें। इसका सिरका उत्तम होता है। यह सभी गुणधर्म में सर्वथा रैबास की तरह है (म० मु०, बु० मु०)। कच्चा कमरख कफ, पित्त और शोणित को विकृत करता है। इसके विपरीत पका कमरख उनको लाभ पहुँचाता है, जैसा कि अकबर शाही में उल्लेख है। वैद्य कहते हैं कि इसका कच्चा फल खट्टा और क़ाबिज—धारक होता है।

कच्चा फल खाने से ज्वर और सीने में दर्द हो जाता है। पका फल खटमिट्ठा होता है। इससे अचार, तरकारी, मुरब्बा आदि कई खाने की चीजें तैयार की जाती हैं। खटमिट्ठा फल शीतल होता है और उसे पित्तज ज्वरों में प्यास बुझाने के लिये देते हैं। इसके दोनों किस्म के फल शताद (?) रोग को मिटाते हैं। इसके सुखाये हुये कच्चे फल का चूर्ण ज्वर में देते हैं। कच्चा फल कफवात उत्पन्न करता है और रक्त एवं पित्त-विकार नष्ट करता है। पका कमरख पित्त का नाश करता है और उदरावष्टंभकारकारक है। यह कफ तथा वात दोष का निवारण करता है। कोई-कोई वैद्य कहते हैं, कि यह उष्णता उत्पन्न करता शुक्र की वृद्धि करता कफ तथा बवासीर उत्पन्न करता और वात पित्त को दूर करता है। इसका पत्तियों को काली मिर्च के साथ घोंट छानकर पिलाने से पेट के भीतर की गरमी मिटती है। इसकी जड़ का खेंसादा-हिम पिलाने से ज्वर मुक्त होता है। इसके पत्ते जड़, और फल शीतल होते हैं।—ख० अ०।

तालीफ़ शरीफ़ी, मुफ़रिदात हिंदी में लिखा है—"इसका फल शरद् ऋतु का एक प्रसिद्ध मेवा है। इसका निचोड़ा हुआ रस उत्कृष्ट तोहफ़ा है और यह पित्त को शांत करता, शीतल, काबिज शिकम एवं कफ वात दोषनाशक है। इसके खाने से जिह्वा फट जाती है। इसे लवण तथा चूने के साथ खाना इसका दर्पनाशक—मुसहिल है। बादाम आदि से भी एतजन्य विकार की शांति होनी सभव है। ख़ाकसार ने इसके इसलाह की जो विधि कतिपय अनुभवी व्यक्तियों से सुनी है, यह है—'पान में खाने का चूना थोड़ा लेकर कमरख के भीतर भर कर एक दो घड़ी रहने दें। फिर उसे काटकर खायें। इससे मुख में कुछ भी जलन नहीं होती और उसकी तुर्शी एवं तीक्ष्णता मिट जाती है।—ता० श० पृ० १३३।

नव्य मतानुसार—

खोरी—कमरख स्कर्वी रोग प्रतिषेधक है। अम्ल खाद्य रूप से यह फल बहुत खाया जाता है और चटनी रूप (Peserve) में इसका व्यवहार होता है। ज्वरों में शैत्यकारक औषध रूप से इसका प्रपानक—शर्बत (१० में १ मात्रा—१ से २ ड्राम) काम में आता है। लोहे का मूर्चा और दाग दूर करने के लिये इसका रस काम में आता है। इसकी पत्तियाँ सारेल (Sorrel) की उत्तम प्रतिनिधि है।—आर. एन्. खोरी, २ य खं०, पृ० १५२।

मोहीदीन शरीफ़—यह शैत्यकारक (refrigerant) तथा धारक है। पका फल जो प्रायः खट्टा होता है (यद्यपि इसका एक मीठा भेद भी है) और जिसमें अम्ल विशेष (Oxalic acid) वर्तमान होता है, रक्तार्श की परमोपयोगी औषध है, विशेषतः रोगके उस भेदकी जिसे आभ्यंतरिकार्श (internalpiles) कहते हैं। न्यूनाधिक लाभ के साथ मैं अनेक रोगियों को इसका प्रयोग करा चुका हूँ। उनमें से कुछ रोगियों पर तो इसका बहुत ही संतोषदायक फल हुआ अर्थात् इससे रक्तस्राव शीघ्र और सदा केलिये बन्द हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि—रक्तवमन, रक्तातिसार और रक्तस्राव के कतिपय अन्य भेदों में भी इसका परमोत्कृष्ट प्रभाव होगा। परन्तु यह सदा सुलभ नहीं, इसलिये मुझे उक्त रोगों में इसकी परीक्षा करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। ज्वर प्रकोप एवं पिपासा निवारण के लिये भी इसका फल परमोपयोगी है।—मे० मे० आफ मै०, पृ० ७५-६।

डीमक—इस वर्ग के कतिपय अन्य पौधों की भाँति इनके पत्ते भी लजालू पत्रवत् संकुचन शील (sensitive) होते हैं। भारतवासी अम्ल खाद्य रूप से और यूरोप निवासी अम्ल फल (tart fruit) और मुरब्बा (preserve) की भाँति इसके फल का बाहुल्यता के साथ उपयोग करते हैं। कमरख और बिलिंबी दोनों में अत्यधिक एसिड पोटासियम् आक्जेलेट (एक प्रकार का अम्ल) होता है और लोहे का मूर्चा दूर करने के लिये इनका उपयोग होता है। शैत्यजनक (Cooling) औषधिरूपसे देशी लोग, ज्वर में, इसके फूलों का गुलक़न्द (Conserve) और फल का शर्बत व्यवहार करते हैं।—फा० इं० १ भ० पृ० २४८।

नोट—डीमक ने कमरख और कमरख भेद-बिलिंबी का एकत्र वर्णन किया है।

नादकर्णी—यह मृदुरेचक, मनोल्लासकारक और स्कर्वी रोग-प्रतिषेधक है। फल खाया जाता है और इसकी (pickes) और कढ़ी भी बनती है। इसे अन्य सागों एवं खाद्य-द्रव्यों के साथ इस हेतु पकाते हैं, जिसमें वे अपेक्षाकृत अधिक सुस्वादु एवं सुपाच्य होजायँ। पका फल स्कर्वी प्रतिषेधक औरअत्यन्त शैत्यकारक है। इसके फल-स्वरस का बना शर्बत पिपासा एवं ज्वर-जात उग्रताके शमन करने के लिए, उत्तम तापहारी (Cooling) पेय का काम देता है। इसके फल के रस से वस्त्र प्रक्षालित करने से उन पर पड़े हुये दाग़ और धब्बे दूर होकर वे स्वच्छ होजाते हैं। —इं० मे० मे० पृ० ६६।

कमरख के फलों में कसाव बहुत होता है इसीलिए लोग पके फलों में चूना लगाकर खाते हैं। फल अधिकतर अचार चटनी आदि के काम में आता है। कच्चे फल रंगाई के काम में भी आते हैं। इससे लोहे के मूर्चे का रंग दूर होजाता है। खाज के लिए यह अत्यन्त उपयोगी माना जाता है। —हिं० श० सा०।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह फल शीतादि रोग प्रतिशोधक है। यह ज्वर में उपयोगी है। इसमें एसिड पोटेशियम् आक्ज़ेलेट्स पाये जाते हैं।

इसके बीज निद्राजनक वामक, ऋतुस्राव-नियामक और शूल निवारक होता है। इनका चूर्ण आधे से २ ड्राम तक की मात्रा में उदरशूल और पीलिया के शूल को नष्ट करनेवाला माना गया है।

इंडोचीन में इसके पत्ते खाज-खुजलीकी औषधी में व्यवहृत होते हैं। ये कृमिनाशक माने गये हैं। इसका फल शीतादि रोग प्रतिशोधक है। यह ज्वर में शांतिदायक वस्तु की तरह व्यवहार किया जाता है।

कमरख भेद--बिलिंबी

पर्य्या०—बेलंबू, बिलिंबी—हिं०, द०। बिलिंबी—बं०। अवेरोआ बिलिंबी Averrhoa Bilimbi, *Linn.* —ले०। कुकुंबरट्री Cucumber tree —अं०। कोचित्तमर्त-काय, पुलिच चक्काय, बिलिंबि-काय—ता०। पुलुसु-कायलु बिलि-बिलि--कायलु। बिलिंबि--कायलु—ते०। बिलिम्बिक्का, बिलिंबि, करिचक्का—मला०। बिलंबु—गु०। काल-ज़ौन-सो, काल-ज़ान्य-सो—बर०।

चाङ्गेरी वर्ग

(*N. O. Geraniaceæ*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष के उद्यानों में बहुतायत से इसके वृक्ष लगाए जाते हैं।

वानस्पतिक वर्णन—यह कमरख की ही जाति का वृक्ष है, जिसके फल कमरख की तरह के ही होते हैं। भेद केवल यह है कि इसके फल कमरख की अपेक्षा किंचित् छोटे होते हैं। इसके अतिरिक्त कई एक अन्य आंशिक भेद होते हैं, जो दोनों के फलों के अवलोकन से स्पष्ट हो जायगा। इसका फल पांडु पीताभ हरित, दीर्घायताकार (Oblong), १॥ से २॥ इंच लंबा आध से १ इंच तक मोटा, अधिक कोणीय, पँच कोण युक्त और स्वादु में खट्टा होता है। पूर्वोक्त कमरख की भाँति, इस फल की अम्लता भी एसिड आक्ज़ेलेट आफ पोटास पर निर्भर करती है। यद्यपि लवण की मात्रा इसमें पहले (कमरख) की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

औषधार्थ व्यवहार—फल।

प्राप्ति-स्थान—इसका पक्व वा अर्द्धपक्व फल एक ऐसे साग-भाजी की किस्म है, जिसका इस देश की देहाती जनता कढ़ी आदि में प्रायः बहुत व्यवहार करती है। यह बाज़ारों में बहुधा सदैव उपलब्ध होता है।

औषध-निर्माण—शर्बत, निर्माण विधि—पके फल का स्वरस निकालकर वस्त्रपूत करें। यह १० फ्लुइड आउंस, साफ शर्करा ३० आउंस और जल १० फ्लुइड आउंस। यथाविधि गाढ़ा शर्बत प्रस्तुत करें।

मात्रा—३ से ६ फ्लुइड ड्राम उक्त शर्बत जल में अच्छी तरह मिलाकर २४ घंटे में ४-५ बार सेवन करायें।

योरोपीय औषधें जिनकी जगह यह काम में आ सकता है—गैलिक एसिड, फास्फोरिक एसिड और एफर्वेसिंग ड्राफ्ट्स।

गुण धर्म तथा प्रयोग

मोहीदीन शरीफ़—यह धारक, पाचक (Stomachic) और मनोल्लासकारी (Refrigerant) है। फल का शर्बत प्यास बुझाता एवं ज्वर प्रकोप को शांत करता है तथा रक्तस्रुति संबंधी कतिपय ऐसे सामान्य रोगियों को भी जिनकी आँतों, आमाशय और अन्तःस्थ अर्श (Internal hæmorrhoids) से रक्तस्राव होता हो, यह बहुत उपकार करता है अर्श तथा स्कर्वी नामक रोग में फल स्वयं, कढ़ी के रूप में, एक अत्युपयोगी एवं पथ्य खाद्य-द्रव्य है। —मे० मे० मै० पृ० ७६।

कमरघवेल–[पश्तो] पाखानबेद। पाषाणभेद।

कमरज़हर:–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पौधा जो ठंढे हिमाच्छादित पर्वतों पर पैदा होता है। इसके पत्ते आस के पत्तों की तरह और परस्पर खूब मिले हुए होते हैं। इसमें शाखाएँ बहुत होती हैं जो भूमि से दो बित्ता वा न्यूनाधिक ऊपर उठी होती हैं। इसके पत्ते तोड़ने से प्रचुर दुग्ध स्राव होता है। इसकी शाखाओं की पहुँचियों पर फूल और बीज आते हैं। बीज आकृति में माज़रियून के बीजों के समान और आकार में मटर के दाने के बराबर होता है। जड़ बहुशाखी होती है। इस पेड़ में रेशम के कीड़ों की तरह कीड़े पैदा हो जाते हैं। जिनपर काले, लाल और सफ़ेद रंग के बिंदु होते हैं। यह कीड़ा विषैला होता है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह संधिशूल, पक्षाघात फ़ालिज तथा लकवा में गुणकारी है। इसकी जड़ पीने से वातज दंतशूल आराम होता है। कृमि-भक्षित दंत पर इसे चंदबार लगाने से वह उखड़ जाता है। इसके पत्ते पीने से कै-दस्त आते हैं। सर्प तथा वृश्चिक–दंश में इसका दूध गोघृत और मधु के साथ सेवन करने से उपकार होता है। सर्प तथा अन्य कीट-विषों की यह रामबाण औषध है। —ख़० अ०।

कमरंग–संज्ञा पुं० [सं० कर्म्मरंग] कमरख।

कमरा–[कना०] अञ्जन। छोटा दुधेरा।

[गु०] शमी। जंबु। (ता०)।

संज्ञा पुं० दे० "कमला"।

क़मरा–[अ०] एक प्रकार का पक्षी।

कमरि–[ ] बाँस।

कमरिया–संज्ञा पुं० [फ़ा० कमर] बौना हाथी। नाटा हाथी।

संज्ञा स्त्री० दे० "कमरी"।

कमरी–संज्ञा पुं०, घोड़े का एक रोग।

कमरी, कमर्री–[मध्य प्र०, कोल०] डिकामाली।

क़मरीब–[अ०] करमकल्ला।

क़मरून–[?] रोबियाँ। झींगा मछली।

कमरूनी–एक प्रकार का सर्वोत्तम अगर जिसे कमारी भी कहते हैं।

कमल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० कमलं] (१) पानी में होनेवाला एक पौधा जो प्रायः संसार के सभी भागों में पाया जाता है। यह झीलों, तालाबों, नदियों और गड्ढों तक में होता है। बहुप्राचीन, दीर्घकाल से असंस्कृत रहने के कारण पंकबहुल एवं गरमी में भी जिसका पानी नहीं सूखता, ऐसे तालाब वा पोखरी में कमल उत्पन्न होता है। इसका पेड़ बीज से जमता है। कमल की पेड़ी पानी में जड़ से पाँच छः अंगुल के ऊपर नहीं आती। इसकी पत्तियाँ गोल-गोल बड़ी थाली के आकार की होती हैं और बीच के पतले डंठल में जुड़ी रहती है। इन पत्तियों को पुरइन कहते हैं। इनके नीचे का भाग वा पत्रपृष्ठ जो पानी की तरफ रहता है, बहुत नरम और हलके रंग का वा ईषत् रक्तवर्ण का एवं सिराकर्क्कश होता है, पर ऊपर का भाग अर्थात् पत्रोदर द्विदलवत् हरिद्वर्ण एवं मखमल की तरह कोमल बहुत चिकना, चमकीला और गहरे हरे रंग का होता है। इस तरफ पानी की बूँदें नहीं ठहरती हैं। कमल चैत वैसाख में फूलने लगता है और सावन भादों तक फूलता है। बरसात के अंत में बीज पकते हैं। फूल लम्बे डंठल के सिरे पर होता है तथा डंठल वा नाल में बहुत से महीन-महीन छेद होते हैं। इसकी डंडी खुरदरी होती है। डंठल वा नाल तोड़ने से महीन सूत निकलता है जिसे मृणाल-सूत्र कहते हैं। इसे बटकर मंदिरों में जलाने की बत्तियाँ बनाई जाती हैं। प्राचीन काल में इसके कपड़े भी बनते थे। वैद्यक के मतानुसार इस सूत के कपड़े से ज्वर दूर हो जाता है। कमल की कली प्रातःकाल खिलती है। फूलकी कटोरी में

चार पाँच झड़ जानेवाली पत्तियाँ होती हैं। फूल में बहुसंख्यक पंखड़ियाँ या दल होते हैं जो पतन शील एवं अनेक पंक्तियों में विन्यस्त होते हैं। सब फूलों के पंखड़ियों या दलों की संख्या समान नहीं होती। पंखड़ियों के बीच में केसर से घिरा हुआ एक पुष्पधि वा छत्ता होता है जिसमें बीज निमज्जित होते हैं। कमल के बहुसंख्यक पीले केसर छत्ते के चतुर्दिक् कतिपय पंक्तियों में विन्यस्त होते हैं और पंखड़ी एवं केसर पुष्पधिमूल से संलग्न होते हैं। गर्भकेशर चिह्न (Stigma) वृन्तशून्य होता है। सूखे फूल का रंग भूरा होता है। कमल की गंध भ्रमरों को अत्यन्त मनोहर लगती है। मधुमक्खियाँ कमल के रस को लेकर मधु बनाती हैं, यह पद्ममधु नेत्ररोगों के लिये उपकारी होता है। भिन्न-भिन्न जाति के कमल के फूलों की आकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उमरा (अमेरिका) टापू में एक प्रकार का कमल होता है जिसके फूल का व्यास १५ इंच और पत्ते का व्यास साढ़े छः फुट होता है। पंखड़ियों के झड़ जरने पर छत्ता बढ़ने लगता है और थोड़े दिनों में उसमें बीज पड़ जाते हैं। बीज गोल-गोल लम्बोतरे होते हैं और पकने तथा सूखने पर काले हो जाते हैं और कमलगट्टा कहलाते हैं। इनका छिलका कड़ा होता है। इसके भीतर एक सफ़ेद रंग की महीन झिल्ली होती है। इसके भीतर किंचिन्मधुर सफ़ेद रंग की गिरी निकलती है जो बादाम की तरह दो फाँकों में विभक्त होती है। कच्ची गिरी जो कड़ी न पड़ी हो अत्यन्त सुस्वाद होती है। मींगी के भीतर जीभ की तरह एक हरे रंग की पत्ती होती है। यह स्वाद में कड़ुई होती है। कच्चे कमलगट्टे को लोग खाते और उसकी तरकारी बनाते हैं. सूखे दवा के काम में आते हैं। कोई-कोई इसे ही भ्रमवश मखाना (मखान्न) मानते हैं। परन्तु मखाना इससे सर्वथा एक भिन्न वस्तु है। यद्यपि यह भी एक जलीय पौदा है और आकृति आदि में बहुतांश में कमल के समान होता है, तथापि यह कमल नहीं। पूर्ण विवरण के लिये दे० "मखाना"।

कालिदास ने पुष्कर-बीज-माला का उल्लेख किया है। कमल की जड़ मोटी और छिद्रयुक्त होती है और भसीड़, भिरसा वा मुरार कहलाती है तोड़ने पर इसमें से भी सूत निकलता है। सूखे दिनों में पानी कम होने पर जड़ अधिक मोटी और बहुतायत से होती है। लोग इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं। अकाल के दिनों में लोग इसे सुखाकर आटा पीसते हैं और अपना पेट पालते हैं। इसके फूलों के अंकुर वा उसके पूर्वरूप प्रारम्भिक दशा में पानी से बाहर आने के पहले नरम और सफेद रंग के होते हैं और पौनार कहलाते हैं। पौनार खाने में मीठा होता है।

रंग और आकार के भेद से इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं, पर अधिकतर लाल, सफ़ेद और नीले रंग के कमल देखे गये हैं। कहीं-कहीं पीला कमल भी मिलता है। एक प्रकार का लाल कमल होता है जिसमें गंध नहीं होती और जिसके बीज से तेल निकलता है। रक्त कमल भारत के प्रायः सभी प्रांतों में मिलता है। इसे संस्कृत में कोकनद, रक्तोत्पल, हल्लक इत्यादि कहते हैं। कोकनद अर्थात् रक्तपद्म गरमी में स्फुटित होता हैं और बरसात में इसके बीज परिपक्व होते हैं। रक्त और श्वेत पद्म की जड़ कीचड़ में बहुत दूर तक प्रतान विस्तार करती है। मूल अंगुष्ठतुल्य स्थूल अत्यन्त मसृण, लालरंग के चिह्नों से युक्त और अन्तः शुषिर होता है। पुराने पेड़ की जड़ कहीं-कहीं मनुष्य की मुण्ड्याकृति के तुल्य मोटी हो जाती है। रक्तपद्म की पंखड़ी का रंग एक दम लाल नहीं, अपितु गुलाब के फूल की पंखड़ी के रंग का अर्थात् गुलाबी होता है। पंखड़ी का मूलदेश फीका गुलाबी एवं अग्रभाग की ओर का रंग क्रमशः गाढ़ा हो जाता है। पद्म को "शतदल' कहते हैं, पर दल वस्तुतः सर्वत्र एकशत होते देखा नहीं गया—एक पद्म-पुष्प में दलों की संख्या प्रायः २०—७० तक देखी गई है। पुष्प के सभी दल आकृति में समान नहीं होते—बाह्य दल क्षुद्र और उसका पृष्ठ हरे रंग का होता है, मध्यदल बृहत्तर एवं आंतर दल पुनः ह्रस्वाकृति का हो जाता है। जल की गहराई के अनुसार नाल डंडी की लम्बाई न्यूनाधिक होती रहती है। नाल अतीक्ष्णाकंटों से व्याप्त होता है।

श्वेत पद्म के दलों का वर्ग कुन्द फूल की तरह शुभ होता है। श्वेत पद्म सर्वांश में रक्त पद्म के के तुल्य होता है। अंतर केवल यह है कि सफेद कमल में लाल कमल की अपेक्षा बीज कम होते हैं।लाल कमल में १०–३० और सफेद में ८–२० बीज देखे जाते हैं। श्वेत कमल को संस्कृत में शतपत्र, महापद्म, नल, सितांबुज इत्यादि कहते हैं। नीलकमल विशेषकर काश्मीर के उत्तर तिब्बत और कहीं कहीं चीन में होता है। पीत कमल अमेरिका, साइबेरिया, उत्तर जर्मनी इत्यादि देशों में मिलता है। पद्मचारटी वा पद्मचारिणी नाम का एक और पौधा होता है जिसे कोई कोई 'स्थलकमल' और कोई गेंदा लिखते हैं। किसी किसी ने इसे जंगली कमल भी लिखा है। तालीफ़ शरीफ़ी में इसे गुलनीलोफर का एक भेद लिखा है और लिखा है कि उसमें पत्ते कम होते हैं। विशेष देखो "स्थल कमल"।

धन्वन्तरीय तथा राजनिघंटु में क्षुद्र उत्पल नाम से एक प्रकार के कमल का उल्लेख मिलता है। रंग के विचार से यह तीन प्रकार का कहा गया है—सफेद, नीला, और लाल। इनमें से लाल रंग वाले को रक्तशालूक कहते हैं। दल संख्या में शालूकापेक्षा अधिकतर एवं आकार दीर्घतर होता है। एतद्भिन्न सर्वांश में यह शालूकवत् होता है।

कमल की ही किस्म का एक और जलीय पौधा है, जिसे संस्कृत में कुमुद, कैरव, कुवलय आदि संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। यह पंक बहुल पल्वलादि में उत्पन्न होता है और वर्षांत–शरद में फूलता है। इसमें कमल से एक और विशिष्ट भेद होता है कि कमल के फूल सूर्योदय के समय खिलते हैं और सूर्यास्त होते ही बंद होने लगते हैं, परन्तु कुमुदिनी वा कूई रात में खिलती है। इसकी पंखड़ी श्वेत कमल की पंखड़ी की तरह शुभ्र होती है। श्वेत पद्म की अपेक्षा इसकी पंखड़ियाँ संख्या में अल्पतर एवं आकृति में क्षुद्रतर होतीहैं। इसकी नाल और कमलकी नालमें इतना भेद होता है, कि कमल की नाल के ऊपर गड़ने वाली रोईं होती है, पर इसकी नाल चिकनी होती है। रंग और आकृति के भेद से यह भी कई प्रकार की होती है। हकीम लोग इसे नीलोफर कहते हैं। विस्तृत विवरण के लिये 'कूई' देखो। मखाना वा मखान्न (Euryale Ferox, Salisle) भी कमलकी ही जाति का, पर उससे सर्वथा एक भिन्न जलीय पौधा है। मखाने का लावा इसी का बीज भूनने से तैयार होता है। विस्तृत विवरण के लिये देखो "मखाना"।

पद्म भेद विषयक प्राचीन मत

धन्वन्तरीय निघंटु के मतसे पुण्डरीक, सौगंधिक, रक्त पद्म, कुमुद एवं क्षुद्र उत्पलत्रय ये सात प्रकार के कमल होते हैं। अत्यंत सफेद कमल को पुण्डरीक कहते हैं। जहाँ तक देखने में आया है उससे यह ज्ञात होता है कि सफेद कमल गरमी में फूलता है, परंतु धन्वन्तरीय निघंटु में इसे "शरत् पद्म" लिखा है। हाँ? कुमुद वा कूईं शरत् वा जाड़े में फूलती हुई देखी गई है। धन्वन्तरीय निघंटु के मतसे सौगन्धिक नीलपद्म है, यथा—

"सौगन्धिकं नीलपद्मम्"। पद्मोत्पल नलिन कुमुद सौगन्धिक कुवलय पुण्डरीक शैवल कोथजाताः"। (सु० सू० १३ अ०)

इस सौश्रुतीय पाठ की व्याख्या में डल्वण लिखते हैं, "सौगन्धिकं गर्द्धभ पुष्पाभिधानमत्यन्तसुरभि चन्द्रोदय विकाशि"। भारतवर्ष में अधुना नीलपद्म के दुर्लभ होने के कारण, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि यह अत्यंत सुरभि एवं चन्द्रोदय विकाशी है वा नहीं। भाषा में जिसे कूई वा सुंदि कहते हैं, यदि वही "सौगन्धिक" है, तो उसके लिये "अत्यन्त सुरभि" विशेषण असंगत पड़ता है। गर्द्धभपुष्प किस देश का भाषा नाम है, इसका निर्णय सहज नहीं। भावप्रकाशकार ने कह्लार के पर्य्यायों में सौगन्धिक पाठ दिया है एवं "नीलमिन्दीवरं स्मृतं" वाक्य में नीलपद्म का नाम इन्दीवर निर्देश किया है। भावप्रकाशकार ने सौगन्धिक का नीलपद्म होना स्वीकार कर लेने पर, ऐसा क्यों लिखा? कह्लार क्या है? धन्वन्तरीय निघण्टु में कुमुद के पर्य्यायों में कह्लार का पाठोल्लेख हुआ है। इनके मत से कह्लार शालूक फूल वा कूई के फूल को कहते हैं। भावप्रकाशकार ने कह्लार और कुमुद को पृथक्–पृथक् निर्देश किया है। सौगन्धिक को

शालूक मानने पर डल्हण के मत के साथ इसका विरोध घटित होता है।

चरक के मूत्र विरजनीय वर्ग की व्याख्या में चक्रपाणि लिखते हैं "सौगन्धिकः शुन्दी" (सू० ४ अ०)। सारांश यह कि सोगन्धिक के परिचय के विषय में आचार्यगण परस्पर विसम्वादी हैं। रक्तपद्म की पँखड़ी का रंग गुलाब के फूल की पँखड़ी के रंग का होता है। जिस प्रकार बंगाल में श्वेतपद्म प्रचुर मात्रा में होता है, उसी प्रकार कोच बिहार में रक्तपद्म सुलभ है। शालूक के फूल का संस्कृत नाम कुमुद है। शालूक वा कूई शरद ऋतु में फूलती है। निघण्टुकार क्षुद्र उत्पलत्रय की इस प्रकार व्याख्या करते हैं—"ईषच्छीतं विदुः पद्ममीषन्नील मथोत्पलम्। ईषद्रक्तं तु नलिनं क्षुद्रन्तच्चोत्पलत्रयं"। श्वेत सुंदि, नीलसुंदि और रक्तशालूक इन तीन प्रकार के फूलों को क्षुद्र-उत्पल कहते हैं। बङ्गाल में रक्तशालूक को "रक्त-कम्बल" कहते हैं। अज्ञ लोग इसे ही रक्तपद्म कहने के भ्रम में पड़े रहते हैं। पद्मिनी के प्रत्यंग विशेष के नाम के विषय में भावप्रकाश लिखते हैं—मूल, नाल, दल, फूल और फल सहित पद्म को पद्मिनी कहते हैं। कुमुदिनी, नलिनी प्रभृति का अर्थ भी इसी प्रकार जानना। पद्म के मूल को शालूक, नाल को मृणाल, कोमल नवीन पत्तोंको संवर्त्तिका केसर को किंजल्क; बीजकोष वा छत्ता को कर्णिका एवं पुष्परस को मकरंद कहते हैं। अमरसिंह के मत से मृणाल पद्ममूल को कहते हैं। विस शब्द मृणाल का पर्य्यायवाची है। वैद्यक में बहुस्थल पर विस और मृणाल एकत्र उल्लिखित हुए हैं। टीकाकारगण इस प्रकार अर्थ करते हैं—

"मृणालं स्थूलमृणालं, विसंतु स्वल्प मृणालं"
"बिसशब्देन मृणालनिर्गतःप्रतानः" शिवदासः।
"मृणालं स्थूलं, बिसं मृणालान्निर्गत प्रतानः"
इति वृन्दटीकायां श्रीकण्ठः।

सुश्रुत भी लिखते हैं—"प्रतानाः पद्मिनी कन्दाद्विसादीनां यथा जलम्" (शा० १ अ०)

कमल की सामान्य संज्ञाएँ—

पाथोजं, कमलं, नभं, नलिनं, अम्भोज, अंबु-जन्म, अम्बुजं; श्रीः, पद्मं, अम्बुरुहं, सारसं, पङ्केजं, सरसीरुहं, कुटपं, पाथोरुहं, पुष्करं, वार्जं, तामरसं कुशेशयं, कजं, कञ्जं, अरविन्दं, शतपत्रं, बिस-कुसुमं, सहस्रपत्रं, महोत्पलं, वारिरुहं, सरसिजं, सलिलजं, पङ्केरुहं, राजीवं, वेदवह्निं, (रा० नि०) विसप्रसून, (भा०) वारिजं, कवारं, आस्यपत्रं, वनशोभन, सरोरुह, जलजन्म, जलरुट्, जलरुह, सरोजं; सरोजन्म, सरोरुट् पङ्केज, पङ्कजं, अम्भोजं, अम्बूजं, श्रीवास, श्रीपर्णं, इन्दिरालयं, जलेजातं, नलं, नालिकं, नालीकं, वनजं, अम्लानं, पुष्टकं अब्जः, अम्बुपद्मं, सजलं, पङ्करुट्, पङ्कजन्म, पङ्करुहं वारिरोहं, अम्बुरोहं, अम्बपद्मं –सं०।

नोट—जलवाचक सब शब्दों में 'ज'; 'जात', 'जन्म' आदि प्रत्यय लगाने से कमल-बाची शब्द बनते हैं; जैसे—वारिज, नीरज, कंज आदि।

पुरइन, कँवल, कमल, –हिं०। पद्म, कमल, –बं०। क्रातिलुब्रह्ल–अ०। कमल –बम्ब०। निम्फी निलम्बो Nymphae Nelumbo। निलम्बियम् स्पेसिओसम् Nelumbium Speciosum, *Willd, Wight.* ले०। इजिप्सियन लोटस Egyptian Lotus, सेक्रेड लोटस Sacred Lotus –अं०। Nelumbium Magnifique; नीलंबो Nelumbe. –फ्रां०। पेक्टिजेनीलम्बो Pactige Nelumbo –जर०। कालावा, तामर अल्लितामर, एर्र-तामर-वेरु –ते०। अम्बल–ता०। विलिय तामरे–का०। न्यडले हुवु, तावरे–कना०। कमल –मरा०। सेवक –गोआ। पब्बन –सिंध। तामर, अरविंदम् –मल०। पदम –उड़ि०। काँवल –पं०। पियुम्, नीलम् –सिंहली।

कमल के अंग–प्रत्यंगों के नाम—

पद्मिनी—(कमल का झाड़ वा समग्र चुप) पद्मिनी, कुटपिनी, नलिनी, कुमुद्वती, पलाशिनो, पद्मवती, वनखण्डा, सरोरुहा, (ध० नि०), पद्मिनी, नलिनी, कुटपिनी, अब्जिनो (रा० नि०) पद्मिनी, नलिनी, विसिनी, कमलिनी (भा०) पद्मषण्ड, कुन्दिनी, मृणालिनी, पंकजिनी, सरो-जिनी, अरिबिन्दिनी; नालिकिनी, अम्भोजिनी, पुष्करिणी, जम्बालिनी, –सं०। कमल का झाड़ –हिं०। पद्मेर झाड़ –बं०। The Cntire

plant, including root, Stem and flowers of the lotus.

नोट—मूल, नाल, पत्र और बीजादि संयुक्त, खिले हुए को पद्मिनी कहते हैं।

कमलकेसर

पद्म केसरं, आपीतं, किञ्जल्कं, किञ्जं, मकरन्दं, तुङ्गं, गौरं, काञ्चनकं, (ध० नि०), किञ्जल्कं, मकरन्दं, केसरं, पद्मकेसरं, किञ्जं, पीतं, परागं, तुङ्गं, चाम्पेयकं, (रा० नि०), किञ्जल्कः (भा०) किञ्जलः (श० च०) पद्मकेसरं, (राज०) पद्मकिञ्जल्कः (वै० निघ०), पद्मरजः, पद्मरेणुः, उत्पल केसरः, नलिनकेसर, काञ्चन, चाम्पेयः —सं०। केशर, कमल की केसर, कमल का जीरा —हिं०। पद्मकेसर —बं०।

कमल का छत्ता

कमल कर्णिका, पद्मबीजकोष, पद्मकर्णिका, कमलगर्भ, पद्मकोष—सं०। कमल का छत्ता—हिं०। पद्मेर चाकि—बं०। The torus or receptacle for the seed.

कमलगट्टा

पद्मबीजं, पद्माक्षं, गालोड्यं, पद्मकर्कटी, भेडा, क्रौञ्चादनी, क्रौञ्चः, नापाकः, कन्दली, (ध० नि०) क्रौञ्चा, श्यामा, (रा० नि०), कमलाक्षः, कमलबीज, पद्मकर्कटः, मेण्डा,—सं०। कमलगट्टा, कमलका बीज, कमल अंडा, कँवलगट्टा, कमल ककड़ी-हिं०। पद्मेर बीचि, पद्मबीज —बं०। पद्माक्ष —मरा०, कना०। तामर विरै —ता०। तामर वित्तुलु, तामर काडा —ते०। तवैबीज —कना०। कमल काकड़ी —गु०। कमलाक्ष —मरा०। बाक़लहे क़ुल्ती, बाक़लहे नब्ती —अ०।

पद्मनाल वा कमल की डंडी

बिसं, मृणालं, विसिनी, मृणाली, मृणालिका, मृणालकं, पद्मनालं, तण्डुलं, नलिनीरुहं, (ध० नि०) मृणालं, पद्मनालं मृणाली, मृणालिनी, बिसं, पद्मतन्तुः, विसिनी, नलिनीरुहं, (रा० नि०) पद्मनालं, मृणालं, बिसं, (भा०) कमलदण्ड, विशं, विसं, कोरकं, कोमलं, कोमलकं, तन्तुरं, कमलनाल, कमलकोमलदण्ड —सं०। कमल की डंटी, कमलनाल, कमल की डंडी, कमल का डंठल, —हिं०। पद्मेर डाँटा, पद्मेर डाँटी —बं०। कमल तंतु, कमला चा देंठ —मरा०। तामर तुंड, तामर तोगे —ते०। कमल दनूलु—कना०।

कमल की जड़

पद्ममूलं, शालूकं, सकन्दं, करहाटकं, शालिनं, पद्मकन्दं, जलालूकं (ध० नि०) पद्मकन्दः, शालूकं, पद्ममूलं, कट्टाह्वयं, शालीनं, जलालूकं, (रा० नि०) पद्मकन्दः, शालूकं, करहाटः, मृणालमूलं, भिस्साण्डं, जलालूकं (भा०) शालु, शालुकं, शालूकं, पंक शूरणं, शालूकः, गोपभद्रं, शालूरः, कमलकन्दः, उत्पलकन्द-सं०। कमल की जड़, कमलमूल, भिस्सा, भसोड़, भसिंड, भँसीड़, भसींड़, भँपीडा, भिस्स, कंद भसीडा, भिसीड़ा, कँवलकन्द, कँवल ककड़ी, मृणालमूल—हिं०। पद्मेर गेँड़ो, शालूक—बं०। जाजिकाय, तामर वेरु—ते०। तामर वेर—ता०।

नोट—पद्मादि के कंद को शालूक और करहाट तथा मृणालमूल को भिस्साण्ड और जलालूक कहते हैं।

भिन्न भिन्न प्रकार के कमल के पर्य्याय

सफ़ेद कमल (पुष्प)—

पुण्डरीकं, श्वेतपद्मं, सिताब्जं, श्वेतवारिजं, हरिनेत्रं, शरत्पद्मं, शारदं, शंभुवल्लभं (ध० नि०) पुंडरीकं, श्वेतपत्रं, सिताब्जं, श्वेतवारिजं इत्यादि (रा० नि०) सितपद्मं, धवल कमलं, सिताम्भोजं शतपत्रं, महापद्मं, सिताम्बूजं, श्वेतकमलं, इशोपमं, शुक्लपद्म, शरत्पद्म—सं०। सफ़ेद कँवल, श्वेत कमल, सुफ़ेद कमल, सुफ़ेद के कँवल का फूल—हिं०। सुफ़ेद नीलोफर ? के फूल—द०। श्वेतपद्म—बं०। निलंबियम् स्पेसिओसम् Nelumbium Speciosum, *Willd*—ले०। Flowers of the white variety of the Egyptian or Lotus Pythagonean Bean, Egyptian lotus लोटस—अं०। वेल्लै-तामर-पु—ता०। तेल्ल-तामर—पुन्नु, तेल्ल तामर नालावा कालावा—ते०। पांढरे कमल—मरा०। विलिय तावरे—कना०। धोला कमल—गु०।

बीज—

सुफ़ेद कँवँल के बीज, सुफ़ेद नीलोफ़र ? के

बीज–हिं० । द० । वेल्लै तामर-विरै–ता० । तेल्ल-तामर-वित्तुलु–ते० । तवै वीज–कना० ।

जड़—

सुफ़ेद कँवल की जड़, सुफ़ेद नीलोफ़र ? की जड़–हिं०, द० । वेल्लै-तामर-वेर–ता० । तेल्ल तामर वेरु–ते० ।

लाल कमल (पुष्प)—

रक्तपद्मं, नलिनं, पुष्करं; कमलं, नलं, राजीवं; कोकनदं, शतपत्रं, सरोरुहं (ध० नि०), कोकनदं अरुणं कमलं, रक्ताम्भोजं, शोणपद्मं, रक्तोत्पलं, अरविन्दं, रविप्रियं, रक्तवारिजं, वसवः (रा० नि०) रक्तपद्मः, रक्तकमलं, अल्पपत्रं, अलिप्रियं, चारुनालकं, अलोहितं, कृष्णकंदं, रक्तवर्णं, रक्तकम्बलं, रक्तकह्लारं, हल्लक, रक्तसन्धिक, रक्तोत्पल, रक्तसरोरुहं, रक्ताम्भ–सं० । लाल कमल का फूल, लाल कँवल के फूल, लाल नीलोफर ? के फूल–हिं०, द० । रक्तपद्म, रक्त कम्बल–बं० । निलंबियम् स्पेसिओसम् Nelum bium speciosum, *Willd* N. Carruleum (Flowers of—) –ले० । Flowers of the Egyptian or Pythagorean Bean, *Red lotus* (The red, pink, crimson or rose–colored variety)–अं० । शिवप्पु-तामर-पू०–ता० । एर्र कालावा, तम्मि, (तास्मि पुव्वु), एर्र-तामर-पुव्वु–ते० । केदावरे–कना० । तांबडे कमल–मरा० । रातना ऊंवेडेते, रातांकमल–गु० ।

बीज—

कोकनद बीज–सं० । लाल कँवल के बीज, लाल नीलूफर ? के बीज–हिं०, द० । शिवप्पु तामर-विरै–ता० । एर्र-तामर-वित्तुलु–ते० ।

जड़—लाल कँवल की जड़, लाल नीलूफर ? की जड़–हिं०, द० । शिवप्पु-तामर-वेर–ता० । एर्र तामर वेरु–ते० ।

नीला कमल (पुष्प)—

सौगन्धिकं, नीलपद्मं, भद्रं, कुवलयं, कुजम् इन्दीवरं; तामरसं, कुवलं, कुद्मलं (ध० नि०) उत्पलं, नीलकमलं, नीलाब्जं, नीलपंकजं, नीलपद्मं (रा० नि० भा०). नीलाम्बूजन्म नीलोत्पलं, नीलपंकजं, नीलाम्बुजं, इन्दिरावरं, इन्दिवरं, इंदम्बरं, इंदीवारं, उत्पलकं, मृद्-पल–सं० । नीला कमल, नीली पुरइन्–हिं० । नीलपद्म–बं० । करिया तामरे करिय तांवरे–कना० । नीले कमल–मरा० । नील कमल–गु०, करियातावरे–कना० । नेल्ल नामर–ते० । N. Pubescens–ले० ।

कुमुद वर्ग

(*N. O. Nymphœaceœ*)

उत्पत्ति-स्थान—कमल समग्र भारतीय जलाशयों में उत्पन्न होता है । इसके अतिरिक्त अमेरिका, कास्पीय सागर के तटस्थ प्रदेश, फारस, चीन और मिश्र देश में इसका पौधा उपजता है । श्वेत और रक्त कमल भारतवर्षके अनेक स्थान पारस्य, तिब्बत चीन और जापान में मिलता है । किंतु नील कमल केवल काश्मीर के उत्तरांश, तिब्बत के अंतर्गत गंधमादन और चीन के किसी किसी स्थान में देख पड़ता है ।

पृथिवी के मध्य चीन देश में ही यह अधिक होता है । चीना इसकी जड़ बड़े प्रेम से खाते हैं ।

इतिहास—भारतवासी अत्यंत प्राचीन काल से ही इसके पुष्प को अति पवित्र समझते आये हैं । वेद में भी "कमलाय स्वाहा" (तैत्तिरीय संहिता ७ । ३ । १८ । १) मन्त्र मिलता है । महाभारत के अनुसार भगवान की नाभि से उत्पल और उत्पल से ब्रह्मा का उद्भव हुआ है ।

"प्रधान समकालन्तु प्रजाहेतोः सनातनः ।
ध्यान मात्रेतु भगवन्नाभ्यां पद्मः समुत्थितः ।
ततश्चतुर्मुखोब्रह्मा नाभि पद्माद्विनिःसृतः॥
महाभारत वन० २७१ । ४१-४२।

कमल का फूल भारतवर्षीय नाना स्थानों के देव मन्दिर और भूटान में पूजा के लिए व्यवहृत होता है । इसका फूल लक्ष्मी को अत्यन्त प्रिय है । पूर्व काल में मिश्र निवासी भी कमल को पवित्र पुष्प समझ पूजा में व्यवहार करते थे । पाश्चात्य यूनान देशीय पंडित सावफ़रिस्तुस Theophrastus ने Kuamos Aigyptios (मिश्र की सेम) नाम से इसका उल्लेख किया है । आरब्य और पारस्य देशवासी नीलोफर नाम के अंतर्गत, जो उनके कथनानुसार भारतीय नाम का अपभ्रंश है और नील=जल+फल से व्युत्पन्न है, अनेक

प्रकार के कमल और कूंई का वर्णन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी प्रकार कमल को कूंई से बढ़कर नहीं मानते थे और सफ़ेद एवं नीले क़िस्म को अपेक्षाकृत अधिक पसंद करते थे पारस्य देश से नाना स्थानों को उत्पल का बीज भेजा जाता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इसके फूल को विशेष शीतल एवं संग्राही मानते हैं। फलतः प्रकुपित दोषोत्पन्न नाना व्याधियों में वे नाना प्रकार से इसका उपयोग करते हैं।

मुलेठी के साथ ये क्वाथ रूप में काम आते हैं। अथवा एक प्रकार के शर्बत की शकल में जिसमें $\frac{1}{2}$ भाग शुष्क पद्मपुष्प १ भाग शर्करा और ५ भाग पानी पड़ता है। इसकी मात्रा २-३ ड्राम तक है। इसका चूर्ण भी व्यवहार में आता है। शीतल प्रलेप रूप से कमल पुष्प, चंदन और आंवला इनका बाह्य-प्रयोग होता है। (फा० इं० १ भ० पृ० ७१-२)

तालीफ़ शरीफ़ में कल्हार के अन्तर्गत कमल और कूंई दोनों के गुणधर्म वर्णित हैं।

औषधार्थ व्यवहार—पत्र, कोमल पत्र, पुष्प, केसर, नाल, बीज (कमलगट्टा) 'कन्द।

रासायनिक-संघटन—पातालो घड़ और बीज में राल, ग्लुकोज़, मेटार्बीन (Metarbin) कषायिन (Nupharine), वसा, न्युफर ल्युटियम् (Nuphar-luteum) द्वारा आहृत न्युफरीन (Iannin) नामक क्षारोद सदृश एक क्षारोद ये उपादान वर्तमान होते हैं।

(Materia Medica of India, pl ii, p. 39.) मतांतर से इसमें कमलीन (Nelum bine) संज्ञक क्षारोद विद्यमान होता है।

औषध-निर्म्माण—शुष्क पुष्प का शर्बत, मात्रा—१ से ३ ड्राम। कमल का फूल $\frac{1}{2}$ भाग, शर्करा १ भाग, जल ५ भाग—इनका शर्बत, मात्रा—२से३ ड्राम। कमल का फूल और मुलेठी इनका काढ़ा। पद्म पुष्प और तंतु, मुलेठी, मिश्री इनका काढ़ा (१० में १),

मात्रा—$\frac{1}{2}$ से १॥ आउंस।

पुष्प वा बीज चूर्ण, मात्रा—५ से १५ रत्ती, बीज की गिरी का अवलेह।

पत्र-कल्क—कमल का फूल, सफेद चंदन और आँवला इनका कल्क वाह्यशीतल प्रलेप रूप से व्यवहृत होता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—(पुष्प)

उत्पलानि कषायानि रक्तपित्त हराणि च।
कुमुदोत्पल 'नालास्तु' सपुष्पाःसफला स्मृताः।
शीताः स्वादुकषायास्तु कफमारुतकोपनाः।
कषाय मीषद्विष्टम्भि रक्तपित्तहरं स्मृतम्।
पौष्करन्तु 'भवेद्बीज' मधुरं रसपाकयोः।

(चरकः)

सतिक्तं मधुरं शीतं पद्मं पित्तकफापहम्।
मधुरं पिच्छिलं स्निग्धं कुमुदं ह्लादि शीतलम्।
तस्मादल्पान्तरगुणे विद्यात् कुवलयोत्पले।

(सुश्रुतः)

कमलं शीतलं स्वादु रक्तपित्तश्रमार्तिनुत्।
सुगन्धि भ्रान्तिसंताप शान्तिदं तर्पणं परम्॥

(रा० नि०)

कमल—शीतल, स्वादु और सुगंधि है। तथा रक्तपित्त, श्रमजन्य पीड़ा भ्रांति और संताप का निवारण करता और परम तृप्तिकारक है।

कमलं शीतलं वर्ण्यं मधुरं कफपित्तजित्।
तृष्णादाहास्र विस्फोट विष वीसर्प नाशनम्।

(भा० पू० खं०, प्र० व०)

कमल—शीतल, वर्णकर्त्ता, मधुर, कफपित्त नाशक और विषनाशक है तथा प्यास, दाह, रुधिर विकार, विस्फोट और विसर्प रोग को नष्ट करता है।

पद्मं कषायं मधुरं शीतं पित्तकफास्रजित्।

(राज०)

कमल—कसेला, मधुर, शीतल, तथा पित्त कफ और रुधिर विकार को दूर करता है।

कमलं शीतलं स्वादुः सुगन्धिभ्रान्ति तापहम्।
वर्ण्यं तृप्तिकरं चैव रक्तपित्तश्रमापहम्॥

कफपित्तं तृषां दाहं विस्फोटं रक्तदोषकम् ।
विसर्पं च विषं चैव नाशयेदिति कीर्तितम् ।
(शा० नि० भू०)

कमल—शीतल, मीठा, सुगंधित, भ्रांतिहर, तापहारक, कांतिदायक एवं तृप्तिजनक है तथा रक्त-पित्त, श्रम, कफ, पित्त, प्यास, दाह, फोड़ा, फुंसी (विस्फोट), रक्तविकार, विसर्प और विष इनका नाश करता है ।

पद्मिनी मधुरा शीता तिक्ता च तुवरा गुरुः ।
वातस्तम्भकरी रूक्षा स्तनदार्ढ्यकरी मता ॥
कफं पित्तं रक्तं रुजं विषं शोषं वमिं कृमीन् ।
संतापं मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेदिति कीर्तिता ॥
(नि० र०)

कमलिनी—मधुर, शीतल, कड़वी, कसैली, भारी, वातस्तम्भकारक, रूखी स्तनों को कठोर करनेवाली तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, विष, शोष वमन, कृमि, संताप और मूत्रकृच्छ्र रोग को हरनेवाली है ।

पद्मिनी वा कमलिनी

पद्मिनी शिशिरा रूक्षा कफपित्तहरास्मृता ।
(ध० नि०)

कमल का पौधा शीतल, रूक्ष और कफपित्त-नाशक है ।

पद्मिनी मधुरातिक्ता कषाया शिशिरा परा ।
पित्त कृमि शोष वान्ति भ्रान्ति संताप शांतिकृत्
(रा० नि०)

पद्मिनी—मधुर, कड़ुई, कसेली तथा परम शीतल है और पित्त, कृमि, शोष, वांति, भ्रांति और संताप की शांति करनेवाली है ।

पद्मिनी शीतला गुर्वी मधुरा लवणा च सा ।
पित्तासृक्कफनुद्रूक्षा वातविष्टम्भकारिणी ॥
(भ० पू० खं० पु० व०)

पद्मिनी—शीतल, भारी, मधुर, लवणरसयुक्त रूक्ष, वातकारक, और विष्टम्भकारक होती है तथा यह रक्तपित्त और कफ को शांत करती है ।

"बीजं वान्तिहरं । पत्रशय्या शीतला ज्वरे दाहहरं । पुष्पं गुदभ्रंशहरं । "यत्र तु पद्म-मित्यास्ति तत्र प्रायः पद्मकेशरं ग्राह्यम् ।"

सि० यो० पि० श्लेष्म ज्व-चि० श्रीकण्ठः ।

कमल का बीज अर्थात् कमलगट्टा—वमन को दूर करनेवाला है । इसके पत्तों की शय्या ज्वरजन्य दाह का निवारण करती है । गुदभ्रंश (काँच निकलने) में उपकारी है । जहाँ 'पद्म' लिखा हो, वहाँ प्रायः कमल की केशर ग्रहण करनी चाहिये ।

संवर्तिका (नवपत्र)—

संवर्तिका हिमा तिक्ता कषाया दाहतृट्प्रणुत् ।
मूत्रकृच्छ्र गुद व्याधि रक्तपित्त विनाशिनी ॥
(भा० पू० खं० पु० वं०)

संवर्त्तिका—कमल की कोमल पत्ती शीतल, कड़ुई तथा कसैली होती है और दाह, तृषा, मूत्र-कृच्छ्र, गुदा के रोग और रक्तपित्त को नष्ट करती है ।

पत्र—

कमलिन्याश्छदः शीतस्तुवरो मधुरो मतः ।
तिक्तः पाके ऽतिकटुको लघुर्वै ग्राहको मतः ॥
वातकृत् कफपित्तानां नाशको मुनिभिः स्मृतः ॥
(वै० निघ०, नि० र०)

कमलिनी के पत्ते—कषैले, मधुर, कड़वे, पचने में अत्यन्त चरपरे, हलके ग्राहक (मलरोधक), वातकारक तथा कफपित्त नाशक हैं ।

कमल केसर

तृष्णाघ्नं शीतलं रूक्षं पित्त रक्तक्षयापहम् ।
पद्मकेसरमेवोक्तं पित्तघ्नं सकषायकम् ॥
(ध० नि०)

कमलकेसर—प्यास बुझानेवाली, शीतल, रूक्ष, कषैली, पित्तनाशक और रक्तपित्त तथा क्षय को दूर करनेवाली है ।

किञ्जल्कं मधुरं रूक्षं कटु चास्य व्रणापहम् ।
शिशिरं रुच्यपित्तघ्नं तृष्णादाह निवारणम् ॥
(रा० नि० १० व०)

कमलकेसर—मधुर, रूखी, चरपरी, मुखरोग तथा व्रणरोग नाशक है और शीतल, रुचिकारक,

पित्तनाशक, तृषा और दाह (और विष) मिटाने वाली है।

किञ्जल्कः शीतलो वृष्यः कषायो ग्राहकोऽपि सः।
कफपित्ततृषादाह रक्तार्शो विष शोथजित्॥
(भा पू० खं०, पु० व०)

कमलकेसर—शीतल, वीर्य वर्द्धक, कषेली और ग्राही है तथा कफ, पित्त, तृषा, दाह, रक्तार्श (खूनी बवासीर), विष और सूजन को दूर करती है।

कमलकेसरः शीतलो ग्राही मधुरः कटुः।
रुक्षः गर्भस्थैर्य्यकरः रुच्यश्च॥
(वै० निघ०)

कमलकेसर—शीतल, ग्राही, मधुर, चरपरी, रूखी, रुचिकारी और गर्भ को स्थिर करने वाली है।

मलसंग्राहि शीतलं दाहघ्नम् अर्शसः स्राव-हरञ्च। (राज०)

पद्मकेसर मलस्तम्भक, शीतल, दाह निवारक और बवासीर के खून को रोकती है।

किञ्जल्कः शीतलो ग्राही कान्तिदस्तुवरो मधुः।
कटू रूक्षो रुचिकरो गर्भस्थैर्यकरो मतः॥
व्रणं पित्तं तृषां दाहं मुखरोगं क्षयं कफम्।
विषं रक्तार्शसं शोषं ज्वरं वातं च नाशयेत्।
(नि० र०)

कमलकेसर—शीतल, ग्राही, कान्तिजनक, कषेली मधुर, चरपरी, रुचिकारी, गर्भ को स्थिर करनेवाली तथा व्रण, पित्त, तृषा, दाह, मुखरोग, क्षय, कफ, विष, रक्तार्श, शोष, ज्वर और वात का नाश करने वाली है।

पद्मकर्णिका वा कमल का छत्ता

पद्मस्य कर्णिका तिक्ता कषाया मधुरा हिमा।
मुखवैशद्य कृल्लघ्वी तृष्णाऽस्र कफपित्तनुत्॥
(भा० पू० खं०, पु० व०)

कमल का छत्ता(कर्णिका)—कड़वा, कसेला मधुर, शीतल तथा हलका है और मुख की विरसता, प्यास, रक्तविकार, कफ और पित्त का नाश करता है।

बीजकोशस्तु मधुरः तुवरः शीतलो लघुः।
तिक्तो मुखस्वच्छकारी रक्तदोष तृषाहरः॥
(वै० निघ०)

कमल का छत्ता (बीजकोश)—मधुर, कसेला शीतल, हलका, कड़वा तथा मुख को स्वच्छ करने वाला है और रक्त विकार एवं प्यास का निवारण करता है।

पद्मबीज वा कमलगट्टा

स्वादु तिक्तं पद्मबीजं गर्भस्थापनमुत्तमम्।
रक्तपित्तप्रशमनं किंचिन्मारुतकृद्भवेत्॥
(ध० नि०)

कमलगट्टा—स्वादु, तिक्त, गर्भस्थापक, रक्तपित्त को शांत करनेवाला और किंचित् वातकारक है।

पद्मबीजं कटुः स्वादुः पित्तच्छर्दिहरं परम्।
दाहास्रदोषशमनं पाचनं रुचिकारकम्॥
(रा० नि० १० व०)

कमलगट्टा—चरपरा, स्वादु तथा पित्तज वमन को दूर करनेवाला, पाचक, रुचिकारक और दाह एवं रुधिर विकार नाशक है।

स्वादू रुच्यः पाचनः कटुकः स्मृतः। शीतलस्तुवरस्तिक्तो गुरुर्विष्टम्भ कारकः। गर्भस्थितकरो रुक्षो वृष्यो वातकरो मतः। कफकृल्लेखनो ग्राही बल्यः पित्त विनाशनः (कः)। रक्तरुग्वमिदाहास्रापत्यनाशकरोमतः। वै० निघ० छर्दि-चि० वमनामृत योग, नि० र०।

कमलगट्टा—स्वादिष्ट, रुचिकारक, पाचक, चरपरा, शीतल, कषेला, कड़वा, भारी, विष्टंभकारक, गर्भस्थापक, रूक्ष, वृष्य, वातकारक, कफजनक, लेखन, ग्राही; बल्य, तथा पित्त, रक्तविकार, वमन, दाह, रक्त और गर्भ (वा रक्तपित्त)—इनको नष्ट करनेवाला है।

पद्मबीजं हिमं स्वादु कषायं तक्तकं गुरुः।
विष्टम्भि वृष्यं रुक्षञ्च गर्भसंस्थापकं परम्॥
कफवातकरं बल्यं ग्राहि पित्तास्रदाहनुत्॥
(भा०)

कमलगट्टा—शीतल, स्वादु, कषेला, कड़वा, भारी, विष्टंभकारक, वृष्य, रूक्ष, परम गर्भ संस्था-

पक, कफवातजनक. (पाठांतर से कफवातहर) वल्य, ग्राही तथा रक्तपित्त और दाहनाशक है।

नोट—यद्यपि मखाने का लावा कमलगट्टे के भूनने से भी बन सकता है, तथापि बिहारादि पूर्व देशों में प्रायः यह मखाना के बीजों को भूनकर ही बनाया जाता है, जो कमलगट्टे से सर्वथा भिन्न पदार्थ है। विशेष विवरण हेतु देखो "मखाना"।

मृणाल वा कमल की डंडी

अविदाहि विसं प्रोक्तं रक्तपित्त प्रसादनम्।
विष्टम्भि मधुरं रूक्षं दुर्जरं वातकोपनम्॥

(ध० नि०)

कमलनाल—अविदाही, रक्तपित्त प्रसादक, विष्टंभकारक, मधुर, रूक्ष, दुर्जर (कठिनता से पचनेवाली) और वातप्रकोपक है।

मृणालं शिशिरं तिक्तं कषायं पित्तदाहजित्।
मूत्रकृच्छ्रविकारघ्नं रक्तवान्तिहरं परम्॥

(रा० नि०)

कमल की नाल—शीतल, कड़वी, कषेली तथा पित्त, दाह मूत्रकृच्छ्र, रुधिर विकार और वमन को दूर करनेवाली है।

मृणालं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रजिद्गुरु।
दुर्जरं स्वादुपाकञ्च स्तन्यानिल कफप्रदम्॥
संग्राहि मधुरं रूक्षं शालूकमपि तद्गुणम्।

(भा० पू० खं०, ५ पु० वं०)

मृणाल (कमल की डंडी)—शीतल, वृष्य, पित्तनिवारक, दाहहारक, रक्तदोषनाशक, भारी, दुर्जर, पचने में स्वादिष्ट, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाली, वातकारक, कफजनक, संग्राही, मधुर और रूखी है। शालूक वा पद्मकन्द के गुण भी इसी के समान जानने चाहिये।

पद्मकन्दः कषायः स्यात्स्वादे तिक्तोविपाकतः।
शीतवीर्योऽस्रपित्तोत्थ रोगभङ्गाय कल्पते॥

(ध० नि०)

पद्मकन्द—स्वाद में कसेला, विपाक में कड़वा और शीतवीर्य है तथा रक्तपित्त जन्य रोगों के निवारण के लिये इसकी कल्पना होती है।

शालूकं कटुविष्टम्भि रूक्षं रुच्यं कफापहम्।
कषायं कासपित्तघ्नं तृष्णा दाह निवारणम्॥

(रा० नि० व० १०)

शालूक (कमलकन्द, भसीडा)—चरपरा विष्टम्भी, रूक्ष, रुचिकारक, कफनाशक, कसेला, खाँसी तथा पित्तनाशक और तृष्णा (प्यास) एवं दाह का निवारण करता है।

शालूकः कटुकश्चोक्तः तुवरो मधुरो गुरुः।
मलस्तम्भकरो रुच्यो(रूक्षो)नेत्र्यो वृष्यश्चशीतलः
दुर्जरो ग्राहको रक्तपित्तं दाहं तृषां कफम्॥
पित्तवातञ्च गुल्मञ्च पित्तं कासं कृमींस्तथा।
मुखरोगं रक्तदोषं नाशयेदिति च स्मृतः॥

(वै० निघ०, नि० र०)

शालूक (कमलकन्द मुरार)—चरपरा, कषेला, मधुर, भारी, मलस्तम्भकारक, रुचिकारक (वा रूक्ष), नेत्र को हितकारी, शीतल, वृष्य, दुर्जर, ग्राही (मलरोधक) तथा रक्तपित्त, दाह, प्यास, कफ, पित्त और वात, गुल्म, पित्त, कास, कृमि, मुखरोग और रक्तविकार इनको नष्ट करता है।

शालूकं शीतलं वृष्यं पित्तदाहास्रनुद् गुरुः।
दुर्जरं स्वादुपाकञ्च स्तन्यानिल कफप्रदम्॥
संग्राहि मधुरं रूक्षं भिस्साण्डमपि तद्गुणम्।

(भा० पू० १ भ, शाक-व०)

शालूक (कमलकन्द)—शीतल, वृष्य भारी, दुर्जर, स्वादुपाकी तथा पित्त, दाह एवं रक्तविकार नाशक, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, वातकारक, कफजनक, संग्राही, मधुर और रूक्ष है। भिस्साण्ड के भी ये ही गुण हैं।

पद्ममधु वा मकरंद

अरविन्दाहृतः शीतो मकरन्दोऽतिबृंहणः।
त्रिदोष शमनः सर्व्वनेत्रामय निसूदनः॥

(आ० सं०)

कमल का मधु—शीतल, अत्यन्त बृंहण (पुष्टिकारक) त्रिदोषनाशक और सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को दूर करनेवाला है।

अलग अलग कमल के गुण

सफ़ेद कमल—

पुण्डरीकं हिमं तिक्तं मधुरं पित्तनाशनम् ।
दाहघ्नमस्रशोषघ्नं पिपासा भ्रमनाशनम् ॥
(ध० नि०)

सफेद कमल—शीतल, कड़ुआ, मधुर, पित्तनाशक, दाह निवारक, रक्त विकार नाशक, शोषहारक और प्यास तथा भ्रमको दूर करनेवाला है ।

दाहास्रश्रमदोषघ्न पिपासा दोषनाशनम् ॥
(रा० नि० १० व०)

राजनिघण्टु में श्रम निवारक यह अधिक लिखा है ।

श्वेतं तु कमलं शीतं स्वादु तिक्तं कषायकम् ।
मधुरं वर्णकृन्नेत्र्यं रक्तदोष तृषाहरम् ॥
कफं पित्तं श्रमं दाहं तृष्णाशोथं व्रण ज्वरम् ।
सर्वविस्फोटकं चैव नाशयेदिति कीर्तितम् ॥

सफ़ेद कमल—शीतल, स्वादु; तिक्त, कसेला, मधुर, वर्णकारक, नेत्रों को हितकारी, रक्तविकार नाशक, और प्यास को बुझानेवाला है तथा यह कफ, पित्त, श्रम, दाह, प्यास, सूजन, व्रण, ज्वर, सभी प्रकार के फोड़े-फुन्सी को नाश करता है ।

धवलं कमलं शीतं मधुरं कफपित्तजित् ।
तस्मादल्पगुणं किञ्चिदन्यद्रक्तोत्पलादिकम् ॥
(भा० पू० १ म० पु० व०)

सफेद कमल—शीतल, मधुर, कफनाशक और पित्तनाशक है तथा लाल कमल आदि गुणों में इससे किंचित् न्यून हैं ।

पुण्डरीकं स्वादु शीतं तिक्तं रक्तरुजापहम् ।
कफं दाहं श्रमं पित्तं नाशयेत्..... ।
(द्रव्य गु०)

सफेद कमल—स्वादु, शीतल, कड़ुआ, रक्तविकार नाशक है और कफ, दाह, श्रम तथा पित्त इनका नाश करता है ।

लाल कमल—

पाके रक्तोत्पलं शीतं तिक्तं च मधुरं रसे ।
भिनत्ति पित्त संतापौ ध्वंसयत्यस्रजांरुजम् ॥
(ध० नि०)

लाल कमल—पाक में शीतल, तिक्त और मधुररसविशिष्ट, पित्त और संताप को दूर करने वाला और रुधिर विकार को नष्ट करनेवाला है ।

कोकनदं कटुतिक्तंमधुरं शिशिरं च रक्तदोषहरम्।
पित्त कफवात शमनं संतर्पणकारणम् वृष्यम् ॥
(रा० नि० १० व०)

लाल कमल—चरपरा, कड़वा, मधुर, शीतल रुधिरविकारनाशक; वात, पित्त, कफ अर्थात् दोषत्रय को शमन करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और तृप्तिजनक है ।

कोकनदमुक्तं मधुरं शीतं वर्ण्यं कटुतिक्तकं ।
वृष्यं तृप्तेःकरणं विस्फोटकरक्तदोषदाहहरं ।
तृट् कर्फापत्तविसर्प विष सन्ताप वातनाशकरम्
(वै० निघ०)

लाल कमल—मधुर, शीतल, शरीर के रंग निखारनेवाला, कटु, तिक्त, वीर्यवर्द्धक, तृप्तिकारक और विस्फोटक (फोड़े-फुन्सी), रुधिर दोष तथा दाह को दूर करनेवाला एवं तृष्णा, कफ, पित्त, विसर्प, विष, संताप और वायु का नाश करनेवाला है । (सुवर्णकमल=कोकनद)

पद्मं कषाय-मधुरं शीतपित्त-कफास्रजित् ।
(राज० ५ व०)

लाल कमल का फूल—कषेला और मधुर है तथा कफ, शीतपित्त (जुड़पित्ती) और रुधिर विकार को दूर करनेवाला है ।

नीला कमल—

नीलाब्जं शीतलं स्वादुः सुगन्धि पित्तनाशनम् ।
रुच्यं रसायने श्रेष्ठं देहदार्ढ्यं च कैश्यदम् ॥
(ध० नि०, रा० नि०)

नीला कमल—शीतल, स्वादु, सुगन्धि, पित्तनाशक, रुचिकारक, रसायन में श्रेष्ठ, देह को स्थिर करनेवाला और केशों के लिये हितकारी है ।

क्षुद्र उत्पलत्रय—

उत्पलस्य त्रयं स्वादुः कषाय पित्तजिद्भिमम् ।
(ध० नि०)

तीनों प्रकार के क्षुद्रोत्पल मधुर, कसेला, शीतल और पित्तनाशक होते हैं ।

उत्पलादित्रयं दाह रक्तपित्त प्रसादनः ।
पिपासादाह हृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छा हरो गणः ॥
(रा० नि०)

उत्पलादि का यह गण दाह, रक्त और पित्त इनका प्रसादक तथा प्यास, दाह, हृदय के रोग, वमन, मूर्च्छा–इनको नाश करनेवाला है।

कमल के वैद्यकीय व्यवहार

चरक–(१) रक्तपित्त में उत्पलादि किञ्जल्क—उत्पल, कुमुद और पद्म-केसर धारक और रक्तपित्त प्रशमक द्रव्यों में श्रेष्ठ है। यथा—

"उत्पलकुमुदपद्म किञ्जल्कं संग्राहक रक्तपित्त प्रशमनानाम्"। (सू० २५ अ०)

(२) रक्तपित्त में मृणाल—कमल की मोटी जड़ का स्वरस, कल्क, क्वाथ एवं शीतकषाय रक्त पित्त में हितकारी है। यथा—

"दुरालभापर्पटका मृणालम् एतेसमस्ता गणशः पृथग्वा। रक्तं स पित्तं शमयन्ति योगाः"।

(चि० ४ अ०)

(३) मूत्रकृच्छ्र में कमल—कमल और उत्पल का काढ़ा मूत्रकृच्छ्र रोगी को पीना चाहिये। यथा—

"पिबेत् कषायं कमलोत्पलानाम्"।

(चि० २६ अ०)

वाग्भट—रक्तार्श में पद्मकेसर–कमल केसर को चूर्ण करके चीनी और नवनीत के साथ सेवन करने से अर्शजात रक्तस्राव निवृत्त होता है। यथा—

"शर्कराम्भोज किञ्जल्क सहितं वा तिलैः सह। अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति॥

(चि० ८ अ०)

चक्रदत्त—गुदनिर्गम वा काँच निकलने पर कमलपत्र—कमल के कोमल पत्तों को चीनी के साथ सेवन करने से गुदनिर्गम (काँचनिकलने का रोग) निश्चित रूप से प्रशमित होता है। यथा—

"कोमलं पाद्मिनीपत्रं यः खातेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः"॥

(क्षुद्ररोग–चि०)

भावप्रकाश—(१) ज्वरातिसार में पद्मकेसर-उत्पल, अनार का छिलका (दाड़िमत्वक्) एवं पद्मकेसर–इनका चूर्ण बराबर बराबर मिलाकर चावल के धोवन के साथ सेवन करने से अतिसार नष्ट होता है। यथा—

"उत्पलं दाड़िमत्वक् च पद्मकिञ्जल्कमेव च। पीतं तण्डुलतोयेन ज्वरातिसार नाशनम्"॥

(म० खं० अतिसार–चि०)

(२) शूकर दंष्ट्राक्षत ज्वर पर पद्ममूल—शूकर दंष्ट्राघात जन्य ज्वर होने पर कमल की जड़ को पीसकर गोघृत के साथ सेवन करें। यथा–

"राजीव मूलकल्कः पीतोगव्येन सर्पिषाप्रातः। शमयति शूकर दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम्"॥

(म० खं० ४ भा०)

हारीत—मुख प्रवृत्त रुधिर में पद्मकेसर—मुख द्वारा रक्तस्राव होने पर पद्मकेसर को चीनी के साथ सेवन करना चाहिये। यथा—

पद्मकिञ्जल्क चूर्णंम्वा लिह्याद्वा सितया पुनः। मुखप्रवृत्तरुधिरं रुणद्ध्याशु.....".

(चि० ११ अ०)

(२) प्रस्राव रोध में पद्मकन्द—तिलतैलमें भूने हुए पद्मकन्द को गोमूत्र में पीसकर पीने से मूत्ररोध निवृत्त होता है। यथा—

"तैलेन पाद्मिनीकन्दं पक्वं गोमूत्रमिश्रितम्। पिबेन्मूत्रानिरोधे तु सतीव्र वेदनान्विते"॥

(चि० ३० अ०)

बसवराजीय—

अपस्मार में कमलकन्द—श्वेत कमल की जड़, श्वेतमदार की जड़ दोनों को कूटकर अदरख के रस में घृत मिलाकर पकाएँ। पुनः इसका नस्य लेने से मृगी रोग का नाश होता है। यथा—

श्वेतार्क मूलं श्वेतकमलमूलं च घृतेन सह संकुट्यसार्द्रक स्वरसेन विपाच्य नस्यं देयम्।

(बस० रा०)

वक्तव्य

चरक ने आसव योनि पुष्पों के मध्य पद्मादि का उल्लेख किया है। पद्मबीज गर्भस्थापक है। अस्तु, चलितगर्भा नारी को इसका सेवन करना चाहिये।

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—(फूल) सर्द और तर, (केसर और मृणाल वा डंडी) शीतल और रूक्ष, (कच्चे

कँवल गट्टे की गिरी) सर्द और तर तथा (पके-कँवलगट्टे की गिरी) शीतल और रुक्ष, सींग के भीतर की हरी पत्ती वा जीभी शीतल और तर होती है। देगो (कमल भेद) समशीतोष्ण वा मातदिल होती है।

हानिकर्त्ता—गुरू एवं दीर्घपाकी।

दूषघ्न—शर्करा और शुद्ध मधु।

प्रतिनिधि—शर्बत आलू या आमले का मुरब्बा या आँवले का बीज।

प्रधान कर्म—तृषाघ्न, रक्त और पित्त की उल्वणताको प्रशमक। मात्रा–३–४ माशे तक या अधिक।

गुण कर्म प्रयोग—कमल का फूल पैत्तिक ज्वरों, कामला और उग्र पिपासा को लाभकारी है। इसका अर्क गुणमें अर्क नीलोफर के समान होता है। इसका केसर पित्त की उल्वणता को मिटाता है। यह पेट में क़ब्ज पैदा करता और बवासीर का खून रोकता है। गरमी के सिर दर्द में कंवल की डंडी का लेप उपकारी होता है। यह दीर्घपाकी और बल्य है। कमल केसर को मधु के साथ चटाने से गरमी मिटती है इसके बड़े बड़े पत्तों को बिछाकर उस पर रोगीको सुलाने से ज्वर के कारण बढ़ी हुई गरमी और त्वग्दाह एवं जलन मिटती है। इसके पत्तों का गाढ़ा दूधिया रस पिलाने से दस्त बंद होते हैं। कमल केसर, मुलतानी मिट्टी और मिश्री–इनको पनी के साथ पँकाने से स्त्रियों का अतिरज रोग दूर होता है। मक्खन और मिश्री के साथ कमल केसर चटाने से रक्तार्श मिटता है। कमल की छोटी पत्तियाँ काबिज़ हैं। कँवल के फूलों का शर्बत पिलाने से चेचक कम निकलती है। उन ज्वरों में जिनमें फोड़े-फुन्सी अधिक निकलते हैं, कमल का शर्बत पिलाने से बहुत उपकार होता है। अंशुघात जनित वा लू के ज्वर में इससे बहुत उपकार होता है। बंगदेशवासी नेत्ररोगों में रक्त कमल का अत्यधिक व्यवहार करते हैं। इसके नारी-तंतु—मादा केसर का कालीमिर्च के साथ पीसकर पिलाने और लगाने से साँप का ज़हर उतरता है। रगों और पुट्ठों की निर्बलता अपहरणार्थ कमल का सेवन करना चाहिये। कमल की डंडी और नागकेसर को पीसकर दूध के साथ पिलाने से दूसरे महीने में गर्भस्राव होने से रुक जाता है। इसके पत्तों को शर्करा के साथ पिलाने से गुदभ्रंश रोग आराम हो जाता है। पानी में इसको डालकर वह पानी पिलाने से गरमी मिटती है। सफ़ेद कमल का सर्वांग लेप करने से दाह और गरमी शांत होती है। कँवल और बड़ के पत्तों को जलाकर और तेल में मिलाकर लगाने से फैलनेवाले फोड़े (विसर्प) आराम होते हैं। देगो (कमल भेद) का स्वाद तीक्ष्ण होता है। उदरशूल, अतिसार और छर्दि निग्रहण के लिये यह परीक्षित है। इससे दिल तथा जान को प्रफुल्लता प्राप्त होती है।

पद्मबीज वा कँवलगट्टा

यह पित्त की उल्वणता को शांत करता और रक्तदोष एवं अंगदाह को लाभ पहुँचाता है। यह वायुकारक, कफजनक, गुरु, दीर्घपाकी और संग्राही है तथा चेहरे का रंग निखारता, कुष्ठ को लाभ पहुँचाता, शरीरगत आवलों (विस्फोटादि) को मिटाता तथा गरमी के दिनों में शिशुओं को जो तृषा का रोग हो जाता है, उसे यह बहुत उपकार करता है। कँवलगट्टे को पानी में भिगोकर वह पानी पिलाते हैं। कँवलगट्टे की गिरी के भीतर की हरी पत्ती वा ज़बान को घिसकर शिशुओं को देने से आतपाघात वा लू का असर जाता रहता है तथा अतिसार एवं पिपासा शांत होती है। कमलगट्टा वीर्य सांद्र कर्त्ता है और मुखपाक को लाभकारी है। कँवलगट्टे को आग में सेंक कर छिलका उतार लेवें और गिरी के भीतर की हरी पत्ती को दूर कर देवें। उस सफ़ेद मींगी को पीसकर शहद में चटाने से वमन बंद होता है। इसको पानी में पीस छानकर शिशुओं को पिलाने से उन्हें पेशाब खूब आता है। २॥ माशे कमलगट्टे की गिरी के चूर्ण में खाँड़ मिलाकर पानी के साथ फाँकने से चित्त प्रफुल्लित रहता है। इसको क्वथित कर पिलाने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। इसके काढ़े में शर्करा मिलाकर पिलाने से खूब स्वेद आता है। अंशुघात जनित ज्वर में इससे असीम उपकार होता है। इसके बीजों को पीसकर शहद मिलाकर दूध के साथ एक मास पर्यन्त सेवन करने से स्त्रियों के स्तन कठोर हो जाते हैं। कँवलगट्टों को

पानी में भिगोकर वह पानी पिलाने से शिशुओं की पित्तज तृषा शांत होती है।—ख़० अ०।

नव्य मत

आर० एन० खोरी—पद्मबीज स्निग्ध और पुष्टिकर है। पुष्पकेसर और पुष्पदल शीतल, कषाय तिक्त एवं कफनिःसारक है। अर्श जात रक्तस्राव, रक्तप्रदर और अन्त्र द्वारा सरक्त प्रचुर द्रव मल-निर्गम प्रतीकारार्थ और कास रोग में इसके पुष्प का शर्बत व्यवहृत होता है। शिरः पीड़ा, विसर्प एवं त्वग्गत अन्यान्य प्रदाह की निवृत्ति के लिये कमल के फूल एवं कोमल पत्र, चंदन और आँवला इनको पीसकर प्रलेप करते हैं। तीव्र ज्वरार्त्त रोगी के शयनार्थ कमल-पत्र की बनी शय्या प्रशस्त होती है। मखान्नवत् पद्मबीज भी खाद्य रूप से व्यवहृत होता है। पद्ममूल अर्थात् शालूकजात श्वेतसार से अरारूट तुल्य एक प्रकार का खाद्य प्रस्तुत होता है। पद्मबीज अर्थात् कँवल ककड़ी का चूर्ण "भेसबोला" नाम से प्रसिद्ध है। भारतवर्षीय रमणीगण, प्रदर रोग में स्निग्धता-संपादक रूप से उक्त दोनों वस्तुओं का जो यहां शंघाई से बहुल परिमाण में आती है, प्रचुर व्यवहार करती हैं। (मेटीरिया मेडिका आफ़ इंडिया, २ खं०, पृ० ३६)

डीमक—पद्मबीज—कमलककड़ी और मखाना खाद्य-द्रव्य रूप से काम में आते हैं। दुर्भिक्ष के समय कमल की जड़ और बिशि (Scapes) भी काम में आती हैं, पर ये कड़ुई कुस्वादु होती हैं। (फा० इं० १ भ० पृ० ७२)

नादकर्णी—पद्मबीज स्निग्ध और पुष्टिकर होता है। पद्मकेसर (Filament) और पुष्प शीतल, अवसादक (Sedative), कषाय (Astringent), तिक्त, ह्लादक (Refrigerant) और कफ निःसारक है। जड़ स्निग्धता संपादक है। पुष्प, केसर और पुष्प-दंड वा मृणाल स्वरस अतिसार, विसूचिका, यकृद्विकार और ज्वर में भी उपयोगी होते हैं। यह हृद्य भी है। पित्तज ज्वरों में इसका मिश्र क्वाथ भी उपकारी होता है। पद्मपुष्पाहृत मधु को पद्ममधु वा मकरंद कहते हैं। यह नेत्ररोगों में परमोपयोगी सिद्ध होता है। कफ (Coughs), निर्हरणार्थ व रक्तार्श रक्तप्रदर और प्रवाहिका गत रक्तवृत्ति को रोकने के लिए इसके फूलोंका शर्बत व्यवहार किया जाता है। सिर और आँखों को शीतलता प्रदान करने के लिये श्वेतकमलकंद को तिल तैल (Gingelly oil) में उबालकर उससे शिरोऽभ्यंग करते हैं। कंद के टुकड़ों की जगह, इसका निकाला हुआ स्वरस भी काम में आता है। जड़ पिच्छिल वा लुआबी होती है और अर्श में दी जाती है। कुष्ठ एवं अन्यान्य त्वग् रोगों में इसके बीजों का प्रलेप करते हैं। कामेच्छा को कम करने के लिये इसके तथा मखाना के बीज खाद्य वस्तु की तरह व्यवहार किये जाते हैं। कालीमिर्च के साथ इसके स्त्री-केसर (Pistil) बाह्य और सर्प विषघ्न रूप से अन्तः प्रयोग होता है। रक्तार्श में शहद और ताजे मक्खन वा शर्करा के साथ कमलतंतु व्यवहार्य है। (भा०)। अतीव दाह युक्त तीव्र ज्वर में इसकी पत्ती अधिक बिछावन की चादर की तरह काम में आती है। इस हेतु सफेद कमल के साथ पिसी हुई इसकी पत्ती के कल्क का स्थानिक प्रयोगभी होता है, शिरःशूल (Cephalalgia) में शीतल प्रलेप रूप से इसकी पत्ती की डाँडी को पीसकर सिर में लगाते हैं। चंदन और आँवले के साथ पिसा हुआ कमल का फूल शिरःशूल (Cephalalgia) में सिर तथा त्वचामें लगाने के लिये तथा विसर्प (Erysipelas) एवं अन्यान्य बाह्य शोथों में शीतल प्रलेप का काम भी देता है।—इं० मे० मे० पृ० ५६०-१।

कर्नल, वी० डी० वसु—हृद्दि में इसके बीज काम में आते हैं और मूत्रल एवं शैत्यजनक (Refrigerant) रूप से ये शिशुओं को सेवन कराये जाते हैं। पत्र एवं फूल के डंठल का दूधिया पिच्छिल स्वरस अतिसार में प्रयोजित होता है। पँखड़ी किंचित् कषेली एवं संग्राही बतलाई जाती है। मसूरिका व शीतला (Small-pox) में इसके पौधे का शर्बत शीतलतादायक रूप से व्यवहार किया जाता है और कहते हैं कि इसके प्रयोग से निकलते हुये मसूरिका के दाने रुक जाते हैं। सभी प्रकार के विस्फोटकीय ज्वरों में

भी इसका उपयोग होता है। दद्रु एवं अन्यान्य त्वग् रोगों में इसका कल्क व्यवहृत होता है। —इं० मे० प्लां०।

आर० एन० चोपड़ा एम० ए०, एम० डी०—

मूत्रकारक एवं शैत्यकारक (Refrigerant) रूप से ज्वर में कमल की जड़, डंठल, फूल और पत्ती का शीतकषाय (Infusion) सेव्य है।—इं० ड्रू० इं० पृष्ठ ५८७।

कमल का फूल शीतल, कषाय (Astringent) पित्त निर्हरण (Cholagogue) और मूत्रकारक है तथा सर्प एवं वृश्चिक-दंश मे सेव्य है।

अन्य प्रयोग

मुलेठी, लाल चन्दन, खस, सारिवा और कमल के पत्ते—इनका काढ़ा बनाकर, उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पीने से गर्भिणी स्त्रियों का ज्वर जाता रहता है।

कसेरू, कमल और सिंघाड़े—इनको पानी के साथ पीसकर लुगदी बनालो और दूध औटाकर दूध को छान लो। इस दूध के पीने से गर्भवती सुखी होजाती है।

सिंघाड़ा, कमलकेशर, दाख, कसेरू, मुलहटी और मिश्री—इनको गाय के दूध में पीसकर पीने से गर्भस्राव बंद हो जाता है।

कमल-पत्र स्वरस सेर में १ पाव हरीतकी भिगोकर शुष्क करलें। पुनः चूर्ण कर रखलें।

मात्रा—१-६ मा०। इसके उपयोग से पुरातन विषम ज्वर का नाश होता है।

कमल पुष्प का स्वरस ४ सेर उत्तम शर्करा १ सेर दोनोंको परस्पर मिलाकर चाशनी करके शर्बत तैयार करें।

मात्रा—१—३ तो०। इसके उपयोग से गर्भ स्राव, रक्त प्रदर, गदोद्वेग और रक्त पित्त का नाश होता है।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) [स्त्री० कमली] एक प्रकार का मृग। मे० लत्रिक। (२) सारस। अम०। (३) ताँवा। ताम्र। (४) कमल के आकार का एक मांस-पिंड। क्लोमा। (५) औषध। भेषज। मे० लत्रिक। (६) पदम काठ। पद्मकाष्ठ। (७) केसर। कुंकुम। (८) मूत्राशय। मसाना। मुतवर। (९) जल। पानी। रा० नि० व० १४। (१०) आँख का कोया। डेला। (११) गर्भाशय का मुख वा अग्र भाग जो योनि के भीतर कमलाकार गाँठ की तरह अंगूठे के अगले भाग के बराबर होता है। जिसके ऊपर एक छेद होता है। फूल। धरन। टणा। (१२) पित्त का एक रोग जिसमें आँखें पीली पड़ जाती हैं और पेशाब भी पीला पड़ जाता है। कमला। काँवर। पीलू।

[पं०] कमीला। (२) लालपताकी। कमला।

[मह०, कना०, कों०] कमल (१)।

क़मूल-[अ०] जूँ०।

कमलअंडा-संज्ञा पुं० [सं० कमल+हिं० अण्डा] कँवलगट्टा।

कमलक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल। कँवल।

कमलकन्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमल की जड़। भिस्सा। भसीड़। मुरार। शालूक। वै० निघ०। दे० "कमल (१)"।

क़मल क़रीश-[अ०] छोटे सनोवर के बीज।

कमलक (का) कड़ी-[म०] कमलगट्टा। पद्मबीज।

कमलकर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कमल का छत्ता। क़मल बीज कोष। वै० निघ०। दे० "कमल (१)"।

कमलकीट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का कीड़ा।

कमलकेसर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कमल का जीरा वा तुरी। पद्म किञ्जल्क। वै० निघ०। दे० "कमल (१)"।

कमलकोरक-, कमलकोष- } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमल की कली। पद्म कलिका।

कमलखण्ड-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पद्मसमूह। कमलों का झुण्ड।

कमलगट्टा-संज्ञा पुं० [सं० कमल+हिं० गट्टा]। कमल का बीज। पद्मबीज। कमलाक्ष।

कमल गर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] कमल का छत्ता।

कमलगुरी-[बं०] कबीला। कमीला।

कमलच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कङ्क पक्षी। कांक। बूटीमार। बगला। (२) कमल का पत्ता। पद्म दल।

कमलजीरा–संज्ञा पुं० [सं० कमल+हिं० जीरा]। कमल का जीरा। कमलकेसर।

क़मलतुज़्ज़रअ़–[अ०] टिड्डी की तरह एक पक्षी।

कमलतंतु–संज्ञा [सं०] कमल की डाँड़ी। मृणाल।

कमलनाल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमल की डांड़ी जिसके ऊपर फूल रहता है। मृणाल। वै० निघ०।

कमलनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कुई। नीलोफर। कुमुदनी।

कमलफूल–[मरा०, बम्ब०] नीलोफर।

[पं०] कडु। कुटकी। (Gentiana Kurroo.)

कमलबन्धु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरज। सूर्य।

कमलबाई–संज्ञा स्त्री० } [हिं० कमल+बाई] एक
कमलवाय–संज्ञा पुं० } रोग जिसमें शरीर, विशेषकर आँख पीली पड़ जाती है।

कमलमूल–संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसोड़। मुरार

कमलबीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कमलगट्टा। भा०।

कमलषण्ड–सं० पुं० [सं० पुं०] पद्मसमूह।

कमला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० (१) वर स्त्री। सुंदर स्त्री। मे लत्रिक। (२) एक प्रकार की बड़ी, मीठी नारंगी। संतरा। संगतरा, सरबतीलेबु (बं०)। तन्त्रसार के अनुसार एक प्रकार कानीबू। वस्तुतः यह एक प्रकार की बड़ी नारंगीहै। इसका वृक्ष देखनेमें सर्वतः नारङ्गी के पेड़की तरह मालूम होता है। भेद केवल यह है कि नारंगी के पेड़ से इसका पेड़ किंचित् छोटा होता है। इसके फूल अल्प सुगंधी होते हैं। पत्र कोमल और कम हरे होते हैं। कच्चा फल हरा और खट्टा होता है। पकने पर यह नारंगी की तरह और खटमिट्ठा हो जाता है। कोई-कोई अधिक मीठे, पुष्टि, सुगंधिपूर्ण एवं सुस्वादु होते हैं। किसी-किसी का छिलका पतला एवं चिकना और किसी का मोटा किन्तु नारंगी के छिलके की तरह कड़ा नहीं होता है। नारंगी के छिलके से इसमें कड़वाहट भी कम होती है। और सुगंध आती है मोटे छिलकेवाले से पतला छिलकावाला उत्तम होता है। सिलहट का कमला अच्छा होता है। इतना मीठा और कहीं का नहीं होता। वहीं इसके जंगल खड़े हैं। वि० दे० "संतरा" वा "नारंगी"।

पर्य्या०—कौला, कौंला, कँवला, कमला –हिं कमला लेबू, सरबती लेबू –बं०। कमला, नारङ्ग, नागरङ्ग, सुरङ्ग, त्वग्गन्ध, त्वक् सुगंध, गन्धाढ्य गन्धपत्र, सुखप्रिय, –सं०। सुन्तला (नैपाली) संतरा –पं०। नारङ्गी –गु०। नारिङ्गताल –बम्ब०। सकूलिम्या –मार०। नारिङ्गी–द०। किचिलि –ता०। गज्जनिम्म –ते०। कित्तबोट्टुपुये –कना०। माहुर नारङ्गा –मल०। जेरूक (महिसुरी)। नारंज –अ०। नारंग –फ़ा०। थऊवय –बर०। दोदङ्ग –सिंह०।

गुणधर्म तथा प्रयोग

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल और तर। (मतांतर से द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में शीतल और अंतिमांश में तर है)

हानिकर्त्ता—कास रोगीको और श्वासोच्छ्वास सावयव तथा कफ प्रकृति और शीतल प्रकृतिको।

दर्पघ्न—नमक और खाँड़। (शर्करा काली मिर्च और शुद्ध मधु)।

प्रतिनिधि—मधुर पुष्ट ताजी नारंगी।

मात्रा—आवश्यकतानुसार।

गुण, कर्म, प्रयोग—गुणधर्म में यह संतरे की अपेक्षा किंचित् निर्बल होता है। इसलिए कि यह अधिक खट्टा होता है। किंतु नारङ्गी से कम खट्टा होता है। यह रक्त और पित्त जनित तीव्रता का उन्मूलन करता है, प्यास बुझाता, यकृत और आमाशयगत प्रदाह का निवारण करता, हृदय को प्रफुल्लित करता, ख़फ़कान को दूर करता, और मूत्रप्रवर्त्तन करता है। इसका छिलका आमाशय को बल प्रदान करता है। इसके लेप से व्यंग वा झाँई का नाश होता है। समूचे कमला नीबू को एक जगह रखदें, जिसमें वह गलकर सूख जावे, पुनः इसे जल में पीसकर चना प्रमाण की गोलियाँ बाँधे। विसूचिका में जब अत्यन्त कै और दस्त

आते हों, तब उसमें से पाँच से दस गोली तक खिलाने से बहुत उपकार होता है। बल्कि यह ज़हरमुहरा ख़ताई (वा खानिज विषघ्न औषध) से कम नहीं होता। (ख़० अ०)

इसका छिलका तुरंज की प्रतिनिधि है। इसके फल का मुरब्बा सुगंधिपूर्ण और सुस्वादु होता है इसके बीज तिर्याक्रियत में तुरंज के समान होते हैं (बु० मु०)। इसके छिलके का उबटन चेहरेके व्यंग और झाँइ को मिटाता है। इसके बीज बहुशः विषों के प्रतिविष है और विसूचिका के लिए रामबाण है। म० मु०।

संज्ञा पुं० [सं० कंबल] (१) काले रंग का एक कीड़ा जिसके ऊपर रोएँ होते हैं। इसके मनुष्यों के शरीर में लग जाने से खुजली होती है और शरीर सूज जाता है। यह बरसात में पैदा होता है। बेर के पेड़ पर यह बहुत होता है यह उन कीड़ों में से है जो बड़ा होने पर छोटेपन की अपेक्षा घट जाते हैं। अस्तु, यह दो-तिहाई के घाटा जाता है। झाँझाँ। सूँड़ी।

प्रकृति-उष्ण तथा रुक्ष।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह विषाक्त जंतु है। इसका दर्पघ्न एरण्ड-तैल है। इसे मलने और पिलाने से विष नष्ट होता है। तज़किरतुल् हिंद के संकलनकर्त्ता लिखते हैं कि मैंने उक्त कीड़े पर अनेक चीज़ें डालीं परंतु वह इनमें से किसी से नहीं मरा। परंतु जब उस पर रेंडी का तेल डाला तब उससे क्षण भर में यमपुर सिधारा। उस दिन से मैंने यह समझ लिया कि यही उसका दर्पदलन है। जिसको मैंने उक्त तैल का व्यवहार कराया, उसे लाभ हुआ।—ख़० अ०। (२) सफ़ेद रंग का एक लंबा कीड़ा जो अनाज वा सड़े फल आदि में पड़ जाता है। ला। ढोलट।

संज्ञा पुं० [देश०] कमीला।

कमलाई–संज्ञा पुं० [सं० कमल-कमल के समान लाल] मझोले डील डौल का एक पेड़ जो राजपूताने की पहाड़ियों और मध्य प्रान्त में होता है। जाड़े में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इसे कमूल भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिरः शूल में प्रयुक्त-उक्त नाम का लेप।

कमलागुँडि–[बं०] कमीला।

कमलाग्रजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हल्दी। हरिद्रा।

कमलादि लेप–संज्ञा पुं०-[सं० पुं०] कमल, और तुलसी की जड़ को पीसकर लेप करने से शिर की पीड़ा शान्त होती है। वृ० नि० र० शिरो रो० चि०।

कमलानश–[अ०] एक वनस्पति। ना० मु०।

कमला-नि-माला–[गु०] गिलोय के टुकड़े काटकर बनाया हुआ हार जो कमलरोग में उपयोगी ख़्याल किया जाता है।

कमलानिवास–संज्ञा पुं० [सं०] कमल का फूल। कमल।

कमलाडाई–[अं० Kamala dye] कमीला।

कमला नेबू–[बं० संतरा। कमला नीबू।

कमलारंज–[ता०] संतरा।

कमला लेबु–[बं०] संतरा। मीठा नीबू। मिष्टनिंबू।

कमलावन–[रू०] काशम।

कमला विलास रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नामका रसौषधयोग—लोहभस्म, अभ्रकभस्म, गंधक, पारद सोने की भस्म, और हीरे की भस्म समान भाग लेकर भिकुवार के रस में घोट कर गोला बनालें। फिर उस गोले के ऊपर एरण्ड का पक्का पत्ता लपेट कर डोरे से मज़बूत बाँध दें और अनाज के ढेर में दबादें। फिर ३ दिन पश्चात् निकाल कर महीन चूर्ण कर रख लें।

गुण—इसे यथोचित मात्रानुसार शहद और त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से वृद्धता और व्याधि का नाश होता है। और सुख की प्राप्ति होती है।

यह सब प्रकार के प्रमेह, पाँच प्रकार की खाँसी, पाण्डु, हिचकी, घाव, कफ, वायु, हलीमक, अग्निमान्द्य, खुजली, कोढ़, विसर्प, विद्रधि, मुख रोग और अपस्मार आदि का नाश करता है। यह वैद्यों को यश देने वाला और सुख पूर्वक तैयार होने वाला रस है। र० र० स०। २६ अ०।

कमलाक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमल का बीज। कमलगट्टा। वै० निघ० छर्दि चि० वमनामृतयोग।

कमलिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कमल। (२) छोटा कमल। पद्मिनी। कमल का पेड़। भावप्रकाश में इसे ठंडा, भारी, मधुर, नमकीन,

रूखा, रक्तपित्तनाशक, कफनाशक; वातकारक और विष्टंभी लिखा है। भा० पू० १ भ० पुष्पव०। इसकी पत्ती–शीतल, कसैली, मधुर, तीती, पाक में अत्यंत कटुक, हलकी और ग्राहक है एवं वातकारक, कफ और पित्त को नष्ट करनेवाली है। ऐसा मुनियों ने कहा है। वै० निघ०। (३) वह तालाब जिसमें बहुत कमल हों।

कमली–[नेपा०] गोलक (कुमा०)।

क़मलूल–[अ०] क़ुनाबिरी।

कमलोत्तर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बर्रे का फूल। कुसुम का फूल। कुसुम्भपुष्प। हे० च०।

कमलो–संज्ञा पुं० [सं० क्रमेल। यू० कमेल] ऊँट। साँडिया। उष्ट्र।—हिं०।

क़मस–[अ०] एक प्रकार का छोटा मच्छड़ वा मक्खी जो पानी पर खड़ी रहती है।

क़मसी–[?] टिड्डी।

क़मह–[अ०] गेहूँ।

कमहदुब्बः–[अ०] गुदी की हड्डी जो खोपड़ी की पिछली तरफ़ स्थित है। (२) गुदी की हड्डी का उभार। मन्यास्थि–अर्बुद।

External occipital eminence.

कमः–[अं०] जातज अंधत सहजांध्य। (Born blind.

क़मह:–[अ०] चिरायता।

[मिश्र०] (१) जीरा। (२) चूर्ण। बुकनी सफ़ूफ़।

कमहार– संज्ञा पुं०) [सं० कम्भारी] गम्भारी।
कमहारी–संज्ञा स्त्री०) खुमेर।

कमचा (कामाची) पुल्लु–[ता०] रूसाघास। भूतृण।

कमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शोभा। खूबसूरती। रा०।

[?] जावित्री।

कमाई–[बं०] कलिया-करा। कंटी। (उड़ि०)।

कमाखा–[बर०] नीम।

कमाखेर–[बं०] Andropogon nardus, *Linn.*) गंजिनी।

क (का) माच–[बं०] केबाँच।

कमाज़रियूस–[यू०, रू०] (Teucrium chamaedrys, *Linn.* बलूतुल् अर्ज़ (Wall Germander.)

नोट—किसी-किसी के मत से कमाज़ारियूस यूनानी माज़रियूस शब्द का मुअर्रिब है। यहाँ पर यह भी स्मरण रहे कि जिन लोगों ने इसे मुंडी माना और लिखा है। उन्होंने भूल की है। क्योंकि यह उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है, जैसा कि आगे के विवरण से स्पष्ट हो जावेगा।

विवरण—दीसकूरीदूस के अनुसार यह एक प्रकार की घास है जो बालिश्त भर ऊँची, अत्यंत कड़ुवी एवं कुछ चरपरी होती है और जिसके पत्ते की आकृति और रंग बलूत के पत्ते जैसा होता है बीज अनीसून के दानों से छोटे होते हैं। इन बीजों का स्वाद मीठा होता है। जड़ का रंग ललाई लिए होता है। पुष्प का वर्ण नीला और काला होता है। सावन मास के क़रीब पर्वती भूमि में उत्पन्न होती है। उचित यह है कि इसे परिपक्व होजाने के उपरांत उखाड़ें और इसका ध्यान रखें कि कहीं इसके पत्ते, फूल और बीज गिर न जायँ। यह तो हकीम दीसकूरीदूसोक्त वर्णन है।

इसहाक़ बिन उमरान ने इसके वर्णन में दीसकूरीदूस से विरोध प्रदर्शित किया है। इनके मत से यह एक उद्भिज है। जो रबी की फसल में उत्पन्न होती है। इसके पत्र चौड़े, हरितवर्ण के और जंगली तुमुंस के पत्तों की तरह होते हैं। पौधा इसका भूमि पर आच्छादित होता है। ऊँचा नहीं होता। बलूत के फल के बराबर इसकी जड़में एक गाँठ होती है। फूल रक्त वर्ण का होता है। इसमें तिक्त आस्वाद होता है। जड़ भी ललाई लिए और कड़वी होती है।

इब्न अबी ख़ालिद अफ़रीकी ने किताब एतमाद में यह स्पष्ट लिखा है कि कमाज़रियूस एक वनस्पति की जड़ है जो बलूत की तरह होती है। इसका स्वाद भी बलूत का सा होता है।

जाफ़ीनूस के अनुसार इसकी डालियाँ रेहान की डालियों की तरह और उनसे मोटी होती हैं और रंग हरा होता है। पत्ते बलूत के पत्तों की तरह छोटे २ होते हैं। फूल और जड़ कड़वी और रक्त वर्ण की होती है।

किसी-किसी के मत से इसकी शाखाएँ और पत्र उशक़ वृक्ष के से हैं।

क़ज़ाफियुल् मऱ्ज़न में यह बात ऐसी अस्पष्ट है कि उसको मुहीत के लेखक ने छोड़ दिया है।

उत्तम वह कमाज़रियूस है जो जंगली हो और उसमें फल और बीज शेष हों। सात वर्ष पर्यन्त इसमें शक्ति रहती है।

प्रकृति—जालीनूस तृतीत कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष बतलाते हैं। उनके मत से इसमें रूक्षता की अपेक्षा उष्णता अधिक बलशालिनी होती है, जिसका विवेचन इस प्रकार हो सकता है—कि इसमें उष्णता इसकी तृतीय कक्षा के मध्य और रूक्षता तृतीय कक्षा के प्रथम में होगी। किसी किसी ने द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष लिखा है और गरमी को खुश्की से अपेक्षाकृत अधिक बताया है। और यह विवरण दिया है कि गरमी द्वितीय कक्षा के अंत में है।

हानिकर्त्ता—वस्ति, वृक्क और आंत्र को।

दूषक्ष्न—वस्ति के लिए बिही और शेष केलिए कतीरा या सर्द-तर वस्तु।

प्रतिनिधि—सीसालियूस, कमाफ़ीतूस, ग़ाफिस की जड़, उस्कूलूक़न्दर्यून, तुख्म हुम्माज बर्री। तुख्म शलग़म बर्री और चतुर्थांश तज।

मात्रा—चूर्ण की मात्रा ६० माशे तक। काथ में २ तोले तक।

प्रधान कर्म—मूत्रल रजः प्रवर्त्तक और प्लीहा शोथ-हर है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

उक्त भेषज शरीर के आभ्यंतरिक अवयवों के अवरोधों का उद्घाटन करता है। यह विलीनकर्त्ता है और तरलता उत्पन्न करता है, शरीर में ऊष्मा की वृद्धि करता, सांद्र दोषों का छेदन करता और पुरातन कास रोगों को मिटाता है। सिरके के साथ यह यर्क़ान स्याह (कृष्ण कामला) को नष्ट करता है। सिरका और मद्य के साथ विवृद्ध प्लीहा को घटाता है। सिरके में पकाकर प्रलेप करने से भी प्लीहागत सूजन उतर जाती है। यह आर्त्तव और मूत्र का प्रवर्त्तन करता है। इसकी वटिकाएँ प्रस्तुत कर मद्य में घिसकर आँखों में आँजने से आँख का नासूर और घाव आराम होता है आँख के कोये के नासूर में इसको पीसकर भरना भी श्रेष्ठतर है। इसके काढ़े में मधु मिलाकर कुछ दिन तक पीने से वक्ष और फुफ्फुसगत वेदना एवं उनकी सर्दी मिटती है। यदि पेशी कुचलजाय, तो इसको पीस कर पीना और लगाना चाहिये। इसको पीसकर रखने और खाने से गर्भपात होजाता है। २८ तोले पानी में १४ माशे कमाज़रियूस को क्वथित करें। जब तृतीयांश शेष रहे, तब १०॥ माशे जैतून तैल सम्मिलित कर पी लें। कुछ दिन इसी प्रकार करें। इससे वृक्क एवं वस्तिगत अश्मरी टूट कर निकल जायेगी। कीट-पतंगों के काटे हुए स्थान पर इसका प्रलेप करने से बहुत लाभ होता है। इससे मदिरा भी प्रस्तुत कीजाती है। जिसकी विधि यह है—प्रति २८ तोले मदिरा में ७ माशे कमाज़रियूस डालते हैं या अंगूरों के प्रति २८ तोले स्वरस में ६ माशे कमाज़रियूस मिलाते हैं और निश्चित काल तक रखकर साफ़ करके काम में लाते हैं। यह जितनी पुरानी हो, उतनी ही श्रेष्ठ है। इसमें से २८ तोले प्रति दिन पीने से लाभ होते हैं। इससे आक्षेप, अजीर्ण, आमाशय विकार, यर्क़ान सुद्दी (Obstructive jaundice), गर्भाशयगत आध्मान और दोषों की विकृति ये विकार उपशमित होते हैं। जलोदर के प्रारम्भ में इस मद्य का लाभ स्पष्ट ज्ञात होता है। कमाज़रियूस से तैल भी प्रस्तुत करते हैं, जिसकी विधि यह है कि इसके ताज़े अंगों का रस या शुष्क अंगों का क्वाथ किसी तेल में सुखा लेते हैं या केवल ताज़े फूलों से गुलरोग़न की भाँति तैयार करते हैं। इस तेल की मालिश से अंगों की सरदी और वायु को लाभ होता है।

नोट—'बु० मु०' और 'म० मु०' आदि तिब्बी निघण्टुओं में भी इसके प्रायः उपरिलिखित गुणों का ही कुछ फेर-फार के साथ उल्लेख मिलता है।

क़मात—[अ०] (१) खुमी का एक भेद। (२) खुमी। क़ितर।

क़मात—[अ०] वह जगह जहाँ धूप न पहुँचती हो।

क़मात—[अ०] गाँती।

कमाफ़ीतूस—[यू०] (१) कुकरौंधा। जंगली वा दीवाली मूली।

कमाफ़ीतूस—संज्ञा [यू० ख़ामानीतुस यू० कामुअ०] कुकरौंदे की जाति का एक पौधा जो लगभग एक गज के ऊँचा होता है। इसकी पत्ती कलगी की तरह फूल छोटे और बीज करफ़्स की तरह होते हैं। कुकरौंदा रूमी। करफ़्स रूमी। कुमाफ़ीतूस।

नोट—बुर्हान क़ातिअ के अनुसार यह यूनानी भाषा का शब्द है और मुफ़रिदात हिंदी आदि में इसे यूनानी शब्द ख़मानीतुस का मुअर्रिब लिखा है। कमाफीतूस का धात्वर्थ सनोबरुल-अर्ज़ पृथ्वी जात सनोबर है। कोई-कोई मुफ़रिशुल अर्ज़ अर्थ करते हैं। परन्तु गीलानी प्रथमोक्त अर्थ ठीक बतलाते हैं।

वर्णन—कोई-कोई इसे 'कुकरौंधा' मानते हैं। परंतु इसराहल् तिब के अनुसार यह 'हुर्शफ़ है, जिसके गोंद को कंकरज़्द कहते हैं। साहब मिन्हाज के मत से यह तुख़्म करफ़्सरूमी है। साहब कामिल इसे तरख़ून रूमी या कासनीरूमी बतलाते हैं। गीलानी कहते हैं कि इसके कई भेद हैं।

इसकी एक जाति का वृक्ष वह है जिसमें काँड नहीं होता और न यह ऊँचा होता है। इसकी पत्ती और शाखें ज़मीन पर फैलती हैं। शाख़ें लंबाई लिए और पत्तियाँ हयुज़् आलम् सग़ीर की सी होती हैं, किंतु उनसे पतले होते हैं, उन पर रुआँ होता है और उनसे चिपकनेवाला द्रव स्रवित होता है। पत्ते मोटे होते हैं। स्वाद कड़वा और फीका एवं तीक्ष्ण होता है। इसमें सनोबर के पेड़ की सी सुगन्धि आती है। फूल महीन और पीत-रक्त होता है। पीला कम मिलता है। जड़ करफ़्स की भाँति किंतु उससे छोटी और सफेद होती है।

इसकी दूसरी जाति मादा कहलाती है। इसकी शाखें दीर्घ और एक हाथ लंबी और इज़्ख़िर की तरह होती हैं। उनमें बहुत पतली पतली डालियाँ होती हैं। पत्ते और फूल प्रथम जाति की तरह होते हैं। बीज काले होते हैं। इसमें सनोबर की सी सुगंधि आती है। इसकी तीसरी जाति को नर कहते हैं। इसकी पेड़ी और शाखें खुरदरी और सफ़ेद होती हैं। शाखें पतली और पत्ते छोटे, बारीक और सफ़ेद होते हैं, जिन पर रोंगटे होते हैं। फूल पीला और छोटा होता है और इसमें से रातीनज की सी गंध आती है। उक्त दोनों जाति के कमाफ़ीतूस गुणधर्म में परस्पर समान हैं और प्रथम जाति से अपेक्षाकृत निर्बल हैं। इसमें ताजा जंगली उत्कृष्टतर है। किसी किसी के मत से बारी तीक्ष्ण गंधी और श्रेष्ठतर है। इसी के पत्ते, फूल और बीज औषध के काम आते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय में रूक्ष है। कोई कोई तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष जानते हैं. दूसरों के मत से द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। बज़्ाअतुल् इतिब्बा में लिखा है कि यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा के अंत में रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—फुप्फुस और गरम जिगर के लिये।

दर्पघ्न—प्रथम के लिये मधु और अनीसून और द्वितिय के लिये ज़ुअ्रूर।

प्रतिनिधि—समभाग जअ्दः, अर्द्ध भाग सोसालियूस, चतुर्थांश तज। कोई कोई समभाग सोसालियूस अर्द्ध भाग तज और समभाग अक़-संतीन, जीरा स्याह और कमाज़रियूस बतलाते हैं।

मात्रा—४॥ माशे से १०॥ माशे तक। किसी किसी ने ७ माशे तक लिखा है।

गुणधर्म तथा प्रयोग।

यह अवरोधोद्घाटक और संशोधनकर्त्ता है। उष्णता उत्पन्न करने की अपेक्षा यह आभ्यंतरिक अंगों को अधिक निर्मलता प्रदान करता है। इसमें विरेचन की शक्ति है। स्तन पर प्रलेप करने से उसकी सूजन उतरती है। नमला (स्फोटक विशेष) पर लगाएँ तो वह फैलता नहीं। सद्यः जात क्षतों पर लगाने से उनको पूरित करता है। गृध्रसी रोग के लिये कल्याण जनक है। वात तंतुओं का शोधन करता है। कूल्हे के दर्द और वातरक्त (निक्रसि) के दर्द के लिये लाभदायक है। इसके लेप से भी उक्त लाभ होता है। मधुवारि (माउल् अस्ल) के साथ उरो वेदनाको भी गुणदायक है। यकृत के अवरोध का उद्घाटन कर्त्ता है। प्लीहा के रोग और वातज कामला (यर्क़ान सौदावी) को

अतीव गुणकारी है। इसे लगातार सप्ताह पर्यन्त पीना चाहिये। यह गर्भाशयावरोध का उद्घाटन करता है, मूत्र और आर्त्तव का प्रवर्त्तन करता और वृक्कशूल का निवारण करता है। इसकी वर्त्ति धारण करने से बच्चा गिर जाता है। रजः प्रवर्त्तन के लिये इसे मधुके साथ पीना चाहिये। सांद्र कफ को भली भाँति निकालता है। जलंधर, वायु और अर्श को भी लाभकारी है। इसका काढ़ा विष प्रभाव को नष्ट करता है। (ख० अ०)

इसकी पत्तियों का रस पीने से कृष्ण कामला (यर्क़ान स्याह) को लाभ होता है। रातियानज के साथ पीतद्रव का रेचक और गृध्रसी, पार्श्वशूल एवं निक़रिस के लिये गुणकारी है। जौ के आटे के साथ स्तन शोथ तथा अन्य स्थानों की सूजन का विलायक है। फ़रासियून इसी के बीज का नाम है। (बु० मु०)

क़मार–[अ०] वह स्थान वा प्रदेश जहाँ से ऊद (अगर) लाया जाता है।

क़मारन, क़मारून [?] दरियाई वा जंगली सीपी।

कमारी–संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का सर्वोत्तम काला अगर।

कमारू–[संज्ञा] मोमियाई।

कमाल–[देश०] कमीला।

कमालयः–
कमालयून– } [यू०] माज़रियून

कमाला–[लै० Kamala] कमीला।

कमालावन–[यू०] माज़रियून

कमालियः, कमालियून–[यू०] माज़रियून।

कमाहः–[अ०] खजूर का ख़ुशा वा गेहूं के ख़ुशा का ग़िलाफ़।

कमिता–वि० [सं० त्रि० कमितृ-कमिता] कामुक। कामी। शहवती। मस्त। चाहनेवाला।

कमिन कुर पिडी–अज्ञात।

कमिया–[प०] कुमुदनी। नीलोफ़र।

कमिय्यत–[अ०] मिक़दार वा परिमाण चाहे भार से हो अथवा माप वा गणना से हो। किसी वस्तु का परिमाण वा मिक़दार जो नापी तौली वा गिनी जाय। (Zuantity, Zuantum)

कमिला गुड़–[बं०] कमीला।

क़मी–[?] बसफ़ाइज।

कमीज़–[फ़ा०] पेशाब। मूत्र।

संज्ञा स्त्री० [अ० क़मीस्, फ़ा० शेमीज़] एक प्रकार का कुर्ता।

कमीजः–[फ़ा०] अस्पस्त। तर्फ़लि।

कमीत–[अ०] (१) वह मद्य जो लाल और काला हो। (२) एक प्रकार का घोड़ा जो काले और लाल रंग का होता है।

कमीउ पुलई–[ते०] अज्ञात

क़मीदास–[क़िरं०] कमाज़रियून।

कमोनपुलई–[ते०] चाया। भुइ कल्लाँ। कुम्राण्डी (मरा०)। (Aerua lanata, *Juss*)

क (का) मिना–[बं०] (Murraya Exotica,) Honey bush, Cosmetic box एकांगी। कोंटी।

क़मीम–[अ०] गोखुरू का शीरा।

क़मीलः–[शामी] दोक़ुश।

कमीला–संज्ञा पुं० [सं० कम्पिल्लः]

पर्य्या०—कम्पिल्लः, कम्पिल्लकः, कम्पिल्लं, कपिल्लकः, रक्ताङ्गः, रेची, रेचनकः, रञ्जनः, लोहिताङ्गः, रक्तचूर्णकः, कम्पील्लकः, रञ्जकः, कर्कशः, चन्द्रः, रोचनः,–सं०। कबीला, कमीला, कमूद, कमेला, कमला, कंबिला, कमाला, कपाल, –हिं०। कमला गुच्छि, पुनाग, तुङ्ग, किशर, कमेला, कमिला बं० क़बील, क़िबील, –अ०। कँबेला, –फ़ा०। मैलोटस फिलिप्पानेन्सिस Mallotus Philippinensis (Phillipiensis) रॉट्लरा टिंक्टोरिया Rottlera tinctoria –ले०। ग्लैंड्युली राट्लरा Glandulœ Rottlerœ, राट्लरा Rottlera, मंकी फेस ट्री Monkey face tree –अं०। कमेला –मारु, कव्ली, कपीला –ता०। तैलङ्गी–कापिल-पोडि, कुंकुमा। सिंगा०–हम-पिरिल्ल, गेडिवेल्लबुवा। मराठी–कपीता, कमीला, शेंद्री। बम्बई–शेंद्री, कंपिल्ल। कना०–कंपिल्लकं, वल्ले, वसारे, चन्द्र-हित्तु। पं० कमल, कमीला। को०–कोमटी, अवध–रोहिनी।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा—लघुपत्रक, लोहिताङ्ग रक्तफलः, बहुपुष्पः, बहुफलः।

गुण प्रकाशिका संज्ञा—रञ्जनः रेची।

एरण्डवर्ग

(*N. O. Euphorbiaceae*)

उत्पत्ति-स्थान—इसका पेड़ एशिया तथा आष्ट्रेलिया के प्रायः सभी गरम प्रांतों में पाया जाता है। यह हिमालय के किनारे काश्मीर से लेकर नैपाल तक होता है। तथा बंगाल (पुरी, सिंह भूमि) ब्रह्मा, उड़ीसा, सिंगापुर, अन्डमान टापु युक्त प्रदेश (गढ़वाल, कमाऊँ, नैपाल की तराई) पंजाब (कांगड़ा) मध्यप्रदेश, सिंध से दक्षिण की ओर, बम्बई और सिलोन आदि प्रांतों में मिलता है। यह अबीसीनिया में भी पाया जाता है।

वर्णन

एक छोटा सदाबहार पेड़ जिसके पत्ते गूलर के पत्तों के समान ३ से ९ इंच लंबे, अण्डाकार, अनीदार, बिषमवर्त्ती और लाल रङ्ग से भरे हुए होते हैं। पत्रवृन्त के सन्निकट दो अर्बुदाकार ग्रंथि होती हैं। वृक्ष मध्यमाकार का २५—३० फुट तक ऊँचा होता है। छाल चौथाई इँच मोटी खाकी रंग की फटी सी और भीतर से लाल दीख पड़ती है। कार्तिक से पूस तक फूल फल आते हैं और उष्ण काल में फल पकते हैं। फूल नन्हें २ मकोय के फूल के समान भूरापन युक्त लाल रंग के (वा सफेद एवं पीले) आते हैं। फल त्रिदल आकार में झर-बेर के समान और गुच्छों में लगते हैं। आरम्भ में ये हरे रंग के होते हैं। पर बाद को उन पर ललाई लिए चमकदार घनावृत रोम और सूक्ष्म लाल रंग की ग्रन्थियाँ उत्पन्न होजाती हैं। जो देखने में लाल-लाल धूल सी जमी हुई प्रतीत होती है। पक्व फल के गात्र पर जो यह रक्त वर्ण का क्षुद्र दानादार पदार्थ संचित होता है इसी लाल रज को कमीला कहते हैं। यह निर्गन्ध और स्वाद-हीन होता है?

कबीले के भेद और परीक्षा

इसके केवल फल पर ही लाल रज नहीं लगी रहती, वरन् इसकी शाखाओं में भी लाल रेणु लगी रहती है। भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी प्रांतों, कोंकण, मद्रास एवं मध्यम प्रदेश के वणिक्गण वस्त्र वा तण्डुल का विनिमय कर पहाड़ी लोगों से कबीले का संग्रह करते हैं। इन्डो-चीन में प्रचुर परिमाण में इसका संग्रह किया जाता है और वहाँ से यह यूरोप को भेजा जाता है। संग्रहकारक व्यवसायी कबीले के वृक्ष से "कपीला" और "कपीली" इन दो वस्तुओं को प्रथक् २ निकाल लेते हैं। केवल फलों के ऊपर से झाड़कर और आलोड़ित कर जो रज निकाली जाती है, उसे "कपीली" कहते हैं। यह लाल रङ्ग की होती है। कपीली नाम का कबीला ही श्रेष्ठ होता है। फल से भिन्न वृक्ष के अन्य भाग-शाखादि से संगृहीत रज कबीले को 'कपीला" कहते हैं, जो पीलापन लिए लाल रंग का होता है। कपीली कपीले की अपेक्षा अधिक गुणकारी एवं कपीला कपीली की अपेक्षा न्यून गुणवाली होती है। बाजार में जो कबीला मिलता है उसमें प्रचुर मात्रा में धूल और बालू मिला होता है। उक्त कदर्य कबीले का व्यवहार निरापद एवं फलप्रद नहीं होता। कहते हैं कि सम्यक् विशुद्ध कबीले की प्राप्ति दुर्लभ है कारण प्रथम तो वृक्ष-स्थित कम्पिल्लक-रज धूलि कणवाही वायु के संस्पर्श से दूषित हो जाती है और पुनः व्यवसायी लोग भिगोकर उसे और दूषित कर देते हैं।

कबीले की परीक्षा

जल से भीगी हुई उँगली से कबीले को उठा कर सफेद कागज पर ज़ोर से लकीर खींचने या रगड़ने से यदि वह मसृण वर्त्ती रूप में परिणत होजाय, अथवा उस पर उज्ज्वल पीतवर्ण का निशान होजाय, तो शुद्ध एवं उत्कृष्ट अन्यथा मिश्रित, अशुद्ध कबीला समझना चाहिये। बनिये लोग इसी प्रकार कबीले की परीक्षा करते हैं।

गन्ज बादावर्द नामक ग्रन्थ में कबीले के शुद्धाशुद्धि होने की पहिचान इस प्रकार लिखी है। शुद्ध हलका होता है और उसकी मुट्ठी में पिलाई की झलक होती है और यह स्वाद रहित होता है मिश्रित मिलावट युक्त, गुरु एवं अत्यन्त रक्त वर्ण का होता है। इसमें किञ्चिन्मात्र भी पिलाई नहीं होती। इसमें किसी न किसी प्रकार का स्वाद भी होता है।

एतद्विषयक विविध मत—

"कबीला बायविडङ्ग को रज का नाम है" यह कहना भ्रमात्मक है। कबीला के आंतरिक मल को वहां के वैद्य बायविडङ्ग की जगह व्यवहार में लाते हैं। क्योंकि इसके गुण प्रायः बायविडङ्ग के ही समान होते हैं। वस्तुतः बायविडङ्ग और कबीले के वृक्ष एक नहीं अपितु ये सर्वथा दो भिन्न-भिन्न पौधे हैं।

इतिहास

भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से रङ्ग के लिये कंपिल्ल का व्यवहार होता रहा है। हिन्दुस्तान के आदिम निवासी संभवतः इसको उसी प्रकार संगृहीत करते थे, जिस प्रकार यह अधुना संग्रह किया जाता है। हिन्दुस्तान में आर्यों के आगमन से पूर्व वे इसको "रुहिन" कहते थे। कंपिल्लक नाम से धन्वन्तरि एवं राजनिघंटु आदि प्राचीन निघंटु-ग्रन्थ तथा चरक, सुश्रुत, भावप्रकाश और चक्रदत्त प्रभृति चिकित्सा-ग्रन्थों में इसके गुण प्रयोगोंका बारम्बार उल्लेख हुआ है। भारतियों से अरब देश-वासियों को इसका ज्ञान हुआ और इनके द्वारा यूरोप में इस औषधि का सन्निवेश हुआ और लगभग ईसवी सन् की सप्तम शताब्दी में पश्चात् कालीन यूनानी चिकित्सकों को इसका ज्ञान हुआ। आरव्य चिकित्सक इसको 'वर्स' या 'वरस' कहते थे और उनको दशम शताब्दी में इसके कृमिघ्न गुण का ज्ञान हुआ। ख़लीफ़ा हारूं-अल्-रशीद के प्रधान चिकित्सक इब्न मासूया इसे अतीव संकोचक तथा उत्कृष्ट कृमिघ्न बतलाते हैं और लिखते हैं कि इसे त्वगीय आर्द्र विस्फोटक (Eruptions) पर लगाने से वे सूख जाते हैं। इसके अतिरिक्त हकीम राज़ी, तमीमी, बग़दादी, इब्बसीना तथा अन्य दूसरे हकीमों ने भी इसका उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनको प्रकृति के संबन्ध में इनमें से सभी को बहुत सन्देह हुआ है।

मफ़्रजनुल अदविया नामक प्रसिद्ध पारस्य भाषा के यूनानी निघण्टुकार हकीम मुहम्मद हुसेन महाशय को इसको पहिचान में सन्देह है। इन्होंने इसका वर्णन ठीक नहीं लिखा है। परन्तु तदुत्तर लीन मुहीत आजम नामक वृहत यूनानी निघण्टु के रचयिता हकीम आजम खाँ साहब ने इसका वर्णन तो ठीक लिखा है परन्तु उन्होंने उसके बीजों को जो बायविडङ्ग लिखा है वह सर्वथा मिथ्या एव भ्रमकारक है। यूरोप में इसका प्रचार गत आठ वर्षों से हुआ है ऐसा चोपरा का मत है।

रासायनिक संगठन

कबीला (Kamala) एक प्रकार का मनोहारी कुछ-कुछ बैंगनी लिये लाल वा इष्टिका रक्त वर्णीय निर्गन्ध स्वादरहित महीन दानेदार चूर्ण है, जो कबीला के फलों पर से झाड़ लिया जाता है। शीतल जल से यह अविलेय और खौलते पानी में केवल अँशतः विलेय है। परन्तु क्षार सुरासार एव ईथर में यह पूर्ण स्वच्छन्दतया विलेय होता है और इससे गम्भीर रक्त वर्णीय विलयन प्राप्त होता है।

एक धूसराभ रक्त-वर्णीय राल (Resin) को राट्टलरिन (Rottlerin) $C_{33}H_{30}O_9$ नामक एक स्फटिकीय पदार्थ से संगठित होता है, इसका प्रधान उपादान है। यह रक्ताभ पीत-वर्ण के पत्राकार परत (Laminar plates) के रूप में पाया जाता है, जो ईथर में तत्क्षण विलीन हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक आइसो-राट्टलरिन (Iso-rottlerin) नामक अन्य पदार्थ होता है जो संभवतः अशुद्ध रट्टलरिन (Rottlerin) ही है। इसमें एक प्रकार का पीत स्फटिकीय द्रव्य, एक पीत और रक्त वर्ण का राल एवं मोम (wax) भी पाया जाता है। इसमें उड़नशील तैल, श्वेतक्षार, शर्करा, कषायिन (Tunnia) चुक्राम्ल (Oxalic acid) और निंबुकाम्ल (Citric acid) आदि द्रव्य चिन्ह मात्र पाये जाते हैं। (आर० एन० चोपरा) इ० ड्रू० इ०

औषधार्थ व्यवहार—

"कम्पिल्लकः फलरजः॥"

(सुश्रुत सूत्र ३९ अ०)

सुश्रुतोक्त उक्त वाक्य से कम्पिल्लक फल-रज (The glands phairs from Caps-

ules) का औषधार्थ व्यवहार होना सिद्ध होता है।

मात्रा—१ तोला तक। ३० से ५० ग्रेन तक चूर्ण रूप में।

औषधि निर्माण—त्रिफलाद्य घृत। (बं० से० सं०) चूर्ण, लेपादि।

गुण धर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कम्पिल्लको विरेची स्यात्कटूष्णो व्रणनाशनः।
गुल्मोदर विबन्धाध्म श्लेष्मकृमि विनाशनः॥

ग्रन्थान्तरे—

पितव्रणाध्मान विबन्ध निघ्नः।
श्लेष्मोदरार्ति कृमिगुल्मवैरी॥
शूलामशोथ (मूलामशोथ) व्रणगुल्महारी।
कम्पिल्लको रेचय गदापहारी॥

(ध० नि० ३ व०)

अर्थात्—कबीला—कम्पिल्लक कड़ुआ, दस्तावर गरम और कफनाशक है तथा यह व्रण, गुल्म, मलावष्टम्भ—अफारा, आध्मान और कृमि का नाश करता है मतान्तर से यह पित्त और कफ नाशक एवं दस्तावर है तथा व्रण, आध्मान—अफारा, मलावरोध, उदर रोग, गुल्म- कृमि—रोग शूल, आँव और सूजन के रोगों को नष्ट करता है।

कम्पिल्लको विरेचीस्यात् कटूष्णोव्रणनाशनः।
कफ कासार्तिहारी च जन्तु कृमिहरो लघुः॥

(रा० नि० १३ व०)

अर्थात्—कमीला—हलका, चरपरा, गरम, कफ नाशक और दस्तावर है तथा यह व्रण, कास; जंतु और कृमि का नाश करता है।

काम्पिल्लः कफपित्तास्र कृमिगुल्मोदर व्रणान्।
हन्ति रेची कटूष्णश्च मेहाऽऽनाहविषाश्मनुत्॥

(भा० पू० ख०मि० अ० ६)

अर्थात्—कबीला—रक्त-पित्त, कृमि, गुल्म, उदर रोग, और व्रण (घाव) को दूर करता है। तथा यह रेचक, दस्तावर, कटु रसयुक्त और उष्ण वीर्य है। एवं प्रमेह, आनाह, विष तथा पथरी को नष्ट करनेवाला है।

कम्पिल्लकः सरश्चाग्निदीपकः कटुकः स्मृतः।
व्रणस्य रोपणश्चोष्णो लघुर्भेदी कफापहः॥
व्रण गुल्मोदराध्मान कास पित्तप्रमेहहा।
आनाहं च विषं चैव मूत्राश्मरिरुजापहा॥
कृमिं च रक्तदोषं च नाशयेदिति कीर्तितः।
तच्छाकं शीतलं तिक्तं वातलं ग्राहि दीपनम्॥

(बृहन्निघण्टु रत्नाकर)

अर्थात्—कबीला—सारक, अग्निदीपक, चरपरा व्रण को भरनेवाला, गरम, हलका, दस्तावर, कफ नाशक तथा व्रण, गुल्म उदर रोग, आध्मान, खाँसी, पित्तप्रमेह, आनाह विष, मूत्राश्मरी कृमि, और रक्तविकार का नाश करता है। इसके पत्तों का शाक ठण्डा, कड़ुवा, वातकारक, ग्राही और दीपन है।

वैद्यक में कबीले का व्यवहार

चरक—गुल्म में कम्पिल्लक-गुल्म रोगीको विरेचनार्थ कबीले को मधु के साथ आलोड़ित कर सेवन करायें। यथा—

लिह्यात् कपिल्लकम्वापि विरेकार्थ मधुद्रवम्।

(चि० ५ अ०)

व्रणरोपणार्थ कम्पिल्लक-कबीले के साथ पकाया हुआ तैल श्रेष्ठ व्रणरोपक है। यथा—

"तैलं कम्पिल्लकेन वा, प्रधानं व्रणरोपणम्"

(चि० ३ अ०

भावप्रकाश—कृमि में कम्पिल्लक-एक तोला कबीला गुड़ के साथ सेवन करने से उदरस्थ कृमि अवश्य नष्ट होते हैं। यथा—

कम्पिल्ल चूर्णं कर्षार्द्धं गुड़ेन सह भक्षितम्।
पातयेत्तु कृमीन् सर्व्वानुदरस्थान्न संशयः॥"

(कृमि० चि०)

वक्तव्य—

चरक के कृमिघ्न-वर्ग में कम्पिल्लक का पाठ नहीं आया है। चक्रदत्त में कृमि-रोग में कमीले का व्यवहार हुआ है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—द्वितीय वा तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष। राज़ी और मसीह ने शीतल और रूक्ष लिखा है।

हानिकर्त्ता—आमाशयिक द्वार तथा आंत्र को।

दर्पघ्न—आमाशयिक द्वार के लिये मस्तंगी और अनीसूँ तथा आँतों के लिये कतीरा एवं शीह अर्मनी।

प्रतिनिधि—वायबिडंग, तुमुर्स तथा सकबीनज।

स्वाद—तिक्त एवं बदमज़ा।

मात्रा—३॥ माशा से ७ माशे तक। मतांतर से ४ माशे से ६ माशे तक।

गुण, कर्म, प्रयोग—

३॥ माशे से ७ माशे की मात्रा में कबीले को उपयुक्त औषध के साथ सेवन करने से यह आमाशय एवं आँतों से हर प्रकार का मवाद निःसारित करता है। यह चेपदार रतूबतों एवं विकृत दोषों का भी मल-मार्ग द्वारा उत्सर्ग करता है।

यह नहरुवा—इर्क़ मदनी के लिए गुणकारी है। विशेषतः इसका माजून नारू को उत्पन्न होने से रोकता है। माजून की विधि इस प्रकार है—

माजून-विधि—

(१) काबुली हरड़, बहेडा, आमला, निसोथ सोंठ, कबीला, इन ६ चीजों को बराबर २ लेकर कूट छान कर चूर्ण करलें। पुनः इससे तिगुनी शर्करा लेकर यथाविधि माजून प्रस्तुत करें।

मात्रा—७ माशे।

गुण—हकीमों के अनुसार यह बीस दिन में उक्त व्याधि विकार का उन्मूलन करता है। कर्कट रोग के लिए यह परीक्षित है।

(२) प्रथम आधसेर तिल-तैल को अग्नि पर गरम करें, फिर इसे उतार कर शीतल होने दें। ठण्डा होजाने पर उसमें एक छटाँक कबीला डालकर भली-भाँति मिलाकर कर्कट पर लगा दें।

(३) कबीले के अवचूर्णन से क्षतस्थ क्लिन्नता का नाश होता है।

(४) गुलरोगन के साथ इसे लगाने से दद्रु खर्जू, कण्डू और फुन्सी आदि को लाभ होता है।

(५) धौतघृत के साथ इसका लेप करने से शिरोजात गंज रोग आराम होता है।

(६) कबीले के लेप से त्वग् रोगों का निवारण होता है।

(७) इसके पिलाने से कुष्ठरोग आराम होता है। इससे पाचन शक्ति की निर्बलता, ज्वर, बादी के रोग तथा यकृत और फुफ्फुस शूल का निवारण होता है।

(८) ८ माशे से १ तोला तक कबीला पीसकर शहद मिलाकर चटाने से कद्दूदाने मर जाते हैं। इसकी ८ माशा की मात्रा से विरेक आने लगते हैं। और तीसरे या चौथे विरेक में कृमि मर कर बाहर आजाते हैं।

(९) इसको तैल वा पानी में पीसकर लगाने से शरीर की त्वचा पर शीतल एवं रूक्ष वायु का प्रभाव नहीं होता।

(१०) कबीला आठ माशा और हींग एक माशा, इनको दही के तोड़ में पीसकर चने प्रमाण गोलियाँ प्रस्तुत करें। इसमें से १-२ गोली गरम पानी के साथ देने से पार्श्व-शूल-ज़ातुल जन्ब मिटता है और उदरस्थ कृमि-रोग का निवारण होता है। इसको तिल-तैल में पीसकर लगाने से अंडों की टांकियाँ मिटती हैं।

(११) इसको समान भाग कड़ुवे तेल में खरल कर उसमें फाहा तर करके बांधने से व्रण रोपण होता है।

(१२) छः माशा कबीला गुड़में मिला गोली बनाकर देने से उदरस्थ समग्र कृमि बाहर निःस्सारित होजाते हैं।

(१३) कबीले का चूर्ण मधु मिला चटाने से पित्त एवं वायगोला का नाश होता है। परन्तु इसके सेवन कराने के प्रथम दिन उसे थोड़ा घी पिलाना चाहिये।

इसके बीजों से तैल निकाला जाता है। इसके वृक्ष के ताजे पत्ते शीतल एवं कांबिज हैं। ख० अ०।

यह रेशम रंगने के काम में आता है। कमीला फोड़े, फुन्सी की मरहमों में भी पड़ता है। यह खाने में गरम और दस्तावर होता है। यह विषैला होता है। इससे ६ रत्ती से अधिक नहीं दिया जाता। -हिं० श० सा०।

नव्य मतानुसार—

यह कृमिघ्न एवं विरेचक है।

मात्रा ३० से २० ग्रेन (२ से ८ ग्राम)

बाह्य रूप से कबीले को दाद और तर एक्जि आदि पर लगाते हैं पर इसको अधिकतर टीना साइड (कद्दूदानाहर) रूप से व्यवहार करते हैं। इसके उपयोग की विधि यह है—

इसके चूर्ण को साधारणतः लुआब शीरा या शर्बत में मिलाकर वर्त्तते हैं। इससे पूर्व और आवश्यकता होने पर बाद को भी एक विरेचन देना चाहिए, जैसे कि अन्य कृमिघ्न औषध सेवन के समय दिया जाता है।

प्रयोग—

कमीला (कबीला)	३० ग्रेन
म्यूसिलेगो ट्रैगाकन्थी	४ ड्राम
सिरूयस जिंजबरिस	१ ड्राम
एक्वाकेरुआफिलाई	१॥ औंस

ऐसी एक मात्रा औषध रात को सोते समय पिलादें और आगामी प्रातः बेला में एरण्ड तैल वा ब्लैक ड्राफ्ट का विरेचन दें।

खोरी—कमीला विरेचन और कृमिघ्न है। गुड़ के साथ सेवन करने से अन्त्रस्थ सूत्रवत् कृमि निःसारित करता है। विरेचनार्थ कबीला सेवन करने से विवमिषा उपस्थित होती है, परन्तु वमन नहीं होता। यह पित्त का अधःप्रवर्तन करता एव शूलवत् वेदना को शमन करता है। कबीले का प्रलेप दद्रु प्रभृति विविध चर्म रोगों का नाशक है। —मे० मे० इं० २य खण्ड ५५० पृ०।

आर एन० चोपरा—

औषधीय क्रिया—

डा० सेम्पर Semper (1910) ने कृमियों कठ-मेकुकियों (Tadpoles) और मंडूकों पर इस औषधि की क्रिया का परीक्षण किया और उन्होंने उक्त जंतुओं पर इसका स्पष्टतया विषाक्त प्रभाव होते पाया। इसके द्वारा उत्पादित लक्षण यद्यपि अपेक्षाकृत मृदुल स्वभाव के थे, तथापि वे मेल फर्न (Male fern) द्वारा उत्पन्न लक्षण के सर्वथा समान थे। इसका पक्षाघातकारी (Paralysing) प्रभाव अत्यन्त व्यक्त था, यह आमाशय आंत्र-पथ को प्रदाहित करता है और औषधीय—वयस्क मात्रा में देने पर भी अत्यन्त विवमिषा उत्पन्न करता, तथा आंत्रस्थ कृमिवत् गति की वृद्धि करता है। अस्तु, यह श्रेष्ठ तीव्र रेचन का कार्य करता है; कुत्तों पर प्रयोग करनेसे यह प्रगट होता है कि यह आमाशय-आंत्र-पथ से अति न्यून अभिशोषित होता है।

आमयिक प्रयोग—गंडूपद एवं सूत्रवत् कृमियों के निवारणार्थ इस औषधि का उपयोग होता है और पथ्य वा किसी अन्य प्राथमिक तैयारी के बिना इसका साधारणतया उपयोग किया जाता है सेवन से पूर्व इसके चूर्ण को दुग्ध, दधि वा मधु मिश्रित कर लेते हैं अथवा इसे किसी सुवासित जल में हल कर लेते हैं। दो से तीन ड्राम की मात्रामें इससे विवमिषा एवं उद्वेष्टन (Griping) होना संभव है और इससे खुलकर विरेक आजाते हैं जिससे पश्चात् को पुनः किसी विरेचनौषध देने की आवश्यकता नहीं होती।

यद्यपि पूर्वकालीन अन्वेषकों ने इसके उत्कृष्ट कृमिहर होने का दावा किया है, पर केइयस और और म्हेसकर (१९२३) ने रूढ़ धान्यांकुराकार कृमि (Hook worms) गण्डूपदाकार वा वर्त्तुल कृमि (Round worms) और कशाकृमि (Whip worms) उक्त तीनों प्रकार के कृमि पीड़ित बहुसंख्यक रोगियों पर इसके प्रयोग किये। परन्तु उक्त रोगियों में यह निरर्थक सिद्ध हुआ। कहते हैं कि उत्तम कबीले का चूर्ण कद्दूदाना फीताकार कृमियों पर उत्कृष्ट प्रभाव करता है। (कद्दूदाना, स्फीताकार कृमि के चित्र और उनका उपचार 'परीक्षित-प्रयोग' स्तम्भ में देखें) पथ्य एवं विरेचनादि का पूर्व प्रबन्ध करने के उपरांत सेवन कर उसका प्रभाव तीव्रतर किया जा सकता है जैसा मेल-फर्न के सेवन-काल में किया जाता है। यह मृदु औषध है और शिशु एव निर्बल व्यक्तियों को जिन्हें एक्ट्रैक्ट मास उपयोगी नहीं होता, इसका व्यवहार कराया जाता है। —इं० ड्रू० इं०।

नादकर्णी—यह तीव्र रेचन, कृमिघ्न, वृष्य और अश्मरीघ्न है। पूर्ण मात्रा में यह उग्र रेचन है और इससे विवमिषा एवं मरोड़ होती है।

कमीले का चूर्ण नागरङ्ग-धूसर रङ्ग मुख्यतः रेशम रङ्गने के काम आता है। स्फीतकृमि (Taemia) और अन्धाकार कृमियों (Tapeworm) की यह प्रख्यात औषध है। इसकी वयस्कोपयोगी मात्रा लगभग दो ड्राम तक है और इसे लुआब शर्बत, मधु, मण्ड (Gruel) वा किंचित् सुवासित जल में अवलम्बित कर व्यवहार करते हैं।

कमीले का चूर्ण	१५ ग्रेन
ट्यूगाकन्थ का लुआब	४ ड्राम
अद्रक शर्बत	१ ड्राम
लवङ्गार्क	१॥ औंस

इन्हें मिलाकर रात्रि-पेय रूप में भी व्यवहार किया जा सकता है।

वह कहते हैं कि यह सभी सर्व जातीय उदर-कृमियों एवं सूत्रवत् कृमियों को भी निःसरित करता है। प्रवाहीसार रूप में भी इसका व्यवहार किया जा सकता है। मुख द्वारा व्यवहार करने से कहते हैं कि यह कुष्ठजनित विस्फोटकों का निवारण करता है। त्वग्-रोगों में इसका बहिर प्रयोग भी किया गया है। कमीले को अठगुने मीठे तैल में मिलाकर दद्रु, छीप और झांई पर लगाने की उत्कृष्ट औषध प्रस्तुत होती है।

ई० मे० मे०

सन् १८२३ ई० में कायस और म्हस्कर ने इसकी परीक्षा की, पर उनकी दृष्टि से यह औषधी कृमि नाश करने में बिलकुल अनुपयोगी सिद्ध हुई।

क़मीशः-[अ०] इन्द्रायन का बीज। तुख़्म हंज़ल।

कमीश-[तु०] चाँदी।

क़मीस्-[?] टिड्डी।

[अ० स्त्री०] (१) एक प्रकार का कुर्ता। कमीज़। (२) हृदावरण। दिल का ग़िलाफ़।

कमीस-संज्ञा स्त्री० [अ० क़मीस्] दे० "कमीज़"।

क़मीसुल्मजानीन-[अ०] पागलों की कमीज़। दीवानों का कुर्ता। पागलों का सीधा और ढीला कुर्ता। (Straight gacket)

क़मीह्:-[अ०] (१) चूर्ण बुकनी। (२) जवारिश।

क़मीह्:-[सिरि०] गोंद। बादाम।

कमुकमु-[ता०] सुपारी क्रमुक।

कमुगु-[ता०] सुपारी। पुंगीफल। गुवाक।

कमुदनी-संज्ञा स्त्री० दे० "कमोदनी"।

कमुल-[म०] कमल।

क़मूज़ूलौज़ा-[सिरि०] बादाम की गोंद।

कमूद-संज्ञा पुं० [?] कमीला।

क़मूदन-[?] रोबियाँ। झींगा मछली।

क़मूदनी-[?] (Menyanthes Indica Indian Buck-bean) बड़ी चौलाई।

कमूदी-[?] नीलोफ़र। कमोदनी।

कमून-संज्ञा पुं० [अ० पुं०] जीरा। अजाजी। जीरक।

कमूनी-वि० [अ० फ़ा० कमून=जीरा] जीरा संबन्धी। जीरे का। जिसमें जीरा मिला हो।

संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ा०] एक यूनानी दवा (जवारिश) जिसका प्रधान भाग जीरा है।

कमूनी, कमूही-संज्ञा स्त्री० [ ] मकोय।

कमूनी शोनीज-[फ़ा०] काला जीरा।

कमूनेअख़ज़र-[अ०] जीरा शामी। जीरा नब्ती। हरा जीरा।

कमूने अरमनी-[अ०] करोया। कराविया:। कृष्ण-जीरक। स्याह जीरा। जीरा विलायती।

अमूने अस्फ़र-[अ०] जीरा फ़ारसी। जीरा ज़र्द।

कमूने अस्वद-[अ०] जीरा स्याह। जीरा किरमानी।

कमूने किरमानी-[अ०] स्याह जीरा।

कमूने नब्ती-[अ०] सफ़ेद जीरा।

कमून फ़ारसी-[अ०] ज़र्द जीरा। पीला जीरा।

कमूने मुलूकी-[अ०] अजवाइन। नानख़ाह।

कमून रूमा-[अ०] करावया। विलायती जीरा।

कमूने शामा-[अ०] जीरा सब्ज़।

कमूने सहराई-[अ०] काली जीरी।

कमूनेहब्शी-[अ०] स्याह जंगली जीरा।

कमूनहला-[अ०] अनीसून। किरमानी जीरा।

कमूने हिंदी-[अ०] कलौंजी। शोनीज़।

कमूल-संज्ञा पुं० दे० "कमलाई"।

क़मूलिया-[?] क़ीमूलिया।

कमेटी-[मल०] (excaecaria agallocha, *Linn*) गंगवा। गेरिया।

कमेड़ी–संज्ञा स्त्री० क़ुमरी। कपोतिका।

कमेला–संज्ञा पुं० [देश० बं०] कमीला।

कमेलीमावु–[ता०] कमीला।

कमैल–[गु०] कमीला।

कमैला-मावु–[ता०] कमीला।

कमोउ-एकि–[बर०] निर्मली। कतक।

कमोद–संज्ञा पुं० [सं०] नीलोत्पर। छोटा कमल। कुई।

कमोदन–संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी"।

कमोदनी–संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी"।

कमोदपुष्प–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का फूल जो जल में होता है।

कमोदिन(नी)–संज्ञा स्त्री० दे० "कुमुदिनी"।

कमोही–[सिं०] (phy llanfhus reticulatus, *Pair*) पानजोली। पानकूशि।

कमोही-जो-चोदो–[ ] पानजोली।

कमोही-जो-पुन–[ ] पानजोली।

कमौअलीचेट्ट–[ते०] शहतूत।

कमः–[अ०] क़ज़ह।

कमक–[?] एक पक्षी। बहरी।

क़मक़म–[अ०] बोलने में गले के परले सिरे से आवाज़ निकलना।

क़मक़ाम–[अ०] एक प्रकार का छोटा जूँ जिसके बहुत से पैर होते हैं। चमजूँ। जमजूँ। चारपायक।

कमकाम–[फ़ा०, अ०, क़ब्ती] ज़रू के पेड़ को गोंद वा छिलका वा ज़रू का पेड़।

कम्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शरीर आदि का काँपना। कँपकँपी। वेपथु। रा० नि० व० २०।

पर्य्या०—वेपन। वेप। कंपन। (२) ज्वर की कँपकपी, वेपथु।

वि० [सं० त्रि०] (१) जो काँपता हो। जिसको कंपकपी लगी हो। काँपनेवाला।

पर्य्या०—चलन, क्रम्प, चल, लोल, चलाचल, चञ्चल, तरल, पारिप्लव, परिप्लव, चपल, चटुल।

(२) कंपकारक। कँपानेवाला।

कम्पन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] [वि० कम्पित] (१) कम्प। काँपना। थरथराहट। कँपकपी। मे० नत्रिक। (२) शिशिर काल। माघ और फागुन का महीना। रा० नि० व० ११। (३) एक प्रकार के सन्निपात ज्वरका नाम जिसमें कफका उल्वणता होती है। यथा–

कफोल्वणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत्।
मुंनभिः सन्निपातो ऽयमुक्तः कम्पन संज्ञकः।

कम्पमान्–वि० दे० "कम्पायमान"।

कम्पलक–संज्ञा पुं० [सं० कम्पिल्लक] रोचनी। कमीला।

कम्पलक्ष्मा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वायु। श० र०।

कम्पवात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] / कम्पवायु–संज्ञा [सं० पुं०] एक प्रकार का वायु का रोग। कम्पवात।

लक्षण—"करपादतले कम्पो देह भ्रमण दुःखिते निद्रा भङ्गो मति क्षीणा कम्पवातस्यलक्षणम्।"

इसमें विजय भैरव रस से उत्तम लाभ होता है।

कम्पवातहररस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शुद्ध पारद ५ पल, ताम्र चूर्ण १ पल, इन्हें जम्भारी के रस में खरल कर पिट्ठा बनाएँ पुनः पान के रस में ५ पल शुद्ध गन्धक घोटकर पिण्डी पर लेप चढ़ाएँ। सुखाकर सपुट में रख गजपुट और भूधर यंत्र में पाँच पहर पचाएँ। शीतल होने पर निकालें। पुनः इसमें बराबर भाग त्रिकुटा का चूर्ण मिला पीसकर रक्खें।

मात्रा—१—६ रत्ती।

गुण—इसके सेवन से कम्प और अर्द्धांग वात का नाश होता है।

कम्पवातारि रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रोदय, ताम्रभस्म तुल्य भाग, इसमें कुटकी के रस को २१ भावना दें, पुनः चने प्रमाण गोलियां बनाएँ।

गुण—इसके सेवन से कम्पवात और सर्वांग वात दूर होती है। (बृहत् रस रा० सु०)

कम्पाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वायु। हे० च०।

कम्पायमान–वि० [सं० त्रि०] हिलता हुआ। कंपित।

कम्पित संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चलन। कंपन। कँपकपी। श० र०।

वि० [सं० त्रि०] (१) कम्पायमान। काँपता हुआ। अस्थिर। चलायमान। चंचल। (२) जो हिलाया गया हो।

कम्पिल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफ़ेद निसोथ। श्वेत त्रिवृता। वै० निघ० २ भ०। कम्पिल्लक। रा० नि०। सु०।

कम्पिला-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] घीकार। कुमारी। घृत कुमारी।

कम्पिल्य-दे० "कम्पिल्ल"।

कम्पिल्ल, कम्पिल्लक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कमीला। कबीला। र० मा०। रा० नि० व० १३। दे० "कमीला"। रञ्जनक। वा० सू० १५ अ०। विरेचन। (२) कुंकुम। च० द० ज्व० चि० मुस्तादिगण। (३) कासमर्द। कर्कश।

कम्पिल्लमालक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मौलसिरी का पेड़। वकुल का एक भेद।

कम्पिल्लादि-चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग-कबीला, छतिवन, शाल, बहेड़ा, रोहिड़ा, कुड़ा और कैथ के फूल सब समान भाग लेकर चूर्ण करें। इसे शहद के साथ सेवन करने से कफ पित्तज प्रमेह नष्ट होते हैं। च० चि० १० अ०।

कम्प्र-वि० [सं० त्रि०] कम्पित। कम्पान्वित। काँपने वाला।

कम्प्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शाखा। डाल।

कम्बर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कबरा रंग। कर्बुर-वर्ण। चित्रवर्ण। शब्द र०।

कम्बल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) लोनिआ। लोणिका शाक। प० मु०। (२) ऊन का बना हुआ मोटा कपड़ा। यह भेड़ों के ऊन का बनता है और इसे गड़रिये बुनते हैं। अम०।

पर्य्या०—रङ्कव (अ०), वेशक, रोमयोनि, वेणुका (शब्द र०), प्रावार (ज०)। (३) सास्ना। रत्ना०। (४) नागराज। सर्प। (५) एक कीड़ा जो बरसात में दिखाई देता है और जिसके ऊपर काले काले रोएँ होते हैं। कमला। (६) उपरना। दुपट्टा। चद्दर। उत्तरासंग। मे० लत्रिक। (७) एक प्रकार का मृग। जटा०। (८) गाय आदि पशुओं की गरदन का बाल। (९) नागद्वय।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जल। पानी। मे० लत्रिक।

कम्बलक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कम्बल। ऊनी कपड़ा।

कम्बलांशुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लोनिकाशाक लोनी।

कम्बलिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कमली छोटा कम्बल। (२) कम्बल मृग की स्त्री।

कम्बलिवाह्यक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बैलगाड़ी। गोशकट। वृषवाह्य शकट। अम०।

पर्य्या०—गन्त्री (अ०)। गान्त्री (अ०टी०)

कम्बली-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वृष। बैल।

कम्बातायी-संज्ञा [सं० पुं० कम्बातायिन्] एक पक्षी जिसे शङ्खचिल्ल कहते हैं। के०।

कम्बि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दर्वी। चम्मच। श०च०। (२) बाँस का पोर। वंशांश। मे० बाद्विक। (३) बाँस का करील। वंशाङ्कुर बाँस की कोपल।

कम्बु, कम्बुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) शंख। रा० नि० व० १३। (२) घोंघा। शंबूक। (३) वलय। शंख की चूड़ी। (४) गला। कंठ। मे० बद्विक। (५) रक्तवाहिनी नाड़ी। शोणितवहानाड़ी। (६) गरदन। ग्रीवा। (७) नलक। नली। हड्डी। हे० च०। एक प्रकार का मान। तौल का एक भेद। (८) हाथी। (९) चित्रवर्ण। कई तरह का रंग।

कम्बुक कुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शंखपुष्पी। कौड़ियाला। सखौली।

कम्बुका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असगंध का पौधा। र० मा०। के० दे० नि०।

कम्बुकाष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असगंध का क्षुप। रा० नि० व० ४।

कम्बुकिनी-, कम्बुकी } संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

कम्बुग्रीवा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वह ग्रीवा जो शंखाकार और तीन रेखाओं से युक्त हो। रा० नि० व० १८।

कम्बुज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शंख ।

कम्बुपुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शंखपुष्पी । कौड़ियाला । रा० नि० व० ३ ।

कम्बुपूत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शंख ।

कम्बुप्रणाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Ductus Cochlearis) शंखप्रणाली । कोकला प्रणाली । अ०शा० ।

कम्बुमालिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शंखपुष्पी लता । कौड़ियाला । रा० नि० व० ३ ।

कम्बू–संज्ञा [सं० स्त्री०] (१) शंख । (२) वलय । चूड़ी ।

कम्बूक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शंख । कम्बु । (वै०) धान की भूसी । अन्नत्वक् ।

कम्बूपूत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शंख । खरमोहरा । रा० नि० व० १३ ।

कम्बोज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० कांबोज] (१) एक प्रकार का शंख । (२) एक प्रकार का हाथी । मे० जत्रिक । (३) एक देश जो गांधार के पास पड़ता था । यहाँ के घोड़े प्रसिद्ध थे ।

कम्बोवायी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं० कम्बोवायिन्] शङ्खचिल्ल । एक प्रकार की चील ।

कम्भा–[?] कमीला ।

कम्भारी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काश्मरी । गँभारी का पेड़ । गम्भारी । कमहार । रा० नि व० ६ ।

कम्भिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] व्राहि धान्य ।

कम्भु–संज्ञा [सं० क्ली०] खस । उशीर । रा० नि० व० १२ ।

कम्मू–[अ० [मिकदार । परिमाण । किसी चीज़ की मिक़दार ।

कम्मरकस–[बम्ब०] (१) कमरकस । (२) एक बीज । (Salvia plebeia, *R. Br.*) (३) चुनिया गोंद ।

कम्मल–संज्ञा पुं० दे० "कम्बल" ।

कम्मोरकस–[गु०] कमरकस ।

कम्मी सफ़ेद–[?] ब्राह्मी ।

कम्र–वि० [सं० त्रि०] कामुक । मैथुनेच्छायुक्त । –अम० ।

क़म्ल–[अ०] [बहु० क़ुमुल] जूँ । ढील । यूका । (Louse; *Pediculus.*)

जूएँ कई प्रकार की होती हैं—

(१) महीन महीन सफ़ेद रंग की जो बालों से चिमटी रहती हैं । वस्तुतः ये जूओं के अंडे होते हैं । सुवाब: (बहु० सेबान) –अ० । रिश्क-फ़ा० । लीख । लिक्षा –हिं० ।

(२) वह जो स्रोतों में धँस जाती है और बालों की जड़ की तरह दिखाई देती हैं । तमूअ़ –अ० । क़मूक़ाम –अ०, फ़ा० । जमजूँ । धक –हिं० ।

(३) वह जो बड़ी-बड़ी और शिर एवं शरीर के कपड़ों में चलती फिरती दिखाई देती हैं ।

क़म्ल–अ० । शपिस –फ़ा० । जूँ, ढील –हिं० । यूका –सं० ।

क़म्ल–[अ०] जूएँ पड़ना । ढील पड़ने की बीमारी । तक़म्मुल । (Pediculosis, *Lousiness.*)

क़म्लक़रांश–[अ०] छोटे सनोबर के बीज ।

क़म्लतुज़्ज़रअ़–[अ०] एक पक्षी जो टिड्डी की तरह होता है ।

क़म्लतुन्नसूर–[अ०] गिद्ध की जूँ । जो कभी उससे गिरकर मनुष्य के शरीर पर आ पड़ती है और अत्यन्त घातक होती है । ऐसी जनश्रुति है कि इसके काटने से शरीर के स्रोतों से रक्तस्राव जारी होजाता है ।

कम्ला–संज्ञा पुं० दे० "कमला" ।

कम्लावन–[रू०] काशिम ।

क़म्लुर्रास–[अ०] Pedlculus Capitis शिर की जूँ । सिर में जूएँ पड़ना ।

क़म्लुल्अज्फ़ान–[अ०] Pediculus Blopharitis, *Triasis.* पलकोंकी जूँ । पलकों में जूँ पड़ जाना ।

क़म्लुल्आनः–[अ०] Pediculus Pubis कामाद्रि यूका । कामाद्रि वा काले बालों की जूएँ । झाँट की जूएँ ।

क़म्लुल्जिस्म–[अ०] Pediculus Corporis शरीर का ढील । शरीर में जूएँ पड़ जाना ।

क़म्लूल–[अ०] क़ुनावरी ।

क़म्स–[अ०] Quickening भ्रूण का उदर में गति करना ।

कयः-[सिरि०] मस्तगी।

कयगहरु-[मल०] अगर।

कयन-[बर०] गंगवा। गेओर। गेरिया।

कयपूती-संज्ञा स्त्री० [मला० कयु=पेड़+पूती=सफ़ेद] एक सदाबहार पेड़ जो सुमात्रा, जावा, फिलिपाइन आदि पूर्वीय द्वीप समूह में होता है। जावा और मैनिला आदि स्थानों में इसकी पत्तियों का तेल निकाला जाता है जो स्वाद में चरपरा, कपूरवत् उड़नशील और तीव्र गंधी होता है। वि० दे० "कायापुटी"।

कयप्पन कोट्टै- ता०] Strychnos gnatii पपीता।

कयबा, केबा-[ज़ंद] चाँदी।

कयमा-संज्ञा पुं० दे० "कैमा"।

कयम्पुवुचेडि-[ता०] अंजनी। लोखंडी।

कयलोर-[मल०] सहिजन। शोभांजन

कयली-[बर०] इंद्रायन।

कयस्था-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हड़। हरीतकी। (२) एक अष्टवर्गीय ओषधि। काकोली। अ० टी० स्वा०। (३) छोटी इलायची। सूक्ष्मैला। च० द० उन्मा० चि० महापैशाचघृत।

कया-[सिरि०] मस्तगी।

कयाना-[फ़ा०] तत्व चतुष्टय। चार तत्व। जैसे, अग्नि, वायु, जल, और पृथ्वी।

क़यानारीन-[यू०] कृत्रिम शिंगरफ़।

क़यानीकून-[यू०] बिजयाबीज। शाहदानज।

कयान्दलक-[?] आँवला।

कयामत ाना-[सिरि०] अनार की कली जो पूरे तोर से निकली न हो।

क़यामून, क़यामूयन-[यू०] दालचीनी।

क़यामूसीन-[यू०] दाल चीनी का तेल।

क़यामूसीस-[यू०]दालचीनी।

कयारूस-[?] हर्शफ़ का एक भेद।

कयावाक़नी-[सिरि] ग़ार का पेड़।

क़यासूस-[यू०] दालचीनी।

[?] (१) शाहतरा। पित्तपापड़ा। (२) जंगली जीरा।

कयाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पके ताड़ के रंग का घोड़ा। जैसे, "पक्वतालनिभो वाजी कयाह, परिकीर्त्तितः"। ज० द० ३ अ०।

कयू-ऊब-[जावा०] Euphorbia Tirucalli, *Linn.* बाड़ का थूहर।

कयुर-[ता०] मड़ुआ। मकरा (अवध)।

क़यूड-[अ०] वामक कै लानेवाली दवा। Emetic

क़यूक़ारसीस-[यू०] हाऊबेर। हबुषा। अरअर।

क़यूक़ूस-[यू] केसर।

क़यूतमस्.ूर-[यू०] ककड़ी। ख़यारज़ः।

क़यूतावसान-[रू०] कड़ का बीज। बर्रे। तुख़्म क़ुर्तुम हिंदी।

क़यूमक़ूरीस-[यू०] काँच की तरह की एक चीज़ जो समुद्र के किनारे पाई जाती है।

क़यूमीत-[?] जंगली पुदीना। आलीजून।

कयूरोमून-[?] काली ज़ीरी। क़रोमाना।

कयेनी-[बर०] ताँबा।

कयेटबेल-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ। कपित्थ।

कयोगवा-[पश्चिमी] मूली। भेटंगा। पिंडालु।

कयोगडिस-[मल०] (Cinnamorum parthenoxylon, *Meissn*)

कय्य-[अ०] जलाने की क्रिया। दग्धकर्म्म। दाह कर्म। दागना। तप्त लौह—शलाका द्वारा दग्ध करना। Cautrization

कय्यः-[अ० दाग़। दाग़ की जगह।

कय्यबिद्वाS-[अ०] औषध से दग्ध करना, औषध द्वारा दाहकर्म करना। दवा से दाग़ देना। Caustic.

कय्यिस-[अ०] [बहु० कय्यिसा] बुद्धिमान। चतुर। दाना।

कर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथ। हस्त। रा० नि० व० १८। (२) हाथी की सूँड। शुण्डादण्ड। मे० रद्विक। (३) सूरज वा चंद्रमा की किरन। रश्मि। (४) ओला। वर्षोपल। पत्थर। (५) आहुल्य चुप। काश्मीर में इसे "तवरूड" कहते हैं। तरवड़। रा० नि० व० ४। (६) उत्सङ्गादि।

करअफ़तनीन-[अ०] लम्बा कद्दू।

करइत-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का कीड़ा जो लगभग ६ अंगुल लम्बा होता है और हवा में उड़ता है। (२) एक प्रकार का साँप करैत।

करइता–[पं०] पामुख ।

करइ-संज्ञा स्त्री० [सं० करक] एक छोटी चिड़िया जो गेहूँ के छोटे २ पौधों को काट-काटकर गिराया करती है ।

[तु०] साही । ख़ारपुश्त ।

संज्ञा स्त्री० [देश०, गु०] कुलू । गुलू ।

करई गोंद–संज्ञा स्त्री० [देश०] कतीरा । कुल्ली का लासा ।

करईचेड्डु–[ता०] Canthium parviflorum, *Lam.*) किरनी ।

करक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दाड़िम । अनार । रा० नि० व० ११ (२) पलास । ढाक । हारा० । (३) मौलसिरी । वकुल । (४) कोविदार । लाल कचनार । रा० नि० व० १० । दे० "कचनार" । (५) करवीर वृक्ष । कनेर । रा० नि० व० ८ । (६) नारियल की खोपड़ी । नारिकेलास्थि । रा० नि० व० ११ । (७) नाटा करञ्ज । कंजा । हे० च० । (८) कुसुम का पौधा । बर्रे । (९) एक प्रकारकी चिड़िया । मे० कत्रिक (१०) करील का पेड़ । (११) रणगृध्र । नील पिच्छ । लम्बकर्ण । रणप्रिय । रणपक्षी । पिच्छ बाण । भयंकर । स्थूल । नील । (१२) ओला । करका ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करङ्क । ठठरी । (२) खुमी । गोमयच्छत्र । त्रिका० । (३) कमंडलु । करवा ।

संज्ञा पुं० [हिं० कड़क] (१) ठहर-ठहर कर होनेवाली वेदना । कसक । चिनक । (२) रुक-रुक कर और जलन के साथ पेशाब होने का रोग ।

[बं०] नुदनार ।

[ते०] हड़ का पेड़ । हरीतकी ।

करकच–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख । नाखून । वै० निघ० ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नमक जो समुद्र के पानी से निकाला जाता है । समुंदर नोन । पांगानोन । कड़कच ।

[तु०] सफ़ेद रेंड़ ।

करकचहा–संज्ञा पुं० दे० "अमलतास" ।

करकट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भरद्वाज पक्षी । वै० निघ० ।

करकटा–) [ता०] बालतला ।
करकट्टम्–)

करकतिया–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्करेटु] एक चिड़िया । दे० "करकरा" ।

करकण्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख । नाखून । त्रिका० ।

करकना–[बम्ब०] फरसा । धामिन ।

करकनाथ–संज्ञा पुं० [सं० कर्करेटु] एक काले रंग का पक्षी जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसकी हड्डियाँ तक काली होती हैं ।

करकनिरम–[मल०] काला कुचिला ।

करकनी–[मरा०] कुत्ते की जिह्वा ।

करकन्द–[फ़ा०] लाल पत्थर । कुनार । जीलकी ।

करकन्धु–संज्ञा पुं० दे० "कर्कंधू" ।

करकन्धुवु–[ते०] बेर । उन्नाव ।

करकन्ना–[अफ़्०] झाड़बेरी ।

करकपली–[ता०] दक्खिनी बबूल ।

करकर–संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] एक प्रकार का नमक जो समुद्रके पानी से निकाला जाता है । करकच । (पं०) पियाज़ । तेजम ।

[फ़ा०] (१) बाकला । (२) छोटा सनोबर । वि० दे० "करकरा" ।

करकरबुंदा–[मदरास] Ficus asperrima, *Roxb.* खरोटी । कलमनोर ।

करकरा–[सिरि०] केशर ।

संज्ञा पुं० [अ० आक़रक़र्हा] अकरकरा ।

संज्ञा पुं० [सं० कर्करेटु] एक प्रकार का सारस जिसका पेट तथा नीचे का भाग काला होता है और जिसके सिर पर एक चोटी होती है । इसका कंठ काला होता और बाक़ी शरीर करंज के रंग का ख़ाकी होता है । इसकी पूँछ एक बित्ते की तथा टेढ़ी होती है । तालीफ़ शरीफ़ी के अनुसार एक प्रकार का पक्षी जो कुलंग के रंग का और उससे छोटा होता है । इसका पैर लम्बा और नेत्र अत्यन्त रक्तवर्ण का होता है । दोनों कानों से संलग्न श्वेत बाल होते हैं और ग्रीवा से वक्ष की ओर काले बाल लटकते रहते हैं । (ता० श०)

पर्य्या०—कर्करटः, कर्कराटुः, कर्कराटुकः, कर्करेटुः, करेटुः, करेटुकः, करेडुकः, कर्कटुः (सं०)। करकटिया, करकरा-हिं०। कर्कटिया कर्कटेपाखि-बं०।

प्रकृति—मांस-गर्म एवं रूक्ष है।

गुण—इसका मांस स्थौल्यजनक, कामवर्द्धक और अर्गों के लिये बलप्रद है और वात एवं पित्त को नष्ट करता है। (ता० श०)

वि० [सं०] [कर्कर, स्त्री० कर्करी] छूने में जिसके रवे या कण उँगलियों में गड़ें। कर्कश। खुरखुरा।

करकराहट-संज्ञा पुं० [हिं० करकरा+आहट (प्रत्य०)] (१) कड़ापन। कर्कशता। खुरखुराहट। (२) आँख में किरकिरी पड़ने की सी पीड़ा।

करकबुंदा-[ते०] Ficus asperrima, *Roxb.* काल ऊमर। खरवल। खरोटी। शाखोटक। सिहोर।

करकरिया-[यू०] बिषखपरा। हंदक़ूक़ी।

करकवा-[ता०] चोली। बकरा।

करकश नासिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उतरन। गण नि०। नि० शि०।

करकशा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उतरन। इन्दीवरा। के० दे० नि०। नि० शि०।

करकशालि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रसाल इक्षु। पौंडा। गन्ना।

करकस-वि० दे० "कर्कश"।

करका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करेला। कारवल्ली। रा० नि० व० ७।

संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] ओला। वर्षा का पत्थर। बिनौरी। वर्षोपल। अम०।

पर्य्या०—मेघोपल, राधरङ्कु, धाराङ्कर, वर्षोपल। वीजोदक। घनकफ, मेघास्थि, वाचर, कराकरक।

करकाजल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का दिव्यजल। बिनौरी का पानी। वर्षोपल जल। यथा—

"दिव्य वाय्वग्निसयोत् संहता: खात्पतन्ति याः
पाषाणखण्डवच्चाप स्ताः कारक्योऽमृतोपमाः।
करकाजं जलं रूक्षं विशदं गुरु च स्थिरं।
दारुणं शीतलं सान्द्रं पित्तहृत्कफवायुकृत्"॥
—वैद्यक।

करकाङ्गिरम्-[मल०] काला कुचला।

करकानू-[?] कद्दू।

करकामेलोस-[?] आलू।

करकाम्बु-संज्ञा [स० क्ली०] ओले का पानी। बर्फ़। करकाजल। वै० निघ०।

करकाम्भा-संज्ञा पुं० [सं० पुं० करकाम्भस] नारियल का पेड़। नारियल। त्रेका०।

संज्ञा स्त्री० [स० स्त्री०] करकाजल। ओले का पानी।

करकार्की-संज्ञा स्त्री० खीरा।

करकारु-संज्ञा० पेठा।

करकाश-[सिंध०] बाबूना। उक़हवान।

क(कु)रकास-[फ़ा०] (१) दोसर। (२) तुख्म शलम।

करकीरा-[सिरि०] जर्जीर।

करकुड्मल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हाथ की उँगली।

करकुन-[पं०] बालबसंत।

करकुन्दूरुकम्-[मल०] Shorea tumbuggaia *Roxb.* कालाडामर।

करकू-संज्ञा-कौड़ी बूटी। [शीराज़ी] कच्चा ख़रबूज़ा।

क़रक़ू-[यू०, सिरि०] केशर।

करकृष्णा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जीरा। जीरक। वै० निघ०। कुञ्जी। कालिका। कलौंजी। के० दे० नि०। नि० शि०।

करकेस-[करकेश का मुअ०] एक प्रकार का बाबूना।

करको-[ते०] बोदुलर। बलेना। समर्री।

करकोट्ट-[बं०] अग्गई। शुकनी।

करकोल-[ता०] पीलू। झाल।

करकोष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथ की रेखा।

करकौम-[हिब्रू] केशर।

करक्काय-[ते०] हड़। हरीतकी।

करक्काय-पुव्वुलु-[ते०] हड़ का फूल। हरीतकी पुष्प।

नोट—वस्तुतः ये हड़ के फूल नहीं, प्रत्युत माजू की तरह के अर्बुदाकार प्रवर्द्धन हैं जो हड़ की पत्तियों और कोमल टहनियों पर पाये जाते हैं।

करक्युमा अंगष्टिफोलिया-[ले० Curcuma angustifolia, *Roxb.*] तीखुर। त्वक्क्षीरी। तवाखीर।

करक्युमा अमाडा–[ले० curcuma amada, *Roxb.*] आमा आदा । आम हलदी ।

करक्युमा ऐरोमेटिका–[ले० curcuma aromatica, *Salisb.*] आंबा हलदी । बन हरिद्रा ।

करक्युमा कीसिया–[ले० curcuma caesia, *Roxb.*] काली हलदी । नरकचूर ।

करक्युमा ज़रंबेट–[ले० curcuma zerum bet] ज़रंबाद । कचूर ।

करक्युमा ज़ेडोएरिया–[ले० curcuma zedoaria, *Rosc.*] शटी । कचूर ।

करक्युमा मॉण्टेना–[ले० curcuma montana *Rosc.*] सिंदरबानी ।

करक्युमा लांगा–[ले० curcuma longa, *Roxb.*] हलदी । हरिद्रा ।

करक्युमा ल्युकोरहाइज़ा–[ले० curcuma leucorhiza *Roxb.*] तीखुर ।

करक्युमा मेटिको–[ले० curcuma matico] दे० "करक्युमा अमाडा" ।

करक्युमा सीसिया–[ले० curcuma caesia *Roxb.*] काली हलदी । नर कचूर ।

करक्युलगो अंसिफोलिया–[ले० curculigo uncifolia] तालमूलिका । मुसली ।

करक्युलिगो ऑर्किऑइडीज़–[ले० curculigo orchioides *Gaertn.*] काली मुसली तालमूलिका ।

करखा–संज्ञा पुं० दे० "कालिख" ।

करग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाज़ । श्येनपक्षी ।

करगदन–[फ़ा०] एक जानवर । गेंड़ा । जरेश । (अ०) कर्ग (फ़ा०)

करगस–[फ़ा०] गिद्ध ।

करगही–संज्ञा स्त्री० [हिं० कारा, काला+अंग] एक प्रकार का मोटा जड़हन धान जो अगहन में तैयार होता है ।

करग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विवाह । पाणिग्रहण । ब्याह । शादी । कर ग्रहण । त्रिका० ।

करघर्षी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] छोटी रई । छोटी मथानी ।

करघर्षण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दही मथने की रई । मथानी । महनी ।

पर्य्या०—वैशाख, दधिचार. तक्राट ।

करघाट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत के अनुसार स्थावर विष का एक भेद । जिसकी छाल और गोंद में ज़हर होता है । इसको मूलविष भी कहते हैं । सु कल्प २ अ० ।

करङ्क–संज्ञा पुं [सं० पुं०] (१) मस्तक । विश्वकत्रिक । (२) नारियल की खोपड़ी । नरियरी । श० च० । (३) कङ्काल । पंजर । ठठरी । रा० नि० व० १८ । (४) करङ्कशालि । (५) करवा । कमण्डलु । (६) कपाल । खोपड़ा । (७) एक प्रकार की ईख ।

करङ्कशालि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] करङ्क नाम की ईख । पौंडा ।

गुण—मीठी, ठण्डी, रुचिकारी, मृदु, पित्तनाशक, दाह नाशक, वृष्य, तेज, और बल को बढ़ानेवाली है । रा० नि० व० १४ ।

करङ्कीभूत–वि० [सं० त्रि०] जिसकी केवल ठठरी रह गईहो । 'करङ्कीभूतगोमूर्द्धा" भा० म० ४ अ० गर्भ चि० ।

करङ्केक्षु–संज्ञा पु० [सं० पुं०] ईख । ईख । ऊख ।

करचनई–[ता०] कुंडा ।

करचना–संज्ञा० पुं० [देश०] सिहोर । रूसा ।

करचन्द्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख । नाखून । शब्द र० ।

करचिभाला–संज्ञा० पुं० [सं०] एक वृक्ष जो बंगाल में उत्पन्न होता है और बहुत बड़ा मालूम होता है । (Bridelia lancaefolia)

करची–[कना०] अञ्जन ।

करचुनै–[मदरास] (Iacca pinnatifida, *Forst.*) दीवा ।

करच्छद–संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] सिहोर का पेड़ । शाखोट वृक्ष । भा० ।

करच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सिन्दूरपुष्पी । सेंदुरिया । रा० नि० व० १० । (२) शाक तरु । सागौन ।

करछना–संज्ञा पुं० [देश०] सिहोरा ।

करछा–सं० पुं० [हिं करौंछा=काला] एक चिड़िया ।

कराछया–सं० स्त्री० [हिं० करौंछा =काला] एक पक्षी ।

करज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करंज का पेड़। डहरकरंज (२) नख। नाखून। (३) उँगली।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नख नामक सुगंधित द्रव्य। व्याघ्रनख। मे० जत्रिक। [अ०] (Fungus, *Mold*) कुरह। बूज़क। फफूँदी। फफूँदी लगना।

करज–संज्ञा पुं० [अ० क़र्ज़] एक प्रकार के बबूल की फली जिसका सुखाया हुआ रस अकाकिया कहलाता है।

करजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नख।

करजाख्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नखी नामक सुगंधित द्रव्य। नख।

करजीरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफ़ेद जीरा। शुक्ल जीरक।

करजीरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कणजीर] एक वार्षिक वनस्पति जिसका पेड़ ४–५ हाथ ऊँचा होता है। इसका तना सीधा, गोल बेलनाकार, शाखाप्रशाखा विशिष्ट और साधारण लोमव्याप्त होता है। इसकी पत्तियाँ एकांतर, गहरी, हरी, गोल, अंडाकार वा भालाकार, ५–६ अंगुल चौड़ी और नुकीली होती हैं तथा वृंत की ओर शंकाकार होती हुई वृंत से मिल जाती हैं। पत्र-प्रांत दंतित वा दंदानेदार होते हैं, तथा दंत विषम एवं नुकीले होते हैं। पेड़ प्रायः बरसात में उगता है और क्वार कातिक में उसके सिर पर गोल-गोल बोंड़ियों के गुच्छे लगते हैं। जिनमें से बीस वा अधिक छोटे-छोटे पतले-पतले बैंगनी रंग के उभयलिंगी (Hermaphrodite) फूल वा कुसुम निकलते हैं। कटोरी अंडाकार और सिरे पर झुकी होती है। फूल की पंखड़ियाँ समदीर्घ (Uniform) होती हैं। फूल शाखांत एवं दीर्घ पुष्पदंड में लगते हैं और प्रत्येक शाखांत पर ही पुष्पदंड होता है। फूलों के झड़ जाने पर बोंड़ी बेर वा कुसुम की बोंड़ी की तरह बढ़ती जाती है और महीने भर में पककर छितरा जाती है। उसके फटने से भूरे रंग की रोईं दिखाई पड़ती है जिसमें बड़ी झाज होती है। यह रोईं बोंड़ी के भीतर के बीज के सिरे पर लगी रहती है और जल्दी अलग हो जाती है। बीज लगभग $\frac{३}{१६}$ इंच लम्बा, गहरा भूरा, बेलनाकार और आधार की ओर शंकाकार, होता है, तथा उसके ऊपर लम्बाई के रुख लगभग दस उभरी हुई रेखायें (Ridges) होती हैं। खाने में यह उत्क्लेशकारक और अत्यन्त कड़ुआ होता है, यहाँ तक कि इसे मुखमें रखने मात्र से कड़ुआहट प्रतीत होने लगती है। इसके बीजों से तेल निकाला जाता है।

पर्य्या०—वृहत्पाली, सुक्ष्मपत्र, वन्यजीरः (वन्यजीरकः) कणा (ध० नि०) वृहत्पाली, क्षुद्रपत्रः, अरण्यजीरः, कणा (रा० नि०) वनजीरः, वनजीरकः, अरण्यजीरं, अरण्यजीरकं, कटुजीरक, वन्यजीरकं, कानन जीरक, अटवीजीरकः, –सं०। करजीरी, कालीजीरी, वनजीरी, कड़ुजीरा। कालाजीरि जंगलीसियाह ज़ीरा–हि०। काली-ज़ीरी, कालीजीरी, कड़वी ज़ीरी–द०। वन जीरे, वन जीरा –बं०। कमून बर्री, कमून हब्शी, कमून हिंदी –अ०।

पर्पल फ्लीबेन Purple Fleabane–अं०। वर्नोनिया एन्थेल्मिंटिका Vernonia Anthelmintica, *Willd.* सेराटयुला एन्थोल्मिंटिका Serratula Anthelmintica,–ले०। काट्टु शरिगम–ता०। अडवि जिलकर, विषकण्टकालु, जीरकत्र–ते०। काट्टु जीरकम्–मल०। काडु जिरगे, काजीरगे–कना०। राणाच जीरे, कारलये, कड़ु जिरें, कड़ुजीरें, वनजीरे, कड़ू जीरी –मरा०। कालिजीरि, कड़वो जीरि, काली जीरी –गु०। सन्नि नासगम्, सन्निनासंग –सिंह०। कालीजीरी –बम्ब०। कालोजीरी (मार०) काली जीरी –कुमाऊँ।

संज्ञा-निर्णायनी टिप्पणी—वाकुची की लेटिन संज्ञा सोरेलिया कारिलिफोलिया (psoralea corylifolia) है, वर्नोनिया एन्थेल्मिंटिका (Vernonia Anthelmintica, *Willd.* नहीं, जैसा कि कतिपय पूर्व के लेखकों ने लिखा है। अस्तु, वर्नोनिया एन्थेल्मिंटिका के अंतर्गत वाकुची के गुण पर्य्यायों का अंतर्भाव करना नितांत भ्रमकारक एवं अज्ञता-सूचक है।

इसके वास्तविक संस्कृत एवं अन्य भाषा के पर्य्याय ऊपर दिये गये हैं।

युनानी निघंटु-ग्रन्थों में कालीजीरी नाम से इसका उल्लेख हुआ है और वाकुची इससे पृथक् वर्णित हुई है। तालीफ़ शरीफ़ी में जो यह लिखा है कि यह स्याह जीरा से दुगुना लंबा, होता है, यह कम भ्रामक नहीं है।

भारतीय मुसलमान औषध-विक्रेता इसे आतरीलाल की प्रतिनिधि स्वरूप विक्रय करते हैं। कदाचित् इसी हेतु मुह्युद्दीन शरीफ़ ने इसे ही वास्तविक (Genuine) आतरीलाल समझ लिया हो; क्योंकि बाज़ारों में उक्त नाम से प्रायः इसी (काली जीरी) के बीज मिलते हैं। परंतु आतरीलाल इससे सर्वथा एक भिन्न द्रव्य है। विशेष विवरण के लिये 'आतरील' देखें। अरबी में इसे कमूने-बरी कह सकते हैं।

कालीजीरी वर्ग

(*N. O. Compositœ*)

उत्पत्ति-स्थान—यह समग्र भारतवर्ष की अनुर्वर ऊसर उजाड़ भूमि में गाँवों के समीप साधारणतया होती है।

औषधार्थ व्यवहार—फल, शुष्क बीज, पत्र और मूल।

रासायनिक संघटन—बीजों में राल, वर्नोनीन (Vernonine) नामक एक क्षारोद, तैल और मैंगानीज रहित भस्म ७ प्रतिशत होते हैं (Dymock, *Vol. II., P. 242*)

कलकत्तास्थित (School of Tropical Medicine) ने इसके रासायनिक संघटन की नानाप्रकार से पुनरपि जाँच की जिसके फलस्वरूप इसके सूखे बीजों में निम्न लिखित तत्व पाये गये। इसके प्रधानतः स्थिर तैल (१८%) अत्यल्प मात्रा में एक उड़नशील तैल (लगभग ०.०२%) और एक तिक्त सत्व वर्तमान पाया गया। इसमें किसी क्षारोद की विद्यमानता सिद्ध नहीं हुई। तिक्त सत्व जो इसका प्रभावकारी अंश है, सौ भाग बीजों में एक भाग से ऊपर पाया गया। तिक्तसत्व को विविध प्रकार से शुद्ध करने पर, यह पीत अमूर्त्त चूर्ण रूप में पाया गया। इसमें नत्रजन एवं गंधक का अभाव पाया गया और यह रालाम्ल (Resin Acid) के स्वभाव का सिद्ध हुआ। (इं० ड्रू० इं० पृ० ४१०)

गुणधर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

वन्यजोरः कटुः शीतोव्रणहा पञ्चनामकः। (ध० नि०)

वनजीरः कटुः शीतो ❀ ❀ । (रा० नि०)

वनजीरा वा करजीरी—चरपरी, शीतल और व्रणनाशक है।

अरण्यजीरकञ्चोष्णं तुवरं कटुकं मतम्।
स्तम्भवातं कफञ्चैव व्रणञ्चैव विनाशयेत्॥ (वै० निघ० द्रव्य० गु०)

वनजीरा—उष्ण, कसेला, चरपरा, स्तम्भी, वात कफनाशक और व्रणनाशक है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार यह सर्प और वृश्चिक दंश में उपकारी है। किंतु कायस महस्कर के मतानुसार यह दोनों ही प्रकार के विषों पर निरुपयोगी है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—तृतीय कक्षांत में उष्ण और रूक्ष।

हानिकर्त्ता—और दर्पघ्न इसका अधिक सेवन वर्जित है, क्यों कि यह दाहक (अक्काल) है, तथा आमाशय और आँतों को हानि पहुँचाती है। बेचैनी और मरोड़ पैदा करती है। उक्त अवस्था में गोदुग्ध पिलावें, मुर्गी का अत्यन्त स्नेहाक्त शोरबा पीने को दें, ताजा आमलों का रस या शीर आमला पान करायें। जब कभी इसे देवें और आमलों के रस के साथ देवें; क्योंकि यह इसका दर्पघ्न है। यदि ताज़ा आमले उपलब्ध न हों, तो उनके फांट (खेंसादा) के साथ देवें। किसी-किसी ने इसे वृक्क, फुप्फुस, उष्ण प्रकृति एवं आंतरावयवों के लिये हानिकर लिखा है। उनके मत से पहाड़ी पुदीना, कतीरा वा गुलरोग़न प्रभृति दर्पघ्न हैं।

प्रतिनिधि—कुटकी (मतांतर से जीरा, सौंफ, अनीसूँ अथवा स्याह जीरा आदि)

मात्रा—वैद्यों के अनुसार इसकी साधारण मात्रा २-६ माशे की है। इसकी एक मात्रा देने के चार-पाँच घंटे उपरांत पुनः दूसरी मात्रा देकर

एरण्ड तैल या कोई और मृदुसारक औषध देना चाहिये। मख़्ज़न मुफ़रिदात के अनुसार यह निर्विषैल है। पर बुस्तानुल् मुफ़रिदात के मत से यह प्रायः विष है, अतएव भक्षणीय नहीं है, प्रलेपादि में यह बाह्य प्रयोग में आती है। इससे ही मिलता जुलता विचार मख़्ज़नुल् अदविया के रचयिता का भी है। वे लिखते हैं कि अत्यंत तीक्ष्ण एवं विपाक्त होने के कारण यह प्रायः आंतरिक रूप से सेवनीय नहीं, क्यों कि इससे हानि की संभावना होती है। अस्तु, इसका बाह्य रूपसे उपयोग करते हैं। चिकित्सगण इसका मानवी चिकित्सा में तो कम उपयोग करते हैं, पर पशुओं वा चतुष्पद जीवों की चिकित्सा में इसका बहुत उपयोग होता है, विशेषतः अश्वचिकित्सा में। ब्याई हुई घोड़ी के मसालों में भी यह दी जाती है। अतः यह पशु चिकित्सकों के काम की दवा है। कहते हैं कि घोड़ों के लिये यह रेवंदचीनी की तरह शीतल है। खाने में यह बहुत कड़ुई चरपरी और तीव्रगंधी होती है।

गुण,कर्म,प्रयोग—मुख द्वारा प्रयोग करने से यह श्लैष्मिक मवादों को खूब छाँटती है, आमाशय और आंत्र गत कृमियों तथा कद्दु दाने को निकालती है और सर्दी के दर्दों को शांत करती है। इसके लेप से सरदी की सूजन उतर जाती है। (म० अ०) इसकी पत्तियों में भी उपर्युक्त गुण विद्यमान होते हैं। (बु० मु०) यह पाचन और क्षुधाभिजनन है एवं उत्तम वातानुलोमक है। इससे खूब अपान वायु खुलता है। यदि सोहागे को खील के योग से एक माशा से चार माशे तक कालीजीरी का चूर्ण दूध के साथ फाँके, तो बवासीर आराम हो, यह सिद्ध औषध है।

इसका सुरमा आँख को निर्मल करता (जिला) है। (म० मु०) यह प्रायः अश्व चिकित्सा में प्रयोगित होती है। यह उष्ण है तथा शोथघ्न प्रतीत होती है और कफज सूजन प्रभृति में उपकारी है। (ता० श०) इसके मर्दन से खाज मिट जाती है। १०॥ माशे कालीजीरी लेकर आधी को भून लें, फिर सबको मिलाकर पीस कर तीन बराबर भागों में बाँटें। इसमें से एक भाग प्रतिदिन प्रातःकाल फाँक लिया करें और साठी चावलों का भात और दही दोनों समय भोजन करें। इससे बादी और खूनी दोनों प्रकार के बवासीर नष्ट होजाते हैं। छः माशे कालीज़ीरी और एक मुट्ठी नीम की पत्ती रात को मिट्टी के बरतन में भिगोदें। प्रातःकाल उसे मल छान कर पीलें। इससे अनियत कालीन जीर्ण ज्वर मुक्त होता है। इसे सेमल के मूसला के साथ पकाने से इसकी कड़वाहट जाती रहती है और इसकी गरमी भी कम होजाती है। पकते समय बरतन का मुँह खुला रहना चाहिये और खूब पकाना चाहिये। इसके लिये करजीरी से सेमल का मूसरा चतुर्थांश रखना पर्य्याप्त होता है। किंतु उसे ताजा एवं छोटे पेड़ का ग्रहण करना चाहिये। (ख़० अ०)

नव्य मत

फार्माकोपिया आफ इण्डिया के मत से कृमिघ्न रूप में व्यवहृत करजीरी के चूर्णकी साधारण मात्रा १॥ ड्राम (लगभग ६ मा०) है। यह एक-एक घंटा के अंतर से बराबर २ मात्रा में दो बार सेवनीय है। इसके सेवनोपरांत रोगी को मृदुरेचक औषध का व्यवहार उचित होता है। इस प्रकार इसके सेवन से प्रायशः मृत कृमि निर्गत होते देखा गया है।

डाक्टर ई० रास (E. Ross)—का कथन है कि इसके ५ से १५ रत्ती चूर्ण का शीत कषाय कृमि विशेष (Ascarides) के विनाश के लिए अव्यर्थ महौषधि है।

डा० गिब्सन—स्वानुभव के बल पर कहते हैं कि १० से १२॥ रत्ती की मात्रा में इसके बीज उत्तम बलकारक और पाचक है। यह मूत्रकारक रूप से भी प्रसिद्ध है।

इसके बीजों को कूटकर नीबू के रस में पीसकर तैयार किया हुआ कल्क, ट्रावनकोर में जूँ और लीख प्रभृति केशकीट (Pediculi) नाशार्थ बहुत व्यवहार किया जाता है। (फार्माकोपिया आफ इण्डिया, पृ० १२६)

ऐन्सली—के मत से इसके धूमिल वर्ण के अत्यंत कड़वे बीज प्रबल कृमिघ्न हैं, तथा सर्प

दंश में प्रयुक्त यौगिक चूर्ण का एक उपादान भी हैं।

र्‌हीडी (Rheede) के अनुसार आध्मान और कास निवारण के लिए मलाबार तटपर इनका शीतकषाय भी व्यवहार किया जाता है। कृमि रोगों में प्रयुक्त बीजों के चूर्ण की मात्रा (One pagoda) दिन में दो बार है। (मेटिरिया इंडिका, २ भ० पृ० ५४)

डिमक—पारी के ज्वरों को रोकने के लिए (Antiperiodic) कोंकण में यह योग प्रचलित है—"कालीजीरी के बीज, चिरायता, कुटकी, डिकामाली, सेंधानमक और सोंठ इनको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण करें। इसकी मात्रा ६ माशे की है। पहले ठंडे पानी में लाल किया हुआ खपड़ा वा ईंट बुझावें, फिर एक मात्रा उक्त चूर्ण को फाँक कर ऊपर से यह पानी पी जायँ। इसी प्रकार हर प्रातःकाल को यह औषधी सेवन करें। (फा० इं० २ भ० पृ० २४२)

नादकर्णी—बीज कृमिघ्न, दीपन, (Stomachic), बलकारक, मूत्रकारक, नियत कालिक ज्वर निवारक, (Antiperiodic) और रसायन है। बीज जात चिपचिपा हरातैल मूत्रल और प्रबल कृमिघ्न है।

आमयिक प्रयोग—उदर में केचुए पड़ गए हों तो प्रायः कालीजीरी के बीज देने से वे मृतावस्था में निर्गत होजाते हैं। इसकी मात्रा लगभग दो-तीन ड्राम (½ मा० १ तो०) की है। पहले बीजोंको कूट-पीसकर उसमें ४-६ ड्राम मधु मिला कर अवलेह (Electuary) बना लेते हैं। और उसे दो बराबर भागों में बाँटते हैं। इसमें से एक भाग खिलाकर ऊपर से कोई मृदुसारक (Aperient) औषध देते हैं। बीजों के चूर्ण का शीतकषाय (१० से ३० ग्रेन) भी उत्तम एवं अव्यर्थ कृमिघ्न है। (ई० रास) केचुओं पर १० से ३० रत्ती की मात्रा में उक्त औषध के उपयोग से पूर्ण संतोषप्रद फल प्राप्त हुआ (Ind. Drugs Report Madras) इसे कागजी नीबू के रस में पीसकर लेप करने से लीख और जू आदि केशकीट (Pediculi) नष्ट होते हैं। (इं० मे० मे० ८८४-५)

सान्याल और घोष के मतानुसार यह वनस्पति चर्म रोगों में प्रलेप रूप से काम में ली जाती है। यह श्वित्र एवं विसर्प रोग की प्रधान औषधि है।

छोटा नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसको कुनैन के स्थान में व्यवहार करते हैं। पैरों के पक्षाघात में इसके पिसे हुये बीज लेप करने के काम में लिये जाते हैं।

आर० एन० चोपरा—उक्त औषधने बहुतकाल पूर्व में ही भारत स्थित युरोपियन् चिकित्सकों का ध्यान आकृष्ट कियाथा, और उनमें से बहुतोंने इसके बीजोंके चूर्ण का शीत कषाय केचुओंके लिये उत्तम कृमिघ्न माना था। कलकत्ता के कारमाइकल आतुरालयमें सन्निविष्ट कृमिरोगों (Helminthic infections) के बहुसंख्यक रोगियों पर एतद्गत रालचूर्ण २॥से५ रत्ती की मात्रामें प्रयोगित कराई गई। औषध सेवनसे पूर्वापर मल की सावधानतया परीक्षा की गई फलतः यह ज्ञात हुआ कि कृमि विशेष (Ascaris) अर्थात् केचुओं पर इसका अत्यल्प प्रभाव होता है। तथापि सूत्रकृमियों पर इसका प्रत्यक्षप्रभाव होताहै। जिन अनेकशिशुओं को एतज्जात राल-चूर्ण का उपयोग कराया गया, उनके मलमें अधिक संख्या में सूत्रकृमि निर्गत हुए एवं उनके शय्यामूत्र (Nocturnal enuresis) और रात में दाँत पीसना आदि प्रायशः अत्यंत कष्टप्रद लक्षण प्रशमित हो गये। (इं० ड्रू० इं० पृ० ४१०)

अन्य प्रयोग

(१) काली जीरी २ भाग, सोंठ १ भाग, कालानमक ½ भाग—इनका बारीक चूर्ण करें। मात्रा सेवन-विधि—एक माशे से ३ माशे तक गुनगुना पानी के साथ प्रातः सायंकाल भोजनोत्तर सेवन करें।

गुण, प्रयोग—यह वातानुलोमक है और खूब अपानवायु को शुद्ध करता है। ऐंठन व वेदना युक्त पानी की तरह पतला दस्त होता हो, तो इससे उपकार होता है। और तारीफ़ यह कि यह धारक नहीं है। यह मलमूत्र को पृथक् पृथक् करता है और अत्यंत क्षुधावर्द्धक है। प्रवाहिका में कोष्ठशुद्धि के पश्चात् इसका व्यवहार गुणकारी होता है।

नोट—उपर्युक्त योग में ¼ भाग शंखभस्म मिला लेने से यह और गुणकारी हो जाता है। कोई कोई आधी करजीरी भूनकर डालते हैं।—लेखक

(२) यह व्रणनाशक और घाव-फोड़े आदि के लिये उपयोगी होती है। उभड़ते हुए फोड़े पर करजीरी पीसकर आलेप करते हैं।

(३) आँतों के कीड़े और कपोत्सर्ग के लिये इसका काढ़ा पिलायें। ख़० अ०

(४) कफ की गाँठों को विलीन करने के लिये इसका लेप करें।

इसको खाने-पीने के काम में कम लाना चाहिये। क्योंकि इससे कभी कभी हानि भी होती है।

इसका काढ़ा पीने से कफ और अफारा दूर होते हैं।

सर्पविष उतारने के लिये इसे अन्य विषघ्न औषधियों के योग से देते हैं।

यदि रतूबत (द्रव) के कारण सम्पूर्ण शरीर सूज जाय, तो इसकी फंकी देवें।

पीवयुक्त बड़े फोड़ों पर इसका आलेप करते हैं। ज्वरनिवारणार्थ इसका उपयोग होता है। रसायन कीविधि से इसका उपयोग करने से आयु बढ़ती है और जरा तथा पलित रोग का नाश होता है।

पाँच रत्ती से दो-माशे काली जीरी का चूर्ण देने से उदरस्थ कृमि मर कर निर्गत हो जाते हैं। सवा माशा से डेढ़ माशा तक इसकी फंकी देने से बल की वृद्धि होती है।

इसके भक्षण से उदरशूल मिटता है। इसको ठंडे पानी के साथ घोंट-छानकर पिलाने से पेशाब अधिक आता है।

इसके बीजों में ज़हरीली छूत मिटाने की शक्ति है।

कालीजीरी के पौधे की मकान में धूनी देने से अथवा इसको पानी में पीसकर मकान में छिड़क देने से कई प्रकार के विषैले कीट भाग जाते हैं।

इसको और कलौंजी को पीसकर लेप करने से शिरःशूल आराम होता है। (ख़० अ०)

करजोड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० कर+हिं० जोड़ना] एक प्रकार की ओषधि जो पारा बाँधने के काम में आती है। हस्तजोड़ी। हत्थाजोड़ी।

करजुरु-काय–[ते०] खजूर का फल।

करज्योड़ि–संज्ञा पुं० [सं० पु०] हस्तज्योड़ि नामक एक प्रकार का महाकंद शाक। हाथजोड़ी। हत्थाजोड़ी। हत्थाजूड़ी। रा० नि० व० ७। (२) काष्ठपाषाण का एक भेद।

करज्योड़िकन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करजोड़ी के पौधे का कन्द। यह पारे को बाँधनेवाला और वृष्य है। (वश्यकृत्) होता 'रसबन्धकृद्वृष्यकृच्च' रा० नि० व० ७।

करञ्ज, करञ्जक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) स्वनामाख्यात वृक्ष। वृहत् करंज। डहरकरंज। डिठोहरी, नक्तमाल। ध० नि०। रा० नि०। आ०। दे० "करंज"। (२) करंजुवा। कंजा। कण्ट करेजी। सागरगोटा। भा०। वि० दे० "करंज" २। (३) भँगरा। भँगरैया। भृङ्गराज। जटा०। (४) करञ्जफल। सि० यो० वृहदग्निमुखचूर्ण। (५) कञ्ची। (६) गजपीपल। गजपिप्पली। गण नि०। नि० शि०।

करञ्ज तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) उक्त नाम का एक योग–करंज, चित्रक, चमेली, और कनेर की जड़। इनके कल्क में तेल सिद्ध कर लगाने से इन्द्रलुप्त दूर होता है। शा० ध० सं०। (२) करंज के बीज से निकाला हुआ तेल, जो चर्म रोगों की प्रधान औषध है। करंज का तेल। डिठोहरी का तेल। करंज का तैल। वा०। रा० नि० विशेष दे० "करंज"।

करञ्जद्वय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंजा व करंजुआ और करंज (डिठोहरी) अर्थात् विटप वृक्ष करंज द्वय। यथा–वृक्ष विटप करञ्जौ "एकश्चिरबिल्वः द्वितीयः कण्टकी विटप करञ्जः"। सु० सू० ३८ अ० ङ० श्यामादिः। "करञ्जो देवदारु च"। सि० यो० ३ मा० चि०। एकः पूति करञ्जश्चिर बिल्वाख्यः, द्वितीयः नक्त मालाख्यः। यथा–"भूनिम्ब सैर्य्यक पटोल करञ्ज युग्मम्।" वा० सू० १५ अ० आरग्वधादिः। वि० दे० "करंज"।

करञ्जफल-(क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ का पेड़। कैथ। कपित्थ वृक्ष। रा० नि० व० १७।

करञ्ज-युग्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंजा व करंजुआ और करंज। दे० "करञ्जद्वय"।

करञ्जबीज-वर्तिका-संज्ञा० स्त्री०[सं०स्त्री०] नेत्र रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग। यथा-करंज के बीजों के चूर्ण में पलाश के फूलोंके स्वरस से यथा विधि ७ भावना देकर वर्त्तिकाबनाएँ।

गुण तथा उपयोग-इसे पानी के साथ घिस कर आखों में लगाने से चिरकालीन भी कुसुम (फूली) नष्ट हो जाता है। च०द०नेत्र रो०चि०।

करञ्जबीजादि योग-संज्ञा पुं० [सं पु०] उक्त नाम का एक योग दे० "करंज"

करञ्जबीजादि लेप-संज्ञा पुं० [सं०पु०] अलसक रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग। यथा-करंज की मींगी, हल्दी मुलेठी कसीस, गोलोचन और हरताल इन्हें समान भाग लेकर यथा विधि चूर्ण कर और उसमें शहद मिलाकर लेप करने से अलसक रोग दूर होता है। च० द० अलसक चि०।

करञ्जस्नेह-संज्ञा पुं० [सं० पु०] करंज का तेल। करंज तैल। रा० नि० व० ६। दे० "करंज"।

करञ्जादि-कषाय-संज्ञा पुं० [सं० पु०] विसूचिका में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग, यथा-करंजफल, नीमकी छाल, अपामर्ग, गिलोय, अर्जक तथा इन्द्रजौ। इन औषधियों से यथा विधि साधित वामक कषाय के सेवन से दारुण विसूचिका (हैजा) का नाश होता है। च० द० विसू० चि० वामक कषाय-उक्त क्वाथ द्रव्य मिलित ऽ॥ सेर जल १६ सेर तथा शेष ८ सेर।

करञ्जादि घृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उपदंश रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग, यथा—करञ्ज, नीम की छाल, अर्जुनकी छाल, जामुन की छाल, साल वृक्ष की छाल और बगंद की छाल का कल्क और क्वाथ करके सिद्ध किया हुआ घृत दाह, पाक युक्त लाल और बहते हुए उपदंश को नष्ट करता है। भैष० र० उपदं० चि०।

करञ्जादि तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विसर्प रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग, यथा—करञ्ज, सतिवन (सप्तपर्ण), कलिहारी, सेंहुड और आक का दूध, चीता, भांगरा, हल्दी, मीठा विष और गोमूत्र से पका हुआ तैल, विसर्प, विस्फोटक और विचर्चिका का नाश करता है। यो० र० विष० चि०। विशेष दे० "करञ्ज तैल"।

करञ्जादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, यथा—करंज, चीता, सेंधा नमक, सोंठ इन्द्रजौ और अरलु। इन्हें समानभाग लेकर चूर्ण करें। इसे तक्र के साथ पीने से खूनी बवासीर के मस्से गिर जाते हैं। वृ० नि० र० अर्श चि०।

करञ्जादि नस्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, यथा—करञ्ज की मींगी, देवदारु सरसों मालकाँगनी; हींग, बच, मजीठ, त्रिफला, त्रिकुटा और फूलप्रियंगु, इन्हें समानभाग लेकर बकरे के मूत्र में बारीक पीसकर, नस्य, पान और अञ्जन आदि द्वारा उपयोग करने से उन्माद, अपस्मार और भूत व्याधि का नाश होता है। वृ० नि० र० अपस्मार चि०।

करञ्जादि पुटपाक-संज्ञा पुं० [सं० पु०] गुल्म रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग। यथा—करंज के पत्ते, बड़ के पत्ते, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन्द्रायन मूल और सेंधा नमक प्रत्येक समान भाग लेकर पुटपाक करके २ तो० शहद और जल मिलाकर पीने से गुल्म, उदर रोग पाण्डु और द्वन्दज शोथ का नाश होता है। वृ० नि० र० गुल्म चि०।

करञ्जादि लेप-संज्ञा पुं० [सं० पु०] दे० 'करञ्ज बीजादि लेप"।

करञ्जादि लेह-संज्ञा पुं० [सं० पु०] उक्त नाम का एक योग। यथा—करंजबीज लेकर इतना भूने कि सुर्ख होजाय, इसे चूर्ण कर शहद के साथ बार-बार चाटने से दुस्साध्य छर्दि का नाश होता है। यो० र० छर्दि चि०।

करञ्जादि शीर्ष रेचन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] शिर रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का एक योग। यथा—करंज की मींगी, सहिजन के बीज, तेजपात, सरसों और दालचीनी। इन्हें समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनाएँ।

इसका विधि पूर्वक नास लेने से शिरो विरेचन होकर शिर के समस्त रोग नष्ट होते हैं। वृ० नि० र० शिर रो० चि०।

करञ्जाञ्जन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, यथा—करंज, कमल केशर, चंदन,

नीलकमल, और गेरू को गोबर के रस में पीसकर आँजन करने से रतौंधी का नाश होता है। वृ० नि० र० नेत्र रो० चि०।

करञ्जिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काँटा। करंज। कंजा। सागर गोटा। कण्टक करंज। वै० निघ०। दे० "करंज"। (२) नक्रमाल। डहर करंज। डिठोहरी। सु० चि० २ अ० सद्योव्रण चि०। इसका तेल खुजली में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। विशेष दे० "करंज"।

करञ्जी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाकरंज। श० च०। डिठोहरी। अरारि। डहर करंज। भा० प्र० पू० १ भ० विशेष दे० "करञ्ज"।

(२) लता करंज। बल्ली करंज। कंजा। सागर गोटा। कटकरंज।

करट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धान्य विशेष

पर्य्या०—कराल। त्रिपुटा। रुक्षण। आत्मका ब्रह्मा। कराला। कण्डिका। रुक्षणात्मिका।

गुण—रुचिकारक, ठंडी, गौल्य, (चिकनी) वातकारक, गुरु, (भारी) और पित्त को जीतने वाली है। रा० नि० व० ६।

करट, करटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० करटा] (१) कुसुम का पौधा। बर्रे। कड़। रत्ना०। (२) हाथी की कनपटी। हाथी का गंडस्थल। हला०। (३) कौआ। वायस। मे०।

करटनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेड़ पर का चूहा। वृक्ष मूषिका। रस० र० अन्त्यवृद्धि चि०।

करटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कठिनाई से दुही जानेवाली गाय। हे० च० (२) हाथी की कनपटी। हस्तिगण्डस्थल।

करटिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हथिनी। हस्तिनी

करटी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, करटिन्] हाथी। हस्ती। हे० च०। रा० नि०।

[मरा०, गु०] करेली।

करटु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करकटिया नाम की चिड़िया। कर्करेटु पक्षी। हे० च०।

नोट—इसकी गरदन काली होती है। इसके कानों के पर आगे बढ़कर दो सुंदर सफेद गुच्छे बना देते हैं। यह एशिया और अफरीका के कई भागों में पाया जाता है।

करठी–[कों०] करेली।

करड़–संज्ञा पुं० कड़। कुसुम।

करडायि–[मरा०] कोसम।

करड़े–[पश्तो] झींगुर।

करड्या–[मरा०] कुसुम बीज। बर्रे।

करण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जंबीरी नीबू। जम्बीर वृक्ष। हला०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) हेतु। (२) गात्र। देह। (३) विषयेन्द्रिय। चक्षुषादि इन्द्रिय। (४) हथियार। (५) स्थान। क्षेत्र। (६) क्रिया। काम।

करण कन्दि–[द०] ज़मीकंद। सूरन।

करणत्राण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मस्तक। मत्था। हे० च०।

करणा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करना नीबू। पहाड़ी नीबू। करुणानिम्बुक।

करणाधिप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीव। रूह।

करण्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमल की जड़। भसींड। (२) मेंहदी का फूल।

करण्टु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलोनी। बन नोनियाँ। लोणिका शाक। प० मु०।

करण्टोली–[बम्ब०] धार करेला। फिराड़।

करण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० करण्डा](१) मधु कोष। शहद का छत्ता। (२) दलाढक। (हजारा चमेली)। (३) बाँस की बनी हुई टोकरी वा पिटारी। डली। डला। करण्डी। मे० डत्रिक। (४) कारंडव नाम का हंस। हारा०। (५) एक प्रकार की चमेली। हज़ारा चमेली। (६) कालखण्ड। यकृत। (७) एक प्रकार का सेवार। शैवाल विशेष।

[हिं०] कुरुल् पत्थर।

करण्डक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बाँस की डलिया या पेटारी।

करण्डफल, करण्डफलक–संज्ञा पुं० [सं० पु०] कैथ का पेड़। कपित्थ वृक्ष। रा० नि० व० ११।

करण्डा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) यकृत। कालखण्ड। (२) फूल रखने की पिटारी।

करण्डी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० करण्डिन्] (१) मछली। मत्स्य। त्रिका०। (२) महानाडी। रा० नि०। (३) फूल की पेटारी।

करत–दे० "कुर्त"।

करतनः, करतीनः–[फ़ा०] मकड़ी का जाला।

करतम–संज्ञा पुं० [?] ज़हर (कदाचित् मीठा तेलिया) का एक भेद।

करतर–[?] अकरकरा।

करण्डक–संज्ञा पुं० [सं०पुं०] बाँस की डलिया या पेटारी।

करतरी–संज्ञा स्त्री० दे० "कर्त्तरी"।

करतल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० करतली] (१) हाथ की गदोरी। हथेली। हस्ततल। "ऊर्द्ध्वं करतलेस्मृतं"। रा० नि० व० १८। करतल सङ्कोचनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मांस-पेशी विशेष। हाथ को बटोरनेवाली पेशी। हाथ को बन्द करनेवाली पेशी।

करतली–संज्ञा स्त्री० [सं०] हथेली।

करतलीय अस्थ्यन्तरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नाड़ी विशेष।

करताल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दे० "करताली"।

करताली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) करताल नाम का बाजा। करतारी। (२) दोनों हथेलियों के परस्पर आघात का शब्द। ताली। हथोड़ी। करतलध्वनि। (३) ताड़ की मादा।

करतीनः–[फ़ा०] मकड़ी का जाला।

करतृण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] केवड़ा। सफ़ेद केतकी।

करतोय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ओले का पानी। पत्थर का पानी। वर्षापलजल।

करदम–संज्ञा पुं० दे० "कर्दम"।

करदल, करदला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो हिमालय में पाँच हज़ार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। पत्तियाँ छोटी-छोटी और गुच्छे के रूप में टहनियों के सिरों पर होती हैं। पतझड़ के बाद नई पत्तियाँ निकलने से पहले इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं जिनके बीच में दो-दो बीज होते हैं। इसके बीज खाये जाते हैं। यह मार्च अप्रैल में फूलता है।

करदार–[?] दरदार।

करदौना–संज्ञा पुं० [सं० कर×हिं० दौना] दौना।

करद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुचले का पेड़। कारस्कर वृक्ष। रा० नि० व० ९।

करधङ–[बम्ब] (Perdin eylvatica) ककर। करकटिया।

करधनी–संज्ञा पुं० [हिं० काला×धान] एक प्रकार का मोटा धान जिसके ऊपर का छिलका काला और चावल का रंग कुछ लाल होता है।

करधर–संज्ञा पुं० [देश०] महुए के फल की रोटी। महुअरी।

करन–संज्ञा पुं० [देश०] ज़रिश्क।

करनकुस–[बं०] घाट जड़ी।

करनतुत्त–[ता०] काली कंघी का पौधा।

करनतूत–[पं०] कीमु। हीमु।

करनपात–संज्ञा पु० [हिं० करन, सं० कर्ण पात= पत्ता] एक घास जो पत्र विहीन, फल शून्य, कटे हुये नाख़ून की तरह कालापन लिये भूरे रंग की होती है। यह बदमज़ा और कड़ुई होती है। अङ्गारुज्जन।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष।

हानिकर्त्ता—मस्तिष्क को।

दर्पघ्न—उन्नाब।

प्रतिनिधि—इन्द्रजौ और सुपारी के फूल।

मात्रा—६ मा० से १ तो० ११ मा० तक।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह यर्कान स्याह (Black Jaundice) तथा शुष्क कास में उपयोगी है। अनिद्रा रोग में इसका विशेष (बिलम्बासा) प्रभाव होता है। इसका तेल तर व शुष्क खुजली एवं अण्ड शोथ के लिये गुणकारी है। उक्त रोग में सिरके में पकाकर इसका प्रलेप करते हैं। ख० अ०। यह त्वग्रोगों में गुणकारी है और त्वचा के काले धब्बों को मिटाता है।

करनपूर–संज्ञा पुं० [सं० कर्णपूर] आसापाला का फूल।

करनफल–[अफरीका] करन्फुल शामी।

क़रनफ़ल, क़रनफ़ुल–[अ०] लौंग। लवंग।

क़रनफ़लीन–[अ०] लौंग का सत। लौंगीन। केरियोफाइलीन।

क़रनफ़ले बुस्तानी–[अ०] क़रंजमिश्क के पत्ते।

क़रनफ़ले शामी–[अ०] एक छोटे पौधे का नाम है जिसके पत्ते वनफ़शा के पत्तों की तरह और फूल सफ़ेद एवं सुगंधित होता है।

क़रनफ़ान–[सिरि०] करोया।

क़रनफ़ार–[?] करोया।

करनी–संज्ञा स्त्री० एक प्रकार का पुष्पवृक्ष जो कोंकण में अधिकतया होता है। यह तिक्त, तीक्ष्ण एवं उष्ण होती है और कफ, पित्त, उदरीयाध्मान तथा पेट के कीड़ों का नाश करती है। परीक्षित है। ता० श०।

करन्फुल शामी–[अ०] एक पौधा जिसका तना प्रायः एक गज ऊँचा होता है। यह ऊपर से खुरदरा होता है। इसमें अनेक शाखाएँ होती हैं। इसके पत्ते इश्क़पेचा और वनफ़शे के पत्तों की तरह होते हैं। फूल सफेदी लिये नीलवर्ण का होता है, जिसमें से लौंग की गंध आती है। इस लिये इसे गुले क़रन्फुल (लौंग का फूल) कहते हैं। इसकी जड़ ग़र्बक़ स्याह की तरह होती है, जिसमें से दालचीनी की बू आती है। प्रायः तर जगहों में जंगली तुलसी के साथ उत्पन्न होता है। यह श्याम देश में बहुतायत से होता है। करन्फलयः (अफ़रीका)। ज़हूरः।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में गर्म एवं रूक्ष।

हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को।

दर्पघ्न—बनफ़शा।

मात्रा—३॥ मा०।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—इसको सुगंध द्रव्यों में मिलाते हैं। इसके पीने से मृगी में लाभ होता है। आँख पर इसके लेप करने से वातज और कफज (रतूबी) सूजन उतर जाती है। प्रारम्भ में चक्षुगोलकगत नाड़ीव्रण को अतीव गुणकारी है। इसके लगाने से स्तनजात शोथ भी विलीन होता है और जमा हुआ दूध बिखर जाता है। इसका फूल सूँघने से प्रतिश्याय का निवारण होता है। इसको क्वथित कर पीने से श्वासकृच्छ्रता, दमा, तरखाँसी और मूत्रावरोध नष्ट होते हैं। इसके काढ़े में आबज़न करने से स्त्री का रुका हुआ मासिक स्राव जारी हो जाता है। इसकी जड़ को क्वथित कर पीने से रजोरोधजनित पीड़ा का निवारण होता है। इसके पीने से गर्भपात होता है। इसको मदिरा के साथ पीने से कीड़े-मकोड़ों का विष नष्ट होता है। इसके लेप से अंगों की बादी मिटती है। इसकी जड़ को कुचल कर तेल में पकाकर मलने से धनुस्तम्भ (कुज़ाज़) तथा ज्वर के दौरे में लाभ होता है। (ख० अ०)

क़रनफ़ूल–[अ०] लौंग।

करनब–[मुअ०] दे० "कर्नब"।

क़रनबाद–[?] करोया।

करना–संज्ञा पुं० [सं० कर्ण] एक पौधा जिसके पत्ते केवड़े के पत्ते की तरह लंबे-लंबे पर बिना काँटे के होते हैं। इसमें सफ़ेद-सफ़ेद फूल लगते हैं जो बड़े खुशबूदार होते हैं।

संज्ञा पुं० [सं० करुण] बिजौरे की तरह का एक बड़ा खट्टा नीबू जो कुछ लंबोतरा (वा गोल) होता है। इसे पहाड़ी नीबू भी कहते हैं। हिंदुस्तान में बहुत सी जगहों में इसका पेड़ लगाया जाता है। साहब अंजुमन आराये नासिरी के अनुसार यह ज़ंदरान और फ़ारस में होता है। विशेष तया पारस्य के ग्रामों में यह बहुत होता है। कच्चा आरम्भ में हरा और कड़वाहट लिए खट्टा होता है। जबतक यह पीला नहीं होता, इसकी उक्त कड़वाहट बनी रहती है। परन्तु पककर जब यह कुछ-कुछ रक्तवर्ण का होजाता है, तब इसमें मिठास आजाती है। इसकी पत्ती कागज़ी नीबू की पत्ती से चौड़ी और बिजौरे की पत्ती से छोटी होती है। इसके बीज भी बिजौरे के बीज से छोटे होते हैं। उन देशों में इसके पेड़ अधिकता से होते हैं जहां गरमी बहुत पड़ती है। इसके फूल में चार पंखड़ियाँ होती हैं। इन फूलों से अर्क बाहर खींचते हैं। इसके फल खाये जाते हैं। इसके रस से शर्बत पकाते हैं। किसी-किसी ने लिखा है कि इसका फल बहुत बड़ा होता है और तौलने पर कभी-कभी पाँच से दश सेर तक होता है। यह देखने में गोलाकार होता है। इसका छिलका चिकना और पीला देख पड़ता है। गूदा सफ़ेद वा गुलाबी होता है। यह वृक्ष सदा फला करता है। बम्बई में जो करुण दिसम्बर या जनवरी के महीने में आता है, वह सबसे अच्छा कहा जाता

है। बनाविया से आने के कारण इसे बनावी कहते हैं।

पर्य्याय—करुणः-सं०, करना, कन्ना-हिं०। नारंज-अ०। नारंग-फ़ा०। करुणोलेबुर गाछ, कन्नालेंबू-बं०। Citrus Decumana

नोट—शर्फ़ुद्दीन ने मुफ़्रिदात हिंन्दी में इसे नारंगी लिखा है, जो सर्वथा प्रमादपूर्ण है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह नारंगी से सर्वथा भिन्न वस्तु है। क्योंकि अंजुमन के संकलनकर्त्ता स्वयं नारंगी में यह लिखते हैं कि उसकी ईकार संबन्धवाचक है। अर्थात् जिसका संबंध नारंग से है। यह नारंजसे क्षुद्रतर एवं मधुरतर और अधिक सुस्वादु होती है। इसका छिलका सुगंधित होता है।

नागरंगवर्ग

(*N. O. Rutaceœ*)

उत्पत्ति-स्थान—भारतवर्ष। यह मलयद्वीपपुञ्ज फ्रेंडली और फिजी में स्वभावतः उत्पन्न होता है। करुण जंबूद्वीप से भारत में आया है। इसे उष्ण प्रधान देश में अधिक लगाते हैं। भारत तथा ब्रह्मा में यह अधिक होता है। किंतु दाक्षिणात्य एवं बंगदेश की अपेक्षा आर्यावर्त्त में यह कम मिलता है।

औषधार्थ व्यवहार—फल त्वक् का बाहरी हिस्सा, फलत्वक् तैल, पक्व फल स्वरस, पत्र और पुष्प प्रभृति।

औषध-निर्माण—(१) करुण फल त्वक् तैल।

प्राप्त विधि—करने के छिलके को दबाने से या भभके में अर्क खींचने से उसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है, जो बहुत गुणकारी होता है। कभी इस प्रकार इसका तेल तैयार करते हैं कि इसके ताज़े पीले छिलकों या फूलों को तिल-तैल में डालकर धूप में रखते हैं। एक सप्ताह के बाद उन्हें निकालकर पुनः नए फूल छिलके डाल रखें। तीन सप्ताह तक ऐसा करते रहें। इसके बाद छानकर रख लेते हैं और समयानुकूल इसका यथाविधि सेवन करते हैं।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कफ वाय्वाम मेदोघ्नं पित्त कोपनञ्च।

(राज० ३ प०)

यह कफ, वायुनाशक, आमदोष नाशक, मेद नाशक और पित्तवर्द्धक है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पीला छिलका और फूल प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष, अम्लत्व द्वितीय कक्षांत में शीतल एवं रूक्ष है। मतांतर से द्वितीय कक्षा में शीतल और प्रथम कक्षा में रूक्ष है। भीतर का सफ़ेद छिलका और बीज प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। औरेसी के लेखानुसार कन्ना नीबू विविध शक्ति विशिष्ट है। तोहफ़ा के रचयिता के लिखितानुकूल पीत त्वक् और पुष्प द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। अबु हामिद बिन अली बिन उमर समरकंदी रचित रिसाल: अग़्ज़ियः व अशरबः में इसका उल्लेख मिलता है।

हानिकर्त्ता—अम्ल और विशेषतः नीहार भक्षण करने से यकृत निर्बल होता है और शीतल आमाशय शिथिल पड़ जाता है।

दर्पघ्न—शर्करा एवं मधु।

प्रतिनिधि—बिजौरा (कन्ना बिजौरे से अधिक लतीफ़—नरम पतला है)।

मात्रा—बीज २। मा०।

गुण, कर्म, प्रयोग—शर्करा मिश्रित कन्ने का रस मनोल्लासकारी है। यह पित्त प्रकोप को शमन करता, रक्तोद्वेग को लाभ पहुँचाता, पित्त का मल मार्ग से उत्सर्ग करता और पित्त का प्रवर्त्तन भी करता है। यह मद्यपानज खुमार को भी मिटाता है। यह पैत्तिक ऊष्म व्याधियों को लाभकारी है एतद्गत अम्लता में एक प्रकार की पिच्छिलता होती है जो उरोजात नजला (नजलात सीना) एवं कास के लिए सात्म्य है। विशेषतया उस समय जब इसके फाँकों के सफेद छिलके को बीच में से चीरकर बीज निकाल कर और थोड़ी सी खांड़ बुरक कर आग पर रख देवें, कि दो-तीन जोश आ जाय। फिर इसे चूसें। नाशते की

जगह इसका रस पीने से गरम ख़ाफ़क़ान, पैत्तिक कास और उष्ण आमाशयगत प्रदाह का निवारण होता है। शर्करा मिलाकर इसका शर्बत बनाकर खाने से भी उक्त लाभ प्राप्त होते हैं। यह उष्ण प्रकृति को बहुत सात्म्य है। पुट्ठों के लिए अन्य अम्ल द्रव्यों की अपेक्षा यह कम हानिकारक होता है। तथापि अस्वस्थ पुट्ठों को इससे हानि पहुँचती है। इसके बीज बिषघ्न हैं। सात माशे इसके बीज भक्षण से कीटादि जङ्गम बिष दूर होते हैं। फलत्वक्, फल और फल-मुकुल आमाशय बलप्रद एवं संग्राही और क़ाबिज है। इसके छिलके को सुखाकर पानी के साथ खाने से छर्दि और हल्लास दूर होते हैं। यह उदरज कृमियों को निकालता है, इसके पत्र-पुष्प और फलत्वक् सूँघने से मन प्रफुल्लित होता है। कन्ना और इसके पत्र प्लेग-ताऊन और वायुदोषज महामारी को दूर करतेहैं। इसका फूल सूँघने से प्रतिश्याय आराम होता है। इसकी जड़ के बारीक रेशे शीतल मारक बिषों के लिए अतीव गुणकारी है। इनको सुखाकर सात माशे की मात्रा में मद्य के साथ सेवन करना चाहिये। इसका ६ माशे छिलका मद्य के साथ सेवन करने से बिच्छू का बिष उतर जाता है। ६ माशे इसका तेल पीने और लगाने से भी शीतल प्राणिज बिष उतर जाता है। इसके छिलकों से प्राप्त तैल नारदीन तैल के समान गुणकारी होता है। कोई-कोई इसे उसकी अपेक्षा उत्तम समझते हैं। इसके फूल एवं फलत्वक् सुखाकर कपड़ों में रखने से ये अपने प्रभाव से उनमें कीड़े नहीं लगते देते हैं। इसका पीला छिलका सिरके में डालकर अचार बनाकर या इसका मुरब्बा तैयार करके खाने से आमाशय को बल प्राप्त होता है। ख० अ०।

इसके फूलों से खींचे हुये अर्क को अर्क बहार कहते हैं। यह उष्ण और रूक्ष है तथा मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करता, हृदय को प्रफुल्लित करता, भूख बढ़ाता, कामोद्दीपन करता और उरोशूल, वायुजन्य उदरशूल, ख़फ़क़ान तथा मूर्च्छा में लाभकारी है।

वैद्यों के मत से कन्ना उष्ण है। यह कफ, वायु और पेट के बढ़ जाने को मिटाता है। फलत्वक् उदरजन्य वायु शूल तथा बादी को दूर करता है। इसका शर्बत पानी में मिलाकर पीने से शांति मिलती है। इसका रस पिलाने से विषाक्त कीटादि दंशजनित विष का निवारण होता है। इसका ताज़ा रस पिलाने से पाचन नैर्बल्य,जिसमें भोजनोत्तर कै हो जाती है, मिटता है। इसके रसमें जवाखार और मधु मिलाकर पिलाने से उरोशूल, कटिशूल, कूल्हे के जोड़ का दर्द और बादी का रोग आराम होता है। २॥ तोले कागजी नीबू के तेजाब में सोलह गुना पानी मिलाकर विलयन प्राप्त करें इसमें कन्ने के तेल को कुछ बूँदें डालकर उसको जगह काममें लासकते हैं। कन्ने का रस शीघ्र बिगड़ जाता है। इस लिये इसका रस देर तक नहीं पड़ा रहने देना चाहिये, प्रत्युत तुरत काम में लाना चाहिये, इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखनेकी सर्वोत्तम विधि यह है –सर्व प्रथम कन्ने का रस निचोड़ कर कुछ देर तक पड़ा रहने देवें। जब उसका जम जानेवाला हिस्सा प्रथक् हो जाय, तब इसे वस्त्र पूत करके बोतल में गले तक भर देवें और उसके ऊपर बादाम का तेल या कोई अन्य तेल डाल देवें। अथवा बोतलों को औटते हुये पानीमें सोलह मिनिट तक रखकर फिर उनमें काग लगा दिया जाय, तो और भी उत्तम हो। अथवा मंदाग्नि पर उसका पानी उड़ाकर रसको गाढ़ा कर लेवें। अथवा रस को ऐसी सरदी में रखें, जिसमें तजलीयांश जम जाय और केवल अर्क मात्र शेष रह जाय। गुण में यह पहले से भी बढ़ जाता है।

इसके पेड़ की जड़ की छाल का काढ़ा पिलाने से ज्वर मुक्त होता है। इसके बीजों की फंकी देने से कीड़े मरते हैं। इसका रस और बारूद लगाने से खुजली मिटती है। कन्ने का अचार बनाकर खाने से तिल्ली कटती है। (ख० अ०)

संज्ञा पुं० [देश० दिल्ली] खट्टा का फूल।

संज्ञा पुं० [?] (१) हूम (बम्ब०)। चिलकुड़ (ते०)। (२) ऊँटकटारा। उश्तरा-खार। (३) ओस। क़िराद।

करना नीबू–संज्ञा पुं० दे० "करना"।

करनियून–[यू०] शाहबलूत।

करनी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का फूल।
संज्ञा स्त्री० [देश० काश०] साँवा। श्यामक।
करनीमरम्–[ता०] खरसंग।
करनूब–[देश० (उ० प० प्रां०)] Caratama silliqua
क़रनूस–[रू०] हाऊबेर। अरअर।
क़रनूस क़ालून–[रू०] चिलग़ोज़ा।
क़रनूह–[मुअ०] गोलमिर्च के बराबर एक दाना। हरनूह।
क़रनः–[अ०] सींग। शृंग।
क़रन्तिया–[सिरि०] पुदीना।
क़रन्तिया दरीं आस–
क़रन्तिया रमिया–
[सिरि०] नहरी पुदीना।
क़रन्तियाव तूरा–[सिरि०] पहाड़ी पुदीना।
क़रन्तिया वफ़जअ्ला–[सिरि०] खेत का पुदीना।
क़रन्तिया वेरा–[सिरि०] जंगली पुदीना।
करपत्र (क)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करौंत। क्रकच। सु० सू० ८ अ०। यह सुश्रुत-वर्णित बीस प्रकार के अस्त्रों में से एक अस्त्र है। इसके द्वारा छेदन और लेखन कर्म किया जाता है।
करपत्रवान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं० करपत्रवत्] ताड़ का पेड़। तालवृक्ष। श० च०।
करपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) जलक्रीड़ा। जटा०। (२) तिलपर्णी।
करपर–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्पर] खोपड़ी। कर्पर।
करपरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पीठ की पकौड़ी। बरी। मुँगौरी-मेथौरी।
करपर्ण–संज्ञा पुं० [स० पु०] (१) भिंडी का पौधा। भिंडा वृक्ष। रा० नि० व० ४। (२) लाल रेंड़। रक्तैरण्ड। रा० नि० व० ८।
करपर्णी–संज्ञा० स्त्री० [सं० स्त्री०] भेण्डा। भिण्डी। राम तरोई।
करपल्लव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) उँगली। अंगुली। शब्दकल्प०। (२) हस्त। हाथ।
करपत्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चमगीदड़ आदि।
करपात्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]
करपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
जलक्रीड़ा। हारा०।
करपाद-पित्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पित्त जन्य एक रोग। इस रोग में हाथ पैर में जलन होती है। यथा—
"करपाद विदाहश्चावयवानां च शेषकृत्।
मध्ये पित्तस्य तृष्णास्यात् करपादे च पैत्तिके।"
बसवरा० ७ अ०
करपान–संज्ञा पुं० [देश०] एक चर्म्मरोग जिसमें बच्चों के शरीर पर लाल लाल दाने निकल आते हैं।
करपाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खड्ग। तलवार। खड्ग। इसमें एक ही ओर धार रहती है।
करपालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का अस्त्र जिसमें एक ही धार हो। छुरा। अ० टी० सा०।
क (का) रपासम्–[ते०] कपास।
करपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [ ] जंगली पीपल।
करपिंचा–[सिंगा०] सुरभिनिंबु। कड़ा नीम।
करपीड़न–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] विवाह। पाणिग्रहण।
करपुट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट। अंजली। अंजुरी।
करपुष्प–[ते०] वन आर्द्रक। जंगली अदरक। (Zingiber cassumunar, *Roxb.*)
करपृष्ठ–संज्ञा पुं० [स० क्ली०] हथेली के पीछे का भाग। करभ।
करपोक रिशि–[ता०] वकुची। बावची।
करप्पु डामर–[ता०] (Canarium Strictum) काला डामर।
करपुकोङ्गिलियम्–[ता०] काला डामर।
करपुलि–[म०] पंजीरी का पत्ता।
करफ़–[अ०] बीमारी का नज़दीक होना। रोग प्रगट होना।
करफ़रास–[?] हिना।
करफ़ियून–[यू०] कबाबचीनी।
करफूल–संज्ञा पुं० [हि० कर+फूल] दे० "दौना"।
करफ़्श–[फ़ा०] दे० "करफ़्स"।
करफ़्स–[फ़ा०] करफ़्श से मुअ०] अजमोदा।
करफ़्स अजामी–[अ०] करफ़्स माई।
करफ़्स कोही–[फ़ा०] अजमोदा।
करफ़्स जबली–[अ०] पहाड़ी करफ़्स।
करफ़्सतरी–[फ़ा०] शमीरनियून।

करफ़्सदेव–[अ०] हंसराज। परसियावशाँ।
करफ़्स दश्ती–[अ०] कबीकज।
करफ़्स नब्ती–[अ०] करफ़्स का एक बड़ा भेद।
करफ़्स पहाड़ी–[.....] पहाड़ी अजमोदा।
करफ़्स बर्री–[अ०] पहाड़ी जंगली करफ़्स।
करफ़्स मकदूनी–[फ़ा०] अजमोदा।
करफ़्स मशारिक़ी–[अ०] करफ़्स का एक बड़ा भेद।
करफ़्स माई–[अ०] पानी में पैदा होनेवाला करफ़्स।
करफ़्सशातवी–[अ०] करफ़्स का एक बड़ा भेद। अकुसलियून।
करफ़्स सख़री–[अ०] पथरीली ज़मीन में पैदा होनेवाला करफ़्स।
करफ़्स सहराई–[अ०] जंगली अजमोदा।
करफ़्सा–[यू०] अजमोदा।
करफ़्सुल् जिबली–[अ०] फ़ितरिसलियून।
करफ़्सुल् माऽ–[अ०] कुर्नुल्यून। जर्जीरुल्माऽ।
करफ़्सुल् सख़री–[अ०] दे० "करफ़्स सख़री"।
करबडावल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] रामचना वा खटुआ नाम की बेल। अत्यम्लपर्णी। वल्लीसूरन रा० नि० व० ३।
करबतवा–संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसकी बेल पानी के किनारे जल पर फैलती है और वह खोखली होती है। इसका साग पकाकर खाते हैं। खरथुआ।
प्रकृति—गरम तर।
गुण कर्म, प्रयोग—यह आध्मानकारक है तथा आहार पचने के समय एवं तदुत्तर वायु निःसारक और उदर मृदुकारी है। —ना० मु०।
करबफूल–[कों०] (Mussaenda frondosa) नागवल्ली। बेबिना।
करबरा–[पं०] डकरी (पं०) दैदल (नैपा०)।
करबः–[फ़ा०] एक पौधा है।
करबन–[?] एक दवा का नाम है।
करबश, करबशः– } –, फ़ा०] जंगली छिपकली।
करबस, करबसः– } बज़्ग़ः।
करबसू– }
करबावस–[?] जंगली छिपकली बज़्ग़ः।
करबाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नख। नाखून। श० मा०। (२) खड्ग। तलवार। खाँड़ा।
करबालिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करवाली। एक छोटी तलवार।
करबी–[बं०] कनेर। ख़रज़हरा।
करबीर–संज्ञा पुं० दे० "करवीर"।
करबीरनी–संज्ञा स्त्री० दे० "करवीरणी"।
करबुन–[?] एक दवा का नाम है।
करबुर–संज्ञा पुं० दे० "कबुर"।
क़रबोल:–[?] लवलाव का एक भेद।
करभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० करभी] (१) गजपीपल। प० मु०। (२) ऊँट। रत्ना०। (३) ऊँट का बच्चा। उष्ट्र शावक। (४) हुरहुर। सूर्य्यावर्त्त। (५) गजशिशु। हाथी का बच्चा। अ० टी० सा०। (६) हाथी का सूँड़। करिशुण्ड। (७) नख नाम की सुगंधित वस्तु। नखी। रा० नि० व० १२। (८) हथेली के पीछे का भाग। कर पृष्ठ। Carpus (९) कटि। कमर।
करभक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रियतम हस्तिशावक या उष्ट्रशावक। दे० "करभ"।
करभकाण्डिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊँटकटारा उष्ट्रकाण्डि। रा० नि० व० १०।
करभञ्जिका करभण्डिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) महाकरंज। अरारि। डहर करंज। भा० पू० १ भ०। (२) लता करंज।
करभ पृष्ठया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धमनी विशेष। (Dorsal carpal artery)
करभप्रिय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटे पीलू का पेड़।
करभप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दुरालभा (२) क्षुद्र दुरालभा। छोटा धमासा। रा० नि० व० ४। (३) उष्ट्र वा करिशावकादि की स्त्री। छोटी हथिनी वा उँटनी।
करभवल्लभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कैथ का पेड़। (२) छोटा पीलू का पेड़। रा० नि० व० ११।
करभवारुणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ऊँटकटारे की शराब। "स्थितंकरभवारुणी"। रस० र० वाजी०। उष्ट्रकण्टकगुल्मोत्थित वारुणी।
करभ संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथ की पीठकी संधि। (Carpal joint) अ० शा०।

करभा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृश्चिकाली । विछाती । रा० नि० व० ६ । (२) युग्मफला । उतरन । इन्दीबरा । रा० नि० । नि० शि० । (३) क्षुद्रदुरालभा । छोटा धमासा । नि० शि० ।

करभाण्डिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अङ्गारवल्लिका।

करभादनिका, करभादनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षुद्रदुरालभा । छोटा धमासा । रा० नि० व० ६ ।

करभान्तर–संज्ञा स्त्री० [सं०] उक्त नाम की संधि । (Intercarpal joint) अ० शा० ।

करभास्थि–संज्ञा स्त्री० [स०] वह हड्डी जो हथेली के पीछे होती है । कराङ्गुलिशलाका । (Metacarpus)

करभी–संज्ञा स्त्री० [सं० पु० कराभिन्] [स्त्री० करभी] (१) हथिनी । स्त्रीकरभ । (२) ऊँटनी । उष्ट्री । भा०म० ३ भ० सू० घा० चि० । (३) छोटी मेढ़ासिंगी, ह्रस्व मेषशृंगी । (४) सफेद अपरा जिता ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी । हस्ती ।

करभीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंह । शेर । श० र० ।

करभु–संज्ञा पुं० [सं०] रोहिण ।

करभू–संज्ञा [सं० स्त्री०] नख । नाखून ।

करभोदर्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धमनी विशेष । अ० शा० । (Vatarcarpal artery.)

करभोरू–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सूँड़ के ऐसा जंघा ।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चौड़ी जाँघ वाली औरत । प्रशस्त ऊरुविशिष्टा स्त्री ।

वि० [सं०] जिसकी जाँघ हाथी की सूँड़ की सी मोटी हो । जिसकी जाँघ सुन्दर हो । सुंदर जाँघवाली ।

करम–संज्ञा पुं० [अ०] अंगूर का पेड़ ।

संज्ञा पुं० [बम्ब०] मुर नाम की गोंद वा पच्छिमी गुग्गुल जो अरब और अफ्रिका से आती है । इसे "बंदर करम" भी कहते हैं । वोल ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक साग । (२) करम कल्ला । कर्नब ।

संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो तर जगहों में विशेष कर जमुना के पूर्व की ओर हिमालय पर ३०००फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है । हिंदू लोग इसे कदम की एक जाति मानते हैं । संस्कृत ग्रंथकार इसे "धारा कदम्ब" वा कलम्बक लिखते हैं । इस पेड़ को हलदू वा हरदू भी कहते हैं । (Adina Cordifolia, *Hook. f.*) वि० दे० 'कदम" ।

करमई–संज्ञा स्त्री० [देश०] कचनार की जाति का एक झाड़ीदार पेड़ जो दक्षिण मलाबार आदि प्रांतों में होता है । हिमालय की तराई में गंगा से लेकर आसाम तक तथा बंगाल और बरमा में भी यह पाया जाता है । बंबई में इसकी चरपरी पत्तियां खाई जाती हैं । और जगह भी इसकी कोपलों का साग बनता है ।

करमकल्ला–सं० पुं० [अ० करम+हिं कल्ला] एक प्रकार की गोभी जिसमें केवल कोमल कोमल पत्तों का बँधा हुआ संपुट होता है । इन पत्तों की तरकारी होती है । यह जाड़े में फूल गोभी के थोड़ा पीछे माघ फागुन में होती है । चैत में पत्ते खुल जाते हैं और उनके बीच से एक डंठल निकलता है, जिसमें सरसों की तरह के फूल और पत्तियाँ लगती हैं । फलियों के भीतर राई के से दाने वा बीज निकलते हैं ।

पर्य्या०–पत्र गोभी, पात गोभी, मूत्र गोभी, बंद गोभी, बँधी गोभी, करमकल्ला –हिं० । करम, कलम' कलमगिर्द –फ़ा० । कर्नब, वक़लतुल् अन्सार–अ० । Brassica–ले । Gabbage–अं० ।

टिप्पणी–आयुर्वेदीय निघंटु ग्रंथों में करमकल्ले का उल्लेख नहीं पाया जाता । ख़जाइनुल् अद्विया में बुस्तानी, जंगली और दरियाई भेद से जो तीन प्रकार के करमकल्ले का निरूपण किया गया है, उनमें बुस्तानी का वर्णन करमकल्ले का न होकर, फूल गोभी का सा जान पड़ता है । इसमें से हर एक के पुनः अनेक उपभेद होते हैं । इसके अनुसार जंगली क़िस्म कड़ुई होती है । अनार के दानों के रस के साथ पकाने से इसकी उक्त कड़ुवाहट जाती रहती है । इसमें औषधीय गुण की प्रबलता पाई जाती है । इसके बीज श्वेत मरिच की तरह होते हैं । इसके पत्ते बागी की अपेक्षा आध के सफ़ेद पर रोंईंदार और क्षुद्रतर

होते हैं। करमकल्ला शब्द से वह क़िस्म अभिप्रेत होती है, जो बागों और बाड़ियों में आरोपित होती है। इसको आरब्य भाषा में कर्नब नब्ती भी कहते हैं। कनबुल् माउ नीलोफ़र की अन्यतम आरब्य संज्ञा है। करमकल्ले की कोई पृथक् जाती नहीं होती। इसकी दरियाई जाति इससे भिन्न ही है। इसके पत्ते बड़े बड़े और जड़ लाल होती है। इसमें दूध होता है। स्वाद में यह तिक्त और क्षारीय होता है। विशेष विवरण के के लिये 'गोभी' शब्द के अंतर्गत देखें।

सर्षप वर्ग

(*N. O. Cruciferœ.*)

उत्पत्ति स्थान—विदेशों से आकर अब भारतवर्ष में सर्वत्र होता है।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

पत्रगोभी सरा रुच्या वातला मधुरा गुरुः।

(शा० नि० भू० परि०)

पातगोभी वा करमकल्ला—दस्तावर, रुचिकारक, वातकारक, मधुर और भारी है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—विभिन्न शक्ति विशिष्ट (मुरक्किबुल् क़ुवा) और प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। मतांतर से तृतीय कक्षा में रूक्ष है। कोई कोई इसके पत्तों को द्वितीय कक्षा में उष्ण रूक्ष निरूपित करते हैं। जंगली तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। बाग़ी करमकल्ले के बीज प्रथम कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। स्वाद—फीका हरॉयध और किंचित् तिक्त। हानिकर्त्ता—तबख़ीर वा वाष्पारोहण के कारण दृष्टि एवं मस्तिष्क को निर्बल करता है। दूषित रक्तोत्पादनीय आहार (रदीयुल्गिज़ा) है। सांद्र सौदावी ख़ून उत्पन्न करता है। इसे अति मात्रा में सेवन करने से आकुलताकारक स्वप्न दर्शन होता, दुष्ट चिंता एवं दूषित और गर्हित विचार उत्पन्न होते हैं। यह आमाशय को हानिप्रद है, दीर्घपाकी और आध्मानकारक है, विशेषकर गरमी में उत्पन्न होनेवाला बीज फुप्फुस को हानिप्रद है।

दर्पघ्न—गरम मसाला, लवण, घृत, छाग मांस और इसका जल में उबालकर और उस जलको फेंककर और भूनकर पकाना। शहद इसके बीजों का दर्पघ्न है। रोग़न और कुक्कुट मांस।

प्रतिनिधि—गोभी।

मात्रा—खाद्य है। इसका साग अधिकता से खाया जाता है। बीज ३॥ माशे और कोई-कोई ६ माशे तक इसकी मात्रा बतलाते हैं।

गुण, कर्म, प्रयोग—(१) बुस्तानी वा बाग़ी करमकल्ला दोष परिपाककर्त्ता, कोष्ठ मृदुकर्त्ता (मुलय्यन) और रौक्ष्यकारक वा शोषणकर्त्ता (मुजफ़्फ़िफ़) है। इसकी मृदुकारिणी शक्ति इसके जलीयांश में होती है और शोषण कारिणी (तजफ़ीफ़) शक्ति इसके जर्म (ठोसावयव) में। इसको उबालकर पहला पानी फेंक देने से इसका कोष्ठमृदुकारी गुण जाता रहता है और विपरीत उसके यह संग्राही होजाता है। इसी कारण जब इसे अधिक गलाकर पकाते हैं। तब यह संग्राही अर्थात् काविज़ होजाता है। क्योंकि इसका द्रवांश (रतूबत) नष्ट होजाता है। यह आध्मान कारक है और अपने प्रभावज गुण के कारण जिह्वा को शुष्क करता है, वाजीकरण कर्त्ता, मूत्रकर्त्ता, आर्त्तव रजःस्रावकर्त्ता, अवरोधोत्पन्न कर्त्ता और ख़ुमारी को दूर करता है। इसके काढ़े पीने से संधिशूल आराम होता है। यह शिरःशूल मिटाता और शैथिल्य वा अंगसाद सुस्ती मिटाता है। इससे रक्त कम उत्पन्न होता है। अजामांस के साथ पकाने से यह अपेक्षाकृत उत्तम होता है। इसके भक्षण से नींद बढ़ जाती है। इसके बीज भक्षण से मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहण नहीं होता और शिरःशूल आराम होता है। यदि क्लिन्नता, वाष्प वा मस्ती के कारण दृष्टि जाती रहे और धुंध पैदा होजाय, तो इससे उक्त विकार दूर होजाता है पर यदि नेत्र में रौक्ष्य का प्राबल्य हो, तो यह अत्यंत हानिकर होता है। यह क्लिन्न नेत्र में उपकारी है। यह कंपवायु में भी लाभकारी है। यह जीर्णकास को दूर करता है। सिरके के साथ यह प्लीहा शोथ को मिटाता है। यदि आवाज पड़ जाय तो यह उसको खोलता और शुद्ध करता है। इसके पत्तों के रस का गण्डूष धारण करने से ख़ुनाक (गला

पड़ना) आराम होता है। करमकल्ले से उदरकृमि मृतप्राय होते हैं। इसकी जड़ की राख पथरी को तोड़कर बहा देती है। इसके फूल को बत्ती योनि में धारण करनेसे गर्भाशयस्थ शिशु मर जाता है। और मासिक स्राव जारी होजाता है। इसके पीने से सर्प और वृश्चिक विष का निवारण होता है। सूजन फोड़ा और कण्ठमाले पर इसका लेप लाभकारी होता है। अग्निदग्ध पर इसमें अंडे की सफेदी मिलाकर लगाने से उपकार होता है। इसे जलाकर शिर के गंज पर लगाने से खालित्य आराम होता है। पर इससे बाल नहीं जमते हैं। करमकल्ले के पत्ते पकाकर खाने के उपरांत मदिरा पान करने से मादकता नहीं होती है। इसके बीजों को भी मदिरा के साथ अथवा मद्यपान से पूर्व भक्षण करने से नशा नहीं आता और खुमारी पूर्णतया खो देते हैं। पुरुष-सेवा के उपरांत यदि स्त्री योनि में इसकी वर्ति धारण करे, तो ये वीर्य को विकृत कर देते हैं। इनके लेप से व्यंग और झाँई मिटती है। कीटादि विषों के लिए यह अमोघौषधि हैं। कुक्कुट मांस के साथ करमकल्ला पकाकर खाने से शरीर को पर्य्याप्त आहार प्राप्त होताहै। सोनेमें नज़ला एकत्रीभूत हो,तो उसे लाभ पहुँचाता है। इसकी जड़ जलाकर मधु मिलाकर चाटने से ख़ुनाक (कंठ क्षत विशेष) आराम हो जाता है। कंठशोथ के कारण यदि कौवे लटक जायँ, तो भी इससे उपकार होता है। शेख़ के कथनानुसार इसकी जड़ अतिशय दीर्घ पाकी है। ख़० अ०।

नासिरुल्मुआलजीन के अनुसार इसका काढ़ा (तबीख़) अपस्मार नाशक है। मख़्ज़न मुफ़रिदात के अनुसार यह रद्दी माद्दे को पकाता और मातदिल करता है। मुफ़रिदात नासिरीके अनुसार इसके बीज (तुख़्म कर्नब) धनुर्वात (कुज़ाज़) को लाभकारी है। इसे यदि गावज़बान के पानी के साथ खायँ तो मदिरापान जनित मस्ती का निवारण हो। यह वीर्यवर्द्धक है। बुस्तानुल्मुफ़रिदात के अनुसार करमकल्ले का उसारा नाक में सुड़कने से मस्तिष्क शुद्ध होता है और निद्रा आती है। इसके बीज तुर्मुस के साथ उदरज कृमिनाशक हैं। इसकी पत्ती का लेप श्वित्रनाशक और वातरक्त नाशक (निक्रिसहर) है। सिरके के साथ यह खुजली को दूर करता है।

(२) जंगली करमकल्ला सभी गुणधर्म में बाग़ी से बलिष्टतर है। इसमें शोषण एवं मृदुकरण गुण के होने पर भी परिपाक की शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। यह अत्यंत परिष्कार कर्त्ता (जाली) शोथघ्न और विरेचक है। यदि इसको मोटे गोश्त के साथ थोड़ा सा पकाकर खाते हैं, तो दस्त आते हैं। इसे अधिक पकाने से मलावरोध उत्पन्न होजाता है। इसके पत्तों के प्रलेप से व्रणपूरण होता है। इसका पत्रस्वरस मर्दन करने से तर और ख़ुश्क खुजली आराम होती है। इसकी जड़ सुखा पीसकर अथवा बीज पीसकर सात माशे मदिरा के साथ फाँकने से कृष्ण सर्प (अफ़ई) विष नाश होता है। इसके बीज अत्यन्त बाजीकरण हैं।

(३) दरियाई करमकल्ला प्रकृति को मृदुकर्त्ता और सारक है। इसकी जड़ और पत्ते बीज की अपेक्षा अधिक संशोधनकर्त्ता है। समग्र पौधे का क्वाथ करके पीने से या थोड़ा पकाकर खाने से दस्त आजाते हैं। मदिरा के साथ मिलाने से मलावरोध होजाता है। किसी-किसी के मत से इसका भक्षण वर्जित है। केवल शोथहर प्रलेपों में प्रयोजित करने की आज्ञा है। कहते हैं कि यह जंगली क़िस्म से भी अधिक गुणकारी होता है। ९ माशे इसके बीज भक्षण से उदरज स्फीत कृमि कद्दू दाने मर जाते हैं।

करमकांड–[नेपा०] अरलू। सउना।

करमचा–[बं०] (१) करौंदा। दे० "करम्बा"।

करमजुवा–[?] एक वृक्ष। (Kayea floribunda, *Dr. Wall.*)

करमट्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुपारी का पेड़। गुवाक वृक्ष। त्रिका०।

करमंडे–[मरा०] करौंदा।

करमद–संज्ञा पुं० दे० "करमट्ट"।

करमध्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक माप जो २ तोले के बराबर होती है। कर्ष। प० प्र० १ ख०।

करमरदा–[ता०] करमर्द। करौंदा।

करमरा–[बम्ब०] कमरख। कर्मरङ्ग।

करमरी–संज्ञा स्त्री० [?] एक जंगली फल जो आकार में मकोय के बराबर और काले रंग का होता है। इसे नमक मिर्च से खाते हैं। यह खट्टा होता है।

प्रकृति—शीतल।

हानिकर्त्ता—मलावष्टम्भकारक एवं भारी है।

दर्पघ्न—नमक मिर्च।

गुण-धर्म तथा प्रयोग—यह शुक्र सांद्रकर शिश्नप्रहर्षकारी एवं कामोद्दीपन है। यह संकोचक है। उत्क्लेश एवं वमन का नाश करती है और पिपासा शामक है। म० मु०।

करमर्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) Fslacourtia cataphracta पानी आँवला। पानी-आमलक वृक्ष।। अटी० सा०। (२) करौंदा। रा० नि० व० १०। वै० निघ०। राज०। भा०। च० सू० ४ अ०।

करमर्दक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करौंदा। करमर्द वृक्ष। (२) एक प्रकार की लता। (३) कराम्ल। आँवला।

करमर्दका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० 'करमर्दक'।

करमर्दन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करमचा का पेड़। करौंदा।

करमर्दिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पहाड़ी दाख की तरह का एक फल जो पर्वती दाख के समान गुणवाली है। करौंदी। यथा—"द्राक्षा पर्व्वतजा यादृक् तादृशी करमर्दिका"।–भा० पू० १ भ० आम्रादिव०।

करमर्दी–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) कंजा। करंजवृक्ष। (२) करौंदा। करौंदी। रत्ना०।

करमल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चमेली।

करमल–[पं०] हरमल। इसपंद।

संज्ञा पुं० [देश०] कमरख।

करमा–संज्ञा पुं० दे० "कोमा"।

[सिरि०] हड्डी।

करमाई–संज्ञा स्त्री० दे० "करमई"।

[सिरि०] झुकाई।

संज्ञा स्त्री० अम्ली। अम्लोसा।

करमार–[?] बाँस।

करमाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धूआँ। धूम। खतमाल। हे० च०। (२) मेघ। बादल।

करमाला–संज्ञा पुं० [देश०] अमलतास।

करमाली–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सूरज। सूर्य।

करमिली–[?] आलूबुखारा।

करमी–[विहा०] नाली। नारी।

करमीतून–[यू०] जीरा।

करमुक्त–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक अस्त्र। बरछा।

करमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मणिबन्ध। कलाई। रा० नि० व० १८।

करमूली–संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़ जो गढ़वाल और कुमायूँ में बहुत होता है।

करमृतक–[सं० ?] बाँझ खेखसा।

करमेवा–संज्ञा पुं० [सं० कर+हिं० मेवा] एक प्रकार का साग।

करमैल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का तोता जो साधारण तोते से कुछ बड़ा होता है। इसके परों पर लाल दाग़ होते हैं।

करमोद–संज्ञा पुं० [सं० कर+मोद] एक प्रकार का अगहनी धान।

करमूकंदु–[मरा०] सोनापाठा। अरलू। श्योनाक।

करम्चा–[बं०] कंजा। करंज।

करम्ब–संज्ञा पुं० दे० "करंब"।

करम्दा–संज्ञा पुं० दे० "करौंदा"।

करम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलमी शाक। कलम्बी।

करम्बु–[मल०] Gussiaca suffruticosa बनलौंग।

[ता०] ऊख। गन्ना। ईख।

करम्बेल–[बम्ब०, मरा०] भव्य। चालता। (Dillenia Indica)

करम्भ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) दही मिला हुआ सत्तू। दधिसक्तु। प० मु०। (२) वाग्भट के अनुसार वीरतरादिगण की एक ओषधि। उत्तम अरणी। वा० सू० १५ अ०। वीरतरादिः अरुणः।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) प्रियंगुफल। (२) स्थावर विषों में से एक प्रकार का फलविष दे० "फलविष"। (३) एक प्रकार की गोंद जो जहरीली होती है। यह स्थावर विषों के अंतर्गत है (४) एक प्रकार का फूल। सु० कल्प० २ अ०। (५) शतमूली। शतावर।

करम्भक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफ़ेद चिरचिटा। श्वेत किणिही।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दही मिला हुआ सत्तू। हारा०। इसका अपर नाम 'कर्कसार' है। "निजैरञ्जलिभिः प्रादात् द्विजन्मेभ्यः करम्भकम्।" (राजत० ५। १६) (२) अविरल पिष्ट यव। दरा हुआ दाना।

करम्भा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) शतावरी। सतावर। (२) प्रियङ्गु। फूलप्रियङ्गु। रा० नि० व० १२। (३) इन्दीवरा। उतरन। के० दे० नि०। (४) इन्दीवरी।

करम्भ–[पं०] ज़न्द। शनक़ु (पं० लेदक)।

करयनीली–[?] नीलीपत्र।

करयपाक–[देश०] एक प्रकार का नीम जो कच्चे पर हरा और पकने पर ललाई लिये नीला और काला होता है। सुरभिनिंब। कृष्णनिंब।

करयल–[द०] करीर। करील।

करयल का तेल–[द०] करीर का तेल।

करयापाक–[द०] दे० "करयपाक"।

करयापात–[द०] सुरभिनिंब। कढ़ी नीम।

करयास–[रू०] मांस। गोश्त।

करयून–[ ] क़ंतूरियून।

करर–[?] कर्र। सफ़ेद जीरा।

[पं०] डकरी। दैदल (नेपा०)।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक ज़हरीला कीड़ा जिसके शरीरमें बहुत सी गाँठें होतीहै। (२) रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद। (३) एक प्रकार का जंगली कुसुम वा बर्रै का पौधा जो उत्तर पश्चिम में पंजाब, पेशावर आदि सूखे स्थानों में बहुत होता है। इसके बीज से निकाला हुआ तेल पोली का तेल कहलाता है। अफरीदियों का मोमजामा इसी तेल से बनाया जाता है। इसमेंफूल बहुत अधिकता से लगते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है। हिं० श० सा०।

कररी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथी के दाँत की जड़। करिदंतमूल। हला०।

संज्ञा पुं० [सं० कर्बुर] बन तुलसी। बबरी ममरी।

संज्ञा स्त्री० [सं० कुररी] बटेर की जाति की एक प्रकार की चिड़िया जो साधारण चिड़िया से कुछ बड़ी और बहुत सुन्दर होती है। यह हिमालय में प्रायः सभी जगह पाई जाती है।

कररुह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नख। नाखून रा० नि० व० १८। (२) नखी नामक सुगंधित वस्तु। नख। रा० नि० व० १३। (३) एक प्रकार का धूप जिसमें अगर आदि पड़ते हैं। वै० निघ० २ भ०। (४) उँगली।

कररुहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नख। नाखून।

कररेखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथ की रेखा।

"रेखाः सामुद्रिक ज्ञेयाः शुभाशुभनिवेदकाः"। रा० नि० व० १८।

करल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ का पेड़। कपित्थ वृक्ष।

करल वैकम्–[मल०] ईशरमूल। ज़रावंद हिंदी।

करला–संज्ञा पुं० दे० "कल्ला"। त्रिपुटा।

करलासना–[देश०] वन बर्बटी। अरण्य मुद्ग। (Phaseolus adenanthus.)

करली–संज्ञा स्त्री० [देश०, गु०] (१) छोटा करेला (२) कुलीची-भाजी करली-नु-भाजी।

संज्ञा स्त्री० [सं० करील](१)कल्ला। कोमल पत्ता कनखा। (२) एक प्रकार का शाक जातीय क्षुप जो वर्षाऋतु में उत्पन्न होते हैं। पत्ते लम्बे होते हैं। पत्तों के बीच में से एक बाल निकलती है। इसमें सफेद फूल होता है। नीले रंग का फल लगता है। इसके पत्तों का शाक होता है। शा० नि० भू०।

पर्य्या०—करली, दीर्घपत्रा, मध्यदण्डा प्रलम्बिका –(शा० नि० भू०) –सं०। करली –हिं, कुलीची भाजी –गु०। करलीनी भाजी –मरा०। फेलेञ्जियम् ट्युबरोज –ले०।

गुण—करली शीतला स्वाद्वी वातला कफकृद्गुरुः। करली मधुरातिक्ता वातला सारका मता। शा० नि० भू०।

करलीनी-भाजी–
करली-नु-भाजी– } [गु०] करली।

करलुरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काँटेदार लता जिसमें सफेद और गुलाबी फूल लगते हैं। दे० "करेरुआ"।

करल्ली–[पं०] लाल कचनार। रक्त काञ्चन।

करल्लु–[बम्ब०] सफेद सिरस।

करवट–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष, जिसका गोंद ज़हरीला होता है। जसूँद। नताउल।

करवटी–[मरा०] वस्तर। Callicarpa-lanata.

करवटादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामचना। अम्लपर्णी। अरण्य वासिनी। अमलोला। नि० शि०।

करवडादि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रामचना। अम्लपर्णी। अरण्यवासिनी। अमलोला। नि० शि०।

करवधे–[मदरास] सिरस।

करवन–[मल०] वरुण। बरना।

करवप्पु–[ते०] लौंग।

करवरु–[मग०] कुंडली। संग कुप्पी। हरित मंजरी हागापाता।

करवल–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कांस्य मिश्रित रौप्य। जस्ता मिली चाँदी।

करवँठ–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता, जो अवध, बंगाल, पंजाब और लंका में पाई जाती है। इसकी पत्तियाँ ४-५ इंच लम्बी और फूल पीले रंग के होते हैं।

करवँदा–संज्ञा पुं० [देश०] दे० "करौंदा"।

करवंदा–[गु०] दे० "करौंदा"।

करवा–संज्ञा पुं० [सं० कर्क=केकड़ा] एक प्रकार की मछली, जो बंगाल, पंजाब और दक्षिण की नदियों में पाई जाती है।

क़रवा–[?] लबलाब का एक भेद।

करवाँ– [अ] मुन्तख़िबुल्लुग़ात नामक अरब्य अभिधान ग्रंथ में नर चकोर या सर्वथा चकोर के लिये इस शब्द का उपयोग हुआ है। साहब सराह के अनुसार चर्ज़ नाम का एक पक्षी है। किर्बा और करावीन इसका बहुवचन है। बहरुल् जवाहर में इसे माही ख़ार: लिखा है। बुर्हान क़ातिअ के अनुसार एक पक्षी का नाम है। उक्त ग्रंथ में इसका नाम उच्चारण "करवाँ" और कर्वा भी लिखा है। मज़्ज़नुल् अद्विया के लेखक ने करवाँ की जगह करदाँ लिखा है और लिखा है कि एक पक्षी का नाम है जो गौरा से वृहत्तर होता है। इसके पाँव लंबे होते हैं और प्रकृति में यह गौरे का समान होता है। किसी किसी के अनुसार करवाँ और कर वानक इन दोनों शब्दों का व्यवहार एक प्रकार के पक्षी के लिये होता है। यह पक्षी दो प्रकार का होता है।–(१) जंगली जो जंगलों में रहता है, (२) दरियाई जो नदी-कूलों पर होता है। किंतु दरियाई क़द में खुश्की वाले से द्विगुण बड़ा होता है। दोनों का रंग सफेदी लिये लाल होता है। किसी किसीने रंग के विचार से इसके दो भेद किये है। (१) सफेदी लियेलाल और (२) सफेदी लिये काला। इनके पाँव और गर्दनलंबी होतीहै। शीलानी "शरह कानून" में लिखते हैं कि यह एक पक्षी हैं जिसकी गरदन लंबी और पाँव पतले होते हैं। यह उष्ण और अत्यंत रूक्ष है। इसका मांस भक्षण करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है। वास्ति को शक्ति प्राप्ति होती है। वस्तिगत अश्मरी टूटकर निकल जाती है। उष्ण एवं रूक्ष प्रकृतिवाले को इसका मांस हानिप्रद है। (ख़० अ०)

करवाकंद– [देश०] गेंठी। (Dioscorea bulbifena)

करवानक–संज्ञा पुं० [सं० कलविंक] चटकपक्षी। गौरैया। चिड़ा।

करवानग–सं० पुं० दे० "करवानक"। (२) भूरे रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी, जो नदी कूल पर एवं जंगल में रहता है। जंगली से नदी तट पर पाया जानेवाला दूना बड़ा होता है। इसका मांस अत्यन्त सुस्वाद होता है।

करवार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृपाण। तलवार।

क़रवाल–यू०
क़रवालियून–यू० } प्रवाल। मूंगा। बुस्सद।

करवाल–सं० पुं० [सं० करवाल] (१) नख। नाखून। (२) खड्ग। तलवार।

करवालिका–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] करवाली। करपालिका।

करवाली–संज्ञा स्त्री० [सं० करवाल] छोटी तलवार।

करविला–[पं०] (Cadaba-Horrida, *Linn.*) कर्लुर। कालुरा। दे० "करेरुआ"।

करवी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हिंगुपत्री । भा० पू० १ भ० गु० व० । (२) अजवायन । (३) राई । राजिका । सु० सू० ४६ अ० । (४) एक प्रसिद्ध फूल ।

करवीक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करवी । दे० "करवी" ।

करवीभुजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } आढ़की । अरहर का
करवीरभुजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } पेड़ । रा० नि० व० १६ ।

करवीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कनेर का पेड़ । रा० नि० व० १० । सु० सू० ३९ अ० । शिरोविरेचन । (२) अर्जुन का पेड़ । (३) भुजाढ़की । प० मु० (४) हिंगुपत्री । (५) एक प्रकार की सोमलता । सु० चि० २९ अ० । दे० "सोम" । (६) तलवार । खड्ग । कृपाण ।

करवीरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सफेद कनेर का पेड़ । (२) कनेर की जड़ । हे० च० । (३) अर्जुन वृक्ष । रा० नि० व० ९ । (४) खड्ग । तलवार ।

करवीरकन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तैल कन्द ।

करवीरकन्द संज्ञ–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] तैल कन्द । रा० नि० व० ७ ।

करवीरका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैनसिल । वै० नि० ।

करवीरिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का पुष्पवृक्ष । जिसे कोंकण देश में "ककर खिरनी" कहते हैं । यह ग्रीष्म ऋतु में होती है । इसमें लाल फूल लगते हैं । करवीरणी कड़ुवी गरम और चरपरी होती है तथा यह कफ, वात, विष, आध्मानवात, छर्दि, ऊर्ध्व श्वास, तथा कृमि—इनको दूर करती है । (वै० निघ०)

करवीर तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग—(१) सफेद कनेर की जड़ और मीठा विष समान भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर कल्क बनाएँ । पुनः इसे चौगुने तिल तैल में विधिवत पकाएँ ।

गुण—इसके उपयोग से चर्मदल, सिध्मकुष्ठ, पामा, कृमि रोग और किटिभकुष्ट का नाश होता है । भै० र० कुष्ठ चि० । (२) कनेर की जड़, शिफा (जमालगोटा), निशोथ, कड़वी तरोई । केले का क्षार और केले का पानी इनमें तेल सिद्धकर लगाने से बाल गिर जाते हैं । शा० सं० । (३) सफेद कनेर के पत्ते, और उसकी जड़ की छाल, इन्द्रजौ, विडंग, कूठ, आक की जड़ सरसों, सहिजन की छाल और कुटकी । इन सब चीजों को समान मात्रा में मिलाकर तेल से चौथाई लें । कल्क बनाकर चौगुने गोमूत्र के साथ सिद्ध किया हुआ तैल कुष्ठ और खुजली को नष्ट करता है । च० चि० ७ अ० ।

करवीर भुजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अरहर । आढ़की । रहर । रा० नि० व० १६ ।

करवीर भूषा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अरहर । आढ़की ।

करवीरम्–[ता०] } कनेर ।
करवीरमु–[ते०] }

करवीरु–[कना०] (Anisochilus carnosus, *Wall.*) पंजीरी का पात । सीता की पंजीरी । अजवान का पत्ता ।

करवीरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैनसिल । मनःशिला ।

करवीरादि तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कनेर, हल्दी दन्ती, कलियारी, सेंधा नमक और चित्रक तुल्य भाग, इन्हें बिजौरा के रस और आक के दूध में तेल सिद्ध करें ।

गुण—इसके उपयोग से भगन्दर नष्ट होता है योग त० भगन्दर चि० । भैष० र० । (२) लाल कनेर के फूल, चमेली, आसन और मल्लिका (मालती) इन्हें तेल में पकाएँ ।

गुण—इसके उपयोग से नासार्श नष्ट होता है । (भैष० र० नासा० रो० चि०)

करवीरादि लेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक लेपौषधि जिसमें कनेर पड़ता है । योग यह है—सफ़ेद कनेर की जड़, कुड़ा की जड़, करंज की जड़ की छाल, दारुहल्दी और चमेली के पत्तों को बारीक पीसकर लेप करने से कुष्ठ का नाश होता है । वृ० नि० र० त्वग् दो० चि० ।

करवीराद्य तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०]

पात्रार्थ—तिल तैल ४ सेर। कल्कद्रव्य—लाल कनेर के फूल, जाती (जाई) के फूल तथा अशनमल्लिका (हापर माली –बं०) अथवा पीले शाल के तथा मोतिया के फूल, ये तीनों औषधियाँ मिलित १ सेर।

पात्रार्थ—जल १६ सेर। यथाविधि तैल पाक करें।

गुण—इसके लगाने से नासार्श नष्ट होजाता है। चक्र० द० नासा रो० चि०।

करवीरानुजा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अरहर। आढ़की। रहर। वै० निघ०।

करवीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैनसिल। मनःशिला। र० सा० सं०।

करवीरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पुत्रवती। जिस स्त्री के वीर पुत्र हो। (२) उत्तम गाय। श्रेष्ठ गवी।

करवीर्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्राचीन चिकित्सक का नाम। धन्वन्तरि के प्रति आयुर्वेद प्रश्नकर्त्ता ऋषि विशेष।

करवील–संज्ञा पुं० [सं० करीर] करील। टेंटी का पेड़। कचड़ा।

करवीला–[पं०] हींस।

करवेला–[मल०] हुरहुर। अर्कपुष्पिका।

करवेल्ला–संज्ञा पुं० [सं० कारवेल्ल] करेला।

करवोटी–संज्ञा पुं० [देश०] एक चिड़िया का नाम इसे 'करचेटिया' भी कहते हैं।

करशफ़–[फ़ा०] करफ़स।

करशाखा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उँगली। अंगुली। रा० नि० व० १८।

पर्य्या०—अग्रुव, अग्वा, क्षिप, त्रिश, शर्या, रसना, धीति, अथर्य, विप, कक्ष्या, अवनि, हरित् स्वसार, जामि, सनाभि योक्र, योजन, धुर, शाखा अभीशु, दीधित और गभस्ति –सं०। (वेद निघण्टु २ अ०)।

करशान–[तु०] सफ़ेदा।

करशीकर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वमन। क़ै। छाँट, (२) हाथी की सूँड़ से निकला हुआ पानी का कण। हला०। सं० पर्य्या०—वमथु।

करशू–संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय पर होने वाला एक बड़ा सदाबहार पेड़ जो अफ़ग़ानिस्तान से लेकर भूटान तक होता है। इसकी पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। इस पर चीनी रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं।

करशूक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख। नाखून। त्रिका०।

करशोथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Oedematous swelling of hand.) हाथ की सूजन। हस्तशोथ।

करसङ्कोचनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।

करसङ्कोचनी अन्तःस्था–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।

करसङ्कोचनी बहिःस्था–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पेशी विशेष।

करसनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की लता जो समस्त भारत में होती है। इसकी पत्तियाँ २-३ इंच लम्बी होती हैं जिन पर भूरे रंग के रोएँ होते हैं। यह फरवरी और मार्च में फूलती है। इसकी जड़ और पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं। इसको हीर भी कहते हैं।

करसफ़, करसूफ़–[अ०] रूई।

करसफ़ी–[अ०] एक प्रकार का सफ़ेद काँदा।

करसम्भव–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साँभर नमक। रोमक लवण। रत्ना०।

करसाइल–संज्ञा पुं० दे० "करसायल"।

करसादः–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथ की कमज़ोरी। हस्त दौर्बल्य।

करसान–[?] अंगूर की लकड़ी।

करसायर–दे० "करसायल"।

करसायल, करसायर–संज्ञा पुं० [सं० कृष्णसार] कालामृग। काला हिरन। कृष्णसार।

करसिंग–[बम्ब०] खरसंग। करनीमरम् (ता०)।

करसियान–दे० "करसान"।

करसी–संज्ञा स्त्री० [सं० करीष] (१) उपले वा कंडे का टुकड़ा। उपलों का चूर। (२) कंडा। उपला।

करसूफ़–[अ०] रूई। बवात का सूफ़।

क़रसूअनः–[अ०] एक उद्भिज जो अठ प्रकार का होता है। (१) इसका तना गिरहदार होता है और इसके प्रत्येक गिरह पर काँटे होते हैं। इसकी पत्तियाँ काहू की पत्तियों से चौड़ी, बड़ी, खुरदरी तथा नीले रंग की और जमीन से मिली हुई होती हैं। शाखाएँ अनेक और तकले की तरह बारीक होती हैं। फूल श्वेत वर्ण के होते हैं। जड़ लंबी, मोटी और गाजर की तरह मीठी एवं किंचित् तीव्र भी होती है। (२) इसकी पत्तियाँ भी पहिले की भाँति, किंतु खुरदरी नहीं होतीं। इसमें बहुतायत से मृदु कंटक होते हैं। इसका तना एक हाथ ऊँचा होता है और इसकी आधी ऊँचाई से शाखाएँ फूटती हैं। पत्ते प्रथमतः अत्यंत हरे तदुपरांत सफेद होजाते हैं। इसकी जड़ लंबी और सीधी होती है। यह पहिली से प्रबलतर होता है। इसमें गोखरू की सी सुगंधि होती है। यह जाति अफ़रीका और अरब में बहुत है। अफ़रीका-निवासी मक्खियों को भगाने के लिये इसे मकानों के दरबाजों पर लटकाते हैं।

(३) इसके पत्ते गोल, जड़ लंबी और अधिक मोटी नहीं, जड़, तना और फूल श्वेत होते हैं।

(४)इसमें एक ही तना होता और यह अशाखी होता है। तना लग भग एक हाथ वा इससे भी अधिक दीर्घ होता है। तने में गिरहें होतीं और वह मृदुकंटकाकीर्ण होती हैं। काँटे किंचित् नील वर्ण के होते हैं। पत्ते जमीन से मिले हुये, चौड़े और अशरफ़ी की तरह गोल होते हैं। जड़ फ़ावानिया की आकृति की एवं बाहर से काली और भीतर से सफेद होती है। कोई कोई इसका आकार बहमन श्वेत का सा बतलाते हैं और उसमें बहमन की मिलावट करते हैं तथा इस प्रकार एक को दूसरी की जगह बेंचते हैं। किंतु बहमन के पत्ते उसके पत्तों से बहुत चौड़े होते हैं।

(५) यह श्वेत वर्ण का होता है। इसलिये इसे "क़रस् अर्नः सफ़ेद" कहतेहैं। इसमें पत्ते बहुतायत से और श्वेताभ होतेहैं। कांटे तीव्र और कांण्ड खुरदरा होता है।

(६) इसके पत्र उन्नतोदर होते हैं और इसमें केवल एक ही तना होता है। इसको "क़रसूअनः जब्ली" कहते हैं।

(७) इसकी सफेद जाति ही के क़बील से है। इसके वृक्ष नदी कूल पर उत्पन्न होते हैं। पत्ते बहुत चौड़े और अत्यंत सफेद होते हैं। जड़ बहुत कमजोर और नाजुक होती है। इसका स्वाद अन्य सभी भेदों से अधिक मधुर होता है, परंतु इसके चाखने से किंचित् तीव्रता का भी अनुभव होता है।

(८) तना कलमे की उँगली के बराबर मोटा और डेढ़ बित्ता ऊँचा होता है। शाखाओं का रंग श्वेताभ और उन पर सिर गोल तथा उन गोल सिरों पर छः छः बारीक और सलाई की तरह लंबे काँटे होते हैं। जड़ भी कलमे की उँगली के बराबर मोटी और लंबी होती है। इसका स्वाद गाजर के समान होता है। "मुतलक़ क़रसूअनः" शब्द से इसी जाति के पौधे का बोध होता है। बग़दाद में यह बहुतायत से होता है। इसको "क़रसूअनः मुसद्दस" और "शशकाक" कहते हैं।

नोट—सभी जाति के क़रसूअनः की जड़ें सुगंधित होती हैं। इनमें किसी की जड़ का स्वाद किंचित् तीक्ष्णता और कड़ुवाहट लिये मधुर और किसी का सर्वथा मधुर होता है। यह बैतुल् मुक़द्दस, अफ़रीका, अरब और फ़ारस में उत्पन्न होता है। वनस्पति शास्त्रज्ञ अबुल अब्बास किताब रहलः में लिखते हैं, "बैतुल् मुक़द्दस के आसपास पर्वती भूमि में मैंने एक प्रकार का सफ़ेद क़रसूअनः देखा है जिसकी जड़ बड़ी और पत्ते काहू के पत्तों से छोटे और अत्यन्त कोमल थे। एक ही जड़ से बहुत सी शाखाएँ फूटी थीं। पत्तों के स्थान पर तकले की तरह गिरहदार और बारीक डंडियाँथीं। गिरहों के आसपास पत्ते और नीलवर्ण के पुष्प भी थे, जिनके सिर पहला क़िस्म से छोटे थे। जड़ का स्वाद मधुर था और उसमें किंचित् कड़वाहट भी थी।" इसकी जड़ हर प्रकार काम में आती है। इसे "शज्रए इब्राहीम" भी कहते हैं।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष।

मात्रा—जड़ ४॥ माशे।

हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को।

दर्पघ्न—सर्द व तर वस्तुएँ

गुणधर्म—यह बूटी रजः प्रवर्त्तक है, मरोड़ का निवारण करती और यकृत की पीड़ा विशेष (दर्द जिगर इम्तिलाई) में उपकारी है। साढ़े तीन माशे की मात्रा में इसकी जड़ और साढ़े तीन माशे गाजर के बीज प्रति दिन भक्षण करने से कामोद्दीपन होता है। यह उत्तम दोषों को उत्पन्न करती आमाशय से तरल श्लेष्मा का उत्सर्ग तथा वस्ति एवं पार्श्वशूल को लाभ पहुँचाती और बिच्छू के ज़हर को नष्ट करती है। इसकी जड़ पकाकर और शर्करा मिलाकर पीने से फुंसी तथा सूजन का नाश होता है उष्ण और विकृत दोषों का शरीर से उत्सर्ग होता है।

इसकी जड़ का मुरब्बा आँतों में सुगंध उत्पन्न करता, शरीर दुर्गंधि दूर करता और कामोद्दीपन करता है। यह रसायन है। इससे वायु का नाश होता है। पांव की पिंडली की उन फुंसियों पर जिनसे लगातार रतूबत जारी हो। इसे जौ के आटे और कासनी की पत्ती के रस के साथ लगाने से बड़ा उपकार होता है। श्लीपद रोग के प्रारंभ में भी इसके उपयोग से बहुत कल्याण होता है। छठवें प्रकार के करस्अनः को बैतुल्मुक़द्दस की और पार्श्वशूल कटिशूल और सिर के मवाद के लिये लाभकारी जानते हैं सातवें प्रकार की जड़ अत्यंत कामोद्दीपक है। पहला प्रकार गुण-धर्म में आठवें के समान है। ज़ियाउद्दीन इब्नुल्बेतार ने मफ़नी में लिखा है, "क़रस्अनः तारल्यजनक हैं एवं शीघ्र आमाशय से हज़म होकर नीचे उतर जाता है। यह उत्कृष्ट दोष उत्पन्न करता है। आमाशय से तरल कफ को विलीन कर आँतों की ओर पहुँचा देता है। इसके उक्त गुण उस दशा में होते हैं। जब इसके पत्तों को पकाकर खायँ।" (ख़० अ०)

करस्नः-[फ़ा०] मटर। कलाय।

करह-संज्ञा पुं० [सं० करभ] ऊँट। करभ।

संज्ञा पुं० [सं० कलिः] फूल की कली। [फ़ा०] मक्खन। मसका।

क़रह्-[अ०] कलौंजी। शोनीज़।

क़रहटी-संज्ञा स्त्री० [सं० ?] फूट। पर्वारु।

करहतन-[फ़ा०] मकड़ी।

करहट्टी-[कना०] बन कपासी। भारद्वाजी।

करहनी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

करहर-संज्ञा पुं० [देश०] मैनफल।

करहरी, करहली-संज्ञा स्त्री० [देश०] हिंदुस्तान में होनेवाला एक प्रकार का फल जो ग्रीष्म ऋतु में होता है। यह काले और अत्यन्त श्वेतवर्ण का एवं दीर्घाकार होता है और ऊपर से जमालगोटे की तरह मसृण किंतु उससे किंचित् छोटा होता है। इसके भीतर से सफ़ेद रंग की मींगी निकलती है। जिसे नमक और कालीमिर्च के साथ भूनकर खाते हैं। यह अत्यंत सुस्वादु होती है। हकीम गुलाम इमाम ने अपनी किताब मुफ़्रिदात में फ़ल को करहरी ही ख़्याल किया है।

गुण, धर्म तथा प्रयोग—हकीम शरीफ़ खाँ के अनुसार यह कामोद्दीपक है और शुक्र को सांद्र करती है। यह पेट में कब्ज़ पैदा करती है परन्तु उदर शूल का निवारण करती है। दे० "ता० श०"।

करहा-संज्ञा पुं० [सं० पुं० करहान्] मैनफल का पेड़।

संज्ञा पुं० [देश०] सफ़ेद सिरिस का पेड़।

करहाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बेल।

क़रहा-[अ०] आँवल तरवर। उशरक़।

करहाट, करहाटक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मैनफल का पेड़। मदन वृक्ष। प० मु० रा० नि० व० ८। योगरत्न० उ० ख० केशर पाक। सु० कल्प० ७ अ०। (२) एक प्रकार का पेड़। महापिंडीतरु। बड़ा खजूर। रा० नि० व० ६। सु० चि० १८ अ०। (३) कमल की जड़। भसीड़। मुरार। मे०। (४) अकरकरा। (५) श्वेत मदन। वै० निघ०। (६) कमल का छत्ता। कमल की छतरी। कमल के फूल के भीतर की छतरी जो पहले पीली होती है, फिर बढ़ने पर हरी होजाती है। (७) पिंडार। भिलौर।

करहाटक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोना। स्वर्ण। अम०।

करहानक–[फ़ा०] बाबूना।

करही–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) बैंगन। भंटा। (२) शीशम की तरह एक पेड़। जिसके पत्ते शीशम के पत्तों से दूने बड़े होते हैं।

करंकानी–[फ़ा०] अंगूर का एक भेद।

करंकुसा–[बं०] खवी। लामज्जक तृण। इज़ख़िर।

करंगल्ली–[ता०] खदिर। कत्था। खैर।

करंगा–[?] सेवती। गुलाबभेद।

संज्ञा पुं० दे० "करँगा"।

संज्ञा पुं० भेकल।

करँगा–संज्ञा पुं० [हिं० काला वा कारा+अंग] एक प्रकार का मोटा धान, जिसकी भूसी कुछ काला पन लिए होती है। यह प्रायः क्वार मास में पकता है।

करंगी–[मैसूर] इमली। अम्लिका।

संज्ञा स्त्री० [सं० ?] (१) छोटी इलायची (२) दे० "करँगा"।

करंच–[बं०] करौंदा, करमर्दक।

करंचक-हिंदी–[?] जमालगोटा।

करंज–[फ़ा०] कलौंजी। शोनीज़।

[तूरान] चावल।

संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] (१) एक वृक्ष का नाम, जो डील-डौल में मनुष्य के बराबर वा उससे भी अधिक ऊँचा होता है। पत्तियाँ करम कल्ले वा (अंगूर) की पत्तियों की तरह, किंतु उससे अधिक कोमल, चिकनी और पिस्तई रंग की होती है। यह दो प्रकार का होता है। (१) सफेद फूल का और (२) पीले फूल का। दूसरे का नाम पूति करंज है।

करंज–संज्ञा पुं० [सं० करञ्जः] (१) एक उच्च, बहुशाखान्वित उत्तम छाया तरु। वृक्ष ४०–६० फुट ऊंचा होता है। प्रकांड छोटा और गोलाई में ४ से ८ फुट तक होता है। इसकी छाल मसृण, स्थान-स्थान पर विचित्र चिह्नाङ्कित एक इंच मोटी और चिकनी होती है। यह प्रायशः पल्वल; पुष्करणी किंवा नदी के तीर उत्पन्न होता है; सुतरां इसका "डहर करंज" नाम अन्वर्थ है। चैत में इसके पत्ते गिरजाते हैं और कुछ दिनों के उपरांत इसमें नवीन पत्र आजाते हैं। पत्र प्रायः पकड़ी की पत्ती की तरह होती है। परन्तु इसमें यह अधिकता होती है, कि यह तैलाक्तवत् चिकनी मसृण एवं गाढ़े हरे रंग की होती है। एक सींके पर २-३ जोड़े, २-४ इंच लंबे पत्तों के लगते हैं। इसका स्वाद कड़वा होता है। इसमें आकाशवत् नीलवर्ण (वा सफ़ेद बैंगनी) के पुष्प आते हैं। पुष्पदण्ड पर गुच्छा कार स्थित होते हैं। पुष्पदण्ड पत्राद्ध दीर्घ होता है। यह चैत वैशाख में पुष्पित होता है। (मतांतर से जेठ-वैशाख में फूलता और आगामी वर्ष के चैत में फलियाँ पकती हैं)। पुष्प सर्वथा शिम्बीधारी उद्भिदों के पुष्प के समान होता है। शिम्बी अण्डाकृति दीर्घ, कड़ी, मोटी, चिपटी, चिकनी एक इंच चौड़ी और $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ इंच मोटी और १॥से २ इंच लम्बी होती है। शिम्बी का अग्रभाग, हठात् सूक्ष्मता प्राप्त, मोटा और अतीक्ष्ण होता है। नोक इषद्वक्र, अत्यन्त लघु होती है। प्रत्येक शिम्बी में केवल एकबीज होताहै। बीज चिपटा(Compressed) और बड़ी मटर की रूप-आकृति का होता है। इसके ऊपर का छिलका पतला, मसृण, शिराबहुल और हलके लाल रंग का होता है। बीज की गिरी (Cotyledons) अत्यंत तेलपूर्ण एवं तिक्त होती है। इसमें से लाल, भूरा, गाढ़ा बीजों का पाँचवां भाग तेल निकलता है। वृक्ष-त्वक् का बाह्य स्तर पतला खाकी–धूसरवर्ण का होता है। जिसे शीघ्र पृथक् किया जा सकता है। इसे हटाने पर भीतरी सतह हरिद्वर्ण की दिखाई देती है, जिस पर आड़े रुख सफ़ेद चिन्ह होते हैं। छाल कड़ी होती है। गंध अत्यंत अप्रिय (Mawkish), स्वाद तिक्त और कुछ-कुछ सुगंधित और विलक्षण चरपरा होता है। सूक्ष्म-दर्शक से देखने पर श्वेत-सार एवं स्फटिक दृग्गोचर होते हैं। मूलत्वक् बाहर से मंडलीय धूसर (Rusty-brown) और भीतर से पीला होता है। वृक्ष के सर्वांग को कुचलने से एक प्रकार का पीला रस प्राप्त होता है (इसमें एक प्रकार का गोंद निकलता है। इसकी राख रंगत के काममें आती है। 'अनुभूत-चिकित्सा सागर')

वक्तव्य

प्राचीन आयुर्वेदीय निघण्टु ग्रन्थों में "पूतिक" शब्द करञ्जद्वय अर्थात् नक्तमाल और पूतिकरञ्ज

दोनों के पर्य्यायों में पठित हुआ है। पर नाटा करञ्ज के अर्थ में ही इसका भूरि प्रयोग दृष्टिगत होता है। करञ्जद्वय शब्द की व्याख्या में सुश्रुत टीकाकार डल्वण लिखते हैं—"करञ्जद्वयमिति एकश्चिरविल्वो द्वितीयः कण्टकी विटप करञ्जः"

—डल्वणः (सू० टी० ३८ अ०)

सुश्रुत के मत से चिरबिल्व को नक्तमाल और कण्टकी विटप करञ्ज को पूतिक कहते हैं। वाग्भट्ट लिखते हैं—"एकः पूतिकरञ्जश्चिरबिल्वाख्यः। द्वितीय नक्तमालाख्यः (वा० सू० १५ अ०)" यद्यपि वाग्भट्ट के उक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि चिरबिल्व ही पूति करञ्ज है। पर दूसरे को नक्तमाल लिखकर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि—करञ्जद्वय से पूति और नक्तमाल ये दोनों करञ्ज ही विवक्षित हैं। इनमें नक्तमाल वृक्ष और पूतिक विटप-करंज है।

यहाँ एक बात और विचारणीय यह है, कि चिरबिल्व शब्द प्रायः सभी प्राचीन,अर्वाचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों में नक्तमाल और करञ्ज के पर्याय स्वरूप पठित हुआ है। परंतु देश में करंज को ही जाति का और उससे सर्वथा मिलता-जुलता एक और वृक्ष देखा जाताहै, जिसे देशी भाषा में "चिल बिल" कहते हैं और ग्रामीण लोग फोड़ादि बिठाने के लिये इस पर प्रायः इसके पत्र का कल्क बाँधते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि उक्त चिर-बिल्व कदाचित् यह उत्तर कथित चिलबिल ही है, जिसे निघंटु कारों ने करंज के पर्यायों में मिलाकर भ्रामक बना दिया है। पूर्ण विवेचन एवं मान्य निर्णय के लिये देखो "चिलबिल"।

उपर्युक्त वर्णन से एवं सभी प्राचीनार्वाचीन पर देशीय एतद्देशीय एतद्विषयक ग्रंथों के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि पूतिकरंज में काँटे होते हैं और इसके विटप होते हैं। इसी लिये बंगीय लोग इसे नाटा (ठिंगना) करंज कहते हैं। इसके सिवा राजनिघंटुकार ने लताकरंज के नाम से एक और कंटकी करंज का पूतिकरंज से पृथक् उल्लेख किया है। इन दोनों में भेद करने के लिये हमने उसे 'कंटकीवल्ली करंज' लिखकर उसके पर्यायादि अलग दिये हैं। पर यह ध्यान रहे कि यह दोनों एक ही जाति के पौधे के केवल भेद मात्र हैं। अस्तु, हमने इसके गुण-प्रयोगादि एक ही स्थान पर दिये हैं।

धन्वन्तरीय निघंटु में करञ्ज (नक्तमाल) घृतकरंज, उदकीर्य (षडग्रंथ) और अङ्गार-वल्ली (महा करंज) ये चार, राजनघंटु में नक्तमाल, घृतकरञ्ज, पूतिकरञ्ज, महाकरञ्ज, गुच्छ-करञ्ज, रीठाकरञ्ज, और लताकरञ्ज, ये सात तथा भावप्रकाश में नक्तमाल, घृतकरंज और उदकीर्य (करंजी) ये तीन प्रकार के करंज का उल्लेख मिलता है। इनमें से पूतिक और लता करंज क्रमशः कंटकी विटप और वल्ली करंज हैं तथा शेष वृक्षकरंज। उक्त करंजों में न मालूम क्यों कुछ ऐसे पदार्थों का समावेश किया गया है जो वास्त-व में करंज भेद नहीं, प्रत्युत उससे सर्वथा भिन्न जातीय द्रव्य है। जैसे, रीठाकरंज। अस्तु, हमने इसका 'रीठा' के अंतर्गत पृथक् वर्णन किया है।

प्रागुक्त करञ्जद्वय अर्थात् डहर और नाटा करंज के अतिरिक्त बंग में ये चार प्रकार के करञ्ज और प्रसिद्ध हैं—(१) अम्लकरञ्ज, (२) बिष करञ्ज (३) माकड़ा करञ्ज और (४) गेंटे करञ्ज। इनके संस्कृत नाम क्रमशः ये हैं—करमर्दक (वन क्षुद्रा कराम्ल करमर्दी), अंगारवल्ली (महाकरंज) मर्कटी (उदकीर्य) और षड्ग्रन्थ इनमें करमर्दक करौंदा है, जो करंज से सर्वथा भिन्न है। अतएव इसका 'करौंदा' के अंतर्गत वर्णन किया गया है। शेष के गुण-पर्याय नीचे दिये जाते हैं।

पर्य्याय—

करञ्ज—करञ्जः, नक्तमालः, पूतिकः, चिरबिल्वकः (ध० नि०); पूतिपर्णः, वृद्धफलः, रोचनः, प्रकीर्यकः (राजनिघण्टु में ये नाम अधिक हैं), करञ्जः, नक्तमालः, करजः, चिरबिल्वकः (भा०), करञ्जकः—सं०। करंज—हिं०। डहर करंज—बं०।

घृतकरञ्ज—घृतपर्णः, प्रकीर्यः, गौर (ध० नि०) घृतकरंजः, प्रकीर्यः, घृतपर्णकः, स्निग्धपत्रः, तपस्वी, विषारिः, विरोचनः (रा० नि०), घृत-पर्ण करंजः, प्रकीर्यः, पूतिकः, पूतिकरंजः, सोम-वल्कः (भा०), स्निग्धशाकः, विरेचनः, वृत्तफलः, रोचनः—सं०। घोरा करंज, डिठोहरी ?—हिं०। विषाकरमूचा—बं०।

गुच्छकरञ्ज—गुच्छकरञ्जः, स्निग्धदलः, गुच्छपुष्पकः, नन्दी, गुच्छी, मातृनन्दी, सानन्दः, दन्तधावनः, वसवः (रा० नि०)–सं० ।

उदकीर्य, करंजी (अरारी)—उदकीर्यः, षड्ग्रन्थः, हस्तिचारिणी, मदहस्तिनिका, रोही, हरितरोहणकः, प्रियः (ध० नि०), उदकीर्यः, षड्ग्रन्था, हस्तिवारुणी, मर्कटी, वायसी, चापि, करञ्जी, करभञ्जिका (भा०)–सं० । अरारी, करंजी, करंजिया–हिं० । घोर करंज–मरा० ।

अङ्गारवल्लिका वा महाकरंज—अङ्गारवल्लिका (वल्ली), अम्बष्ठा; काकघ्नी, काकभाण्डिका, वायव्या, कालिमकाभेद, वाक्यवल्ली (ध० नि०), महाकरंजः, षड्ग्रन्थः, हस्तिचारिणी, उदकीर्यः, विषघ्नी, काकघ्नी, मदहस्तिनी, अङ्गारवल्ली, शार्ङ्गेष्टा, मधुसत्ता, वमायिनी (?), हस्तरोहणकः, हस्तिकरञ्जकः, सुमनाः, काकभाण्डी, मदमत्तः (रा० नि०)–सं० । बड़ाकरंज, हिरियहलुगितु–का० ।

करंज के अन्य भाषा के पर्य्याय—बड़ा कंजा, डिंठोहरी, करंज, किरमाल, सुखचैन (सुखचिन्), कोरंग, कीड़ामार, करंझ,–हिं०, द० । करंज, करंजगाछ–बं० । पॉन्गैमिया ग्लैब्रा Pangamia glabra, *Vent.* गैलेड्युपा इंडिका Galedupa Indica–ले० । इंडियन बीच Indian beech–अं० । पुङ्गम्-मरम्–ता० । कानुग-चेट्टु; कग्गेर, क्रानुग, कंज–ते० । उङ्ग मरम्, पुङ्गम्–मल० । हींगे-गिडा, हींगे-मर, नापसीय मरनु, वारुबहिलि गिलु–कना० । करंजाच-वृक्ष, चापड़ा करंज, घाणेराकरंज, वावट्टा, करंज–मरा० । कीड़ामार–बम्ब०, मरा० । करंज, चरेलकणस–गु० । मगुल्–करंद–सिंगा० । सिमिजु तिमिज़ु खयेन् पिरिंजु–बर० । करिन्दि रूकू–कों० सुग्रचैन–पं० ।

नक्तमाल की परिचय-ज्ञापिका संज्ञाएँ—"पूतिपर्णः" । "स्निग्धपत्र" "गुच्छपुष्पः" ।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminosoe.*)

उत्पत्ति-स्थान—यह हिंदुस्तान का एक सामान्य व्यापक वृक्ष है जो प्रधानतः समुद्र के किनारों के समीपवर्ती प्रदेशों में उत्पन्न होता है तथा मध्य एवं पूर्वीय हिमालय से लेकर लंका पर्यंत पाया जाता है। कोंकण में यह सामान्य रूप से मिलता है ।

रासायनिक संघटन—इसके बीजों में २७ से ३६.४ प्रतिशत तक एक तिक्त वसामय तैल (Pongawol or Hongay oil) होता है । रंग में यह तेल भूरा और विशिष्ट गंधि होता है । क्षार के व्यवहार से इसका उक्त रंग बहुतांश में दूर किया जा सकता है । उसी भाँति कम किये हुये चाप में अतिशय उत्तप्त भाफ (Steam) के व्यवहार से इसकी गंध भी उड़ाई जा सकती है । तैल-स्थित वसाम्ल में २.५६% असाबुनी (Unsaponifiable,) पदार्थ के सहित मायरिष्टिक (Myristic ०.२३%, पामिटिक (Palmitic) ६.०६%, ष्टियरिक (Stearic) २.१६%, आरकिडिक (Archidic) ४.३०%, लिग्नोसेरिक (Lignoceric) ३.२२%, डायहाइड्रोचिष्टियरिक (Dihydroxystearic) ४.४६%, लिनोलेनिक (Linolenic) ०.४६%, लिनोलिक (Linolic) ६.७२%, और ओलाइक एसिड (Oleic acid) ६१.३०%—ये पदार्थ होते हैं ।

कलकत्ता (School of Tropical Medicine) के रसायन विभाग में इसके संबन्ध में जो अन्वेषण-कार्य हुये हैं, उनसे यह प्रगट होता है कि स्थिर तैल के सिवा बीजों में एक प्रकार के अस्थिर तेल के कुछ चिह्न भी होते हैं । लगभग २५० ग्राम बीज-चूर्ण को बाष्पमें परिस्रावित करने पर केवल अंशमात्र अस्थिर तैल पाया गया । तो भी अभी तक उसके लक्षण निश्चित रूप से निर्धारित नहीं हो पाये । आर० एन० चोपरा, इंडिजीनस ड्रग्स ऑफ इंडिया पृ० ३६६–७ ।

वृक्षत्वक् में ईथर, सुरासार एवं जल-विलेय एक तिक्त क्षारोद और ईथरविलेय हरापन लिये भूरे रंग का एक एसिड रेजिन भी होता है । इसके सिवा उसमें शर्करा, और खबाब (Mucilage)

भी होते हैं, छाल के किसी भाग में कषायिन (Tannin) की वर्तमानता का कोई निर्देश नहीं पाया गया, डोमक, नादकर्णी, खोरी ।

औषधार्थ व्यवहार—मूलत्वक् वा मूल, वृक्षत्वक्, कांड, बीज, बीजशस्य, बीजोत्थ तैल, फल और पत्र ।

औषध-निर्माण—महानीलघृत (सु० चि०) करंजाद्य घृत (सु० चि० १६ अ०), कुष्ठनाशक अरिष्ट (सु० चि०), पृथिवीसार तैल (च० द०) तिक्ताद्यघृत, करञ्ज तैल, करञ्ज बीज वर्तिका (च० द०), करञ्ज बीजादि लेप (च० द०), करञ्जादिघृत (भैष०), करञ्जादि पुटपाक (वृ० नि० र०), करञ्जादि शीर्ष रेचन इत्यादि ।

तेल निकालने की विधि यह है कि इसके बीजों को अगहन के महीने में संग्रह कर घानी में पेरते हैं । एक मन बीजों से लगभग साढ़े छः सेर तेल निकलता है । यह ५५° के उत्ताप पर जम जाता है ।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

करञ्जश्चोष्णतिक्तः स्यात्कफपित्तास्रदोषजित् ।
व्रणप्लीह कृमीन्हन्ति भूतघ्नो योनि रोगहा ॥
चिरबिल्वः करञ्जाश्च तीव्रो वातकफापहः ।

(ध० नि०)

करञ्ज—गरम, कड़ुआ, कफनाशक और पित्त एवं रक्तविकारनाशक हैं तथा व्रण, प्लीहा, कृमि और योनि रोग को नष्ट करता और भूत बाधा निवारकहै। चिलबिल (चिरबिल्व करञ्ज) तीव्र और वात कफनाशक है ।

करञ्जः कटुरुष्णश्च चक्षुष्यो वातनाशनः ।
तस्यस्नेहोऽतिस्निग्धश्च वातघ्नःस्थिरदीपनः ॥

(रा० नि०)

करञ्ज—चरपरा, गरम, आँखों को हितकारी और वातनाशक है । करंज तैल अत्यन्त स्निग्ध और वातनाशक है तथा देर तक जलता है ।

करञ्जःकटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत् ।
कुष्ठोदावर्त गुल्मार्शो व्रणकृमि कफापहः ॥
तत्पत्रं कफवातार्शः कृमिशोथहरंपरम् ।
भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघुः ॥
तत्फलं कफवाताघ्नं मेहार्शः कृमिकुष्ठजित् ।

(भा० पू० १ भ० गु० व०)

करंज—चरपरा, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और योनि दोषनाशक है तथा कोढ़, उदावर्त, गुल्म, अर्श (बवासीर), व्रण, कृमि और कफ का नाश करता है । करंज पत्र—कफ वातनाशक है तथा अर्श नाशक, कृमिघ्न एवं परम शोथघ्न है । यह भेदक, (दस्तावर), पाक में चरपरा, उष्णवीर्य, पित्तकारक और लघु है । करञ्ज का फल—कफ वातनाशक है तथा प्रमेह, बवासीर, कृमि और कोढ़ इनको नष्ट करता है ।

करञ्जः कटुकः पाके नेत्र्योष्णस्तिक्तको रसे ।
कषायोदावर्त्त वातानां योनिदोषापहः स्मृतः ॥
वातगुल्मार्शव्रणहृत् कण्डूकफ विषापहः ।
विचर्चिका पित्तकृमि त्वग्दोषोदर मेहहा ॥
प्लीहाहरश्च संप्रोक्तः फलमुष्णं लघु स्मृतम् ।
शिरोरुग्वातकफ हृत्कृमि कुष्ठार्श मेहनुत् ॥
पर्णं पाके कटूष्णं स्याद्भेदकं पित्तलं लघुः ।
कफवातार्श कृमिनुद्व्रणं शोथं च नाशयेत् ॥
पुष्पमुक्तं चोष्णवीर्यं पित्तवात कफापहम् ।
अस्यांकुरा रसे पाके कटुकाश्चाग्नि दीपकाः ॥
पाचकाः कफवातार्शः कुष्ठकृमि विषापहाः ।
शोथनाशकराः प्रोक्ता ऋषिभिः सूक्ष्मदर्शिभिः ॥

(नि० र०; वै० निघ०)

करंज—पाक में चरपरा, रस में कड़ुआ, उष्ण वीर्य, कसैला, आँखो को हितकारी है तथा उदावर्त, वायु, योनि-विकार, वातजगुल्म, अर्श, व्रण, खुजली, कफ, विष, विचर्चिका, पित्त, कृमि, चर्मरोग, उदर व्याधि, प्रमेह और प्लीहा इनका नाश करता है । करञ्ज का फल उष्ण और हल्का है तथा सिर के रोग, कफ, कृमि, कोढ़, अर्श और प्रमेह इनको नष्ट करता है । करंज-पत्र पाक में चरपरा, उष्ण, भेदक (दस्तावर), पित्तकारक एवं हल्का है तथा कफ, वातार्श, कृमि, व्रण और सूजन—इनको नष्ट करता है । करञ्ज का फूल

उष्णवीर्य तथा वातनाशक पित्तनाशक और कफनाशक है। करञ्ज का अंकुर रस और पाक में चरपरा तथा अग्निदीपक एवं पाचक है और कफ, वात, अर्श, कोढ़ कृमि, विष, और सूजन इनका नाश करता है।

करञ्जो ज्वर त्वग्दोषनाशनो दंतदाढर्यकृत्।
कटुको भेदनस्तस्य फलं नयन पुष्पहृत्॥
पित्तश्लेष्मण्युदासीनं विष्टम्भन विबन्धकृत्।

(शा० नि०)

करंज—ज्वरनाशक, चर्म रोगनाशक तथा दाँतों को दृढ़ करनेवाला चरपरा, एवं दस्तावर है। करंज का फल—कफ और पित्तनाशक, विष्टम्भकारक और विबंधकारक है तथा आँख के फूला को दूर करता है।

करञ्ज तैल

करञ्जतैलं नयनार्त्तिनाशनं।
वातामयध्वंसनमुष्णतीक्ष्णकम्॥
कुष्ठार्त्तिकण्डूति विचर्चिकापहम्।
लेपेन नानाविध चर्मदोषनुत्॥

(रा० नि०)

करंज का तेल—नेत्ररोगनाशक, वातरोग निवारक तथा उष्ण और तीक्ष्ण है एवं कोढ़, कण्डू (खुजली) और विचर्चिका—इनको नष्ट करता है। लेप करने से यह नाना प्रकार के चर्म रोगों को नष्ट करता है।

करञ्जतैलं तीक्ष्णोष्णं कृमिहृद्रक्त पित्तकृत्।
नयनामय वातार्त्ति कुष्ठकण्डू व्रणप्रणुत्॥
वातनुत्पित्तकृत्किञ्चल्लेपनाच्चर्म्म दोषनुत्।

(आ० सं०)

करंज का तेल—तीक्ष्ण, उष्ण, कृमिनाशक और पित्तकारक है एवं नेत्र रोग, वात रोग, कोढ़, खुजली और व्रण इनको नष्ट करता है। यह वातनाशक और किंचित् पित्तकारक है तथा लेपन करने से त्वचा के रोगों को दूर करता है।

कारंजं कटुकं पाके कटूष्णमनिलापहम्।
कुष्ठ शीर्ण गदार्शोघ्न मेद शुक्र प्रमेहजित्॥
अधोर्ध्व हरणं श्लेष्म कृमिविध्वंसनं लघुः।
मक्षिका दंश कीटादि नाशनं व्रणरोपणम्॥

(शा० नि०)

करंज का तेल—पचने में चरपरा, गरम, वात नाशक तथा कोढ़, शीर्षरोग, बवासीर, मेद, शुक्र, प्रमेह, अधो और ऊर्ध्ववात, कृमि, मक्षिका और दंशादि कीड़ों के विष को दूर करताहै तथा हलका और व्रण को भरनेवाला है।

करंजतैलं तिक्तं स्यादुष्णं च व्रणपूरकम्।
नेत्ररोगं विचर्चीञ्च वातं कुष्ठं व्रणंतथा॥
कण्डूगुल्ममुदावर्त्तं योनिदोषं च नाशयेत्।
अर्शोघ्नं लेपनाच्चैव नाना त्वग्दोष नाशनम्॥

(नि० र०)

करंज का तेल—कड़वा, गरम, व्रण को भरने वाला तथा नेत्ररोग, विचर्ची, वात, कोढ़, व्रण, कण्डू, गुल्म, उदावर्त्त, योनिविकार, बवासीर और लेप करने से नाना प्रकार के त्वचा के दोषों को दूर करता है।

किटिमघ्नं कृमिघ्नं रुचिपित्तदोषकरञ्च।

(राज०)

यह किटिम और कृमिनाशक, रुचिजनक, पित्त कारक और दोषकारक है।

"तिक्तं नात्युष्णञ्च।" वा० टी०।

यह कड़ुआ है और बहुत गरम नहीं है।

महाकरञ्ज

महाकरंजकस्तीक्ष्णः कटुश्चोष्णश्च तिक्तकः।
कण्डू विचर्चिका कुष्ठ त्वग्रुग्विषव्रणापहा॥

महाकरंज—तीक्ष्ण, चरपरा, कड़वा एवं गरम है तथा कण्डू (खुजली), विचर्चिका, कोढ़, त्वचाके रोग, विष और व्रण का नाश करता है।

महाकरञ्जस्तिक्तोष्णः कटुको विषनाशनः।
कण्डू विचर्चिका कुष्ठ त्वग्दोष व्रणनाशनः।

(ध० नि०; रा० नि०)

महाकरंज—तिक्त, चरपरा, गरम एवं विष नाशक है तथा खुजली, विचर्चिका, कोढ़, त्वग्दोष और व्रण का नाश करता है।

घृत करञ्ज

घृतकरञ्जः कटूष्णो वातहृद्व्रणनाशनः ।
सर्वत्वग्दोषशमनो विषस्पर्श विनाशनः ॥
(रा० नि०)

घृतकरंज—चरपरा, गरम, वातनाशक एवं व्रण नाशक है तथा अखिल चर्मरोगों को एवं विष तथा स्पर्श का नाश करता है।

घृतपूर्ण करञ्जोऽपि करञ्ज सदृशो गुणैः ।
(भा० पू० १ भ० गु० व०)

घृतकरंज (घृतपूर्ण करंज) भी गुण में करंज के सदृश होता है।

प्रोक्तो घृतकरंजस्तु कटुकोष्णो व्रणापहः ।
वातं च सर्वत्वग्दोषं विषंचार्शो विनाशयेत् ॥
करञ्ज इव संप्रोक्ता गुणास्त्वन्ये भिषग्वरैः ॥

घृतकरंज—चरपरा, गरम और व्रणनाशक है तथा वायु, अखिल त्वग्रोग, विष और अर्श (बवासीर) को नष्ट करता है। इसके अन्य गुण करंज की तरह हैं।

गुच्छ करञ्ज

करञ्जः कटुतिक्तोष्णो विषवातार्ति नाशनः ।
कण्डू विचर्चिका कुष्ठ स्पर्श त्वग्दोषनाशनः ॥
(रा० नि० ६ व०)

गुच्छ करंज—चरपरा, कड़वा और उष्ण है तथा विष, वायु के रोग, कण्डू, (खुजली), विचर्चिका, कोढ़, स्पर्श और चर्म रोग इनको नष्ट करता है।

गुच्छनामा करंजः स्यादुष्णस्तिक्तः कटुःस्मृतः।
विचर्चिका वात विष कण्डू कुष्ठार्श नाशनः ॥
त्वग्दोषनाशकश्चैव ऋषिभिः परिकीर्तितः ।

गुच्छ करंज—चरपरा, कड़वा, और गरम है तथा विचर्चिका, वायु, विष, कण्डू (खुजली) कोढ़, बवासीर और त्वचा के रोगों को नष्ट करता है।

उदकीर्य, करञ्जी (अरारी)

करञ्जी स्तम्भनी तिक्ता तुवरा कटुपाकिनी ।
वीर्योष्णावमिपित्तार्शः कृमिकुष्ठ प्रमेहजित् ॥
(भा० पू० १ भ० गु० व०)

करंजी—स्तंभनी, कड़वी, कसेली, पाक में चरपरी और उष्णवीर्य है तथा वमन, पित्त, बवासीर, कृमि, कोढ़ और प्रमेह का नाश करती है।

करञ्ज के वैद्यकीय व्यवहार

चरक—(१) कुष्ठ में करञ्जफल—इंद्रयव और करंज के फल का लेप प्रसिद्ध कुष्ठापह है। यथा—

❀ "कुटज करञ्जयोःफलम् ।
लेपः कुष्ठापहःसिद्धः (चि० ७ अ०)

(२) अर्श रोग में करञ्ज पत्र—भोजन से पूर्व एकत्रीकृत तिल तैल और गोघृत में भुनी हुई करंज की पत्ती का चूर्ण सत्तू के साथ सेवन करने से, बवासीर रोगी के वायु और मल का अनुलोमन होता है। यथा—

"प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् शक्तुभिश्चावचूर्णितान् ।
करञ्जपल्लवान् दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम्" ॥
(चि० ६ अ०)

(३) विसर्प में करंज-त्वक्—पिष्ट ईषदुष्ण करंज त्वक् को शरीर पर लेपन करें। यथा—

सुखोष्णाया प्रदिह्यात् ❀ । ❀ नक्तमाल त्वचाऽपिवा"। (चि० ११ अ०)

सुश्रुत—(१) कच्छु पामा विचर्चिका में नक्तमाल अर्थात् डहरकरंज का तेल—डहर करंज का तेल कच्छ्वादि चर्म रोगों में उपकारी है। यथा—

"तैलं वा नक्तमालजम्" (चि० २० अ०)

(२) वातज शूल में चिरबिल्वांकुर—डहर करंज की कोमल पत्तियों को तिल्ली के तेल में भूनकर वातशूल-रोगी को सेवन कराएँ। यथा—

"चिरबिल्वांकुरान् वापि तैलभृष्टांस्तु भक्षयेत्"
(उ० ४२ अ०)

(३) रक्तपित्त में करञ्ज बीज—डहर करंज के बीजों को घी और शहद के साथ सेवन करें। यह रक्तपित्त नाशक है। यथा—

"करञ्जबीजं मधुसर्षपौ च। हनन्ति त्रयः पित्तमसृक् च योगः" (उ० ४५ अ०)

(४) छर्दि वा वमन में करञ्जपत्र—करंज की पत्री द्वारा सिद्ध यवागू वमन निवारणार्थ प्रयोग में आता है। यथा—

"पिबेद् यवागूमथवा सिद्धां पत्रैः करञ्जजैः" (उ० ५० अ०)

(५) ऊरुस्तम्भ में करञ्जबीज—डहरकरंज के बीज और सरसों, दोनों को गोमूत्र में पीसकर लेप करें। यह ऊरुस्तम्भ रोग में हितकारी है। यथा—

"दिह्याच्च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः" (चि० ५ अ०)।

(६) कुष्ठ में करञ्जतैल—कुष्ठजन्य क्षत में डहरकरंज के बीजों का तेल वा सरसों का तेल व्यवहार करें। यथा—

"कारञ्जं वा सार्षपं वा क्षतेषु। क्षैप्यं तैलं" (चि० ६ अ०)

वाग्भट—ग्रन्थिविसर्पमें नक्तमाल त्वक्करंज की छाल को पानी में पीस गुनगुना कर लेप करने से यह शिला को भी भेदन कर सकता है, फिर ग्रंथि विसर्प को विलीन होने में और क्या आश्चर्य है। यथा—

"नक्तमालत्वचा ❀। लेपोभिन्द्याच्छिलामपि" (चि० १८ अ०)

नोट—वाग्भट (सू २ अ०) में करंज के दंतधावन और चिरबिल्व शाक (सू० ६ अ० शा० व०) का उल्लेख मिलता है।

चक्रदत्त—(१) पक्वशोथ प्रभेदनार्थ चिरबिल्वमूल—डहर करंज की जड़ की छाल को पीसकर प्रलेप करने से पका फोड़ा फूट जाता है। यथा—

"चिरबिल्वाग्निकौ।" (व्रणशोथ—चि०)

(२) नेत्ररोग में करञ्जबीज—डहरकरंजा के बीजों की गिरी को, पलास के फूलों के रस की एक बार भावना देकर, उसकी वर्त्ति (बत्ती) प्रस्तुत करें। उक्त वर्त्ति को शुद्ध मधु में बिसकर रोगी की आँख में अंजन करने से कुसुम नामक नेत्ररोग नष्ट होता है। यथा—

"बहुशः पलाश कुसुम स्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात्। नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं हन्तु चिरजमपि"। (नेत्ररोग-चि०)

वसवराजीयम्—काकण कुष्ठ में करञ्ज तैल—करञ्ज तैल में चीता और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर लेप करने से काकण नामक कुष्ठ नाश होता है। यथा—

"तैलं करञ्जबीजोत्थं वह्निसैन्धवसाहितम्।
चूर्णितं लेपयेद्धन्ति शीघ्रमेव तु काकणम्॥"

(वस० रा० १३ प्र० पृ० २१३)

योगरत्नाकर—छर्दिनिवारणार्थ करञ्ज बीज—करञ्ज की गिरी को कुछ भूनकर टुकड़े टुकड़े करके बार बार खाने से दुःसाध्य छर्दि भी नष्ट हो जाती है। यथा—

"ईषद्भृष्टं करञ्जस्य बीजं खण्डीकृतं पुनः।
मुहुर्मुहुर्नरो भुक्त्वा छर्दिं जयति दुस्तराम्॥

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, बृहन्निघण्टु रत्नाकर और वृंदमाधव के मतानुसार यह सर्प और बिच्छू के विषमें उपयोगी है। परन्तु महस्कर और कायस के मतानुसार इस वनस्पति का प्रत्येक भाग साँप और बिच्छू के विष में निरुपयोगी है।

यूनानी मतानुसार गुणदोष—

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय कक्षा में रूक्ष।

हानिकर्त्ता—फुफ्फुस और आंत्र को। इसके तेल का अतिसेवन हानिकारक है। दर्पघ्न—कतीरा।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह चक्षुष्य है तथा बालरोग, कण्डू और ज्वरों को दूर करता है। नीम के पत्तों के रस में इसकी लकड़ी घिसकर देने से कुष्ठरोग आराम होता है। मूत्रविकार में इसके फूल और पत्ते गुणकारी हैं। ये त्वचा के रोगों को मिटाते और उदरस्थ कृमि तथा विष का निवारण करते हैं। ७ माशे करंज के बीज, और उतनाही मिश्री मिलाकर सेवन करने से दाँतों से खून आना बंद होता है। सर्प और वृश्चिकदंश में इनका पीना और लेप करना उपकारक होता है। इसका तेल पीने से उदरज कृमि

निःसृत होते हैं। इसे बालों में लगाने से जूयें नष्ट होती हैं। शरीर पर इसका अभ्यंग करने से कण्डू वा खाज का निवारण होता है। शिरोऽभ्यंग करने से इद्रलुप्त वा खालित्य अर्थात् गंज रोग का नाश होता है। इसको जड़ दाँतों के नीचे दाबकर स्त्री-संग करने से स्तंभन होता है। इसकी गंध, मोतिया और चमेली की गंध की विरोधिनी है और बच को ख़राब कर देती है।

निघंटुसंग्रह के अनुसार इसकी पत्ती और छाल पानी में पीसकर पीने से बवासीर आराम होता है। इसकी लकड़ी की दातौन करने से दाँत दृढ़ होते हैं। इसके बीजों का प्रलेप करने से चर्म्मरोग आराम होते हैं। इसके पत्तोंको पीसकर लेप करनेसे क्षतज कृमि नष्ट होते हैं। दुष्ट व्रण में इसकी जड़ का रस लगाने से उपकार होता है। कण्डू एवं त्वचा के कई अन्य रोगों को मिटाने के लिये इसका तेल अतीव गुणकारी होता है। फिरंगीय वा अन्य प्रकार के चट्टों पर, इसके तेल में नीबू का रस लगाने से बहुत उपकार होता है। करंज और चित्रक के पत्र, कालीमिर्च तथा लवण—इसको पीसकर दही के साथ चटाने से कुष्ठ रोग आराम होता है। उदर के कोष्ठों के बढ़ जाने (प्लीह यकृद्विवृद्धि) पर इसकी डाली का रस, जड़ और तेल सेव्य है। इसकी जड़ का रस नारियल का दूध और चूने का पानी—इन्हें एकत्र मिलाकर पिलाने से सूज़ाक आराम होता है। करंज की पत्ती और चाते की पत्ती के रस में कालीमिर्च और नमक की बुकनी का प्रक्षेप देकर पिलाने से पाचन को निर्बलता, अतिसार और आध्मान—इनका निवारण होता है। इसके फूलों का काढ़ा पिलाने से बहुमूत्र रोग आराम होता है। इसके फलों को तागे में पिरोकर हार बनाकर धारण कराने से कूकर खाँसी (कुत्ता खाँसी) मिटती है। इसके बीजों (फलमज्जा चूर्ण) को शहद के साथ चटाने से भी उक्त लाभ होता है। रक्तार्श में इसकी कोमल पत्तियोंका प्रलेप लाभकारी होताहै इसकी जड़ की छाल के दूधिया रस की पिचकारी देने से भगंदर शीघ्र भर जाता है। इसकी जड़ की छाल के दूधिया रस में, समान भाग तिलों का तेल और किंचित् नीलाथोथा मिलाकर लगाने से अस्थि व्रण पूरित होते हैं। मृगी में इसके पत्तों का सेवन अति गुणकारी है। इसकी गिरी के चूर्ण में शक्कर मिलाकर फाँकने से बवासीर आराम होता है। किंतु इसके सेवन काल में स्निग्ध पदार्थों का आहार करना चाहिये। इसकी सेवन विधि यह है—प्रथम दिवस इसकी गिरी का चूर्ण एक माशा, तीन माशे शहद के साथ चटायें। तदुपरांत एक-एक माशा चूर्ण उत्तरोत्तर बढ़ाते हुये ग्यारह दिवस पर्यन्त बढ़ाकर पुनः उसी प्रकार क्रमशः एक एक माशा कम करते हुये तीन माशे मात्रा पर आ जाँय। इससे पथरी नष्ट होती है। इसके हरे पत्तों को पीसकर सेंधानमक मिला भक्षण करने से क़ै बंद होती है। क़ै बंद करने के लिये इसकी बीज मज्जा को सेंक और कुचलकर कई बार खिलाना पड़ता है। उष्ण और शोथ निवाकर औषधियों के साथ इसका प्रलेप करने या इसके साथ सेंक करने से वातजशूल मिटता है। टेसू के फूलों के रस में करंज के बीजों का चूर्ण भिगोकर सुखायें। फिर उसको सलाई वा वर्त्ति प्रस्तुत कर-लेवें। यह सलाई आँख में फेरने से फूला कट जाता है। अर्द्धावभेदक में, इसके फूल और गुड़ को पीसकर गरम पानी के साथ नाक में टपकाने से उपकार होता है। इसका रस लगाने से क्षतज कृमि नष्ट होते हैं। इसके एक बीज की गिरी और एक रत्ती नीलाथोथा—इन दोनों को पीसकर सरसों के प्रमाण की वटिकायें निर्मित करें। इसमें से एक-एक वटी नित्य प्रति सेवन कराने से पसली का दर्द आराम होता है। इसके पत्तों का रस हथेली और तलुओं पर मर्दन करने से वीर्य स्तम्भन होता है। कुसुम के रंग से रँगे हुये लाल कपड़े में एक करंज लाल तागे से बाँधकर गर्भवती स्त्री की कटि में बँधा रखने से गर्भपात नहीं होता। इसकी मींगी को दूध में भिगो-पीसकर मुखमंडल पर मर्दन करने से चेहरे की कांति बढ़ती है। इसकी मींगी को पानी में पीसकर लगाने से कफज ज्वर छूटता है। इसका फल खाने के काम आता है। (अनुभूत चिकित्सा सागर में इसी तरह लिखा है) ख० अ०।

नव्य मत

आर० एन० खोरी—डहर करंज का तैल उष्ण (उत्तेजक) और कीटनाशक है। इसके अभ्यंग से त्वचा पर न तो क्षोभ वा प्रदाह उत्पन्न होता है और न उस पर किसी प्रकार का दाग पड़ता है। कण्डू (Scabies), चमरोग विशेष (Herpes), इंद्रलुप्त विशेष Porrigo capitis) झींप वा व्यंग (Pityriasis), दद्रु विशेष (Versicolor), विचर्चिका (Psoriasis) प्रभृति तथा अन्यान्य विविध चर्म रोगों में प्रायः समांश नीबू के रस के साथ करंज तैल व्यवहृत होता है। आमवात वा गठिया में इसका तेल अभ्यंग रूप से भी काम में आता है। करंज की पत्ती उत्तेजक, आध्मानहर और परिवर्त्तक हैं तथा अजीर्ण, उदराध्मान एवं कुष्ठ, मृगी और प्लीहयकृद्वृद्धि में भी इसका व्यवहार होता है। इसकी जड़ का रस स्निग्ध और शीतल है तथा पूयमेह (गनोरिया), क्लिन्न क्षत एवं भगंदरजात क्षत शोषणार्थ व्यवहार में आता है। (मेटिरिया मेडिका आफ इण्डिया—२ य खं० २२५ पृ०)

रीडी (Rheede)—लिखते हैं कि करंज के पत्रक्वाथ से अवगाहन करने से आमवातिक वेदना प्रशमित होती है। इस हेतु इनका व्यापक रूपेण व्यवहार होता हुआ दिखाई देता है।

ऐन्सली—के अभिमत से कदर्य क्षत शोषणार्थ तथा भगंदर गत क्षत पूरणार्थ डहरकरंज की जड़ का रस व्यवहार किया जाता है। वे इसके तेल एवं कण्डू तथा आमवात में इसकी उपयोगिता का भी वर्णन करते है।

गिब्सन—महाशय लिखते हैं—समान भाग नीबू के रस के साथ करंज-तैल को आलोड़ित कर मर्दन करें। यह विविध चर्म रोगों के लिये महौषध है। (नीबू का रस और करंज तैल को एकत्र आलोड़ित करने से एक प्रकार का उत्कृष्ट पीत वर्ण का अभ्यंगोपयोगी स्नेह प्रस्तुत होता है।)

डा० पी० सी० मूतूस्वामी लिखते हैं कि तञ्जौर निवासी पूयमेह वा गनोरिया को उत्कृष्ट औषध मानकर, चूने का पानी एवं नारिकेल दुग्ध के साथ इसकी जड़ का रस व्यवहार करते हैं। वहां आध्मान, अजीर्ण अतिसार रोग में करंज पत्र (पोंगा—इलै—ता०) के उपयोग का भी उल्लेख करते हैं। वे लिखते हैं कि इसका फूल मधुमेह (Diabetes) रोग में व्यवहृत होता है और फलियों की माला कूकरखाँसी प्रतिषेधक रूप से कंठ में धारण की जाती है। डा० बी० एवर्स लिखते हैं कि मैंने कूकर-खांसी में इसके बीजों का मुख द्वारा उपयोग किये जाते हुये अवलोकन किया है। कृषक गण चिराग़ जलाने के लिये इसके तेल का व्यवहार करते हैं। (फार्माकोग्राफिया इण्डिका—डीमक, १ खं० ४६६ पृ०)

नादकर्णी—(गुण, प्रभाव) इसकी गिरी से निकाला हुआ तेल शोधक पचननिवारक (Antiseptic) और उष्ण आरोग्यप्रद गुण विशिष्ट होता है। तेल ही इसका कार्यकारी उपादान प्रतीत होता है, क्योंकि उसे निकाल लेने के उपरांत अवशिष्ट रहा हुआ अंश निष्क्रिय होता है। पत्र, बीज, मूल और तैल पराश्रयी कीटनाशक है; ये प्राणिज और वानस्पतिक दोनों प्रकार के चर्मरोग जात कीटाणुओं को नष्ट करते हैं। वृक्षत्वक् ग्राही (Astringent) होता है।

आमयिक प्रयोग—चर्मरोगों में त्वचा पर करंज तैल का अभ्यंग करते हैं। कण्डू (Scabies), क्षत, पित्तज त्वग्गत क्षुद्र दाने (Herpes) और तादृश पामादि रोगों में करंज तैल में यशद भस्म (एक आउंस तेल में एक ड्राम यशद भस्म) मिलाकर लगाने से बहुत उपकार हुआ है। आमवात (मांसपेशीय वा सर्व संधिजात), विचर्चिका, इन्द्रलुप्त विशेष (Porrigo), (Capitis)और व्यंग वा झींई (Pityriasis)में समान भाग करंज तैल और नीबू का रस मिलाकर अभ्यंग रूप से सेव्य है। आमवात पीड़ित संधियों को इसकी पत्तियों के काढ़े में अवगाहित करते हैं अथवा उससे स्वेदन करते हैं। इसी प्रकार इसके प्रकांड, पत्र और मूल का स्वरस भी उपकारी होता है। कृमियों को नष्ट करने के लिये करंज के वृक्ष का रस, नीम और निर्गुण्डी वृक्ष-स्वरस के साथ अथवा उक्त

वृक्ष त्रय की पत्तियों का कल्क व्यवहार किया जाता है। उक्त रस नारिकेल दुग्ध और चूने के पानी के साथ खूब आलोड़ित करके तथा हठीले रोगों में तुवरक तैल, कपूर और गंधक ये द्रव्य और सम्मिलित करके उपयोगित करते हैं।

इसके उपयोग से सूज़ाक आराम होता है। कीट पूर्ण क्षतों पर इसके पत्तों की पुलटिस रखी जाती है। उदराध्मान, अजीर्ण एवं अतिसार में पत्र-स्वरस उपकारी होता है कुष्ठ में इसके बीजों की गिरी का लेप लगाते हैं। रक्तार्श में इसके कोमल पत्तों का प्रलेप करते हैं और छाल मुख द्वारा देने से लाभकारी होती है। बहुमूत्र रोग जनित पिपासा प्रशमनार्थ इसके सूखे फूलों का चूर्ण अन्य उपादानों के योग से क्वाथ रूप में व्यवहार्य होता है। पूयमेह और योनिशोथ में इसका अंतः प्रयोग होता है। इसका पुष्प बहुमूत्र औषध की तरह व्यवहार किया जाता है। कूकर खाँसी में इसकी फली कंठ में धारण की जाती है छिलका उतारे हुये करंज के बीजों का चूर्ण कुक्कुर खाँसी की अमोघौषध की भाँति काम में आता है। शिशुओं एवं छोटे बालकों के लिये इसकी मात्रा $\frac{1}{8}$ से २॥ रत्ती तक अवस्थानुसार है। बारह वर्ष से अधिक अवस्था वालों के लिये एक माशा तक इसकी मात्रा है। इसके चूर्ण को काग़ज में लपेट कर नहीं रखना चाहिये, क्योंकि काग़ज इसके तैलांश को सोख लेता है। अधिक समय तक रखने से चूर्ण की उपादेयता नष्ट हो जाती है। अत एव इसे सदैव ताजा तैयर करना चाहिये। अंडकोष वृद्धि एवं कंठमाला पर करंज की जड़ चावल के धोवन में पीस कर प्रलेप की जाती है। (इं० मे० मे० पृ० ७०५-६)

एक प्रकार के अजीर्ण में जिसमें यकृत की क्रिया शिथिल पड़ जाती है कभी कभी जठराग्नि दीपक (Stomachic) और पित्तरेचक (Cholagogue) रूप से इसके तेल का आभ्यंतरिक प्रयोग होता है। दुर्बलता एवं शक्तिहीनता की दशा में करंज के बीजों का चूर्ण उत्तम उत्तेजक एवं बल्य माना जाता है। कास और उत्कटकास (Whooping cough) में कफोत्सारि गुण के लिये भी इसका सामान्य रूप से व्यवहार होता है।

इसके बीजों में उड़नशील तैल की उपस्थिति होने से यह सोचा गया कि यह इसी कारण से कास में लाभकारी होगा। इसके उड़न शील तैल का चिकित्सा में उपयोग किया गया। इसका पशुओं की शिराओं में अन्तःक्षेप भी किया गया। परीक्षण से यह पाया गया हैं कि इससे रक्तचाप कुछ बढ़ा, परंतु यह अस्थायी रूप से। सूक्ष्म वायु नलिकाएँ कुछ ढीली हुईं। इस विषय का अध्ययन अभी चालू है। इसके तेल के विषय में अभी बहुत कुछ अध्ययन होने को है। (इं० डू० इं०)

(२) एक मध्यमाकार का वृक्षाश्रयीविटप वा भूमिस्पृष्ट शाखा-प्रशाखाविशिष्ट क्षुप अथवा कँटीली झाड़ी जिसकी पत्तियाँ सिरिस की पत्तियों से मिलती जुलती कुछ अधिक चौड़ी, अल्पाधिक रोमावृत, एक सींक पर ३-८ जोड़े होती हैं। जोड़े-जोड़े पत्तों के बीच क्षुद्र तीक्ष्णाग्र कण्टक होता है। फूल बड़े पीले पीले वा गंधकी रंग के मंजरी में भरपूर होते है। फूलों के गिर जाने पर कँटीली फलियाँ लगती हैं। प्रायः वर्षा ऋतु में इसमें फूल और फलियाँ लगती हैं। शिम्बी वा फलियाँ ढाई तीन अंगुल चौड़ा और छः सात अंगुल लंबी, प्रायः गोल दीर्घ होती हैं। इसके ऊपर का छिलका कड़ा और घन कंटकावृत होता है। इसके सर्वांग में प्रचुर कंटक होने से ही संस्कृत में इसे "कण्टकिकरंज" कहते हैं। एक एक फली में एक से तीन चार तक बेर बराबर प्रायः गोल गोल और $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ इंच व्यास के दाने होते हैं। ये गहरे धूसर वर्ण के, मश्रण और अत्यंत कड़े होते हैं। दानों के छिलके बहुत कड़े मोटे, गहरे ख़ाकी धूएँ के रंग के और भंगुर होते हैं। इसके भीतर एक द्विदलीय ज़र्दी माथिल सफ़ेद गिरी और अत्यंत कडुई (Radicle) होती है। जड़ और जड़ की छाल कडुई नहीं होती। गिरी से तेल भी निकाला जाता है। सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करने पर गिरी के दलों में लुआब, श्वेतसार, तैल और अंडलाल (Albumen) विद्यमान होते हैं।

पर्य्या०—(१) पूतिकरञ्ज—(कण्टकीबिटप करंज)प्रकीर्य्यः, रजनीपुष्पः, सुमनाः, पूतिवर्षिकः (पूतिपत्रकः), पूतिकरञ्जः, कैडर्यः, कलिमालः (रा०नि०) पूतीकरञ्जः, पूतिकरजः, पूतिकः, पूतीकः, कलिकारकः, कलिमालकः, कलहनाशनः, कलिमारकः, प्रकीर्णः, पूतिकाह्वः पूतिपर्णः, कलिमाल्यः सं०। नाटा, नाटकरंजा, नाटोकरंजा, नाटा करंजा गाछ, नाटा करंज–बं०। काँट करंज, कंट करंजा हिं०। काँटाकरंज–बम्ब०। धाणेरा करंज, सागर गोटा–मरा०। काकँच, तेनों फल कांकचिया गु०। करंजभेदु–कना०। कचकाई, गुच्चेपिका ते०। नाटातिता–कों०। कुम्बुरु–सिं०। वारुबहु-लिगितु–का०।

(*Caesalpinia Bonduc, Roxb*)

नोट–नक्रमाल वृक्ष करंज है और यह बिटप करंज है। "पूति" का अर्थ "दुर्गंध" होता है। अतः "पूति करंज" का अर्थ हुआ वह करंज जिससे दुर्गंध आवे। अतएव किसी किसी ने इसका नक्र-माल के भेदों में अंतर्भाव किया है। परंतु कट-करंज की गिरी भी एक प्रकार से दुर्गंधिपूर्ण ही होती है। अस्तु, इसका इस तक ही मर्य्यादित रखना समीचीन प्रतीत होता है। जड़ी बूटी में खवास के मत से कंटकी करंज दो प्रकार का होता है—(१) छोटा और (२) बड़ा। छोटे को करंजी कहते हैं। छोटा हरे रंग और बड़ा सफेद होता है। उक्त दोनों ही गुण धर्म में समान होते हैं। इनमें से बड़ा करंज तो उपर्युक्त 'पूति-करंज' है और छोटे करंज के लिये दे० 'करंजी"।

(२) लता करंज—(कंटकी वल्ली करंज)

लताकरञ्जो दुःस्पर्शो वीरास्यो वज्रबीजकः।
धनदाढ्यः कण्टफलः कुबेराक्षश्च सप्तधा॥
(रा० नि० च०)

अर्थात् कंजा के ये सात नाम हैं—लताकरंज, दुःस्पर्श, वीरास्य, वज्रबीजक, धनदाढ्य; कण्टफल (कण्टकिफल=भा०) और कुबेराक्ष; (वल्लीकरंज। क्रकचिका, करञ्जा, तिण्गच्छिका, वारिणी तीरिणी, कण्टकिनी) कण्टक करञ्जः (अ०टी०भ०) गदघ्नः (तिरिय०) गिच्छिकः (द्रव्य०) कराजका, वल्ली करंज, कण्टकीकरंज, लताकरंज, कटकरंज, करंजो, करंजवा, करंजुवा, कटकलीजा, कटक लीजी, सागरघोला, सागरगोटा, काँटकरंज, कंट-करंज, गटाइन, कंटकिनी, करंजा, करंजन, कंजा हि०। गजगा द०। काँटाकरंज, गँटे करंज, झगड़ा गूला, सेतान-गूला, लता करंजा—बं०। खायहे इब्लीस, खुर्माए अबुजहल—फ़ा०। अकितम-किन,—अ०, सि०। हब्बुल् बिलादत, हब्बुल्-मासक, हब्बुल् उकाब, रश्केमरियम (खुरासानी) हब्बुन्निसाऽ, हब्बएलाक़ी, अंनातीतस (संग विलादत)—अ०।

–मिश्री, –अ०। सीसैल्पाइनिया बारड्युसेला Caesal pinia bonducella, *Linn, Fleming.* गिलैंडिना बारड्युसेला Guilandina bonducella, *Linn.*–ले०। निकेर ट्री Nicker tree. बॉण्डक नट Bonduc nut; फीवर नट Fever nut, फिजिक नट Physic-nut, मलक्का बीन Molucca-been –अं०। बॉण्डक जॉनी Bonduc jaune, गिलैंडिना बण्डक Guilandina bonduc योडीबोरिक Yeux de bourrique –फ्रां०। कज़्र-शीक्काय, गेच–चक्काय, कालर कोडी, मलाल, कलङ्कु –ता०। गच्चकाय, यालवो, –ते०। कज़्-ञ्चिक्कुर, कलञ्चिक्कुरु, –मल०। गजग-कायि, करंज भेद –कना०। गजग करंगो-च-झाड़, सागर गोटा –मरा०। गाजगा, गाउग, काकँच (फल कांकचिया), काँचका, करंज-नु-झाड़ –गु०। कुम्बुरु–अट्ट –सिंगा०। कलैन्-सि, कलेञ्जि, कलेञ्जा –बर०। गजगो, नाटा तिता –कों०। करंजिका –तिरि-गिच्छि। –का०। सागरबोटा –बम्ब०। सीसैलपाइनिया बॉण्डक (Cœsalpinla bonduc) भी इसी जाति का पौधा है।

शिम्बी वर्ग

(*N. O. Leguminosæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—हिमालय से लेकर कन्या-कुमारी पर्यन्त समस्त भारतवर्ष में इसके बिटप उत्पन्न होते हैं। बिशेष बंगाल, बर्मा, बम्बई वा समग्र दक्षिण हिंदुस्तान में यह बहुत होता है। और पहाड़ों पर २५०० फुट की ऊंचाई तक

तथा मैदानों और समुद्र के किनारे पर होता है। कण्टकाधिक्य के कारण "दुष्पर्श" होने से इसे लोग खेतों के बाढ़ पर भी रूंधने के लिये लगाते हैं। इसके अतिरिक्त अखिल उष्ण देशों के समुद्र-तटों के समीप इसके झाड़ उपजते हैं। बंगदेश (राढ़) में नाटाकरंज के बीज को "कुंदुलेबिचि" कहते हैं।

रासायनिक संघटन—पूर्व के आचार्यों ने इसके बीज वा गिरी में किसी न किसी परिणाम में, कोई न कोई अज्ञातोद्दीय तिक्त सत्व की विद्यमानता पाई, जिसका नाम किसी ने गिलैंडीन (Guilandin), किसी ने बॉण्ड्युसीन (Bonducin) और किसी ने नेटीन (Natin) रक्खा। उक्त रासायनिक विश्लेषणों से प्राप्त विभिन्न परिणामों को दृष्टि में रखकर इस बात का शोध करने के लिये कि वस्तुतः इसमें कौन सा क्रियात्मक सार वर्तमान है। कलकत्ता के स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसिन में जो पुनः परीक्षण किये गये और उनसे जो निष्कर्ष प्राप्त हुये वे इस प्रकार हैं—उनसे पेट्रोलियम् ईथर में १३-५२%, सल्फ्युरिक ईथर में १.८४%, क्लोरोफार्म में ०.४२% और शुद्ध सुरासार में १८.५५% तक शुष्क रसक्रिया (Extriact) प्राप्त हुई। उक्त सभी रसक्रियाओं की पृथक् पृथक् रासायनिक परीक्षा की गई। परन्तु उनमें पूर्व के अन्वेषकों द्वारा वर्णित किसी भी प्रकार के क्षारोद की विद्यमानता की पुष्टि नहीं हो सकी। सुतराँ उसमें जल में अविलेय एक नॉन-ग्लुकोसाइडिक तिक्त सार की विद्यमानता निःसन्देह सिद्ध हुई और वह भी द्रव्यगुण विज्ञानता की दृष्टि से (Pharmacologically) क्रियाशून्य प्रमाणित हुई। बीजों में प्रचुर परिमाण में एक प्रकार का अप्रिय गंधि एवं पाँडु-पीत वर्ण का घन तैल होता है। इसमें आयोडीन और साबुन बनाने वाले घटक (Saponification) होते हैं, किसी-किसी के मत से एतद्भूत तैल की मात्रा २० से २५ प्रतिशत के बीच घटती बढ़ती रहती है। परन्तु लेखक (कर्नल चोपड़ा) द्वारा परीक्षित नमूनों में इसकी मात्रा १४ प्रतिशत से अधिक कभी नहीं पाई गई।

औषधार्थ व्यवहार—बीज, बीजशस्य, मूल, वृक्षत्वक् और पत्र।

औषध-निर्माण—चूर्ण, तेल और अभ्यङ्ग इत्यादि। करंजारिष्ट, हब्बदाफ़ा बुखार, (करावादीन इहसानी) इत्यादि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

लताकरञ्जपत्रंतु कटूष्णं कफवातनुत्।
तद्बीजं दीपनं पथ्यं शूलगुल्म व्यथापहम्॥

(रा० नि० शाल्म० ८ व०)

लताकरंज के पत्ते चरपरे, गरम और कफवात नाशक होते हैं। इसके बीज दीपन और पथ्य हैं तथा शूल और गोले की पीड़ा को दूर करते हैं।

करञ्जिका—(काँटा करञ्ज)

कण्टयुक्तः करञ्जस्तु पाके च तुवरः कटुः।
ग्राहकश्चोष्णवीर्य्यः स्यात्तिक्तः प्रोक्तश्चमेहहा॥
कुष्ठार्शोव्रणवातानां कृमीणां नाशनः परः।
पुष्पं तु चोष्णवीर्यं स्यात्तिक्तं वातकफापहम्॥

(वै० निघ०)

कंजा पाक में चरपरा, कसेला, ग्राही,—मलरोधक, उष्णवीर्य, तथा कड़वा है और यह प्रमेह कोढ़, बवासीर, व्रण, वायु तथा कृमिनाशक है। इसके फूल उष्णवीर्य, कड़वे, वात और कफ नाशक है।

पूतिकरञ्ज

पूतिकञ्जकः प्रोक्तो गुच्छपूर्ण करंजवत्॥

(नि० र०)

पूति करंजके गुण गुच्छ करंज के समान है।

पूतिकरंजजं पत्रं लघु वात कफापहम्।
भेदनं कटुकं पाके वीर्य्योष्णं शोफनाशनम्॥

पूतिकरंज की पत्ती—हलकी, वातकफनाशक, दस्तावर, पाक में चरपरी, उष्ण वीर्य और सूजन उतारने वाली है।

शोफघ्नमुष्ण वीर्यन्तु पत्रं पूति करञ्जजम्।

(सु० सू०)

पूतिकरंज की पत्ती—उष्ण वीर्य और सूजन उतारने वाली है।

अस्य बीजं वल्यम्। तन्मज्ज ज्वरघ्नं वल्यं, लेपनेन अण्डवृद्धौ हितं शोथहरं, रक्तस्रावारोधकम् उष्णं नीरसं कुष्ठघ्नञ्च। पत्रमपि तद्गुणं। केचित्।

कंजे का बीज वल्य है और इसकी गिरी वल्य और ज्वरघ्न है। लेप करने से यह अंडवृद्धि में हितकारी होती है। यह शोथनाशक, रक्तस्राव, उष्ण, नीरस और कुष्ठघ्न है। इसकी पत्ती उसी के समान गुणकारी है।

करञ्ज के वैद्यकीय व्यवहार

सुश्रुत—(१) श्लीपद रोग में पूति करञ्ज फीलपा के रोगी को, सरसों का तेल डालकर बलानुसार कंजे की पत्तियों का रस पीना चाहिये यथा—

"पूतिकरञ्जपत्राणां रस वापि यथाबलम्"

(चि० १६ अ०)

(२) कृमिरोग में पूतिकरंज—कंजे की पत्तियों वा जड़ का रस शहद मिलाकर पीने से उदरस्थ कृमि नष्ट होते हैं। यथा—

"पूतिकस्वरसं वापि पिवेद्वा मधुना सह"।

(उ० ५४ अ०)

चक्रदत्त—मसूरिका प्रथमाविर्भावकाल में पूतिकरञ्ज—पहिले पहल मसूरिका वा शीतला दिखाई देने पर कंजे की जड़ की छाल को जल में पीसकर सेवन करना चाहिये। यथा—

"❀ सोषणावाथपूतिः। ❀ प्रथममघगदे दृश्य माने प्रयोज्या:" (मसूरिका चि०)

वङ्गसेन—(१) जलोदर में पूतिकरञ्ज बीज कंजे की गिरी को काँजी में पीसकर पीने से जलोदर का नाश होता है। यथा—

"पूतिकरञ्जबीजं ❀ काञ्जिकपोतं शमयेज्जलोदर मपि" (उदर-चि०)

(२) अम्लपित्त में पूतिकरञ्ज-शुङ्ग—अम्ल पित्त रोगी को, भोजन से पूर्व गोघृत में भुना हुआ कंजे का पत्रमुकुल सेवन करावें और ऊपर से गुनगुना पानी पिलाकर वमन करावें। यथा—

पूतिकरञ्जशुङ्गानि घृतभृष्टानि रोगिणे।
निवेद्यभोजनेकाथं वमनं कोष्णवारिणा"॥

(अम्लपित्त चि०)

(३) कफपैत्तिक मसूरिका में पूतिकरंज—कंजे की पत्ती वा जड़ का रस और आँवले का रस, चीनी और शहद के साथ सेवन करने से कफ पैत्तिक मसूरिका और सूजन दूर होती है। यथा—

"रसं पूतिकरञ्जस्य चामलक्या रसं तथा।
पिवेत्सशर्कराक्षौद्र शोफघ्नं कफपैत्तिके"॥

(मसूरिका-चि०)

वसवराजीय—व्रण और कृमि रोग में करञ्ज रस—करंज, रीठा और मेंढ़ी के रस का उपयोग करने से व्रण और कृमि रोग का नाश होता है। यथा—

करञ्जारिष्ट निर्गुण्डी रसोहन्याद्व्रणकृमीन्।

(वस० रा० २१ प्र०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पत्ती, प्रथम कक्षा में शीतल और रूक्ष, मतांतरसे प्रथम कक्षामें उष्ण और रूक्ष; फल मज्जा प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष, मतान्तर से तृतीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षामें रूक्ष कोई कोई तृतीय कक्षा में शीतल और रूक्ष लिखते हैं; किंतु यह सत्य नहीं। वैद्य भी इसे उष्ण वीर्य ही मानते हैं।

हानिकर्त्ता—कंठ और वक्ष को, उष्ण प्रकृति एवं क्षीण पुरुषों को रुक्षता जनक है।

दर्पघ्न—कालीमिर्च, पीपल, शुद्ध मधु, तर पदार्थ, लवण और स्नेह।

प्रतिनिधि—फ़ाक़ानिया।

मात्रा—वयस्क १ मा०। ४–६ रत्ती।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह शोफघ्न पूर्व शोधित स्थापक है। इसका सेवन हवा बवाई के प्रभाव से सुरक्षित रखता है। आधा दाना इसकी मींगी और कई दाने लौंगों को एकत्र पीसकर लगाने से जलोदरगत सूजन मिटती है। यह जीर्ण ज्वर में लाभकारी है। स्त्री रोगों की चिकित्सा में यह परमोपयोगी है। अतएव स्त्री के दूध में करञ्जुए की गिरी पीसकर, उसमें वस्त्र-खंड क्लेदित कर वन्ध्या स्त्री की योनि में इसकी पिचु-वर्ति धारण करने से गर्भधारण होता है। यदि चलितगर्भा नारी इसकी वर्ति धारण करे, तो गर्भच्युति दोष की निवृत्ति हो। यदि लाख लाख में पिरोकर इसे गर्भवती स्त्री के गले आदि में बांध

देवें, तो गर्भपात न हो। यदि इसे बकरी वा भेड़ की खाल या वस्त्र में लपेट कर और इसे सुगंधि द्रव्यों की धूनी देकर, गर्भवती स्त्री की उलटी रान या पिंडली या पेडू पर बाँध देवें, तो सुख पूर्वक प्रसव हो। प्रसव के समय इसे बाँधना चाहिये और प्रसव होते ही खोल डालना चाहिये। इसे फलवान वृक्ष पर बाँधने से फल नहीं गिरते। कंजा के तीन दाने लेकर भूभल में दबा देवें। जब वे दाने पक जाँय, तब उन्हें निकाल लेवें और गिरी को पीसकर बारीक चूर्ण करें। इसे उस व्यक्ति को फँकावें जिसके अंडकोष में पानी उतर आया हो अर्थात् जिसे मूत्रज वृद्धि रोग हुआ हो। सप्ताह भर में इसका निःशेष लाभ प्रकाशित होगा। इस रोग में इसकी गिरीका चूर्ण एरण्ड-पत्र पर छिड़क कर बाँधने से भी उपकार होता है। इसकी गिरी का तेल शरीर पर मलने से कण्डू वा खाज का नाश होता है। नारी-योनि रोगों में यह विशेष उपकारी है। क्षत वा व्रण के लिये इसका तेल यहाँ तक गुणकारी है कि यदि उसमें कीड़े भी पड़ गये हों, तब भी इसके लगाने से लाभ होता है। सुतरां केवल इसको मींगी के चूर्ण को किसी तेल में मिलाकर मलने से सूजन और फोड़े-फुन्सी आदि चर्म रोग आराम होते हैं इसकी गिरी को गुलरोगन या तिल तैल में इतना पकायें कि जल वह जाय। फिर तेल को छानकर शीशी में रख लेवें। किसी प्रकार का दुष्ट एवं गम्भीर व्रण हो, इसके लगाने से आराम होता है। एक करंजुये की मींगी पीस कर गुड़ में मिलाकर खिला देवें। इससे आगामी दिवस को उदरस्थ सभी केचुये थैली की थैली मृतप्राय होकर निकल जायँगे। कफ, वात और रक्त विकारों में इसकी पत्ती गुणकारी है। यदि शरीर फूटकर उसमें स्थान स्थान पर छिद्र हो जाँय तो करंजुये की पत्ती घोंट पीसकर नित्यप्रति एक प्याला पिलायें। भोजन में चने या गेहूं की रोटी पर्याप्त घी के साथ देवें। चालीस दिन में लाभ प्रदर्शित होगा।

"खुलासा" के रचयिता लिखते हैं कि मैंने एक युवा को देखा जो चिरकाल से चातुर्थिक ज्वर से पीड़ित रहता था। उसे किसी औषधि से लाभ नहीं होता था। अंततः वह करंजुआ के पत्ते २१ कालीमिर्चों के साथ घोंटकर पीने लगा। इससे अल्प काल में ही वह सम्यक् रोग मुक्त हो गया। पुनरपि किसी लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति के गृह में धोखे से इसके तेल में कढ़ी को बघार लगा दिया गया और उसमें फुलकियाँ पकाकर घर के लोगों ने खा लीं। इससे उनको अत्यंत कष्ट हुआ, क़ै आई, दिल घबड़ाया और चक्कर आने लगी। किसी के बतलाने से उन्होंने मूँग की खिचड़ी में बहुत सा घी मिलाकर खा लिया, इससे उन्हें तुरत लाभ हो गया।—(ख़० अ०)

मख़्जन मुफ़रिदात में यह अधिक लिखा है—

"यह मवाद को पकाता है और आनाह शूल (रियाही क़ुलंज) का निवारण करता है।"

बुस्तान मुफ़रिदात में यह विशेष लिखा है—"एक दाने की आधी गिरी और पाँच कालीमिर्च इनको एकत्र पीसकर खिलाने से वातज आनाह, शूल (रियाही दर्द क़ुलंज) मिटता है। परीक्षित है। पीपल और शहद के साथ मिलाकर झड़बेरी के बराबर इसकी गोली बनाकर खिलाने से जीर्ण ज्वर का नाश होता है। इसे स्त्री के दूध में पीसकर योनि में इसकी वर्ति धारण करने से स्त्रियों का वंध्यत्व दोष मिटता है और वे गर्भधारण के योग्य हो जाती है। यह दृष्टि को शक्ति प्रदान करता और वायु का अनुलोमन करता है। यह सूखी खुजली गर्भाशय के रोग तथा कुष्ठादि में लाभकारी है"। इसकी गिरी को हुक्के में रखकर पीने से उदरशूल मिटता है।

करंजी की गिरी, संचर नमक, सोंठ और भुनी हुई हींग—इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके ६ माशे की मात्रा में गरम जल के साथ लेने से सब प्रकार के उदरशूल नष्ट होते हैं।

नव्य मत

आर० एन० खोरी—कंजे की गिरी तिक्त वल्य ज्वर निवारक और कृमिघ्न है। आर्द्रपत्र स्वरस ज्वरघ्न है तथा विषम ज्वर (जीर्ण ज्वर) में व्यवहृत होता है। अंतरा, तिजारी और चौथिया प्रभृति पारी के ज्वरों में इसके बीजों की गिरी का चूर्ण सम भाग पीपल के चूर्ण के साथ व्यवहार किया जाता है। अधिकन्तु यह ज्वरघ्न, सार्वांगिक दौर्बल्य नाशक, रक्तपित्त (Haemorrhage)

हर और रसावन (Alterativie tonic) है। करञ्ज की गिरी कृमिघ्न है और आन्त्रस्थ कृमि विनाशार्थ पलाश की पत्ती एवं फूल और अफसंतीन (Artmisia Absin thiam) की मंजरी के साथ, व्यवहार की जाती है। चेहरे की छींप और झाईं अर्थात् मुखव्यंग Frekles) और कर्णस्राव निवारणार्थ इसके बीजों का तेल व्यवहार में आता है। यह स्निग्ध है और अभ्यंग के काम आता है। सागरगोटा के बीजों की गिरी और लौंग—इन्हें चूर्ण कर सेवन करने से शूलवेदना (Pain of colic) और वमन शांत होता है। किसी किसी देश की ललनाओं का यह विश्वास है कि ससत्वानारियों के गले में कंजा के बीजों की माला धारण कराने से गर्भपात नहीं होता। मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया—२ य खं०, २०३ पृ०।

डीमक—भूनकर चूर्ण की हुई करंज की गिरी वृद्धिग्रस्त (Hydrocele) रोगी को सेवन कराते हैं और साथ साथ रेंड के पत्ते पर उक्त चूर्ण को स्थापन कर, उससे कुरण्ड को ढाँक रखते हैं। कुष्ठ रोग में भी इसका उपयोग होता है और यह कृमिघ्न ख्याल किया जाता है। क्षतरोपणार्थ बहु क्षण करंजगिरी साधिततैल व्यवहृत होताहै। कंजा के तैल के अभ्यंग से त्वचा सुकोमल एवं मृदु होती है और व्यंग तथा मुखव्रणादि का नाश होता है। अस्तु सौंदर्यवर्द्धक अभ्यंग रूप से इसका व्यवहार होता है। गर्भपात निवारण के लिये ससत्वाललना गण कंजे के बीजों को लाल रेशम के तागे में पिरोकर गले में धारण करती हैं और इसे वृक्षों पर इस हेतु लटकाते हैं, जिसमें उसके फल न झड़ने पावें।

ऐन्सली—लिखते हैं कि देशी चिकित्सकगण बलप्रद रूप से, मसाले के साथ, इसकी गिरी का व्यवहार करते हैं। वे वृद्धिग्रस्त रोगी के फोतों पर इसका प्रलेप भी करते हैं। इसके सिवा इसकी जड़ और पत्ती भी पूर्वोक्त गुणधर्म वाली होती है। शिशुजात आंत्रस्थ कृमि रोग में कोंकण निवासी कपूर हलदी (Yellow zodary) और पलासपापड़ा के साथ इसकी पत्ती का रस व्यवहार करते हैं। यह ज्वर निवारक है। अस्तु, ज्वर में इसे ४ तोले की मात्रा में देते हैं। योषापस्मार वा मूर्च्छा में गुड़ के साथ इसकी गिरी दी जाती है। जलसिद्ध (Roasted) कंजे के बीजों का यथाविधि क्वाथ प्रस्तुत करें। यह क्वाथ क्षय एवं श्वास रोग में प्रयोजनीय होता है। (फार्माको ग्राफिया इंडिका—१ म खं०, पृ० ४६७–८)

वैट—बीज की तरह कंजे की जड़ में भी ज्वरघ्नी शक्ति होती है। पत्रजात तैल आक्षेपकादि वातव्याधियों में व्यवहृत होता है। कोई-कोई कहते हैं कि कंजे की गिरी का चूर्ण तमाखू में मिलाकर खाने से शूलजन्य वेदना शांत होती है। (डिक्शनरी आफ दी एकानामिक प्रोडक्ट आफ इंडिया)

नादकर्णी–गुण-प्रभाव—कंजे का मूलत्वक् और बीज दोनों ही ज्वरप्रतिषेधक, आक्षेप निवारक तिक्त-बल्य, कृमिघ्न और ज्वरहर है। बीज-चूर्ण बल्य है। पत्ती अवरोधोद्घाटक और रजःप्रवर्तक मानी जाती है। जड़ जठराग्निप्रदीपक (Gastric tonic) है।

आमयिक प्रयोग

कंजे की गुठली वा बीज और मूलत्वक्, साधारण, सतत और विसर्गी ज्वरों में एवं श्वास तथा शूल इत्यादि रोगों में उपकारी है। इसकी विधि यह है कि सर्व प्रथम कंजेकी गिरियोंको लेकर खूब बारीक चूर्ण करें फिर जितना यह चूर्ण हो; उतना ही उसमें कालीमिर्चों का चूर्ण मिलायें और इसमें से ५-१५ रत्ती की मात्रा में सेवन करें। जड़ की छाल का चूर्ण ५ रत्ती से एक माशा तक दे सकते हैं। इसके बीजों के चूर्ण को चिलम में रखकर तमाकू की तरह धूम्रपान करने से शूल (Colic) रोग का नाश होता है। मक्खन निकाले हुये गरम दूध और हींग के साथ मिलाकर अजीर्ण रोग में उपयोग करने से यह बल्य प्रभाव करता है। दंतमांस व्रण (Gum boils) तथा मसूढ़ोंका पिलपिला होना (Spongy gums) आदि विविध मसूढ़ा जात रोगों में जलाये हुये कंजे के बीजों में फिटकिरी और जलाई हुई सुपारी मिलाकर बनाया हुआ मंजन गुणकारी होता है। १५ रत्ती कंजे की गिरी का चूर्ण, और एक अंडा इनकी एक रोटी बनाकर घी में भून लेवें और

दिन में दोबार सेवन करादें। उग्र अंडशोथ, डिंब-शोथ और कंठमाला के लिये यह महौषधि है। एरण्ड तैल में बना हुआ इसके बीजों का प्रलेप कुरंड (Hydrocele) पर लगाने की उत्कृष्ट महौषधि है। उग्र अंडशोथ और ग्रंथिशोथ यकृद्विकृति में इसकी कोमल कोमल पत्तियाँ उपकारी होती हैं।

आक्षेप, पक्षाघात (Palsy) और इसी तरह के अन्य वातव्याधियों में इसके बीजों से निकाला हुआ तेल लाभकारी होता है। इसकी पिसी हुई कोमल पत्तियों को; रेंडी के तेल वा घी में पकाकर सूजे हुये वेदनापूर्ण अंडकोषों पर मोटी तह चढ़ाने से महान उपकार होते हुये पाया गया है। बीज-मज्जाजात तैल कर्णस्राव की औषधि है। आमवात वा गठिया में सूजी हुई संधियों पर इसका अभ्यंग भी करते हैं। (इं० मे० मे० पृ० १३८-९)

रुफियस—(Ruphius)—करंजुवा के बीज कृमिघ्न हैं। इसकी पत्ती, जड़ और बीज आर्त्तव प्रवर्त्तक एवं ज्वर निवारक हैं। (फ्रा० इं०)

भारत और पारस्य देश में इसके बीज अत्यन्त उष्ण एवं रूक्ष तथा शोथघ्न, रक्तपित्त रुद्धक और संक्रामक रोग निवारक माने जाते हैं।

आर० एन० चोपरा—करंज के नन् ग्ल्युको-साइडिक तिक्त सत्व की साधारण गुणधर्म विषयक परीक्षा की गई, परन्तु यह प्रभावशून्य अथवा निष्क्रिय प्रमाणित हुआ। कंजा नियतकालिकज्वर निवारण (Anti periodic) के लिये अति प्राचीन काल से विख्यात है। इसी को ध्यान में रखकर देशी औषध-गुण-धर्म अन्वेषिणी समिति की संरक्षणता में रोगियों पर इसके गुण-धर्म की परीक्षा की गई और यद्यपि समिति ने इसे अतीव बलकारी एवं उत्तम ज्वरघ्न बतलाकर इसकी उपयोगिता के पक्ष में ही अपनी सम्मति दी। पर चूँकि इसके बीजों में कोई व्यक्त रोग निवारक गुण नहीं दीखता और न तो इसके रासायनिक संघटन का पुनरपि संशोधन करने पर इसमें किसी ऐसे क्रियात्मक प्रभावकारी सत्व की विद्यमानता ही सिद्ध होती है, जिससे किसी व्यक्त प्रभाव की आशा की जा सके। इसलिये इसके सम्बन्ध में और परीक्षण-क्रम चालू रखना अनावश्यक समझा गया। (इं० ड्रू० इं० पृ० ३०८-९)

क्षय और श्वास में इसके भुने हुये बीजों का काढ़ा व्यवहार्य है। सन् १८६८ में वल्य और ज्वरघ्न मानकर इसके बीज फार्माकोपिया आफ इंडिया के अधिकृत (Offical) योगों में समाविष्ट कर लिये गये और अनेक डाक्टरों ने इसकी उपयोगिता के पक्ष में ही अपनी सम्मति दी। इं० ड्रू० इं०।

करंज की पत्ती ३ मा०, काली मिर्च २-३ दाने इनको पीसकर पीने या गोली बनाकर खाने से विषमज्वर (Malaria) नाश होता है।

औषधि-संग्रह नामक प्रसिद्ध मराठी ग्रंथ के लेखक डाक्टर वामन गणेश देशाई लिखते हैं कि सूतिका ज्वर में कटकरंज के बीज से कई प्रकार का लाभ होता है। इससे ज्वर कम होता है। गर्भाशय का संकोचन होता है। उदरशूल रुक जाता है, रजःस्राव साफ होता है और घाव बढ़ गया हो, तो वह भी शीघ्र भर जाता है। इसलिये प्रसूतिकाल के समय चाहे ज्वर हो या न हो इस औषधि को उपयोग करना बहुत ही गुणकारी होता है।

कटकरंज के फूल, पत्ते इत्यादि सभी गुणकारी हैं। पर इसके बीजों की गिरी में ही ज्वर को नष्ट करने की सबसे अधिक शक्ति है। इसके सेवन की विधि यह है—

करंज की गिरी का चूर्ण १ भाग, चौथाई भाग लेंडी पीपल का चूर्ण इनको शहद में खरल करके पाँच-पाँच छः-छः रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। इनको मलेरिया ज्वर में पानी के साथ देने से बड़ा उपकार होता है। अथवा करंज की गिरी और काली मिर्च इनको बराबर-बराबर ले पीसकर ८ रत्ती से १५ रत्ती तक की मात्रा में दिन में दो बार लेने से बारी से आना वाला ज्वर छूट जाता है। इसमें कुनैन के समान मलेरिया के विष को नष्ट करने की शक्ति तो है ही, पर इसमें उसके दोष बिलकुल नहीं पाये जाते। इसे खाली पेट नहीं देना चाहिये। इससे सभी दशाओं में सभी को निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं। यह नये पुराने सभी ज्वरों में उपकारी है। यह प्लीहा एवं यकृत

के विकारों को दूर करके शरीर में नवीन रक्त का संचार करता है।

करंजुवा द्वारा होनेवाली धातूपधातु की भस्में

(१) हज्रुल् यहूद वा संग यहूद के भस्म की विधि

प्रथम १ तो० हज्रुल् यहूद को लेकर दही के साथ एक पहर पूरा निरन्तर आलोड़ित करें और फिर टिकिया बनाकर सुखा लेवें। पुनः १ पाव करंजुवे के पत्तों को कूटकर एक मिट्टी के सकोरे में उक्त टिकिये के ऊपर नीचे देकर, ऊपर से दूसरा सकोरा उलटा रखकर खूब कपरौटी करके २० सेर उपलों की अग्नि देवें। भस्म होगा।

मात्रा—१ से ४ रत्ती तक। ख़ियारैन इत्यादि के रस के साथ या माजूनों में मिलाकर देवें। यह वृक्काश्मरी को निकालता और सूजाक में इसका चमत्कृत प्रभाव प्रदर्शित होता है।

(२) कृष्णाभ्रक १ छटाँक करंजुए के बीजों की गिरी १ छटाँक, मुर्गी का अंडा ६ अदद, क़लमीशोरा पूरा ½ पाव, सफेद संखिया १ माशा और घीकुआर का लबाब १ छटाँक—इन सबको खरल करके मिट्टी के दो सकोरों के भीतर रखकर कपड़ मिट्टी करके २० सेर उपलों की अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर निकालें, यदि चमक रहे तो पुनः अग्नि देवें।

मात्रा—एक सुर्ख़ (रत्ती) उपयुक्त शर्बत या अर्क के साथ इसका सेवन करें। यह सूजाक, संतत ज्वर और वबाई बुखारों के लिये अतीव गुणकारी है। यदि चातुर्थिक ज्वर में देना हो, तो कुनैन के साथ देवें। अतिशय लाभकारी है।

संज्ञा पुं० [सं० कलिंग, फ्रा० कुलंग] मुरगा।

करंजगाछ–[बं०] कंजा। करंज।

करंजन–[?] सहिजन।

संज्ञा पुं० [देश०] कंजा। करंज।

करंजय–[करना०] करमर्द। अम्ल करंज।

करंजवा–संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] करंज। कंजा।

करंजा–संज्ञा पुं० दे० "करञ्ज"। (२) गाँजा।

वि० [स्त्री० करंजी] करंज वा कंजे के रंग की सी आँख वाला। भूरी आँखवाला।

करंजा-च-झाड़–[मरा०] करंजा-च-वृक्ष–[मरा०] } करंज का पेड़। करंज, कंजे का पेड़।

करंजादि लेप–संज्ञा पुं० [सं०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माणविधि—करंज की गिरी, हल्दी, कसीस पद्माक, रुहद, गोरोचन और हरताल इन्हें पीसकर लेप करने से अलस का नाश होता है। वृ० नि० र० क्षुद्र रो० चि०।

करंजाद्यंजन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग।

निमाण विधि—करंज की मींगी, कमल; कमल केसर, चन्दन, नीलोत्पल और गेरू को गोबर के रस में पीसकर अंजन करने से नक्तांध (रतौंधी) का नाश होता है। वृ० नि० र० नेत्र रो० चि०।

करंजिया–संज्ञा स्त्री० [?] उदकीर्य्य।

[सिरि०] करमकल्ला। कर्नव।

करंजी–संज्ञा स्त्री० [सं० करञ्जी] दे० "करञ्जी"।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कंजे का एक भेद। इसका पेड़ कांटेदार काफी ऊंचा होता है। पत्ते आमले के पत्तों की तरह, फल-फूल की तरह होते हैं। परन्तु फल अपरिपक्वास्था में हरे और इसके उपरांत लाल चुन्नटदार होजाते हैं। यह हिमालय के नीचे भागों में अजमेर, बुंदेलखण्ड, बिहार, आसाम, ब्रह्मा, पश्चिमी प्रायद्वीप और लंका में होता है। कँजी। सुखकाई, शुकाई (द०)। (Holoptelea Integri folia) (२) अमना। कुंज। पपरी।

करंजुआ, करंजुवा–संज्ञा पुं० [सं० करञ्जः] (१) कंजा। सागरगोट। (२) करंज।

करंजूनः–[?] फलंजूनः।

करंभ–[द०] कंजा। करंज।

करंटक-कत्तिन-काय–[ते०, मल०] काकमारी।

करंटी–[कों०] विशाखा। जंगली इन्द्रायन।

करंटोली–[मरा०] धार करेला। किरार।

करंठीड–[गु०] पाठा।

करंड–संज्ञा पुं० दे० "करण्ड"।

संज्ञा पुं० [सं० कुरविंद] कुरुल पत्थर।

करंडई–[ता०] विश्व तुलसी। बबुई।

करंडगिडा– } [कना०] गोरखमुंडी । मुंडितिका ।
करंडिगिडी– }

करंडुई–[ता०] मुंडी ।

करंडो–[?]

क़रंतीनः–[इटैलियन कारंतीना से मुअ०]

करंद– } संज्ञा पुं० [?] पिपरामूल ।
करंदा– }

करंध, करंधा–संज्ञा पुं० [?] पिपरामूल ।

करंधिस–[गु०] पाठा । अंबष्ठा ।

करंब–संज्ञा पुं० [सं० पुं०,] [वि० करंबित]

(१) मिश्रिण । मिलावट । दधिमिश्रित खाद्य ।

करंवरु–[पं०] सिरस ।

करंसहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्वर्णक्षीरी लता ।

कराँकुल–संज्ञा पुं० [सं० कलाङ्कुरः] बगुले की जाति की पानी के किनारे की एक बड़ी चिड़िया जिसके झुण्ड ठण्डे पहाड़ी देशों से जाड़े के दिनों में आते हैं । यह 'कर्र' 'कर्र' शब्द करती हुई पंक्ति बांधकर आकाश में उड़ती हैं । इसका रंग स्याही और कुछ सुर्खी लिये हुए भूरा होता है और इसकी गरदन के नीचे का भाग सफेद होता है ।

पर्य्या०—कुंज (ख० अ०), कुँज (फार्वीज़-डिक्शनरी), कोंच (ता० श०), घाटी, बन-कुकड़ी, करांकुल—हिं० । कोंच बक—बं० । कुलंग—फ़ा० । कुर्की—अ० । हिरीन Heron कल्यु Curlew —अं० । आर्डियोला गेयिआई Ardeola grayii, *Sykee*. आर्डिया जैक्युलेटर Ardea Jaculater–ले० ।

संस्कृत पर्य्या०—क्रौञ्चः क्रौञ्चकः क्रोञ्चवी, दीर्घखः, रात्रिजागरः, नीलक्रौञ्चः, नीलाङ्गः दीर्घग्रीवः, अतिजागरः, (ध० नि० ध्व०), कुररः, खरशब्दः, कुड्, क्रौञ्चः, पङ्क्तिचरः, खरः (रा० नि० १९ व०), कलीबकः, कलिकः (शब्दर०) कराङ्कुर-सं० ।

वक्तव्य—यद्यपि संस्कृत कोषों में "कलाङ्कुर" और 'क्रौञ्च' दोनों एक नहीं माने गये हैं, पर अधिकांश 'लोग कराँकुल' ही को 'क्रौञ्च' पक्षी मानते हैं । किसी किसी ने क्रौञ्च और कुरर का एकत्र वर्णन किया है; परन्तु कुरर टिटिहरी को कहते हैं । कोई कोई कुलंग के आकृति-वर्णन प्रसंग में लिखते हैं, कि इसका सिर लाल और बाकी शरीर मटमैले रंग का होता है । खज़ाइनुल् अदविया नामक वृहद् यूनानी निघंटु में लिखा है, कि कुंज दो प्रकार का होता है—सफेद और ख़ाकी । इनमें से सफेद अल्प प्राप्य है और उत्तम वह है जिसका बाज़ ने आखेट किया हो । क्यों कि श्रम और व्याकुलता के कारण इसका मांस कोमल हो जाता है ।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—

क्रौञ्चः पित्तानिलहरः पेचकः वातजित् ।

अर्थात् क्रौञ्च पित्त और वात नाशक है ।

ज्वरे हितः । (च० द०)

अर्थात् यह ज्वर में हितकारी है ।

क्रौञ्चो वृष्योऽतिरुचिकृदश्मरी हन्ति नित्यशः ।
शोषमूर्च्छाहरो वल्यो हन्ति कासमरोचकम् ॥

(अत्रि० २१ अ० पद्मबीजे । वै० निघ०)

अर्थात् कराँकुल का मांस वृष्य, वल्य तथा अत्यन्त रुचिकारी है और यह शोष, मूर्च्छा, कास अरोचक एवं अश्मरी का नाश करता है ।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—मांस द्वितीय कक्षा में उष्ण और रुक्ष है । किन्तु उष्णता की अपेक्षा रुक्षता परिवर्द्धित होती है । कोई कोई शीतल और रूक्ष लिखते हैं । इसका पित्त रुक्ष है ।

हानिकर्त्ता—मांस, दीर्घपाकी है और सांद्र (गलीज) दोष उत्पन्न करता है (म० मु०; ख० अ०), सौदावी खून उत्पन्न करता है (मु० ना०) ।

दर्पघ्न—मांस को पर्य्युषित करके पकाना, सिरका, नमक और गरम मसाले भी दर्पघ्न हैं ।

प्रतिनिधि—किसी किसी गुण में जंगली कबूतर का मांस । मतान्तर से सारस भी इसकी प्रतिनिधि हैं । मांस इसका हलाल (शास्त्र विहित) है ।

मात्रा—मांस आवश्यकतानुसार, भेजा और पित्ता २-३ रत्ती तक ।

गुण, कर्म प्रयोग—इसका मांस अवरोधोद्घाटन करता, शरीर को शक्ति प्रदान करता और कुलंज को नष्ट करता है। इसका भेजा नेत्र में लगाने से रात्रांध्य रोग आराम होता है। भेजे का लेप श्वित्र और कण्डू पर भी लाभकारी है और शिर के बाल सफेद नहीं होने देता। सिरका और वनपलाण्डु के साथ इसकी चर्बी का उपयोग प्लीहा शोथ में लाभकारी है। कुंज के अण्डे में मसूर के दाने के बराबर छिद्र करके उसमें तोले भर पारा भर कर छिद्र को उड़द के आटे से बन्द कर दे। अण्डे के ऊपर भी आटा लगा दे और इसे आग में रख दे। जब पक जाय, उसे निकाल कर ऊपरी आटे को पृथक कर और पारे को निकाल लेवे। तदुपरांत अवशिष्ट अण्डे की सफेदी और जर्दी को खालेवे। इसी प्रकार सप्ताह पर्यंत ऊक्त पारे को एक अंडे के भीतर तथोक्त विधि के अनुसार भर—पकाकर नियमानुसार सेवन करते रहें। सप्ताहोपरांत उस पारे की जगह नया पारा लेकर पुनः उसी प्रकार प्रस्तुत कर सेवन करें। इसी भाँति सप्ताह के उपरांत नया पारा बदल बदल कर उक्त विधि के अनुसार चालीस दिन तक अंडे की ज़र्दी एवं सफ़ेदी सेवन करें विशेषतः शरद् ऋतु में। इससे अतुलनीय कामशक्ति प्रादुर्भूत होगी। अधिकतया शीतल प्रकृति वालों को इसका उपयोग करना चाहिये। इसके सेवन काल में खट्टी और बादी की चीजें वर्जित हैं।

इब्न-ज़ुहर कहते हैं कि तरो-ताज़ा बाकले को कूट और निचोड़ कर स्वरस निकाले और उसमें उत्तम सिरका मिलायें। फिर इसे मिट्टी की हाँडी में भरकर उसमें इतने बाक़ला के दाने सन्निविष्ट करें कि उक्त द्रव दानों के ऊपर ऊपर रहे। तत्पश्चात् उक्त हण्डिका को चूल्हे पर चढ़ाकर उसके नीचे मंद अग्नि ज़लायें, जब सारा द्रव शुष्क हो जाय, तब दानों को निकाल कर छाया में शुष्क करलें और उसे कुलंग पक्षी के सामने डाल दें। ज्योंही उसने इसे खाया गति करने से रहित हुआ। उसके निवारण का उपाय यह है कि उसके कंठ में नबीज-तमर (अम्लिकारिष्ट) डालें। इब्न ज़ुहर ने निश्चेष्ट करने की दूसरी विधि इस प्रकार लिखी है—कनेर के पत्तों का रस लेकर उसमें तीक्ष्ण सिरका मिलायें। फिर इसे मिट्टी की हाँडी में डालकर उसमें बाकला के दाने भरकर इतना पकायें कि समस्त द्रव शुष्कीभूत हो जाय। पुनः उसे छाया में सुखाकर कुलंग के पास डाला जाय। जो खायेगा वह गति न कर सकेगा। किंतु नबीज़ तमर (अम्लिकारिष्ट) पिलाने से वह पुनः स्वास्थ्य लाभ करेगा। "कनेर के पत्तों के साथ लोबिया पकाकर खिलाने से भी कुलंग उड़ने से आजिज़ आजाता है, इसका भेजा समभाग सोंफ के साथ लगाने से बहाँके बाल पुनः नहीं उगते इसका पित्त और भेजा पारे के साथ मिलाकर प्रधमन—सऊत करनेसे भूलीहुई चीज़ स्मरण आजाती है।" ख़ा० अ०।

चमेली के तेलमें हल किया हुआ इसका पित्त एक जौ की मात्रा में खाने से विस्मृत रोग में उपकार होता है। और इससे शिर के बाल सफेद नहीं होते। —म० मु०।

इसका गोश्त वायुविकार नाशक है। (—ता० शा०।) वनपलाण्डु-घटित-सुक्र के साथ इसकी चर्बी का पीना प्लीहा-शोथ-नाशक है। यदि वह मनुष्य जिसे विस्मृति का रोग हो, चमेली के तेल में कुलङ्ग का पित्त वा उसके शिर का भेजा मिलाकर नास ले, तो उसे कोई बात विस्मरण न हो। इसके भेजे का लेप रात्र्यंध्य रोग को नष्ट करता है। चुकन्दर के रस में इसका पित्त मिला नास लेने से तीन दिन में लकवा आराम होता है। इसका मांस कामोद्दीपक है। इसकी चर्बी कान में टपकाने से बधिरता जाती रहती है। —मु० ना०।

कुलङ्ग का मांस अवरोधों का उद्घाटन करता, शरीर को शक्ति प्रदान करता और कोलञ्ज रोग को दूर करता है। संगदाना मलरुद्धक है। यह सूखा पिसा हुआ चने के पानी के साथ वरिस्तित एवं वृक्कशूल को लाभकारी है। इसका मस्तिष्क—भेजा नेत्र में लगाने से रतौंधी का नाश होता है। (न० मु०) इसे मेथी के रस में पीसकर लेप करने से सूजन उतरती है। इसका पित्त चुकन्दर या मर्जजोश के रस में मिला तीन दिन तक नास लेने से लकवे का निश्चय ही नाश होता है। किंतु इसे विपरीत पक्ष के नथुने में डालना उचित

है। इसके उपयोग काल में रोगन अख़रोट पियें और मर्दन करें और अंधेरी कोठरी में बैठें। इसके पित्ते का सुर्मा मोतियाबिन्दु रात्र्यंध और नाखूने को कल्याण प्रद है। शिवत्र में इसका लेप उपकारी है। इसके पित्ते और भेजे का चमेली के तेल के साथ नास विस्मृति रोग का निवारण करता है और बालसफेद नहीं होने देता। सिरकेमें इसकी चर्बी मिलाकर पीने से प्लीहा की सूजन उतरती है। -बु० मु०।

करांकुस-[बं०, सं० कराङ्कुश] लामजक। लमजक। करांकुस। (Andropogon iwarancusa *Roxb.*)

करौंठ-संज्ञा पुं० [सं० कुरंट] कटसरैया। पियाबाँसा।

करौंत-संज्ञा पुं० [सं० करपत्र, प्रा० करवत्त] आरा। करपत्र।

करांपु-[मला०] } क़रनफ़ल। लौंग।
करांबु-[ता०] }

क़रा-[सिरि०] कद्दू।

क़राअ़[अ०] एक प्रकार की चिड़िया जो ऊदसलीब को अपने घोंसले में ले जाती है।

क़रा आस फ़ाफ़ा लूतन- } -[यू०] शामी गंदना।
क़रा आस बाबा लूतन- }

कराइचा-[?] इंद्रजव।

कराइजा-संज्ञा पुं०, चाँदनी। नन्दीवृक्ष। Rose-bay. (२) कड़वा इन्द्रजौ।

कराइत-संज्ञा पुं० [सं० किरात, हिं० कारा, काला] एक प्रकार का काला साँप जो बहुत विषैला होता है। करैत।

कराकर-[माज़ंदरानी] शक़राक़।

क़राक़िर-[अ० बहु०] (Curgling, *Borborygmus*) पेट की गुड़गुड़ाहट। अँतड़ियों में वायु-संचय से इस प्रकार की आवाज़ पैदा होती है।

क़राक़ीनूस-[यू०] उश्तरगाज़।

क़राक़ुरुत्, क़राक़ुरुत-[तु०, शीराज़ी] दुग्धाम्ल। रब्बीन। Lactic acid

क़राक़ूस-[तु०] उक़ाब।

कराग्र-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करिपुष्कर। हाथी के सूंड का सिरा। हला०।

कराग्र पल्लव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उँगली। अंगुली।

कराघात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बड़ी उँगली। वृद्धाङ्गुली। अँगूठा।

करांकुल-संज्ञा पुं० [सं०] एक जंतु।

करांकुश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख। नाखून। शब्दर०।

कराङ्गण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बाजार। हट्ट। हारा०।

करांगुल-संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] हाथ की उँगली।

कराचीन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खञ्जन। खड़रैचा। द्विरूपको०।

क़राचोरकऊदी-[तु०] कलौंजी। शोनीज़।

क़राज़-[?] (१) बाबूना। (२) उक़हवान।

क़राज़ः-[अ०] एक प्रकार की मिठाई।

करात-संज्ञा पुं० [अ० क़ीरात] एक तौल जो चार जौ की होती है और प्रायः सोना, चाँदी वा दवा तौलने के काम में आती है।

क़राज़िया-[रू०] आलूबालू।

क़राताजह्-[तु०] शुहरूर।

क़रातात्-[तु०] एक प्रकार का फल जो कालीमिर्च की तरह होता है। इसका स्वाद ज़रिश्क के समान किंचित् अम्ल होता है। गुण धर्म में भी यह उसके समान होता है। कदाचित् यह ज़रिश्क की ही एक क़िस्म हो। जिन्होंने इसे 'ज़ुक़ाक़' समझा है उन्होंने भूल की है। 'ज़ुक़ाल' करानिया है। (ख० अ०)

क़रातारिगोयिन-[?] एक अप्रसिद्ध पौधा।

एक उद्भिज जिसकी शाखाएँ अत्यन्त गाँठदार होतीं और एक ही जड़ से निकलतीं हैं। इसकी पत्तियाँ गेहूं की पत्तियों की तरह होती हैं। बीज बाजरे के दाने की तरह होता है और स्वाद अत्यन्त तीव्र होता है। यह छायादार स्थानों और नोनी ज़मीन में उत्पन्न होता है। कोई-कोई कहते हैं कि यह जंगली गेहूं है।

प्रकृति—यदि स्त्री ऋतु-स्नानोत्तर और पुरुष दोनों ११॥ माशे इसके बीज पीसकर थोड़े से पानी के साथ खाकर संगम करें, तो लड़के का हमल औरत को रह जाय। (ख० अ०)

क़रातिया–[यू०] ख़र्नूब शामी ।

क़रातुन–[यू०] सादा शहद का पानी । माउल्अस्ल सादा ।

[अ] अर्क़ बादियान वा पानी में जोश दिया हुआ शहद ।

क़रातूस, क़रातूसन–[यू०] दरूक़ीनून ।

क़रानिया–[यू०] ज़ैतून की तरह का एक बड़ा पहाड़ी पेड़ । इसका फल जामुन की तरह होता है । ज़ुक़ाल ।

क़रानीतुस–[यू०] प्रलाप । हज़ियान । बुद्धिनाश ।

क़रानीतुस ख़ालिस–[अ०] पैत्तिक सरेसाम । सरेसाम सफरावी, जिसका हेतु शुद्ध पित्त वा सफ़रा होता है ।

क़रानीनी इरातिया–[यू०] जंगली कर्नब ।

करानीस–[सिरि०] बाक़ला ।

क़राब, क़रावत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नज़दीकी । समीपता (२) रिश्तेदारी । संबन्ध । नाता । रिश्ता । Relation

करावा–संज्ञा पुं० [अ० क़राबः । सं० करका, हिं० करवा] शीशे का बड़ा बरतन जिसमें अर्क़ इत्यादि रखते हैं । काँच का छोटे मुँह का बड़ा पात्र ।

क़रावादीन–[अ० वा करावादीन का मुअ्] वह किताब जिसमें नुस्ख़े और योग संगृहीत हों । (Pharmacopoeia, Dispensatory)

करामर्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करौंदे का पेड़ । करमर्दक वृक्ष । श० र० ।

करामली–[हिमा०] क़राश ।

क़रामियून–[यू०] प्याज़ ।

क़रामूस–[यू०] बाक़ला ।

कराम्बुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पानी आँवले का पेड़ । पानीयामलक वृक्ष । कृष्णपाकफल । श० च० ।

नोट—'कृष्णपाकफल' करौंदेको भी कहते हैं ।

कराम्ल, कराम्लक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करौंदे का पेड़ । करमर्दक वृक्ष । प० मु० ।

कराम्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करौंदा ।

करायजा–संज्ञा पुं० [सं० कुटज] (१) कौरैया । कुटज । (२) इंद्रजवा । इंद्रयव ।

करायल–संज्ञा स्त्री० [सं० काला] कलौंजी । मँर-रैला ।

संज्ञा पुं० [सं० कराल] (Rosin resin) तेल मिली हुई राल ।

करायला, कनालह–[?] हुलहुल ।

करायिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का पक्षी । छोटा बगुला । क्षुद्र बक । वै० निघ० ।

क़रार–संज्ञा पुं० [अ०] (१) स्थिरता । ठहराव । (२) कद ।

क़रारनोश–[रू०] मोम ।

क़रारनोफ़ुल–[?] नीलोफ़र ।

करारा–संज्ञा पुं० [सं० करट] कौआ ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार की मिठाई ।

क़रारी–[सिरि०] रेंडी । तुख़्म अरंडी ।

क़रारीत–[अ० क़ीरात का बहु०] दे० "क़ीरात"

कराल, करालक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कृष्ण तुलसी । काली तुलसी । प० मु० । भा० पू० १ भ० ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) राल मिला हुआ तेल । गर्जन तेल । सर्जरस तैल । मे० लत्रिक । (२) दाँतों का एक रोग जिसमें दाँतों में बड़ी पीड़ा होती है और वे ऊँचे नीचे और बेडौल हो जाते हैं । माधव निदान के अनुसार दाँतों में स्थित वायु धीरे धीरे दाँतों को ऊँचे नीचे और तिरछे कर देती है । यह रोग असाध्य है । मा० नि० दंतवेष्टग० रो० । (३) कस्तूरी मृग । सु० सू० ४६ अ० ।

जङ्घालवत् । (४) शालुक ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कृष्णार्जक । काली तुलसी । (२) काला बबूल । कृष्णबबूरक । (३) घी वा तेल में तैयार किया हुआ बेसवार । (पाकराजः) करायल ।

वि० [सं० त्रि०] (१) जिसके बड़े-बड़े दाँत हों । ऊँचे दाँतवाला । दन्तुर । (२) डरावनी आकृति का । भीषण । भयानक । (३) ऊँचा । तुंग । (४) प्रशस्त । खुला हुआ ।

कराल–[बं०] करेला । कारवेल्ल ।

संज्ञा पुं० [सं०] कौआ ।

करालकलिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुन्द के फूल का पौधा । कुन्दपुष्पवृक्ष । प० मु० ।

करालकेशर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंह । शेर ।

करालत्रिपुटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का शिम्बी धान्य जिसे लङ्का भी कहते हैं । रा० नि० व० १६ ।

कराला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अनन्तमूल। सारिवा । प० मु० । (२) वायविडंग । (३) करटा ।

करालाङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वायविडंग । विड़ंग । वै० निघ० ।

करालास्य–वि० [सं० त्रि०] जिसके मुँह में बड़े बड़े दाँत हों । करालानन । दन्तुर वदनं ।

करालिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पेड़ । वृक्ष। हे० च० । (२) करवाल । तलवार ।

कराली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं० करालिन्] एक प्रकार का घोड़ा जो बहुत दोषान्वित होता है । जयदत्त के अनुसार जिस घोड़े के नीचे वा उपर एक बड़ा दाँत निकला हो उसे 'कराली' कहते हैं । ज० द० ३ अ० ।

कराव–संज्ञा पुं० [देश०] केराव । खेसारी ।

[बिहा०] मटर । करस्ना ।

करावियः–[अ० सिरि० करावी । लै० कैरम कैरवी] विलायती जीरा । स्याह जीरा । कृष्णजीरक । करोया । (Carui fructus)

करासंकर–[तु०] एक शिकारी चिड़िया ।

करास्–[?] एक पहाड़ी वृक्ष ।

करास–[देश०] अशगरून ।

करासावस–[यू०] ज़ैतूनुल्मास ।

करासिया, करासिया, कारासिया–[रू०] आलू-बालू । आलू बू अली । मु० अ० । म० अ० ।

नोट—करासिया वा करासिया वस्तुतः यूनानी भाषा के शब्द हैं। यूनानी में इसे केरासूस (Cerasus) भी कहते हैं ।

करासियून–[यू०] एक विशेष प्रकार की अंगूर की शराब ।

कराह्–[अ०] साफ़ मीठा पानी । सादा पानी । विशुद्ध पदार्थ ।

कराह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उग्रगन्धा । कर्कटा नामक द्रव्य । नि० शि० ।

करिंकिल्ला–[मल०] चाकसू ।

करिंकुवलम्–[मदरास] नीलोत्पल । नीला कमल ।

करिंग–[ते०] डिकामाली ।

[मरा०] ब्रह्ममंडूकी । मंडूकपर्णी ।

करिंगी–[नेपा०] तिक्त कोरैया ।

करिंघोटा–[मलाबार] (Samadera Indica *Gartn.*) लोखंडी । समादर ।

करिंचीरकम्–[मल०] काला जीरा । कृष्णजीरक । (Nigella Sativa)

करिंजिरे–[कों०] काला जीरा ।

करिंजे-रुकु–[कों०] कंजा । करंज ।

करिंजोटी–[?] लोखंडी ।

करिंतुम्ब–[मल०] मोगबीरा । (Anisomeles malabarica, *R. Br.*)

करिंथुवरी–[मदरास] (Diospyros paniculata, *Dalz.*) तिंदुकभेद । तेंदू की एक जाति ।

करिंदा–[बम्ब०] करौंदा ।

करिंप, करिंपु–[मल०] ईख । ऊख । गन्ना ।

करि–संज्ञा पुं० [सं० करिन्, करी] [स्त्री० करिणी] सूँड़वाला अर्थात् हाथी । करी ।

[मरा०] भाँट । भांडीर । कारी ।

वि० [कना०] काला । कृष्ण ।

करि–[ता०, मल०] Carbon कोयला ।

[बम्ब०] करीर । करील ।

करिअम्बोलम्–[ता०] छोटा घोकार । कन्या ।

करिआ–[पं०] करीर । करील ।

करिआ करली–[कना०] Cicer arietism कालाचना ।

करिआचना–संज्ञा पुं० [मरा०] काला चना । कृष्ण चणक ।

करिआतु–[गु०] चिरायता ।

करिआ नाग–[बम्ब०] कलिहारी । करियारी ।

करिआ वेल्लर-किल्लु–[कर०] नील पुनर्नवा ।

करिआरी–संज्ञा स्त्री० दे० "करियारी" ।

करिआ सांबा–संज्ञा [हिं० करिया+सांबा=श्यामा] काला सारिवाँ । श्यामालता ।

करिउम्बु-[कना०] श्यामालता । कृष्णसारिवाँ ।

करिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गूह बबूल । विट्-खदिर ।
[पं०] गोदड़दाख ।

करिकट-संज्ञा पुं० [देश०] किलकिला नाम का पक्षी जो मछलियाँ पकड़ कर खाता है ।

करिकणवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चव्य । चविका लता । रा० नि० ।

करिकणा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपल । गजपिप्पली । भैष० वाजी० कामेश्वर मोदक । चव्य । चविका । श्रेयसी । बड़ी पीपल ।

करिकणावल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चविका नाम की लता । चव्य । रा० नि० व० ६ ।

करिकर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हस्तिशुण्ड । हाथी का सूँड ।

करिकर्ण पलाश-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का टेसू का पेड़ । हस्तिकर्ण पलाश । भैष० अ० पि० सर्व्वतोभद्र रस ।

करिकलव-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विधान । व्यवस्था हारा० ।

करिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कारी का पौधा । कंटकारी । रा० नि० व० ८ ।
(२) नखक्षत । नाखून का घाव ।

करिकारी-संज्ञा स्त्री० [मरा०, कर०] एक प्रकार की लता जो भारतवर्ष के कतिपय भागों, विशेष कर बम्बई में पैदा होती है । कारी ।

करिकुम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गजकुम्भ हाथी के मस्तक की घड़े जैसी जगह । (२) गंध चूर्ण ।

करिकुम्भक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नागकेसर का चूर्ण । हारा० ।

करिकुसुम्भ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नागकेसर का वृक्ष । (२) नागकेसर की बुकनी । हारा० ।

करिकृष्णा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपल । बड़ी पीपल । गजपिप्पली । के० दे० नि० । नि० शि० ।

करिकेसर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नागकेसर । वै० निघ० श्वास चि० क्षुद्रावलेह ।

करिक्रत-संज्ञा पुं० [सं०] करैत साँप । करइत । अथ० सू० ४ । १३ । का० १० ।

करिखा-संज्ञा पुं० । नीलता दे० "कालिख" ।

करिगु-[गु०] तरबूज ।

करिगुल्लगिडा-[कना०] बन भंटा । बरहंटा । वृहती ।

करिचक्क-[मल०] बेलम्बू । (Averrhoa bilimbi, *Linn.*)

करिचर्म्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गजचर्म्म । हाथी का चमड़ा ।

करिच्छद-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तालीशपत्र । रा० ।

करिज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी का बच्चा । गजशावक । श० मा० ।

करिजा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजमुक्ता ।

करिजाली-[कना०] बबूल । कीकर ।

करिजिनगे-
करिजिनगेमर- } [कना०] जैत । जयन्ती ।

करिजिरगी-[कना०] (Nigella Sativa, *Sibthorp.*) मँगरैला । कलौंजी । काला जीरा ।

करिजिरे-[कों०] कलौंजी । कृष्णजीरक ।

करिणिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चव्य । चविका ।

करिणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री० करिन्] (१) हस्तिनी । हथिनी । अम० ।
संस्कृत पर्य्याः—वेणुका वशा (अ०), कुञ्जरी (श०), गणेरु, (मे०), करेणु, करेणु, करेणुका, रेणुका, वासिता, वासा, हस्तिनी, (शब्द र०), कटम्भरा, पुष्परिणी, वचा, गन्धिका गजयोषित्, (ज०), पद्मिनी, (अ० टी०), (२) हरिणी । हिरनी ।

करिणिसहाय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हथिनी का जोड़ाहाथी । गज ।

करित, कारित-[मरा०] (Cucumis trigonus, *Roxb.*) विसलंभी ।

करितुंप-[मल०]
करिथुंबि-[कना०] } Anisomelesmalabarica. मोगबीरा ।

करिदन्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी दाँत । गजदन्त ।

करिदन्ताभ-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मूली । मूलक ।

करिदन्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागदन्ती ।

करिदमन-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नागदौना । नागदमन । भैष० स्त्री-रोग-चि० ।

करिदारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शेर। सिंह। श० च०।

करिदोडु जीरगे–[कना०] मँगरैला। कलौंजी।

करिनकोल्ल–[मल०] चाकसू।

करिनतुम्ब–[मल०] मोगवीरे का पत्ता। मोगवीरा।

करिनासिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का यंत्र। (२) हाथी की नाक।

करिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "करिणी"।

करिनेक्किगिडा–[कना०] नील निर्गुण्डी।

करिपत्र, करिपत्रक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] तालीस पत्र। तालीस पत्ता। रा० नि० व० ६।

करिपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपर। गजपिप्पली। प० मु०। भा० पू० १ भ०।

करिपोत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] हाथी का बच्चा। करिशावक। हला०।

करिफियून–दे० "कर्प्यून"।

करिबंटा–[कना०] अनंतमूल। सारिवा।

करिबू–संज्ञा पुं० [देश०] अमेरिका के उत्तर ध्रुवीय प्रदेश का एक बारहसिंगा।

करिभाव, करिभेषु–[कना०, कों०] सुरभिनिंब। कड़ी नीम।

करिफल–[गु०] कायफल।

करिबोलम्–[सिंगा०] घोटा घीकुआर। कुमारी।

करिभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीपल का पेड़। अश्वत्थ वृक्ष। चैत्य वृक्ष। त्रिका०।

करिमरम्–[मदरास] (Diospyros Candolleana; *Wight.*) नीलवृक्ष। कारी।

करिमरुथु–[मल०] साल का पेड़,

करिमाचल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंह। शेर। गजमाचल। त्रिका०।

करिमिचेट्टु–[ते०] मैनफल। करहर।

करिमुथा–[मल०] मोथा। मुस्तक।

करिमुल्लि–[ता०] बरहंटा। वनभंटा। बृहती।

करिय पोलम्–[ता०] एलुआ।

करिय-मदकुणिके–[कना०] काला धतूरा।

करियक्कोर्का–[का०] कोयला।

करियशाङ्गणि–[ता०] भँगरा।

करियसेम–[देश०] Mucuna Monasperma

करिया–[पं०] करील।

करिया–संज्ञा पुं० [देश०] (१) Ribes uva crispa मकोय। सर्प। काला साँप। [पं०] करील।

संज्ञा पुं० ऊख का एक रोग जो रस सुखा देता है और पौधे को काला कर देता है।

करियागोली–[कर०] मालकंद।

करियाझूट–[अं०] क्रियोजूट।

करियाद–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] जलहस्ती। दरियाई घोड़ा।

करियानुरिग–[कर०] सहिजन। नीला सहिंजन।

करियातु–[गु०] चिरायता।

करिया-पोलम्–[ता०] मुसब्बर। एलुवा।

करिवेम्बु–[ता०] घोगर। चितयोप (बर०)।

करियांबु–[कना०] श्यामालता। अनन्तमूल। दुद्धीलता।

करियारी–संज्ञा स्त्री० [सं० कलिकारी] कलियारी विष। कलिहारी।

करियाली–[द०] करील।

करिया साँड–संज्ञा पुं [देश०] कृष्ण सारिवा।

करियासेम–संज्ञा स्त्री० [हिं० करिया=काला+सेम] चमरिया सेम।

करिर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली] (१) बाँस का गोभा। करील। बाँशेर केँड़–(बं०)। (२) अरुज गुल्म। एक झाड़।

करिरत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कामशास्त्रोक्त एक प्रकार की रति। यथा—

भुगस्तन भुजास्य मस्तकामुन्नतां स्वयमधोमुखीं स्त्रियम्। क्रामति स्वकर कृष्टमेहने वल्लभकरिरतं तदुच्यते॥" (शब्दचि०)

करिरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथी के दाँत की जड़।

करिरी–दे० 'करिरा'।

करिल–संज्ञा पुं० [सं० करिर] अँखुआ। गोभा।

करिला–[ते०] करेला। कारवेल्ल।

करिल्लका–सं० स्त्री० [स० स्त्री०] करका।

करिवन–[मरा०] मंडूकपर्णी। ब्रह्ममंडूकी।

करिवल्लिका, करिवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गजपीपल। गजपिप्पली।

करिवागेटि–[देश०] करियागेटि । Paramignya Monophylla ।

करिविलांती–[मल०] जंगली उश्बा ।

करिवीवल्ला–[मल०] तरली । कुदरी (बं०) । गोमेट (म) ।

करिवीपनीन–[ते०]
करिवीपु–[मल०]
करिवेप्प चेट्टु–[ते०] } सुरभि निंब । कृष्ण निंब । कड़ी नीम ।

करिवेम्बु-मरम्–[ता०] घोगर । खरपत । (Garuga pinnata, *Roxb.*)

करिवेल्लड किलु–[का०] नील । सोंठ ।

करिवैविना गिडा–[कना०] सुरभि निंब ।

करिवौलम्–[सिंगा०] एलुवा ।

करिशांगणि–[मल०] भँगरा । भँगरैया ।

करिशावक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दस वर्ष तक का हाथी का बच्चा । करिसुत । श० मा० ।

पर्य्या०—कलभ, करभ, करिपोत करिज, विक और धिक ।

करिस्कन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी का कंधा । गजांसस्थल । (१)गजसमूह । हाथी का झुंड । वि० [सं० त्रि०] हाथी की तरह कंधा रखने वाला ।

करिहारी–संज्ञा स्त्री० दे० "करियारी" वा "कलियारी" ।

करिहाली–संज्ञा स्त्री० "करिहारी" ।

करी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० करिन्][स्त्री० करिणी] (१) हाथी । हस्ती । रत्ना० । (२) आठ की संख्या ।

संज्ञा स्त्री० [सं० कांड] कली । अनखिला फूल ।

संज्ञा स्त्री० सौरी या सबरी नाम की मछली ।

[मरा०] भाँट । भांडीर ।

[बिहार] करील । इं० मे० प्लां० ।

[अ०] वाधिर्य । बहिरापन ।

क़रीअ–[अ०] मूली ।

क़रीज़–[यू०] ख़नूंब शामी ।

करीज–[अ०] उतंजन । अंजुरह । उटंगन ।

करी जिरगी–[कना०] कृष्णजीरक । कलौंजी । शोनीज़ ।

करीजानंगीमर–[कना०] जैंत । जयंतिका ।

करीत, कारीत–[मरा०] विशाला । विषलंभी ।

क़रीत्स–[यू०] क़रीतून ।

क़रीतून–[यू०] अक़रीतस का फूल ।

करीदन्ताभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मूली । बड़ी मूली । नेवार मूली । नि० शि० ।

क़रीदूयूस–[यू०] टिड्डी । मलख ।

करीदूस–[यू०] बिच्छू ।

करीना–संज्ञा पुं० [हिं० केराना] केराना । मसाला ।

क़रीना–[अ०] लोबिया ।

क़रीनू–[यू०] कनेर । करमकल्ला ।

क़रीनून–[यू०] शाहबलूत ।

करीपाक–[द०] सुरभिनिंब । कृष्णनिम्ब । बरसुंगा । (बं०) ।

क़रीफ़तुल् कत्तान–[स्पेन] कसूस ।

क़रीफ़ान, क़रनफ़ान–[सिरि०] करोया । बिलायती जीरा ।

क़रीब–[अ०] ताज़ी और नमकीन मछली ।

करीबंटा–[कना०] अनंतमूल ।

करीबेलि-पान्न-मरवर–[मदरास]

करीबेवु–[कना०] सुरभिनिम्ब । कड़ी नीम । बरसुंगा ।

करीभाट– संज्ञा पुं०
करीमभार–संज्ञा पुं० } [देश०] एक प्रकार की जंगली घास ।

करीमरम्–[मदरास] (Diospyros candolleana, *Wight.*) नीलवृक्ष ।

करीयपौलम्–[ता०] मुसब्बर । एलुवा ।

करीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) बाँस का अँखुआ । बाँस का नया कल्ला । वंशांकुर । बाँसका गोभा । बाँसेर कोंड (बं०) । The shoot of a bamboo ।

गुण—चरपरा, कड़वा, खट्टा, कसेला, हलका, ठंडा, पित्त, रक्त और मूत्रकृच्छ्र नाशक एवं रुचिकारक है । इसका पोर (पर्व्व) गुण रहित है । रा० नि० व० ७ । वि० दे० "बाँस" । (२) करील का पेड़ । रा० नि० व० ८ । मद० व० ७ । राज० । वि० दे० "करील" । (३) घड़ा । घट । मे० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करील का फल। करीर फल। टेंटी। कचड़ा।

करीर–[?] इंद्रायन। हंज़ल।

करीरक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वंशांकुर। बाँस का कल्ला।

करीर का तेल, करील का तेल–संज्ञा पुं० [हिं० करील का तेल] दे० "करील"।

करीरकुण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करील के फलों का समय। करीर फल काल। (२) करील की तरकारी।

करीरग्रंथिल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करीर। करील। रा० नि०।

करीरफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] करील का फल। टेंटी। टींट्। कचड़ा। करीर बीज।

करीरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हाथी के दाँत की जड़। हस्तिदन्तमूल। (२) झींगुर। चीरिका। झिंझि पोका। उणा०। (३) मैनसिल। मनः शिला। हे० च०।

करीरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हाथी के दाँत की जड़। हस्तिदंतमूल। त्रिका०। (२) झींगुर। झिल्ली।

करीरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हाथी के दाँत की जड़। हस्तिदंतमूल (२) झींगुर। चीरिका। मे० रत्निक०।

करील–संज्ञा पुं० [सं० करीरः)–ऊसर और कँकरीली भूमि में होनेवाली एक तीक्ष्ण कंटकाकीर्ण झाड़ी जिसमें पत्तियाँ नहीं होती, केवल गहरे हरे रंग की पतली पतली बहुत सी डंठलें फूटती हैं राजपूताने और व्रज में करीला बहुत होते हैं। इसकी कोई कोई झाड़ी बीस फुट ऊँची हो जाती है। प्रकांड लघु एवं सीधा होता है और उसका घेरा चार-पाँच और कभी कभी सात-आठ फुट हो जाता है। तने की छाल आध इंच मोटी गंभीर धूसर वर्ण की, जिसमें खड़ी—लंबाई के रुख दरारें होती हैं। इसमें असंख्य डालियाँ होती हैं जिससे यह झाड़ी की तरह मालूम पड़ता है। डालियाँ झड़बेरी की तरह के युग्म-कंटकों से व्याप्त होती हैं। पर इसके कांटे उतने झुके हुए नहीं होते और उसकी अपेक्षा अधिक दृढ़ एवं स्थूल होते हैं। उन दोनों काटों के बीच में से डंठल निकलती है। फागुन चैत में इसमें गुलाबी रंग के फूलों के गुच्छे लगते हैं। जेठ में भी कहीं कहीं इसके फूल मिलते हैं पुष्प दंड भी प्रायः काँटों के बीच से ही निकलता है। पुष्प विषमपर्त्ती, सवृंत; तितली स्वरुप एवं गुच्छाकार होते हैं। नरतंतु १४ और नारीतंतु १ होता है। इसमें छोटी-बड़ी ५-६ पंखडियाँ होती हैं। मुहीत आज़म एवं तालीफ़ शरीफी आदि में जो इसमें तीन पँखडियों—पत्तियों का होना लिखा है, वह सर्वथा मिथ्या है। फूलों के झड़ जाने पर गोल गोल करौंदे के आकार के कभी कभी उससे भी बड़े वा छोटे फल लगते हैं जिन्हें टेंटी वा कचड़ा कहते हैं ये फल जेठ और असाढ़ में पक जाते हैं। आरंभ में ये हरे रंग के होते हैं। जब तक ये कच्चे और चने के दाने के बराबर रहते हैं, इनमें तीक्ष्णता बहुत ही कम होती है, बल्कि ये किसी भाँति फीके मालूम होते हैं, पर ज्यों ज्यों ये बढ़ते जाते हैं, इनकी तीक्ष्णता भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। परंतु यह तीक्ष्णता अप्रिय नहीं होती। (फलों के भीतर ज्वार के दानों की तरह बीज भरे होते हैं।) बड़ा हो जाने पर फल का कुछ भाग ऊदा हो जाता है। कोई श्वेताभ हलके हरे और कोई गहरे हरे होते हैं। ऊपर के छिलके का भीतरी पृष्ठ हरा और बीज तथा भीतर का गूदा पीला होता है। बीजों को चाबने से प्रथम किंचित् कड़ुआहट और कषायपन मालूम होकर, थोड़ी देर बाद मुखमें प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। पकने पर ये पहिले लाल फिर काले पड़ जाते हैं। सूखने पर यह भूरे ख़ाकी हो जाते हैं और मारवाड़ी में डालोन कहलाते हैं। करील के होर की लकड़ी बहुत मजबूत होती है और उससे कई तरह के हलके असबाब बनते हैं। इसके रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं और जाल बुने जाते हैं। इसकी लकड़ी कड़वी होती है और इसमें दीमक नहीं लगती इस कारण यह मूल्यवान् समझी जाती है। इसकी हरी डालियाँ मसाल की तरह जलती हैं। कविता में भी करील का यथेष्ट उल्लेख मिलता है। मालती इस पर अमर को

जाते देख कुढ़ती और जलती है। पत्र न आने पर कवि इसी के अदृष्ट को बुरा बताते हैं। वसंत पर कोई दोष नहीं लगाते।

टिप्पणी—द्रव्य गुण विषयक अरबी, फ़ारसी, उर्दू तथा देशी औषधियों के सम्बन्ध में लिखे पाश्चात्य लेखकों के अंगरेजी आदि ग्रंथों में प्रायः इसी को यूनानी निघंटूक्त 'कबर' लिखा है। किसी किसी ने करील और कबर का अलग-अलग उल्लेख किया है। अस्तु, अब देखना है कि करीर और कबर एक हैं वा भिन्न। यूनानी चिकित्सकों के अनुसार कबर एक कँटीला वृक्ष है। इसकी शाखाएँ भूमि पर झुकी और फैली होती हैं। पत्ते किंचित् चौड़े वा गोल होते हैं। फूल हरे रंग के कोष से आवृत्त होता है और आकृति में छोटे से जैतून और चने के दाने के बराबर होता है। खिलने पर वह सफ़ेद पड़ जाता है, जिसमें बारीक तन्तु होते हैं। फूल के झड़ जाने पर इसमें बतूल के सदृश लंबा फल लगता है। इस फल को अरबी में खियार कबर कहते हैं। इसके भीतर का गूदा लाल होता है। बीज पीले होते हैं। किसी किसी के अनुसार यह अनारदाने के समान छोटे २ और लाल रंग के होते हैं। इसमें किंचित् आर्द्रता एवं चेप भी होता है। इसका सर्वाङ्ग विशेषतः जड़ तिक्त, तीक्ष्ण और किंचित् चारीय होती है। इसकी जड़ प्रायः काम में आती है और अधिक बलशालिनी होती है। यह सफ़ेद बड़ी और लंबी होती है। इसकी छाल मोटी होती है और सूख जाने के उपरांत प्रायः भिन्न होजाती है। इसमें आड़े रुख दरारें होती हैं। यह बाहर से भूरी और भीतर से सफ़ेद होती है। मख़्ज़नुल् अदविया प्रभृति यूनानी द्रव्य-गुण विषयक ग्रन्थों में इसका उत्तम वर्णन आया है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि कबर करील नहीं, प्रत्युत उसी वर्ग का उससे एक भिन्न पौधा है। इसे सफ़ेद फूल का करीर कह सकते हैं। संभव है सफेद फूल का भी करीर होता हो। भारतवर्ष में इसका आयात अन्य देशों से होता है। इसके पूर्ण विवेचन के लिए दे० "कबर"।

पर्य्या०—करीर, गूढ़पत्र, शाक पुष्प, मृदुफल ग्रन्थिल, तीक्ष्णसार, चक्रक, तीक्ष्ण कण्टक, (ध० नि०), निष्पत्रक, करीर, करीर ग्रंथिल, ककर, गूढ़पत्र, करक, तीक्ष्णकण्टक (रा० नि०), करीर, ककरीपत्र, ग्रन्थिल, मरुभूरुह (भा०), ककर, ककच, (अमी०) ग्रन्थिल, निष्पत्रिका, अपत्रा, करिरः, कट्फल, कण्टकी, निष्पत्र, शोणपुष्प, अग्निगर्भा, विदाहिक, उष्णसुन्दर, सुफल, शतकुन्त, विष्वक्पत्र, कृशशाख —सं०। करीर, करील, कचड़ा, (मधु०) करिल, करु —हिं०। धटुभारंगी, नेपती, करील, केरा, तिपाती, कारंडी —मरा०। कबर, कुराक, एनुगदन्तमु मोदतु —ते०। करील —द०। निष्पतिगे, निष्पातिगाप —कना०। केरडो, केर, करेडी, —गु०। किराड, किराम, किरुंड डोड़ा, किराल —सिंध। पेंचू, पैंचू, करिया, करीस किर्रा, केरीं, करील, —पं०। करि —बम्ब०। करयल —मद०। करी —बिहार। कैपरिस अफाइला Capparis-aphylla, *Roth, Rox.* —ले०। केपर प्लांट Caper-plant —अं०। केपरीर कम्यून Caprier-Commun —फ्रां० कैडबा अफाइला Cadaba-Aphylla, *Roth.* —ले०।

करीर का फल—कारीर —सं०। टेंटी, टींट, कचड़ा —हिं०।

करीर तैल—करीर का तेल, करील का तेल, —हिं०। करील का तेल —द०। Oil of Copparis-aphylla, *Roxb.*

करीर वर्ग

(*N. O. Capparideæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—संयुक्त प्रांत की ऊसर भूमि, जैसे, ब्रज आदि में तथा रेगिस्तान विशेषतः राजपुताना, पंजाब, सिंध, गुजरात डकन और दक्षिण कर्नाटक में करील बहुत होता है। अरब, मिश्र और नूबिया में यह पाया जाता है।

औषधार्थ व्यवहार—समग्र क्षुप, मूल-त्वक् और फल (टेंटी)।

रासायनिक संघटन—इसकी छाल में सेनेजन (Senegen) के समान एक उदासीन तिक्त तत्व होता है। फूल की कलियों में केपरिक एसिड

(Capric acid) और एक ग्लुकोसाइड पाया जाता है, जिसे गंधकाम्ल (Sulphuric acid) के साथ उबालने पर (Isodulcite) और करसेटीन वत् (Quercetin) एक प्रकार का रंजक पदार्थ ये दो प्राप्त होते हैं।

प्रभाव—मूलत्वक् संकोचक तथा परिवर्तक है। कविराजों के मत से इसका पौधा कटुक, उत्तेजक और मृदुरेचक इत्यादि है।

औषध-निर्माण—मूल-त्वक् का चूर्ण तथा शीत कषाय (Infusion) (१० में १)

मात्रा—आधे से १ आउन्स तक। चुप स्वरस।

श्वासनाशकार्क—करीलकी ताजी जड़ें लाकर उनके टुकड़े कर, उन टुकड़ों को कूटकर एक मिट्टी के बरतन में भरकर पताल यंत्र से उसका चोआ निकाल लेना चाहिये। इस चोए को १ माशा की मात्रा में शक्कर के साथ खाकर ऊपर से गरम पानी पीने से श्वास का प्रबल वेग भी शांत होजाता है। कुछ दिन तक लगातार सेवन करने से दमे का रोग सदा के लिये जाता रहता है। उक्त अर्क को अर्शाङ्कुरों पर प्रातः सायंकाल मलने से थोड़े दिनों में मस्से मुरझाकर झड़ जाते हैं।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

वात श्लेष्महरं रुच्यं कटूष्णं गुदकीलजित्।
करीरमाध्मानकरं रुचिकृत्स्वादु तिक्तकम्॥

अन्यच्च—

करीराक्षक पीलूनि त्रीणि स्तन्यफलानि च।
स्वादुतिक्त कटूष्णानि कफवातहराणि च॥
(ध० नि० ५ व०)

करील वायुनाशक, कफनाशक, रुचिकारी, कड़ुआ, उष्णवीर्य, स्वाद में तिक्त एवं मधुरहै तथा यह आध्मान कारक और अर्शनाशक है। करील, बहेड़ा और पीलू ये तीनों मधुर, तिक्त, विपाक में कटु, उष्ण वीर्य और कफ वातनाशक है।

करीरमाध्मानकरं कषायं कटूष्णमेतत्कफकारि भूरि। श्वासानिलारोचक सर्वशूल विच्छर्दि खजू व्रणदोषहारि॥
(रा० नि० ८ व०)

करील आध्मानकारक, कषैला, चरपरा, उष्ण वीर्य एवं अत्यन्त कफकारक (मतांतर से कफहारि) है और यह श्वास—दमा, वायु, अरुचि, सर्व प्रकार के शूल, वमन, खुजली तथा व्रण का नाश करता है।

करीरः कटुकस्तिक्तः स्वेद्युष्णो भेदनः स्मृतः।
दुर्नामकफवातामं गरशोथ व्रणप्रणुत्॥
(भा० पू०)

करीर—कचड़ा गर्म तथा स्वाद में चरपरा; कड़ुआ और पसीना लाने वाला कफ तथा वात, आँव (आम), अर्श, विष, सूजन और व्रण को दूर करने वाला और भेदन दस्तावर है।

कारीरं कटुकं ग्राहि फलमुष्णं रुचि प्रदं।
कफपित्तकरं किञ्चित्कषायं वातहृद्वरम्॥
कारीरं कुसुमं भेदि कटुकं कफनाशनं।
पित्तकृद्रुचिरं भव्यं कषायं पथ्यदं भृशं॥
(वै० निघ०)

टेंटी (करीर का फल)—चरपरी, ग्राही, उष्ण, रुचिकारी, किंचित् कषैली, करील का फूल—दस्तावर, चरपरा, कफनाशक, पित्तकारक, कषैला और अत्यन्त पथ्य है।

करीरमाध्मान करं कषायं स्वादु तिक्तकम्।
(वा० सू० अ० ६)

करीर अफराजनक, कसेला, मधुर एवं तिक्त है।

गुरु भेदि श्लेष्मलञ्च। मद० व० ७।

यह भारी, भेदी—दस्तावर और कफकारक है।

राजवल्लभ के अनुसार कफनाशक, कषैला और दाहकारक है। द्रव्य निघण्टु में इसे कफनाशक लिखा है।

करीरस्तुवरश्चोष्णः कटुश्चाध्मानकारकः॥
रुच्यो भेदकरः स्वादुः कफवातामशोथजित्॥
विषार्शोव्रणशोथघ्नः कृमिपामाहरोमतः।
अरोचकं सर्वशूलं श्वासं चैव विनाशयेत्॥
फलं चास्य कटुस्तिक्त मुष्णं च तुवरं मतम्।
विकासि मधुरं ग्राहि मुखवैशद्यकारकम्॥
हृद्यं रुच्यं कर्फं मेहं दुर्नामानं च नाशयेत्।
पुष्पं वातकरं प्रोक्तं तुवरं कफपित्तनुत्॥
(नि० र०)

करील—कषेला, चरपरा, उष्णवीर्य, आध्मानकारक, रुचिकारक, भेदक और स्वादु है तथा कफ, वात, आम, सूजन, विष, बवासीर, व्रण एवं शोथ नाशक और कृमि, पामा, अरोचक, सभी प्रकार का शूल और श्वास—इनको दूर करता है। इसका फल—कड़ुआ, चरपरा, क़सेला; उष्ण, मधुर, विकासि, ग्राहि—मलरोधक, मुखवैशद्यकारक, कषेला और कफपित्तनाशक है।

करीरो व्रण शोफार्शो रक्तहृत्कफवातजित्।
पटूपाकरसोऽत्युष्णो यकृत्प्लीहापहोग्निकृत्॥
तत्पुष्पं कफवातघ्नं कटुपाकरसं लघु।
सृष्टमूत्रपुरीषं च सदा पथ्यं रुचिप्रदम्॥
बालं चास्य फलं पाके कटुकं श्लेष्मशोथजित्।
कषायं वातलं तिक्तं तत्पक्वं कफपित्तजित्॥
(शा० नि०)

करील—व्रण, सूजन, बवासीर एवं रक्तविकार को दूर करने वाला तथा कफ, वात, यकृत् और प्लीहा को दूर करनेवाला, रस एवं पाक में चरपरा अत्यन्त उष्णवीर्य और अग्निवर्द्धक है। इसका फूल—कफ वातनाशक, पाक और रस में चरपरा, हलका, मूत्र और मल का उत्सर्ग करता, सदैव पथ्य और रुचिकारक है। इसका कच्चा वा बाल फल—पाक में चरपरा, कफनाशक, सूजन उतारने वाला, कसेला, वातकारक (बादी) कड़वा है और पका फल कफ तथा पित्तनाशक है।

अन्य मत

नादकर्णी—आमवात, वातरक्त, कास, जलोदर और अर्द्धांगवात (Palsy) प्रभृति पर करीर की जड़ की छाल का चूर्ण वा शीत कषाय (Infusion) काम में आता है। दुष्ट व्रणों (Malignant ulcers) पर इसके चूर्ण का बहिर प्रयोग होता है। फोड़े-फुन्सी एवं संधि रोगों पर इसके जुप के शीत कषाय का बाह्य प्रयोग और विष के अगद स्वरूप अन्तःप्रयोग होता है। कविराजगण यक्ष्मा, हृद्रोग, उदरशूल, क्षुधा नष्ट होना और स्कर्वी (Scurvy) में इसका व्यवहार करते हैं। इसके फूल और बन्द कलियों का अचार पड़ता है वा उनकी चटनी काम में आती है। राजपूताना में इसका पौधा ऊँटों के लिये उत्तम खाद्य—चारा है। कान के कीड़ों को नष्ट करने के लिये इसके ताजे पौधे का रस कान में डालते हैं। यह सेनेगा (Senega) (—एक डाक्टरी औषध) की उत्कृष्ट प्रतिनिधि भी है। इं० मे० मे० पृ० १६२।

डीमक—करील और करेरुआ (Capparis horrida, *Linn.*) दोनों (Conntter irritant) रूप से काम में आते हैं। इन दोनों के कच्चे फलों का काला मिर्च, राई और तेल मिलाकर डाला हुआ अचार काम में आता है। पुडुकोहमें इसकी एक जाति विशेष (Capparis grandi flora, *Wall.*) के फलों का अचार पड़ता है, जिसे ताभिल भाषा में "किल्ल-छेडि" कहते हैं। फा० इ० १ म खं० पृ० १३६।

उ० चं० दत्त—भारतीय लेखकों ने इसकी छाल को कड़ुआ एवं मृदुरेचक (Laxative) और प्रदाहजन्य शोथों के लिये उपयोगी लिखा है।

बी० पावल—फोड़े फुन्सी एवं सूजन पर तथा विषों के अगद स्वरूप इसका उपयोग होता है। इसका सन्धि-रोगों पर भी उपयोग करते हैं।

स्टयु वर्ट—पंजाब में इसके पल्लव एवं कोमल पत्तों को पीसकर छाला डालने के लिये इसका उपयोग करते हैं।

डीमक—के अनुसार गुणधर्म में यह किसी प्रकार कबर से मिलता-जुलता है।

मुरे—इसकी कोंपल और कोमल पत्तियों को चबाने से दन्तशूल में बहुत उपकार होता है। (Murray Plants & Drugs of Sindh)

हरियाना तथा जिला करनाल में संकोचक रूप से इसका बहुल प्रयोग होता है।—वैट

कबड़ा स्वाद में मधुर एवं अम्ल है।

प्रकृति—समशीतोष्ण।

गुण-धर्म—मनोल्लासकारी एवं आनंददायक है। यह हृदयको शक्ति प्रदान करता और विशेषतः उन्माद को दूर करता है। यह बुद्धि एवं चैतन्य शक्ति (हवास) को बलिष्ट करता और स्त्री सहवासेच्छा को पुष्टि करता है। मीठे तेल के साथ

इसकी राख नासूर को लाभ पहुँचाती है। –म० मु०।

करील गरम है और यह कोष्ठ मृदुकर, कफवात दोष नाशक एवं फोड़ा, फुन्सी, सूजन तथा बवासीर को नष्ट करता है। इसका फूल कफ नाशक और पित्तनाशक है। इसका अचार पक्षाघाताक्रांत (मफ़लूज़ एवं इस्तरख़ा वाले) रोगी के लिये उपकारी है। –ना० मु०।

करील स्वाद में अम्ल है।

प्रकृति—सर्द एवं तर या मालदिल।

हानिकर्त्ता—कफ प्रकृति वालों को।

दर्पघ्न—शुद्ध मधु।

गुण-धर्म—यह ख़फ़क़ान, वहशत और उन्माद को दूर करता है तथा बुद्धि एवं चेतना को पुष्ट करता और हृदयोल्लासकारी भी है। यह हृदय को शक्ति प्रदान करता, उष्माशामक और उष्ण व्याधियों को लाभकारी है। –बु० मु०।

तालीफ़ शरीफ़ी के अनुसार इसके फल–टेंटी को पकाकर खाते हैं और पानी, नमक एवं रोग़न स्याह में इसका अचार भी डालते हैं। यह तीक्ष्ण उष्ण, कड़वा, भेदन, एवं कफवातनाशक है और यह फोड़ा, फुन्सी, विष एवं बवासीर को नष्ट करता है। इसका फूल कफ-पित्त नाशक है।

करील कफ एवं विकार नष्ट करता है। यह फोड़े-फुंसी का निवारण करता, सूजन उतारता और बवासीर को लाभ पहुँचाता है। इसका फूल कफ एवं पित्त को नष्ट करता है। इसके भक्षण से रक्त धातु कम पैदा होती है अर्थात् यह क़लीलुल् ग़िज़ा है। यह उदरस्थ कृमियों को नष्ट करता और पक्षाघात–फ़ालिज, प्लीहा तथा गंध को लाभ पहुँचाता है। यह आमदोष का उत्सर्ग करता तथा अतिसार बंद करता है। किसी किसी के मतानुसार यह कोष्ठमृदुकर है। परंतु अनुभवी लोगों ने इसे धारक बतलाया है, कफ को नष्ट करने में अत्यंत प्रभावशाली है। पक्षाघात—फ़ालिज एवं इस्तरखा जैसे शीतल रोगों में इसका अचार गुणकारक है। इसकी अम्लता वास्तविक उष्णता के कारण वात नाड़ियों को कम हानि पहुँचाती है। उक्त रोगों में इसकी जड़ का अचार प्रस्तुत कर खाने से प्लीहागत सूजन जाती रहती है। यह कफ का छेदन करता एवं गृध्रसी, संधि-शूल, निक्रिस (वातरक्त) तथा उरः क्षत–सिल को लाभ पहुँचाता है। इसके फूलों की तरकारी बनाकर खाने से भी पूर्वोक्त गुण प्रदर्शित होते हैं। यदि करील की लकड़ी को जलाकर कोयला कर फिर उसे चूर्ण करलें। यदि २ माशा यह चूर्ण थोड़े घी के साथ चाटें, तो कटि-शूल नष्ट हो। यदि इसकी लकड़ी की भस्म तीसी वा तिल तैल में मिलाकर नासूर में टपकायें, तो नासूर अच्छा हो। तिब फरिश्ता के लेखक ने लिखा है, यदि किसी की पशुकास्थि टूट जाय, तो करील की लकड़ी उसकी तरह छील-बनाकर उस जगह स्थापित करदें। वह कदापि सड़े-गलेगी नहीं और न नष्ट होगी। इसका फल मनोल्लास एवं प्रसन्नता जनक है। यह हृदय को शक्ति प्रदान करता है और अपने प्रभाव से उन्माद एवं वहशत को दूर करता है। संज्ञा-शक्ति एवं बुद्धि को तीव्र करता और काम शक्ति को पुष्ट करत है। इसकी कोंपल और इसबंद दोनों सम भाग कूट-छानकर रखें। इसमें से ६ माशा की मात्रा में यह चूर्ण प्रति दिन बासी पानी के साथ ऋतु-स्नाता स्त्री को सेवन कराने से वह वंध्या हो जाती है। इसमें किसी प्रकार की कठिनाई भी नहीं होती। बिना पानी पिलाये इसकी कोंपल पीसकर दो तीन दिन मलने से श्मश्रु के केश जम आते हैं। हकीम अली ने कानून की टीका में लिखा है कि यदि जलोदर—इस्तिस्क़ाऽज़िक़ी किसी प्रकार आराम न हो सकता हो, रोग ने जड़ पकड़ लिया हो और आरोग्य होने की आशा न हो, तो करील-वृक्ष की जड़ सुखा-पीसकर एक तोला प्रति दिन सप्ताह पर्यंत खिलायें और भुनाहुआ, गुरुपाकी एवं विष्टंभी पदार्थ खाना त्याग दें क्यों कि उक्त औषधि द्रव निष्कासनार्थ दी जाती है। और जो वस्तु विष्टंभी वा काबिज़ होगी, वह उसकी क्रिया न होने देगी। हकीम अली ने उक्त औषधिकी बड़ी प्रशंसा की है और लिखा है कि भारतवासी उक्त विधि से इस रोग का प्रायः उपचार करते है एवं कृतकार्य होते हैं। इसकी

कच्ची कोंपल और हरी पत्ती पीस कर टिकिया बना कलाई पर बाँधने से छाला होकर ज्वर मुक्त हो जाता है।

इसकी कोंपल को मुख में रखकर चबाते रहने से दंतशूल मिटता है। इसकी छाल के चूर्ण से मलावरोध निवृत्त होता है। इसकी छाल पीसकर लेप करने से पित्त की सूजन मिटती है। इसकी जड़का बफारा देने से हस्त-पाद की संधियों के रोग दूर होते हैं। इसकी छाल कड़वी होती है और वृक्ष दस्तावर होता है। इसकी लकड़ी को पीसकर सुहाता गर्म लेप करने से सूजन उतरती है। इसके उपयोग से विष नष्ट होता है। इसकी लकड़ी जलाकर भस्म करलें, इसमें से एक माशा राख खिलाने से कफ नष्ट होता है। इसकी कच्ची कोंपल बिना पानी मिलाये पीसकर दो-तीन दिन तक मलने से उस जगह के बाल शीघ्र उग आते हैं। इसकी शुष्क कोपलों का चूर्ण एक तोला और कालीमिर्च का चूर्ण छः माशा दोनों को एकत्र मिला प्रातःकाल जल के साथ फाँकने से तिल्ली—प्लीहा मिटती है। इसकी एक तोला जड़ को तीन सेर पानी में औटाएँ। जब आध सेर जल शेष रहे, तब उसे उतार छानकर दिन में दो बार ७-८ दिन पिलाने से रक्तार्श नष्ट होता है। इसकी लकड़ी की भस्म घी में मिलाकर चाटने से जोड़ों का दर्द दूर होता है। इसके और रेंड के पत्तों को गरम करके बाँधने से सूजन उतरती है। इसकी जड़ को पीसकर बालों की जड़ में मलने से बाल लम्बे पड़ जाते हैं।—ख़० अ०।

करील और धातु-भस्में

करील से निम्न धातुओं की भस्में प्रस्तुत होती हैं—

(१) ताम्र भस्म—ताम्र १ तोला, करील के फल अर्थात् टेंटी और उसकी शाखाओं के एक पाव लुगदी में रखकर संपुट करें। फिर उसे पूरे २० सेर उपलों की आग दें। सफेद भस्म प्रस्तुत होगा और वज़न भी पूरा रहेगा।—हकीम मु० रियाज़ुल् हसन।

(२) ताँबे की श्वेत भस्म—शुद्ध किये हुये ताँबे के मोटे टुकड़े को या ढब्बू पैसे को अग्नि में गरम करके करील की कोपलों के रस में २० बार बुझावें। इसके बाद उसको इन्हीं कोंपलों की लुगदी में रखकर २-३ गजपुट में फूँकने से सफेद रंग की भस्म तैयार होती है। कोंपलों के रस के बदले में यदि करील का ताजा हरा कांड, जो १६ अंगुल लंबा और ६ अंगुल मोटा हो, उसमें ८ अंगुल गहरा छेद करके उसमें उस ताँबे के टुकड़े को अथवा पैसे को रखकर ऊपर करील की लकड़ी का बुरादा भर, उसी का डाट लगाकर गजपुट की आँच देने से भी सफ़ेद भस्म प्रस्तुत हो जाती है। यदि उसमें कुछ कमी रह जाय, तो एक दो बार इसी प्रकार करने से ठीक हो जाती है।

यह भस्म नपुंसकता, उदररोग, श्वास इत्यादि रोगों में उपयुक्त अनुपान के साथ देने से बहुत लाभ पहुँचाती है। नपुंसकता में इसको घी के साथ चटाकर ऊपर से ५-१० तोला घी पिलाना चाहिये। इससे प्यास अधिक लगती है। पर चार पहर तक पानी नहीं पिलाना चाहिये। यदि प्यास न रुके तो दूध में घी मिलाकर देना चाहिये। इससे नपुंसकता में बहुत उपकार होता है। इसके सेवन काल में तेल, खटाई, लालमिर्च इत्यादि वर्जित हैं। (जंगलनी जड़ी बूटी)

(३) पारद भस्म—शुद्ध पारे को करीर पुष्प स्वरस में दो दिन (८ प्रहर) खरल करें, गोला बन जावेगा। फिर करीर पुष्प को पीसकर इसकी लगभग तीन छटाँक लुगदी तैयार करें। इसके उपरांत उक्त गोले को इस लुगदी के भीतर रखकर ऊपर से कपड़मिट्टी कर दें। फिर इसे दो सेर उपलों की आँच दें। लपट निकल जाने के उपरांत श्वेत भस्म प्रस्तुत होगी। यदि करीर के पीले रंग के फूल में (जो इस तरफ मिल जाते हैं) खरल करके आँच देवें तो पीत वर्ण की भस्म प्राप्त होगी। हकीम गोकुलचंद महाशय वैद्य (रमूजुल् इतिब्बा)।

करीलन, करीलन-[देश०] बंडाल। बबरबेल।

करीवगेटी-[बम्ब०] (Paramignya monophylla, *Wight.*) गुलाब के वर्ग की एक औषधि जो जंगली नीबू की जाति का एक पौधा है जो परिवर्त्तक और मूत्रल गुण के लिये

व्यवहार में आता है। पशुओं के रक्तमूत्रता रोग में इसकी जड़ काम में आती है।

करीवन–[मरा०] मंडूकपर्णी। ब्रह्ममंडूकी।

करीश-लांगणिण–[ता०] सफेद भँगरैया। केशराज। श्वेत भृंगराज।

करीष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) सूखा गोबर जो जंगलों में मिलता है और जलाने के काम में आता है। बन कंडा,। अरना कंडा। जंगली कंडा। बन उपला। करसा। घूँट (बं०) बिनुआ कडा।

"वन्यकरीष घ्राणात् जलपानात्।"

सि० यो० मंदा० चि०। (२) सूखा गोबर। (३) गोबर। पशु का पुरीषमात्र।

करीषक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "करीष"।

करीषाग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कंडे की आग। गोमयाग्नि। घूँटेर आगुन –(बं०)। हारा०।

क़रीस–[अ० क़रीस्] (१) मसाला। (२) सब्ज़ी। भाजी। तरकारी। (३) सिरका डालकर पकाया हुआ गोश्त।

क़रीस–[अ०] (१) यख़नी का पानी जो ठंढा होकर जम गया हो। (२) एक प्रकार की शिज़ा।

करीस–[पं०] करील। इं० मे० प्लां०।

क़रीसा–[?] एक प्रकार का छुहारा।

क़रीसा चरू तूनीस, क़रीसावरूतूनस–[यू०] ख़नूंब शामी।

क़रीह–[अ० क़रीह] ख़ालिस पानी।

वि० [अ० क़रीह] [बहु० क़र्हा] (१) ज़ख़मी। ख़सता। (२) बेमेल। ख़ालिस। शुद्ध।

करीह–[अ०] घृणित। घिनौना। वीभत्स। मकरोह नापसंद। वदशकल। भोंड़ा।

करीहतुल् इंसान–[अ०] मनुष्य स्वभाव। इंसान की पैदायशी तबीयत।

करुंजीरणम्–[ता०] कृष्णजीरक। कलौंजी।

करुंटोली–[मल०] तेजपात। तमालपत्र। जंगली दारचीनी का पत्ता।

करुंडय–[द०] (Flacourtia sepiaria) कोंडै। किंगारो।

करुंदा–[उड़ि०] करौंदा।

करुंबा–[मदरास]
करुंबु–[ता०] } गन्ना। ईख। ऊख।

करु (डु)–[ता०] बकुची। सोमराजी।

वि० [ता०] काला। कृष्ण।

–[देश०] करील। इं० मे० प्लां०।

–[बं०] चिरायता। किरातिक्त।

–[पं०] (Rhamnus purpureus, *Edgew.*) बात सिंजल।

–[देश०] (Gentiana kurroo, *Royle.*) कमलफूल। कुटकी।

करुअन–[मरा०] बरना। बरुण।

करुआ–संज्ञा पुं० [देश०] दारचीनी की तरह का एक पेड़ जो दक्षिण के उत्तरी कनाड़ा नामक देश में होता है। इसका फल दारचीनी के फलसे बड़ा होता है और काली नागकेसर के नाम से बिकता है। इसकी सुगंधित छाल और पत्तियों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो सिर के दर्द आदि में लगाया जाता है।

वि० [सं० कटुक] [स्त्री० करुई] (१) कड़वा। (२) अप्रिय।

करु-अल्लमु–[ते०] जंगली अदरक। बनार्द्रक।

करु-इंदु–[ता०] (Pisonia Aculiata,) बाघचूहा। हाथी अंकुश।

करुक–[पं०] बेरुला। बैठला।

करु-उम्मत–[मल०] काला धतूरा। कृष्ण धुस्तूर।

करु-उम्मती–[ता०] काला धतूरा।

करु कप्पुल्ल–[मल०] इशरमूल। ज़राबंदे हिंदी।

करुकपुल्ल–[मल०] दूब। दूर्वा।

करुकर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] रीढ़ की हड्डी का एक उभार।

(Trunsverseprocess of Vertebra) अ० शा०।

करुकरान्तरीय–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम की एक सन्धि। (Inter-transversarious) अ० शा०।

करुकुवा–[ता०] बातदला। काकुपाल।

करुड़–[पं०] (१) गोदड़ द्राक। द्रांगी। (२) रामसर। सरपत।

करुचीकडु-[ते०] सफ़ेद सेम। महाशिंबी। (Canavallia ensiformis)

करुण-संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१) Citrus decumana करना नीबू का पेड़। कला नीबू। करुणा लेबुर गाछ (बं०)। प० मु०।

गुण—कफ, वायु नाशक, आम तथा मेद नाशक और पित्त को प्रकुपित करनेवाला है। राज० ३ व०। वि० दे० "करना"। (२) एक प्रकार का फलदार वृक्ष। फलित वृक्ष। (३) करुण नामी रस का भेद। शोक। (४) करुण नामी वृक्ष का भेद। मे० (५) मोतिया बेला। मल्लिका। हे० च०।

वि० [सं० त्रि०] करुणायुक्त। दयार्द्र।

करुण-कृकिभृङ्गु-[ता०] घितकोचु। घैटकोंच। (Typhonium trilobatum)

करुण-कलंग-[मदरास] जंगली सूरन। अर्शोघ्न।

करुणकानम्-[ता०] चाकसू। चरमीनज़।

करुण कोडिवरै-[ता०] काला चीता।

करुणतक-[?] कटसरैया।

करुण-तोट्टि-[मल०] जंगली मेथी।

करुण-नोचि-[मल०] काला संभालू। चमेली।

करुण (णा) मल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नव मल्लिका। श० च०। (Jasminum sambaca)

करुण शीरगम-[ता०] कलौंजी।

करुणा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दया। रहम। तर्स।

पर्य्या०—कारुण्य, घृणा, कृपा, दया, अनुकम्पा, अनुक्रोश, शूक।

(२) बकरे की आँख। छगलाक्ष। वै० निघ०। (३) काना का पेड़। (४) शोक। अफ़सोस। रंज।

करुणा मल्ला-दे० "करुणामल्ली"।

करुणालेबूर गाछ-[बं०] करना नीबू का पेड़।

करुणासागर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चन्द्रोदय १ मा०, शुद्धगंधक २ मा०, शुद्ध अभ्रक भस्म ४ मा०, इन्हें सरसों के तेल में १ दिन घोटे, पीछे सम्पुट करके बालुका यंत्र में पचाएँ। जब स्वांग शीतल हो जाय; तब निकाल भाँगरा की जड़ के रस में भावना दें। फिर ढाक के गोंद, मोचरस के साथ भाँगरा रस देकर घोटे। पुनः इसमें सज्जी खार, जवाखार, भुना सुहागा, पाँचोनमक, त्रिकुटा शुद्ध सिंगिया बिष, चित्रक, जीरा और वायविडंग २-२ माशे लें। इनका चूर्ण बनाय सबको अच्छी तरह मिलाकर रक्खें।

मात्रा—१-२ मा०।

गुणतथा उपयोग—अतिसार, ज्वर, विषमज्वर, शूल, रुधिर विकार, आम और शोथयुक्त संग्रहणी उचित अनुपान या बिना अनुपान द्वारा नष्ट होती है। (बृहत् रस रा० सु० अतिसार चि०)।

करुणी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का पुष्प वृक्ष। ग्रीष्मपुष्पी। ककरभिरुणी (कों०)।

पर्य्या०—रक्तपुष्पी, चारिणी, राजप्रिया, राजपुष्पी, सूक्ष्मा, ब्रह्मचारिणी, ग्रीष्मपुष्पी। रा० नि० व० १०। दे० "करवीरणी"।

करुणोचि-[ता०] काला सम्हालू।

करु तुत्ति-[ता०] काली कंघी।

करुत्त अयङ्कौलम्-[मल०] काला ढेरा। अंकोल।

करुत्तकोटिवेल-[मल०] काला चीता।

करुन-[पं०] वनचोर। सीकीलस।

करुन तफ़ो-[?] (१) गन्ना। ईख। (२) फ़ानीज़।

करुन शीरगम्-[ता०] कलौंजी।

करुना-संज्ञा स्त्री० दे० "करुणा"।

संज्ञा स्त्री० [सं० करुणा] करना नीबू का वृक्ष।

करुना नीबू-संज्ञा पुं० [सं० करुणानिम्बुक] करना नीबू। कला नीबू।

करुपरुत्ति-[मल०] कपास।

करुपाली-[ता०] जियापोता। पतजीव। पुत्रजीव।

करुपुपिल्लंगे-[ता०] Phyllanthus reticulatus पानजोली। पानकुशी। कृष्ण कांबोजी।

करुपसुपु-[ते०] जंगली अदरक। वनार्द्रक।

करुपूरम्-[ता०] कपूर। कर्पूर।

करुप्पु-वि० [ता०] काला। कृष्ण।

करुप्पुअक्किंजिमरम्-[ता०] काला। अंकोला।

करुप्पु चित्तिरमूलम्-[ता०] काला चीता।

करुप्पु डामर–[ता०] Shorea tumbuggaia, *Roxb.* काला डामर।
करुप्पु नोच्चि–[ता०] काला सम्हालू।
करुप्पु-पिल्लञ्जी–[ता०] काला मध वृक्ष।
करुप्पुप्पु–[ता०] काला नमक।
करुप्पु मणत्तक कालि–[ता०] काला मकोय।
करुप्पु-मरुतमरम्–[ता०] आसन वृक्ष।
करुप्पूरम्–[ता०] कपूर। कर्पूर।
करुप्पोमर–[ता०] आसन। असन। पियासाल।
करुबणु–[मरा०] लोबिया। बोड़ा। निष्पावी।
करुबेल–स्त्री० [सं० कारुवेल] इंद्रायण की बेल या लता।
करुमकंद–[?] सोनापाठा। श्योनाक। अरलू।
करुमट्टन–[मल०] जंगली ककड़ी।
करुमट्टन-वित्त–[मल०] जंगली ककड़ी का बीज।
करुमरुत्त–[मल०] आसन वृक्ष।
करुमुरक्कन मरम्–[मल०] फरहद। पारिभद्र।
करुमुल्क–[मल०] कालीमिर्च।
करुर–वि० [सं० कटु] कड़ुआ। तीखा।
करुल–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी चिड़िया जो जल के किनारे रहती है और घोंघे आदि फोड़कर खाया करती है। इसके डैने काले छाती सफेद होती है। इसकी चोंच बहुत लंबी और नुकीली होती है।
करुवएल–[ता०] बबूल। कीकर।
करुवप्पु–[ता०] लौंग। लवंग।
करुवा–संज्ञा पुं० दे० "करवा"।
संज्ञा पुं० दे० "कड़ुआ"
संज्ञा पुं० [ता०] दारचीनी से मिलता जुलता एक वृक्ष जो कनाड़ा में उत्पन्न होता है। फल दारचीनी से बड़ा होता है और काली दारचीनी कहलाता है।
करुवा पपट्टै–[ता०] दारचीनी। दालचीनी।
करुवाप्पू–[ता०] लौंग। लवंग।
करुविलाई–[ता०] श्वेतापराजिता।
करुवूमत्तई–[ता०] काला धतूरा।
करुवेप्प,करुवेप्पिलै–[ता०] सुरभिनिंब। कढ़ीनीम। मीठी नीम। बरसुंगा।

करुवेप चेट्टु–[ते०] सुरभिनिंब।
करु-वेम्बु–[?] काला बबूल। काली कीकर।
[ता०] सुरभिनिंब। कढ़ी नीम।
करुवेल–[ता०] बबूल। कीकर।
करुवेलकम्–[मल०] बबूल। कीकर।
करु-वेलकम्-पश्–[मल०] बबूल की गोंद।
करुवेलम्–[ता०] बबूल।
करुवेलम्-पिशित्–[ता०] बबूल की गोंद।
करुवेलुम–[मल०] बबूल।
करुषा–[ता०] दालचीनी।
करुह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केश। बाल।
करुही–संज्ञा स्त्री० [देश०] रामेठा। रमेठा। (Lasiosiphoneriocephalus, *Dcm*) रामी –मरा०।
करू–वि० दे० "कड़ुआ"।
करूअ़नक़ सक़ती़ई, क़रूक़ूमग़्मा–[यू०] (१) मुरक्कब मअजून का नाम। (२) रोग़न ज़ाफ़रान की तलछट।
करूकर–[वै० क्ली०] ग्रीवा और कशेरुका की ग्रंथि। गर्दन और रीढ़ का जोड़।
क़रूत़–[?] प्याज़।
करूतन–[फ़ा०] (१) मकड़ी। (२) मकड़ी का जाला।
क़रूत़ा–[?] मोम।
क़रून–दे० "क़ुरून"।
क़रूनत़फ़ा–[?] (१) गन्ना। ईख। (२) फ़ानीज़।
करूद–[फ़ा०] मकड़ी के जाले का एक भेद।
क़रू (रो) फ़ल–[यू०] कद्दू।
क़रूफ़स–[सिरि०] दरूनज।
करूफ़स–[?] अख़रोट।
क़रूफ़ा–[यू०] कद्दू।
करूमक़रून–[रू०] मलूख़िया।
क़रूर–[अ०] (१) ठंढा पानी। (२) मोती की सीपी।
करूरा–[सिरि०] (१) मोतियों की सीपी। (२) भूतांकस।

करूशुल्गानम–[अ०] क़रक़ियून ।

करूषक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का फल। फालसा ।

क़रूस तूलियूस–[यू०] शादनज ।

क़रूसामयून–[?] धतूरा । तातूरह ।

करूसा बहमन–[यू०] बाबूना ।

क़रूसियून–[यू०] आलूबालू । करासिया ।

क़रूसूफ़स, क़रूसूफ़ियून–[यू०] मारक़ीतून ।

क़रूसूस–[यू०] बूसीर ।

करूला–संज्ञा पुं० [हिं० कड़ा + ऊला (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का मध्यम सोना। (२) कुल्ला ।

करे–[कना०] (१) भाँट । भाँडीर । (२) पिंडार । पिंडालु ।

वि० [कना०] काला । कृष्ण । करि (कना०) ।

करे-अम्कोले-गिडा–[कना०] (Alanguim Hexapotalum, *Lam.*) काला अकोला ।

करेइ–[मारवाड़] भेरी ।

करे उप्पु–[कना०] काला नमक ।

करे-उ (वु) म्मत्ते–[कना०] काला धतूरा ।

करेकाई–[ते०] करौंदा । करमर्द । करमचा ।

करेकांचि–[कना०] काला मकोय ।

करेगोब्बलि–[कना०, मरा०] काला बबूल । काली कीकर । बबूल ।

करेंगणिके–[कना०] काला मको ।

करेजा–संज्ञा पुं० [सं० यकृत] कलेजा । हृदय ।

वि० दे० "कलेजा" ।

करेजालिमरा–[कना०] बबूल । कीकर । काली कीकर ।

करेजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० करेजा] पशुओं के कलेजे का मांस जो खाने में अच्छा समझा जाता है । (२) पत्थर की करेजी । दे० "पत्थर" ।

करेजीरगे–[कना०] काला जीरा ।

करेट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] नख । नाखून ।

करेटा–[बं०] (१) खिरेटी । बरियारा । (२) जंगली मेथी । इं० मे० प्लां० ।

करेटव्या–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धनेच्छू पक्षी । धनेस चिड़िया । इसका तेल गठिया की रामबाण दवा है ।

करेटु, करेटुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करकरा पक्षी । करकटिया । ककरेटु । करटु । कर्करा-टुक । रत्ना० । (२) नख । नाखून । त्रिका० ।

करेठ–संज्ञा पुं० [सं० पु०] नख । नाखून । त्रिका० ।

करेठव्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] धानस पक्षी । करकटिया । धनच्छू पक्षी । त्रिका० ।

करेडुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करकटिया । करेटु पक्षी । (२) कर्कट । केकड़ा ।

करेणु, करेणुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी । गज । (२) कर्णिकार वृक्ष । कनेर । विश्व० । (३) एक महौषधि । एक वनस्पति जिसमें बहुत दूध होता है और जिसका कंद हाथी के आकार का होता है । इसमें हस्तिकर्ण पलाश की तरह के दो पत्ते लगते हैं । गुण में यह सोमरस के समान होती है । जैसे—"करेणुः सबहुक्षीरा कन्देन गजरूपिणी । हस्तिकर्णपलाशस्य तुल्यपर्णा द्विपर्णिनी ॥ सा च सोमरस तुल्यगुणा । सु० चि० ३० अ० । दे० "ओषधि" (४) हस्तिनी । हथिनी ।

करेणुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्णिकार का फल जो ज़हरीला होता है ।

करेणुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हथिनी । हस्तिनी । मादा हाथी । शब्द र० ।

करेणुभू–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पालकाप्य नाम के मुनि जो गजवैद्यक के प्रणेता हैं । त्रिका० ।

वि० [सं० त्रि०] हथिनी से उत्पन्न ।

करेणुसुत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पालकाप्य मुनि । त्रिका० । हाथी का बच्चा । गजशावक ।

करेणू–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) हाथी । गज । (२) हथिनी । हस्तिनी । अ० टी० रा० ।

करेण्डरा–[सिमला] Acer villosum

करेता–संज्ञा० पुं० [देश०] बरियारा । बला । खिरैंटी ।

करेधा–[उड़ि०] हड़ । हरीतकी ।

करेनर, करेवर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूहा । मूस । मूषिक । (२) शिलारस । सिह्लक । तुरुष्क । वै० निघ० । रा० नि० व० १२ ।

करेन्दुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भूम्तृण । खवी । घटियारी । रा० । गंधतृण । भूतृण ।

करेपाक, करेपात–संज्ञा स्त्री० [देश०] कृष्ण निंब । मीठी नीम । सुरभि निंब । बरसंग । काली नीम ।

करेपाकचभाड़–[मरा०] कड़ी नीम । सुरभि निंब ।

करेम–संज्ञा पुं० दे० "करेमू" ।

करेमू–संज्ञा पुं० [सं० कलम्बुः] एक घास जो जल में वा जलासन्न भूमि में होती है । जिन झीलों और तालाबों में बारह महीने पानी रहता है उनमें यह वर्ष भर बनी रहती है । यह पानी के ऊपर दूर तक फैलती है । इसके डंठल पतले, गोल, बाहर से कलौंछ लिये लाल और पोले होते हैं, जिनकी गाँठों पर से दो लम्बी लम्बी पत्तियाँ निकलती हैं । पत्तियाँ जड़ के पास से दोनों ओर थोड़ी थोड़ी झुकी हुई होती हैं । जड़ पानी की तह में होती है । यह मीठी होती है और तरकारी के काम आती है । फूल बड़ा घंटी के आकार का श्यामता लिये रक्त वर्ण का होता है ।

पर्य्या०—कलम्बः, कलम्बकः (अम०), कलम्बी, कलम्बूः, कलम्बुः, कलम्बिका (श० र०) कलम्बुका (भैष०) शाकनाड़िका, नाड़ीशाक, शतपर्वा, शतपर्विका, (भा०), कड़म्बी, –सं० । करेंमू, करेमुआ, करेंवु, कलंबी, –हिं० । कलमी शाक, कलमा शाक, –बं० । तोमेबच्चलिचेट्टु, –ते० । कलम्बी शाक –मरा० । कान्वालव्युलस रिपेंस, Convol vulus (Ipomoea) Repens, आइपोमिया अक्वेटिका Ipomoea aquatica. *Forsk.* –ले० । गरम शाक –पं० । नालि-चि-भाजी –बम्ब०, मरा० । सरकारेई वल्ली । –मद० ।

त्रिवृत् वर्ग

(*N. O. Convolvulaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष में विशेषतः बंगाल, मद्रास, लंका इत्यादि ।

औषधार्थ व्यवहार—पत्र, डंडी और कंद (पंचांग) ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

नडीकशाकं द्विविधं तिक्तं मधुरमेव च ।
रक्तपित्तहरं तिक्तं कृमि कुष्ठ विनाशनम् ॥
मधुरं पिच्छलं शीतं विष्टम्भि कफवातकृत् ।
तच्छुष्कपत्रं ज्वरदोष नाशनं बिशेषतः पित्तकफ ज्वरापहम् । जलं च तस्यापि च पित्तहारकं सुरोचनं व्यञ्जनयोगकारकम् ॥ (रा० नि०)

नाड़ीशाक दो प्रकार का होता है—कड़ुआ और मधुर । इनमें कड़ुआ करेमू मधुर, पिच्छल, शीतल, विष्टंभकारक और कफ वात जनक है । तथा यह रक्तपित्त, कृमि एवं कुष्ठ को नाश करता है । नाड़ी के सूखे पत्ते—ज्वर दोषनाशक हैं । विशेषतया यह पित्त, कफ और ज्वर नाशक हैं । इसका रस भी पित्त को हरण करनेवाला, रुचि कारक और व्यञ्जन योग कारक है ।

तच्छुष्कं जलदोषघ्नं पित्त श्लेष्मामवातनुन् ॥

नाड़ी के सूखे पत्ते—जलदोषनाशक, पित्त कफ और आमवात विनाशक हैं ।

कलंबी स्तन्यदा प्रोक्ता मधुरा शुक्रकारिणी । (भा०)

करेमू—स्तन्यवर्द्धक, मधुर और शुक्रजनक है ।

राजवल्लभ के अनुसार यह स्तन्यवर्द्धक, शुक्रजनक, कफकारक मधुर, कसेला और भारी है । (राज० ३ पृ०)

यह सारक, स्तनों में दूध उत्पन्न करता और अफीम की विषक्रिया को नष्ट करता है । आत्मघात के लिये यदि किसी ने अधिक मात्रा में अफीम खा लिया हो तो उसे कलमीशाक का रस आधी छटाँक से एक छटाँक की मात्रा में देने से अफीम जन्य विष दोष नष्ट हो जाता है और उसके प्राण नाश की आशंका दूर हो जाती है । (व० द० २ भ० परि० पृ० ६६७–८)

यह साधारणतया शाक के काम आता है । (फा० इं० २भ० । इं० मे० मे०) वामक, विरेचक और अहिफेन एवं मल्ल विष का अगद है । (इं० डू० इं०)

ख़जाइनुल् अदविया के अनुसार बोए हुए की की अपेक्षा स्वयंभू पौधे में विष निवारण की शक्ति अधिक होती है। संखिया और अफीम का विष उतारने के लिये इसका शुद्ध रस पिलाकर वमन कराते हैं। इसके पत्तोंको पकाकर रोटीके साथखाने से अफीम का नशा उतरता है। इसके सूखे हुये ढसारे के चूर्ण को फंकी देने से दस्त आते हैं। इसके पत्ते और टहनियों के टुकड़े सुखाकर रख छोड़ते हैं और खटाई के साथ उबालकर चावल के साथ खाते हैं। इन्हें रात में उबालकर रख देवें और प्रातः काल रोटी खाने से पूर्व स्त्री सम्बन्धी वातनाड़ी विषयक सामान्य रोग जनित दुर्बलता दूर होती है और स्तनों में दुग्ध की वृद्धि होती है। इसकी कोमल शाखायें, पत्र और मूल पकाकर रोटी और चावल के साथ खाये जाते हैं। ख़० अ०।

इसकी पत्ती पीस-पकाकर फोड़े पर बाँधने से वह पक जाता है।

लड़के डंठलों को लेकर बाजा बजाते हैं। इस घास का लोग साग बनाकर खाते हैं।करेमू अफीम का विष उतारने की दवा है। जितनी अफीम खाई गई हो, उतना करेमू का रस पिला देने से विष शांत हो जाता है। (हिं० श० सा०)

आसाम में इसे सुखाकर उन स्त्रियों को देने में इसका उपयोग करते हैं जो अशक्त और स्नायु जाल संबंधी कमजोरी की शिकार रहती हैं।

बरमा में इसका रस अफीम और संखिया के विष को नष्ट करने वाली तथा वामक औषधि की तरह उपयोग में लाते हैं। कम्बोडिया में इसकी कलियाँ ज्वर निवारक समझी जाती हैं। ज्वरजनित सन्निपात और ज्वरजनित मूर्च्छा में इसकी डंडी और पत्ते उपयोगी माने जाते हैं।

वैट के मतानुसार इसका कोमल कलियों और पतों का साग बनाया जाता है। यह साग गर्मी तथा खून के दस्तों को बंद करता है, वायु की वृद्धि करता और पौष्टिक है। संखिये और अफीम का विष नष्ट करने के लिये इसके पत्तों का रस दिया जाता है, जो रेचक और वामक है।

चोपड़ा के मतानुसार यह विरेचक वमन कारक और संखिये के विष को नष्ट करने वाला है।

करेयवदी–[कना०] काला शीशम। काला सीसो। कृष्ण शिंशप।

करेर–[पं०] अखरेरी। आखी।
[देश०] करीर। करील।

करेरा–[म०] सिहोर। रूसा।

करेरुआ–संज्ञा पुं० [देश०]एक कँटीली बेल जिसके पत्ते नीबू की पत्ती की आकृति के, पर उनसे लंबे होते हैं और उनकी तरह कड़े नहीं; अपितु कोमल होते हैं। पत्र एकांतर एवं सवृंत होते हैं और उन पर तथा कोमल शाखाओं एवं पुष्पकलिकाओं पर एक प्रकार की भूरे रंग की धूल सी चीज जमी होती है, जो स्पर्श मात्र से हाथों में लग जाती है। प्रत्येक पत्र वृंत के मूल से लगे व्याघ्रनखाकृति के दृढ़ युग्म कंटक होते हैं। कदाचित् इसी कारण कोई कोई आधुनिक ग्रंथकार इसे "व्याघ्रनखी" नाम से अभिहित करते हैं।

वसंत ऋतु (फागुन और चैत-बैसाख) में इसमें हलके करौंदिया (बैंगनी) रंग के सवृंत तितली स्वरूप एकांतिक पुष्प प्रत्येक पत्रकक्ष में लगते हैं। इनमें लगभग ७० की संख्या में १–२ अंगुल लम्बी पतली पुं केसर और उतनी ही लम्बी मध्य में एक स्त्री-केसर होती है जिनके सिरे पर क्रमशः परागकोष और चिन्ह (Stigma) स्थित होते हैं। कटोरी और पँखड़ी में ४–४ पत्र होते हैं। पुष्पदल और पुं-स्त्री केसर पहले सफेद फिर करौंदिया हो जाते हैं। फूलों के झड़ने पर इसमें कागजी नीबू के आकार के कुछ लंबे फल लगते हैं, जिनमें बीज ही बीज भरे रहते हैं। ये खाने में बहुत कड़वे होते हैं। यहाँ तक कि इसके पत्तों से भी कड़वी गंध निकलती है। इसकी जड़ १॥ इञ्च से ३ इंच तक मोटी होती है। इसका केन्द्र भाग सख़्त काष्ठीय होता है, जिसके ऊपर एक मोटी छाल परिवेष्टित होती है,जिस में से मूली की तरह की एक विशेष प्रकार की गंध आती है। स्वाद में यह चरपरी होती है।

पर्य्या०—डोडिका, विषमुष्टिः, डोडो, सुमुष्टिका (भा० पू० खं० शा० व० ६), डोखिदका, व्याघ्र नखी, व्याघ्रघटी–सं०। करेरुआ –हिं०। गिटारेम मार०। कैपेरिसहारिडा Cappāris Horrida,

Linn. । कैपोरिस ज़ेलैनिका C. Zeylanica, *Linn.* कैडेबा हारिडा Cadaba Horrida *Linn.*-ले० ।करेरुका, अरुदण्डते० । हरण डोडी वाघाटी, भगाटी-मरा०, द० । करबिल, करविला-पं० ।कर्लुर करलुरा-(अवध) झूज (इटावा)। कालुकेर, वाघांटी-बम्ब० । गोविंदी-मरा० ।

करेरुआ की जड़—भगाटी की जड़; भटाटी की जड़-द० । अलंदय-मल० । आदंडवेर-ता० । अरुदंड वेरु-ते० ।

करीर वर्ग

(*N. O. Cappari diaceœ*)

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारतवर्ष, विशेषतः दक्षिण भारत में यह बाहुल्यता से होता है ।

औषधार्थ व्यवहार—पत्र, फल, मूल और मूलत्वक् ।

औषध-निर्म्माण—मूलत्वक क्वाथ-४ आउंस मूलत्वक् को १॥ पाइंट जल में मंदाग्नि पर यहां तक क्वथित करें, कि एक पाइन्ट पानी शेष रह जाय । ठंडा होने पर इसे छान कर रखें ।

पत्रक्वाथ—उपर्युक्त विधि के अनुसार प्रस्तुत करें ।

मात्रा—उक्त दोनों प्रकार के क्वाथों की मात्रा १ आउंस से ३ आउंस पर्यन्त, चौबीस घंटे में ३-४ बार देवे ।

इसकी प्रतिनिधि स्वरूप विदेशीय द्रव्य—मूलत्वक् के लिए बिस्म्युथाई सब्नाइट्रास और एसिड हाइड्रास्यानिड डिल, पत्र के लिये सोआ ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

डोडिका पुष्टिदा वृष्या रुच्या वह्निप्रदा लघुः ।
हंतिपित्त कफर्शांसि कृमिगुल्म विषामयान् ॥

(भा० पू० खं० शा० व० ६)

अर्थात्—करेरुआ पुष्टिकर, वृष्य, रुचिकारी, जठराग्नि-वर्द्धक तथा हलका है । और पित्त, कफ, बवासीर, कृमि, गोला और विष के रोगों को दूर करता है ।

इसके फल की तरकारी बनाई जाती है । भाव मिश्र ने इसीलिये इसका शाक वर्ग में उल्लेख किया है । लोगों का विश्वास है कि आर्द्रा नक्षत्र के पहले दिन इसे खा लेने से साल भर पर्यन्त फोड़ा, फुन्सी होने का डर नहीं रहता और न सर्पादि विषधर जन्तुओं का विष व्याप्त होता है । करेरुआ के पत्ते पीसकर घाव पर भी रखते हैं । उकवत पर भी इसके पत्ते बाँधते हैं । मूलत्वक् को पीसकर जहरबाद फोड़े अथवा अन्य प्रकार के फोड़े पर लगाने से लाभ होता है ।

करेरुआ के इतने स्वल्प गुण-प्रयोग देकर अब मैं पाठकों का ध्यान इसके एक ऐसे उपयोगी एवं चमत्कारी प्रयोग की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसका मैं आज बीस वर्ष से अनुभव कर रहा हूं । यह वही प्रयोग है जो आजतक अनेकों पुरातन प्लीहान्वित रोगियों का प्रशंसा-भाजन बन चुका है । ऐसे प्लीहा रोगी जिन्हें छः-छः मास पर्यन्त डाक्टरों के इञ्जक्शनादि विविध उपचारों से भी कोई लाभ न हुआ, वे इस दवा के प्रयोग से स्वल्प काल में ही रोग-मुक्त हुये हैं । परन्तु यह स्मरण रहे कि जिसमें अनेक गुण होते हैं उसमें कतिपय दोषों का रहना भी स्वाभाविक ही है । इस भूमण्डलपर कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो सर्वथा निर्दोषहो, क्योंकि यदि दोष न हो, तो निर्दोषताका हमें अनुभव ही नहींहो सकता । अस्तु; उक्त औषध भी इसदोष से खाली नहीं रह सकती। जहाँ इसमें पुराने से पुराने अत्यन्त विवर्द्धित प्लीहा रोग को निर्मूल करने का गुण वर्तमान है, वहीं इसमें यह एक दोषभी है, कि इससे उक्त स्थल पर असह्य दाह होताहै । परन्तु यह दारुण प्राण-संहारक व्याधि के मुकाबिले में कुछ भी नहीं । अब नीचे इसकी वह प्रयोग-विधि दी जाती है, जो मुझे एक साधु, महात्मा से प्राप्त हुई थी । मैं भी उन्हीं के बताए अनुसार बिना किसी फेर-फार के इसका प्रयोग करता हूं । यद्यपि इसकी कई बातों में मुझे स्वयं संदेह है । उपयोग-विधि इस प्रकार है—

बरबट के रोगी अर्थात् विवर्द्धित प्लीहा-रोगी को सर्वप्रथम यह बतला दिया जाता है कि औषध रविवार या मंगलवार को बाँधी जायगी । और उससे पहले अर्थात् शनिवार या सोमवार को

रात्रि को उसे केवल सादी अर्थात् पीठी रहित घृत पक्व पूरी बिना किसी अन्य वस्तु यथा—दुग्ध तरकारी आदि के खानी चाहिये और दूसरे दिन प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर दातौन किये बिना वैद्य के पास आना चाहिये। यह आदेश कर दिया जाता है। वैद्य को चाहिये कि पहले से ही उक्त बूटी की ताजी जड़ (न होने पर नवीन सूखी जड़ ही सही) मंगा रखे और उस जड़ की छाल निकाल कर १० दाने काली मिर्च के साथ किसी कुमारी लड़की से थोड़ी पानी में पिसवाकर उसकी बारीक लुगदी तैयार करावे। फिर प्लीहा परिमाणानुसार एक परई (मिट्टी का पका हुआ दीया के आकार का परन्तु उससे बड़ा पात्र) लेकर उसमें बिनौला कस-कस कर भर डालें और उसके ऊपर उक्त लुगदी को आध अंगुल मोटी तह चढ़ा दे। पुनः रोगी को चित्त लेटने को कहें और उक्त परई को उलट कर ठीक प्लीहा स्थल पर रखें और उसे किसी अंगौछे आदि को चौपतकर पीठके नीचेसे लपेटकर खूब कसकरबाँधदें और रोगीसे कहदे कि वह सीधा चित्त पड़ा रहे इधर-उधर न घूमे और न बंधन को ढीला ही करे। बस इसी प्रकार उसे तीन घंटे तक पड़ा रहने दें। औषध बांधने के १०-१५ मिनट उपरांत औषध का प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है, रोगी उक्त स्थल पर दाह का अनुभव करने लगता है, उसे ऐसा प्रतीत होता है, मानों वहाँ लाल अंगारा रख दिया गया हो। यही दशा निरन्तर दो घंटे पर्यंत बनी रहती है। इसके अनन्तर जलन क्रमशः न्यून होने लगती है। यहाँ तक कि तीसरे घंटे पर जाकर एक दम न्यून पड़ जाती है और पुनः रोगी को किसी प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं होता। बस यही है—एक ओर रोगी का यंत्रणा-काल और दूसरी ओर सदा के लिये दारुण रोग निवारक प्रयोग। तीन घंटे पूर्व किसी भी भाँति बंधन न खोलना चाहिये। अन्यथा जलन स्थायी रूप धारण कर लेगी। इस व्याधि से मुक्ति लाभ न होगा और दूसरी ओर व्यर्थ में और भी अधिक काल पर्यंत अनिवार्य दाह-यंत्रणा भुगतनी पड़ेगी ठीक समय के उपरांत बंधन खोल दें और रोगी को दातौन आदि से मुख प्रक्षालन की आज्ञा दें। इसके उपरांत यदि इच्छा हो तो उसे खिचड़ी आदि खाने को दी जा सकती है अथवा उसे गरम दूध पीने को दें। उक्त स्थल को पानी पड़ने से या पसीना आदि होने से बचाने का आदेश करदें। अन्यथा फफोला पड़ने की आशंका रहेगी। रोगी को चाहिये कि एक मास पर्यन्त गुड़, तैल, लाल मिर्च, भूने चने अथवा स्निग्ध, उष्ण, विष्टंभी, दीर्घपाकी एवं धारक पदार्थ के खाने-पीने से परहेज करे, नित्य हलके शीघ्रपाकी आहार करे। इससे मास पर्यंत कभी-कभी काले रंग का मलोत्सर्ग होता रहता है और प्लीहा क्रमशः अपनी पूर्व स्वाभाविकावस्था पर चली जाती है और रोगी अपने को स्वस्थ पाता है।

इसका उपयोग केवल प्लीहा रोग पर होता है, ज्वरादि के लिये पृथक् चिकित्सोपचार करना चाहिये। रोगी की क्षमता का विचार करते हुये ७–८ वर्षीय शिशु से लेकर ८० वर्ष के बुड्ढे तक पर इसका प्रयोग किया जा सकता है।

इस औषधोपचार के उपरांत एक मास पर्यंत यदि निम्न प्रकार से तैयार किये हुये मंदार-क्षार का भी उपयोग कराते रहें, तो सोने में सुहागे का काम हो। विधि यह है—

मंदार क्षार—मंदार-पत्र और सेंधव लवण का चूर्ण लेकर एक मिट्टी की हाँडी में सर्व प्रथम मदार का एक पत्र रखकर ऊपर से सेंधानमक का चूर्ण थोड़ा सा बुरक दें। फिर मदार की एक पत्ती रखकर ऊपर से सेंधा नमक बुरकें। इसी प्रकार करते रहें, यहाँ तक कि ये हाँडी के मुख पर्यंत आ जाँय। यदि थोड़ा बनाना हो तो इससे कम भी रख सकते हैं। इसके उपरांत हांडी के मुखपर एक ढक्कन रखकर उसके मुख को कपड़मिट्टी कर भली प्रकार बन्द करदें और गजपुट में रखकर कंडे की आग से फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर नमक और पत्र-भस्म का बारीक चूर्ण कर सुरक्षित रखें। इसमें से प्रातः सायं ६ माशे चूर्ण शहद के साथ चाटा करें।

नव्य मत

मोहीदीन शरीफ़-प्रभाव—मूत्रत्वक् शामक (Sedative), पाचक, स्वेदावरोधक (Anthidrotic) और पत्र भी अंशतः पाचक

(Stomachic) होता है। डीमक ने मूल त्वक् को (Counter-irritant) लिखा है

आमयिक प्रयोग—आमाशयिक प्रदाह (Gastric irritation) जनित वमन एवं उदरस्थ वेदना जैसे कतिपय लक्षणों के उपशमनार्थ और क्षुधा वर्द्धनार्थ इसकी जड़की छाल परमोपकारी होती है। स्वेदाधिक्य की कतिपय दशाओं में भी यह उपकारी प्रमाणित हुई है और इसके व्यवहार से बहुतांश में स्वेद आना रुक जाता है। इसकी पत्ती में भी क्षुधाभिजनन गुण वर्तमान होता है। (मे० मे० मै० पृ० ३२)

जलोदर में इसकी पत्ती वा जड़की छाल ६ मा० पीसकर २१ दिन तक निरंतर प्रातः सायं काल सेवन करने से उपकार होता है।

बवासीर की सूजन मिटाने के लिये इसके पत्तों की लुगदी बना कर बाँधना चाहिये।

इसकी छाल के चूर्ण को सिरके में घोलकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है।

इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से उपदंश मिटता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शांतिदायक और मूत्रल है।

कैंपबेल के अनुसार छोटानागपुर में इसकी छाल देशी शराब के साथ विसूचिका रोगमें दी जाती है।

एटकिन्सन के मतानुसार उत्तरी भारतवर्ष में इसके पत्ते बवासीर, फोड़े, सूजन और जलन पर लगाने के काम में लिये जाते हैं।

करेरुक–संज्ञा पुं० [सं०] करेरुआ। भा०।

करेल–[बं०] बाँस।

करेल्लकी–[कना०] संभालू। म्योंड़ी। निर्गुंडी।

करेल्लकी गिडा–[कना०] काला संभालू।

करेलन–[राजपु०] करेला।

करेला–संज्ञा पुं० [सं० कारवेल्लः] एक सुदीर्घ आरोही लता जिसकी पत्तियाँ पाँच नुकीली फांकों में कटी होती है। ये शिरावंधुर (Sinute) एवं दंतित होती हैं। कोमल पत्र का अधः पृष्ठ विशेषतः नाड़ियाँ न्यूनाधिक (Villous) होती है। प्रकांड न्यूनाधिक लोमश होताहै। पुष्प-वृंत क्षीण होता है और उसके मध्य प्रायः भाग में एक वृक्काकार पौष्पिक-पत्रक होता है। पुष्प वृंतमूल से स्त्री-पुष्प निकला होता है। फल स्थूल दीर्घाकार वा अंडाकार होता है जिसके छिलके पर उभड़े हुये लंबे-लंबे और छोटे बड़े दाने वा अर्बुद होते हैं या धारियाँ पड़ी होती हैं। बीज अंडाकार चिपटा होता है। बीज प्रांत स्थूल एवं कटावदार होता है और रक्तवर्ण (Aril) होती है। पुष्प मध्यमाकृति और पांडु पीत वर्ण के होते हैं। कच्चे फल हरे रंग के और अत्यन्त कड़वे, पर रुचिकारी होते हैं। पकने पर ये पीले और भीतर से ये लाल हो जाते हैं, तथा इनकी कड़वाहट कम पड़ जाती है।

करेला भेद—करेला दो प्रकार का होता है। एक बैशाखी जो फागुन में क्यारियों में बोया जाता है, ज़मीन पर फैलता है और तीन चार महीने रहता है। इसका फल कुछ पोला होता है। दूसरा बरसाती जो बरसात में बोया जाता है। झाड़ पर चढ़ता है और सालों फूलता फलता है। इसका फल कुछ पतला और ठोस होता है। आकृति भेद से भी यह दो प्रकार का होता है। बड़ा करेला वा करेला। (करला –बं०) और छोटा करेला वा करेली (उच्छे –बं०)। इनमें बड़े का फल अपेक्षाकृत दीर्घ और छोटे का क्षुद्र अंडाकार होता है। करेली की बेल भी करेले की बेल के समान सुदीर्घ नहीं होती है। यह स्तम्भकारिणी एवं भूलुण्ठिता होती है। रंग रूपाकृति भेद से करेला अनेक प्रकार का होता है। करेला प्रायः हरे रंग का होता है। पर कहीं कहीं सफ़ेद करेला भी देखने में आया है। यह बहुत लंबा होता है। मालवा और राजपुताना में सफ़ेद करेला हाथ भर तक का देखा गया है। यह उत्तम होता है। इसका छिलका पतला होता है।

कहीं कहीं जंगली करेला—बनज कारवेल्ल भी मिलता है जिसके फल बहुत छोटे और बहुत कड़वे होते हैं। इसे करेली वा बन करैला कहते हैं। इसका फल सर्वथा छोटा करेला व करेली के तुल्य होता है। भेद केवल यह है कि इसमें

बीज अधिक होते हैं और इसका छिलका करेली जैसा मांसल नहीं होताहै। बंगाल में इसे "काशीर उच्छे" कहते हैं। बन करेला की बेल अत्यन्त क्षीण एवं करेले की बेलकी अपेक्षा सुदीर्घतर होती है। वृहन्निघण्टु रत्नाकर में जलज कारवेल्ल का उल्लेख दृष्टिगत होता है। कोचबिहार में एक प्रकार का जंगली करेला देखा गया है जो जल वा जलासन्न भूमि में न उत्पन्न होने पर भी नितांत आर्द्र एवं छायान्वित भूमि में अति आनन्द पूर्वक सुदीर्घ क्षीण प्रतान विस्तार करता है।

वक्तव्य—रॉक्सवर्ग (पृ० ६६६) और डीमक (२य खण्ड ७६ पृ०) ने सुषवी का बंगला नाम, क्षुद्र फल कारबेल्ल अर्थात् उच्छे लिखा है। धन्वन्तरि ने कारबेल्ल के पर्यायों का निर्देश इस प्रकार किया है।

"काण्डीरः काण्ड कटुको नासासंवेदनः पटुः।
उग्रकाण्डस्तोयवल्ली कारवल्ली सुकाण्डकः॥"

राजनिघण्टु—के वह्वर्थ निर्देश स्थल पर यह उल्लिखित है—

"सुषवी कटुहुञ्याञ्च विश्रुता स्थूलजीरके।
तिलके च छिन्नरुहा सुषवी केतकी भवेत्"॥

सुतरां निघण्टुद्वय के मत से सुषवी शब्द का क्षुद्र फल कारवेल्लार्थ दुर्घट है। निघण्टुद्वय में कारवल्ली भेद स्वीकृत नहीं है। किंतु भावप्रकाश कार लिखते हैं—

"कारवेल्लं कठिल्लं स्यात् कारवेल्लीततोलघुः।

तदनुसार करेली का नाम कारवेल्ली है। वैद्यक में कहीं भी क्षुद्रफल कारवेल्ल के अर्थ में सुषवी शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आया है। सुषवी से करेला और करेली दोनों का अर्थ ले सकते हैं। जिन्होंने 'क़िसाउल् हिमार' आरब्यसंज्ञा का व्यवहार करेला के अर्थ में किया है; उन्होंने भूल की है। किसाउल् हिमार की गंध बहुत खराब एवं तीव्र होती है और वह इन्द्रायन की अपेक्षा प्रबलतर विरेचक है। परन्तु करेले में उक्त गुण नहीं होते। उसके विपरीत यह आमाशय बलप्रद दीपन पाचन और संग्राही होता है तथा खाद्य के काम आता है। सन् १८७७-७८ ई० के दुर्भिक्ष के समय खानदेश ज़िले के लोगों ने करेले की पत्तियाँ चबाकर जीवन धारण किया था।

पर्य्या०—काण्डीरः, काण्डकटुकः, नासासंवेदनः, पटुः, उग्रकाण्डः, तोयवल्ली, कारवल्ली, सुकाण्डकः (ध० नि०, रा० नि०), करका, कारवल्ली, चीरिपत्रः, करिल्लका, सूक्ष्मवल्ली, कण्टफला, पीतपुष्पा, अम्बुवल्लिका (रा० नि० ७ व०) कठिल्लः, कारवेल्लः (भा०) कठिल्लकः, सुषवी (अ०), कारवेल्लकः, राजवल्ली (र०), सुषवी (अ० टी०), ऊर्द्ध्वापितः (त्रि०), कठिल्लका, कठिल्लका, कण्डूरः, काण्डकटूकः, सुकाण्डः,—सं०। करेला, करैला, करोला—हिं०। करेला—द०। कोरोला, करला, बड़ करेला, उच्छे गाछ, करला उच्छे, बड़ उच्छे—बं०। क़िस्साउल् बर्री—अ०। सीमाहंग—फ्रा०। मोमोर्डिका करंटिया, Momordica Charantia, *Linn.* ले०। Momordique-charantia—फ्रां०। Gurkenahnlicher. Balsamapfel जर०। पावक्का-चेडि—ता०मद०। पावक्का-काय (कल) तेल्लकाकर, करिला, काकड़ा-चेट्टु, काकर-चेट्टु—ते०। कैप्प-वल्लि, पावक्का-चेटि, पाग्टी-पावेल, कप्पक्क, पावल—मल०। हागल-काचि-गिडा, हागल—कना०। करोला, कार्ली, कारलें, करेटी—मरा०। करेलो, करेटी, करेला, कडवाबेला—गु०। केहिगा-बिड्—बर०। कारला—बम्ब०। पावक्का-चेडि—मद०। करारा—उत्०। हागल, कारेलाइ—का०। कराटी—कों०। करेन, शलरा, फालरा—उड़ि०। करविल—(सिंहली)। ककरल—आसा०। करिला—पं०। करेली—सिंध। कारली—मार०।

परिचय ज्ञापिका संज्ञा—"चिरितपत्रः," 'सूक्ष्मवल्ली,' "पीतपुष्पः"।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbtaceæ*)

उत्पत्ति स्थान—समग्र भारतवर्ष विशेषतः मलय, चीन और अफरीका में भी पाया जाता है।

औषधार्थ व्यवहार—फल, बीज, पत्र एवं समग्रलता। मात्रा—पत्रस्वरस, १-२ तोले, वमन रेचनार्थ १० तोले पर्यंत।

रासायनिक संघटन—एक जल विलेय तिक्त ग्ल्युकोसाइड जो ईथर में अविलेय होता है, एक

प्रकार का पीले रंग का अम्ल, राल और ६% भस्म इत्यादि।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

काण्डीरः कटुतिक्तोष्ण सरो दुष्टव्रणार्तिजित्।
लूता गुल्मोदर प्लीह शूल मन्दाग्नि नाशनः॥
(ध० नि०, रा० नि०)

करेला—चरपरा, कड़ुआ, गरम और दस्तावर है तथा दुष्टव्रण, मकड़ी का विष, गुल्म, प्लीहा; शूल और मंदाग्नि—इनको नाश करता है।

कारवेल्लं हिमं भेदि लघुतिक्तमवातलम्।
ज्वर पित्त कफास्रघ्नं पांडु मेह क्रिमान् हरेत्।
तद्गुणा कारवेल्ली स्याद्विशेषाद्दीपनी लघुः॥
(भा०)

करेला—शीतल, दस्तावर, हलका, कड़वा एवं अवातल है तथा यह ज्वर; पित्त, कफ, रुधिर-विकार, पांडु रोग, प्रमेह और कृमिरोग इनको दूर करता है। करेला के समान ही गुण करेलीमें है।

कारवेल्लमवृष्यञ्च रोचनं कर्फापत्तजित्।
(राज०)

करेला—अवृष्य, रुचिकारक और कफ तथा पित्तनाशक है।

कारवेलश्च वातघ्नः कफघ्नः पित्तकारकः।
उष्णो रुचिकरः प्रोक्तो रक्तदोषकरो नृणाम्॥
(हा०) (अत्रि १६ अ०)

करेला—वातनाशक, कफनाशक, पित्तकारक, उष्ण, रुचिकारक और रक्तविकार जनक है।

कारवेल्ल चाति तिक्त मग्निदीप्तिकरं लघुः।
उष्णं शीतं भेदकं च स्वादु पथ्यं समीरितम्॥
अरुचिं च कफं वातं रक्तदोषं ज्वरं कृमीन्।
पित्तं पांडुञ्च कुष्ठञ्च नाशयेदिति कीर्तितम्॥
बृहदुक्तं कारवेल्लं कटु तिक्तं च दीपकम्।
अवृष्यं भेदकं स्वादू रुच्यं क्षारं लघुः स्मृतम्॥
अवातलं पित्तहरं रक्तरुक्पांडु रोगहृत्।
(वैद्यक नि०)

अरोचकं कफं श्वासं व्रणं कासं कृमींस्तथा।
कोष्ठं कुष्ठं ज्वरं चैव प्रमेहाध्मान नाशनम्॥
कामलां नाशयत्येव गुणास्त्वन्ये तु पूर्ववत्।
जलजं कारवेल्लं स्यात्तिक्तं भेदकरं मतम्॥
कफं कुष्ठं पांडुरोगं कृमीन्पित्तञ्च नाशयेत्।
वनजं कारवेल्लंतु दीपनं तिक्तकं मतम्॥
हृद्यं ज्वरार्शः कासघ्नं कफवात कृमीहरम्।
(रत्नाकरः)

करेली—अत्यन्त कड़वी, अग्निप्रदीपक, हलकी, गरम, शीतल, दस्तावर, स्वादु पथ्य तथा अरुचि, कफ, वात, रुधिर विकार, ज्वर, कृमि, पित्त, पांडु रोग और कुष्ठ रोग को नष्ट करने वाली है।

करेला—कटु, तिक्त, दीपन, अवृष्य, भेदक, स्वादिष्ट, रुचिकारक, क्षार, हलका, वातकारक नहीं, तथा पित्तनाशक है और रुधिर विकार, पांडुरोग, अरुचि, कफ, श्वास, व्रण, खाँसी, कृमि, कोठ रोग कुष्ठ, ज्वर, प्रमेह, आध्मान और कामला रोग को दूर करता है। शेष गुण पूर्ववत् जानना चाहिये।

जल में उत्पन्न होनेवाला करेला—कड़वा; भेदक, तथा कफ, कुष्ठ, पांडुरोग, कृमि और पित्त रोग का नाश करता है।

वन करेला—दीपन, कड़वा तथा हृद्य है और ज्वर, बवासीर, खाँसी, कृमि और वायु को नष्ट करता है। इसका फूल धारक और रक्त पित्त में हितकारी है।

करेले के वैद्यकीय व्यवहार

सुश्रुत—वातरक्त में कारवेल्ल—करेले की बेल के क्वाथ द्वारा सिद्ध घृत वातरक्त में हितकारी है। यथा—

"कारवेल्लक काथमात्र सिद्धं वा"।
(चि० १ अ०)

चक्रदत्त—(१) ज्वर रोगी के शाकार्थ कारवेल्ल—ज्वर रोगी को करेले की शाक व्यवस्था करें। यथा—

"॥ कारवेल्लकम्। ॥ शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत्।" (ज्वर-चि०)।

(२) मसूरिका में कारवेल्ल—करेले के पत्तों का स्वरस, हलदी का चूर्ण मिलाकर पियें। यह रोमान्तिका, ज्वर, विस्फोट और मसूरिका प्रशमक है। यथा—

"सुषवी पत्र निर्य्यासं हरिद्रा चूर्ण संयुतम्।
रोमान्तीज्वर विस्फोट मसूरी शान्तयेपवत्॥"

(मसूरिका –चि०)

(३) अन्तःप्रविष्ट योनि में कारवेल्ल—करेले की जड़ पीसकर लेप करने से अन्तःप्रविष्ट योनि वहिर्निःसृत होती है। यथा—

"सुषवी मूल लेपेन प्रविष्टान्तर्वहिर्भवेत्।"

(योनिव्यापद् –चि०)।

भावप्रकाश—विसूचिका में कारवेल्ल—करेले की बेल का काढ़ा, तिल-तैल का प्रक्षेप देकर पीने से विसूचिका रोग प्रशमित होता है यथा—

"सतैलं कारवेल्लस्य क्वाथं नाशयेद्ध विसूचिकाम्"

(म० खं० २य भा०)

यूनानी मतानुसार–प्रकृति—शीतल, मतांतर से समशीतोष्ण, कोई-कोई तृतीय कक्षामें उष्ण और रूक्ष मानते हैं, नुसख़ा सईदी आदि का यही मत है। वैद्य शीतल मानते हैं। पर कोई-कोई बहुत उष्ण लिखते हैं।

हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को।

दूषघ्न—घी, चावल, शीतल पदार्थ और सिकंजबीन, वैद्यों के मत से हर प्रकार के मधुर द्रव्य सेवनोपरांत इसका खाना एतद्दोषनिवारक है।

प्रतिनिधि—माहूदाना।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह वाजीकरण, नाड़ी-बलप्रद (मुक़व्वी अअ्साब), शुक्रमेहहर, वातानुलोमक एवं कफछेदक है तथा संधि-शूल, शीत-वातरक्त (निक़रिस बारिद) जलोदर, प्लीहा, कामला और कृमि में उपकारी है। मुफ़० ना०।

मख़ज़नुल् अद्विया के रचयिता के अनुसार करेला (फल) बल्य, जठराग्न्युद्दीपक (Stoma chic), आमवात और वातरक्त में उपकारी, यकृत एवं प्लीहा रोगनाशक और कृमिघ्न है। म० अ०।

वाद्दी का करेला (आरोपित करेला, बुस्तानी करेला)—वातानुलोमक वाजीकरण और कफघ्न है तथा यह नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता, शुक्र उत्पन्न करता और संधि-शूल वातरक्त (निक़रिस) जलोदर एवं तापतिल्ली में उपकारी होता है। यह उदरस्थ कृमियों को नष्ट करता है। इसके हरे पत्तों का रस ३ तोले, तोला डेढ़ तोला दही के साथ मिलाकर, ऊपर से ५-६ तोला छाछ पिला देवें। तीन दिन तक ऐसा करें। इसके बाद तीन दिन बंद करके, पुनः चार दिन तक उसी भाँति पिलाएँ। फिर चार दिन बंद करके पांच दिन पिलाएँ। इसी प्रकार एक-एक दिन बढ़ाकर उस समय तक करते रहें कि एक सप्ताह पर पहुँच जायँ। सेवन काल में खिचड़ी और ख़सके का आहार करें। इस प्रयोग से वृक्क एवं वस्तिस्थ अश्मरी में बहुत उपकार होता है।

तरकारी के लिये करेले को इस प्रकार तैयार करते हैं। पकाने से पूर्व इसे नमक के पानी में डुबाते हैं अथवा पहले करेले को ऊपर से छील कर उसके बारीक बारीक कतरे काटकर बीज दूर कर देते हैं। फिर उन कतरों में लवण मल कर तीन-चार बार धोते हैं जिससे उसकी कड़ुवाहट दूर हो जाती है। पुनः उतना ही प्याज काटकर तेल में भून लेते और मांस में अथवा बिना मांस के पकाकर खाते हैं। कोई कोई इसे बगल से चीर कर बीज निकालकर नमक मिला धोकर गोश्त का क़ीमा भरकर डोरे से बाँध कर घी में भूनकर पकाकर खाते हैं। इसके पकाने की अनेक रीतियाँ हैं किंतु प्याज़ के साथ पकाकर खाया हुआ स्वाद और वाजीकरण गुण में बलिष्टतर होता है और बिना प्याज के पकाया हुआ जठराग्न्युद्दीपन एवं शीघ्रपाकी होता है तथा अरेचकृत कम उष्णता उत्पन्न करता है। ख़० अ०।

वैद्यों के कथनानुसार करेला वादीबवासीर को लाभकारी है। यह रक्त एवं पित्त की उल्बणता और कामला में हितकर है। यह कफ नाशक है एवं वीर्यलाघव के दोष को मिटाता है। शुष्क करेला मूत्रदोषघ्न है। यह भोजनोत्तर वमन का निवारण करता है।

ताजा करेले को पानी में पीसकर पीने से दो चारदस्त आकर कामला रोग आराम होजाता है।

इसके पत्तों का रस पिलाने से आन्त्रस्थ कृमि मृत प्राय होते हैं।

इसके रस का लेप करने से दाद मिटता है। करेले के रसमें चाक वा खड़ी मिट्टी मिलाकर लगाने से मुँह के छाले मिटते हैं।

सिर पर इसके रस का लेप करने से पीवयुक्त फुंसियाँ मिटती हैं।

अग्निदग्ध पर इसके लेपसे तज्जन्य दाह शमन होता है।

शिशुओं को इसके पत्तों का रस पिलाने से दस्त आते हैं।

रीडी वाइस और गिब्सन—करेले की समग्र लता, दालचीनी, पीपल, और चावल इनको तुवरक् तैल (जंगली बादाम के तेल) में मिलाकर लगाने से कण्डू एवं अन्य चर्मरोग आराम होते हैं। (फा० इं० २ भ० पृ० ७८)

इसकी जड़ संग्राही और उष्ण है। इसकी जड़ घिसकर बादी के मस्सों पर लेप करते हैं।

इसके पत्तों का रस लेप करने से पैर के तलुओं का दाह शमन होता है।

इसे आँख के बाहर चतुर्दिक लगाने से रतौंधी जाती रहती है।

नवजात शिशु के मुंह में करेले की पत्ती तोड़कर रखने से उसके सीने और अंतड़ी का मवाद मैल और आँव निःसरित हो जाती है।

इसके पत्तों को औटाकर पिलाने से प्रसूता नारियों का रक्त शुद्ध होजाता है और स्तन्य की वृद्धि होती है।

इसके पत्तों के रस में सोंठ, काली मिर्च और पीपल के चूर्णका प्रक्षेप देकर लेप करने से आर्त्तव नियत मात्रा में आने लगता है।

इसके फल का लेप करने से फोड़ों की खुजली और गरमी मिटती है।

इसके पत्तों का रस सिरके के साथ पिलाने से कै होती है।

इसके पत्तों के रस में हड़ घिसकर पिलाने से कामला रोग आराम होता है।

इसका फल सामान्य कोष्ठ मृदुकर है। इसके कच्चे फल के रस को गरमकर लेप करनेसे गठिया मिटती है।

इसके फल-स्वरस में राई और लवण चूर्ण का प्रक्षेप देकर विवृद्ध प्लीहा रोगी को सेवन कराना चाहिये।

परिवर्द्धित यकृत रोगी को इसके रस में इन्द्रायन मूल चूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिये।

इसके दो तोले रस में थोड़ा मधु मिलाकर पिलाने से विसूचिका दूर होती है।

शीत ज्वर में शीत लगने से पूर्व इसके रस में जीरे का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये।

सूखा करेला सिरके में पीसकर गरमकर लेप करने से गलशोथ मिटता है।

नोट—यूनानी चिकित्सक करेले को संग्राही मानते हैं। इसके विपरीत वैद्यगण इसे मृदुरेचक मुलय्यन मानते हैं। ख० अ०।

वह करेला जिसकी कड़ुवाहट दूर न की गई हो, केचुओं को निकालता है। यह मूत्र प्रवर्त्तक और अश्मरी छेदक भी है तथा कफरेचक है।

ब्रु० मु०।

अश्मरी में इसकी सेवन-विधि यह है—इसके ५रे पत्तों का रस ३ तोले लेकर १॥ तोले दही के साथ खिलाकर ऊपर से ५-६ तोले छाछ पिलादें इस प्रकार तीन दिन तक करें। उसके बाद ३ दिन तक दवा बंद करदें। उसके बाद फिर चार रोज़ तक दवा देकर फिर चार रोज के लिये बंद करदें। फिर पाँच दिन तक दवा देकर पाँच दिन के लिये दवा बंद करदें। इस प्रकार ७ दिन तक बढ़ावें। पथ्य में केवल खिचड़ी और चावल ही देना चाहिये। यह अश्मरी में बहुत लाभ करता है।

नव्यमत

आर० एन० खोरी—यह कृमिघ्न, मूत्रकर, स्तन्यवर्द्धक, आर्त्तवरजःस्रावकारी एवं वायुनाशक है। विरेचक एवं तिक्तभेषज सुगंधिकरणार्थ इसका व्यवहार होता है। प्रसवोत्तर इसका क्वाथ पीने से गर्भाशयद्वार संकोच प्राप्त एवं स्तन्य वर्द्धित होता है। कृमि के लिए भी यह हितकारी होती है। विषमज्वर, ग्रहणी, अग्निमांद्य, अजीर्ण और अतिसार में यह चित्रकमूल के साथ जठराग्न्युदीपक (Stomachic) और वातानुलोमक रूप से व्यवहार की जाती है। आर्त्तव

रजःस्रावकारी रूप से यह रजःकृच्छ्र, रजोरोध वा बिलम्बित रज में सेव्य है। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह गर्भस्राव कराती है। कष्टप्रद हस्त-पाद शोथ में इसे पानी में पीसकर प्रलेप करते हैं ऊनी शाल वा पश्मीने के वस्त्र प्रभृति के वस्त्र को कीड़ों से सुरक्षित रखने के लिये उसके ऊपर इसके दाने छिड़क देते हैं। (भा० २ पृ० १७)

डीमक—करेले के फल और पत्ते कृमिघ्न रूप से व्यवहार किये जाते हैं। कुष्ठ में इनका वहिर प्रयोग होता है। पैत्तिक रोगों में वमन और विरेचनार्थ आध-पाव करेले को पत्ती का रस अकेला वा सुगंध द्रव्यों के योग से दिया जाता है पादतल दाह में इसकी पत्ती का रस मर्दन किया जाता है और रात्र्यन्ध में उसमें कालीमिर्च घिसकर अक्षिगुहा के चतुर्दिक् आलेप करते हैं।
(फा० इं० २ भ० पृ० ७८-९)

नादकर्णी—प्रभाव-करेला (फल) वल्य, जठराग्नि दीपक (Stomachic), उत्तेजक, पित्तनाशक, मृदुसारक (Laxative) और रसायन है। फलमज्जा, पत्रस्वरस और बीज कृमिघ्न (in lumbrici) है। पत्र स्तन्यवर्द्धक प्रभाव करता है। जड़ संग्राही है।

आमयिक प्रयोग—फल रुचिदायक होता है, अतएव इसकी तरकारी खाई जाती है। वातरक्त (Gout), आमवात एवं यकृत और प्लीहा के रोगों में इसका फल उपकारी होता है। यह रक्त विकारनाशक, मालीखोलिया प्रशमक और विकृत दोष (Grosshumours) संशोधक माना जाता है। शिशुओं को मृदु कोष्ठपरिष्कारक रूप से इसकी ताजी पत्तियों का स्वरस व्यवहार्य होता है, किन्तु यह निरापद नहीं है। कुष्ठ, अर्श, कामला प्रभृति में करेले का फल और पत्ती दोनों आभ्यंतरिक रूप से व्यवहार किये जाते हैं। बालकों के उद्क्लेश में करेले की पत्ती का स्वरस आधा तोला थोड़ा हरिद्रा चूर्ण के साथ व्यवहार किया जाता है। यह क़ै लाकर आमाशय का परिष्कार करता है। शिशुओं के यकृत रोगों में करेले के पत्तों का स्वरस, गोरख इमलीके पत्तों का रस, पके पान के पत्तों का रस और जामुन की ताजी छाल का रस एकत्र मिलाकर इसमें बच घिसकर सप्ताह पर्यन्त सेवन कराते हैं। अर्श में इसकी जड़ का कल्क लेप करते हैं। इसकी समग्र बेल, दालचीनी पीपर, चावल और तुवरक तैल द्वारा प्रस्तुत अनुलेपन, चर्मरोग विशेष (Psora), कण्डू, दुष्ट क्षत (Malignant ulcers) तथा अन्य चर्मरोगों में उपकारी सिद्ध होता है। मुखपाक में एक चम्मच भर करेले के फल का रस थोड़ी खड़ी मिट्टी और चीनी मिलाकर दिया जाता है। कष्टरज (Dysmenohrroea) में आर्त्तवरजः स्रावकारी रूप से भी यह उपादेय है। सिर की सद्य छोटी छोटी फुन्सियों में इसका सिर पर लेप करते हैं तथा दग्ध एवं विस्फोटादि में इसका बाह्य प्रयोग करते हैं। कुष्ठ एवं अन्य संक्रमणशील क्षतों (Intractable ulcers) पर इसकी समग्र लता के चूर्ण का अवचूर्णन करते हैं।
(इं० मे० मे० पृ० ४५८-९)

इसकी जड़ संकोचक और रक्तार्श को दूर करने वाली है।

गोल्ड कोस्ट में यह संभोग शक्ति वर्द्धक माना जाता है और अधिक मात्रा में सूज़ाक की बीमारी में लाभकारी ख़्याल किया जाता है।

चोपरा के मतानुसार यह वमनकारक और विरेचक है। यह सर्पदंशमें भी उपकारी स्वीकार किया जाता है।

कायस और महस्कर के मतानुसार सर्प विष में यह सर्वथा निरर्थक है।

वनज कारवेल्ल (वन करैला)
(*Momordica Balsamina, Linn*)

यह तिक्त, शीतल, लघु, काष्ठमृदुकर (मुलय्यन) पित्तनाशक, रक्तहर तथा वात कफ नाशक है। यह शरीर की पीतवर्णता, बादी, कामला और प्रमेह (शुक्रमेह) का निवारण करता है। उदर कृमि नाशक है (ता० श०)। यह विषघ्न भी है, इसकी जड़ अर्श एवं मलावरोध का नाश करती है। इससे ज्वर छूटता है। दोनों प्रकार के करेलों का उसारा बालकों के कब्ज़ को लाभकारी है। यदि इसके पत्तों और फल के उसारे को सुखाकर तीन तीन माशे की गोलियाँ प्रस्तुत कर लेवें। फिर गोदुग्ध पान करके ऊपर से एक गोली निगल लेवें। इसके बाद थोड़ा मधु चाट लेवें तो इससे

मैथुन शक्ति और स्तम्भन शक्ति वर्द्धित हो जाती है। उक्त दोनों प्रकार के करेले (बाड़ी एवं जंगली) एतद्गुण विशिष्ट होते हैं। ख० अ०।

करेला (उच्छे) गाछ–[बं०] करेला।

करेला तोरिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] कड़वी तरोई। तिक्त कोषातकी। घोषालता।

करेलिया–[देश] हुलहुल। सफेद हुलहुल।

करेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० करेला, सं० कारवेल्ली] जंगली करेला जिसके फल बहुत छोटे छोटे और कड़ुए होते हैं।

करेली–संज्ञा स्त्री० [हिं० करेला] छोटा करेला जिसके फल बहुत छोटे छोटे और कड़ुए होते हैं। ये करेले से छोटे गोलाकार होते हैं।

पर्य्या०—कारका (कारली), कारवल्ली, चीरिपत्रः, कारिल्लका, सूक्ष्मवल्ली, कण्टफला, पीतपुष्पा, अम्बुवल्लिका। (ध० नि०) कारवेल्ली (भा०) मण्डपी चिरितच्छदा (नि० शि०) सुकुमारी, सुपत्री, तोयवल्लफला, अखिली (के० दे०), करिल्लं, कारवेल्लं (द्रव्य० नि०) फलाम्लिका, राजवल्ली (गण० नि०) क्षुद्रकारवेल्लक, क्षुद्रकारवेल्ल– सं०। करेली, छोटा करेला–हिं०। छोटा करला, उच्छे, छोट उच्छे–बं०। मोमोर्डिका म्यरिकेटा Momordica muricata,–ले०। काकरकाया–ते०। लघु कारलो, क्षुद्रकारली–मरा०। कड़वा वेला–गु०। हागल-कना०। काकरकाया–ते०।

कुष्माण्ड वर्ग

(*N. O. Cucurbitaceæ.*)

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारतवर्ष।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कारवल्ली सुतिक्तोष्णा दीपनी कफवातजित्।
अरोचकहरा चैवं रक्तदोषकरी च सा" ॥
(रा० नि०)

अवृष्या रुच्या कर्फापित्तघ्नी च। (राज०)

करेली—कड़वी, गरम, दीपन, कफ एवं वात नाशक, अरुचि को दूर करनेवाली और रक्तविकार उत्पन्न करती है।

फल—

हिमं भेदि लघुस्तिक्तं अवातलं पित्त रक्त कामला पाण्डु कफमेह कृमघ्नम्। (मद०)

करेली का फल—शीतल, दस्तावर, हलका, कड़वा, पित्तनाशक, रक्तविकारनाशक तथा कामला पाण्डु, कफ, प्रमेह और कृमि इनको नष्ट करने वाला है और वातकारक नहीं है।

कारवल्ली स्याद्विशेषादीपनी लघुः। (भा०)

करेली विशेषकर दीपन और हलकी है।

मदनपाल में इसे कामलाघ्नी तथा केयदेव में वातहारक लिखा है। यह अवृष्य, रक्तपित्त नाशक, कृमि, पांडु तथा व्रणनाशक और कास श्वास, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श और ज्वर नाश करने वाली है।

करेल्लु, कारेल्लु–[मरा०] तिल। तिल्ली।

करेवर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शिलारस। तुरुष्क।

करेश लांगणिए–[ता०] भँगरा। भँगरैया।

करै अम्कौले गिडा–[कना०] काला ढेरा।

करैत–संज्ञा पुं० [हिं० कारा, काला] काला फनदार साँप जो बहुत विषैला होता है।

करैर का तेल–संज्ञा पुं० करैल का तेल।

करैल–संज्ञा स्त्री० [हिं० कारा, काला] (१) एक प्रकार की काली मिट्टी जो प्रायः तालों के किनारे मिलती है। (२) वह जमीन जहाँ की मिट्टी करैल वा काली हो।

संज्ञा पुं० [सं० करीर] (१) बाँस का नरम कल्ला। (२) डोम कौआ।

[बं०] Dendrocalamus strictus, *Nees.*

करैला–संज्ञा पुं० दे० "करेला"।

करैली–संज्ञा स्त्री० (१) कचिला मिट्टी। दे० "करेली"

करैलो–[गु०] करेला।

करैली मिट्टी–संज्ञा स्त्री० दे० "करैल"।

करो–[?] ककरोहन। वथुआ। (२) सफ़ेद सिरस (३) गुटगुटी। पटोल। परवर।

करोंझा–[मरा०] अजमोदा। राँधनी।

करोंटा–[मरा०] बड़ा गोखरू।

करोद–[फ़ा०] दे० "करूद" ।

करोदा–संज्ञा पुं० दे० "करौंदा" ।

करोद्वेजन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] काला सरसों । कृष्ण सर्षप । वै० निघ० ।

करोनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० करोना] पके हुए दूध वा दही का वह अंश जो बरतन में चिपका रह जाता है और खुरचने से निकलता है । खुरचन नाम की मिठाई ।

करोनी–संज्ञा स्त्री० [देश० चुनार] एक क्षुप जो प्रायः २-४ फुट ऊँचा होता है और गंगा आदि नदियों के कूलों पर एवं आर्द्र भूमि में बहुतायत से पाया जाता है । करोनी गरमी में सुख मानती है । अतएव ज्येष्ठ वैसाख में यह प्रचुर मात्रा में एवं खूब हरी भरी देखने में आती है और यही इसके फूलने फलने का भी समय है । इसका कांड सीधा, कर्कश (Scabnous) और गहरे रंग के धब्बों से व्याप्त होता है । शाखायें प्रायः टेढ़ी चलती हैं । और उन पर भी बैगनी रंग के धब्बे दृग्गोचर होते हैं । पत्ते एकांतर, सवृन्त, हृदयाकार वा वृक्काकार, कटावयुक्त, त्रिशिरायुक्त, तरंगायित, कर्कश, लगभग ४ इंच व्यास के और देखने में ककड़ी के पत्ते की तरह मालूम पड़ते हैं । वृन्त गोल, कर्कश और पत्रवत् दीर्घ होता है, पत्तियों के ऊपर हलके बैगनी रंग की रेखायें होती हैं और उन पर बैगनी धब्बे भी होते हैं । फूल शाखांत पर वा ऊपर के कक्षों में आते हैं । इनमें नर पुष्प गुच्छ क्षुद्र वृंतयुक्त और नारी पुष्प प्रायः वृंतशून्य एवं एकांतिक होते हैं । फल ऊर्ध्व अंडाकार ½ इंच लंबा और तीक्ष्ण एवं दृढ़ कंटकावृत तथा द्विकोषयुक्त होता है । प्रत्येक कोष में कड़े अन्तः त्वक् के भीतर एक बीज होता है । इसके फलको तोता इसकी छाँह में बैठ कर कुतरा करता है । फल गुच्छों में लगते हैं । सूखने पर फल और काँटा बहुत चिमटा हो जाते हैं । इसकी जड़ पृथ्वी में टेढ़ी घुसी हुई होती है ।

पर्य्या०–अरिष्ट ! (इं० मे० प्ला०), शंख पुष्पी ! शांखिनी ! (डीमक)—सं० ।

अन्वर्थ देशी गुणप्रकाशिका संज्ञाएँ—

कुथिया, रुहेला, (इटावा), करोनी, (चुनार, काशी) किरकिचिया, करोनी (इटावा) शंखाहुली ? (डी०), छोटा गोखुरू ! (इं० मे० प्लां०, इं० ड्रू० इं० –हिं० । शङ्केश्वर-बम्ब०, मरा० । बोन ओकरा-बं० । गोखरू कलाँ १–प०, सिंध । मरलुभट्ट, ता० । वेरनेल नेप-ते० । कडवलमर-कना० । हसक, हमज़ुल् अमीर-अ० । खारे हसक- फ़ा० । ख़ारे सूहक- (शीराज़) । दरद- (इसफहान) । Xanthium Strumarium, *Linn*; X. Indicum, *Roxb.* –ले० । ब्राड लीव्ह बर-वीड Broad leaved Bur-weed –अं० । लैम्पार्डी Lampourde –फ्रां० । Spitzklette -जर० ।

वक्तव्य

उपर्युक्त कुथिया और रुहेला संज्ञाएँ इसके कुथुआ वा रोहुआ आदि नेत्ररोगों में व्यवहृत एवं उपकारी होने की ओर संकेत करती है । 'हरद' संज्ञा से यह ज्ञात होता है, कि इससे हरिद्रावत् रंग प्राप्त होता है, जिसका उल्लेख दीसकूरीदूस यूनानी ने भी किया है । इसके लेटिन नाम से भी यही निष्कर्ष निकलता है । लेटिन 'ष्ट्रूमेरियम' संज्ञा से इसका कंठमाला में उपकारी होना सिद्ध होता है ।

यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि आयुर्वेद में उक्त वनस्पति का उल्लेख आया है वा नहीं और यदि उल्लेख आया है तो किस नाम से आया है । इसकी डीमक द्वारा दी हुई 'शांखिनी" एवं "शंखपुष्पी" प्रभृति संस्कृत संज्ञाएँ अभी निर्विवाद नहीं कही जा सकतीं । हकीमों के चिकित्सा ग्रंथों में उल्लिखित 'ख़ारे-सुहूक' वा 'हसक' प्रभृति संज्ञाएँ इसी वनस्पति की हैं, ऐसा निश्चित होता है ।

यूनानी हकीम दीसकूरीदूसने उक्त वनस्पति का विशदवर्णन अपने ग्रंथ में किया है । भारतीय ओषधियों के सम्बन्ध में लिखे हुये आंग्ल भाषा के ग्रथों में से फार्माकोग्राफिया इंडिका, इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स, इंडियन मेटीरिया मेडिका और इंडिजिनस ड्रग्स आफ इंडिया प्रभृति ग्रंथों में इसका सविस्तरोल्लेख मिलता है ।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में इसका पता न होने पर भी, यहाँ की देहाती एवं जंगली जनता इससे भलीभाँति परिचित है, ऐसा प्रतीत होता है। देहाती लोग इसके विविध अंगों का नाना रोगों में सफल प्रयोग करते हैं। उनके प्रयोगों को बड़े परिश्रम के साथ संग्रह करके और उक्त रोगों में बार-बार उनकी परीक्षा करने के उपरान्त उपयोगी सिद्ध होने पर मैंने उन्हें यहाँ देने का साहस किया है।

सेवती वर्ग

(*N. O. Compositae.*)

उत्पत्तिस्थान—लंका और भारत के समस्त उष्णप्रधान प्रदेश (साधारणतः घरों के समीप) और पश्चिम हिमालय पर ५००० फुट की ऊँचाई तक एवं युक्तप्रांत के चुनार, काशी, इटावा आदि प्रदेश और यूरोप के जर्मनी और रूस आदि प्रदेश में यह प्रचुरता के साथ उपजती है।

रासायनिक संघटन—फल में ३८०६% वसा, ५०२% भस्म, ३६०६% एल्ब्युमिनाइड्स तथा शर्करा, राल, सैन्द्रियकअम्ल (OxalicAcid) और डेटिसिन (Datiscin) से सम्बन्धित जैन्थोष्ट्रूमेरीन (Xantho strumarin) नामक एक ग्ल्युकोसाइड आदि घटक पाये जाते हैं।

औषधार्थ व्यवहार—क्वाथ, चूर्ण, वटी द्रव, प्रभृति।

गुणधर्म तथा उपयोग

द्रव्यगुण शास्त्र के मुसलमान लेखकों ने 'हसक' शब्द के अंतर्गत यह लिखा है—"हसक अर्बुद में उपकारी" नेत्राभिष्यंद निवारक तथा वृक्क एवं मूत्र रोगों में मूत्रल रूप से उपकारी है और शूल रोगों में भी लाभकारी है। इसे कामोद्दीपक भी बतलाया जाता है।

हिन्दू लोग इसके समग्र क्षुप को अत्यन्त स्वेदक शांतिदायक और चिरकालानुबंधी विषम ज्वरों में बहुत गुणकारी मानते हैं। प्रायः इसका काढ़ा व्यवहार किया जाता है। (सखाराम अर्जुन)

लारीरो (Loureiro) के कथनानुसार इसके बीज दोषों को तरलीभूत करते और प्रदाह जन्य शोथों को विलीन करते हैं। अमेरिका और आष्ट्रेलिया में यह देखा गया है कि यह चरने वाले पशुओं और शूकरादि के लिये घातक सिद्ध हुई है। उक्त औषधि विषयक नव्य परिशोधों से यह ज्ञात हुआ है कि, 'जेब्रोरैंडी' की भाँति यह स्वेदकारक, लाला स्रावकारी और किंचित् मूत्रकारी है। इसकी सूखी पत्तो की मात्रा ५ रत्ती है।

जर्मनी के कुछ भागों में यह प्रायः जूड़ी बुखार (Agne) की औषधि रूप से प्रख्यात है। रूस में यह जल-संत्रास रोग प्रतिषेधक मानी जाती है। पंजाब में इसे मसूररिका रोग में (Smell-pox)में व्यवहृत करते हैं (Stewart) फा० इं० २ भा०।

बेडेन पावेल (Mr. Baden powell) के कथनानुसार इसकी जड़ तिक्त वल्य और कर्कट (Caucer) एवं गलगंड आदि रोगों (Stu-mous diseases) में उपकारी है। इसका कँटीलाफल शीतल और स्निग्धगुण विशिष्ट स्वीकार किया जाता है तथा इसे मसूरिका रोग में देते हैं। (Stewart)

दक्षिण भारत में अर्द्धावभेदक रोगोपशमनार्थ इसके कँटीले फल को कान में लगाते हैं। अथवा इसके फल के गुच्छे को कान की बाली में लटकाते हैं।

यह उत्तम मूत्रल और मूत्ररोगों में परमोपकारी है। इससे मूत्राशयगत क्षोभ कम हो जाता है।

पुरातन सूजाक (Gleet) और श्वेतप्रदर में इसका शीतकषाय वा चूर्ण उपकारी होता है। रक्तप्रदर में भी इसका उपयोग किया जाता है। (वैट)

इसके फल किंचित् (Narcotic) होते हैं। (वैट)

करोनीके कतिपय ग्रामीण एवं स्वकृत परीक्षित प्रयोग

(१) इसकी हरी पत्ती १ तो० और काली-मिर्च २-३ दाने मिलाकर जल के साथ पीसकर प्रातःकाल पीने से रक्तार्श दूर होता है।

(२) इसकी पत्ती अथवा पंचांग लेकर बारीक पीस लें। इसे पकाकर फोड़े पर बाँधने से वे बैठ जाते हैं।

(३) फल को जल के साथ घिसकर अंजन करने से आँखों का रोहा नष्ट होता है

(४) इसके सूखे कँटीले फलों को लेकर जौ के साथ ओखली में छाँटें। जब उनके ऊपर के काँटे दूर हो जायँ तब उनको (कंटक शून्य फल) पानी में डाल देवें मुलायम होने पर इन्हें सूत में पिरोकर माला बना रोहाक्रांत शिशुओं के गले में धारण कराने से उनके आँखों के रोहे सूख जाते हैं।

(५) रोहे का स्वकृत उत्कृष्ट प्रयोग—

करोनी का फल १ तो०, कपूर १ मा०, रसकपूर २ रत्ती, छोटी इलायची के दाने २ मा०, हलदी २ मा०, सोये के बीज १ मा०—इनको बारीक चूर्ण कर गुलाबजल में खूब मर्दन कर टिकियाँ बना लेवें। आवश्यकतानुसार १ टिकिया लेकर गुलाबजल में घिसकर आँख में अंजन करें। दिन में केवल २-३ बार के प्रयोग से दो-तीन दिन में ही बिना किसी तकलीफ़ के रोहे आराम हो जाते हैं। और रोगी सुखानुभव करता है।

करोई-संज्ञा स्त्री० [देश०, बम्ब०] Strobilanthes callosus, *Nees.* करवी। मरोदना।

क़रोक़स, क़राक़ूस, करोनस, क़र्फ़ियूनूस-[यू०] केसर। ज़ाफ़रान।

करोकुरना-[?] मेंहदी का फूल।

करोट-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० करोटी] खोपड़े की हड्डी। खोपड़ा। रा० नि० व० १८। Cranium.

करोटक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का साँप।

करोटन-संज्ञा पुं० [अं० क्रोटन Croton] (१) वनस्पतियों की एक जाति जिसके अंतर्गत अनेक वृक्ष और पौधे होते हैं। इस जाति के सभी पौधों में मंजरी लगती है और फलों में तीन या छः बीज निकलते हैं। इस जाति के कई पेड़ औषधि के काम में भी आते हैं। रेंडी और जमालगोटा इसी जाति के पेड़ हैं। (२) एक प्रकार के पौधे जो अपने रङ्ग बिरंग और विलक्षण आकार के पत्तों के लिए लगाए जाते हैं।

करोटनिस ऑलियम्-[ले० Crotonis Oleum] जमालगोटे का तेल। रोगन जमालगोटा। जयपाल तेल।

करोटि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खोपड़ी। शिरोस्थि।

करोटियो-[गु०] Cardiospermum halicaca bum *Linn.* हब्बुल क़लक़ुल। कारवी। लताफट्करी।

करोटिका, करोटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खोपड़ी। शिरोऽस्थि। खोपड़ी की हड्डी। करोटि।

करोटिगुहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Cranial cavity) अ० शा०।

करोटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खोपड़ी। Cranium.

करोट्टि-[जर० Karotti] गाजर।

करोट्टि कल्टिवी-[फ्रां० Carotte Cultive] गाजर।

करोट्युल्लोच-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Epicranial aponeurosis.) अ० शा०।

करोड़कंद-संज्ञा पुं० [हिं० करोड़=करोटि सं० कंद] सूरन।

करोडिओ-[गु०] करोटिओ। कानफटा। कानफुटी। कर्णस्फोटा। पारावतपदी।

करतनः-[फ्रा०] दे० "करूतनः"।

करोत्तम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मणिबंध। हे० च०।

करोत्तानिनी पेशी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथ को चित करने वाली एक पेशी। (Supinator muscle) प्र० शा०। अ० शा०।

करोदक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हाथ में रखा या पड़ा हुआ पानी। हस्त धृत जल।

करोफ़स-[यू०] अफ़्रोट।

करोभक-[?] सफ़ेद कलबा।

करोमानः-[अ०]

करोमोंगा-[ते०] कमरख। कर्मरंग।

करोयः-[फ्रा०, द०,] करोया।

करोया-संज्ञा पुं० [मुअ०] एक प्रकार का स्याह जीरा। कृष्णजीरक भेद। विलायती काला जीरा। दे० "कुरोबा"।

करोरक़ंद–[देश०] सूरन ।

करोरा–[सिरि०] (१) मोती की सीपी । (२) भूतांकुश ।

करोरागुमड़ी–[?] कद्दू ।

क़रोल, करोलियून–[यू० क़रबालियून का मुअ०] (१) मूंगा । मरजान । (२) मूंगे की जड़ । बुस्सद ।

करोला–संज्ञा पुं० भालू । रीछ । –डिं० ।

करौंजी–संज्ञा स्त्री० [सं० कालाजाजी] कलौंजी । मंगरैला ।

करौंदा–संज्ञा पुं० [सं० करमर्दः, पा० करमद, पुं० हिं० करवँद]

पर्य्या०—करमर्दकं, आविग्नं, सुपेणं, पाणिमर्दकं, कराम्लं, करमर्द, कृष्णपाक फलं, (ध० नि०), करमर्दः, सुपेणः, कराम्लः, करमर्दकः, आविग्नः, पाणिमर्दः, कृष्णपाकफलः (रा० नि०) वनेचुद्रा, अविघ्न, करामर्द, कृष्णपाक, पाकफल, कृष्णफल, पाककृष्ण, फल, कृष्णफलपाक, पाक कृष्ण, फल कृष्ण, वनालय, वनालक, कणचूक, बोल, बश, कराम्लक, कण्टकी, अविघ्न, सुपुष्प, दृढकण्टक, जातिपुष्प, क्षीरफल, डिम्डिम, गुच्छी, क्षीरी, बहुदल (शा० नि० भू०) करमर्दः, करमर्दकः, करमर्दका, करांबुक –सं० । करौंदा, करोंदा, तिमुखिया, करोना, गरिंगा, गोठो –हिं० । बैंची, तैर, करभिया, करंजा करमूचा- –बं० । कैरिसा कैरण्डास Carissa Carandas; *Linn* कैपेरिस कोरण्डास Capparis Corundas –ले० । बेंगाल करंट्स Bengal Currants –अं० । कलक, पेरिङ् कलक (-प) फलम् –ता० । पेद्दकलिवि-पण्डु, कलिवि-काय, वोक –ते० । कोरिंडा, करेकाय, हग्गाजिंगे –कना० । करवन्दे, करिजिगे –मरा०, कना० तिमुखिया, करमूदा, करमदाँ, करौंदो, करंदो, करमर्द, तिंबरन –गु० । कलक –मद० । तिमुखिया –मरा० । उ० प० प्रां० । गोठो –म० प्र० । करिंदा, करांदा, करवंद –बम्ब० । करवंदा, कोरंदा –मरा० । केंदा केरी, केरेंदो, कुखी –उड़ि० ।

शतावरी वर्ग

(*N. O. Apocynaceæ.*)

उत्पत्ति स्थान—करौंदे के वृक्ष हिंदुस्तान के अनेक भागों में विशेषतः बंगाल एवं दक्षिण में आप से आप उगते हैं । पंजाब और गुजरात में इसे बाड़ों के ऊपर लगाते हैं । यह कांगड़ा और कच्छ के जंगलों में भी होता है । सारांश यह सर्वत्र भारतवर्ष में शुष्क, बलुई, एवं पथरीली भूमि में उपजता है ।

वानस्पतिक वर्णन—एक बड़ा कंटीला झाड़, जिसकी पत्तियाँ नीबू की तरह की, पर छोटी २ होती हैं । पत्तियाँ क्षुद्र वृंत युक्त (Sub-sessile) १॥ इञ्च से ३ इञ्च तक लम्बी और १ से १॥ इञ्च तक चौड़ी, आधार की ओर वृत्ताकार वा (Retuse) और रोमश कुंठिताग्र होती हैं । प्रकांड ३-४ फुट ऊँचा और घेरा दो फुट होता है । इसमें द्विविभक्त, परिविस्तृत, अनेक दृढ़ शाखाएँ होती हैं । प्रत्येक अक्षकोण वा ग्रंथि (Node) पर, कभी-कभी १ से २ इञ्च तक दीर्घ सामान्य वा (Forked) युग्म कंटक होते हैं । डालियों को छीलने से एक प्रकार का लासा निकलता है । लघु शाखायें कुछ लाल भूरे रंग की साफ़ और काँटेदार होती हैं । इसकी छाल आध इञ्च मोटी भूरी या सफेद पीले रंग के छींटों से युक्त होती है । इसमें दस से बीस तक फूलों के गुच्छे टहनियों के अंत में लगते हैं । फूल जूही की तरह के सफेद होते हैं । जिनमें भीनी-भीनी गंध होती है । खिलने के उपरांत इसकी पंखड़ियों के बाहरी सिरों पर ऊपर से लाल झाँई रहती है और भीतर लंबे-लंबे रक्त वर्ण के तन्तु होते हैं । दूर से फूल का रंग सफेद ही नजर आता है । इसलिए सफेद लिखते हैं । पूस से चैत तक इसमें फूल लगते हैं और बरसात में फल आते हैं । वर्षान्त में ये फल परिपक्व होते हैं फल आध इञ्च से १ इञ्च तक दीर्घ छोटे बेर के बराबर (Ellipsoid) और बहुत सुन्दर होते हैं । प्रथम ये हरित वर्ण के, फिर लाल और अंत में काले पड़ जाते हैं । ये मसृण होते हैं । जिनमें चार वा तदधिक बीज होते हैं । रंग के

विचार से करौंदा तीन प्रकार का होता है। रक्त, श्वेत और कृष्ण। एक सफेद नोकों पर लाली लिये अत्यन्त मनोहर होता है। दूसरा कच्चा, हरा आधा लाल और पकने पर काला पड़ जाता है। कच्चे पर इनका कुछ भाग खूब सफ़ेद और कुछ हलका और गहरा गुलाबी होता है।

रासायनिक संघटन—इसकी जड़ में एक स्थिर तैल, उड़नशील तैल, एक पीताभ श्याम वर्ण का राल, और एक क्षारोद होता है।

औषधार्थ व्यवहार—वल्कल, पत्र, फल इत्यादि।

औषध-निर्माण—फल का शर्बत।

मात्रा—१ से २ ड्राम।

फल-स्वरस, मात्रा—३० से ६० बूंद।

पत्र-क्वाथ मात्रा—१ से २ आउन्स।

गुण-धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

अम्लं तृष्णापहं रुच्यं पित्तकृत्करमर्दकम्।
पक्वं च मधुरं शीतं रक्तपित्तहरं मतम्॥

(ध० नि० ५ व०)

कच्चा करौंदा—पिपासाहर, रुचिकारक और पित्तकारक है और पका करौंदा मधुर, शीतल और रक्तपित्त नाशक है।

करमर्दः सतिक्ताम्लो बालो दीपनदाहकः।
पक्वस्त्रिदोष शमनोऽरुचिघ्नो विषनाशनः॥

(रा० नि० ११ व०)

बाल—कच्चा करौंदा तिक्त, अम्ल, दीपन और दाहक है। पका करौंदा त्रिदोष नाशक, अरुचि, नाशक और विष नाशक है।

करमर्दद्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषापहम्।
उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्त कफ प्रदम्॥
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघु पित्त समीरजित्।

(भा०)

दोनों प्रकार के करौंदे (करौंदा, करौंदी) अपक्व दशा में अर्थात् कच्चे खट्टे, भारी, तृषा नाशक, गरम, रुचिकारी हैं। तथा रक्त पित्तकारक एवं कफकारक हैं। पके हुये मीठे, रुचिकारी, हलके तथा पित्त एवं वायुनाशक हैं।

करमर्दं पिपासाघ्नं मम्लं रुच्यं च पित्तकृत्।

(राज०)

करौंदा—प्यास को दूर करनेवाला, खट्टा, रुचिकारी, और पित्तकारक है।

करमर्द फलञ्चाम तिक्तञ्चाग्नि प्रदीपकं।
गुरु पित्तकरं ग्राहि चाम्लमुष्णं रुचिप्रदं॥
रक्तपित्तं कफञ्चैव वर्द्धयेत्तृड्विनाशकम्।
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघुशीतञ्च पित्तहं॥
रक्तपित्तं त्रिदोषञ्च विषं वातञ्चनाशयेत्।
तच्छुष्कं पक्व सदृशं गुणैर्ज्ञेयं विचक्षणैः॥
अत्यम्लस्य गुणाश्चैव ज्ञेया आमकरम्लवत्।

(वै० निघ०)

दोनों प्रकार के कच्चे करौंदे—कड़वे, अग्नि प्रदीपक, भारी, पित्तकारक, ग्राही—मलरोधक, खट्टे, गरम, रुचि प्रद, रक्तपित्तकारक, कफजनक, और तृषानाशक हैं। वही (दोनों प्रकार के) पके हुये करौंदे मधुर, रुचिकारी, हलके, शीतल तथा पित्त, रक्तपित्त, त्रिदोष, विष और वायुनाशक हैं। सूखे करौंदे के गुण पके करौंदे के समान और अम्ल करौंदे के गुण कच्चे के समान जानना चाहिये।

करमर्दफलं चार्द्रमम्लं पित्त कफ प्रदम्।
भेदनं चोष्णवीर्य्यं च वातप्रशमनं गुरुः॥
पक्वं वृक्केऽल्पपित्ते च तन्मूलं कृमिनुत्सरम्।

(शो० नि०)

कच्चा करौंदा—खट्टा, पित्तजनक, कफकारक, भेदक, उष्णवीर्य, वातनिवारक, और भारी है। पका करौंदा पित्तनाशक है। इसकी जड़ कृमि नाशक और सर-दस्तावर है।

सुश्रुत—के अनुसार यह रक्तपित्तनाशक, शुक्र दोषनाशक, सर्व प्रमेहनाशक और शोथघ्न है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—शीतल और तर। किसी २ के मत से शीतल एवं रूक्ष तथा किसी के मत से उष्ण है। वैद्यों के समीप अपक्व उष्ण और पक्व शीतल है।

हानिकर्त्ता—यह आध्मानकारक, दीर्घपाकी एवं कफकारक है। फुप्फुस एवं वीर्य तथा रक्तातिसारी को हानिकर है।

दर्पघ्न—लवण, गुड़, तथा आर्द्रक। किसी किसी ने लवण, शर्करा और कालीमिर्च लिखा है (बु० मु०):

गुण, कर्म, प्रयोग—पका करौंदा भूख बढ़ाता है, पित्त की उग्रता का निवारण करता, प्यास बुझाता और अतिसार विशेषतः पित्तातिसार को बहुत लाभ पहुँचाता है। कच्चा करौंदा गुरु और आध्मानकारक है। यह पेट को गुंग कर देता और आम श्लेष्मा उत्पन्न करता है। —(बु० मु०) इसका अचार पाचक है। एवं यह क्षुधा की वृद्धि करता है। परन्तु यह वाह को निर्बल करता, कामावसाय उत्पन्न करता है। जंगली करौंदे के पत्ते ६ माशा, (युवा पुरुष को १ तोला तक) पीसकर दही के तोड़ के साथ पिलायें। इसी प्रकार तीन दिन तक दें। इससे सदा के लिए मृगी रोग बिलकुल जाता रहता है। (ख० अ०)।

ज़ख़ीरहे अकबरशाही के अनुसार इसकी खासियत अंगूर और फ़ालसे के समीप है। यह हलका और मधुर है तथा वायु एवं पित्त का नाश करता है। खट-मिट्ठा भूख लगाता है और वायु, पित्त कफ इन तीनों दोषों एवं कफ वमन और उदरशूल का निवारण करता है।

बुस्तान मुफ़रिदात के अनुसार यह ज्वरांशहर और दीर्घपाकी है। सूखे करौंदे को तर कर सेवन करने से भी इसमें पूर्वोक्त गुण पाये जाते हैं। भारतनिवासी इसका अचार और मुरब्बा बनाते हैं और खटाई की जगह कतिपय आहारों में भी इसे सम्मिलित करते हैं। इसका मुरब्बा हृदय उल्लास कारी है तथा इसका अचार आहार पाचक एवं रुत्कारक है, इसकी अधिकता रात को हानिकारक है।

वैद्यों के अनुसार कच्चा करौंदा भारी एवं ग्राही है तथा यह कफ की वृद्धि करता है। पका करौंदा सुबुक है एवं भूख बढ़ाता और वायु एवं पित्त का नाश करता है। यदि सूखे करौंदे को जल में भिगोयें, तो उसमें कच्चे करौंदे की खासियत पैदा हो जाती है। कतिपय वैद्यों के निकट पक्वापक्व दोनों भारी हैं और यदि गरमी से बूँद-बूँद पेशाब आनेका रोग हो, तो उसे दूर करते हैं और पित्त का उत्सर्ग करते हैं। कच्चा खाँसी, वायु एवं कफ उत्पन्न करता और बुद्धि को दीप्त करता है। पके फल कम हानिप्रद होते हैं। इसके चूर्ण की फँकी देने से उदर शूल निवृत्त होता है। इसका लेप करने से मक्खियाँ नहीं बैठतीं। इसकी चटनी वा तरकारी पकाकर खाने से मसूढ़ों के रोग आराम होते हैं। इसके कच्चे फल का रस लगाने से शरीर की खाल में चिमचिमाहट लग जाती है और कभी कभी छाले हो जाते हैं। सतत ज्वर में इसके पत्तों का क्वाथ अत्यंत गुणकारी है। इसके पत्तों के रसमें मधु मिला पिलाने से शुष्क कास मिटता है। पहले दिन प्रातः काल एक तोला इसके पत्तों का रस पिलादें तदुपरांत १-१ तोला स्वरस प्रति दिन बढ़ाते हुए १० तोले तक बढ़ा देवें। इस प्रकार सदैव प्रातः काल पिलाने से जलोदर नष्ट होता है। पत्ते पित्त उत्पन्न करते हैं। इसके वृक्ष की छाल मूत्रल है। करौंदे के बीजों का तेल मर्दन करना हाथ, पाँव के फटने को लाभकारी है। —ख० अ०।

डीमक—

नव्य मतानुसार—स्क़र्बीहर (Antiscorbutic) एवं अम्ल गुण के कारण देशवासी एवं यूरोप निवासी दोनों इसके फल को प्रायः उपयोग करते है। इसके कच्चे फल का उत्तम मुरब्बा (Pickle) बनता है और पकने पर यह उत्कृष्ट अम्ल फल है। यूरोपीय लोग इसकी जेली भी प्रस्तुत करते हैं, जो सर्वथा खाल किशमिश (Redcurranf) द्वारा निर्मित जेलीवत् होती है। उड़ीसा में ज्वर-विकार के प्रारंभ होते ही इसकी पत्तियों का काढ़ा बहुत काम में आता है। इसकी जड़ चरपरी एवं कुछ-कुछ कड़ुई होती है और इसे नीबू के रस एवं कपूर में फेंट कर खाज पर लगाते हैं, जिससे खुजली कम होती है और मक्खियाँ नहीं बैठतीं।

फा० इं० २ भ० पृ० ४१६-४२०।

नादकर्णी—फल, अर्थात् करौंदा आमाशय बलप्रद (Stomachic), स्कर्वीहर (Antiscorbutic) शैत्यजनक (Refrigerant) और पाचक है। कच्चा फल संग्राही एवं स्कर्वीहर है, पित्तोल्वणता में शर्करा एवं एला मिलित पक्व करौंदे का स्वरस शैत्यप्रद पेय है और यह पित्तका निवारण करता है। ज्वरों में इसके पत्तों का काढ़ा शैत्यजनक (Refrigrant) है। इं० मे० मे० पृ० १६३।

करौंदे खट्टे होते हैं और अचार तथा चटनी के काम में आते हैं। पंजाब में करौंदे के पेड़ से लाख भी निकलती है। फल रंगों में भी पड़ता है। डालियों को छीलने से एक प्रकार का लासा निकलता है। कच्चा फल मलरोधक होता है। और पका शीतल, पित्तनाशक और रक्तशोधक होता है। इसकी लकड़ी ईंधन के काम में आती है। पर दक्षिण में इसके कंघे और कलछुले भी बनते हैं। करौंदे की झाड़ी टट्टी के लिये भी लगाई जाती है। –हिं० उ० सा०।

चोपरा के मत से यह शीतादि रोगों को नष्ट करता है। इसमें सैलिसिलिकाम्ल और उपक्षार पाया जाता है।

इसका खटमीठा फल पेशाब की रुकावट को या बूँद-बूँद पेशाब आने की शिकायत को दूर करता है।

लगातार आने वाले ज्वर में इसके पत्तों का काढ़ा देने से बहुत उपकार होता है। इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाने से सूखी खाँसी मिटती है।

करौंदा के बीजों का रोगन मलने से हाथ पैर फटने में बड़ा उपकार होता है।

(२) करौंदे की एक जाति। छोटा करौंदा करौंदी। वि० दे० "करौंदी"।

(३) कान के पास की गिलटी।

(४) एक प्रकार का करौंदा जो द्रुलहुल वर्ग का पौधा है और बंगाल तथा दक्षिण भारत में उत्पन्न होता है। इसमें करमर्दक की अपेक्षा वृहदाकार काले रंग का फल लगता है जो खाद्य के काम आता है। पका फल अम्ल एवं संग्राही (Astringent) होता है और आमाशय बल-प्रद रूप से उपयोग में आता है।

पर्य्या०—करमर्द –सं०। करमचा –बं०। Capparis Diffusa.

–इं० मे० मे० पृ० १६३।

करौंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० करौंदा] एक छोटी कटीली झाड़ी जो जंगलों में होती है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी स्थानोंमें होती है। पर बम्बई, बेलगांव, हुगली और पंजाब के शुष्क जंगलों में बहुतायत से होती है। इसमें मटर के बराबर छोटे छोटे (करौंदे से छोटे) फल लगते हैं। अस्तु, कहा है—

"तस्माल्लघुफला या तु ज्ञेया करमर्दिका"

(भा०)

ये जाड़े के दिनों में पककर खूब काले हो जाते हैं, पकने पर इन फलों का स्वाद मीठा होता है काँगड़े में इसके वृक्ष जब बहुत प्राचीन हो जाते हैं। तब उनकी लकड़ी काली पड़ जाती है। और उसमें सुगंधि आने लगती है। इसको ऊद यानी अगर के नाम से अधिक मूल्य में विक्रय करते हैं।

पर्य्या०—करमर्दिका –(भा०) करमर्दी (रत्ना०) अम्लफला –सं०। करौंदो, करौंदी –हिं०। लघुकरवंदी –मरा०। केरिस स्पाइनेरम् (Carissa spinarum, *A. Dc.*) –ले०। शीरफेना।

गुणधर्मादि

करौंदे की तरह। भावप्रकाश में लिखा है—

"करमर्दद्वयं……।" दे० "करौंदा"।

इसके फल की पूड़ियाँ बनाकर खाते हैं। इसकी लकड़ी का काढ़ा पिलाने से पित्त बढ़ताहै। इसका चूर्ण दूध के साथ फंकाने से शक्ति प्राप्त होती है। (ख़० अ०)।

इनसाइक्लोपीडिया मुंडेरिका के मतानुसार छोटे नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसकी जड़ को दूसरी औषधियों के साथ आमवात रोग में व्यवहृत करते हैं। इसकी जड़ पीसकर कृमि पड़े हुये घाव में भरते हैं। विरेचक औषधियों के साथ भी इसका उपयोग किया जाता है। अधिक मात्रा में इसका अंतःप्रयोग कभी नहीं करना

चाहिये। क्योंकि इससे अत्यन्त दस्त आने प्रारम्भ हो जाते हैं। जिससे कभी-कभी मनुष्य की जान भी खतरे में पड़ जाती है। इसकी जड़ को पानी में पीसकर साँप के बिल में डालने से साँप भाग जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जिस मैदान के आस-पास इसकी बाड़ लगी होती है उसमें साँप प्रायः नहीं आते। कदाचित् उक्त विश्वास के कारण ही सर्पदंश में इसकी जड़ को पीसकर पानी में मिलाकर हृदय के नीचे-नीचे के सभी भागों पर मालिश किया जाता है।

करौंदिया–वि० [हिं० करौंदा] करौंदे के रंग का।

संज्ञा पुं० एक रंग जो बहुत हलकी स्याही लिए हुये लाल होता है। गुलाबी से इसमें थोड़ा ही अंतर जान पड़ता है।

करौंदी–संज्ञा स्त्री० [हिं० करौंदा] (१) जंगली करौंदा। छोटा करौंदा। (२) एक प्रकार की दाख।

करौडामर–[ता०] काला डामर।

करौत–संज्ञा पुं० [सं० करपत्र] [स्त्री० करौती] लकड़ी चीरने का औज़ार। आरा। करोत।

करौता–संज्ञा पुं० दे० "करौत"।

संज्ञा पुं० [हिं० कारा, काला] करैल मिट्टी।

संज्ञा पुं० [हिं० करवा] काँच का बड़ा बरतन। क़रावा। बड़ी शीशी।

करौला–संज्ञा पुं० [देश०] कड़वी तरोई।

संज्ञा पुं० [देश० बं०] करेला।

करौली–संज्ञा स्त्री० [सं० करवाली] एक प्रकार की सीधी छुरी जिसमें मूँठ लगी रहती है और जो भोंकने के काम में आती है।

क़र्अ़–[अ०] (१) धात्वर्थ ठोंकवा। थपकना। तिब्बी वैद्यकीय परिभाषा में रोग ज्ञान के लिये किसी अंग को उँगली आदि से ठोंकना। जैसे, सीना और उदर इत्यादि को उँगली से ठोंक कर उनकी आवाज़ से उनकी आभ्यंतरिक दशा का पता लगाते हैं। ठेपन। टकोरना। टंकोरना। परकशन Percussion। (२) कद्दू। लौआ।

क़र्अ़ः–[अ] (१) थपक। धमक। ठोंकना। (२) नाड़ी (नब्ज़) की एक गति।

क़र्अ़ कीविया–[सिरि०] हूक़ारीक़ून।

क़र्अ़वी–[तु०] एक शिकारी पक्षी।

क़र्ईलानः–(१) [गुवरैला]।

क़र्उ़ल्मुर्र–[अ०] तितलौकी। कद्दूतल्ख़।

कर्कंड–[?] झड़बेरी। झाड़ीबेर।

कर्कंद–[फ़ा०] एक प्रकार का लाल पत्थर वा लाल वा पीकी।

कर्कंदु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० "कर्कन्दु"

कर्कंधू–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] बेर का पेड़ वा फल।

कर्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफ़ेद रंग का घोड़ा। ज० द०। (२) केकड़ा। कुलीरक। (३) दर्पण। शीशा। (४) घड़ा। घट। मे० कद्विक। (५) कँकरोल। कर्कट वृक्ष। (रा० नि० व० ११)। (६) कंक पक्षी। काँक। (७) एक प्रकार की तौल। (८) एक वृक्ष। काकड़ासींगी। (९) कौआ। काक। (१०) शिरोऽवघ्रालन। हे० च०। (११) कंकर। (१२) बेर का पेड़। (१३) बेल का पेड़। (१४) गंधक। वै० निघ० २ भ० ग्रहणीकपाट रस। (१५) अग्नि।

क़र्क़अ़ना–[यू०, सिरि०] केशर। ज़ाफ़रान।

कर्कगुग्गुलु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णयुक्त। कर्ण गुग्गुल (?)

कर्कचरास–[तिनकाबिन] सूरिल। वेदग्याह।

कर्कचिर्भिटिका, कर्कचिर्भिटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] फूट की ककड़ी। चिर्भिटा। कर्कटी भेद। रा० नि० व० ७। (२) छोटी ककड़ी। चिर्भिटी।

कर्कट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कर्कटी, कर्कटा] (१) एक प्रकार का सारस। करकरा। करकरिया। The Numidian crane कर्करेटु। कर्कटि पाखी–(बं०)।

गुण—वातनाशक, शुक्रप्रद और श्रमनाशक। अत्रि० २२ अ०। दे० "करकरा"। (२) स्वनाम ख्यात वृक्ष। काँकरोल (Monordica Cochin chinensis, *Spriy*)।

गुण—इसका फल रुचिकारक, कसेला, अत्यंत दीपन, कफपित्तकारक, ग्राही, आँख को हितकारी, हलका और शीतल है। रा० नि० व० ११। (३)

एक प्रकार की ककड़ी। बालुकी। (४) सेमल का फल। शाल्मली फल। मे० टत्रिक। (५) केकड़ा। कुलीरक। (६) समुद्री केकड़ा। (७) एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। कर्कटक सन्निपात। दे० "कर्कटक" (८) कमल की मोटी जड़। पद्मकंद। भसीड़। जटा०। (९) बेल का पेड़। रस० र० बालचि०। (१०) काठ आमले का पेड़। छोटा आँवला।

पर्य्या०—कर्क, क्षुद्रधात्री, क्षुद्रामलक संज्ञक, कर्कफल। रा०। (११) गोखुरू। गोक्षुर। (१२) काकड़ासींगी। कर्कटशृंग। च० द० ना० व्या० एकादश शतिक महाप्रसारिणीतैल। (१३) लौकी। घीआ। (१४) एक प्रकार का साँप। (१५) एक रोग। Cancer यह अर्बुदजन्य रोग असाध्य होता है। (१६) काँटा। (१७) कील। कीलक।

कर्कटक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कांडभग्न नामक अस्थिभंग का वह भेद जिसमें हड्डी बीच से टूट जाती है और उसके दोनों छोर उभरे हुये गाँठ की भाँति होते हैं। इसका आकार केकड़े (कर्कट) का सा होता है, इसलिये इसे कर्कटक कहते हैं। जैसे—"संमूढ़मुभयतोऽस्थिमध्य भग्नं ग्रंथिरिवोन्नतं कर्कटकम्।" सु० नि० १५ अ०। दे० 'भग्न' (२) तेरह प्रकार के स्थावर कंद विषों में से एक। सु० कल्प २ अ०। दे० "कन्दविष"।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ईख। ऊख। रा० नि० व० १४। (२) केकड़ा। कर्कट। रत्ना०।

पर्य्या०—अपत्यशत्रु (श०), वह्नि, कुटीचर (त्रि०), षोड़शांघ्रो, वह्निश्वर (हे०); कर्कट, कुकीर, कुलीरक, सदंशक, पंकवास, तिर्य्यग्गामी।

गुण—केकड़ा मलमूत्र का निकालने वाला, संग्राही और वातपित्त जीतने वाला है। राज०। दे० "केकड़ा"। (३) एक प्रकारकी लाल ईख। ताम्रेक्षु। वै० निघ० २ भ० वा० व्या० एलादि तैल। (४) एक प्रकार का पक्षी। ककटे। (५) काठ आमला काष्ठामलक। छोटा आँवला। (६) काकड़ासींगी। कर्कटशृंग। भैष० अ० पि० चि० वृहत् क्षुधावती गुड़िका। एक प्रकार सन्निपात ज्वर

कर्कटक सन्निपात–संज्ञापुं० [सं० पुं०] लक्षण–जहाँवात पित्त और कफ-मध्य, वहाँओर अधिकहो, वहाँ अपने २ रूप और शक्ति से जीभ का टेढ़ापन, कठोरता, कंठ का गूँजना, आलस्य, मुख का महावर जैसा रंगा होना, गले में काँटों का पड़ना, कंठ ओठ और तालू का सूखना, अन्तर्दाह, गुदा का निकल आना, वाणी की भ्रष्टता, दृष्टि का रुकना, कफ मिश्रित रुधिर का कठिनता से बार २ थूँकना तंद्रा, श्वास, खाँसी, इनका नित्य प्रति बढ़ना, बुरे २ मनोरथों का उत्पन्न होना, मन में ग्लानि, दोनों पसलियाँ तीर से बिंधी सी हों, कफ खींचने पर भी हृदय से न निकलना, पसलियों में चोट सा लगना, तथा वाणों से पीड़ित और निरन्तर भेदन सा होना इत्यादि लक्षण होते हैं। (योग त०)

कर्कटकास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] केकड़े की हड्डी। कुलीरकास्थि।

कर्कटकनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहरिद्रा। दारुहल्दी।

कर्कटकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकड़ासींगी। कर्कटशृंगी। वा० चि० ३ अ०। (२) केकड़े की स्त्री। केकड़ी। (३) पीतघोषा। (४) दारु हल्दी। दारु हरिद्रा। रा० नि०। नि० शि०।

कर्कट चरण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] केकड़े का पैर कुलीरक पाद। रस० र० बाल-चि०।

कर्कटच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पीतघोषा। पीले फूल की तरोई। वै० निघ०। कड़वी तरोई। कोशातकी। कोशवती। कर्कोटी। नि० शि०।

कर्कटवल्ली–संज्ञा स्त्री [सं० स्त्री०] (१) गजपीपर। गजपिप्पली। (२) शूकशिंबी। केवाँच। कौंछ। (३) अपामार्ग। वै० निघ०।

कर्कट शृङ्गि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकड़ासिङ्गी।

कर्कटशृङ्गिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकड़ा सींगी। कर्कटशृंगी। मद० व० १।

कर्कटशृङ्गी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकड़ा सींगी। रा० नि० व० ६। मद० व० १। भा० पू० १ भ०। (२) बड़ी तरोई। महाघोषा।

कर्कटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकड़ासींगी भैष० बाल-चि० कर्कटादि । (२) एक प्रकार की लता जिसमें करैले की तरह के छोटे–छोटे फल लगते हैं जिनकी तरकारी बनती है । ककोड़ा खेखसा । (३) उग्रगंधा । कराह्वा । नि० शि० ।

कर्कटाख्य, कर्कटाह्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्कटिका लता । ककड़ी की बेल ।

कर्कटाख्य, कर्कटाह्व–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ककड़ी । कर्कटिका । काँकुड़ । (–वं०) । र० मा० । रा० नि० व० ६ । सि० यो० हि० श्वा० चि० द्राक्षालेह । वै० निघ० ज्व० चि० । कुलत्थाद्य घृत । (२) काकड़ासींगी । कर्कट शृंगी । वै० निघ० क्षय चि० लवुशिवगुटी । सु० चि० २ अ० । वा० चि० ४ अ० । भैष० शिलाजतु वटी ।

कर्कटादिलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक अवलेह जो बालरोग में व्यवहृत होता है । योग यह है—काकड़ासींगी, अतीस, सोंठ, धव का फूल, बेल, सुगंधवाला, नागरमोथा और बेर की गिरी, इनका चूर्ण बराबर लेकर शहद के साथ चाटने से ज्वर, अतिसार और दुर्निवार ग्रहणी रोग शीघ्र दूर होता है । रस० र० बाल चि० । भैष० ।

कर्कटा शीर्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सिंगरफ हिंगुल ।

कर्कटास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] केकड़े की हड्डी । कुलीरास्थि ।

कर्कटाह्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बेल का पेड़ । रा० नि० व० ११ ।

कर्कटाह्वचा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकड़ासींगी ।

कर्कटाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकड़ासींगी । कर्कटशृंगी । रा० नि० व० ६ ।

कर्कटि, कर्कटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) ककड़ी । राज० ३ व० । वै० निघ० । भा० म० १ भ० अश्म० चि० । (२) विलायती पेठा । तपुरिया कूष्माण्ड । कौल ।

कर्कटिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारहल्दी । दारुहरिद्रा । रा० नि० व० ६ ।

कर्कटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्कट स्त्री । मादा केकड़ा । केकड़ी । (२) जंगली ककड़ी । वनककटिका । रा० नि० व० २३ । (३) ककड़ी । कर्कटिका लता । रा० नि० व० ७ । हे० च० । (४) बालुकी नाम की एक प्रकार की ककड़ी । एर्वारू । फूट । हला० । (५) बेर का पेड़ । बदरी । मद० व० ५ । (६) घण्टा बदरा । (७) कमल का छत्ता जिसमें से कँवलगट्टे निकलते हैं । पद्म कर्णिका । (८) बेल का कच्चा फल । कोमल श्रीफल । वै० निघ० । (९) बँदाल की लता । देवदाली । घघरबेल । भा० पू० १ भ० गु० व० । (१०) गोरख ककड़ी । गोरख कर्कटिका । र० सा० सं० रसशोधन । (११) सेमल का फल । मे० । (१२) ककड़ासींगी । रा० नि० व० ६ । (१३) साँप सर्प । श० र० । (१४) तरोई । (१५) कछुई (१६) घोटिका वृक्ष । (१७) घड़ा । (१८) चिर्भिट । पेहँटा । पेहटुल । (१९) हस्तिपर्णी ।

कर्कटी पया–[सं० !] लिसोड़ा । मु० अ० ।

कर्कटी बीज–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ककड़ी का बीज । कर्कटी फलबीज । च०द० अश्म० चि० कुशावलेह ।

कर्कटी बीजादिचूर्ण–संज्ञापुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, यथा–कर्कटी के बीज, अमला, हड़, बहेड़ा और सेंधा नमक । इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण बनाएँ ।

गुणधर्म तथा उपयोगविधि–इसे एकतो० मात्रामें गरम जल के साथ पीने से मूत्रावरोध (पेशाब-बन्द होना) नष्ट होता है । वृ० नि० र० मूत्रा० चि० ।

कर्कटु–संज्ञा पु० [सं०पुं०] करकरा । करकटिया । करेटु पक्षी । श० र० ।

कर्कड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खरियामिट्टी । खड़ी । खटिका । र० मा० ।

कर्कनी–[बम्ब०] Leea sambu cina, *Willd.* कुकुरजिह्वा । अंकडोस ।

कर्कन्दु, कर्कन्धु, कर्कन्धू–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) छोटे बेर का पेड़ । क्षुद्रबदरवृक्ष । झड़बेरी का पेड़ । रा० नि० व० २१ । सि० यो० कास चि० यवाक्षयूष और वचादियूष ।

'यवामलक दाड़िमकर्कन्धु मूलक शुण्ठकैः'।

झड़बेरी। शृगालकोली। शियाकूल (बं०)। च० सू० ४ अ०। (Ziryphus jujuba)

कर्कन्धु, कर्कन्धुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) बेर का फल। बदरी फल। झड़बेरी। छोटा बेर। छोटकूल (बं०)।

गुण—मीठा, चिकना, भारी, पित्त तथा वात नाशक और वातपित्त को दूर करनेवाला है। मद० व० ६। दे० "बेर"। (२) बेल का फल। विल्वफल। वै० निघ०।

कर्कन्धुकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का बेर। मद० व० ६। (२) छोटे बेर का पेड़। झड़बेरी, क्षुद्रबदरवृक्ष। छोटकूल–(बं०) र० मा०। रा० नि० व० २३।

कर्कन्धुकुण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बेर के पकने का काल। कर्कन्धु के पाक का समय।

कर्कन्धुरोहित–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झड़बेरी के फल की तरह लालरंग। कर्कन्धुफल सदृश रक्त वर्ण।

कर्कन्धू–संज्ञा पुं० दे० "कर्कन्धू"।

क़र्क़फ़–[अ०] (१) मदिरा। शराब। मै। (२) एक छोटा पक्षी। (३) क़र्क़ब।

क़र्क़फ़ः–[अ०] शीताधिक्य के कारण बहुत काँपना ठिठुरना। Shivering

कर्कफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कँकरोल। कर्कटवृक्ष। ककोड़ा। काँकरोल (बं०)। रा० नि० व० ११। (२) गांगेरुक। (३) कर्षफल। क्षुद्रआमलकी।

क़र्क़म, क़िर्क़म–[अ०] Gians Penis सुपारी। शिश्नमुण्ड। हरफ़ा।

कर्कर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कङ्कर। कंकड़। (२) मुद्गर। मुगदर। हथौड़ा। हारा०। (३) कुर्री हड्डी। तरुणास्थि।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूर्ण जनक पाषाणखंड। कुरंज पत्थर जिसके चूर्णकी सानबनती है। चूनेका पत्थर। चूर्णखंड। (२) दर्पण। हारा०। (३) तरुण पशु। हला०। (४) नीलम का एक भेद। (५) एक प्रकार का साँप।

वि० (१) कड़ा। करारा। (२) खुरखुरा। [फ़ा०] (१) बाकला। (२) छोटा सनोवर।

क़र्क़र–[अ०] वे आस्तीन की कमीज़। बन्यान। सदरी वास्कट।

क़र्क़रः–[अ०] वह आवाज़ जो उदर में वायु की गति से पैदा होती है। ओदरीय शब्द। पेट की गुड़गुड़ाहट की आवाज़। Gurgling.

कर्करट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकारका पक्षी। करकरा। करकटिया।

कर्करदला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दाख।

कर्करा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का बगुला। (२) शामी भाषा में ज़ाफ़रान का नाम।

संज्ञा पुं० [अ० आक़रक़हा] अकरकरा।

कर्कराङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कालकंठ पक्षी। श० मा०। खंजन।

कर्कराटु कर्कराटुक–संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१) कटाक्ष। तिरछी नज़र। जटा०। (२) कर्करेटु पक्षी। करकरा। करकटिया। श० र०।

कर्करान्ध, क़र्करान्धक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अंधा कूआँ। अन्धकूप। त्रिका०।

कर्कराल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूर्णकुन्तल। लटा। छल्लेदार बाल। अलक। ज़ुल्फ। घूँगर।

कर्कराक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खंजन पक्षी। खंडिरिच। खँडरिच। हारा०।

कर्करिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँख में किरकिरी पड़ना। किरकिराहट। आँख को खाज। चक्षु खर्ज्जू।

कर्करिया–[यू०] विषखपरा। हंदक़ूक़ी।

कर्करी, कर्करिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नाल युक्त एक प्रकार का जलपात्र। झारी। गड़ुआ। अम०। उणा०।

पर्या०—आलु, गलन्तिका (अ०)। अलु। आरु (अ० टी०)। (२) एक प्रकार का बरतन। चावल धोने का बरतन। (३) गलन्तिका। झंझर। (४) दर्पण। मे० रत्निक।

कर्करु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पेठा। कुष्मांड।

कर्करेटु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का सारस। करकरा। करकटिया। करेटु पक्षी। रत्ना०।

कर्करोहन–संज्ञा पुं० [?] कुत्ता।

कर्कहन–संज्ञा पुं० [?] सुंडुल की सी एक जड़।

प्रकृति—उष्ण तथा रूक्ष। यह क्लैत्रिज्य और वातनाड़ी विषयक रोगों में बहुत गुणकारी है। —ना० मु०।

कर्कवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) अपामार्ग का क्षुप। (२) गजपीपल। (३) केवाँच। शुकशिंबी। वै० निघ०।

कर्कश–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) एक प्रकार की ईख। ऊख। मे० शत्रिक। (२) कमीले का पेड़। कम्पिल्ल। अम० (३) कसौंदी। कासमर्द। (४) परवल। पटोल। प० मु०। रत्ना०। (५) दालचीनी। गुड़त्वक्। वै० निघ०। (६) विशद गुणतुल्य एक औषधीय गुण। यथा—"कर्कशो विशदो यथा।"

वि० [सं० त्रि०] [भा० संज्ञा कर्कशता, कर्कशत्व, कार्कश्य] (१) कठोर। कड़ा। (२) खुरखुरा। काँटेदार। अमसृण। (३) निर्दय। मे० शत्रिक।

कर्कशच्छद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) परवल। पटोल। रा० नि० व० ३। (२) पाटल का वृक्ष। पाढ़र। पाढ़र। (३) सिहोर का पेड़। शाखोट वृक्ष। त्रिकाः। वनौ०। (४) सागवन का पेड़। शाक वृक्ष। (५) काला कोंहड़ा। कृष्ण कुष्मांड। वै० निघ०।

कर्कशच्छदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) तोरई। तरोई। घोषा। झिंझा गाछ –(बं०) (२) दग्धा वृक्ष। कुरुही वा कसेडी (कों०)। रा० नि० व० ६। कड़वी तरोई। कोशातकी। कोशवती। ककोंटी। नि० शि०।

कर्कशदल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) परवल। पटोल। र० मा०। (२) सहोरे का पेड़।

कर्कशदला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दग्धिका कुरुही। कुरुई दग्धा। बंदाल। रा० नि० व० ६। (२) कोशातकी। तरोई।

कर्कशपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कुरुही। कर्कशदला।

कर्कशा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वृश्चिकाली का पौधा। बिछाती। रा० नि० व० ६। (२) छोटी मेढ़ासींगी। ह्रस्व मेष शृङ्गी। (३) जंगली बेर। वन बदर। वै० निघ०।

कर्कशिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जंगली बेर। वनबदरी। र० सा०। झड़बेरी।

क़र्क़स–संज्ञा पुं० [अ०] गोश्त का एक लोथड़ा। जो शिरन की तरह का जरायु के मुख में पैदा होजाता है। सम्भवतः यह एक रसौलीहै। इसका एक विशेष गुण यह है कि यह गरमियों में बढ़ जाता और सरदियों में घट जाता है।

[?] सरक़स।

[यू०] (१) मोती की सीपी। (२) एक प्रकार का शंख। क़रूक़स।

क़र्क़सम–[तु०] सीसा। सीसक।

कर्कसार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दही मिला हुआ सत्तू। दधिशक्तु। करम्भ। हारा०।

क़र्क़ाआ–[यू०] उशरक़।

कर्काक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) ककड़ी। कर्कटिका। (२) पथ्यापथ्य।

कर्कानू–[?] कद्दू।

क़र्क़ात्–[?] क़रातात्। क़रिश्क।

कर्कामेलोस–[?] आलू।

क़र्क़ार–[?] वहादादी कबूतर।

कर्कारु (क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का कुष्मांड। भूरा कुम्हड़ा। रकसवा कुम्हड़ा। कखाड़ –उत्०। भा०। (२) तरबूज़। हिनुवाना। कलिंग लता। रत्ना०। (३) बहुत छोटा कुम्हड़ा। कोहड़ी। गुम्मडितोंगे (ते०) बहुत छोटे कुम्हड़े को ही कर्कारु कहते हैं।

गुण—ग्राही, ठंढी, रक्तपित्तनाशक तथा भारी है और पकी हुई कड़वी; अग्निजनक, खारी और कफ वातनाशक है। भा० पू० १ भ० शाक व०। इसका तेल गुणमें बहेड़े के समान है।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुष्मांडी लता। हला०। (२) राज कर्कटिका। बड़ी ककड़ी। विलायती कुम्हड़ा।

कर्कारुक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तरबूज़। हिनुवाना। कालिन्द। रत्ना०। (२) कुम्हड़ा कुष्माण्ड। प० मु०। सु० चि० १८ अ०। (३) विलायती कुम्हड़ा। कुष्माण्डी।

कर्कारू–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कुष्माण्डी लता। विलायती कुम्हड़ा।

क़र्क़ावल–[?] लवा पक्षी ।

क़र्क़ास–[?] एक प्रकार की कीमती लाल जो रूस और तुर्किस्तान से लाई जाती है । फ़नक ।

कर्कास–[फ़ा०] (१) दोसर । (२) शैलम का बीज ।

कर्काश, कर्केश–[मिश्र०] बाबूना । उक्कहवान ।

कर्कास पर्गंस–[ले० Curcas purgans] jatropha curcas ब्याघ्रैरंड । काननैरंड । बागमैरंड ।

क़र्क़िमान, क़िर्क़िमान–[अ०] अलकतरे (कीर) की तरह की एक चीज़ जो वृक्षों के भीतर पैदा होती है । दे० "क़िर्क़िमान" ।

कर्कीमास–[फ़ा०] केशर । ज़ाफ़रान ।

क़र्क़ीनू–[यू०] केकड़ा ।

कर्कीरा–[सिरि०] जर्जीर । तरामिरा ।

कर्कुन–[पं०] Reinwardtia trigyna, *Planch.*

कर्कुम–[इब०] केशर । ज़ाफ़रान ।

[अ०] (१) केशर । ज़ाफ़रान । मामीरान ।

कर्कुमा–[फ़ा०] जाफरान की तरह एक लाल वस्तु यमन से आती है । वर्स । हुस् (अ०) । Flenungia Grahamiana, *Wfn.*

कर्कुमान–[फ़ा०] विषखपरा । हंदक़ूक़ी ।

क़र्क़ूँ–[यू०, सिरि०] केशर । ज़ाफ़रान ।

कर्कूँ–[शीराजी] कच्चा खरबूजा ।

क़र्क़ूगमा, क़र्क़ून, क़र्क़ूमग़मा, क़र्क़ूमाग़मा–[यू०] रोग़न ज़ाफ़रान की तलछट । दे० "केसर" ।

क़र्क़ूस–[यू०] सनोबर के वृक्ष की गोंद । रातीनज ।

कर्केतन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] एक रत्न वा बहुमूल्य पत्थर । ज़मुर्रद । पन्ना । "कर्केतनं मरकतं ।" वा० उ० ३६ अ० । गरुड़पुराण में इसकी उत्पत्ति आदि के संबंध में विलक्षण आख्यायिका आई है । वि० दे० "पन्ना" ।

कर्केतर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्केतन रत्न । ज़मुर्रद । दे० "कर्केतन" ।

कर्केधुकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झड़बेरी । भूवदरी । वै० निघ० ।

कर्केश–[मिश्री] बाबूना ।

कर्केस–[कर्केशका मुअ०] एक प्रकार का बाबूना ।

कर्कोट, कर्कोटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बेल का पेड़ । बिल्ववृक्ष । मे० कचतुष्क । (२) खेखसा । ककोड़ा । काँकरोल । यथा—"कर्कोटकं पर्पटकम्" ।—च० द० ज्व० चि० शाक विधि ।

गुण—खेखसा और परवल दोनों कफ पित्त नाशक, वीर्यनाशक और रुचिकारक है । खेखसा गुण में करेले के समान होता है । यथा—"कर्कोटकं फलं ज्ञेयं कारवेल्लकवद्गुणैः ।" राज० ३ प० । खेखसा (कर्कोटक) त्रिदोष नाशक, रुचिकारक और मीठा होता है । अत्रि० १६ अ० ।

(३) सुश्रुत के अनुसार स्थावर विषों में से एक प्रकार का फल विष । सु० कल्प० २ अ० । दे० "फलविष" । (४) ईख । गन्ना । रा० नि० व० १४ । (५) एक साँप का नाम । इसे दृष्टि विष (जिसके देखने से ही ज़हर चढ़ जाय) भी कहते हैं । मे० ।

कर्कोटका, कर्कोटकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का फल शाक । गोल कुम्हड़ा । कोहले (मरा०) ।

गुण—मूत्राघात नाशक, प्रमेहनाशक, मूत्रकृच्छ्र और पथरी का भेदन करनेवाला, पाखाना-पेशाब रोकनेवाला, बलकारक और पित्तनाशक है । कर्कोटकी रुचिकारक, चरपरी, दीपन, कटु; गरम, वात कफनाशक, विषनाशक और पित्तनाशक है । वै० निघ० । (२) एक प्रकार की तुरई । पीतघोषा । झिंगा । वन तरोई । कटोली, काकली (मरा०) । रत्ना० । (३) तथा धामगंव । तुरई । तरोई । कोषातकी । (४) ककोड़ा । खेखसा । बाँझ खेखसा । वन्ध्या कर्कोटकी । रा० नि० । नि० शि० ।

कर्कोटकादि नस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग—बाँझ ककोड़े की जड़ को बकरी के मूत्र में भावना देकर रख लें । इसको काँजी में घिस कर नस्य लेने से विष का प्रभाव नष्ट होता है । वृ० नि० र० ।

कर्कोटकी फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) घोषा फल । तोरई । तुरई । (२) गोल कोहड़ा । वृत्त कुष्माण्ड । (३) झिंगाफल । वै० निघ० । (४) ककोड़ा । खेखसा । कर्कोट फल । काँकरोल ।

कर्कोटकाद्युद्वर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग—ककोड़े की जड़, कुलथी, पीपल, कायफल, काला जीरा, चिरायता, चीता, बच, कड़वी तुम्बी और हड़ । इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण बनायें । इसे शरीर में मालिश करने से शरीर की व्यथा दूर होती है और सन्निपात का नाश होता है । इसे शीतांग में प्रयुक्त करना विशेष लाभदायक होता है । वृ० नि० र० सन्निपा० चि० ।

कर्कोटज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की बेल जिसका फल शाक के काम में आता । खेखसा । ककोड़ा । काँकरोल ।

कर्कोटपत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ककोड़े को पत्ती । कर्कोटदल । यह वमन में हितकारक है । वा० ज्व० चि० १ अ० ।

कर्कोटमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] ककोड़े की जड़ । खेखसे की जड़ । कर्कोटकमूल । काँकरोलमूल (बं०) सि० यो० कास-चि० । 'नस्यं कर्कोटमूलं स्यात् ।" च० द० पांडु-चि० ।

कर्कोटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कुष्मांडी लता । विलायती कोंहड़ा । कोंहड़ी ।

पर्य्या०—कुष्मांडी । कर्कोटी । (२) खेखसा । कर्कोटक । काँकरोल । रा० नि० व० ७ ।

कर्कोटिका कन्द रज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खेखसे की जड़ का चूर्ण । ककोड़े की जड़ की बुकनी । "कर्कोटिका कन्द रजः कुलत्थः ।"–भा० म० १ भ० शीतलांग स० ज्व० चि० । कंडु रोग में इसे सूँघते हैं ।

कर्कोटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खेखसी । ककोड़ा । कर्कोटिका । (२) देवताड़ । देवदाली बंदाल । वै० निघ० । (३) वनतोरई । कड़वी तरोई । कोशातकी । कोशवती । नि० शि० ।

कर्कोटी-कंद–संज्ञा पु० [सं० क्ली०] ककोड़े का कंद वा मूल ।

कर्कोरा–[?] सकनू ।

कर्कोल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कंकोल । रा० नि० व० १२ ।

कर्क्युमा–दे० "करक्युमा" ।

कर्क्युलिगो–दे० "करक्युलिगो" ।

कर्ख़ूश–[रू०] हड़ताल ।

कर्ग, कर्गदन–[फ़ा०] गेंडा नामक एक पशु । जरीश (अ०) ।

कर्गनालिया–[?] Bridelia montana, *Willd.* कैशू ।

कर्ग नेलिया–[?] खाजा ।

कर्गस–[फ़ा०] गिद्ध ।

क़र्ग़ीत–[तु०] कुलंजन ।

क़र्ग़ी–[तु०] नर बाज । बाशः । जुर्रह ।

कर्चक-हिंदी–[फ़ा०] जमालगोटा ।

कर्चर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कचूर (२) हरताल । [बं०] फूट की ककड़ी ।

कर्चरिका, कर्चरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कचौड़ी । बेढ़ई । बेढ़वी । पाकराज० ।

कर्चिया–[?] जंगली कासनी । तरहश्क़ूक़ ।

कर्ची–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार की चिड़िया । (२) कुरैया । कुर्ची ।

कर्ची बल्ली–[कना०] Momordica Dioica, *Roxb.* धारकरेला ।

कर्चुर, कर्चूर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना । सुवर्ण । मे० रत्निक । (२) एक प्रकार का हरताल ।

कर्चुर, कर्चुरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एकांगी । कपूर कचरी । कचूरा । औकानोक चेट्टा (ते०) । कचौरा (मरा०, क) । योग० रत्ना० वाजीक० ।

पर्य्या०–द्राविड, कार्श्य, दुर्लभ, गन्धमूलक, वेधमुख्य, गन्धसार, कार्श्य, जटाल । गुण–चरपरा कड़ुआ, गरम, खाँसी तथा कफनाशक, मुखविशदता कारक और गलगण्ड नाशक है । रा० नि० व० ६ । दीपन, रुचिकारक, सुगंधी, पाक में चरपरा तथा कोढ़, बवासीर, व्रण और खाँसी को दूर करने वाला, हलका, एवं साँस गुल्म और कृमिनाशक है । भा० पू० १ भ० । (२) कर्चूरकंद ।

कर्चूरक–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) आमहरिद्रा आमहलदी, काँचा हलुद (बं०) । अ० टी० स्वा० । (२) कचूर । शटी । मे० रत्निक० । वै० निघ० २ भ० ज्व० चि० ।

कर्चूर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अम्बा हल्दी, आम्र निशा। अम० । नि० शि०। (२) कचूर।

कर्च्चूर-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोना। स्वर्ण। संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचूर। नरकचूर।

कर्च्चूरक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमिया हलदी। कचूरक।

कर्चूर तैल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कचूर के कषाय (या स्वारस) और गूगल तथा सिन्दूर के कल्क से पकाया हुआ तैल पामा, दुष्ट व्रण, नाड़ी व्रण और अन्य हर प्रकार के घावों का नाश करता है, भा० प्र० नाड़ी व्रण चि०।

क़र्त्त-[अ०] कर्त्तन। काटना। कतरना। Cutting

क़र्त्त-[फ़ा० कर्त से मुश्र०] बबूल की फली।

कर्ज-[तु०] चूना।

क़र्ज्जज-[अ०] वृक्ष। पेड़।

क़र्ज्जजः-[अ०] (१) सागपात। (२) वृक्ष। पेड़।

कर्जफ़ू-[फ़ा०] बटेर की तरह की एक चिड़िया। लवा।

क(कु)र्जा-[?] हंसराज। परसियावशाँ।

कर्जारा-[?] रेंड़।

कर्जील-[तिनकाबन] ज़ुअरूर।

कर्ज़ूरु काय-[ते०] खजूर।

कर्टिक-किलंगु-[ता०] कलिहारी। करियारी।

कटेलिन-[मरा०, गु०] } धार करेला। वाहिस।
कटेलिन-[बम्ब०] } Momordica Dioica, *Roxb.*

कर्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] झींगुर। (२) कुसुम। बर्रे। कड़।

कर्डई-[आसाम] दे० "कर्डे"।

कर्ड सोप-[अं० Card Soap] चरबी साबुन। पाशविक साबुन। वसाम्ल सोप। दे० "सेपो एनिमेलिस"।

कर्डी-[मरा०] कड़। बर्रे।

कर्ड़-[पश्तु ०] झींगुर।

कर्डे-संज्ञा पुं० [देश०] कुसम। बर्रे। कड़।

कर्ड्या-[मरा०] कुसुम। बर्रे।

कर्ण-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का वृक्ष जिसे दीर्घपत्र भी कहते हैं। कानाखोड़ा गाछ -(बं०)। यथा—

दीर्घपत्रक कर्णाख्य नेत्रं खदिर संयुतम्।
च० द० वि० ज्व० चि०

(२) कान। श्रवणेन्द्रिय। श्रोत्रेन्द्रिय। रा० नि० व० १८। दे० "कान"। (३) सुवर्णालु वृक्ष। सोनालू। "सुवर्णालौ श्रुतावपि"। -मे० खादिक (४) दारचीनी। मधुरत्वक्। (५) मदार। मंदार। अर्क। वै० निघ०।

कर्णक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार की मछली। (२) एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी कान से बहरा हो जाता है। उसके शरीर में ज्वर रहता है, कान के नीचे सूजन होती है और दर्द होता है, वह अंडबंड बकता है। वा उसका कंठ रुक जाता है। उसे पसीना होता है। प्यास लगती है, साँस चलता है, बेहोशी आती है, जलन होता है और डर लगता है। भा० ज्व० चि०। (३) पेड़ को फोड़ कर निकलने वाला शाखा, पत्रादि। (४) वृक्षादि का एक रोग।

कर्णकटु-वि० [सं० त्रि०] कान को अप्रिय। जो सुनने में कर्कश लगे।

कर्णकण्डु, कर्णकण्डू-संज्ञा पुं० [सं० पुं०; स्त्री०] कर्णस्रोत में होनेवाला एकरोग। कान की खुजली। माधव निदान के अनुसार कफ से मिली हुई और सुश्रुत में दुष्ट संचित कफ वायु इस रोग को करती है। फ्रारिश गोश (फ्रा०)। हिकतुल् उज़्न (अ०)। Eczema of the ear.

कर्णकदली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का मृग। के०।

कर्णकिट्ट-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खूँट। कान की मैल। कर्णमल।

कर्णकीटा, कर्णकीटी-संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० स्त्री०] (Julus cornifex) कानखजूरा। गोजर कनसलाई। हे० च०।

पर्य्या०—कर्णजलौका, शतपदी, (हे०), चित्राङ्गी, पृथिका, कर्णदुन्दुभि।

कर्णकुटी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कान के बीच की कोठरी। Vestibule of internal ear प्र० शा०।

कर्णकुटीद्वार–संज्ञा पुं० [सं०] कान के बीच की कोठरी का मुँह । (Fenestra vestibuli) प्र० शा० ।

कर्णकुटी संबंधिनी कुल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Scala Vestibuli) कान की एक कुल्या विशेष ।

कर्णकुहर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का बिल । कान का छेद । कर्णरन्ध्र । (Concha) प्र० शा० ।

कर्णकूपकश्वसेक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का जीव जो जल में अधोगण्ड के द्वारा श्वास लेता है। शामुकादि इसी श्रेणी के जीव हैं ।

कर्णकृमि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शतपदी । कनखजूरा ।

कर्णकोटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (Auricular point.) अ० शा० ।

कर्णग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शब्द । आवाज़ ।

वि० [सं० त्रि०] (१) कान में गया हुआ कर्णस्थित । (२) कान तक फैला हुआ । आकर्ण ।

कर्णगण्डमाल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान के भीतर होनेवाला एक प्रकार का व्रण । यह कृमि और दुर्गन्धि से युक्त होता है । ब० रा० ।

कर्णगूथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] कान की मैल कर्णमल । खूँट । हारा० ।

कर्णगूथक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का एक रोग जिसमें पित्त की गरमी से सुखाया हुआ कफ कर्णगूथ (कान की मैल) होजाता है । यथा—पित्तोष्म शोषितः श्लेष्मा कुरुते (जायते) कर्णगूथकम् ।" मा० नि० । सु० उ० २० अ० । तैल वा स्वेद प्रयोग से ढीलाकर शलाका द्वारा कान की मैल निकाल डालना चाहिये । (चक्रपाणि)

कर्णछिद्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान का छेद । कर्णरन्ध्र ।

कर्णजलूका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कनखजूरा । कर्णजलौका । श० र० । शतपदी । चित्राङ्गी । रा० नि० १६ व० ।

कर्णजलौका (काः)–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०, पुं०] कनखजूरा । गोजर । शतपदी । काणकोटरी (बं०) हे० च० । अ० टी० भ० ।

कर्णजालूक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कनखजूरा । कर्णजलौका । केनुई (बं०) ।

कर्णजार्श–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें वातादि दोष ऊपर के द्वारों में प्राप्त होकर, मांस और रुधिर को दूषित करके कान में बवासीर वा मस्से पैदा कर देते हैं जिससे बहरापन, कान में दर्द और दुर्गंधि हो जाती है । यथा—

प्रकुपिता दोषाः श्रोत्राक्षि घ्राण वदनेष्वर्शांस्युपनिवर्त्तयन्ति । तत्र कर्णजेषु बाधिर्यं पूतिकर्णता च । सु० नि० २ अ० । कान का बवासीर ।

कर्णजाह–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान की जड़ । कर्णमूल ।

कर्णजीरक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छोटा जीरा । क्षुद्र जीरक । रत्ना० ।

कर्णज्योति–संज्ञा [स्त्री० [सं० स्त्री०] कानफोड़ा । कर्णस्फोटा । वै० निघ० ।

कर्णतल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Auricular surface) अ० शा० ।

कर्णदुःख वर्धन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] त्रिदोष जन्य एक प्रकार का कान की बीमारी । इसमें दाह खाज, शोथ और पाक होता है ।

कर्णदुन्दुभि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कनखजूरा । शतपदी ।

कर्णधारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हाथी की मादा । हथिनी ।

कर्णनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कान की नाड़ी ।

कर्णनाद–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१)कान में सुनाई पड़ती हुई गूँज । घनघनाहट जो कान में सुन पड़ती है । (२) एक रोग जिसमें वायु के कारण कान में एक प्रकार की गूँज सी सुनाई पड़ती है । माधव निदान के अनुसार इसमें कान के छेद में स्थित वायु कान में भेरी, मृदंग और शंख की तरह अनेक प्रकार के शब्द रात दिन पैदा किया करती है । उनके अनुसार जब शब्दवाहिनी नाड़ियों में वायु अकेले अथवा कफ के साथ स्थित

होती है. तब बहरापन होता है। सुश्रुत में जब उलटे मार्गों से गमन करती हुई वायु शब्दवाहिनी नाड़ियों में प्राप्त होकर वहीं स्थित हो जाती है, तब उससे मनुष्य को अनेक प्रकार के शब्द सुनाई पड़ते हैं। इस रोग को उसमें प्रणाद वा कर्णनाद लिखा है। सु० उ० २० अ०। यूनानी हकीम इसे ही तनीन वा तनीनुल् उज़नैन कहते हैं। कान बजना। कानों की झनझनाहट व भनभनाहट। Tinnitis, Tinnitis aurium.।

नोट—तनीन और दवी के अर्थ भेद के लिये दे० "दवी"।

कर्णनाद और कर्णच्वेड़ का अर्थभेद—कर्णनाद और कर्णच्वेड़ के अर्थों में यह भेद है कि कर्णनाद में अनेक प्रकारके शब्द सुनाई देते हैं,पर कर्णच्वेड़ में एक ही प्रकार का अर्थात् बाँसुरी का शब्द सुनाई पड़ता है।

कर्णतिघर्षक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान साफ करने का औजार। कर्णशोधनी।

कर्ण नेबू–[बं०] करना नीबू।

कर्णपटह–संज्ञा पुं० [सं०] Tympanic membrane कान का परदा। प्र० शा०।

कर्ण पत्रक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णपाली। बाहरी कान का हिस्सा।

कर्ण पथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णच्छिद्र। कान का छेद। कर्ण कुहर।

कर्णपरिपोटक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का कान में होनेवाला फोड़ा। यह कृष्णारुण और अस्तब्ध होता है। यह परिपोटक वात जन्य होता है।

कर्णपरिलेहि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कर्णरोग। यह रक्त और कफ के विकार से होती और इधर उधर फैलने वाली होती है। यह कर्णपाली में होती है।

कर्णपाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान के छेद का एक रोग जो पित्त के प्रकोप से वा कान में फोड़ा पकने वा जल भर जाने से होता है। इसमें कान पक जाता है जिससे उसमें सड़ाँध और क्लेद (आर्द्रता) होता है और यदि पित्त के तेज से कान के छेद में ठहरा हुआ कफ पिघल जाय तो बड़ी वेदना होती है। कान पकना।

सु० उ० २० अ०। मा० नि०।

कर्णपात्रक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का एक बाहरी भाग। कान की लौ।

कर्णपालि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कान की लौ। कर्णपाली।

कर्णपाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कान की लौ। कान की लोलक। कान की लोबिया। कान की लहर। (Lobul of ear) कान की लौर। कर्णलतिका। (२) सुश्रुत में एक रोग जो कान की लोलक में होता है। यह पाँच प्रकार का होता है। (१) परिपोट, (२) उत्पात, (३) उन्मंथ, (४) दुःखवर्द्धन और (५) परिलेही। सु० चि० २५ अ०। विस्तार के लिए इन्हें यथास्थान देखो।

कर्णपाली विवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्णपाली रोग विशेष।

कर्ण पिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वाग्भट्ट में कान का एक रोग जिसमें कान के छिद्र के भीतर एक वा एक से अधिक पीपल की तरह कठोर और वेदना रहित माँस के अंकुर पैदा होजाते हैं। वा० उ० १७ अ०।

कर्णपुट–संज्ञा पुं० [सं०] कान का घेरा। कान का छेद।

कर्णपुत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्ण शष्कुली। (२) मोरट खता।

कर्णपुष्प, कर्णपुष्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नीली कटसरैया। नीलझिंटी। (२) मोरटखता। रा० नि० व० ३।

कर्ण पुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] झँटकटारा। उष्ट्रकाण्डी। के०।

कर्ण-पुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] क्षीरमोरटा। क्षीरमुरहरी। पोलुपत्रा। घनमूला। दीर्घमूला। रा० नि०। नि० शि०।

कर्ण पूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वाग्भट्ट। र० मा०। (२) सिरिस का पेड़। शिरीष वृक्ष। (३)नीलकमल। नीलोत्पल। मे०। (४) अशोक का पेड़। रा० नि० व० १०। भा० प्रथम० चि०।

(५) नन्दी वृक्ष। त्रिका०। (६) करनफूल।

कर्णपूरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कदंब का पेड़। कदम का वृक्ष। रा० नि० व० ९। (२) अशोक का पेड़। रा० नि० व० १०। (३) तिल। तिलक। वै० निघ०।

कर्णपूरण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) तेल आदि से कान भरने की क्रिया वा भाव। कहा है—

कर्णौ प्रपूरयेत् सम्यक् स्नेहाद्यैर्मात्रया भिषक्।
नोचैः श्रुतिर्न वाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णपूरणात्॥
रसाद्यैः पूरणङ्कर्णे भोजनात्प्राक् प्रशस्यते।
तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते॥
स्वेदयेत्कर्णदेशन्तु परिवर्त्तन शायिनः।
मूत्रैःस्नेहरसैः कोष्णैः पूरयेच्च ततोभिषक्॥
स्वस्थस्य पूरितं रक्षेत् मात्राशतमवेदने।
शतमात्रं श्रोत्रगदे शिरोरोगे तथैवच॥
वैद्यकम्

(२) कान में डालने की चीज़। कर्णपूरण द्रव्य।

कर्णप्रणाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्णनाद नामक रोग विशेष। दे० "कर्णनाद"।

कर्णप्रतिनाह, कर्णप्रतीनाह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक के अनुसार कान का एक रोग जिसमें खूँट फूलकर अर्थात् पतली होकर नाक और मुँह में पहुँच जाती है। इस रोग के होने से आधासीसी उत्पन्न हो जाती है। सु० उ० २० अ०। मा० नि०।

कर्णप्रक्षालन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान धोने की औषधियाँ—आमला, मजीठ, लोध, तेन्दू, वास्तुक इन्हें समान भाग लेकर क्वाथ करें। गोमूत्र के साथ क्वाथ करना उपयोगी है। वृ० नि० र० कर्ण रो० चि०।

कर्णप्रांत–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान की छोर।

कर्णफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] Ophiocephalus kurrawey एक प्रकार की मछली।

गुण—यह अजीर्ण तथा कफकारक है। राज० ३ प०।

कर्णबन्धनाकृति–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्णवेधन के उपरांत उसके बंधन का आकार। यह १५ प्रकार का होताहै—(१) नेमिसंधानक, (२) उत्पलभेद्यक, (३) वल्लूरक, (४) आसंगिम, (५) गंडकर्ण, (६) आहार्य्य, (७) निर्वेधिम, (८) व्यायोजिम, (९) कपाट सन्धिक, (१०) अर्द्धकपाट सन्धिक, (११) संक्षिप्त, (१२) हीनकर्ण, (१३) वल्लीकर्ण, (१४) यष्टिकर्ण और (१५) काकौष्ठक। सु० सू० १६ अ०। विस्तार के लिये यथास्थान देखो।

कर्णबहिर्द्वार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Opening of Extrnal anditory meatus) कान का बाहर का छिद्र। अ० शा०। प्र० शा०।

कर्णबुद्बुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Auditory Vesicle) अ० शा०।

कर्णभूषण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० पुं०] (१) अशोक का पेड़। (२) नागकेशर। प० मु०।

कर्णमद्गुर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Silurus Unitus) A sort of Sheat fish एक प्रकार की मछली। कानमागुर। वै० निघ०।

कर्णमल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान का खूँट। कर्णगूथ। हारा०।

कर्णमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कान की जड़ के पास का देश। कान की जड़। मा० ज्व० नि०। (२) एक रोग जिसमें कान की जड़ के पास सूजन होती है। कनपेड़ा। Parotitis

कर्णमूलीय शंखास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अस्थि विशेष। अ० शा०।

कर्णमृदंग–संज्ञा पुं० [सं०] कान की भीतरी झिल्ली। कर्णपट।

कर्णमोचक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कनफोड़ा। कर्णस्फोटा। वै० निघ० २ भ० र० पि० चि० दूर्व्याद्य तैल।

कर्णमोटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बबूल का पेड़। बर्बर वृक्ष। वै० निघ०।

कर्णमोदा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्वमूला। छुरिका। रा० नि०। नि० शि०।

कर्णमोरट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कनफोड़ा। कर्णस्फोटा। रसेन्द्र चि० सूर्य्य पातक ताम्र।

(२) दोनों प्रकार का कनफोड़ा ।जल कर्णमोरट तथा स्थल कर्णमोरट। "जलस्थलभवः कर्णमोरटः ।" सा० कौ० दूर्व्वाद्य तैल ।

कर्णरन्ध्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का छेद ।

कर्णरोग—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का रोग । कान की बीमारी । कर्णज व्याधि ।

माधव निदान में दोषानुसार कान की बीमारी तीन प्रकार की लिखी है—(१) वातज कर्णरोग जिसमें शब्द होता है, अत्यन्त वेदना होती है, कान की मैल सूख जाती है, थोड़ा पीव बहता है और वात के कारण सुनाई नहीं पड़ता अर्थात् मनुष्य बहरा हो जाता है । (२) पित्तज कर्णरोग जिसमें लाल सूजन होती है, दाह होता, फट सा जाता और उसमें पीली दुर्गंधित पीव बहती है। (३) कफज कर्णरोग में विपरीत सुनना । (कहे कुछ और सुने कुछ), खाज होना, कठिन सूजन और सफेद चिकनी राध बहना और थोड़ी पीड़ा इत्यादि लक्षण होते हैं। इसके अतिरिक्त सान्निपातिक कर्णरोग में उपर्युक्त सभी लक्षण सम्मिलित रूप से होते हैं और अधिक दूषित वर्ण का स्राव होता है ।

वैद्यक में कान के रोगों की संख्या २८ लिखी है । सुश्रुतादि के अनुसार वे २८ प्रकार के कर्ण रोग यह हैं—

(१) कर्णशूल, (२) प्रणाद (कर्णनाद) (३) बाधिर्य (बहरापन), (४) कर्णस्राव, (५) कर्णकंडू, (६) कर्णगूथ, (७)कृमिकर्ण (८) प्रतिनाह, (९-१०) दो प्रकार की कर्णविद्रधि, (११) कर्णपाक, (१२) पूतिकर्ण, (१३) कर्णार्बुद, (१४, १५, १६, १७) चार प्रकार का कर्णार्श, (१८, १९, २०, २१, २२, २३, २४) सात प्रकार का कर्णार्बुद और (२५, २६, २७, २८) चार प्रकार का कर्णशोथ । यथा—

कर्णशूलं प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एव च ।
कर्णस्रावः कर्णकंडूः कर्णगूथ स्तथैव च ॥
कृमिकर्णः प्रतीनाहो विद्रधिर्द्विविधस्तथा ।
कर्णपाकः पूतिकर्ण स्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥
तथार्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः ।
एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥

वै० निघ० सु०उ० २० अ० वि० दे० "कान" ।

कर्ण रोग चिकित्सा विधि—सोते समय कान में रुई लगाकर सोने से कर्ण सम्बन्धी बहुत से रोगों से बचने का उत्तम उपाय है । कानमें सर्वदा गुनगुनी औषधि डालनी चाहिये ।

(१) अदरख, शहद, सेधानमक, कड़ुवा तेल पकाकर कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है । (२) लहसुन, अदरख, सहिजन का रस, मूली का रस, केले का रस इनका गुनगुना रस डालने से कर्णशूल नष्ट होता है । (३) समुद्रफेन के चूर्ण को अदरख, सहिजन, भांगरा और मूली के रस में मिलाकर गुनगुना कर कान में डालने से कान का दर्द दूर होता है । (४) काली सर्जी के बारीक चूर्ण कान में डालकर ऊपर से नीबू का गुनगुना रस निचोड़ने से कर्णशूल नष्ट होता है । कौड़ी का भस्म इसी तरह नीबू के रस के साथ प्रयोग करने से कर्णशूल नष्ट होता है । (६) आक के पत्तों के पुट में दग्ध किये हुये थूहर के पत्तों का रस गरम टपकाने से कर्णशूल शीघ्र दूर होता है । (७) चार तैल—नेत्रवाला, मूली सोंठ, इनका खार, हींग, सोंफ, वच, कूट, देवदारु, सहिजन, रसवत, कालानमक; जवाखार, सज्जीखार सेंधानमक, भोजपत्र, पीपलामूल, बायविडंग, नागरमोथा समान भाग और मधु, शुक्त, बिजौरा और केले का रस चौगुना लेकर यथाविधि तैल पाक कर कान में डालने से कर्णशूल, कर्णनाद, बहिरापन, पूयस्राव, कर्णकृमि और मुख तथा दंत रोग का नाशक है । (८) दार्व्वादि तैल—दारुहल्दी, दशमूल, मुलहठी, केले का रस, कूट, वच, सहिजन, सौंफ, रसवत, देवदारु, जवाखार, सज्जी, विडनमक, सेंधानमक इनके कल्क में तिल तैल मिलाकर यथाविधि पाक कर कान में डालने से कर्णशूल, कर्णनाद, बधिरता, पूतिकर्ण, कर्णक्लेद, जन्तुकर्ण, कर्णपाक, कर्णकंडू, कर्णप्रतिनाह, कर्ण शोथ और कर्णस्राव का नाश होता है ।

(९) भांग के पत्तों के रस में मीठे तेल को पकाकर कान में डालने से गर्मी और सर्दी से उत्पन्न कर्णशूल नष्ट होता है । (१०) खार के साथ में तैल पाक कर डालने से कर्णस्राव और

कान का दर्द दूर होता है। शम्बूक तैल–घोंघे का जीव तेल में पकाकर कान में डालने से कान का नासूर दूर होता है। करमकल्ला के पत्तों का रस सिरका अथवा गन्दना के रस में मिलाकर गुनगुना कर कान में टपकाने से कान में जमा हुआ रुधिर घुलकर निकल जाता है। (११) पके हुये इंद्रायण के फल के छिलके मीठे तेल में पकाकर कान में डालने से बधिरता नष्ट होता है। (१२) पपड़ी खैर और खतमी पीसकर लेप करने से गर्मी से उत्पन्न कर्ण का कड़ापन दूर होता है।

कर्णरोग में डाक्टरी औषधियां—कर्णशूल (Otalgia) स्ट्याफिसेग्राइ, केन्थाराइटीज़, डिजिटेलिस, आलियम् आलिप ओपियम्, अस्पाइटिस–एकोनाइट, Otorrhaea–एलम्, बोरिक एसिड, बोरो ग्लीसरीन, बाल्सम् पेरुविएनम्; क्याडमियाई सलफास, आइडोफार्म, लाइकरसोडि क्लोरेट, प्लम्बाई एसिटास, आलियम् मदुई, टैनिन।

ग्लीसरीन	१ ड्राम
बोरिक एसिड	१० ग्रेन
आयडोफार्म	१ ग्रेन
केम्फर	५ ग्रेन
स्पिरिट-रेक्टीफाइड	१ औंस
थाइमोल	५ ग्रेन

कर्णरोग प्रतिषेध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कर्णरोग की चिकित्सा। (२) सुश्रुत-संहिता का एक अध्याय।

कर्णरोग विज्ञान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्णगत व्याधि का निदान। कान के रोगों का निदान।

कर्णरोग हर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का रसौषध जो कर्णरोग में लाभदायक है।

योग—हीरे की भस्म, वैक्रान्त भस्म, तिमल (रूपामाखी) भस्म, नीलाथोथा, सीसा भस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और सोनामक्खी भस्म समान भाग लेकर प्रथम पारे और गंधक की कज्जली करे, फिर अन्य औषधियाँ मिलाकर लहसुन, अदरख, सहिजन, अरनी की जड़ और केले के रस की पृथक ७–७ भावना देकर खूब घोंटें।

मात्रा—२–३ रत्ती।

गुण—यथोचित अनुपान से यह हर प्रकार के कर्ण रोगों को नष्ट करता है। र० र० स० २३ अ०।

कर्णल–वि० [सं० त्रि०] जो अच्छी तरह सुन सके। कानवाला। प्रशस्त श्रवणशक्तिविशिष्ट।

कर्णलतिका, कर्णलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (Lobe of the ear) कान की लौ। कर्णपाली। हे० च०।

कर्णवत्–वि० [सं० त्रि०] (१) बड़े कानवाला। दीर्घकर्णविशिष्ट। (२) कानवाला। कर्णयुक्त। (३) कोमलशाखा वा कीलक विशिष्ट।

कर्णवंश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मंच। बाँस का ऊँचा ठाट। हारा०।

कर्णवर्जित–वि० [सं० त्रि०] (१) जिसे कान न हो। कर्णहीन। (२) बहरा। बधिर।

संज्ञा पुं० [सं० पु०] साँप। सर्प। श० च०।

कर्णवश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की मछली जो वृत्ताकार गोल, काले रंग की और सेहरेदार होती है।

गुण—इसका मांस दीपन पाचन, पथ्य, बलकारक और पुष्टिकारक है। वैद्यकम्।

कर्णवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं०] कान का एक रोग।

कर्णवात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अस्सी प्रकार के वातरोगों में से एक।

कर्णवाते च बाधिर्यं महाशूलेन पीड़नम्।
अहो रात्रं च दुःखस्यादेहशोषः प्रकीर्तितः॥

अर्थात्—इसमें बहिरापन कान में भयानक व्यथा तथा पीड़ा और देह में शोष होता है।

कर्णवात हर तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय योग—

शेफाम्लातिलकैरण्ड कुमारी कुलिमिश्रितैः।
ततो निरूहो वातघ्नः कल्कस्नेहै र्निरूह्यते॥
कर्णं वातं निहन्त्याशु बाधिर्यं च विनाशयेत्।

कर्णविट्–संज्ञा [सं० स्त्री०] कान का मैल। खूँट। कर्णमल। (मनु०)

कर्णविट्क–वि० [सं० त्रि०] जिसकी कान में मैल हो।

कर्णविद्रधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कान के अंदर की फुन्सी। कान के अन्दर की फुड़िया वा घाव। क़र्हुल् उज़्न (अ०) वैद्यक के अनुसार यह दो प्रकार की होती है—(१) दोषजन्य और (२) आगन्तुज। इनमें से प्रथम वातादि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होती है और इसमें से लाल, पीला और गुलाबी रंग का स्राव होता है, चीरने की सी पीड़ा होती है, धूम सा निकलता है, दाह होता है और चूसने कीसी पीड़ा होतीहै। द्वितीय–कान में घाव हो जाने वा चोट लग जाने आदि आगन्तुज कारणों से होती है। सु० उ० २० अ०। मा० नि०।

कर्णविधि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कर्णस्वेदन आदि। कान को स्वेदन करने की विधि। कान के सेंकने की विधि। भा०।

कर्णविवर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान का छेद। कर्णच्छिद्र।

कर्णविश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मत्स्य। मछली।

कर्णवेध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बालकों के कान छेदने का संस्कार। कर्णवेधन। कनछेदन।

कर्णवेधन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान छेदने की क्रिया वा भाव।

कर्णवेधनिका, कर्णवेधनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हाथी का कान छेदने का एक औजार। हारा०। (२) कान छेदने का एक औज़ार। कर्णवेधनास्त्र। यथा—

कर्णपालीञ्च बहुलां बहुलायाञ्च शस्यते।
सूचित्रिभाग सुषिरा व्यङ्गुला कर्णवेधनी॥
अत्रि०

कर्णवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान का परदा। कर्णावरण।

कर्णव्यध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्ण छेदन की क्रिया वा भाव। कर्णवेधन। कनछेदन। सु० सू० १६ अ०।

कर्ण शष्कुली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कर्ण गोलक। कान की लौ। (२) कान के भीतर का आकाश (पोली जगह)। हे० च०। (३) कानका वह भाग जिसमें छिद्रकर स्त्रीगण बालियाँ पहनती हैं। (Pinna)

कर्ण शूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० कर्णशूली] (१) वैद्यक में कान का एक रोग जिसमें वायु दूषित विमार्गगामी होकर जब कर्णगत होती है, तब कानों में तथा उसके आस-पास अति दारुण शूल पैदा करतीहै और यदि वह वायु अन्य दोषों (पित्त, कफ, रक्त,) से मिलकर शूल कारक हो तो वह शूल दुःसाध्य होता है। मा० नि०। सु० उ० २० अ०। कान का दर्द। कान की पीड़ा। दर्द गोश (फ़ा०)। वज्अुल् उज़्न, अलम उज़्न (अ०)। (Otalgia) Ear-ache. (२) एक प्रकार की वातव्याधि जिसमें हनु (ठुड्डी), कनपटी, सिर और गरदन इत्यादि स्थानों को भेदन करती हुई सी वायु कान में पीड़ा उत्पन्न करती है। सु० नि० १ अ०। च० सू० २० अ०।

कर्ण शूल-वात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अस्सी प्रकार के वात रोगों में से एक। दे० "कर्णशूल।"

कर्ण शूली–वि० [सं० त्रि०] जिसे कान में दर्द हो। जिसका कान दर्द करता हो। कर्णशूल युक्त।

कर्ण शेखर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शाल का वृक्ष। साखू। सखुआ।

कर्ण शोथ, कर्णशोथक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में एक रोग जिसमें कान के भीतर सूजन होजाती है। कान की सूजन। सोज़िश गोश (फ़ा०)। इल्तिहाबुल् उज़्न, वर्मुल् उज़्न (अ०)। Otitis "कर्णशोथावुदाशंसि जानीयादुक्त लक्षणैः।" मा० नि०। "शोफोऽर्शोऽवु दमीरितम्, तेषु रुक्यूतिकर्णत्वं बधिरत्वं च बाधते।" वा० उ० १७ अ०।

कर्णसंस्राव कर्णस्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान के भीतर से (कर्ण स्रोत) पीब वा मवाद बहने का रोग जो वायु से व्याप्त होकर कान के भीतर फुंसी निकलने वा घाव होने से अथवा सिर में चोट लगने से और जल में गोता मारकर स्नान करने से होता है। मा० नि०। सु० उ० २० अ० कान बहना। सैलानुल् उज़्न (अ०)। Otorrhoea आटोरिया।

नोट—कान में खून बहने को अंगरेजी में Otorrhagia आटोरेजिया कहते हैं। नज़ीफ़ुल् उज़्न (अ०)।

कर्णसमीप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कनपटी । शंख-देश । रा० नि० व० १९ ।

कर्णसूची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्णवेध करने की सूची । कान छेदने की सूई ।

कर्णसूटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का कीड़ा ।

कर्णस्फोटा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक लता का नाम कनफोड़ा । वि० दे० "कनफोड़ा" ।

कर्णस्राव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान बहने का रोग । कर्ण संस्राव ।

कर्णस्रोत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्णाञ्जली । (External acoustic meatus) अ० शा० ।

कर्णहीन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साँप । सर्प । साँप के कान नहीं होते । (भारत, अनु० ६६ अ०)

वि० [सं० त्रि०] बहरा । बधिर ।

कर्णक्वेड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान का एक रोग जिसमें पित्त और कफयुक्त वायु कान में घुस जाने से बाँसुरी का सा शब्द सुन पड़ता है । यथा—

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् ।
करोति कर्ण योः क्वेड़ं कर्ण क्वेड़ः स उच्यते ॥
मा० नि० ।

सुश्रुत के अनुसार श्रम करने से, धातु क्षय से, रूखे और कसैले भोजन करने से, तथा शिरो विरेचन करने के उपरांत शीतल आहार विहार करने से वायु शब्द के मार्ग में व्याप्त हो जाती है और कानों में अत्यन्त क्वेड़ शब्द करती है । सु० उ० २० अ० ।

नोट—कर्णक्वेड़ और कर्णनाद के अर्थांतर के लिए दे० 'कर्णनाद"

कर्णाख्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सफ़ेद कटसरैया, श्वेत झिंटी । वै० निघ० ।

कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाला स्रावकारी एक ग्रंथि विशेष । (Parotid gland.) प्र० शा० । ह० श० र० ।

कर्णाञ्जलि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] Fxternal acoustic meatus कर्णस्रोत । कान का छेद । सिमाख़ (अ०) । अ० शा० । प्र० शा० । कर्णशष्कुली । अञ्जलि के द्रव्य ग्रहण की भाँति यह शब्द ग्रहण की योग्यता रखता है इसी से अञ्जलि के साथ उपमा दी गई है ।

कर्णाञ्जली–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] कर्णशष्कुली ।

कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रंथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कान की लौ के नीचे और सामने स्थित एक ग्रन्थि जो लाला उत्पन्न करती है । संख्या में ये दो होती हैं, कनपेड़ का रोग इसी ग्रंथि के सूजने से होता है । गुद्दः नक्फ़ियः गुद्दः उज़्नयः, गुद्दतुल् उज़्न –अ० । (Parotid gland) प्र० शा० ।

कर्णाटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विश्वग्रथि । हंस-पदी का क्षुप ।लाल रंग का लजालू । रा० नि० व० ५ ।

कर्णान्तर द्वार–संज्ञा पुं०[सं०] भीतरी कान का मुँह । (Opening of Internal auditory maetus.)

कर्णान्तरनाली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कान के भीतर की नाली । (Internal acoustic meatus) प्र० शा० ।

कर्णान्तरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पेशी । (Stapedius muscle)

कर्णान्दु, कर्णान्दू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्ण-पाल । कान की लव । हे० च० ।

कर्णाभरणक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलतास । आरग्वध का वृक्ष । रा० नि० व० ९ ।

कर्णामयघ्न तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कर्ण रोग में प्रयुक्त उक्त नाम की तैलौषधि ।

योग—कूठ, सोंठ, बच, हींग, सोया, सहिजन सेंधा नमक और बकरे के मूत्र से पकाया हुआ तैल सब प्रकार के कर्ण रोगों का नाश करता है । र० र० स० २४ अ० ।

कर्णामृत तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक तैलौषधि योग यह है—हींग, नीम के पत्ते, संखिया और समुद्रफेन इनको बराबर लेकर गोमूत्र और कड़वे तेल में यथाविधि तेल सिद्ध करें ।

गुण, प्रयोग—इसे मनुष्य, हाथी और घोड़ों के कान में भरने से उनके कर्ण रोग और शिर पर लगाने से शिर के रोग नष्ट होते हैं । यह ब्रह्मदेव का कहा हुआ योग है । (यो० त० कर्ण रो० चि०)

कर्णामोट–संज्ञा पुं [सं०पुं०] कए प्रकार का पेड़। काणागाछ (बं०)। चक्र०।

कर्णारा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्णवेधनी। कान छेदने की सलाई। त्रिका०।

कर्णारि–संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] (१) अर्जुन। कोह (२) नदी सर्ज वृक्ष। रा० नि० व० ६।

कर्णार्बुद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का रोग जो कर्णस्रोत में होता है। कान का अर्बुद। मा० नि०। वा० उ० १७ अ०।

कर्णार्श–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कान में मस्सा होने का रोग। कान का बवासीर। यथा—

'कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः।" मा० नि०।

कर्णि–संज्ञा स्त्री० [सं०पुं०] दे० "कर्णिकार"।

कर्णिक–संज्ञा पुं [सं० पुं०] (१) गनियारी। गणिकारिका। अगेथ। छोटी अरनी। (२) कमल का छत्ता। पद्मकोष। (३) सन्निपात ज्वर का एक भेद। कर्णक सन्निपात। भा० म० १ भ०। दे० "कर्णक"।

कर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) दारुण पीड़ा। वा० उ० ३८ अ०। (२) अरनी (बड़ी) का पेड़। महाग्निमंथ वृक्ष। अगेथ। रा० नि व० ६। वै० निघ० २भ० कासरोग-रुद्रपर्पटी। (३) हाथी के सूँड़ की नोक। (४) हाथ की बिचली उँगली। करमध्याङ्गुली। हे० च०। (५) डंठल जिसमें फल लगा रहता है। बोंटा। मे० कन्त्रिक। (६) पद्मिनी नाल। कमल की डंडी। मृणाल। हे० च०। (७) एक योनिरोग जिसमें योनि के कमल के चारों ओर कँगनी के अंकुर से निकल आते हैं। भा० म० ४ भ० योनिरो०।

लक्षण—

कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्याञ्च जायते। मा० नि०।

चरक के मतानुसार प्रसवसे पूर्व बेसमय जोर से काँखने से गर्भ के द्वारा वायु रुककर श्लेष्मा तथा रक्त में मिल जाता है, जिससे यह रोग होता है। (८) खड़िया मिट्टी। सेलखरी। कठिनी। (९) सेवती। सफ़ेद गुलाब। शतपत्री। (१०) कँवलगट्टा। बीज मातृका। (११) कमल का छत्ता जिसमें कँवल गट्टे निकलते हैं। बीज कोष। यथा-"बीज कोषस्तु कर्णिका" हारा०

गुण—कड़ुआ, कसैला, मीठा, ठंडा, मुख विशदता कारक, हलका, प्यास बुझानेवाला, कफ और रक्त पित्त नाशक है। भा० पू० १ भ०। वि० दे० "कमल"। (१२) मेढ़ासींगी। (१३) काकोली। (१४) यूथिका। जूही। (१५) तरणी। रामतरणी। गन्धाढ्या। रा० नि० व० ५। (१६) शुष्क गोधूम-चूर्ण। रा० नि० परिशि०।

कर्णिकार, कर्णिकारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कनियार वा कनकचंपा का पेड़।

(Pterospermum acerifolium, *Willd.*)

पर्या०–द्रुमोत्पल, परिव्याध, वृक्षोत्पल-सं०। (२) एक प्रकार का अमलतास जिसका पेड़ बड़ा होता है। इसमें भी अमलतास ही की तरह की लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं जिनके गूदे का जुलाब दिया जाता है। छोटा अमलतास।

क्षुद्र स्वर्णालु का वृक्ष। छोटा सोनालू। लघु वाहवा (मरा०)। किरुगाके (ते०)।

पर्या०—राजतरु, प्रग्रह, कृतमालक, सुफल, चक्र, परिव्याध, व्याधिरिपु, पित्तवीजक, लघ्वारग्वध।

गुण—वैद्यक में यह सारक, कड़ुआ, चरपरा और गरम तथा कफ, शूल, उदररोग, कृमि, प्रमेह, व्रण और गुल्म को दूर करनेवाला माना जाता है। रा० नि० व० ६। नि० र०। (३) एक प्रकार का वृक्ष जिसकी पत्ती ढाक की पत्ती की तरह और फल लाल और अत्यन्त मनोहर होते हैं। इसके वृक्ष वन और पर्वतोंपर अधिक होते हैं। परिव्याधः, पादपोत्पलः, कर्णिकार, द्रुमोत्पल। उलटकंबल।

गुण—कड़ुआ, चरपरा, हलका, शोधन, कसेला, रञ्जन और सुखद तथा सूजन, कफ, रक्त विकार, व्रण और कोढ़ को दूर करनेवाला है। रा० नि० व० ६। भा०। (४) स्थलपद्म। स्थल कमल। र० मा०। (५) डहुक। डहुआ। रत्ना०। (६) कनेर। (७) गणेरुका। गण्ड कारिका। कोर्ण।

गुण—शोफ, श्लेष्म, व्रण, कुष्ठ नाशक और रक्तशोधक है। रा० नि० व० ६। (८) कर्णिकार पुष्प। कनकचंपा का फूल। "वर्णप्रकर्षे सति-कर्णिकारम्" (कुमारसं०)

कर्णिक–[कना०] अपराजिता।

कर्णिकारिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] हरिद्रा वृक्ष। वै० निघ०।

कर्णिकी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० कर्णिकिन्] हाथी। गज। जटा०। सूँड़ की उँगली रखनेवाला हाथी।

कर्णिन–वि० [सं० त्रि०] विवृद्धकर्ण।

कर्णिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] स्त्री की योनि का एक रोग जो कफ से उत्पन्न होता है। इसमें योनि में कफ और रक्तजन्य कर्णिकाकार एक ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है। भा० म० ४ भ० योनिरो–चि० सुश्रुत भी कहते हैं—

"कर्णिन्यां कर्णिकायोनौश्लेष्मासृग्भ्यांप्रजायते।" सु० उ० ३८ अ०।

अन्यच्च—अकाले वाहमानाया गर्भेण पिहि-ताऽनिलः। कर्णिकां जनयेद्योनौ श्लेष्मरक्तेन मूर्च्छितः॥ रक्तमार्गविरोधिन्या सा तया कर्णिनी मता॥" च०। (Diseases of the Uterus Polypus Uteri)

कर्णिल–वि० [सं० त्रि०] बड़े कानों वाला। दीर्घ कर्ण।

कर्णी–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अमलतास का पेड़। आरग्वध वृक्ष। रा० नि० व० २३। (२) ग्रीवा का पार्श्व भाग। कनपटी। (३) गणि-कारिका। गनियारी। वै० निघ०। (४) कंट-कारी। (५) श्वेत किणिही। (६) आखु कर्णिका, मूषकाह्वा। प्रतिपर्णी। मूसाकानी। चूहा कानी। द्रवन्ती।

वि० [सं० त्रि०] (१) कानवाला। कर्ण युक्त। (२) बड़े कान वाला। प्रशस्त कर्ण। (३) ग्रंथि युक्त।

कर्णीभान–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आरग्वध। अमल-तास।

कर्णीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी विशेष। (Auricular Artery) अ० शा०।

कर्णीरथ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कंधे पर उठाई जाने वाली सवारी। चौपहला। डोली। खड़-खड़िया। अ० टी० भ०।

कर्णीवान्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अमलतास का पेड़। आरग्वध वृक्ष।

कर्णे जप मन्त्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक मन्त्र जिससे विष का नाश होता है। ज़हर उतारने का एक मंत्र। मंत्र यह है—

"ओं हर हर नीलग्रीव श्वेताङ्गसङ्ग जटाग्र मण्डित खण्डेन्दु स्फूर्त्तमन्त्ररूपाय विषमुप संहर उपसंहर हर हर हर नास्ति विषं नास्ति विषं नास्ति विषं उच्छिरे उच्छिरे उच्छिरे।"

इस मन्त्र द्वारा ठंडे जल से छः बार तालु और मुख का सिंचन करें। अत्रि० ३ स्थान ५६ अ०।

कर्णेन्द्रिय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान। श्रवणेन्द्रिय "अत आकाशतन्मात्रनिर्मितम्।" सु० शा० १ अ०।

कर्णोत्पल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान का कँवल, कर्णस्थित पद्म।

कर्णोर्ण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का हिरन। (भागवत)

कर्णोर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } कान के रोएँ।
कर्णोर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } कान के बाल।

कर्णोत्पात–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान में होने वाला एक रोग जो बजनी आभरण के घर्षण और ताड़न से होता है।

कर्णोन्मथन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कान का एक रोग। इसमें वायु प्रकुपित होकर कफ को ग्रहण कर लेती है। इस रोग में वेदना रहित शोफ और स्तब्धता होती है। यह कफ वात के प्रकोप से होता है।

कर्ण्य–वि० [सं० त्रि०] (१) कर्ण से उत्पन्न। कान से उत्पन्न। (२) कान के योग्य। कान के लिये हितकारी। (३) भेद के योग्य। छेदने के क़ाबिल।

कर्ण्यगण–संज्ञा पुं० [सं०] कानों के लिये हितकारी औषधियों का समूह, जिसके अंतर्गत तिलपर्णी,

समुद्रफेन, कई समुद्री कीड़ों की हड्डियाँ आदि हैं ।

कर्त-[मुअ०] क़र्त ।

कर्तः-[फ़ा०] कसरानी बूटी । अरल ।

कर्तनः, कर्तीनः-[फ़ा०] मकड़ी का जाला ।

कर्तम-[?] एक प्रकार का विष जो कदाचित् मीठा तेलिया का एक भेद हो ।

कर्तलाइन-[यू०] कनकराबी ।

कर्तहेदशती-[फ़ा०] इज़्ख़िर ।

कर्तर-[?] अकरकरा ।

कर्तरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] विभाण्डी । दन्तीभेद आवर्त्तकी ।

कर्ता-संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] वायु । वात । पवन । रा० नि० व० ६ ।

कर्तान-[तु०] सफेदा ।

कर्ताली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ताड़ की मादा किस्म का वृक्ष । ताली । ताड़ी ।

कर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) काटना । कतरना, छेदन । मे० नत्रिक । (२) सूत इत्यादि कातना (३) काटने का एक अस्त्र ।

कर्त्तनक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का दाँत । (Incisor teeth) प्र० शा० ।

कर्त्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कतरनी । कैंची ।

कर्त्तारका-संज्ञा स्त्री० दे० "कर्त्तरी" ।

कर्त्तरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) छोटी तलवार । छुरी । कटारी । कृपाणी । (२) कैंची । कतरनी । कर्त्री । सु० चि० । यथा—

"स्नाय्वस्थि गर्भशल्यानां केशादीनाञ्चकर्त्तने ।
विविधाकृतयोयोज्याः कर्त्तव्यैः कत्तरीनिभाः ॥"
अत्रि० ।

(३) क्षुद्र करवाल । कटारी ।

कर्त्तरीय-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुश्रुत में स्थावर विषों में से सात प्रकार के त्वक्सार और निर्य्यास विष का एक भेद । सु० कल्प० २ अ० ।

कर्त्तरीयुग्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दोनों प्रकार का सिन्धुवार अर्थात् श्वेत और नील ।

कर्त्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हाथ की बिचली उँगली । मध्यमांगुली । [२] हाथी के सूँड़ की नोक ।

कर्तित-वि० [सं० त्रि०] कटा-छँटा । कर्तन किया हुआ ।

कर्द-संज्ञा पुं० [दे० "कर्द" ।

कर्दमी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मुण्डर; गन्धसार, सप्त पत्र । वृत्तपुष्प, गन्धराज । विटप्रिय, रा० नि० व० १० ।

कर्दान-[!] एक प्रकार का पक्षी जो गौरैए से बड़ा होता है ।

कर्दार-[!] दरदार ।

कर्द-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्दम । कीचड़ । कर्द । श० र० ।

कर्दर-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) करहाट । कँवल की जड़ । (२) कीचड़ । पंक । मे० ठत्रिक । [३] कमल की डंडी । मृणाल । (४) जल में होने वाले पौधे वा घास । (५) कमल की जड़ ।

वि० [सं० त्रि०] कीचड़ में चलने वाला

कर्दन-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पेट का शब्द । पेट की गुड़गुड़ाहट । कुत्सितशब्द । हे० च० ।

कर्दम-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) गंधराज रा० नि० व० १२ । सु० चि० २५ अ० । (२) मांस । श० च० (३) आँख की पलक का एक रोग जिसमें आँख में कीचड़ भरा रहता है । इसे वर्त्मकर्दम कहते हैं । दे० "वर्त्मकर्दम" ।

कर्दम कर्दमक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कीचड़ । कीच । चहला । कादा ।

संस्कृत पर्य्या०—निषद्वर, जम्बाल, पङ्क । साद (अ०), दम (मे०) ।

गुण—कीचड़ दाह, पित्त रोग और शोक नाशक है तथा ठंडा और दस्तावर है । भा० । राज० । (२) एक प्रकार का शालि धान । भा० पू० १ भ० शाक व० । दे० 'शालि' । (३) तेरह प्रकार के कंद विषों में से एक प्रकार का कंद विष । प० मु० । सु० कल्प० २ अ० । दे० "कन्दविष" । (४) पद्मिनी कर्दम । यथा—'पुनर्नवा कर्दम कण्टकार्यौ' । सु० चि० २५ अ० । (५) राजि मंत साँप का एक भेद । सु० कल्प० ४ अ० दे० "साँप" । (६) अनाज अन्न । वै० निघ० । (७) छाया । (८) पाप ।

वि० [सं० त्रि०] कर्दमयुक्त ।

कर्दम विसर्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विसर्प रोग का एक भेद। इसमें कफ पित्त के कारण ज्वर, स्तम्भ (अंगों का जकड़ना), निद्रा, तन्द्रा, शिर में पीड़ा, अंग साद, विक्षेप, प्रलेप, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हड्फूटन, प्यास, इन्द्रियगौरव, आम गिरना और मुखादि स्रोतों का कफ से लिप्त रहना इत्यादि लक्षण होते हैं। यह आमाशय में उत्पन्न होकर पीछे सर्वत्र फैलता है। इसमें थोड़ी पीड़ा होती है और अत्यन्त पीली, ताँबेके रंग की, सफेद रंग की पिड़िकायें होती हैं जो चिकनी, सुरमा के समान काली मलिन सूजन युक्त, भारी भीतर से पकी हुई होती हैं। उनमें दाह होता है तथा दबाने से तत्क्षण गीली हो जाती हैं और फट जाती हैं। कींच के समान होकर उसका मांस गल जाता है। मांस के गलने से इसमें शिरा स्नायु आदि दीखने लगती हैं और उससे शव की सी दुर्गंध आती है। इसे कर्दम विसर्प कहते हैं। मा० नि०। वि० दे० "विसर्प"।

कर्दमाटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] विष्ठा इत्यादि फेंकने की जगह। श० र०।

कर्दमिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कीचड़वाली धरती। दलदली ज़मीन।

कर्दमी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुन्दर वृक्ष। मोगरा का पेड़। रा० नि० व० १०। गंधराज का पेड़।

कर्द्रमी–संज्ञा स्त्री० दे० "कर्दमी"।

क़र्न–[अ०] [बहु० क़ुरून] (१) सींग। शृंग। शाख। (२) एक वृत्त का नाम। (३) उभार। ज़ाइदः। (४) १०० वा ८० वर्ष का ज़माना। Cornu.।

क़र्नः–[अ०] सींग।

कर्नः–[?] (१) ऊँटकटारा। उश्तर ख़ार। (२) कुरादः। चिचड़ी।

क़र्नईल–[अ०] बारहसिंगे का सींग। क़र्नुल्ईल।

क़र्नक़ार– } [?] करोया।
क़र्नफ़ार– }

कर्नपात–संज्ञा [सं० कर्णपत्र] एक बूटी जिसमें फूल और पत्ते नहीं होते। और यह कालापन लिये खाकस्तरी होती है। यह बूटी नाखून से चुनी हुई चीज़ की तरह होती है। अङ्ग० फ़ारुज्जन। दे० "करनपात"।

कर्नपूर–संज्ञा पुं० [सं० कर्णपूर] आसापाला का फूल।

कर्नब–संज्ञा पुं० [करम फ़ा० से मुअ०] (१) करमकल्ला। पातगोभी। इसके तीन भेद हैं–(१) बर्री, (२) बहरी और (३) बुस्तानी। (४) कुचला। क़ातिलुल् कल्ब।

कर्नब नब्ती–[अ०] बाग़ी करमकल्ला।

कर्नब बर्री–[अ०] एक प्रकार का करमकल्ला।

कर्नब बहरी–[अ०] करमकल्ला का एक भेद।

कर्नब शामी–[अ०] गोभी।

क़र्नब–[अ] घूँस। यर्बूअ।

क़र्नबा–[?] दुम्माज़ ख़ुर्द। चूका।
[यू०] (१) करमकल्ला। कर्नब। (२) लोबिया।
[क़र्नबाद का अल्पा०] करोया।

क़र्नबाद–[?] करोया।

क़र्नबा इग़्रिया–[यू०] जंगली कर्नब।

कर्नबाद माया–[सिरि०] नीलोफ़र।

कर्नबादेरा–[सिरि०] कर्नब बर्री।

क़र्नबी अन्मारस–[यू०] बाग़ी कर्नब।

कर्नबुल्माऽ–[अ०] नीलोफ़र।

कर्नीबय्यः–[अ०] वह गिज़ा जिसमें करमकल्ला पड़ता हो। करमकल्ला मिला हुआ आहार।

कर्ना–संज्ञा पुं० दे० "करना"।
संज्ञा पुं० [देश० दिल्ली] खट्टा का फूल।

क़र्नात्रेला–[?] बारहसिंगे का सींग।

क़र्नियून–[यू०] शाह बलूत।

कर्नी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का फूल।

क़र्नीन–[अ०] दे० "केरेटीन"।

क़र्निय्यः–[अ०] Cornea

क़र्नुल् अजुज़–[अ०] अजुज़ अर्थात् चूतड़ की हड्डी में नीचे की ओर का उभार। Sacral Cornua

क़र्नुल् अनज़–[अ०] (१) बकरे का सींग। (२) मेथी।

कर्नुल् उसउस–[अ०] पुच्छास्थि में ऊपर की तरफ उभय पार्श्व में एक-एक उभार है। (Coccygeal Cornua)

क़र्नुल् बक़र–[अ०] (१) बैल का सींग। वृष शृंग। (२) सूखी मेथी।

क़र्नुल् बहर–[अ०] (१) कहरुवा । (२) मूँगा की जड़ । बुस्सद । (३) मूँगा । मिर्जान।

क़र्नुल् मअ्ज़–[अ०] बकरे का सींग ।

क़र्नुल् ह़र्बीब–[अ०] गेंड़े का सींग । शाख़ कर्गदन।

क़र्नुस्सौर–[अ०] दे० "कर्नुल् बकर" ।

क़र्नूस–[रू०] हाऊबेर । अरअर ।

क़र्नूस क़ालून–[रू०] चिलगोज़ा ।

क़र्नूह–[मुअ०] गोल मिर्च के बराबर एक दाना । हर्नूह ।

कर्नेता–संज्ञा पुं० [देश०] रंग के अनुसार घोड़े का एक भेद ।

कर्पट, कर्पटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पुराना चिथड़ा । गूदड़ । लत्ता ।

संस्कृत पर्य्या०—लक्तक। नक्तक। अम०। (२) मलिन वस्त्र ।

कर्पण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लोहे का शस्त्र । सांग ।

कर्पणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काकजंघा । मसी । नि० शि० ।

कर्पर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) खप्पर । खर्पर। खपड़ा । (२) ज्वालातप्त कपाल । गर्भ खप्पर । वा० चि० १ अ० । "स्वभ्राकारमधूपपचन पात्रं न्युब्जं कर्पर इत्युच्यते" । वा० टी० हेमा० (३) कपोल । गाल । त्रिका० । (४) शर्करा । (५) गूलर का पेड़ । उदुम्बर का वृक्ष । श० च० । (६) मस्तक की हड्डी । कपाल । खोपड़ी । (७) कड़ाह । कटाह । (८) एक शस्त्र । मे० रत्निक । (९) कछुए की खोपड़ी । (१०) शर्करा । चीनी ।

कर्पराल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अखरोट । गिरिज पीलु भा० । (२) पीलू का पेड़ । (३) चिरमिट ।

कर्परांश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कर्पर का अंश । मृत्कपालखंड । श० र० । मिट्टीके खपड़े का टुकड़ा

कर्परिकातुत्थ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खपरिया । खर्पर । वै० निघ० । (२) एक प्रकार का तूतिया ।

कर्परी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दारुहल्दी के क्वाथ से निकला हुआ तूतिया । रसवत । तुत्थांजन । दार्विका ।

कर्परी तुत्थ–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] खपरिया धोथा। रसक । खर्पर । कर्परिका तुत्थ । यथा—

"कर्परी तुत्थकं तुत्थादन्यत् तद्रसकं स्मृतं ।
ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः॥"
वैद्यकं ।

कर्पा–संज्ञा पुं० [देश०] सूखे ज्वार का पेड़ ।

कर्पाश–[बं०] कपास । कापास (बं०) ।

कर्पाश गाछ, कापास गाछ–[बं०] कपास का पौधा ।

कर्पाश बीची, कर्पाश बीज–[बं०] बिनौला ।

कर्पास, कर्पासक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कपास का पौधा । हे० च० । मद० व० १ ।

कर्पासफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कपास का बीज। बिनौला । विशेषकर अस्थिवर्जित कपास का बीया कसेला, मीठा, भारी; वात कफनाशक और रुचि कारक है । दे० "कपास" ।

कर्पासिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपास ।

कर्पासी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपास का पौधा । मद० व० १ । दे० "कपास" ।

कर्पूर, कर्पूरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कपूर । सु० सू० ४६ अ० । रा० नि० व० १२ । वि० दे० "कपूर" । (२) कचूर । कचूरकंद । (३) कच्ची हलदी । आर्द्रहरिद्रा । श० च० । (४) हिमवालुक । (५) चन्द्रमा ।

कर्पूर–[कना०] कपूर ।

कर्पूरक–संज्ञा पुं० [सं०] कपूरकचरी । कर्पूरक ।

कर्पूर कचरी, कर्पूर कचली–संज्ञा स्त्री० [सं० कर्पूर+कचरी] कपूर कचरी ।

कर्पूरखण्ड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कपूर का टुकड़ा कपूर की डली ।

कर्पूरतुलसी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की तुलसी जिसमें से कपूर की सी गंध आती है ।

कर्पूर तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कपूर का तेल । कर्पूर स्नेह ।

पर्य्या०—हिम तैल। सुधांशु तैल।

गुण—चरपरा, गरम, वातरोगनाशक, कफ, तथा आमनाशक, दाँत को मज़बूत करनेवाला, और पित्तनाशक है। रा० नि० व० १५। दे० "कपूर"। (२) सुगंधवाला। हीबेर।

कर्पूरतैलम्-[ते०, मल०] / कर्पूरत्तैलम्-[ता०] / कपूरद्तैल-[कना०] } गंधा बिरोजे का तेल Turpentine Oil.

कर्पूरनालिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक पकवान जो मोयनदार मैदे की लंबी नली के आकार की लोई में लौंग, मिर्च, कपूर, चीनी आदि भरकर उसे घी में तलनेसे बनता है। गुणमें यह गुझिया (संयाव) की तरह होती है। कपूर की गोझिया। भावप्रकाश में इसे शरीरवर्द्धक, बल कारक, सुमिष्ट, गुरु. पित्त एवं वातनाशक, रुचि जनक और दीप्ताग्नि वाले को अत्यन्त लाभकारी लिखा है।

कर्पूरपुल-[ता०] भूस्तृण।

कर्पूरपुल्लु, येण्णेय-[ता०] रूसा। रोहिष। भूस्तृण।

कर्पूर पूस-[ते०] कहरुवा। क़ुर्नुल्वहर।

कर्पूरमणि-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का सफ़ेद पत्थर जो दवा के काम में आता है और कड्डआ, चरपरा, गरम, व्रणनाशक तथा त्वचा के दोष और वात दोष इत्यादि का नाशक समझा जाता है। रा० नि० व० १३। कर्पूराश्मा। [ता०] कहरुवा।

कर्पूर मरम्-[ता०] युकेलिप्टस ग्लोब्युलस। दे० "युकेलिप्टस"।

कर्पूरम्-[ते०] / कप्पूरम्-[ता०] } कपूर।

कर्पूर वल्लि-[ते०] / कप्पूर-वल्लि-[ता०] } पंजीरी का पात। सीता की पंजीरी।

(*Anisochilus Carnosus.*)

कर्पूर रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक आयुर्वेदीय रसयोग—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध अहिफेन, मोथा, इन्द्रजौ, जायफल और कपूर प्रत्येक तुल्य भाग। चूर्ण कर जल से अच्छी तरह घोंटे। फिर २ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से अतिसार, ज्वरातिसार ६ प्रकार की संग्रहणी और रक्तातिसार नष्ट होता है।

नोट—इसमें १ भाग भुना सुहागा भी मिलाने का कहीं कहीं लेख मिलता है। (भैष० र०। अतीसार चि०) (२) रसकपूर। भा०।

कर्पूरवर्ति-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण विधि—कपूर के चूर्ण के साथ कपड़े की बत्ती दूर्वादि के सींक में युक्ति पूर्वक बनाकर मूत्र मार्ग में प्रवेश करने से मूत्राघात नष्ट होता है। वृ० नि० र० मूत्राघात चि०।

कर्पूर-वल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] असवरग। स्पृक्का। कर्पूरलता।

कर्पूर-शिलाजीत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शिलाजीत।

कर्पूर-शिलाधातु-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिलाजीत।

कर्पूर-सुन्दरी-वटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण विधि—कपूर, जायफल, जावित्री, धत्तूर बीज, समुद्र शोष, अकरकरा, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, कुबेराक्ष, श्वेत पाटला प्रत्येक समान भाग। शुद्ध भंग सबसे आधी, भंग तुल्य पुरानी अफीम, भंग से आधी शुद्ध मीठा विष। इन्हें मिलाकर भांगरे के रस में मर्द्दन कर बेर के बीज प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके प्रयोग से शीत वात, संग्रहणी, अर्श, प्रबल अतिसार, अग्निमान्द्य और इससे अफीम खाने की आदत छूट जाती है। एवं काम शक्ति की वृद्धि होती है। र० प्र० सु० ८ अ०।

कर्पूर हरिद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की हल्दी। कपूर हल्दी। आमा हल्दी। आम आदा-बं०।

गुण—यह शीतल, वायुजनक, मधुर, पित्त-शामक, कड़ुई और हर प्रकार की खुजली को दूर करती है। भा० पू० १ भ०।

कर्पूर-हल्दी-संज्ञा स्त्री० [सं० कर्पूर+हिं० हलदी] कपूर हलदी। दे० "कर्पूर हरिद्रा"।

कर्पूरा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तरटी। तरदी। आमा हलदी।

कर्पूरादि-गुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण-विधि—भीमसेनी कपूर १। टंक, कस्तूरी १। टंक, लौंग १। टंक, मिर्च २॥ टंक, पीपर २॥ टंक, बहेड़े की छाल २॥ टंक, कुलिंजन २॥ टंक, अनार की छाल १। टंक। सर्व तुल्य खैरसार मिलाकर चूर्ण करे और जल के साथ मर्द्दन कर चणक प्रमाण गोलियाँ बनाएँ।

गुण—एक गोली शहद के साथ नित्य सेवन करने से कास रोग का नाश होता है। अमृ० सा०।

कर्पूरादि चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक प्रसिद्ध योग

निर्माण विधि—भीमसेनी कपूर, तेजपत्र, मिर्च, जायफल, लौंग प्रत्येक ५ टंक, नागकेशर ७ टंक, पीपर ८ टंक, सोंठ ६ टंक। इनका विधिवत् चूर्ण बनाकर दूनी मिश्री मिलाकर रख लें।

मुख—इसे शहद आदि के साथ तथा भिन्न-भिन्न उचित अनुपान के साथ १ टंक खाने से राजरोग, अरुचि, कास, क्षय, श्वास, गुल्म, अर्श, वमन और कंठ रोग का नाश होता है। अमृ० सा०।

कर्पूरादि तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण विधि—कपूर, भिलावा, शंख का चूर्ण, जवाखार, मैनसिल और हरताल के साथ सिद्ध किया हुआ तैल लगाने से बाल गिरजाते हैं। र० र० यो० व्या०।

कर्पूराद्य-चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग।

निर्माण-विधि—कपूर, दालचीनी, कंकोल, जायफल, पत्रज इन्हें १-१ भाग। लौंग १ भाग, नागकेसर २ भाग, मिर्च ३ भाग, पीपल ४ भाग, सोंठ २ भाग और मिश्री सर्व तुल्य। यथा विधि उत्तम चूर्ण बनाएँ।

मात्रा—१ से ४ मा० तक।

गुण—इसे यथाविधि पथ्य पूर्वक सेवन करने से अरुचि, क्षय, खाँसी, स्वरभंग, श्वास, गुल्म, अर्श, वमन और कंठरोग का नाश होता है। यो० र० कास चि०।

कर्पूराद्य-तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग, जो बाल गिराने में बरता जाता है।

निर्माण क्रम-पाकार्थ—तिल तैल ८ पल, कल्कद्रव्य—कपूर, भिलावाँ, शंखभस्म, जवाखार तथा मैनसिल ये औषधियाँ मिलित २ पल। पाकार्थ—जल ३८ पल यथाविधि तैल पाक करके छानलें। इसके पश्चात् इसमें २ पल हरताल का चूर्ण मिलादें। इसके उपयोग से क्षणभर में ही बाल गिर जाते हैं। चक्रद० योनि व्या० चि०।

कर्पूराद्य-रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक रसौषध।

योग निर्माणविधि—कपूर, भंग, धत्तूरबीज, जायफल, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, सीसक भस्म, बंगभस्म, छोटी इलायची, पुष्पाग, धनियाँ, मीठा विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौंग, तालीसपत्र, अरनी के बीज, अरनी की छाल, खिरेटी, अकरकरा प्रत्येक समान भाग लें। चूर्ण कर सर्व तुल्य मिश्री मिलाकर रखलें।

गुण—इसे बलाबल की विवेचना कर उचित मात्रा में सेवन करने से श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त, प्रस्वेद, अनेक प्रकार के सन्निपातज रोग, वात और स्वरभंग नष्ट होता है।

मात्रा—१ मा० से ३ मा० तक।

कर्पूराश्मा–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का उपरत्न। कर्पूर चानिया। (२) स्फटिक। वै० निघ०। बिल्लौरी पत्थर।

कर्पूरासव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक प्रसिद्ध योग।

निर्माण विधि—उत्तम सुरा ४०० तोले, आक मूल त्वचा ३२ तो०, इलायची, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन, बेलगिरी, प्रत्येक ४-४ तोले। जौ कुट करके एक बड़े बोतल में डाल मद्य मिश्रित कर मुख बन्द करदें। एक मासोपरांत छान कर रखलें।

मात्रा—१०—६० बूँद। आजकल बाजार में जो अर्क कपूर बिकता है उससे यह कहीं उत्तम है। इसे विसूचिका तथा अतिसार में देने से अत्यन्त लाभ होता है। परीक्षित है। भैष० र० परिशिष्ट।

कर्पूरिल–वि० [सं० त्रि०] कर्पूरयुक्त । कपूरी । काफ़ूरी ।

कर्पोकरिशी–[ता०] वकुची ।

कर्प्पूरतैलम्–[ता०, मल०] गंधा विरोजे का तेल ।

कर्प्पूरम्–[ता०, मल०] कपूर । कर्पूर ।

कर्प्पूर-वल्लि–[ता०] पंजीरी का पत्ता ।

कर्प्पूरहरिद्रा–[सं०] अम्बा हलदी । आम आदा ।

क़र्फ़–[अ०] ज़ख़्म से खुरंड उतरना । ज़ख़्मको ताज़ा करना ।

कर्फ़–[फ़ा०] आखु । चूहा ।

[वेलम] हंसराज । परसियावशाँ ।

कर्फर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दर्पण । आरसी । शीशा । आईना ।

कर्फ़रोस–[?] हिना । मेहदी । नखरंजनी ।

कर्फ़ा–[?] इन्द्रायन । हंजल ।

कर्फ़िस–[फ़ा०] अजमोद । करफ़स ।

क़र्फ़ियून–[यू०] (१) शूकरान । (२) कबाब-चीनी ।

क़र्फ़लून–[रू०] लौंग । लवङ्ग ।

कर्ब–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चूहा । मूषिक ।

[अ०] रंज । दुःख । क्लेश । विपत्ति । बेचैनी । वह कष्ट जिसमें साँस रुके वा दम घुटे । Jactitation ।

कर्बः–[फ़ा०] (१) एक पौधा । (२) पटेर हलफ़ा ।

कर्बन–[?] एक दवा का नाम ।

[अं० Carbon] कज्जलन । कार्बन ।

कर्बर–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) पौंडा । पुण्ड्रकेतु । रा० नि० व० १४ । (२) स्वर्ण । सोना । (३) धतूरा । धुस्तूर वृक्ष । (४) बाघ । व्याघ्र । मे० रत्निक ।

कर्बराल–संज्ञा पुं० लिसोड़ा ।

कर्बरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सियारिन । शृगाली । (२) बाघिन । व्याघ्री । मे० रत्निक । (३) हिंगुपत्री । जटा० ।

कर्बशः कर्बशा–[फ़ा०]
कर्बसः, कर्बस, कर्बसू–[फ़ा०] } जंगली छिपकली । वज़ग़ः । साम-अवर्स ।

क़र्बाग़ः–[तु०] मेंढक । मंडूक ।

कर्बाबस–[?] जंगली छिपकली । वज़ग़ः ।

क़र्बियून–[?] मछली वा एक प्रकार की ताज़ी मछली ।

क़र्बीनून–[यू०] बलूत ।

कर्बुर–वि० [सं० त्रि०] कबरा । मिश्रित वर्ण ।

कर्बुदार–संज्ञा पुं० [सं० पुं० [१] नीली कट-सरैया । नील झिंटी । श० च० । (२) सफ़ेद कचनार । श्वेत कांचन । प० मु० । च० सू० ४ अ० ।

गुण—ग्राही तथा रक्तपित्त में उपयोगी है । राज० । सफ़ेद कचनार ग्राही; कसेला, मीठा, रुचिकारक, रूखा, साँस, खाँसी पित्त और रक्त दोष को दूर करने वाला तथा क्षत और प्रदर नाशक है । इसके और गुण लाल कचनार के समान हैं । वै० निघ० । च० । वि० दे० "कचनार" (३) लिसोड़ा । तेंदू का पेड़ जिसमें आबनूस निकलता है ।

कर्बुदारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लिसोड़ा का पेड़ । श्लेष्मांतक वृक्ष । सु० सू० ४२ अ० ।

कर्बुर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०, पुं०] (१) सोना स्वर्ण । हे० च० । (२) हरताल । हरिताल । अम० । (३) धतूरा । धूस्तूर वृक्ष । (४) गंधशटी । कपूरकचरी । प० मु० । (५) आमाहल्दी । आमहरिद्रा । वै० निघ० । (६) जल । मे० । (७) जड़हन धान ।

वि० [सं० त्रि०] नाना वर्ण का रंग बिरंगा । चितकबरा ।

कर्बुर, कर्बूर, कर्बूरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गंधशटी । कपूरकचरी । अम० । (२) आम हरिद्रा । कच्ची हल्दी । अ० टी० भ० । श० र० । (३) नदी निष्पाव धान । रा० नि० व० १६ । (४) इक्षु । ईख ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुवर्ण । सोना ।

कर्बुरफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साकुरुण्ड का वृक्ष । सकुरुण्ड । रा० नि० व० ६ । साखरुण्ड । पडवास । बड़ीमाई । नि० शि० ।

कर्बुरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बनतुलसी । बबरी । बर्बरी । मे० रत्निक । (२) पाटला का

वृक्ष ! पाढर । (३) कृष्ण तुलसी । (४) एक प्रकार की ज़हरीली जोंक ।

कर्बुरित–वि० [सं० त्रि०] चित्रित । चितकबरा । कर्बुरित । नाना वर्ण विशिष्ट ।

कर्बूर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना । स्वर्ण (२) हरताल । हरिताल । त्रिका० । (३) शटी । कचूर ।

कर्बोज–संज्ञा पुं० [अं० कर्बन+ओज (प्रत्य०)] कार्बोहाइड्रेट ।

कर्ब्बूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] शटी ।

कर्ब्बूरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हरिद्राभ वृक्ष । कच्ची हलदी । (२) कृष्णहरिद्रा । काली हलदी । (३) कपूर हलदी । कर्पूर हरिद्रा ।

कर्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) दे० "कर्म्म" । (२) दे० "करम" ।

कर्मः–[अ०] एक तौल जो ६ क़ीरात वा डेढ़ वा दो दाँग के बराबर होती है ।

क़र्मआ–[?] कछुआ ।

कर्मक–[फा०] उश्नान ।

कर्मकण्टक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्पट । सुतिक्तक । वर्म कण्टक ।

कर्मकरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कर्मकरी"

कर्मतुल् बैज़ा–[फ़ा०] दे० "कर्महे बैजा" ।

कर्मदश्ती–[फ़ा०] फाशरा ।

क़र्मदार–[?] क़र्मतान ।

क़र्मदिया–[?] चूने का पत्थर वा पका हुआ ठीकरा ।

कर्मबल–[को०] } कमरख ।
कर्मर(क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] } कर्मरंग ।
कर्मल–[द०] } कर्मार

क़र्मल–[अ०] एक वृक्ष जिसमें काँटे नहीं होते ।

कर्मस–[तु०] चाँदी ।

कर्महे बैज़ा, कर्महे शाइलः–[फ़ा०] Vitis Alba. । फ़ाशरा । हज़ारफशाँ । मारदारू । शिवलिंगी ।

कर्म सौदा–[फ़ा०] फ़ाशिरस्तीन] ।

कर्मा–[सिरि०] हड्डी ।

कर्माई–[सिरि०] शुकाई ।

क़र्मानियून–[?] बाबूना । उक़हवान ।

कर्माफ़ीतुस–[यू०] मिट्टी का कीड़ा ।

कर्मार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बंश । बाँस । नि० शि० । (२) मुद्गर । मुग्दरफल । धाराफल रा० नि० व० ११ ।

क़र्मारस–[यू०] क़ुत्लब । क़ातिल अबियः ।

कर्मारः–[?]कनेर ।

कर्मारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] धाराफल । दे० "कर्मार" ।

कर्मारी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] देवदाली । बंदाल गरागरी । खरागरी । नि० शि० ।

क़र्मारीस–[यू०] क़ुत्लुब । क़ातिल अबियः ।

कर्माल–दे० "कर्मल" ।

क़र्मावन–[रू०, यू०] प्याज़ ।

क़र्मिया–[?] तूतिया ।

क़र्मियून–[यू०] दरियाई मछली ।

कर्मीतून–[यू०] ज़ीरा ।

क़र्मीद–[अ०] ईंट ।

क़र्मूद–[अ०] ग़ज़ियान का फल ।

कर्मोर–[काश०] लबलाब ।

कर्मोहा–[?] करींदा ।

कर्म्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० कर्म्मन् का प्रथमा रूप] वह जो किया जाय । क्रिया । कार्य्य । काम । यथा—"यत् कुर्व्वन्ति तत्कर्म्म"। सु० सू० ४१ अ० । सुश्रुत के अनुसार कर्म तीन प्रकार के हैं—(१) पूर्व्व कर्म्म; (२) प्रधान कर्म्म, (३) पश्चात्कर्म्म । सु० सू० ५ अ० ।

कर्म्मकण्ट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्पट । के० ।

कर्म्मकरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मूर्वा । मुरहरी । वै० निघ० । (२) विम्बिका । कुँदरू । मे० रचतुष्क ।

कर्म्मकार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]बेल । वृष । श० ।

कर्म्मज–संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१) वट । वटवृक्ष । जटा० । (२) वह रोग जन्मान्तर के कर्म्मों का फल हो । कर्मफलजन्य रोगादि । जैसे—क्षयी, यह रोग शास्त्रानुसार निर्णीत औषध

प्रयोग से भी नहीं दबता। केवल कर्म के क्षय से ही इसकी शांति होती है।

वि० [सं० त्रि०] (१) कर्म से उत्पन्न। (२) जन्मांतर में किये हुये पुण्य-पाप से उत्पन्न।

कर्म्म पुरुष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जीव। यथा—"यस्मिन् चिकित्सा वर्त्तते स एव कर्म्म पुरुषश्चिकित्सिताधिकृतः।" सु० शा० १ अ०।

कर्म्मफल–संज्ञा पुं०[सं०क्ली०] (१) कमरख का फल। कर्म्मरंगफल। रत्ना०। (२) कर्म्म विपाक। मे० लघुतुष्क। (३) सुख। (४) दुःख। त्रिका०।

कर्म्मभू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्षित भूमि। कृष्ट भूमि। जोती हुई ज़मीन। हे०।

कर्म्ममूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कुश। कुसा। श० च०। (२) शर तृण।

कर्म्मर, कर्म्मरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमरख। कर्म्मरंग।

कर्म्मरङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं० (१) कमरख का वृक्ष। (२) कमरख का फल। रा० नि० व० ११। राज० ३ प०। वै०निघ०। भा०। वि०दे० "कमरख"।

कर्म्मरा-चेंमाड़–[मरा०] कमरख का पेड़।

कर्म्मरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] वंशलोचन। वै० निघ०।

कर्म्मविपाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूर्व जन्मके किये हुये शुभ और अशुभ कर्म्मों के भले वा बुरे फल द्वारा होने वाले रोग आदि। कर्म्मपाक।

कर्म्मार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का बाँस। (२) कमरख। कर्म्मरङ्ग। रा० नि० व० ७। ११।

कर्म्मारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कमरख का वृक्ष। कर्म्मरङ्ग वृक्ष। वै० निघ०।

कर्म्मार्ह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मनुष्य। आदमी।

कर्म्मीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारंगी। नारंग। किर्मीर। (२) चितकबरा रंग।

कर्म्मीरक–संज्ञा पुं० [सं० पुं० [सिहोरे का पेड़। शाखोट वृक्ष।

कर्मेन्द्रिय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] काम करनेवाली इन्द्रिय। वह इन्द्रिय जिसे हिला डुलाकर कोई क्रिया उत्पन्न की जाती है। कर्म्मेन्द्रियाँ पाँच हैं—हाथ, पैर, वाणी, गुदा और उपस्थ। वि० दे० "इन्द्रिय"।

कर्यावस–[?] वज्रशः। जंगली छिपकली।

कर्यास–[रू०] (१) गोश्त। (२) Latrine संडास। पायख़ाना।

कर्र–[सक़ेद ज़ीरा।

कर्रई–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुलू। गुलू। तबसी।

कर्रप-डामर–[ता०] काला डामर।

कर्रलुर–संज्ञा [देश० अवध] करविला।

कर्र वेण्डलम्–[ते०] पिण्डालू।

कर्रा–संज्ञा पुं० [देश०] कुड़ा, कुरेया। कुटज।

कर्रिल–[कना०] सिंगिनी। आशवल।

कर्री–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो देहरादून और अवध के जंगलों तथा दक्षिण में पाया जाता है। इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं और मार्च में झड़ जाते हैं। पत्ते चारे के काम में आते हैं। इस वृक्ष में फल भी लगते हैं जो जून में पकते हैं। (हिं० श० सा०)।

कर्रीनीम–[बम्ब०] सुरभिनिम्ब। कड़ी नीम।

कर्रोसिव सब्लिमेंट–[अं० Corrosive subliment] पारद का एक योग। विशेष दे० "पारा"।

कर्लिगेन–[डच०] तरली। गोइँठी।

क़र्लावफ़ूख़–[तु०] अबाबील।

कर्ल्लीस–[सिरि०] कागज़।

कर्व–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चूहा। मूषक। (२) काम। ख़ाहिश। उणा०।

क़र्व–[अ०] एक प्रकार की वृद्धि जिसमें अंडकोष में आँत, सब (आन्त्रश्छदा कला), वायु वा पानी उतर आता है। अंडकोष वृद्धि। अंत्रांड वृद्धि। क़ीलः। फ़त्क़ सिफ़नी (अ०)। Scrotal Hernia.

नोट—क़र्व शब्द का प्रयोग अंत्रवृद्धि (फ़त्क़ मिआई), उदरच्छदा कला की वृद्धि (फ़त्क़ सर्बी), कुरण्ड वा मूत्रज वृद्धि (फ़त्क़ माई)

तथा वायुजन्य वृद्धि (क़ल्क़ रेही) के लिए समान रूप से होता है।

कर्वटजद्–[बम्ब०] Cocculus Indiens. काकमारी। काकफल।

क़र्व दवाली–[अ०] फोतों की रगों का फूल जाना। Varicocele वि० दे० "दवालियुस्सुफ़न"।

कर्वर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) बाघ। व्याघ्र। मे० (२) एक औषधि।

कर्वर फल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] साकुरुंड। सकुरुंड।

कर्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) हिंगुपत्री। एक घास। के०। (२) व्याघ्री। बाघन। मे०।

क़र्वलह्मी–[अ०] अंड का एक रोग जिसमें अंडों में प्रगाढ़ सौदावी मादा के उतरने से उनके चारों ओर गोश्त पैदा हो जाता है और उनकी ऊपरी त्वचा अर्थात् अंडकोष मोटे पड़ जाते हैं। उक्त अवस्था में सूजन कठोर और कभी पत्थर की तरह होती है, जिसके साथ सख़्त पीड़ा भी उत्पन्न होती है। मांसज अंडवृद्धि। Sarcocele सार्कोसील (अं०)।

नोट—सार्कोसील वस्तुतः अंड में होनेवाला एक प्रकार का मांसार्बुद है। जिसमें अंड बहुत बढ़ जाते हैं। यह रोग बंगाल, आसाम और दक्षिण में प्रायः होता है।

कर्वान, कर्वानक–[?] एक प्रकार की चिड़िया।

कर्वानग–[?] भूरे रंग का एक प्रसिद्ध पक्षी जिसका मांस सुस्वादु होता है। करवानग। ता० श०। दे० "करवाँ"।

कर्वीर–
कर्वील– } [?] छड़ीला। खस स्याह।

कर्वीरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बेर। बदरी।

कर्वुदार–दे० "कर्बुदार"।

कर्वुर–वि० दे० "कर्बुर"।

कर्व्वुरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्व्वरी।

कर्व्वूर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमाहल्दी। शटी।

कर्व्वूरक–संज्ञा पु० [सं० पुं०] कपूरहलदी।

कर्श–[अ०] ओकड़ी। किर्स।

[पं०] तिमशा। किलोंज।

कर्शकूअन तुरानस–[?] मटर।

कर्श चरन–[?] गुलतुर्रा।

कर्शन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] दुबला बनाने का काम। कृशकरण।

कर्शपाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मीठा इंद्रजव।

कर्शफ़–[फ़ा०] करफ़स। अजमोदा।

कर्शान–[तु०] सफ़ेदा।

कर्शिमः–[अ०] कपोल। गाल। मुखमंडल।

क़र्शीम, कर्शूम–[अ०] बड़ी चिचड़ी। कुब्रः बुज़ुर्ग

कर्शित–वि० [सं० त्रि०] कृशीकृत। दुबला हुआ।

क़र्शी–[अ०] एक आरब्य ख़्यातनामा युनानी चिकित्साचार्य। अर्थात् अलाउद्दीन अबुल्हसन अलीबिन हाज़िमुल् मुल्कियुल् कर्शी। इनका उपनाम क़र्शी है और इसी नाम से ये सुप्रसिद्ध हैं। इन्हें द्वितीय जालीनूस भी कहते हैं। आप तत्कालीन अद्वितीय उद्भट विद्वानों में से थे। इनका जन्म स्थान मक्का की पुनीत भूमि है, परंतु ये दमिश्क में निवास करते थे। "मूजिज़ुल् क़ानून" इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसके अनेक सुप्रसिद्ध भाष्य हो चुके हैं। मौलाना नफ़ीस बिन-एवज़किर्मानी-लिखित "नफ़ीसी" नामक भाष्य उसका एक उज्ज्वल उदारहण हैं। इसके सिवा सदीदुद्दीन गाज़रुनी लिखित "सदीदी" और जमालुद्दीन अक़सराईलिखित "अक़सराई" नामक अन्यसुप्रसिद्ध भाष्य हैं। उक्त लब्धप्रतिष्ठ युनानी चिकित्सा शास्त्राचार्यों के अतिरिक्त हकीम फ़ज़लुल्ला तबरेज़ी ने भी इस पर एक भाष्य लिखा है। दिल्ली निवासी हकीम शरीफ़ खाँ मौलाना अब्दुल् हकीम लखनवी और मौलाना अनवर अली जैसे ख्यातनामा विद्वानों ने भी इस पर हाशिये (टिप्पणी) लिखे हैं।

क़र्शी ने शेख़ रचित क़ानून जो भाष्य प्रकाशित किया है। वह भी अपनी शैली का एक निराला ही है। यद्यपि यह अब तक अप्रकाशित है। परंतु इसके हस्तलेख अब तक किसी किसी पुस्तकालय में सुरक्षित पड़े हैं।

इस कुशाग्र बुद्धि हकीम ने स्वयं बुक़रात के ग्रंथ (फ़ुसूल) पर दो भाष्यों

की रचना की है। प्रथम लघु जिसमें क़सूल के वाक्य उद्धृत कर स्वयं भाष्य लिखे हैं और द्वितीय वृहत् जिसमें प्रथम बुक़रात के उद्धरण, पुनः उस पर जालीनूस लिखित भाष्य देकर, अंत में उभय विचारों पर अपना वक्तव्य (Remark) लिखा है।

सन् ७७० हिजरी में इनके निधन की दुःखद तिथी है।

कर्शु–[पं०] बालछड़। बारचर।

कर्शुन्नाम्बु–[ता०] कली का चूना।

कर्श्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कचूर। नरकचूर। ज़रंबाद। रा० नि० व० ६।

कर्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मागधी मान जो सोलह माशे का होता है। च०।

नोट—प्राचीन काल में माशा पाँच रत्ती का होता था इससे आजकल के अनुसार कर्ष दस ही माशे का ठहरेगा।

(२) वैद्यक में दो तोले का एक मान। यथा—"कोलद्वयन्तु कर्षः स्यात्।" प० प्र० १ख०।

पर्य्या०—सुवर्ण, अक्षः, विड़ालपदकं, पिचुः, पाणितलं, उड्डुम्बरं, तिन्दुकं, कवड़ग्रहः। वै०। (३) एक प्रकार का कालिंग मान जो दस माशे का होता है। यथा—"कर्षः स्याद्दशमाषकः।" शार्ङ्गः० पू० १ भ०। (४) सश्रुत के अनुसार सोलह माशे का एक मान, जब कि माशा पाँच रत्ती का हो। (१० माशे का एक मान)। (५) बहेड़ा का वृक्ष। श० र०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सोना। सुवर्ण।

कर्षक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) अयस्कांत मणि। खींचनेवाला। आकर्षणकारी [वि० कर्षित कर्षी, कर्षक, कर्षणीय, कर्ष्य]

कर्षण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कृशीकरण। हे० च०। (२) खींचना। आकर्षण। (३) शोषण।

कर्षणा–[सं० स्त्री०] कुलित्थ। कुलथी। रा० नि०।

कर्षणि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] तीसी का पौधा। अतसी वृक्ष। उणा०।

कर्षणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) खिरनी का पेड़। चीरिणी वृक्ष। रा० नि० व० ५। (२) सफेद वच। श्वेत वचा। वै० निघ०। कांचनी। चीरिणी। कटुपर्णिका। पिसोरा। नि० शि०।

कर्षणीया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कासा का बीया। काशतृण बीज। वै० निघ०। (२) गोजिह्वा। गोभी। "गवेधुका च गोजिह्वा कर्षणीया सिता तथा।" रा० नि०। धन्व० नि०।

कर्षण्याकार कीटाणु–संज्ञा पुं० [सं०] एक कीटाणु विशेष। (*Spirillums*)

कर्षफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बहेड़े का फल। विभीतक वृक्ष। रा० नि० व० ११। भा० पू० १ भ०। (२) भिलावें का पेड़। भल्लातक वृक्ष। वै० निघ०। (३) आँवला।

कर्षफला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आँवले का पेड़। आमलक वृक्ष। रत्ना०।

कर्षार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक तोले का मान। आधा कर्ष। प० प्र० १ ख०।

कर्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काश बीज। काँसे का बीया। वै० निघ०।

कर्षिणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खिरनी का पेड़। चीरिणी वृक्ष। रा० नि० व० ५। वै० निघ०।

कर्षु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) जंगली कंडे की आग। करीषाग्नि। (२) जीविका। मे० बद्विक।

कर्षू–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] (१) कंडे की आग। करीषाग्नि। वै० निघ०। (२) पानी। जल। रा० नि०।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक प्रकार का भारी पक्का गड्ढा जिसका मुँह छोटा हो। च० सू० १४ अ०। (२) नदी। र०। (३) कृत्रिम क्षुद्र जलाशय।

कर्षू स्वेद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] स्वेद का एक भेद। चरक के मत से इसकी विधि यह है—सोने की जगह एक ऐसा बड़ा गड्ढा खोदें जिसका मुँह छोटा हो। पुनः उस गड्ढे को बिना धूआँ के दहकते हुये अंगारों से भर देवें और उसके ऊपर चारपाई रखकर उस पर शयन करके स्वेदन करें। च० सू० १४ अ०। सु०। वि० दे० "स्वेद"।

कर्स–[?] चर्ग। (२) साँप की केंचुली।

क़स–[अ०] टिकिया बनाना।

क़र्स अनः–[ ] (१) शजरहे इबराहीम। (२) एक प्रकार का काँटेदार पौधा जिसके पत्ते भूमि पर फैलते हैं।

क़र्स आ–[?] कछुआ।

क़र्सतारियून–[यू०] कमात कोही।

क़र्सतीलूस–[रू०] शादनज।

क़र्सतूस–[यू०] कुट।

कर्सफ़, कर्सूफ़–[अ०] रुई। दवात का सूक़।

कर्सफ़ी–[अ०] सफेद काँदा का एक भेद।

क़र्समनून–[यू०] गेहूं के रेशे।

कर्सर–[संथाल] Thysano laena a carifera, *Nees.*

कर्सान, कर्सियान–[?] अंगूर की लकड़ी।

क़र्सियः–[?] नमक नफ़्ती। एक प्रकार का काला नमक।

क़र्सीक़ी–[?] तरासी.स का एक भेद।

क़र्सीतामनून–[सिरि०] ज़ंजबोलुल् कलाब।

कर्सेमिया केशिया–[ले०] सफ़ेद मुसली।

कर्ह–[फ़ा०] मक्खन। मसका।

क़र्ह–[अ०] कलौंजी। शोनीज़।

क़र्ह, क़र्ह.:–[अ०] [बहु० क़ुरूह] वह ज़ख़्म जिसमें पीप पड़ गई हो। सपूय व्रण। पीपदार ज़ख़्म। Ulcer Ulcus, *Sore.*

नोट—(१) वह ज़ख़्म जिसमें अभी पीप न पड़ी हो। परिभाषा में जराहत कहलाती है। पर यदि उसे चालीस दिन न बीते हों तो पीव पड़ जाने पर वही क़र्ह कहलाती है, और यदि उसे चालीस दिन बीत गए हों और वह गहरा हो एवं निरंतर बहता रहे तो परिभाषा में उसे नासूर वा नाड़ी व्रण कहते हैं।

(२) वह सूजन जो पीप पड़ने के उपरांत फूट गईहो और उसमें से पीप बहती होतो क़र्ह: के नाम से अभिहित होती है।

(४) डाक्टरी में सपूय व्रण वा क़र्ह: को अल्सर वा अल्कस कहते हैं। ये दोनों शब्द क़र्ह: के ठीक पर्य्याय हैं, पर सोर (Sore) शब्द सामान्य है। इसका प्रयोग क़र्ह: के अतिरिक्त जराहत और वतल के लिए भी होता है। जराहत को अंगरेज़ी में वूंड (Wound) कहते हैं।

क़र्ह: अक्कालः–[अ०] एक प्रकार का व्रण जो मांस और तन्तुओं को खा जाता और गलाता चला जाता है। गोश्त ख़ोरह। फैजीडैनिक अल्सर Phagedenic Ulcer, स्लफिंग अल्सर Slouphing Ulcer, रोडंट अल्सर Rodant Ulcer –(अं०)।

क़र्ह: अफ़निय्यः–[अ०] दे० "क़र्ह: मुअफ़्निनः"

क़र्ह: अ़सिरुल् इंदिमाल–[अ०] कष्ट से भरने वाला व्रण। पुरातन व्रण जिसके किनारे उभरे हुए और बहुत मोटे होते है तथा अंकुर विषम एवं ख़राब होते हैं। इस प्रकार का व्रण प्रायः पिंडली पर होता है। क़र्ह: मुज़्मिनः। इंडुलेंट अल्सर Indulent Ulcer, क्रॉनिक अल्सर Chronic Ulcer, कैलस अल्सर Callous Ulcer –(अं०)।

नोट—इस प्रकार का ज़ख़्म जब पिंडली पर होता है तब उसको प्राचीन तिब्बी परिभाषा में बुत्म कहते हैं।

क़र्ह: अफ़्जियः–[अ०] एक प्रकार का व्रण जो कमज़ोरी और दुबलेपन की दशा में पैदा हुआ करता है। ऐसे व्रण विषम, मोटे और पिलपिले होते हैं। पिलपिला ज़ख़्म। क़र्ह: नुत्रियः। फंगस अल्सर Fungus Ulcer, वीक अल्सर Weak Ulcer, (अं०)।

क़र्ह: इह्तिराक़ियः–[अ०] एक प्रकार का व्रण जिसमें सर्व प्रथम बड़ी २ कुंसियाँ पैदा होती हैं जिसके उपरांत वह पक कर फैल जाती और फूट जाती हैं और उन पर काले रंग के खुरंड होते हैं। इस प्रकार का व्रण प्रायः बच्चों के मुंह पर हुआ करता है। एक्ज़ेमा Eczema (अं०)।

क़र्ह: ख़बीस.:–[अ०] एक प्रकार का सड़नदार ज़ख़्म जो शीघ्र सड़ता और फैलता है। ख़बीस ज़ख़्म। दुष्टव्रण। लूपिया Lupia, लूपाइड अल्सर Lupiod Ulcer –(अं०)।

क़र्ह: ख़ैलनिय्यः–[अ०] एक प्रकार का दुष्ट व्रण जो बड़ी कठिनाई से भरता है। ख़ैलनी ज़ख़्म।

नोट—ख़ैरून एक व्यक्ति का नाम है जिसे सम्भवतः सर्व प्रथम इस प्रकार का व्रण हुआ था वा जिसने सबसे पहले इस प्रकार के व्रण की चिकित्सा की थी। इसलिए इस प्रकार के व्रण को उसी के नाम से अभिहित किया गया।

अर्वाचीन गवेषणाओं से ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार का व्रण साधारणतः यक्ष्मा के माद्दे से हुआ करता है। इससे ऐसे ज़ख़्मको ट्युबरक्युलस अल्सर Tuberculous Ulcer कहते हैं।

कर्ह: ज़ुह्रिय्य:-[अ़०] वह ज़ख़्म जो आतशक से पैदा हो। औपदंशीय क्षत। आतशकीय ज़ख़्म। क़र्ह: अफ़्रंजियः (अ़०) शंकराइड Chancriod, शंकराइड अल्सर Chancriod Ulcer, सिफलिटिक अल्सर Syphilitic Ulcer (अं०)।

कर्हतन-[फ़ा०] मकड़ी।

क़र्ह: फ़ल्ग़मूनिय्य:-[अ़०] एक प्रकार का व्रण, जिसके किनारे अधिक सूजे हुये और वेदनापूर्ण होते हैं और उसमें से बहुतसा मवाद निकलता है सशोफव्रण। सूजा हुआ व्रण। मुतवरिम ज़ख़्म। क़र्ह: मुत्वर्रिमः (अ़०)।

क़र्ह: बल्ख़िय्य:-[अ़०] दे० "बल्ख़िय्य:"।

क़र्ह: बसीत़:-[अ़०] वह पीपदार ज़ख़्म जिसमें न दर्द हो और जो न बहता ही हो। सादा क़र्ह:। सामान्य क्षत। Simple Ulcer.

क़र्ह: मज़्रियल बौल-[अ़०] पेशाब की नाली का ज़ख़्म जिससे पीप आती है। सूज़ाक। सूज़नक। सपूयमेह। तअ़्कीवः (अ़०)। गनोरिया। Gonorrhoea, ग्लीट Gleet (अं०)।

नोट—अंगरेज़ी शब्द ग्लीट पुरातन सूज़ाक के लिए प्रयुक्त होता है।

क़र्ह: मिअ़दिय:-[अ़०] आमाशयिक व्रण। मेदे का ज़ख़्म।

गैष्टिक अल्सर Gastric Ulcer, पेप्टिक अल्सर Peptic Ulcer (अं०)।

क़र्ह: मुक़ामिय्य:-[अ़०] एक प्रकार का व्रण जो किसी विशेष स्थान वा जनपद में हो। जैसे—सरहदी फोड़ा, लाहौरी फोड़ा इत्यादि। देशज व्रण। जानपदीय व्रण। क़र्ह: वत़्नियः।

एन्डेमिकअल्सर Endemic Ulcer. (अं०)

नोट—पूर्वीय देशों में होनेवाले इस प्रकार के व्रणों को डाक्टरी में फ्युरंक्युलस ओरिएण्टेलिस अर्थात् पूर्वीय व्रण (क़ुरूह मश्रक़ियः, सबूर शिर्कियः वा दमामील शिर्कियः) आदि नामों से अभिहित करते हैं; पर जब विशेष स्थान में इस प्रकार का फोड़ा हो तब उसे विशिष्ट नाम से अभिहित करते हैं। जैसे, देल्ही सोर (देहलवी फोड़ा), लाहौर सोर (लाहौरी फोड़ा) इत्यादि।

क़र्ह: मुत्अ़फ़्फ़िन:-[अ़०] एक प्रकार का ज़ख़्म जिसमें से सड़ायँध और बदबू आती है। पूतिगंध युक्त व्रण। सड़नदार ज़ख़्म। मुत्अफ़्फ़िन ज़ख़्म।

प्युट्रिड अल्सर Putrid Ulcer. (अं०)

क़र्ह: मुत्क़ादिम:-[अ़०] एक प्रकार का व्रण जो प्रायः पिंडली पर हुआ करता है और जिसके किनारे उभरे हुये होते हैं। इसकी सतह पर अंकुर नहीं आते। तिब में ऐसे व्रण को "बु़त्म" कहते हैं। चिरकारी व्रण। पुरातन व्रण। देरीना ज़ख़्म। पुराना ज़ख़्म।

क्रॉनिक अल्सर Chronic Ulcer, इंड्युलेंट अल्सर Indulent Ulcer, कैलस अल्सर CallousUlcer (अं०)।

क़र्ह: मुरक्किब:-[अ़०] वह व्रण जिसमें वेदना वा पीप बहना इत्यादि व्रण पूरण विरोधी उपसर्ग वर्तमान हों। मिश्र व्रण। मुरक्कब क़र्ह:।

कर्हरी-संज्ञा स्त्री० दे० "करहरी"।

क़र्ह: वज़िर:-[अ़०] वह अशुद्ध व्रण जिसमें अधिक परिमाण में गंदे मवाद हों। अस्वच्छ व्रण। ज़ख़्म कसी़फ़। प्युट्रिड अल्सर Putrid Ulcer (अं०)

क़र्ह: स़ अ़बानिय्य:-[अ़०] वह व्रण जो एक जगह से दूसरी जगह पर स्थानांतरित होता रहे। रेंगनेवाला ज़ख़्म। भौतुहा फोड़ा।

सर्पिजिनस अल्सर Sripiginous Ulcer, क्रीपिंड अल्सर Creeping Ulcer. (अं०)।

नोट—इस प्रकार का व्रण स़ अ़बान (अजगर) की भाँति रेंगता है अर्थात् एक जगहसे दूसरी

जगह धीरे-धीरे स्थानांतरित होता रहता है। इसलिए उसे इस नाम से अभिहित किया गया।

क़ह्'ा–[अ०] उशरक़।

क़ह्'ान–[अ०] खुमी का सफ़ेद या छोटे भेद।

कहाँनक–[फ़ा०] बाबूना।

कहीं–संज्ञा स्त्री० [देश०] बैंगन। भंटा।

कल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) साल का पेड़। शालवृक्ष। रा० नि० व० ६। (२) अव्यक्त मधुरध्वनि। जैसे—कोयल की कूक, भौंरों की गुञ्जार। (३) अजीर्ण। बदहज़मी। मे०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) वीर्य। शुक्र। मे० लघ्विक। (२) बेर का गुल्म। बदरीगुल्म। वै० निघ० २ भ० संग्रहणी-चि० व्योषादि चूर्ण।

वि० [सं० त्रि०] (१) कोमल। मधुर। (२) मनोहर। सुन्दर।

वि० हिं० "काला" शब्द का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्द बनाने में प्रयुक्त होता है। जैसे—कलमुहाँ। कलदुमा।

क़लअ़–[अ०] कलई। राँगा।

क़लअ़ अर्मनिया–[सिरि०] गिले अरमनी।

क़लअ़ मनीन–[?] बख़ुर मरियम।

कलइनसि–[बर०] कठकरञ्ज।

कलइप्पइक-किज़ङ्गु–[ता०] उलटकंबल।

कलइमान कोम्बु–[ता०] बारहसिंगे का सींग।

कलइया–संज्ञा स्त्री० दे० "कलाई"।

कलई–संज्ञा स्त्री० [अ० क़लई] (१) राँगा। रंग। कथील। (२) राँगे का पतला लेप जो बरतन इत्यादि पर खाद्य पदार्थों को कसाव से बचाने के लिये लगाते हैं। मुलम्मा (३) चूना। कली।

कलक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शकुल नाम की मछली। हे० च०। (२) बेंत। वेतसवृक्ष।

संज्ञा पुं० दे० "कलक"।

संज्ञा पुं० [अ० क़लक़] (१) बेकली। बेचैनी। घबराहट। बिकल और बेचैन होना। बेकली से करवटें बदलना। जैक्टेशन Jactation (अं०)।

क़लक़ और कर्ब का अर्थ भेद—

क़लक़ बेचैनी और बेकली के अर्थ में व्यवहार में आता है और कर्ब दुःख के कारण साँस रुकने को कहते हैं।

(२) रंज। दुःख। खेद। सोच। चिंता।

[मरा०] बाँस। वंश।

[ता०] करौंदा। करमर्दक।

कलकण्टु–[मल०] ऊख। गन्ना। ईख।

कलकण्ठ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कलकंठी] (१) हंस। (२) पारावत। परेवा। कबूतर। पिंडुक। (३) कोकिल। कोयल। मे० ठचतुष्क। (४) शुकपक्षी। सूआ। तोता। प० मु० (५) कल ध्वनि। मीठी आवाज़।

वि० [सं० त्रि०] मीठी ध्वनि करनेवाला। सुन्दर बोलनेवाला।

कलकण्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोकिल। कोयल।

कलकण्ड–[ते०, कना०] मिश्री। सितोपल।

क़लक़तार–[यू०] ज़ाज ज़र्द। ज़ाज रूमी।

क़लक़दीस. क़लकंदीस–[यू०] White vitriol ज़ाज सफेद।

कलक़दीस–[रू०] जलाया हुआ ताँबा।

कलकनक–[फ़ा०] ख़ुर्फ़ा का बीज।

क़लक़न्त–[यू०] Potassi Bichromas। ज़ाज अह्मर। ज़ाज सुर्ख़।

कलकन्द–संज्ञा पुं० [ ] लंबा बेर।

क़लक़न्द–[यू०] Green vitriol ज़ाज सब्ज। कसीस। हीरा कसीस।

कलकफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनार का पेड़। दाड़िम वृक्ष।

कलकल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साल की गोंद। राल। सर्ज्ज निर्यास। मे० लचतुष्क।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कल्लाना] खुजली। कण्डू। कल्लाहट।

क़लक़ज़न्त, क़लक़लन्द–[रू०] हीरा कसीस। ज़ाज अफ़ज़र।

कलकलमद–[अ०] अरबी।

कलकलिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] कुकलुयाहिरोभाय (भूटिया)।

कलकलोद्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राल। राल्ला धूल। सर्जरस। रा० नि० व० ३।

कलकलानज–[?] एक हिंदी माजून का नाम।

कलका–[ता०] करौंदा।

संज्ञा [देश०] पक्षी।

कलकाट–[पं०] जामुन।

क़लक़ास–[अ०, रू०] अरबी। (२) मानकंद। मानकचू।

क़लक़ासी–[सिरि०] अरबी।

कलकीक–[तु०] चकोर।

कलकीट–संज्ञा पुं० [सं०] एक कीड़ा।

क़लक़ीस–[यू०] Potassi Bichromas ज़ाज सुर्ख़। ज़ाज अह्मर।

क़लक़ूलुमिअ्दः–[अ०] वह दशा जिसमें कर्ब मेदा से अत्यंत बेचैनी उपस्थित होती है, प्रायः मूर्च्छा आती; कभी चक्कर आता और चेहरे का रंग बदल जाता है।

क़लक़ुस्सिन्न–[अ०] दाँत हिलना।

कलकूजिका–वि० स्त्री० [सं० स्त्री०] मधुर ध्वनि करनेवाली। कलकुञ्जिका। कलकूणिका।

क़लक़ूनिया–[यू०] सर्ज्जरस। राल।

कलक़ूस–[यू०] ताँबा। ताम्र।

कलकोरा–संज्ञा पुं० [देश०] (Albizzia Julibrissin, *Durazz. Syn.* Mimosa lkora, *Roxb.*) लाल सिरस। रक्त शिरीष। यह सर्पदंश में उपकारी है। इं० मे० प्लां०। इं० ड्रू० इं०।

कलख–दे० "किल्ख़"।

कलखापरी–[मरा०] खपरिया। संगबसरी।

कलगः–[?] बुस्तान अफ़रोज़। महूरा।

कलगा–संज्ञा पुं० [तु० कलगी] मरसे की तरह का एक पौधा जो बरसात में उगता है और क्वार कार्तिक में इसके सिरे पर कलगी की तरह गुच्छेदार लाल लाल फूल निकलते हैं। जो देखने में मुर्गे की चोटी की तरह दिखाई देते हैं। इसका तना मोटा होता है। शाखायें लाल होती हैं। बीज बारीक, काले, अत्यन्त मसृण एवं चमकीले होते हैं। मुर्गकेश। जटाधारी। कोकन। लाल मुर्गा। पीला मुर्गा। Amaranthus Gangeticus, *Linn*) अमरैंथस गैंजेटिकस, Celosia Cristata, *Linn.* सिलोसिया क्रिस्टेटा–ले०। काक्स कूम Cock's Comb–अं०। बुस्तान् अफ़रोज़, ताजे ख़ुरोस–फ़ा०। हबक़ बुस्तानी–अ०। मवल–पं०। लाल मुर्गा, हलदीमुर्गा, देंगुआ–बं०। एर्र-कोडि-उट्ट-तोट-कुरु, कोडि-जट्टु टोट-कुर–ते०।

पर्याय निर्णायिनी टिप्पणी—इलाजुल् ग़ुर्बा में लिखा है "सिरयारा अर्थात् ताज ख़ुरोस जिसे हिंदी में कल्गा कहते हैं।" एक और जगह लिखा है—'ताज ख़ुरोस एक वृक्ष है जिसे हिंदी में "मुर्ग़-केस" कहते हैं। कल्गे को अरबी में 'हमाहम' लिखा है। कोई कोई विद्वान् हमाहम और इसमें भेद करते हैं। उनका कथन है कि हमाहम को श्याम में हबक़नब्ती तथा अरबी में देसम, फ़ारसी में लालहे ख़ताई, हिंदी में महूरा और तबरेज़ में गुले आशक़ाँ कहते हैं। इसके पत्ते और बीज भी कल्गे के समान होते हैं, पर कल्गे के पत्तों से हमाहम के पत्ते किंचित् वृहत्तर होते हैं। कल्गे की बड़ी क़िस्म को 'जटाधारी' और छोटी को "कोकनी" कहते हैं।

तण्डुलीय वर्ग

(*N. O. Amarantaceæ.*)

उत्पत्ति स्थान—समग्र भारतवर्ष।

प्रयोगांश—फूल और बीज।

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल एवं रूक्ष। किसी किसी के मत से द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष।

स्वाद—किंचित् मधुर तथा क्षारीय।

हानिकर्त्ता—यह गुरु तथा वस्ति को हानिकर है।

दर्पघ्न—गेरू (म० मु०), कुन्दुर और सिकंजबीन इत्यादि (बु० मु०)।

प्रतिनिधि—मकोय (म० मु०), इसकी दूसरी किस्म अर्थात् ताजख़ुरोस। (बु० मु०)।

मात्रा—५ मा०।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—वृक्षावयव धातुओं (मवादों) का परिपाक करते और उनको बिलीन भी करते हैं। ये मस्तिष्कगत अवरोधों का उद्घाटन करते हैं और प्रतिश्याय तथा आमाशय एवं यकृत जात उष्मा को उपकारी है। इसके बीज हृदय को शक्ति प्रदान करते हैं। गुलरोग़न के साथ इसका लेप पुराने दस्तों को बंद करता है। यह अग्निदग्ध

के लिये गुणकारी है। (निर्विषैल) म० मु०।

ख़जाइनुल् अद्विया, में यह अधिक लिखा है—"इसके बीज यकृत को शक्ति प्रदान करते हैं। इनको भूनकर शीतल जल से फाँकने से पुराने दस्त बंद होते हैं। इसके पत्तों का प्रलेप अग्नि से जले हुये को गुणकारी है। इसके बीज कूटकर आध सेर (एक रत्ल) दूध में भिगोकर रातको आँगन में रखें और आगामी दिन प्रातःकाल इसको पी जाँय। इससे थोड़े दिनों में ही पेशाब की जलन और रक्तमूत्रता का निवारण होता है। अतिसारापहरणार्थ ये तुख़्म बारतंग की प्रतिनिधि है।"

बुस्तानुल् मुफ़रिदात तथा मुफ़रिदात नासिरी में भी कुछ हेर-फेर के साथ इसके उपर्युक्त गुणों का ही उल्लेख किया गया है।

नव्य मत—इसके फूल धारक ख्याल किये जाते हैं और अतिसार तथा अत्यधिक रजःस्राव में इनका उपयोग होता है।—ड्यूबर्ट।

इसके बीज स्निग्धता संपादक है और ये सशूल मूत्रास्राव, कास तथा प्रवाहिका में उपकारी हैं। उ० चं० दत्त।

यह रक्तशोधक तथा बवासीर में उपकारी है। कण्ठमाला रोग में भी इसका अंतः एवं वाह्य प्रयोग होता है।

कलगाघास—संज्ञा स्त्री० [हिं० कलगा+घास] (१) बुस्तान। अफ़रोज़। कलगा। (२) राजगिर। राजगिरि। राजशाक। रामदाना। दे० "राजाद्रि"

कलगारी—[गु०] कलिहारी।

कलगुटि—[सं०] पाटली।

कलगुरि—[मरा०] पाढल। पाढ़र। पाटला।

कलगोरि— } [मरा०] पाटला। पाढ़र। कालगोरु।
कलगोरी— } (ते०)।

कलगी—संज्ञा स्त्री० [तु०] (१) शुतुरमुर्ग आदि चिड़ियों के सुन्दर पंख। (२) चिड़ियों के शिर पर की चोटी, जैसी मोर वा मुर्ग़े के सिर पर होती है।

कलघण्टा—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] श्यामालता।

कलघण्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृष्ण शारिवा। श्यामालता। भा० पू० १ भ०। दे० "अनन्ता"।

कलघसिया—[बर०] लाल शकर।

कलघोष—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कोकिल। कोयल। श० र०।

कलङ्क—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [वि० कलंकित। कलंकी] (१) मण्डूर। लौहमल। (२) क्रोड़। गोद। (३) अपवाद। लांछन। बदनामी। मे० कत्रिक। (४) एक प्रकार की मछली। वै० निघ०। (५) चिह्न। दाग़। धब्बा।

कलङ्कप—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिंह। शेर। श० मा०।

कलङ्की—वि० [सं० कलंकिन्] [स्त्री० कलंकिनी] जिसमें मुरचा लगा हो। लौहमल युक्त।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] चाँद। चन्द्रमा।

कलङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पानी का भँवर। आवर्त्त। त्रि०।

कलचंग—[फ़ा०] केकड़ा। खरचंग।

कलचः—[फ़ा०] गेहूं की सफ़ेद और ख़मीरी रोटी।

कलचिड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० काला=सुंदर+चिड़िया] [पुं० कलचिड़ा] एक चिड़िया जिसका पेट काला, पीठ मटमैली और चोंच लाल होती है। इसकी बोली सुरीली होती है। इसकी पूँछ ऊपर को उठी हुई और लम्बी होती है। पूंछ के नीचे गुदा और कुछ उदर के पर लाल होते हैं। बाजुओं में कोई कोई पर सफ़ेद होते हैं। यह अत्यन्त फुर्ती से कूदती फिरती है। मख़्ज़न के संग्रहकार और कतिपय अन्य लेखकों ने जो इसे चकावक और ममोला पक्षी ख्याल किया है। वह उनका भ्रम है। मियाँ जुर्रत कहते हैं—

ज़हूर हश्र न हो क्योंकि कलचिड़ी गुंजी।
हुजूर बुलबुले बोस्ताँ करे नवा संजी॥

पर्य्या०—कुलरक़ स्याह (फ़ा०)। वनश्यामा। बनसामाँ, गँड उट्टी—हिं०।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुणधर्म तथा उपयोग—इसके मांस को शुष्क और लवणाक्त कर खाने से दस्त बंद होते हैं। इसे लवण रहित भक्षण करना मूत्रावरोध और वस्ति एवं वृक्कशमरी वेदनार्थ परीक्षित है।

वैद्यों के कथनानुसार इसका मांस कफपित्त नाशक है। (ख० अ०)

कलची–संज्ञा स्त्री० [हिं० कंजा] कंजा नाम की कँटीली झाड़ी। वि० दे० "कंजा"

कलजंग–[लेदक] गुलदाउदी।

कलज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुर्गा। कुक्कुट। वै० निघ०।

कलजात–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलम शालि। व्रीहि। कलमी धान।

कलजीहा–संज्ञा पुं० काली जीभ का हाथी जो दूषित समझा जाता है।

कलञ्ज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) तमाकू का पौधा। ताम्रकूट। धूमपर्णी। सुरती। दे० "तमाकू"। (२) दश रुपए की माप। यथा—

"सञ्चाली प्रोच्यते गुञ्जा सा तिस्रा रूपकंभवेत्।
रूपकैर्दशभिः प्रोक्तः कलञ्जो नाम नामतः"।
युक्तिकल्पद्रुमः।

(३) वेत्र लता। वेंत। (४) ज़हरीले अस्त्र से मारा हुआ मृग वा पक्षी। त्रिका०। (५) १० पल का तौल। (६) पक्षी। (७) मृग (८) पक्षी का मांस। (९) वेतस। वेत।

कलट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] गृहाच्छादन। छप्पर। कुटल (सं०)

कलटोरा–संज्ञा पुं० [सं० कल काला+हिं० ठोर-चोंच] एक प्रकार का कबूतर जिसका सारा शरीर सफ़ेद, पर चोंच काली हो।

कलडू–[का०] भूरि छरीला

कलत–वि० [सं० त्रि०] गंजा। जिसके सिर पर बाल न हो।

कलतूलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कामुकी। छिनाल। वाल्छिनी, लज्जिका (सं०)।

कलतामरे–
कलताम्र– } [मल०] जंगली उरबा।

कलतिगिया–[बर०] लाल शकर।

कलत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [वि० कलत्रवान्, कलत्री] (१) स्त्री (२) पत्नी। भार्य्या। मे० रत्रिक। (३) नितंब। श्रोणि। चूतड़। रा० नि० व० १८। ५ भग। त्रिका०।

कलथी–[गु०] कुलथी।

कलथुरिंगो–[ता०] सिरिस।

कलथौन–[पं०] (१) अर्जुन। कुरकुन। (२) पाढ़ल। पाढर। पाटला।

कलदुमा–वि० [हिं० काला+फ़ा० दुम] काली दुम का। संज्ञा पुं० काली दुम का कबूतर।

कलधूत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] चाँदी। रौप्य। रा० नि० व० १३।

कलधौत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [१] चाँदी। रजत। (२) सोना। स्वर्ण। रा० नि० व० १२ (३) अव्यक्त मधुर ध्वनि।

कलध्वनि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मोर। मयूर। (२) पारावत। कबूतर। (३) कोकिल। कोयल। मे० नचतुष्क। (४) सुंदर मधुर ध्वनि।

कलन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०][वि० कलित] (१) बेंत। वेतसरा० नि० व० ९। (२) ग्रहण। (३) ग्रास। कौर। (४) लगाव। संबंध।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक मांस का गर्भ। (२) गर्भ को ढाँकने वाली झिल्ली। गर्भवेष्टन। हला०। (३) शुक्र और शोणित के संयोग का वह विकार जो गर्भ की प्रथम रात्रि में होता है और जिससे कलल बनता है। (४) एक महीने का हमल

कलनक़–[फ़ा०] ख़ुर्फ़ा का बीज।

कलना–[फ़ा०] कनेर।

कलनाद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कलहंस। वै० निघ०। हंस, रा० नि०। (२) कल ध्वनि मधुर ध्वनि।

कलने–सौदु–[बर०] मुर। बोल।

कलन्तक, कलन्दक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक चिड़िया।

कलन्दु–
कलन्धु– } संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की नोनियाँ। घोली शाक। रा० नि० व० ७।

कलप–संज्ञा पुं० [सं० कल्प-रचना] (१) कलफ़ (२) क़िलाब। (३) दे० "कल्प"।

कलपत्तर–संज्ञा पुं० [सं० कल्पतरु] एक पेड़ जो शिमले और जौनसर की पहाड़ियों में बहुत होता है।

कलपनाथ–संज्ञा पुं० [देश द०] एक बेलदार बूटी जो वृक्षों पर लिपट जाती है। फूल मनुष्य की आँख की तरह के सफ़ेद वा काले और प्रियदर्शन होते हैं। इसमें बीज भी होता है।

प्रकृति–उष्ण और रूक्ष।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

कलपनाथ के पत्ते ६ माशे काली मिर्च ५ नग पानी में पीसकर पीते हैं। इससे जूड़ी ताप नष्ट होता है।

हरी गिलोय, नौसादर, कलपनाथ के पत्ते और काली मिर्च सम भाग पीस कर पानी में छानकर चणक या उड़द प्रमाण की गोलियाँ प्रस्तुत करें जूड़ी-ज्वर के वेग से पूर्व दो वटिकाएँ देने से आराम होता है। (ख० अ०) दे० "कलफनाथ"।

कलप-पाच्ची–[ता०] छड़ीला।

कलप-पू–[ता०] पत्थर का फूल। छड़ीला।

कलपट–[डच Kalpert] परवल। पटोल। जंगली चिचिंडा। फ़ा० इं० २ भ०।

कलपासी–[ता०] छड़ीला। छारछरीला। पत्थर का फूल। शिलावल्क।

कलपीलू–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटा तेंदू।

कलपु–[ता०] छड़ीला। शिलावल्क।

कलपून–संज्ञा पुं० [देश० कना०] एक सदाबहार पेड़ जो उत्तरीय और पूर्वीय बंगाल में होता है। इसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है। यह बहुमूल्य होती और मकान बनाने में काम आती है। कुटपोच्चे (कना०)। इं० मे० प्लां०।

कलपोटिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० काला-पोटा] एक चिड़िया जिसका पोटा काला होता है।

कलप्पगड्डु–[ते०] (१) कलिहारी। करियारी। (२) नाट का बच्छनाग।

कलप्पा–संज्ञा पुं० [मला० कलपा=नारियल] नीला पन लिये हुए सफेद रंग की एक कड़ी वस्तु जो कभी कभी नारियल के भीतर निकलती है। चीन के लोग इसे बड़े मूल्य की समझते हैं। नारियल का मोती। हि० श० सा०।

क़लफ़–[पिरि०] (१) छिलका (२) रअ़युल्-इब्ल।

क़लफ़–संज्ञा पुं० [सं० कल्प] माँड़ी।

संज्ञा पुं० [अ०] त्वचा का एक प्रसिद्ध रोग जिसमें साधारणतः चेहरे और हाथ की पीठ पर काले धब्बे पड़ जाते हैं। झाँई। व्यंग। स्याह दाग़। फ्रेकल्ज़ Freckles, क्लोआज़्मा Chloasma (अं०)।

कलफ़ और बहक़ अस्वद का भेद—

कलफ़ में त्वचा का रंग स्याही मायल होजाता है और यह सर्व प्रथम चेहरे पर प्रगट होता है। और उसमें चिकनाहट और नरमी होती है। पर बहक़ अस्वद में कर्कशता (खुशूनत) और खुरदुरापन पाया जाता है।

क़लफ़दफ़ियून–[यू०] हरताल की टिकियाँ।

कलफ़तुलस, कलफ़ातुलस–[यू०] ताँबे का मैल।

कलफनाथ–संज्ञा पुं० [देश०, द०] (१) एक प्रकार का चिरायता। कालमेघ। (Andrographis paniculata, *Wall.*) दे० "कालमेघ"। (२) कलपनाथ। दे० "कलप नाथ"।

कलफा–संज्ञा स्त्री० [देश०] देशी दारचीनी की छाल जो मलाबार से आती है और चीन की दारचीनी में उसे सस्ता करने के लिये मिलाई जाती है।

संज्ञा पुं० [देश०] कल्ला। कोपल। नया अंकुर।

क़लफ़ूत, कुलफ़ूत–[शामी] शामी गंदना।

कलबंद–[ते०] बीकार। घृतकुमारी।

कलब–संज्ञा पुं० [देश०] टेसू के फूलों को उबालकर निकाला हुआ रंग।

संज्ञा पुं० [अ०] पागल कुत्ता काटने का रोग। हलकाव। जलत्रास।

Hydrophobia, *Rabies.* वि० दे० "दाउल्कलब"।

कलबः–[अ०] दुःख। बीमारी। माँदगी।

कलबा–[ज़ंद] पागल कुत्ता।

कलबाधी–[कना०] सीरन।

कलबाश–संज्ञा पुं० [अफ्रिका Kalabash] एक ओषधि। (Crescentia cujete, *Linn.*) फा० इं० ३ भ०।

कलवाश ट्री–[अं० Calabash tree] दे० "कलवाश"।

कलबासू कलबसू–[फ़ा०] छिपकली। चल्पासः।

कलविष–संज्ञा पुं० [नैपा०] कालाग्नि।

कलबीर–संज्ञा पुं० दे० "अकलबीर"।

कलभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कलभी] (१) पाँच वर्ष का हाथीका बच्चा।

सं० पर्य्याय—करिशावक, व्याल, दुर्दान्त। (२) ऊँट। हला०। (३) धतूरा। धुस्तूर वृक्ष। रा० नि० व० १०। (४) ऊँट का बच्चा। (५) हाथी। हस्ति मात्र।

कलभवल्लभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पीलू का पेड़। पीलु। रा० नि० व० ११।

कलभवल्लभा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोकिला। पिकी। रा० नि० व० २३।

कलभी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) चेंच का पौधा। चंचु। रा० नि० व० ४। (२) हाथी वा ऊँट का बच्चा (मादा)।

कलभोन्मत्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं० धतूरा। धत्तूरा। रा० नि०।

कलम (शालि)–संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का शालि धान। वह धान जो एक जगह बोया जाय और दूसरी जगह उखाड़ कर लगाया जाय। जड़हन। रा० नि० व० १६। (२) एक प्रकार का धान जो मगध आदि देशों में प्रसिद्ध है। कलमा धान। काश्मीर में इसे महातण्डुल कहते हैं। यथा—

"कलमः कालविख्यातः जायते स वृहद्व्रीहे। काश्मीरदेश एवोक्तो महातण्डुल एवच।।" भा०। कलमक। के०। कलामक। हे०।

गुण—यह स्वादु पाक रसत्वादि युक्त और बहुत ही हीन गुण होता है। वा० सू० ६ अ०। हेमाद्रि धान्यवर्ग। यह कफ पित्तकारक, वीर्य वर्द्धक और मधुर है। रा० नि० व० १६। कलमा रक्तविकर और दोषत्रय का नाश करनेवाला नेत्रों को हितकारी और कसेला है। राज० ३ प०।

संज्ञा पुं० स्त्री० [अ० क़लम। सं० पुं०] (१) लेखनी। (२) किसी पेड़ की टहनी जो दूसरी जगह बैठाने वा दूसरे पेड़ में पैवंद लगाने के लिये काटी जाय। (३) वह पौधा जो कलम लगाकर तैयार किया गया हो। (४) शोरे, नौसादर आदि का जमा हुआ छोटा लंबा टुकड़ा। रवा।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] करमकल्ला। पातगोभी। कनँब।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रीहिधान्य।

[पं०] Stephegyne parviflora, *Korth.* कदम।

कलमक, कलमक़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का अंगूर जो बलूचिस्तान में बहुतायत से होता है।

कलमकी जड़–संज्ञा स्त्री० कलंबा।

कलमतलीस–[यू०] काशम।

कलम दरियाई–[फ़ा०] बहरी कनँब।

कलम धान्य–संज्ञा पुं० [सं०] कलमा धान। महातण्डुल। दे० "कलम"।

कलम रूमी–[फ़ा०] शामी कनँब। कुंबीत।

कलमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] शालिधान। व्रीहि धान्य यह कफपित्तनाशक है और दूसरा पथ्य, वायु तथा कफ वर्द्धक है। अत्रि १६ अ०।

[ज़ंद] अंगूर।

क़लमा–[यू०, सिरि०] रेंड़। अरंड।

कलमाद्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] व्रीहि धान्य।

कलमाधान–संज्ञा पुं० [सं० कलम धान्य]।

क़लमावस–[?] चिरायता।

कलमाष–संज्ञा पुं० [सं०] घुँघची।

कलमास–वि० [सं० कल्माष] चितकबरा।

क़लमास–[?] चिरायता।

कलमासारक–[बं०] कलमीशाक।

क़लमियातीस–[यू०] सुगंधित रेबंद का एक भेद।

कलमी–वि० [फ़ा० क़लमी] (१) जो कलम लगाने से उत्पन्न हुआ हो। जैसे—कलमी आम, कलमी नीबू। (२) जिसमें कलम वा रवा हो। जैसे—क़लमीशोरा।

संज्ञा स्त्री० [सं० कलम्बी] (१) करेमू। कलमी साग। (२) करौंदा। (३) चेंच। चंचु।

कलमी आम–संज्ञा पुं० [फ़ा० कलमी+हिं० आम] वह आम जो कलम लगाने से उत्पन्न हुआ हो। बीजू का उलटा।

कलमी आमला–संज्ञा पुं० [फ़ा० कलमी+हिं० आमला] कलम लगानेसे उत्पन्न हुआ आँवला।

क़लमीक–[उ़मान] (१) गोलमिर्च के बराबर एक दाना हरनूह। (२) मलयागिरि चन्दन। (३) जंभीरी। जंबीरी नीबू।

क़लमीक़लून–[?] क़ैक़हर।

कलमी बेर–संज्ञा पुं० [फ़ा० कलमी+हिं० बेर] पेवंदी बेर।

कलमी लता–संज्ञा स्त्री०।

कलमी शाक–संज्ञा पुं० [बं०] करेमू।

कलमी शोरा–संज्ञा पुं० [हिं० कलमी+शोरा] साफ़ किया हुआ शोरा जिसमें कलमें होती हैं।

क़लमीस–[रू०] पुदीना।

क़लमुल् क़ितावत्–[अ०] धात्वर्थ लिखने का क़लम वा लेखनी। व्यवच्छेद शास्त्र की परिभाषा में मस्तिष्क के चतुर्थ कोष्ठ के आगे मस्तिष्क का एक भाग जो लेखनी के आकार का होता है।

Calamus scriptorious कैलेमस स्क्रिप्टोरियस (अं०)।

कलमुहाँ–वि० [हिं० काला+मुह] काले मुँह का। जिसका मुँह काला हो।

कलमूख़–[स्पेन] रासन।

क़लमूज–[?] रासन।

क़लमूनिया–[?] (१) वह रातीनज जो आग पर पकाया गया हो। (२) छोटे वा बड़े सनोवर की गोंद।

कलमोत्तम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०]
कलमोत्तमा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]
} एक प्रकार का बहुत अच्छा–

सुगंधित महीन धान। सुगंध शालि। रा० नि० व० १६।

कलम्निया बालसेमिक–[ले० Columnoea Balsamica] कपूर।

कलम्ब, कलम्बक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कदम का पेड़। कदंब। विश्वः। (२) शाक का डंठल। शाकनाड़िका। अम०। (३) शर। तीर। मे० वत्रिक। (४) सरसों। सर्षप। (५) धाराकदंब। रा० नि० व० ६। (६) नालिका शाक। कलमी शाक। (७) एक प्रकार का शालि धान। (८) धाराकदंब। हलदू।

कलम्बक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का चंदन। कालीयक।

संज्ञा पुं० [सं० कलम्बकम्] एक लता जाति की वनस्पति जिसकी बेल मलाबार के पर्वतों पर होती है। पश्चिम भारतवर्ष के जंगलों और लंका में भी यह प्रचुरता के साथ उपजती है और थोड़ी बहुत समस्त भारतवर्ष में पाई जाती है। इसकी बेल वृक्षके आश्रय से प्रतान विस्तार करती है। पत्र एकांतर, सवृंत और पत्रप्रांत अखंडित होते हैं। इसकी लकड़ी पीले रंग की और कड़ुई होती है। हरिद्रा की भाँति इससे एक प्रकार का हरिद्रावर्ण वा पीला रंग तैयार होता है। प्रकांड वा तना काष्ठल, बेलनाकार, १ से ४ इंच व्यास का होता है जिसके ऊपर कार्कवत् पांडु-पीत वर्ण की छाल चढ़ी होती है। इस पर लंबाई के रुख झुर्रियाँ पड़ी होती हैं। काष्ठ हरापन लिये पीत वर्ण का और चमकीला होता है। इसका कटा हुआ सिरा अत्यंत स्रोतपूर्ण और विशिष्ट प्रकार के मज्जागत किरणों (Medullary rays) से परिव्याप्त होता तथा इसमें वृत्ताकार रेखाओं (Concentric rings) का अभाव पाया जाता है। दार्वी काष्ठ की अपेक्षा यह बहुत कम कड़ा और रंग में भी उससे हलका होता है। इसके विपरीत सभी जाति के दार्वी काष्ठ एवं मूल बहुत कड़े और काष्ठीय होते हैं और उनकी रचना में कोई विशेष बात नहीं पाई जाती है।

पर्य्या०—कालीयकः (कालीयकं), कालेयकः (कालेयकं), कालेयं, कालीयं, कलम्बकं –सं०। कलम्बक, कलम्बा, (वैकल्पिक) –हिं०। झाड़ की हल्दी –हिं०, द०। कलमा, कलम्बा, कालिया, हल्दी गाछ –बं०। ट्री टर्मेरिक Tree Turmeric, फाल्स कैलंबा False Calumba सीलोन कोलम्बा Ceylon Columba, –अं०। कोसीनियम् फेनेस्ट्रेटम् Coscinium Fenestratum, *Coleber.*, मेनिस्पर्मम् फेनेष्ट्रेटम् Menispermum Fenestratum, *Gartn.* –ले०। मरमञ्जल–ता० मल०। मातु-पसुपु (पुष्पु) –ते०। मरमञ्जल –मल०। मरद-अरिशिना –कना०। झाड़ी हलदे –मरा०। वेनिवेल –सिंह०। झाड़ी हल्दी –बम्ब०।

नोट—यह दारुहरिद्रासे बिल्कुल भिन्न औषधि है। अस्तु, इसे दारुहरिद्रा मानना अत्यन्त भ्रमात्मक है। वस्तुतः यह कलंबा की जाति की एक भारतीय बेल है जो प्राचीन समय में कलंबा नाम से हो वा कलंबा की प्रतिनिधि स्वरूप व्यवहार में आती थी, अस्तु; इसे देशी कलंबा कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। आयुर्वेद में 'कलम्बक' और 'कालीयक' आदि संस्कृत पर्याय इसी के लिए आये हैं। दक्षिण में इसे झाड़ की हलदी कहते हैं।

गुडूच्यादि वर्ग

(*N. O. Menispermaceœ.*)

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारतवर्ष विशेषतः पश्चिम भारतवर्ष, लंका, मलाबार, इत्यादि।

प्राप्ति स्थान—दक्षिण भारत के बड़े बाजारों में यह सहज सुलभ है।

औषधार्थ व्यवहार—प्रकांड एवं मूल।

रासायनिक संघटन—इसमें दार्वीन (Berberine) नामक एक क्षारोद अल्प मात्रा में पाया जाता है। यह क्षारोद ही उक्त दार्वी का मुख्य सत्व है।

औषध निर्माण—शीतकषाय (२० में १)

निर्माण विधि—इसके बारीक टुकड़े एक आउन्स लेकर एक पाइन्ट शीतल परिस्रुत वारि में आध घण्टा तक भीगा रखकर छान लेवें।

मात्रा—४-१२ ड्राम। टिंक्चर (१० में १) मात्रा—आधे से १ ड्राम। क्वाथ, मात्रा—आधे से १ आउंस। अथवा दारुहरिद्रा एवं तज्जातीय अन्य वनस्पति मूलवत्।

इसकी प्रतिनिधि स्वरूप युरूपीय औषधें—सिंकोना वल्कल, जेंशन और कलंबा।

गुणधर्म तथा प्रयोगादि—

ऐन्सली—देशी लोग इसके काष्ठ के कटे हुये छोटे २ टुकड़े को मूल्यवान् तिक्त औषध जानतेहैं। (मे० इं० २ भ० पृ० ४६१)

डीमक—मद्रास प्रांत के आतुरालयों में तिक्त वल्य भेषज रूप से यह आजतक व्यवहार में आता है। (फा० इं० १ भ० पृ० ६३)

मोहीदीन शरीफ़—यह ज्वर हर (Anti-pyretic), पर्य्याय-ज्वरप्रतिषेधक (Anti-peridic) वल्य और जठराग्निदीपक (Stomachic) है। साधारण संतत (Continued) और विषम ज्वर, दौर्बल्य और कतिपय प्रकार के अजीर्ण में उक्त औषधि उपकारी है। (मे० मे० मै० पृ० ११)

नादकर्णी—यह तिक्त दीपन-पाचन (Stomachic) एवं बल्य है। यह कलम्बा की सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि है। शीतलतादायक औषध की भाँति शिर में इसका प्रलेप करते हैं, तथा घृष्ट पिष्ट (Bruises & contusions) क्षतों में भी इसका व्यवहार करते हैं। संतत और विषम ज्वरों एवं ज्वरोत्तर कालीन सार्वदैहिक दौर्बल्य तथा कतिपय प्रकार के अजीर्ण में इसका शीतकषाय वा टिंक्चर अतीव गुणकारी होता है। (इं० मे० मे०)

आर० एन० चोपरा—इसकी जड़ तिक्त, बल्य और जठराग्निदीपक मानी जाती है और कलंबा की भाँति व्यवहार में आती है। विषम ज्वर, सार्वांगिक दौर्बल्य, अजीर्णव्रण (Ulcer) और सर्पदंश में इसका उपयोग होता है। (इं० ड्रू० इं०)

इसके भक्षण करने से मुखगत लाला स्राव और आमाशयिक रसोद्रेक वर्द्धित हो जाता है। इससे पाचनशक्ति एवं क्षुधा तीव्र हो जाती है। यह वायु को नष्ट करता, सड़ने गलने की क्रिया को रोकता और उदरज कृमियों को नष्ट करता है।

कलम्ब शालि—संज्ञा स्त्री० [सं० पुं०] एक प्रकार का शालि धान। कलमा धान। जड़हन।

कलम्ब शाली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कोकिलाक्ष। तालमखाना। नि० शि०।

कलम्बा—संज्ञा पुं० [अफ्रीका वा सं० कलम्बक] एक लता जातीय उद्भिज जो पूर्वी अफरीका के वनों में, मोज़म्बीक कूल पर जंबेसी और मैडागास्कर प्रदेश में होता है। इसके बेलदार वृक्ष को पश्चिम की वैज्ञानिक परिभाषा में जेटियो रहा इजा कैलम्बा Jateorhiza Calumba; *Miers.* कहते हैं। इसकी जड़ के आड़े या वक्राकार खंड काटकर सुखाकर रख छोड़ते हैं जो

चपटे विषमतया वृत्ताकार या अंडाकार होते हैं, ये लगभग दो इञ्च व्यास के और $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ इञ्च तक या अधिक मोटे होते हैं। किनारों का भाग मोटा और रंग में भूरापन लिए पीला और झुर्रीदार, बीच का भाग रंग में हरापन लिये पीला होता है। मँहक काई की तरह (Mossy) और स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। ये सरलता पूर्वक चूर्ण हो जाते हैं। यह जड़ दवा के काम में आती है।

पर्य्यायः—वृत्त—जेटियोर्हाइज़ा कोलंबा Jateorhiza Columba, *Miers.* Menispermnm Columba, *Roxb.* —ले०। कैलंबा Calumba —अं०। कोलोम्बो Colombo फ्रां०।

जड़—कलंबा, कलंबा की जड़, कैलंबा की जड़, कलंबे की जड़, कलंब की जड़ —हिं०, द०। रश्र् युल् हमाम, साक़ुल् हमाम —अ०। गाव मुशंग, देवमुशंग, बीख़े कलबः फ़ा०। कलंबा वेर —ता०। कलंबा वेरु —ते०। कलंबूरु—सिंह०। कलंब—(मोजम्बीक) कलंब कचरी—बम्ब०। कैलंबो Calumbo, कैलंबो रूट Calumbo root—अं०। कोलंबा रूट Columba root कैलंबो रैडिक्स Calumbæ Radix —ले०। कलस्तारियून—यु०। Raizde Columba—(पुर्त्त०)। कोलंबा—फ्रां०।

टिप्पणी—उक्त औषधि की युनानी संज्ञा 'क़लस्तारियून' है जिसे मुहीत आज़म प्रभृति युनानी द्रव्य-गुण विषयक ग्रंथों में भूल से फ़ारस्तारियून लिखा है। कपोत को उक्त वृत्त पर चरना और निवास करना बहुत पसंद है। इसलिये इसकी आरब्य संज्ञा रइयुल् हमाम अन्वर्थ ही है। मफ़ज़नुल् अदविया में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है। डीमकोक़ आरब्य संज्ञा साक़ुल हमाम (Dove's foot) भी अन्वर्थक ही है। दक्षिणी दार्वी (कलंबक वा झाड़ की हलदी) भी इसी जाति की एक सुदीर्घ लता है जिसकी जड़ दवा के काम में आती है। दारुहलदी में इसका मिश्रण भी करते हैं। कलम्बक संस्कृत संज्ञा के लिये यथा स्थान देखें।

गुडूच्यादि वर्ग

(*N. O. Menispermaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—ओइबो, मोजम्बीक(अफरीका)।

औषधार्थ व्यवहार—जड़।

रासायनिक संघटन—(१) कोलम्बीन (Columbia) नामक एक वर्ण रहित स्फटिकीय तिक्तसार, (२) दार्बीन Berberine धर्मी, कोलंबामीन (Columbomine) पालमेटीन (Palmatine) और जेटियोरहाइज़ीन (Jateorhizine) संज्ञक पीत स्फटिकीय क्षारोद त्रय। (३) कोलंबिक एसिड (Columbic acid) (४) श्वेतसार और (५) लबाब (Mucilage) इसमें कषायाम्ल (Tannic acid) का अभाव होता है।

मात्रा—५ से १५ रत्ती (१०–३० ग्रेन) *B. P.*

इतिहास—अफरीका निवासियों को तो उक्त औषधि बहुत प्राचीन काल से ज्ञात है। अतः अति प्राचीनकाल से ही वे इसे प्रवाहिका और आंत्र सम्बन्धी अन्य रोगों में प्रयुक्त करते रहे हैं। परंतु यह प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में इसका प्रवेश पुर्त्तगालवासियों द्वारा हुआ। पुर्त्तगालियों द्वारा सन् १६७१ ई० में यह औषधि युरूप में पहुँची, यह फ्लकीजर और हेनबेरी के अन्वेषणों से प्रतिपन्न होता है।

उक्त काल के थोड़े समय बाद फ्रान्सिस्को रेडो ने इसके विषघ्न गुण का उल्लेख किया। तब से लेकर उस काल तक यह औषधि एक प्रकार विस्मृत सी हो गई थी, जब तक कि यह सन् १७७३ ई० में परसीवल द्वारा पुनः प्रेषित नहीं की गई। उस समय से साधारण बल्य औषधि की भाँति युरूप से यह अक्षुण्ण रूप से व्यवहार में आ रही है। भारतस्थित प्राचीनतर आंग्ल चिकित्सकों को इसका परिज्ञान संभवतः पुर्त्तगालियों से हुआ। मदरास में उक्त औषधि सन् १८०५ ई० में प्रविष्ट हुई और उसके उपरांत बंगाल और बम्बई में। परंतु अब यह सर्वथा विलुप्त प्राय हो गई है।

औषध-निर्माण—एलोपैथी मेटिरिया सम्मत योग—

(१) इन्फ्युजम कैलंबी कन्सण्ट्रेटम्—Infusum Calumboe Concentratum –ले० ।

मात्रा—३० से ६० बूंद (=२ से ४ मिलिग्राम) ।

(२)इन्फ्युजमकैलंबी–Infusum Calumbæ. –ले० । ५% (अर्द्ध घंटा) ।

एक भाग कलम्बा मूल, बीस भाग शीतल जल में क्लेदित कर प्रस्तुत करें ।

मात्रा—आधे से १ आउन्स (= १५–३० मिलिग्राम) । ताज़ा शीत कषाय प्रस्तुत करके १२ घंटे के भीतर उपयोग में लाना चाहिये ।

(३) टिंक्चुरा कैलंबी—Tinctura Calumboe. –ले० । कलम्बकासव, कलंबे का टिंक्चर, १०% ।

एक भाग कलम्बकमूल को दस भाग सुरासार (६०%) घटित कर प्रस्तुत करें । यह पीताभ धूसर वर्ण का द्रव होता है ।

मात्रा–३० से ६० बूँद (२से ४ मिलिग्राम)।

नोट—कलंबा की जड़ और तद्घटित योगों में कषायिन (Tannin) नामक कषाय द्रव्य नहीं होता। अतएव लौह घटित सभी योगोंमें यह क्वाशिया की भाँति सेव्य है । इसके निर्माण में शीतल जल व्यवहार में लायें, वरन् शीत कषाय में श्वेतसार के मिलने की संभावना पाई जाती है ।

गुण धर्म तथा प्रयोग—

ह्विटला—कलंबा की जड़ सुप्रसिद्ध शुद्ध तिक्त वल्य औषधि है जो कषायिन (Tannin) के अभाव के कारण कषायत्व शून्य होती है और लौह के साथ स्वच्छन्दतया व्यवहार की जा सकती है । आमाशय के ऊपर कलंबा का प्रभाव चिरायता, क्वाशिया और जेंशन के बहुत समान होता है । मुख और जिह्वागत प्रान्तःस्थ वात तंतुओं पर प्रभाव डालकर ये निगलने से पूर्व आमाशयिक रस और लालास्राव वर्द्धित करते हैं इनके आमाशय में पहुँचते ही आमाशयिक रसोद्रेक और भी वर्द्धित हो जाता है और संभवतः अंगों की रक्तनलिका विस्तार Vascularity कुछ अधिक हो जाती है क्योंकि अधिक मात्रा में इनसे क्षोभ उत्पन्न होता है और अधिक काल पर्यन्त सेवन क्रम जारी रखने से उत्तेजनाधिक्य द्वारा एक सामान्य प्रकार का आमाशयिक शोथ उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार आमाशयिक रस स्राव अधिक स्वच्छन्दता पूर्वक होने लगता है ।

दाँत निकलते समय बच्चों को जो कष्ट होता है उसमें भी यह ओषधि गुणकारी है ।

मेडागास्कर और इंडोचीन में इसकी जड़ कटु पौष्टिक और अग्निवर्द्धक वस्तु के रूप में काम में ली जाती है । वहां के निवासी इसे पेचिस एवं अन्य रोगों में देते हैं ।

जब शरीरमें कमज़ोरी हो, भूख कम लगती हो, अन्न हज़म नहीं होताहो, जी मिचलाता हो, गर्भावस्था में वमन होता हो, उस समय इस औषधि के सेवन से बड़ा उपकार होता है ।

कलंबा रूट–संज्ञा पुं० [अं० Calumba root] दे० "कलंबा की जड़" ।

कलंबा वेर–[ते०] } कलंबा की जड़ ।
कलंबा वेरु– [ता०] }

कलम्बिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का पक्षी । चटक पक्षी । वै० निघ० ।

कलम्बिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गरदन के पीछे की नाड़ी । मन्या । हे० च० । (२) कलमी साग । करेमू । श० र० ।

कलम्बिकी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की चिड़िया ।

कलम्बी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कलमी साग । करेमू । प० मु० । शब्दर० । राज० ३ प० । भा० । वि० दे० "करेमू" । (२) पोई का साग । उपोदकी । रा० नि० व० ७ ।

कलम्बी रैडिक्स–संज्ञा पुं० [ले० Calumbae Radix] कलंबा की जड़ ।

कलम्बु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करेमू । कलमी साग । श० र० ।

कलम्बुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का जलीय शाक । करेमू । कलमी साग । भैष० शूल चि० शम्बुकादि गुटिका ।

कलम्बुट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) नैनी घी। नवनीत। मक्खन। (२) हैयंगवीन। ताजे दूध का घी। हारा०।

कलम्बू–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करेमू। कलमी साग। श० र०।

कलंबे की जड़–संज्ञा स्त्री० [कलंबा+की+जड़] बीख़े कलंबः। कलंबा की जड़।

कलंबो–[कों०] मुंडी।
[फ्रां०] कलंबा।

कलयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] राल। सर्ज्ज रस। वै० निघ०।

क़लया–[अ०] सज्जी। अशफ़ार।

कलया–[फ़ा०] सज्जी।
[सिरि०] दर्द मंतन।
[रू०] कर्श। ओझड़ी।

क़लयून–[यू०] इसबगोल।

क़लयूस–[यू०] सज्जी। अशफ़ार।

कलरकोडी–[ता०] कठकरंज। कुबेराक्षी।

कलरलेस आयोडीन–संज्ञा स्त्री० [अं० Colourless Iodine] वर्ण रहित टिंक्चर आयोडीन। दे० "आयोडम्"।

कलरलेस फ्लुइड गोल्डेन-सील–संज्ञा पुं० [अं० Colourless golden seal] हाइड्राष्टिस डिकलरेटा।

कलरव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मधुर शब्द। कल ध्वनि। (२) पालतू कबूतर। गृहपारावत। अम०। (३) कोकिल। कोयल। रा० नि० व० १६। (४) जंगली कबूतर। वनकपोत। वै० निघ०।

कलराई–[कनावार] कटकाई। पलूदर। रेवड़ी (मेलम)।

कलरु–संज्ञा पुं० [देश०] गुलू। कुलू। कतीरा।

कलरुख़–[मरा०] शीशम। सीसो।

कलरेई–[कनावार] पलूदर। रेवड़ी।

कलर्व–[ता०] पीलू। झाल।

कलल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] जरायु। गर्भवेष्टन-चर्म।
संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) मिश्रित शुक्रशोणित रूप गर्भ। (Fertilized ovum) अ० शा०। (२) सेल समूह। (*Morula*) ह० श० र०।

नोट—शुक्र और शोणित का प्रथम विकार 'कलल' कहलाता है। गर्भ के प्रथम मास कलल बनताहै। सुश्रुत के अनुसार ऋतुस्नाता स्त्री के स्वप्न में मैथुन आचरण करने से गर्भ रह जाताहै। किंतु उस गर्भ में अस्थि प्रभृति पैतृक गुण नहीं होता। इसी से 'कलल' मात्र निष्फल पड़ता है।

कललज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) गर्भ। हमल (२) राल। रा० नि० व० १२।

कललजोद्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] साल का पेड़। शाल का वृक्ष। रा० नि० व० ६।

कललावी–[गु०] कलिहारी।

कलवर्ट्स रूट–संज्ञा पुं० [अं० Culvert's root] दे० "लेप्टैण्ड्रा"।

कलवा–[?] कमोद। लु० क०।
[फ्रा०] मलूक।
[बर०] ढाकुर।

कलवारी–[सिंध] कत्रा वेर।

कलवा सफ़ेद–संज्ञा पुं० [देश०] कखिम।

कलविङ्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) चटक। गौरैया। अम०। रत्ना० ६।

पर्य्या०—कुलिंग, कालकण्टक–सं०। भावप्रकाश में कलविंक को शीतल, स्निग्ध, स्वादु, शुक्र एवं कफकारक और सन्निपात नाशक लिखा है। गृहचटक अतिशय शुक्रकारक है।
(२) कलिंदा। तरबूज़। कलिंगक वृक्ष। (३) पारावत। कबूतर। (४) ग्राम्यचटक। देहाती गौरैया। मे० कचतुष्क। (५) काला गौरैया। कृष्ण चटक। सु० सू० ४६ अ०। सफेद चँवर। श्वेत चामर।

कलविङ्की–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चटका। मादा गौरा।

कलवी–[?] करौंदा।

कलवी काय–[ते०] करौंदा। करमर्द।

कलवेल–[मल०] हुरहुर। हुलहुल।

कलश–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० अल्पा० कलशी] (१) पानी रखने का बरतन। घड़ा। गगरा। अ० प्र० १ ख०।

पर्य्या०—घटः, कटः, निपः, (अ०), कलसं कलसिः, कलसी, कलशि, कलशी. कलशं, (अ० टी०), कुम्भः, करीरः (हे०)। (२) एक प्रकार का मान जो द्रोण (१६ सेर=वा ८ सेर) के बराबर होता था। (३) चोटी। सिरा।

कलशपोतक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक सर्प। (भारत, आदि ३६ अ०)

कलशि, कलशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पिठवन। पृष्ठपर्णी। रत्ना०। (२) गगरी। छोटा कलसा।

कलशी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पिठवन। पृष्टपर्णी नि० शि०। रा० नि०।

कलश–संज्ञा पुं० दे० "कलश"।

[?] किलस।

कलसा–[सिरि०] लिसोढ़ा।

कलसादलावहज–[सिरि०] वह चूना जो पानी में न मारा गया हो। बिना बुझा चूना। कली।

कलसरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० काला+सर वा सिर] एक चिड़िया जिसका सिर काला होता है।

कलसा–संज्ञा पुं० [सं० कलस] [स्त्री० अल्पा० कलसी] दे० "कलश"।

कलसाना–[यू०] गुले लाला।

कलसि, कलसी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पृश्निपर्णी। पिठवन। प० मु०। रा० नि० व० ४। सु० सू० ३८ अ०। सि० यो०। च० द० ज्व० चि० किरातादि। यक्ष्म० चि० बलाद्यघृत। वा० चि० १ अ०। "कोल सूक्ष्माम्ल कलसी"। (२) गगरी। जलपात्र विशेष।

कलसिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पृश्निपर्णी, पिठवन। भैष० (२) कलस। के०।

कलसिस–संज्ञा [देश०] सिरिस।

कलसी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दे० "कलसि"।

कलसुन्दा–[बम्ब०] कटसरैया।

कलसूस–[Celsus] एक रोम देशीय हकीम जो वहाँ के हकीमों में पहला था जिसने चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास लिखा है।

क़लहंदीक़ून–[?] बलचूस।

कलहंस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हंस। (२) राजहंस। कादंब हंस। रत्ना०। पर्य्या०–कादम्बः (ख), कलनादः, मरालकः (रा०)। "पत्त्रैराधूसरैर्हंसाः कलहंसा इतिस्मृताः।" हला०। (३) पीले रंग का हंस। (४) जलमुर्ग़ी। जल कुक्कुट। वै० निघ०।

पर्य्या०—कादम्बः (ख), कलनादः। मरालकः (रा०)

(५) सहिजन बीज १८, मिर्च १०, पीपर २०, अदरख १ पल, गुड़ १ प०, काँजी ३ प्रस्थ, तथा विड लवण १ प०, इन सब ओषधियों को उक्त परिमाण में लेकर एक निर्मल पात्र में डालकर मंथन दण्ड से मंथन करें। फिर इसमें दाल चीनी, इलायची, तेजपत्र नागकेशर इनका चूर्ण एक पल परिमाण में डाल दें।

गुण—इसे उपयुक्त मात्रा में सेवन करने से हजारों प्रकार के व्यञ्जन पच जाते हैं और अरुचि नष्ट हो जाती है। कण्ठस्वर हंसवत मनोहर हो जाताहै। इसीलिए इसका नाम "कलहंस" है।

मात्रा—१–२ तो० तक।

कलहंसक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अरोचकाधिकारोक्त कवल मात्र। उक्त कवल के धारण करने से मुख वैशद्य और रुचि उत्पन्न होती है। च० द० अरो० चि०।

कलह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मुण्डी। वा० सू० सुरसादि व०। (२) खड्ग। तलवार। मे०। (३) तलवार की म्यान। खड्गकोष।

क़लह–[अ०] (१) उश्शक। एमोनाइकम्। (२) दाँतों की मैल जो दाँतों की जड़ों में जम जाती है। पिलाई लिये एक प्रकार की मैल जो दाँतों की जड़ों में जमकर पथरा जाती है। दंतमल। हज्र। टार्टार Tartar (अं०)।

कलहत्ती–[क०] डीकामाली। वंशपत्री।

कलहनाशन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुरैया। कुटजवृक्ष। (२) पूतीकरंज। नाटा करंज। श० मा०।

कलहप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोराटिका। सारिका। मैना। रा० नि० व० १९।

कलहड़पात–संज्ञा पुं० [हिं० कल=काला+हड़+पात=पत्ता] नुसखा सईदी नामक हस्तलिखित पुस्तक के अनुसार एक प्रकार की ललाई लिये काले रंग के पत्ते जो नैपाल और नादौन के पर्वतों से लाये

जाते हैं। ये तमाकू के पत्ते से मिलते-जुलते पर उनसे छोटे होते हैं।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

गुण धर्म तथा उपयोग—यदि गले में सूजन आजाय, तो थोड़ा सा कलहड़पात सोते समय मुँह में रखकर सो जायँ, जिससे कंठ में बराबर लाला उतरती रहे। कुछ दिन के सेवन से लाभ होगा। ख० अ०।

कलहलवा–[?] Amaranthus Gangeticon लाल साग।

कलहाकुला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सारिका। मैना। वै० निघ०।

कलहार–संज्ञा पुं० [देश०] कलिहारी। लांगली।

कलहारी–संज्ञा स्त्री० [देश० राजपुताना] कलिहारी।

कलहिंस–संज्ञा पुं० [देश०] कलिहारी।

कलहिसरा–संज्ञा पुं० [देश० गढ़वाल] एक प्रकार का अञ्जू जिसका फल पीला होता है। वि० दे० "अञ्जू"।

कलहिसरी–संज्ञा स्त्री० [देश० गढ़वाल] एक प्रकार का अंचू जिसका फल काला होता है। वि० दे० "अंचू"।

कलहेन्योक–[लेपचा] एक ओषधि।

कलहेर–संज्ञा पुं० [देश०] अंचू।

कलंक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] खुर्फ़ा के बीज। तुख़्म खुर्फ़ा।

कलंकक–संज्ञा पुं० [फ़ा०] ख़रबूज़े का बीज। तुख़्म खुरपज़ः।

कलंकतार–संज्ञा पुं० [रू०] जोज ज़र्द।

कलंकनी–[?] कीर। अलकतरा।

कलँगग–संज्ञा पुं० [सं० कलिंग] तरबूज़। कलींदा।

कलँगा–संज्ञा पुं० [हिं० कलंगी] दे० "कलगा"।

कलंगिडा–[कना०] खरबूज़ा। ककड़ी।

कलँगी–संज्ञा स्त्री० [?] दे० "कलगी"।

कलंगु–[ता०] ठक करंज। नाटा करंज।

कलंगूर–[फ़ा०] जावा लोबान। ज़र्व।

कलंगो–संज्ञा स्त्री० [हिं० कली] पहाड़ों में होने वाली जंगली भांग का वह पौधा, जिसमें बीज लगते हैं। फुलंगो शब्द का यह उलटा हो गया है।

कलंचिक-कुरु–[मल०] कठ करंज। नाटा करंज।

कलंची–[मल०] कठ करंज। नाटा करंज।

कलंजक–[फ़ा०] कर्कट। केकड़ा।

कलंजरे–[फ़ा०] (१) केकड़ा। (२) अंगूरका एकभेद

कलंब–संज्ञा पुं० [मरा०] कदम। कदंब।

कलंबक–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का सर्वोत्तम सुगंधित अगर। (२) मलयागीर चंदन। (३) बड़ा नीबू।

क़लंबक–संज्ञा पुं० [?] खुशबूदार ऊद।

[अ०] बड़ा नीबू।

कलंब-कचरी–[बम्ब०] दे० "कलम्बा"।

कलंबा–[उड़ि०] बिजौरा नीबू।

संज्ञा पुं० [अं० Calumba]

कलंबाबेर–[ता०] दे० "कलम्बा"।

कलंबावेरु–[ते०] दे० "कलंबा"।

कलंबेकी जड़–[देश०] कलंबामूल। (Calumba root)

कलाँ–वि० [फ़ा०] बड़ा। दीर्घाकार। ख़ुर्द का उलटा।

कला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) समय का एक विभाग जो तीस काष्ठा का होता है। सु० सू० ६ अ०।

नोट—किसी के मत से दिन का $\frac{१}{१००}$ वाँ भाग और किसी के मत से $\frac{१}{१८००}$ वाँ भाग होता है। (२) स्त्री का रज। (३) आवर्तकी। विषाणिका। रङ्गलता। रक्त आहुली। रा० नि०। नि० शि०। (४) शरीर का प्रत्यंग विशेष झिल्ली। (munbrane) आयुर्वेद में यह सात हैं। मांसधरा, रक्तधरा, मेदोधरा, श्लेष्मधरा, पुरीषधरा, पित्तधरा और शुक्रधरा। सु० शा० ५ अ०। भा० म० १ भ०। (५) केला। कदली। प्राचीन भारतीय केले की नौका बनाकर जल मार्ग से आवागमन करते थे। (६) घोड़े के जंघा के बगल का भाग। ज० द० २ अ०१। (७) मैनसिल। मनःशिला। (८) चंद्रमा का सोलहवाँ भाग। वृद्धि नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। त्रिका०। (१०) अंश। भाग। मे० लद्विकं। (११) जिह्वा। ज़बान।

[बं०] केला ।
[फ़ा०] मेंढक । मंडूक ।

क़ला–[अ०] सजी । क़िली ।

क़लाअ्ज़ारह–[असफ़हानी] महोखा पक्षी । अक्क-अक्क ।

कलाई–संज्ञा स्त्री० [सं० कलाची] (१) पहुँचा । मणिबंध । मणि । साइद । ज़िराअ–अ० । (Wrist) ।
संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ] उरद । माष ।

कलाकंद–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार की बरफ़ी (मिठाई) जो खोए और मिस्री को बनती है ।

कलाकमूश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] जंगली चूहा ।

कलाकार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अशोक की तरह का एक पेड़, जो बंगाल और मदरास में होता है । इसे कहीं कहीं 'देवदारी' भी कहते हैं ।

कलाकरा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शरीफ़ा जिसकी पत्ती बड़ी होती है । जायफल का एक भेद ।

क़लाक़ल–[अ०] हब्ब क़ुलक़ुल । चकवड़ । पमाड़ ।

कलाकला–[?] लोफ़ कबीर ।

क़लाक़लीत़स–[यू०] अक़लीमिया ।

कलाकल्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०]

क़लाक़ो–[?] (१) फ़ाख़्ता । पंडुक । (२) फ़ाख़्ता की तरह का एक पक्षी ।

कलाकुल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] हलाहल विष । रा० नि० व० ६ ।

कलाकेलि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कामदेव । कंदर्प । वि० [सं० त्रि०] विलासी ।

कलाखै वाऊ–[बर०] चूका ।

कलांकुर–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] The bird Ardea Sibirica करांकुल पक्षी । सारस पक्षी । त्रिका० ।

कलांगुलि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का शालि धान । च० सू० २७ अ० ।

कलाचक–[फ़ा०] कौड़ी ।

कलाचिका, कलाची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलाई । प्रकोष्ठ । हे० च० । (२) घोड़ेका घुटने से आगे का भाग । अश्व के जानु वा घुटने का अगला भाग । ज० द० २ अ० ।

कलाज़्.., कलाज़ह–[फ़ा०] महोखा पक्षी । अक़अक़ ।

क़लाज़्–[?] आज़रबूयः ।

कलाजाजी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलौंजी । मँगरैला । कारवी । कृष्णजीरक ।

कलाजाती–संज्ञा स्त्री० [?] गोलशाम ।

क़लाज़ाह–[?] (१) एक प्रकार का कौआ । (२) महोखा पक्षी । अक़अक़ ।

कलाटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गरुड़ शालि । एक धान । रा० नि० व० १६ ।

कलाटीन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खंजन पक्षी । हारा० ।

क़लात़्–[अ०] मछली ।

क़लात़्यूर–[?] शामी कर्नब । कुम्बीत़ ।

क़लात़ानस–[?] चुनार । चिनार का पेड़ ।

क़लात़ानूस़–[?] कुलथी ।

कलाद (क)–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सोनार । स्वर्णकार । त्रिका० ।
[फ़ा०] मेंढक । मंडूक ।

कलाद:, कलादू–[फ़ा०] मेंढक । मंडूक ।

कलाधिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मुर्ग़ा । कुक्कुट ।

क़लान–[तु०] जंगली गदहा । गोरख़र ।

कलान–[बर०] कसौंदा । कासमर्द ।

कलानुनादी–संज्ञा [सं० पुं० कलानुनादिन्] (१) गौरैया । चटक । कलविंक । (२) चातक । पपीहा । (३) भौंरा । भ्रमर । मे० नषटकं । (४) (४) कपिञ्जल ।

क़लानुशा–[?] एक वनस्पति जिसको 'ख़ोख़ुल्मरूज' कहते हैं । इसका कारण यह है कि यह रंग में ख़ोख़ अर्थात् आड़ू की तरह होता है । इसकी पत्ती एवं शाखाएँ भी उससे सादृश्य रखती हैं । भेद केवल यह है कि इसकी पत्ती आड़ू की पत्ती से किंचित् छोटी तथा चौड़ी होती है । इसमें गाँठें पास-पास होती हैं । डालियाँ भूमि पर आच्छादित होती हैं । इसमें चेंप होता है और इसका स्वाद फीका होता है ।

गुण-धर्म—इब्नबेतार के अनुसार इसका रस पीने से सीने से थूक में ख़ून का निकलना बंद हो जाता है । इसकी वर्ति योनि में धारण करने से ख़ून का आना बंद हो जाता है । गुणधर्म में यह

ओषधि यूनानी लूसीमाख़ियूस के समान होती है। मानो यह उसका ही एक भेद है। इब्नबेतार कहते है, कि मैंने इसको मिस्र के सिवा और कहीं नहीं देखा।

कलाप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) मोरकी पूँछ। मयूरपुच्छ। हला०। (२) समूह। झुंड। संहत। (३) काँची। गुञ्जा। मे० पत्रिकं।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कँवलगट्टा। पद्मबीज। (२) वंशबीज। बाँस का बीया। बाँस का चावल। वै० निघ०।

कलापक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) हाथी के गले का रस्सा। हे० च०। (२) समूह।

कलापाचा–संज्ञा पुं० चतुष्पद जीवों विशेषत: बकरीके हस्त-पाद। पाचा–फ़ा०। अकारिअ् (कुराअ् का बहु०)–अ०। यह अरुण वा श्वेत रंग का होता है जिससे बसागंध आती है।

प्रकृति—गरम और तर। यह दीर्घपाकी तथा पिच्छिल है।

स्वाद—मांसवत् पर अपेक्षाकृत अधिक स्निग्ध।

हानिकर्त्ता—क्लोलंज उत्पन्न करता है।

दर्पघ्न—सिरका, शहद और दालचीनी।

प्रतिनिधि—बकरी का बदल उत्कृष्टतर है।

मात्रा—आवश्यकतानुसार।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह ग़लीज़ तथा दीर्घपाकी है। परन्तु पच जाने पर उत्तम ख़ून पैदा करता है। यह समशीतोष्ण आहार है और निर्बल, अर्शार्त्त और सहज रोगी के लिये लाभकारी है। वक्ष एवं कंठगत शोष तथा कर्कशता, होंठ और ज़बान फटने, आवाज़ पड़ने, शुष्क कास, उर:क्षत, यक्ष्मा और कृच्छ्र इनको लाभ पहुँचाता और आभ्यंतरिक व्रणों का पूरण करता है। गोंद के साथ यह पेचिस का निवारण करता है। इसका तेल मलने से शिरःशूल और संधिगत वेदना जाती रहती है।–बु० मु०। वि० दे० "कुराअ्"।

कलापिड जइन–[बर०] नाज़बू।

कलापिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) नागरमोथा। रा० नि० व० ६। (२) रात्रि। रात। (३) मयूरी। मोरनी।

कलापी–संज्ञा पुं० [सं० पुं० कलापिन्] [स्त्री० कलापिनी] (१) मोर। मयूर। हला०। (२) कोकिल। (३) पाकर का पेड़। प्लक्ष का वृक्ष। मे० नचतुष्कं। (४) बरगद का पेड़।

वि० [सं० त्रि०] झुन्ड में रहनेवाला।

[द०] कलिहारी। लांगली।

कलाफ़ी–[अ०] सफ़ेद अंगूर जिसमें सब्ज़ी हो।

क़लाब–[?] भेड़िया। लु० क०।

कलाबश–[अफ़रीका] Crescentia Cujote, *Linn.* कलाबाश।

कलाबीन–संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष जो सिलहट, चटगाँव और बर्मा में होता है। यह ४०–५० फुट ऊँचा होता है। इसके फल के बीज को मुँगरा चावल वा कलौंथी कहते हैं, जिसका तेल चर्म रोगों पर लगाया जाता है।

क़लाबू–[?] सीतासुपारी। लु० क०।

कलाम–संज्ञा पुं० [अ०] वाक्य। वचन। उक्ति। (२) बातचीत। कथन। बात।

कलाम–[फ़ा०] केउआँ।

क़लाम–[?] रक्षयुल्इब्ल। (२) क़ाक़ली।

कलामक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलमी धान। कलमधान्य। जड़हन। हे० च०।

क़लामती–[यू०] नहरी पुदीना।

कलामयखंड–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (Membranous particu) कलामय भाग। अ० शा०।

कलामयगहन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (Mewbranous Labyrinth.) झिल्लीदार गहन। अ० शा०।

क़लाम्तून–[यू०] जरंबाद। नरकचूर। कचूर।

क़लामामानस–[यू०] पहाड़ी वा जंगली पुदीना।

क़लामीन–[अ०] (Zinc carbonate) Calamine कलीमिया। इक़लीमिया। दे० "जस्ता"।

क़लामीस, क़लामीसी–[यू०] नहरी पुदीना।

क़लामुस अरोमातीक़स–[यू०] Calamus aromaticus वच।

कलामोचा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो बंगाल में होता है।

कलाय-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार का शिंबी धान्य । मटर । र० मा० ।

पर्य्या०-सतीलकः, हरणुः, खण्डिकः (ऋ०), त्रिपुटः, अतिवर्त्तुलः (र०), मुण्डचणकः, शमनः, नीलकः, कण्ठी, सतीलः, सतीनः, हरेणुकः, सतीनकः । (Pisum sativum) यह दो प्रकार का होता है—(१) त्रिपुत्र और (२) गोलाकार (वर्त्तुल) । वाग्भट के अनुसार यह अत्यन्त वातकारक है । वा० सू० शिम्बी धान्यवर्ग । पित्तनाशक, दाहनाशक, कफनाशक, शीतल, कसेला, रुचिकारक, पुष्टिकारक और आम दोष कारक है । रा० नि० व० १६ । वि० दे० "मटर" । (२) एक प्रकार का शिंबी धान्य जिसे माषक भी कहते हैं ।

कलायक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलमा धान । कलम शालि । रा० नि० व० १६ ।

गुण—कुछ-कुछ कसेला, मीठा, बिगड़े हुये रक्त को ठीक करता, बल कारक कुछ-कुछ वात के साथ पित्त को शमन करता और गुण में मूँग की तरह होता है । अत्रि० १५ अ० ।

कलायका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मत्स्याक्षी मछरिया । मछेछी । (२) गाँडर दूब । गंड दूर्व्वा । वै० निघ० ।

कलायखञ्ज, कलायखण्ड-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का वायु का रोग जिसमें रोगी के जोड़ों की नसें ढीली पड़ जाती हैं और उसके अंगों में कँपकँपी होती है । वह चलने में लँगड़ाता है । सु० नि० १ अ० । मा० नि० वा० व्याधि ।

कलाय गुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मटर का चूर्ण २ भाग, तथा लोहभस्म १ भाग । इन दोनों को उक्त परिमाण में लेकर करेले के पत्तों को रस के साथ घोट कर एक-एक कर्ष की गोलियाँ बनाएँ । यह मात्रा प्राचीन काल की है इसलिये आजकल के अनुसार तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बनानी चाहिये ।

गुण—इसको मण्ड के साथ सेवन करने से असाध्य अम्लपित्त का नाश होता है । चक्र द० अम्ल पि० चि० ।

कलाय बोगोटी-[नेपा०] वायविडंग ।

७० फा०

कलायशाक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मटर वा केराव का साग ।

गुण, प्रयोग—

भावप्रकाश में इसे भेदक, हलका, कड़ुआ और त्रिदोष नाशक लिखा है । भा० पू० १ भ० शाक व० । सुश्रुत के अनुसार यह पित्तनाशक, कफनाशक, वातकारक, भारी, कसेला वा फीका (अनुरस) है और इसका विपाक मधुर होता है। सु० सू० ४६ अ० ।

कलायसूप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मटर का जूस । मटर का झोल या रसा । कलायकृत यूष ।

गुण, प्रयोग—

यह हलका, ग्राही, बहुत ठंडा, रुचिकारक, मेधाजनक, पकते समय मीठा, रुधिर के रोग और पित्त का नाशक, अरुचि को दूर करनेवाला और कफ का नाश करनेवाला है । वै० निघ० ।

कलाया-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) गाँडर दूब । गंडदूर्व्वा । (२) सफ़ेद दूब । श्वेतदूर्व्वा । रा० नि० व० ८ । (३) काला चना । कृष्ण चणक । प० मु० ।

कलार-[गु०] जंगली मूली । दीवारी मूली । कमाफीतूस । कुकरौंधा ।

क़लार-[?] सफ़ेद अंजीर का एक भेद ।

कलारकोडी-[ता०] कठकरंज । नाटा करंज ।

क़लारारह-[?] (१) एक प्रकार का कौआ । (२) महोखा पक्षी । अक्कअक्क ।

क़लारी-[?] सफ़ेद अंजीर का एक भेद ।

कलारुहा-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सुवर्ण केतकी । केतकी । रा० नि० व० १० । पीला केवड़ा ।

कलाल-[अ०] थकान । माँदगी । सुस्ती ।

कलालग-[कुमायूँ] रक्तपित्त ।

कलालाप-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] भौंरा । भ्रमर । रा० नि० व० ६ ।

कलाली-[राजपु०] कलिहारी । लांगली ।

कलालुल् हिस्स-[अ०] निःसंज्ञता । संज्ञानाश । सुन्नता । अवसन्नता । स्पर्शाज्ञता । Anesthesia ।

कलावात-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अस्सी प्रकार के वात रोगों में से एक ।

लक्षण—

शरीरं पाण्डुरं चास्ये वैवर्ण्यं रक्त नेत्रता।
कृष्णजिह्वा च शूलं च कला वातस्यलक्षणम्॥

अर्थात् इस रोग में शरीर पीला, मुख में विवर्णता, नेत्र में लाली, शूल और जीभ काली होती है। इसमें वासादि तेल उत्तम लाभ करता है। (बस० रा०)

कलाविक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुक्कुट। मुर्ग़ा। त्रिका०।

कलाविकल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गौरैया। चटक। चिड़ा। श० र०।

कलाविङ्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलविंक पक्षी। चिड़ा। के०।

कलावी–[मरा०] कलियारी। करियारी।

कलाश–[फा०] मकड़ी।

कलाशखानः–[फ़ा०] मकड़ी का जाला।

कलाशरह्–[?] सज्जी। अशखर। लु० क०।

कलास–[?] तेजपात। लु० क०।

कलासनर–[बं०] बरेठी।

कलाहू–[फ़ा०] हिरन का एक भेद।

कलाहूयः–[सं० ?] चाँदी। लु० क०।

कलिंगड, कलिंगड़ा–[मरा०] तरबूज।

कलिंगड़ा वित्तुलु–[ते०] इन्द्रजव।

कलिंदजा, कलिंडजा–[बर०] कठकरंज।

कलिंदा–संज्ञा पुं० दे० "कलिंदा"।

कलिंगा–संज्ञा पुं० [देश०] तेवरी नाम का पेड़ जिसकी छाल रेचक होती है।

कलिंदी–संज्ञा स्त्री० दे० "कालिंदी"।

कलि–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बहेड़े का वृक्ष। विभीतक वृक्ष। भा० म० ३ भ० मेद-चि०। (२) बहेड़े का फल वा बीज।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कली। कलिका। मे० लद्विकं। (२) सफ़ेद धतूरा। श्वेत धुस्तूरक। (३) भिलावे का पेड़। भल्लातक वृक्ष। वै० निघ०।

[बं०] कली। गुच्चा।

[गु०] [बहु० कलियो] कली।

कलिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कौआ पक्षी। कराँकुल या पनकुकड़ी। (२) एक प्रकार का बाँस का चावल। वंश धान्य।

कलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृश्चिकाली। बिछाती। रा० नि० व० ६। (२) सरफोंखा। शरपुंखा। (३) बिना खिला फूल। कली। पुष्पकोरक। कलि। (४) ह्रस्व नीलिका वै० निघ०। (५) एक प्रकार का फूल। (६) कलौंजी। मँगरैला। (७) अंश। भाग।

कलिकार–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) धूम्राट पक्षी। भिंगराज। भृंग। इसकी पूँछ काँटे जैसी होती है। (२) एक पक्षी जिसका मस्तक पीला होता है। (३) एक प्रकार का करंज। पूति करंज। मे०। (४) जलपीपल। जल पिप्पली। वै० निघ०।

कलिकारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूति करंज। लट्वा करंज। कंट करंज। नाटा करंज। अम०।

कलिकारिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलियारी का पौधा। लाँगली का वृक्ष। वै० निघ०।

पर्य्या०—वह्निवक्त्रा, (भा०) लाङ्गली, हलिनी, गर्भपातिनी, दीप्ता, विशल्या, अग्निमुखी, हली, नक्रा, इन्द्रपुष्पिका, विद्युज्ज्वाला, अग्निजिह्वा, अग्निहत, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा, वह्निशिखा, इन्द्रपुष्पिका, दे० "कलिहारी"।

कलिकारी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलियारी विष। करियारी। नि० शि०। वै० निघ०। भा०।

कलिकाली–[?] बहेड़ा।

संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] करियारी लांगली। नि० शि०।

कलिकाशित–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अशोक। के०।

कलिकोत्तम–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०. पुं०] (१) लौंग। लवंग। (२) गंध शालि।

कलिङ्ग, कलिङ्गक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] इंद्रजव। इंद्रयव। यथा—"कलिङ्गं कटफलं मुस्तंपाठा तिक्तक रोहिणी"। च० द० पि० ज्व० कलिङ्गादि। "दारुपाठा कलिङ्गकम्"। च० द० ज्वरादि० चि०। श० र०।

कलिङ्ग, कलिङ्गक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाकर का पेड़। प्लक्षवृक्ष। (२) कुरैया। कुटज वृक्ष। कुड़ची। (३) सिरस का पेड़। रा० नि०

व० ६। (४) इन्द्र जौ। इन्द्रयव। रत्ना० ६। र० सा० सं०। सि० यो० रात्रिज्वर। "कलिङ्गक स्तामलकी"। सि० यो० पिप्पल्यादि घृत। (५) पूतिकरंज। (६) मटमैले रंग की एक चिड़िया जिसकी गरदन लंबी और लाल तथा सिर भी लाल होता है। कुलंग, मे० गत्रिक। (७) तरबूज़। तरम्बुज।

गुण—मधुर, शीतल, वृष्य, बल्य, पित्तनाशक दाहनाशक, सन्तर्पण, और वीर्यकारक। रा० नि० व० ७। (८) चातक पक्षी। पपीहा। हला०। (९) बहेड़े का पेड़। त्रिका०। (१०) एक प्राचीन देश। (११) कलिंग देश का निवासी। वि० कलिंग देश का।

कलिङ्गज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इंद्रजव। वै० निघ०।

कलिङ्गद्रु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुरैया। कुटज। भा० म० १ भ० कास चि०। "कलिङ्गद्रु फलं रजः"।

कलिङ्गयव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इंद्रयव। इंद्रजव च० द०। सि० यो० लवणोत्तमाद्य चूर्ण।

कलिङ्ग बीज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इंद्रजौ। इंद्रयव। रा० नि० व० ६।

कलिङ्ग शुण्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलिंग देश का सोंठ। एक प्रकार का सोंठ।

गुण—कटुआ, बलकारक; अग्निदीपन, अजीर्ण नाशक और बालकों के अतिसार को दूर करने वाला है। यही जवाखार के साथ मिला हुआ गर्भिणी की क़ै आने को दूर करता है। अत्रि०।

कलिङ्गा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) काकड़ा सींगी। कर्कट शृंगी। र० मा०। (२) सफ़ेद निसोथ। श्वेत त्रिवृता। (३) नारी।

कलिङ्गादि कल्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] इन्द्रजौ, वच, नागरमोथा, देवदारु तथा अतीस इन औषधियों को समान भाग लेकर यथाविधि कल्क बनाएँ। वात पित्त जनित अतिसार का रोगी इस कल्क को तण्डुलोदक के साथ सेवन करें।

कलिङ्गादि कषाय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) वैद्यक में एक कषाय जिसमें इन्द्रजौ (कलिंगक), परवल का पत्ता और कुटकी पड़ती है। यह संतत आदि ज्वर शमन करता है। वा० चि० १ अ०। चक्रदत्त में इसे पित्तज्वर को दूर करनेवाला लिखा है। च० द० पित्त ज्व० चि०। (२) इन्द्र जौ, कायफल, नागरमोथा, पाठा तथा कुटकी इन औषधियों को उचित मात्रा में लेकर यथाविधि क्वाथ बनावें। सिद्ध होने पर इसमें शर्करा मिलावें।

गुण—इसके पीने से पित्त ज्वर प्रशान्त होता है चक्र० द०।

कलिङ्गाद्य गुड़िका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] इन्द्र जौ, बेलगिरी, जामुन की गुठली, कैथ की गूदी, रसवत, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, सुगन्धवाला, कायफल, शुकनासिका, लोध, मोचरस, शंख की भस्म, धौ के फूल, और बड़ के अंकुर। हर एक समान भाग लेकर चावलों के पानी में पीसकर १–१ अक्ष प्रमाण की गुटिका प्रस्तुत करें।

गुण—इसके सेवन से ज्वरातिसार और शूल युक्त अतिसार का शीघ्र नाश होता है। एवं रक्त शुद्ध होता है। धन्वन्तरि। ज्वर चि०।

कलिङ्गाद्य तैल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नासा रोग में प्रयुक्त उक्त नाम का तेल।

योग—इंद्रजौ, हींग, मिर्च, लाख, तुलसी, कायफल, कूठ, वच, सहिजन और वायविडंग के कल्क तथा गोमूत्र से कड़वा तेल पकाकर उसकी नास लेने से पीनस और पूतिनस्य (नाक से बदबू आना) नष्ट होता है। र० र० नासा० रो०।

कलिङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कुलंजन। कुलिंजन। वै० नि० २ भ० जिह्वक ज्व० चि०। (२) नरकट नाम की घास। कट। किलिंजक। मादुर (बं०)।

कलिङ्गम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक वृक्ष।

कलितरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेड़े का पेड़। वै० निघ० स्वर भेद चि०।

कलि-तरु फलादि चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] स्वर भेद में प्रयुक्त योग–कलितरुफल (बहेड़ा), सेंधा नमक तथा पीपल इन तीन औषधियों के यथाविधि निर्मित चूर्ण को छाछ के साथ पीसकर पीने से स्वरभेद दूर होता है। मात्रा १ से २ मा० तक। चक्र द० स्वरभेद चि०।

कलिद्रु, कलिद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सरल देवदार। (२) भिलावे का पेड़। भल्लातक

वृक्ष । (३) बहेड़े का पेड़ । रा० नि० व० ११ । "किरात कटुका कृष्णा: कुटज कण्टकारी शठी कलिद्रु किलिमाभया:" । भा० म० १ भ० कण्ठ कुब्ज ज्व० चि० ।

कलिन्द–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) सूर्य । सूरज, (२) बहेड़े का पेड़ । रा० नि० व० २३ । (३) भेलक वृक्ष । (४) सरल देवदार । वै० निघ० ।

कलिन्दक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पेठा । कर्कारु । (२) तर्बूज । कलींदा । तरबूज । वै० निघ० ।

कलिपुर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्मराग मणि वा मानिक का एक भेद जो मध्यम माना जाता था । (२) मानिक की एक पुरानी खान ।

कलिप्रद–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मद्य बिकने का स्थान शराबख़ाना । मद्यशाला । कलालखाना । वै० निघ० ।

कलिप्रिय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बंदर । बानर । श० र० । (२) बहेड़े का पेड़ ।

कलिफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बहेड़े का फल । बहेड़ा । च० द० ।

कलिब–[अ०] [बहु० कलवा] (१) पागल कुत्ता । बावला कुक्कुर । दीवाना कुत्ता । (२) वह व्यक्ति जिसे बावले कुत्ते ने काटा हो । कुक्कुर दष्ट ।

कलिम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिरस का पेड़ । वै० निघ० । शिरीष वृक्ष ।

कलिमार, कलिमारक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूति करंज । कंटकरंज । अ० टी० र० । वृ० नि० र० ।

कलिमाल, कलिमाल्य, कलिमालक, कलिमाल्यक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पूतीकरंज । दुर्गन्ध करंज । काँटा करंज । रा० नि० व० ९ ।

कलिया–संज्ञा पुं० [अ० क़लिय्यः] [बहु० क़लाया] टुकड़ा–टुकड़ा करके देग में भूना हुआ गोश्त । पकाया हुआ मांस । घी में भूनकर रसेदार पकाया हुआ मांस ।

कलियाकरा–[बं०] कंटगुर ।

क़लिया–[अ०] सज्जी ।

कलिया–[फ़ा०]

कलियान-पूशिणिक-काय–[ता०] पेढा ।

कलियान-मुरुक्कु–[ता०] फरहद । पारिभद्र ।

कलियारी–संज्ञा स्त्री० [सं० कलिहारी] एक विषैला क्षुप वा अलंकृत लता जिसका कांड चपटा, त्रिपार्श्व, ऐंठा हुआ और टेढ़ा-मेढ़ा होता है । इसका गुल्म देखने में आर्द्रक-गुल्मवत् होता है । पहले यह मोटी घास की तरह होती है फिर और बेल की तरह बढ़ती है । इसके पत्ते अदरख के पत्ते की तरह होते हैं । इसका पेड़ जाड़ या झाड़ी के सहारे लगता है । गर्मी में यह सूख जाता है और वर्षा का पहिला पानी पड़ते ही इसके पुराने कंद से अभिनव गुल्म आविर्भूत होता है । आदी की तरह इसका भी कंद लगाने से वृक्ष पैदा होता है । बहुत नीची और आर्द्र भूमि में यह नहीं उत्पन्न होती है, वहाँ इसका कंद सड़ जाता है । भारतवर्ष के उष्ण प्रदेशों में चातुर्मास में यह उत्पन्न होती है । इसका पत्ता विषमवर्ती, कोमल, दीर्घ, अवृंत, ६-७ इंच लंबा और ½ से १ इंच चौड़ा, तने से आवेष्टित एवं शीर्ष की ओर उत्तरोत्तर पतला होता जाता है । यह नुकीला भाग सूत्रवत् महीन, प्रायः गज़भर तक लंबा और लिपटा हुआ होता है, पत्र देखने में बाँस के पत्ते की तरह, पर कोमल होता है । वर्षांत में इसमें पुष्प आते हैं । पुष्प हर एक पत्ते के समीप से निकलता और एक लंबे वृंत पर लगता है । पुष्प की पँखड़ी गिनती में ६, प्रारंभ में बंदमुख, पर उत्तरोत्तर वे क्रमशः खिलती जाती हैं और अंततः विपरीत दिशा में लटक जाती हैं । पँखड़ी ३-४ अंगुल दीर्घ, ¼ से ½ अंगुल चौड़ी और नुकीली होती है । दल-प्रांत लहरदार होता है । प्रारंभ में पँखड़ियाँ हरी होती हैं, परंतु ऊपर का अर्ध भाग क्रमशः पीतारुण होता जाता है और अंत में ऊपर विचित्र नागरंग वर्ण का और नीचे का मिलित अरुण और पीत वर्ण का होता जाता है । इस प्रकार एक ही पुष्प इंद्रधनुष के समान अनेक रंगयुक्त होता है । पुष्प प्रियदर्शन एवं अत्यंत मनोहर होता है । पुं केसर ६, पराग-कोष (Anthor) ½ अंगुल लंबा और चिपटा होता है । स्त्री केसर १, त्रिशिर्षीय होती है । फूल झड़ जाने पर तिल के फल की आकृति का वा समुद्रफल के समान फल लगता है, जिस पर

तीन धारियाँ होती हैं अर्थात् यह तृखंड एवं लंबा होता है। कार्तिक मार्गशीर्ष में फल पक जाता है। पके फल के भीतर लाल छिलके में लिपटे हुए सरसों के बीज की तरह गोल किंतु उससे बड़े (गुंजाकृति के) अत्यंत अरुण वर्ण के तार में लगे हुए बीज होते हैं। प्रत्येक कोष में १०-१२ बीज से कम नहीं होते। इसके पत्तों में फूल और फल से तीखी गंध आती है। इसकी जड़ दो प्रकार की होती है। एक वह जिसकी जड़की गाँठ गोल होती है और वह अशाख होती है। इसे 'मादा' कहते हैं। दूसरी की जड़ सशाख-द्विभिक्र होती है और इसे 'नर' कहते हैं। इसका मूल कंद, लंबा बेलनाकार और एक सिरे पर इस प्रकार झुका हुआ होता है, मानो एक स्थान पर दो लंबी जड़े जुटी हुई हों और उनसे एक समकोण बन गया हो इनमें से एक दूसरे की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। यह कोण पर ग्रंथिल होता है। कभी कभी इसके दोनों सिरे अधिक नुकीले होते हैं। यह क्रमशः ३ से ५ इंच लंबा प्रायः उँगली वा अँगूठे के बराबर मोटा होता है। कभी कभी यह इसकी अपेक्षा भी अधिक लंबा होता है। जब यह तर वा रेतीली भूमि में उत्पन्न होता है। इसकी गोल जड़ के ऊपर और लंबी जड़ के कोण वा गाँठ पर इस पेड़ के उगने का-तने का एक गोल चिह्न बना रहता है और नीचे की ओर छोटी महीन जड़ें लगी रहती हैं। इसका छिलका पतला, ढीला, हलका, झुर्रीदार और बादामी रंग का होता है। इसकी खूब सूखी हुई जड़ का भीतरी पृष्ठ धूसर वा गंभीर धूसर वर्ण का होता है। इसके भीतर का गूदा सफ़ेद होता है और वह स्वाद में चरपरा नहीं, अपितु कुछ कुछ कड़ुवा, लबावदार और अम्ल होता है। उसमें से हलकी चरपरी सुगंध आती है। इसकी बनावट (Farinaceous) होती है। यह जड़ महीनों तक बिना सूखे हुए पड़ी रहती है। इसलिये धूप में डालने से पूर्व इसे बारीक कतर लेना चाहिये। इसे सूखने में १॥-२ मास लगते हैं। एक सेर गीला कंद सूखने पर केवल १०-१५ तोले ठहरता है। कार्तिक मार्गशीर्ष में ये कंद संग्रहणीय होते हैं। ये एक वर्ष में घुनकर खराब होजाते हैं। ये विषैले होतेहैं।

पर्य्या०—कलिकारी (ली), हलिनी, विशल्या। गर्भपातिनी, लांगल्या (ली), अग्निमुखी, सौरी, दीप्ता, नक्ता इन्दुपुष्पिका, (ध० नि०), कलिकारी, लांगलिनी, हलिनी, गर्भपातिनी, दीप्ता, विशल्या, अग्निमुखी, हली, नक्ता; इन्दुपुष्पिका, विद्युज्ज्वाला, अग्निजिह्वा, व्रणहित्, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा, वह्निशिखा (रा० नि०), कलिहारी, हलिनी, लांगली, शक्रपुष्पिका, विशल्या, अग्निशिखा, अनन्ता, वह्निवक्त्रा, गर्भनुत् (भा०), फलिनी, शक्र पुष्पीका (कोशे), इंदुपुष्पी, वह्निजिह्वा, प्रदीप्ता, अग्निशिखा, शिखा, वह्निमुखा, प्रभाता, पुष्पसोरभा (के० दे०); लांगुली (द्रव्य र०), कलिहारी, शक्रपुष्पी, सारी (मद० नि०); सारः, इन्द्रपुष्पी, वह्निज्वाला (गण-नि०) लांगलाख्या, गैरी, गर्भघातिनी, अग्निज्वाला, वह्निशिखा, इन्द्रपुष्पा(पी), लांगलाह्वा, लांगलकी, लांगली, लांगलि, लांगलिका, लांगलिकी—सं०। कलारी, कलिहारी, कलियारी, करिहारी, करियारी, लांगली कलिकारी, कलहारी, कलहिंस—हिं०। नाट का बच्छनाग—द०। (ऊलट) ओलोट् चंदल, विषलांगुलिया, विषलांगला बिश, उलटचडालविष—बं०। ग्लोरिओसा सुपर्बा Gloriosa Superba, (?) *Linn*—ले०। सुपर्ब लिलि Superb lily—अं०। कलैप्पैक्—किज़ङ्गु, कार्त्तिकैक्—किज़ङ्गु—ता०। अडवि—नाभि, पोत्ति-दुम्प, पेन्नवेदुरु, अग्नि-शिखा, कलप्प-गड्डु, लांगली—ते०। वेन्नोणि, मेन्दोणि, मेहान्नि, कांडल—मल०। सोम-दौ, सौम्मि—दाव,, ह्सी-मी-लौक—बर०। लियनँगला, नियांगला—सिंगा०। लांगलिके, कोलिककजगड़े, लांगुलीक। वेडेवे दुरु, राडागारी, नांगुलिका—कना०। दुधियो (बछनाग) कलगारी बच्छनाग, खड्यानाग—गु०। खड्यानाग, कलावी, नागली, इंदई, कलावी, झगड़ी, बागचवका, चगमोड्या, कलावी, नागकरिया, करिया, नाग—मरा०, बम्ब०। सुमिल करिआ (या) री, मलिम, कलेसर—पं०। लांगुली लांगुलिका, राडागारि—का०। खड़िया कलई, कलवी नाग—कों०। कलावी—दे०। सौरी (क) सम्नो—संथाल। करिहारी—उ० प० सू०। राज-

हरर–(अजमेर)। राजाराड–मार०। नेयंगल्ल–(सिंहली)।

अन्वर्थ संज्ञायें

परिचयज्ञापिका संज्ञायें—चिह्नमुखी, शक्रपुष्पिका, अग्निशिखा, लांगलिका, नक्रेन्दु पुष्पिका पुष्पसोरभा; स्वर्णपुष्पा, अग्निमुखी, अग्निजिह्वा, वह्निशिखा, वह्निवक्त्रा, प्रभाता और अग्निज्वाला इत्यादि। ज्वालामुखी और इन्द्रपुष्पी।

गुण प्रकाशिका संज्ञायें—विशल्या, गर्भपातिनी, गर्भघातिनी, गर्भनुत्, सारिणी, सारी और व्रणहृत् और हनन।

टिप्पणी—दक्षिण भारतीय चिकित्सकगण तथा औषध-विक्रेता यह मानते हैं कि गुणधर्म में इसकी जड़ प्रायः वत्सनाभ की जड़ के समान होती है,इसलिये वहाँ इसे "नाट-का-बच्छनाग" "अडवि नाभि" आदि संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। और इसी कारण कभी कभी जान बूझकर वास्तविक वत्सनाभ मूल की जगह इसका व्यवहार किया जाता है अथवा उसके साथ इसका मिश्रण किया जाता है, यद्यपि इनके भौतिक लक्षणों में महान अंतर है। किसी किसी ने इसकी बंगला संज्ञा "ईशलांगला" लिखी है। परन्तु ईशलांगला ईश्वरमूल है, कलिहारी नहीं—जो एक भिन्न उद्भिद है। मराठी और गुजराती में इसे "कललावी" और पंजाबी में "कलीसर" कहते हैं। किसी किसी ने इसकी अरबी संज्ञा "ख़ानिक़ुल् क़ल्ब" एवं "क़ातिलुल् कल्ब" लिखी है ।पर उक्त संज्ञाओं का प्रयोग वस्तुतः "कुचले" के लिये होता है।

राजमार्तण्ड नामक ग्रंथ में लिखा है कि कलिहारी के कंद को पानी में पीसकर चुपड़ने से बहुत देर का घुसा हुआ अस्त्र भी घाव में से आसानी से बाहर निकाला जा सकता है। जंगलनी जड़ी बूटी नामक गुजराती ग्रंथ के रचयिता का कथन है कि इस विषय का अनुभव करने के लिये एक ऐसे मनुष्य के घाव पर जिसके पैर में खीला घुस गया था कलिहारी कंद पीसकर चुपड़ा गया और तुरंत उस खीले को खींच लिया गया। हमें यह देखकर अचम्भा हुआ कि जो खीला क्लोरोफार्म देकर बिना बेहोश किये नहीं निकाला जा सकता था वह इस औषधि के प्रताप से आसानी से खींच लिया गया। उसके पश्चात् संधिनी नामक औषधि का पट्टा चढ़ाने से घाव तीन ही दिन में भर गया।

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि निघंटुकारों द्वारा दी हुई इसकी विशल्या अर्थात् शल्य दूर करनेवाली संज्ञा अन्वर्थ है। इससे इसके रामायण में आई हुई विशल्या होने का भी अनुमान होता है। इसके समर्थन में रामायण में ही एक और प्रमाण मिलता है। रामायण में इसके सम्बन्ध में लिखा है कि यह ओषधि अग्नि की तरह चमकती थी. कलिहारी के फूल भी देखने में अग्नि की तरह चमकते दृष्टिगोचर होते हैं। इसीलिये ग्रंथकारों ने इसका नाम अग्निशिखा भी रखा है। इन बातों को देखते हुये यह अनुमान होता है कि आया रामायण वर्णित 'विशल्या' नामक ओषधि यह कलिहारी हो तो नहीं है। 'विशल्या' वा विशल्यकरणी शब्द के अंतर्गत इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला जायगा। कोई कोई आयापान को भी विशल्यकरणी लिखते हैं। इन सबका पूर्ण विवेचन वहीं किया जायगा।

पलाण्डु वर्ग

(*N. O. Liliaceæ*)

उत्पत्ति-स्थान—समग्र भारतवर्ष विशेषतः बंगाल, ब्रह्मा और लंका के वनों एवं सम्पूर्ण भारतखंड के उष्ण प्रदेशों और नीचे जंगलों में कलियारी बहुतायत से होती है। शोभा के लिये यह उद्यानों में भी लगाई जाती है।

रासायनिक संघटन—वार्डेन के परीक्षणानुसार इसकी जड़ में दो प्रकार के राल, एक कषायिन (Tannin) और एक प्रकार का तिक्तसत्व, जो यद्यपि वनपलांडु स्थित तिक्तसार के सर्वथा समान नहीं तो उससे मिलता जुलता एक सत्वहै, पाया जाता है, जिसे"सुपर्बीन" (Superbine) कहते हैं। यह अत्यन्त विषाक्त होता है (फा० इं० ३ भ०) हिंदी में इसे "लांगलीन" वा "कलिकारीन" कहना चाहिये। इसे बिल्ली को खिलाने से वह मर जाती है।

औषधार्थ व्यवहार—कंद।

मात्रा—वनौषधि-दर्पणकार इसकी मात्रा (१-२ रत्ती) लिखते हैं और कहते हैं कि तीक्ष्ण गुण

विशिष्ट होने के कारण इसका सावधानी पूर्वक उपयोग करना चाहिये। पर मोहीदीन शरीफ़ इसे १२ ग्रेन (६ रत्ती) तक की मात्रा में विषाक्त नहीं मानते, प्रत्युत इसके विपरीत इसे वे परिवर्त्तनीय बल्य और नियतकालिक ज्वरनाशक (Anti-iperiodic) बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि प्रथम मैंने इसका स्वयं प्रयोग किया, तदुपरांत दूसरों को इसका प्रयोग कराया। संभव है कि यह अपेक्षाकृत अत्यधिक मात्रा में विषाक्त हो, परन्तु जहाँ तक संभव था मैंने इसका परीक्षण किया, और इसमें एकोनाटिया (Aconitia) का अभाव पाया गया। इंडियन मेटीरिया मेडिका में इसकी (श्वेतसार) मात्रा ५ से १० ग्रेन तक लिखी है।

औषध निर्माण—लांगल्यादि गुटिका (ग० नि० कुष्ठे), लांगली कल्प रसायन (वा० रसायन अ० ३६) लांगल्यादि लोहम्, कनकवती वटी इत्यादि।

कलिकारी शोधन—कलिहारी सात उपविषों में से एक उपविष है। अस्तु, इसे शुद्ध करके ही औषध कार्य में लेना चाहिये। इसके शोधन की विधि यह है—करियारी के छोटे छोटे टुकड़े करके दिन भर गोमूत्र में डालकर धूप में रखने से यह शुद्ध हो जाती है। यथा—लांगली शुद्धिमायाति दिनं गोमूत्र संस्थिता"। अथवा इसके छोटे छोटे टुकड़े कर किंचित् नमक मिले हुये छाछ में छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार ५-६ बार पूर्वोक्त प्रकार से रात्रि को तक्र में भिगोकर दिन में सुखाते रहने से यह शुद्ध हो जाती है। पुनः इसे खूब सुखाकर सुरक्षित रखें।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

लाङ्गली कटुरुष्णा च कफ वात विनाशनी।
तिक्ता सारा च श्वयथुर्गर्भे शल्य व्रणापहा॥

(ध० नि० ४ व०)

लाङ्गली—करियारी स्वाद में कटु, तिक्त, उष्ण वीर्य एवं कफ नाशक है तथा रेचक है और सूजन, गर्भ तथा शल्य एवं व्रणको नष्ट करती है।

कलिकारी कटुष्णा च कफ वात निकृन्तनी।
गर्भान्तः शल्य निष्कास कारिणी सारिणीपरा॥

(रा० नि० ४ व०)

कलिकारी—करियारी कटु स्वाद, उष्ण वीर्य, और कफ वात नाशक है तथा गर्भ और अतः शल्य को निकालने वाली एवं दस्त लानेवाली है।

कलिहाकारी सरा कुष्ट शोफार्शो व्रण शूलजित्।
स क्षारा श्लेष्म जित्तिक्ता कटुका तुवरापिच।
तीक्ष्णोष्णा क्रिमिहृल् लघ्वी पित्तला गर्भपातनी

(भा०)

करियारी—दस्तावर, क्षार रस विशिष्ट, कफ नाशक करने वाली, कड़ुई, चरपरी, कषैली, तीखी, उष्ण कृमिघ्न, हलकी, पित्त वर्द्धक और गर्भपात कारक है तथा यह कोढ़, सूजन, बवासीर, व्रण और शूल रोग को नष्ट करती है।

हलिनी करवीरश्च कुष्ठदुष्टव्रणापहौ।

(राज०)

हलिनी अर्थात् करियारी और करवीर—कनेर दोनों कोढ़ और दुष्ट व्रण को नष्ट करते हैं।

सुश्रुत ने भी इसे "कुष्टदुष्टव्रणनाशक" लिखा है। दे० "सु० सू० ३६ अ० कफशोधन"।

कलिकारी सरा तीक्ष्णा कुष्ठ दुष्ट व्रणापहा।

(वि० नि० भा०)

कलिहारी—सारक, तीक्ष्ण और कुष्ठ तथा दुष्ट व्रण को नष्ट करनेवाली है।

कलिकारी सरा तीक्ष्णा गर्भशल्यव्रणापहा।
शुष्कगर्भं च गर्भं च पातयेल्लेपमात्रतः॥

(शो० नि०)

कलिहारी—सरा (दस्तावर) और तीक्ष्ण है तथा गर्भ शल्य एवं व्रणनाशक है।

कालिकारीसरातिक्ता कटूवी पटूवी च पित्तला।
तीक्ष्णोष्णा तुवरीलघ्वी कफवात कृमिप्रणुत्॥
वस्तिशूलं विषंचार्शः कुष्ठं कण्डुं व्रणंतथा।
शोथ शोषं च शूलं च पातयेदिति कीर्तिता॥
शुष्क गर्भं च गर्भं च पातयेदिति कीर्तिताः।

(नि० र०)

कलिहारी—सारक, कड़वी, चरपरी, खारी, पित्तकारी, तीक्ष्ण, गरम, कसेली, तथा हलकी है

और कफ, वात, कृमि, वस्तिशूल, विष और कोढ़, बवासीर, कण्डू (खुजली), व्रण, सूजन, शोष, शूल, शुष्कगर्भ और गर्भ को दूर करनेवाली है।

वैद्यक में लाङ्गली के व्यवहार

वाग्भट्ट—(१) उन्मन्थ नामक कर्णरोग पर लाङ्गली-सुरसा (तुलसी) और लाङ्गली इन दोनों के कल्क के योग से सिद्ध किये हुये तेल का नस्य लें। यह उन्मन्थ रोग में दृष्टफल है। यथा—

सुरसा लाङ्गलीभ्याञ्च सिद्धं तीक्ष्णञ्चनावनम्।

(उ० १८ अ०)

(२) इन्द्रलुप्त में लाङ्गली—गंज रोग में करियारी का प्रलेप उपयोगी है। यथा—

"इन्द्रलुप्ते ❀ प्रलेपयेत्। तथा लाङ्गलिका मूलैः"

(उ० २४ अ०)

(३) रसायनार्थ लाङ्गली—लाङ्गली कंद और त्रिफला जारित लौह ये सब मिले हुये ५० पल अर्थात् मिश्रित ४०० तोले लेकर भँगरैये के स्वरसमें पीसकर ३६० वटिकायें प्रस्तुत कर छाया में सुखा लें। पहले आधी गोली फिर क्रमशः बढ़ाते हुये पूरी १ गोली सेवन करें। इससे विरेचन होने पर क्रमशः मंड, पेया, विलेपी और मांस रस का पथ्य दे, इस प्रकार १ मास पर्यन्त संयतात्मा होकर घृत सहित स्निग्ध अन्न का भोजन करें। इसके उपरांत इच्छानुसार खान-पान करें। अजीर्ण न हो केवल इसओर तीक्ष्णदृष्टि रखें, और अजीर्ण जनक द्रव्य वा अजीर्ण भोजन से सदा परहेज़ करें, इस तरह वर्ष भर में समग्र गोलियाँ खा जायँ। इन गोलियों का सेवन करने वाला मनुष्य असाध्य रोग से आक्रान्त होने पर भी पुरुषार्थकारी और युवा की भाँति गठीली देह वाला एवं आँख कान से युक्त होकर पांच सौ वर्ष तक जीता है। यथा—

"लाङ्गली त्रिफला लोहपल पञ्चाशतीकृतम्।
मार्कव स्वरसे षष्ट्या गुटिकानां शतत्रयम्॥
छाया विशुष्कं गुटिकार्द्धं मद्यात्। पूर्व्वं समस्तामपि तां क्रमेण॥ भजेद्विरिक्तः क्रमशश्च मण्डम्। पेयां विलेपीं रसकौदनञ्च॥ सर्पिः स्निग्धं मांसमेकं यतात्मा। मासादूर्द्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः वर्ज्यं यत्नात् सर्व्वकालं त्वजीर्णं वर्षेणैव योगमेवोपयुञ्ज्यात्॥ भवति विगत रोगो योऽप्य साध्यामयार्त्तः। प्रबल पुरुषकारः शोभते योऽपि वृद्धः॥ उपचित पृथु गात्रः श्रोत्र नेत्रादि युक्तम्। तरुण इव समानां पञ्च जीवेच्छतानि॥

(उ० ३६ अ०)

चक्रदत्त—(१) गण्डमाला में लाङ्गली—संभालू के स्वरस और कलिहारी के कल्क के योग से यथाविधि तैल सिद्ध कर नस्य लेने से गण्डमाला प्रशमित होता है। यथा—

"निर्गुण्डीस्वरसेनाथ लाङ्गलीमूल कल्कितम्।
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥

(गलगण्ड-चि०)

(२) पक्वशोथ प्रभेदने लाङ्गली—लांगली को पीसकर प्रलेप करने से पका फोड़ा फट जाता है। यथा—

"चिरविल्वाग्निकौ ❀ दारणः परः।"

(व्रणशोथ-चि०)

(३) नष्ट शल्य निर्हरणार्थं लाङ्गली—यदि शरीर में किसी जगह लौह पाषाणादि शल्य घुस जायँ, तो करियारी की जड़ पीसकर लेप करने से वे बाहर निकल जाते हैं। यथा—

"❀ नष्टशल्य' विनिःसरेत् ❀ लाङ्गली मूल लेपाद्वा"। (व्रणशोथ-चि०)

(४) रुके हुये गर्भ को शीघ्रोत्पन्न करणार्थ कलिहारी मूल—कलिहारी की जड़ को धागा से प्रसूता स्त्री के हाथ पैरों में रुके हुये गर्भ को शीघ्र उत्पन्न होने के लिये बाँधना चाहिये। यथा—

"हिरण्यपुष्पी मूलंच पाणिपादेन धारयेत्।

(वा० शा० अ० १)

बध्नीयाद्धिरण्यपुष्पी मूलंच हस्तपादयोः।
तन्तुना लांगलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः॥

(सु० शा०)

भावप्रकाश—अमरा पातनार्थ लांगली-प्रसवोत्तर यदि जेर न गिरे तो करियारी की जड़ पीस

कर प्रसूता स्त्री के हाथ-पाँव के तलवों पर लेप करने से वह शीघ्र गिर जाती है। यथा—

"लांगलीमूल कल्केन पाणिपाद तलानि हि।
प्रलिम्पेत् सूतिका योषित् अमरापातनाय वै"
(मूढ़गर्भ-चि०)

नोट—इसका कन्द स्त्री के हाथों में बाँध देने से भी सुखपूर्वक प्रसव होता है।

रसरत्न समुच्चय—मूढ़गर्भ निर्हरणार्थ कलिहारी मूल—शतावरी, कलिहारी, दंतीमूल, बच्छनाग और पाषाणभेद—इन सब औषधियों को बराबर बराबर लेकर पानी में पीसकर पेड़ू और पेट के ऊपर लेप करने से मूढ़गर्भ अर्थात् आड़ा गर्भ शीघ्र प्रसव हो जाता है।

राजमार्तण्ड—दाढ़के दर्दमें कलिहारीकंद—कलिहारी के कंद को पानी में पीसकर दाहिनी दाढ़ में दर्द हो तो बाँए हाथ के अँगूठे के नख पर और बाईं दाढ़ में दर्द हो, तो दाहिने हाथ के अँगूठे के नख पर लगाने से दाढ़ का कीड़ा मर कर गिर जाता है और दर्द सदा के लिये जाता रहता है।

वक्तव्य

चरक के "दशेमानि" वर्ग में लांगली का पाठ नहीं आया है, परन्तु विष चिकित्सा (चि० २५ अ०) एवं कुष्ठचिकित्सा में लांगली का उल्लेख आया है। सुश्रुत के कल्प स्थानके द्वितीय अध्याय में स्थावर-विष-वर्ग का विवरण लिखित है। वहाँ आठ प्रकार के मूल विषों के मध्य 'विद्युज्ज्वाला' का उल्लेख दृष्टिगत होता है। विद्युज्ज्वाला लांगली का ही नाम है। सुश्रुत के श्लेष्म संशमन वर्ग (सू० ३९ अ०) में लाङ्गलकी पाठ आया है। महर्षि चरक, सुश्रुत और आचार्य वाग्भट ने सूतिकागार, गर्भसंग, पुष्पावरोध, अपरापातन आदि में कलिहारी का विशेष उपयोग किया है।

यूनानी एवं नव्य मतानुसार—

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष।

मात्रा—प्रारम्भ में आधी रत्ती, फिर क्रमशः बढ़ाकर १–१ माशा दिन में दो–तीन बार दे सकते हैं।

यह अत्यन्त नशा उत्पन्न करती है, जिससे मृत्यु तक की नौबत पहुँचती है।

गर्भिणी स्त्री की पीड़ा अभिवृद्ध्यर्थ कलियारी की जड़ पीसकर उसके पेड़ू तथा भगोष्ठों एवं रोमों पर प्रलिप्त करते हैं।

यदि आँवल न निकल सके, तो इसकी जड़ पीसकर हथेलियों और तलवों पर लेप करना चाहिये अथवा उसकी बत्ती बनाकर गर्भाशय में स्थापित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त कृष्णाजाजी और पीपर का चूर्ण मदिरा के साथ सेवन करायें।

यह कफ विकृति तथा आमाशय-आंत्रीय क्षतों को उपकारी है। यह दस्तावर तथा गर्भस्रावकारी है। इसका प्रलेप ऐसे उदरजात फोड़े को लाभकारी है, जो कफ के अवरुद्ध हो जाने से आविर्भूत हुआ हो।

इसे पीसकर किंचित् नाभि, पेड़ू और भग पर मलने से गर्भपात होता है और प्रसव पीड़ा अभिवर्द्धनार्थ भी इसका उपयोग होता है।

इसकी जड़ पीसकर मधु मिला प्रलेप करने से कंठमाले की सूजन उतरती है।

इसे नीबू के रस में पीसकर कान में टपकाने से पूय का नाश होता है और कीड़े नष्ट होते हैं।

इसे पारे और मूली के पत्तों के पानी के साथ पीसकर पिंडली के फोड़े-फुन्सी पर, जिनको मालवे में 'बेझी' और दक्षिण में 'एसक्र' कहते हैं, तीन दिन मर्दन करने से यह उन्हें शुष्क कर देती है। —ख० अ०।

इसका शोधन-क्रम यह है—

सर्जन-मेजर थामसेन—

जब इसमें फल आ जावें तब नर पोधे की जड़ (Dichotomous) जमीन में से निकाल कर उसके पतले पतले वर्क काटकर, उन्हें किंचित् लवणाक्र तक्र में रात्रि भर भिगो रखें। फिर इन्हें दिन में निकालकर सुखा लेवें। इसी प्रकार ४–५ दिन तक निरन्तर करने से इसके विष का ज़ोर कम पड़ जायगा। इसके उपरान्त इनको साफ करके और सुखाकर रख छोड़ें।

प्रयोग—यदि किसी व्यक्ति को कृष्ण सर्प काट खाय, तो उन वर्कों में से २–४ रत्ती तक अथवा

जितने की उसमें क्षमता हो, उतनी मात्रा में उक्त रोगी को देने से ज़हर उतर जाता है।

विषैले साँप, कनखजूरे वा बिच्छू के काटे हुये स्थान पर इसकी जड़ शीतल जल में पीस लगा कर सेंकने से उपकार होता है, ऐसा मद्रासियों का विश्वास है।

शरीर को त्वचागत कीट-रोगों में इसके लेप से कल्याण होता है।

कोंकण में उदरस्थ कृमियों के निकालने के लिये इसे पशुओं को खिलाया जाता है।

इसकी जड़ को कूटकर पानी में भिगो दें। पुनः इसको मलकर छानने से जो श्वेतसार प्राप्त हो, उसे उचित मात्रा में यथा विधि सेवन करें। इससे सूज़ाक आराम होता है।

फा० इं० ३भ० पृ० ४८१।

टिप्पणी—नादकर्णी के अनुसार इसे ६ रत्ती की मात्रा में मधु के साथ देवें। कुष्ठ, अर्श और उदरशूल में तथा आंत्रस्थ कृमियों के निकालने के लिये इसकी जड़ और एतद्द्वारा प्राप्त श्वेतसार का व्यवहार परमोपयोगी सिद्ध होता है। चित्रक-त्वक् के साथ इसे गोमूत्र में पीसकर वेदनायुक्त अर्शांकुरों पर लेप करें।—इं० मे० मे० पृ० ३९५-६

इसको २॥ रत्ती से ६ रत्ती तक की मात्रा में दिन में तीन बार देने से शक्ति वृद्धि होती है।

इसको सोंठ के साथ फाँकने से भूख बढ़ती है।

इसे गुड़ के साथ खिलाने से आंत्र-कृमि नष्ट होते हैं।

इसको पीसकर बुरकने से क्षतजात कीट नष्ट होते हैं।

इसके पत्तों को पीसकर छाछ के साथ देने से कामला—यर्कान नष्ट होता है।

इसकी जड़ गर्भाशय में धारण करने से वेदना निवृत्त होती है।

प्रसव काल में इसकी जड़ के रेशों को हस्त-पाद में बाँधने से बहुत आराम से शिशु-प्रसव हो जाता है।

इसकी जड़ पानी में पीसकर नास लेने से सर्प विष की शांति होती है।

इसको जड़ को काँजी में पीसकर गर्भवती स्त्री के पैरों पर लेप करने से शीघ्र बच्चा निकल पड़ता है।—ख० अ०।

आर० एन० चोपरा—प्राचीन संस्कृत लेखकों ने गर्भपातक रूप से इसके उपयोग का उल्लेख किया है। जनसाधारण के विश्वास के विरुद्ध, साधारण मात्रा में इनकी जड़ विषैली नहीं होती, प्रत्युत यह परिवर्तक एवं बल्य गुण विशिष्ट ही प्रतीत होती है। विषाक्त कीट एवं सर्पदंशों पर इसकी जड़ को जल में पीसकर लेप करने से वेदना शांत होती है और विष का निवारण होता है।—इं० ड्रु० इं० पृ० ५८०।

परन्तु कायस और महस्कर के मतानुसार इसकी गाँठ और पत्ते साँप और बिच्छू के विष में बिल्कुल निरुपयोगी हैं।

करिहारी या कलिहारी की जड़ को पानी में पीसकर नारू या बाले पर लगाने से नारू या बाला आराम हो जाता है।

कलिहारी की जड़ पानी में पीसकर बवासीर के मस्सों पर लेप करने से मस्से सूख जाते हैं।

कलिहारी के जड़ के लेप से व्रण, घाव, कंठमाला, अदीठ-ढोड़ा और बद या बाधी—ये रोग नाश हो जाते हैं।

कलिहारी को जड़ पानी में पीसकर सूजन और गाँठ प्रभृति पर लगाने से फौरन आराम होता है।

कलिहारी की जड़ को पानी में पीसकर अपने हाथ पर लेप करलो। जिस स्त्री का बच्चा होने में तकलीफ होती हो, उसके हाथ को अपने हाथ से छुलाओ, फौरन बच्चा हो जायगा। अथवा कलिहारी की जड़ को डोरे में बाँधकर बच्चा जनने वाली के हाथ या पैर में बाँध दो, बच्चा होते ही फौरन खोल दो, इससे बच्चा जनने में बड़ी आसानी होती है। इसका नाम ही गर्भवातिनी है। गृहस्थों के घर में ऐसे मौके पर इसका होना बड़ा लाभदायक है।

कलिहारी के पत्तों को पीस-छान कर चूर्ण बना छाछ के साथ खिलाने से पीलिया वा कामला आराम होजाता है।

अगर मासिक-धर्म रुक रहा हो, तो कलिहारी की जड़ या घोंगे की जड़ अथवा कड़वे चुन्दावन की जड़ योनि में रखो।

अगर योनि में शूल हो, तो कलिहारी या ओंगे की जड़ को योनि में रखो।

अगर कान में कीड़े हों तो कलिहारी की गाँठ का रस कान में डालो।

अगर साँप ने काटा हो, तो कलिहारी की जड़ को पानी में पीसकर नास लो।

अगर गाय बैल आदि को बंधा हो—दस्त न होता हो, तो उन्हें कलिहारी के पत्ते कूटकर और आटा में मिलाकर या दाने सानी में मिलाकर खिला दो, पेट बंध छूट जायगा।

अगर गाय का अंग बाहर निकल आया हो तो कलिहारी की जड़ का रस दोनों हाथों में लगा कर, दोनों हाथ उसके अंग के सामने ले जाओ अगर इस तरह अंग भीतर न जाय, तो दोनों हाथ उस अंग पर लगादो और फिर उन हाथों को गाय के मुँह के सामने करके दिखादो। फिर वह भीतर ही रहेगा, बाहर न निकलेगा।

चि० चं० ५ भ० पृ० ६५-६।

बिषगाँठ (Whitlow) नामक रोग में कलिहारी की जड़ बकरी के दूध में पीसकर उँगली पर मोटा लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

—लेखक।

कलिहारी की जड़ का कल्क १ तो०, शतावर का कल्क १ तो०, धतूर की पत्ती का स्वरस ४ तो० और लहसुन का रस ४ तो०, कटु तैल ऽ॥, यथाविधि तेल सिद्ध करें। गठिया रोग में शोथ युक्त संधियों पर इस तेल के मालिश करने से बहुत उपकार होता है। —लेखक।

कलिहारी, दंती, सिंगिया (बछनाग), संखिया, (सोमल), पाषाणभेद समभाग पानी में पीस कर नाभि, योनि और वस्ति में लेप करने से मरा हुआ गर्भ शीघ्र निकल आता है।

कलिहारी को पानी में घिसकर उसमें फाहा तर करके योनि में रखने से मासिक धर्म जारी होता है।

कलिहारी, सिरस के बीज, अर्क दुग्ध, पीपल, सेंधा नमक, इनको सम भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर बवासीर पर लेप करने से बवासीर नष्ट होता है।

कलिहारी और सिरस की छाल समभाग कांजी में पीसकर गुदस्थान पर लेप करने से बवासीर के मस्से नष्ट होते हैं। इसके कंदके कल्क में चतुर्गुण बेल और इतना ही निर्गुण्डी का स्वरस मिला कर तेल सिद्ध कर लेप करने से अथवा नस्य लेने से अपचि (कंठमाला) आराम होती है।

विधिवत् शुद्ध की हुई कलिहारी को दो रत्ती की मात्रा में सेवन करने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

कलिहारी; अतीस, कड़वी तुम्बी के पत्र, मूली समभाग काँजी में पीस कर लेप करनेसे सब कोढ़ों का विष नाश होता है।

कलिहारी १ छँ०, धतूरे का फल आधी छँ०, सोंठ आधी छँ०, अजवायन आधी छँ०; अफीम $\frac{1}{4}$ तो०, सरसों का तेल ऽ॥ सेर, यथाविधि तैल सिद्ध करके मालिश करने से सब प्रकार के वातज शूल और सूजन दूर होती है।

कविराज श्यामाचरणदास लिखते हैं कि इस कंद को पानी में घिसकर हाथ की हथेली और पैर के तलवे पर लेप करनेसे और इसकी गांठ को कमर में बांधने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है। परन्तु प्रसव होते ही उस गांठ को तुरत खोल देना चाहिए।

बम्बई में यह कृमिनाशक मानी जाती है। यह कृमिपीड़ित जानवरों को भी देने के काम में ली जाती है।

मदरास में यह सर्प और बिच्छू के विष को नष्ट करनेवाली मानी जाती है।

गायना में इसकी जड़ को स्नायुशूल दूर करने के लिए पुल्टिश की तरह काम में लेते हैं।

कलिहारी द्वारा विषाक्तता—

वैद्यकोक्त पंच वा सप्त उपविषों में से कलिहारी भी एक उपविष है। यदि इसे बे क़ायदे या अधिक खा लिया जाय, तो दस्त लग जाते हैं और पेट में बड़े ज़ोर की ऐंठन और मरोड़ होती है। तीव्र वमन और आक्षेप आदि लक्षण होते हैं। बीच-बीच में कभी थोड़े समय के लिए उक्त लक्षण शमन होते हुए जान पड़ते हैं। परंतु पुनः वे ही लक्षण आ उपस्थित होते हैं। जल्दी उपाय न होने से मनुष्य बेहोश होकर और मल टूट कर

मर जाता है। अर्थात् इतने दस्त होते हैं कि मनुष्य को होश नहीं रहता, और अन्त में मर जाता है। आशु मृतक परीक्षा करने पर रगों से रक्त तरावश पा जाने (Extra vasation of blood.) के साथ मस्तिष्क और उसकी झिल्लियों में रक्त संचय के लक्षण पाए जाते हैं। फुफ्फुस, यकृत, तथा वृक्कद्वय में गंभीर रक्त संचय पाया जाता है। आमाशयस्थित श्लैष्मिक कलाओं में प्रदाह के लक्षण दीख पड़ते हैं।

विष-शांति के उपाय

यदि कलिहारी से दस्त आदि लगते हों, तो बिना घी निकाले गाय के माठे में मिश्री मिलाकर पिलाओ।

कपड़े में दही रखकर और निचोड़ कर, दही का पानी निकाल दो। फिर जो गाढ़ा-गाढ़ा दही रहे, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर खिलाओ। इन दोनों में से किसी एक उपाय से कलिहारी के विकार नाश हो जावेंगे।

कलियुगालय—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] बहेड़े का पेड़ भा० पू० १ भ०।

कलियुगावास—संज्ञा पुं० [सं०पुं०] बहेड़े का पेड़ भा० पू० १ भ०।

क़लियुस़्स़बाग़ीन—[अ़०] सज्जी। अशख़ार।

क़लियून—[यू०] इसबगोल।

कलियूम—[ ] मजरी।

क़लियूस—[यू०] सज्जी। अशख़ार।

कलियोनेरिया—[ले०] एक ओषधि,

क़लिय्यः—[अ़०] दे० "कलिया"।

कलिवृक्ष—संज्ञा पुं [सं०पुं०] बहेड़े का पेड़। विभीतक वृक्ष। हे० च०।

कलिसोदरा—संज्ञा स्त्री० [सं०स्त्री०] हड़जोड़। अस्थिसंहारी।

कलिहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कलियारी। करियारी। करिहारी। लांगली। भा० पू०१ भ०। वै० निघ० वा० व्या० महाविषगर्भ तैल।

कलींजुवा—[?] झाँपल नामक पक्षी।

कलींदा—संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] तरबूज़। हिनवाना।

कली—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बिना खिला फूल। मुँहबँधा फूल। बोंडी। कलिका। कलि। जालकक १ मुकुल। कुडमल। अविकशित पुष्प। कोरक। क्षारक। शिगूफ़ा। अन्य भाषा के पर्य्या०—ज़ह्र,(बहु० अज़हार) वा ज़ह्रः (अ़०) गुंचः (बहु० गुंचहा)—फ़ा०। कली (बहु० कलियाँ, क्रि० अ० कलियाना = कली लेना) —हिं०। कल्ली (बहु० कल्लियाँ)—द०। मोग्गु (बहु० मोग्गुगलु)—ता०। मोग (बहु० मोग्गलु)—ते०। मोट्ट (बहु० मोट्टुकल़)—मल०। मोग्गू (बहु० मोग्गुग़लु), मग्गे (बहु० मग्गेग़लु)—कना०। कलि—बं०। कल़ी (बहु० क़ल़े) —मरा०। कलि़ (बहु० कालि़यो)—गु०। मोट्ट सिंगा०। आङोन वा अंगोन (बहु० आङोन मियाआ, अंगोन मियाआ)—बर०। बड Bud अं०।

(२) ऐसी कन्या जिसका पुरुष से समागम न हुआ हो। (कच्ची कली=अप्राप्त यौवना) (३) चिड़ियों का नया निकला हुआ पर।

संज्ञा स्त्री० [अ़०कलई] पत्थर वा सींप आदि का फुका हुआ टुकड़ा जिससे चूना बनाया जाता है। जैसे—कली का चूना।

Unslaked lime, *Quick lime* (Calcium Oxide.)

संज्ञा स्त्री० [?] काँजी। लु० क०।

क़ली,क़िली—[अं०] सज्जी। अशख़ार।

क़लीई़—[?] अर्तनीसा। चोबक उश्तान। आज़रबू।

कलीक—[तिनकाबिन] जंगली गुलाब का फूल। दलीक।

कलीकटी—[?] माडल।

कलीकरुन—[?] (१) बुस्तानी राई। (२) जरजीर। तरामिरा।

कली-का चूना—संज्ञा पुं० दे० "कली"।

कलीकान कलीसर—[!] त़रर्बूब।

क़लीक़ी—[?] अलकतरा। क़ीर। लु० क०।

क़लीज़दान—[फ़ा०] ततैयों का छत्ता। बर्रे का छत्ता।

कलीजर—संज्ञा पुं० [!] विष्णुक्रांता।

कलीज़ा—[फ़ा०] ततैया। भौंरा। बर्रे। भिड़।

कलीजीदूनियून—[रू०] (१) हल्दी। ज़र्दचोब। (२) छोटा मामीरान। ममीरी।

कलींजुवा-[?] फाँपल नामक पक्षी ।
क़लीद-[?] कायफल ।
कलींदा-संज्ञा पुं० [सं० कलिङ्ग] तरबूज । हिनवाना।
क़लीनूक़ूज़ियून-[यू०] एक प्रकारका अंचू (उल्लैक़)
क़लीनून-[यू०] सरसर के पैर ।
क़लीनूबूज़ियून-[यू०] अंचू (उल्लैक़) का एक भेद । कज़हिसरी ।
क़लीफ़ल्मून-[?] (१) साख़ू या साल की गोंद । राल । क़ैक़हर । (२) एक प्रकार की बदबूदार गोंद । (३) एक प्रकार का संदरूस । मु० अ० । म० अ० ।
क़लीब-[अं०] भेडिया । वृक् ।
कलीवा-[?] छोटे आल का पत्ता ।
कलीम-[?]करौंदा ।
क़लीमालस-[यू०] जंगली चमेली ।
क़लीमिया-[यू०] (Zinc carbonate) Calamina, इकलीमिया । क़लामीन ।
क़लीमियाए मुसफ़्फ़ा- / क़लीमियाए मुह़ज़्ज़र- [अ०] (Calamine praeparata) Prepared calamine एक प्रकार का हलके गुलाबीमायल भूरे रंग का चूर्ण जिसमें करकराहट बिलकुल नहीं होती । वि० दे० "जस्ता" ।
क़लील-संज्ञा पुं० [अ०] थोड़ा । कम ।
कलीली-संज्ञा स्त्री० [?] कुकरौंछी ।
क़लीलुल् ग़िज़ा-[अ०] वह आहार (ग़िज़ा) जिससे ख़ून कम पैदा हो । कम ग़िज़ाइयत वाला ।
कलीलुल् मकानी-[सिरि०] इकलीलुल् मलिक ।
कलीव सुंबुल अस्फ़र-[अ०] सज्जी ।
कलीवाज, कलीवाज-[फ़ा०] चील । ग़लीवाज ।
कलोशिया-[सं० ?] मुलक्कू का पेड़ । लु० क० ।
क़लीस-[यू०] खरबूज़ा । ख़रपज़ा ।
कलीस-[फ़ा०] (१) ज़र्दालू । ख़ुबानी । (२) उल्लू ।
[माज़ंदरान] एक प्रकार की बड़ी मछली । जिर्री ।
कलीसवा-[सं० ?] मुलक्कू का पेड़ । लु० क० ।
कलीसर-संज्ञा पुं० [?] काकीसर ।
कलीसरेचः-[फिरंगी] मुलेठी ।
कलुंग-[ता०] कुकुमादुण्डा ।
कलु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गरुड़ शालि । रा० नि० व० १६ ।
[सिंगा०] काला ।
कलुअंगोल-[सिंगा०] काला ढेरा । Alangium henape talum, *Lam.*
कलुअत्तन-[सिंगा०] काला धतूरा । कृष्णधुस्तूरक ।
कलुइंद्रजौ-[मरा०] तिक्त कुड़ा ।
कलुई-[बं०] झिकराई ।
कलुकेरा-[बं०] Capparis a cuminata, *Roxb.* गोविंदफल ।
कलु-कोल्लु-[सिंगा०] चाकसू ।
कलुका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) उल्कापात । तारा टूटना । (२) मदिरा गृह । शराबखाना । शुण्डा ।
कलुदुरु-[सिंगा०] कलौंजी ।
कलुवोलम्-[सिंगा०] एलुवा । मुसब्बर ।
कलुमल-[अं० केलोमल] रस कपूर ।
कलुमुरिस-[सिंगा०] काली मिर्च ।
कलुरी-[मरा०] तुरई । घोषक ।
कलु लुनु-[सिंगा०] काला नमक ।
कलुमिरिस-[सिंगा०] काली मिर्च । गोल मिर्च ।
कलुरन-[सिंगा०] काली कुटकी । कटु रोहिणी ।
कलु वरनिआ-[सिंगा०] काला संभालू । कृष्ण सुरसा । (Justicia gendarussa, *Linn.*)
कलुरुकी-[देश०] तुइया। (Pouzolzia Indica)
कलुवेचरु-[सिं०, का०] शिलाजीत ।
कलुष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कलुषा, कलुषी] (१) भैंसा । महिष । रा० नि० व० १६ । (२) मण्डलि सर्प । सु० कल्प० ४ अ० दे० "साँप" ।
कलुष मञ्जरी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] जिगिन । जिङ्गिनी । वै० निघ० ।
कलुसरा-[उ० प० सू०] खड़ उसरा ।
कलु-सीमनि-गहा-[सिंगा०] काला मकोय । मकोय ।
कलु-सीहु-[गु०] सीसा । सीसक ।
कलुषयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] वर्णसंकर । दोग़ला ।

कलूँदा–दे० "कलौंदा"।
कलू–[फ़ा०] शीरमाल।
कलूख़–[फ़ा०] अमरूद।
क़लूग़ी तूत–[यू०] सनोबर।
कलूचो–[पं०] शंगला। कदीरा। (सिमला)।
कलूजन–[राजपु०] कुलंजन।
कलूत–[?] बाक़लाए हिंदी।
क़लूफ़ा–[यू०] कद्दू।
क़लूब–[अ०] भेड़िया।
क़लूबा क़लूवा मेख़–[रू०] आँवला।
क़लूबासीर–[रू०] आँवला का दूध।
क़लूरक़िया–[यू०] चंदन। संदल।
क़लूसून–[यू०] पुदीना।
क़लूनूस–[?] क़ुलूनूस। रोहूमछली। शबूत।
क़लूमूस–[यू०] रासन। क़ुलूमूस।
क़लूह्–[?] वृक्ष। गुर्दा।
कलूना–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा धान जो पंजाब में उत्पन्न होता है।
कलेंजि–[बर०] कठ करंज।
कलेंजुआ–[?] झाँपल पक्षी।
कलेंदा–दे० "कलींदा"।
कलेजई–संज्ञा पुं० [हिं० कलेजा] एक प्रकार का रंग। चुनौटिया रंग।
कलेजा–संज्ञा पुं० [सं० यकृत, (विपर्य्यय) कृत्य, कृज्ज] (१) हृदय। दिल। (२) जिगर। यकृत। कबिद। (३) छाती। वक्षःस्थल।
कलेजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कलेजा] (१) कलेजे का मांस। (२) दे० "करेजी"।
कलेटा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बकरी जिसके ऊन से कंबल आदि बुने जाते हैं।
कलेन्नियम्–[मल०] भँगरा। भँगरैया।
कलेयम् कोनप–[मल०] बारहसिंगा।
कलेवर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] देह। शरीर। चोला। जिस्म। रा० निघ० व० १८। (कलेवर बदलना कायाकल्प होना। रोगके पीछे शरीर पर नई रंगत चढ़ना)।
कलेसुर–संज्ञा पुं० दे० "कलसिरा"।
कलै–[पं०] चूना।
कलैप्पै क किशंगु–[ता०] कलिहारी।
कलों कुलई–[उ० प० सू०] छोटा मटर।
कलोई बोड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा साँप वा अजगर जो बंगाल में होता है।
कलोडियन–संज्ञा पुं० [अं० Collodion] [बहु० कलोडियंस Collodions] कलोदियून। दे० "कोलोडियम्"।
कलोडियम्–संज्ञा पुं० [ले० Collodium] [बहु० कलोडिक Collodia] दे० "कोलोडियम्"।
कलोद्भव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलम शालि। कलमा धान। रा० नि० व० १६। जड़हन।
कलोर–संज्ञा स्त्री० [सं० कलभ] वह जवान गाय जो बरदाई या ब्याई न हो। A heifer.
कलौंजदाना–संज्ञा पुं० [हिं० कलौंजी+दाना] मँगरैला। कलौंजी।
कलौंजी–संज्ञा पुं० [सं० कालाजाजी] एक क्षुप जो दक्खिन भारत और नैपाल की तराई में होता है। इसकी खेती नदी के कूलों पर होती है। दोमट वा बलुई जमीन में इसे अगहन पूस में बोते हैं। इसका पोधा डेढ़ दो हाथ ऊँचा सोंफ के पौधे से मिलता-जुलता होता है। शाखायें एक बालिश्त के बराबर अथवा उससे बड़ी और पतली होती हैं। फूल सफ़ेदी लिये पीले होते हैं। किसी किसी में नीलेपन की भी झलक होती है। फूल झड़ जाने पर फलियाँ लगती हैं जो ढाई-तीन अंगुल लम्बी होती हैं जिनमें काले काले दाने भरे रहते हैं। ये दाने वा बीज तिकोने, छोटे; बाहर से गहरे भूरे वा काले रंग के और भीतर से पांडु-श्वेत वा शुभ्र वर्ण के (गिरी) होते हैं। इनका फली से संलग्न सिरा (Umbilical end) अपेक्षाकृत क्षुद्र होता है। बीज के ऊपरका छिलका खुरदरा (उच्च नीच) होता है। देखने में ये दानादार बारूद की तरह प्रतीत होते हैं। स्वाद में ये किंचित्तिक्त और सुगंधित होते हैं। इनमें से एक प्रकार की विशिष्ट नीबू की तरह की प्रिय एवं तीव्र गंध आती है और इसी से ये मसाले के काम में आते हैं। इन बीजों से तेल भी निकाला जाता है, जो दवा के काम में आता है। यह उड़नशील तैल ही इसका प्रभावकारी सार भाग होता है।

तेल के विचार से यह दो प्रकार का होता है। एक का तेल काला, उड़नशील और सुगंधित होता है, दूसरे का तेल साफ़ रेंडी के तेल का सा और गाढ़ा होता है।

सर्वोत्तम कलौंजी वह है, जिसके दाने नये, भारी मोटे तेज़ और चरपरे हों। इसमें सात साल तक शक्ति रहती है।

पर्या०—उपकुञ्चा, उपकुञ्ची, कालिका, उपकालिका, सुषवी, कुञ्चिका, कुञ्ची, पृथ्वीका, स्थूलजीरकः (ध० नि०), दीप्यः, उपकुञ्चिका, काली, पृथ्वी, स्थूलकणा, पृथुः, मनोज्ञा, जारणी, जीर्णा, तरुणः, स्थूलजीरकः, सुषवी, कारवी, पृथ्वीका (रा० नि०); कालिका, सुविषा, कुञ्ची, करकृष्णा, वार्षिका (केय० दे०), कालाजाजी, सुषवी, कालिका, उपकालिका, पृथ्वीका, कारमी, पृथ्वी, पृथु, कृष्णोपकुञ्चिका, उपकुञ्ची, कुञ्चिका, कुञ्ची, वृहज्जीरक (भा०), उपकुञ्चिः (र०) सुषवी, कारवी, पृथ्वी, पृथुः, काला, उपकुञ्चिका (अ०) कुञ्चिका (ज), पतिम्बरा (श०), सुषवी, कुञ्चिका (अ० टी०), सुषवी, पृथुका, पृथिवी, भेषजं, (शब्दर०) कृष्णा, जरणा, शाली, बहुगंधा, कृष्णजीरः, कृष्णजीरकः—सं०। कलौंजी, मँगरैला, मगरेला, मँगरैल—हिं०। कालाजीरा, कलौंजी—द०। कालाजीर, कालाजीरा, कालजीरा, मँगरइल, कृष्णजीरा, मँगरैला, शा जीरा, किर्मानी जिरा, विलाती जिरा—बं०। शौनीज़, हब्बुतुस्सौदा, कमूने अस्वद, कमूने हिंदी, अल्हब्बतुस्सौदा, अल्शोनीज़, अलशीनीज़, अल्हब्बतुल ख़िज़रा, सौयदाऽ, कबूदान्, कमूनी, हब्बेअसवद्—अ०। स्याह दानः, स्याह बिरंज, शोनीज़, शोनूज़—फ़ा०। (Sibthorb) क़राचोरक ऊदी—तु०। निगेल्ला सिटिवा Nigella Sativa, *Linn.*, निगेल्ला इंडिका Nigella, Indica, D. C.—ले०। स्माल फेनेल Small Fennel, नाइगेल्ला सीड्स Nigella seeds seed flower—अं०। Nielle Toute epice—फ्रा०। Gemein Nigelle, Schwarzer-Kummel Melanthion—जर०। करुञ् शीरगम् करुञ् जीरगम—ता०। तल्ल-जिलकर, तल्लजीरे. तल्लजीरा कारी—ते०। करुन् चीरकम्—मल०। करे-जीरग (गे), का जीरगे, करि जिरिगि कलौंजी, चिलिय जीरगे, काले जीरको, काले जिरे, मेंकरी जोदु जीरगे, करिदाडुरिगे—कना०। काल जीरे, कलौंजी जीरे—मरा०। काली जीरी, कलौंजी जीरु—गु०। कलु दुरु—(सिंहली)। समै ने—बर०। कालेंजिरे तुक्मे-गंदना—काश०। सियाह-दार—अफ़्०।

इतिहास—संस्कृत कृष्णजीरक, उपकुञ्चिका, कालाजाजी इत्यादि धन्वन्तरीय राजनिघंटुक्त शब्दों के देखने से यह प्रतीत होता है, कि भारतीयों का कलौंजी विषयक ज्ञान प्राचीनतम है। कलौंजी और उसके अन्य जातीय पौधों का प्रभव स्थान भारतवर्ष है। प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्रविद् राक्सबर्ग का भी ऐसा ही मत है। ऐन्सली के मतानुसार इसका वैज्ञानिक नाम Nigella Indica है। किसी किसी ने इसका मूल प्रभव स्थान मिश्रादि अन्य देश माना है और तद्देशीय पौधे का नाम Nigella Sativa लिखा है। फार्सफह्ल (Forskahl) अपने (Medicina Kabarina) ग्रन्थ में लिखते हैं कि इसका आदि उत्पत्ति स्थान मिश्र है, जहाँ इसे हब्बुस्सौदा कहते हैं। संभव है यह अन्य देशों में भी अति प्राचीन काल से स्वतन्त्रतया होती रही हो, जिसकी पुष्टि उपर्युक्त वर्णन से होता है। परन्तु भारतवर्ष को इसका मूल प्रभव स्थान मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। भारतीय और विदेशीय दोनों के बीज स्वरूप और लक्षणादि में प्रायः समान होते हैं। अतएव दोनों के लिये प्रायः एक ही संज्ञा का व्यवहार होता है और N. Sativa तथा *N.* Indica दोनों परस्पर एक दूसरे के पर्याय स्वरूप व्यवहार की जाती है।

वर्डवुड के अनुसार यह ईसाई धर्म ग्रन्थोक्त (Black Cumin), बुकरात और दीसकूरी दूस लिखित 'मेलाथियून' और प्लाइनी लिखित 'गिथ' है।

प्राचीन युनानी निघंटु ग्रन्थों में 'शोनीज' वा 'हब्बतुस्सौदा' नाम से इसका उल्लेख मिलता है।

काकपदीय वा वत्सनाभ वर्ग

(*N. O. Ranunculaceæ.*)

उत्पत्ति स्थान—भूमध्यसागर के देश भारतवर्ष के बहुत से भागों में विशेषतः बंगाल में बीज

के लिये इसकी खेती होती है। इसके बीज वा कलौंजी प्रायः सभी भारतीय बाजारों में सुलभ होती है। उत्तर भारतीय बाज़ारों में यह उत्तर भारत बसरा और काबुल से आती है।

औषधार्थ व्यवहार—बीज।

रासायनिक संघटन—बीज के १०० भागों में ३७.५ भाग एक स्थिर तैल, १.५ भाग एक प्रकार का उड़नशील तैल, ८.२५ भाग अलब्युमेन, २ भाग लबाब, शर्करा (वा ग्ल्युकोज़) २.७५ भाग, सैन्द्रियकाम्ल ०.६ भाग, मेटारबीन १.४ भाग, हेलेबोरीन के तद्वत् मेलान्थीन १.४ भाग, भस्म ४.५ भाग, आर्द्रता ७.४ भाग और अरबिकाम्ल ३.२ भाग इत्यादि इत्यादि। इनमें उड़नशील तैल ही इसका प्रभावकारी अंश होता है जिसमें (१) कार्वोन an unSaturated Ketone ४५ से ६०% प्रतिशत (२) कार्वीन Carven (terpene or d-limonene) और (३) सायमीन Cymene—ये द्रव्य होते हैं।

औषध-निर्माण—चूर्ण।

मात्रा—आधे से २ ड्राम (वा आधे से १ आना); टिंक्चर वा आसव—(१ पाइंट शुद्ध सुरासार और २॥ आउंस कलौंजी का चूर्ण इनसे यथाविधि तैयार किया हुआ)

मात्रा—१ से २ ड्राम।

आयुर्वेदीय योग—पञ्चजीरकपाक (भा०) कारव्यादि गुटिका (यो० र०), कारव्यादि चूर्ण (च० चि० २६ अ०)

इसकी प्रतिनिधि स्वरूप युरोपीय द्रव्य—आलियम् मेंथी पाइपरेटी, कैसकैरिल्ला बार्क और सैंटोनीन।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

पृथ्वीका कटुका पाके रुच्यापित्ताग्निदीपनी।
श्लेष्माध्मानहराजीर्णाजन्तुघ्नी च प्रकीर्तिता॥
(ध० नि०)

कलौंजी—पाक में चरपरी, रुचिकारी, पित्तजनक, और अग्निदीपक है तथा यह श्लेष्मा, आध्मान और जन्तुओं का नाश करनेवाली है।

पृथ्वीका कटुतिक्तोष्णा वातगुल्मामदोषनुत्।
श्लेष्माध्मानहरा जीर्णा जन्तुघ्नी दीपनीपरा॥
(रा० नि०)

कलौंजी—कड़वी, चरपरी, उष्णवीर्य तथा वायु, गुल्म, आमदोष, कफ, आध्मान और जंतुओं को नष्ट करनेवाली तथा परम दीपन है।

उक्तोपकुञ्चिकातिक्ता कटुर्वी चोष्णा च दीपनी।
वृष्या चार्जीर्ण शमनी गर्भाशय विशोधिनी॥
आध्मानवात गुल्मञ्च रक्तपित्तं कृमींस्तथा।
कफं पित्तं चामदोषं वातं शूलञ्च नाशयेत्॥

कलौंजी—कड़वी, चरपरी, गरम, जठराग्नि प्रदीपक, वृष्य, अजीर्ण नाशक, गर्भाशय को शुद्ध करनेवाली है और आध्मान, वात, गुल्म, रक्तपित्त, कफपित्त, आमदोष, बादी और शूल को नष्ट करती है।

कलौंजी के वैद्यकीय व्यवहार

चक्रदत्त—रक्तपित्त में पृथ्वीका—रक्तपित्त रोगी के उद्गार एवं निश्वास में रक्तगंध अनुभूत होने पर कलौंजी का चूर्ण द्विगुण चीनी के साथ सेव्य है। यथा—

"लोहगन्धिनी निःश्वासे उद्गारे रक्तगन्धिनि।
पृथ्वीकां शाणमात्रान्तु खादेत्तद्द्विगुणसिताम्॥
(रक्तपित्त चि०)

भावप्रकाश—विषमज्वर में कालाजाजी—कलौंजी का चूर्ण पुराने गुड़ के साथ सेवन करने से विषमज्वर नष्ट होता है। यथा—

"कालाजाजी तु सगुड़ा विषमज्वर नाशनी।"
(ज्वर चि०)

युनानीमतानुसार—प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। क़ानून में तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष उल्लिखित है। कोई-कोई तृतीय कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष बतलाते हैं।

हानिकर्त्ता—यह वृक्क और मूत्राशयवों को हानिप्रद है तथा फुप्फुस एवं उष्ण यकृत को हानिकर है और शिरःशूल उत्पन्न करती है।

दर्पनाशक—(१) कतीरा और बंशलोचन या सिरके में कलौंजी को भिगोकर खाना वा

कासनी या खुरफे के पानी के साथ, (२) अकेला कासनी, (३) सिरके में भिगोकर उपयोगित करना, और (४) खीरे के बीज ।

प्रतिनिधि—जैतून का गोंद, तुख़्म रशाद, तिगुना अनीसून तैल में आधे सोये के बीज, पारसीक यमानी के बीजों को भी इसकी प्रतिनिधि लिखा है ।

मात्रा—३॥ माशे से अधिक हानिकारक होती है । कहते हैं कि ७ माशे तक खाए, अधिक खाना उचित नहीं । किसी-किसी ने ४॥ माशे से ६ माशे, बल्कि १०॥ माशे तक शीत प्रकृति को और १॥॥ मा० से ३॥ मा० तक उष्ण प्रकृति को बतलाया है । इससे अधिक सेवन करने से ख़ुनाक पैदा होने का भय है ।

गुण, धर्म, प्रयोग—कलौंजी तीक्ष्णोष्ण (हाद) और परिष्कारक (जाली) है । यह वायु को अनुलोम करती है और अपनी कांतिकारिणी शक्ति (क़ुव्वत जिला) के कारण उलटे मस्सों (सालील मनकूसा) का छेदन करती है । यह व्यंग एवं श्वित्रका निवारण करती है, क्योंकि इसमें ऊष्मा द्वारा सम्यक् परिपक्वता को प्राप्त उस सूक्ष्मतत्वांश के कारण, एक प्रकार की कांतिकारिणी शक्ति विद्यमान होती है । इसे बाहर उदर के ऊपर लगाने से यह सूत्र कृमियों और कद्दूदाने को नष्ट करती है, क्योंकि इसमें तारल्यकारिणी (लतीफ़ा) और अवरोधोद्घाटिनी शक्ति के सहित तिक्तता होती है । इसके तिनकों को तालाब में डालने से मछलियाँ ऊपर तैरने लगतीं हैं । यदि इसको भूनकर अलसी (क़त्तान) के नीले कपड़े में पोटली बाँध- कर सूँघा जाय, तो अपनी अवरोधोद्घाटिनी शक्ति से स्रोतों (मसफ़ात) के अवरोधों का उद्घाटन करती है । (नफ़ी०)

कलौंजी वातानुलोमक, उदराध्मान नाशक और मलावरोधनाशक होती है । (ता० श०)

यह औष्ण्य एवं रौक्ष्य और कांति (जिला) उत्पन्न करती, रतूबत वा क्लिन्नता का शोषण करती, माद्दे को पकाती और उसका साम्य संपादन(मातदिलुल् क़िवाम) करती है । इसको औंटाकर पीने से मृत और जीवित शिशु उदर के बाहर निकल पड़ताहै । यह आर्त्तव, स्तन्य और मूत्र का प्रवर्त्तन करती है। इसके सिवा यह प्रसव कालीन रक़्स्तु (निफ़ासका ख़ून) एवं तज्जन्य वेदनाका निवारण करती है । यह सर्द खाँसी, उरो वेदना, जलोदर और वायु जन्य उदरशूल (रियाही कुलंज) को लाभकारी है । यह उदरज कृमियों को निःसरित करती है । इसके लेप से सूजन उतरती है । घी के साथ कपोलों को अरुण वर्ण और चेहरेको साफ़ करती है ।यदि रतीला या बावले कुत्ते ने काट खाया हो, तो ४॥ मा० से ७ मा० बल्कि १०॥ मा० तक पानी के साथ खिलाने से उपकार होता है । सिकंजबीन के साथ जीर्ण कफ ज्वर और चातुर्थिक ज्वर के लिये उपकारी है । यदि सात दाने कलौंजी स्त्री के दूध में पीसकर कामला रोगी की नाक में, जिसकी आँखें पीली पड़ गई हों, टपकायें तो बहुत उपकार हो । यदि क़ै में पीव आती हो, जी मिचलाता हो, तिल्ली बढ़ी हुई हो, तो इससे उपकार होता है । यदि साँस लेने में कष्ट हो यहां तक कि रोगी शय्या पर पहलू न टेक सके और जब तक सीधा न बैठे या खड़ा न हो और गरदन सीधी न रखे, साँस न ले सके, तो उक्त अवस्था में कलौंजी से बहुत उपकार होता है । कलौंजी को जलाकर मोम और तेल मिलाकर सिर के गंज पर मलना गुणकारी है । दीर्घकाल तक ऐसा करने से बाल उग आते हैं । केवल सिरका में मिलाकर मस्सों पर लगाने से वे कट जाते हैं । इसको पीसकर सिरके में मिलाकर पेट पर लगाने से कद्दूदाने नष्ट हो जाते हैं । इसके धुएँ से ज़हरीले कांड़े-मकोड़े भागते हैं । सिरका और सनोबर की लकड़ी के साथ क्वथित करके उसका गंडूष करना दंतशूल को लाभकारी है । कलौंजी पीसकर छाछ में औंटाकर उसे नारू पर प्रलेपकरें, तीन दिनमें समस्त नारू निकल आयेंगे, चाहे वे टूट गये हों । कलौंजी के पेड़ के पत्ते, डालियाँ और बीज—इनको पीसकर जननेन्द्रिय के छतों पर लगाने से वे आराम होते हैं । कलौंजी को पानी में पीसकर शहद मिलाकर पीने से वृक्क और वस्तिस्थ अश्मरी निकल जाती है । इसको जलाकर राख लगाने और पीने से अर्शांकुर गिर

जाते हैं। इसका यह विशेष धर्म है कि इसके पेड़ को पानी में डालने से मछलियाँ उसके सन्निकट आने के लिये पानी के ऊपर आ जाती हैं। कलौंजी के दाने ऊन के कपड़े में रखने से कीड़े नहीं लगते। यदि इसे ज़ैतून के तेल के साथ निहार मुँह खाया करें, तो रंग सुर्ख निकल आये। इसको भूनकर कपड़े में बाँधकर सूँघने से सर्दी का जुक़ाम जाता रहता है। ग़ाफ़रूनी इसको प्रतिश्याय में विशेष उपकारी लिखते हैं। उसका यह प्रभावज गुण है। वह प्रतिश्याय जिसमें छींकें अधिक आती हों और नाक से पानी बहता हो, ज़ैतून के तेल में कलौंजी का चूर्ण मिलाकर चार बूँद नाक में टपकाने से उपकार होता है।

इसकी धूनी लेने से भी उक्त लाभ होता है। गीलानी कहते हैं कि इसकी यह ख़ासियत (प्रभाव) है कि यह उन डकारों को बंद करती हैं जो कफ एवं वायु जन्य होते हैं। इसके खाने से अम्लोद्गार रुक जाते हैं। इसके दीर्घकालीन उपयोग से स्त्री-स्तन्य की वृद्धि हो जाती है। इसके चर्वण-भक्षण से मुख में सुगंधि आने लगती है। इसके अधिक मात्रा में सेवन से ख़ुनाक़ निकल आता है और मूर्छा आने लगती है। क़ै कराना, दुग्धादि पिलाना और छिक्किका (कुंदश) भक्षण विष निवारणोपयोगी उपायों द्वारा इसका प्रतीकार करें। कलौंजी को सिरके में भिगो सुखाकर पीस लेवें। इसमें से ७ माशे प्रति दिन तीन दिन तक खाने से जलसंत्रास (श्वानविष) रोग दूर होता है। (ख़० अ०)

वैद्यों के कथनानुसार कलौंजी चरपरी और उष्ण है। यह आमाशय एवं उदरज वायु शूल, अजीर्ण, पाचन नैर्बल्य, ज्वर और अतिसार का निवारण करती है। इसके उपयोग से स्त्री-स्तन्य की वृद्धि होती है। यह फोड़ों को पकाती और साफ़ करती एवं मूत्र की वृद्धि करती है। यह सर्दी के विकारों को दूर करती है। इसके उपयोग से कीड़े मरते हैं। ५ रत्ती से २॥ माशे तक कलौंजी के चूर्ण की फंकी लेने से शारीरोष्मा एवं नाड़ी की गति तीव्र होती है और शरीर के आभ्यंतरिक सकल अंगों के अवरोध दूर होते हैं। ५ रत्ती से १। माशे तक कलौंजी के चूर्ण की फंकी देने से कृच्छ्र एवं कष्ट रज में उपकार होता है। गर्भवती स्त्री को इसका सेवन वर्जित है। यह बल्य ओषधियों में परिगणित होती है और सारक औषधों के साथ दी जाती है। स्त्री-स्तन्य-शोधनार्थ कढ़ी वा तरकारी के साथ कलौंजी देना चाहिये। ऊनी कपड़ों में कपूर और कलौंजी पीसकर रखने से उनमें कीड़े नहीं लगते। कलौंजी ५ तोले, बकुची ५ तोले गूगुल ५ तोले, दारुहलदी की जड़ ५ तोले, गंधक २॥ तोले, नारियल वा खोपरे का तेल दो बोतल, सर्व प्रथम कलौंजी से गंधक पर्यंत सकल द्रव्यों को बारीक पीसकर तेल में मिलाकर बोतलों में भरकर काग लगाकर सप्ताह पर्यंत धूप में रखें। दिन में दो-तीन बार खूब हिला दिया करें। शरीर पर इस तेल को मर्दन करने से कुष्ठ प्रभृति चर्मरोग आराम होते हैं। ३ माशे कलौंजी का चूर्ण ३ माशे मधु में मिलाकर चाटने से हिचकी बंद होती है। इसका काढ़ा पिलाने से कामला रोग का नाश होता है। इसको जल में पीसकर बालों में मलने से केश बढ़ने लगते हैं और उसका गिरना रुक जाता है। कलौंजी और एलुए की बत्ती बनाकर गुदा में धारण करने से चुन्ने वा सूत्र कृमि मृत प्राय होते हैं। कलौंजी और स्याह जीरे का प्रलेप करने से शीत जन्य शिरःशूल मिटता है। कलौंजी का एक तोला चूर्ण शहद के साथ बारी के दिन चटाने से चातुर्थिक ज्वर दूर होता है। इसे शहद में मिलाकर लगाने से बानर का विष उतरता है। इसको गुड़ में मिलाकर खाने से एकतरा ज्वर छूटता है। भुजी हुई कलौंजी दो माशे, नौसादर २ मा०, सोंठ ६ मा०—इनको पीसकर पोटली बाँधकर सूँघने से प्रतिश्याय नष्ट होता है। इसका हलुआ बनाकर खिलाने से जलसंत्रास (कुक्कुर विष) रोग आराम होता है। इसके हलुए से उदरज वायुशूल, उदरज कृमि, उदराध्मान और कफज रोग आराम होते हैं। इसका चूर्ण फँकाने से मूत्रावरोध मिटता है। इसको सिरका में पीसकर रात्रि में मुँह पर लेप करने और प्रातःकाल धो डालने से यौवन-पिड़का वा मुँहासे मिटते हैं। इसी के लेप से चर्मगत चट्टे नष्ट होते हैं।

कलौंजी का तेल।

कलौंजी के तेल में ज़ैतून का तेल मिलाकर पीने से असाध्य नपुंसक व्यक्ति में भी प्रचंड काम शक्ति जागृति हो उठती है। कटि एवं जननेन्द्रिय पर कलौंजी तेल का अभ्यंग करने से असीम कामेच्छा उत्पन्न होती है। इसके मर्दन से नाड़ी शैथिल्य अर्थात् पुट्ठों की शिथिलता और शीत जन्य शूल का निवारण होता है। इसके पीने से भी सरदी का दर्द दूर होता है। गीलानी के मतानुसार शक्ति में यह तेल सूली के तेल के समकक्ष होता है। इसके अभ्यंग एवं पान से फ़ालिज, अवसन्नता, कंप और धनुष टंकार (कुज़ाज़) आराम होते हैं। यह रूह हैवानी—प्राण शक्ति को सुदूरवर्त्ती अंगों की ओर संचारित करता है। यह नाड्यवरोधों का उद्घाटन करता है। जिससे चेष्टा का अनुभव होता है। यह अंगों में रूक्षता उत्पन्न करता है। कान में इसे टपकाने से वाधिर्य दूर होता है और कर्णशोथ मिटता है। इसका नस्य लेने से मृगी रोग आराम होता है। इसके शिरोऽभ्यंग से लघुमस्तिष्क (मुवाख्खिर दिमाग़) के अवरोधों का उद्घाटन होता है तथा विस्मृति एवं स्मरण शक्ति के दोष दूर होते हैं। (ख़० अ०)

नव्य मत

ऐन्सली—देशी लोग वातानुलोमक (Carminative) रूप से अजीर्ण रोगों में कतिपय आँत्र रोगों में इसका व्यवहार करते हैं, तथा चर्म गत विस्फोटकों (Eruption) पर इसके बीजों को तिल तैल (Gingilie oil) में मिलाकर लगाते हैं। कढ़ी प्रभृति भोज्य द्रव्यों को छौंकने-बघारने में भी इसका उपयोग होता है। लोगों का यह विश्वास है कि इसे कपड़ों (Linen) के भीतर रखने से कीड़े नहीं लगते हैं। (मे० इं० पृ० १२८)।

डीमक—कलौंजी के बीजों का मसाला और औषध में बहुल प्रयोग होता है। अजीर्ण में अन्य सुगंध द्रव्यों तथा चित्रकमूल के साथ इसका व्यवहार होता है। डाक्टर एम० कैनोल्ही (Canolle) के अनुसार १० से ४० ग्राम की मात्रा में इसके बीजों का चूर्ण खिलाने से अभिवर्द्धित तापक्रम एवं नाड़ी की गती प्रत्यक्ष देखी गई, तथा इससे सर्व शरीरगत, विशेषतः वृक्क एवं त्वगीय स्राव अभिवर्द्धित होगये। १० से २० ग्राम की मात्रा में कष्टरज अनियमित रज प्रभृति मासिक स्राव संबंधी विकारों में इसका व्यक्त आर्त्तवरजः स्रावकारी प्रभाव देखा जाता है। (फा० इं० १ भ० पृ० २८-२९)

आर० एन० खोरी—कलौंजी कृमिघ्न, मूत्रकर, स्तन्यवर्द्धक, अतिरजःस्रावकारी एवं वायु नाशक (Carminative) है। यह विरेचक एवं तिक्त भेषज सुगंधि करणार्थ व्यवहार में आती है। प्रसवोत्तर इसका काढ़ा पीने से गर्भाशय द्वार संकोच प्राप्त एवं स्तन्यवर्द्धित होता है। कृमियों के पक्ष में भी यह हितकारी है। विषम ज्वर, ग्रहणी (Dyspepsia) अग्निमांद्य और अतिसार में यह वायुनाशक तथा पाचक (Stomachic) रूप से चित्रकमूल के साथ व्यवहृत होती है। आर्त्तवरजःस्रावकारी रूप से यह रजःकृच्छ्र, रजोरोध वा विलम्बित रज में सेव्य है। अति मात्रा में सेवन करने से गर्भ स्राव कराती है। हस्त-पाद के कष्ट प्रद शोथ में जलपिष्ट कलौंजी का प्रलेप हितकारी होता है। पश्मीने के कपड़ों और दुशालों को कीड़ों से सुरक्षित रखने के लिए उनकी तहोंमें कलौंजी के दाने जगह-जगह छिड़क कर रखते हैं। (मे० मे० आफ इं० २ भ० पृ० १७)

नगेन्द्रनाथ सेन—कलौंजी के बीज सुगंधित वायुनाशक जठराग्निदीपक (Stomachic) और पाचक है तथा ये विरेचक एवं अन्य औषधों में तद्दर्पनिवारणार्थ पड़ते हैं। ये मूत्रल, कृमिघ्न तथा आर्त्तवरजःस्रावकारी और अजीर्ण, मंदाग्नि; ज्वर, अतिसार, शोथ, (Dropsy) प्रसूत रोग, प्रभृति में उपकारी है, ये संदेह रहित स्तन्यप्रद हैं। अतएव सद्यः प्रसूता नारियों को कतिपय अन्य औषधियों के साथ इन्हें देते हैं। इनका उत्तम व्यक्त आर्त्तवरजः स्रावकारी प्रभाव होता है अतः ये कृच्छ्र रज में ५ से १० रत्ती की मात्रा में उपकारी होते हैं। अधिक मात्रा में ये गर्भपातक होते हैं। ऊनी कपड़ों और शाल दुशालों की मोड़ों में इन्हें यत्र-तत्र छिड़क देने से उनमें कीड़े

नहीं लगते । छिड़कने से पूर्व इसमें कपूर का चूर्ण भी मिला लेते हैं । बीज पित्तघ्न भी हैं, अतएव तज्जन्य वमन निरोधार्थ इनका आंतरिक प्रयोग होता है । बीजों को भून पीसकर मलमल की थैली में भरकर पोटली बनाकर निरंतर सूँघने से सरदी और नाकसे पानी बहना (Catarrh of the nose) शांत होता है । प्रसूता नारी की प्रसवोत्तर पीड़ा हरणार्थ कलौंजी के बीजों को पीपर, सेंधा नमक और मदिरा के साथ प्रयोगित करने से उपकार होता है । कलौंजी, जीरा, कालीमिर्च, किशमिश, इमली का गूदा, अनार का रस, सोंचल नमक, इनके चूर्ण का गुड़ और मधु में बनाया अवलेह अरुचि और क्षुधानिवृत्ति में अतीव गुणकारी होता है । (चक्रदत्त) Indian Indigenous Drugs & plants.)

आर० एन० चोपरा—कलौंजी व्यक्त वातानुलोमक और जठराग्निदीपक (Stomachic) गुणविशिष्ट होती है तथा अन्य सुगंधित एवं तिक्त पदार्थों के साथ इसका व्यवहार होता है । इसके योग से पामा (Eczema) और व्यंग (Pityriasis) में प्रयुक्त बाह्य प्रयोग की उत्तम अनुलेपनौषधि इस प्रकार बनती है—कलौंजी का चूर्ण २ आउंस (५ तोले), बकुची २ आउंस (५ तोले), गुग्गुल (Bdellium) ५ तोले, दक्षिणी दार्वी-मूल-चूर्ण (Coscini radix) ५ तोले, गंधक २॥ तोले, और नारियल का तेल २ पाइंट, यथाविधि मलहम वा तेल बनाकर काम में लाएँ । (इं० ड्रू० इं० पृ० ५८७)

मोहीदीन शरीफ—प्रभाव—यह जठराग्नि दीपक, वातानुलोमक, उत्तेजक, बल्य, ज्वरहर और कृमिघ्न है ।

आमयिक प्रयोग—यह अजीर्ण और दुर्बलता के कतिपय भेदों में तथा कतिपय साधारण प्रकार के बाल ज्वरों में उपकारी सिद्ध हुई है । उपर्युक्त रोगों में से किसी एक रोग में उक्त औषधि के सेवन काल में बालकों के मल में के निर्गत केचुए अवलोकन किये गये हैं । मुसलमान लोग औषध और भोजन दोनों में इसका व्यवहार करते हैं । (मे० मे० मै० पृ० ६)

कलौंजी को पानी में पीसकर उससे बाल धोने से सात दिन में बाल चम्बे हो जाते हैं ।

कलौंजी १ तो०, प्याज के बीज १ तो०, कुसुम के बीज अर्थात् कड़ १ तो०, कटेरी की जड़ १ तो०, सोंठ १ तो०, म्योंड़ी की जड़ की छाल, बंशाङ्कुर (करीर) ४ तो०, कास की जड़ की छाल ४तो० इनसबको जौ कुट कर रखें । इसमें से १ तो० से ४ तो० तक आध सेर पानी में क्वाथ करें, जब एक छटांक पानी शेष रहे तब इसे छान कर दो तोला पुराना गुड़ मिलाकर स्त्री को पिलाने से रुद्ध आर्त्तव का प्रवर्त्तन होता है ।

—लेखक ।

कोमान के मतानुसार साधारण सूतिकाज्वर में यह औषधी लाभकारी है ।

कायस और महस्कर के मतानुसार सर्प-दंश और बिच्छू के डङ्क पर यह औषधि निरुपयोगी है ।

कलौंजी को पीसकर छाछ में मिलाकर क्वथित कर नारू पर मलकर लगाने से तीन दिन में समूचा नारू निकल जाता है । यदि नारू टूट गया हो तो कलौंजी के पत्ते, बीज और डालियाँ पीसकर बाँध देने से लाभ होता है ।

इसके तीन माशे चूर्ण को तीन माशे मक्खन में मिलाकर चटाने से हिचकी बंद हो जाती है ।

कलौंजी को पानी में पीसकर शहद मिलाकर पीने से मसाने और गुर्दे की पथरी निकल जाती है ।

कलौंजी को जलाकर उसकी राख पानी में पीने से और सूखी राख को मस्सों पर मलने से बवासीर में उपकार होता है ।

(२) एक प्रकार की तरकारी । इसके बनाने की यह रीति है कि—करैले, परवर, भिंडी, बैंगन आदि का पेटा चीरकर निम्न मसाले खटाई, नमक के साथ भरते हैं । और उसे तेल वा घी में तल लेते हैं ।

कलौंजी के मसाले में ये द्रव्य पड़ते हैं—

कलौंजी १ छँ०, धनियां भुनी हुई १ छँ०, मेथी भुनी हुई १ छँ० सोंफ १ छँ०, जीरा सफेद

१ छँ०, जीरा स्याह १ छँ०, कालीमिर्च आधी छँ०, लालमिर्च आधी छँ०, हलदी १ तो०, अमचुर २ छँ०, सेंधा नमक १ छँ०, भुनी हींग तज़ाब १ तो० इन सब को बारीक करके रखें।

कलौंजी जीरु–[गु०] कलौंजी। मँगरैला।

कलौंदा–संज्ञा पुं० [सं० ?] घोकार। लु० क०।

संज्ञा पुं० [देश० बिहार] एक प्रकार का खट्टा फल जिसका प्रायः अचार बनता है।

कलौंस–वि० [हिं० काला+औंस (प्रत्य०)] कालापन लिये। सियाही मायल।

संज्ञा पुं० कालापन। स्याही। कालिख।

कलौथी–संज्ञा स्त्री० [सं० कुलत्थ] मुँगरा चावल।

क़लौली–[?] एक प्रकार की बड़ी मुर्ग़ाबी। क़ाज़।

कल्कंक–[फ़ा०] तुख़्म ख़ुर्फ़ा। ख़ुर्फ़ा।

कल्कंद–[?] नीलाथोथा।

क़ल्कंदीस–[रू०] एक प्रकार का ज़ाज। क़ल्क़दीस।

क़ल्अ–[अ] उखाड़ना। उखाड़ डालना। जड़ से उखाड़ डालना।

क़ल्उल्हुम्मा–[अ०] ज्वर उतरना। बुख़ार उतरना। Termination of Fever

क़ल्उस्सिन्न–[अ०] दाँत उखाड़ना। दाँत निकालना। दन्तोत्पाटन। Tooth Extraction

कल्क–संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) जल में पिसे हुये द्रव्य का पिंड। किसी द्रव्य वा चूर्ण को सिल पर पीसने से कल्क प्रस्तुत होता है। जैसे–"यत्पिण्डं रसपिष्टानां तत्कल्कं परिकीर्त्तितम्।" च०। गुलूला लुगदी। (२) शहद आदि डाल कर इसकी मात्रा एक कर्ष (२ तो०) है। परिभाषा प्रदीप के अनुसार इसमें शहद, घी और तैल दूना, मिश्री वा गुड़ बराबर और द्रव पदार्थ चौगुना डालना चाहिये। प० प्र० १ ख०। पिसी हुई चीज। यथा—

"कल्को मध्वादि पेषितैः।" रा० नि० व० २०।

"यः पिण्डश्चार्द्रे पिष्टानां स कल्क इति कीर्तितः। वृद्ध वैद्यवचः साक्षात्कल्को हर्षदि पेषितः। मात्रा पिचुमिता तत्र द्विगुणं माक्षिकादिकम्। सितां गुड़ं समं दद्याद्वा देयाश्चतुर्गुणाः॥" इति कल्क विधिः।

(३) घृत व तेल का किट्ट। तलछट। कीट। मे० कद्विक। (४) सिल पर पिसी हुई वह सूखी वा जल मिली हुई वस्तु जिसे घी वा तेल पकाते समय उसमें डालते हैं। आवाप। प्रक्षेप। यथा—"द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितं। तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्याभधीयते" प० प्र० १ ख०। (५) गीली या भिगोई हुई ओषधियों की सिल पर बारीक पीसकर बनाई हुई चटनी। लुगदी। अवलेह। इसे कपड़े में रखकर निचोड़े हुये रसकी मात्रा २ तोला है। भा०। (६) कान की मैल। खूँट। श० र०। (७) तुरुष्क नामक गंध-द्रव्य। शिलारस। सिल्हक। रा० नि० व० १२। (८) विष्ठा। (९) कीट। किट्ट। मैल। मल। मे० कद्विकं। (१०) हाथी दाँत। करिदन्त। वै० निघ०। (११) बहेड़े के पेड़। (१२) चूर्ण। बुकनी। (१३) पीठी। (१४) गूदा।

क़ल्क़ताया–[अ०] आँख का एक रोग जिसमें कार्निया की झिल्ली के नीचे पीप बंद होकर उस स्थान को खा जाती है और वह स्थान नाख़ूना की तरह मालूम होता है। कमूनुल्मिदः। हाइपोपीन Hypopeyon–(अं०)।

क़ल्क़तार–[रू०] पीले सुनहरे रंग का ज़ाज। क़लंक़तार।

कल्कदीस–[रू०] जलाया हुआ ताँबा। रू सुख़्तज।

कल्कफल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनार। दाड़िम वृक्ष। रा० नि० व० ११।

कल्करोध्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पठानी लोध। पट्टिकारोध्र। रा० नि० व० ६।

क़ल्क़लंत, क़ल्क़लंद–[रू०] हीरा कसीस। ज़ाज अफ़ज़र।

क़ल्क़लान–[?] चकवड़। कुलकुल।

कल्कलानज–[?] एक हिंदी माजून का नाम।

क़ल्कलानियः–[अ०] फ़ाख़्ता। पंडुक। पेंडुकी।

क़ल्कलानी–[अ०] फ़ाख़्ता की तरह का एक पक्षी।

क़ल्क़लः–[अ०] (१) गति देना। हिलाना। मिलाना। (१) विकलता। बेचैनी। क्षोभ। जोश।

कल्कलीक–[तु०] सायर। पुदीना कोही।

कल्क़वानीस–[?] मंडूर।

कलकाजाम्प–संज्ञा पुं० (देश०) हंसराज। काली झाँप। परपियावशाँ।

क़लक़ास–[रू०] अरबी। अरुई। घुइयाँ। क़ुलक़ास (अ०)।

क़लक़ासी–[सिरि०] अरबी। घुइयाँ।

कलिकधर्म–संज्ञा पुं० [सं० पुं] विभीतक। बहेड़ा। रा० नि० व० ११।

कलिकवृक्ष, कलिक धर्म्मद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेड़े का पेड़। विभीतक का वृक्ष। रा० नि० व० ११।

कलकाल–[अ०] (१) वक्ष। सीना। छाती। (२) हँसली की हड्डी का दरम्यान। झूठी पसलियों का भीतरी रुख़। कल्कल्।

क़लक़ूनिया–[यू०] राल। रातीनज।

कलक़ूस–[यू०] ताँबा।

कलकोरा–[बं०] लाल सिरिस।

कल्ला–संज्ञा पुं० [देश०] बुस्तान अफ़रोज़। मधूरा।

कलचंग–[फ़ा०] केकड़ा।

कलचः–[फ़ा०] गेहूं की छोटी सफेद ख़मीरी रोटी।

क़ल्त–[अ०] बहु० क़लात] (१) पत्थर के भीतर का वह गड्ढा जिसमें पानी इकट्ठा हो जाय। (२) पतला दुबला आदमी।

क़ल्तुत्तक़ुंवः–[अ०] हँसली के ऊपर का गड्ढा। Supra Clavicular Fossa

क़ल्तुरुकूबः–[अ०] घुटने के पास का गड्ढा।

क़ल्तुल् इब्हाम–[अ०] अँगूठे की जड़ के पास का गड्ढा।

क़ल्तुल् ऐन–[अ०] आँख का गड्ढा। नेत्रगुहा। Optac Fossa

कल्प–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) विधान। विधि। कृत्य। (२) रोगमुक्ति। (३) कल्प वृक्ष। रा० नि० व० २०। (४) वैद्यक के अनुसार रोग निवृत्ति का एक उपाय वा मुक्ति। जैसे, केश-कल्प। काया-कल्प। (५) प्रकरण। विभाग। जैसे–औषध कल्प।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मद्य। मदिरा।

कल्पक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) नाई। नापित। श० मा०। (२) कचूर। कर्चूर। भा० पू० १ भ०।

वि० [सं० त्रि०] (१) कल्पना करनेवाला। रचनेवाला। काटनेवाला।

कल्पक-अवलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दे० कल्याण लेह।

कल्पतरु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कल्पवृक्ष। (२) सुपारी का पेड़। क्रमुक वृक्ष। रा० नि० व० ११। (३) एक रसौषध जो ज्वर में परमोपयोगी है।

पारा, गंधक, सिंगिया विष और ताम्र भस्म तुल्य भाग पीसकर पंच विल्वों की पाँच दिन भावना दें। पुनः सम्भालू के रस की सात भावना दें। ३ सरसों प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

अनुपान—कज्जली, पीपर, उष्ण जल।

गुण तथा प्रयोग विधि—सात सात गोली करके २१ गोली तक बढ़ाएँ। इसके प्रभाव से २१ दिन में असाध्य जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, ज्वरातिसार, संग्रहणी, कामला, श्वास, खाँसी और शूल नष्ट होताहै। इसको खाकर कपड़ा ओढ़कर सो जाना चाहिये, पसीना होकर ज्वर मुक्त हो जाता है। (भैष र०। ज्वर चि०।)

कल्पद्रु, कल्पद्रुम–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कल्पवृक्ष। (२) छोटे अमलतास का वृक्ष। हुस्नारम्बध वृक्ष। सोनालू। वै० निघ०।

कल्पन–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) रचना (२) काटन। कर्त्तन।

कल्पना–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सवारी के लिये हाथी को सजावट। अम०। (२) रचना। बनावट। सजावट।

कल्पनाथ, कल्पनाथ–संज्ञा पुं० [देश०] (१) दे० "कल्पनाथ"। (२) एक पेड़। (Justicia paniculata-)

कल्पनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कर्त्तरी। कर्तनी। कैंची। हे० च०।

कल्प पादप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कल्प वृक्ष। (२) गिलोय।

कल्पलता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कल्प वृक्ष। (२) बहेड़े का पेड़।

कल्पलता वटी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] ग्रहणी रोगमें प्रयुक्त होने वाला उक्त नाम का एक योग—मीठा तेलिया, शिंगरफ, धतूर बीज, प्रत्येक १२–१२

रत्ती। अफीम शुद्ध ३६ रत्ती। सबको दूध में पीसकर १-१ रत्ती प्रमाण की गोलियां बनाएँ।

गुण तथा उपयोग विधि—इसे दूध के साथ सेवन करने और आहार पान आदि में केवल दूध ही देने से और लवण तथा जल वर्जित करने से पुरातन संग्रहणी, दुरसाध्य शोथ, पुराना ज्वर और पाण्डु नष्ट होता है। (भैष० र० ग्रहणी चि०)।

कल्पविटप–संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।

कल्पवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बहेड़े का पेड़। (२) पुराणानुसार देवलोक का एक वृक्ष जो समुद्र मथने के समय समुद्र से निकला हुआ और चौदह रत्नों में माना जाता है। अम०। रत्ना०।

पर्य्या०—कल्पद्रु (म)। कल्पतरु। सुरतरु। कल्पलता, देवतरु, कल्पमहीरुह; कल्पलतिका।

संज्ञा पुं० [देश० अजमेर सं० पुं०] एक वृक्ष जिसे गोरख इमली भी कहते हैं। वि० दे० "गोरख इमली"।

कल्पा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) सफ़ेद चमेली। श्वेत जाती। (२) मद्य। मदिरा। वै० निघ०

कल्पाङ्ग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पर्पट।

कल्पाङ्गी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पर्पट। धन्व० नि०। पर्पटक।

कल्पान्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] प्रलय। कयामत। अम०।

कल्पासी–[देश० मदरास] छड़ीला।

कल्पित–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सवारी के लिये सजाई हुई हाथी। मे०।

क़ल्क़–[सिरि०] (१) छिलका। (२) रअयुल् इब्ल।

कल्कतलस–[यू०] ताँबे की मैल।

कल्कदफ़ियून–[यू०] हड़ताल की टिकियाँ।

कल्फह–[देश०, बम्ब०] दालचीनी।

क़ल्क़ानलस–[यू०] ताँबे की मैल।

क़ल्क़त्–[शामी] शामी गंदना।

क़ल्ब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) हृदय। दिल।

नोट—क़ल्ब का धात्वर्थ "उलटा" है। सीना में हृदय उलटा लटका हुआ है अर्थात् उसकी जड़ ऊपर को और उसकी नोक वा शिखर नीचे स्थित है। इसीलिये इसका नाम क़ल्ब पड़ा, वि० दे० हृदय।

(२) उलटा (३) मध्य। दरम्यान। (४) बुद्धि। अक़्ल। ख़िर्द।

कल्ब–[अ०] [बहु० किलाब, अकालीब, अकलक] [स्त्री० कल्बः] कुत्ता। कुक्कुर। सग (फ़ा०)

कल्ब कलिब–[अ०] पागल कुत्ता। बावला कुत्ता। सगे दीवानः (फ़ा०)। कल्बुल् कलिब (अ०) Mad Dog.

क़ल्बजफ़ः, क़ल्बज़फ़ूर–[यू०, सिरि०] सुरंजान।

कल्बंद–[ते०] खारपाठा। घीकार।

क़ल्बद नारदीन–[?] कायफल।

कल्बतान–[अ०] (१) चिमटा। अंबर। अबूर। जंबूर। (२) दांत उखाड़ने की चिमटी। Tooth forceps.

कल्ब तहरी–[अ०] आबी कुत्ता। जल का कुत्ता। सग आबी।

कल्ब बर्री–[अ०] गीदड़।

कल्ब बहरी, कल्ब माई–[अ०] जलीय कुक्कुर। आबी कुत्ता। सगे आबी।

कल्बसू, कल्बासू–[फ़ा०] छिपकली। चल-पासः।

कल्बा–[ज़ंद] कुत्ता।

क़ल्बा–[सिरि०] खुर्फ़ा।

क़ल्बाद अकंदना–[सिरि०] अंजदान के पत्ते।

क़ल्बाद अक़ूबनी–[सिरि०] आड़ू के पत्ते।

क़ल्बाद अतरुज्ज़ा–[सिरि०] तुरंज के पत्ते।

क़ल्बाद असिया–[सिरि०] आस के पत्ते।

क़ल्बाद कुनार–[सिरि०] बेर के पत्ते।

क़ल्बाद कुबार–[सिरि०] कबर के पत्ते।

क़ल्बाद कौज़ी–[सिरि०] अख़रोट के पत्ते।

क़ल्बाद ख़िलाफ़–[सिरि०, रु०] बेद सादा के पत्ते। क़ब्लूल अकिया।

क़ल्बाद ज़ाकिनी–[सिरि०] ज़ार के पत्ते।

क़ल्बाद ज़ैता–[सिरि०] ज़ैतून के पत्ते।

क़ल्बाद नीला–[सिरि०] नीलके पत्ते। वस्मः।

क़ल्बाद जासाकीलून, क़फ़नाला–[सिरि०] आलू के पत्ते।

क़ल्बादनूता–[सिरि०] तूत के पत्ते।

क़ल्बाद बलूत-[सिरि०] सीतासुपारी के पत्ते।

कल्बासू-[फ़ा०] छिपकली।

क़ल्बी नारदीन-[सिरि०] जिंतियाना।

क़ल्बुन्नख़्लः-[अ०] खजूर का गाभा। जुम्माज़, मग़्ज़ ख़ुर्मा।

क़ल्बुल् अर्ज़-[अ०] सुरंजान।

कल्बुल् कालिब-[अ०] दे० "कलब कालिब"।

कल्बुल्हैवानात-[अ०] एक रोग जो पागल कुत्ते, लोमड़ी, गीदड़ वा भेड़िए इत्यादि के काटने से बकरी, बिल्ली, गाय, गदहे, घोड़े, और मनुष्य को हो जाता है। चोपायों की दीवानगी। हलकाव। दे० "दाउल्कल्ब"। (Rabies, hydrophobia. *Lyssa.*

क़ल्बुल् हज़्र-[अ०] पत्थर को करेजी।

कल्मनोर-संज्ञा० पुं० [देश०] Ficus asperrima, *Roxb.* खरोटी। करकचुंदा।

क़ल्म-[अ०] नाख़ून काटना। नख तराशना।

कल्म-[अ०] [बहु० कलूम, कलाम] (१) ज़ख़्म। जराहत। चत (२) ज़ख़्मी करना।

कल्मष-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पाप। (२) करिपुच्छ। हाथी की पूँछ। त्रिका०। (३) मल। मैल। मलिनता। (४) पीब। मवाद।

क़ल्मा-[यू०, सिरि०] रेंड़। अरंड।

कल्मा-[जंद] अंगूर।

क़ल्मावस-[?] चिरायता।

कल्माष-संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] (१) सुगंध शालि। जैसे-हंसराज, वासमती इत्यादि। रा० नि० व० १६। (२) चितकबरा रंग। (३) काला रंग। (४) राक्षस।

वि० [सं० त्रि०] (१) चितकबरा। चित्रवर्ण। (२) काला। काले धब्बेवाला।

क़ल्मास-[?] चिरायता।

क़ल्मियातीत्स-[यू०] सुगंधित रेवंद का एक भेद।

क़ल्मीक-[उ़मान] (१) हरनूह। (२) मलयगिरी। (३) जंभीरी।

क़ल्मीक़लून-[क़ैक़हर।

क़ल्मीस-[रू०] पुदीना।

कल्मी साग-[कलमी+शाक] करेमू।

क़ल्मूज-[?] रासन।

क़ल्मूनिया-[?] (१) रातीनज जो आग पर पकाया गया हो। छोटे वा बड़े सनोबर की गोंद। सु० अ०।

कल्य-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) शराब। सुरा। हला०। (२) प्रभात। प्रातःकाल। भोर। सवेरा। मे० यद्विक। (३) मधु। शहत। हे० च०। (४) नैरोग्य। आरोग्यता। सेहत। तन्दुरुस्ती। कल।

वि० [सं० त्रि०] (१) गूँगा व बहरा। (२) नीरोग। रोगरहित। "कल्यस्योद्गम वयसः।" सु० चि० २६ अ०। (३) दक्ष। मे० यद्विकं।

क़ल्य-[अ०] भूनना। बिरियाँ करना। भर्ज्जन।

कल्यजग्धि-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] प्रातः काल का भोजन। कलेवा। नाशता। जटा०।

कल्यत्व-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नैरोग्य। आरोग्य। सेहत। तन्दुरुस्ती। ज०।

कल्यद्रुम-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बहेड़े का पेड़। वै० निघ०।

कल्यपत्रिका, कल्यपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लाल चिचड़ा। रक्तापामार्ग। मे०।

कल्यवर्त्त-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सवेरे का भोजन। जलपान। कलेवा। नहारी। प्रातराश। त्रिका०।

कल्या-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मदिरा। मद्य। मे० यद्विकं (२) हड़। हरीतकी। रा० र०।

कल्याङ्ग-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खेत पापड़ा। पर्पट। रा० नि० व० ५।

कल्याण-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सोना। सुवर्ण। (२) सुख। रा० नि० व० १३। पित्तपापड़ा। पर्पट। रा० नि०। नि० शि०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] छोटे साल का पेड़। लघु सर्ज्ज वृक्ष।

कल्याणक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] खेत पापड़ा। पर्पटक। वै० निघ०।

कल्याण-गुटिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } उक्त
कल्याणक-गुड़–संज्ञा पुं० [सं० पु०] } नामाख्यातएक प्रकार का योग—बायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियाँ, चित्रकमूल, मिर्च, इन्द्रयव, जीरा, पीपल, गजपीपल, पंचलवण, अजमोद प्रत्येक का चूर्ण १–१ कर्ष। तिल तैल ८ पल, निशोथ चूर्ण ८ पल। आमले का रस ३ प्रस्थ और गुड़ पुरातन अर्द्ध तुला लेकर आमले के रस में गुड़ की चाशनी बनाकर उसमें अन्य उपर्युक्त औषधियों का बारीक चूर्ण मिलाकर बेर या गूलर प्रमाण की गुटिका बनाएँ।

गुण तथा उपयोग विधि—यह प्रत्येक ऋतुओं में बिनापथ्य सेवन की जा सकती है। इसके उपयोग से कुष्ठ, बवासीर, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदरामय, भगंदर, संग्रहणी और पांडु का नाश होता तथा पुंसत्व की वृद्धि होती है। च० कल्प ७ अ०।

कल्याणक-घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय योग—इंद्रायण की गूदी, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलवालुक, शालपर्णी, अनन्तमूल, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों सारिवा, दोनों प्रियंगू, नील कमल, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालीसपत्र, बड़ी कटेली, मालतीपुष्प, बायविडंग, पिठवन, कुष्ठ, चन्दन और पद्मकाष्ठ प्रत्येक का कल्क १–१ कर्ष और जल चौगुना मिलाकर १ प्रस्थ गाय का घृत युक्त कर यथा विधि सिद्ध कर रख लें।

मात्रा—१–२ तोला।

गुण—इसके उपयोग से मिरगी, ज्वर, खाँसी श्वास, क्षय, अग्निमान्द्य, वात रोग, प्रतिश्याय, तिजारी ज्वर, चौथिया ज्वर, वमन, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खाज, पांडु, विष, प्रमेह, भूतबाधा गद्-गद् स्वर, वीर्य की कमी और वंध्यत्व दोष का नाश होता है, एवं आयु-बलवर्द्धक, अलक्ष्मी, पाप, राक्षस और ग्रह नाशक है।

कल्याणकावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग—आमले का स्वरस १ तुला, गुड़ पुरातन अर्द्ध तुला, तिल तैल १ कुडव और पाठामूल, धनियाँ, अजवायन, जीरा, हाऊबेर, चव्य, चित्रक, सेंधानमक, गजपीपल, अजमोद, बायविडङ्ग, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हड़, बहेड़ा, आमला, इलायची, दारचीनी और तेजपात प्रत्येक १–१ कर्ष तथा निशोथ १ पल। इनके कल्क के साथ यथा विधि पाक प्रस्तुत कर अवलेह सिद्ध करें।

गुण तथा उपयोग-विधि—इसे भोजन के पूर्व सेवन करने से संग्रहणी, अर्श, खाँसी, श्वास, सूजन, स्वर भंग और उदररोग का नाश होता है। यो० र० ग्रह० चि०।

कल्याणगुड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग, जो चक्रदत्त के अर्श चिकित्सा में प्रयुक्त है। यह योग चरक के कल्याणकावलेह तुल्य है। दे० "कल्याणकावलेह"।

कल्याण घृत–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] } उक्त नाम
कल्याण पानीय– } का एक आयुर्वेदीय योग, जो वन्ध्यादोष निवारणार्थ प्रस्तुत किया जाता है। दे० "कल्याणक घृत"।

कल्याण चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिर्च, आमला, हड़, बहेड़ा, बिड़ लवण, सैंधव, पीपल, बायविडंग, नाटा करंज, अजवाइन, धनियाँ और जीरा प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण प्रस्तुत करें।

गुण—इसके उपयोग से अपस्मार, कफजनित रोग, वातजरोग, उन्माद और संग्रहणी का नाश होता है। इसे उष्ण जल के साथ सेवन करें। यो० र०।

कल्याण पू चीनी (चुनी)–[ता०] श्वेत कुम्हड़ा। रकसवा कुम्हड़ा।

कल्याण बीज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मसूरिका धान्य। मसुर। रा० नि० व० १६।

कल्याण-मरुक–[ता०] पारिभद्र वृक्ष। फरहद।

कल्याणमल्ल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अनङ्गरङ्ग ग्रंथ के प्रणेता।

कल्याण-लवण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उक्त नाम का एक योग—भिलावा, आमला, हड़, बहेड़ा,

दन्ती और चित्रक प्रत्येक १-१ भाग और सेंधानमक २ भाग लेकर सबको एकत्र कर शराव संपुट में बंद कर कंडों की मंदाग्नि से भस्म करें। मात्रा—½-१ मा०।

गुण—इसके उपयोग से अर्शमें अत्यन्त लाभ होता है। वृ० नि० र० संग्र० चि०।

कल्याणलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक योग—हल्दी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजवाइन, मुलेठी, महुए का फूल और सेंधानमक समान भाग लेकर घृत के साथ यथा विधि अवलेह बनाकर रखलें।इसे २१ दिन तक प्रत्यह सेवन करने से वातव्याधि, हिक्का और श्वासरोग आरोग्य होता है। (चक्रदत्त)

कल्याण बीज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मसूर का पौधा।

कल्याण सुन्दर रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सिन्दूर, अभ्रक भस्म, चांदी भस्म, ताम्र भस्म, स्वर्ण भस्म और शिंगरफ इनका बारीक चूर्ण करके चीते के रस में मर्दन करें। इसी तरह हस्ति शुण्डी के रस की सात भावना दें। पुनः १ रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

अनुपान—उष्ण जल।

गुण—इसके प्रभाव से उरस्तोय, हृद्रोग, सीने की बीमारी, वातरोग, सीनेसे रक्त पात और फेफड़े के रोग नष्ट होते हैं। (भैष० र० हृद्रोग चि०।)

कल्याण-सुन्दराभ्र—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सफेद अभ्रक १ पल अनेक पुटित। आमला, नागरमोथा, बड़ी कटेरी, शतावर, ईख, बेलगिरी, अरनी, नेत्रवाला, अडूसा, छोटी कटेरी, पाटला, सोनापाठा और खिरेटी प्रत्येक के रस चार-चार तोले में मर्दन कर एक रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बनाएँ।

गुण—इसके उपयोग से राजरोग, क्षय, शोषरोग, कफ, पित्त, श्वास, वातरोग, अरुचि, अंग ग्रह, शोथ, स्वरभंग, अजीर्ण, उदरशूल, प्रमेह, ज्वर, विष, उरोग्रह, पांडु, हिचकी, कार्श्य, कृमि, बलक्षय, अम्लपित्त, तिल्ली, हलीमक, रक्तगुल्म, प्यास, आमवात, ग्रहणी का बिगाड़, विस्फोटक, कुष्ठ, नेत्र, मुख, शिर के रोग, मूर्च्छा, वमन और मुख की विरसता नष्ट होती है। (भैष० र० यक्ष्मा चि०।)

कल्याणावलेह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय योग जो हल्दी बच इत्यादिसे बनता है। इसके सेवन से २१ दिन में मनुष्य श्रुतिधर, मेघ तुल्य और कोकिल के समान स्वर वाला हो जाता है, एवं जड़ता, गद्गदपना और मूकत्व दोष से रहित हो जाता है। दे० "कल्याण लेह"। (र० र० भैष० र०। च० द० वा० व्या० चि०)

कल्याणिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैनसिल। मनःशिला। रा० नि० व० १३।

कल्याणिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बला नाम का क्षुप। बरियारा। खिरेंटी। रा० नि० व० ६।

कल्याणी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) राल का पेड़। सर्जवृक्ष। वै० निघ०। (२) गाय। गाभी। रा० नि० व० १६। (३) माषपर्णी मषवन। रा० नि० व० ३। (४) स्वर्णपत्रिका सनाय। (५) बला। बरियारा। रा० नि०।

कल्यान–संज्ञा पुं० दे० "कल्याण"।

कल्यान काँटा–संज्ञा पुं० [सं० कल्याण+हिंदी काँटा] एक काँटेदार बूटी जो एक हाथ तक ऊँची होती है और बंगाल प्रांत के बरदवान तथा मेदिनीपुर के जिलों में बहुतायत से पाई जाती है। इसके काँटे सख़्त होते हैं। दे० "कल्यानकात"।

कल्यान कात–संज्ञा पुं० [देश०] एक गज भर ऊँचा कंटकाकीर्णवृक्ष जो बंगाल, बरदवान और मेदिनीपुर इत्यादि स्थानों में बहुतायत से होता है। इसके काँटे अत्यन्त दृढ़ और भूरे होतेहैं। कल्यान काँटा। (वु० मु०)।

प्रकृति—उष्ण और रूक्ष।

स्वाद—किंचित् तिक्त एवं विस्वाद।

हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति को।

दर्पघ्न—गुलरोगन आदि।

मात्रा—२ माशे पर्यन्त।

गुणधर्म तथा उपयोग—इसकी जड़ की छाल २। मा०, और रेवंदचीनी २। मा०, दोनों को पीसकर पिलाने से प्लीहा शूल में उपकार होता है। जलोदर एवं अन्य सभी प्रकार की वेदनाओं में इसका सेंक उपकारी होता है। छत पर इसकी पत्ती सीधी बाँधने से उपकार होता है। दूषित क्षतों पर उलटी तरफ अर्थात् पीठ की

ओर से इसकी पत्ती बांधने से यह बद गोश्त को काट डालता है। फोड़े पर इसकी पत्ती बाँधने से वह विदीर्ण हो जाता है। इसकी जड़ की छाल पीसकर थैली में बाँधकर जलोदर जनित सूजन पर बाँधने से उसका नाश होता है। किंतु यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि उस जगह अधिक वेदना प्रतीत होती हो तो वहाँ से हटाकर बाँधें। इसी भाँति समग्र शोथों पर बारी-बारी से बांधते रहें। यही नहीं अपितु बार-बार बांधें। (ख० अ०)।

प्लीहागत शोथ पर इसकी पत्ती बाँधने से उपकार होता है।

नोट—नासिरुल् मुआलजीन तथा बुस्तानुल् मुफ़्रिदात में भी इसका उल्लेख आया है।

कल्युष–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मणिबंधा। कलाई।

कल्ल–वि० [सं० त्रि०] बहिरा। बधिर। त्रिका०।

संज्ञा [अ०] (१) रंज। दुःख। कठिनाई। गिरानी। (२) बालबच्चे। अहल व अयाल।

कल्लः–[फ़ा०]

कल्लई–[म० प्र०] अग्गई (अवध)।

कल्लंट–[कों०] बरहंटा। वनभंटा। बृहती।

कल्लत–[पं०] कुलथी।

क़ल्लत–[अ०] (१) बीमारी से उठना। रोगमुक्ति। (२) क्लेश से छुटकारा पाना।

कल्लता–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] } (१) बहरापन। बाधिर्य। (२) स्वरभेद। हे०च०
कल्लत्व–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] }

कल्लभ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कलम। Peuar Goose quill.

कल्लमूक–वि० [सं० त्रि०] बहिरा और गूँगा।

कल्लर–संज्ञा पुं० [देश० । सं० कल्य] (१) नोनी मिट्टी। खारी मिट्टी। (२) रेह। नोना। (३) ऊसर। बंजर। अनुर्वरा भूमि।

कल्लस-बल-सीगे–[कना०] बकरा। दवन पापड़ा। पित्तपापड़ा। क्षेत्र पर्पट।

कल्ला–संज्ञा पुं० [सं० करीर=बाँस का करैल वा गोभा] अंकुर। कलफा। किल्ला। गोंफा।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) गाल के भीतर का अंग। जबड़ा। (२) जबड़े के नीचे गले तक का स्थान। जैसे खसी का कल्ला। कल्ले का मांस।

कल्ला परवर–संज्ञा पुं० [हिं० कल्ला+फ़ा० परवर] एक प्रकार की मिठाई।

कल्लाल–[देश० मदरास] Ficus dalhousiae, *Mig.* सोमवल्क।

कल्लि–[मल०, ता०, कना०,] सेहुँड़। थूहर।

कल्लिकोंबु–[ता०] Enphorbia Triucalli, *Linn.* बाड़ की थूहर। थूहर। सेंहुँड़। लंका शीज (बं०)।

कल्लिजेमुदु–[ते०] थूहर। सेहुँड़।

कल्लिग निसोत्तर–[मरा०] श्याम त्रिवृता। लाल तिवरी।

कल्ली–[द०] कली। मुकुल।

कल्ली अंच–[?] Rubus Lasiocarpus झाँकर।

कल्ली का चुन्ना–संज्ञा पुं० [देश० द०] कली का चुना।

कल्ली जर्री–[पं०] Salvia Moorcroftiana, *Wall.*

कल्लु–[ता०, ते०] Yeast toddy सेंधी। ताड़ी।

कल्लुडी–[कना०] पाटल। पाढ़र। पाडरी।

कल्लुरवंची–[मल०] } दादमारी। अग्निगर्भ।
कल्लुरिवि–[ता०] } Ammannia vaccifea, *Linn.*

कल्लु-हुव्वु–[कना०] पत्थर का फूल। बड़ीला। शैलेय।

कल्लूब–[अ०] [बहु० कलालीब] दाँत उखाड़ने का औज़ार। दन्तोत्पाटक यंत्र। जंबूर। Tooth Forceps.

कल्लोल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) पानी की लहर। तरंग। (२) हर्ष। ख़ुशी।

क़ल्व–[अ०] (१) गोश्त आदि भूनना। तलना। (२) गुल्ली डंडा खेलना।

कल्वर्स फिजिक–संज्ञा० पुं० [अ० Culver's Physic]

कल्वर्सरूट–संज्ञा पुं० [अं० Culver's Root, खेपटंबरा।

कल्वा–[फ़ा०] मुलूक।

क़ल्विय्यत–[अ०] Alkalinity. खारापन। क्षारत्व। शोरियत।

क़ल्वी–[अ०] Alkaline क्षारीय। खारी। शोर।

कल्वी–[ते०] कतीरा। गुलू। [३] करौंदा। लु० क०।

कल्स–[अ०] चूना। किल्स।

क़ल्स–[अ०] अपक्व आहार का एक बार मेदे से मुँह में भर आना। जब यही क्रिया दोबारा होती है तब उसे ही क़ै कहते हैं। क़ज़स। रीगर्जिटेशन Regurgitation- (अं०)।

नोट–रीगर्जिटेशन रक्त के प्रत्यावर्त्तन (तक़हक़रुहम) के लिए भी प्रयोग में आता है। दे० "क़हकरुहम"।

कल्सा–[सिरि०] सपिस्ताँ। लिसोड़ा।

कल्सादलावहज–[सिरि०] कली का चूना। अनबुझा चूना।

कल्साना–[यू०] गुलेलाला।

क़ल्सातीस–[यू०] जरावंद।

क़ल्साताना–[रु०] शाह बलूत।

क़ल्सीस–[यू०] लह्यतुत्तीस।

कल्सून–[यू०, रू०] रसवत।

कल्सूफ़ूदियून–[यू०] एक प्रकार का पौधा जो ईंधन के काम आता है।

कल्हक–संज्ञा० स्त्री० [देश०] एक चिड़िया जो कबूतर के बराबर होती है। इसका रंग ईंट का सा लाल होता है, केवल कंठ काला होता है, आँखें मोतीचूर होती हैं और पैर लाल होते हैं।

कल्हर–संज्ञा पुं० दे० "कल्लर"।

कल्हरवा–संज्ञा पुं० [हिं० कल्हारना] वह भक्ष्य द्रव्य जो घी इत्यादि में तल कर और जीरे आदि से बघार कर नमक मिर्च मिलाकर खाया जाता है। जैसे, चने का कल्हरवा।

वि० घी में तला हुआ। घी वा तेल में भूना हुआ।

कल्हार–संज्ञा पुं० दे० "कल्हार"।

कवय–संज्ञा पुं० दे० "कौंच"।

कवई–संज्ञा स्त्री० दे० "कवयी"।

कवक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घास। (२) कवक। प्रास। हे० च०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] छत्राक। कुकुरमुत्ता। यह अभक्ष्य है यथा—

"लशुनं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डु कवकानिच।"
(मनु०)

कवकुला–[कना०] वन लौंग। Gussiaea sufforticosa, *Linn*.

कवच–संज्ञा पुं० [सं० पुं०; क्ली०] (१) पित्तपापड़ा। पर्पटक। यथा—'कवचः स्यात् पपटके।" रा० नि० व० ५। 'वचा कवचकच्छुरा' रा० नि० व० २३। (२) पारस पीपल का पेड़। गर्दभाण्ड वृक्ष। गाजीभाँट। (३) दारचीनी। (४) भोजपत्र का वृक्ष। भूर्जवृक्ष। (५) नन्दी वृक्ष। बेलिया पीपर। मे० चत्रिकं। (६) आवरण। छाल। छिलका।

कवचनामक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक।

कवचपत्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] भोजपत्र। भूर्ज पत्र। श० च०।

कवचा–[गु०] केवाँच। बानरी।

कवचाख्य–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) घोड़े का सुम। अश्व खुर। (२) नखी नामक गंधद्रव्य।

कवची यन्त्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] औषध पाकार्थ यंत्र विशेष। पहले न बहुत छोटी और न बहुत बड़ी एक काँच की दृढ़ कूपी लेकर उसके चारों ओर गीली मिट्टी वा कीचड़ लगा हुआ वस्त्र लपेट देवें, फिर उसपर मृदु मृत्तिका का लेप करके धूप में सुखा लेवें। इसके बाद कूपी में औषधि भरकर कूपी का मुँह खड़िया का डाट लगाकर मजबूती से बंदकर देवें। पुनः यथा विधि औषध पाक करें। यह 'कवची नामक यन्त्र' है। जो रसादि पाचनके काम आता है। आग्नेयः। कच्छीयन्त्र।

कवछी–[ता०] अपराजिता। कवा ठेंठी।

कवट–[मरा०, कना०] (Limonia Monophilla)

[मरा०] कैथ।

कवटा–[मरा०, कों०] मुर्गी का अंडा। कुक्कुटाँड।

कवटी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कवाट। किवाड़ी।

संज्ञा स्त्री० [देश०, बम्ब०] सिहोर। शाखोटक।

कवठ,कवथ–[मरा०] कैथ । कपित्थ ।

कवड़–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कवल । ग्रास। कौर । (२) गंडूष । कुल्ला । रत्ना० ।

कवड़ग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] दो तोले का एक मान । कर्ष । प० प्र० १ ख० । च० द० खदिर वटी ।

कवड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "कौड़ी" ।

कवडोरी–[मरा०] बिजगुरिया । शिवलिंगी ।

कवण्डल–[मरा०] लाल इन्द्रायन ।

कवण्डली–[कों०] इन्द्रायन । महाकाल ।

कवत–संज्ञा पुं० [सं० कपित्थ] कैथ ।

कवयि, कवयी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार की मछली जो एक जलाशय से दूसरे जलाशय में सूखे-सूखे पलटा खाती हुई चली जाती है। अन्यान्य मछलियों की अपेक्षा यह अधिक समय तक जलशून्य स्थान में भी जी सकती है। यह किंवदन्ती सुनने में आती है कि यह तालवृक्ष पर चढ़ जाती है । यह कान के पास के कण्टक के सहारे उच्च स्थान पर पहुँच जाती है। भूमि पर भी यह बहुत दूर तक चला करती है । बंगाल के यशोर और फरीदपुर जिले में यह बृहदाकार देख पड़ती है ।

पर्य्या०—कवयिः, कवयी, ककच, पृष्टी, (त्रि०) कविका, (भा०), कवची (के०), कविकापुच्छ, चक्रपृष्टी, –सं० । कवई, कवई-सुंभा –हिं० । कइमाछ –बं० । ऐनाबस स्कैण्डेन्स, Anabas Scandens, *Daldorf*., कोइयस कोबोइयस Coius Coboius. –ले० । कई फिश Kai fish. क्लाइम्बिंग पर्च Climbing Perch –अं० ।

गुण—मधुर, स्निग्ध, कसेली, रुचिकारी, किंचित् पित्तकारक, बल्य और वातनाशक है । (हारा०)

कविका मधुरास्निग्धा कफघ्नी रुचिकारिणी ।
किञ्चित्पित्त करी वातनाशिनी वह्निवर्द्धिनी ॥
(भा० पू० १ भ० मत्स्य व०)

कवई मधुर, स्निग्ध; कफनाशक, रुचिकारी, किंचित् पित्तकारक, वातनाशक और जठराग्नि-वर्द्धक है ।

कवर–संज्ञा पुं० [सं० कवल] ग्रास । कौर । निवाला । सुक्रमा ।

संज्ञा पुं [सं० पुं० क्ली०] [स्त्री० कवरी] (१) बनतुलसी । कवरी । त्रिका० । (२) नमक । लवण । (३) अम्ल । खटाई । मे० । हे० च० । (४) समुन्दर नोन । सामुद्र लवण । र० मा० । (५) केशपाश । जुल्फ़ । (६) गुच्छा । (७) चितकबरा ।

वि० [सं०] (१) गुथा हुआ । (२) मिला हुआ ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] कर्नब । करमकल्ला । (२) करील । कवर ।

कवरकोरः–[शीराज़ी] चील ।

कवरजुवे–[ते०] जियापोता । पुत्रजीवक ।

कवरपुच्छी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) मयूरी । मोरनी । (२) विचित्र-पुच्छविशिष्टा । चितकबरी पूँछवाली (चिड़िया प्रभृति) ।

कवरपुल्लु–[मल०] मकरा । मकरी । घुरचुआ ।

कवरबा–[फ़ा०] करील के फल का आश । कवरबा । कत्रियः ।

कवरा, कवरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बर्बरी । बबई । श० र० । बनतुलसी । बर्बरी । अम० । (२) बबूल । बर्बूरक वृक्ष । (३) रक्त करवीर । (४) मैनसिल । (५) हिंगुपत्री । रा० नि० व० ६ । (६) केश विन्यास । चोटी । जूड़ा । वेणी ।

कवरीक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्रकार की तुलसी का पौधा जिसकी पत्ती सुगंधित होती है । दुलाल तुलसी । यथा—"कस्तूरिकाचवेद-गंधः कवरीकः स्वनामकः ।" इति द्रव्याभिधानम् । (२) एक प्रकार का चना । शुभ्र चतक । कावरी छोला (बं०) । के० ।

कवरीकला–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मैनसिल ।

कवरी कूटक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कवरी । बनतुलसी । बबई । त्रिका० ।

कवल–संज्ञा० पुं० [सं० पुं०] [वि० कवलित] (१)एक प्रकार की मछली । चिलिचिम मछली । बेल मच्छी । श० च० । (२) अन्न वा भोज्य पदार्थ की वह मात्रा जो खाने के लिये एक बार मुँह में डाली जाय । ग्रास । गस्सा । कवर ।

रत्ना० । (३) उतना पानी वा कोई औषधीय द्रव जितना एक बार मुँह में लिया जाय। कुल्ली, गंडूष । "सुखं सञ्चार्य्यते या तु सा मात्रा कवले हिता।" भैष० । (४) एक प्रकार की मछली । कोवा । (५) एक प्रकार की तौल । कर्ष ।

संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० कवली] (१) एक पक्षी का नाम । (२) घोड़े की एक जाति का नाम ।

कवलग्रह–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) एक प्राचीन तौल जो दवा तौलने में काम आती थी । यह मागधी मान से सोलह माशे की होती थी । यह आजकल के व्यावहारिक मान से एक तोले के बराबर होती है । कर्ष । सु० ।

पर्य्या०—कर्ष । तिंदुक । षोडशिका । हंसपदा । सुवर्ण । उदुम्बर । करमध्य । पाणितल । किंचित् पणि । पणिमानिका ।

(२) औषधियों की महीन पीसकर बनाई लुगदी का मुँह में कुछ देर तक रखना । कवल धारण । सुश्रुत के अनुसार यह चार प्रकार का होता है—(१) स्नेही अर्थात् स्नेहन करनेवाला जो वायु के रोगों में काम आता है । स्निग्ध और उष्ण द्रव्यों का कवल स्नेही होता है । (२) प्रसादी अर्थात् प्रसन्न करनेवाला जो पैत्तिक रोगों में उपयोगी है । मीठे द्रव्यों का शीतल कवल प्रसादी माना जाता है। (३) शोधी अर्थात् शोधन करनेवाला जिसे कफ के रोगों में देना चाहिये । चरपरा, खट्टा, नमकीन और रूखा तथा गरम कवल शोधन होता है । (४) रोपण अर्थात् व्रणादि को भरनेवाला जो व्रण में उपयोगी है । कसैले, कड़ुवे, मीठे, चरपरे और गरम द्रव्यों का कवल रोपण होता है । सु० चि० ४० अ० । कवलग्रह लेने से भोजन अच्छा लगता है, कफ का नाश होता, और तृषा, शोष, वैरस्य एवं दंतचाल का दोष दूर होता है ।

कवल धारण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कवलग्रह ।

कवलप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कवल योग्य एक परिमाण ।

कवलम्–[मल०]

कवलालुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] घोली ।

कवलिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कपड़े, पत्ते वा गूलर इत्यादि की छाल की वह गद्दी जो घाव वा फोड़े के ऊपर बाँधी जाती है ।

सु० सू० १८ अ० । सु० चि० ३ अ० ।

कवलित–वि० [सं० त्रि०] कौर किया हुआ । ग्रास किया हुआ । खाया हुआ । भक्षित । भुक्त ।

कवली–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बेर का पेड़। (२) भैंसा । महिष ।

संज्ञा स्त्री० [सम्ब०, मरा०] मेढ़ासींगी । मेषशृङ्गी ।

कवली कांदा–संज्ञा पुं० [देश०] जंगली प्याज़ । वन पलांडु । काँदा ।

कवली-चे-डोल–[मरा०] Bryonia Laciniosa, *Linn.* बजगुरिया ।

कवस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का काँटीला गुल्म ।

कवाँच–संज्ञा पुं० दे० "केवाँच" ।

कवाँर–संज्ञा पुं० दे० "धीकार" ।

कवा–संज्ञा पुं० [देश०, सम्ब०] चावलमूगरा ।

क़वाइमुल् हि.जबुल्.ज़िज़्–[अ०] Crura Diaphragmatis. वक्षोदर मध्यस्थ पेशी की जड़ । क़ाइमताउल् हि.जाबुल् हाजिज़ ।

कवाई–[सिरि०] मकड़ी ।

कवाछी–[ता०] श्वेतापराजिता ।

कवाट (क)–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] [स्त्री० वा अल्प० कवाटी] किवाड़ । कपाट । Valve.

कवाट चक्र, कवाट चक्र–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक वृक्ष का नाम । करादिया । किवाड़बेड़ु । वेण्टुआ । र० मा० ।

पर्याय०–वक्राग्र, कपोतवक्रः ।

गुण—रक्त दोष नाशक । र० ।

कवाठेंठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कवा=कौआ+ठेंठी=ढेंढ़ वा ठोर । अपराजिता । कौवा ठेंठी ।

कवाठेंठी-के-बीज–संज्ञा पुं० [देश०, द०] अपराजिता के बीज ।

कवाठोंठी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कौवाठोर] अपराजिता । विष्णुक्रांता ।

कवाडोडी–संज्ञा स्त्री० [मरा०] बजगुरिया । शिवलिंगी ।

कवाडोरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] काकादाना ।

कवातिअ्–[अ०] काटने वाले अगले चार दाँत । कर्त्तनक दंत ।

क़वानस, क़वानस़-[अ०] संगदान । क़ौनस़ ।
क़वानिया-[यू०] खनूंब । शज्रतुल्मरात ।
क़वानिया, क़वानियून, क़ूनियून-[?] (१) मस्-हू.क़ूनिया । (२) कफ़ेदरिया । समुद्रफेन ।
क़वानूस-[अ०] एक तौल जो डेढ़ या तीन औंक़िया और तेल (ज़ैत) से चार तोले छः माशे और शराब से तीन तोले एक माशा होती है ।
क़वाम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पकाकर शहद की तरह गाढ़ा किया हुआ रस । क़िवाम । जैसे—सुरती का क़वाम । (२) चाशनी । शीरा । (३) डील डोल । क़द व क़ामत ।
क़वामीस-[यू०] फिरोजे की तरह का एक पत्थर जो काशमीर और तिब्बत में होता है ।
क़वामुस-[यू०] क़ल्ती बाक़ला ।
क़वामूस-[यू०] लाजवर्द । राजावर्त्त ।
क़वायादस-[यू०] बाकला ।
कवार-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) कमल । पद्म (२) एक प्रकार का ढेंक वा जलपक्षी जिसकी चोंच बहुत लम्बी होती है ।
Tentalus falcinellus वै० निघ० ।
[फा०] गन्दना । लु० क० ।
कवार का पाठा-[राजपु०] घी क्वार । घृतकुमारी ।
कवाल-[?] सूअर ।
कवालफ़-[?] बादावर्द ।
कवाली-संज्ञा स्त्री० दे० "कवली" ।
क़वासिफ़-[अ०] समुद्र और दरिया की घातक हवायें । जलीय ज़हरीली हवायें ।
ख़ुश्की की घातक हवा को अवासिफ़कहते हैं ।
कवि (वी)-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] खलीन । लगाम ।
संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उल्लू ।
कविक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लगाम । खलीन ।
संज्ञा पुं० [देश०] एक वृक्ष का नाम जो मलाया प्रायद्वीप में होता है । इसके फल गुलाब जामुन की तरह और रसीले होते हैं । बंगाल, दक्षिण भारत तथा बर्मा में भी अब इसके पेड़ लगाए जाते हैं ।इसे मलाका जामरूलभीकहते हैं ।
कविका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) केवड़ा । केविका पुष्प वृक्ष । रा० नि० व० १० । (२) लगाम । खलीन । (३) कवई मछली । कवयी। त्रिका० ।
कविक्षुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक पक्षी ।
कविट-संज्ञा पुं० [द०] कैथ । कठबेल ।
कविट की गोंद-संज्ञा स्त्री० [द०] कैथ की गोंद ।
कविट पान-[मरा०] कैथ ।
कवित्थ, कपित्थ-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कैथ का पेड़ । कपित्थ वृक्ष । अ० टी० ।
कवियं-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] लगाम । खलीन ।
कविराज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) बंगाली वैद्यों की उपाधि । (२) वैद्य । (३) श्रेष्ठ कवि ।
संज्ञा पुं० [फ़ा०] जल धनिया । कबीकज ।
कविराय-संज्ञा पुं० दे० कविराज ।
कविरि संद्र-[ते०] कत्था । खैर । खदिर ।
कविला-[ता०] गुलदारा ।
कविले-[ते०] तर्पास ।
कविश्क-[फ़ा०] (१) जरजीर । (२) बाकला ।
कवीट-[मरा०, गु०] कैथ ।
कवीट गोंद-[गु०, मरा०] कवीट गौन-[गु०] } कैथ की गोंद ।
कवीठ-संज्ञा पुं० [सं० कपीष्ट, प्रा० कविट्ठ] कैथा । कपित्थ ।
[राजपु०] कैथ ।
क़वीशदीद-[अ०] (१) बलवान । ताक़तवाला । मज़बूत । ज़ोरदार । (२) रोगविज्ञान में यह शब्द रोग के विशेषण की तरह प्रयोग में आता है । अर्थात् शदीद और क़वीमर्ज़=बलवान रोग । स्थेनिक । Sthenic (अं०) ।
कवीस्ते तल्ख़-[फ़ा०] इन्द्रायन ।
कवेज,कवेह-[फ़ा०] सुर्ख़ बुस्तानी ज़ुअ्रूर ।
कवेज़-[फ़ा०] ज़ुअ्रूर ।
कवेल-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उत्पल । कुवलय । श० च० । नीला कँवल ।
कवेला-[फ़ा०] कमीला ।
संज्ञा पुं० [हिं० कौवा+एला (प्रत्य०)] कौए का बच्चा ।
कवैया-संज्ञा [?] मकोय ।

कवोड़ वक्र–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कबाटवक्र का वृक्ष । र० मा० ।

कवोष्ण–वि० [सं० त्रि०] सुहाता गर्म । कुछ-कुछ गरम । थोड़ागरम । ईषदुष्ण । कोष्ण । अम० ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] उष्णता । गरमी । थोड़ी गर्मी ।

कश–[?] कुश । दर्भ ।

[अ०] एक प्रकार का आहार ।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] [स्त्री० कशा] (१) चाबुक । कोड़ा । (२) एक क्षुद्र पशु ।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खिंचाव । आकर्षण (२) दम । फूँक ।

कशक–दे० "कश्क" ।

कशकक–दे० "कश्कक" ।

कशकशक् कुरु–[मल०] पोस्ते का दाना । ख़शा-ख़ाश ।

कशकशकरप्प–[मल०] अफीम । अहिफेन ।

कशकशच्-चेट्ट–[मल०] पोस्ते का पौधा । कोकनार, पोस्ता ।

कशकशत्तोल–[मल०] पोस्ते का डोड़ा । पोस्ते का ढेंढ़ ।

कशकशप् पशा–[मल०] अफीम । अहिफेन ।

कशकबा, कशकाब–[फ़ा०] आश जौ वा आश हलीम ।

कशकु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] गवेधुक । कसी ।

कशकोल–संज्ञा पुं० [फ़ा०] ,,कपाल ।,, खप्पर । दे० कजकोल ।

कशप्पु वेट्टपाल-रिशि–[ता०] कड़ुआ इन्द्र जौ ।

कशप्पु वदामकोट्टै–[ता०] कड़ुआ बादाम । कटु वाताद ।

कशप्पू–[ते०] कड़ुआ बादाम ।

कशफ़–[फ़ा०] कछुआ ।

क़शफ़्–[अ०](१)त्वचाका खुरदुरापन । त्वक्कार्कश्य, (२) त्वचा का मैला कुचैला होना ।

कशफ़–[अ०] एक प्रकार का कुंदुर वा लोबान । लोबान के पेड़ की छाल जो उसके निर्यास (धूप) से आच्छादित होती है । क़िशार कुंदुर ।

क़शफ़िय्यः–[अ०] एक प्रकार का ज्वर जिसमें शरीर के छेद बंद हो जाते हैं और पसीना नहीं आता ।

कशमरम–[ता०] अजनी । लोखंडी । सिरुकाय ।

कशमीर–संज्ञा पुं० [सं०] कुट । कुष्ठ ।

कशयः–[अ०] सूसमार । गोह ।

कशयून–[यू०] कसूस ।

कशरक–[फ़ा०] महोखा पक्षी । अकअक ।

कशर–[अ०] खुश्क रोटी । सूखी रोटी ।

क़शरी–[अ०] मलाई ।

कशरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कृशरा से मुअ०] खिचड़ी । खेचराम । कृसरा ।

कशवृत्त–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] आमड़ा । अंबाड़ा ।

कशह्–[अ०] पार्श्वशूल : दर्द पहलू । पसली का दर्द । पसवाड़े का दर्द ।

कशा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कोड़ा । चाबुक । हे० च० । (२) मांसरोहणी । भा० पू० १ भ० गु० व० ।

क़शा–[अ०] छाल ।

क़(क़ि)शार–[बग़दाद] Prunus mahalid, *Linn.* हब्बुल् महलब की छाल । (२) बिक्कम ।

क़शाह्–[अ०] लकड़ बग्घा । चरख़ ।

कशाहल–[फ़ा०] अरहर । शाखक ।

कशिग–संज्ञा पुं० [देश०] भारंगी । भार्गी ।

कशिओरोन–[लेपचा] बंजकतूस (नेपा०)

कशिक–संज्ञा पुं [सं० पुं०] तकुल । साँप को मारने वाला नेवला ।

कशिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] चर्म्मकषा । सातला । च० द० शू० चि० लौहामृत ।

कशिनी वित्तुलु–[ते०]
कशिनीविरै–[ता०] } कासनी ।

कशिपु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) भात । भक्त । (२) वस्त्र । कपड़ा । रा० नि० व० २० । (३) अन्न । अनाज । (४) आहार ।

कशिशः–[अ०] सूसमार । गोह ।

क़शिया–[लंका] तज । सलीख़ा ।

कशियून–[सिरि०] कसूस ।

कशिश–संज्ञा पुं० [फ़ा०] आकर्षण । खिंचाव ।

कशीआ–[अ०] खब्बाज़ी ।

कशीका–[वै० स्त्री०] प्रसूता नेकुली । ब्याई हुई नेवली ।

क़शीरास–[रू०] तेलिनी मक्खी ।ज़रारीह।

कशीरु–[फ्रा०] Cotoneaster nummularia, *Fiscls.* एक पेड़ जिससे शीरखिस्त निकलता है। स्याह चोब।

कशीश–संज्ञा पु० [देश द०] हीरा कसीस। कसीस।

कशू–[फ्रा०] कछुआ।

कशूर–[फ्रा०] खटमीठा अंगूर।

क़शूर–[अ०] वह दवा जो चेहरे पर, उसका रंग निखारने के लिये मली जाये।

कशूस–संज्ञा पुं० [अ० क़शूस्] (१) आकाशबेल। (२) तुख़्म कसूस। आकाशबेल का बीज।

कशूस् रूमी–[अ०] अफ़संतीन।

कशूस्ा–संज्ञा पुं० [अ०] दे० "कशूस"।

कशूके कलि–[ता०] लाल पटुआ। लाल अंबाड़ी।

कशेरु, कशेरुक, कशेरू–संज्ञा पुं०[सं० पुं० क्ली०] पीठ की लंबी हड्डी। रीढ़। पृष्ठ कोकस। मेरुदंड। मोहरा। (Vertelerae) हला०।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कसेरू। र० मा०। दे० "कसेरू"।

कशेरु अंस अत्तका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेशी विशेष।

कशेरुक, कशेरूक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कशेरु। कसेरू। प० मु०।

कशेरुका कशेरूका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीठ की लंबी हड्डी। पृष्ठवंश। रीढ़। रत्ना०। वै० निघ०। (२) कसेरू। अम०।

कशेरुका कंटक–संज्ञा पुं० [सं०] रीढ़ की हड्डी का नोकीला प्रवर्द्धन।
(Spine of vertelerae) प्र० शा०।

कशेरुका कीट–संज्ञा पुं० [सं०] कीट विशेष।

कशेरुका ग्रीवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] रीढ़ की अस्थि की गरदन। प्र० शा०।

कशेरुका पृष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] रीढ़ की अस्थि की पीठ। प्र० शा०।

कशेरुका पार्श्वात्य प्रवर्द्धन–सं० पुं० [सं० क्ली०] रीढ़ की हड्डी का एक उभार।

कशेरुपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] कशेरुफलक। (Lamina of Vertelerae.)

कशेरु–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] कसेरू। तृणकंद विशेष।

कशोआ–[मल०] अन्ननी। लोखंडी।

क़श्अ–[अ०] गिरिगिट। कृकलास।

क़श्आ:–[अ०] कसूस।

क़श्अरीर:–[अ०] किसी किसी ज्वर में होनेवाली वह दशा जिसमें बुख़ार चढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रोमहर्षण। शैत्य। झुरझुरी। फुरेरी कुराशः।रीगर Rigor, चिल् chill [अ०]।

कश्क–संज्ञा पुं० [अ०] (१) उबाले हुए जौ का पानी। आश। आश जौ। (२) सूखा दही जिसे करूत भी कहते हैं। (३) हरीसा। (४) वह जौ जिसमें से कूट फटक कर भूसी साफ़ करदी गई हो। निस्तुषीकृत यव। जौ मुक़श्शर। जौ बिरहना।

संज्ञा पुं०[फ्रा०] (१) महोखा पक्षी। अक़अक़। (२) पनीर। अक्रित।

कश्कक–[फ्रा०] आश हलीम।

कश्कब,कश्काब–[फ्रा०]आश जौ वा आश हलीम।

कश्कीन,कश्कीन:–[फ्रा०] जौ की रोटी। जौ की मिली हुई रोटी।

कश्कुशईर–[अ०] उबाले हुए जव का पानी। कश्काब। आश जौ। जौ आश। माउश्शईर। बार्ली वाटर Barley Water (अ०)।

कश्गेम,कश्जेम–[लेपचा] गुरुच। आखी। कुंची।

आश जौ और कश्क जौ का अर्थान्तर—

यदि भूसी दूर किये हुये जौ को जल में पका कर बिना मले छान लें, जिसमें केवल उसका सूक्ष्मांश ही आने पावे, स्थूल भाग नहीं, तो उसे आश जौ कहते हैं। यदि कथनोपरांत जौ को मसबोटकर गाढ़ा पानोलें, तो उसे कश्कुशईर, कश्क शईर वा कश्क जो कहेंगे। इसके निर्माण-क्रमादि के लिए देखिए "माउश्शईर"।

प्रकृति—रूक्षता लिये हुये शीतल।

गुणधर्म तथा प्रयोग—यह आश जौ की अपेक्षा अधिक सांद्र है, पैत्तिक अतिसार के लिए गुणकारी और उष्ण प्रकृति वालों तथा तपेदिक के रोगियों के लिए अत्युत्तम पथ्य है। यह शक्ति की रक्षा करता, शीघ्र उत्तम रक्त उत्पन्न करता

और दुग्ध एवं मूत्र की वृद्धि करता है। शीतल प्रकृति वालों को बीख़ करफ़स, तुख़्म करफ़स वा सौंफ़ के बिना इसका उपयोग वर्जित है। (ख० अ०)

कश्ज–[अ०] छाछ।

कश्त्–[अ०] कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु पर से उठा लेना। उतार लेना। नग्न कर देना। बे पर्दा कर देना।

कश्त्, कश्द–[?] कुट। कुष्ठ। कुस्त।

कश्तः–[फ़ा०] (१) सूखे मेवे। (२) उस्तोख़ह्दूस।

कश्तक–[फ़ा०] गुबरैला।

कश्त(कुश्त)–[फ़ा०] कुट। कुष्ठ। कुस्त।

कश्ती–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नौका। नाव।

संज्ञा स्त्री० [देश० हिमालय] चिलगोज़ा।

कश्तुल्ऐन–[अ०] आँख पर से नाख़ूना उतारना।

कश्तू, कश्तूर–[फ़ा०] खटमीठा अंगूर।

कश्तूक–[फ़ा०] कछुआ।

कश्तूरा मृग–संज्ञा पुं० [देश० गढ़वाल] कस्तूरा मृग।

कश्तूरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कस्तूरी।

कश्नः–[फ़ा०] (१) कश्नज। (२) इस्पस्त। रतबा।

कश्न–[सिरि०] कड़। कुर्तुम।

कश्नक–[फ़ा०] मटर।

कश्न खुर्मा–[फ़ा०] खुर्मा की कली। तल्ऋ।

कश्नज–[अ०] कमात का एक भेद जो रेतीली भूमि में उगता है।

कश्नी–[सिरि०] कड़। कुर्तुम। कुसुम का बीज।

क़श्नीज़–[फ़ा० कश्नीज़ से मुअ०] धनिया।

कश्नीज, कश्नीज़, किश्नीज़–[फ़ा०] धनिया। धान्यक।

कश्नीज़ कोही–[फ़ा०] तुख़्म मुख़ल्लसः।

कश्नीज दश्ती–[फ़ा०] (१) जंगली धनिया। (२) बिल्लीलोटन का एक छोटा भेद। (३) शाहतरा (पित्तपापड़ा) का एक भेद। (४) मुख़ल्लसः।

कश्नीज़ मुत्ऋारफ़ी–[फ़ा०] Coriandrum Sativum

कश्नीन–[फ़ा०] मटर।

कश्नू–[फ़ा०] खली। खल। कंजारः।

कश्फ़–[अ०] (१) किसी चीज़ परसे पर्दा उठाना। खोल देना। (२) क्रिशार कुंदुर।

कश्फ़ तिब्बी–[अ] रोग ज्ञान के लिये रोगी की वैद्यकीय परीक्षा।

Medical inspection

कश्म–[अ०] क़ह्दः।

कश्मल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) मोह। मूर्च्छा। बेहोशी। भ्रम०। (२) पाप। अघ। शब्दर०। (३) अंबरबारीस। दारुहलद।

संज्ञा पुं० [शिमला। पं०] अंबरबारीस। दारुहलदी। (२) जिंगनी।

कश्मलु–[देश० पं०] तुलसलंगा। तुख़्म मलंगा। तुख़्म बालंगो।

कश्मीर–संज्ञा पुं० [सं० पुं० (१) एक देश। (२) कुट। कुष्ठ।

कश्मीरज, कश्मीरजन्म–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० पु०] केशर। कुंकुम। अ० टी० रा०।

कश्मीरी–वि० [हिं० कश्मीर+ई (प्रत्य०] कश्मीर का। कश्मीर देश में उत्पन्न।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चटनी। विधि—आदी को छीलकर उसके छोटे छोटे टुकड़े कर डालें। पुनः उसमें मिर्च, कंकोल, केसर, इलायची, जावित्री, सोंफ और जीरा–इनको चूर्ण कर मिलावें। अंत में इसमें लवण, सिरका और शर्करा मिलावें। बस चटनी तैयार है।

संज्ञा पुं० [हिं० कश्मीर] कश्मीर देश का घोड़ा।

कश्मीरी पत्ती–संज्ञा स्त्री० [हिं० कश्मीरी+पत्ती] एक प्रकार की पत्ती जो पाँच छः अंगुल लंबी और लगभग १॥ अंगुल चौड़ी दिखाई देती है और दर्द सिर की सुँघनियों में पड़ती है। जैसे–कायफल, कश्मीरी पत्ती, नकछिकनी, कनेर की पत्ती, कपूर, इलायची छोटी सबको बराबर लेकर कूट कपड़ छान कर बारीक बुकनी बनाएँ। इसका आधासीसी और प्रतिश्यायजनित, सिर के दर्द आदि में नस्य देने से लाभ होता है।

कश्मीरी नाख–संज्ञा पुं० [देश०] बिही का फल।

कश्मीरी बनक़शः–संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बनक़शा जो काश्मीर से आता है।

कश्मूरीन–[रू०] कसूस।

कश्य–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) शराब। मदिरा।

संज्ञा [सं० पुं०] (१) घोड़ा। अश्व। मे० यद्विकं। (२) कपाई अश्व। हे० च०। घोड़े का धड़। अश्व मध्य भाग। वै० नि०।

कश्यः–संज्ञा पुं० [अ०] सूसमार। गोह।

कश्या अलेटा–संज्ञा पुं० [ले० Cassia alata.] चकवड़। पवाँड़।

कश्यप–संज्ञा पुं० [सं० पु०] (१) एक प्रकार की मछली। विश्वः। (२) एक प्रकार का मृग। मे०। (३) कछुआ। कच्छप। (४) एक वैदिक–कालीन ऋषि का नाम।

वि० [सं० त्रि०] (१) काले दाँतवाला। (२) श्यावदंत। (३) मद्यप। शराबी।

कश्यून–[सिरि०] कसूस।

क़श्र–[अ०] छिलका उतारना। छीलना। Scrape Scale।

कश्र–[अ०] सूखी रोटी।

क़श्र अंजस्तूरा–[...] Cuspariae Cortex Angustura bark अंगस्तूरा की छाल। पोस्त अंगस्तूरा। दे० "अंगस्तूरा" वा "कस्पेरिया"।

क़श्र उम्मुग़ीलाँ–[अ०] बबूल की छाल। कीकर की छाल। बर्बूर त्वक्। Acaciae Cortex

कश्रक–[फ़ा०] महोखा पक्षी। अक़अक़।

क़श्रकोंडूरैंगू–[ ] कोंडूरैंगू की छाल। पोस्त कोंडूरैंगू। Condurango Cortex।

क़श्रकोतू–[ ] कोटू की छाल। पोस्त कोतू। Coto Cortex

क़श्र दाफ़ऋ तसन्नुज–[अ०](Viburnum opulus) Cramp bark यूरोपीय अपर्ण। नर्वस की छाल।

क़श्र बक़्क़ अस्वद वर्री–[मिश्री] (Cascara Sagrada) Sacred Bark पवित्र त्वक्। चिट्टम की छाल। क़श्र मुक़द्दस। दे० "कैसकारा सैगरेडा"।

क़श्र मुक़द्दस–[अ०] दे० "कैसकारा सैगरेडा"।

क़श्र हैमेमैलस–[अ०] (Hamamelidis Cortex) Witch-hazel Bark पोस्त हैमेमैलिस। दे० "हैमेमैलीडिस कार्टेक्स"।

कश्री–संज्ञा स्त्री० [सं० कृशरा से मुअ०] खिचड़ी। खेचरान्न।

क़श्री–संज्ञा स्त्री० [अ०] मलाई।

क़श्रुर्रास–[अ०] रूसी। सिर की भूसी। सिर की बक़ा। नुख़ालतुर्रास। इन्त्रिय्यः। स्कर्फ Scurf, हैंडरफ़ Dandruff, (अं०)।

क़श्रुर्रुम्मान–[अ०] अनार के पेड़ और उसकी जड़ का छाल। पोस्त अनार। दाडिमत्वक्। दे० "अनार"।

क़श्रुल् अक़ाक़िया–[अ०] बबूल की छाल। कीकर की छाल। दे० "बबूल"।

क़श्रुल् अंबर–[अ] (Cascarillae Cortex) Cascarilla bark कैसकरिल्ला की छाल।

क़श्रुल् क़रासियाउल् वर्जीनी–[अ०] (Pruni virginianae Cortex) Virginian Prune bark ज़ंगली आलू बालू की छाल। पोस्त आलूबालुए वर्जिनी। पोस्त आलूबालुए सह्राई।

क़श्रुल् माज़र्यून–[अ०] (Mezerei cortex) Mezereon bark माज़र्यून की छाल। क़श्र माज़र्यून। पोस्त अरज़ीस्। दे० "माज़रियून"।

क़श्रुल्लैमूँ–[अ०] (Limonis Cortex) Lemon peel नीबू का छिलका। जंबीर त्वक्। पोस्ते लेमूँ। वि० दे० "नीबू"।

क़श्रुस्सावूनियः–[अ०] (Quillaiae Cortex) Quillaia bark सावुनी बूटी की छाल। उश्नान अमरीकी। ग़ासूल अमरीकी। दे० "क्विल्ला"

कश्वी–[?] अगर।

कश्शिंग–संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा वृक्ष वा ऊँची झाड़ी जिसके पत्र विषमतया कंगूराकार (Pinnate) होते हैं। इसमें कक्षीय सवृंत पुष्प गुच्छ लगते हैं। फल छाल मटराकार होते हैं और खाये जाते हैं। यह हिमालय की तराई

और दक्षिण चीन में होता है। इसकी लकड़ी और छाल काम में आती है। (Picrasma quassioides, *Benn.*)–फा० इं० १ भ० पृ० २८ प्र०।

कश्ह्–[अ०] कोख। तिहीगाह। कूल्हा। ख़ासिरः।

कष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कसोटी। (पत्थर) कष्टिप्रस्तर। कषपट्टिका। कष्टी।

पर्य्या०—शान, निकस (सं०)।

(२) सान। (३) परीक्षा। जाँच।

कषण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) शलाट। दो हज़ार पल का मान। (२) कसौटी।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) खुजलाना। कंडूयन्। (२) कसोटी पर घिसना। कसोटी पर चढ़ाना। कसना।

वि० [सं० त्रि०] अपक्व। कच्चा। श० च०।

कष पाषाण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] पारस पत्थर। स्पर्शमणि।

कषा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] चाबुक। दे० "कशा"।

कषाय–वि० [सं० त्रि०] (१) कषाय स्वादवाला जिसमें कसाव हो। जिसके खाने से जीभ में एक प्रकार की ऐंठन या संकोच मालूम हो। कसैला। बीकठ।

नोट—कषाय छः रसों में से एक है। कसैली वस्तुओं के जैसे—आँवला, हड़, बहेड़ा, सुपारी आदि। वस्तुओं के उबालने से प्रायः काला रंग निकलता है। (२) सुगंधित। खुशबूदार। सुगंध। त्रिका०। (३) रंगा हुआ। रंजित। (४) गेरू के रंग का। गैरिक। (५) लाल। लोहित।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कैथ का वृक्ष। (२) असन का वृक्ष। महासर्ज्ज। वै० निघ०। (३) बाइस प्रकार के मण्डली सर्पों में से एक। सु० कल्प० ४ अ०। (४) सोनापाठा का पेड़। श्योनाक वृक्ष। भरणिः। (५) धव का पेड़। बड़हर। रा० नि० व० ६। (७) गोंद। वृक्ष का निर्यास। (८) चंदन आदि लेप। विलेपन। (९) अंगराग। उबटन। मे०। (१०) लाल धमासा। रक्त धमासा। जवासा। कण्टालु। कुनाशक। कट्वरा। नि० शि०।

(११) वस्तुओं को जल में क्वथित कर तैयार किया हुआ क्वाथ मात्र। विधि यह है कि द्रव्य को कूटकर एक पल लेकर उसमें सोलह गुना जल डालकर औटाते हैं। जब चौथाई शेष रह जाता है, तब उतार कर छान लेते हैं। विधान यह है कि इसे मंदी आँच से पकाते हैं और गुनगुना पीते हैं। भावप्रकाश प्रभृति में ऐसा ही लिखा है। यथा—

"पादशिष्टः कषायः स्याद् यः षोडशगुणाम्भसा। भा०। षोड़शगुणाम्भसा पक्वः चतुर्भागावशिष्ट क्वाथः कषाय उच्यते।"

र० मा०।

परन्तु शार्ङ्गधर (१ अ०) के अनुसार अष्टमावशिष्ट रहा हुआ 'कषाय' कहलाता है।

पर्य्या०—श्रृत, क्वाथ, कषाय, निर्यूह। (Decoction or infusion)

स्वरस, कल्क, क्वाथादि कषाय के भेद हैं। स्वरस, कल्क, क्वाथ, शीत वा हिम और फाण्ट भेद से कषाय पाँच प्रकार का होता है। इनमें पहले पहले दूसरे दूसरे से भारी तथा दूसरे दूसरे पहले पहले से हलके होते हैं। अर्थात् स्वरस से कल्क, कल्क से क्वाथ, क्वाथ से शीत तथा शीत से फाण्ट हलके होते हैं और फाण्ट से शीत, शीत से क्वाथ, क्वाथ से कल्क और कल्क से स्वरस भारी होते हैं।

यथा—"कषायः पञ्चविधाः स्वरस कल्क क्वाथ हिम फाण्ट भेदेन यथोत्तरं लघवश्च भवन्ति।" चरक के मतानुसार भी "कषायस्य कल्पनं पञ्चविधम्—स्वरसकल्क श्रृत फाण्ट भेदेन एषाञ्च तथापूर्वं बलाधिक्यम्। च० सू० ४ अ०।

सुश्रुत में कषायपाक की विधि इस प्रकार लिखी है—

"तत्र केचिदाहुस्त्वक्पत्र मूलादीनां भागस्तचतुर्गुणे जलमावाप्य चतुर्भागावशेषं निःक्वाप्यापहरेत्। अथवा तत्रोदक द्रोणे त्वक्पत्रमूलादीनां तुलामावाप्य चतुर्भागावशिष्टं निःक्वाप्यापहरेत्। सु० चि० ३१ अ०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०, क्ली०] (१) कषाय रसवाली चीज़ । कसेली वस्तु । (२) छः रसों में से एक । कसैला रस । रा० नि० व० २० ।

पर्य्या०—तुबर, कबर, तूबर (सं०) बशअ्, बशीअ्, हाबिस, काबिज़–अ० । (Astringent.)

नोट—यह भूमि और अग्नि गुण बहुल, शीतल, भारी, रूक्ष, स्तम्भक, शमनकर्त्ता, ग्राही, मुख को शुद्ध करनेवाला तथा जिह्वास्तंभादिकारक और कटुविपाकी भी होता है । इसका विपाक वातकारक, कफपित्तनाशक, दीपन, पाचन, शोफरोधक और शिथिलताजनक है तथा अधिक सेवन करने से पाण्डु रोग उत्पन्न करता है । जो मुख को शुद्ध करे, जीभ को स्तंभित करे, कंठ को अवरुद्ध करे तथा हृदय को कर्षित एवं पीड़ित करे उसे 'कषाय' कहते हैं । सु० सू० ४२ अ० । यह शोषण कर्त्ता, स्तंभक, व्रणपाक की पीड़ा को दूर करता तथा कफ शोणित और पित्त का नाश करता, रूखा, शीतल और भारी है । राज० । इसके सेवन से जीभ जड़ और स्तंभित हो जाती है । च० । इस रस के अधिक सेवन करने से शूल, अफारा, हृत्पीड़ा । और आक्षेप–ये रोग लग जाते हैं । भा० ।

कषायकृत्–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] लाल लोध । रक्तलोध्र । जटा० ।

कषायजल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पाकर, पीपल, गूलर, सिरिस और बरगद की छाल डालकर पकाया हुआ पानी ।

कषायदन्त कषायदशन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुत में अठारह प्रकार के विषैले चूहों में से एक । इसके काटने से नींद आती, हृच्छोष होता और कृशता होती है । इसके ज़हर में सिरिस का सार, फल और छाल इनको शहद में मिलाकर चाटने से लाभ होता है । सु० कल्प० ६ अ० । वाग्भट के अनुसार इस प्रकार के चूहों का वीर्य्य जिस अंग पर गिर जाता है, वहाँ सूजन होती, सड़ाँध होता और गोल चकत्ते पड़ना इत्यादि लक्षण होते हैं । वा० उ० ३८ अ० । वि० दे० "चूहा" ।

कषायनित्य–वि० [सं० त्रि०] जो निरंतर परिमाण में कषैले रस का सेवन करे । हमेशा बहुत मात्रा में कसैले रस का सेवन करनेवाला । निरंतर कषाय रस सेवी । च० ।

कषायपाक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] क्वाथ करने की विधि । काढ़ा प्रस्तुत करने की प्रणाली ।

नोट—काढ़े में जल का परिमाण लिखा नहीं रहने पर गीली वस्तु में अठगुना और सूखी वस्तु में सोलह गुना जल मिलाकर काढ़ा करते हैं और चतुर्थांश जल शेष रहने पर उसे उतारते हैं ।

कषायफल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुपारी । पुंगी फल । पूग फल । वै० निघ० ।

कषाययावनाल–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का मक्का जो कसैला होता है । तुवरयावनाल-धान्य । रा० नि० व० १६ ।

कषाययोनि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कषायाधिकरण । सा० । वे पाँच हैं—मधुर कषाय; अम्लकषाय, कटुकषाय, तिक्तकषाय और कषायकषाय । च० सू० ४ अ० ।

कषायवर्ग–सं० पुं० [सं० पुं०] वैद्यक में कसैली ओषधियों का एक गण जिसमें सुश्रुत के अनुसार संक्षेप में त्रिफला, सलई (शल्लकी), जामुन, आम, मौलसिरी और तेंदू के फल, न्यग्रोधादि (वट), अम्बष्ठादि, प्रियंगु आदि, लोध्रादि, शाल्मलादि, निर्मली शाक, पाषाणभेदक वनस्पति और फल, कटसरैया (कुरवक) कचनार, जीवन्ती, चिल्ही, पालाक्य; सुनिषण्ण आदि, नीवारकादि, एवं मुद्गादि सम्मिलित हैं । सु० सू० ४२ अ० ।

कषायवासिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] सुश्रुतोक्त एक कीट विशेष । सौम्य होने से यह कीट श्लेष्म प्रकोपक है ।

कषायवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वह वृक्ष जिसकी छाल और फल कषैला होता है । बरगद आँवले आदि का पेड़ जिसका फल और छाल कसैली होती है । च० चि० ४ अ० ।

कषायस्कन्ध–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार की आस्थापन बस्ति जो प्रियंगु आदि कषैली वस्तुओं से तैयार की जाती है । च० चि० ८ अ० ।

कषाया–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) रक्त दुराभा । लाल धमासा । (२) छोटा धमासा ।

क्षुद्र दुरालभा। रा० नि० व० ४। (३) आमड़ा आम्रातक। (४) खजूर का पेड़। खर्जूरी वृक्ष। वै० नि०। (५) पटुआ। जूट। कौशिकामी। के० दे० नि०। (६) निशोथ। गण० नि०। नि० शि०।

कषाया–संज्ञा पुं० [सं० पुं० कषायिन्] (१) राल का पेड़। सर्जवृक्ष। (२) शाल का पेड़। साखू रा० नि० व० ६। जटा०। (३) खजूर का पेड़। खर्जूरी वृक्ष। (५) लचुक का पेड़। बड़हर। रा० नि० व० ११। (५) सागौन का पेड़। शाकवृक्ष। (६) छोटा कटहल। क्षुद्रपनस। वै० निघ०। (७) क्षुद्र दुरालभा। छोटा धमासा। नि० शि०।

कषिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] पक्षिजाति। कोई चिड़िया। उणा०।

कषीका–दे० "कषिका"।

कषरुका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कशेरुका। पृष्ठास्थि। अ० टी० रा०। (२) कसेरू। कशेरू।

कष्कलांगी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] गोराटिका। सारिका। मैना।

कष्कष–[वै० पुं०] एक प्रकार का ज़हरीला कीड़ा। बिषैला कृमि बिशेष।

"येबाषासः कष्कषासएजत्काः शिवबित्नुका।
दृष्टश्च हन्यतां कृमिरुतादृष्टश्चहन्यताम्॥
(अथर्ववेद ५।२३।७)

कष्ट–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पीड़ा। क्लेश। वेदना। तकलीफ। व्यथा। दुःख। दर्द। हे० च०।

वि० [सं० त्रि०] (१) कष्टसाध्य। मुश्किल। कृच्छ्र।

कष्टकर, कष्टकारक–वि० [सं० त्रि०] जो तकलीफ दे। जिससे क्लेश हो। पीड़ा देनेवाली। तकलीफ देह। कष्टप्रद। पीड़ाकर। त्रिका०।

कष्टकल्पना–संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत खींच खाँच की और कठिनता से ठीक घटनेवाली शक्ति। विचारों का घुमाव फिराव।

कष्टगंधिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] अश्वगंधा। असगंध।

कष्टनाशक–संज्ञा पुं० [सं०] भूमिवल्ली।

कष्टरज–संज्ञा पुं० [सं०] कृच्छ्ररज। कष्ट से रजःस्राव होना। पीड़ायुक्त मासिकस्राव होना।

कष्टरज नाशक–वि० [सं० त्रि०] जिसके सेवन से कृच्छ्ररज का नाश हो। सुखपूर्वक मासिकस्राव करानेवाली औषधि।

कष्टरजःव्यथा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कृच्छ्ररज जनित पीड़ा।

कष्टरजःस्राव–संज्ञा पुं० [सं०] कृच्छ्ररज। कष्टरज।

कष्टरजःस्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] कष्टरजःस्राव।

कष्टरा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] दुरालभा। कच्छुरा नि० शि०।

कष्टसाध्य–वि० [सं० त्रि०] (१) जिसका साधन वा करना कठिन हो। मुश्किल से होनेवाला। जैसे—कष्टसाध्य कार्य। (२) उपचार द्वारा जिसका साधन कठिन हो। मुश्किल से ठीक होनेवाला (रोग)। जो कठिनता से अच्छा हो। जैसे—कष्टसाध्य रोग।

कष्टस्थान–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] वह जगह जहाँ पीड़ा हो। पीड़ा जनक स्थान। हारा०।

कष्टहीन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] बकुची। सोमराजी।

कष्टार्त्तव–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृच्छ्ररज। रजःकृच्छ्रता।

कष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) पीड़ा। वै० निघ०। (२) कसौटी। (पत्थर) कषपट्टिका। के०। कसने का पत्थर। स्पर्शमणि।

कष्टी–वि० स्त्री० [सं० कष्ट] प्रसव वेदना से पीड़ित। (स्त्री०)।

कष्ठीर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] राँगा नामक धातु। रंग। वंग। रत्ना०।

संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कसौटी। सोना चाँदी कसने का पत्थर। कसनी।

कस–संज्ञा पुं० [सं० कष] परीक्षा। कसौटी। जाँच।

संज्ञा पुं० [सं० कषीय, हिं० कसाव] (१) 'कसाव' का संक्षिप्त रूप। (२) निकाला हुआ अर्क। (३) सार। तत्व

[राजपु०] खस । उशीर ।

कसंगु–[मदरास] Phoenix farinifera, *Roxb.* पलवत ।

क़स अर्तामा अर्ग़ला–[सिरि०] बख़ुरमरियम् ।

कसई–संज्ञा स्त्री० दे० "कसी" वा "केसई" ।

संज्ञा स्त्री० [देश० मरा०] बाँस । वंश ।

संज्ञा स्त्री० [देश० मरा०, बम्ब०] जंगली ज्वार । रानमकाई [मरा०] Coix Lacryma, *Linn.*

कसई-च-बीज–[मरा०] गरेड़ुआ । जंगली ज्वार ।

कसई बीज–[बम्ब०] जंगली ज्वार । रान मकाई ।

कसक–संज्ञा स्त्री० [सं० कष्=आघात, चोट] वह पीड़ा जो किसी चोट के कारण उसके अच्छे हो जाने पर भी रह-रह कर उठे । मीठा मीठा दर्द । साल । टीस ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) भूना हुआ गोश्त। कलिया । (२) अक़ीक़ ।

कसकसी–[कना०, कों०] खसखस । पोस्ते का दाना ।

कसका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कसौंदी । कासमर्द। वै० निघ० २ भ० कुलत्थाद्यघृत ।

कसकी–[पं०] खेंटी । शगली ।

कसकुट–संज्ञा पुं० [हिं० काँस+कुट=टुकड़ा] Bell. metal एक मिश्रित धातु जो ताँबे और जस्ते के बराबर भाग से मिलकर बनाई जाती है । भरत । काँसा ।

कसकुसरी–[?] Grewia villosa, *Willd.* धोहन । इनजरयस । तुवन्नी ।

कसमिनी–[सं० ?] वृश्चिकाली । बिछुआ । बरहंटा । इं० मे० मे० ।

क़सद–[अ० क़स्द] खीरा । ख़यार ।

कसन–संज्ञा पुं० [सं० क्लीं०] (१) कास रोग । खाँसी । (२) एक प्रकार की वेदना । क्लेश । दुःख । च० द० र० पि० चि० ।

कसनई–संज्ञा स्त्री० [सं० कृष्ण] एक चिड़िया जिसके डैने काले, छाती और पीठ गुलाबी और चोंच लाल रंग की होती है ।

कसनमर्दन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कासमर्द का पौधा । कसौंजा । वै० निघ० ।

कसनस्पा–[सं० ?] एक प्रकार का शीशम ।

कसना–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का जहरीला मकड़ा । एक प्रकार का कृच्छ्रसाध्य लूता ।

कसनोत्पाटन–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अड़ूसे का पौधा जो खाँसी को निर्मूल कर देता है । वासक । श० च० ।

कसपत–संज्ञा पुं० [देश०] (१) काले रंग का कूट्टू । काला काफर (२) कूट्टू का पौधा ।

कसपैरया छाल–संज्ञा स्त्री० [अं० कस्पेरिया+हिं० छाल] अंगस्तूरा की छाल ।

कसफ़त्त–संज्ञा पुं० [देश० द०] मोगबीरे का पत्ता ।

कसब–संज्ञा पुं० [अ०] [वि० कसबी] (१) परिश्रम । मेहनत पेशा ।

(२) [संज्ञा स्त्री० कसबी] छिनाला । व्यभिचार।

क़सब–[अ०] (१) नली । नालीदार हड्डी । जोफ़दार हड्डी। (२) साँस की नली । श्वासनलिका । वायु प्रणाली । (३) बाँस । नै ।

क़सबः–[अ०] (१) धात्वर्थ नली । नाली । छूछी । प्रणाली । (२) व्यवच्छेद शास्त्र में हवा की नाली । वायु प्रणाली । नरख़रः ।

क़सब फ़क़ूरा–[अ०] एक प्रकार का पौधा ।

क़सबक़–[अ०] शंखों (हलज़ूनात) का एक भेद । एक प्रकार का सीप ।

क़सब फ़ारसी–[अ०] एक प्रकार का बाँस जिससे क़लम बनाते हैं । नरकट ।

कसबरज–[?] मोती । लु० क० ।

क़सब शामी–[अ०] एक प्रकार का बाँस, इनमें से कोई छोटा, कोई बड़ा और कोई पतला होता है ।

क़सब सकर–[अ०] गन्ना ।

क़सबहे कुबरा–[अ०] Tibia

पिंडली की छोटी हड्डी जो उसके भीतर की ओर स्थित है ।

अज़्मुलक़सबत ।

क़सबहे सुग़रा–[अ०] Fibula

पिंडली की छोटी हड्डी जो उसके बाहर की ओर स्थित है । अज़्मुशशज़िय्यः शज़िय्यः ।

क़सबुज्जरीरः, क़सबुज़्ज़रीरः–[अ०] (१) चिरायता । भूनिम्ब । कालमेघ । कलपनाथ ।

क़स़बुज्ज़रीरहे हिंदी–[अ़०] किरात तिक्त। भूनिम्ब। चिरायता। (Andrograthis pnidulta)

क़स़बुज्जेब–[अ़०] (१) एक प्रकार का छोहारा। (२) एक प्रकार की घास जिसमें थोड़ी सी मिठास होती है। (३) किसी किसी के मत से एक प्रकार के काँस की जड़ है, जो नदी के समीप उत्पन्न होता है।

क़स़बुस्सक्कर–
क़स़बुस्सुकर–
क़स़बेसकर– } [अ़०] गन्ना। ईख।

क़स़ब् बुवा–[अ़०] चिरायता।

क़सम–संज्ञा पुं० [अ़० क़स़्म] [स्त्री० क़स़्म] नर लकड़बग्घा। नर चर्ख।

संज्ञा स्त्री० [अ़०] शपथ। सौगंध।

कसमल–संज्ञा पुं० [सं० कश्मल। देश० शिमला] दारु हलदी।

कसयः–[ ] नेवला। रासू।

क़सया–[रू०, यू०] Cassia तज।

कसयूमालस–[रू०] ह़शीशतुल् ज़ुजाज। ग्याह आबगीनः।

क़सयूसियूस–[रू०, यू०] तज। सलीख़ा।

कसर–संज्ञा स्त्री० [अ़० क़स़्र] (१) कमी। न्यूनता। कोताही। त्रुटि। दे० "क़स़्र"। (२) नुक़्स। दोष। विकार।

संज्ञा पुं० [देश०] कुसुम वा बर्रे का पौधा।

[फ़ा०, यू०] जुफ़न।

[सिरि०] सफ़ेद सोसन।

क़स़र–[अ़०] (१) गरदन वा गरदन की जड़। खोपड़ी के ठहरने की जगह। (२) दवा इत्यादि का फोक जो उसे छानने के उपरांत बच रहे। (३) वृक्ष की जड़ (मुख्यतः खजूर की जड़)।

क़स़रः–[अ़०] (१) गरदन की जड़। ग्रीवामूल। (२) गरदन की जड़ का दर्द।

कसर गाज़रूनी–[फ़ा०] ख़र्नूब शामी। दे० "ख़र्नूब"।

क़सरबुवा–[?] रोग़न हि़ना। मेंहदी का तेल।

कसरत–संज्ञा स्त्री० [अ़०] [वि० कसरती] व्यायाम। मेहनत।

संज्ञा स्त्री० [अ़० कस़्रत] अधिकता। बहुतायत। ज्यादती। वि० दे० "कस़्रत"।

कसरवा–संज्ञा पुं० [देश०] "सालपान" नाम का क्षुप।

क़सराक़–[?] घोड़ी।

कसरानी–संज्ञा स्त्री० [कसेरा ?] एक प्रकार की घास जो जलीय भूमि में प्रायः नदी और तालाब के किनारे उगती है। इसके पत्तों से बोरिया और चटाई बुनी जाती है; हिंदुस्तान में इससे टट्टियाँ आदि छाते हैं। अकृष्ट भूमि में यह मीलों तक खड़ी होती है। इसको यूनानी में 'इज़ख़िर अजामी' कहते हैं। यह घास पानी में और जल के समीप तर जमीन में उगती है। इसकी पत्ती खुरखुरी होती है।

यह दो प्रकार की होती है, एक नर, दूसरी मादा। नर का बीज मादा के बीज से बड़ा होता है। यह कृष्ण वर्ण का और गोल होता है। नर की पत्ती मादा की पत्ती से मोटी और खुरदरी होती है। ये पत्ते लंबे लंबे और बारीक होते हैं और उनमें डालियाँ नहीं होतीं। अ़राक़ में इससे रस्सियाँ और आटा छानने की चलनियाँ भी बनाते हैं। हकीम दीसक़ूरीदूस ने लिखा है कि इसकी तीन जातियाँ हैं। एक जाति में काले बीज आते हैं, दूसरी जाति में नहीं। इन दोनों को 'सजूनस' कहते हैं। तीसरी जाति को 'मंजूनूस' कहते हैं। इस जाति में भी बीज होता है। पहली दोनों जातियों से इसकी पत्तियाँ मोटी अधिक और दोनों जातियों से बलशालिनी होती हैं। किसी किसी के मतानुसार इसकी एक जाति की पत्तियाँ महीन और कड़ी होती हैं और दूसरी जाति की कोमल और मोटी।

पर्य्या०—अस्ल–अ़०। दूख़–फ़ा०। समख़–मिनः। कौलान–हिं०।

नोट—यह बूटी आयुर्वेदोक्त गुन्द्रः या गोंद-पटेरा ज्ञात होती है।

—लेखक

प्रकृति—इसकी सभी क़िस्में परस्पर विरोधी गुण धर्म युक्त हैं और उनमें शीतल पार्थिवांश का प्राबल्य होता है और उष्ण जलीयांश अल्प।

दाऊद अंताकी के तज़किरा में लिखा है कि यह द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और तृतीय कक्षा के अंतिमांश में रूक्ष है।

हानिकर्त्ता—शिरःशूल और सुबात की व्याधि उत्पन्न करता है।

दर्पघ्न—गुलकंद अस्ली और फ़लाफ़ली उचित मात्रा में।

प्रतिनिधि—एक क़िस्म दूसरी क़िस्म की प्रतिनिधि है। खून रोकने के लिये जलाया हुआ कागज।

मात्रा—३॥ माशे तक।

प्रधान कर्म—वेदनास्थापक, शोथ विलायक, निद्राजनक और रक्तावरोधक।

नोट—फ़लाफ़ली एक यौगिक माजून का नाम है जिसमें फ़िलफ़िल स्याह (काली मिर्च), फ़िलफ़िल सफ़ेद (श्वेत मरिच) और दार फ़िलफ़िज़ (पिप्पली) पड़ते हैं।

गुणधर्म तथा प्रयोग

यह घास दूषित वाष्पों को मस्तिष्क से नीचे उतारती है और नींद लाती है। परन्तु अधिक सूँघने से यह सिर में बोझ पैदा करती है और नींद लाती है। कभी इसके बीज सूँघने से कठिन शिरःशूल उत्पन्न होता है। इसके महीन किस्म के बीजों को १०॥ माशे तक शराब में मिलाकर पीने से उदरावष्टंभ होता है; आता हुआ खून बंद हो जाता है और पेशाब रुक कर आने लगता है। मोटी क़िस्म के बीज भक्षण करने से अधिक नींद आती है। यहाँ तक कि १७॥ माशे तक खा लेने से निद्रा रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके लेप से सूजन उतरती है; दर्द आराम होता है; कुनिद्रा, मालीखोलिया और जलंधर को गुणकारी है। अस्ल की उस जाति को जिसकी पत्ती पतली हो, यदि उसे बिछा कर उस पर ऐसे लोगों को सुलाएँ जो बहुत स्थूल हो या जिन्हें जलंधर रोग हुआ हो, तो उनके लिये यह लाभकारी है। मोटी पत्तीवाली क़िस्म का फ़र्श उन लोगों के लिये गुणकारी है जिनकी प्रकृति में रौक्ष्य का प्राबल्य हो। परन्तु रुतीला (मकड़ी की बड़ी जाति) के काटे पर, इस घास की जड़ के पास की उस कोमल पत्ती का जो ताज़ी निकली हो, लेप करना चाहिये। इसकी जड़ की राख करके उपयोग करने से संपूर्ण अंगों से रक्तस्राव का अवरोध होता है। इससे कंठमाला तथा खाज का भी नाश होता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह घास रदियुल् कैफ़ियत है। इसका खाना कल्याण जनक नहीं। इसके अधिक खाने का परिमाण साढ़े सतरह माशे है। इतनी मात्रा में खाने से हानि घटित होती है। तज़किरे में है कि इतनी मात्रा से मनुष्य मर जाता है। यदि कदाचित् किसी समय कोई इसे खाले, तो उसका उपाय यह है कि वह वमन करे, कस्तूरी सूँघे, फ़लाफ़ली भक्षण करे और स्नानागार में प्रवेश करे।

कसरेकन–[नेपा०] कठूमर। डुमुर।

कसरू–[नेपा०] बारचर।

कसकनामर–[कना०] कुचला। कुपीलु।

कसर्णीर–[वै० पुं०] एक प्रकार का साँप। (अथ०१०।४।५)

कसर्णील–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का सर्प। अथ० सू० ४।५। कां० १०।

कसल–[अ०] आलस्य। सुस्ती। काहिली।

कसवार–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ईख।

कसा–[?] शंखपुष्पी।

क़साऽ–[अ०] (१) तज। सलीख़ा। (२) दारचीनी।

कसाउ–[कों०] काँस।

कसाइ–[गु०] Coix Lachryma, *Linn.* गवेधुक। गर्गरी धान। संखरु। कसि।

क़साउल्हिमार–दे० "क़िस्साउल्हिमार"।

क़सातूनस, क़स्सातूस–[यू०] कड़। बर्रे। कुसुम का बीज।

क़सादा–[यू०] सोहागा। टंकण।

क़सा़नीर–संज्ञा पुं० [अ०] मूत्रप्रवर्त्तनी शलाका। पेशाब खोलने की सलाई। क़ास़ीर। क़ानातीर केथीटर। Catheter (अं०)।

क़सादेस्मा–[यू०] चिरायता।

क़साबः–[अ०] ख़राब छुहारा।

क़सा़बक–[अ०] खंजन। ममोला। सक़ारातून।

कसाफ़त–संज्ञा स्त्री० [अ० क़स़ाफ़त] गाढ़ा होना। सांद्रता। स्थौल्य। कसीफ़ होना। ग़लीज़ होना। मोटा होना। Inspissation।

क़स़ाम–[अ०] लकड़बग्घे की मादा। मादा लकड़बग्घा।

क़साम–[अ०] भेड़िया।

क़सामूयस, क़सामूली, क़सामूस–[यू०] दारचीनी।

[कों०] कासा नामक घास।

कसाय–[?] बक़लए ख़ुर्फ़ा।

कसार–संज्ञा पुं० [सं० क़सर] चीनी मिला हुआ भुना आटा वा सूजी। पँजीरी।

कस़ार–[बरब०] आकुस़ार नामक बूटी।

क़सारक़ूनीक़न–[यू०] इमली।

क़सार फ़र्नीन–[यू०] पिंड खजूर। रुतब।

क़सारवा क़र्क़ून, क़सारवाक़ूक़ीरून–[यू०] नागरमोथा। सुअद।

क़सारस, क़बारस–[यू०] कबर।

क़सारा–[सिरि०] ऊदबलसाँ।

कसारिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कालिक। कोकिल। कालज्ञ। दीर्घमूर्च्छा। गृहवासा। विलाशयी।

कसारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कराव। खेसारी।

क़सारूस–[यू०] क़ियूस।

क़सालावन–[यू०] ज़िफ़्त का तेल।

कसालू–[कों०] काँसालू। अरवी। कचू।

कसालू, कासालू–संज्ञा पुं० [सं० कासालु। देश० मरा०] कांसालू। कांस्यालुक।

कसिमल्ल–[उड़िया] कुटशाल्मली।

कसाव–संज्ञा पुं० [सं० कषाय] कषैलापन। कषाय।

क़सावत–[अ०] निर्दयता। बेरहमी। संगदिली।

कस़ाह–[?] तुख़्म जर्जीर।

क़साह्यु मा–[यू०] हलियून। नागदौन।

कसिंदा–[ते०] कसौंजा। कसौंदी।

कसिंधा–[ते०] बड़ा कसौंजा।

कसि–[?] गवेधुक। गर्गरी धान।

[बर०] पालिता मंदार। फरहद।

कसिनीवित्तुलु–[ते०] कासनी।

कसिपु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] अन्न। जटा०।

कसिया–संज्ञा स्त्री० [देश०] भूरे रंग की एक चिड़िया जो राजपुताने और पंजाब को छोड़ सारे भारतवर्ष में पाई जाती है। यह पीले रंग के अंडे देती है।

क़सिया–[रू०, यू०] कासिया। केशिया। तज। दे० "दारचीनी"।

कसी–संज्ञा स्त्री० [सं० कशकु] एक तृण जातीय पौधा जिसकी बीजयुक्त बालियाँ (Silicious involucre) दुकानों पर बिकती हैं। यह प्रायः छोटी कौड़ी की रूपाकृति की, गोल लंबोतरी और एकओर नुकीली होती हैं। इनके बीच सुगमता से छेद हो सकता है। छिलका इनका बहुत कड़ा, सफेद, चिकना और चमकीला होता है। फल के निम्न भाग पर एक चिह्न होता है जहाँपर डंडी लगी होती है और शीर्ष की ओर एक छिद्र होता है। जहां से शुष्कावस्था में भी स्त्री पुष्प का निकला हुआ भाग देखा जा सकता है। हरी दशा में १-२ इञ्च दीर्घ पुंपुष्प (Spike) उससे निकला हुआ रहता है। फल के भीतर गेहूं की तरह का एक कड़ा बीज होता है। बोई हुई कसी के फलों का छिलका मुलायम होता है। जिसके भीतर सफेद रंग की गिरी होती है जो खाने में मीठी होती है। परंतु वन्य कसी का छिलका इतना कड़ा होताहै कि दाँतों से नहीं टूटता इसका बीज औषध के काम आता है। इसकी जड़ में दो-तीन बार डालियाँ निकलती हैं और एक वर्ग गज भूमि में सात से नौ पौधे उगते हैं। इसकी कई जातियाँ हैं पर रंग के भेद से इसके प्रायः दो भेद होते हैं। एक सफ़ेद रंग की, दूसरी मटमैली और श्यामता लिये हुए होती है। यह वर्षाऋतु में उगती है।

पर्य्या०—गवेडुः (अम०), गवेधुः, गवेड़ुका (अ० टी०), कुण्डः (मे०) कुद्रा, गोजिह्वा, गुन्द्रः, गुल्मः (ब०) गवेधुका, गवेधुः (च० सू० २ अ० यवागु)(भा०) गवेधुकः, कशकु, गवीधुकः –सं०। कसी, कसई, केसई, कसेई, गरहेरुआ, गर्मी, गुरलू (गुलुं), गरगरी धान, संखड़, संखलु –हिं०। गुरगुर, गदगद, देधान, कुंच–बं०। गुकमुच, रान जोंधला। रान मकाई, कसई चें बीज

–मरा० । कसई बीज –बम्ब० । कौंडिल्ला, केस्सी कसेई –हिं० । संकली, संखलू –पं० । कसाई –गु० । कसी, कुलेले, कलिन्सी, कय्इत–आसा०, बर० । दमे दाऊद (दाऊदाश्रु) दमे अयूब, अयूबाश्रु, –अं० । जाब्स टियर्स Jab's tears –अं० । कोइक्स लैक्रिमा Coix lachryma, *Linn.* –ले० । लामसि डी जाव Larmes de Job. –फ्रां० । लैग्रीमा डी जाव Lagrima de Job –स्पेन, पुर्त्त० । दमिर –राजपु० । गंडुला (–बुन्देलखण्ड) । जरगदी, गरुन, –(संथाल) । गलवी, गंडुला, कसई, (म० प्र०) ।

उशीरादि तृणवर्ग

(*N. O. Gramineœ*)

उत्पत्ति-स्थान—यद्यपि आजकल मध्य प्रदेश खसिया एवं नागा पर्वत, सिकम, आसाम और बरमा की जंगली जातियों के अतिरिक्त इसकी खेती कोई नहीं करता । फिर भी यह समस्त भारत के मैदान में और ढालू पहाड़ियों पर पंजाब से लेकर बरमा तक चीन, जापान, मलाया आदि देशों में वन्य अवस्था में मिलती है । वैदिक काल में हिमालय की ढलुई पहाड़ियों पर आर्य लोग भी इसकी खेती करते थे ।

औषध और खाद्योपयोगी अंश—बीज ।

रासायनिक संघटन—इसकी १०० भाग गिरी में जलांश १३·२, एल्ब्युमिनाइड्स १८·७, श्वेतसार ५८·३, तैल ५·२, तंतु १·५, भस्म २·१ होता है । (फा० इं० ३ भ०) । इसमें ल्युसीन, टायरोसीन, हिष्टिडीन, लायसीन, आर्गिनीन, और कायसीन होते हैं । (इं० ड्रु० इं०)

इतिहास—वैदिक काल में यज्ञों में इसके चरु का उपयोग होता था । उस समय इसकी खेती भी होती थी । आरब्य यात्रियों को प्राचीन आर्यों द्वारा ही इसके बीजों का परिज्ञान हुआ और उन्होंने इसे दमु दाऊद (दाऊदाश्रु) आरब्य संज्ञा द्वारा अभिहित किया, जो काल पाकर दमु याकूब (याकूबाश्रु) कहलाये, अरबों द्वारा यह पौधा पश्चिम में पहुँचा और स्पेन और पुर्त्तगाल में बस गया जहाँ यह Lagrima de Job. नाम से आज भी सुपरिचित है । युरुपीय वनस्पति शास्त्रज्ञों द्वारा निर्धारित 'कोइक्स' संज्ञा इसको जाति का उपयुक्त परिचायक नहीं है; क्योंकि कोइक्स अफरीका जात एक प्रकार के ताड़ (Palm) का नाम है जिसका उल्लेख साव फरिस्तुस और प्लाइनी ने किया है ।

गुणधर्म तथा प्रयोग

गवेधुका तु विद्वद्भिर्गवेधुः कथिताख्रियाम् ।
गवेधुःकटुका स्वाद्वीकार्श्य कृत्कफनाशिनी ॥

(भा० पू० १ भ० धान्य वर्ग)

कसी—चरपरी, स्वादु, कार्श्यकर और कफ नाश करनेवाली है ।

डीमक—इसके कृमिजात बीज खाद्य और वन्योद्भव ओषध के काम आते हैं और शक्तिप्रद एवं मूत्रकर माने जाते हैं । चीन और मलक्का में ये खाद्य के काम आते हैं । चीन के आतुरायलों में रोगियों को इससे उत्तम पथ्य पेय तैयार होता है । (फ्रा० इं० ३ भ०)

इसकी सफ़ेद गिरी के आटेकी रोटी ग़रीब लोग खाते हैं । इसे भूनकर सत्तू भी बनाते हैं । छिलका उतर जाने पर इसकी गिरी के टुकड़ों को चावल के साथ मिलाकर भात की तरह उबाल कर खाते हैं । यह खाने में स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्द्धक होती है । जापान आदि में इसके मावे से एक प्रकार का मद्य भी बनाया जाता है । इसका बीज औषधि के काम आता है । इसके दानों को गूंथ कर माला बनाई जाती है । नैपाल के थारू इसके बीज को गूंथकर टोकरों की झालर बनाते हैं । (हिं० श० सा०)

यह वनस्पति शीतल, मूत्रजनक और शांति दायक होती है । इसके बीज कड़वे सुगंधित, खाँसी में लाभदायक और शरीर के वज़न को कम करनेवाले होते हैं ।

यूनानी मत से इसके बीज पौष्टिक और मूत्रल होते हैं ।

कैपबेल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ को पथरी को नष्ट करने के लिये देते हैं । मासिक धर्म की तकलीफ में भी यह उपयोगी मानी जाती है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह रक्तशोधक है। इसकी जड़ें मासिकधर्म की अनियमितता को दूर करने के काम में ली जाती है।

कसीकून, कसीक़ूल–[यू०] जंगली सोसन।

कसीतरोर–[?] सब्जी की क़लई।

क़सीद–[अ०] (१) सूखा मांस। खुश्क गोश्त। सुखाया हुआ गोश्त।

क़सीदस–[यू०] काकनज।

क़सीदः, क़सूद–[अ०] मोटा गूदा। मग्ज फर्बः।

कसीदा–[?] काला तज। स्याह सलीख़ा।

कसीफ़–[अ० कसीफ़] सांद्र। गाढ़ा। दलीज़। घना। अकिल। भद्दा। गँदला। Dense लतीफ़ का उलटा।

क़सीर–[अ० क़सीर] (१) कोताह। छोटा। कम। (२) कोताही करनेवाला।

कसीर–[अ० कसीर]
संज्ञा [देश० पं०] कचूर।
[रू०] हलफाड़।

कसीराऽ–संज्ञा पुं० [कतीरा का मुअ०] क़ताद की गोंद।

क़सीराम–[सिरि०] जंगली खीरा (ख़्यार)।

क़सीरी–[अ०] अज़दहे का एक भेद।

कसीरा–[फ़ा० कतीरा से मुअ०] कतीर। गुलू की गोंद।

कसीरू–संज्ञा पुं० दे० "कसेरू"।

क़सीरू–[?] हलफ़ा।

कसीरुल् अज्लाअ़–[अ०] बारतंग।

कसीरुल् अरिज्ल–[अ०] विसफ़ाइल।

कसीरुर्ऊस–[अ०] क़स्अ़नः।

कसीरुल्ग़िज़ा–[अ०] वह वस्तु जिसका प्रायः भाग शरीरावयव में परिणत हो जाय। वह चीज़ जिससे खून ज़्यादा पैदा हो। कसीरुल् तग़ज़्ज़िय़ः। Polytrophia वृंहणीय आहार।

कसीरुल् मुन्फ़अ़त–[अ०] ख़त्मी।

कसीरुल् वरिक–[अ०] (१) हज़्ज़ुबुल। (२) मुर्बाक़लून।

कसीरुश्शअ़र–[अ०] हंसराज। परसियावशाँ।

कसीला–[नल्ती] एक पौधे की लकड़ी।

कसीवमालस–[रू०] हरीरानुज़्ज़ाज।

कसीस–संज्ञा पुं० [सं० कासीसम्] लोहे का एक प्रकार का विकार जो खानों में मिलता है और रासायनतः इसे प्रयोगशालाओं में भी तैयार करते हैं। योग भेद से यह विविध वर्ण और आकृति का होता है। आयुर्वेद में मुख्यतः इसके ये दो भेद लिखे हैं—एक हरा जिसे 'धातुकासीस' अथवा हरा वा हीरा कसीस कहते हैं, दूसरा पीला जिसे 'पांशु' वा 'पुष्प कासीस' कहते हैं।

हकीमों ने ज़ाज का कसीस और सिक्के का फिटकिरी अर्थ किया है और यह सभी लोग जानते हैं कि उक्त दोनों पदार्थ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। ज़ाज (कसीस) खनिज और कृत्रिम दोनों प्रकार का होता है और नाना वर्ण का होता है। इनमें से सफ़ेद, पीला, लाल और हरा कसीस प्रमुख हैं। हरे कसीस को ज़ाज सब्ज वा हीरा कसीस कहते हैं। ज़ाजुल् असाकिफ़ः दोनों कसीस के नाम हैं। ज़ाजुल् असाकिफ़ः को ज़ाज क़ल्तगरी भी कहते हैं और लिखते हैं कि यह ज़ाज स्याह है। यह जब पानी में पड़ता है, काली हो जाती है। इसे ही शुतुर दंदाँ (उष्ट्रदंता) कहते हैं। ज़ाज सुर्ख (रक्त कासीस) के भीतर का भाग कृष्ण वर्ण होता है और उसमें छिद्र होते हैं और उससे दुर्गंधि आती है। इसमें से जो नीलवर्ण होती है, वह अपेक्षाकृत निर्बलतर होती है। ज़ाज सुर्ख और ज़ाजुल् असाकिफ़ः दोनों को ज़ाज सफ़ेद श्वेत कासीस भेद लिखा है। पर, आश्चर्य तो यह है कि ज़ाज सफ़ेद का अर्थ स्फटिका करते हैं। यद्यपि स्फटिका का कोई ऐसा भेद नहीं है जो पानी में पड़ने से कृष्ण वर्ण हो जाय। इससे ज्ञात होता है कि ज़ाज सफ़ेद का अर्थ स्फटिका नहीं करना चाहिये। अपितु ज़ाज का अर्थ कसीस करके कसीस के चार भेद निर्धारित करना चाहिये। सफ़ेद, पीला, हरा और लाल। किंतु ग्रंथोक्त भ्रमात्मक विवेचना के कारण ज़ाज सफ़ेद का ग्रहण स्फाटिका के अर्थ में होने लगा।

जाकीनूसके मतानुसार ज़ाज वा कसीस के सम्पूर्ण भेद जलीय द्रवांश हैं, जो सांद्रीभूत हो जाते हैं। किंतु वे अपूर्णावस्था में ही रह गये हैं। जब पानीमें

डालते या पकाते हैं, तब वे घुल जाते हैं। किंतु लाल कसीस नहीं घुलता है। ये सभी भेद प्रायः गुणधर्म में समान होते हैं। परंतु द्रवत्व और सांद्रत्व गुण में ये असमान होते हैं। इनमें सर्वाधिक सांद्र लाल कसीस होता है। इसलिये यह जल में अविलेय होता है। सबसे अधिक सूक्ष्म वा द्रवणशील सफ़ेद और हरा कसीस है और पीत कासीस इनमें मध्यम है। यह अखिल कासीस भेदों से समशीतोष्ण है। किसी किसी के मत से यह सर्वापेक्षा बलवत्तर है। जलाने से ज़ाज की तीव्रता एवं रूक्षता घट जाती है। इसी कारण दग्ध ज़ाज अदग्ध की अपेक्षा सभी प्रकार समग्र गुणों में उत्कृष्ट होता है। क्योंकि मारण करने से यह बहुत सूक्ष्म हो जाता है। यह विलक्षण बात है कि जलाने से इसकी तीव्रता बढ़ती नहीं है जैसा कि प्रायः और पदार्थों में होता है कि जलाने से उनकी तीक्ष्णता अधिकाधिक हो जाती है। पर यदि कसीस को जलाकर धो डालें, तो वह अत्युत्तम एवं अक्षोभक हो जाय और उसकी तीक्ष्णता जाती रहे। जला हुआ कसीस सूक्ष्म हो जाता है। उसकी शक्ति घट जाती है। इसके विरुद्ध अन्य लवण जलाने से बलिष्ट हो जाते हैं। ज़ाज सफ़ेद को क़लक़दीस और पीत को क़लक़तार और ज़ाज सब्ज़ वा हीरा कसीस को क़लक़ंद एवं क़लक़ंत कहते हैं। शीराज़ी में इसे ज़ाज स्याह कहते हैं और लाल को सूरी। सफ़ेद कसीस कभी पीला हो जाता है। शेख़ ने भी सफ़ेद को क़लक़दीस लिखा है। पर बहुधा इसे ज़ाज सुर्ख़—रक्त कासीस लिखते हैं। क्योंकि रक्त कासीस भी श्वेत कासीस का ही अन्यतम भेद है। अतएव क़लक़दीस शब्द का जिसका प्रयोग सफ़ेद कसीस के लिये होता है, लाल कसीस के अर्थ में ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है। इब्नज़ुहर के कथनानुसार चिरकाल के उपरांत क़लक़ंद और क़लक़तार कसीस बन जाते हैं। ज़ाज वा कसीस का निर्माण तीन प्रकार से होता है—(१) सूक्ष्म द्रव खानों में स्वयं टपककर जम जाते हैं। इसको टपका हुआ कसीस (ज़ाज मुक़त्तर) कहते हैं। इसकी परीक्षा यह है कि फ़ौलाद पर इसे मर्दन करने से उसका रंग तांबे का सा हो जाता है। (२) उस बहुते हुए पानी में जम जाने से प्राप्त होता है जो खानों के समीप गुफाओं में एकत्रित हो जाता है। इसे ज़ाज जामिद कहते हैं। (३) ज़ाज सब्ज़ (हीरा कसीस) मृत्तिका में मिली हुई होती है। इसे पानी में मिलाकर क्वथित कर साफ़ करते हैं। जब जम जाती है, तब नर्द के मोहरे की आकृति के टुकड़े काटकर काम में लाते हैं। इसे ज़ाज मत्बूख़ (क्वथित कसीस) कहते हैं। मख़्ज़न के अनुसार ये तीनों ज़ाज सब्ज (हीरा कसीस) के भेद हैं। जौहरदार फ़ौलाद को साफ़ करने के उपरांत कसीस से जौहर देते हैं।

पर्य्या०—काशीशं, काशीपं, काशीसं कासीसं, सं०। कसीस, कौशीश—हिं०। ज़ाज—अ०। ज़ाक—फ़ा।

विशेष विवरण के लिये देखो "लोहा" वा "कासीस"।

संज्ञा पुं० [अ०] तोदरी। म० अ०।

क़सीस—[अ०] कँपकपी। लरज़ा। Rigor राइगर (अं०)।

क़सीस, क़सीस:—[अ०] (१) एक पोधा जो कमात (खुमी) की जड़ में उगता है। (२) तोदरी। म० अ०।

कसीसक—संज्ञा पुं० [स० पुं०] केसर। (२) हीरा कसीस।

कसीस तेल—संज्ञा पु० [सं० क्ली०] कसीस, कलिहारी, क़ठ, सोंठ, पीपर, सेंधानमक, मैनशिल, कनेर की जड़, वायविडंग, चित्रक मूल, अड़ूसा, दन्तीमूल, कड़वी तराई के बीज, हेमाह्वा (चूक), हरताल इन्हें एक एक कर्ष लेकर कल्क बनाएँ, पुनः १ प्रस्थ तेल में सेंहुँड दूध २ पल, मदार का दूध २ पल व तेल का चौगुना गोमूत्र डालकर यथाविधि तैल सिद्ध करें। गुण—इसके लगाने से बवासीर के मस्से गिर के नष्ट हो जाते हैं और क्षार कर्म का सा कष्ट भी नहीं होता। (शा० ध० सं०)

कसीसादि घृत—संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कसीस, दोनों हल्दी नागर मोथा, हरताल, मैनशिल, कबीला, गंधक, विडंग, गूगल, मोम, मिर्च,

सोंठ, तूतिया, सफेद सरसों, रसवत, सिन्दूर, राल, लाल चंदन, अरिमेद, नीम की पत्ती, करंज, सारिवा, बच, मंजीठ, महुवा की छाल, जटामांसी, सिरस की छाल, लोध, पद्माख, हड़, और प्रपुन्नाट प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करें पुनः इसे ३० पल गाय के घी में अच्छी तरह मिलाकर धूप में एक ताँबे के बर्तन में रखकर धरें। पुनः सात दिन के पश्चात् इसका अभ्यंग करने से कुष्ठ, दद्रु, पामा, विचिर्चिका, रक्तदोष, विसर्प, विस्फोटक, वातरक्त जनित शीतला, मस्तक की घाव, गर्मी, नासूर, शोथ, भगन्दर, लूता के विष और व्रण को दूर करता है। तथा यह व्रण शोधक, रोपण और शरीर को स्वर्ण समान करता है। शा० ध० सं०।

कसीसून-[यू०] लावन। लोफ़ कबीर।

कसुंद-संज्ञा पुं० [देश०] सपता। बड़ा सलपन।

कसुंदा-संज्ञा पुं० [देश०] कसौंदा।

कसुंभा-संज्ञा पुं० दे० "कुसुम्भ"।

क़सुक़्क़लाब-[अ०] ग़ाग़ालस।

कसुम-संज्ञा पुं दे० "कुसुम"।

कसुरी-संज्ञा स्त्री० [देश० नेपा०] (Euonymus Tingens) Dogwood बारफली। सिखी। केसरी। पापर।

कसुवायी-[गु०, मरा०] कसौंदा।

कसुवु-[ते०] [बहु० कसुवुलु] घास। तृण।

कसू, कसूय-[सिरि०, यू०] अंग। उज़्व।

कसूक़रातीस-[?] हज्र क़ब्ती।

कसूचक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मण्डूक। दादुर। भेक। मेढक।

क़सूतुल कलाब-[अ०] शाहबानक।

क़सूद-[अ०] मोटा गूदा। मख़ फ़र्ब़ः।

कसूपास-[सं० ?] रेंड़। लु० क०।

कसूबा-[सिरि०] जंगली बर्रै। उ़स़्फ़ुर। क़ुर्तुम बर्री।

कसूबुल्-[अ०] गन्ना। ईख।

कसूबूफ़सामरमर, कसूबूफ़सामोहून-[यू०] दारचीनी।

कसून-संज्ञा पुं० [देश०] कंजी आँख का घोड़ा। सुलेमानी घोड़ा।

कसूम-संज्ञा पुं० [सं० कुसुम्भ] कड़। कुसुम।

कसूमर-संज्ञा पुं० दे० "कुसुम"।

क़सूमास-[यू०] दारचीनी।

क़सूर-[अ०] (१) बाबूना। (२) पुदीना।

कसूर-सहती। मस्तगी। कुंदह।

क़सूरमून-[यू०] रीठा। बंदक़ हिंदी।

क़सूरयूक़न-[यू०] हशीशतुज़्ज़ुजाज।

कसूरस-[यू०] ईरसा।

कसूरु-संज्ञा पुं० दे० "कसेरू"।

कसूल, कुसौल-[?] एक फल।

कसूल-संज्ञा पुं० [देश० गोंडा] धामन। फरसा। एक फल जो अमलतास की फली की तरह एक उँगली के बराबर लंबा होता है। यह रूम देश में पैदा होता है।

क़सूलन-[रू०] लोबिया।

कसूलून-[यू०] दारचीनी।

कसूश-[ ] ख़श्ख़ाश ज़ुब्दी।

कसूस-संज्ञा पुं० [फ़ा०] कशूस़।

क़सूस-[यू०] (१) फ़लीसूस। (२) दिब्क़।

कसूरी-संज्ञा स्त्री० [देश० नेपा०] दे० "कसुरी"।

कसूस-संज्ञा पुं० [अ० कसूस] अकाशबेल का बीज यह प्रायः बिलायती अमरबेल से प्राप्त होता है।

कसूंदा-[देश०] कसौंदी का एक छोटा भेद।

कसूंबा-संज्ञा पुं० [सं० कुसुंभ] कुसुम। बर्रे।

कसूबो-[देश०, मरा०] दे० "कसूंबा"

कसेरु-संज्ञा पुं० [सं० पुं०, स्त्री०] (१) पृष्ठास्थि मेरुदण्ड। रीढ़ की हड्डी। (Back bone) रा० नि० व० १८। (२) मुस्ता। मोंथा। रा० नि० व० ६। (३) भद्रमुस्तक। भद्रमोथा। यथा—"कसेरुर्भद्रमुस्तके"। रा० नि० व० २३ (४) गुण्डकन्द। क्षुद्रमुस्ता। कसेरू। रा० नि० व० ८। भा०। वै० निघ०। राज० ३ व०, च० क्र०। दे० "कसेरू"। (५) कुमुदकन्द।

संज्ञा पुं० [पं०] देला।

कसेरुक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) कसेरू। (२) नागरमोथा। नागरमुस्तक। सु० चि० ३७ अ०

कसेरुका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कसेरू। गुण्डकन्द। रा० नि० व० ८। (२) पृष्ठास्थि। रीढ़ की हड्डी। पृष्ठदण्ड। रा० नि० व० १८।

कसेरुदिला-[पं०] कसेरू।

कसेरुवा-[मरा०, कर०] कसेरू।

कसेरू-संज्ञा पुं० [सं० कशेरूः] एक प्रकार के मोथे की जड़ जो तालों और झीलों में वा उनके किनारे जहाँ पानी रुका होता है अथवा आर्द्र भूमि में उपजता है। कोई-कोई इसे गोंदपटेरे का एक भेद बतलाते हैं। कसेरू के पौधे को कहीं२ गोंदला भी कहते हैं। संस्कृत में इसे गुण्डः कहते हैं और इसका कन्द-गुण्डकंद कसेरू कहलाता है।

यह कंद वा जड़ अंडाकार गोल गाँठ की तरह होती है और इसके काले छिलके पर काले रोएँ या बाल होते हैं। इसके भीतर का गूदा बहुत सफ़ेद स्वाद में मधुर सुस्वादु किंचित् विस्वाद (फीका) और सुगंधित होता है। इसके चाबने से कुछ-कुछ मोथे की सी गंध आती है। कसेरू खाने में मीठा और ठंढा होता है। फागुन में यह तैयार होजाता है। और अषाढ़ तक मिलता है।

रूपाकृति भेद से कसेरू अनेक भाँति का होता है। राजनिघण्टुकार ने स्थूल, वृत्त और लघु भेद से इसे तीन प्रकार का लिखा है—"तत्रस्थूलो लघुश्चान्यास्त्रधाऽयं"। भावप्रकाशकार को भी इसके निम्न दो भेद स्वीकृत हैं। वे लिखते हैं—

कसेरू द्विविधं तत्तु महद्राजकसेरूकम्।
मुस्ताकृति लघुस्याद्यत्तच्चिचोड़मिति स्मृतम्"

अर्थात् कसेरू दो प्रकार का होता है। (१) महत् कसेरुक वा राजकसेरुक और (२) चिचोड़। इनमें से जिसका कन्द अपेक्षाकृत वृहत् (जायफल के बराबर वा उससे बड़ा) होवे, वह कसेरू वृहत् कसेरू वा राजकसेरू एवं जो मोथे की शकल का और छोटा होता हो, वह चिचोड़ वा छोटा कसेरू है। धन्वन्तरीय तथा राजनिघण्टुकार ने मोथा वा मुस्ता के पर्य्यायों में कसेरू और राज कसेरू का पाठोल्लेख किया है।

पर्य्या०-कसेरू का पौधा—

गुण्डः, काण्डगुण्डः, दीर्घकाण्डः, त्रिकोणकः, छत्रगुच्छः, असिपत्रः, नीलपत्रः, त्रिधारकः, वृत्तगुण्डः, वृत्तः, दीर्घनालः, जलाश्रयः, -सं०। कसेरू तृण, कसेरू का पौधा, गोंदला, केउटी -हिं०। केशुरघास, गेँरोकेशुर -बं०। गुंडावत, तिधारी, बलहातीनि -मरा०। मुरुगेरु -का०। (१) कसेरू, राजकसेरू, स्किर्पास कैसूर Scirpus-Kysoor, *Roxb.* स्किर्पस ट्युबरोसिस Scirpus Tuberosus, (२) छोटा कसेरू वा चिचोड—स्किर्पस आर्टिक्युलेटस Scirpus Articulatus, *Linn* & Esculentus. -ले०। (३) वृत्तगुण्ड—स्किर्पस ग्रोसस Scirpus Grossus, *Linn* -ले०।

कंद वा जड़ अर्थात् कसेरू—

(१) कसेरू—गुण्डकन्दः, कसेरुः, क्षुद्रमुस्ता कसेरुका, सूकरेष्टः, सुगंधिः, सुकन्दः, गन्धकन्दकः (रा० नि०) कशेरुः, कशेरुकः, कशेरूः, कशेरुकम् कशेरूकम्, कशेरुका, कशेरूका, कसेरुकः, शूकरेष्टः, केसूरः, (द्रव्याभि०) -सं०। कसेरू -हिं०। केशुर, -बं०। स्किर्पस कसूर Scirpus Kysoor, *Roxb.*, स्किर्पस ट्युबरोसस Scirpus Tuberosus, -ले०। वाटर चेष्टनट Water Chestnut, ग्राउंड चेष्टनट Ground Chestnut -अं०। गुंडतुंगगड्डि, सेकिनगड्डे नंगगडु -ता०। इट्टिकोति, गुंडतिगागड्डि -ते०। कसेरुवा, कचरा, कचेर, फुरड्या -मरा०। सेकिन गड्डे -कना०। कचेरा, कचरा -बम्ब०। कलादुंरु विशेषयक् -सिं०। कसेलान -गु०। कसेरुडिला -पं०।

(२) छोटा कसेरू वा चिचोड़—चिञ्चोटः, चिञ्चोटकः, चिचोढं -सं०। छोटा कसेरू, क्षुद्रकसेरू चिचोड़ -हिं०। लघु केशुर -बं०। स्किर्पस आर्टिक्युलेटस Scirpus Articulatus., -ले०।

(३) गोल कंदवाला अर्थात् वृत्तगुण्डकन्द

कशेरू -हिं०, सं०। केशुर -बं०। कसेरुडिला -पं०। गुण्डतिगागड्डि -ते०।

कसेरू की परिचयज्ञापिका संज्ञायें—"क्षुद्र-मुस्त" "शूकरेष्टः"। गुणप्रकाशिका संज्ञा—"गन्धकन्दकः"।

मुस्तादि वर्ग

(*N. O. Cyperaceæ*)

उत्पत्ति स्थान—कसेरू सिंगापुर का अच्छा होता है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी गरम प्रदेशों और चीन देश में होता है। चिचोड़ पूर्वीय भारतवर्ष में अधिक होता है। वृत्तगुण्ड कोंकण में बाहुल्यलता के साथ पाया जाता है, विशेषतः सलसत्ती (Salsette) में।

औषधार्थ व्यवहार—कन्द।

औषधि निर्माण—कसेरुकादि सर्पि, कसेर्वादि लेप आदि।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेदीय मतानुसार—कसेरूतृण वा गुण्ड

गुण्डास्तु मधुराःशीताः कफपित्तातिसारहाः।
दाह रक्तहरास्तेषां मध्येस्थूलतरोऽधिकः॥

(रा० नि० ८ व०)

गुण्डातृण अर्थात् कसेरू का पौधा मधुर और शीतल है तथा कफ, पित्त, अतिसार, दाह एवं रुधिर इनका निवारण करता है। उनमें स्थूल गुंडातृण गुणों में श्रेष्ठ है।

कसेरू वा गुण्डकन्द—

कसेरुकः कषायोऽल्पमधुरोऽति खरस्तथा।
रक्तपित्त प्रशमनः शीतदाहः श्रमापहाः॥

(रा० नि०)

कसेरू—कसेला, थोड़ा मीठा एवं अत्यन्त खर है तथा रक्त पित्त प्रशामक, शीतल और दाह एवं श्रमनाशक है।

कसेरुकद्वयं शीतं मधुरं तुवरं गुरु।
पित्तशोणित दाहघ्नं नयनामय नाशनम्॥
ग्राहिशुक्रानिल श्लेष्मारुचिस्तन्यकरं स्मृतम्।

(भा०)

दोनों प्रकारका कसेरू—शीतल, मधुर, कसेला भारी, रक्तपित्तप्रशामक दाह निवारक, ग्राही, शुक्र जनक, वातजनक, कफकारक, रुचिजनक तथा स्त्री के स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला और नेत्र रोगों को दूर करनेवाला है।

❀क्रौञ्चादन कसेरुकम्। ❀ गुरुविष्टम्भि शीतलम्।

(राज०)

कसेरू—भारी, शीतल और विष्टम्भकारक है।

पुष्पञ्चास्य कामलाहरं पित्तनाशकरञ्च।

(वै० निघ०)

कसेरू का फूल—कामला और पित्त का नाश करनेवाला है।

कसूरःस्यात् पीतरसो गोलोवृष्यः कशेरुकः।

(द्रव्याभि०)

कसेरू—पीतरस, गौल्य और वीर्यवर्द्धक है।

कसेरू के वैद्यकीय व्यवहार

चरक—विसर्प रोग में कसेरू—कसेरू को बारीक पीसकर गाय का घी मिलाकर विसर्प पर लेप करें। यथा—

"❀सघृता च कसेरुका"। (चि० ११ अ०)

सुश्रुत—रक्ताभिष्यंद में कसेरू—कसेरू और मुलेठीके चूर्ण की पोटली बनाकर आकाश के पानी में भिगोकर आँख में फेरने से रक्ताभिष्यंद आराम होता है। यथा—

"कसेरु मधुकाभ्यां वा चूर्णमम्बर संवृतम्।
न्यस्तमप्स्वन्तरीक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत्।

(उ० १२ अ०)

वक्तव्य—चरक और सुश्रुत कसेरू को गुरु, विष्टम्भि और शीतल लिखते हैं (चरक सू० २७ अ०, सुश्रुत सू० ४६ अ०)।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—शीतल और रूक्ष (मतांतर से मुरक्किबुल् क़ुवा परस्परविरोधी गुण धर्म युक्त); द्वितीय कक्षा में सर्द व तर। इसमें किंचित् ऊष्मा, संग्राहि एवं अगद प्रभाव भी वर्तमान होते हैं।

स्वाद—विस्वाद वा फीका किंचिन् मधुर।

हानिकर्त्ता—ग्राही, गुरु, मलावष्टंभकारक और दीर्घपाकी है तथा वादी एवं कफ और वातकारक है।

प्रतिनिधि—कँवलगट्टा।

दर्पघ्न—चीनी, शुद्ध मधु और इसका छिलका।

प्रधान कर्म—हृद्य है और ख़फकान एवं अतिसार निवारक है।

गुण, कर्म, प्रयोग—कसेरू शिशिर शीतल और गुरु है तथा पित्त एवं रक्तविकार और दाह का निवारण करता है। यह उदर में क़ब्ज़ पैदा करता और वृष्य एवं कफ तथा वातकारक और प्यास बुझानेवाला है। विशेषकर जब इसे छिलका सहित खाते हैं। किंतु जब इसे चाबकर इसका पानी उतार घोंट जाते हैं और सीठी फेंक देते हैं, तब यह शैत्यकारक होता है। और इसमें गुरुत्व (सुक़ूल) का अभाव होता है। इसे पीसकर और शर्बत गुलाब तथा मिश्री में हल करके और साफ़ करके खाते हैं और इसे शीतल, दूषित वायु के विष को दूर करनेवाला तथा पूयमेह नाशक मानते हैं। विशेषकर जब इसे छिलका सहित पीसते हैं। किन्तु बिना छिलका के यह लघु (लतीफ़) और रुचिकारक हो जाता है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

कसेरू हृदय को शक्ति प्रदान करता और ख़फ़कान (हृदय की धड़कन) को दूर करता है। उग्र विसूचिका में जब अत्यंत क़ै और दस्त आते हों, तब इसका सेवन लाभकारी होता है। किंतु विसूचिका की प्रारम्भावस्था में इसका उपयोग वर्ज्य है। यह वातज, पित्तज एवं रक्तातिसार में भी उपकारी होता है और उसे बंद करता है। यह प्यास बुझाता है, उदर की गर्मी एवं प्रदाह को मिटाता तथा सर्वांग दाह और ताऊन (प्लेग) के लिये गुणकारी है। पित्तज और रक्तज ज्वरों में इसका पेय और प्रलेप लाभकारी होता है। यह ग्राही (क़ाबिज) एवं शुक्रजनक है तथा रक्तविकार उरोदाह और पैत्तिक व्याधियों को नष्ट करता है। यह उष्ण विषों का अगद है। यह हर प्रकार के विषों का निवारण करता है, पुनः चाहे वह किसी विषैली वस्तु के भक्षण से हुआ हो या किसी विषधर जंतु के दंश से। यह सूज़ाक को लाभ पहुँचाता है। (ना० मु०; म० मु०; बु० मु०) ज़ख़ीरहे अकबर शाहीके मतसे यह ग्राही (क़ाबिज) दीर्घपाकी, कफवर्द्धक और उष्ण प्रकृति के लोगों के लिये गुणकारी है। इसका पानी हरारत मिटाता तथा हृत्स्पंदन (ख़फकान) और सीना एवं सोज़िस को लाभ पहुँचाता है।

वैद्यों के मत से कसेरू मधुर, शीतल, किंचित् कषाय, बृंहण एवं स्थौल्यकारक और गुरुपाकी हैं। यह रक्तपित्त (पैत्तिक शोणित, मतांतर से रक्त प्रवृत्ति), उष्णता, नेत्ररोग, अतिसार और अरुचि को मिटानेवाला है। वातकारक, कफवर्द्धक और स्तन्यजनक है। इसके खाने से ज़हर उतरता है। कसेरू का चूर्ण शहद में मिलाकर चटाने से क़ै बंद होती है। कसेरू खाने से अतिसार नाश होता है। औषधि भक्षणजनित मुख की विरसता कसेरू के खाने से दूर होती है। कसेरू का चूर्ण और मिश्री का चूर्ण एकत्र फाँकने से शुष्क कास आराम होता है।—ख़० अ०।

डीमक—कसेरू संग्राही है और अतिसार तथा वमन के निवारणार्थ इसका उपयोग होता है। (फा० इं० ३ भ० पृ० ५५५)

नगेंद्रनाथ सेन—यह अश्मरी, त्वग्दाह और नेत्ररोगों में उपकारी है। इसका फूल पित्त और कामलाहर है।

नादकर्णी—चिचोड़ की जड़ मृदु रेचक है। कसेरू सारक और कोष्ठमृदुकर स्वीकार किया जाता है। वृत्तगुण्ड वा गोल कसेरू संकोचकी (Astrin gent) है। दूध से बनाई हुई इसकी काँजी, अतिसार और वमन में पोषण का उत्तम साधन है। यह (Bland) और क्षोभ निवारक भी है। औषधियों का स्वाद छिपाने एवं रोग निवारण के लिये इसकी जड़ चाबी जाती है। (इं० मे० मे० पृ० ७८०)

चोपरा के अनुसार यह वमन और रक्तातिसार में उपयोगी है।

कसेरुकादिसर्पि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक आयुर्वेदीय घृतौषधि, कसेरू, शैवाल, आदी, प्रपौण्डरीक (प्रंडरिया), मुलहठी, बिस, (कमलनाल), ग्रन्थि (पिप्लामूल) इनके कल्क से दूध के साथ यथा विधि घृत पाक करें।

गुण-तथा उपयोग—इसमें शहद मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य हृद्रोग नष्ट होता है। (यो० र० हृ० रो०)

कसेरवादि लेप–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक लेपौषध। कसेरु, सिंघाड़ा, कमल, गुंजा, शवला (शैवाल), उत्पल (निलोफर) और पद्माक को पीसकर घृत मिलाकर लेप करें, परन्तु लेप के नीचे कपड़ा लगा लेना चाहिए। गुण—इसके उपयोग से विसर्प नष्ट होता और प्रदाह दूर होता है। (वृ० नि० र० विसर्प चि०)

कसेला, कसेल्हा, कसेली–[नब्ती] एक अप्रसिद्ध वा संदिग्ध ओषधि की छाल वा लकड़ी।

कहेला। कहेली। म० अ०। ख० अ०। बु० मु०। दे० 'कहेला कहेली'।

कसेला–[नब्ती] एक पौधे की लकड़ी।

[फ़ा०] खोली।

कसेली–[फ़ा०] खोली।

कसैला–संज्ञा पुं० नर हिरन।

कसैली–संज्ञा स्त्री० [हिं० कसैला] सुपारी। पूगफल।

कसौटी–संज्ञा स्त्री० [सं० कषपट्टी] (१) एक प्रकार का काला भारी पत्थर जिस पर रगड़कर सोने की परख की जाती है। यह ख़ाकी भी होता है और दजला नदी में मिलता है। प्रधानतः यह काबूस नगर में भी पाया जाता है। इसके उत्तम होने की परीक्षा यह है कि जब इसमें अबाध मुख-वाष्प लगती रहे, तब इससे केशरवत् आस्वाद प्रतीत होने लगता है। इसे शरीर पर घर्षण करने से यह शरीरगत मलिनता का निवारण करता है।

हजुलल मिहक (अ०)। काष्टिपाथर (बं०)। कषपट्टिका, कषः (सं०)

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में शीतल एवं रूक्ष। स्वाद—फीका और कुछ कड़ुआ। हानिकर्त्ता—वस्ति को। दर्पघ्न—शुद्ध मधु। मात्रा—६ रत्ती तक।

गुण धर्म तथा प्रयोग—श्वासकृच्छ्रता और वृक्कशूल में इसका सेवन गुणकारी है। स्त्री-दुग्ध में घिसकर आँख में लगाने से जाला, नेत्र-पटल की कठोरता और चक्षु-व्रण में उपकार होता है। ख़० अ०। बु० मु०।

कसौंजा–संज्ञा पुं० [सं० कासमर्द, पा० कासमद] एक शिंबीवर्गीय क्षुप जो शुरू बरसात में प्रथम पानी पड़ते ही उगता है और वर्षा भर बढ़ता रहता है। बहुत बढ़ने पर यह आदमी के बराबर वा इससे अधिक ऊँचा और सीधा होता है। यह शाखा बहुल होता है। शाखायें दीर्घ मसृण और चतुर्दिक् परिविस्तृत, प्रायः जड़ के पास से वा उससे किंचित् ऊपर से निकली हुई होती हैं।

पत्तियाँ–इसकी एक सींकेमें आमने-सामने २–६ (३–५) जोड़े लगती हैं, जिनके मध्य ग्रंथियाँ नहीं होतीं हैं। यह भालांडाकार, प्रायः गोल, नुकीली और दोनों ओरसे मसृण होती हैं। इमली प्रभृति अन्यान्य उद्भिद की पत्तियों की तरह इनकी पत्तियाँ भी अवनत होकर एक के साथ और एक मिल जाती है। फूले हुए पत्र वृन्तमूल के समीप एक वृहत् वृंतशून्य ग्रंथि होती है।

पुष्प—सवृंत, क्षुद्र, पीतवर्ण का (चकवँड की तरह) और वृंत लंबोतरा होता है। ऊपरी पुष्प-स्तवक शाखांत वा टहनी के सिरे पर और निम्न पुष्प गुच्छ ३–५ तक अति क्षुद्र कक्षीय पुष्प दंड पर स्थित होते हैं। यह वर्षांत वा जाड़े के दिनों में फूलता फलता एवं हेमंत में परिपक्व फली के सहित शुष्कता को प्राप्त होता है।

फलियाँ–६-७ अंगुल लंबी, पतली और चिपटी (चकवँड़ की भाँति चिपटी नहीं) लगती हैं जो चतुर्दिक् उभड़ी हुई प्राचीर (Tumid border) द्वारा आवेष्टित होती हैं। फलियों के भीतर बीज भरे रहते हैं। बीज भूरे गोलाकार चक्रिका कृति के, $\frac{३}{१६}$ – $\frac{४}{१६}$ इंच व्यास के और $\frac{१}{१६}$ इंच मोटे होते हैं। बरसात में खाली पड़ी हुई ज़मीन में जहाँ कूड़ा-करकट पड़ा हो यह उत्पन्न होता है। इसकी गंध बुरी—खराब होती है। कसौंजे का पौधा चकवड़ और काली कसौंदी के पौधे से बहुत कुछ मिलता जुलता होता है। भेद केवल यही है कि इसके पत्ते नुकीले होते हैं और चकवड़ के गोल, इसकी फली चौड़ी और नुकीले और कुछ चिपटे होते हैं। पर चकवड़ की फली पतली और गोल होती है जिसके भीतर उर्द की तरह के दाने होते हैं।

कसौंदी के अन्य भेद

आयुर्वेदीय ग्रंथोंके अनुशीलन से यह ज्ञातहोता है कि यथासंभव उन्होंने कसौंदी के किसी अन्य भेद का उल्लेख नहीं किया है। किंतु भारतीय ओषधि विषयक पाश्चात्य लेखकों एवं हकीमों के लिखे हुये ग्रंथों में इसका विशदोल्लेख मिलता है। अस्तु, डीमक महोदय फार्माकोग्राफिया इंडिका प्रथम भाग के पृष्ठ ४२०-१ पर लिखते हैं कि कसौंदी दो प्रकार की होती है—(१) कसौंदी और (२) काली कसौंदी। उनके मत से काली कसौंदी ही आयुर्वेदोक्त कासमर्द है और इसका आदि उत्पत्ति स्थान भारतवर्ष ही है। परन्तु कसौंदी बाहर से आकर यहाँ लगी है और अब हिमालय से लेकर लंका पर्यंत सर्वत्र पाई जाती है। इसके बाद के लिखे हुये अन्य सभी अँगरेजी भाषाके ग्रन्थों में उपर्युक्त वर्णन का अनुसरण किया गया है। मुसलमान ग्रंथकार दोनों प्रकार की कसौंदी को एक ही जातिका भेद मानते हैं। तालीफ़ शरीफ़ा के अनुसार कसौंदी के बड़े भेद को कसौंदा कहते हैं। इन दोनों की पत्ती में यह भेद होता है कि पत्ती लाल मिर्च की पत्तीकी तरह और टहनियाँ काले रंग की होती हैं और यह कसौंदा की अपेक्षा सुलभ नहीं होती है। 'जड़ी बूटी मै खवास' नामक ग्रंथ में उल्लेख है कि काली कसौंदी के फूल श्यामता लिये पीतवर्ण के और पत्तियाँ श्यामता लिये गंभीर हरित वर्ण की होती हैं। यह प्रायः पर्वतों पर होती है। ब्रह्मदेश में यह बहुतायत से मिलती है। हिंदुस्तान के ऊपरी भागों में कम मिलती है। ख़ाजाइनुल अद्विया के मत से कसौंदा और कसौंदी भेद से यह दो प्रकार की होती है। इनमें कसौंदा का पेड़ अपेक्षाकृत बड़ा होता है और पत्तियाँ लंबी बादामी शकल की होती हैं। कसौंदी का पेड़ उससे छोटा और पत्ते चौड़े होते हैं। आकृति में दोनों समान होती हैं। किंचित् भेद के साथ दोनों के फूल पीले फली लंबी हुलाली शकल की लोबिये की फली की तरह, पर उससे चौड़ी होती है जिसके भीतर मेथी के दानों की तरह बीज होते हैं। किसी किसी ग्रंथ में इसकी मादा क़िस्म के भी दो भेद उल्लिखित हैं। इनमें से एक का फूल धो के फूल की तरह, पीला और दूसरीका फूल और डालियाँ काली होती हैं। इसको काली कसौंदी कहते हैं। पत्तियाँ किसी भाँति तिक्त एवं तीक्ष्ण होती हैं। अन्य ग्रंथों में कसौंदी की अन्यतम संज्ञा कसौंजी भी लिखी है। किसी किसी ने कसौंदी को कसौंजी से भिन्न माना है। तिब्बुश्शोआ में उल्लेख है कि इसकी वह पत्ती प्रयोग की जाती है जो मिठास लिये किंचित् तिक्त होती है। हिंदी-शब्द सागर के रचयिता गण इसके एक लाल भेद का भी उल्लेख करते हैं। उनके मत से लाल कसौंजा सदाबहार होता है और इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की कुछ ललाई लिये होती हैं तथा फूल का रंग भी कुछ ललाई लिये होता है। इसकी पत्ती और बीज बवासीर की दवा के काम आते हैं।

पर्य्या०—कासमर्दः, अरिमर्दः, कासारिः, कर्कशः, कालः (कालकण्टक), कनकः, कासमर्दकः (ध० नि०); राजनिघंटु में 'कर्कश' न लिखकर उसकी जगह 'जारणः' और दीपकः' ये दो नाम अधिक दिये हैं; कालंकतः, विमर्दः, कासमर्दिकः, जरणः (रा०), काशमर्दः (अ० टी०) कासुन्दः, कास्कन्दः, कसनमर्दनः, कसका (वै० निघ०) (भैष०) दीपन, तुषा (चरक), कासमर्दः, कासकः, कर्तकासघ्न, मर्दकः, कंटकंटः, (द्रव्य र०) अंजनः, नातरः (मद० नि०) कोलं (गण० नि०) कासमर्दिः (के०)-सं०। कसौंजी, कसौंजा, कसौंदी, कसौंदा, कासिंदा, गजरसाग, बड़ी कसौंदी, अगौथ-हिं०। बड़ी कसौंदी, जंगली तकला-द०। काल कासुंदा, कालकशुंदा, चाकुंदा-बं०। कैशिया आक्सिडेण्टेलिस Cassia Occi dentalis, *Linn.* कै० सेन्ना Cassia Senna, *Roxb.*-ले०। निग्रोकाफी Negro-Coffee-अं०। वेरा विरै, पोन्नविरै, नात्तम्-तकरै-ता०। कसिंध, नुति कसिंदा, पैडी तंगेडु, तगर चेट्टु, कसिविंद चेट्टु-ते०। नाट्टम्-तकर, पोन्न विरम्, पोन्न विरै, पेरविरै-मल०। डोडु-तगसे, कासविंदा, कासवदी-कना०। काल्ल कासुंदा,होडुतैकिलो-कों०।कसंदी कासोंदरी, जंगली-गु०। रान कासविंदा, कसुवै, रान ताकल-मरा०। हिकल-मरा०, गु०। पेनिलोर, रटतोर-सिंह०। मेज़लि, मैज़लि-बर०।

कसुंदी-(मारवाड़ी)। कैफेटीर डीस नेग्रेस Cafetier des Negres (फ्रां०)। गुणप्रकाशिका संज्ञा—"कासारिः"।

शिम्बी वर्ग

(N. O. Leguminosæ)

उत्पत्ति-स्थान—कसौंदी का क्षुप संसार के उष्ण प्रधान प्रदेश और भारतवर्ष में हिमालय से लेकर पश्चिम बंगाल, दक्षिण भारत, ब्रह्मा और लंका पर्यंत समग्र स्थानों में यत्र तत्र होता है।

रासायनिक संघटन—इसके बीज में वसामय पदार्थ (Olein and Margarin) कषायाम्ल, शर्करा, निर्यास, श्वेतसार, काष्ठोज (Cellulose) एक्रोसीन, कैल्सियम् सल्फेट और फास्फेट अंशमात्र, लवण, मेग्नेसियम सल्फेट लौह, सिकता (Silica), सेवाम्ल (Malic acid) और क्राइसोफेनिक एसिड—ये द्रव्य पाये जाते हैं। (फा० इं० १ भ० पृ० ५२० । इं० मे० मे० पृ० १८१)

औषधार्थ व्यवहार—पत्र, मूल और बीज।

औषध-निर्म्माण—पत्रस्वरस।

मात्रा—१-२ तोले।

मूलकल्क—२-४ आना भर।

बीज-चूर्ण—(शिशु को) १ आना भर।

मूलनिर्मित फाण्ट Infusion of root (२० मे० १)

मात्रा—१।-२॥ तोले। समग्र क्षुप का काढ़ा, (१० मे० १), मात्रा—२-६ ड्राम। बीज-चूर्ण-निर्मित क्वाथ (१० मे० १), मात्रा—२॥ तो० से १ छटाँक पर्यंत मृदुरेचक, मलावरोध में सेव्य है।

आयुर्वेदिक काफी—कसौंदी के बीज १ सेर लेकर हलकी आँच पर घी में सेंक लेना चाहिये। फिर उसको पीसकर उस चूर्ण में छोटी इलायची के बीज १ तोला, कंकोल आधा तोला, तज आधा तोला, जायफल तीन माशे, जावित्री ३ माशे, सौंफ ३ माशे, केशर १॥ माशे लेकर सबका चूर्ण करके मिला देना चाहिये। इसे काफी की तरह बनाकर पीने से बालक, जवान और बुड्ढे सबको बड़ा लाभ होता है। इसके पीने से काम काज से आने वाली सुस्ती दूर होती है। मन में प्रसन्नता पैदा होती है। हर एक कार्य करने की उमंग पैदा होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा वीर्य-स्थान शुद्ध होकर कामोद्दीपन शक्ति भी बहुत बढ़ती है। (जंगलनी जड़ी बूटी)

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कासमर्दः सुतिक्तः स्यान्मधुरः कफवातजित्।
विशेषतः पित्तहरः पाचनः कण्ठशोधनः॥

(ध० नि०)

कसौंदी—कड़ुई, मधुर तथा कफ एवं वात नाशक है और विशेषतः पित्तनाशक, पाचन एवं कंठ को शुद्ध करनेवाली है।

कासमर्दः सतिक्तोष्णो मधुरः कफवातजित्।
अजीर्णकास पित्तघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः॥

(रा० नि०)

कसौंदी—कड़ुई, गरम, मधुर कफवातनाशक, पाचन स्वर को सुधारने वाली और अजीर्ण एवं खाँसी को दूर करनेवाली तथा पित्त नाश करने वाली है।

अग्निदीपनः स्वादुश्च। (राज०)

विविध वात विट्‌द्दन्ता मूत्रवात कफेहितः।
मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः।
विशेषतः पित्तहर इत्युक्तः कासमर्दकः॥

(अग्नि० १६ अ०)

कसौंदी—अग्निदीपक और मधुर है (राज०)।

कसौंदी—नाना प्रकार के वायु एवं विट्‌दोष को नाश करती और मूत्र, वात एवं कफ में हितकारी है तथा मधुर, कफवात नाशक, पाचक और कंठ को शुद्ध करने वाली है। विशेषकर यह पित्त नाश करनेवाली है।

मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः।
विशेषतः पित्तहरः सतिक्तः कासमर्दकः॥

(सु० सू० ४६ अ०)

कसौंदी—मधुर, कफवातनाशक, पाचन, गले को साफ़ करने वाली और विशेषतः पित्तनाशक और कड़ुई है।

कासमर्दोऽग्निद: स्वर्य्य: स्वादुस्तिक्त स्त्रिदोष जत् ।

कसौंदी का शाक—अग्निप्रदीपक, स्वर को उत्तम करने वाला, स्वादिष्ट, कड़वा और त्रिदोष-नाशक है ।

पर्ण—पाके कटुवृष्यमुष्णंलघु: श्वासकासारुचिघ्नं ।
पुष्पन्तु—श्वासकासघ्नमूर्द्धवात विनाशनं ॥

(वै० निघ०)

कसौंदी की पत्ती—पाक में चरपरी, वीर्यवर्द्धक, गरम तथा हलकी है और श्वास, कास एवं अरुचि को दूर करने वाली है । कसौंदी का फूल—श्वास कास नाशक और मूर्द्धगत वायु का विनाश करनेवाला है ।

कासमर्ददलं रुच्यं वृष्यं कास विषास्रनुत् ।
मधुरं कफवातघ्नं पाचनं कण्ठशोधनम् ।
विशेषत: कासहरं पित्तघ्नं ग्राहकं लघु: ॥

कसौंदी के पत्ते—रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, मधुर, कफ वातनाशक, पाचक तथा कंठ शोधक है और कास, विष एवं रक्तविकार का निवारण करता है । विशेषकर ये कासघ्न, पित्तघ्न, ग्राही और हलके होते हैं ।

द्रव्यनिघण्टु में इसे दस्तावर, शीतल, कफ-वातनाशक और विषूचिका नाशक लिखा है । मदनपाल के अनुसार इसकी पत्ती उष्ण, वृष्य, पाचक और वातनाशक है ।

कसौंदी के वैद्यकीय व्यवहार

चरक—(१) हिक्का तथा श्वास में कासमर्द पत्र—कसौंदी की पत्ती का यूष हिक्का श्वास निवारक है । यथा—

"कासमर्दक पत्राणां यूष: ❀ । ❀ हिक्का श्वासनिवारण:" । (चि० २१ अ०)

(२) कास रोग में कासमर्द पत्र स्वरस—कसौंदी की पत्ती का रस और घोड़े की लीद (विष्ठा) का रस मधु के साथ सेवन करने से कफज कास निवृत्त हो जाता है । यथा—

"कासे कासमर्दपत्र स्वरस:—कासमर्दाश्व विट्❀ । सक्षौद्रा: कफकासघ्ना: ❀ ।"

(चि० २२ अ०)

चक्रदत्त—(१) दद्रुकिटिभ कुष्ठ में कासमर्द-मूल—कसौंदी की जड़ काँजी में पीसकर लेप करने से दद्रुकिटिभ कुष्ठ का नाश होता है । यथा—

"कासमर्दक मूलञ्च सौवीरेण च पेषितम् ।
दद्रुकिटिभ कुष्ठानि जयेदेतत् प्रलेपनात् ॥"

(कुष्ठ-चि०)

(२) वृश्चिक विषमें कासमर्द मूल—कसौंदी की जड़ को चाबकर वृश्चिक दष्ट व्यक्ति की कान में फुत्कार देने से वृश्चिक दंशन ज्वाला प्रशमित होती है । यथा—

"य: कासमर्द मूलं वदने प्रक्षिप्य कर्णे फुत्कारम् । मनुजो दधाति शीघ्रं जयति विषं वृश्चिकानां स: ॥ (विष चि०)

वङ्गसेन—वातज श्लीपद में कासमर्दमूल—कसौंदी की जड़ को गव्यरस में भली भाँति पीस कर पीने से वातजश्लीपद शीघ्र नाश होता है । यथा—

"कासमर्द शिफाकल्कं गव्येनाऽऽज्येन य: पिबेत् । श्लीपदं वातजं तस्य नाशमायाति सत्वरम्" । (श्लीपद-चि०)

वक्तव्य

चरक के "दशेमानि" में कासमर्द का उल्लेख नहीं है । विमानोक्त मधुर स्कंध में (८ अ०) "कालङ्कत" शब्द पठित हुआ है । सुश्रुत ने सुरसादि गण में कासमर्द पाठ दिया है । चरक ने शाकवर्ग में तुषा (कासमर्द) को ग्राही एवं त्रिदोषघ्न लिखा है ।

युनानी मतानुसार—

प्रकृति—उष्ण एवं रूक्ष, मतांतर से उष्ण एवं तर, इससे भिन्न इसे कोई कोई समशीतोष्ण—मातदिल बतलाते हैं । पुष्प मातदिल, जड़ उष्ण एवं तर, बीज तृतीय कक्षा के आरंभ में उष्ण और रूक्ष तथा पत्र द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है । स्वाद—तिक्त एवं तीक्ष्ण वा हरायँध । हानिकर्त्ता—उष्ण प्रकृति वालों में शिरःशूल उत्पन्न करती है । दर्पघ्न—बूनी

और गुल नीलोफर (ख़० अ०), कालीमिर्च और शुद्ध मधु (बु० मु०)। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरे की। प्रधान कार्य—ज्वरघ्न।
मात्रा—१ तो० तक। बीज, १ माशा।

गुण, कर्म, प्रयोग—सभी प्रकार की कसौंदी उष्ण और तर होती है। किसी किसी ने इसे मातदिल—समशीतोष्ण लिखा है। मस्तिष्क से दोषों को नीचे की ओर लाती है। इसकी फली को भूनकर खाने से बिच्छू का ज़हर नाश होता है। यदि इसकी (ताजी) फली और पत्ती को पीसकर और समान भाग गेहूं के आटे में मिलाकर रोटी पकाकर तिल के तेल के साथ खावे तो रतौंधी का नाश होता है। बीज या फूल पीसकर इसकी कतिपय वटिकायें प्रस्तुत कर निगल जायें और उसके थोड़ी देर बाद क़ै करने से शीर के खाये हुए बाल—मूये शीरदादा (इसमें बैठने से पेट में दर्द होता है और यदि रोगी रेंड के पत्ते पर पेशाब करता है, तो वह पत्ता पारा हो जाता है। उन गोलियों में लपट कर निकल आते हैं) और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। और यदि वह बाल गोलियों में लपटकर नहीं निकलेंगे, तो रोगी का प्राण न बचेगा। कसौंदी की जड़ की सूखी छाल को पीसकर चूर्ण बारीक करें। इसमें से ७ माशे (दो दिरम) चूर्ण को शहद में मिलाकर गोली बनायें और इसे असर के नमाज के समय खाकर ऊपर से एक प्याला गोदुग्ध पी लेवें। रात को भी वैसे ही एक वटी मुँह में लेकर स्त्री-प्रसंग में तल्लीन हो जायँ। इससे अत्यंत स्तंभन प्राप्त होगा। इसका लेप दद्रु नाशक है। (ता० श०)

इसकी ताजी जड़ चंदन के साथ पीसकर लगाने से दाद आराम होता है। चौपायों को कसौंदी खिलाने से उनकी खाँसी मिटती है। (म० अ०)

१०॥ माशे कसौंदी के पत्ते और ३॥ माशे कालीमिर्च—इनको पानी में पीसकर पियें और लवणवर्जित आहार का सेवन करें। इतनी ही दवा इसी प्रकार प्रति दिन निरंतर एक सप्ताह पर्यंत सेवन करते रहने से फिरंग रोग नाश होता है। (बदीउल् नवादिर)।

यदि कोई विषैली चीज़ भी हो, तो यह उसके विष का निवारण करती है और विकृति दोषों को सम करती है। यह कास एवं जलोदर का नाश करती और सूजन उतारती है। इसकी जड़ का प्रलेप दद्रु और व्यंग नाशक है। यह निर्विषैल है। (म० मु०)

तज़किरतुल् हिंद में उल्लिखित है—इसके कोमल पत्तों की तरकारी पकाकर खाने से ज्वर, वायु, कफ, उदर कृमि, तर व ख़ुश्क खाँसी और दमा इनका नाश होता है। यह जठराग्निवर्द्धक, लघु, पाक के समय तीक्ष्ण होती है तथा तृषा एवं दाह मिटाती है। इसके सर्वांग को आटा छानकर गंडूष करने से दाँत दृढ़ होते हैं। इसके क्वाथ का कवल (ग़रारः) धारण करने से स्वर साफ़ हो जाता है। यह जलोदर और कफ ज्वर नाशक है। इसके ताज़े पत्ते उष्ण स्नानागार में बिछाकर उस पर जलोदरी एवं संधिशूल पीड़ित को लेटाने से उपकार होता है। जिसके सर्वांग में वायु परिपूर्ण हो, उसके लिये भी यह उपाय उपकारी प्रमाणित होता है। इसके पत्तों को हलका सा जोश देकर छान लेवें और उसमें शहद मिलाकर दो रत्ती रसकर्पूरवटिका (हब्ब रसकपूर) के साथ सेवन करायें। यह संधिशूल में लाभकारी है। अन्य उपयोगी औषधियों के साथ संधिवात, गृध्रसी, कूल्हों के जोड़ों के दर्द, गर्भाशय शूल, शिरःशूल, वायु जन्य ख़फ़कान प्रभृति रोगों में कसौंदी का सेवन गुणकारी होता है। इसके पत्तों का रस नाक में सुड़कने से नथुनों का अवरोध मिटता है। शिरो जात खालित्य के विस्फोटकों पर, इसके पत्ते पीसकर लेप करने से वे सूख जाते हैं। इसका रस दूध में मिलाकर कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है। इसके फूल पानी में पीसकर निरंतर एक सप्ताह पर्यंत पीने से रतौंधी दूर होती है। अपस्मारी को इसका फूल सूँघने से लाभ होता है। इनको सुखा-पीसकर नस्य लेने से भी मृगी के रोगी को उपकार होता है। इसके लेप से रतौंधी और कफज नेत्राभिष्यंद आराम होता है। इसके बीज भूनकर खाने से दस्त बंद हो जाते हैं और बिना भुने खाने से दस्त आते हैं। कसौंदी सभी प्रकार के उष्ण एवं शीतल विषों का नाश करती है।

ख़जाइनुल् अदविया के मतानुसार कसौंदी के अवयव रक्तविकार नाशक हैं; कंठ रोगों को लाभकारी हैं, वाजीकरण और ग्राही (क़ाबिज़) हैं; अर्श; अत्यधिक मलप्रवृत्ति और कफज वायु (रियाह) को गुणकारी हैं। यदि कोई विषैली वस्तु भक्षण की हो, तो यह तज्जात विष का निवारण करती है। यह दोष वैषम्य मिटाती, ज़हरबाद का नाश करती, और सूजन उतारती है। डेढ़ तोले कसौंदी के पत्तों को, ११ अदद कालीमिर्चों के साथ सौंफ के अर्क में पीसकर एक सप्ताह पर्यंत जलोदरी को पिलाने से पूर्ण आरोग्य लाभ होता है।

इससे भूख बढ़ जाती है। किंतु अवसन्नताकारक द्रव्य वर्जित हैं। दद्रु और व्यंग व झाँई पर नीबू के रस में पिसा हुआ इसका प्रलेप गुणकारी है। यह ऐसे नजला को जो मस्तिष्क से कण्ठ की ओर गिरता हो, दूर करती है। इसके पीने से स्वर शुद्ध होता है। इसकी ताजी अधपकी फली भून कर कुछ दिन खाने से कृच्छ्र श्वास-तंगी श्वास में आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। बिच्छू का विष-प्रभाव शेष रह जाने पर, ३-३ माशे इसके बीज कुछ दिन खाने से बड़ा उपकार होता है। उक्त औषधि वृश्चिक विष का अगद है। इसकी पत्तियों का रस आँख में लगाने से रतौंधी दूर होती है। इसकी जड़ की छाल पीसकर बिच्छू के काटे स्थान पर प्रलिप्त करने से तज्जन्य विष का निवारण होता है। कसौंजी के बीज ३॥ माशे और कालीमिर्च १॥। माशे इनको पीसकर खाने से सर्पविष नाश होता है। कसौंदी के बीज को बारीक पीसकर नेत्र के भीतर लगाने से भी उक्त प्रभाव होता है। कसौंदी के उपयोग से कास में बहुत उपकार होता है। दाद पर इसकी जड़ कागजी नीबू के रस में पीसकर लगाने से उपकार होता है। नेत्राभिष्यन्द में नेत्रके ऊपर इसके पत्तों की टिकिया बाँधने से लाभ होता है। तीन चार साल पुराने कसौंदी के चुप की जड़ मुख में स्थापित करने से स्वर शुद्ध हो जाता है। इसको चार कालीमिर्चों के साथ पीसकर कंठमाला पर बाँधना लाभकारी होता है। इससे सत्वर आरोग्य लाभ होताहै। दो-तीन पत्ते कसौंदी के, दो काली मिर्च के साथ पीसकर पीने से कामला-यर्कान आराम होजाता है। (ख० अ० ५ खं० पृ० ४४६-५०)

नव्यमत

आर० एन० खोरी—कासमर्द का समग्र चुप विरेचक रसायन और कफ निःसारक है, यह योषापस्मार और कुकुरखाँसी में सेव्य है. इसके बीज विरेचक है और शिश्वाक्षेप में बीजचूर्ण गो दुग्ध वा स्त्री-दुग्ध के साथ सेव्य है। मूल विषम-ज्वर प्रतिषेधक है एवं ज्वर तथा वातशूल (Neuralgia) रोग में उपयोगित होता है। दद्रु, कण्डू, विचर्चिका और व्यंग (Pityriasis) इत्यादि सर्व प्रकार के चर्म विकारों के लिये इसका समग्र चुप परमहितकारी है। स्फोटक एवं पृष्ठ व्रण वा प्रमेहपिड़िका (Carbanclen) में भी इसका प्रलेप करते हैं (मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया —२य खं० २०१ पृ०)

डीमक—फ्रांस के अफ्रिकन उपनिवेशों में इसका बीज हबशियों का क़हवा (Negro coffee) नाम से अभिहित होता है। वहाँ तथा पश्चिमी भारतीय द्वीपों में ज्वरघ्न रूप से विशेषतः इसका टिंक्चर (zij to Ozij of Malaga wine) व्यवहार किया जाता है अमेरिका में रहनेवाले भारतीयगण इसकी जड़ से बने फाँट (Infusion) को नाना प्रकार के विषों का अगद मानते हैं। इसके समग्र चुप का क्वाथ योषापस्मार की प्रख्यात औषधी है और यह आक्षेप को दूर करता एवं आन्त्रस्थ वायु का उत्सर्ग करता है इसके बीजों को भूनने से तज्जात विरेचक सत्व नष्ट होजाता है और उनका स्वाद काफ़ी की तरह होता है। गबीना में इसकी जड़ ज्वर प्रतिबंधक रूप से व्यवहार की जाती है। इसका काढ़ा प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन किया जाता है। विसर्प और स्थानीय शोथों पर इसकी पत्ती पीसकर लगाई जाती है। दोनों प्रकार की कसौंदी सारक होती है। इसकी पत्ती की मात्रा लगभग ६ मा० के होती है। दो से ६ रत्ती की मात्रा में कसौंदी के बीजों को १ तोला (३ ड्राम)

गोदुग्ध वा स्त्री-दुग्ध में पीसकर गरम करके वस्त्रपूत कर लेते हैं। इसे शिश्वालेप निवारणार्थ प्रतिदिन दिनमें एक बार देते हैं या उससे अधिक तर मात्रा (६ मा० वा १॥ ड्राम) में उसकी माता को अथवा स्तन्यदान करनेवाली धाय को देते हैं। सनाय की भाँति इसका भी विरेचनीय गुण भाग स्तन्य में आ जाता है। सर्पदंश में इसकी जड़ें कालीमिर्च के साथ पीसकर व्यवहार की जाती है। (फा० इं० १ भ० पृ० ५२१)

नादकर्णी—कसौंदी की पत्ती जड़ और बीज रेचक है। इसकी जड़ मूत्रल और विषमज्वर प्रतिषेधक भी मानी जाती है। कसौंदी के भूनकर पिसे हुये बीज काफ़ी-कहवे की जगह व्यवहार किये गये हैं। भूनने से इनका औषधीय गुणधर्म विशिष्ट होजाता है। बीज कास (Cough) और कुक्कुर कास में भी उपकारी है। इसकी पत्तियों की मात्रा ४॥ माशे (६० ग्रेन) है। साधारण क्षतों, कण्डू, फोस्का (Blisters) प्रभृति पर इसके बीज, और पत्तियों को पीसकर उसमें स्नेह (Grease) मिलाकर लगाते हैं। फ्रांस और पश्चिमी भारतीय द्वीपों में ज्वरनाशक रूप से इसके बीजों का टिंक्चर वा मद्य व्यवहार किया जाता है। इसकी जड़ का फांट नाना विषों का अगद स्वरूप माना जाता है। यह ज्वर एवं वातजशूल (Neuralgia) में सेव्य है और (Incipient) में भी उपयोगी है। चर्म रोगों में इसका प्रलेप करते हैं। योषापस्मार जन्य आक्षेप निवृत्यर्थ इसकी जड़ पत्ती और फूलों का क्वाथ बहुमूल्य औषधि है। यह अजीर्ण वात स्वभावी स्त्रियों के उदराध्मान को भी उपकारी होता है। (इं० मे० मे० १८१–२)

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वर निवारक, विरेचक और सर्पदंश में उपयोगी मानी जाती है।

कायस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प विष में निरुपयोगी है।

कसौंदी की जड़ को मुंह में चबा-चबाकर जिसको बिच्छू ने काटा हो उसके कान में बार-बार फूंक मारने से विष-वेदना शांत हो जाती है। (जंगलनी जड़ी बूटी)

अन्य मत

(१) कसौंदी का पंचांग लाकर जलावें और राख को पानी में घोलकर स्थिर होने के लिये रख देवें। फिर ऊपर का पानी लेकर पकावें, जलांश जल जाने पर उतार लेवें और खुरचकर क्षार रख लेवें, पुनः काला नमक और शुद्ध थामलासार गंधक दोनों को २० तोले बहुगुणी (नै घास) के मुक्तत्तर शीरे से खरल करें। जब सारा रस सूख जाये तब उसमें समभाग पूर्वोक्त क्षार मिश्रित कर रखें।

मात्रा—एक रत्ती तक। यह रक्तविकार में असीम गुणकारी है। कुष्ठ और फिरंग के उपरांत यदि रक्तविकार से नाना तरह के कष्ट उठ खड़े होते हों तो इसका उपयोग अतीव लाभकारी सिद्ध होगा।

(२) कसौंदी की जड़ एक तोला, कालीमिर्च १३ दाने, दोनों को पानी में पीसकर ज्वारके दाना प्रमाण गोलियाँ प्रस्तुत कर लेवें। जिस स्त्री के बच्चे मसाने रोग से मर जाते हों उसे गर्भधारण के तीसरे मास से एक गोली प्रातःकाल और एक सायंकाल मक्खन के साथ देना आरम्भ करें। प्रसवोत्तर शिशु को एक गोली दैनिक देते रहें। इससे बालक मसान रोग से सुरक्षित रहेगा।

(३) दो-तीन दिन तक इसके काढ़े में अवगाहन करने से संक्रमण शील कण्डू के जीवाणु नष्ट प्राय हो जाते हैं और रोगी आरोग्य लाभ करता है।

(४) शोषरोगाक्रांत होकर मरनेवाले शिशुओं को इसके काढ़े से स्नान कराना लाभकारी होता है। भारतीय ललनायें प्रायः इसे जानती हैं और समयानुकूल इसका उपयोग भी करती हैं।

(५) वृश्चिक दंश पर इसकी जड़ घिसकर प्रलेप करने से यह विष का शोषण करता है।

(६) मकड़ी फर जाने और भिड़ वा ततैया के दंश पर इसकी पत्ती मल देने से अवश्यमेव उपकार होता है।

(७) इसके सुखाये हुये फूलों के महीन चूर्ण का नस्य कीड़े और मृगी के दौरे को रोक देता है।

(८) इसके भुने हुये बीजों में समभाग चीनी मिलाकर इसमें से ३ माशे खिलाने से अतिसार और प्रवाहिका का नाश होता है।

(९) अर्द्धावभेदक में कसौंदी के रस—उसारे का नस्य उपकारी होता है।

(१०) सूजन पर इसके पत्तों की टिकिया बाँधने से यह उसे पका देती और उसके उपरांत फोड़कर मवाद निकाल देती है। फिर गोघृत के साथ लगाने से उसका पूरण करती है।

(११) दूध में इसका उसारा मिलाकर नाक में प्रधमन करने से मस्तिष्क गत कृमियाँ निःसृत होजाती हैं। इसी प्रकार इसे कान में टपकाने से कर्णशूल मिटता है।

(१२) योषापस्मार में इसका काढ़ा अतिशय गुणकारी होता है। वातज दोषों के निवारण के अद्वितीय है।

(१३) रसकपूर को इसके उसारा में एक मास पर्यंत आलोड़ित करके महीन पीसकर रख लें। इसमें से $\frac{1}{4}$ रत्ती औषध दही में मिलाकर दो दिन खिलाकर दो दिन छोड़ देवें। इसी प्रकार दो दो दिन खिलाकर दो-दिन छोड़कर सेवन करते रहें। पूरे दो सप्ताह के सेवन से फिरंग रोग समूल नष्ट होता है। इससे मुँह नहीं आता। यह स्मरण रखना चाहिये कि दिन में केवल एक वार प्रातः काल सेवन करायें।

(१४) कसौंदी के बीज १५, काली मिर्च २ दाने, दोनों को घोट-पीसकर सुबह-शाम पिलाने से रक्तार्श सम्यक् रूप से नाश होता है।इससे बहुशः रोगी आरोग्य हुये हैं।

(१५) इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से सूती कीड़े, कद्दूदाना और केचुए प्रभृति उदरस्थ कृमि नष्ट होते हैं। इसके बाद कोई रेचन देकर कोष्ठ शुद्धि कर देवें।

(१६) बारीक पिसे हुये कसौंदी के बीज १५ तो०, पीपल ३ मा०, काला नमक ३ मा० इनको पानी में पीसकर चने प्रमाण की वटिकायें प्रस्तुत कर लेवें। यह कृच्छ्रश्वास और कफज कास को लाभकारी है।

(१७) यदि मसूढ़े ढीले पड़ गए हों और दाँत से रक्त स्राव होता हो, तो इसके समस्त छुप के काढ़े से कुल्लियाँ करने से उपकार होता है। (जड़ी बूटी मै ख़वास)

(१८) इसके पत्र, मूल और बीज विष दूर करते हैं और विकृत दोषों का उत्सर्ग करते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से कुकुर खाँसी आराम होती है।

(१९) इसकी जड़ का फांट वा क्वाथ पिलाने से कई तरह के विष उतरते हैं।

(२०) इसके संपूर्ण अवयव सारक हैं। इसकी जड़ का फांट मूत्रवर्द्धक है।

(२१) इसके पत्तों को क्वथित करके अथवा भिगोकर पीने से कण्डू एवं त्वचा के अन्यान्य रोग विनष्ट होते हैं। इसके पत्तों का प्रलेप भी इन रोगों को दूर करता है।

(२२) इसके पत्तों को पीसकर सद्योजात क्षत पर लगाने से उसका फौरन पूरण होता है।

(२३) इसके पके बीजों को पीसकर दाद पर लेप करते हैं।

(२४) खुजली पर भी इसके बीजों को पीस कर लगाते हैं।

(२५) इसके बीजों को भून-पीसकर इसका क्वाथ करें, इसे अकेला या कहवे के साथ पिलाने से कुनैन की तरह प्रभाव करता है।

(२६) इसके बीजों का काढ़ा पिलाने से पसीना आता है।

(२७) इसके बीजों को काँजी के साथ पीस-कर लेप करने से दद्रु, कुष्ठ प्रभृति चर्म रोग नाश होते हैं।

(२८) शेर की मूछों के बालों का जो ज़हर चढ़ जाता है, उसे उतारने के लिये इसके पत्तों का रस तीन दिन पिलाना चाहिये।

(२९) इसकी जड़ कागज़ी नीबू के रस में घिसकर लगाने से दाद जाता रहता है।

(३०) इसकी जड़ को मुख में चाबकर,उलटे कान में फूँक देने से बिच्छू का ज़हर उतरजाता है।

(३१) इसके पत्र और कालीमिर्चों को पीस-कर लेप करने से कंठमाला मिटती है।

(३२) इसके फल खिलाने से या इसके बीज पीसकर लेप करने से बिच्छू का ज़हर उतरता है।

(३३) इसकी जड़ ३॥ माशे, कालीमिर्च का चूर्ण १॥। माशे—इसके फँकाने से सर्पादि का विष उतर जाता है।

(३४) इसके बीजों को पानी में पीसकर नेत्रों में लगाने से भी सर्प विष नष्ट हो जाता है।

(३५) इसके दो या तीन पत्ते और २ या ३ कालीमिर्च—इनको पीसकर पिलाने से कामला (यर्कान) रोग का नाश होता है।

(३६) इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को मधु में मिलाकर वटी प्रस्तुत कर बलानुसार १ से ४ माशे तक खिलाकर ऊपर से दूध पिलाने से वीर्य गाढ़ा होता है और शुक्र की वृद्धि होती है।

(३७) इसके और मूली के बीजों को गंधक के साथ पीसकर लेप करने से श्वित्र का नाश होता है।

(३८) इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से हिचकी दूर होती है। इससे श्वास रोग भी जाता रहता है।

(३९) इसके पत्तों के ७ माशे रस में कुछ मधु मिलाकर नेत्र में टपकाने से नेत्रशूल दूर होता है।

(४०) इसकी ताजी फलियों को सेंक कर खिलाने से खाँसी आराम होती है।
(अनुभूत चिकित्सा सागर)

(४१) इसके नरम पत्तों की तरकारी बनाकर खिलाने से सूखी और गीली खाँसी; पेट के कीड़े और दमा नष्ट होते हैं।

(२) काली कसौंदी—कसौंजे की जाति का एक क्षुप जो सरल, शाखाबहुल और मसृण होता है। पत्तियाँ ६–१२ जोड़े, भालाकार वा (Oblonglancedate) और नुकली होती है। पत्र वृन्तमूल के समीप एक ग्रंथि होती है। पुष्पस्तवक शाखांत वा कक्षीय; पुष्प अल्प होते हैं; उपर्युक्त पुष्पदल वा पँखड़ी (Retuse) होती है। फली दीर्घ, क्षीण (Linear) समस्त (Turgid) एवं मसृण होती है। इसमें बहुत से बीज होते हैं जो मटर की तरह अलग अलग कोषों में पड़े होते हैं। फूल मध्यम आकृति के और पीले होते हैं। इसके समग्र क्षुप से एक प्रकार की बहुत ही अप्रिय दुर्गंधि आती है और देखने में यह कुछ कुछ नील वर्ण का मालूम पड़ता है। इसकी जड़ तन्तुबहुल एवं काष्ठीय वा कड़ी होती है। मूलत्वक् कुछ कुछ काले रंग का होता है और देखने में ऐसा प्रतीत होता है मानो जलकर काला पड़ गया हो। इससे कस्तूरी वत् तीक्ष्ण गंध आती है। यह खाली पड़ी हुई ज़मीन में बरसात में उगती है और नवम्बर के महीने में फूलती है। इसका क्षुप कई वर्ष तक रहता है और बढ़कर काफी बड़ा हो जाता है।
(डीमक—फा० इं० १ भ० पृ० ५२१–२)

पर्य्याय—

काली कसौंदी—

बास की कसौंदी, कसूंदा–हिं०। सड़ी कसौंदी, जंगली तकला–द०। पोन्नाविरै, पिरिय तकरै, पेड़ा-विरै–ता०। कास-मर्द्दकमु, तगर चेट्टु, पैडितंगेडु, नुतिकशिंध–ते०। पोन्नाम-टकर, पोन्न वीरम्–मल०। कालकोसंदि–बं०। ऊरु-तोर–सिंगा०। कैसिया सोफेरा Cassia Sophera, *Linn.* सेन्ना सोफेरा। Senna Sophera, *Roxb.* ले० S. Esenlenla C. Coromenendeabna S. Purpurea Round-pod cassia–अं०। कण्टङ्कल–मरा०। कुआडिके–गु०। डोडुतगाके–कना०। होडुतैकिलो–को०।

शिम्बी वर्ग
(*N.O. Leguminosae.*)

उत्पत्ति स्थान—संसार के समस्त उष्ण प्रधान प्रदेश और भारतवर्ष में हिमालय से लेकर लंका पर्यंत सर्वत्र इसके क्षुप देखने में आते हैं।

रासायनिक संघटन—पत्ती में कैथार्टीन, रंजक पदार्थ और लवण होता है। जड़ में एक राल और एक तिक्त अक्षारोदीय सत्व होता है।

औषधार्थ व्यवहार—मूल, मूलत्वक्, बीज और छाल।

औषध निर्म्माण—फाण्ट (Infusion) चूर्ण, प्राष्टर और अनुलेपन (Ointment)।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—पूर्वोक्त नं० १ के अनुसार। वृंदमाधव, योगरत्नाकर, भैषज्य रत्नावली और चक्रदत्त के मतानुसार इसके पत्तों का

रस कान में टपकाने से बिच्छू के ज़हर में लाभ होता है।

युनानी मतानुसार—

सर्प-दष्ट व्यक्ति को काली कसौंदी की जड़ कालीमिर्च के साथ पीसकर पिलाने से बहुत उपकार होता है। (म० अ०)

अतिसार युक्त जलोदर में काली कसौंदी की जड़ को कागजी नीबू के रस में पीसकर प्रलेप करने से बड़ा उपकार होता है। (ख़० अ०)

१॥ तोला कसौंदी नीबू के रस में पीसकर पिलायें और अरहर (तूअर) की दाल और ख़शका बिना नमक खिलायें। इससे भी उक्त रोग में बहुत लाभ होता है। काली कसौंदी की जड़ नीबू के रस में पीसकर आँख में लगाने से आँख की ज़र्दी जाती रहती है। (ख़० अ०)

नव्यमत

डीमक—व्यंग (Pityriasis) और विचर्चिका जनित चकत्तों पर काली कसौंदी और मूली के बीजों को गंधक और पानी के साथ पीस कर लगाते हैं। इसी हेतु पिष्ट कासमर्दमूल एवं चंदन भी काम में आता है।

(फ्रा० इं० १ भ० पृ० ५२१)

नादकर्णी—त्वक् पत्र और बीज तीव्र रेचक (Cathartic) है, जड़ कफनिःसारक ख्याल की जाती है। पत्तियाँ कृमिघ्न और शोधक (Antiseptic) हैं। चंदन को कसौंदी के पत्तों के रस में पीसकर बनाया हुआ वा कसौंदी पत्र-स्वरस में नीबू का रस मिलाकर बनाया प्लस्तर (Plaster) अथवा कसौंदी-मूल को काँजी में पीसकर वा इसके बीजों के चूर्ण का बना प्रलेप दद्रु एवं रजक कण्डू (Dhobi itch) की अमोघ औषधि है। कास में कफनिःसारक रूप से इसका अंतः प्रयोग होता है। हिक्का और श्वास प्रभृति रोगों में इसकी पत्ती का क्वाथ वा फांट (Infusion) उपयोग में आता है। सर्पदंश में इसकी जड़ कालीमिर्च के साथ दी जाती है। बहुमूत्र (Diabetes) में इसकी छाल का फांट वा बीजों का चूर्ण मधु के योग से देने से उपकार होता है (डूरी)। इसके बीज एवं पत्र और गंधक को एकत्र पीसकर वा इसकी छाल पीसकर उसमें मधु मिलाकर दद्रु एवं विचर्चिका और व्यङ्ग (Pityriasis) के चकत्तों पर अनुलेपन करते हैं। इससे आर्द्र कंडू और दद्रु भी आराम होते हैं।

इसमें उक्त गुण की विद्यमानता इसमें तथा (Cassia) के अन्य भेदों में पाये जाने वाले क्राइसोफेनिक एसिड के कारण होती है। सूज़ाक की उग्रावस्था के उपरांत की दशा में इसकी ताजी पत्तियों द्वारा निर्मित फांट की उत्तरवस्ति उपकारी होती है और मुख द्वारा देने से इसका कृमिघ्न प्रभाव होता है। फिरंगीय क्षतों के प्रक्षालनार्थ इसका बहिर प्रयोग होता है। कान में कीड़े घुसने पर इसे कान में टपकाते हैं। आमवातिक और प्रादाहिक ज्वरों में भी इसकी पत्तियों का फांट (Infusion) व्यवहार में आताहै। कामला (Jaundice) रोग में यह शर्करा के साथ मिश्रित कर व्यवहार में लाते हैं। प्रस्राव (मूत्र) की अल्पता में समग्र क्षुप का काढ़ा उपकारी बतलाया जाता है। कफनिःसारक रूप से उग्र कासमें उपकार होते हुये पाया गयाहै।

(इं० मे० मे० पृ० १८३)

कर्नल चोपरा के अनुसार यह सर्पदंश में उपकारी मानी जाती है। परन्तु कायस और महस्कर के मतानुसार इसके पत्ते सर्प और बिच्छू के विष के लिये निरुपयोगी है।

जड़ी बूटी मै खवास—काली कसौंदीके बीज और पत्ते ऽ। और चीनी ऽ॥ इनका यथाविधि शर्बत तैयार करके इसमें दो रत्ती प्रति मात्रा के हिसाबसे पोटासी आयोडाइड और $\frac{१}{३०}$ ग्रेन सुरासार घटित रसकपूर विलीन करके रखें। मात्रा १ तोला शर्बत सुबह शाम किंचित् जल के साथ। यह संधिवात और फिरंग के लिये लाभकारी है।

एक तोला कसौंदी की पत्ती को साधारण जोश देकर वस्त्रपूत करलें। फिर उसमें २ तोला शहद और $\frac{१}{४}$ रत्ती रस कपूर मिलाकर उपयोगित करें, इससे भी उपर्युक्त रोगों में बहुत उपकार होता है।

काली कसौंदी सर्पदष्ट का अगद है और वर्षों से इसका परीक्षण हो रहा है। ब्राह्मी लोग इसकी ताजी लकड़ी लेकर सर्प के पास से निर्भयतापूर्वक निकलते हैं। जहाँ सर्प बहुतायत से हों वहाँ इसकी बड़ी नई टहनी हाथ में लेकर चले जाँय, सर्प भाग जावेगा।

यदि सर्प ने काट लिया हो, तो इसकी पत्ती १ तोला वा बीज ४ माशे, कालीमिर्च तीन दाने, पानी में एकत्र पीसकर कई बार पिलायें, इससे विष जन्य प्रभाव नाश हो जायेगा। दष्ट स्थान पर तुरत इसकी पत्ती का भुड़ता बाँधने से यह विष को अभिशोषण कर लेता है। इसकी जड़ घिसकर लगाने से दाद और चंबल आराम होता है। इसका चूर्ण वीर्यस्तम्भक, शीघ्रपतन निवारक और स्वप्नदोषनाशक है। इसकी जड़ नीबू के रस में घिसकर लगाने से आँख का काँवर (कँवल, यर्कान) दूर होता है। शोथ (इस्तिस्क़ा लह्मी) शोथ विशेष (सूयुल् क़िन्यः) यकृदावरोध, यकृत काठिन्य निवारणार्थ एवं आंतरिक रूह (अरूह बातिनी) के उपकारार्थ एक तोला इसकी जड़ तीन दाने कालीमिर्च के साथ पीसकर पिलायें। आँवलासार गंधक को इसकी पत्ती के रस में बारीक पीसकर एक कपड़े पर फैलाकर आमवात रोगी के विकारी संधियों एवं अन्य स्थलों पर इसे चिपका देवें और ऊपर से १५ मिनट तक स्वेदन करें इससे विकारी द्रव्य विलीन होते हैं, पीड़ा कम हो जाती है एवं नाड़ियों को बल प्राप्त होता है। इससे स्रोतों का उद्घाटन होता है और सूजन उतरजाती है। उक्त वनस्पति पुरातन कास के लिये अतीव गुणकारी है। यहाँ तक कि चातुष्पद जीवों के कास तक का निवारण करती है।

इसके फूल पकाकर खाने के काम में आते हैं। सूजाक़ की प्रथमावस्था में इसके पत्तों को काली-मिर्च के साथ पीसकर पिलाना चाहिये। फिरंगीय क्षतों पर इसके पत्तों का रस लगाने से उपकार होता है। इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से उदरस्थ कृमि नष्ट होते हैं। (अनुभूत चिकित्सा सागर)

कसौंदी द्वारा प्रस्तुत खनिज भस्में—

(१) कृष्णाभ्रक—पुराने वैद्य-हकीम प्रायः कसौंदी के द्वारा कृष्णाभ्रक की भस्म प्रस्तुत करते थे। जो राजयक्ष्मा और कास में गुणकारी होती है।

(२) पारदभस्म—इसके उसारा वा रस में पारे को आलोड़ित करने से इसके कण पुनः आपस में नहीं मिल सकते हैं। अर्थात् पारे को एक सप्ताह पर्यन्त इसके उसारे में आलोड़ित करने से वह चूर्ण रूप में परिणत होजाता है और उसके अवयव रासायनतः परस्पर इस प्रकार संघटित नहीं हो सकते कि पुनः पूर्ववत् पारदीय रूप में प्रकट हों, प्रत्युत पारद का वह चूर्ण रूप एक प्रकार स्थिर सा हो जाता है। इसी प्रकार एक सप्ताह पर्यन्त और आलोड़ित करने से, पारा भस्म होजाता है। कोई-कोई रसायनविद् पारद वटिका को मृदुअग्नि पर रखकर कसौंदी के उसारे का चोआ देते हैं और उसी के उसारे में पकाते हैं। इससे उक्त पारदीय गोली ऐसी दृढ़ एवं घन स्थिर होजाती है कि वह फिर साधारण अग्नि पर पृथक् नहीं हो सकती है।

(३) शीसक भस्म—कसौंदी से सीसाभस्म होजाता है। इसकी विधि यहहै—सीसे के बुरादा को तीन दिन तक कसौंदी के रस में खरल करके कसौंदी के पावभर पत्तों की दो टिकियों के भीतर रखकर पांच सेर उपलों की अग्नि देवें। शीतल होने पर निकाल कर कसौंदी की पत्ती की राख को हवा देकर उड़ा देवें, फिर सीसे की भस्म को उसी के रस में पुनरपि एक मास पर्यन्त आलोड़ित करके टिकिया बनाकर शराब संपुट कर पाँच सेर उपलों की दूसरी आग दे देवें। श्यामता लिये भस्म तैयार होगी।

मात्रा और सेवन-विधि—एक रत्ती यह भस्म गाय के मसका के साथ अथवा किसी अन्य उपयुक्त अनुपान के साथ सेवन करें यह द्वितीय कक्षा के सूजाक तथा अन्य रोगों में भी लाभकारी है।

(४) प्रवालभस्म—पाँच तोले प्रवाल को महीन पीसकर उसमें पंजाज़ी (कसौंदी) का मुक़त्तर शीरा थोड़ा-थोड़ा डालकर यहाँतक खरल करें कि पूरा १ सेर शीरा अभिशोषित होजाय। घोंटने में इस बात का ध्यान रखें कि शीरा डाल कर खरल पड़ा न रहने देवें, प्रत्युत आलोड़ित

करते रहें। जब सम्पूर्ण शीरा अभिशोषित हो जाय, तब उसकी टिकिया बनाकर, बड़े प्यालों में रखकर पाँच सेर उपलों की अग्नि देवें, अत्यंत श्वेतवर्ण की भस्म प्रस्तुत होगी। इसे महीन पीसकर सुरक्षित रखें।

मात्रा—एक रत्ती।

गुणधर्म तथा प्रयोग—प्रारंभिक कृच्छ्रश्वास में उपयुक्त अनुपान के साथ इसका उपयोग करने से चमत्कारिक गुण प्रदर्शित होगा। कैसा ही कष्टप्रद कास हो, इससे तुरंत शांत होजाता है। बँधा हुआ कफ सरलतापूर्वक निःसरित होकर कृच्छ्रश्वास जन्य कष्ट का निवारण होता है। अस्सी वर्षीय जरा जरठ व्यक्ति को रात-रात भर नींद नहीं आती और खाँसते-खाँसते बेदम हो जाते हैं इसके उपयोग से वे रात्रि भर सोते रहे हैं। यह विलक्षण वस्तु है और अवश्य आदरणीय है। (जड़ीबूटी मै खवास)

कसौंजी–संज्ञा स्त्री० दे० "कसौंजा"।

कसौंदा–संज्ञा पुं० दे० "कसौंजा"।

कसौंदी–संज्ञा स्त्री० दे० "कसौंजा"।

क़र्अः–[अ०] (१) कासा। प्याला। (२) चत का रक्त परिपूर्ण होना।

क़स्त्रातो का अर्गाला–[सिरि०] बख़ुर मरियम।

कस्ऊम–[हमीरी भाषा] गदहा। गर्दभ।

कस्करीला, क़स्क़रीला–[स्पेन] छोटा छिलका। दे० "कैस्करीला"।

कस्करेली कॉर्टेक्स–[ले० Cascarillae Cortex] क्रोटन ईल्यूटेरिया नामक अमेरिकन वृक्ष की छाल। क़श्रुल् अंबर। दे० "कैस्करीला"।

कस्करैला–दे० "कस्करीला"।

क़स्क़स–[अ०] शेर।

कस्कस–[?] इंद्रायन का फल।

क़स्क़ामूर–[यू०] पुदीना।

कस्कारा, क़स्क़ारः–[स्पेन] छाल। क़श्र।

क़स्क़ास–[अ] (१) अजमोदे की तरह का एक प्रकार का उद्भिज्ज। पौधा। (२) शेर। (३) भूख। क्षुधा। भूख की अधिकता।

कास्कयः–[?] पीलू। भाल।

क़स्क़ियून–[यू०] सौसन बरी। (ख० अ०) जंगली चमेली। लु० क०।

कस्की–[पं०] खेंटी। शगली।

कस्कु-कुट्ट–[ता०] कत्था। खदिर।

कस्कूबा–[?] कड़। कुसुम। बर्रे।

कस्कूनः–[फ़ा०] (१) कुसुम्भ। कड़। बर्रे। (२) कुसुंभ बीज। बर्रे।

कस्क्युटा रिल्फेक्सा–[ले० Cuscuta reflexa, *Roxb.*] अमरबेल। अकाशवेल। बँवर।

कस्टर्ड एप्ल–[अं० Custard apple] शरीफ़ा। सीताफल। आत।

क़स्तरीन–[यू०] विजौरा नीबू। तुरंज।

कस्तज–[?] चौलाई का साग। बक़लहे यमानी।

क़स्तबीर–[अ०] लिंग। शिश्न।

कस्तल–[फ़ा०] एक प्रकार का ख़नाफ़्स।

कस्तन–[फ़ा०] लाल साग।

क़स्तरून–[यू०] दीसक़ूरीदूस के अनुसार एक उद्भिज्ज जो प्रति वर्ष नया उगता है। इसका तना पतला चौपहल लगभग गज भर वा उससे भी अधिक लंबा होता है। पत्र लंबे वृंत के समीप चौड़े और नोक की ओर क्रमशः पतले होते जाते हैं। देखने में ये बलूत पत्रवत् होते हैं। पत्र प्रांत कटावदार होते हैं। यह सुगंधयुक्त होता है। इसकी जड़ पतली और कुटकी की तरह की होती है। इसकी जड़ एवं पत्ती अधिकतर उपयोग में आती है। अंताकी के अनुसार इसका फूल पीत वर्ण का होता है और इसमें से सातर की सी सुगंध आती है। रोम देशवासी इसे बर्तानीक़ी कहते हैं जो सरवाली का ही अन्यतम पर्य्याय है। किसी किसी के मत से यह एक अपरिचित औषधि है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष।

कस्ता–[फ़ा०] चौलाई का साग। लाल साग।

क़स्तानिया–[यू० रू०] शाह बलूत। बलूतुल् मलिक।

क़स्तानीक़ी–[सुडान] चौलाई का साग। बक़लहे। यमानी।

क़स्तारूस–[ ] उसारहे लहयतुत्तीस।

क़स्तासीस–[यू०] एक प्रकार का लबलाब जिसके पत्ते चौड़े होते हैं।

कस्ती–[बं०] मकोय ।

कस्तीमः–[?] एक प्रकार का काँटेदार पौधा जिसे ऊँट चाव से खाते हैं ।

कस्तीर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] पिच्चट । वङ्ग । राँगा । हे० च० ।

कस्तीर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] रंग । राँगा । प० मु० ।

कस्तीला–[?] इसबगोल ।

कस्तुरि–संज्ञा [सं०] प्रियंगु । रा० नि० एकार्थादिः २३ व० ।

[सिंगाली] कस्तूरी ।

कस्तुरिका, कस्तुरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कस्तूरी । मृगनाभि । (२) कस्तूरिका मृग ।

कस्तुला–[देश०] कालाकिरियात । कालायाकरा । झंकारा । (Haphlan thus Tentaculatus)

क़स्तू अतारूस–[?] लज्जतुत्तीस ।

क़स्तूचक़ून–[यू०] क़ाशरा ।

कस्तूर–संज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] (१) कस्तूरी मृग । वह मृग जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है । (२) एक सुगंधित पदार्थ, जो बीवर नामक जंतु की नाभि (Preputial follicles) से निकलता है ।

क़स्तूर, क़स्तूरः–[यू०] जुंदबेदस्तर । गंध मार्जार वीर्य ।

कस्तूरमल्लिका–दे० "कस्तूरीमल्लिका" ।

कस्तूरा–संज्ञा पुं० [सं० कस्तूरी] कस्तूरी मृग ।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) लोमड़ी के आकार का एक प्रकार का जीव जिसकी दुम लोमड़ी की दुम से लंबी और झबरी होती है । कुछ लोगों का विश्वास है कि इसकी नाभि में से भी कस्तूरी निकलती है, पर यह बात ठीक नहीं है । (२) एक प्रकार का सीप जिससे मोती निकलता है । (३) एक चिड़िया जिसका रंग भूरा, पेट कुछ सफेदी लिये तथा पैर और चोंच पीले होते हैं । यह पक्षी पर्वती प्रांतों में कश्मीर से आसाम तक पाया जाता है और अच्छा बोलता है । यह झुंडों में रहना पसंद करता है । (४) एक ओषधि जो पोर्ट ब्लेयर के पर्वतों की चट्टानों से खुरचकर निकली जाती है । यह अतीव बलकारी होती है । इसे दो रत्ती की मात्रा में दूध के साथ सेवन करते हैं । लोग ऐसा मानते हैं कि यह अबाबील चिड़िया के मुँह की फेन है ।

कस्तूरि–संज्ञा स्त्री० [ता०, ते०, मल०, कना०] कस्तूरी । मृगमद ।

कस्तूरि-अरिशिना–[कना०] आँबा हलदी । जंगली हलदी । Curcuma Aromatica, *Salisb.*

कस्तूरिक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करवीर वृक्ष । कनेर का पेड़ ।

कस्तूरि कलह–[सं० ?] धतूरा ।

कस्तूरिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) कस्तूरी । ध० नि० । चन्दनादि ३ व० । (२) सहस्रवेधी । ध० नि० ।

कस्तूरिकाण्डज–दे० "कस्तूरीकाण्डज ।"

कस्तूरिकाद्यञ्जनम्–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक प्रकार का अंजनौषध ।

योग तथा गुणादि—कस्तूरी और मिर्च, इन दोनों का बारीक चूर्णकर घोड़े की लार (वाजिलाला) में घिसकर शहद मिला अंजन करने से अति शीघ्र तन्द्रा का नाश होता है ।

वृ० नि० र० सन्निपा–चि० ।

कस्तूरिका मृग–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कस्तूरीमृग ।

कस्तूरि तुम्म–[ते०] कस्तूरि गंधी बबूल ।

कस्तूरि दाना–[बं०] मुश्कदाना । लताकस्तूरी ।

कस्तूरि पत्ते–[ते०] करवीर । कनेर ।

कस्तूरि पसुपु–[ते०] आँबाहलदी ।

कस्तूरि बेण्ड वित्तुलु–[ते०] मुश्कदाना । लताकस्तूरी ।

कस्तूरि भेण्ड-च-बीज–[मरा०] } मुश्कदाना ।
कस्तूरि भेण्ड वित्तुलु–[ते०] } लताकस्तूरी ।

कस्तूरि मञ्जल–[ता०] }
कस्तूरि मञ्जल–[मल०] } आँबा हलदी ।

कस्तूरि मुनै–[ता०] जुन्दबेदस्तर ।

कस्तूरि मृगाण्डज–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृगनाभि । नाफ़ा । कस्तूरी । रत्ना० ।

कस्तूरिया–सं० पुं० [हिं० कस्तूरी] कस्तूरी मृग । वि० (१) कस्तूरीवाला । कस्तूरी-मिश्रित । (२) कस्तूरी के रंग का । मुश्की ।

क़स्तूरियून–[यू०] जुन्दबेदस्तर ।

कस्तूरि-वेण्ट-वित्त–[मल०] मुश्कदाना । लता-कस्तूरी ।

कस्तूरि-वेण्डैकाय-विरै–[ता०] मुश्कदाना । लता-कस्तूरी । मुश्कभिंडी ।

कस्तूरी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) एक सुगंधित द्रव्य जो एक विशेष जातीयमृग (कस्तूरी मृग) की नाभि से निकलता है । यह बहुमूल्य वस्तु है और केवल औषध में ही उपयोगित नहीं होती, अपितु अपनी गंध विशिष्टता के कारण विलासी रमणियों और विलासी पुरुषों के लिये मनोमुग्धकारी ईश्वरीय देन है ।

पर्य्या०—कस्तूरका, मृगमदः, मृगनाभिः, मृगाण्डजा, मार्जारी, वेधमुख्या, गन्धमु, मदनी, गन्धचेलिका (ध० नि०), कस्तूरी, मृगनाभिः, मदनी, गन्धचेलिका, वेधमुख्या, मार्जाली, सुभगा, बहुगन्धदा, सहस्रवेधी, श्यामा, कामानन्दा, मृगाण्डजा, कुरङ्गनाभी, ललिता, मदः, मृगमदः, श्यामली, काममोदी, (रा० नि०), मृगनाभि, मृगमद, सहस्रभित्, कस्तूरिका, कस्तूरी, वेधमुख्या, (भा०), मदाढ्यः (त्रि०) मृगनाभिजा, गन्धधूलिः, (हे०), मृगमदः, कस्तूरी (अ०), मृगः, मृगी, नाभि, मदः (भ०), अण्डजा (वि०), कस्तुरिका, नाभि, लता, योजनगन्धा, गन्धबोधिका, मार्गः, कालाङ्गी, धूपसञ्ज्ञारी, मिश्रा, गन्धपिशाचिका (शब्दर०), वातामोदः, योजनगन्धिका (रभसः), मदनी, गन्धकेलिका, वेधमुख्या, मार्ज्जारी, सुभगा, बहुगन्धदा, सहस्रवेधी, श्यामा, कामान्धा, मृगाण्डजा, कुरङ्गनाभिः, ललिता, श्यामलता, मोदिनी, कस्तुरिका, कस्तूरीमृगाण्डजः, कस्तूरीमल्लिका, गन्धशेखर, मदलता, योजनगंधा, मार्ग, सहस्रभित् –सं० । कस्तूरी, मुश्क–हिं०, द०, मृगनाभि । कस्तूरि, कस्तूरी–बं० । मिस्क, मुस्क, मिश्क, मुश्क, शज़्–अ० । मुश्क–फ़ा० । मॉस्कस Moschus–ले० । मस्क Musk–अं० । कस्तूरी–ता० । कस्तूरि, कस्तूरिपिल्लि, कस्तूरी, ते० । कस्तूरि–मल०, कना०, सिंगा० । कस्तुरी–मरा० । कस्तूरि, मुश्क–गु० । कडो–बर० । जबत–मल० । स्थाउन–हियाङ्ग (मृग सुगंधि)—चीन ।

नोट—यद्यपि कस्तूरी शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसी सभी वस्तुओं के लिये होता है जिनमें कस्तूरी के समान सुगंध होती है । तथापि कस्तूरी शब्द केवल एक विशेष जातीय हिरन अर्थात् कस्तूरी मृग की नाभि से प्राप्त सुगंध-द्रव्य के अर्थ में रूढ़ हो गया है और मात्र कस्तूरी शब्द का उक्त द्रव्य के अर्थ में मर्यादित प्रयोग होता है । अस्तु, अन्य कस्तूरि गंध विशिष्ट द्रव्यों के साथ तद्द्रव्य बोधक विशेषण का भी उपयोग किया जाता है । यथा, जवादि कस्तूरी, लता कस्तूरिका प्रभृति । इनमें से प्रथम प्राणिज द्रव्य है और अंतिम वानस्पतिक द्रव्य । कस्तूरी की लेटिन और आंग्ल संज्ञाएँ आरब्य मुस्क शब्द से व्युत्पन्न हैं । इसकी संस्कृत एवं हिंदी संज्ञा जुन्दबेदस्तर की युनानी संज्ञा क़स्तूरी (क़स्तूरियूल) का पर्य्याय जान पड़ती है ।

कस्तूरी गन्ध विशिष्ट प्राणिवर्ग और वनस्पति वर्ग—यह पढ़कर अतिशय प्रसन्नता होगी कि कस्तूरी गुण स्वभावी सुगंधि पदार्थ दुनियाँ के विविध भागों में रहने वाले प्राणि और वनस्पति दोनों वर्गीय जीवों में पाये जाते हैं । जेरार्डीन Gerardin के मत से निम्न सूचीगत प्राणी कस्तूरी वा कस्तूरी वत् सुगंध–द्रव्य का निर्माण करते हैं यथा—नर कस्तूरी मृग; गंधमार्जार, जुंद (Castoneum); हिरन विशेष The gazelle (Antilope dorcas) The marten (Mustela foina) कहते हैं कि इसका विष्ठा कस्तूरीवत् गंध देता है; आल्प पर्वतजात छाग विशेष (Capra ibex) इसका सुखाया हुआ रक्त कस्तूरी की तरह महँकता है । कस्तूरा वृष The Muskox (Ovibos moschatus); जेबू (Bosindicus) कस्तूरा बत्तख़ The musk-Duck (Anas moschata) जो जमैका और कायन्ने के स्वर्ण-तट पर पाया जाता है । नील नदी जात कुम्भीर (Nile Crocodile (Crocodilus Vulgaris); विविधि भाँति के कच्छपों तथा भारतीय साँपों में भी कस्तूरी-गंधी द्रव्य पाये जाते हैं ।

साधारणतया अनेक वनस्पति वर्ग में भी मृग-मदीय गंध पाई जाती है वे निम्न हैं—लताकस्तूरिका वा मुश्कदाना संज्ञक स्वल्मी वर्गीय क्षुप के बीज, जिनका सुगंधियों में उपयोग होता है। सर्षपजातीय पुष्पगोभी (Brassica Oleracea) नामक पौधा। कुब्जक वा कूजा पुष्प (Rosa moschata) नामक गुलाब वर्गीय क्षुप। कुष्मांड (Benincasa cerifera, *San.*) और तितलौकी (Lagenariavulgaris, *Sah.*) आदि कुष्मांड वर्गीय लता और मुस्तक (मुश्क ज़मीन) इत्यादि इत्यादि।

उपर्युक्त द्रव्यों तथा न्यूनाधिक कस्तूरी गंधी द्रव्योत्पादनक्षम बहुसंख्यक अन्य द्रव्यों के विद्यमान रहने परभी, कस्तूरी-प्राप्ति का मुख्य व्यापारिक स्रोत केवल कस्तूरी मृग ही रहता है।

(आर० एन० चोपरा—इं० ड्रू० पृ० ४२३-४)

रासायनिक संगठन तथा भौतिक और रासायनिकलक्षण—ताज़ी कस्तूरी सर्व प्रथम क्षीर वत् होती है। तदुपरांत वह पिच्छिलता में परिणत हो जाती और धूसर रक्त वर्ण (Brownist red) धारण कर लेती है। इसका उक्त वर्ण चिरकाल तक बना रहता है। स्वाद तिक्त सुगंधिमय होता है।

गंध अत्यन्त प्रबल तीक्ष्ण और शीघ्र फैलने वाली होती है।

एण से इसके मूल्य में प्रायः छः सात आठ रुपया तोला का अंतर रहता है। यह कस्तूरी जब नाफ़े से चीरकर निकाली जाती है, तब भीतर कस्तूरी के साथ अधिकतर बारीक-बारीक झिल्ली का मिश्रण होता है और उस झिल्ली के साथ कुछ काली काली, विविध आकार-प्रकार की, छोटी-बड़ी विषम डालियाँ बँधी हुई निकलती हैं। जिनको कस्तूरी निकालने के पश्चात् हलकी हथेली से मारकर झिल्ली में फँसी कस्तूरी को उससे पृथक् करते हैं तथा उसमें से झिल्ली को चुन-चुनकर दूर कर देते हैं। किसी किसी नाभि की कस्तूरी में कुछ रेत कण भी होते हैं। यह रेतों के कण मिलाये नहीं जाते, प्रत्युत किसी किसी मृग में, जो रेत मिश्रित घास अधिक खाते हैं, उनके रक्त में सिकतांश वा सिलिका (Silica) के यौगिक बढ़ जाते हैं जो रक्त संचार के साथ उक्त नाभि में पहुँचने पर वहाँ जमने लग जाते हैं। यह रेतों के कण एण मृग में बहुत कम पाये जाते हैं। पर कस्मर मृग की कस्तूरी में काफी मात्रा में होते हैं। यद्यपि सभी नाफ़ों में सिकता नहीं होती, तो भी आधे के लगभग नाफ़े में सिकता विद्यमान होती है और उसमें वह सफ़ेद सफ़ेद भिन्न ही चमकती रहती है। कश्मीरी कस्तूरी एक तो काली होती है, दूसरे उसमें सिकता पाई जाती है, तीसरे गीली अधिक होती है। इसलिये खोलने पर हवा के सस्पर्श से उसमें अमोनिया बनने लगता है। इस अमोनिया की विद्यमानता के कारण इसकी उग्र गंध कस्तूरी की गंध को दबा देती है। एक तो यह प्रथम ही मंद गंध होती है, दूसरे अमोनिया रही-सही गंध को मिटाकर उसकी असलियत को भी गँवा देता है। इन्हीं त्रुटियों के कारण अच्छे व्यापारी इसे नहीं खरीदते। हाँ नकली कस्तूरी बेचने वाले इसे खरीद कर अच्छी कस्तूरी में मिलाकर काफी लाभ उठाते हैं। यह मूल्य, गुण और गंध में एण से बहुत न्यून होती है।

उपर्युक्त कश्मीरीकस्तूरीसे भिन्न तिब्बती कस्तूरीजब नाफ़े से निकाली जाती है, तब उसका वर्ण कत्थई वा उत्तम कच्ची अफीम की तरह होता है। किन्तु उक्त कस्तूरी को नाफ़े से निकालने के उपरांत उस पर प्रकाश और हवा का काफ़ी प्रभाव पड़ते रहने से वह मृदु और कत्थई वर्ण की कस्तूरी सूखती चली जाती है और उसका वर्ण भी श्याम होता चला जाता है। नीली शीशियों में भी कस्तूरी को रखने पर उसमें श्यामता पड़ती है; परंतु अधिक देर में। इससे ज्ञात होता है कि इसके वर्ण में प्रकाश द्वारा ही यह परिवर्तन आता है। इसमें कस्मर की अपेक्षा अधिक गंध होती है। गुण में भी यह उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक होती है।

कस्तूरी लगभग १० प्रतिशत तक सुरासार में, ५० प्रतिशत तक जल में तथा ईथर और क्षार में भी विलेय होती है। इसका जलीय विलयन

किंचित् अम्ल होता है। इससे कागज पर पीले दाग पड़ जाते हैं। जलाने से यह मूत्रवत् गंध देती है और लगभग ८ प्रतिशत तक धूसराभ भस्म अवशेष रह जाती है।

इसमें अमोनिया, ओलीइन, कोलेष्ट्रीन, वसा, मोम, जेलाटिनस (सरेसीय) पदार्थ और अल्ब्युमिनीय पदार्थ उपादान रूप से पाये जाते हैं। इसके जलने के उपरांत अवशिष्ट रही हुई भस्म में प्रधानतः क्लोराइड आफ सोडियम तथा पोटाशियम् और कैलसियम् क्लोराइड् से होते हैं। वाष्पीय परिस्रावण (Steam Distillation) एवं तदुत्तर कालीन परिशोधन द्वारा कस्तूरी से स्वल्प प्रतिशत मात्रा में एक प्रकार का पिच्छिल (Viscid) वर्णरहित, मृगमद की प्रियगंध मय तैल प्राप्त होता है। यह कीटोन (Ketone) सिद्ध होता है। अतएव मस्कोन (Muskone) नाम से अभिहित किया गया है।

स्वगंध शक्ति, अक्षुण्णता और स्थिरता के लिये मृगमद सुविख्यात है। सुतराम् उसके समीप में स्थित प्रत्येक वस्तु उससे प्रभावित होकर दीर्घ-काल पर्यंत गंध-धारण क्षम हो जाती है। अतएव सुगंध-द्रव्यों में इसे अत्युच्च आसन प्राप्त है। यद्यपि अधुना यह अकेली प्रयोग में नहीं आती, तथापि अन्य सुगंधियोंको शक्ति और अक्षुण्णताएवं स्थिरता प्रदान करने के लिये इसका प्रचुर प्रयोग होता है। साबुन और सौंदर्यवर्द्धक चूर्णों को सुगंधि प्रदान करने और तरल सुगंधियों में मिलाने के हेतु गंधी लोग इसके सेंट का व्यवहार करते हैं। कपूर, बालछड़, (Valerian), कड़ुए बादाम, लहसुन, हाइड्रोस्यानिक एसिड, अर्गट चूर्ण, सौंफ (Tennel), स्नेहमय बीजों जैसी वस्तुओं के संयोग से अथवा देर तक गंध-काम्य की लौ पर शुष्कीभूत करने से कस्तूरी की गंध पूर्णतया विलुप्त प्राय हो जाती है। परन्तु आर्द्रता और वायु में खुला रखने से वह पुनः लौट आती है।

उत्तम कस्तूरी के लक्षण—

खाने से जो स्वाद में कड़वी, रंग में पीली, केतकी के फूल के सदृश गंधवाली, तौल में हलकी और पानी में डालने से जिसका रंग बदले, वह कस्तूरी राजाओं को सेवनीय है। पुनरपि जो कस्तूरी केतकी के फूल के सदृश गंधवाली हो, वर्ण वा रंग में जो हाथियों के मद को हरे अर्थात् हाथी के मद के समान रंगवाली, स्वाद में कड़वी तथा चरपरी; तौल में हलकी (जो बहुत चढ़े) मलने से चिकनी हो जाय, अग्नि में डालने से जले नहीं, वरन बहुत देर तक चिमचिम शब्द करे और चमड़ा जलने की सी गंध आवे वह मृग के तन से उत्पन्न मृगनाभि की कस्तूरी राजाओं के सेवन योग्य है। बालक, वृद्ध, क्षीण और रोगी मृग की कस्तूरी मंद गंधवाली तथा कामातुर और तरुण मृग की कस्तूरी बहुत उज्ज्वल और अतीव सुगंधियुक्त होती है। (रा० नि०)

सबसे उत्तम कस्तूरी का वर्ण कत्थई होता है। जिस कस्तूरी का वर्ण घुले हुये कत्थे जैसा निकले तथा नाफ़े के भीतर कुछ काले श्यामदाने भी हों और उसकी गंध तीव्र हो, खाने पर कटु स्वादी और प्रियगंधी हो, वह सर्वोत्तम होती है। तिब्बत की कस्तूरी प्रायः इसी वर्ण की निकलती है। नेनीताल और अलमोड़े की कस्तूरी का वर्ण इससे हलका होता है, उसमें श्यामता अधिक होती है, रायपुर, बिसहर और कुल्लू की इससे भी अधिक श्याम होती है। कश्मीर की कस्तूरी तो श्याम ही होती है।

कस्तूरी भेद

राजनिघण्टु के मतानुसार वर्ण भेद से कस्तूरी तीन प्रकार की होती है—कपिलवर्ण, पिङ्गलवर्ण और कृष्णवर्ण। इनमें से नैपाल में उत्पन्न होने वाली कपिलवर्ण अर्थात् भूरे(Cliush black) रंग की, काश्मीर में उत्पन्न होने वाली पिङ्गल वर्ण की, और कामरू (कामरूप) देश में उत्पन्न होनेवाली काले रंग की होती है। किंतु भाव मिश्र के मत से नेपाल देश की कस्तूरी नीले रंग की और काश्मीर की कपिल वर्ण की होती है। इनके मतानुसार कामरू देश में उत्पन्न होने वाली श्रेष्ठ, नेपाल देश जात उससे मध्यम और काश्मीर देश में उत्पन्न होने वाली अधम होती है।

नोट—कामरूपी कस्तूरी ही कदाचित आसाम की कस्तूरी (Assam Musk) है, जिसका

आयात चीन और तिब्बत से कामरूप होकर होता है। भारत में केवल कामरूप निवासियों में इसका व्यवसाय होता था।

रूपाकृति के विचार से राजनिघण्टुकारने इसके ये पाँच भेद लिखे हैं—खरिका, तिलका, कुलत्था, पिण्डा और नाभिका। इनमें से खरिका चूर्णाकृति की, तिल के समान तिलका, कुलथी के बीजों के समान कुलित्थका (कुलत्थका, कुलत्था) कुलत्था कस्तूरी से कुछ मोटी पिण्डिका और पिण्डिका से किंचित् अधिक स्थूल नाभिका कस्तूरी होती है।

(रा० नि०)

आयुर्वेदीय शास्त्रकारों की भाँति युनानी ग्रंथ-कर्त्ताओं ने भी कस्तूरी के विविध भेदों का उल्लेख अपने-अपने ग्रंथों में किया है। उनके अनुसार सर्वोत्कृष्टतर कस्तूरी तिब्बत की होती है। तदुपरांत चीन देशीय। कोई-कोई ख़ताया की कस्तूरी सर्वापेक्षा उत्तम मानते हैं। तदुपरांत क्रमशः तिब्बतीय फिर कोट काँगड़े की पुनः नैपाल की और अंत में अन्यदेशीय। किसी-किसी ने तुर्की और हिंदी इसके यह दो भेद किये हैं। इनमें से पुनः हरएक के अनेक उपभेद होते हैं। इनके मतानुसार तुर्की हिंदी से उत्कृष्टतर और तुर्की में तातारी की अपेक्षा ख़ताई कस्तूरी श्रेष्ठतर होती है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि तातारी में किंचित् वसायँध होती है। इसके बाद तुर्की कस्तूरी के अन्यभेदों का नंबर है। हिंदी में सर्वोत्तम नैपाली फिर रंगपुरी, तत्पश्चात् अन्य स्थानों की होती है।

मिन्हाजुल् दकान में यह उल्लेख है कि मुश्क पाँच प्रकार का होता है—(१) हिंदी (२) चीनी, (३) तिब्बती, (४) अराक़ी और (५) मिस्कुल्यद। इनमें हिंदुस्तानी मुश्क का रंग लुलाई लिए काला होताहै, इसकी निकृष्टतमक़िस्म वह है जो एकदम काली हो। कृत्रिम मुश्क लुलाई लिये होता है। इसकी परीक्षा-विधि यह है—कि पीसकर अर्क गुलाब में छोड़ देवें, यदि यह सब नीचे बैठ जाय, और गुलाबार्क स्वच्छ रह जाय, तो जानो कि मुश्क शुद्ध है और यदि गुलाबार्क अस्वच्छ वा गदला होजाय और नीचे कुछ भी न बैठे, तो समझना चाहिये कि वह मिलावटी है। अराक़ी मुश्क लुलाई लिये पीला होता है। इसकी परीक्षा की रीति यह है—इसको कूटकर मुँह में रखें, यदि तीव्र सुगंधि मालूम हो, पर स्वाद कोई न हो, तो समझें कि वह अकृत्रिम है। और यदि किसी प्रकार का अनुभूत हो तो जिस चीज़ का स्वाद प्रतीत हो उसी के मेल से बना समझें। मुश्क तिब्बती की परीक्षा इस प्रकार करें हर प्रकार के मुश्क को तो गुलाबार्क में घिस और रगड़ सकते हैं, परंतु तिब्बती बिना कूटे हुये गुलाब में नहीं घिसा जाता। यह कड़ा भी होता है और इससे दुर्गंधि वा बसायँध भी आती है। मुश्क चीनी भी बहुत कड़ा होता है और तिब्बती की अपेक्षा घटिया होता है। इसलिये इसका तिब्बती में मिश्रण करते हैं। दोनों में भेद यह है कि तिब्बती काला होता है, पर चीनी लुलाई लिये पीला और वह अराक़ी की अपेक्षा घटिया है। मुश्कुल् यद हिंदुस्तान में अली आलियुल्यद् से सगृहीत किया जाता है और वहाँ से इसे अन्यान्य देशों को ले जाते हैं। अत्यन्त खराब होने के कारण इसकी परीक्षा का कोई नियम नहीं है।

खाँ फ़ीरोज़ जंग ने गंजबादावर्द में लिखा है कि—हिंदुस्तानी मुश्क किंचित् लुलाई लिये कृष्ण वर्ण का एवं निकृष्ट हिंदुस्तानी मुश्क बिलकुल कृष्ण वर्ण का होता है। उसमें सुर्ख़ी का नाम नहीं होता है। कृत्रिम हिंदुस्तानी मुश्क में सुर्ख़ी की प्रबलता होती है और देर तक रहने से सुर्ख़ पड़ जाता है तथा कीड़े पैदा हो जाते हैं। इनको सिरका वा गुलाब में पीसकर निथरने के लिये छोड़ रखें। पुनः यदि यह तलस्थायी हो जाय और ऊपर स्वच्छ तथा श्वेत पानी रह जाय, तो समझें कि मुश्क ख़ालिस है। यदि पानी मैला पड़ जाय और मैला पानी जम जाय तो कृत्रिम समझना चाहिये। अराक़ी मुश्क पीतता और श्यामता की लपट युक्त रक्तवर्ण (अश्क़र) का होता है। इसमें से यत्किंचित् लेकर मुख में रखने से अति सुगंधि आती है और किसी प्रकार स्वाद प्रतीत नहीं होता है। इस प्रकार का मुश्क उत्तम होता है। इसके विरुद्ध यदि किसी प्रकार का स्वाद प्रतीत हो, तो इसमें उसी वस्तु का मिश्रण

जानना चाहिये। तातारी मुश्क कड़ा होता है। कभी इसमें मुश्की का मिश्रण कर देते हैं। इसकी एक क़िस्म हिंदुस्तान से आती है जिसे मुश्क बेह कहते हैं। सभी प्रकार के मुश्क से घटिया होने के कारण इसकी परीक्षाका कोई विधि विधान नहींहै।

हिंदुस्तान में आज जितनी भी कस्तूरी हिमालय प्रांत से आती है, प्राय: निम्नलिखित स्थानों से आती है। तिब्बत की दार्जिलिंग से और नेपाल से; भूटान की अल्मोड़ा से; पित्ती की रामपुर, बिसहर और कुल्लू से; लद्दाख और गिलगित्त की काश्मीर से। इनमें से तिब्बत की कस्तूरी सर्वोत्तम होती है। उससे हीन भूटान की और उससे हीन पित्ती तथा काश्मीर की सबसे हीन होती है।

कस्तूरी के व्यापारिक भेद—व्यापार की दृष्टि से कस्तूरी के ये तीन भेद किये गये हैं। (१) रूसी कस्तूरी (The Russian Musk)—यह कस्तूरी अतीव मंद गंधी होती है। इसलिये यह बहुत प्रशंसनीय नहीं होती। (२) आसाम की कस्तूरी (The Assam Mnsk)—यह अत्यंत उग्र गंधी होती है और प्रथम की अपेक्षा बाजार में अधिक तेज बिकती है। भारतीय चिकित्सा शास्त्रों में इसे ही 'काम-रूपोद्भवा कस्तूरी' के नाम से स्मरण किया गया है। यह कृष्ण वर्ण की होती है और उपलभ्यमान कस्तूरी-भेदों में यह सर्वोत्तम ख्याल की जाती है। (३) चीनी कस्तूरी (The Chinese Musk)—वर्तमान समय में यह कस्तूरी सर्वापेक्षा अधिक प्रशंसित है; क्योंकि इसमें अमोनिया निर्देशक किसी प्रकारकीअप्रिय गंध नहीं होती; जो कभी कभी इसके निकृष्टतर भेदों में पाईजाती है। इनमें से अधिकसंख्यक कस्तूरी का निर्यात प्राय: चीन और तिब्बत से होता है, जहाँ कि कस्तूरी मृग पाया जाता है। वहीं तत्सीनलु के कस्तूरी के व्यापारी इसे ख़रीद लेते हैं और वहाँ से यह चुङ्किंग लाया जाता है। टान्किन् की कस्तूरी (Tonkin Musk) जो व्यापारिक कस्तूरी का एक भेद है और जिसका मुख्यतयासुगंधियों में व्यवहार होता है, पश्चिमी सेचुआन तथा तिब्बत के पूर्वी विस्तृत भाग से आती है। गत शताब्दी में यांगट्सी नदी में स्टीमर का रास्ता खुलने से पूर्व, यह कस्तूरी, टान्किन से होकर, दक्षिण को भेजी जाती थी, इसलिये आजतक इसका उक्त नाम रह गया। इसका मुख्य बाजार देश के भीतर तत्सीनलु नगर में है जो तिब्ब की सीमा के सन्निकट है। युनान प्रांत में भी कुछ कस्तूरी प्राप्त होती है। किंतु व्यापार में उसका कुछ भी उपयोग नहीं होता। बाजारोंमें अधिकतर परिमाणमें कस्तूरी मंगोलिया के उत्तरीय भागों, मंचूरिया और पूर्वी साइबेरिया से आती है। इसे (Cabardine) नामक कस्तूरी कहते हैं, किंतु इसकी उग्र भेदनीय अप्रिय गंध के कारण इसे प्रथम श्रेणी की वस्तु की जगह व्यवहार नहीं किया जाता।

(आर० एन० चोपरा—इं० ड्रू० इं० पृ० ४२४–५)

कृत्रिम नाफ़े की पहिचान

नकली नाफ़े गोल, कठोर सब तरफ से बालों से आवरित होते हैं। कुछ अधिक दिन (चार छः मास) पड़े रहने पर उन नाफ़ों की त्वचा और तज्जात कस्तूरी दोनों सूख जाते हैं। इससे उनको दबाने पर वह या तो दबते ही नहीं या कुछ कम दबते हैं। परन्तु इसकी बनावट नकली से सदा भिन्न ही रहती है। सर्व प्रथम कस्तूरी के नाफ़े को इस प्रकार परीक्षा कर लेने के पश्चात् कस्तूरी परीक्षा की बारी आती है। कस्तूरी के व्यापारी प्रथम तो नाफ़े को देखकर ही पहिचान लेते हैं कि यह किस प्रांत का है। इस प्रकार पता न चलने पर वे दोहरी छतरी के तार को काटकर बनाई हुई परखी को नाफ़े के भीतर घुसेड़ कर कस्तूरी निकाल कर उसके स्वरूप से मालूम कर लेते हैं कि यह कस्तूरी किस प्रांत की है।

कृत्रिम वा बनावटी नाफ़े और कस्तूरी (*Adulteration of Musk Lmusk-Pod*)

(१) जो व्यक्ति कस्तूरी मृग का शिकार करते हैं उस मृग की हाथ-पैर की कोहनी का चर्म गोलाकार काटकर उसमें उसी समय उस मृग के रक्त में दानेदार काली मिट्टी जो पहले से बनाई हुई उनके पास होती है, भर कर उसे धागे से खूब कसकर बाँध देते हैं। कोई-कोई उसी समय तत्क्षित् नाफ़े से कस्तूरी निकालकर वह भी

उक्त कृत्रिम नाफे के मुख पर रख देते हैं और बँधा हुआ चर्मभाग इस जोरसे अंदर दबातेहैं कि उसका कुछ भी हिस्सा बाहर निकला दिखाई नहीं देता। अनजान व्यक्ति इस नाफ़े से ठगे जाते हैं।

(२) अमृतसर से यह नाफ़े बाहर को बेंचने के लिये नहीं जाते। प्रत्युत यहाँ के व्यापारी खुली हुई कस्तूरी कृत्रिम और मिलावट वालीही अधिक बेचते हैं और उसको वह निम्नलिखित रीति पर तैयार करते हैं।

जुन्दबेदस्तर नामक प्राणिज द्रव्य जो ऊद बिलाव के वृषण होते हैं उन वृषणों के अंदर के भाग को सुखाकर चूर्ण कर लेते हैं। वह हलका कपिल वर्ण का होताहै। उसको रंगकर कत्थई बना लेते हैं और उसको लैनोलीन के मिश्रण से साधारणतः मृदु करके निम्नलिखित कृत्रिम कस्तूरी Musk ambrette, Musk ketone आदि छः सात प्रकार के कस्तूरी गंध द्रव्यों में से कोई उचित मात्रा में मिलाकर उसे कस्तूरी के नाम से बेंचते हैं।

(३) कुछ लोग जुन्दबेदस्तर को तैयार करके उसमें कश्मीरी कस्तूरी मिलाकर उसे असली कस्तूरी के नाम से बेंच लेते हैं। यह दोनों प्रकार की कस्तूरी अमृतसर से अधिक बाहर को जाती है। (विज्ञान—अग० १९३५ ई०)

(४) इसमें कस्तूरी कला का भी मिश्रण होता है। प्रत्येक मृग नाभि में कस्तूरी निकालते समय एक तोला पीछे १॥, २ माशे कस्तूरी कला अवश्य निकल जाती है। आज से पन्द्रह बीस वर्ष पूर्व उक्त कला को लखनऊ के तम्बाकू बनाने वाले खरीद ले जाते थे और इसको डालकर मुरकी तम्बाकू बनाते थे। कस्तूरी की इस कला को "मदन" कहते हैं। उस समय यह कला ८) रु० से १२) रु० तोला तक बिक जाती थी और तम्बाकू में पूरा कस्तूरी का काम देती थी। पर जब से कस्तूरी के विलायती सेंट आये तब से तम्बाकू वाले इसको न खरीद कर सेंट डालते हैं इसीलिये इसकी बिक्री बंद हो गई। जहाँ जहाँ भी कस्तूरी के बड़े व्यापारी हैं, जब उनकी उक्त कस्तूरी कला की खपत बंद होगई तो वह इसको कस्तूरी में मिलाकर बेंचने का प्रयत्न करने लगे। कस्तूरी के व्यापारी जिनके यहाँ कस्तूरी कला अधिक निकलती थी, वे सिगरेट की तम्बाकू काटने वाली मशीन मंगाकर उस से कला को खूब बारीक करके उसे कस्तूरी में मिलाकर बेंचने लगे।

(५) इससे भिन्न तीन-चार और भी पदार्थों के मिश्रण इसमें करते हैं। जिनकी मात्रा प्रति तोला १, २, ३ माशे से अधिक नहीं होती। यह वस्तु सत्व मुलहठी, लता कस्तूरी घन सत्व, इसव गोल आदि हैं जो तैलाक्त करके और वर्णयुक्त बनाकर मिलाये जाते हैं और सुगंधि विलायती सेंट की देते हैं। परंतु यह सब स्वाद के समय पहिचाने जाते हैं। इसलिये इनका मिश्रण कम हो गया है।

(आ० वि० जनवरी सन् १९३२)

(६) इसमें शुष्क रक्त और यकृत प्रभृति निष्क्रिय द्रव्यों का मिश्रण करते हैं। वाणिज्य के हेतु कस्तूरी तैयार करते समय उसमें कलाय, गेहूँ के दाने, जौ के दाने प्रभृति वानस्पतिक द्रव्यों का भी मिश्रण करते हैं।

(आर० एन० चोपरा इं० ड्रं० इं० पृ० ४२५)

(७) कत्था, सिंगरफ, धूलिकण और चमड़े के टुकड़े इत्यादि दिया करते हैं। (ख० अ०)

(८) लोग भैंसे के रक्त में वा कस्तूरी मृग के खून में एमोनिया मिलाकर उसे सुखा लेते और कस्तूरी में मिलाकर अथवा उसकी सुगंधि देकर नकली कस्तूरी के रूप में बेचते हैं। सुतरां कस्तूरी में एमोनिया की गंध मात्र से उसकी अकृत्रिमता के प्रति संदेह हो सकता है।

किंतु साथ ही पुरानी असली कस्तूरीकी सुगंधि पुनः जीवित करने के लिये प्रत्यक्ष रूप से एमोनिया व्यवहार में लाते हैं। अतएव एमोनिया की गंधमात्र से कस्तूरी को एक दम नकली समझ लेना भी युक्ति युक्त नहीं है।

(आरो० वि० अप्रैल सन् १९३३)

सारांश यह कि इस प्रकार की बनावटी कस्तूरी भी आजकल बाजारों में बहुत बिकती हैं। अस्तु, कस्तूरी खरीदते समय इन नक्कालों से सदा सावधान रहना चाहिये और इसे सदैव किसी विश्वास पात्र बड़े दूकानदार से खरीदनी चाहिये। यदि संभव हो तो उसकी परीक्षा करके देख लेनाचाहिये।

कृत्रिम कस्तूरी के शास्त्रोक्त लक्षण

जो कस्तूरी छूने में चिकनी, जिसके धूएँ में गंध आवे (धूमगंधा) जिसे वस्त्र में रखने से वस्त्र पीला होजाय, अग्नि में डालने से तत्काल जलकर सब भस्म वा खाक होजाय, तौल में भारी हो अर्थात् कम चढ़े और मलने से रूखी होजाय, उस कस्तूरी को बनावटी समझ कर सेवन नहीं करना चाहिये। शुद्ध व मलिन जाति की कस्तूरी नपुंसक मृग और मृगी की होती है इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी पहिचान नहीं, इसमें केवल एक सुगंध ही बड़ा चमत्कृत गुण है, जिससे यह काम का शृंगार मस्तक, कपोल, कंठ, भुजा और स्त्रियों के कुच मंडल में लगाई जाती है। (रा० नि०)

कस्तूरी परीक्षा

मृगनाभि दुष्प्राप्य, बहुप्रयुक्त एवं बहुमूल्य वस्तु है। प्रति तोला ३०) से लेकर ६०) तोला तक मिलती है। इसलिये इसमें कृत्रिम वस्तुओं का सम्मिश्रण करके बेचने का लोभ लोगों में अधिक पाया जाता है। इस प्रकार का मिश्रण प्राचीन काल में भी होता था। इसीलिए शास्त्रों में इसकी परीक्षा के विधान का उल्लेख मिलता है।

करतलजलमध्ये स्थापनीयात् मुहूर्त्तं। पुनरपि तदवस्थां चिन्तनीयं मुहूर्त्तम्॥ यदि भवति स रक्तं तज्जलं पीतवर्णं। न भवति मृगनाभेः कृत्रिमोयोऽयं विकारः॥ (का०)

अर्थात् हथेली में जल रखकर एक मुहूर्त्त मात्र तक उसमें कस्तूरी पड़ी रहने देवें। यदि वह जल लाल वा पीला होजाय तो समझना चाहिये कि वह कस्तूरी असल नहीं, वरन् कृत्रिम वा बनावटी है।

यह परीक्षा केवल उस समय सफल हो सकती है, जब कस्तूरी में शुष्क रक्त मिश्रित हुआ हो, अथवा मृग के रक्त को जमाकर कस्तूरी बनाई गई हो, इससे भिन्न वस्तु मिलाकर बनाई हुई कस्तूरी की परीक्षा में उक्त नियम ठीक नहीं उतर सकता संभव है पूर्वकाल में पूर्वोक्त विधि से कृत्रिम कस्तूरी बनाते रहे हों, जिस समय यह परीक्षा ठीक उतरी हो, परंतु आज तो काल की कुटिल गति के प्रभावसे नई-नई वस्तुएँ सामने आ रही हैं बनाने के विधि-विधान निकल रहे हैं। ऐसी स्थिति में वह हज़ारों वर्ष पूर्व की किसी एक प्रकार की कृत्रिम कस्तूरी के लिये दी गई परीक्षा विधि क्या कभी पूर्ण उतर सकती है? अतएव कृत्रिम और अकृत्रिम कस्तूरी की परीक्षा के लिये विज्ञान-वेत्ताओं ने अनेक पद्धतियों का आविष्कार किया है। परन्तु वे अत्यन्त क्लिष्ट एवं अव्यावहारिक हैं। अस्तु, उन्हें न देकर यहाँ कतिपय अन्य सरल व्यवहारोपयोगी विधियोंका ही उल्लेख किया जायगा। वे निम्न हैं—

(१) कस्तूरी की सबसे उत्तम परीक्षा तो उसे खाकर ही की जाती है। जो मनुष्य इसे सेवन करते हैं, वे स्वाद से भी मालूम कर लेते हैं। उनका कथन है कि असली कस्तूरी खाने में विशेष प्रकार की कटुता युक्त स्निग्ध होती है। जैसी कटुता और स्निग्धता कस्तूरी में होती है, आज तक किसी भी नकली कस्तूरी में नहीं देखी गई। जुन्दबेदस्तर की बनी कस्तूरी स्वादरहित, फीकी और कुछ दाँतों में चिपकनेवाली होती है।

(२) दूसरी परीक्षा इसकी गंध की है। पारस्य ख्यातनामा नीतिकार शेख़ सादी कहते हैं "मुश्क आँ कि ख़ुद गोयद, नकि अत्तार ब गोयद।" इस कथन का अभिप्राय भी यही है। असली विशुद्ध कस्तूरी विशेष गंधपूर्ण होती है तथा मुँह में डालते ही अपनी मदपूर्ण मुँह को भर देती है, जिससे चित्त प्रफुल्लित हो उठता है। घर में इसे खुला छोड़ रखने पर सारा गृह उसकी तीव्र सुगंधि से परिपूर्ण हो जाता है और वह सुरभि तब तक नष्ट नहीं होती, जब तक सम्पूर्ण कस्तूरी उड़ नहीं जाती। इस प्रकार खुला रहने देने से असली कस्तूरी उड़ जाती है। यद्यपि कस्तूरी के चार-पाँच ऐसे उत्तम विलायती सूखे सेंट आये हैं, जो कस्तूरी की गंध रखते हैं और किसी भी वस्तु में मिला देने पर वह कस्तूरी की गंध देते रहते हैं, परन्तु इन सबकी गंध विशुद्ध कस्तूरी की अपेक्षा तीव्र होती है।

दूसरे उड़नशील भी अधिक हैं। यदि कृत्रिम कस्तूरी और अकृत्रिम कस्तूरी को खुला छोड़ दिया जाय, तो नकली कस्तूरी की गंध एक ही दिन में उड़ जाती है और वह काली काली वस्तु अवशिष्ट रह जाती है। इसको खुली रखी रहने से वजन भी नहीं घटता। पर असली कस्तूरी की गंध नहीं जाती। यद्यपि असली कस्तूरी की भी गंध उड़ती रहती है। इसी से असली कस्तूरी खुली पड़ी रहे तो वज़न (भार) में कम हो जाती है। परंतु जब तक सारे कस्तूरी-गंध के परमाणु उसमें से न निकल जायँ, गंध नहीं घटती। जुंदबेदस्तर की बनी कस्तूरी गंधरहित या कुछ मंद गंधयुक्त होती है। इसकी यह गंध भी कुछ देर में ही जाती रहती है। असली कस्तूरी को हाथ की अँगुली से मला जाय तो दो-चार घंटे उसकी गंध दूर नहीं होती। कस्तूरी का एक विशेष स्वभाव यह भी है कि अपने संपर्क में आई हुई वस्तु को यह अपनी विशिष्टगंध तुरत प्रदान करती है, इसलिये गंध द्वारा इसके मिश्रण का ढूँढ़ निकालना कठिन होता है।

(३) कस्तूरी की तीसरी परीक्षा यह है कि यदि असली कस्तूरी को जल में डाल दिया जाय तो जल का रंग कुछ पीला सा हो जाता है, नकली का रंग जल में नहीं उतरता। एक प्रकार की जुंदबेदस्तर की बनी हुई कस्तूरी आती है। यदि यह जल में डाली जाय, तो जल गहरा पीत और भूरा होता है। परंतु यह रंग अधिक देर में अथवा हाथ लगाने या हिलाने से उतरता है और असली फौरन ही रंग छोड़ देती है।

(४) चौथे यदि इसे रेक्टिफाइड स्पिरिट (हली) में डाल दें तो यह घुल जाती है और कुछ थोड़ा सा भाग गाद का पेंदे में बैठ जाता है। उस गाद में झिल्ली (कला), बाल और कुछ रेत के कण पाये जाते हैं। इनके सिवा और कोई वस्तु नीचे नहीं बैठती। यह गाद एक तोला कस्तूरी में अधिक से अधिक १॥ माशे निकलती है अर्थात् बाकी भाग सब कस्तूरी का होता है। पर जुदबेदस्तर से बनाई हुई नकली कस्तूरी का कुछ अधिक हिस्सा स्पिरिट में घुलता है। बाकी जितनी भी नकली कस्तूरी है, वे सब बहुत कम घुलती हैं।

(५) पाँचवीं परीक्षा लहसुन में भी करते हैं जिसकी विधि यह है। कस्तूरी को एक डोरे पर खूब मल देते हैं और उस डोरे को सुई से पिरोकर लहसुन की पोथी के बीच से उस डोरे को दूसरी ओर निकाल देते हैं। थोड़ी देर के पश्चात् जब धागा सूख जाता है जो लहसुन के स्पर्श से गीला हो जाता है। उसकी गंध लेने पर यदि कस्तूरी की गंध आवे, तो समझो कस्तूरी असली। गंध न आवे, तो नकली समझना चाहिये। पर इस परीक्षा में सावधानी की आवश्यकता है अर्थात् धागे पर कस्तूरी को अच्छी तरह मलना चाहिये जिससे लहसुन में से धागे निकालने पर कस्तूरी बिलकुल घुल न जाय। यदि सारी कस्तूरी घुल जायगी, तो कभी भी गंध नहीं आ सकती। इसलिये अच्छी तरह कस्तूरी मलकर लगानी चाहिये अथवा कस्तूरी मर्दित डोरे को लहसुन के रस के हलके घोल में एक बार डुबोकर निकाल लेते हैं और जब डोरा सूख जावे तो उसको सूँघने पर कस्तूरी की खुशबू आवे तो समझना चाहिये कि असली कस्तूरी है अन्यथा बनावटी है। अथवा डोरे में प्रथम लहसुन का रस वा हींग लगाकर पुनः उसे नाफे के आर-पार करके सूँघने पर यदि उसमें से लहसुन वा हींग की गंध आवे तो समझना चाहिये कि कस्तूरी नकली है, अन्यथा असली है।

इनके अतिरिक्त चीन और तिब्बत के व्यापारियों में भी कस्तूरी परीक्षा की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं जो यद्यपि बहुत विज्ञानसम्मत तो नहीं, पर इसकी असलियत जानने में बहुत हद तक साहाय्यभूत होती हैं। अस्तु, जब कभी उनकी वास्तविकता में संदेह उपस्थित होता है तो—

(६) मृगनाभि वा नाफे से कुछ दाने निकालकर पानी में छोड़ देते हैं। यदि ये दाने बने रहते हैं, तो यह जाना जाता है कि कस्तूरी असली है। यदि वे घुल जाते हैं, तो वह नकली है।

(७) सातवीं परीक्षा विधि यह है कि कस्तूरी के चंद दाने कोयले की आग पर डालते हैं। यदि वे पिघल जाते हैं और बुलबुला देते (Bubble) हैं तो यह समझा जाता है कि शुद्ध कस्तूरी है। यदि वे तुरत कड़े और जलकर राखही जाते हैं तो उसे मिश्रित वा अशुद्ध समझा जाता है। जलते समय असली कस्तूरी से एक विशेष प्रकार की गंध आती है। जो अन्य असली कस्तूरी की चीजों के जलने से नहीं होती।

(८) आठवीं यह कि दफ़न करने वा गाड़ने पर उसकी गंध नहीं बदलती। पर जब यह अशुद्ध वा नकली होती है तो इसकी गंध पूर्णतः परिवर्तित हो जाती है।

(९) नवीं परीक्षा स्पर्श द्वारा होती है। असली कस्तूरी छूने में मृदु और नकली कड़ी होती है।

(१०) अणुवीक्षण यन्त्र से परीक्षा करने पर यदि असली कस्तूरी में शुष्क रक्त मिश्रित हुआ हो तो वह रक्त और उसके अंश साफ दिख जाते हैं।

(११) असली कस्तूरी को जल में घोलकर उसमें (Bi-Chloride of mercury) मिश्रित कर देने से कोई भी वस्तु जल से पृथक् नहीं होती।

(१२) जो मुश्क खाने में अत्यन्त तिक्त एवं तीक्ष्ण, रंग में पीला और सेव की सुगंधि वाला तथा खता, तिब्बत कोटकाँगड़ा या नैपाल देश में उत्पन्न हुआ हो, वह असली और विशुद्ध है। और जो अत्यन्त श्यामवर्ण का भारी, कषाय वा अन्य स्वाद युक्त, अल्प गंधी वा दुर्गन्धयुक्त हो उसे बनावटी समझना चाहिये। (ख० अ०)

(१३) कस्तूरी को थूक वा पानी के साथ हथेली पर मलने से यदि वह घुल जाय तो वह असली और यदि बत्ती बन जाय तो बनावटी समझना चाहिये। (ख० अ०)

(१४) अरस्तू की परीक्षाविधि यह है— कस्तूरीको पीसकर तौल लेवें। इसके उपरांत उसे आर्द्र पात्र में एक क्षण रखकर पुनः तौलें। यदि वज़न बढ़ जाय, तो असली, वरन् नकली जानें।

औषध-निर्माण—आयुर्वेदीयः—

कस्तूरी भूषण रस, कस्तूरी भैरव रस, (स्वल्प, मध्यम, बृहत्); कस्तूरी गुटिका कस्तूरी मोदक, कस्तूरी रस, कस्तूर्यादि चूर्ण, कस्तूर्यादि स्तम्भन, मृगनाभ्याद्यवलेह (भा०); वसंत तिलक रस (र० सा० सं०) लक्ष्मीविलास रस, इत्यादि २।

मात्रा—२॥ रत्ती से ५ रत्ती वटी वा मिश्रण (Mixture) रूप में।

एलोपैथी—

असम्मत योग—

(*Not official Preparation*)

(१) मिस्च्युरा मास्काई Mistura Moschi कस्तूरी द्रव। मज़ीज मिश्क। योग—कस्तूरी ६ ग्रेन, अकेशिया ६ ग्रेन, शर्करा ६ ग्रेन, रोज़वाटर १० आउंस, मात्रा—½ से २ आउंस या अधिक।

(२) पिल्युला मास्काई Pilula Moschi कस्तूरीवटिका, हब्ब मिश्क। योग—कस्तूरी १२ ग्रेन, बब्बूल निर्यास चूर्ण ३ ग्रेन, मधुयष्टी चूर्ण ३ग्रेन, सबको परस्पर मिलाकर चार वटिकाएँ प्रस्तुत करें। मात्रा—१ से २ वटिकायें।

(३) टिक्च्युरा मास्काई Tinctura Moschi मृगमदासव। तअ्फ़ीन मुश्क। योग एवं निर्माण विधि—कस्तूरी ६ ग्रेन, सुरासार (९०%) १ आउंस। कस्तूरी को सुरासार में सप्ताह पर्यन्त भिगो रखने के उपरांत उसे छान लेवें। मात्रा—½ से १ ड्राम।

नोट—भलीभाँति सुखाई हुई उत्तम कस्तूरी को थोड़ा सुरासार में क्लेदित कर पुनः सबको जल में घोलकर चौबीस घंटे पड़ा रहने देवें। कस्तूरी जल में सुविलेय होतीहै और पूर्व व्यवहार पद्धति से लगभग ७०, ७५ प्रतिशत भाग तक लीन हो जाती है। प्राप्त विलयन को किंचित् ताप देने पर कस्तूरी का शेष रहा थोड़ा और भागभी उक्त विलयन में मिल जाता है। परंतु उक्त व्यवहार से कस्तूरीगत उड़नशील पदार्थ के नष्ट होने का भय रहता है। अतएव यह ठीक नहीं है।

वाणिज्योपयोगी कस्तूरी-निर्माण-पद्धति

बाजार के लिये व्यापारोपयोगी कस्तूरी प्रस्तुती करण की अनेक रीतियाँ प्रचलित हैं। उनमें

सर्वोत्कृष्ट रीति यह है कि मृग से नाफा ग्रहण करने के बाद तुरत उसे वायु और धूप में खुला रखकर सुखा लेते हैं। कस्तूरी की गंध अत्युग्र एवं प्रबल प्रसरणशील होती है। अतएव इसे सामान्यतया खूब सीलबन्द बरतन में अथवा किनारे पर टीन की पट्टी लगे हुये लकड़ी के सन्दूकों में बंद कर रखते हैं। ऋतु आदि के कुप्रभाव से सुरक्षित रखने के लिये और जिसमें इसकी गंध उड़ न जाय, नाफ़े को पृथक्-पृथक् चमड़े की छोटी-छोटी थैलियों में उसके चतुर्दिक् मृग लोग वा उसी तरह की कोई और वस्तु देकर उनके प्रथम प्राप्ति स्थल पर ही बंद कर देते हैं। चीनी व्यापारी कभी-कभी इन्हें दो-दो वा तीन-तीन दर्जन की तादाद में एक साथ रेशम वस्त्र में लपेट कर रखते हैं। व्यापारियों का वह वर्ग जो औषधीय जड़ी-बूटियों और तज्जात अन्यपदार्थों के निर्यात व्यापार में संलग्न होते हैं, वही शिकारियों से कस्तूरी संग्रह भी करता है। कोई भी चीनी व्यापारी केवल कस्तूरी का व्यापार नहीं करता।

रासायनिक विधि द्वारा प्रस्तुत कृत्रिम कस्तूरी
(*Artificial Musk*)

कस्तूरी मृग के वर्णनावसर पर हमने यह बतलाया है कि किस बढ़े हुये अनुपात से कस्तूरी मृगों के संहार का क्रम जारी है। उससे यह अनुमान लगाया गया है कि शीघ्र भविष्य में कहीं इसका वंश ही न इस भूमण्डल से विलुप्त हो जाय, पुनः कस्तूरी के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकता है। साथ ही असली कस्तूरी बहुत तेज और कम मिलती है, जिससे इसकी दिनों दिन उत्तरोत्तर बढ़ती हुई माँग की पूर्ति होना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य जान पड़ता है। इसका प्रमाण यह है. फ्रांस में जो संसार का सबसे बड़ा सुगंध-द्रव्योत्पादक देश है, वहाँ की सुगंधियों के निर्माण में उक्त द्रव्य के अभावरूपी क्षय की वृद्धि हो रही है। इन बातों से पाश्चात्य रासायनिकों का ध्यान प्रकृति वस्तु के गुण स्वभाव सदृश किसी ऐसे प्रतिनिधि द्रव्य के निर्माण की ओर आकृष्ट हुआ, जिनकी रचना प्रयोगशाला में हो सके। फलतः कस्तूरी गंधवाले बहुशः यौगिक संयोगात्मक विधि द्वारा निर्मित किये गये हैं, परन्तु प्रकृत कस्तूरी से उनकी रासायनिक रचना पूर्णतया भिन्न है। यद्यपि वे विषाक्त नहीं, अतएव सुगंधियों में, असली कस्तूरी की जगह उनका बहुल प्रयोग होता है और वे सस्ती पड़ती हैं। अधुना Trinitro-metatertiarybutyl toluene नाम से विदित द्रव्य तथा Toluene और Ketone से विविध प्रकार से रासायनतः बने तत्सम द्रव्य, कस्तूरी के प्रतिनिधि द्रव्य हैं। इनमें Trinitrobutyltoluol ($C_6\ HNO_3\ CH_3\ C_4\ H_7$) सर्वोत्कृष्ट स्वीकार किया गया है। इसकी गंध स्वाभाविक कस्तूरीगंध के सर्वथा समान होती है और कृत्रिम कस्तूरी (Artificial Musk) के नाम से सुगंध्यर्थ बिकती है।

जर्मनी के विज्ञान-वेत्तागण भी उक्त जैविक पदार्थ को बनाने के लिये रासायनिक क्रियाओं द्वारा विशेष उद्योग कर रहे हैं। फलस्वरूप केवल जर्मनी में सन् १९२५ पर्यंत वहाँ के वैज्ञानिक लोगों ने रासायनिक विधि से कस्तूरी तैयार करने के तेरह तरीके ढूँढ़ निकाले थे। किंतु अद्यावधि रासायनिक विधि से तैयार की हुई कस्तूरी सुगंधि और गुण में बिलकुल असली कस्तूरी जैसी सिद्ध नहीं हुई।

इतिहास

पुरातन काल से सभ्य समाज में जिन सुगंध द्रव्यों का व्यवहार होता आया है, स्यात् उनमें मृगनाभि प्राचीनतम है। चीन देश में इसका विशेष आदर है। प्राचीन चीनी साहित्य के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे इसे अनेकानेक रोग निवारणक्षम मानते थे। तद्देशीय लब्धप्रतिष्ठ चिकित्सक पाओ-पुत्सी का कथन है कि—'मृगनाभि' सदा साथ में रहने से सर्पदंश का भय नहीं रहता। सर्प कस्तूरी मृग की भोज्य वस्तु है। अतः एक टुकड़ा कस्तूरी पास में रककर कोई भी प्रवासी उसकी तीक्ष्ण गंध द्वारा सर्पकुल को दूर रख सकता है।

भारतवर्ष में औषधि और सुगंध के रूप में कस्तूरी का व्यवहार दीर्घ काल से चला आ रहा है। अस्तु, धन्वन्तरीय तथा राजनिघण्टु आदि प्राचीनतम निघण्टु ग्रंथों में भी इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। भावप्रकाशकार ने तीन प्रकार की कस्तूरी का उल्लेख अपने ग्रंथ में किया है। भारतीय चिकित्सक इसे अत्यन्त उत्तेजक (सार्वांगिक और हृदय) और कामोद्दीपक—वाजीकरण मानते हैं और मंद ज्वरों में आक्षेप निवारक और वेदना स्थापक रूप से एवं चिरकालानुबन्धी कास (Cough) सार्वदैहिक दौर्बल्य और पुंसत्व हीनता रोग में इसका व्यवहार करते हैं। इसकी हृदय बलदायिनी शक्ति तो प्रसिद्ध ही है। अन्तावस्था में जब मनुष्य मृत्यु के चुंगल में आवद्ध होने लगता है और हृदय को बल देने के सभी उपाय निष्फल सिद्ध होते हैं, उस समय मृगनाभि रोगी की संरक्षा में अस्त्र सदृश काम करती है। एतद्देशीय बूढ़े सयाने तात्कालिक भीषण स्थिति में कस्तूरी और मकरध्वज के सिवाय किसी अन्य औषधि से प्राण रक्षा की आशा नहीं रखते। हमारे देश में हृदुत्तेजक रूप से इसका मकरध्वज एवं बला प्रभृति अन्य औषधियों के साथ अथवा अकेला मधु के साथ में सेवन करते हैं। इसके सिवा शास्त्रोक्त स्वल्प कस्तूरी भैरव, मृगनाभ्याद्यवलेह और बसन्त तिलकरस प्रभृति योगों में तथा बहुशः अन्य योगों में भी कस्तूरी व्यवहृत होती है।

दक्षिण भारतीय तामिल चिकित्सक शिश्वाक्षेप में इसे अफीम के साथ मिलाकर देते हैं। अजीर्ण और कोलन शोथ (Colitis) निवारण के लिये भी यह प्रसिद्ध है।

आरब्य और पारस्य निवासी भी मुश्क नाम से इसका अति प्राचीन काल से व्यवहार करते आ रहे हैं। शेख़ बूअली सीना, मासरजोया, गीलानी प्रभृति प्राचीन विद्वानों के ग्रंथों में और तालीफ़ शरीफी, मफ़्ज़न, मुहीत आदि परचात् कालीन निघंटु ग्रन्थों में इसका विशद उल्लेख मिलता है।

यूरोप में पहले पहल अरब निवासियों ने कस्तूरी का प्रचार किया। सन् १८८६ ई० में सालादीन ने रोम सम्राट् को बहुत सी वस्तुएँ उपहार स्वरूप भेजी थीं, जिनकी वृहत् तालिका पुस्तक में उल्लिखित है। उसमें कस्तूरी का भी नाम है। दशवीं शताब्दी में अबीसीना ने अपनी भैषज्य विषयक पुस्तक में मृगनाभि को नाना रोग नाशक महौषधि के रूप में वर्णित किया है।

यूरोपीय ग्रंथों के अनुशीलन से पता चलता है कि सर्व प्रथम त्यूभार-नियर ने अपनी यात्रा विषयक पुस्तक में कस्तूरी का उल्लेख किया है।उसके भ्रमण वृत्तान्त को पाठ करने से इस संबंध की और भी अनेक ज्ञातव्य बातें स्पष्ट हो जाती हैं। एक स्थान पर वह लिखता हैं कि उसने अपने भ्रमण कालमें ७६०५ थैला कस्तूरी खरीदी थी। विख्यात पर्यटक मार्कोपोलो लिखता है कि-उसके समय में मृगनाभि (कस्तूरी) का खूब प्रचार था और वह बाज़ारों में मिलती थी।"

संभवतः सोलसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कस्तूरी पाश्चात्य चिकित्सा में औषधि रूप में उपयोग में ली जाने लगी। तभी से लेकर आज पर्यंत आन्त्रिक सन्निपात (Typhoid), टायफस, वातरक्त (Gout), हनुग्रह वा धनुस्तम्भ (Tetanus) जलसंत्रास, अपस्मार तथा योषापस्मार के दौरों में एवं कम्पवायु, कुक्कुर कास (काली खाँसी), हिक्का, श्वास और शूल (Colic) इत्यादि नाना व्याधियों में उत्तेजक औषध रूप में प्रयोगित होती आरही है।

सन् १६०५ ई० में क्रुकशेंक ने केंद्रीय वातमंडल के विषैले प्रभाव में इसकी उपयोगिता के पक्ष में अपना मत जाहिर किया।

उक्त डाक्टर महाशय ने उस रोग में २॥ रत्ती की मात्रा में कस्तूरी चूर्ण व्यवहार कराया और उससे संतोषप्रद परिणाम प्राप्त हुये। शिश्वाक्षेप के किसी निश्चित उत्पादक कारण का निर्णय न हो सकने पर क्लोरल हाइड्रास के साथ कस्तूरी का व्यवहार करके बहुत ही आशानुरूप फल प्राप्त किये गये हैं। डाक्टर स्टिल Still (१६०६) ने इसमें क्लोरल हाइड्रास (२॥ से ५ रत्ती अवस्थानुसार) और टिंक्चर आफ मस्क (१० से ३० बूँद) की गुदवस्ति देने की अभ्यर्थना

की है। रक्तसंचार की गिरती हुई गति (Failing circulation) एवं हृत्स्फुरण (Palpitation of the heart) में भी हृदयोत्तेजक रूप से, यह विश्वास करके, इसका उपयोग किया गया है, कि यह रक्तचाप और नाड़ी की गति को सुधारती है। प्लेगजन्य हृन्नैर्बल्य (Cardiac asthenia) में काश्मीरी डाक्टर मित्रा (१८९८) ने कस्तूरी को अतीव उपयोगी पाया। उन्होंने कस्तूरी चूर्ण का व्यवहार कराया जो अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुआ। तो भी उक्त औषध की उपादेयता के सम्बन्ध में यह विश्वास दिनों दिन बदलता जा रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप जहाँ कस्तूरी ब्रिटिश फार्माकोपिया और संयुक्त राज्य अमेरिका की फार्माकोपिया (U. S. P. IX.) में सम्मत थी वहाँ अब यह दोनों ही फार्माकोपिया से निकाल दी गई है।

भारतीय चिकित्सक गण आज भी टिंक्चर मस्क (मृगमदासव) का प्रचुरता के साथ उपयोग करते हैं। वात सांस्थानिक अवसादावस्था में हृदयोत्तेजक रूपेण और वाजीकरणार्थ वे इसे १० से ३० बूँद तक उपयोगित करते हैं। डाक्टर चोपड़ा लिखते हैं—"निरोग और रोगी शय्यागत (Experimental and Clinical) दोनों प्रकार के हमारे निजी परीक्षणों एवं प्रयोगों द्वारा कस्तूरी वर्णित हृदय बलवर्द्धक एवं रक्तस्थ श्वेताणुवर्द्धक गुणों की पुष्टि नहीं होती है। यत्किंचित् उत्तेजक प्रभाव इसमें निहित हो सकता है वह संभवतः परावर्त्तित रूप से होता है और वह घ्राण नाड़ियों द्वारा उसकी तीक्ष्ण गंध के कारण और आमाशय से तद्गत श्लैष्मिक कला पर उसके किंचित् क्षोभक प्रभावोत्पादन के कारण होता है। सुतरां हमने यह अवलोकन किया है कि जिन रोगियों को कस्तूरी की एक मात्रा दी गई थी, उन्होंने आमाशयगत ऊष्मा एवं सुस्थता का अनुभव किया है और इससे परावर्त्तित रूप से श्वासप्रश्वास एवं हृदयको किंचित् उत्तेजना प्राप्तहो सकती है। अपस्मार, कंपवात तथा शिरवाक्षेप में इसकी अमोघास्रता में आस्था रखने के लिये कोई आधार-प्रमाण दृष्टिगत नहीं होता है। योषापस्मार के वेगों (Hysteriform attacks) में संभवतः बहुत करके यह हिंगु और जटामांसी प्रभृति उग्र गंधी द्रव्यों की ही भाँति प्रभाव करती है। कुक्कुर खाँसी और आंत्रशूल (Colic) में इसका प्रभाव बिलकुल उड़नशील तैल युक्त वस्तुओं के प्रभाव की तरह होता है।

कर्नल चोपड़ा पुनः कहते हैं—हम अपने निरीक्षणों (Observations) से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारतवर्ष में देशी औषधियों में कस्तूरी को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है। इसमें शरीर क्रिया विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से कोई विशेष गुण नहीं है।"

सुगंध रूप में भी कस्तूरी का प्रयोग सबसे पहले हमारे ही देश में शुरू हुआ। फिर विदेशी लोगों ने सुराघटित कर वा अन्य सुगंध द्रव्यों के योग से इसके प्रयोग की अनेक अभिनव रीतियाँ आविष्कृत कीं। परन्तु सुगंध रूप में कस्तूरी का व्यवहार करने के लिये तत्सम्बन्धी विशेष अभिज्ञान आवश्यक है।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कस्तूरिका रसे तिक्ता कटु श्लेष्मानिलापहा।
विषघ्नी दोषशमनी मुखशोषहरा परा॥

अन्यच्च—कस्तूरी सुरभिस्तिक्ता चक्षुष्या मुखरोगजित्। किलास कफ दौर्गन्ध्यवातालक्ष्मी मलापहा॥ (ध० नि०)

कस्तूरी—रस अर्थात् स्वाद में कड़ुई, चरपरी, कफवातनाशक, विषनाशक, दोष अर्थात् वात पित्त और कफ दोषत्रय की नाशक और मुखशोष को हरण करनेवाली है।

अन्यच्च—कस्तूरी कड़ुई, सुगंधित, चक्षुष्य, मुखरोगनाशक तथा किलास, कफ, दुर्गंध, वायु, मल और अलक्ष्मी अर्थात् दरिद्रता—इनका निवारण करती है।

कस्तूरी छर्दि दौर्गन्ध्य रक्तपित्तकफापहा॥ (राज०)

कस्तूरी—वमन, दुर्गंध, रक्तपित्त और कफ नाशक है।

कस्तूरिका तु चक्षुष्या कटुवी तिक्ता सुगंधिका।
उष्णा शुक्रप्रदा गुर्वी वृष्या क्षारा रसायनी॥
किलासकुष्ठ मुखरुक्कफ दौर्गन्ध्य नाशिनी।
अलक्ष्मी मलवात तृट् छर्दि शोष विषापहा॥
शीतञ्च कासरोगञ्च नाशयेदिति कीर्तिता।
(नि० रत्ना०)

कस्तूरी—नेत्रों को हितकारी, चरपरी, कड़वी, सुगंधित गरम, शुक्रजनक, भारी, वृष्य, क्षार और रसायन है तथा किलास, कोढ़, मुखरोग, कफ, दुर्गंध, अलक्ष्मी, मल, वात, तृषा; छर्दि, शोष, विष खाँसी और शीत का नाश करती है।

कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः।
कफवात विषच्छर्दि शीतदौर्गन्ध्यशोषहृत्॥
(भा० पू० १ भ०)

कस्तूरी—कड़ुई, चरपरी' कुछ खारी, उष्ण वीर्य, शुक्रजनक और भारी है तथा यह कफ, वात, विष, वमन, शीत (सरदी), दुर्गन्ध और शोष रोग का नाश करती है।

चक्षुष्या मुख दोषघ्नी किलास कुष्ठघ्नी च।
(मद०)

कस्तूरी—नेत्रों को हितकारी, मुखरोग तथा दोषत्रय की नाशक और किलास एवं कोढ़ को दूर करनेवाली है।

युनानी मतानुसार—

प्रकृति—मासरजोया के मत से मुश्क द्वितीय कक्षा में उष्ण और तृतीय कक्षा में रूक्ष है। कोई-कोई इसके विपरीत कथन करते हैं। शेख़ के मत से यह द्वितीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष है। किंतु उष्णता की अपेक्षा रूक्षता किंचित् अधिक होती है, सारांश यह कि रौक्ष्य द्वितीय कक्षांत तक होता है। गीलानी के अनुसार यह जितना पुराना पड़ता जाता है इसमें उतनी ही उष्णता घटती और रूक्षता बढ़ती है।

हानिकर्त्ता—युनानी चिकित्सा तत्वविदों के कथनानुसार यह उष्ण प्रकृति को असात्म्य है। प्रायः यह शिरःशूल और नकसीर उत्पन्न करता है। विशेषतः उष्ण प्रदेश और उष्ण ऋतु में तो उष्ण प्रकृति वालों का कदापि इसका सेवन न करायें। इसके अतियोग से मुखमण्डल पीला पड़ जाता है। इतने पर भी वैद्य लोग इसके निरंतर सेवन करने का उपदेश करते हैं, और कहते हैं कि यह पुरुषों को सात्म्य है। यह आश्चर्य की बात है। सदा भोजन में मिलाने से मुखमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती है और बुद्धि मंद होजाती है। इसके सूँघने से उष्ण प्रकृति वालों के मस्तिष्क को हानि पहुँचती है। यह दाँतों को भी हानिकर है। इसकी गंध कासजनक होती है। दर्पघ्न—कपूर और गुलाब। किसी-किसी के मत से एतज्जन्य उष्णता और रूक्षता का निवारण क्रमशः कपूर और रोग़न बनफ्शा, गुलरोगन प्रभृति तर रोगनों से करें, मुखदौर्गन्ध्य निवारणार्थ इसके सेवनोपरांत करफ्स व अजमोदा चाव लें। दाँत के लिए बंशलोचन और गुलाब दर्पघ्न हैं। प्रतिनिधि—द्विगुण अंबर, डेवढ़ा साज़िश हिन्दी और वातव्याधियोंमें तिगुना जुन्दबेदस्तर। किसी-किसी ने इसकी एकमात्र प्रतिनिधि मर्ज़ंगोश लिखी है। मात्रा—४। जौ भर से १॥। माशे तक। डाक्टर २॥ रत्ती से ५ रत्ती तक देते हैं।

नोट—नाफ़ागत कस्तूरी की शक्ति तीन वर्ष तक स्थिर रहती है। परंतु नाफ़े से बाहर निकाली हुई कस्तूरी की शक्ति केवल एक वर्ष तक शेष रहती है।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह तिक्त, उष्ण, गुरु, वाजीकरण, बल्य, शीतनिवारक, कफनाशक, वातनाशक, वमन रोधक, देह की सूजन उतारने वाला, मुखदुर्गंधिनाशक, और घ्राणदोषनाशक है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

मुश्क (मुस्क तिब्बती)—वाजीकरण, शीघ्र पतन को दूर करनेवाला तथा (तवहुश) और खफ़कान, चिंता, मालीखोलिया, हृदय की निर्बलता, लकवा, कंपवात, विस्मृति और पक्षाघात (फ़ालिज) आदि रोगों को दूर करता तथा प्रकृतोष्मा को उद्दीप्त करता है। (मुफ़० ना०)

मुश्क तारल्य (लताफ़त) पैदा करता, अपने प्रभाव से मन को उल्लसित करता तथा हृदय, मस्तिष्क एवं समग्र उत्तमांगों को शक्ति प्रदान करता है। यह कामोद्दीपन करता, प्रकृतोष्मा की

वृद्धि करता वाह्याभ्यंतरिक ज्ञानेन्द्रियों को निर्मल एवं विकारशून्य करता और शीघ्रपतन दोष का निवारण करता है। किंतु गीलानी के मतानुसार यह शीघ्र स्खलन दोष उत्पन्न करता है। यह समस्त प्रकार के वत्समाभ विष एवं अन्यान्य स्थावर और जंगम विषों का अगद है। यहाँ तक कि कोई कोई दवाउल् मिस्क को इस काम के लिये इसे तिर्याक़ (अगद) से बढ़कर मानते हैं। यह पक्षाघात (फ़ालिज) लक़वा, कंपवायु,विस्मृत, हृत्स्पंदन (ख़फ़कान), उन्माद, बुद्धि विभ्रम, (तवह्हुश) और मृगीको लाभकारी है यह अवरोधोद्घाटन करता, सांद्र दोषों को द्रवीभूत करता और वात का अनुलोमन करता है। इसके सूँघने से नज़ला आराम होता है। यह सर्दी के सिर दर्द को लाभ पहुँचाता है। इसके नेत्र में लगाने से दृष्टिमांद्य, धुंध, जाला और क्लिन्नता (दमआ) नष्ट हो जाता है। यह नेत्र की (रतूवत) को शुष्क कर देता है। औषधियों की शक्ति को नेत्रपटलों में पहुँचाता है। योनि में इसे धारण करने से गर्भधारण होता है। यदि इसे थूक में घिसकर इन्द्री के ऊपर लेप करें और इसे सूखने के उपरांत स्त्री सहवास करे, तो दम्पतियों को आनन्द प्राप्त हो। मुश्क १ मा०, चिड़ा की अस्थि का मज्जा १ तोला (चिड़ा की अस्थिगत मज्जा के अभाव में उतनी ही शशा की अस्थिगत मज्जा ग्रहण करें) इन दोनों को ४ माशे रोगन बनफ़्शा के साथ मिलाकर स्त्री की योनि में हमूल करने से गर्भ रह जाता है। मुश्क के द्वारा औषधि वीर्य शरीर के सुदूरवर्ती स्थानों तक पहुँच जाता है। खाने से ही नहीं प्रत्युत इसके सूँघने से भी शीत प्रकृतिवालों के मस्तिष्क को उपकार होता। बूढ़े आदमियों को तथा शीत प्रकृतिवालों को एवं शरद् ऋतु में सेवनीय है। निरंतर चिंताकुल एवं कापुरुषों को इसका सेवन करना चाहिये यह अतिसार नाशक है। कोई-कोई कहते हैं कि यह हृदय को शक्तिप्रदान करके रेचनौषधों की विरेक शक्ति को निर्बल करता है। किसी किसी के मत से इसे रेचनोषधों में इस कारण सम्मिलित करते हैं कि यह संशोधन में पूर्णता लाने का कारण बनता है। रात्रि में सोते समय इसे तकिये के नीचे रखने से रात्रिस्वेद का निवारण होता है।

(ख० अ०)

नपुंसकता एवं वातनाड़ियों की दुर्बलता में भी आशातीत लाभ होता है। जननेन्द्रिय पर इसका स्थाई प्रभाव पड़ता है। यह कामोद्दीपक है और शीतकाल में इसके सेवन से शीत नहीं प्रतीत होती, पाचनशक्ति बढ़ जाती है और शरीर की प्रत्येक निर्बल शक्तियाँ इसके सेवन से बलप्राप्त करती है।

भोजन के उपरांत यदि वमन हो जाता हो, तो इसके सेवन से बंद हो जाता है। यह उदरीय गौरव, कामला तथा खर्ज्जू का नाश करती है। इसके सेवन से शरीर में अत्यंत स्फूर्ति उत्पन्न होती है। इससे क्षुधा एवं वीर्य की वृद्धि होती है और ज्वर एवं कंप का नाश होता है। इससे दृष्टि को शक्ति प्राप्त होती है। यह व्यंग व झाँई आदि का नाश करती, अवरोधों का उद्घाटन करती स्थौल्य को दूर करती, तथा शुक्रप्रमेह, पूयमेह राजयक्ष्मा, जीर्णकास, दौर्बल्य और नपुंसकता में उपकार करती है। आक्षेप एवं शरीर की खिंचावट मिटाने के लिये पान में रखकर कस्तूरी सेवन करना चाहिये। श्वास रोगी को यह आर्द्रक स्वरस के साथ सेवनीय है। मक्खन के साथ कस्तूरी सेवन करने से कुक्कुर खाँसी नष्ट होती है। इसे मालकँगनी के तेल में चटाने से मृगी दूर होती है (ख० अ०)

कस्तूरी अत्यन्त उष्ण और रूक्ष तथा प्रबल उत्तेजक है। इसे खाते ही जहाँ यह रक्त में मिलती है, इससे उत्ताप जनन होता है और तापमान बढ़ने लगता है, इसलिये हृदय और नाड़ीकी गति तीव्र हो जाती है; धमनियों में प्रसार होता है और नाड़ीमंडल उत्तेजित हो उठता है। जो अवयव निष्क्रिय होने लगते हैं, नाड़िगत उत्तेजना के कारण उनमें पुनः क्रिया होने लगती है और एक बार चैतन्योदय होता है। कभी कभी तो इसका प्रभाव स्थायी होता है। जो अंग कार्य करना बन्द कर देते हैं, इसके सेवन से वे पुनः सजीव होकर अपना कार्य संपादन करने लग

जाते हैं। यह श्लेष्मकला तथा आंगिक शोथ को अपनी शक्ति से शमन कर देती है। कभी कभी बढ़े हुये श्लेष्म में, श्वास के आवर्त्त में तथा न्युमोनिया के कारण कंठगत श्लेष्मा के अटक जाने पर एक-दो मात्रा थोड़ी देर के पश्चात् देने पर अत्यन्त चमत्कार पूर्ण प्रभाव दृष्टिगत होता है। रोगी की अवस्था एक दम बदल जाती है। वह सुख अनुभव करने लगता है। इसी प्रकार जब सन्निपात के रोगी की नाड़ी क्षीण हो रही है, शरीर शीतल पड़ गया है, मस्तिष्क ज्ञानशून्य होने लगता है, उस समय कस्तूरी का आश्चर्यजनक प्रभाव होता है। इसकी एक दो मात्रा से ही वह होश में आने लगता है।

कस्तूरी वातजन्य रोगों में, यथा-अर्धांग, लकवा फालिज़, पक्षाघात आदि जिसमें नाड़ी मंडल कार्य रहित हो जाता है—अत्यन्त उपयोगी वस्तु है। उक्त रोग के कारण जो अंग शिथिल पड़ जाते हैं, वे इससे पुनः सजीव होने लगते हैं।

(१) मदनी। रा० नि०। (२) लोमश-विडाल। ध० नि० सुवर्णादि ६ व०। (३) सहस्रवेधी। (४) धतूरे का पौधा। धुस्तूर वृक्ष। वै० निघ०।

कस्तूरीक-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] करवीर वृक्ष। कनेर।

कस्तूरीकाण्डज-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] मृगनाभि। मुश्क।

कस्तूरीगुटिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] आयुर्वेद में एक वटी जिसमें कस्तूरी पड़ती है। जैसे, स्वर्ण भस्म १ भा०, कस्तूरी २ भा०, चाँदी भस्म ३ भा०, केसर ४ भा०, छोटी इलायची ५ भा०, जायफल ६ भा०। वंशलोचन ७ भा०, जावित्री ८ भा० लेकर ३-३ दिन तक बकरी के दूध और पान के स्वरस में घोटकर २-२ रत्ती की गोलियाँ प्रस्तुत करें।

गुण तथा सेवन विधि—इसे मलाई के साथ सेवन करने से शुक्रक्षय, शहद से प्रमेह और पान में रखकर खाने से शिथिलता नष्ट होती है।

कस्तूरी दाना-संज्ञा पुं [हिं०] मुश्कदाना। लता-कस्तूरी।

क़स्तूरीन-[यू०] जुन्दबेदस्तर।

कस्तूरा भूषण रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का योग।

निर्माण विधि—शुद्ध पारद, अभ्रभस्म, सोहागा भूना, सोंठ, कस्तूरी शुद्ध, पीपर, दन्ती-मूल, जया बीज (भंग बीज), कपूर और मिर्च इन्हें समान भाग लेकर चूर्ण करें। पुनः अदरख के स्वरस की सात भावना देकर मर्दन करें।

गुणतथा उपयोग विधि—इसे अदरख के स्वरस के साथ दो रत्ती प्रमाण खाने से वात, कफ मन्दाग्नि, त्रिदोष जनित घोर कास-श्वास, क्षय-रोग, ऊर्ध्व जत्रुगत रोग, विषम ज्वर, शोथ तथा पित्त श्लेष्म की अधिकता नष्ट होती है और यह शुक्र, ओज और बल की वृद्धि करता है। (भै० र०)

कस्तूरी भैरव रस (मध्यम)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] उक्त नाम का एक आयुर्वेदीय योग।

निर्माण विधि—मृत वंग भस्म, खपरिया शुद्ध, कस्तूरी, स्वर्णभस्म, चाँदी भस्म इन्हें पृथक् पृथक् समान भाग एक कर्ष लें। कान्त भस्म १ पल, हेमसार (धत्तूर घन सत्व), पारद भस्म, लौंग और जायफल प्रत्येक २-२ तो० इन्हें उत्तम प्रकार से चूर्ण करके द्रोणपुष्पी, नागवल्ली दोनों के स्वरस से सात भावना दें। पुनः इस रस में दो तोले कपूर और दो तोले त्रिकुटा का चूर्ण मिलाकर रख लें।

मात्रा—१-७ रत्ती।

गुण—इसके प्रभाव से वातोल्वण-सन्निपात, महाश्वास, श्लेष्म रोग, त्रिदोषजन्य घोर सन्निपात, विकृत गर्भाशय और शुक्रप्रमेह, विषम ज्वर, कास, श्वास, क्षय, गुल्म, महा शोथ और राजयक्ष्मा इस तरह नष्ट होता है, जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है। र० सं०, र० सु०। अ०, ज्वर० चि०।

कस्तूरी भैरव रस (बृहत्)-संज्ञा पुं० [सं० पु०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय योग।

निर्म्माण विधि—मृगमद (कस्तूरी), शशि (कर्पूर), सूर्य्य (ताम्र भस्म), धातकी (धौ पुष्प) शूक शिम्बी (कौंच बीज), रजत (चाँदी भस्म), कनक (सुवर्ण-भस्म), मुक्ता (मोती) विद्रुम (मूंगा), लौह भस्म, हरिताल शुद्ध,

अभ्रक भस्म, पाठा, विडंग, नागरमोथा, सोंठ, नेत्रवाला और आमला इन्हें समान भाग लेकर आक के पके हुये पत्तों के रस में एक दिन अच्छी तरह मर्दन कर तीन रत्ती प्रमाण की गोलियाँ बना लें।

गुण तथा उपयोग-विधि—यह सर्वज्वर नाशक है। इसे आर्द्रक स्वरस के साथ खाने से विषमज्वर दूर होता है, तथा द्वन्द्वज, भौतिक, कायसंभूत, अभिचारज और शत्रुकृत ज्वर को भी नष्ट करता है। जीरा, बेल गिरी और मधु के साथ भक्षण करने से आमातिसार, संग्रहणी और ज्वरातिसार दूर होता है और यह कास, प्रमेह, हलीमक, जीर्णज्वर, सततज्वर, नवज्वर, आक्षेप (हिष्टीरिया), भौतिक और चातुर्थिक ज्वर को नष्ट करता तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। यह प्रायः सभी ज्वरों में उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(भै० र०)

कस्तूरी भैरव रस (स्वल्प)-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का प्रसिद्ध आयुर्वेदीय योग।

निर्माण विधि—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, टंकण भूना, कोषफल (जायफल), जावित्री, मिर्च, पीपल और उत्तम शुद्ध कस्तूरी समान भाग लेकर उत्तम विधिवत् चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा—१-२ रत्ती।

गुण—इसे उचित अनुपान के साथ ग्रहण करने से दारुण सन्निपात रोग का नाश होता है।

(भै० र० ज्वर चि०, र० सा० सं०)

कस्तूरी मल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] मृगनाभि। कस्तूरी। वै० निघ०। (२) एक प्रकार का मल्लिका-पुष्प वृक्ष जिसमें से मृगमद वा कस्तूरी की सी गंध आती है। गुण में यह वार्षिका वा बेले के फूल आदि के तुल्य होती है (रा० नि० व० १०) यह दो प्रकार की होती है—एक लता सदृश और दूसरी एरण्ड वृक्ष के समान। दोनों में फल-फूल आते हैं। पुष्प और फल के बीज में मनोहर गंध रहती है। केश मलने के मसाले में इसका बीज पड़ता है।

कस्तूरीमृग-संज्ञा पुं० [सं० पु०] एक प्रकार का हिरन (पार्थिव मृग) जिसकी नाभि से कस्तूरी निकलती है। यह हिंदुस्तान में काश्मीर, नेपाल, आसाम, भूटान, हिंदूकुश तथा देवदारू के वनों में और हिमालय के अगम्य शिखरों पर गिलगित से आसाम तक ८००० से १२००० फुट की ऊँचाई तक के स्थानों तथा रूस, तिब्बत, चीन के उत्तरी पूर्वी खंड और मध्य एशिया में उत्तर साइबेरिया तक के हिमाच्छन्न पार्वतीय प्रदेशों अर्थात् बहुत ठंडे स्थानों में पाया जाता है। सह्याद्रि पर्वत पर भी कस्तूरी मृग कभी कभी देखे गये हैं। परन्तु अभी तक मंगोलिया, तिब्बत, नैपाल, काश्मीर, आसाम एवं चीन के अंतर्गत सुरकुटान तथा बैकाल के पार्श्ववर्त्ती स्थानों में ही कस्तूरीमृग से मृगनाभि निकालने की प्रथा है। इनमें तिब्बत के मृग की कस्तूरी अच्छी समझी जाती है।

यह मृग अपना एक भिन्न ही वंश और जाति रखता है। यह हिरन से कुछ छोटा, डीलडौल में साधारण कुत्ते के बराबर और प्रायः ढाई फुट ऊँचा होता है। यह बहुत चंचल छलाँग मारने वाला, बड़ा डरपोक और निर्जनप्रिय होता है। इसका रंग स्याही मायल धूएँ कासा वा काला होता है जिसके बीच बीच में लाल और नीली चित्तियाँ होती हैं। इसकी सींग साँफर की तरह होती है और सींग में एक छोटी सी शाखा होती है। दुम प्रायः नहीं होती, केवल थोड़े से बाल दुम की तरह होते हैं। खाल के बाल बारहसिंगे की तरह होतेहैं। कुचलियों की जगह दो सफ़ेद लम्बे हुलाली शकल के दाँत होते हैं जो ठुड्ढीके नीचे तक पहुँच जाते हैं। इसकी टाँग बहुत पतली और सीधी होती है जिससे कभी कभी घुटने का जोड़ दिखाई नहीं पड़ता। जाड़े में जब ऊँचे पहाड़ों पर बरफ़ पड़ जाती है, तब यह नीचे के प्रदेशों में उतर आता है। इन्हीं दिनों में इसका शिकार होता है। यह हिमाच्छादित शीत प्रधान प्रदेशों में रहता है। यह अत्यंत उष्ण प्रकृति होता है। अतएव उष्ण प्रधान प्रदेशों में इसका जीवनधारण कठिन होता है। बरफ़ के नीचे जो बारीक बारीक घास जमती है, उसे यह रात में वा संध्या समय चरता है। यह दिन में बाहर नहीं निकलता।

इसकी विशेष दो जातियाँ हैं। एक एण और दूसरी कस्मर। एण जाति का मृग प्रायः नैपाल

तिब्बत की ओर होता है और कस्मर जाति का मृग काश्मीर, कुल्लू, पित्ती, लाहौल आदि की ओर होता है। कस्मर की अपेक्षा एण जाति का मृग बड़ा और कुछ वर्ण में भूरा श्वेत होता है।

'मृगनाभि' कस्तूरी मृग की जननेन्द्रिय के ठीक सामने, नाभि के पास, उदर देश के भीतर, एक झिल्लीदार थैली—ग्रंथि वा गाँठ (Preputial follicles) से निकलती है और सुगंधि केवल नर हिरन में ही रहती है। यह सुगन्धि द्रव्य कस्तूरी मृग के नाभि देश से प्राप्त होता है। इसलिये भारतवर्ष में कस्तूरी के साथ साथ इसे "मृगनाभि" वा "नाफ़ा" भी कहते हैं।

कस्तूरी के युवावस्था प्राप्त होने पर उक्त ग्रंथि के जीवकोष अन्तः रसस्रावी ग्रंथि-सेलों की भाँति एक प्रकार के रस का निर्माण करने लग जाते हैं। पहले कस्तूरी का रंग किंचित् लाल और कुछ कुछ काला रहता है। यह जीवित मृग में बहुत गीला होता है। किंतु जब मृग मारा जाता है और उसकी नाभि भिन्न करली जाती है, तब वह घन होने लगता है और क्रमशः धीरे धीरे कृष्ण-वर्ण दानेदार पदार्थ के रूप में परिणत होता जाता है और कस्तूरी कहलाता है।

इन जानवरों की नाभि में कस्तूरी की उपस्थिति केवल जोड़ खाने की ऋतु (Rutting season) में जबकि इनमें यौवन-स्पृहा जागृत होती है, पाई जाती है और निःसंदेह यह मादा को आकर्षित करने के हेतु से ही प्रकृति की ओर से उसे प्राप्त होती है। हिरन में एवं हिरन की सहचरी हिरनी में जब यौवन-स्पृहा जागृत होती है, तब हिरन से कस्तूरी अधिक परिमाण में निकलती है। और वह वर्ष भर में केवल एक मास का काल ऐसा है जिसमें उसकी ग्रंथि में कस्तूरी वर्तमान होती है। वह काल जाड़े का पूरा जनवरी भर का मास ऐसा है जिसमें मृग जोड़ा खाता है और उसी समय इसकी नाभि में अधिक मात्रा में कस्तूरी नामक सुगंध द्रव्य संचित मिलता है।

अस्तु; अधिकाधिक परिमाण में कस्तूरी प्राप्त्यर्थ, इसी मास में शिकारी लोग मृग का आखेट करते हैं। साल की अन्य ऋतुओं में इससे कस्तूरी की उपलब्धि नहीं होती। जहाँ कस्तूरी मृग रहता है वहाँ चातुर्दिक् दूर तक उसकी सुगंधि फैली रहती है। शिकारी लोग इसी गंध के अनुसरण से अपना शिकार खोजते हैं।

कस्तूरीमृग निपट जंगली एवं भोंड़ा होता है। यह संघबद्ध होकर नहीं रहता; किंतु नर-मादा प्रायः एक साथ रहते हैं। दिन में हिरन अपने को छिपाये रहते हैं। केवल एक बार संध्या समय और एक बार सूर्योदय के पूर्व आहार की खोज में बाहर निकलते हैं। इनका शिकार सहज नहीं। यह पार्वत्य प्रदेश में पीछा करने वाले शिकारी कुत्तों को पीछे छोड़कर खूब तीव्र गति से दूर निकल जाते हैं। शिकारी कुत्ता उन्हें पकड़ नहीं सकता। यह हिरन वर्ग जहाँ निवास करता है, वहाँ चारों तरफ सुदृढ़ बाड़ी लगाई जाती है और बीच-बीच में उनके यातायात के लिये खाली जगह छोड़ देते हैं। प्रत्येक खाली जगह के मुहाने पर फंदा लगा रहता है। इन्हीं फंदों पर शिकारी लक्ष रखते हैं क्योंकि इस ओर से तनिक भी असावधान रहने पर कस्तूरी की तीव्र गंध से खिंचकर बड़े-बड़े मांसाहारी जीव इनका सुस्वादु मांस चट कर जाते हैं और फिर वहाँ कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। कस्तूरी अधिक हो वा कम, शिकारी फंदे में फँसे हुए सभी हिरन की हत्या करके मृगनाभि संग्रह करते हैं। परंतु चीनी व्यापारियों के कथनानुसार सर्वोत्कृष्ट प्रकार की कस्तूरी की उपलब्धि फंदे में फँसाये हुये मृगों से नहीं होती है अपितु जोड़ खाने की ऋतु समाप्त हो जानेके उपरांत जब वे मृग अपनी नाभि अपने उठने बैठनेके निश्चित स्थानों पर ग्रंथि को विदीर्ण करके तज्जात सुगंध द्रव्य को भूमि पर बिखेर देते हैं। उस समय उनका शिकार करके कस्तूरी संगृहीत की जा सकती है। किंतु इस प्रकार की कस्तूरी की प्राप्ति सुसाध्य नहीं होती है। अतएव बाजार में क्वचित् ही देखी जाती है।

हिरन का गोली से शिकार करने पर यद्यपि उपलब्ध कस्तूरी की मात्रा अत्यल्प होती है। पर उसकी गंध इतनी प्रबल और तीक्ष्ण होती है कि बहुत दूर से मालूम की जा सकती है। इस ताजी

कस्तूरी से निकल कर फैली हुई प्रबल तीव्र गंध का वात संस्थान; दृष्टि और श्रवण पर अत्यंत प्रभाव पड़ता है। अतएव लोगों का कथन है कि शिकारियों को बहुधा उससे असह्य यातनायें भुगतनी पड़ती हैं। इसकी मस्त सुगंध में वे सुध-बुध भूल जाते हैं।

शिकार करने पर इसकी नाभि काट ली जाती है। नाभि वा नाफ़ा एक झिल्लीदार थैली है जिसके अंतरपट में छोटे २ अनेक छिद्र होते हैं। इनसे कस्तूरी उद्भूत होती है और उक्त थैली के पार्श्व में रहनेवाली परिचालक थैली में इसका संचय होती है। इन थैलियों को देखने पर पार्श्व भाग चपटा दिखाई पड़ता है। कभी २ यह पार्श्वस्थ चमड़ा जननेन्द्रिय पर्यन्त कस्तूरी थैली सहित सब काटकर बेचने को ले आते हैं। कभी थैली और पार्श्वस्थ चमड़ा जननेन्द्रिय पर्यन्त कस्तूरी थैली सहित सब काटकर बाहर निकालते हैं। कस्तूरी एक नीले परदे की थैली में रहती है। इसलिये कस्तूरी को 'नील कस्तूरी' नाम से अभिहित करते हैं। यह नीला परदा अत्यन्त सूक्ष्म और पतला होता है अतएव कस्तूरी में बनावटी वस्तुओं का सम्मिश्रण करना सहज काम नहीं है। नील कस्तूरी इसी नीले परदे के कारण खूब शुद्ध और अच्छी समझी जाती है तथा अधिक मूल्य पर बिकती है।

असली मृग नाभि वा नाफ़े के आधे भाग पर ही बाल होते हैं, क्योंकि नाफ़ा मृग की नाभि के भीतर रहता है और उसको निकालते समय नाभि स्थल को चीरकर उस नाभिग्रंथि को भिन्न करते हैं तो उसका आधाभाग उदर के भीतर होता है उस भाग की खाल बिलकुल साफ होती है। उसपर कोई बाल नहीं होते, किंतु उसके बाह्य वा अधोपृष्ठ के केन्द्र में एक छोटा सा छिद्र होता है। जिसको चतुर्दिक् खाकी रंग के कड़े बालों की एक भौंरी सी होती है। इस थैली या नाफ़े के भीतर बहुसंख्यक कोष होते हैं, जिनमें कस्तूरी के कण भरे रहते हैं। यह नाफा नर और युवा कस्तूरा की नाभि में ही पाया जाता और विविध आकृति का होता है। इनमें से कोई गोल अण्डाकृति और चिपटा कटोराकृति प्रायः १॥ इंच व्यास का होता है। कटोराकृति को कटोरी और गोल को बैजा कहते हैं। नाफ़े का मुख वा द्वार सुपारी के समीप होता है। ताज़ा नाफ़ा हाथ से दबाने पर पिचक जाता है और उसे दबाकर यह मालूम किया जा सकता है कि उसमें कितना माल है और कितना खाल।

प्राणि की अवस्था के साथ नाभिस्थ द्रव्य का बहुत गहरा संबंध होता है। प्राणि के अवस्था भेद से नाफ़ागत द्रव्य वा क़स्तूरी की मात्रा में भी भेद हुआ करता है अर्थात् जैसे जैसे प्राणी की अवस्था बढ़ती जाती है, वैसे वैसे क्रमशः नाभिस्थ सुगंध-द्रव्य की मात्रा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अतः एक वर्षीय मृग-शिशु के नाफ़े में मुश्किल से कोई कस्तूरी होती है। परंतु वही द्विवर्षीय किशोर मृग-शिशु में इसकी मात्रा एक आउंस का अष्टमांश हो जाती है और वह क्षीरवत् एवं अप्रिय गंधि होती है। तदुपरांत यौवन उपस्थित होने पर कस्तूरी में वही प्रायः १–२ आउंस तक हो जाती है और ६–७ वर्ष की आयु तक बराबर रहती है। $\frac{1}{3}$ आउंस से $\frac{1}{2}$ आउंस तक के कस्तूरी पूर्ण नाफ़ों के नमूनों का मिलना तो एक साधारण बात है। यह आयु भाग व्यतीत होने के उपरांत पुनः कस्तूरी मृग में नाभि का अस्तित्व नहीं रहता।

कहते हैं कि दिसम्बर सन् १९११ ई० में महाराज नैपाल की ओर से महाराजाधिराज जार्ज पंचम को जो उपहार भेंट किये गये थे, उनमें ६–६ तोले के कस्तूरीके नाफ़े भी थे। एक नाफ़े में सामान्यतः २॥ तोले (आधी छटाँक से लेकर पाँच तोले तक) कस्तूरी निकलती है।

मृगनाभि बहुमूल्य वस्तु है। बाजार में इससे काफी दाम मिलते हैं। इसी हेतु इस हतभाग्य क्षुद्र जीव—कस्तूरी मृग का निर्दयता पूर्वक संहार किया जाता है। अनुमानतः कम से कम कस्तूरी की २२ थैलियों के एकत्र होने पर भट्टी (One caty =$1\frac{1}{3}$ पौंड) की सामग्री तैयार होती है। सुतराम् एक भट्टी की सामग्री में २२ नर हिरनों का संहार होना चाहिये। परन्तु बात इसके विपरीत होती है। अर्थात् भट्टी कस्तूरी के लिये २२ की जगह ३०–३२ हिरनों की मृत्यु होती है।

कारण यह है कि कस्तूरी की थैली केवल युवा हिरन के उदर में होती है। एवं दूर से देखने पर नर और मादा हिरन की रूपाकृति में कोई अंतर नहीं जान पड़ता। अस्तु, एक भट्टी की सामग्री—मृगनाभि प्राप्त्यर्थ शिकारी लोग लोभ के वशीभूत होकर बिना विवेक-बुद्धि के काम लिये छोटे बड़े, नर-मादा सभी हिरनों की हत्या कर डालते हैं। इस प्रकार आवश्यकता से कहीं अधिक निर्दोष जीवों की हत्या हो जाती है। हिसाब लगाया गया है कि केवल एक अचिनलू शहर से प्रतिवर्ष २००० भट्टियों का चालान बाहर जाता है। अतएव वहाँ प्रतिवर्ष ६०,००० मृग मृत्यु की घाट उतरते हैं। इसके अतिरिक्त एक साथ काटानसिंग, वालांग इत्यादि नगरों के वार्षिक चालान पर दृष्टि निःक्षेप करने से पता चलता है, है, कि वहाँ प्रतिवर्ष १००००० एक लक्ष मृगों के प्राण विनष्ट किये जाते हैं। इसके सिवा भारतवर्ष में ही तथा सुदूर पूर्व में इसका बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग होता है। औषध के अतिरिक्त सुगंधियों में भी इसका प्रचुर प्रयोग होता है। फ्रांस इसका सबसे बड़ा खरीदार है। कुल निर्यात का लगभग $\frac{1}{3}$ तो केवल फ्रांस ही खरीदता है। कस्तूरी के व्यापारिक महत्व का कुछ निर्देश इस वस्तुस्थिति से भी प्राप्त हो सकता है, कि केवल चीन से निर्यात कस्तूरी का मूल्य ७०,००० पौंड और १००,००० पौंड के मध्य न्यूनाधिक हुआ करता है, जो उस वृहत् परिमाण के सामने कहने को कुछ भी नहीं है जिसकी खपत स्वयं चीन में ही हो जाती है। जहाँ यह सुगंधियों के लिये केवल इसकी ज़मीन (base) ही नहीं दी जाती अपितु उत्तेजक औषधों के उपादान स्वरूप से भी यह व्यवहार में आती है। इसके सिवाय संयुक्त राज्य (अमरीका) तथा दुनिया के अन्य भागों को भी भारतवर्ष से कस्तूरी का पर्याप्त मात्रा में निर्यात होता है। वैट के अनुसार सन् १८७८ से १८८८ ई० तक के दश वर्षीय काल में भारतवर्ष से बाहर जानेवाली निर्यात कस्तूरी का कुल परिमाण ४४,१६५ आउंस था जिसकी कीमत लगभग ११,१७५७६ रुपये होती हैं।

उपर्युक्त बातों से यह अनुमान लगाया जा सकता है, कि प्रतिवर्ष कितने अधिक जीवों की हत्या होती होगी। साथ ही इनकी जनन-क्षमता भी सामान्य होती है और ये उसी समय फँसाये एवं संहार किये जाते है, जब इनमें यौवन स्पृहा जागृत होती है। अस्तु, यदि विना (अर्थात् जोड़ खाने की ऋतु में) किसी रोक टोक के इसी प्रकार इनकी मृत्यु का क्रम चलता रहा, तो कतिपय प्रकृति सेवियों द्वारा कथित भावी भय के अनुसार भविष्यत में इनका वंशही पृथ्वी से सर्वथा विलुप्त हो जायगा और फिर कस्तूरी का प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ होगा।

कहते हैं लगभग छः वर्ष हुये दक्षिण-पूर्वगत सारंग के लामा लोगों ने इनकी वंश-रक्षा के हेतु, यह राजाज्ञा प्रचारित की थी कि जो शिकारी कस्तूरी मृग की हत्या करता हुआ देखा जायगा, वह मंदिर के किवाड़ों पर दोनों हाथ छेदकर लोह शलाका में विद्ध कर दिया जायगा। लामा के उक्त प्राणदंड स्वरूप कठिन दंड विधान के रहते हुये तिब्बत की सीमा से वार्षिक कस्तूरी की आय की मात्रा पर्य्याप्त थी।

अब यह विचारणीय है कि बिना हत्या किये कस्तूरीमृग से मृगनाभि संग्रह की जा सकती है अथवा नहीं? यदि इन प्राणियों को जंगल से पकड़ कर किसी खुली जगह में बाड़े के अंदर बंद किया जावे तो कस्तूरी नहीं मिलेगी। पर हाँ इन्हें किसी एक बड़े जंगली स्थान में बन्द करने के बाद इनसे कस्तूरी प्राप्त करने की कोई पद्धति निकाली जा सकती है। यह जीव अनेक समय धूप में लेटकर विश्राम करता है। उस समय इसके शरीर में जहाँ कस्तूरी रहती है वह स्थल भली भाँति देख सकते हैं और किसी उपयुक्त पद्धति से बिना उत्पीड़न के कस्तूरी प्राप्त की जा सकती है।

कस्तूरीमृग के पर्य्या०—कस्तूरीमृगः, कस्तूरी हरिण, मृगनाभि हरिणः, गन्धमृग, गन्धवाह —सं०। कस्तूरिया हिरन; कस्तूरा मृग; कस्तूरी मृग, कस्तूर, कस्तूरा, कस्तूरिया, कस्तूरिया मृग, —हिं०। आहूए मुश्की, आहूए खुतन —फ़ा०।

८० फ़ा०

हिरन मुश्की, कस्तूरिया हिरन, –उ०। मस्क डियर Musk deer –अं०। मॉस्कस मॉस्कि फेरस Moschus Moschiferus –ले०। (Class–Ruminatia)ला; लव (तिब्बत) रौस –(काश्मीर)। वेना (कुनावर)। पेशौरी –मरा०।

गुणधर्म तथा उपयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

इसके मांसमें भी मुश्क की सी बड़ी मस्त गंध आती है, कि यह खाया नहीं जाता, जहाँगीर ने अपने तज़क में लिखा है कि मैंने कस्तूरी मृग का मांस पकवाया यह अत्यन्त कुस्वादु था, किसी भी वन्य चातुष्पद जीवका मांस ऐसा बदमज़ा नहीं पाया। नाफ़ा ताज़ा निकला हुआ सुगंधित नहींथा। चंदरोज़ रहकर और सूखकर खुशबू देने लगा। मादा के नाफ़ा नहीं होता।

(ख़० अ० ६ भ० पृ० २८३)

इसका मांस मधुर, लघु, आध्मान जनक, क्षुधा जनक और बहुत गरम है। मादा का मांस शीतल है और ज्वर, कास, रक्तविकार तथा श्वासकृच्छ्रता निवारक है। (तालीफ़ शरीफ़ी)

कस्तूरिया हिरन का मांस मधुर, हलका और आध्मानकारक है तथा भूख बढ़ाता है। कस्तूरिया हिरन की मादा का मांस शीतल है तथा कास एवं रक्तविकार को प्रशमित करता है।

(ख० अ०)

कस्तूरीमोदक–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक प्रकार का आयुर्वेदीय मोदक जिसका पाठ रसेन्द्रसार संग्रह के प्रमेहाधिकार में आया है। योग इस प्रकार है—कस्तूरी, प्रियंगु, कटेरी, त्रिफला, दोनों जीरा; पका केला, खजूर, काला तिल (कृष्ण तीलक), तालमखाना के बीज इनको बराबर २ १–१ मा० लेकर चूर्ण करें, जितना यह चूर्ण हो, उससे दूनी चीनी लेवें, पुनः जितना यह सब चूर्ण ठहरे, उससे चौगुना सम्मिलित आँवले का रस दूध और पेठे का रस मिलाकर मंद-मंद अग्नि से पाक प्रस्तुत करें। इसकी मात्रा १० माशे की है।

(र० सा० सं०)

कस्तूरी रस–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक आयुर्वेदीय रसौषधि।

योग—लोहभस्म १ भा०, गंधक २ भा०, पारद ३ भा०, और कस्तूरी ४ भा०, पहले कस्तूरी को छोड़कर शेष औषधियों को एक साथ भली भाँति घोटे, फिर इसमें पीपर के काढ़े की भावना देकर अच्छी तरह घोट लें और एक गोला बनाकर सुखा लें। पुनः इस गोले को वालुकायंत्र में रखकर तीन दिन मंदाग्नि से पाक करें। जब स्वयंशीतल हो जाय तो गोले को निकाल कर उसमें कस्तूरी मिला अच्छी तरह मर्दन करें।

मात्रा—३ रत्ती। अग्निबल के अनुसार १६ पीपल के चूर्ण और शहद के साथ प्रत्येक रोग में देवें। इसके सेवन करने वाले के लिये लवण त्याज्य है।

गुण—यह वृद्धतानाशक, अत्यंत वृष्य और वाजीकरणहै। इसके सेवन से क्षुधा की वृद्धि होती है। यह स्त्रियों को वश में करनेवाला है।

कस्तूरीवल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] लताकस्तूरी। मुश्कदाना। भा०।

कस्तूरी हरिण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कस्तूरिया मृग। आहूये मुश्की। मृगनाभि हरिण। वै० निघ०।

क़स्तूरून क़स्क़स–[यु०] कुर्तुम। कड़। बर्रे।

कस्तूर्यादि चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक आयुर्वेदीय चूर्णौषधि।

योगादि—कस्तूरी, अम्बर, स्वर्णपत्र, मोती, रौप्यदल (बर्क चाँदी) प्रवाल; इन्हें समान भाग लेकर एक उत्तम खरल में जो घिसनेवाला न हो, उसमें डालकर बारीक चूर्ण बनाकर इसमें सर्वतुल्य मिश्री मिलाकर खाने से तत्काल समस्त प्रमेहों को नष्ट करता है। और १०० वर्ष की अवस्था प्राप्त होती है। इसको सेवन करने वाले प्राणी अश्व तुल्य स्त्री रमण में समर्थ होता है। इसकी मात्रा वयोबल और प्रकृतिके अनुकूल १-४ मासे तक है।

कस्तूर्यादि स्तम्भन–संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तम्भनौषधि विशेष।

योगादि—कस्तूरी १ भा०, कश्मीरी केशर २ भा०, जायफल १ भा०, लौंग १ भा०, अफीम ३ भा०, भांग ७ भा०। इन सबका बारीक चूर्ण करके

३ रत्ती की मधु में गोली बनाकर जिनके गृह में सैकड़ों स्त्रियाँ हों, उनके इच्छापूर्ति हेतु इसे सेवन करें।

कस्तूल-[देश०] झाँकरा (मरा०)। काला किरायत (पश्चिम भारत) Haplanthus verticillaris, *Nees.* H. tentaculatus, *Nees.* (फः० इं० ३ भ०)

क़स्तूलीतुस-[यू०] ज़रावंद दराज़। ज़रावंद तवील।

क़स्तूस-[यू०] जंगार।

क़स्तूस अतारूस-दे० "क़स्तू अतारूस"।

कस्तेल-[बम्ब०] Hydnocarpus alpina, *Wight.* तुवरक भेद। तोरटी (मरा०)। (इं० ड्रू० इं०)

कस्तोत्पाटन-[ ] अड्सा।

क़स्द, क़सद्-[?] एक कंटकाकीर्ण वृक्ष। उसज। कहते हैं कि मूसा अलेह अस्सलाम की छड़ी-(असा) इसी वृक्ष की लकड़ी का बना था।

क़स्दः, क़सदः-[?] वह पत्र और शाखाएँ जो प्रथम काँटेदार वृक्ष में से फूटें।

क़स्दोर-[अ०] राँगा। क़लई। वंग। (नफ़ासुल्लुग़ात)

कस्न-[फ़ा०] मटर। (२) ख़ुश्क बाक़ला।

कस्न हिंदी-[फ़ा०] चिचड़ी। क़ुराद।

कस्ना, कस्नान-[फ़ा०] मटर। (२) सूखा हुआ बाक़ला।

कस्नाक-[?] मूँगा। प्रवाल।

कस्नाज-[ ] कासनी।

क़स्नारूस-[यू०] उसारहे लह्यतुत्तीस।

क़स्नालक-[ ] दार चिकना।

क़स्नासीस-[यू०] एक प्रकार का लबलाब जिसके पत्ते चौड़े होते हैं।

कस्नी-[कासनी का संक्षिप्त रूप] कासनी।

कस्नूबरून-[यू०] फ़ाशरा।

कस्पत-[पं०] त्रुम्ब० पं०। चीन (बं०)।

कस्पत्ता-[दं०] मोगबीरे का पत्ता। (Anisomelos Malabarica, *R. Br.*) गावज़बाँ (बम्ब०)।

कस्परज-[फ़ा०] मोती। मुक्ता।

कस्पेरीई कार्टेक्स-[ले० Cuspari æ Cortex] अंगस्तूरा छाल। अंगस्तूरा वल्कल।

कस्पेरिया फेब्रिफ्युजा-[ले० Cuspariai Febrifuga] अंगस्तूरा वृक्ष।

कस्पेरिया बार्क-[अं० Cusparia Bark] अंगस्तूरे की छाल। दे० "अंस्तूरा बार्क"।

क़स्फः, क़सफ़ः-[ ] ख़राब ऊँट।

कस्फ़ा-[ ] कुत्ता।

कस्फ़ार मिश्रा-
कस्फ़ार मक़ा- } [अ०] फ़ादज़हर का नाम।

कस्फ़ीर-[यू०] सौसन सफ़ेद। जंगली सौसन।

क़स्ब-[अ०] सूखा और अधपका छोहारा।

कस्बज-[कस्बः का मुअ०] खली। कंजारः।

कस्बर-[फ़ा०, यू०] ज़ुफ़्फ़।

[सिरि०] सफ़ेद सौसन।

कस्बरज-दे० "कस्परज"।

क़स्बतुरियः-[अ०] फुफ्फुस प्रणाली। हवा की नली। क़सबहे हवाइयः। क़सबः। Trachia, *Wind* Pipe

क़स्बतुल् अन्फ़-[अ०] नासावंश। नाक का बाँसा। Bridge of the Nose.

क़स्बहे कुब्रा-[अ०]

कस्मः-[तु०] चपाती।

कस्मार-[संथाल] गंभारी। काश्मरी।

कस्मरु-[सं०] कास। विंदाक।

क़स्म, क़सम-[अ०] टिड्डी का अंडा।

क़स्मोहूर-[यू०] लकड़बग्घा। कक्रतार।

कस्मूक़ा, कस्म्युका-[नब्ती] एक अप्रसिद्ध घास। कसमुका।

नोट—मसऊदी ने किताबे-समूम (विष-तंत्र) में लिखा है कि यह एक बूटी है जो भूमि पर आच्छादित होती है और जिसका छत्ता अत्यन्त छोटा तर्जनी उँगली और अँगूठे के फैलाव के बराबर होता है। इसके पत्ते मरुए के पत्तों के सदृश होते हैं और उनमें चेंप होता है। इसका स्वाद उस बेर का सा होता है जो अभी क्षुद्रतर एवं कषाय हो। इस बूटी को सुखा रखते हैं। गुण में यह उष्ण और रूक्ष है। बिच्छू के डंक मारने

पर इसको जल में पीसकर खिलाने से तत्क्षण लाभ होता है।

ख़० अ० । ना० मु० ।

कस्मूनी–[सिरि०] द्राक्षा बीज । मुनक्का का बीया । तुख़्म मवेज़ ।

कस्य–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुरा । मदिरा । हला० ।

कस्यः–[?] रासू । नेवला ।

क़स्या–[यू०, रू०] तज । सलीख़ा ।

क़स्यूसियूस–[रू०; यू०] तज । सलीख़ा ।

कस्यूमालस–[?] अप्राप्य ।

क़स्र.–[अ०] (१) जड़ और विशेषतः खजूर की जड़ । (२) कोताही । संकोच । (३) समीपता । निकटता । (४) स्थान । मौक़ा व महल ।

कस्र–[अ०] धात्वर्थ भञ्जन अर्थात् टूटना वा तोड़ना । आयुर्वेद की परिभाषा में हड्डियों अथवा उनके जोड़ों का टूट जाना । अस्थि भग्न ।हाशिमः (अ०) । Fracture.

नोट—वह अस्थिभग्न जो अस्थि के चौड़ाई के रुख़ होता है अरबी में 'कस्र' और जो लंबाई के रुख़ होता है 'स़द्अ़' कहलाता है ।

कस्र इन्ख़िफ़ाज़ी–[अ०] हड्डी का दब जाना । इस प्रकार के अस्थि भग्न में हड्डी टूटकर नीचे को दब जाती है । Depressed Fracture.

कस्र इन्शिक़ाक़ी–[अ०] हड्डी का फट जाना । हड्डी का चिर जाना । इस प्रकार के अस्थिभग्न में हड्डी टूटती नहीं, अपितु आघात पहुँचने के कारण वह चिर जाती है । Fissured Fracture.

कस्र कामिल–[अ०] निःशेष भग्न । पूर्ण अस्थिभग्न । हड्डी का बिल्कुल टूट जाना । हड्डी का दो टुकड़े हो जाना । Complete Fracture.

कस्र जुज़्ई–[अ०] आंशिक भग्न । हड्डी का ज़रा सा टूटना । हड्डी का मुड़ जाना । यह भी वस्तुतः एक प्रकार का 'कस्र इन्शिक़ाक़ी' है, जिसमें अस्थि वृक्ष की हरी शाखा की तरह बीच से किंचित् चिर जाती है वा मुड़ जाती है, पर टूटती नहीं ।

Partial Farctune, Green stick Eracture.

कस्र..तू–[अ०] आधिक्य । प्राबल्य । बहुतायत । ज़्यादती ।

कस्र तर्फ़ी–[अ०] हड्डी के सिरे का टूट जाना । इस प्रकार का अस्थिभग्न प्रायः दीर्घास्थियों में हुआ करता है, जिसमें हड्डी का ऊपरी वा नीचे का सिरा टूट जाता है । अस्थि शीर्षभग्न ।

Epiphysial Tracture.

कस्र..तुत्तम्स..–[अ०] अतिरज रोग । असृग्दर । ग़ज़ारतुत्तम्स..–अ० । Menorrahagia.

कस्र..तुत्तर्फ़–[अ०] जल्दी जल्दी आँख झपना । अत्यधिक आँख झपकना । Nictitation ।

कस्र..तुन्निफ़ास–[अ०] शिशु प्रसवोत्तर मल अधिक आना । निफ़ास की अधिकता ।

Lachiorrhoca.

कस्र..तुल् अक्ल–[अ०] अत्याहार । सर्व भक्षण । बहुत खाना । सब कुछ जा जाना ।

Polyphagia.

कस्र..तुल् अ़र्क़–[अ०] अत्यधिक स्वेद आना । बहुत पसीना होना । स्वेदाधिक्य ।

कस्र..तुल् इस्क़ात़–[अ०] बार बार गर्भपात होना ।

Frequent abortion.

कस्र..तुल् बौल–[अ०] बहुमूत्र । मूत्रातिसार । अधिक पेशाब आना । Polyuria.

कस्र..तुल्लब्न–[अ०] स्तन्याधिक । स्तनों में अत्यधिक दूध उत्पन्न होना । Galactorrhoea.

कस्र..तुल्लुआब–[अ] अधिक थूक आना । लालाधिक्य । एक रोग जिसमें अत्यधिक थूक आती या राल बहती है । कभी कभी नींद में इतनी राल बहती है कि तकिया भी तर बतर हो जाता है ।

Salivation, Ptyalism.

कस्र..तुल् अजलाअ्–[अ०] बारतंग ।

फा० इं० ३ भ० ।

कस्रबवा–[?] मेंहदी का तेल । रोग़न हिना ।

क़स्राक़–[तु०] घोड़ी का नाम । कंजुल् लुग़ात् ।

कस्रानी–दे० "कसरानी" ।

कस्री चावेल–[?] जंगली चमेली ।—ख़० अ० ।

क़स्रु.न्नफ़स–[अ०] साँस का जल्दी जल्दी और कष्ट से आना । साँस फूलना । हाँफना । श्वासकृच्छ्रता । कोताहदमी ।

Anhelation, Panting.

क़स्रुन्नारंज–[अ०] नारंगी का छिलका। संतरे का छिलका।

क़स्रुल् अक़ाक़िया–[अ०] बबूर त्वक्। बबूल की छाल।

क़स्रुल् बसर–[अ०] निकटदृष्टि रोग। क़स्रुन्नज़र। Short sightedness, Myopia.

क़स्ल–[?] बेर-वृक्ष का फूल। बदर पुष्प। बेर का फूल।

क़स्लअ्–[?] कमीला। कबीला।

कस्लस–[सिरि०] इंद्रायन। इनारून।

कस्लान्–[अ०] आलसी। काहिल। सुस्त।

कस्वा–[हिं०] कालादाना।

क़स्स, क़स्स–[अ०] [बहु० क़स्साइस्] धात्वर्थ वक्ष का मध्य भाग। कोड़ी। शारीरिक की परिभाषा में वक्षोऽस्थि। उरोऽस्थि। सीना की हड्डी। Sternum

कस्सई वीज–[बम्ब०] सङ्कुरु–हिं०। गुरगुर–बं०।

कस्सचरा–[बं०] लांगली। ईशलांगुली–बं०।

कस्सम–[पंचमहल] कोसम।

कस्सर–[उ० प० प्र०] (१) केसारी। केराव। (२) अम्लवेल। अम्लपर्णी। गिदड़ द्राक, गीदड़ दाख। Vitis Aarnoa (३) अमलोलवा। ग्वालियालता। Ctleshy uitldvina (Vitis Trifolia)

कस्सव–[भा० वा०]

कस्सा–संज्ञा पुं० [सं० कषाय] (१) बबूल की छाल जिससे चमड़ा सिझाते हैं। (२) वह मद्य जो बबूल की छाल से बनता है। ठर्रा। (३) खेसारी। केराव।

कस्सा चना–संज्ञा पुं० दे० "केसारी"।

क़स्सार–[अ०] रजक। धोबी।

कस्सी–[हिं०] खाजा (पौधा विशेष)।

कस्सू–संज्ञा पुं० [देश० कोस्सू (एबिसिनिया)] एक विदशीय वृक्ष जिसके पत्ते आड़ू की पत्ती की तरह और शिरा व्याप्त होते हैं। नोक की तरफ़ से पतले और ऊपर की ओर चौड़े होते हैं। इसमें छोटे छोटे फूलों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पदंड लगभग एक फुट लंबा अत्यंत शाखा प्रशाखा विशिष्ट होता है। पुष्पदंड और तद्गत शाखाएँ वक्राकार (Zigzig), लोमश और ग्रंथिल होती हैं।

इसमें नर और मादा पुष्प पृथक् पृथक् होते हैं। नर फूल का रंग भूरा और मादा का लाल होता है। पुष्प का बहिः भाग, जो हरी टोपी के नाम से प्रसिद्ध है, पाँच भागों में विभक्त होता है। पुष्पी दल अर्थात् पँखड़ियाँ लंबी या लंबी और नुकीली तथा शिराबहुल होती हैं। महँक चाय की सी हरायँध, स्वाद तिक्त, तीक्ष्ण क्षोभक उत्क्लेश कारक और अप्रिय होता है। इन फूलों को दबाकर गट्ठे या लपेट कर लंबी गड्डियाँ बना लेते हैं जो १–२ फुट लंबी होती हैं।

पर्य्या०—कस्सो –हिं०। कस्सू –गु०, बम्ब०। कस्सा, कोस्सो, कोसू, Cusso Cousso, Kousso –(एबिसिनिया) यह आंग्ल भाषा में भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। ब्रेयरा ऐन्थेलिमण्टिका Brayera Anthelmintica, Kunth- हैजीनिया एबिसिनिका Hagenia Abyssinica, *Lam* –ले०। अल् उश्बतुल् हबशिय: (अ०)।

टिप्पणी—एबिसिनिया की भाषा के कोस्सो का अर्थ 'कृमिघ्न' होता है। क्योंकि उक्त औषधि भी कृमिघ्न होती है। इसलिये इस नाम से अभिहित हुई। वैज्ञानिक भाषा में इसका नाम ब्रेरा ऐन्थेलिमण्टिका है। ब्रेयर (Brayer) वस्तुतः कुस्तुन्तुनिया का एक फरासीसी चिकित्सक था, जिसने उक्त औषध के कृमिघ्न गुण के विषय में एक पुस्तिका की रचना की थी। अस्तु, उसके सम्मान हेतु उन्हीं के नाम पर, इसका नाम भी ब्रेयरा रख दिया गया। इसकी हैजीनिया संज्ञा कोलिग्सवर्ग निवासी डॉक्टर हैजेन के गौरवरक्षार्थ डॉक्टर लेमार्क ने रखी है, जिन्होंने सन् १८११ ई० में इसका विवरण प्रकाशित किया था।

गुलाब वर्ग

(*N. O. Rosaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—एबिसिनिया (अफरीका)

औषधार्थ व्यवहार—शुष्क पुष्प स्तवक

रासायनिक संघटन—इसमें कोसीन (Kosin) वा कोसोटॉक्सीन (Kosotoxin) नामक एक प्रभावकारी सत्व होता है। इसके

अतिरिक्त इससे निर्यास, राल, वैनिक एसिड आदि अवयव वर्त- मान होते हैं।

यह (Toenia Solium) कृमिनाशक है। इसके सद्यः प्रस्तुत शीत कषाय की मात्रा १२० से २४० ग्रेन (८ से १६ ड्राम=½ आउंस से आधा आउंस) है। यह गर्भपातक भी है।

इतिहास—यह एक विदेशीय ओषधि है। अतएव आयुर्वेदीय निघंटु ग्रंथों में उक्त ओषधि का उल्लेख नहीं मिलता है। अधुना जब से यूरोप में इस ओषधि की माँग होने लगी है, तब से एबिसिनिया से अदन होकर बंबई में इसका निर्यात होने लगा है। एबिसिनिया (अफ्रीका) में स्फीतकृमि निःसरणार्थ उक्त ओषधि बहुत प्राचीन काल से उपयोग में आ रही है। परन्तु युरुपीय डॉक्टर ब्रूस ने सन् १७७३ ई० में सर्व प्रथम इस बात का पता लगाया। सन्१८११ ई० में डॉक्टर लेमार्क ने उक्त ओषधि का स्वरूप वर्णन किया और सन् १८२० ई० में यह यूरुप में प्रविष्ट हुई तथा सन् १८६४ ई० में ब्रिटिश फार्मा कोपिया में सम्मत हुई। इसके १५–२० वर्ष पश्चात् संभवतः उक्त ओषधि भारतवर्ष में पहुँची। परंतु वर्तमान काल में बंबई में इसका निर्यात घट रहा है। इससे यह प्रतीत होता है कि यूरुप में इसकी माँग बहुत कम हो रही है। ब्रिटिश फार्माकोपिया से भी अब यह पृथक् कर दी गई है।

गुण धर्म तथा प्रयोग

डीमक—डॉक्टर जॉन्सन के कथनानुसार इसकी क्रिया इतनी तीव्र होती है कि इससे प्रायः गर्भपात घटित होता है। इतना ही नहीं, अपितु इससे कभी कभी गर्भवती नारियाँ मृत्यु के घाट भी उतरती हैं। कहते हैं कि इससे कभी कभी कठिन उदरशूल होता है, पर साधारणतया इसकी क्रिया उतनी कष्टप्रद नहीं होती। प्रत्युत इससे थोड़ी मिचली मालूम होकर, प्रथम मलयुक्त और तदुपरांत जलीय मलोत्सर्ग होता है।

एरिना के अनुसार उक्त गुण भेद, कालानुसार एतद्गत राल के मात्रा भेद पर निर्भर करता है। स्फीत कृमिनाशक (Tœnia Solium, *T. bothriocephalus*) अखिल औषधियों में से कोई भी ओषधी इतनी गुणकारी नहीं होती है। पर शर्त यह है कि फूल ताज़े हों, क्योंकि यह बहुत शीघ्र विकृत हो जाते हैं। साधारणतया इससे कृमि मरे हुये निकलते हैं।

एबिसिनिया निवासियों की उपयोग विधि यह है–जल वा मदिरा (Beer) में इसका शीतकषाय प्रस्तुत करते हैं अथवा ४ से ६ ड्राम की मात्रा में इसके फूलों के चूर्ण को शहद में मिलाकर प्रातः-काल सेवन कराते हैं और दिन में खाने को कुछ नहीं देते, इससे साधारणतः २–४ घंटे के भीतर बिना दस्त आये और बिना किसी प्रकार की वेदना वा उदरशूल के कृमि निर्गत हो जाते हैं। आवर्ट (Anbert) और एङ्गलमैन (Engleman) उल्लिखित उक्त वर्णन से उपर्युक्त वर्णन का खंडन होता है।

युरूप एवं हमारे देश में इसका निम्न भाँति प्रस्तुत शीतकषाय व्यवहार किया जाता है। यथा–२ ड्राम कस्सू के फूलोंका चूर्ण चार फ्लुइड आउंस उबलते हुये पानी में डालकर ढँक कर ठंढा होने तक पड़ा रहने देवें। ठंढा होने पर इसे बिना छाने ही पियें।

डॉक्टर क्रॉस (Krans) के अनुसार २५ ग्राम कस्सू खाली पेट लेमूनेड के साथ सेवन करें और उसके एक घण्टा बाद एरण्ड तैल पिलावें, इसका स्वाद और गंध अप्रिय होती है और किसी प्रकार सनाय की चाय के समान होती है। अस्तु, यह शर्करा घटित दानादार चूर्ण रूप में किसी सुगंधित शीतकषाय के साथ सेवनीय होती है। (फा० इं० १ भ० पृ० ५७१)

हिटर्ला—अधिक मात्रा में सेवन करने से कभी कभी स्फीत कृमियों (Tœnia Solium) और कृमि विशेष (Bothriocephalus) को नष्ट करता है। सामान्य प्रयुक्त मात्रा में इससे प्रायः विरेक नहीं आते, पर यह सरल संपर्क द्वारा कृमियों (Parasites) को नष्ट करता है।

चार आउंस उबलते हुए पानी में २ से ४ ड्राम कस्सू द्वारा प्रस्तुत शीत कषाय बिना छाने

एक बार में पी जायें। संदेह रहित निश्चित प्रभावोत्पादनों के सभी अन्य कृमिघ्न औषधियों की भाँति इसे खाली पेट सेवन करें और इसे सेवन करने के तुरत बाद मृदुसामक औषध देवें। इससे कृमि मृत और प्रायः खंड खंड होकर निर्गत होते हैं। इसका कोसोटॉकनीन सामक प्रभावकारी सत्व प्रबल विष (Protoplasmic poison) है।

कोस्सूचूर्ण को अर्द्ध पाइंट उबलते हुये पानी में पंद्रह मिनिट तक क्लेदित करके बिना छाने नीहार मुँह रोगी को पिलायें। इसके तीन-चार घंटे बाद या दूसरे दिन हलका विरेचन देवें। भेषज सेवन से पूर्व यदि रोगी मलत्याग कर चुका हो, तो और उत्तम हो, भेषज सेवनोत्तर जब तक कृमि निर्गत न होजाँय, रोगी को उपवास करावे। यदि भोजन सेवन करने के उपरांत रोगी का जी मिचलाने लगे तो उसे किंचित् लेमनेड (मीठा पानी) पिलावें।

तीनों प्रकार के अन्त्राकार कृमि (Tape worm) के लिये कस्सू सर्वोत्कृष्ट कृमिघ्न औषध है। इसके उपयोग से उक्त कृमि शीघ्र नष्ट होजाते हैं।

क़ह्:-[अ०] ताज़ा दुहा हुआ दूध।

कृहत-संज्ञा पुं० [अ० क़ह्त्] (१) दुर्भिक्ष। अकाल। (२) पौधा।

कहनः-[अ० । काहन का बहु०]

कृहन्दरस, कृहन्दरूस-[यू०] चिलगोज़ा।

कहबङ्ग-[पं०] वनबण्डा।

कृहम्-[अ०] भूख की कमी। आहार की ओर रुचि की न्यूनता।

कहरबा-दे० "कहरुवा"।

कहरुबा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रसिद्ध यूनानी औषधि। दे० "कहरुवा"। (२) सफ़ेद डामर। Vateria India, *Linn.*

कहरुबा शमई-संज्ञा पुं० [फ़ा०] कहरुवा भेद। कहरबा शमई। दे० "कहरुवा"।

कहरुवा-संज्ञा पुं० [फ़ा० कहरुबा] एक प्रकार का गोंद स्वच्छ अत्यन्त चमकदार और रंग में पीला होता है। इसे कपड़े आदि पर रगड़कर यदि घास या तिनके के पास रखें तो उसे यह चुम्बक की तरह पकड़ लेता है। उक्त भौतिकी आकर्षण शक्ति के कारण ही विद्युच्छक्ति को "क़ुव्वत कहरुबाइया" कहा जाता है। यह प्रायः बरमा की खानों तथा कतिपय अन्य खानों से भी निकलता है। आधुनिक रसायनशास्त्र के अनुसार इसमें कार्बन ७८.६४, उदजन. १.५३ और ओषजन १०.५३ पाया जाताहै। रूमी और तिब्बती भेद से यह दो प्रकार का होता है। इन दोनों में अपेक्षाकृत रूमी उत्तम होता है। उत्तम कहरुबा की पहिचान यह है कि वह कड़ा, स्वच्छ-उज्ज्वल और स्वर्ण-पीत वर्ण का हो और देर में पिघले यदि उसे हाथ से रगड़े और वह गरम हो जाय तो उससे नीबू के रस की सी सुगन्ध आवे और घास के तिनके, रेशम और रुई को उठावे। चीन देश में इनको पिघला कर माला की गुड़ियां, मुँह नाल इत्यादि वस्तुएँ बनाते हैं। इसकी बारनिश भी बनती है।

पर्य्याय—कहरुवा, कहरुबा शमई, काहरुबा-फा०, हिं०। कपूर-द०। कर्तुलबहर, मिस्बाहुर्रूम इन्किसरियून, समगुल बहर-अ०। कर्पूरमणि-ता०। कर्पूर-यूत-ते०। पायिड, परें बर०। Succinum or amber.-ले०।

टिप्पणी—कपूर की दक्खिनी संज्ञा 'कापूर' है न कि कपूर। परन्तु उक्त संज्ञा द्वय के लगभग समानोच्चारण के कारण, लोग प्रायः भूल से शब्दप्रयोग की बारीकी न समझने से उनका परस्पर एक दूसरे के लिये व्यवहार कर देते हैं। रियाज़ुल अदविया में इसको हिन्दी संज्ञा 'कपूर' लिखी है।

वक्तव्य

एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार कहरुबा एक कड़ी, आभा-प्रभायुक्त स्वच्छ वस्तु है जो निर्गंध और बेस्वाद होती है। आचार्य फिलिप कहते हैं कि प्रुशिया के समीपवर्ती किसी खान से एक लकड़ी निकलती है उसमें कहरुबा होता है। शेख़ बू अली सेना आदि ने लिखा है कि यह एक वृक्ष का गोंद है। यह वृक्ष बहुत उच्च होता है और इसे 'हौज' वा 'हौर' कहते हैं, इसकी लकड़ी

आगपर रखने से रोगन बलसां के सदृश एक प्रकार का रोगन (तेल) टपकता है। साहब जामा का कथन है कि जिन लोगों ने जालीनूस और दीसकूरीदूस के ग्रन्थों का यूनानी भाषा से आरब्य भाषा में उल्था किया था, उन्होंने कहरुबा को हौर का गोंद समझने में भूल की है। क्यों कि जालीनूस ने हौर के प्रसंग में लिखा है—"इसका फूल अत्यन्त बलशाली और तृतीय कक्षा में उष्ण है, इसका गोंद फूल की अपेक्षा भी अधिक उष्ण और क़वी है।" परन्तु कहरुबा में इस कदर गरम कोई चीज नहीं है। दीसकूरीदूस का कथन है—"हौर का गोंद तोड़ने वा हाथ से मलने से सुगन्धि आती है" किन्तु कहरुबा में सुगन्ध का सर्वथा अभाव होता है अस्तु, उक्त कथनद्वय से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि कहरुबा हौज का गोंद नहीं, क्यों कि कहरुबा में वे गुण कहाँ, जो हौज के गोंद के सम्बन्ध में वर्णित हुए हैं। अर्थात् कहरुबा में न उक्त शक्ति एवं उष्णता ही है और न वह सुगन्धि। गाफिकी के अनुसार कहरुबा दो प्रकार का होता है। एक वह जो रोम देश और पूर्वीय प्रदेशों से आता हैं और दूसरा जो स्पेन के नदी-कूलस्थित पश्चिमीय नगरों से प्राप्त होता है। यह एक वृक्ष की जड़ के समीप से, जिसे 'दोम कहते हैं, प्राप्त होता है।

अर्थात् उनके मत से यह एक रतूबत है जो दोम (गूगुल मक्की) नामक पेड़ से मधु की तरह टपकती है और फिर जम जाती है। उक्त वर्णन के उपरांत साहब जामा अपने स्वकीय अन्वेषण के आधार पर लिखते हैं कि जब दोम का वृक्ष जमीन से फूटता है, तब उसके पत्ते से एक प्रकार की रतूबत टपकती है जो जमने से पूर्व शहद की तरह होती है और तदुपरांत उक्त आकार ग्रहण कर लेती है। जब उस (कहरुबा) को तोड़ते हैं तो भीतर से मक्खियाँ, कंकरियाँ और तृण इत्यादि पदार्थ निकलते हैं जो उसके टपकने की जगह संयोगवश वर्तमान होते हैं और उसमें मिल जाते हैं। इससे ज्ञात हुआ कि कहरुबा गोंद नहीं, अपितु रस है। उक्त कथन की असत्यता तो केवल एक इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि 'दोम' जिसे हिन्दी में गूगल का पेड़ कहते हैं और जो भारतवर्ष में बहुतायत से होता है उसके पत्तों में से कहरुबा के सदृश किसी रतूबत के टपकने के प्रमाण न देखने में आये हैं और न सुनने में। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में इसी प्रकार के कतिपय और वर्णन ये हैं—कोई कोई कहते हैं कि पश्चिम के द्वीपों में से यह एक सोते का पानी है जो जमकर ऐसा हो जाता है। किसी किसी के मत के अनुसार यह एक प्रकार का मुहरां हैं जो पश्चिम की नदियों से निकलता है। परन्तु उक्त सभी कथन निराधार एवं भ्रमात्मक हैं।

गंज बादावर्द में लिखा है कि किसी किस्म का कहरुबा पीताभ रक्तवर्ण का होता है और कोई कोई रक्ताभ पीत वा श्वेताभ पीत होता है। इसकी शुद्धाशुद्धि की पहिचान, इस प्रकार है—इसको वस्त्र पर यहां तक रगड़े कि, यह गरम हो जाय। फिर इसे तृण के समीप ले आयें। यदि यह उसे उठा ले; तो शुद्ध अन्यथा अशुद्ध। इसमें प्रायः संदरूस की मिलावट करते हैं। (संदरूस वह सरल निर्यास है, जिसे देश में "चन्द्रस" कहते हैं—लेखक) पहिचान यह है कि संदरूस की भग्न सतह चमकदार होती है। प्राचीन विद्वानों के बचनों से यह प्रगट होता है कि कहरुबा और संदरूस दोनों एक ही जाति की चीज़ें हैं। इन दोनों में सूक्ष्म भेद इस प्रकार हैं—संदरूस के हाथ में अल्प मर्दन से ही जो थोड़ी गरमी प्रादुर्भूत होती है, उससे वह चुम्बक की तरह तृण को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, इसके विपरीत कहरुबा को अत्यधिक घर्षण की आवश्यकता होती है। (२) संदरूस कोमल होता है, परन्तु कहरुबा कठोर होता है। (३) कहरुबा में नींबू के रस की सी सुगंधि आती है; पर संदरूस में उक्त सुगन्धि का अभाव होता है। (४) संदरूस के रंग में रक्त वर्ण का प्राबल्य होता है; परन्तु कहरुबा के रंग में पीत वर्ण प्रधान होता है। (५) संदरूस को जलाने से हींग की सी दुर्गन्धि आती है; परन्तु कहरुबा को जलाने से उसमें से मस्तगी की महक आती है।

रियाजुल अदविया नामक ग्रन्थ में यूसफी कहता है कि कहरुबा में कड़ुआहट का अभाव होता है और यह गरम किया हुआ घास को पकड़ लेता है।

इतिहास—ईसवी सन् से प्रायः ७०० वर्ष पूर्व थैलस नामी एक हकीम हुआ है जिसने यह बतलाता कि यदि कहरुबाको किसी चीज से घिसें तो वह गरम हो जाता है। उक्त अवस्था में पक्षियों के पर और कतिपय अन्य हलकी हलकी चीजें उसकी ओर खिंच आती हैं। कहते हैं कि किसी समय यूनानी देशीय ललनायें इसे अपने वस्त्र से तृणादि झाड़ने के काम में लाती थीं। प्लाइनी ने कहरुबा और उसके गुण धर्म के विषय में एक वृहद् ग्रन्थ का निर्माण किया और उसमें उसने विद्युत् शक्ति का चुम्बक के गुण-धर्म से सामंजस्य दिखलाया। चुम्बक-मिकनातीस के गुण से उस काल में प्रायः सभी लोग परिचित थे। विलियम गिलबर्ट महाराज्ञी एलीजबथ के काल का राजकीय वैद्य था। उसने यह जानने के लिये अनेक वस्तु ले लेकर परीक्षण करना प्रारम्भ किया कि आया उनमें घर्षण द्वारा कहरुबाई शक्ति प्रादुर्भूत होती है अथवा नहीं। अनेक परीक्षणों के उपरांत अंततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि गोधूम, राजिका, मोम, जवाहिर रत्न, खनिज लवण और कई वस्तुएं कहरुबा का सा गुण धर्म रखती हैं और पाषाण, मृत्तिका, धात्विक तरल द्रव्यों तथा धूम को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। अस्तु, अब गिलबर्ट को इस बात की आवश्यकता हुई कि उक्त आकर्षण कारिणी शक्ति का कोई नाम रखें जिसमें वह भविष्य में भी उक्त संज्ञा से अभिहित होती रहे। क्योंकि सर्व प्रथम कहरुबा से ही उक्त शक्ति का प्रकाश हुआ और यूनानी भाषा में उसे एलेक्ट्रोन कहते हैं। अतः उसने उक्त शक्ति का नाम एलेक्ट्रिसिटी रख दिया।

गुण, धर्म, प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—शेख के अनुसार यह किंचित् उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। परन्तु अपेक्षाकृत अधिक समीचीन यह है कि यह शीतल एवं रूक्ष है, जैसा कि इब्न उमरान और साहब कामिल का कथन है। शेख की एक पुस्तका में इसके प्रथम कक्षा में उष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष होने का भी उल्लेख मिलता है। कोई कोई कहते हैं कि यह समशीतोष्ण और द्वितीय कक्षा में रूक्ष है। किसी किसी के मत से प्रथम कक्षा में शीतल है। परन्तु इससे कोई कोई इसे द्वितीय कक्षा में रूक्ष लिखते हैं। हानिकर्त्ता—शिर और आबाज़ को हानिकारक है। इसकी अधिकता शिरःशूल उत्पन्न करती है। दर्पघ्न—शिर तथा शिरःशूल के लिये बनफशा और आवाज के लिये बिहीदाने का लुबाब। प्रतिनिधि—संदरूस, द्विगुण गिले अरमनी, दो-तिहाई तज-सलीखा, अर्द्ध भाग, भृष्ट इसबगोल, सम भाग या द्विगुण वंशलोचन और मनोल्लास के लिये मुक्ता और ताऊन के लिये प्रवाल। मात्रा—२। माशे।

गुण, कर्म, प्रयोग—अपनी स्तम्भन कारिणी शक्ति से यह रक्त निष्ठीवन और रक्तस्रुति को अवरुद्ध करता है। यह हृदय को शक्ति प्रदान करता है; क्योंकि इसमें हृदय को शक्ति प्रदान करने का प्रबल धर्म-खासियत निहित है। और इससे रूह में जिस प्रकाश उज्ज्वलता और दृढ़ता का प्रादुर्भाव होता है वह भी उक्त खासियत की साहाय्यभूत होती है। यह औष्ण्य विशिष्ट खफकान को लाभ पहुँचाता है, क्योंकि इससे प्रकृति-साम्य उपस्थित होता है और हृदय को शक्ति प्राप्त होती है। अपनी धारक शक्ति के कारण यह संग्रहणी और प्रवाहिका-पेचिस को बन्द करता है।

यह चित्त को प्रफुल्लित करता और हृदय को शक्ति प्रदान करता है तथा बाह्यान्तरिक समस्तांगों द्वारा अतिप्रवृत्त शोणित का स्थापन करता है। पुनः चाहे वह मुख से आता हो वा मल मार्ग से, अर्श द्वारा रक्तस्रुत हो, या रक्तमूत्रता हो। उक्त समस्त प्रकार के रक्तस्रावों को कहरुवा गुणकारी है। यह नकसीर को भी लाभ पहुँचाता है। यह नेत्ररोगों को उपकारी है। खफकान, वमन, रक्तातिसार, अर्श, आमातिसार—पेचिस, आमाशय का अतिसार, मूत्र की जलन, मूत्रावरोध, और पित्तज आमाशयतिसार के निवारण का इसमें विशेष प्रभाव है, शेख के एक ग्रन्थ में ऐसा लेख

है—"हृदय उल्लास एवं शक्ति प्रदान करता और खफकान को नष्ट करता है।" इसको महीन पीसकर बुरकने से व्रण पूरण होता है। यह आमाशय, यकृत और मूत्रप्रणालियों को शक्ति प्रदान करता है तथा वृक्क एवं वस्ति की निर्बलता और कामला को कल्याणप्रद है। अग्निदग्ध पर इसका चूर्ण मिलाकर लगाने से उपकार होता है। इसे पास रखने से गर्भवती के गर्भ की रक्षा होती है। उन व्याधियों में जिनमें रक्तस्राव होता हो, जैसे रक्त निष्ठीवन, रक्तवमन, रक्तार्श और अतिरज आदि में इसकी टिकिया का योग अतीव गुणकारी सिद्ध हुआ है। तात्पर्य रक्त स्तम्भन का यह एक सामान्य नुसखा है। इसी प्रकार का एक योग यह है—

कहरुवा, बबूल का गोंद, निशास्ता, कतीरा, मग्ज तुख़्म खियारैन, (खीरे के बीज) मग्ज तुख़्म कद्दू (कद्दू के बीज) प्रत्येक १०॥ मा०, गुलनार, अकाकिया प्रत्येक ५। माशे, इनको कूट छानकर इसबगोल के लुबाब में मिला टिकिया बना लें। पाँच से सात माशे तक की मात्रा कहरुबा आमाशय को शक्ति देने की प्रबल शक्ति रखता है।

एलुआ के साथ इसे बवासीर के मस्सों पर लेप करने से वे गिर जाते हैं।

अग्नि वा उष्ण जल द्वारा दग्ध स्थल पर इसे पानी में पीसकर लेप करने से उपकार होता है। किसी अवयव में चोट लग जाने पर २। माशे कहरुबा गुलाब जल के साथ खाने और लगाने से कल्याण होता है।

इसे हब्बुल आस के साथ पीसकर लगाने से निर्बल मनुष्य का स्वेद अवरुद्ध होजाता है।

इसके लटकाने से गर्भवती के गर्भ की रक्षा होती है, थकान दूर होता है, नकसीर का खून बन्द हो जाता है, आमाशय और हृदय को शक्ति प्राप्त होती है और ताऊन—प्लेगका निवारण होता है। इसके पेट पर लटकाने से अजीर्ण में उपकार होता है।—ख० अ०।

यह समस्त बाह्याभ्यंतरिक अंगों से रक्त की अति प्रवृत्ति का रोधक है और नासारक्तस्राव एवं अति रज का निवारण करता है। यह फेफड़े पर मवाद गिरने को रोकता हृदय एवं आमाशय को बल प्रदान करता और उल्लासप्रद है तथा यह नेत्र रोग आमाशयिक अतिसार, खफकान, अर्श, प्रवाहिका, संग्रहणी और मूत्र की जलन-कड़क में उपकार करता है। लटकाने से यह गर्भ की रक्षा करता है। —मु० ना०

नोट—यूनानी पद्धति में सेवन करने वा योगों में डालने से पूर्व कहरुबा को इस प्रकार जला लेते (इहराक करते) हैं—

कहरुबा को बारीक करके या इसके छोटे छोटे टुकड़े कर मिट्टी के सकोरे में रखकर अच्छी तरह मुख बन्द करदें; फिर इसे कपड़ मिट्टी कर सुखा लें और रात को तन्दूर में रक्खें। प्रातःकाल निकाल कर बारीक खरल करके काम में लाएँ।

कहरुबा बिना जलाये भी उपयोग किया जाता है।

कामिलुस्सिनाअत में लिखा है कि कोरे कूजे में बंद करके और गिले हुर्र अर्थात् शुद्ध मिट्टी को कपरौटी कर ऐसे तनूर में रात्रि भर रखे जिसमें रोटियाँ पकाई गई हों और वह गरम हो। प्रातः काल निकाल लें।

एलोपैथी के मतानुसार सक्सीनम् (Succinum) वा अंबर (Amber) सुप्रसिद्ध राल विशेष (Tossil resin) है, जिससे विनाशक स्रवण विधि (Destructive Distiuation) द्वारा आलियम् सक्सिनी (Oleam Succini) नामक एक उड़नशील तैल प्राप्त होता है। मृगी, योषापस्मार और श्वास रोग में इसे पांच बूंदों की मात्रा में बर्तते हैं। संधिवात उपशमनोपयोगी अनेकानेक प्रकार की अभ्यंगौषधों का यह एक मुख्य उपादान है। अम्बर से विनाशक परिस्रावणक्रम (Destructive distillation process) द्वारा एक्सीनिक एसिड (Succinic acid) नामक एक अम्ल भी प्राप्त होता है। यह लौह सोडियम्, अमोनियम् और पोटासियम् के साथ मिलकर उनके लवणों का निर्माण करता है, जिन्हें सक्सिनेट्स कहते हैं। गर्भाशयिक, वृक्कीय और याकृदीय प्रभृति भाँति भाँति के शूल रोगों तथा

दूरवर्ती रक्तस्थापन रूप से भी उक्त लक्षणों—सक्सिनेट्स का व्यवहार किया गया है।

सक्सिनिक पराक्साइड (Succinic Peroxide) जिसे आलफोजोन (Alphozone) वा आलफोजैन (Alphogen) भी कहते हैं। एक श्वेत रंग का अमूर्त चूर्ण है। यह प्रबल रोगजन्तुघ्न द्रव्य है। इसके ८ ग्रेन= ४ रत्ती का एक पाइंट में बना ताजा विलयन प्रायः समस्त रोग कारक जीवाणुओं को बात की बात में नष्ट कर डालता है।—हिं० मे० मे०।

नोट—एलोपैथी में यह अनधिकृत (Non official) द्रव्य है।

(२) एक पेड़ जो दक्षिण में पश्चिमी घाट की पहाड़ियों में बहुतायत से होता है। इसे सफ़ेद डामर या कहरुवा भी कहते हैं। एक बड़ा सदा बहार वृक्ष होता है जिसका गोंद राल वा धूप कहलाता है। पेड़ से पोंछकर राल निकालते हैं। ताड़पीन के तेल में यह अच्छी तरह घुल जाता है और वारनिश के काम में आता है। इसकी माला भी बनती है। उत्तरीय भारत में स्त्रियाँ इसे तेल में पका कर टिकली चपकाने का गोंद बनाती हैं। अर्क बनाने में भी कहीं कहीं इसका उपयोग होता है। (हिं० श० सा०)

क़हल्—संज्ञा पुं, स्त्री० [अ०] रौक्ष्य। रूक्षता। शुष्कता। रूक्ष होने का भाव। (२) कृश होने का भाव। लाग़री। कार्श्य। दुबलापन।

क़हल्—[अ०] आँख के पपोटेके किनारों का पैदायशी स्याह होना।

क़हवा—संज्ञा पुं० [अ०] एक पेड़ का बीज।

पर्य्या०—म्लेच्छफल, अतंद्री—सं०। काफी, कहवा, बुन, बून—हिं०। बून, बूँद—द०। कापि, काफि—बं०। क़हवा, बुन—अ०, फ़ा०। (सीड्स आफ़) काफिया अरेबिका (Seeds of) Coffea Arabica, *Linn*—ले०। काफी Coffee—अं०। काफीस्डो' अरबी Cafeier-Arabie—फ्रां०। अरबिश्चर काफी बाम Arabischer Kaffebaum—जर०। कापि-कोट्टै—ता०। कापि-वित्तुलु—ते०। काप्पि-कुरु, बन्नु, कोपि—मल०। बोंद-बीजा, कापि-बीजा—कना०। काफि, कप्पि—गु०। कोपि-अट्ट—सिं०। काफि-सि—बर०। काफी, कफ़ूफी—मरा०। बुन—कों०। काफ़ी—बस्ब०। बुंद—मरा०, गु०। कफि—मार०।

नोट—अन्य देशी भाषाओं में इसकी अँगरेजी संज्ञा "काफी" का ही अपभ्रंश रूप में व्यवहार होता है।

कदम्ब वर्ग

(*N. O. Rubiaceæ.*)

उत्पत्ति स्थान—अरब देश काफी-वृक्ष का जन्म स्थान है। किंतु अब यह अफ्रीका, अबिसीनिया, मिस्र, हबस, लंका, ब्रेज़िल, मध्य अमेरिका आदि देशों में भी होता है। इसकी खेती भी उन देशों में की जाती है। अब इसकी खेती हिंदुस्तान में कई जगह होती है और इसकी उपज भी खासी होती है। दक्षिण भारत में मैसूर; कुर्ग, मदरास, ट्रावनकोर, कोचीन तथा नीलगिरि पर इसकी खेती होती है। यह आसाम, नेपाल और खसिया की पहाड़ी पर भी होता है।

वर्णन—कहवे का पेड़ सोलह से अठारह फुट तक ऊँचा होता है। परंतु इसे आठ नौ फुट से अधिक बढ़ने नहीं देते और इसकी फुनगी कुतर लेते हैं क्योंकि इससे अधिक बढ़ने पर फल तोड़ने में कठिनाई होती है। इसकी पत्तियाँ दो दो आमने सामने होती हैं। वृक्ष का तना सीधा होता है जिस पर हलके भूरे रंग की छाल होती है। फ़रवरी मार्च में पत्तियों की जड़ों में गुच्छे के गुच्छे सफ़ेद लंबे फूल लगते हैं जिनमें पाँच पंखुड़ियाँ होती हैं। फूल की गंध होती है। फूलों के झड़ जाने पर मकोय के बराबर फल गुच्छों में लगते हैं। फल पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। गूदे के भीतर पतली झिल्ली में लिपटे हुये बीज होते हैं। पकने पर फल हिलाकर ये गिरा लिये जाते हैं। फिर उन्हें मलकर बीज अलग किये जाते हैं। ये अंडाकार बड़े और रंग में पीताभ वा हरिद्राभ होते हैं, जिनमें एक प्रकार मृदु गंध होता है, जिस पर लंबाई के रुख़ गहरी धारियाँ होती हैं। स्वाद में यह मधुर, कषाय और तिक्त होते हैं। इन बीजों को भूनते हैं और उनके छिलके अलग करते है। इन्हीं बीजों को पीसकर गर्म पानी में दूध दिआ मिलाकर पीते हैं।

कहवे के पौधे के लिये गरम देश की बलुई दोमट भूमि अच्छी होती है तथा सब्ज़ी, हड्डी, खली आदि की खाद उपकारी होती है। इसके बीज को पहले अलग बोते हैं। फिर एक साल के बाद इसे चार से आठ फुट की दूरी पर पंक्तियों में बैठाते हैं। तीसरी वर्ष इसकी फुनगी कुपट दी जाती है जिससे इसकी बाढ़ बंद हो जाती है। इसके लिये अधिक वृष्टि तथा वायु हानिकारक होती है। बहुत तेज धूप में इसको बाँसों की टट्टियों से छा देते हैं वा इसे पहले ही से बड़े बड़े पेड़ों के नीचे लगाते हैं।

इतिहास—प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों में कहवे का उल्लेख दिखाई नहीं देता है। परन्तु अरब तथा फ़ारस देश वासियों को इसका ज्ञान अति प्राचीन काल से ही है। यह विश्वास किया जाता है कि उन्हीं के द्वारा कहवा-पान की आदत युरोप तथा अन्य देशों में प्रसारित हुई।

रासायनिक संघटन—क़हवे के सूखे हुये बीजों में १ से ३ प्रतिशत तक चाय द्वारा थेईन (Theine) नामक पदार्थ के तद्वत् काफीन (Caffeine) नामक एक प्रकार का स्फटिकीय क्षारोद होता है। इसके अतिरिक्त इसमें ये पदार्थ भी पाये जाते हैं—प्रोटीड्स (११ से १४ प्र० श०), शर्करा, लिग्युमीन (१० प्र० श०) द्राक्षौज, डेक्स्ट्रीन (१५ प्र० श०), काफियो-टैनिक एसिड (१ से २ प्र० श०), वसा, उड़न-शील तैल और भस्म (३ से ५ प्र० श०) जिसमें एलकलाइन कार्बोनेट्स एवं फास्फेट्स होते हैं।

टिप्पणी—कैफ़ीन एक प्रधान क्षारोद है, जो चाय क़हवा एवं उसी प्रकार के अन्य उत्तेजक पदार्थों जैसे कोला नट, माटी, पैराग्वे टी और ग्वाराना पेष्ट में वर्तमान होता है। यह थियोब्रोमा कोका की पत्तियों में भी विद्यमान होता है, किंतु अत्यल्प मात्रा में। काफ़ीन थीईन और ग्वारेनीन ये क्षारोद त्रय वस्तुतः एक ही द्रव्य हैं। पर ये तीन विभिन्न वृक्षों से प्राप्त होते हैं, अस्तु इनकी तीन पृथक् पृथक् संज्ञायें हैं। कैफ़ीन सन् १८२० ई० में प्रथम कहवे से और थेईन सन् १८३८ ई० में चाय से प्राप्त की गई थी। किंतु बाद को यह ज्ञात हुआ कि उक्त क्षारद्वय की बनावट एवं गुण-धर्म प्रायः समान हैं।

कैफ़ीन की औसत मात्रा जो उक्त पदार्थों से २.५ से ३% तक (यद्यपि किसी किसी क़िस्म से ४% तक) कैफ़ीन प्राप्त होती है। कहवे के फल से, जिसमें अंशतः स्वतन्त्र और कुछ मिली हुई कैफ़ीन होती है, यह कठिनता पूर्वक १.५% से अधिक पाई जाती है। इनके अतिरिक्त माटी (पैराग्वे टी) में १ से २%, ग्वाराना पेष्ट में ३ से ४% और कोला नट में लगभग ३% तक कैफ़ीन पाई जाती है। परंतु इनमें चाय ही एक ऐसा पदार्थ है जिससे औद्योगिक दृष्टि से कैफ़ीन की लगभग कुछमात्रा प्राप्त होतीहै। यद्यपि 'कैफ़ीन' रहित काफी के निर्माण क्रम में भी कैफ़ीन की प्राप्त होती है और युरिया एवं उसी प्रकार के अन्य पदार्थों से भी संयोगात्मक विधि से (Synth-etically) यह प्रस्तुत की गई है, तथापि मितव्ययता का ध्यान रखते हुये व्यापारिक लाभ की दृष्टि से इसकी प्राप्ति नहीं हुई।

"ट्राइमीथल ज़ैन्थीन" काफ़ीन की रासायनिक संज्ञा है। कोकोबटर के बीजों से जो क्षारोद (Alkaloid) प्राप्त होता है और जिसे 'थियोब्रोमीन' कहते हैं. उसकी रासायनिक संज्ञा 'डाइमीथल जैन्थीन' है। उक्त क्षारोदद्वय अर्थात् काफ़ीन और थियोब्रोमीन रासायनतः या कृत्रिम रूपसे जैन्थीन (Xanthine) से निर्मित किये जा सकते हैं। वि० दे० "चाय"।

औषधार्थ व्यवहार—फल तथा बीज। एलो-पैथी अर्थात् डाक्टरी चिकित्सा में इसका सत कैफ़ीन काम में आती है।

औषधनिर्माण—फाण्ट।

काफीना Caffeina क़हवीन

रासायनिक सूत्र

($C_8 H_{10} N_4 O_2 H_2 O.$)

आफिशल Official वा अधिकृत

पर्य्या०—अंतद्रीन, म्लेच्छफलीन (सं०)। तंद्राहर सत, क़हवीन—हिं०। शाईन (जौहर चाय), जौहर ग्वाराना, जौहर क़हवा (फ़ा०) क़हवीन, जौहर बुन (अ०)। काफ़ीना (कैफ़ीना)

Caffeina –ले० । Caffeine काफ़ीन (कैफीना), थेइन Thine, ग्वारेनीन Guaranine –अं० ।

वर्णन—एक प्रकार का निर्गन्ध वर्ण रहित रेशमी सूई की तरह की बारीक कल में जो चाय की शुष्क पत्तियों या क़हवे के शुष्क बीजों से प्राप्त होती है । इसकी प्रतिक्रिया न्युट्रल (उदासीन) और स्वाद किंचित् तिक्र होताहै । यह रासायनतः संधान-विधि (Synthetically) से भी प्रस्तुत की जाती है ।

विलेयता—यह एक भाग ८० भाग शीतल जल में, एक भाग एक भाग उबालते हुये जल में, एक भाग ४० भाग सुरासार (९०%) में, एक भाग ७ भाग क्लोरोफार्म में, एक भाग ४०० भाग ईथर में विलीन होजाती है ।

नोट—यदि १ ग्रेन काफ़ीन के साथ आधी ग्रेन सोडियम सैलिसिलेट सम्मिलित कर दिया जाय तो फिर वह जल में सहज में ही विलीन हो जाती है ।

इसका जलीय घोल उदासीन (न्युट्रल) होता है ।

संयोग विरुद्ध—पोटाशियम आयोडायड, टेनिक एसिड और मक्युरियल साल्ट्स (पारदीय लवण) ।

प्रभाव—हृद्य (Cardiac Tonic) और मूत्रल ।

मात्रा—२ से ५ ग्रेन, वा ०·१२ से ०·३ ग्राम । (=६ से ३० सेंटिग्राम)

क़ैफ़ीनी साइट्रास Caffeinoe Citras

निम्बूकाम्ल घटित अंतद्रीन

रासायनिक सूत्र

$C_8 H_{10} N_4 O_2 C_6 H_8 O_7$.

आफिशल Official वा अधिकृत

पर्य्यो०—निम्बुकाम्लीय अंतद्रीन –सं० । लेमूनातुल् कहवीन –अ० । जौहर कहवा लेमूनी –फ़ा० । केफ़ीनी साइट्रास Caffeinœ Citras–ले० । कैफ़ीन साइट्रेट Caffeine Citrate–अं० ।

निर्म्माण-क्रम एवं परिचय—एक प्रकार का श्वेत रंग का निर्गन्ध अस्थिर चूर्ण जो स्वाद में किसी प्रकार तिक्र एवं अम्ल होता है ।

एक भाग कैफ़ीन को एक भाग साइट्रिक एसिड (निम्बाम्ल) के उष्ण विलयन में मिलाकर वाटर-बाथ पर शुष्क करने से यह प्रस्तुत होती है ।

विलेयता—यह एक भाग ३२ भाग पानी में, एक भाग २२ भाग सुरासार (९०%) में और एक भाग १० भाग क्लोरोफार्म और ईथर (२ भाग क्लोरोफार्म और एक भाग ईथर) के मिश्रण में विलीन हो जाती है ।

प्रभाव—हृदय बलदायक और मूत्र प्रवर्त्तक ।

मात्रा—२ से १० ग्रेन (१२ से ६० सेंटिग्राम)

काफीन एट सोडियाई बेञ्ज़ोआस Caffeina et Sodii Benzoas, कैफीनी सोडियो बेञ्ज़ोआस Caffeinœ Sodio benzoas—ले० । कैफीन एण्ड सोडियम् बेञ्ज़ोएट Caffeine and Sodium Benzoate–अं० । उत्पत्ति—काफीन में समभाग सोडियम् बेञ्ज़ोएट मिलाने से यह प्रस्तुत होता है । इसमें ४७% से कम और ५०% अधिक अनहाइड्रस काफीन, और ५०% न्यून और ५३% से अधिक सोडियम् बेंज़ोएट नहीं होता । लक्षण—एक प्रकार का किंचित् तिक्र, गंधरहित सफ़ेद चूर्ण जो एक भाग उष्ण जल में विलेय होता है । चार भाग जल में यह सम्यक् विलेय और सुरासार (९०%) में किंचित् विलेय होता है । मात्रा—५ से १५ ग्रेन वा ०.३ से १ ग्राम; अन्तः त्वे पार्थ २से ५ ग्रेन वा ०.१२ से ०.३ ग्राम ।

अधिकृत योग

आफ़िशल प्रिपेयरेशञ्ज़ (Offical Pioprations)

पर्य्यो०—कैफीनी साइट्रास एफ़रवेसेंस Caffeinœ Citras Effervescens –ले० । सफ़रवेसेंट कैफ़ीन साइट्रेट Sfferv-escent Caffeine Citrate–अं० ।

निर्माण-क्रम—एक दानेदार जोशदार चूर्ण जो इस प्रकार प्रस्तुत होता है। सोडियम् बाइ कार्बोनेट ५१ भाग, टारटरिक एसिड २७ भाग, साइट्रिक एसिड १८ भाग, कैफ़ीन साइट्रेट ४ भाग और शर्करा १४ भाग इनको परस्पर मिलाकर २१० फारन हाइट के उत्ताप पर इतना आँच दें कि वह दानादार चूर्ण बन जाय। फिर उसे चलनी में चाल लें और १३० फारन हाइट के उत्ताप पर शुष्क करलें।

मात्रा—६० से १२० ग्रेन (४ से ८ ग्राम)।

कैफ़ीन के नॉट ऑफ़िशल (अनधिकृ) योग और पेटेंट औषध

(१) एलिक्सिर कैफ़ीनी Elixir Caffeinæ अर्थात् कैफ़ीन वा अक्सीर क़हवीन। योग—कैफ़ीन १७-५ भाग, डायल्यूट हाइड्रोब्रोमिक एसिड (युनाइटेड स्टेट फार्माकोपिया) ४ भाग, सिरप ऑफ़ काफ़ी अर्थात् शर्बत क़हवा (नेशनल फार्म्युलरी अमेरिका के अनुसार) २५० भाग, ऐरोमेटिक एलिक्सिर (संयुक्त राज्य अमेरिका) उतना जितने में एलिक्सिर पूरा एक सहस्र भाग हो जाय।

शक्ति—इसके एक फ्लुइड ड्राम में १ ग्रेन कैफ़ीन होती है। मात्रा—१ से २ फ्लुड ड्राम= (३.६ से ७.१ घन शतांशमीटर)।

(२) कैफ़ीनी एमोनियासाइट्रास Caffeinae ammonio-Citras—

इसके श्वेत स्फटिक होते हैं जो पानी में कम घुलते हैं। मात्रा-१ से १० ग्रेन।

(३) कैफ़ीनी हाइब्रोमाइडम् Caffeinai Hydrobromidum—

इसके स्वच्छ स्फटिक होते हैं जो एक भाग ५२ भाग जल में विलीन हो जाते हैं।

मात्रा—१ से ४ ग्रेन=(.०६ से .२६ ग्राम)।

(४) कैफ़ीनीहाइड्रोब्रोमाइडम्एफरवेसस Caffeinae Hydrobromidum Effervescens.

इसके ५० ग्रेन में २ ग्रेन हाइड्रोब्रोमाइड होते हैं। मात्रा-६० से १२० ग्रेन-(४ से ८ ग्राम)।

(५) कैफ़ीन क्लोरल Caffeine Chloral-

इसकी छोटी छोटी सफ़ेद दानेदार क़लमें होती हैं जो जल में सुविलेय होती हैं।

गुण तथा उपयोग—यह वेदनास्थापक और कोष्ठमृदुकर है। मलावष्टंभ, आध्मान, गृध्रसी और आमवात में इसके ३ से ८ (०.२ ग्रेन से ०.५ ग्राम) का त्वगीय अंतः क्षेप उपकारी सिद्ध होती है।

(६) कैफ़ीना एट सोडियाई सैलिसिलास Caffeina et Sodii Salicylas

कैफ़ीनी साडियो सैलीसिलास Caffeinæ Sodio Salicylas—यह एक प्रकार का श्वेतवर्ण का चूर्ण है जो एक भाग २ भाग जल में और एक भाग २८ भाग सुरासार (१००/०) में विलीन हो जाता है। इसके गुणधर्म डिजिटेलिस की तरह नहीं होते हैं। यही नहीं अपितु घुलनशील होने के कारण यह डिजिटेलिस की तरह है। यही नहीं अपितु घुलनशील होने के कारण यह डिजिटेलिसकी अपेक्षा आशु प्रभावकारी होती है।

योग यह है—

काफीन ५; सोडियाई सैलिसिलास ६, जल २०, इनको यहाँ तक वाष्पीभूत करें कि ये शुष्क होजायँ। इसमें ४७ से ५० प्रतिशत काफीन होती है।

मात्रा—५ से १५ ग्रेन वा ०'३ से १ ग्राम मुख द्वारा, २ से ५ ग्रेन वा ०'१२ से ०'३ ग्राम त्वगधोऽन्तःक्षेप द्वारा।

कैफ़ीनी डाई आयोडो हाइड्रो ब्रोमाइडम् Caffeinæ Di-Iodo Hydrobromidum—त्रिगुण आयोडीन घटित कहवीन। इसको कैफ़ीन ट्राई-आयोडीन भी कहतेहैं। इसकी मंशूरी क़लमें होती हैं। स्वर्गीय डाक्टर मार्टीमर के परीक्षणानुसार गाउट (वातरक्त) रोग में इस औषधि के उपयोग से अति शीघ्र लाभ होता है। यह आमवात (Rheumatism) में भी गुणकारी है।

मात्रा—१ से ३ ग्रेन वटिका रूप में प्रयुक्त करें। ग्ल्युकोज़ और पल्व एकेशिया से इसकी वटिकायें प्रस्तुत करना चाहिये।

(८) आयडो-कैफीन Iodo Caffeine सोडियम् कैफीनी आयोडाइड Sodium Caffeinœ Iodide

एक सफ़ेद चूर्ण जो शीतल जल में अल्प और उष्ण जल में सम्यक् विलेय है। इसमें ६५% काफीन होती है।

मात्रा—२ से १० ग्रेन वा ०·१२ से ०·६ ग्राम।

यह हृदय विकारजात जलोदर (Cardiac dropsy) और फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pleurisy) में उत्कृष्ट मूत्रकारक है। यह श्वास रोग में उपकारी है।

मात्रा—२ से १० ग्रेन।

(९) कैफीनी सल्फास Caffeinœ Sulphas इसके श्वेत स्फटिक होते हैं जो जल विलेय होते हैं।

मात्रा—½ से ५ ग्रेन।

(१०) कैफीनी वैलैरिएनास Caffeinœ Valerianas जटामांसीसार घटित कहवीन। इसके श्वेत स्फटिक होते हैं। जिनमें एक प्रतिशत से १३ प्रतिशत तक बेलेरियन एसिड जटामांसी सार होता है। यह हिष्टीरिया (योषापस्मार) और कुकर खांसी (Pertussis) में उपकारी है।

मात्रा—½ से ३ ग्रेन =(·०३२ से ·२ ग्राम)

(११) मिग्रेनीन Migrainine अर्थात् अर्द्धावभेदक हर, अर्द्धावभेदकीन, शक़ीक़ीन। इसको 'ऐण्टिपाइरीन कैफीनी-साइट्रिकम् Antipyrin Caffeinœ-Citricum' भी कहते हैं।

इसमें ६ प्रतिशत कैफीन एक प्रतिशत साइट्रिक एसिड और ६० प्रतिशत फैनाजोन होती है। इसके स्फटिक होते हैं। जो जल में सुविलेय होते हैं। इसके जलीय विलयन की प्रतिक्रिया किंचिद् अम्ल होती है।

संयोग विरुद्ध—इसमें अधिक मात्रा में फेनाजून होती है। इसलिये इसके भी वे ही संयोग विरोधी द्रव्य हैं जो फेनाजोन के।

गुण तथा उपयोग—यह शिरःशूल में उपकारी है। किंतु इसके उपयोग से नींद नहीं आती।

मात्रा—८ से १५ ग्रेन =(०·५ से १ ग्राम)

(१२) मिग्रैल्जीन Migralgin इसमें ८८ प्रतिशत फेनेसेटीन, ६ प्रतिशत कैफीन और ३ प्रतिशत सैलिसिलिक एसिड होता है।

मात्रा—८ से १५ ग्रेन की चक्रिकायें (Tablets) भी बिका करते हैं।

उपयोग—शिरःशूल में यह औषध विशेष गुणकारी प्रमाणित हुई है।

(१३) सिम्फोरोल Symphorol इस नाम से तीस योग विकते हैं। इनमें कैफीन, सल्फोनिक एसिड लिथियम् के साथ संयुक्त होती है। इनके श्वेत स्फटिक होते हैं। मूत्रल रूप से इनका हृदय विकारजनित जलोदर (Cardiac dropsy) और वृक्कीय जलोदर (Renal dropsy) में उपयोग करते हैं।

मात्रा—१० से १५ ग्रेन=(·६४ से १ ग्राम)

(१४) एक्सट्रैक्टम कोली लिक्विडम् Extractum Kolœ Liquidum—यह कोला बेरा नामक वृक्ष के बीजों से जिनमें २ से २॥ प्रतिशत कैफीन होती है, प्रस्तुत किया जाता है।

मात्रा—१० से २० मिनिम (बिंदु)।

नोट—अफ़रीका में दो-तीन प्रकार के कोला-वृक्ष होता है। वहाँ उक्त वृक्ष के पत्ते चाय और क़हवा की जगह काम में आते हैं। उनमें एक प्रकार का क्षारोद वर्तमान होता है जो सर्वथा कैफीनवत् होता है।

(१५) कैफीनी साइट्रास Caffeniæ Citras—एक सफ़ेद गंधरहित चूर्ण जिसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है। यह ३२ भाग जल में विलेय होती है।

मात्रा—२ से १० ग्रेन वा ०.६ ग्राम।

क़हवा के गुण धर्म तथा प्रयोग

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—इसके संबंध में प्राचीन यूनानी एवं आरब्य चिकित्सा शास्त्रज्ञों के नाना मत हैं। उन

सबको यहाँ देकर हम पाठकों को उलझन में नहीं डालना चाहते। यहाँ पर हम केवल उन सबका सार देकर ही इस विषय को समाप्त करेंगे। अर्थात् जिस पर उन सभी का मतैक्य है। वह यह है—ताज़ा क़हवा और विशेषकर उसका छिलका उष्णता एवं रूक्षता की ओर प्रवृत्त होता है। पुराना तथा भूष्ट क़हवा शीतल एवं रूक्ष होता है। यह जितना पुराना पड़ता जाता या जितना अधिक भुनता है, उसमें उत्तरोत्तर शीतलता एवं रूक्षता बढ़ती जाती है।

हानिकर्त्ता—यह शिरःशूल, ख़फ़क़ान, आध्मान, क़ुलंज और काबूस उत्पन्न करता है, शरीर को कृश एवं रूक्ष करता है। फुफ्फुस और नरख़रे में रूक्षता उत्पन्न करता है। शरीर का रंग पीला कर देता है। जिसकी प्रकृति में शीत एवं मृदुता का प्राबल्य हो या विकृत दोष बढ़े हुए हों, उसे यह अनिष्टकर होता है।

दर्पघ्न—दवाउल् मुस्क सोंठ, गुलाब, रोग़न पिस्ता, खाँड़, मिश्री, अंबर और केसर इत्यादि।

क़हवा अवरोधोद्घाटक और वेदनाहर है तथा यह रक्तप्रकोप एवं पित्त की तीव्रता और दाह का निवारण करता है। यह दोषों को स्वच्छ करता और सांद्र दोषों को द्रवीभूत करता है। इसी हेतु रक्त पित्त एवं वातजन्य ज्वरों में विशेषतः उनकी प्रारंभिक अवस्था में तथा शीतला और खर्ज्जू रोग में भी यह उपयोगी सिद्ध होता है। यह रक्तविकारज उदर्द रोग तथा कामला अर्थात् यर्क़ान रोग में भी गुणकारी है। मलावरोधहर होते हुए भी यह दस्तों को रोकता है, विशेषकर अर्द्धभृष्ट क़हवा। यह मूत्रप्रवर्त्तक भी है। यह आर्द्रताहर है और श्लेष्मकास तथा प्रतिश्याय को निवारण करता है; मार्गजनित श्रम, क्लम एवं शरीर की शिथिलता को दूर करता है; हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्लित करता है; आमाशय को शक्ति प्रदान करता है; मालीख़ोलिया इहतिराक़ी को गुणकारी है; नेत्राभिष्यंद को नष्ट करता है और मस्तिष्क की ओर वाष्पारोहण नहीं होने देता। यह अर्शको दूर करता है। यह भी कहते हैं कि यह अर्श उत्पन्न करता है। यह कुष्ठ रोग का निवारण करता है। इसको पीसकर शहद में मिलाकर चाटने से शुष्क एवं आर्द्रकास में उपकार होता है। यह आमाशयगत आर्द्रता का शोषण कर उसकी शिथिलता को निवृत्त करता है। इसके पीने के उपरांत अधिक सोना, प्यास को मारना और अल्पाहार, किंतु इतना नहीं निर्बलता बढ़ जाय, अतीव गुणकारी है। आध पौंड भृष्ट क़हवा पीसकर खौलते हुए पानी में डालें और उसमें से एक-एक प्याला क़हवा हर पंद्रह मिनिट के उपरांत उस व्यक्ति को पान कराएँ जिसकी आँत अंडकोष में आकर फँस गई हो। मायर महाशय ने ईसवी सन् १८२८ में इसका उपयोग किया और छठवाँ प्याला पिलाते ही आँत ऊपर चढ़ गई। डूडन महाशय ने भी उक्त विधि की परीक्षा की, किंतु नवाँ प्याला पिलाने के उपरांत उनके रोगी ने आराम पाया। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य डाक्टरों के परीक्षणानुसार भी यह उपयोगी प्रमाणित हो चुका है। इसके बार बार पीने से मस्तिष्क एवं प्रकृति में रूक्षता की उत्पत्ति होती है और नींद कम आती है। परन्तु जिनके गरमी बढ़ी हुई हो और नींद न आती हो क़हवा पान करने से उनकी हरारत घट जाती है। इसलिये रतूबत कम विघटित होती है और नींद आने लगती है। अस्तु इसी प्रकार एक मनुष्य की प्रकृति में उष्णता पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। इसलिये उसे नींद न आती थी। रात को वह इस प्रकार जागता था, मानो कोई सरेसाम का रोगी हो और वह व्यग्र एवं चिंतित रहता था। दो-तीन रात्रि क़हवा सेवन करने के उपरांत उसे अच्छी ख़ासी नींद आने लगी। कोई कोई कहते हैं कि यह वीर्य्य को सुखाता है और कामावसाय उत्पन्न करता है। कदाचित् पुराने और बहुत भुने हुए एवं काले में यह गुण हो सकता है, कच्चे में ऐसा होना संभव नहीं। बल्कि इसका छिलका तो किसी किसी प्रकृति के व्यक्ति की कामशक्ति को बढ़ाता है और आहार का पाचन करता है।

(ख० अ०)

डॉक्टरी मतानुसार—

काफी—क़हवा मस्तिष्क, पाकस्थली और वृक्कद्वय का उत्तेजक, मृदुरेचक, उच्च श्रेणी का

पचननिवारक, सिद्ध मूत्रकारक एवं अश्मरी-संचय निवारक है। खाद्य वा मादक पान रूप से भुने हुए क़हवे को परिमित मात्रा में उपयोग करने से यह उद्दीपन कार्य करता, समीकरण (Assim ilation) एवं परिपाकशक्ति की वृद्धि करता, आंत्रीय कृमिवत् आकुंचन का उत्कर्ष साधन करता और शारीरिक धातुओं के क्षय एवं मूत्र के साथ यूरिक एसिड के उत्सर्ग को घटाता है। क़हवा सेवन करने से श्रम जन्य शारीरिक एवं मानसिक अवसाद वा क्लम का अनुभव नहीं होता और विना क्लेश के कुछ समय तक के लिये निद्रा पर विजय प्राप्ति होती है तथा मन उत्तेज रहता है। यह परावर्त्तित क्रिया एवं मानसिक चेष्टा (Mental activity) की वृद्धि करता है। अत्यधिक मात्रा में क़हवा सेवन करने से इन विकारों का प्रादुर्भाव होता है—अनियन्त्रित परिपाक क्रिया, शिरः पीड़ा, शिरोघूर्णन, हृत्स्पंदन, नितांत अस्थिरता, आक्षेप और पक्षाघात। कोको की अपेक्षा कॉफी अधिकतर उत्तेजक, किंतु अल्प जीवनीय (Sustaining) है। (आर० एन० खोरी, खं० २, पृ० ३२३६)

क़हवे का कच्चा फल (Berries) ज्वरनाशक है। यह शिशुओं के लिये वर्जित है, क्यों कि इससे अनिद्रा उत्पन्न होती है। अस्तु, इससे उनकी वृद्धि के विपरीत प्रभाव होता है। वयस्क लोगों में यह शीघ्र वार्द्धक्य लाता है और संवर्तन क्रिया (Metabalism) को अस्त-व्यस्त कर आयु के परिमाण को घटाता है।

उपयोग—शारीरिक क्लान्ति एवं हृदय तथा मन विषयक अवसाद में क़हवे का प्रयोग होता है। वातजवेदना (Neuralgia), नाड़ी विकार घटित शिरः पीड़ा और चिरकारी मदात्ययजनित अनिद्रा रोग में ग्वाराना के साथ वेदना स्थापक रूप से यह उपयोग में आता है तथावमन, अतिसार, श्वास रोग जनित आक्षेप इनके निवृत्यर्थ एवं मादक सेवन जनित विषाक्तता की दशा में भी क़हवे का व्यवहार होता है। हृदय संबंधी रोग में पैराल्डिहाइड के साथ कैफ़ीन का लाभदायक उपयोग होता है।

८२ फा०

(R.n.khory., vol.11,p.326.)

नोट—इसके सुप्रसिद्ध क्षारोद क़हवीन के सविस्तर गुणधर्म तथा प्रयोग के लिये "काफीना" देखें।

क़हवाऽ-[?] इक्लीलुल्मलिक नामक एक उद्भिज।

कहामत-[अ०] (१) वृद्ध होनेका भाव। वार्द्धक्य। जरापन। (२) मंदबुद्धि एवं शिथिल होना।

कहाह-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] (१) महिष। भैंसा। (२) कटाह। कड़ाह।

कहीं-[कना०] कटु। तिक्त। कड़ुआ।

कहीकीर-[कना०] कड़वी तुरई। कड़वी तरोई।

क़हीज़-[अ०] एक प्रकार का आवरेशम।

कहीन-[फ़ा०] ज़ख़्रूर।

कही पड़वल-[कना०] जंगली परवल। वन्य पटोल।

कहीर-[फ़ा०] ज़ख़्रूर।

कहीला-[ ] तज। सलीख़ा।

कहीला-[अ०] (१) गावज़बान।

कहीसोरे-[कना०] तितलौकी। कड़ुआ घिया।

कहु-संज्ञा पुं० [ ] कोह। अर्जुन।

कहुआ-संज्ञा पुं० [ ] अर्जुन वृक्ष। कोह।

कहुदाली-[मरा०] काकतुंडी। कौवा ठोंठी। Asclepia Curassavica.

कहुन्दान रंगल-[म० प्र०] मालकाँगनी।

कहुवा-संज्ञा पुं० [सं० कोह] अर्जुन वृक्ष। कोह वृक्ष।

संज्ञा पुं० [अ० क़हवा] एक दवा जो घी, चीनी; मिर्च और सोंठ को आग पर पकाने से बनती है और जुकाम (सरदी) में दी जाती है।

कहुवारुख-संज्ञा पुं० अर्जुन वृक्ष। कहुवा। कोह का पेड़।

कहू-संज्ञा पुं० अर्जुन वृक्ष। कोह।

कहूलत-[अ०] अधेड़ उमर का होना। बालों का काला और सफ़ेद होना। चालीस से साठ वर्ष की अवस्था के मध्य होना।

कहेला, कहेली-संज्ञा स्त्री० [देश०] तज का नाम जिसे अरबी में "सलीख़ा" कहते हैं। किंतु हकीम शरीफ खाँ कहते हैं कि वह एक पहाड़ी वृक्ष की

छाल है जो कड़ी, मोटी, खुरदरी, मटियाले एवं लाल गेरू के रंग की होती है। कहेला कहेली में भेद केवल इतना है कि कहेला मोटी छाल है और कहेली पतली। ये दोनों चीज़ें सलीख़ा-तज और किर्फ़े-दालचीनी से भिन्न और उनके मध्य में हैं।

गुणधर्म तथा प्रयोग—ये वृक्ष और कटि को बलप्रद हैं और स्त्री गुह्यांग से नाना प्रकारके स्रावों का निवारण करती हैं। प्रायः ललनागण इसे पिंडियोंमें डालकर खातीहैं। प्रायः इसका उपयोग करती हैं, विशेषतः उन पिचु वर्त्तिकाओं में।

(ता० श०। ख० अ०)

कहेसरु–[करना०] बन मूँग। मुद्गपर्णी। मुगवन।

कहोला भाजी–[बम्ब०] बुस्तान अफ़रोज़।

क़ह्क़व–[अ०] बैंगन। भंटा।

कह्कम्–[अ०] बैंगन। भंटा।

क़ह्क़र्र–[अ०] (१) उलटा चलना। (२) जिसमें किसी चीज़ को घिसें। (३) बहुत काला कौआ। पहाड़ी कौआ।

नोट—मुहीत आजम में इसी अर्थ में इस शब्द का उच्चारण "क़ुह्क़र" किया है; पर यह उच्चारण ग़लत है। गोंद के अर्थ में भी उक्त उच्चारण से यह शब्द देखने में नहीं आया।

क़ह्क़र्र–[अ०] (१) बड़ी उम्र का वह बकरा जो पहाड़ी हो वा पहाड़ी न हो। (२) कठोर पाषाण। सख़्त पत्थर। क़ह्क़ार। (३) चिकना काला पत्थर।

क़ह्क़ह:–[अ०] अट्टहास। खिलखिलाकर हँसना। दे० "ज़ह्क"।

क़ह्क़हर–[यू०] सर्जरस। सालवेष्ट। राल। रातीन। Resin.

क़ह्क़हार, क़ह्क़ार–[अ०] कठोर पाषाण। सख़्त पत्थर।

क़ह्क़ूर–[अ०] पाषाण। पत्थर। म० अ०। मु० आ०।

कह्ज़क, कह्ज़ल–[फ़ा०] जर्जीर।

क़ह्त–[अ०] (१) एक पौधा। (२) दुर्भिक्ष। अकाल। ख़ुश्कसाली। अनावृष्टि। Draught

कह्दल–[अ०] मकड़ी।

क़ह्फ़, क़िह्फ़–[अ०] [बहु० अक़्हाब, क़ह्फ़] खोपड़ी की एक हड्डी। पार्श्वकास्थि। अज़्मुल् शाफ़्ज। Parietal.

क़ह्ब–[:] कच्चा और हरा अंगूर।

क़ह्ब–[अ०] (१) अतीव वृद्ध पुरुष। बड़ी उमर का आदमी। (२) खाँसना।

क़ह्ब:–[अ०] पुंश्चली स्त्री। दुराचारिणी। छिनाल। बदकार औरत।

नोट—क़ह्ब का धात्वर्थ खाँसना है और क़ह्ब: इसी से व्युत्पन्न है। क्योंकि यमन देशीय पुंश्चली नारीगण पुरुषों को खँकारकर बुलाती थीं। इसलिये उनको क़ह्ब: के नाम से अभिहित किया गया। किसी किसी के अनुसार क़ह्ब: वक़ाहत से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ निर्लज्जता है।

क़ह्म–[अ०] बहुत बूढ़ा। अतीव वृद्ध। पीर फ़ानी।

कहरल्–[ ] जर्जीर।

क़ह्रासूस–[यू०] क़ारासिया। आलूबोख़ारा।

कह्रुबत–[अ०] किसी वस्तु पर वैद्युतिक शक्ति प्रवाहित करना। Electrify.

कह्रुबा–[अ० काह+रुबा] दे० "कहरुवा"।

वह्रुबा शमई–अ० कहरुवा भेद।

कह्रुबाइय्यः, कह्रुबिय्यः–[अ०] कहरुबाई शक्ति। विद्युच्छक्ति। Electricity.

कह्ल–[अ०] [बहु० कहूल, कहाल कह्लान्] अधेड़। अधेड़ अवस्था का आदमी। चालीस से साठ वर्ष की अवस्था तक का आदमी।

कह्ल:–संज्ञा पुं० [सं पुं०] जूँ नामक कीट।

क़ह्ल–दे० "कुह्ल"।

[अ०] आँख में सुरमा लगाना।

क़ह्ल–[अ०] त्वचा का खुरदरा और कठोर होना। त्वक् कार्कश्य एवं काठिन्य। क़शफ़।

कह्लण–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कल्हण, राजतरङ्गिणी के प्रणेता। दे० "कल्हण"।

कह्लक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कह्लार। शुंदिफुल–बं०। भा० पू० १ भ० गु० व०।

कह्लत, कहलम्–[फ़ा०] बैंगन। भंटा।

कह्लार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) सफ़ेद कुई। धवलोत्पल। कुमुद। रा० नि० व० १०। वि०

दे० "कुई"। (२) कूई। बघवल। कोकाबेली। कुमुद पुष्प। चि० क्र० क० केशरपाक। "कह्लार पद्मोत्पल चन्दनाम्बु"।

पर्य्या०—सौगंधिक (अ०), सोगंधिकं, कल्हारं, हल्लकं, रक्तसन्ध्यकं (भा० पू० १ भ० पु० व०)। (Nymphæa edulis)

गुण—कह्लार शीतल, ग्राही, गुरु, रूक्ष और विष्टम्भकारक होता है। भा० पू० १ भ० पु० व०)। यह कसेला, मधुर, तथा शीतल होता है और कफ, पित्त एवं रक्त विकार नाशक है। (राज०)। यह ग्राही, अत्यन्त शीतल, भारी रूक्ष और विष्टम्भकारक है (वै० निघ०)। (३) ईषत् श्वेत रक्त कमल। (४) कमल साधारण। कोई कमल। वै० निघ०। (५) श्वेत कमल। सफ़ेद कमल। (६) रक्तकुमुद। लालकूई। हलमक। शा० नि० भू०।

कह्लारघृत-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] आयुर्वेद में हृद्रोगाधिकार में वर्णित एक योग। यथा—

"कह्लारमुत्पलं पद्मं कुमुदं मधुयष्टिका।
पक्त्वाम्बुनाथ तत्काथे जीवनीयोपकल्पिते॥
घृतं पक्वं नवं पीतं रक्तपित्तास्रगुल्मनुत्।"
रस० र०।

अर्थात् कुई-सफेदकमल, नील कमल, रक्त कमल और मुलेठी समान साग के क्वाथ के और जीवनी गण की ओषधियों के कल्क के साथ यथा विधि सिद्ध नूतन घृत पान करने से रक्त पित्त और रक्तार्श का नाश होता है।

कह्लुलसूदान-[अ०] काले आदमी।

कह्व-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] वक पक्षी। बगुला। अम०।

क़ह्वः-[अ०] (१) दे० 'क़हवा"। (२) एक प्रकार मद्य। मदिरा विशेष।

क़ह्वव-इक़्लीलुल् जबल।

क़ह्वाऽ-[ ] इक़्लीलुल् मलिक नाम का एक उद्भिद्।

क़ह्वान्-दे० कुह्वान्"।

क़ह्वीन-[ ] क़हवेमें पाया जानेवाला एक क्षारोद।

क़ह्ह-[अ०] वह ख़रबूज़ा जिसमें गूदा खूब हो, परन्तु अभी वह अपरिपक्व हो। कच्चा खरबूज़ा।

कह्हाल-[अ] नेत्रचिकित्सक। नेत्र निर्माता। आँख बनानेवाला। चश्म साज़। Oculist.

कक्ष-संज्ञा पुं० [सं० पुं० (१) अंगाधः कोटर। रत्ना०। (२) महिष। भैंस। (३) लता। बेल। अम०। मे० षट्त्रिकं। (४) गूगुल। गुग्गुल। वै० निघ०। (५) सूखी घास। शुष्क तृण। ध०। (६) सूखा वन। शुष्क वन। (७) पाप। दोष। हे०। (८) कच्छ। कछार। (९) अरण्य। वन। जंगल। (१०) गृहप्रकोष्ठ। भीत। पाखा। (११) पार्श्व। काँख। बगल। (१२) काँछ। कछोटा। लाँग। (१३) कास। (१४) भूमि। (१५) घर। कमरा। कोठरी। (१६) एक रोग। काँख का फोड़ा। कखरवार। (१७) आँचल। (१८) दर्जा। श्रेणी। (१९) तराजू का पल्ला। पलरा। (२०) पेटी। कमरबंद। पटुका।

कक्षधरमर्म्म-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] एक मर्म स्थान विशेष। इसका स्थान काँख और छाती के बीच का भाग है। सु० शा० ६ अ०।

कक्षपुट रस-संज्ञा पुं० [सं० पुं०] एक रसौषधि। शुद्ध पारद लेकर तप्त खल्व में डालकर निर्गुण्डी, नीली, थूहर, ब्रह्मदण्डी, त्रिदण्डी (मोरसेंडा मराठी) सौंफ, मुग्दपर्णी, श्वेत आक, कौंचबीज, अरणी, पेटारी (कंघी), काला धतूरा, भाँग, क्षीर विदारी कंद इन प्रत्येक के अङ्ग स्वरसों से एक-एक दिन मर्दन करें। पुनः इस तप्त खरल में डालकर मर्दन किया हुआ पारद लेकर इसका गोला बनालें और इसे क्षीरकंद वा वज्रकंद (जंगली सूरन वा मानकंद) में गड्ढा खोदकर रखें और उसी के मज्जा से गड्ढे को भर कपड़ मिट्टी देकर इस संपुट को वज्रमूषा में बंदकर लघुपुट में आग दें। इस प्रकार करने से जब स्वांग शीतल हो जाय तब काम में लावे।

कक्षरादि तेल-
कच्छ राक्षस तेल- } संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] मैनशिल, हीरा कसीस, आमलासार गंधक, सेंधा नमक, सोना माखी, पत्थरफोड़ा, सोंठ, पीपल, करिहारी, कनेर, वायविडंग, चित्रक, दात्यूणी, नीम के पत्ते समस्त धेला-धेला भर लें। जल में महीन पीसकर पुनः २ सेर कड़वा तेल मिलाकर यथाविधि पकायें। पकते समय इसमें मदार का दूध २ छँ०, थूहर का दूध २ छँ०, गोमूत्र ४

सेर डालकर मन्द-मन्द आंच से पकाएँ। जब जल का अंश शेष हो जाय तब छान कर रखें। गुण—इसके मर्दन से असाध्य कच्छुदाद; पामा, खुजली और रुधिर के समस्त विकार दूर होते हैं। (अमृ० सा०)

कक्षमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] बगल। Base of the Axilea.

कक्षारुहा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] नागरमुस्ता। नागरमोथा। रा० नि० व० ६।

कक्षाशय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कुत्ता। कुक्कुर। वै० निघ०।

कक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) बाहुमूल। काँख। रा० नि० व० १८। (२) एक प्रकार का क्षुद्र रोग जो पित्त के प्रकोप से होता है। कँखोरी। काँखविडालि (बं०)।

लक्षण—बाहु (भुजा), पसली, कंधा और कक्षा (काँख वा बगल) में होने वाले काले रंग के वेदनायुक्त फोड़े को पित्त की कक्षा, ककराली कहते हैं। मा० नि० क्षुद्र रो०।

कक्षान्तर–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अन्तर्गृह। गर्भागार।

कक्षापट–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कौपीन। हला०।

कक्षाफलु–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] कृष्णोदुम्बरफल। काकडुमुर –बं०। कठूमर। वै० निघ०।

कक्षीय–वि० [सं० त्रि०] कक्ष सम्बन्धी। Axillary, अ० शा०।

कक्षीया धमनी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] काँख की धमनी। (Axillary artery) अ० शा०। प्र० शा०।

कक्षीयानाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] कक्ष सम्बन्धी नाड़ी। Axillary nerve; अ० शा०।

कक्षोत्था–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] भद्रमुस्ता। नागर मोथा। हे०।

कक्ष्या–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] (१) वृहतिका। बनभंटा, हे० च०। (२) काञ्ची। (३) हर्म्य प्रकोष्ठ। अम०। (४) मद्य। (५) हाथी बाँधने की रस्सी। करिबंधन। अ० टी० भ०। मे० यद्विकं। (६) गुञ्जालता। घुँघची। (७) रस्सी। (८) आँगन। (९) चमड़े की रस्सी। तांत। नाड़ी। (१०) हौदा। अमारी। (११) महल। (१२) ड्योढ़ी। (१३) कक्ष सम्बन्धी धमनी। Axillary A. (१४) Axillary कक्ष सम्बन्धी सिरा। अ० शा०।

कत्रय–संज्ञा पुं० [सं० पुं०] तीन कुत्सित पदार्थ। तीन बुरी चीज़ों का समूह। यह शब्द नित्य ही बहुवचनांत होता है।

क–संस्कृत वा हिन्दी वर्णमाला का पहला व्यंजन वर्ण।

कं–संज्ञा पुं० [सं० कम्] (१) जल। (२) मस्तक। (३) सुख। (४) अग्नि। (५) सोना। (६) काम।

कंकअ–[अ०] चूहा। मूसा। कन्कअ।

कंकटी–[म०] चाकसू।

कंकड़–संज्ञा पुं० [सं० कर्कर] [स्त्री० अल्पा० ककड़ी] एक खनिज पदार्थ। अंकटा। संगरेजा फ़ा०। हसात़ –अ०।

प्रकृति—शीतल एवं रूक्ष।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह मादे को खौटा देने वाला और शोषणकर्त्ता है। इसका धूल सा पिसा हुआ बारीक चूर्ण बुरकने वा मरहम बनाकर लगाने से क्षत-विक्षत स्थान से रक्त स्राव होने में उपकार होता है। ना० मु०। म० इ०।

कंकणखार–[कना०] सुहागा। टंकण।

कंकनिका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] बाल सँवारने की कंघी।

कंकपक्षी–संज्ञा पुं० [सं०] काँक। कङ्क। हड़गीला।

कंकपाल–[मल०] मूली। मूलक।

कंकर–संज्ञा पुं० दे० "कंकड़"।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उल्लू। (२) बादावर्द।

[?] एक बूटी। हर्शफ़। दे० "उर्शफ़"।

संज्ञा पुं० [सं०] तक्र। मट्ठा। छाछ।

[म०, खरपत। घोगर। (Garuga Pinnata, *Roxb.*)

कंकर आबी–संज्ञा पुं० [फ़ा०] आर्द्र भूमि में होनेवाली एक बूटी जिसकी पत्ती हरी और करफ़स की पत्ती की तरह होती है। इसकी शाखाएँ चिपकदार और फूल पीले रंग के एवं सुगंधित

होते हैं। स्वाद में यह तीक्ष्ण, कटुक एवं कुस्वादु होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा के अंत में उष्ण और रूक्ष। हानिकर्त्ता—शरीर के नीचे के अंगों को। दर्पघ्न—उष्णाव, कतीरा और शीतल पदार्थ।

प्रतिनिधि—×।

मात्रा—४॥ माशे तक। मुख्य कर्म—मूत्र प्रवर्त्तक, रजः प्रवर्त्तक, वायु नाशक और रक्त स्थापक।

गुणधर्म तथा प्रयोग—शरीर के भीतर गरमी उत्पन्न करता और सूजन उतारता है। शरीर के प्रत्येक अंग से रक्त स्राव होने को रोकता है, मूत्र और आर्त्तव का प्रवर्तन करता है, और वृक्काश्मरी को खंड खंड करके निकालता है। इसका क्वाथ आमाशय एवं आंत्रस्थ सांद्र वायु को विलीन करता और आमाशय को गरम करता है। चेहरे के रंग को निखारता है। यह पार्श्वशूल, कामला (यर्क़ान), विवृद्ध प्लीहा, मरोड़ और आंत्रक्षत को गुणकारी है। इसका तरेड़ा शीत ज्वर में लाभकारी है। (बु० मु०)

कंकरखर–[फ़ा०] बाद आवर्द।

कंकरज़द–[फ़ा०] हर्शफ़ का गोंद। कंकरी। तुरा-बुल्कै। दे० "हर्शफ़"।

कंकर सफ़ेद–[फ़ा०] बाद आवर्द।

कंकरा–[बं०] Bruguinera gymnorhiza.

कँकरी–[हिं०, द०] ककड़ी।

कंकरी–[फ़ा०] हरशफ़ का गोंद।

कँकरोल–[बं०] धारकरेला।

(२) एक प्रकार का कद्दू। सूम। गोल ककरा। Momordica *Mixta*

कंकला (काँकला)–[बं०] काकोली। (Zizyphus Napica.)

क़ंक़हन, क़ंक़हर–[यू०] शालवेष्ट। राल। क़ैक़हर। क़ैक़हन। Cancamum.

कंकाल–संज्ञा पुं० [सं०] ठठरी। अस्थिपंजर।

कंकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] किंकणी।

कंकुटी–[म०] चाकसू।

कँकुनी–संज्ञा स्त्री० ककुरी। कँगनी। कङ्गु।

कंकेर–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पान जो कड़ुआ होता है।

कंकोड़ा–संज्ञा पुं० [ककोड़ा] ककोड़ा।

कंकोल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीतलचीनी का एक भेद। (२) कंकोल का फल। कंकोल मिर्च। दे० "कंकोल"।

कंकोलकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली। करवी। न० ना० से०।

कंकोल–[मरा०, कों०] कबाबचीनी। शीतलचीनी। [मरा०, बम्ब०] कंकल। चव्य। चाव।

कंकोलदाना–संज्ञा पुं० दे० "कंकोल मिर्च"।

कंकोल मिर्च–संज्ञा स्त्री० [सं० कंकोल+हिं० मिर्च] कंकोल का फल। दे० "कंकोल"।

कंक्र–संज्ञा पुं० [?] तिर्यक् फल। पापट। कुकुर चूर (बं०)।

कंखजूरा–संज्ञा पुं० दे० "कनखजूरा"।

कँखवारी–संज्ञा स्त्री० [हिं० काँख] वह फोड़िया जो काँख में होती है। कँखवार। कखवाली। ककराली।

कँखौरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० काँख] (१) काँख। (२) दे० "कँखवारी"।

कँखिना–[बम्ब०] पीलू।

कंगई–[पं०] मयूर शिखा। मोर शिखा। मोर पंखी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० कंघी] कंघी।

कंगई विलायती–संज्ञा स्त्री० खुब्बाजी। ख़ित्मिए कोचक।

कंगकु–[ड० प० प्रां०] नेवार। कसूरी (नैपा०)

कंगजी–[लेप०] बरगद। वट।

कंगनखार–[ ] लघमी।

कँगना–संज्ञा स्त्री० [सं० कंकु] एक प्रकार की घास। साका।

कँगनी–संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] एक अन्न का नाम।

पर्य्या०—(संस्कृत)

प्रियंगुः कंगुकश्चैव चीनकः पीततण्डुलः।
अस्थिसबंधनश्चैव कङ्कनी षट् च कथ्यते॥
(ध० नि० सुवर्णादि ६ व०)

अर्थात् कँगनी के ये ६ पर्य्याय हैं—प्रियङ्गुः, कङ्गुकः, चीनकः, पीततण्डुलः, अस्थिसंबंधनः, कंकनी।

कंगुणी कंगुनी प्रोक्ता चीनकः पीततण्डुलः।
वातलः सुकुमारश्च स च नानाविधाभिधः॥
(रा० नि० शल्यादिः १६ व०)

अर्थात्-कङ्गुणी, कङ्गुनी, चीनकः, पीततण्डुलः वातलः, सुकुमारः ये इसके नाना प्रकार के नाम हैं।

भावप्रकाशकार ने कंगुः और प्रियङ्गु इसके ये दो नाम दिये हैं।

शेष संस्कृत पर्य्या०—कङ्गुनिका, प्रियङ्गुः (अ०) कङ्गूः प्रियङ्गू (अ० टी०), कङ्गुका (रत्ना०) कङ्गुणिका, कङ्गुणी, कङ्गुनीका, कंगूनी, कंगुफ।

पूर्वाचार्य्यकृत वर्णन—'कंगुनिका कायनीति" (चक्रसंग्रह टीकायां शिवदासः)। "प्रियंगुः कायनीति प्रसिद्धा" (चरक टीकायां चक्रपाणिः)।

परिचय-ज्ञापिका संज्ञा—"पीततण्डुलः"।

गुण प्रकाशिका संज्ञा—"वातलः", "अस्थि संबन्धनः"।

अन्य भाषा के पर्य्याय—

काकन, ककुनी प्रियंगु, कंगु, टाँगुन, टँगुनी, कङ्गनी, कंगनी, कंगुनी, काँगुनी, काँक, कँकनी, काँगनी, कानि-हिं०। कोर, काँनि धान वा दाना, काउन्, काङ्नी दाना-बं०। अर्ज़न, कंगनी-फ़ा०। दुख्न, दिख्न,-अ०। पैनिकम् इटैलिकम् Panicum Italicum *Linn.* सिटेरिया इटैलिका Setaria Italica, *Beauv.*-ले०। इटालियन मिलेट Italian millet, डेकन ग्रास Daccan grass-अं०। तिन्नै--ता०। कोरलु, प्रकेणपुचेट्टु कोरलु-ते०। कांग-मरा०। काउन, बरयी-कों०। नवने अक्कि, कंगु गिडा-कना०। तिना-मल०। कुरहन्-सिं०। बाजरी-गु०। काल-शीराजी।

श्यामाक वर्ग
(*N. O. Graminaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—यह समस्त भारतवर्ष, वर्मा, चीन, मध्य एसिया और योरुप में उत्पन्न होता है कोचबिहार राज्य में कङ्गु प्रचुर परिमाण में होता है।

वानस्पतिक वर्णन—एक प्रकार का तृणधान्य है। सुश्रुत में कृधान्यवर्ग में कङ्गु का पाठ आया है। यह मैदानों तथा ६००० फुट की ऊंचाई तक के पहाड़ों में भी होता है। इसके लिये दोमट अर्थात् हलकी सूखी जमीन बहुत उपयोगी है। यह अषाढ़ सावन में बोई और भादों कारमें काटी जाती है। कहीं-कहीं यह पूस के महीने में बोई जाती है और बैसाख के अंत में वा जेठ के शुरू में कटती है। धान के नाल से कँगनी का नाल स्थूलतर एवं दृढ़तर होता है। जबतक यह अधिक बड़ा नहीं होता, तबतक इसका तना भूमि पर नहीं गिरता, आकृति वर्ण और काल के भेद से इसकी बहुत जातियाँ होती हैं। रंग के भेद से कँगनी दो प्रकार की होती है—एक पीली, दूसरी लाल। इसकी एक जाति चेना वा चीना (Panicum Miliaceum) भी है जो चैत बैसाख में बोई और जेठ में काटी जाती है। और गुण में कंगु के समान होती है कहा है—"चीनकः कंगु भेदोऽस्ति सज्ञेयः कंगुवद्गुणैः।" इसमें बारह तेरह बार पानी देना पड़ता है। इसीलिये लोग कहते हैं-"बारह पानी चेन नहीं तो लेन का देन" वि० दे० "चीना"।

कंगु तंडुल अर्थात् कँगुनी के दाने सागुदाना से किञ्चित् बड़े और साँवाँ से कुछ मोटे और अधिक गोल होते हैं। तुष सहित कँगनी का वर्ण पीला होता है एवं कँगनी के दाने का वर्ण ईषत् पीत होता है। कँगनी के आटे का स्वाद मीठा होता है, भूसी का रंग सफेदी मायल होता है। यह अत्यंत कोमल होती है और शीघ्र दानेसे पृथक् नहीं होती। सौ तोले कँगनी में ७३ तोले आटा और प्रायः तीन तोले तेल निकलताहै। ८ मन प्रतिबीघा के हिसाब से कंगनी होती है। इसकी बाल में छोटे २ पीले २ घने रोएँ होते हैं। यह दाना चिड़ियों को बहुत खिलाया जाता है। कँगनी के पुराने चावल रोगी को पथ्य की तरह दिये जाते हैं।

कँगनी के भेद—सुश्रुत में कँगनी चार प्रकार की लिखी है। कहा है—

कृष्णा रक्ताश्च पीताश्च श्वेताश्चैव प्रियंगवः।

यथोत्तर प्रधानाः स्यूरूक्षाः कफहराः स्मृताः ॥
(सुश्रुतः सू० ४६ अ० कुधान्यव०)

अर्थात् काली, लाल, पीली तथा सफेद और ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती हैं तथा रूक्ष और कफ नाशक होती है। निघण्टुद्वय में कँगनी का नाम "पीत तण्डुल" निर्देश किया गया है। यदि उन्हें रक्तादि भेद स्वीकृत होता तो ऐसा नाम न लिखा होता। नवीन संग्रहकार भावमिश्र ने भी कृष्णादि चतुर्विधि कंगु का उल्लेख किया है यथा—

स्त्रियां कंगुप्रियंगूद्वे कृष्णा रक्तासिता तथा।
पीता चतुर्विधाकंगुस्तासां पीतावरा स्मृता ॥
(भा०)

परंतु पीतकंगु से भिन्न कृष्णादि अन्य तीन प्रकार के कंगुओं को हमने नहीं देखा है।

इसके अतिरिक्त निघण्टुकार इसके एक और भेद का उल्लेख करते हैं, जिसे 'वरक' अर्थात् बड़ी कँगनी कहते हैं। लिखा है—

"वरकः स्थूलकंगुश्च रूक्षः स्थूलप्रियंगुकः।"
(रा० नि० व० १६)

अर्थात् वरक के पर्य्याय ये हैं—

स्थूलकङ्गुः, रूक्षः, स्थूल प्रियंगुकः, वरकः (स्थूल कंगू)।

रासायनिक संघटन—एक विषाक्त ग्ल्युकोसाइड और तैलीय क्षारोद।

औषधार्थ व्यवहार—मूल और तण्डुल।

मात्रा—मूल ½–१ तोला। तण्डुल विशेषतः पथ्य रूप से व्यवहार में आता है।

गुणधर्म तथा उपयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

प्रियङ्गुर्मधुरो रुच्यः कषायः स्वादु शीतलः।
वातकृत्पित्तदाहघ्नोरूक्षो भग्नास्थि बन्धकृत् ॥
(रा० नि० व० १६ तथा ध० नि० ६ व०)

प्रियंगु (कँगनी) मधुर, कसेला, रुचिकारक, स्वादु, शीतल, वायुजनक, पित्त एवं दाहनाशक, रूखा और टूटी हुई हड्डी को जोड़नेवाला है।

वरक के गुण—

वरको मधुरो रूक्षः कषायो वातपित्तकृत्।
(रा० नि० १६ ब०)

वरक (बड़ी कँगनी)—मधुर व रूखी, कसैली और वात तथा पित्तकारक है। साठी से यह हीन गुणवाली होती है।

भग्नसंधान कृत्तत्र प्रियंगुर्वृंहणीगुरुः।
(वा० सू० ६ अ०)

कँगनी—टूटी हड्डी को जोड़ने वाली, पौष्टिक और भारी है।

कङ्गुका वृंहणी गुर्व्वी भग्नसन्धानकृन्मता।
(राजवल्लभः)

कँगनी—पुष्टिकारक, भारी, भग्नसंधान कारक और वात वर्द्धक है।

कङ्गुस्तु भग्नसन्धानवातकृत् वृंहणीगुरुः।
रूक्षा श्लेष्महराऽतीव वाजिनां गुणकृद्भृशम् ॥
(भा०)

कँगनी—भग्नसंधानकारक—टूटे स्थान को जोड़नेवाली, वायुकारक, वृंहण, भारी, रूक्ष, अत्यन्त श्लेष्म नाशक और घोड़ों के लिये विशेष गुणकारी है।

वैद्यक निघण्टु के अनुसार यहधातु वृद्धिकारक, वातकारक, भारी, अस्थि संधानकारक, रूक्ष और घोड़ों के लिये हित कारक तथा कफ नाशक है। पीली कंगनी गुण में अधिक है।

कङ्गुः शीतो वातकरो रूक्षो वृष्यः कषायकः।
धातुवृद्धिकरः स्वादुर्गुरुश्चाश्वहितावहः ॥
भग्नास्थि सन्धान करो गर्भपाते हितावहः।
कफ पित्त हरश्चायं कृष्णरक्ताच्छपीतकैः, ॥
वर्णैश्चतुर्धा समतो गुणैश्चोत्तरतोऽधिकः।

कंगनी—शीतल, वात कारक, रूखी, वृष्य, कषेली, धातु वर्द्धक, स्वादिष्ट, भारी, घोड़ों को हितकारी, भग्नास्थि सन्धान कारक, गर्भपात में हितकारी और कफ पित्त नाशक है, यह कृष्ण, रक्त, सुफेद और पीली इन भेदों से चार प्रकार की है। इन में एक से एक के अधिक गुण हैं।

वैद्यकीय व्यवहार

चक्रदत्त—(१)नाड़ी व्रण में कङ्गुनिकामूल-कंगुनिकामूल चूर्ण को भैंस के दही और कोदो

(चावल) के भात के साथ खाने से चिरजात नाड़ी व्रण-नासूर से मुक्ति लाभ होता है। यथा—

"माहिषदधि कोद्रवान्नमिश्रं हरति चिरं विरुढ़ञ्च।
भुक्तं कङ्गुनिकमूलचूर्णमतिदारुणां नाड़ीम्॥"
(नाड़ी व्रण चि०)

(२) रक्तपित्त में कङ्गु—कँगनी का चावल रक्तपित्त रोगी के लिये उत्तम है। यथा—

"श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम्"।

वङ्गसेन—अन्नद्रवाख्य शूल में कँगनी—अन्नद्रवनामक शूलरोगमें रोगीको कँगनी के चावल और दूध से बनी खीर में शर्करामिला कर पिलाना हितकारी होता है। यथा—

प्रियङ्गुतण्डुलैः सिद्धं पायसं शार्करं हितम्"।
(शूल चि०)

यूनानी मतानुसार गुण-दोष—

प्रकृति—प्रथम कक्षा में शीतल और द्वितीय कक्षा में रूक्ष। किसी-किसी के मत से द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष।

हानिकर्ता—अवरोधोत्पादक है। वस्ति तथा वृक्क में पथरी पैदा करती है। प्लीहा को हानि कारक है और देर में आमाशय से नीचे उतरती है। वैद्यों के अनुसार इसका सत्तू फेफड़े को खराब करता है।

दर्पघ्न—दूध, शर्करा, घी और मधु। इसके सत्तू का दर्पदलन बबूल की गोंद और मस्तगी है प्लीहा के लिये मस्तगी दर्पघ्न है।

प्रतिनिधि—चावल (किंतु यह ठीक नहीं)

गुण, कर्म, प्रयोग—इससे धातु पोषणांश कम प्राप्त होता (क़लीलुल् ग़िज़ा) है। यह उदरावरोधक (हाबिस शिकम) और मलबद्धता कारक है। यह रूक्षता उत्पन्न करती है, किंतु उतना नहीं जितना बाजरा। यह पेशाब लाती है, पित्त के दस्तों को बंद करती है। घी के साथ सीने को मृदु करती है। दूध और शर्करा के साथ भक्षण करने से वीर्य उत्पन्न करती है। वेदनास्थल पर इसे गर्म कर सेंकने से लाभ होता है। यह शोथादि को विलीन करने वाली (मुहल्लिल) भी है। इसका चावल पकाकर दूध और घी के साथ खाने से शुद्ध आहार की प्राप्ति होती है। वैद्यों के मत से भी यह मलावरोधकारक है तथा रूक्षता उत्पन्न करती और मूत्रोत्सर्ग करती है। इसमें पोषणांश कम है। इसे यदि दूध में पकायें तो इसकी रूक्षता कम हो जाय और पोषणांश अधिक होजाय। किसी-किसी के मत से पकी हुई कँगनी वायु को विलीन करती, क्षुधा की वृद्धि करती, धातु को शक्ति प्रदान करती और स्वर को साफ़ करती है। इसका सत्तू पित्तातीसार बंद करता है। इसका खाना जलंधर और शोथ अर्थात् सूउल्क्रिन्यः (Anasarpca) के लिये गुण कारी है। इसलिये इसे प्रायः ऐसे रोगी को देते हैं। इसके अकेले भक्षण करने से कभी-कभी दस्त आने लगते हैं। अनुभूत-चिकित्सा सागर में ऐसा ही लिखा है। इसको क्वथित कर पिलाने से मूत्र का उत्सर्ग होता है। इसके लेप करने से आमवात जनित पीड़ा नष्ट होती है। इसकी भूसी कान में डालने से कर्णस्राव को लाभ होता है। (ख० अ०)

इंडियन मेटीरिया मेडिका में भी प्रायः इसके उपर्युक्त गुणों का ही उल्लेख किया गया है। इतना अधिक लिखा है कि यह प्रसवकालीन वेदना के उपशमन की सुप्रसिद्ध घरेलू दवा है।

यह मूत्रल संकोचक और आमवात में उपकारी है। —चोपरा

कंगर-[?] (१) हर्शफ़। अर्टचक। उल्लह। दे० "हर्शफ़"। (२) उल्लू। उलूक।
कंगर आबी-क़ुर्तुल्ऐन। जर्जीरुल्भाऽ।
कंगरजद-[फ़ा०] हर्शफ़ का गोंद।
कंगरतर-[फ़ा०] हर्शफ़तर।
कंगरी-[अवध] ककुनी। कँगनी।
[फ़ा०] (१) हर्शफ़। कंकर। (२) हर्शफ़ का गोंद।
कंगरी सफ़ेद-[फ़ा०] बाद आवर्द। कंकर सफेद।
कंगरोड़-संज्ञा पुं० (१) मेरुदंड। पृष्टवंश। रीढ़।
(२) एक जलीय पक्षी का नाम।
कंगलियम्-[ता०] साल।
कंगलु-[पं०] जनूम। बातु।
कंगशिओर-[लेप०] अयार।

कँगही–संज्ञा स्त्री० दे० "कंघी"।

कंगा–[बं०] तीता।

कँगारू–संज्ञा पुं० [अं०] एक जंतु जो आस्ट्रेलिया न्यु-गिनी आदि टापुओं में होता है।

कंगि–[देश०] Euphorbia Draeuncul, *Sides.*

कंगिन-काय-तेल–[कना०] नारियल का गुड़।

कंगी–[?] सुदाब।

[नैपा०] (१) तुला लोध –(बं०)। (२) चोलाई।

[पं०] छागुल पुपुटी (बं०)।

कंगु–संज्ञा पुं० [सं० कङ्गु] दे० "कङ्गु"।

संज्ञा पुं० [?] (१) चिरचिट्ट। चिरचिटा Lycium Barbarum (२) स्वादु कण्टक।

[उ० प० प्रा०] अंगन। अङ्गु।

[ता०] थम्बाने बनबोगा (मल०)।

कंगुई–संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु + ई (प्रत्यय)] साँवाँ। श्यामाक।

कँगुनी–संज्ञा स्त्री० [सं० कङ्गु] (१) दे० "कँगनी" (२) मालकाँगनी।

कँगुरिया–संज्ञा स्त्री० दे० "कनगुरिया"।

कंगूरक–संज्ञा पुं० [सं०] पौंढा। पौण्ड्रकेक्षु।

कंगोई–[द० बम्ब०] कंघी।

कंगोइ का झाड़–[द०] कंघी का पौधा।

कंगोई का पत्ता–[द०] कंघी को पत्ती।

कंगोनी–[द०] कंघी।

कंगोरी–[बम्ब०] कंघी।

कंघई–संज्ञा स्त्री० [देश०] कंघी।

कंघनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] कंघी। अतिबला।

कंघी–संज्ञा स्त्री० [सं० कंकती, प्रा० कंकई] (१) छोटा कंघा जिसमें दोनों ओर दाँत होते हैं। (२) एक पौधे का नाम।

पर्य्या०—बलिका, अतिबला, बाट्यपुष्पी, कङ्कता, वृष्या, वृष्यगन्धा, भूरिला, (ध० नि० १ व०) बलिका, अतिबला, बल्या, विकङ्कता, बाह्यपुष्पिका, वण्टा, शीता, शीतपुष्पा, भूरिबला-

वृष्यगन्धिका, (रा० नि० ४ व०) भारद्वाजी, ऋष्यप्रोक्ता, पुष्पपर्णी, ऋष्यपुष्पिका, पीतपुष्पी, ऋष्यगंधा, महासहा (के० दे० नि०) वृष्यगंधिका, कांतिका, सहा (मद० नि०) ऋष्यप्रोक्ता, अतिबला, कंकतिका (भा०), सुवर्णक कंकती–सं०।

कंगई, ककहिया, कंघनी, कंघई, ककही, तूत्री –हिं०। कंगोई, कंगोई का झाड़, डब्बे का झाड़–द०। पेटारि, झाँपि पेटारि। झुमका गाछ, गुंजि गाछ, पिटारि गाछ, पीतवर्ण बेड़ेला, पीत-बाकुलि, पेटारि,–बं०। दरख़्ते शानः–फ़ा०। मश्तुल् ग़ौल –अ०। एब्युटिलन इंडिकम् Abutilon Indicum, *G. Don.* एब्युटिलन एशियाटिकम् Abutilon Asiaticum, *W & A.*, साइडराम्बिफोलिया SidaRhombifolia; *Linn.*, साइडा एशियाटिका Sida Asiatica, *Roxb.* साइडा एब्युटिलन Sida Abutilon, साइडा इण्डिकम् Sida Indicum, *Khory.* –ले०। कंट्री मैलो Country Mallow–अं०। तुत्ति, पेरुन् तुत्ति–ता०। तुत्ति, तुत्तुरु-बेण्ड, नूगुवेण्ड। तुत्तिरि-चेट्टु–ते०। पेट्टक-पुट्टि, तुत्त, ऊरम्–मल०। श्रीमुद्रिगिडा, मुल्लु दुरुवे–कना०। कंगोथि-तु-झाड़, कपाट, डावली, खपाट्य-गु०। अनोद-गहा, अनोना–सिंगा०। बौ-खोये, बौ-खोए–बर०। कंगोरी, कंगोई, मादमी पेटारी,–बम्ब०। खापटो-सिंध। सिंबल, पीली बूटी–सिंध, पं०। चक्र भेंड। विकंकती, आकई, कांसुली, मादमी,–मरा०। तत्ती, पेटारी तु-ब्रोकटी–गोआ। टुप-कडी–कों०, गोआ। आटार मामुड्की–कों०, डाबी–मार०।

अतिबला पत्र—कंघी का पत्ता वा पात, कंगई का पात–हिं०। कंगोई का पत्ता–द०। तुत्ति-इलै–ता०। तुत्ति आकु, तुत्तुरु-बेंड-आकु–ते०। तुत्त-एल् पेट्टक-पुट्टि-एल–मल०। श्रीमुद्रि-यले–कना०। झुमका गाछ-पाता, पिटारि-गाछ-पाता–बं०। कंगोई-तु-पात–गु०। अनोद-कोल–सिं०। बोन-खोये–बर०। वर्क़ुल् मश्तुल् ग़ौल–अ०। बर्गे दरख़्ते शानः–फ़ा०।

अतिबला बीज—कंघी का बीया, कंगई के

बीज, कंघी के बीज –हिं० । कंगोई के बीज–द० । तुत्तिविरै –ता० । तुत्ति वित्तुलु, तुत्तुरु-बेंड-बित्तुलु –ते० । तुत्त-वित्त; पेट्टक-पुट्टि-वित्त –मल० । श्री मुद्रिबीज –कना० । झुमका-गाछ बीज, पिटारी गाछ –बीज –बं० । कंगोई-नु-बीज –गु० । अनोद –अ० –सिं० । बलबीज –बम्ब०, कच्छ । बज़्रुल् मस्तुल् ग़ौल –अ० । तुख्मे दरख़्ते शानः –फ़ा०

पर्य्याय निर्णायिनी टिप्पणी—किसी-किसी के मत से सफ़ेद बरियारा ही अतिबला है । भाव प्रकाशकार अतिबला का हिंदी नाम 'ककहिया" लिखते हैं । भारतवर्ष में जिसे 'ककहिया' नाम से एक-एक आदमी जानता है, उसे ही बंगला में 'पिटारि' नाम से जानते हैं। भावप्रकाशोक्त भाषा नाम के आदत होने से यह ज्ञात होता है कि अतिबला पेटारि ही है और सफेद बरियारा नहीं हो सकती । वृन्दकृत सिद्धयोग के वाताधिकार में पठित नारायण तैलोक्त "बालावातिबलाचैव" पाठ की व्याख्या में श्रीकण्ठ भी लिखते हैं— "अतिबला पेटारिकेतिप्रसिद्धा" । बंगालमें 'पेटारि' सर्वजन सुपरिचित है । वि० दे० "बला"

राक्सवर्ग और खोरी ने अतिबला के जो लेटिन नाम दिये हैं, हमारे निकट वे ही संगत प्रतीत होते हैं ।

Abutilon Asiaticum और A. populifolium (G. Don.) या तो उपर्युक्त पौधे के केवल भेदमात्र हैं । या भिन्न जाति, पर इनकी देशी संज्ञाएँ प्रायः एक ही हैं । औषधीय व्यवहारानुसार भारतवर्ष में इनको वही स्थान प्राप्त है, जो ख़त्मी (Marsh Mallow) तथा खुब्बाजी (Mallow) को योरुप में ।

तथापि इसका एक भेद ऐसा भी है, जो सदा विभिन्न संज्ञाओं से सुविदित है । यह अपने प्रकांड, शाखा, पत्र-वृंत प्रभति के बैंगनी रंग द्वारा पहचाना जाता है और मदरास में झाड़-झंखाड़ों में प्रायः उपजता हुआ पाया जाता है । अपने बैंगनी रंग के कारण इसे इन नामों से अभिहित करते हैं—ऊदी या काली-कंगोई-का-झाड़ (द०), करु या करन-तुत्ति (ता०), नल्ल तुत्ति या नल्लनूगु-बेंड (ते०) ।

उपर्युक्त पर्य्याय-सूची-गत संज्ञाएँ यथार्थतः केवल कंघी (Abutilon Indicum) और A. Asiaticum तथा A. populifolium सहित उसके भेदों की हैं; परंतु कतिपय ग्रंथों (Materia Indica, *etc*) में, उनमें से कुछ संज्ञाओं का संयोगवश Malva (Sida) Mauritiana के लिये प्रमाद पूर्ण उपयोग किया गया है । यद्यपि उत्तरोक्त पौधा प्रायः भारतवर्ष में उपलब्ध होता है, पर इसे विलायती इस उपसर्गद्वारा पृथक् जानना चाहिये । जैसे, विलायती कंगोई-का-झाड़, इत्यादि । कंघी वा कंगोई शब्द का कतिपय ग्रंथों में अरबी तथा फ़ारसी ख़त्बाजी, ख़त्मी और तोदरी शब्दों के पर्य्याय स्वरूप हैं । जो परस्पर सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं ग़लत प्रयोग नहीं, अपितु इसे कंगोनी या कंगूनी शब्द से यह भी भ्रमपूर्ण बना दिया गया है, जैसा कि साधारणतया लिखा जाता है । यह उत्तर कथित शब्द कंगु (Panicum Italicum) की एक दक्खिनी संज्ञा है ।

अबीसीना वर्णित अबूतीलून नामक औषध जिसका क्षत पर उपयोग होता था, अधुना एब्युटिलन (Abutilon) नाम से विदित पौधे से सर्वथा भिन्न होगी; क्योंकि वे इसकी कद्दू (Pumpkin) से तुलना करते हैं ।

बलावर्ग

(N. *O. Malvaceæ.*)

उत्पत्ति-स्थान—सम्पूर्ण भारतवर्ष के उष्ण-प्रधान प्रदेश शुष्कप्रदेश और लंका । यह बरसात में उत्पन्न होती है ।

वानस्पतिक वर्णन—एक पौधा जो पाँच छः फुट ऊँचा होता है । इसकी पत्तियाँ पान के आकार की चौड़ी पर अधिक नुकीली एवं शुभ्र रोमान्वित होती है । पत्र प्रांत दन्दानेदार होते हैं, पत्तियों का रंग भूरापन लिये हलका हरा होता है, पत्रवृंत दीर्घ होता है । यह शरद ऋतु में पुष्पित होता है और शीतकाल में इसका फल परिपक्व होता है। प्रत्येक दीर्घवृन्त पर एक-एक फूल लगता है । फूल पीले २ और पाँच पंखड़ी युक्त होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर मुकुट के आकार के डेढ़

लगते हैं। जिनमें खड़ी २ कमरखी वा कँगनी होती है। पत्तों और फलों पर छोटे २ घने नरम रोएँ होते हैं जो छूने में मखमल की तरह मुलायम होते हैं। फल बिचित्र चक्राकृति का होता है जिसमें प्रायः १८-२० फाँकें मंडलाकार सन्निविष्ट होती हैं। फल पक जाने पर एक-एक कमरखी वा फाँक के बीच कई-कई काले २ दाने निकलते हैं। ये छोटे और चपटे होते हैं और इनका सिरा बारीक होता है। इन बीजों में से अत्यन्त लबाब निकलता है।

इसकी एक छोटी जाति और है जो जमीन पर बिछी हुई होती है। इसके सम्पूर्ण अवयव उपर्युक्त लिखितानुसार, पर उनसे छोटे होते हैं।

हकीम शरीफ खाँ ने तालीफ़ शरीफ़ी में लिखा है कि कंघी का फूल गावजबान के फूल की तरह नीला, किंतु उससे क्षुद्र तर एवं ललाई लिये होता है। इसका फल फव्वारे के शिर की तरह होता है, इत्यादि। परंतु नीलपुष्पी अतिबला देखी नहीं गई।

रासायनिक संघटन—इसकी पत्ती में प्रचुर परिमाण में लुआब होता है जो उदासीन प्लंबिक ऐसीटेट और फेरिक क्लोराइड से अवक्षेपणीय होता है। इसमें किंचित् कषायिन (Tannin) सैन्द्रिकाम्ल और ऐस्पैरागीन के चिन्ह भी पाये जाते हैं। इसकी राख में एलकलाइन् सल्फेट्स, क्लोराइड्स, मैग्नीसियम् फास्फेट और कैल्सियम् कार्बोनेट पाये जाते हैं। इसकी जड़ में भी एस्पैरागीन पाई जाती है।

व्यवहारोपयोगी अंग—इसकी जड़, पत्तियाँ छाल और बीज सब दवा के काम में आते हैं।

औषध-निर्माण—बहिर प्रयोगार्थ (१) पत्र क्वाथ—

निर्माण-क्रम—इसकी ताजी पत्ती एक मुट्ठी एक पाइंट पानी में क्वथित कर क्वाथ प्रस्तुत करें, (२) इसकी पत्ती को कुचलकर निकाला हुआ लुआब, (३) इसकी पत्ती वा मूल का फांट और बीज वा छाल का क्वाथ (१० में १) तथा बीज का अमिश्र चूर्ण। इसको यथाविधि प्रस्तुतकर कागदार बोतल में भर कर रखें।

मात्रा—१ से २ ड्राम यह चूर्ण दिन रात में ३-४ बार सेवन करें।

माजून कंघी—अतिबला बीज ५ तो०, सतावर १० तो० इनको पीसकर बारीक चूर्ण करें, चूर्ण से द्विगुण मिश्री वा शहद द्वारा यथाविधि माजून प्रस्तुत करें।

गुण प्रयोगादि—यह माजून ६ माशे की मात्रा में प्रातः सायंकाल खिलाने से कामावसाय और शुक्रप्रमेह में उपकार होता है।

अतिबला तैल—एक छटाँक कंघी के पत्तों को पीसकर छोटी २ कई टिकिया बनायें। पुनः किसी कटोरी आदि में १ छटाँक गोघृत डालकर गरम करें और उसमें टिकियों को छोड़ देवें। जब टिकिया जल जाए, तब उन्हें निकाल कर फेंक देवें और घी को साफ करके रखें।

गुण, प्रयोगादि—वृक्कशूल एवं सिकता में पूर्ण परीक्षित है। ५ तोले यह घी गरमा गरम घूँट घूँट पिलाने से तत्काल वेदना शांत होती है और सिकता प्रभृति निर्गत होती है।

अतिबला क्षार—फल के सम्यक् परिपक्व हो चुकने के उपरांत इसके समग्र क्षुप को उखाड़ कर साया में सुखायें। सूखने पर उसमें आग लगाकर जलायें और राख को पानी में डालकर तीन दिन तक रख देवें। प्रतिदिन किसी लकड़ी से उसे कई बार हिला दिया करें। तीन दिन के उपरांत ऊपर निथरा हुआ पानी लेकर पकायें। समग्र जल जाने पर क्षार को एकत्रित कर पीसकर शीशी में सुरक्षित रखें।

गुण प्रयोगादि—यह क्षार प्रभावतः मूत्रकर और अश्मरीघ्न है। आध माशा यह क्षार खाकर ऊपर से सफ़ेद जीरा ३ मा०, कुलथी ३ मा०, सौंफ ६ मा०—इनको जल में पीस छानकर पियें। इसी प्रकार प्रातः सायंकाल सेवन करें। इसे कुछ दिन सेवन करने से अश्मरी और सिकता आदि खंड खंड होकर निकल जाती है। यदि आध माशा उक्त क्षार मधु में मिलाकर चटायें, तो कफज कास और दमा में बहुत उपकार हो।

यदि उक्त क्षार १ भाग, शुद्ध रसांजन २ भाग इनको मिलाकर चना प्रमाण की वटिकायें प्रस्तुत

करें और दो-दो गोली प्रातः सायंकाल खायें, तो अर्श का खून बन्द हो जाता है। इसे दीर्घ काल तक सेवन करने से धीरे धीरे अर्शांकुर विलीन हो जाते हैं।

इसकी प्रतिनिधि स्वरूप पाश्चात्य औषधियाँ—ख़त्मी (Marsh-mallow) कोपाइबा (Copaiba), ऋक्ष-द्राक्षा (Uva Ursi) और बुकु (Buchu)।

गुणधर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

वातपित्तापहं ग्राहि बल्यं वृष्यं बलात्रयम्।

(धन्वन्तरीय नि०)

तीनों प्रकार की बला—वात पित्तनाशक, ग्राही, बलकारक और वृष्य हैं।

तिक्ता कटुश्चातिबला वातघ्नी कृमिनाशिनी।
दाहतृष्णा विषच्छर्दिः क्लेदोपशमनी परा॥

(रा० नि०)

अतिबला वा कंघी—तिक्त, कटु, वायुनाशक, कृमि तथा दाहनाशक, तृष्णाहर वमन को दूर करनेवाली और विषनाशक है तथा यह परम क्लेद का नाश करती है।

हन्यादतिबलामेहं पयसा सितया समम्।

(भा० पू० १ भ० गु० व०)

अतिबला वा कंघी को दूध और मिश्री के साथ सेवन करने से प्रमेह दूर होता है।

शीतला मधुरा बलकान्तिकृत्। स्निग्धा ग्रहणी वातरक्त-रक्तपित्तक्षतघ्नी च॥

(मद० व० १)

यह शीतल, मधुर, बल और कांतिकारक, स्निग्ध एवं ग्राही है और वातरक्त, रक्त पित्त और क्षत का नाश करनेवाली है।

बलिका मधुरा चाम्ला हिता दोषत्रय प्रणुत्।
युक्त्या शुद्ध्या प्रयोक्तव्या ज्वरदाहविनाशिनी॥

(रा० नि०)

कंघी (ककहिया)—मधुर, अम्ल, हितकारक, त्रिदोषनाशक और किसी के साथ युक्तिपूर्वक देने से ज्वर को हरने वाली है।

बलात्रयं स्वादुशीतं स्निग्धंवृष्यं बलप्रदम्।
आयुष्यं वातपित्तघ्नं ग्राहि मूत्रग्रहापहम्॥

खिरैंटी, सहदेई और कंघी ये तीनों मधुर, शीतल, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, आयु को हितकारी, वातपित्तनाशक, ग्राही और मूत्र रोग तथा ग्रह को निवारण करनेवाली हैं।

वैद्यक में अतिबला का व्यवहार

सुश्रुत—रसायनार्थ अतिबला—कुटी प्रवेश-पूर्वक योग्य मात्रा में अतिबला की जड़ की छाल ईषदुष्ण जल के साथ पान करें। बला सेवनकाल में जिस प्रकार की आहार-विधि का उपदेश किया गया है, इसमें भी उसी का अनुसरण करें। यथा—

'विशेषतस्त्वतिबलामुदकेन'(चि० २७अ०)।

चक्रदत्त—मूत्रकृच्छ्र में अतिबला-मूल—अतिबला वा कंघी की जड़ की छाल का काढ़ा पीने से सभी प्रकार का मूत्रकृच्छ्र उपशमित होता है।

भावप्रकाश—रक्तप्रदर में कङ्कतिका मूल—रक्तप्रदर में अतिबला अर्थात् कंघी की जड़ की छाल का महीन चूर्ण चीनी और मधु के साथ सेवन करें। यथा—

बलाकङ्कतिकाख्या या तस्यामूलं सुचूर्णितम्।
लोहित प्रदरे खादेच्छर्करा मधुसंयुतम्॥

(प्रदर चि०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—बड़ी किस्म की द्वितीय कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष और छोटी किस्म की सर्द और तर है। किसी २ के मत से गर्मी एवं तरी लिये हुये सम शीतोष्ण है। किसी २ के अनुसार दोनों प्रकार की कंघी की प्रकृति सर्द है।

प्रतिनिधि—ऊँटकटारा। कतिपय कार्य में सन के बीज एवं पत्ते।

हानिकर्त्ता—वायुप्रकोपक है तथा यकृत एवं प्लीहा के लिये हानिकर है। किसी-किसी ने उष्ण प्रकृति एवं निर्बल व्यक्तियों के लिये हानिकर और आध्मानकारक लिखा है।

दर्पघ्न—शर्करा, सौंफ, तथा मवेज। मतांतर से शुद्ध मधु एवं कालीमिर्च।

मुख्य गुण—अर्श तथा पूयमेह में गुणकारी एवं कामोद्दीपक है।

मात्रा—पत्र १ तो०, बीज और जड़ ३ मा०।

गुण, कर्म, प्रयोग—यह उरोव्याधि, अर्श, शोथ और ज्वर को लाभ पहुँचाती है। पेशाब खुलकर लाती है, वस्ति तथा मूत्रपथजात क्षतों को लाभप्रद है। इसके बीज कामशक्तिवर्द्धक है और मलावरोध उत्पन्न करते हैं। इसकी पत्ती कटिशूल और प्रायः अवयवों की वेदना का निवारण करती है। इसके क्वाथ का गण्डूष करने से दन्तशूल नष्ट होता है। (म० मु०) इसके पीने से सांद्रवायु (रियाह गलीज़) विलीन होती है। यह अवरोधोद्घाटक है और पित्त जन्य व्याधियों को नष्ट करता है। इसका कच्चा फल वायु उत्पन्न करता है और पका फल सरेसाम को दूर करता है। इसके पत्तों का स्वरस लगभग ७ तो० की मात्रा में पीने से पागल कुत्ते के काटे को लाभ होता है, यह परीक्षा में आ चुका है।

इसकी गोलियाँ अर्श में लाभकारी हैं और बादी को दूर करती हैं। कंघी की पत्तियाँ २१ नग, कालीमिर्च १ नग इन दोनों को पीसकर सात वटिकाएँ प्रस्तुत करें। इनमें से एक वटी नित्य प्रातःकाल जल के साथ निगलें। फ़ारसी ग्रंथों के अनुसार बड़ी कंघी की पत्तियाँ दो तोले जल में पीसकर शीरा निकालकर २१ दिवस पर्यंत पीने से फिरंग रोग नष्ट होता है। हिंदी ग्रंथों में लिखा है कि कंघी तीक्ष्ण, चरपरी, मधुराम्ल और औदरीय कृमिहर है। इसकी पत्तियों में चेपदार गाढ़ा रस निकलता है, जो औषध जनित तीक्ष्णता का उपशमन करता है। इसकी जड़ का फांट ज्वरजनित उष्णता का निवारण करता है। कुष्ठ रोगी को इसका फांट (खेंसादा) पान कराना चाहिये। इसके बीज कोष्ठ-मृदुकर (मुलय्यन शिकम) हैं। अर्श जन्य वेदना के निवारण करने के लिये इनकी फँकी दी जाती है। इसके बीजों का लुआब चरपराहट को दूर करता है। इसके बीज और अड़ूसे के पत्तों को औटाकर पिलाने से सूखी खाँसी मिटती है। दस्त बंद करने के लिये इसकी छाल का काढ़ा पिलाना चाहिये। इसका प्रत्येक अवयव उरोव्याधि का निवारण करता है। ज्वरताप संशमनार्थ इसकी पत्तियों का हिम पान कराना चाहिये। इसकी छाल और बीजों का हिम पान करने से मूत्रोत्सर्ग होता है। इसकी छाल के काढ़े से गण्डूष करने से दंतशूल और मसूढ़ों का ढीलापन मिटता है। इसकी टहनी से गर्म दूध को आलोड़ित करने से वह जम जाता है। जमने के उपरांत कपड़े में बाँधकर लटकाने से जो पानी स्रवित होता वा उसे तोड़ निकालता है, उसे पिलाने से रक्तार्श मिटता है। इसके बीजों का हलवा प्रस्तुत कर खाने से काम शक्ति वर्द्धित होती है। इसके पत्तों को पकाकर खाने से बवासीर का लोहू बंद होता है। बारंबार जलन के साथ पेशाब आता हो, तो इसकी जड़ का हिम प्रस्तुत कर पिलाने से लाभ होता है। यदि पेशाब में खून आता हो, तो इसकी पत्तियों के हिम में मिश्री मिलाकर पिलाने से कल्याण होता है। २ से ७॥ मा० तक इसके बीज अन्य कोष्ठ मृदुकर औषधों के साथ देने से कोष्ठ मृदुकरण का काम करते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा पिलाने से सूज़ाक आराम होता है। पुरानी खाँसी के उपशमनार्थ इसकी पत्तियों का फांट पान कराना चाहिये। इसकी पत्तियों का हिम पिलाने से मूत्राशय की सूजन उतरती है, शिशुओं की गुदा में इसके बीजों की धूनी देने से चुरने कृमि—एक प्रकार के सफ़ेद छोटे और बारीक कीड़े नष्ट हो जाते हैं। (मस्तिष्कगत कृमियों में भी इसकी धूनी लाभकारी होती है।) कुमारी लड़की के हाथ से कते हुए सूत से इसकी जड़ को स्त्री की कटि में बाँधने से गर्भपात होने की आशंका निवृत्त होती है। इसकी सात पत्ती पानी के साथ पीसकर स्वरस निकालें। उसमें चीनी मिलाकर पीने से पित्त जन्य ख़फ़कान नष्ट होता है। इसके सात पत्तों का चूर्ण फाँकने और मूंग की दाल की खिचड़ी खाने से कामला रोग नष्ट होता है। घाव पर इसके पत्ते बाँधने से वह पूरित हो जाता है। इसके बीज पीसकर शहद में मिलाकर चाटने से खाँसी आराम होती है।

इससे सरलतापूर्वक कफ निःसृत होता है। नाना प्रकार की सूजनों पर इसके बीज पानी में पीसकर लेप करने से सूजन उतर जाती है। फुफ्फुस शोथ और फुफ्फुसावरण शोथ में इससे उपकार होता है।

इसकी जड़ के लेप से कान के पीछे की सूजन और स्तन की सूजन मिटती है।

इसकी जड़ घी में पकाकर (खनाज़ीर) के रोगी को खिलाने से और उस पर बाँधने से बहुत उपकार होता है। इसके खाने से हृदय को शक्ति प्राप्त होती है और चेहरे का रंग निखरता है।

जड़ का फांट दीर्घकाल तक पिलाने से कुष्ठ रोग आराम होता है।

नव्य मतानुसार—

मोहीदीन शरीफ—पत्र मृदुताकारक, बीज स्निग्धता संपादक और किंचिन् मूत्रल है। इसकी पत्ती में कुछ लुआबी पदार्थ होता है, जो पत्ती को उष्ण जल में रखने से पृथक् हो जाता है। इसलिये इसके काढ़े का सेंक वेदना पूर्ण भागों के लिये उपकारी है। पूयमेह, चिरकालानुबंधी पूयमेह (Gleet) और चिरकारी वस्तिप्रदाह पर इसके बीजों का नियंत्रण स्पष्टतया लक्षित होता है। (Materia Medica of Madras P. 68)

आर० एन० खोरी—बीज स्निग्धता-संपादक हैं इसकी जड़ की छाल मूत्रल और शैत्यजनक (Cooling) है, अतएव पूयमेह, मूत्रकृच्छ (Stranguary) आदि रोगों में ख़त्मी की तरह इसका भी उपयोग होता है। (Materia Medica of India—II P. 92)

ऐन्सली—ज्वरों में शीत संपादनीय औषध रूप से कंघी की पत्तियों वा जड़ का फांट (Infusion) प्रयोग में आता है।

थॉम्पसन तथा वेंट—कंघी के बीज कामोद्दीपन और शुक्रप्रमेहहर हैं। अर्श में ये कोष्ठ मृदुकर रूप से व्यवहार में आते हैं।

सूत्र-कृमि (Thread worm)से पीड़ित शिशुओं को गुदा को कंघी के बीजों की धूनी देते हैं।

आर० एन० चोपरा—कंघी की पत्तियों को पानी में भिगोने से एक प्रकार का लुआब प्राप्त होता है, जिसका ज्वर तथा उरो व्याधि और पूयमेह तथा मूत्रमार्ग-प्रदाह में भी मूत्रकर एवं स्निग्धता संपादक रूप से उपयोग किया गया है। इसके बीजों का महीन चूर्ण १ से २ ड्राम की मात्रा में कोष्ठमृदुकर एवं श्लेष्मानिः सारक रूप से प्रयोग में आ सकता है। (Indigenous drugs of India P. 560)।

इमर्सन—दंतशूल और मसूढ़ों के कोमल हो जाने की दशा में कंघी की पत्तियों का काढ़ा मुख धावन रूप से व्यवहार में आता है।

नार्मन—उपर्युक्त काढ़े का सूत्राक और वस्ति प्रदाह में भी उपयोग होता है।

थॉमसन—मूत्ररोध (Stranguary) और रक्त मूत्रता में इसकी जड़ का फांट उपयोगी होता है।

इसकी जड़ का फांट कुष्ठ में उपकारी बतलाया जाता है। कास की चिकित्सा में इसके बीज काम में आते हैं।

चीनियों के अनुसार हाँग-काँग में कंघी के बीज मृदुताकारक और स्निग्धता-संपादक रूप से काम आते हैं। जड़ मूत्रल और फुफ्फुसीय अवसादक रूप से व्यवहृत होती है। विस्फोटक (Boils) और क्षतों पर कंघी के फूल और पत्ती का स्थानीय उपयोग होता है।

पोर्टर स्मिथ के कथनानुसार इसके बीज और समग्र पौधा स्निग्धता-संपादक, तारल्यजनक, मूत्रकर, कोष्ठ मृदुकर और (Discutient) औषध रूप से व्यवहार होते हैं।

बी० डी० वसु—सूतिका रोग, मूत्र-विकार, चिरकारी रक्तामाशय तथा ज्वर आदि रोगों का उपचार कंघी के बीजों से किया जाता है। (Indian Modioinal Plants)

कंघी की पत्तियों का स्वरस और घी प्रत्येक १ तोला। प्रातिश्यायिक एवं पित्तातिसार में इसका व्यवहार होता है।

अर्श में इसके बीजों का काढ़ा प्रयुक्त होता है। कास-चिकित्सा में भी उक्त काढ़ा काम आता है।

नादकर्णी—इसका मूल और मूलत्वक् मूत्र-कर रूप से समादृत होते हैं।
(Indian Materia Medica P. 7-8)

वनौषधि गुणादर्श—अतिबला की कोमल पत्तियों को बारीक पीसकर लुगदी बनाकर फोड़े पर रखना चाहिये और उस पर कपड़े की तह रखकर उस पर ठंडा पानी डालते रहना चाहिये। इस प्रयोग से गाँठ में होनेवाली जलन और झपका बंद होता है और गाँठ शीघ्र पककर फूटजाती है।

अतिबला की जड़ को घिसकर लगाने से बिच्छू का विष दूर होता है।

कंघी द्वारा होनेवाली धातु-भस्में

(१)संगयहूद भस्म—विधि यह है-कंघी पत्र अर्द्ध सेर लेकर चार सेर पानी में क्वाथ करें। जब पानी अष्टमांश अर्थात् आध सेर शेष रह जाय, तब उसे खूब मलकर छान लेवें। पुनः संगयहूद दो तोले लेकर थोड़ा थोड़ा काढ़ा डालकर खरल में आलोडित करें। जब सब काढ़ा समाप्त हो हो जाय और टिकिया बनाने योग्य कल्क हो जाय तब उसकी टिकिया बनाकर छाँह में सुखा लेवें। इस टिकिया को कंघी के एक पाव पत्तों की लुगदी के भीतर रखकर ऊपर से कपड़ मिट्टी करके पाँच सेर उपलों की आग देवें। टिकिया भस्म होकर खिल पड़ेगी।

गुण, प्रयोगादि—मूत्रसंग और अश्मरी एवं सिकता के लिये परमोपकारी है।

मात्रा—दो रत्ती उक्त भस्म खाकर ऊपर से २ तोला गौघृत और ३ तोले मिश्री मिला एक पाव गरम गरम दूध पीने से तत्काल लाभ होता है।

(२) रजत भस्म—शुद्ध चाँदी लेकर उसका बारीक पत्र बनायें। पुनः एक पाव कँघी के पत्ते खूब कूटकर लुगदी बनायें और उसके भीतर चाँदी के पत्र रखकर ऊपर से कपरौटी करें। इस कपरौटी किये हुये गोले को पाँच उपलों की अग्नि देवें। फिर निकाल कर कई बार इसी प्रकार आग देवें। चाँदी भस्म होगी।

गुणप्रयोगादि—यह हृदय को शक्ति प्रदान करता है तथा यकृत की दुर्बलता और ऊष्मा को दूर करता है।

मात्रा—हृन्नैर्बल्य में आधी रत्ती रजत भस्म सेव के मुरब्बा में और यकृत की निर्बलता में आमले के मुरब्बे के साथ देवें।

(३)सीसक भस्म—दो तोले सीसा को कढ़ाई में गलाकर उसमें कंघी की लकड़ी फिराते रहें। सीसा धीरे धीरे राख हो जायगा। उक्त राख को कंघी पत्र-स्वरस से चार प्रहर खरल करके टिकिया बनाये और इसे दो सेर उपलों की अग्नि देवें। दो-तीन आँच में सुनहले रंग का सुन्दर भस्म प्रस्तुत होगी। इसे पीसकर रखें।

गुण, प्रयोगादि—बहुमूत्र, मधुमेह तथा मूत्र-प्रणाली के अन्य रोगों में यह भस्म अतीव गुण-कारी है। राजयक्ष्मा और उरःक्षत में भी इससे उपकार होता है।

मात्रा—१ रत्ती उपयुक्त अनुपान के साथ व्यवहार्य है।

कंच-[मल०] भाँग। विजया।

कंचकचु-[देश०] Lasia Heterophylla कंटकचु।

कंचन-संज्ञा पुं० [सं० काञ्चन] (१) सोना। सुवर्ण। (२) धतूरा। (३) एक प्रकार का कचनार। रक्त कांचन।

वि० (१) नीरोग। स्वस्थ। (२) स्वच्छ। सुन्दर। मनोहर।

[मरा०] कचनार। कांचन।

कंचना-एक ओषधि (Jussiaea Repens.)।

कंचनिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० कचनार] एक छोटी जाति का कचनार। इसकी पत्तियाँ और फूल छोटे होते हैं।

कंचा-[मल०] पालिता मंदार। फरहद।

कंचाच-चेटि पशा-[मल०] चरस।

कंचाव-एल-[मल०] भाँग। विजया।

कंचाव चेटि-[मल०] भाँग।

कंचाव पाल-[मल०] चरस।

कंचाव वित्त-[मल०] विजया बीज।

कंची-संज्ञा स्त्री० [सं०] काला जीरा।

[पं०] अँकरी

कंचीड़ा-[?] नारंगी।

कंचीवला–[कना०] कचनार। कांचन।

कंचुक–संज्ञा पुं० [सं० क्लो०] अस्तर। coat, अ० श०।

कंचुकी–[मरा०] असगंध। अश्वगंधा।

कंचुरा–[बं०] कनूरक (बं०)।

कंचुरि–संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलि] कँचुल। कंचुकी। साँप की कँचुली।

कंचुरी–[ता०] बिछाती नाम का पौधा। वरहंटा। वृश्चिकाली।

कँचुली–संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्चुलि] कँचुल।

कंचू–[कना०, ते०] काँसा।

कँचेली–संज्ञा स्त्री० [सं० कंचुक वा देश०] एक मध्यम आकार वृक्ष का नाम जो हज़ारा, शिमला और जौंसर में होता है।

कंचोरा–[बम्ब०] जंगली हल्दी।

कंछा–संज्ञा स्त्री० [हिं० कनखा] पतली डाल। कनखा। कल्ला।

कंछारी–[पं०] बादावर्द।

कंज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) अमृत। (३) सिर के बाल। केश। (४) काञ्चन। दहन। लहन। (राजपू०)।

(Toddalia aculeata, *Pers.*) जंगली कालीमिर्च।

[मरा०] कंजा। करंज।

कंजई–वि० [हिं० कंजा] कंजे के रंग का। धूएँ के रंग का। ख़ाकी।

संज्ञा पुं० (१) एक रंग। ख़ाकीरंग। (२) वह घोड़ा जिसकी आंख कंजई की रंग की होती है।

कंजक–[फ़ा०] दरदार।

कंजन बोड़ा–[हिं०, बं०]

कंजनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

कंजनु–[बर०] महुआ।

कंजर–[फ़ा०] हरशफ़।

[पं०] इंद्रायन हंज़ल।

कंजर जद–[फ़ा०] कंकरज़द।

कंजरी–संज्ञा स्त्री० [मरा०] कंथारी। तीक्ष्ण कंटका। फणिमनसा (बं०)।

कंजर सरह–[सिरि०] कंकरज़द।

कंजरीस–[सिरि०] कंकरज़द।

कंजर्स–[पं०] इंगरच। बुनुन। तवई।

कंजल–[पं०] कंचली (सं० प्रां०) Acerpictum, *Thunb.*

कंजलक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली० किञ्जल्क] नाग केशर।

कंजा–[ता०] भाँग। विजया।

संज्ञा पुं० [सं० करञ्ज] (१) करंजुवा। करंजवृक्ष। सागरगोटा का पेड़। (२) इस वृक्ष का बीज। करंज। वि० दे० "करंज"।

कंजाई–[?] गाँजा।

कंजान बुरा–[बं०, हिं०] निरविशाल।

(Kaempferia angastifolia, *Rosc.*

कंजार–[फ़ा०] तिल। तिल्ली।

कंजार:–[फ़ा०] खली।

कंजाल–[हिं०] सेवार। काई। शैवाल।

कंजियाल–[बं०] केले के खम्भे का भीतर का गूदा। बंगाल में इसे तरकारी की तरह मछली के साथ खाते हैं। (मीर मुहम्मद हुसेन)

कंजिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। भार्ङ्गी।

कंजिरम् एइत्थल–[मल०] एक प्रकार का परांगभक्षी पौधा (बंदाक) जो कुचिला के पेड़ पर पाया जाता है। इसके अभाव में कुचिला वृक्ष के नूतन पल्लव औषधि के काम में आते हैं।

(फा० इं० ३ भ०)

कंजु–[हिं०] स्वादुकंटक। (इं० मे० प्रां०)

कंजुरस–[यू०] जावरस। बाजरा।

कंजुरा–[देश०] जटाकंचूर। जात कंजुरा।

(Commelina Obliqua, *Ham.*) कना०।

कंजूरिया–[यू०] जंगली कासनी। अरण्य कासनी।

कंजो–[बर०] काला बगोटी।

कँजुवा–संज्ञा पुं० दे० "कँड़ुवा"।

कंभल–[देश०] काकरु। Acer pictum.

कंटअशेरियो–[गु०] पीले फूल की कटसरैया। कुरंटक।

कंट आवला–[मरा०, गु०] चेलमेरी।
(Averrhoa Acida) Country goose-berry.

कंट उन्हली–[मरा०] सफ़ेद सरफोंका।

कंट कटचू–[बं०]
कंटकचोरम्–[ते०] } मुलसरी। कंटका।
(Lasia spinosa, *Thwaites.*)

कंटकझाड़–[राजपु०] झड़वेरी। भूबदरी।

कंटकटी–सज्ञा स्त्री० [?] देवदारु। कश्मल। इं० मे० प्रां०।

कंटकरेज–[हिं०] लताकरंज। सागरगोटा।

कंटका–[ते०] कंटकटचू।

कंटकालिका–[बं०] तालमखाना।

कंटकालु–[सं०] कंटालू। सूर आलू। कूकर आलू।
(Dioscorea Pentaphylla)

कंटकुसम–[उड़ि०] कुसुमभेद। काँटेवाला कुसुम।

कंटजीर–[?] इमली।

कंट धोतरा–[मरा०] ब्रह्मदंडी।

कंटपलास–[उड़ि०] कटेरा।

कँटबाँस–संज्ञा पुं० [हिं० काँटा+बाँस] एक प्रकार का बाँस जिसमें बहुत काँटे होते हैं और जो पोला कम होता है।

कंट (काँटा) भाजी–संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटा+भाजी] चौलाई। तंडुलीय।

कंट भारंगी–[मल०] भारंगी। भार्गी।

कंटमारिष–[उड़ि०] कटेरी।

कंटर्मा दंत–[गु०] चौलाई।

कंटम्-कत्तिरि–[मल०] भटकटाई। कटेरी। लघु कटाई।

कंटवारस–[तु०] कड़। कुसुम। बर्रे। कुर्तुम।

कंटसरु–[संथाल] मुलसरी। कचोरमु।

कंटहल–[बं०] कटहल।

कंटा–[कुमा०] एक औषधि।
[पं०, शिमला] एक औषधि।

कंटाई–संज्ञा स्त्री० [सं० किंकणी] विकंकत। किंकणी। खुवा वृक्ष। (Flacourtia Rawontche) दे० "विकंकत"।

कंटामरा–[?] एक प्रकार का कमल।

कँटाय–संज्ञा स्त्री० [सं० किंकिणी] एक प्रकार का कँटीला पेड़ जिसकी लकड़ी के यज्ञ-पात्र बनते हैं। इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी और फल बेर के समान गोल होते हैं जो दवा के काम में आते है। वि० दे० "विकंकत"।

कंटारो–[कों०] थूहर। स्नुही।

कंटाल–संज्ञा पुं० [सं० कण्टालु] एक प्रकार का रामबाँस वा हाथीचक जो बंबई, मदरास, मध्य भारत और गंगा के मैदानों में होता है। इसकी पत्तियों के रेशे से रस्सियाँ बटी जाती हैं।
(Agave Americana, *Linn.*) दे० "अगेवि अमेरिकेना"।

कंटाला–संज्ञा पुं० [सं० कंटालः] दे० "कंटाल"।

कंटाली–[राजपु०] कटेरी। भटकटैया।
[सं०] चीरपाती।

कंटाला बल–[गु०] गुलशकरी। नागबला।

कंटिकपाली–[उड़ि०] काँटा-गुर-कमै। हैंस।

कंटिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० काँटी] इमली की वे छोटी फलियाँ जिनमें बीज न पड़े हों। कतुली। केचुली।

कँटियारी–[पं०] एक प्रकार का कुसुम। खारेजा, कंटिआरि। (Carthamus Oxycantha, *Bieb.*) दे० "खारेजा"।

कंटी पचल–

कंटी सेमल–संज्ञा पुं० लाल सेमल।

कंटी सेवती–[मरा०] कुब्जक। सफ़ेद गुलाब।

कंटी सोप्पु–[कना०] अपराजिता। विष्णु क्रांता।

कंटु–[पं०] थुनेर।

कंटेना–

कंटेभौरी–[मरा०, कों] सारिवा। (Ichnocarpus Frutescens,)

कँटेरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कंटकी] भटकटैया।

कंटेरी समर–[म]

कंटैल्लुक–संज्ञा पुं० [सं०] पारिजात वृक्ष।

कंटोलन–[गु०, मरा०] धार करेला। कँकरोल। Momordica Dioica.

कंटौच–[पं०] आखी। अखरेरी कंटियान। चुआ (लाहौर)।

कंट्या निवली–[कों०] नागफनी। फणिमनसा।

कंट्री इपीकाकाना– [अं० Country Ipecacuanha] पित्तपापड़ा। पित्तमारी। (Naregamia alata, *W.&A.*)

कंट्री मैलो–[अं० Country Mallow] क़ंघी ककही।

कँटेला–संज्ञा पुं० [हिं० काठ+केला] एक प्रकार का केला जिसके फल बड़े और रूखे होते हैं। यह हिंदुस्तान के प्रायः सभी प्रांतों में होता है। कठकेला। कचकेला। काष्ठ कदली।

कंठ उन्हली–[म०] सफ़ेद राई।

कंठंग–[मल०] काँदा। वनपलाण्डु। जंगलीप्याज़।

कंठेल–[बं०] कटहल। पनस।

कंडंग हेटरि–[ले० Cundung] कटेरी

कँडरा–संज्ञा पुं० [सं० कंदल] [स्त्री० कँडरी] मूली सरसों आदि के बीच का मोटा डंठल जिसमें फूल निकलते हैं। इसका लोग साग बनाते और अचार डालते हैं।

कंडल–[बुख़ारा] उशक का गोंद।

[हिं०] कन्नल। निरपागोण्डी।

कंडल-क़मा–[फ़ा०] (१) हरीरूद घाटी में इस नाम से प्रसिद्ध एक पौधा। उशक। (२) सकवीनज। म० मु०।

कंडा–संज्ञा पुं० [सं० स्कंदन=मलत्याग] [स्त्री० अल्पा० कंडी] (१) सूखा गोबर जो ईंधन के काम में आता है। (२) सूखा। मल। गोटा। सुद्दा।

संज्ञा पुं० [सं० काँड] (१) मूँज के पौधे का डंठल। सरकंडा। (२) शकरकंद।

[पं०] गीदड़ द्राक। द्राक्षी।

[सतलज] कंटा।

कंडापिडी–संज्ञा स्त्री० [?] (१) पत्थरफोड़ी, (२) आटा।

कं (कुं) डा मामिडी–संज्ञा स्त्री० अमड़ा। आम्रातक।

कंडियार–[पं०] सरमूल।

[कोल] पाढल।

[पाली] खारेज़ा।

कंडियारी–[काश०] गुनाच। तुलौच। [पं०] (१) कौड़ी बूटी। मरग़ीपाल। दुवा। (२) खारेजा। (३) भुइ पुटकंडा। (४) लाप पताकी : कमल। फपड़ी।

कंडी–संज्ञा स्त्री० [हिं० कंडा] (१) छोटा कंडा। गोहरी। उपली। (२) सूखा मल। गोटा। सुद्दा।

[सिंध] शमी। कमरा।

कंडी (दी) र याक–[तु०] भाँग के बीज का तेल।

कंडीरी–[पं०] लखटी।

कंडुलु–[ते०] अरहर। आढ़की।

कँडुवा–संज्ञा पुं० [हिं० काँदो वा सं० कंडु] बाल वाले अन्नों का एक रोग। कँजुआ। झींटी। कंडो।

कंडूल–[मरा०] गुलू। कुलू।

कंडेर–[पं०] कबर। करीर। Capparis spinosa

कंडेरी–[पं०] (Astragalus multiceps. *Wall.*)

कंडेलिया रहीडियाई–[ले० Kandelia Rheedii] एक ओषधि।

कंडौर–[संज्ञा पुं० [सं० कंडु वा हिं० काँदो] बाल वाले अन्नों का एक रोग। इसमें बाल पर काले रंग की चिकनी धूल वा भुकड़ी बैठ जाती है जिससे उसके दाने मारे जाते हैं। यह रोग धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरे आदि के बालों में होता है। कँडुवा। कँजुआ। झींटी। कंडो।

कंतनी–[सिरि०] पखान बेद। जितियाना।

क़ंतर:–[अ०] (१) सेतु। पुल। (२) ऊँची इमारत।

क़ंतरतुलमुख़्ख़–[अ०] मस्तिष्क के मध्य सेतु के आकार का वह भाग जो ऊपर वृहत् मस्तिष्क, पीछे अणु मस्तिष्क और नीचे सुषुम्नाशीर्षक से लगा रहता है। मानो यह भाग मस्तिष्क के शेष तीनों भागों को परस्पर मिलाता है। इसके तंतु खड़े और आड़े होते हैं। आड़े रेशे वृहत् मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को परस्पर मिलाते हैं। बर्ज़ख़ुदिमाग़। जसरफ़ारूलियूस। Pons Varolli पॉन्स वैरूलाई।

क़ंतरमा–[यू०] तुरंज। विजौरा नीबू।

क़ंतरोस, कंतरीस–[यू०] तेलनी मक्खी। ज़रारीह। (Cantharis)

[अ०] चूहा।

क़ंतवा सतवा–[यू०] बड़ा सनोबर।

क़ंतुस–[यू०] (१) विलायती मेंहदी। आस। (२) खुमी।

कंता अनूरीन–[रू०] सालम मिश्री।

क़ंता–[रू०] (१) दम्मुल् अख़वैन। (२) बथुआ। सर्मक़।

क़ंतार–[अ०] (ऊद मितर। (२) ऊद क़मारी। ऊदुल्बख़ुर। (३) एक प्रकार की माप।

क़ंतारीक़ा–[यू०] उस्क़ूलूक़ंदर्यून। महापान।

क़ंतारीदास–[यू०] तेलनी मक्खी। ज़रारीह। (Cantharis)

क़ंतारीन–[यू०] फ़राश का पेड़। असल।

क़ंतारीना–[यू०] उस्क़ूलूक़ंदर्यून। महापान।

कंतारू–[कना०] कन्थारी।

क़ंतावरस–[रू०, तु०] तुख़्म कड़। बर्रे। कुसुम का बीया। क़ुतुम।

क़ंतूदा–[यू०] अफीम। अहिफेन।

कंतु किलंग–[ता०] मौआलु।

क़ंतू–[?] रेंड। एरंड।

क़ंतू अस्लवा–[यू०] बड़ा सनोबर।

क़ंतू ईदस–[यू०] छोटे सनोबर का बीया।

क़ंतूरियून–संज्ञा स्त्री० [रू०, यू०। मुअ० जंतूरियः (रूमी)] एक प्रकार का पौधा जो क्षुद्र तथा बृहद् भेद से दो प्रकार का होता है। (Dianthus anatolicus, *Boiss.*

नोट—यह जंतूरियः रूमी शब्द से आरब्धकृत शब्द है, जिसका संकेत रूमी हकीम 'जंतूरिस' से है, जिसने सर्व प्रथम उक्त ओषध का पता लगाया था।

कंतूरियून कबीर–संज्ञा स्त्री० [रूमी या यू०] एक पौधा जिसका तना काहू किसी-किसी के मत से हुम्माज के तने की तरह होता है जो दो-तीन हाथ (मतांतर से ३ गज) तक लंबा जाता है। इसी कारण इसे कंतूरियून का बड़ा भेद माना है। इसकी एक ही जड़ से बहुसंख्यक शाखाएँ निकलती हैं। उनके शिखर खासस शिखरवत् होते हैं। जो गोल और किसी प्रकार लंबे होते हैं। इसका फूल सुरमई रंग का और गोल होता है। जिसके भीतर रुई की तरह कोई चीज़ होती है। शाखों के सिरे पर फल होते हैं। पोस्ते की ढेंढ़ की तरह भीतर बीज होते हैं। जिनकी आकृति कड़ के दानों की तरह और स्वाद चरपरा होता है। इसके पत्र अखरोट पत्रवत्—किसी-किसी के मत से गर्जर पत्रवत् करमकल्ला के पत्तों के समान हरे, पत्रप्रांत आरे की तरह दंदानेदार होते हैं। इसकी जड़ मोटी, कड़ी, २ हाथ (दो गज़) लंबी और एक प्रकार के सुर्ख़ रक्तमय द्रव से परिपूर्ण रहती है। इसका स्वरस रक्त के समान होता है। इसका स्वाद किंचित् कषाय एवं मधुरता लिये चरपरा होता है। लूफाये कबीर।

प्राप्ति-स्थान—पश्चिम तिब्बत से आर्मीनिया तक।

गुणधर्म तथा प्रयोग—

प्रकृति—द्वितीय वा तृतीय कक्षा में उष्ण एवं रूक्ष। हानिकर्त्ता—मस्तिष्क को। दर्पघ्न—मधु, शर्करा, मिश्री प्रभृति। (मतांतर से समग़ अरबी तथा कतीरा) प्रतिनिधि—नागरमोथा और सुरंजान रसवत और कंतूरियून सग़ीर। मात्रा—७ माशे तक। किसी-किसी के मत से ६ माशे तक। प्रधान गुण—रजः प्रवर्त्तक, आशु प्रसवकारी और मस्तिष्क शोधक है।

गुण, कर्म, प्रयोग—

कंतूरियून कबीर के स्वाद में चरपराहट एवं तीक्ष्णता होती है और इसमें किंचित् मिठास के साथ कषायपन भी होता है। अस्तु, इसमें बिना स्वच्छता, संकोच, क्षोभ, और तीक्ष्णता के तज़्फ़ीफ़ पाई जाती है। किसी-किसी का कथन है कि जब इसको कूटकर कटे हुये मांस के साथ पकाया जाता है, तो यह उसको जोड़ देती है। यह मूत्र एवं आर्त्तव का प्रवर्त्तन भी करती है। उदरस्थ शिशु को खराब कर देती है। मृत शिशु को गर्भाशय से निःसरित करती है, जिसका कारण इसकी तीक्ष्णता, चरपराहट और क़ुव्वत हरारत है। अपने संग्राही गुण के कारण यह क्षतों को परिपूरित करती और रक्त निष्ठीवन को लाभ पहुँचाती है। यह पेशियों के टूटने फूटने, दमा और

पुरानी खाँसी में इससे बहुत उपकार होता है। क्योंकि उक्त रोगों में इस बात की आवश्यकता होती है कि इन अवयवों से मलों की शुद्धि की जाय और साथ ही उनको शक्ति प्रदान की जाय। यहाँ पर यही बात होती है अर्थात् इसकी चरपराहट एवं तीक्ष्णता से मलों का शोधन होता है और चूँकि इसमें किसी प्रकार माधुर्य्य होता है। अस्तु, इससे मलोत्सर्ग को जो क्रिया होती है, वह तीव्रता एवं सख्ती के साथ नहीं होती और इसके संग्राही गुण से शक्ति प्राप्त होती है। (त० न०)

कंतूरियून सग़ीर से अल्पशक्ति है। यह विलायक एवं निर्म्मलताकारक है। इसकी जड़ से आर्त्तव का खून जारी होताहै और यदि पेटमें बच्चा हो तो निकल पड़ता है। यह वक्ष एवं मस्तिष्क का शोधन करती है, श्वासकृच्छ्रता को लाभ पहुँचाती है; रक्तनिष्ठीवन में भी उपकारी है और व्रणों का पूरण करती है। कहते हैं कि यदि मांस की बोटियाँ करके उक्त औषधि उसमें डालकर पकायें, तो वह सब आपस में मिल जायँ अर्थात् जुड़कर मांस का एक पारचा बन जायँ। यह पुरानी खाँसी को दूर करती है, मूत्र तथा आर्त्तव का प्रवर्त्तन करती है और प्लीहा की सूजन को लाभ पहुँचाती है। इसके उपयोग से सरलतापूर्वक शिशु पैदा हो जाता है। यह गर्भाशय के रोगों के लिये गुणकारी है; उदरस्थ कृमियों को नष्ट करती और भगंदर एवं वाततंतुगत क्षतों का पूरण करती है। यह रींगन वायु जनित शूल के लिये परीक्षित है। यह वायु को विलीन करती तथा कफ और पित्त का मल द्वारा उत्सर्ग करती है। इसका चूर्ण नासूरमें भरकर मुँह बाँधदें, तो कल्याणहो।

शेख़ के मतानुसार ज्वर में इसे ७ माशे की मात्रा में देने से उपकार होता है। परंतु गाज़रूनी इस पर यह आपत्ति करते हैं कि उक्त औषधि तृतीय कक्षा पर्यंत उष्ण है। अस्तु, ऐसी औषधि ज्वर में कब लाभकारी हो सकती है। इसके पीने से यदि ज्वर में कुछ भी उपकार हो, तो वह कफ ज्वर में होना संभव है। परंतु उस समय इसका अकेले उपयोग न कर, सिकंजबीन शकरी या सिकंजबीन बजूरी सर्द के साथ दें, वरन् मस्तिष्क रोगों का प्रादुर्भाव कर देगी। (ख़० अ०)

यह रोधोद्घाटक है और श्वास, पार्श्वशूल, यकृत तथा प्लीहा के सुद्दों, कफज कुलंज, जलंधर (इस्तिस्क़ाऽ) और कामला (यर्क़ान) को गुणकारी है। यह आमाशय गत कृमियों को नष्ट करती और उन्हें निकालती है। इसका प्रलेप अर्श, अंगस्फुटन, गृध्रसी तथा पट्ठों के शूल का निवारण करता है।

क़ंतूरियून तोलीदून–[यू०] कंतूरियून सग़ीर। कंतूरियून दक़ीक़।

कंतूरियूनमलूक़ाख़ा–[यू०] क़ंतूरियून कबीर। क़ंतूरियून ग़लीज़ा।

कंतूरियून सग़ार–संज्ञा स्त्री० [रू०, यू०] एक वनस्पति जो एक बालिश्त के बराबर या उससे कुछ अधिक बड़ी होती और रबी की फसल में होती है। इसमें कांड और शाखाएँ होती हैं। यह दो प्रकार की होती है—जंगली तथा बाग़ी। इनमें से जंगली का फूल रक्त वर्ण का होता है, जिसमें कुछ नील वर्ण की झलक होती है। बाग़ी का पौधा इससे परिपुष्ट और उच्च होता है और उसका फूल चित्र विचित्र वर्ण का होता है यह जंगली की अपेक्षा अधिक सुगंधित होता है और पेड़ में ६ मास तक रहता है। पौधा सूख जाने के उपरांत बाग़ी की जड़ पृथ्वी में रहती है। प्रति वर्ष रबी की फ़सल में उक्त जड़ में से पौधा फूटता है। जंगली की जड़ भी शुष्क हो जाती है और हर साल रबी के प्रारंभ में पौधा फूटकर ग्रीष्मारंभ में फूल और बीज आ जाते हैं। दीसक़ूरीदूस ने जो यह लिखा है कि रबी के अंत में पौधा उगता है, उससे बाग़ी क़िस्म अभिप्रेत होगी। क्योंकि जंगली के संबंध में हकीम उलवीखाँ लिखते हैं कि यह रबी के प्रारंभ में उगती है। बाग़ी के फूलोंको शीराज़ निवासी 'गुलेमेख़क' और 'गुलेक़रनफ़ली' कहते हैं। बाग़ी और जंगली दोनों जाति के पौधों के अवयव समान होते हैं। पत्ते छोटे-छोटे और आकृति में सुदाव के पत्तों की तरह होते हैं। फूल ख़ैरी के फूल की तरह, पर उससे क्षुद्रतर होता है। फल गेहूँ के दाने की तरह होता है। इसका स्वाद अत्यन्त तिक्त और किसी प्रकार विकसा होता है। किंतु बाग़ी में कटुआहट कम होती है। शाखाओं का वर्ण

पीताभ श्वेत होता है। जड़ के सिवा इस पौधे के सभी अंग औषध के काम आतेहैं। क्योंकि इसकी जड़ प्रभावशून्य और छोटी होती है। इसमें २ वर्ष तक शक्ति विद्यमान रहती है। इसका स्वरस निकालकर काम में लाते हैं और इससे निम्न लिखित विधि से एक प्रकार का तैल भी प्रस्तुत करते हैं, जिसे रोग़न कंतूरियून कहते हैं।

तैलनिर्माण-क्रम इस प्रकार है—क़ंतूरियून के पत्तों का ताजा रस निचोड़कर जैतून के तैल में मिलाकर पकाएँ। जब रस जलकर तैलमात्र शेष रह जाय, तब उसे आँच पर से उतार लें। यही रोग़न कंतूरियून है। इससे शर्बत भी बनाते हैं अर्थात् इसके काढ़े में शर्करा डालकर चाशनी कर लेते हैं। जल के किनारे और कँकरीली भूमि में यह उपजती है। सर्वोत्तम कंतूरियून की पहचान यह है कि वह बारीक पिलाई लिये हो और जबान को काटे।

पर्य्या०—क़ंतूरियून दक़ीक़ (अ०)। लूफ़ाय खुर्द (फ़ा०)।

प्रकृति—तृतीय कक्षा में उष्ण तथा रूक्ष। हानिकर्त्ता—यकृत और आंतों को। दर्पघ्न—आंतों के लिये समग़ अरबी (बबूल का गोंद) और सफ़ेद कतीरा। तथा यकृत के लिये कासनी। प्रतिनिधि—समभाग हंसराज या अफसंतीन या ज़रावंद मदहर्ज और अर्द्धभाग बाबूना या निसोथ या आबवर्ग हिना तथा तिहाई भाग सुरंजान। मात्रा—ताजा ३॥ माशे से ७ माशे तक और शुष्क १०॥ माशे तक और वस्तिकर्म में इसका स्वरस ३॥ माशा।

गुण, कर्म, प्रयोग—

क़ंतूरियून सग़ीर में अत्यंत कड़ुवापन और अल्प मात्रा में क़ब्ज (धारक गुण) होता है। इसलिये यह बिना जलन एवं क्षोभ के निर्म्मलता एवं शोषणकर्म करती है और पित्त एवं सांद्र कफ के दस्त लाती है। इसके काढ़े से गृध्रसी रोग में इस कारण वस्ति की जाती है जिसमें कि यह सांद्र दोषों को निःसृत करे। यकृदावरोध और प्लीह काठिन्य में इसके पीने से या प्रलेप करने से लाभ होता है। अपनी निर्मलता-कारिणी शक्ति से यह आँख के फूला को दूर करती और दृष्टिशक्ति को तीव्र करती है। (त० न०)

यह कफ एवं लेसदार दोषों को छाँटकर निकालती है और कफ एवं पैत्तिक माद्दे का मल द्वारा उत्सर्ग करती है। कठिनाई और सूजन को बिठाती है। मूत्र एवं आर्त्तव, सूजन का प्रवर्त्तन करती है। नाड़ी एवं मस्तिष्क का शोधन करती है। मृगी और श्वास कष्ट का निवारण करती है, यकृत और प्लीहा के अवरोधों का उद्घाटन करती है। बलग़मी कुलंज को दूर करती है। तिल्ली की सख़्ती को मिटाती और कीट-पतंगादि विषधर जंतुओं के विष और प्रधानतः बिच्छू के विष का निवारण करती है। माउल् उसूल के साथ पीठ के दर्द, संधिशूल और गृध्रसी में कल्याण करती है। कभी इससे विरेचन लेने में इतना अधिक दस्त होता है कि रक्त के दस्त आने लगते हैं। क्योंकि यह अत्यधिक तीक्ष्ण एवं उष्ण है। बालों की जड़ों में इसका स्वरस भर देने से जूएँ मर जाती हैं। उसारे को स्त्री के दूध में पीसकर आँख पर प्रलेप करने से पपोटे की सूजन उतर जाती है। यदि पपोटा मोटा पड़ जाय; तो काकनज के काढ़े में घोलकर लगाने से आराम होता है। सौंफ के पानी के साथ आँख के समस्त रोगों को लाभ पहुँचाती है। यदि आँख में खुजली चलती हो तो, इस उसारे को खट्टे अनार के दानों के रस में पीसकर और पलक को उलट कर लगादें और थोड़ी देर पलक को उसी प्रकार उलटा रहने दें, एक दिन में आराम होगा। इसका उसारा आँख के समस्त रोगों के लिये रामबाण है। इसको योनि में धारण करने से, आर्त्तव का प्रवर्त्तन होता है, मृत शिशु निकल पड़ता है। (ख़० अ०)

समस्त क्रियाओं में क़ंतूरियून कबीर से श्रेष्ठतर है। इसकी धूनी या इसके काढ़े की वस्ति गृध्रसी, पीठ के दर्द और क़ुलंज के लिये अनुपम है। यह तीनों दोषों का रेचन करती है। इसका प्रलेप व्रणपूरक है और भगंदर (बवासीर) तथा कठिन शोथ को लाभप्रद है। (ब्रु० मु०)

क़ंतूरीदस—[यू०] आबगीना। काँच। शीशा।

कंतूल—[देश०] इजख़िर।

कंथ—[देश०] कंथारी।

कंथारी—संज्ञा स्त्री० [सं० कन्थारी] दे० "कन्थारी"।

कंथारिडीस–संज्ञा स्त्री० [अ०] तेलनी मक्खी। कैंथेरीडोज़।

कंथिमि–[बर०] सफ़ेद मुसली।

कंथान–[पं०] लघुनी (अफ़्०)।

कंथाल–संज्ञा पुं० [पं०] कटहल। पनस।

क़ंद:–[अ०] क़ंद। खाँड़।

कंद–संज्ञा पुं० [सं० कन्द:] दे० "कन्द"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक जड़ जो कटहल के बराबर होती और मालवा के पर्वतों पर उपजती है। उस देश के लोगों का कहना है कि यह चोपचीनी की अपेक्षा अधिक गुणकारी है और वे इसे उसी की भाँति सेवन भी करते हैं। २–३ माशे इसको बुकनी मिस्री मिला सुहाते गरम पानी के साथ इक्कीस वा चालीस दिवस पर्यंत फाँकते हैं। हरी तरकारी और लवण इसके सेवन काल में वर्जित हैं। यह चोपचीनी की भाँति कड़ी नहीं होती।

संज्ञा पुं० [अ० क़ंद] (१) एक प्रकार की शर्करा। कंद की शकर। शकर का नाम।

नोट—तक़ाइसुल्लुगात आदि में तबरज़द का नाम बताया है और क़नूद इसका बहुवचन लिखा है। शकर तबरज़द। बहरुल् जवाहिर के अनुसार यह गन्ने का उसारा है। (२) गुड़।

कंद ओल–[?] सूरन। शूरण। ज़िमीकंद।

क़ंद की शक्कर–[द०] (Loaf sugar) क़ंद।

क़ंद कोरी–[?] जुन्दबेदस्तर।

क़ंद ख़ाम–[अ०] खुश्क कंद।

क़ंद गड्डु–[ते०] घेट कचु।

कंद गिलोय–संज्ञा [सं० कन्द+हिं० गिलोय] एक प्रकार का गिलोय। कन्द गुडूची।

कंद गुडूची–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक प्रकार का गुरुच। कंदोद्भवा गुडूची।

कंदझारी–[मल०] किरनी। बालुसु। (Canthium parviflorium, *Lamk.*)

क़ंदज़, क़ंदोज़–[तु०] एक जानवर जिसके अंडों को "ज़ुन्दबेदस्तर" कहते हैं। खटासी।

क़ंदत–[?] क़ंद।

क़ंदतुर्क़ाअ्–[अ०] एक प्रकार का खजूर।

क़ंद दोबारा–[अ०] क़ंद मुकर्रर।

कंदन कत्तिरि–[ता०] छोटी कटाई। भटकटैया।

क़ंदफ़ीर–[गंदःपीर का अरबीकृत] बहुत बुड्ढा। अत्यन्त वृद्ध।

कंदबाक़ली–[?] बस्तियाज।

कंद मीरुग मिरत्तम बेंगै–[ता०] विजयसार।

क़ंद मुकर्रर–[फ़ा०] (१) साफ़ की हुई शर्करा। चीनी। कंद दो-बारा। (२) अबूलूजकन ताम। (बुर्हान क़ातिअ्)। (३) ओले का लड्डू।

कन्दमूल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) एक लता जिसकी जड़ में से कंद निकलता है और खाया जाता है। इसकी बेल चौमासे के प्रारम्भ में पुराने कन्द से विन्ध्यादि पर्वतों पर निकलती है। प्रारम्भ में निकलनेवाला तना पत्रशून्य सूक्ष्म रोमावृत ताँबड़े रंग का होता है। दो या तीन फुट बढ़ जाने के उपरांत तना के पार्श्व से पत्तियाँ निकलने लगती हैं। साथ ही उस पर नन्हें नन्हें कोमल काँटे भी निकल आते हैं। छः सात दिन के बाद पत्तियों का पूरा रूप प्रगट हो जाता है। वह डंठल जिसमें पत्तियाँ लगी रहती हैं, पौने पाँच इंच के लगभग लंबा होता है और उसमें ४–५ सूक्ष्म सरल वा कुछ वक्राकार कंटक होते हैं। डंठल के ऊपरी सिरे पर पृथक् पृथक् पाँच सवृंत पान के पत्ते सदृश पत्र लगते हैं। पत्तियों का प्रारम्भिक भाग संकुचित और आगे क्रमशः चौड़ा होता हुआ अंडाकार और छोरपर नुकीला हो जाता है। पत्तियों ऊर्ध्वाधः पृष्ठ सूक्ष्माति सूक्ष्म रोमों से व्याप्त होता है जिनका स्पर्श हाथों को भली भाँति अनुभूत होता है। इसके डंठल में कभी कभी छः पत्तियाँ भी देखी गई हैं; पर बहुत कम। इसका तना जब तीन-चार मास का हो जाता है; तब इसके रोंगटे सूख जाते हैं और तने का रंग सफ़ेद मालूम पड़ता है। हरा तना अत्यंत चिमटा होता है और यह कठिनता से टूटता है। तने का स्वाद फीका और लबाबदार होता है। इसकी पत्तियाँ भी स्वाद में फीकी और किंचित् पिच्छिलता युक्त होती है। इसकी पत्तियों के बीच में पत्तियों के नस का एक लम्बा दरार होता है। उसके अगल बगल आठ-नौ नसें तिर्छी लगी रहती हैं। पत्तियाँ देखने में सेमल वा सप्तपर्ण से मिलती-जुलती होती हैं। जब जाड़े के दिनों में इसकी जड़ खोदी जाती है, तब उसके नीचे से कंद निकलता है।

जंगल के कोल-भील इसे खाते हैं और कंदमूल नाम से पुकारते हैं। चुनार और मिर्ज़ापुर के जंगलों में यह बहुत होता है। कंद ऊपर से स्याहीमायल औरभूरा होता है। इसे प्रथम उबालते हैं। पुनः छिलका उतारकर आलू की भाँति इसकी तरकारी बनाकर खाते हैं। वर्षात अर्थात् क्वार के महीने में इसके पत्र-मूल में गोल-गोल छोटे-छोटे आलू-तुल्य फल लगते हैं। यह भी उबालकर खाया जाता है।

(२) एक पौधा जो बागों में लगाया जाता है। देखने में यह सेमल के नूतन वृक्ष की तरह जान पड़ता है। इसकी डालियों के टुकड़े टुकड़े करके माली लोग पृथ्वी में गाड़ देते हैं जिनसे नये वृक्ष तैयार हो जाते हैं। लगाने से दो-तीन वर्ष के उपरांत खोदने से इनकी जड़ में से बड़े लंबे कंद निकलते हैं। इसे भून या उबालकर शकरकंद की भाँति खाते हैं। यह स्वाद में मीठा होता है। इसके प्रत्येक दंड में प्रायः सात पत्तियाँ लगती हैं।

गुण, प्रयोगादि—यह पुष्टि जनक शुक्र-जनक, और बृंहण एवं शरीर-पोषणकर्त्ता है। उपर्युक्त कंदमूल से यह गुण में न्यून होता है। वन्यवासी साधु एवं अन्य जंगली लोग इन्हें खाकर जीवन-यापन कर सकते हैं; क्योंकि इनमें आहारांश पर्याप्त मात्रा में होता है।

(३) हिंदी में कंद और मूल दोनों को कंद-मूल कहते हैं।

कंदर–संज्ञा पुं० दे० "कन्दर"।

[पं०] कचूर।

क़ंदर–[?] बादाम।

कंदरक–संज्ञा पुं० दे० "कन्दरक"।

क़ंदरक़–[ ] (Salix Viminalis)

कंदरक़ूरी–[यू०] जुन्दबेदस्तर।

क़ंदरस–[यू०] चिलगोज़ा।

कंदरस, कंदरूस–[?] (१) मकाई। ललमकरी। खंदरूस। (२) चिलगोज़ा।

क़ंदरान, कंदरून–[तु०, अशक़०] बतम की गोंद।

[अ०] सातर।

कंदरूस–[तु० अस्क़०] मकाई। खंदरूस।

कंदरोलमर–[कना०] पारस पीपल। पारिष अश्वत्थ।

कंदर्प–संज्ञा पुं० दे० "कंदर्प"।

कंदल–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] नया अँखुआ। दे० "कन्दल"।

[बुख़ारा, ता०] उशशक़। समग़ इमाम।

संज्ञा पुं० [ ] एक प्रकार की गोंद। सकबीनज। कुंदील। कुंदिल। मु० ना०।

[मल०] कलिहारी। करियारी। कलिकारी।

कंदल सफ़री–संज्ञा पुं० [हिं० कंदल+फ़ा० सफ़री] अनन्नास।

कंदला–संज्ञा पुं० [सं० कन्दल] एक प्रकार का कचनार। कुराल। (Bauhinia retusa, *Hom.*) दे० "कचनार"।

कंदली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो नदियों के किनारे पर होता है। यह बरसात में पुष्पित होता है। उस समय इसमें बहुत से सफ़ेद-सफ़ेद फूल लगते हैं।

कंदलीदारु–संज्ञा पुं० [सं०] कचनार।

कंदवाकली–[?] बस्तियाज।

कंदसार–संज्ञा पुं० [सं०] हिरन की एक जाति।

कंदा–संज्ञा पुं० [ ] (१) दे० "कंद"। (२) शकरकंद। गंजी। (३) घुइयाँ। अरुई।

संज्ञा पुं० [विहारी] पिंडालू। कचालू। बंडा।

कंदानः–[ ] तीतान। करात।

कंदामणी चेड्डी–[ता०] सर्वजया। सब्बजया। अकलबेर। कामाची। देवकेलि। (Canna Indica, *Linn.*)

कंदामणु–[ता०] दे० "कंदामणी चेड्डी"।

कंदारः–[अ०] एक प्रकार की मछली जिसे 'सनाम' भी कहते हैं।

कंदावल–[सिरि०] कायफल। मु० अ०। म० अ०।

कँदु–संज्ञा पुं० दे० "कंदुक"।

कंदु–[पं०] शकाकुल मिस्री।

कँदुआ–संज्ञा पुं० [हिं० काँदो] कंडौर। कंडो।

कंदुक–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] सुपारी। पुंगीफल।

कँदूरी–हिं० संज्ञा स्त्री० [सं० कंदूरी] कुँदरू। बिंबा। कुनरू। दे० "कंदूरी"।

कंदूरी–संज्ञा स्त्री० [सं० कंदूरी] (१) कोल राई। (२) एक बहुवर्षीय वृक्षारोहीलता जिसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की चार पाँच अंगुल लंबी

पचकोनी होती हैं और रंग के काम में आती हैं। यह बरसात में उगती और फलती फूलती है। यह फल पकांत होती है। प्रति वर्ष इसकी पुरानी जड़ से नई बेल उगती है। इसमें सफ़ेद फूल लगते हैं। फल परवल की तरह, किंतु उससे छोटा अर्थात् लगभग २–२॥ इंच लंबा और एक इंच व्यास का मांसल, वेलनाकार, मसृण और कच्चे पर हरे रंग का होता है और उसके ऊपर लंबाई के रुख़ थोड़ी-थोड़ी दूर पर लगभग दस धारियाँ पड़ी होती हैं। यह अत्यन्त कड़ुआ होता है। परन्तु आरोपित कुँदरू में उक्त कड़ुआहट नहीं होती है, केवल जंगली वा स्वयंभू क़िस्म में ही उक्त कटुता पाई जाती है। आरोपित कुँदरू मीठा होता है और तरकारी के काम आता है। पकने पर दोनों प्रकार के कुँदरू गंभीर रक्त वा अरुण वर्णके और मीठे हो जाते तथा अस्फुटन शील (Indehiscent) होते हैं। इनमें बहुसंख्यक बीज भरे होते हैं। बीज कागजी नीबू के बीज की तरह होता है। ये फल पकने पर बहुत लाल होते हैं, इसीसे कवि लोग ओठों की उपमा इनसे देते हैं। इसी भाव को लेकर ही इसकी 'ओष्ठोपमफला, बिम्बोष्ठ' प्रभृति संस्कृत संज्ञाएँ बनी हैं। जड़ लंबी शंकाकार कंदमूल होती है। किंतु पथरीली भूमिमें उगनेपर यह प्रायः वक्र और ग्रंथिल आदि विरूपाकृति की हो जाती है। यह बहुवर्षीय होती है और प्रायः बढ़ कर बहुत बड़ी हो जाती है। किंतु जंगली पौधे में शीर्ष (Crowr) के ठीक नीचे के स्थूल भाग का औसत व्यास १ से २ इंच होता है। बाहर से यह पांडु पीताभ धूसर वर्ण की होती है, जिसके ऊपर अप्रशस्त वृत्ताकार झुर्रियाँ (Constrictions) और दीर्घाकार नालियाँ पड़ी होती हैं। इसका व्यत्यस्त काट (Transuerse section) पीला होता है और (Medullary rays) स्पष्ट दृगोचर होते हैं। काटने पर इसमें से एक प्रकार की स्वच्छ कर्कटी गंधी (Cucumber odour) रस स्रावित होता है जो सूखने पर निर्यासवत् जान पड़ता है। जड़ स्वाद में अम्ल और कषाय होती है, पर कड़ुआहट से सर्वथा खाली नहीं होती है।

पर्य्या०—बिम्बी, रक्तफला, तुण्डी, तुण्डिकेर (श०) फला, ओष्ठोपम फला, गोह्वा (कोंण्या), पीलुपर्णी, तुण्डिका (ध० नि०), मधुर बिम्बी, बिम्बिका, मधु बिम्बी, स्वाद तुण्डिका, तुण्डी, रक्तफला, रुचिरफला, सोष्णफला, पीलुपर्णी (रा० नि०), बिम्बी, रक्तफला,तुण्डी, तुण्डिकेरी, बिम्बिका, ओष्ठोपमफला, पीलुपर्णी (भा०) ओष्ठभा, ओष्ठफला, धीहर (द्रव्यनामक) दन्तच्छदा (मद०) रक्तपीतफला (गण०) विद्रुमफला, तुण्डिकेरिका, विद्रुमवाक् (केय० दे०), छर्दिन्योष्ठी, बिम्बिका (शोढल) ओष्ठी, कर्म्मकरी, तुण्डिकेरिका, तुण्डिकेरि, कुण्डिकेशी, बिम्बा, बिम्बक, कम्बजा, दन्तच्छदोपमा, गोह्वी, छर्दिनी, तुण्डिकेरिफला; तुण्डिकेरीफला, कुन्दुरुलता, मधुरबिम्बी, तुण्डिकशी, तुण्डिकेरी–सं०। कन्दूरी, कुन्दुरी, गुलकाँख, कुनरू, कुँदरू, मीठा कुँदरू–हिं०। कुन्दुरुकि, कुन्दरकी–बं० ।तोंडली–मरा०। टोडोरी–गु०।–कोकसिनिया इंडिका Coccinia Indica, *W.* –ले०। कुँदुरी–मरा०।

कुष्माण्ड वर्ग
(*N. O. Cucurbitaceœ.*)

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारतवर्ष। बंगाल और भारतवर्ष के अनेक भागों में बाहुल्यता से यह जंगली होती है। बरई (तमोली) प्रायः अपने पान के भीटों पर परवल की तरह इसकी बेल भी चढ़ाते हैं।

औषधार्थ व्यवहार—पत्र, मूल, फल और त्वक् (bark)

रासायनिक संघटन—जड़ में राल होती है जो काष्टिक सोडा और अमाइलिक एलकोहल में विलेय होती है। इसके सिवा इसमें एक क्षारोद, श्वेतसार, शर्करा, निर्यास, वसामय पदार्थ, एक सैन्द्रियकाम्ल (Organic acid) और १६% मैंगोनीज शून्य भस्म होती है।

(इं० मे० मे० पृ० १८६)

आर० एन० चोपड़ाके अनुसार इसमें एक एन्जाइम (Enzyme), एक हार्मोन (Harmone) और एक क्षारोद के चिह्न पाये जाते हैं

औषध-निर्म्माण—टिंक्चर वा आसव (१० में १ भाग)।

मात्रा—½ से १ ड्राम। प्रकांड और पत्र क्वाथ (१० में १), मात्रा–½ से १ आउंस। सूखी छाल का चूर्ण, मात्रा–२ मा०। मूल स्वरस—मात्रा–१ से ३ ड्राम। कांड और पत्र-स्वरस—मात्रा–१ से २ आउंस खाली पेट। मूल और पत्र स्वरस—मात्रा–१ से २ तोले।

गुण धर्म

आयुर्वेदीय मतानुसार—(मधुर वा गृहबिम्बी)

तुण्डिका कफपित्तासृक्शोफपाण्डु ज्वरापहा।
श्वासकासापहं स्तन्यं फलं वातकफापहम्॥
बिम्बीफलं स्वादु शीतं स्तम्भनं लेखनं गुरुः।
पित्तास्रदाह शोफघ्नं वाताध्मान विबन्धकृत॥
(ध० नि०)

कड़वे कुँदरू की जड़ और पत्ती—कफ, रक्त-पित्त, शोथ, पांडु, ज्वर, श्वास एवं कासनाशक तथा स्तन्यप्रद है। फल वात कफापह है। स्वादु बिम्बीफल अर्थात् मीठा कुंदरू—स्वादु, शीतल, स्तम्भन, लेखन और गुरु है तथा रक्तपित्त, दाह, शोथनाशक एवं वायुप्रकोप तथा आध्मानकारक और मलमूत्र रोधक है।

बिम्बी तु मधुरा शीता पित्त श्वास कफापहा।
असृग् ज्वरहरा रम्या कासार्जद्गृह बिम्बिका॥
(रा० नि० व० ७)

मीठा कुँदरू—मधुर, शीतल, पित्त, श्वास एवं कफनाशक तथा ज्वर, रक्तविकार और कास नाशक है।

बिम्बीफलं स्वादु शीतं स्तन्य कृत्कफ पित्तजित्।
हृदाह ज्वर पित्तास्र कास श्वास क्षयापहम्॥
(शो० नि०)

कंदूरी—स्वादिष्ट शीतल, स्तन्यकारक, कफ पित्तनाशक तथा दाह, ज्वर, रक्तपित्त, खाँसी श्वास और क्षय रोग का नाश करती है।

बिम्बीफलं स्वादु शीतं गुरु पित्तास्र वातजित्।
स्तम्भनं लेखनं रुच्यं विबंधाध्मान कारकम्।
(भा०)

मीठाकुनरू—स्वादु, शीतल, भारी, रक्तपित्त नाशक, वातविनाशक, स्तम्भन, लेखन, रुचिकारक तथा विबंध (मलमूत्ररोधक) और आध्मान-कारक है।

बिम्बिका मधुरा शीता कफ वान्ति करा मता।
रक्तपित्त क्षय श्वास कामला पित्त शोफकान्॥
रक्तरुग्विष कासांश्च रक्तपित्त ज्वरान्हरेत्।
फलमस्या गुरुः स्वादुः शीतलं लेखनं मतम्॥
मलस्तम्भकरं स्तन्यमुदरे वातसंचयम्।
रुच्यं पित्तं रक्तदोष वाताञ्छ्वासं च नाशयेत्॥
शोथ वृद्धिदाह कास श्वास नाशकरं मतम्।
पुष्पमस्याः कण्डुपित्त कामला नाश कारकम्॥
अस्या पर्णेद्भिवा शाका शीतला मधुरा लघुः।
ग्राहका तुवरा तिक्ता पाके कटवी च वातला॥
कफपित्तहरा प्रोक्ता पूर्वैर्वैद्यवरैः स्फुटम्।
मूलमस्या हिमं मेहनाशनं धातुवर्द्धकम्॥
हस्तदाह हरं भ्रान्ति वान्ति नाशकरं मतम्।

कंदूरी—मधुर; शीतल, कफकारक, वमनजनक तथा रक्तपित्त, श्वास, कामला, पित्तकी सूजन, रुधिरविकार, विषदोष, खाँसी, रक्तपित्त और ज्वर को दूर करती है। इसके फल—भारी, स्वादिष्ट, शीतल, लेखन, मलस्तम्भक, स्तन्यकारक, उदर में वायु को संचित करनेवाले, रुचिकारक तथा पित्त, रुधिर विकार, वात, श्वास, सूजन, वृद्धि, दाह, खाँसी और श्वास (दमे) को हरने वाले हैं। इसके फूल—कण्डू, पित्त एवं कामला को दूर करनेवाले हैं। इसके पत्तों का शाक—शीतल, मधुर, हलका, मलरोधक, कसेला, पाकमें चरपरा, बादी तथा कफ और पित्त का नाश करता है। इसकी जड़—शीतल, प्रमेहनाशक, धातुवर्द्धक तथा हाथ-पांवों की दाह, भ्रान्ति और भ्रांति को शांत करती हैं।

केयदेव के अनुसार यह वातकारक, कफकारक पाक में चरपरा, संग्राही, क्षय एवं शोथनाशक, कामला नाशक और रक्तपित्तनाशक है तथा वात, आध्मानादि एवं विबंधकारक है। [द्रव्यरत्नाकर

के अनुसार इसका फल बुद्धिनाशक और स्तन्य-वर्द्धक है। तथा जड़ वीर्य जनक शीतल और प्रमेह नाशक है। मदनपाल के अनुसार भ्रान्तिहर और गणनिघण्टु के अनुसार वमनहारक है।

युनानी मतानुसार—

प्रकृति—पत्र शीतल और रूक्ष; फल शीतल और तर हैं।

हानिकर्त्ता—कुँदरू (फल) संग्राही (काबिज़), आध्मानकारक और आमाशय को निर्बल करता है। मूल स्वरस उत्क्लेशकारक, वामक और तीव्र विरेचक है और इससे अंगों में दाह होने लगता है।

दर्पघ्न—विबंध, आध्मान और आमाशय नैर्बल्य वा मंदाग्नि के लिये उष्ण औषधियाँ और जड़ के लिये बिहीदाने का लबाब एवं इसबगोल और बारतंग का लबाब दर्प निवारक औषधि-द्रव्य है।

प्रतिनिधि—लौकी वा परवल।

मात्रा—आवश्यकतानुसार।

गुण, कर्म, प्रयोग—(फल) पित्त और रक्त विकार तथा दाह को मिटाती है। यह वमनकारक दोष संशोधक, मेदनाशक, स्थौल्यहर, संग्राही, विबंधकारक, आध्मानकारक, वातकारक और स्तम्भनकर्त्ता है। जड़ शीतल, कफनाशक और विष प्रभाव नाशक है। लेखक के निकट यह शीतल एवं तर है और कोष्ठ को मृदु कर्त्ता एवं आमाशय को निर्बल करती है। इसका अचार (गरम चीजों के साथ) कुव्वत जाज़िबा (अभि-शोषण शक्ति) बल प्रदान करता है और पाचन शक्ति को बढ़ाता है। (ता० श०), यह वृक्करोगों को लाभकारी है। (ख़० अ०), इसकी जड़ स्तंभन कर्त्ता है। (म० मु०)

यह सर्द तरकारी है और पित्त एवं रुधिर प्रकोप, और ऊष्मा तथा पिपासा को शांत करती तथा रोगियों के लिये उत्तम पथ्याहार है। विशे-षतः उष्ण प्रकृति वालों के लिये। (बु० मु०)

जख़ीरहे अकबर शाही के अनुसार यह भारी है तथा पित्त, कफ, रुधिर विकार, दमा, ज्वर और कास—इनको दूर करती है। कंदूरी अपने प्रभाव से बुद्धि को मंद करती है।(कुँदरू के विषय में यह प्रवाद चला आता है कि यह बुद्धिनाशक होता है)।

फल के ऊपर का छिलका उतारकर सेवन करने से यह पेट कम फुलाती है। यह भूख बढ़ाती है; रुधिर उत्पन्न करती है; स्तनों में दूध बढ़ाती है; अर्श और आमाशयिकातिसार को लाभकारी है। (ख़० अ०)

वैद्यों के कथनानुसार कंदूरी के फल गुरुपाकी, शीतल, मधुर, और व्रण विदारण होते हैं। ये मल (विष्ठा) को शुष्क करते उदर में वायु की वृद्धि करते और स्तनों में दूध बढ़ाते हैं तथा अरुचि, पित्त रुधिर विकार, दम; सूजन, गरमी और खाँसी—इनको मिटाते हैं।

इसके फूल खुजली, पित्त और कामला को दूर करते हैं।

इसके पत्तों का साग ठंडा, मीठा, लघुपाकी, मलस्तंभक, कसेला, कड़ुवा, पाक में चरपरा (कटुपाकी) और वातवर्द्धक होता है। यह कफपित्तनाशक है।

इसकी जड़ शीतल और वीर्यवर्द्धक होती है। यह प्रमेह (जरियान), हाथों की गर्मी, शिरःशूल और वमन का नाश करती है। बहुमूत्र रोग में प्रयुक्त रसायनौषधों को इसकी जड़ के खालिस रस में भिगोते हैं। फिर उसी के रस में वटिकायें प्रस्तुत करके प्रातःकाल इसमें से एक वटी खिलाकर ऊपर से इसी की जड़ का रस एक तोला पिला देते हैं।

इसकी जड़ काटने पर उसमें से एक प्रकार का चेंपदार रस निकलता है जो सूखने पर कुछ लाल गोंद की तरह जम जाता है। यह बहुत काबिज़ होता है। किंतु फल की भाँति कड़ुआ नहीं होता।

इसकी जड़ की छाल का चूर्ण दो-माशे फँकाने से अच्छी तरह दस्त लगते हैं।

इसके पत्तों को घी के साथ पीसकर जख़्मों पर लेप करते हैं।

आबलों पर इसके पत्तों को बाँधते हैं या उनका लेप करते हैं।

इसके पत्तों का ख़ालिस रस पूयमेही को पिलाते हैं।

जिह्वा के ऊपर के क्षत मिटाने के लिये इसके हरे फल चूसते हैं।

किसी किसी वैद्यकीय ग्रंथ में उल्लिखित है कि, पका फल वायु और पित्त का नाश करता है; शक्ति प्रदान करता है; चित्त को प्रफुल्लित रखता है; पैत्तिक वाष्प (अब्ख़रः) का निवारण करता है; नेत्रगत पीतवर्णता का नाश करता है और भूख बढ़ाता है। इसकी जड़ सारक है।

इसके पत्ते फोड़े-फुंसी, कामला और श्लेष्मा को लाभकारी हैं।

गोघृत (रोग़न ज़र्द) में जलाकर व्रण पर लगाने से शुद्ध मांसरोहण होता है। (ख़० अ०)

नव्यमत

ऐन्सली—दक्षिणात्य भारत में इसके उपयोग का उल्लेख करते हैं। उनके कथनानुसार विषधर प्राणी द्वारा दष्ट रोगी को इसकी पत्ती का स्वरस पीने और दष्ट स्थान पर प्रलेपनार्थ प्रयोग करते हैं।

मुहयुद्दीन शरीफ़ के अनुसार दक्षिणात्य भारतीय बाज़ारों में इसकी जड़ कबर मूल (Caper root) की प्रतिनिधि स्वरूप विक्रय होती है।

ज्वर में स्वेद लाने के लिये कोंकण में इसकी जड़ को इसके पत्रस्वरस में पीसकर रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर लेप करते हैं और जिह्वा के ऊपर के क्षतों के निवारणार्थ इसके हरेफल चबाते हैं। (फ़ा० इं० २ भ० पृ० ८६)

नादकर्णी—प्रभाव—यह रसायन है। शुष्क त्वक् उत्तम विरेचक है। पत्र और कांड आक्षेपहर और कफ निःसारक हैं।

आमयिक प्रयोग—जड़ का ताजा रस बहुमूत्र (Diabetes), विवृद्ध वा सूजी हुई ग्रंथियों और व्यंग वा झाँई (Pityriasis) सदृश चर्म रोगों में व्यवहृतहोता है। चर्म रोगों और क्षतों पर घी में मिला- कर इसकी पत्ती का लेप करते हैं।

चर्म पर मसूरिका (Small-pox) जैसे दाने निकलने परभी इसके पत्ते लगाये जाते हैं। सूज़ाक में साधारणतया इसके पौधे के टिंकचर का अंतः प्रयोग होता है। जानवरों के काटे हुये स्थान पर पत्ती का ताजा रस लगाया जाता है। ज्वरों में पसीना लाने के लिये भी शरीर पर इसे लगाते हैं। कहते हैं कि फुफ्फुस प्रणालीय नज़ला (Bronchial catarrh) और कास (Bronchitis) में इसके कांड और पत्ते का काढ़ा उपयोगी होता है। दद्रु विचर्चिका (Psariasis) और कंडू में इसकी पत्तियों को तिल तैल (Gingellyoil) में उबाल कर लगाते हैं। क्षतों (Ulors) पर लगाने के लिये तथा पुरातन नाड़ी व्रणों (Sinuses) में पिचकारी करने के लिये भी उक्त तेल का उपयोग करते हैं।

(इं० मे० मे० पृ० १८६)

आर० एन० चोपरा, एम० डी०—मधुमेह (Diabetes mellitus) पीड़ित रोगियों की मूत्रगत शर्करा की मात्रा घटाने में दृष्टफल होने के लिये बंग देश में कंदूरी की बेल सुविख्यात है। किसी किसी ने तो इन्सुलीन (Insulin) की भारतीय प्रतिनिधि तक लिख डाला है। कलकत्ते के चिकित्सकों में मधुमेह (Glycosuria) में इसकी उपादेयता के प्रति अटल विश्वास पाया जाता है। कलकत्ता के मेडिकल कॉलेज आतुरालय में समाविष्ट मधुमेह पीड़ित कतिपय शस्त्रसाध्य रोगियों पर इसके हरे पौधे के रस की परीक्षा की गई और उनपर यह दृष्ट फलप्रद सिद्ध हुआ। कहते हैं कि इससे शर्करा की मात्रा बहुत घट गई और किसी किसी रोगी में तो सम्यक् विलुप्त प्राय हो गई। कहते हैं कि इससे भी बहुत वर्ष पूर्व मेडिकल कॉलेज के औषध-गुण-धर्म परीक्षण विभाग में उक्त औषध की परीक्षा की गई थी और कतिपय प्रयोगात्मक कार्य भी किये गये थे परंतु प्रकाशित साहित्य में उक्त कार्य विषयक परिणाम अब अप्राप्य हैं।

मधुमेह रोग में इस औषधि के उपयोगी होने का विश्वास आयुर्वेदिक चिकित्सकों में प्राचीन

काल से ही चला आ रहा है। वे प्रायः इसकी कंद मूलीय जड़ एवं पत्र के ताजे रस को अकेले वा किसी धातु वा रस कल्प योग से मधुमेह प्रतिकारार्थ वर्तते हैं।

आधुनिक अन्वेषकों में से वर्तमान सभी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित सर्व साधन सम्पन्न डॉक्टर चोपरा और उनके सहकारी अर्वाचीन विधि-विधानानुकूल स्वयं इसका विश्लेषण करके द्रव्य-गुणधर्म परिज्ञानार्थ इसके सत्वादि का स्वस्थ जीवों में और तदुपरांत रोगियों में नाना विध प्रयोग कराने के उपरांत जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उसका सारांश इस प्रकार है—

"कंदूरी में अमाइलोलिटिक गुण विशिष्ट एक एनज़ाइम (Enzyme), एक हर्मोन और अंशतः एक प्रकार का क्षारोद होता है, चूहों में इनमें से किसी एक के स्वग् अंतः क्षेप से शर्करा की मात्रा नहीं घटती है। कुँदरू की पत्ती, तना और जड़ के ताजे रस के उपयोग से मधुमेह पीड़ित रोगियों की मूत्र वा रुधिरगत शर्करा की मात्रा तनिक भी कम नहीं होती है और जो कुछ कमी होती है वह शुद्धतया आहार विहार जन्य होती है"। (इं० ड्रू० इं० पृ० ३१६)

जंगली वा कड़ुआ कुनरू

पर्य्या०—तिक्त तुण्डी, तिक्ताख्या, कटुका, कटुतुण्डिका, बिम्बी, कटुतुण्डी, (रा० नि०), कटु बिम्बी, तिक्तबिम्बी, तुण्डीपर्य्यायगा।

—सं०। कड़वी कंदूरी; कड़वा कुनरू, कड़ुआ कुँदरू—हिं०। कटुतराई, तित्पल्ता, तेत केन्दुरुकी, तेलाकुचा, तित कुन्दरु,—बं०।

मोमोर्डिका मॉनएडेल्फा Mamordica Monadelpha *Roxb.*, सिफैलैंड्रा इंडिका Cephalandra Indica, *Naup*—ले०। डोंड तीगा, काकी डोंडा—ते०। कोवै—ता०। रानतोण्डला, कडु तोण्डली—मरा०, कड़वी घोली—गु०। तोंडे कोंडे, तीत कुन्दुरु—कना०। कोवा—मल०। भिम्ब—बम्ब०। कुंदरू, घोल, कंदूरी—पं०। कवरे हिंदी, पल्वल तल्ल—फ़ा०। किमूवेल्—सिंह०। सहराई।

गुण धर्म तथा प्रयोग

आयुर्वेदीय मतानुसार—

कड़ुआ कुँदरू—

कटुतुण्डी कटुस्तिक्ता कफवान्ति विषापहा।
अरोचकास्रपित्तघ्नी सदापथ्या च रोचनी॥
(रा० नि० ३ व०)

कड़वी कंदूरी—चरपरी, कड़वी; सदैव पथ्य (हितकर), एवं रोचनी—रुचिजनक (वा पाठांतर से रेचनी=रेचन करनेवाली) है तथा कफ, पित्त, विष, अरुचि, खाँसी और रक्तपित्त को नष्ट करनेवाली है।

तिक्तबिम्बो फलं चाम्लं छर्दनं कफनाशनम्।
पक्वं पित्तहरं शीतं मधुर रस पाकयोः॥
(शो० नि०)

कच्चा कड़वी कंदूरी—वमनकारक और कफनाशक है। पका कड़वा कुनरू—पित्तनाशक, शीतल और रस तथा पाक में मधुर है।

तिक्त बिम्बीफलं तिक्तं वामकं वातकोपनम्।
शोथरुग्विष पित्तघ्नं रक्तरुक्कफपाण्डुनुत्॥
(नि० र०)

कड़वा कुनरू—कड़वा, वमनकारक, वात कुपित करनेवाला तथा शोथ रोग, विष, पित्त, रुधिर विकार, कफ और पाण्डु रोग को नष्ट करनेवाला है।

सुश्रुत के मतानुसार इसका फल साँप और बिच्छू के विष में लाभदायक है। परंतु कायस और म्हस्कर के मतानुसार यह उक्त उभय विषों में निरर्थक है।

नव्य मत

आर० एन० खोरी—यह रसायन है और बहुमूत्र, विवृद्ध ग्रंथि (Enlarged glands) और व्यंग वा झाँई (Pityriasis) आदि चर्मरोगों में व्यवहृत होती है। (Vol. II, P. 307)

उ० चौ० दत्त—कुँदरू का मूल एवं पत्र स्वरस बहुमूत्र रोग में व्यवस्थित धातु घटित औषधों के अनुपान स्वरूप व्यवहृत होता है।

इसकी मात्रा एक तोला (१८० ग्रेन) दैनिक प्रातःकाल है। डॉक्टर उदय चाँद लिखते हैं कि इसके व्यवहार से अनेक बहुमूत्र रोगी उपकृत हो चुके हैं। इनके मत से इसकी जड़ का निकाला हुआ ताजा रस १ तो० वंगेश्वर या सोमनाथ रस की १ गोली के साथ प्रतिदिन दिया जाना चाहिये।

बेलफोर—चर्मगत विस्फोटकों पर इसकी पत्ती का बहिः प्रयोग होता है और सूज़ाक में इसकी समग्र बेल आंतरिक रूप से उपयोग में आती है।

अष्टांग आयुर्वेदिक कालेज के निर्माता यामिनी भूषण मधुमेह रोग में इसका उपयोग किया करते थे। उनका कथन है कि इसका ताजा रस १-३ औंस की मात्रा में प्रतिदिन प्रातः काल लेना चाहिये।

इसकी जड़ की छाल का चूर्ण दो माशा फाँकने से खूब दस्त आते हैं।

कंदूरी-की-बेल–संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुँदरू। बिंबा।

कंदूल–[मरा०] गुलू। कुलू। करै।

क़ंदूल–[अ०] कायफल।

कंदे अस्करी–[अ०] एक प्रकार का कंद लतीफ़ है।

क़ंदे अस्वद–[अ०] गुड़।

क़ंदे पारसी–[अ०] एक प्रकार का उत्तम क़ंद।

कंदेइ–[पं०] स्वादु कंटक।

कंदेब– संज्ञा पुं० [देश०] पुन्नाग वा सुलताना चंपा की जाति का एक वृक्ष। यह उत्तरीय और पूर्वीय बंगाल में होता है।

कंदे स्याह–[फ़ा०] गुड़।

क़ंदे सुफेद–[अ०] मिस्री।

कंदे सुपेद–[फ़ा०] मिस्री।

क़ंदोज़–[तु०] एक प्रकार का जानवर जिसकी आँतड़ियाँ जुंदबेदस्तर कहलाती हैं। गंधबिलाव। मुश्क बिलाई।

क़ंदोल–[अ०] कायफल का पेड़ (क़ामूस)। बुर्हान में 'क़िंदोल' लिखा है और उसके अनुसार यह रूसी भाषा का शब्द है। मख़्ज़न और मुहीत में जो इसे 'कंदावल' लिखा है। वह अशुद्ध ज्ञात होता है। जामअ इब्नबेतार में इसका उल्लेख पाया जाता है।

क़ंदैज़–[ता०] धुंधुल।

कंद्राविका–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोंचर नमक।

कंधरा–संज्ञा पुं० [सं० स्त्री०] ग्रीवा। गर्दन।

कंधा–संज्ञा पुं० [सं० स्कंध, प्रा० कंध] (१) मनुष्य के शरीर का वह भाग जो गले और मोढ़े के बीच में है। (२) मोढ़ा। बाहुमूल। (३) बैल की गर्दन का वह ऊँचा भाग जिस पर जुआ रक्खा जाता है।

कंधारी–वि० [हिं० कंधार] जो कंधार देश में उत्पन्न हुआ हो। कंधार का।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का हींग। दे० "हींग"। (२) घोड़े की एक जाति जो कंधार देश में होती है।

संज्ञा स्त्री० [सं० कन्थारी] कंथारी दे० 'कन्थारी"।

कंधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीवा। गर्दन।

कंपुतुम्म–[ते०] गूद बबूल। गूकीकर। विट्खदिर।

कंफेर–[जर०] कपूर।

क़ंबअः–[अ०] बेद का खुशा।

कंबठ–[म०] कैथ।

कंबल–संज्ञा पुं० दे० "कम्बल"।

कंबलि-चेट्टु–[ते०] शहतूत।

कंबलि-वूचि-चेट्टु–[ते०] शहतूत।

कंबिलि-पूचि-चेडि–[ता०] Moras Indica, *Linn.* शहतूत। तूत।

कंबलु–[सिंगा०] वागाधूब (बम्ब०)।

कंबानि–संज्ञा स्त्री० [?] कासनी।

कंबार–[अ०] नारियल के रेशे की रस्सी।

कंबारी–संज्ञा स्त्री० [देश०] गंभारी। कमहार।

कंबिआ–[कना०] डिकामाली।

कंबिल–संज्ञा पुं० [देश०] कमीला।

कंबिलि-पूच–[म०] तूत।

कंबी–[पं०, हिं०] कटेर। गनियार। गलगल।

क़ं (क़ुं) बीज़-[अ०] साँप ।

क़ंबीर-[अ०] कमीला ।

क़ंबीरस-[अ०] एक प्रकार का दही ।

क़ंबीरा-[सिरि०] भाँग ।

क़ंबील-[मुअ०] कमीला ।

कंबीरः-[फ़ा०] एक प्रकार का खीरा ।

कंबीला-[फ़ा०] कमीला ।—(ख० अ०)

क़ंबीस-[यू०] विजया बीज । शहदानज ।

कंबु-[ता०] बाजरा । धान ।

कंबूंग-[मरा०] विवई (कुमा०) । जरीला (नेपा०) ।

कंबेला-[फ़ा०] कमीला ।

कंबोई-संज्ञा स्त्री० [सं० काम्बोजी] एक बड़ा पेड़ जिसकी पत्ती आँवले की पत्ती की तरह होती है । डालियाँ लंबी लंबी होती हैं । फल गोल और कच्चे पर हरा और पकने पर काला पड़ जाता है ।

पर्य्या०—काम्बोजी, काम्बोजिनी, बहुपुष्पा, बहुप्रजा-सं० । काम्बोजी-बं० । चिफली-मरा० । खेडा कम्बोई-गु० । Phylanthus Multiflorrs or Phylanthus Recticutalus-ले० ।

गुण—मलरोधक तथा वात, सूजन और रुधिर के विकारों को दूर करती है ।

(शा० नि० भू० परि०)

कँभारी-संज्ञा स्त्री० [सं० कंभार] गमहार । कमहार । गंभारी ।

कँवल-संज्ञा पुं० दे० 'कमल' ।

कँवल कंद-संज्ञा पुं० [हिं० कँवल+कंद] कमल की जड़ ।

कँवल-ककड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० कँवल+ककड़ी] कमल की जड़ । भसींड़ । मुरार ।

कँवलगट्टा-संज्ञा पुं० [सं० कमल+हिं० गट्टा] कमल का बीज ।

कँवल पत्र-संज्ञा पुं० [हिं० कँवल+सं० पत्र]

कँवलबाव-संज्ञा पुं० दे० "कमलवायु" ।

कँवला-संज्ञा पुं० [सं० कमला] संतरा का एक भेद जो उसकी अपेक्षा हीन गुण और अधिक अम्लास्वाद युक्त होता है ।-(ता० श०) वि० दे० "संतरा" ।

कंशीरा-[?] Comru·lino Bengalensis कानूराक़ा ।

[?] बर्बरी । बबुई ।

कंशू-[फ़ा०] कच्चा अंगूर । ग़ोरः ।

क़ंशूरः-[अ०] वह स्त्री जिसे हैज़ न आता हो ।

कंशे-[मरा०, कों०] काँसा ।

कंस-संज्ञा पुं० [सं० पुं० क्ली०] (१) धातु द्रव्य । कंसमाक्षिक (महाद्रावक) । (२) काँसे का बना हुआ पानी पीने का बरतन । प्याला । छोटा गिलास या कटोरा । अ० टी० । (३) मद्यादि पान करने का पात्र । शराबादि पीने का बरतन । पान भाजहन । कंश । कांस्य ।

संज्ञा पुं० [सं० क्ली० पुं०] (१) काँसा । कांस्य धातु । प० मु० । (२) एक नाप जिसे आढ़क भी कहते थे । यह चार सेर की होती थी । भा० । (३) कांस्य धातु । कांसा ।

पर्य्या०—कांस्य, कंशास्थि और ताम्रार्ध । दे० काँसा" ।

कंसक-संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] (१) पुष्प कसीस । पुष्पकाशीश । नयनौषध । कसीस । यह लोहे का मल है । इसे आँख में लगाया करते हैं । हे० च० । (२) कांस्य । काँसा । (३) काँसे का बना पात्र ।

कंसपात्र-संज्ञा पुं० [स०] (१) काँसे का बर्तन । (२) आढ़क नाम की एक तौल । इसमें ४ सेर द्रव्य आता है ।

कंसमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं० पुं] माक्षिक विशेष ।

कंसहरीतकी-संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] एक आयुर्वेदीय योग ।

दशमूल के १ आढ़क क्वाथ में १०० पल गुड़ और १०० नग हरड़ डालकर पकायें । जब लेह तैयार हो जाय तब उसमें त्रिकुटा और त्रिसुगन्ध (दालचीनी, तेजपात और इलायची) के चूर्ण का प्रक्षेप देकर रात भर रक्खा रहने दें । फिर सुबह को उसमें आधा प्रस्थ (८ पल) शहद और १ कर्ष जवाखार मिलायें ।

गुण तथा उपयोग—इसमें से प्रतिदिन १ हड़ और २ कर्ष अवलेह खाने से प्रवृद्धि शोथ, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, हिचकी, प्लीहा, त्रिदोषजन्य उदर रोग, पांडु, कृशता, आमवात, अम्लपित्त, विवर्णता, वायुविकार, मूत्रविकार और शुक्र दोषों का नाश होता है।

च० चि० १२ अ०।

कंसार–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] अस्थि। काँसे जैसी सफ़ेद हड्डी।

कंसास्थि–संज्ञा स्त्री० [सं० क्ली०] (१) काँसा। कांस्य धातु। "कसे तु कांस्यं कंसास्थि"। त्रिका० (२) कंसार। कांसे जैसी सफेद हड्डी।

कँसुवा–संज्ञा पुं० [हिं० काँस] एक कीड़ा जो ईख के नए पौधों को नष्ट करता है।

कंसो–[गु०] काँसा।

कंसोदूवा–संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री०] सोरठी मिट्टी। गोपीचंदन। सौराष्ट्रमृत्तिका। हे० च०।

संस्कृत पर्य्या—आढ़की, तुवरा, काची।

कंसेक्या–[?] स्योड़ा गाछ।

मृदाह्वया, सौराष्ट्री, पार्वती, कालिका, पर्पटी और सती। आजकल इस मृत्तिका का एकांत अभाव होने से परिभाषा के अदेशानुसार इसके बदले औषधों में पंक-चर्पटी डालते हैं।

कंसीय–संज्ञा पुं० [सं० क्ली०] कांस्य धातु। काँसा।

कँहान्, कौंहान्–संज्ञा स्त्री० [नव्ती। कोहान से अरबीकृत] एक छोटी जाति का उद्भिद् जिसके पत्तों का रंग एवं तीव्रता बतम के समान होती है। इसका तना मोटा होता है, जिससे बतम की शाखाओं के सदृश कोमल शाखाएं फूटती हैं।

प्रकृति–तृतीय कक्षा में उष्ण और रूक्ष।

मात्रा—३॥ मा० से १०॥ मा० तक।

गुण धर्म तथा प्रयोग—इसके सूँघने से मस्तिष्क में गर्मी आती है। इसके पीने से शरीर में अत्यधिक ऊष्मा प्रादुर्भूत होती है। इससे आमाशय एवं शीतल यकृत में भी गरमी आती है। यह पाचन शक्ति बढ़ाती है। इसमें यह एक विशेष गुण है कि इससे बिच्छू भागता है। इसके समीप नहीं फटकता। यदि इसके पत्ते बिच्छू पर डालें, तो वह तत्क्षण मर जाय। (ख़० अ०)

नोट—एक रुपया प्रवेश फीस जमां कराने वालों को ही यह कोष पौने मूल्य में मिल सकता है, अन्यों को नहीं। भारत में इसके जोड़ का उपयोगी और इतना बड़ा कोई कोष आजतक इतने कम दामों में कहीं से भी नहीं मिल सकेगा। —व्यवस्थापकः